CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

O15,1A2 १६६६
152 J9.2
व्यास (कृष्णद्वैपायन)
महाभारत / संपु २ /

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
ग्रन्थालय
प्राप्ति क्रमांक 4000
दिनांक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाभारत

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

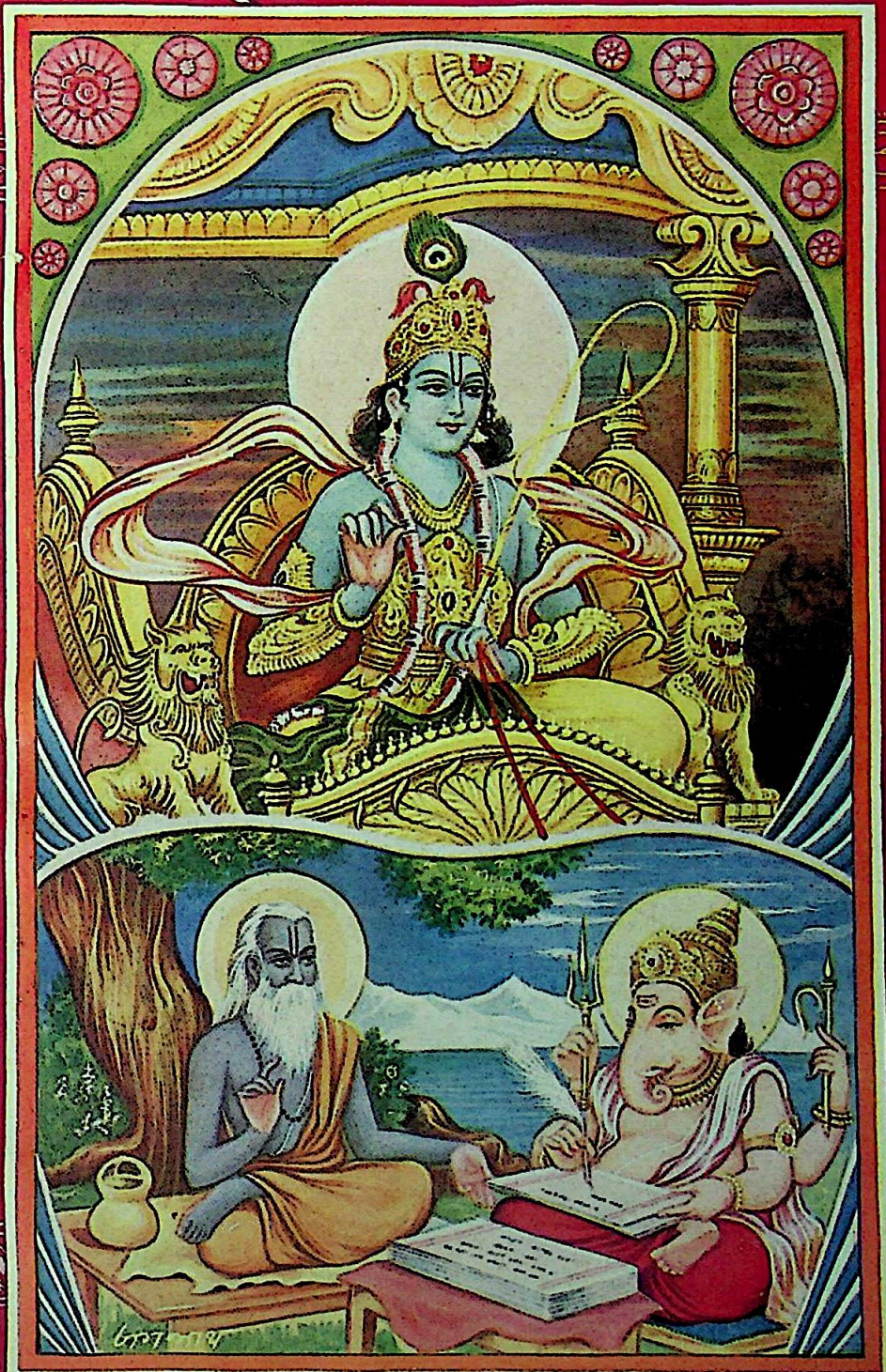

संस्कृत मूल

हिन्दी अनुवाद

वर्ष ४

हरिवंश-टीकासहित

संख्या ८

CC-0: Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष ४ | गोरखपुर, श्रावण २०१६, अगस्त १९५९ | संख्या ८ पूर्ण संख्या ४४

श्रीकृष्णकी स्तुति

अष्टम्यां वदि भाद्रे नौमि निशीथे समुद्यन्तम् ।
कंसतमोविध्वंसनशीलं श्रीनीलचन्द्रमसम् ॥

जो भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथिको आधी रातके समय उदय होनेवाले हैं और कंस आदि दैत्यरूपी अन्धकारका नाश करना जिनका स्वभाव है, उन श्रीनीलचन्द्रमा (भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र) की मैं स्तुति करता हूँ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

015,1A2
152 J9.2

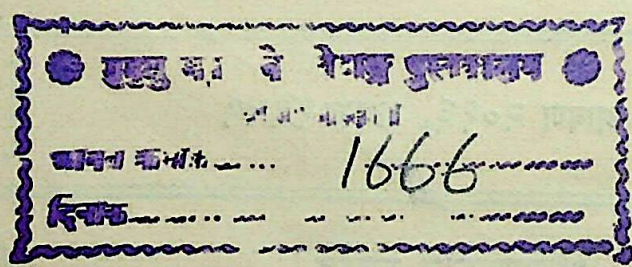

वार्षिक मूल्य
भारतमें १५)
विदेशमें २०)
(३० शिलिंग)

सम्पादक, मुद्रक तथा प्रकाशक
हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर
टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

एक प्रतिका
भारतमें १॥)
विदेशमें २)
(३ शिलिंग)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

खिलभाग हरिवंशकी विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	(भविष्यपर्व चालू)	
८७	भगवान् श्रीकृष्णद्वारा महादेवजीकी स्तुति	१००९
८८	भगवान् शिवद्वारा श्रीविष्णुकी स्तुति ...	१०११
८९	भगवान् शङ्करका ऋषियोंको श्रीकृष्णतत्त्वका उपदेश देना	१०१६
९०	भगवान् शंकरद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और श्रीकृष्णका कैलाससे बदरिकाश्रममें लौटना	१०१७
९१	पौण्ड्रकका राजाओंकी सभाओंमें अपनेको शङ्ख, चक्र आदिसे युक्त वासुदेव घोषित करना और श्रीकृष्णको पराजित करनेका मनसूबा बाँधना	१०२०
९२	पौण्ड्रकके यहाँ नारदजीका आगमन और उसके साथ उनकी बातचीत ...	१०२१
९३	नारदजीका श्रीकृष्णके पास जाना और पौण्ड्रकका द्वारकापर आक्रमण ...	१०२३
९४	दानव वीरोंद्वारा पौण्ड्रककी सेनाका और एकलव्यद्वारा यादव सेनाका संहार ...	१०२४
९५	पौण्ड्रकद्वारा पूर्वद्वारके परकोटोंको तोड़नेका प्रयत्न, सात्यकि आदि यादववीरोंका रक्षाके लिये पहुँचना, सात्यकिका वायव्यास्त्रद्वारा पौण्ड्रकसैनिकोंको भगाकर पौण्ड्रकको युद्धके लिये ललकारना और पौण्ड्रककी गर्वोक्ति	१०२७
९६	पौण्ड्रक और सात्यकिका युद्ध ...	१०२९
९७	सात्यकि और पौण्ड्रकका युद्ध ...	१०३२
९८	बलभद्र और एकलव्यका युद्ध तथा बलभद्रद्वारा निषादोंका संहार ...	१०३३
९९	बलभद्र और एकलव्यका तथा पौण्ड्रक और सात्यकिका युद्ध	१०३५
१००	श्रीकृष्णका द्वारकामें आगमन और पौण्ड्रकसे उनकी बातचीत	१०३६
१०१	पौण्ड्रक और श्रीकृष्णका युद्ध तथा पौण्ड्रकका वध	१०३९
१०२	एकलव्यका द्वीपान्तर-गमन, भगवान् श्रीकृष्णका यादवोंको अपनी यात्राका संक्षिप्त वृत्तान्त बताना तथा अन्तःपुरमें रुक्मिणी और सत्यभामासे मिलकर उन्हें संतोष देना	१०४०
१०३	हंस और डिम्भकके विषयमें जनमेजयका प्रश्न	१०४२
१०४	राजा ब्रह्मदत्तको भगवान् शङ्करकी आराधनासे हंस और डिम्भक नामक पुत्रोंकी प्राप्ति तथा राजसखा विप्रवर मित्रसहको भगवान् विष्णुकी उपासनासे जनार्दन नामक पुत्रका लाभ	१०४३
१०५	हंस और डिम्भककी तपस्या, वरप्राप्ति, जनार्दनसहित उन दोनोंका विवाह तथा तीनों कुमारोंकी धर्मनिष्ठा	१०४४
१०६	हंस और डिम्भककी मृगया ...	१०४६
१०७	सेनासहित हंस और डिम्भकका पुष्कर-तटपर विश्राम, महर्षि कश्यपके वैष्णवसत्रका दर्शन तथा दुर्वासा आदि यतियोंके समुदायमें जाकर उनके प्रति अपनी अश्रद्धाका प्रदर्शन ...	१०४७
१०८	हंस और डिम्भकद्वारा संन्यासकी निन्दा तथा जनार्दनद्वारा संन्यास-आश्रमका मण्डन ...	१०४९
१०९	दुर्वासाका रोष, हंसद्वारा उनका तिरस्कार, दुर्वासाद्वारा उन दोनोंके लिये शाप और जनार्दनके लिये वरदान	१०५०
११०	दुर्वासा आदि मुनियोंका द्वारकागमन ...	१०५२
१११	श्रीकृष्णकी गोलक्रीडा, सुधर्मा-सभामें दुर्वासा आदि मुनियोंका आगमन तथा यादवों और श्रीकृष्णद्वारा उनका सत्कार, श्रीकृष्णका उनसे वहाँ आनेका कारण पूछना और दुर्वासाका भगवान्‌की स्तुति एवं उपालम्भपूर्वक उनके प्रश्नका प्रतिवाद करके अपनी दुर्दशाका वृत्तान्त सुनाना	१०५३
११२	भगवान् श्रीकृष्णकी हंस और डिम्भकके वधके लिये प्रतिज्ञा तथा क्षमा-प्रार्थनापूर्वक उनका यतियोंको भोजन कराना ...	१०५८
११३	जनार्दनका हंसको समझाना; किंतु हंसका उनकी बात न मानकर उन्हें दूत बनाकर द्वारकाको भेजना	१०५९
११४	जनार्दनकी भगवद्दर्शनविषयक उत्कण्ठा	१०६१
११५	जनार्दनका सुधर्मा-सभामें जाकर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे संतुष्ट हो उनकी आज्ञासे भगवत्स्तवनपूर्वक हंस और डिम्भकका संदेश सुनाना और उसे सुनकर यादवोंका उपहास करना	१०६४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

११६–श्रीकृष्णका जनार्दनको संदेश देकर लौटाना १०६७
११७–सात्यकिसहित जनार्दनका शाल्वनगरमें जाना, हंससे मिलना तथा हंसका जनार्दनसे कार्य-सिद्धिके विषयमें पूछना १०६७
११८–जनार्दनका हंसको श्रीकृष्णदर्शनजनित अपना उल्लास बताना, द्वारकामें हंसके संदेशकी प्रतिक्रियाका वर्णन करके उसे राजसूय न करनेकी सलाह देना, हंसका उसे रोषपूर्वक तिरस्कृत करके चले जानेके लिये कहना, फिर सात्यकिका हंसको श्रीकृष्णका संदेश सुनाते हुए फटकारना १०६८
११९–हंस और डिम्भकके सात्यकिके प्रति रोषपूर्ण वचन तथा सात्यकिका उन्हें वैसा ही उत्तर देकर द्वारकाको प्रस्थान १०७२
१२०–भगवान् श्रीकृष्ण तथा यादवसेनाका पुष्कर तीर्थमें जाकर हंस और डिम्भककी प्रतीक्षा करना १०७३
१२१–हंस और डिम्भककी सेनाओंका पुष्करतीर्थमें प्रवेश १०७५
१२२–उभयपक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध ... १०७७
१२३–श्रीकृष्ण और विचक्रका घोर युद्ध तथा विचक्रका वध १०७८
१२४–हंस और बलभद्रका युद्ध १०८०
१२५–सात्यकि और डिम्भकका युद्ध ... १०८१
१२६–हिडिम्बके साथ वसुदेव और उग्रसेनका युद्ध तथा बलभद्रके द्वारा हिडिम्बका वध ... १०८३
१२७–गोवर्धन पर्वतके समीप हंस और डिम्भकके साथ यादवोंका युद्ध; श्रीकृष्णद्वारा भूतेश्वरोंकी पराजय तथा श्रीकृष्ण और हंसका घोर युद्ध १०८६
१२८–श्रीकृष्णद्वारा हंसका वध १०८९
१२९–डिम्भककी आत्महत्या १०९०
१३०–गोप-गोपियोंसहित यशोदा और नन्दका गोवर्धन पर्वतपर आकर श्रीकृष्ण और बलभद्रसे मिलना १०९१
१३१–द्वारका जाते हुए श्रीकृष्णका पुष्करमें ऋषियोंसे मिलना तथा ऋषियोंद्वारा उनका स्तवन १०९२
१३२–महाभारत और हरिवंशके श्रवणकी विधि और फल, वाचकके गुण, प्रत्येक पर्वपर दान देने योग्य वस्तु, एकसे लेकर दस पारणाओंकी महत्ता तथा महाभारत एवं हरिवंशका माहात्म्य १०९३
१३३–त्रिपुर-वधकी कथा ११००
१३४–हरिवंशमें वर्णित वृत्तान्तोंका संग्रह ... ११०५
१३५–हरिवंश-श्रवणकी दक्षिणा, फल एवं माहात्म्यका वर्णन ११०७

श्रीहरिवंश-माहात्म्य

१–हरिवंश-श्रवणका माहात्म्य, नारीके पाँच दोष और हरिवंश-श्रवणसे उनकी निवृत्ति, पाठके उत्तम, मध्यम आदि भेद तथा गोव्रतकी विधि ११०९
२–(१) हरिवंश-श्रवणकी विधि और फल ... ११११
३–(२) हरिवंश-श्रवणकी विधि और फल ... १११४
४– नवाह्नव्रती श्रोताओंके पालन करने योग्य नियम, उनके द्वारा त्याज्य वस्तुओंका उल्लेख, न्यायविरुद्ध कथा-श्रवण करनेवालोंकी दुर्गति, कथामें विघ्न डालनेके कारण एक नारीको नरक-यातना एवं राक्षसयोनिकी प्राप्ति तथा श्रोताओं-के चौदह भेद १११६
५–हरिवंशके नवाह्न-पारायणका उद्यापन, उसमें किये जानेवाले दान, पुस्तक-पूजा और वाचकपूजन आदिका विधान एवं माहात्म्य ... ११२१
६–हरिवंश आरम्भ करनेके लिये उत्तम मास, तिथि, नक्षत्र आदिका निर्देश, देवपूजन, व्यासपूजन तथा कथा-समाप्तिपर दी जानेवाली दक्षिणा एवं दान आदिका उल्लेख तथा श्रवणका माहात्म्य ११२४

(संतानगोपालविधि)

१–संतानगोपालमन्त्रविधिः (१) ... ११२९
२–संतानगोपाल-मन्त्र (२) ११२९
३–सनत्कुमारोक्तं संतानगोपालमन्त्र (३) ... ११३०
४–संतानगोपालस्तोत्रम् ११३२
५–श्रीविष्णुशतनामस्तोत्रम् ११३९
६–वन्ध्यानां पुत्रोत्पत्त्यर्थं संतानगोपालमन्त्रविधिः ११४०

चित्र-सूची

१–महाभारत-लेखन (तिरंगा) ... मुखपृष्ठ
२–शंकरजीसे देवताओंकी प्रार्थना (”) ... १००९
३–पौण्ड्रकका उद्धार (एकरंगा) ... १०४०
४–भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा दुर्वासा मुनिका स्वागत (”) ... १०५४
५–भगवान् श्रीकृष्णकी विजय-यात्रा (”) ... १०७४
६–श्रीकृष्ण-बलरामकी नन्द-यशोदासे भेंट (”) ... १०९१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा महादेवजीकी स्तुति

वैशम्पायन उवाच

एवं बहुविधैर्भूतैः पिशाचैरुरगैः सह।
आगत्य भगवान् रुद्रः शंकरो वृषवाहनः॥ १॥
ददर्श विष्णुं देवेशं तपन्तं तप उत्तमम्।
जुह्वानमग्निं विधिवद् द्रव्यैर्मेध्यैर्जगत्पतिम्॥ २॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस तरह नाना प्रकारके भूतों, पिशाचों और सर्पोंके साथ आकर सबका कल्याण करनेवाले वृषभवाहन भगवान् रुद्रने उत्तम तपस्या करते हुए देवेश्वर विष्णु (कृष्ण) को देखा। वे जगदीश्वर श्रीकृष्ण भाँति-भाँतिके पवित्र द्रव्योंद्वारा विधिपूर्वक अग्निमें आहुति देते थे॥ १-२॥

गरुडाहृतकाष्ठं तु जटिलं चीरवाससम्।
चक्रेणानीतकुसुमं खड्गानीतकुशं तथा॥ ३॥
गदाकृतसमाचारं देवदेवं जनार्दनम्।
इन्द्राद्यैर्देवसंघैश्च वृतं मुनिगणैः सह॥ ४॥

वे सिरपर जटा और अङ्गोंमें चीर वस्त्र धारण किये बैठे थे। गरुड़जी उनके लिये समिधा ला देते थे, चक्र फूल चुन लाता था, खड्ग कुशा लाया करता था तथा गदा भी उन देवाधिदेव जनार्दनकी आवश्यक परिचर्या करती थी। वे इन्द्र आदि देवसमूहों तथा मुनिगणोंसे घिरे हुए थे॥ ३-४॥

अचिन्त्यं सर्वभूतानां ध्यायन्तं किमपि प्रभुम्।
अवरुह्य वृषाच्छर्वो भगवान् भूतभावनः॥ ५॥
ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा ललाटाक्ष उमापतिः।

समस्त प्राणियोंके लिये अचिन्त्य वे भगवान् श्रीकृष्ण किसी अनिर्वचनीय ध्येय वस्तुका चिन्तन कर रहे थे। उन्हें देखते ही ललाटनेत्रधारी, प्रसन्नचित्त, उमावल्लभ, भूतभावन भगवान् शर्व अपने वाहन वृषभसे उतर पड़े। उस समय वे बड़े प्रसन्न थे॥ ५½॥

ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसा गुह्यकास्तथा॥ ६॥
मुनयो विप्रवर्याश्च जयशब्दं प्रचक्रिरे।
जय देव जगन्नाथ जय रुद्र जनार्दन॥ ७॥

तदनन्तर भूत, पिशाच, राक्षस, गुह्यक तथा ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ मुनिगण वहाँ जय-जयकार करने लगे—'देव! जगन्नाथ! आपकी जय हो। रुद्रस्वरूप जनार्दन! आपकी जय हो॥ ६-७॥

जय विष्णो हृषीकेश नारायण परायण।
जय रुद्र पुराणात्मञ्जय देव हरेश्वर॥ ८॥

'इन्द्रियोंके प्रेरक, सर्वव्यापी, नारायण! आपकी जय हो। सबको आश्रय देनेवाले रुद्रदेव! आपकी जय हो। पुराणात्मन्! देव! हरेश्वर! आपकी जय हो॥ ८॥

आदिदेव जगन्नाथ जय शंकर भावन।
जय कौस्तुभदीप्ताङ्ग जय भस्मविराजित॥ ९॥

'आदिदेव! जगन्नाथ! आपकी जय हो। शङ्कर! सबके पालक एवं उत्पादक देव! आपकी जय हो। कौस्तुभमणिसे उद्भासित अङ्गवाले नारायण! आपकी जय हो। भस्ममय अङ्गरागसे विराजमान शिव! आपकी जय हो॥९॥

जय चक्रगदापाणे जय शूलिस्त्रिलोचन।
जय मौक्तिकदीप्ताङ्ग जय नागविभूषण॥ १०॥

'हाथोंमें चक्र और गदा धारण करनेवाले नारायण! आपकी जय हो। शूलधारी त्रिलोचन! आपकी जय हो। मोतियोंकी मालासे उद्भासित अङ्गवाले श्रीकृष्ण! आपकी जय हो। नागहारसे विभूषित महादेव! आपकी जय हो'॥

इति ते मुनयः सर्वे प्रणामं चक्रिरे हरिम्।
तत उत्थाय भगवान् दृष्ट्वा देवमवस्थितम्॥ ११॥
वृषध्वजं विरूपाक्षं शंकरं नीललोहितम्।
ततो हृष्टमना विष्णुस्तुष्टाव हरमीश्वरम्॥ १२॥

इस प्रकार स्तुति करके उन समस्त मुनियोंने वहाँ श्रीहरिको प्रणाम किया। उस समय वृषभध्वज, विरूपाक्ष, एवं नीललोहित रूपवाले पापहारी, ईश्वर, शङ्करदेवको वहाँ उपस्थित देख श्रीकृष्णका चित्त हर्षसे खिल उठा और उन्होंने महादेवजीकी स्तुति आरम्भ की॥ ११-१२॥

श्रीभगवानुवाच

नमस्ते शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय वेधसे।
नमस्ते शोचिषे अस्तु नमस्ते उपवासिने॥ १३॥

श्रीभगवान् बोले—जिनके कण्ठमें हालाहल विष है, अतएव जो नीलग्रीव (नीलकण्ठ) कहे गये हैं। वेधा (जगत्के स्रष्टा), दीप्तिमान् तथा उपवास-व्रतमें तत्पर उन महादेवजीको नमस्कार है॥ १३॥

नमस्ते मीढुषे अस्तु नमस्ते गदिने हर।
नमस्ते विश्वतनवे वृषाय वृषरूपिणे॥ १४॥

हर! आप सेचन करनेमें समर्थ हैं, आपको नमस्कार है। आप गदाधारी हैं, आपको नमस्कार है। यह सम्पूर्ण विश्व आपका शरीर है, आपको नमस्कार है। आप वृषभरूपधारीधर्म हैं, आपको नमस्कार है॥ १४॥

अमूर्ताय च देवाय नमस्तेऽस्तु पिनाकिने।
नमः कुब्जाय कूपाय शिवाय शिवरूपिणे॥ १५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आप अमूर्त देवता तथा पिनाकधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप कुब्ज, कूपमें निवास करनेवाले और कल्याणस्वरूप शिव हैं, आपको नमस्कार है॥ १५॥

नमस्तुष्टाय तुण्डाय नमस्तुटितुटाय च।
नमः शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नमः॥ १६॥

आप संतुष्ट रहनेवाले, मुखस्वरूप तथा दुष्टोंकी हिंसा करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप पर्वतपर शयन करनेवाले शान्तस्वरूप शिव हैं, आपको बारंबार नमस्कार है॥ १६॥

नमो हराय हिप्राय नमो हरिहराय च।
नमोऽघोराय घोराय घोराघोरप्रियाय च॥ १७॥

आप हर, हिप्र (रेचक एवं पूरकरूप) तथा हरिहर-स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है! नमस्कार है!! आप अघोर, घोर तथा घोराघोरप्रिय हैं, आपको नमस्कार है॥ १७॥

नमोऽघण्टाय घण्टाय नमो घटिघटाय च।
नमः शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नमः॥ १८॥

आप घण्टारहित, घण्टायुक्त तथा घटिघट (स्रष्टाके भी स्रष्टा) हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप पर्वतपर शयन करनेवाले शान्तस्वरूप शिव हैं, आपको बारंबार नमस्कार है॥ १८॥

नमो विरूपरूपाय पुराय पुरहारिणे।
नम आद्याय बीजाय शुचयेऽग्न्स्वरूपिणे॥ १९॥

आप विरूप रूप धारण करनेवाले हैं, क्षेत्रस्वरूप तथा असुरोंके तीनों पुरोंका नाश करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप सबके आदि-बीज, परम पवित्र तथा अष्टमूर्तिधारी हैं, आपको नमस्कार है॥ १९॥

नमः पिनाकहस्ताय नमः शूलासिधारिणे।
नमः खट्वाङ्गहस्ताय नमस्ते कृत्तिवाससे॥ २०॥

आपके हाथमें पिनाक शोभा पाता है, आपको नमस्कार है। आप शूल और खड्ग धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप अपने हाथमें खट्वाङ्ग धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आप गजासुरके चर्मको वस्त्रके रूपमें ओढ़ते हैं, आपको नमस्कार है॥ २०॥

नमस्ते देवदेवाय नम आकाशमूर्तये।
हराय हरिरूपाय नमस्ते तिग्मतेजसे॥ २१॥

देवताओंके भी देवता आपको नमस्कार है। आकाश-स्वरूप आपको नमस्कार है। हरिरूपधारी आप भगवान् हरको नमस्कार है। प्रचण्ड तेजवाले सूर्यतुल्य आपको नमस्कार है॥ २१॥

भक्तप्रियाय भक्ताय भक्तानां वरदायिने।
नमोऽभ्रमूर्तये देव जलमूर्तिधराय च॥ २२॥

आप भक्तोंके प्रिय, स्वयं भी श्रीहरिके भक्त तथा भक्तोंको वर देनेवाले हैं। देव! आप मेघस्वरूप हैं तथा विश्वरूप धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है॥ २२॥

नमश्चन्द्राय देवाय सूर्याय च नमो नमः।
नमः प्रधानदेवाय भूतानां पतये नमः॥ २३॥

आप चन्द्रदेवको नमस्कार है। आप सूर्यदेवको भी बारंबार नमस्कार है। आप प्रधान देवता तथा सम्पूर्ण भूतोंके अधिपति हैं, आपको बारंबार नमस्कार है॥ २३॥

करालाय च मुण्डाय विकृताय कपर्दिने।
अजाय च नमस्तुभ्यं भूतभावनभावन॥ २४॥

आप विकराल रूपधारी, मूँड़ मुँड़ाये हुए संन्यासी, विकृतस्वरूप तथा जटा-जूटधारी हैं। भूतभावनभावन! आप अजन्मा हैं, आपको नमस्कार है॥ २४॥

नमोऽस्तु हरिकेशाय पिंगलाय नमो नमः।
नमस्तेऽभीषुहस्ताय भीरुभीरुहराय च॥ २५॥

सूर्यकी किरणें आपके केश हैं, आपको नमस्कार है। आपकी अङ्गकान्ति पिङ्गलवर्णकी है, आपको बारंबार नमस्कार है। आप ही मुझ श्रीकृष्णके रूपमें पार्थके सारथि बनकर हाथमें चाबुक लिये रहते हैं। आप भीरु-से-भीरु (अत्यन्त भयभीत) तथा हर (महान् संहारकारी) हैं, आपको नमस्कार है॥ २५॥

हराय भीतिरूपाय घोराणां भीतिदायिने।
नमो दक्षमखघ्नाय भगनेत्रापहारिणे॥ २६॥

आप भीतिस्वरूप हर तथा भयंकर दैत्योंको भय देनेवाले हैं, दक्षके यज्ञका विध्वंस तथा भग देवताके नेत्रका अपहरण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है॥ २६॥

उमापते नमस्तुभ्यं कैलासनिलयाय च।
आदिदेवाय देवाय भवाय भवरूपिणे॥ २७॥

उमापते! आप कैलासवासी, आदि देवता, देवमय, जगत्स्वरूप तथा भवनामसे प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है॥

नमः कपालहस्ताय नमोऽजमथनाय च।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्र्यक्षाय च शिवाय च॥ २८॥

आप हाथमें कपाल धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आपने ब्रह्माजीके सिरको मथ डाला है, आपको नमस्कार है। आप त्रिनेत्रधारी होनेके कारण त्र्यम्बक और त्र्यक्ष कहलाते हैं, आप भगवान् शिवको नमस्कार है॥

वरदाय वरेण्याय नमस्ते चन्द्रशेखर।
नम इध्माय हविषे ध्रुवाय च कृशाय च॥ २९॥

चन्द्रशेखर! आप वरदायक एवं वरणीय देवताको नमस्कार है, आप ही समिधा, हविष्य, ध्रुव एवं कृशरूप हैं, आपको नमस्कार है॥ २९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नमस्ते शक्तियुक्ताय नागपाशप्रियाय च।
विरूपाय सुरूपाय भद्रपानप्रियाय च ॥ ३० ॥

आप शक्तिसे संयुक्त, नागपाशको पसंद करनेवाले, विरूप एवं सुन्दर रूप धारण करनेवाले तथा भद्रपान (मङ्गलकारी पेय-रस) के प्रेमी हैं, आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥

श्मशानरतये नित्यं जयशब्दप्रियाय च।
खरप्रियाय खर्वाय खराय खररूपिणे ॥ ३१ ॥

आप श्मशानभूमिमें प्रसन्नताका अनुभव करते हैं, जय-जयकारका शब्द आपको सदा ही प्रिय है, खर नामक राक्षस आपकी प्रीतिका पात्र था, आपका स्वरूप खर्व (नाटा) है, आप खर (तीव्र या कर्कश स्वभाववाले) हैं, खर (गर्दभ या राक्षस) आपका ही रूप है, आपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥

भद्रप्रियाय भद्राय भद्ररूपधराय च।
विरूपाय सुरूपाय महाघोराय ते नमः ॥ ३२ ॥

आपको माङ्गलिक वस्तु प्रिय है, आप मङ्गलमय हैं, मङ्गलरूपधारी हैं, विरूप, सुन्दर रूपवाले तथा महाभयंकर हैं, आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥

घण्टाय घण्टभूषाय घण्टभूषणभूषिणे।
तीव्राय तीव्ररूपाय तीव्ररूपप्रियाय च ॥ ३३ ॥

आप घण्टारूप हैं, घण्टासे विभूषित हैं और घण्टायुक्त भूषण धारण करते हैं। आप तीव्र हैं, तीव्र रूपधारी हैं तथा तीव्र रूपवाले पदार्थ आपको विशेष प्रिय हैं, आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥

नग्नाय नग्नरूपाय नग्नरूपप्रियाय च।
भूतावास नमस्तुभ्यं सर्वावास नमो नमः ॥ ३४ ॥

आप नग्न हैं, नग्नरूपधारी हैं तथा नग्नरूपवाले आपको विशेष प्रिय हैं। आप सम्पूर्ण भूतोंके आवासस्थान हैं, आपको नमस्कार है। सबके आश्रयभूत महेश्वर! आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ३४ ॥

नमः सर्वात्मने तुभ्यं नमस्ते भूतिदायक।
नमस्ते वामदेवाय महादेवाय ते नमः ॥ ३५ ॥

आप सर्वात्माको नमस्कार है। ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले रुद्रदेव! आपको नमस्कार है। आप वामदेव हैं, आपको नमस्कार है। आप महादेव हैं, आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥

का नु वाक्स्तुतिरूपा ते को नु स्तोतुं प्रशक्नुयात्।
कस्य वा स्फुरते जिह्वा स्तुतौ स्तुतिमतां वर ॥ ३६ ॥

भला कौन ऐसी वाणी है, जो आपकी स्तुतिके अनुरूप होगी (आपकी महिमा वाणीकी पहुँचसे बाहर है)? कौन पुरुष आपकी स्तुति कर सकता है? स्तुतिमानों (स्तवनीय महापुरुषों) में श्रेष्ठ महेश्वर! किसकी जिह्वा आपकी स्तुतिके लिये सचेष्ट हो सकती है? ॥ ३६ ॥

क्षमस्व भगवन् देव भक्तोऽहं त्राहि मां हर।
सर्वात्मन् सर्वभूतेश त्राहि मां सततं हर ॥ ३७ ॥
रक्ष देव जगन्नाथ लोकान् सर्वात्मना हर।
त्राहि भक्तान् सदा देव भक्तप्रिय सदा हर ॥ ३८ ॥

भगवन्! महादेव! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। हर! मैं आपका भक्त हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। सर्वात्मन्! सर्वभूतेश्वर हर! आप निरन्तर मेरा संरक्षण करें। देव! जगन्नाथ! हर! आप सम्पूर्ण लोकोंका सब प्रकारसे संरक्षण करें। देव! सदा अपने भक्तोंसे प्रेम करनेवाले हर! भक्तजनोंकी सदा रक्षा कीजिये ॥ ३७-३८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां विष्णुकृतेश्वरस्तुतौ सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कैलासयात्राके प्रसङ्गमें श्रीकृष्णकृत महादेवस्तुतिविषयक सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

भगवान् शिवद्वारा श्रीविष्णुकी स्तुति

वैशम्पायन उवाच

ततो वृषध्वजो देवः शूली साक्षादुमापतिः।
करं करेण संस्पृश्य विष्णोश्चक्रधरस्य ह ॥ १ ॥
प्रोवाच भगवान् रुद्रः केशवं गरुडध्वजम्।
शृण्वतां सर्वदेवानां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर अपनी ध्वजामें वृषभका चिह्न धारण करनेवाले देवता, त्रिशूलधारी साक्षात् उमावल्लभ भगवान् रुद्र चक्रधारी श्रीकृष्णका हाथ अपने हाथमें लेकर समस्त देवताओं तथा पवित्र अन्तःकरणवाले मुनियोंके सुनते हुए गरुडध्वज केशवसे इस प्रकार बोले—॥ १-२ ॥

किमिदं देवदेवेश चक्रपाणे जनार्दन।
तपश्चर्या किमर्थं ते प्रार्थना तव का विभो ॥ ३ ॥

'देवदेवेश्वर! चक्रपाणे! जनार्दन! आप यह क्या कर रहे हैं? आपकी यह तपश्चर्या किसलिये हो रही है? प्रभो! आपकी प्रार्थना क्या है? ॥ ३ ॥

स्वयं विष्णुर्भवान् नित्यस्तपस्त्वं तपसां हरे।
पुरार्थं यदि ते देव तपश्चर्या जनार्दन ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुत्रो दत्तो मया देव पूर्वमेव जगत्पते।
शृणु तत्रापि भगवन् कारणं कारणात्मक ॥ ५ ॥

'हरे! आप स्वयं नित्य-स्वरूप भगवान् विष्णु हैं, तपस्याओंकी भी तपस्या हैं। देव! जनार्दन! जगत्पते! यदि आपकी यह तपस्या पुत्रके लिये हो रही है तो मैंने पहलेसे ही आपको पुत्र दे रखा है। देव! भगवन्! कारणात्मक नारायण! इसमें जो कारण है, उसे आप सुनिये ॥ ४-५ ॥

तपश्चर्तुं प्रवृत्तोऽहं कुतश्चित् कारणाद्धरे।
वर्षायुतं महाघोरं पुरा कृतयुगे तदा ॥ ६ ॥

'हरे! प्राचीन कालके कृतयुगकी बात है कि मैं उन दिनों किसी कारणवश दस हजार वर्षोंके लिये महाघोर तपस्यामें संलग्न हुआ था ॥ ६ ॥

भवानी तत्र मे देव परिचर्तुं तदाभवत्।
पित्रा नियुक्ता देवेश उमैषा वरवर्णिनी ॥ ७ ॥

'देव! देवेश्वर! उस समय वहाँ यह मेरी धर्मपत्नी परम सुन्दरी उमा अपने पिताकी आज्ञासे मेरी सेवा करती थी ॥

भीत इन्द्रस्तदा देव मारं मां प्रैषयत्तदा।
मधुना सह संयुक्तो मारो मामागतस्तदा ॥ ८ ॥

'देव! मेरी उस तपस्यासे इन्द्रको भय हुआ, अतः उस समय उन्होंने कामदेवको मेरे पास भेजा। तब कामदेव अपने सखा वसन्तको साथ लेकर मेरे समीप आया ॥ ८ ॥

लक्ष्यं मामकरोत् तत्र बाणस्य प्रेषितस्य ह।
एष मां सेवते तत्र दानात् पुष्पादिनां हरे ॥ ९ ॥

'हरे! वहाँ पहुँचते ही कामदेवने मुझे अपने चलाये हुए बाणका निशाना बनाया। यह पार्वती वहाँ फूल आदि जुटाने-के द्वारा मेरी सेवा करती थी ॥ ९ ॥

ततः क्रुद्धोऽहमभवं दृष्ट्वा मारं तथाविधम्।
क्रुद्धस्यतो मम देवेश नेत्रादग्निः पपात ह ॥ १० ॥

'देवेश्वर! कामदेवको अपने ऊपर बाण चलाते देख मैं उसके ऊपर कुपित हो उठा। क्रोध करनेपर मेरे ललाटस्थ नेत्रसे सहसा अग्निका प्रादुर्भाव हुआ ॥ १० ॥

सोऽयमग्निस्तदा मारं भस्मसात् कृतवान् हरे।
अचिन्तयं तदा विष्णो शक्रस्यैतच्चिकीर्षितम् ॥ ११ ॥

'सर्वव्यापी हरे! उस अग्निने उस समय कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया, तब मेरे ध्यानमें यह बात आयी कि यह सारी करतूत इन्द्रकी थी ॥ ११ ॥

ततः प्रभृति देवेश दया तं प्रति वर्तते।
ब्रह्मणा च नियुक्तोऽस्मि प्रीतस्तत्र जनार्दन ॥ १२ ॥

'देवेश्वर! जनार्दन! तभीसे कामदेवके प्रति मुझे बड़ी दया आती है। मैं मन-ही-मन उसपर प्रसन्न हूँ। ब्रह्माजीने भी मुझे प्रेरित किया है कि मैं उसके लिये नूतन शरीर-धारणका अवसर दूँ ॥ १२ ॥

नियुक्तः पुत्ररूपेण स ते देव जगत्पते।
ज्येष्ठस्तव सुतो देव प्रद्युम्नेत्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥
स्मरं तं विद्धि देवेश नात्र कार्या विचारणा।

'देव! जगत्पते! अतः मैंने कामदेवको आपके पुत्र-रूपसे नियुक्त किया है। देव! वह प्रद्युम्न नामसे विख्यात आपका ज्येष्ठ पुत्र होगा। देवेश्वर! आप उसे कामदेव ही समझें, इसमें अन्यथा विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है' ॥ १३½ ॥

इत्युक्त्वा पुनराहेदं याथात्म्यं दर्शयन्निव ॥ १४ ॥
मुनीनां श्रोतुकामानां याथात्म्यं तत्र सत्तमः।
अञ्जलिं सम्पुटं कृत्वा विष्णुमुद्दिश्य शंकरः ॥ १५ ॥
उमया सार्धमीशानो याथात्म्यं वक्तुमैहत।

ऐसा कहकर श्रीहरिके यथार्थ स्वरूपको सुननेकी इच्छा-वाले मुनियोंके समक्ष उनके यथावत् स्वरूपका परिचय देते हुए-से सत्पुरुषशिरोमणि सर्वेश्वर भगवान् शङ्कर उमादेवीके साथ श्रीकृष्णके लिये हाथ जोड़कर फिर इस प्रकार बोलने-उनकी यथात्मताका प्रतिपादन करनेको उद्यत हुए ॥

हरे कुर्वति तत्रैवमञ्जलिं कुरुसत्तम ॥ १६ ॥
मुनयो देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह किन्नराः।
अञ्जलिं चक्रिरे विष्णौ देवदेवेश्वरे हरौ ॥ १७ ॥

कुरुश्रेष्ठ! वहाँ महादेवजीके इस प्रकार हाथ जोड़नेपर दूसरे-दूसरे मुनि, देवता, गन्धर्व, सिद्ध तथा किन्नरोंने भी उन सर्वव्यापी देवदेवेश्वर श्रीहरिके समीप हाथ जोड़ लिये ॥

महेश्वर उवाच

यत्तत् कारणमाहुस्तत् सांख्याः प्रकृतिसंज्ञकम्।
ततो महान् समुत्पन्नः प्रकृतिर्यस्य कारणम् ॥ १८ ॥

महेश्वर बोले—सांख्यशास्त्रके विद्वान् जिस प्रकृति-संज्ञक कारणतत्त्वका वर्णन करते हैं, उससे 'महान्' (महत्तत्त्व या समष्टि बुद्धि) उत्पन्न हुआ, जिसका उपादान कारण प्रकृति है ॥ १८ ॥

त्रिधा भूतं जगद्योनिं प्रधानं कारणात्मकम्।
सत्त्वं रजस्तमो विष्णो जगद्दण्डं जनार्दन ॥ १९ ॥
तस्य कारणमाहुस्त्वां सांख्यप्रकृतिसंज्ञकम्।
तद्रूपेण भवान् विष्णो परिणम्याधितिष्ठति ॥ २० ॥

सर्वव्यापी जनार्दन! कारणस्वरूप जो प्रधान (प्रकृति) है, वही इस जगत्की योनि है। उसके तीन भेद हैं—सत्त्व, रज और तम। इस त्रिगुणमयी प्रकृतिसे ही यह विश्व ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है। इसका कारणभूत जो सांख्य-प्रकृति है, उसे विद्वान् पुरुष आपका ही स्वरूप बताते हैं। विष्णो!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसके रूपमें आप ही परिणामको प्राप्त होकर उसके अधिष्ठाता बने रहते हैं ॥ १९-२० ॥

तस्मात्तु महतो घोरादहंकारो महानभूत् ।
स त्वमादौ जगन्नाथ परिणामस्तथा हि सः ॥ २१ ॥

उस घोर महान् (महत्तत्त्व) से महान् (समष्टिभूत) अहङ्कार प्रकट हुआ । जगन्नाथ ! आदिकालमें प्रकट हुआ वह महत्तत्त्वका वैसा (अहंकारात्मक) परिणाम आप ही हैं ॥

अहंकारात् प्रभो देव कारणानि महान्ति च ।
तन्मात्राणि तथा पञ्च भूतानि प्रभवन्त्युत ॥ २२ ॥

प्रभो ! देव ! अहङ्कारसे 'तन्मात्र' नामक महान् कारण उत्पन्न हुए, जिनसे पञ्च महाभूतोंका प्राकट्य हुआ है ॥२२॥

तानि त्वामाहुरीशानं भूतानीह जगत्पते ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥ २३ ॥

जगत्पते ! इस जगत्में जो वे पाँचों महाभूत हैं, उन्हें भी आप सर्वेश्वरका ही स्वरूप बताते हैं । उनके नाम ये हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और पाँचवाँ भूत अग्नि ॥ २३ ॥

चक्षुर्घ्राणं तथा स्पर्शो रसनं श्रोत्रमेव च ।
मनः षष्ठं तथा देव प्रेरकं तत्र तत्र ह ॥ २४ ॥

देव ! नेत्र, नासिका, त्वचा, रसना और कान—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं । इन्हींके साथ छठा मन है, जो उन इन्द्रियोंको विभिन्न विषयोंमें जानेके लिये प्रेरित करता है ॥ २४ ॥

कर्मेन्द्रियाणि चान्यानि वागादीनि जनार्दन ।
त्वमेव तानि सर्वाणि करोषि नियतात्मवान् ॥ २५ ॥
स्वेषु स्वेषु जगन्नाथ विषयेषु तथा हरे ।
निवेशयसि देवेश योग्यामिन्द्रियपद्धतिम् ॥ २६ ॥

जनार्दन ! वाक् आदि पाँच कर्मेन्द्रियाँ और हैं । जगन्नाथ ! हरे ! अपने मनको संयममें रखनेवाले आप परमात्मा ही उन सब इन्द्रियोंको अपने-अपने विषयोंमें नियुक्त करते हैं । देवेश्वर ! आप ही योग्य इन्द्रिय-मार्गकी स्थापना करते हैं ॥ २५-२६ ॥

यदा त्वं रजसा युक्तस्तदा भूतानि सृष्टवान् ।
यदा च सत्त्वयुक्तोऽसि तदा पाता जगत्त्रयम् ॥ २७ ॥
यदा त्वं तमसाऽऽकृष्टस्तदा संहरसे जगत् ।

जब आप रजोगुणसे संयुक्त हुए, तब आपने समस्त प्राणियोंकी सृष्टि की । जब आप सत्त्वगुणसे युक्त होते हैं, तब तीनों लोकोंका पालन करते हैं और जब तमोगुणसे आकृष्ट होते हैं, तब जगत्का संहार करते हैं ॥ २७½ ॥

त्रिभिरेव गुणैर्युक्तः सृष्टिरक्षाविनाशने ॥ २८ ॥
वर्तसे त्रिविधां भूतिमादाय नियतात्मवान् ।

इस प्रकार आप नियतात्मा परमेश्वर तीनों ही गुणोंसे युक्त होकर अपनी त्रिविध ऐश्वर्य (शक्ति) को साथ रखते हुए सृष्टि, रक्षा और संहारके कार्यमें सदा संलग्न रहते हैं ॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु नियोजयसि माधव ॥ २९ ॥
प्राणिनामुपभोगार्थमन्तः स्थित्वा जगद्गुरो ।
तस्मात् सर्वत्र भूतेषु वर्तते सर्वभोगवान् ॥ ३० ॥

माधव ! जगद्गुरो ! आप प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित होकर उनके उपभोगके लिये इन्द्रियोंको विषयोंमें लगाते हैं । इसलिये सम्पूर्ण भूतोंमें आप ही समस्त भोगोंसे सम्पन्न हैं ॥

ब्रह्मा त्वं सृष्टिकाले तु स्थितौ विष्णुरसि प्रभो ।
संहारे रुद्रनामासि त्रिधामा त्वमसि प्रभो ॥ ३१ ॥

प्रभो ! सृष्टिकालमें आप ही ब्रह्मा हैं, पालनकालमें विष्णु कहलाते हैं तथा संहारकालमें रुद्र नाम धारण करते हैं । भगवन् ! इस प्रकार आप तीन धामवाले हैं ॥ ३१ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
एताः प्रकृतयो देव भिन्नाः सर्वत्र ते हरे ॥ ३२ ॥

हरे ! देव ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि (और अहङ्कार)—ये सर्वत्र उपलब्ध होनेवाली आठ भिन्न-भिन्न प्रकृतियाँ आपकी ही हैं ॥ ३२ ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सहस्रधारः साहस्री सहस्रात्मा दिवस्पतिः ॥ ३३ ॥

आप सहस्रों मस्तकोंसे सुशोभित विराट् पुरुष हैं । आपके सहस्रों नेत्र और सहस्रों पैर हैं, धारण करनेवाली भुजाएँ भी सहस्रों हैं । आपकी सभी वस्तुएँ सहस्रोंकी संख्यामें सुशोभित होती हैं । आपके सहस्रों रूप हैं और आप ही स्वर्गलोकके अधिपति इन्द्र हैं ॥ ३३ ॥

भूमिं सर्वामिमां प्राप्य सप्तद्वीपां ससागराम् ।
अणुः सर्वत्रगो भूत्वा अत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥ ३४ ॥

सातों द्वीपों और समुद्रोंसे युक्त इस सारी पृथ्वीको व्याप्त करके आप सूक्ष्म एवं सर्वव्यापी होकर इस ब्रह्माण्डसे दस अङ्गुल ऊपर उठे हुए हैं ॥ ३४ ॥

त्वमेवेदं जगत् सर्वं यद् भूतं यद् भविष्यति ।
त्वत्तो विराट् प्रादुरभूत् सम्राट् चैव जनार्दन ॥ ३५ ॥

जो हुआ है और जो होनेवाला है, वह यह सम्पूर्ण जगत् आप ही हैं । जनार्दन ! आपसे ही विराट् और सम्राट् (विराट्के अधिष्ठाता पुरुष) की उत्पत्ति हुई है ॥ ३५ ॥

तव वक्त्राज्जगन्नाथ ब्राह्मणो लोकरक्षकः ।
प्रादुरासीत् पुराणात्मन् षट्कर्मनिरतः सदा ॥ ३६ ॥

पुराणात्मन् ! जगन्नाथ ! आपके मुखसे यजन-याजन आदि छः कर्मोंमें सदा तत्पर रहनेवाला लोकरक्षक ब्राह्मण प्रकट हुआ है ॥ ३६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजन्यस्तु तथा बाह्वोरासीत् संरक्षणे रतः।
ऊर्वोर्वैश्यस्तथा विष्णो पादाच्छूद्र उदाहृतः ॥ ३७ ॥

विष्णो! आपकी भुजाओंसे रक्षाकर्ममें रत रहनेवाले क्षत्रियकी, दोनों जाँघोंसे वैश्यकी तथा पैरोंसे शूद्रकी उत्पत्ति हुई बतायी गयी है ॥ ३७ ॥

एवं वर्णा जगन्नाथ तव देहाज्जनार्दन।
मनसस्तव देवेश चन्द्रमाः समपद्यत ॥ ३८ ॥
सुखकृत् सर्वभूतानां शीतांशुरमितप्रभः।

जगदीश्वर! जनार्दन! इस प्रकार चारों वर्ण आपके शरीरसे प्रकट हुए हैं। देवेश्वर! आपके मनसे समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाले अमित कान्तिमान् शीतरश्मि चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई है ॥ ३८½ ॥

अक्ष्णोः सूर्यः समुत्पन्नः सर्वप्राणिविलोचनः॥ ३९ ॥
यस्य भासा जगत् सर्वं भासते भानुमानसौ।
मुखादिन्द्रश्च अग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥ ४० ॥

आपके नेत्रोंसे समस्त प्राणियोंके नेत्रस्वरूप वे भानुमान् (अंशुमाली) सूर्य उत्पन्न हुए हैं, जिनकी प्रभासे सारा जगत् प्रकाशित होता है। आपके मुखसे इन्द्र और अग्नि तथा प्राणसे वायुदेवका प्राकट्य हुआ है ॥ ३९-४० ॥

नाभेरभूदन्तरिक्षं तव देव जनार्दन।
द्यौरासीत् तु महाघोरा शिरसस्तव गोपते ॥ ४१ ॥

देव! जनार्दन! आपकी नाभिसे अन्तरिक्ष प्रकट हुआ। गोपते! आपके मस्तकसे महाघोर द्युलोकका आविर्भाव हुआ है ॥ ४१ ॥

पद्भ्यां भूमिः समुत्पन्ना दिशः श्रोत्राज्जगत्पते।
एवं सृष्ट्वा जगत् सर्वं व्याप्य सर्वं व्यवस्थितः ॥ ४२ ॥

जगत्पते! आपके पैरोंसे पृथ्वी और कानोंसे दिशाएँ उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करके आप सबको व्याप्त करके स्थित हैं ॥ ४२ ॥

व्याप्य सर्वानिमाँल्लोकान् स्थितः सर्वत्र केशव।
ततश्च विष्णुनामासि धातोर्व्याप्तेश्च दर्शनात् ॥ ४३ ॥

केशव! इन सम्पूर्ण लोकोंमें व्याप्त होकर आप सर्वत्र विराजमान हैं। इसलिये 'विष्' धातुके व्याप्तिरूप अर्थका दर्शन होनेसे आप 'विष्णु' नाम धारण करते हैं ॥ ४३ ॥

नारा आपः समाख्याता स्तासामयनमादितः।
यतस्त्वं भूतभव्येश तन्नारायणशब्दितः ॥ ४४ ॥

भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी विष्णुदेव! जलको नार कहते हैं, उस नारके आप आदिकालसे ही अयन (आश्रय) हैं, इसलिये 'नारायण' कहलाते हैं ॥ ४४ ॥

हरसि प्राणिनो देव ततो हरिरिति स्मृतः।
शंकरोऽसि सदा देव ततः शंकरस्ता गतः ॥ ४५ ॥

देव! आप प्राणियों (के पाप-ताप) का हरण करते हैं, इसलिये 'हरि' कहे गये हैं। देव! आप सदा सबका 'शम्' (कल्याण) करते हैं, इसलिये 'शङ्कर' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं ॥ ४५ ॥

बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च तस्माद् ब्रह्मेति शब्दितः।
मधुरिन्द्रियनामेति ततो मधुनिषूदनः ॥ ४६ ॥

बृहत् तथा वर्धनशील होनेके कारण आपको 'ब्रह्म' कहते हैं। मधु नाम है इन्द्रियोंका, उनका दमन करनेके कारण आप 'मधुसूदन' कहलाते हैं ॥ ४६ ॥

हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तेषामीशो यतो भवान्।
हृषीकेशस्ततो विष्णो ख्यातो देवेषु केशव ॥ ४७ ॥

केशव! विष्णो! हृषीक कहते हैं इन्द्रियोंको। आप उनके ईश (स्वामी अथवा प्रेरक) हैं, इसलिये देवताओंमें 'हृषीकेश' नामसे विख्यात हैं ॥ ४७ ॥

क इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्वदेहिनाम्।
आवां तवाङ्गसम्भूतौ तस्मात् केशवनामवान् ॥ ४८ ॥

'क'—यह ब्रह्माजीका नाम है और मैं समस्त देहधारियोंका 'ईश' हूँ। हम दोनों आपके शरीरसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये आप 'केशव' नाम धारण करते हैं ॥ ४८ ॥

मा विद्या च हरे प्रोक्ता तस्या ईशो यतो भवान्।
तस्मान्माधवनामासि धवः स्वामीति शब्दितः ॥ ४९ ॥

हरे! 'मा' कहते हैं विद्याको। आप उसके 'धव' (ईश्वर या स्वामी) हैं, इसलिये 'माधव' नामसे प्रसिद्ध हैं। धव-शब्द स्वामीका वाचक है ॥ ४९ ॥

गौरेषा तु यतो वाणी तां च वेद यतो भवान्।
गोविन्दस्तु ततो देव मुनिभिः कथ्यते भवान् ॥ ५० ॥

देव! यह वाणी 'गौ' नामसे प्रसिद्ध है। उसे आप जानते हैं, इसलिये मुनिलोग आपको 'गोविन्द' कहते हैं ॥५०॥

त्रिरित्येव त्रयो वेदाः कीर्तिता मुनिसत्तमैः।
क्रमते तांस्तथा सर्वांस्त्रिविक्रम इति श्रुतः ॥ ५१ ॥

श्रेष्ठ मुनियोंने तीनों वेदोंको 'त्रि' नाम दिया है, आप उन तीनोंको क्रान्त (व्याप्त) करके स्थित हैं; इसलिये 'त्रिविक्रम' नामसे विख्यात हैं ॥ ५१ ॥]

अणुर्वामननामासि यतस्त्वं वामनाख्यया।
मननान्मुनिरेवासि यमनाद् यतिरुच्यसे ॥ ५२ ॥

आप सूक्ष्म या लघु होनेसे 'वामन' नाम धारण करते हैं। आपके वामन नामसे प्रसिद्ध होनेका यही हेतु है। आप मनन करनेसे 'मुनि' हैं और यमका पालन करनेसे 'यति' कहलाते हैं॥

तपश्चरसि यस्मात् त्वं तपस्वीति च शब्दितः।
वसन्ति त्वयि भूतानि भूतावासस्ततो हरे ॥ ५३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतः आप तपस्या करते हैं, इसलिये 'तपस्वी' नामसे प्रसिद्ध हैं। हरे! सम्पूर्ण भूत आपमें निवास करते हैं, इसलिये आप 'भूतावास' कहलाते हैं ॥ ५३ ॥

ईशस्त्वं सर्वभूतानामीश्वरोऽसि ततो हरे।
प्रणवः सर्ववेदानां गायत्री छन्दसां प्रभो ॥ ५४ ॥

हरे! आप सम्पूर्ण भूतोंके ईश हैं, इसीलिये 'ईश्वर' कहे गये हैं। प्रभो! आप समस्त वेदोंमें प्रणव और सम्पूर्ण छन्दोंमें 'गायत्री' हैं ॥ ५४ ॥

अक्षराणामकारस्त्वं स्फोटस्त्वं वर्णसंश्रयः।
रुद्राणामहमेवास्मि वसूनां पावको भवान् ॥ ५५ ॥

आप अक्षरोंमें अकार हैं। वर्णोंके आश्रित रहनेवाले स्फोट[1] हैं। रुद्रोंमें मैं अर्थात् शङ्कर हैं और वसुओंमें आप पावक हैं ॥ ५५ ॥

अश्वत्थो वृक्षजातीनां ब्रह्मा लोकगुरुर्भवान्।
मेरुस्त्वं पर्वतेन्द्राणां देवर्षीणां च नारदः ॥ ५६ ॥

आप वृक्ष-जातियोंमें अश्वत्थ हैं। समस्त लोकोंके गुरु ब्रह्मा हैं। श्रेष्ठ पर्वतोंमें मेरु और देवर्षियोंमें नारद हैं ॥५६॥

दानवानां भवान् दैत्यः प्रह्लादो भक्तवत्सलः।
सर्पाणामेव सर्वेषां भवान् वासुकिसंज्ञितः ॥ ५७ ॥

आप दानवोंमें दैत्यनन्दन भक्तवत्सल प्रह्लाद हैं। समस्त सर्पोंमें आप ही वासुकि हैं ॥ ५७ ॥

गुह्यकानां च सर्वेषां भवान् धनद एव च।
वरुणो यादसां राजा गङ्गा त्रिपथभाग् भवान् ॥ ५८ ॥

आप समस्त गुह्यकोंमें धनदाता कुबेर हैं। जल-जन्तुओंके राजा वरुण और त्रिपथगामिनी गङ्गा भी आप ही हैं ॥५८॥

आदिस्त्वं सर्वभूतानां मध्यमन्तस्तथा भवान्।
त्वत्तः समभवद् विश्वं त्वयि सर्वं प्रलीयते ॥ ५९ ॥

आप समस्त भूतोंके आदि, मध्य और अन्त हैं। आपसे इस विश्वका प्रादुर्भाव हुआ है और अन्तमें सारा जगत् आपमें ही लीन हो जाता है ॥ ५९ ॥

अहं त्वं सर्वगो देव त्वमेवाहं जनार्दन।
आवयोरन्तरं नास्ति शब्दैरर्थैर्जगत्पते ॥ ६० ॥

जनार्दन! देव! मैं ही आप सर्वव्यापी देवता हैं और आप ही मैं हूँ। जगत्पते! शब्द और अर्थसे भी हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है ॥ ६० ॥

नामानि तव गोविन्द यानि लोके महान्ति च।
तान्येव मम नामानि नात्र कार्या विचारणा ॥ ६१ ॥

गोविन्द! लोकमें जो आपके महान् नाम हैं, वे ही मेरे भी नाम हैं। इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥

त्वदुपासा जगन्नाथ सैवास्ति मम गोपते।
यश्च त्वां द्वेष्टि देवेश स मां द्वेष्टि न संशयः ॥ ६२ ॥

जगन्नाथ! गोपते! आपकी जो उपासना है, वही मेरी भी है। देवेश्वर! जो आपसे द्वेष रखता है, वह मुझसे भी द्वेष करता है, इसमें संशय नहीं ॥ ६२ ॥

त्वद्विस्तारो यतो देव अहं भूतपतिस्ततः।
न तदस्ति विना देव यत् ते विरहितं हरे ॥ ६३ ॥

देव! आपका ही विस्तार मैं हूँ, अतः आपहीकी भाँति मैं भी सम्पूर्ण भूतोंका अधिपति कहलाता हूँ। देव! हरे! ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो आपके बिना या आपसे रहित हो ॥६३॥

यदासीद् वर्तते यच्च यच्च भावि जगत्पते।
सर्वं त्वमेव देवेश विना किंचित्त्वया न हि ॥ ६४ ॥

जगत्पते! देवेश्वर! जो कुछ था, जो है और जो भविष्यमें होनेवाला है, वह सब आप ही हैं। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जो आपसे रहित हो ॥ ६४ ॥

स्तुवन्ति देवाः सततं भवन्तं स्वैर्गुणैः प्रभो।
ऋक्च त्वं यजुरेवासि सामासि सततं प्रभो ॥ ६५ ॥

प्रभो! देवता सदा आपके निजी गुणोंका बखान करके आपकी स्तुति करते हैं। भगवन्! आप ही नित्य-निरन्तर ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद हैं ॥ ६५ ॥

किमुच्यते मया देव सर्वं त्वं भूतभावन।
नमः सर्वात्मना देव विष्णो माधव केशव ॥ ६६ ॥

भूतभावन देव! मैं अधिक क्या कहूँ? आप ही सब कुछ हैं। देव! विष्णो! माधव! केशव! आपको सब प्रकारसे नमस्कार है ॥ ६६ ॥

नमस्करोमि सर्वात्मन् नमस्तेऽस्तु सदा हरे।
नमः पुष्करनाभाय वन्दे त्वामहमीश्वर ॥ ६७ ॥

सर्वात्मन्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हरे! आपको सदा ही नमस्कार है। आप पद्मनाभ हैं, आपको नमस्कार है। ईश्वर! मैं आपकी वन्दना करता हूँ ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां शिवकृतविष्णुस्तुतौ अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कैलासयात्राके प्रसङ्गमें शिवकृत विष्णुकी स्तुतिविषयक अट्ठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

---

१. सर्वदर्शनसंग्रहके अनुसार नित्य शब्द, जिससे वर्णात्मक शब्दोंके अर्थका ज्ञान होता है, जैसे कमल शब्दमें क, म और ल—ये तीन वर्ण हैं और इन तीनोंके अलग-अलग उच्चारणसे कुछ भी अभिप्राय नहीं निकलता, परंतु तीनों वर्णोंका साथ-साथ उच्चारण करनेपर जो स्फोट होता है, उसीसे कमल शब्दका अभिप्राय जाना जाता है। कुछ लोग इसी स्फोट (नित्य शब्द) को संसारका कारण मानते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकोननवततितमोऽध्यायः

भगवान् शङ्करका ऋषियोंको श्रीकृष्णतत्त्वका उपदेश देना

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशं मुनीनाह पुनः शिवः।
एवं जानीत हे विप्रा ये भक्ता द्रष्टुमागताः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवदेवेश्वर श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर भगवान् शिवने पुनः मुनियोंसे कहा—'ब्राह्मणो! जो भक्तजन यहाँ श्रीहरिका दर्शन करनेके लिये आये हैं, वे सब यह जान लें॥ १॥

एतदेव परं वस्तु नैतस्मात् परमस्ति वः।
एतदेव विजानीध्वमेतद् वः परमं तपः॥ २॥

'ये श्रीकृष्ण ही परम वस्तु हैं, तुमलोगोंके लिये इनसे बढ़कर और कोई दूसरी वस्तु नहीं है। ये ही तुम्हारी तपस्याके सर्वोत्तम फल हैं, इस बातको तुमलोग अच्छी तरह जान लो॥ २॥

एतदेव सदा विप्रा ध्येयं सततमानसैः।
एतद् वः परमं श्रेय एतद् वः परमं धनम्॥ ३॥

'विप्रगण! सदा एकाग्रचित्त होकर नित्य-निरन्तर इन्हीं श्रीकृष्णका ध्यान करना चाहिये। ये ही तुम्हारे परम कल्याण हैं और ये ही तुम्हारे परम धन हैं॥ ३॥

एतद् वो जन्मनः कृत्यमेतद् वस्तपसः फलम्।
एष वः पुण्यनिलय एष धर्मः सनातनः॥ ४॥

'ये ही तुम्हारे जन्म और जीवनकी सफलता हैं। ये ही तुम्हारी तपस्याके फल हैं। ये ही तुम्हारे पुण्योंके भण्डार हैं और ये ही सनातन धर्म हैं॥ ४॥

एष वो मोक्षदाता च एष मार्ग उदाहृतः।
एष पुण्यप्रदः साक्षादेतद् वः कर्मणां फलम्॥ ५॥

'ये ही तुम्हें मोक्ष देनेवाले हैं और ये ही गन्तव्य मार्ग बताये गये हैं। ये ही साक्षात् पुण्यदायक और ये ही तुम्हारे सत्कर्मोंके फल हैं॥ ५॥

एतदेव प्रशंसन्ति विद्वांसो ब्रह्मवादिनः।
एष त्रयीगतिर्विप्राः प्रार्थ्यो ब्रह्मविदां सदा॥ ६॥

'ब्रह्मवादी विद्वान् सदा इनकी ही प्रशंसा करते हैं। ये ही तीनों वेदोंकी गति (आश्रय) हैं। ब्राह्मणो! ब्रह्मवेत्ता पुरुष सदा इन्हींकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना करते हैं॥ ६॥

एतदेव प्रशंसन्ति सांख्ययोगसमाश्रिताः।
एष ब्रह्मविदां मार्गः कथितो वेदवादिभिः॥ ७॥

'सांख्य और योगका आश्रय लेनेवाले विद्वान् इन्हींके गुण गाते हैं। वेदवादी विद्वानोंने इन्हींको ब्रह्मवेत्ताओंका मार्ग बताया है॥ ७॥

एवमेव विजानीत नात्र कार्या विचारणा।
हरिरेकः सदा ध्येयो भवद्भिः सत्त्वमास्थितैः॥ ८॥

'विप्रवरो! तुम सदा ऐसा ही जानो। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। सत्त्वगुणका आश्रय लेनेवाले तुम-जैसे भक्तोंको सदा एकमात्र श्रीहरिका ही चिन्तन करना चाहिये॥ ८॥

नान्यो जगति देवोऽस्ति विष्णोर्नारायणात् परः।
ओमित्येवं सदा विप्राः पठत ध्यात केशवम्॥ ९॥

'संसारमें सर्वव्यापी नारायणसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। ब्राह्मणो! तुम सदा ओम्‌का जप और भगवान् केशवका ध्यान किया करो॥ ९॥

ततो निःश्रेयसप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः।
एवं ध्यातो हरिः साक्षात् प्रसन्नो वो भविष्यति॥ १०॥

'ऐसा करनेसे तुम्हें परम कल्याणकी प्राप्ति होगी। इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार ध्यान करनेपर साक्षात् श्रीहरि तुमलोगोंपर प्रसन्न होंगे॥ १०॥

भवनाशमयं देवः करिष्यति दृढं हरिः।
सदा ध्यात हरिं विप्रा यदीच्छा प्राप्तुमच्युतम्॥ ११॥

'ये भगवान् विष्णु तुम्हारे संसारबन्धनका दृढ़तापूर्वक नाश कर डालेंगे। ब्राह्मणो! यदि भगवान् अच्युतको प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो सदा ही उन श्रीहरिका ध्यान करो॥ ११॥

एष संसारविभवं विनाशयति वो गुरुः।
स्मरध्वं सततं विष्णुं पठध्वं त्रिशरीरिणम्॥ १२॥

'ये ही तुम्हारे गुरु हैं। ये संसार-बन्धनका विस्तार करनेवाली मूल-अविद्याका नाश कर डालेंगे, अतः तुमलोग ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवरूप त्रिविध शरीर धारण करनेवाले श्रीहरिका सदा स्मरण एवं कीर्तन किया करो॥ १२॥

मनःसंयमनं विप्राः कुरुध्वं यत्नतः सदा।
शुद्धेऽन्तःकरणे विष्णुः प्रसीदति तपोधनाः॥ १३॥

'ब्राह्मणो! तुमलोग सदा यत्नपूर्वक मनका संयम करो। तपोधनो! संयमसे अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं॥ १३॥

ध्यात्वा मां सर्वयत्नेन ततो जानीत केशवम्।
उपास्योऽहं सदा विप्रा उपास्येऽस्मिन् हरौ स्मृतः॥ १४॥

'ब्राह्मणो! तुम सम्पूर्ण यत्नसे मेरा चिन्तन करके फिर केशवका ज्ञान प्राप्त करो। इन उपास्यदेव श्रीहरिमें सदा मैं ही उपास्य माना गया हूँ॥ १४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपायोऽयं मया प्रोक्तो नात्र संदेह इत्यपि।
अयं मायी सदा विप्रा यतध्वमघनाशने ॥ १५ ॥

'विप्रगण ! यह मैंने भगवान्‌की प्राप्तिका उपाय बताया, इसमें संदेह नहीं है। ये भगवान् मायाके अधिपति हैं, तुम सब लोग इन पापहारी हरिकी प्राप्तिके लिये सदा प्रयत्न करते रहो ॥ १५ ॥

यथा वो बुद्धिरखिला शुद्धा भवति यत्नतः।
तथा कुरुत विप्रेन्द्रा यथा देवः प्रसीदति ॥ १६ ॥

'विप्रवरो ! जिस प्रकारसे यत्न करनेपर तुम्हारी सारी बुद्धि शुद्ध हो जाय और जिससे भगवान् प्रसन्न हो जायँ, वैसा करो' ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तास्ततः सर्वे मुनयः पुण्यशीलिनः।
यथावदुपगृह्याना निरसन् संशयं नृप ॥ १७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरेश्वर ! भगवान् शङ्करके ऐसा कहनेपर उन समस्त पुण्यशील मुनियोंने यथावत् रूपसे उनके उपदेशको ग्रहण किया और अपने मनसे संशयको निकाल दिया ॥ १७ ॥

एवमेवेति तं विप्राः प्राहुः प्राञ्जलयो हरम्।
छिन्नो नः संशयः सर्वो गृहीतोऽर्थः स तादृशः॥ १८ ॥

उन ब्राह्मणोंने हाथ जोड़कर महादेवजीसे कहा—'भगवन् ! आपने जैसा कहा है, ऐसी ही बात है। हमारा सारा संशय नष्ट हो गया और हमने वैसा ही सिद्धान्त स्वीकार कर लिया ॥ १८ ॥

एतदर्थं समायाता वयमद्य तवालयम्।
संगमाद् युवयोः सर्वो नष्टो मोहो महानिह ॥ १९ ॥

'प्रभो ! हम इसीलिये आज आपके निवासस्थानपर आये थे। आप दोनोंके समागमसे यहाँ हमारा सारा महान् मोह नष्ट हो गया ॥ १९ ॥

यथा वदसि देवेश तथा नः श्रेयसे परम्।
यथाऽऽह भगवान् रुद्रो यतामः सततं हरौ।
इति ते मुनयः प्रीताः प्रणेमुः केशवं हरिम् ॥ २० ॥

'देवेश्वर ! आप जैसा कहते हैं, वैसा करनेसे ही हमारा परम कल्याण होगा। आप भगवान् रुद्रने जैसा कहा है, उसके अनुसार हम सदा श्रीहरिकी प्राप्तिके लिये यत्न करते रहेंगे। ऐसा कहकर उन प्रसन्न हुए मुनियोंने श्रीकेशव हरिको प्रणाम किया ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां ऋष्युपदेशे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कैलासयात्राके प्रसङ्गमें भगवान् शिवका ऋषियोंको उपदेशविषयक नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

नवतितमोऽध्यायः

भगवान् शंकरद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और श्रीकृष्णका कैलाससे बदरिकाश्रममें लौटना

वैशम्पायन उवाच

ततः स भगवान् रुद्रः सर्वान् विस्मापयन्निव।
स्तुत्या प्रचक्रमे स्तोतुं विष्णुं विश्वेश्वरं हरिम्।
अर्थ्याभिस्तु तदा वाग्भिर्मुनीनां शृण्वतां तथा॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर भगवान् रुद्र सबको विस्मयमें डालते हुए-से सर्वव्यापी जगदीश्वर श्रीहरिकी स्तोत्रद्वारा स्तुति करनेको उद्यत हुए। उन्होंने उस समय मुनियोंके सुनते हुए अर्थयुक्त वाणी-द्वारा इस प्रकार स्तुति आरम्भ की ॥ १ ॥

महेश्वर उवाच

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमते।
यस्य भासा जगत् सर्वं भासते नित्यमच्युत ॥ २ ॥
नमो भगवते देव नित्यं सूर्यात्मने नमः।

महेश्वर बोले—आप परम बुद्धिमान् भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। अच्युत देव ! जिनके प्रकाशसे ही यह सारा जगत् सदा प्रकाशित होता है, उन सूर्यस्वरूप आप भगवान्‌को नित्य बारंबार नमस्कार है ॥ २½ ॥

यः शीतयति शीतांशुर्लोकान् सर्वानिमान् विभुः॥ ३ ॥
नमस्ते विष्णवे देव नित्यं सोमात्मने नमः।

देव ! जो शीतरश्मि भगवान् चन्द्रमा इन सम्पूर्ण लोकोंको शीतलता प्रदान करते हैं, उन सोमस्वरूप आप श्रीहरिको नित्य नमस्कार है ! नमस्कार है !! ॥ ३½ ॥

यः प्रजाः प्रीणयत्येको विश्वात्मा भूतभावनः ॥ ४ ॥
नमः सर्वात्मने देव नमो वागात्मने हरे।

देव ! हरे ! जो एकमात्र विश्वात्मा भूतभावन भगवान् समस्त प्रजाको तृप्ति प्रदान करते हैं, उन सर्वरूप और वाणी-स्वरूप आपको बार-बार नमस्कार है ॥ ४½ ॥

यो दधार करेणासौ कुशचीरादि यत् सदा ॥ ५ ॥
दधार वेदान् सर्वांश्च तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः।

जो सदा अपने हाथसे कुश, चीर आदि धारण करते हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा जिन्होंने सम्पूर्ण वेदोंको धारण किया है, वे ब्रह्मा आप ही हैं। आपको नमस्कार है ॥ ५½ ॥

सर्वान् संहरते यस्तु संहारे विश्वदृक् सदा ॥ ६ ॥
क्रोधात्मासि विरूपोऽसि तुभ्यं रुद्रात्मने नमः।

जो विश्वद्रष्टा भगवान् संहारकालमें सदा समस्त लोकोंका संहार करते हैं, वे आप ही हैं। आप क्रोधरूप, विकराल रूप तथा रुद्रस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है ॥ ६½ ॥

सृष्टौ स्रष्टा समस्तानां प्राणिनां प्राणदायिने ॥ ७ ॥
अजाय विष्णवे तुभ्यं स्रष्ट्रे विश्वसृजे नमः।

जो सृष्टिकालमें स्रष्टा बनकर समस्त प्राणियोंको प्राणदान करते हैं, उन अजन्मा, विश्वस्रष्टा, विधाता आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है ॥ ७½ ॥

आदौ प्रकृतिमूलाय भूतानां प्रभवाय च ॥ ८ ॥
नमस्ते देवदेवेश प्रधानाय नमो नमः।

देवदेवेश्वर! जो आदिमें मूल-प्रकृतिरूप है और गुणोंमें क्षोभ होनेपर क्रमशः पञ्च-महाभूतोंका उत्पादक होता है, उन प्रधानस्वरूप आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ८½ ॥

पृथिव्यां गन्धरूपेण संस्थितः प्राणिनां हरे ॥ ९ ॥
दृढाय दृढरूपाय तुभ्यं गन्धात्मने नमः।

प्राणियों(के पापों)का अपहरण करनेवाले हरे! आप पृथिवीमें गन्धरूपसे स्थित हैं। आप दृढ़ हैं, दृढ़ रूपधारी हैं तथा गन्धस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है ॥ ९½ ॥

अपां रसाय सर्वत्र प्राणिनां सुखहेतवे ॥ १० ॥
नमस्ते विश्वरूपाय रसाय च नमो नमः।

जो प्राणियोंको सुख देनेके लिये सर्वत्र जलमें रसरूपसे निवास करते हैं, उन विश्वरूपधारी रसस्वरूप आपको बारंबार नमस्कार है !! १०½ ॥

तेजसा भास्करो यस्तु घृणिर्जन्तुहितः सदा ॥ ११ ॥
तस्मै देव जगन्नाथ नमो भास्कररूपिणे।

देव! जगन्नाथ! जो तेजसे सूर्यतुल्य, किरणोंसे प्रकाशित तथा सदा सभी जीवोंका हित करनेवाले हैं, उन भास्करस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ११½ ॥

वायोः स्पर्शगुणो यत्र शीतोष्णसुखदुःखदः ॥ १२ ॥
नमस्ते वायुरूपाय नमः स्पर्शात्मने हरे।

हरे! जहाँ वायुका स्पर्श नामक गुण शीत, उष्ण एवं सुख-दुःख प्रदान करनेवाला है, वहाँ उस गुणके आश्रयभूत वायु आपके ही स्वरूप हैं। स्पर्श भी आपका ही रूप है, आपको नमस्कार है ॥ १२½ ॥

आकाशोऽवस्थितः शब्दः सर्वश्रोत्रनिवेशनः ॥ १३ ॥
नमस्ते भगवन् विष्णो तुभ्यं सर्वात्मने नमः।

भगवन्! विष्णो! आकाशस्वरूप आपमें स्थित शब्द सबके कानोंमें प्रवेश करता है। आप सर्वात्मा हैं, आपको नमस्कार है ॥ १३½ ॥

यो दधार जगत् सर्वं मायामानुषदेहवान् ॥ १४ ॥
नमस्तुभ्यं जगन्नाथ मायिनेऽमायदायिने।

जगन्नाथ! आपने मायामय मनुष्य-देह धारण करके भी सम्पूर्ण जगत्को स्वयं ही धारण कर रखा है। आप मायाके स्वामी हैं तथा मायारहित मोक्षतक प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है ॥ १४½ ॥

नम आद्याय बीजाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥ १५ ॥
अचिन्त्याय सुचिन्त्याय तस्मै चिन्त्यात्मने नमः।

आप सबके आदिकारण, निर्गुण, गुणस्वरूप, अचिन्त्य, सुचिन्त्य एवं चिन्त्यरूप हैं, उन आप परमात्माको नमस्कार है ॥ १५½ ॥

हराय हरिरूपाय ब्रह्मणे ब्रह्मदायिने ॥ १६ ॥
नमो ब्रह्मविदे तुभ्यं ब्रह्मब्रह्मात्मने नमः।

आप हरिरूपधारी हर हैं, ब्रह्माको वेद प्रदान करनेवाले हैं, ब्रह्मवेत्ता तथा ब्रह्म और यज्ञरूप हैं, आपको नमस्कार है! नमस्कार है!! ॥ १६½ ॥

नमः सहस्रशिरसे सहस्रकिरणाय च ॥ १७ ॥
नमः सहस्रचक्षुषे सहस्रनयनाय च।

आपके सहस्रों मस्तक हैं। आप सहस्रों किरणोंसे प्रकाशित होते हैं। आपके मुख और नेत्र भी सहस्र (अनन्त) हैं, आपको नमस्कार है ॥ १७½ ॥

विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्त्रे नमो नमः ॥ १८ ॥
विश्ववक्त्रे नमो नित्यं भूतावास नमो नमः।

आप विश्व, विश्वरूप और विश्वकर्ता हैं, आपको नमस्कार है! नमस्कार है!! आप सम्पूर्ण विश्वको उपदेश देनेवाले (जगद्-गुरु) हैं, आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण भूतोंके आवासस्थान विष्णुदेव! आपको बारंबार नमस्कार है ॥

इन्द्रियायेन्द्ररूपाय विषयाय सदा हरे ॥ १९ ॥
नमोऽश्वशिरसे तुभ्यं वेदाभरणरूपिणे।

हरे! आप इन्द्रियरूप, विषयरूप और इन्द्ररूप हैं, आपको सदा नमस्कार है। वेद ही जिनका आभरण और रूप हैं, उन हयग्रीवरूपधारी आपको नमस्कार है ॥ १९½ ॥

अग्नयेऽग्निपते तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ॥ २० ॥
सूर्याय सूर्यपुत्राय तेजसां पतये नमः।

अग्निपते! आप अग्निरूप हैं, ग्रह-नक्षत्रोंके अधिपति हैं, सूर्य, सूर्यपुत्र तथा तेजके स्वामी हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ॥ २०½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नमः सोमाय सौम्याय नमः शीतात्मने हरे ॥ २१ ॥
नमो वषट्कृते तुभ्यं स्वाहास्वधास्वरूपिणे ।
नमो यज्ञाय इज्याय हविषे हव्यसंस्कृते ।
नमः स्रुवाय पात्राय यज्ञाङ्गाय पराय च ॥ २२ ॥

हरे ! आप सोम, सौम्य तथा शीतात्मा हैं, आपको बारंबार नमस्कार है । आप वषट्कार तथा स्वाहा-स्वधा-स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । आप यज्ञ, यज्ञोंद्वारा पूजनीय तथा हविष्यरूप हैं, आपको नमस्कार है । हव्योंद्वारा संस्कृत आप परमात्माके प्रति नमस्कार है । आप स्रुव हैं, यज्ञपात्र हैं, यज्ञोंके अङ्गभूत उपकरण हैं और इन सबसे परे भी हैं, आपको नमस्कार है ॥ २१-२२ ॥

नमः प्रणवदेहाय क्षरायाप्यक्षराय च ।
वेदाय वेदरूपाय शस्त्रिणे शस्त्ररूपिणे ॥ २३ ॥

प्रणव आपका शरीर है । आप क्षर (सम्पूर्ण भूत) और अक्षर (कूटस्थ) हैं, आपको नमस्कार है । आप वेद हैं, वेदरूप हैं, शस्त्र ग्रहण करनेवाले और शस्त्ररूपधारी हैं, आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥

गदिने खड्गिने तुभ्यं शङ्खिने चक्रिणे नमः ।
शूलिने चर्मिणे नित्यं वरदाय नमो नमः ॥ २४ ॥

आप गदा, खड्ग, शङ्ख, चक्र, शूल और ढाल धारण करते हैं तथा सदा वर देनेवाले हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ॥ २४ ॥

बुद्धिप्रियाय बुद्धाय प्रबुद्धाय सुखाय च ।
हरये विष्णवे तुभ्यं नमः सर्वात्मने गुरो॥ २५ ॥

गुरुदेव ! आप बुद्धिप्रिय, बोधसम्पन्न, प्रबुद्धस्वरूप एवं सुखरूप हैं । आप ही सबके आत्मा पापहारी विष्णु हैं, आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥

नमस्ते सर्वलोकेश सर्वकर्त्रे नमो नमः ।
नमः स्वभावशुद्धाय नमस्ते यज्ञसूकर ॥ २६ ॥

सर्वलोकेश्वर ! आप सबके कर्ता हैं, आपको बारंबार नमस्कार है । यज्ञवाराह ! आप स्वभावसे ही शुद्ध हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ॥ २६ ॥

नमो विष्णो नमो विष्णो नमो विष्णो नमो हरे ।
नमस्ते वासुदेवाय वासुदेवाय धीमते ॥ २७ ॥

विष्णो ! आपको नमस्कार है । विष्णो ! आपको नमस्कार है । विष्णो ! आपको नमस्कार है । हरे ! आपको नमस्कार है । सबके भीतर निवास करनेवाले बुद्धिमान् देवता वसुदेवनन्दन ! आपको नमस्कार है ॥ २७ ॥

नमः कृष्णाय कृष्णाय सर्वावास नमो नमः ।
नमो भूयो नमस्तेऽस्तु पाहि लोकान् जनार्दन॥ २८ ॥

सबके आवासस्थान जनार्दन ! आप नामसे कृष्ण हैं, वर्णसे भी कृष्ण ही हैं, आपको बारंबार नमस्कार है । आपको पुनः नमस्कार है ! नमस्कार है !! आप सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा कीजिये ॥ २८ ॥

इति स्तुत्वा जगन्नाथमुवाच मुनिसत्तमान् ।
इदं स्तोत्रमधीयाना नित्यं व्रजत केशवम् ॥ २९ ॥
शरण्यं सर्वभूतानां तत्र श्रेयो विधास्यति ।

इस प्रकार जगदीश्वर श्रीहरिकी स्तुति करके भगवान् शिवने उन श्रेष्ठ मुनियोंसे कहा—'इस स्तोत्रका नित्य पाठ करते हुए तुम सब लोग भगवान् केशवकी शरणमें जाओ । वे समस्त भूतोंको शरण देनेवाले हैं, अतः तुम्हारा कल्याण करेंगे ॥ २९½ ॥

ये चेमं धारयिष्यन्ति स्तवं पापविमोचनम् ॥ ३० ॥
तेषां प्रीतः प्रसन्नात्मा पठतां शृण्वतां हरिः ।
श्रेयो दास्यति धर्मात्मा नात्र कार्या विचारणा॥ ३१ ॥

'जो लोग इस पापनाशक स्तोत्रको अपने हृदयमें धारण करेंगे; उनपर भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होंगे । प्रसन्नचित्त हुए धर्मात्मा विष्णु इसका पाठ और श्रवण करनेवाले पुरुषोंको कल्याण प्रदान करेंगे । इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ३०-३१ ॥

अवश्यं मनसा ध्यात केशवं भक्तवत्सलम् ।
श्रेयः प्राप्तुं यदीच्छन्ति भवन्तः शंसितव्रताः॥ ३२ ॥

'यदि तुमलोग कल्याण प्राप्त करना चाहते हो तो उत्तम व्रतका पालन करते हुए निश्चय ही अपने मनसे भक्तवत्सल केशवका चिन्तन करो' ॥ ३२ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत ।
सगणः शंकरः साक्षादुमया भूतभावनः ॥ ३३ ॥

ऐसा कहकर उमासहित भूतभावन कल्याणकारी साक्षात् भगवान् रुद्र अपने गणोंके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये ॥

नेमुस्तं मुनयः सर्वे परां निर्वृतिमाययुः ।
तमेव परमं तत्त्वं मत्वा नारायणं हरिम् ।
विस्मयं परमं गत्वा मेनिरे स्वकृतार्थताम् ॥ ३४ ॥

सब मुनियोंने उन्हें नमस्कार किया और परम संतोष प्राप्त किया । पापहारी नारायणदेवको ही परम तत्त्व मानकर उन सबको बड़ा विस्मय हुआ और उन सबने अपने-आपको कृतकृत्य माना ॥ ३४ ॥

लोकपालास्तदा विष्णुं नमस्कृत्य हरिं मुदा ।
जग्मुः स्वान्यथ वेश्मानि गणैः सर्वैर्नृपोत्तम ॥ ३५ ॥

नृपश्रेष्ठ ! उस समय लोकपाल भी भगवान् विष्णु श्रीहरिको प्रसन्नतापूर्वक नमस्कार करके समस्त सेवकगणोंके साथ अपने-अपने निवासस्थानको चले गये ॥ ३५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आरुह्य भगवान् विष्णुर्गरुडं पक्षिपुङ्गवम्।
शङ्खी चक्री गदी खड्गी शार्ङ्गी तूणी तनुत्रवान् ॥ ३६ ॥
यथागतं जगन्नाथो ययौ बदरिकामनु।
सायाह्ने पुण्डरीकाक्षो नित्यं मुनिनिषेवितम् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण पक्षिराज गरुड़-पर आरूढ हो शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग, शार्ङ्गधनुष, तरकस और कवच धारण करके जैसे आये थे, उसी प्रकार सायंकाल-में मुनिजनोंद्वारा नित्य सेवित विशाला बदरीतीर्थमें लौट आये ॥ ३६-३७ ॥

तत्र गत्वा यथायोगं विनम्य हरिरीश्वरः।
अर्चितो मुनिभिः सर्वैर्निषसाद सुखासने ॥ ३८ ॥

वहाँ जाकर वे सर्वेश्वर श्रीहरि यथायोग्य मुनियोंको प्रणाम करके सब मुनियोंद्वारा पूजित हो सुखद आसनपर विराजमान हुए ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां कृष्णप्रत्यागमने नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें कैलासयात्राके प्रसंगमें 'श्रीकृष्णका लौटना' विषयक नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९० ॥

एकनवतितमोऽध्यायः

पौण्ड्रकका राजाओंकी सभाओंमें अपनेको शङ्ख, चक्र आदिसे युक्त वासुदेव घोषित करना और श्रीकृष्णको पराजित करनेका मनसूबा बाँधना

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु पौण्ड्रो नृपवरोत्तमः।
बलवान् सत्त्वसम्पन्नो योद्धा विपुलविक्रमः ॥ १ ॥
वृष्णिशत्रुस्तदा राजा कृष्णद्वेषी बलात् तदा।
नृपान् सर्वान् समाहूय प्रोवाच नृपसंसदि ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इसी समय राजाओंमें श्रेष्ठतम, बलवान्, सत्त्वसम्पन्न, महापराक्रमी योद्धा, वृष्णिवंशियोंसे शत्रुभाव रखनेवाला तथा श्रीकृष्णका द्वेषी पौण्ड्रक समस्त राजाओंको बलपूर्वक बुलाकर उनकी सभामें बोला—॥ १-२ ॥

जिता च पृथिवी सर्वा जिताश्च नृपसत्तमाः।
वृष्णयस्ते बलोन्मत्ताः कृष्णमाश्रित्य गर्विताः ॥ ३ ॥

'मैंने सारी पृथ्वी जीत ली और बड़े-बड़े राजाओंको पराजित कर दिया। परंतु बलोन्मत्त वृष्णिवंशी श्रीकृष्णका सहारा लेकर घमंडमें भर गये हैं ॥ ३ ॥

दास्यन्ति मे करं सर्वे न हि ते कृष्णसंश्रयात्।
स तु कृष्णश्चक्रबलान्मामवज्ञाय तिष्ठति ॥ ४ ॥

'कृष्णका आश्रय लेकर वे सब-के-सब मुझे कर नहीं देते हैं और वह कृष्ण अपने चक्रके बलसे मेरी अवहेलना करते रहता है ॥ ४ ॥

अहं चक्रीति गर्वोऽभूत् तस्य गोपस्य सर्वदा।
शङ्खी चक्री गदी शार्ङ्गी शरी तूणी सहायवान् ॥ ५ ॥
एवमादिर्महागर्वस्तस्य सम्प्रति वर्तते।

'उस ग्वालेको सदा इस बातका गर्व रहता है कि मैं चक्रधारी हूँ। मेरे पास शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष, बाण और तरकस हैं, मैं सहायतासे सम्पन्न हूँ। इस तरह इस समय उसका गर्व बहुत बढ़ा-चढ़ा है ॥ ५½ ॥

लोके च मम यन्नाम वासुदेवेति विश्रुतम् ॥ ६ ॥
अगृह्णान्मम तन्नाम गोपो मद्बलान्वितः।

'लोकमें जो मेरा वासुदेव यह प्रसिद्ध नाम है, उसे उस मदमत्त एवं बलवान् गोपने ग्रहण कर लिया है ॥ ६½ ॥

तस्य चक्रस्य यच्चक्रं ममापि निशितं महत् ॥ ७ ॥
गर्वहन्तृ सदा तस्य नाम्ना चापि सुदर्शनम्।

'मेरे पास भी एक विशाल एवं तीखा चक्र है, जो उसके चक्रका नाश करनेवाला है। मेरा यह चक्र सदा उस (कृष्ण) के गर्वको चूर्ण करनेमें समर्थ है, उसका नाम भी सुदर्शन है ॥ ७½ ॥

सहस्रारं महाघोरं तस्य चक्रस्य नाशनम् ॥ ८ ॥
अनेकमहतं चक्रं गोपजस्य नृपोत्तमाः।

'श्रेष्ठ राजाओ ! मेरे इस चक्रमें एक सहस्र अरे लगे हुए हैं। यह महाभयंकर है और गोपबालक श्रीकृष्णके चक्रका नाश करनेवाला है। यह अनेक रूप धारण करनेमें समर्थ और कहीं भी प्रतिहत होनेवाला नहीं है ॥ ८½ ॥

ममाप्येतद् धनुर्दिव्यं शार्ङ्गं नाम महारवम् ॥ ९ ॥
गदा कौमोदकी नाम ममेयं बृहती दृढा।
कालायससहस्रस्य भारेण सुकृता मया ॥ १० ॥

'मेरा भी यह धनुष दिव्य है, सींगका बना हुआ है, इसलिये शार्ङ्गनामसे प्रसिद्ध है और बड़ी भारी टंकार-ध्वनि करता है। मेरी इस गदाका नाम भी कौमोदकी है। यह विशाल एवं सुदृढ़ है। मैंने एक सहस्र भार लोहेसे इसका निर्माण कराया है ॥ ९-१० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खड्गो नन्दकनामासौ ममायं विपुलो दृढः।
अन्तकस्यान्तको घोरस्तस्य खड्गस्य नाशकः ॥ ११ ॥

'मेरा यह विशाल खड्ग बहुत मजबूत है। इसका नाम नन्दक है। यह घोर खड्ग कालका भी काल और श्रीकृष्णके खड्गका नाश करनेवाला है ॥ ११ ॥

तत्राहं च गदी खड्गी शङ्खी चक्री तनुत्रवान्।
युधि जेता च कृष्णस्य नात्र कार्या विचारणा ॥ १२ ॥
मां च ब्रूत नृपाश्चैव गदिनं चक्रिणं तथा।
शङ्खिनं शार्ङ्गिणं वीरं ब्रूत नित्यं नृपोत्तमाः ॥ १३ ॥

'इस प्रकार मैं गदा, खड्ग, शङ्ख, चक्र और कवचसे युक्त होकर युद्धमें श्रीकृष्णको जीत लूँगा। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है; अतः श्रेष्ठ नरपतियो! अब तुम लोग मुझे ही सदा गदाधर, चक्रपाणि, शङ्खधारी एवं शार्ङ्गधनुर्धर वीर कहा करो ॥ १२-१३ ॥

वासुदेवेति मां ब्रूत न तु गोपं यदूत्तमम्।
एकोऽहं वासुदेवो हि हत्वा तं गोपदारकम् ॥ १४ ॥

'मुझे ही वासुदेव कहो, उस यदुश्रेष्ठ गोपको नहीं। उस गोपबालकको मारकर एकमात्र मैं ही वासुदेव रहूँगा ॥१४॥

सख्युर्मम बलाद्धन्ता नरकस्य महात्मनः।
मां तथा यदि न ब्रूत दण्ड्या भारशतैः शतम् ॥ १५ ॥
सुवर्णस्य च निष्कस्य धान्यस्य बहुशस्तदा।

'महामनस्वी नरकासुर मेरा मित्र था, उसको इस गोपने बलपूर्वक मार डाला है, (इसलिये मैं भी इसका वध करूँगा); अतः यदि तुमलोग मुझे वासुदेव नहीं कहोगे तो मैं तुमपर दस हजार भार सुवर्ण एवं निष्कका तथा बहुत-सी धान्य-राशिका दण्ड लगाऊँगा' ॥ १५½ ॥

तथा ब्रुवति राजेन्द्रे मनसा दुस्सहं यथा ॥ १६ ॥
केचिल्लज्जासमायुक्ता आसंस्ते बलवत्तराः।
रसज्ञा बलवीर्यस्य राजानस्ते सदा नृप ॥ १७ ॥

राजाधिराज पौण्ड्रकके इस तरह मनको असह्य लगनेवाली बात कहनेपर कुछ प्रबल नरेश लज्जित होकर चुप रह गये। राजन्! वे सब नरेश बल-वीर्यके रसज्ञ थे ॥ १६-१७ ॥

अपरे तु नृपा राजन्नेवमेवेति चुक्रुशुः।
अन्ये बलमदोत्सिक्ता जेष्यामः केशवं रणे ॥ १८ ॥

राजन्! दूसरे चापलूस नरेश 'ठीक है! ठीक है!!' ऐसा कोलाहल करने लगे तथा बलके मदसे उन्मत्त हुए अन्य राजा कहने लगे कि हम युद्धमें श्रीकृष्णको अवश्य जीतेंगे ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकोक्तौ एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौण्ड्रककी गर्वोक्तिविषयक इक्यानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

पौण्ड्रकके यहाँ नारदजीका आगमन और उसके साथ उनकी बातचीत

वैशम्पायन उवाच

ततः कैलासशिखरान्निर्गतो मुनिसत्तमः।
नारदः सर्वलोकज्ञः पौण्ड्रस्य नगरं प्रति ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर सम्पूर्ण लोकोंके ज्ञाता मुनिश्रेष्ठ नारद कैलासशिखरसे निकलकर पौण्ड्रकके नगरकी ओर चल दिये ॥ १ ॥

अवतीर्य नभोभागात् प्रत्यागम्य नरोत्तमम्।
द्वाःस्थेन च समाज्ञप्तः प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥ २ ॥

आकाशसे उतरकर द्वारपालसे राजाज्ञा प्राप्त करके उन्होंने राजाके उत्तम भवनमें प्रवेश किया और वे उस नरश्रेष्ठ पौण्ड्रकसे मिले ॥ २ ॥

अर्घ्यादिसमुदाचारं नृपाल्लब्ध्वा महामुनिः।
निषसादासने शुभ्रे ह्यास्तृते शुभवाससा ॥ ३ ॥

राजासे अर्घ्य आदि अतिथि-सत्कार पाकर वे महामुनि सुन्दर वस्त्र बिछे हुए शुभ्र आसनपर विराजमान हुए ॥ ३ ॥

कुशलं पृष्टवान् भूयो नृपः स मुनिसत्तमम्।
उवाच नारदं भूयः पौण्ड्रको बलगर्वितः ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् बलके घमंडमें भरे हुए राजा पौण्ड्रकने पहले तो मुनिश्रेष्ठ नारदसे कुशल-समाचार पूछा, फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ ४ ॥

भवान् सर्वत्र कुशलः सर्वकार्येषु पण्डितः।
प्रथितो देवसिद्धेषु गन्धर्वेषु महात्मसु ॥ ५ ॥
सर्वत्रगो निराबाधो गत्वा सर्वत्र सर्वदा।
अगम्यं तव विप्रेन्द्र ब्रह्माण्डे न हि किंचन।

'विप्रवर! आप सर्वत्र कुशल हैं, समस्त कार्योंमें पण्डित हैं। देवताओं, सिद्धों और महात्मा गन्धर्वोंमें आपकी ख्याति है। आप बिना किसी बाधाके सर्वत्र जा सकते हैं। सदा सब जगह आपकी पहुँच है। इस ब्रह्माण्डमें कोई भी स्थान आपके लिये अगम्य नहीं है ॥ ५-½ ॥

नारदेदं वदस्व त्वं हि यत्र यत्र गतो भवान् ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्र तत्र तपःसिद्धो लोके प्रथितवीर्यवान्।
पौण्ड्र एव च विख्यातो वासुदेवेति शब्दितः॥ ७॥

'नारदजी! यह तो बताइये, आप जहाँ-जहाँ गये हैं, वहाँ-वहाँ यह तपःसिद्ध और लोकमें विख्यात बलशाली पौण्ड्रक ही 'वासुदेव' नामसे विख्यात है न?॥ ६-७॥

शङ्खी चक्री गदी शार्ङ्गी खड्गी तूणी तनुत्रवान्।
विजेता राजसिंहानां दाता सर्वस्य सर्वदा॥ ८॥

'मैं ही शङ्खधारी, चक्रपाणि, गदाधर और शार्ङ्गधनुर्धर हूँ। तलवार और तरकस लेकर कवच धारण करके अनेकानेक राजसिंहोंपर विजय पानेवाला मैं ही हूँ। मैं ही सदा सबको सब कुछ देनेवाला हूँ॥ ८॥

भोक्ता राज्यस्य सर्वस्य शास्ता राजा बलाद् बली।
अजेयः शत्रुसैन्यानां रक्षिता स्वजनस्य च॥ ९॥

'मैं समस्त राज्यका भोक्ता और बलपूर्वक शासन करनेवाला बलवान् राजा हूँ, शत्रुसैनिकोंके लिये अजेय तथा स्वजनोंका रक्षक हूँ॥ ९॥

योऽद्य गोपकनामासौ वासुदेवेति शब्दितः।
तस्य वीर्यबले न स्तो नाम्नोऽस्य मम धारणे॥ १०॥

'आजकल जो वह गोप वासुदेव नामसे विख्यात हो रहा है, उसमें इतना बल और पराक्रम नहीं है, जिससे वह मेरा नाम धारण कर सके॥ १०॥

स हि गोपो वृथा बाल्याद् धारयत्येव नाम मे।
इदं निश्चिनु विप्रेन्द्र एक एव भवाम्यहम्॥ ११॥
वासुदेवो जगत्यस्मिन् निर्जित्य बलिनं यदुम्।

'वह ग्वाला अज्ञानवश व्यर्थ ही मेरा नाम धारण करता है। विप्रवर! आप निश्चितरूपसे यह जान लीजिये कि मैं उस बलवान् यादवको जीतकर अकेला ही इस जगत्में वासुदेव रहूँगा॥ ११½॥

वृष्णीन् सर्वान् बलात् क्षिप्त्वा निहनिष्ये च तां पुरीम्॥
द्वारकां विष्णुनिलयां योद्धा चाहं महामते।
एते च बलिनः सर्वे नृपा मम समागताः॥ १३॥

'समस्त वृष्णिवंशियोंको बलपूर्वक पराजित करके श्रीकृष्णकी निवासभूता द्वारकापुरीको नष्ट कर डालूँगा। महामते! मैं स्वयं तो युद्ध करूँगा ही, ये समस्त बलवान् राजा भी मेरी ओरसे युद्धके लिये आये हैं॥ १२-१३॥

अश्वाश्च वेगिनः सन्ति रथा वायुजवा मम।
उष्ट्रा मत्ताः सहस्रं च गजा नियुतमेव च॥ १४॥
एतेनाहं बलेनाजौ हनिष्ये केशवं रणे।

'मेरे पास बहुत-से वेगशाली अश्व हैं, वायुके समान वेगशाली रथ हैं, सहस्रों मतवाले ऊँट और लाखों मदमत्त हाथी हैं। इस विशाल सेनाके साथ रणभूमिमें मैं श्रीकृष्णका वध कर डालूँगा॥ १४½॥

तस्मादेवं सदा विप्र वद ब्रह्मन् पुरे मम॥ १५॥
इन्द्रस्यापि सदा विप्र वद नारद साम्प्रतम्।
प्रार्थनैषा मम विभो नमस्ये त्वां तपोधन॥ १६॥

'विप्रवर! ब्रह्मन्! आप प्रत्येक नगरमें मेरे लिये सदा ऐसी ही बात कहें। नारद बाबा! इस समय इन्द्रके समक्ष भी आपको सदा मेरे बल-पराक्रमकी ही बात करनी चाहिये। विभो! तपोधन! यही मेरी प्रार्थना है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ'॥ १५-१६॥

नारद उवाच

सर्वत्रगः सदा चास्मि यावद् ब्रह्माण्डसंस्थितिः।
आचार्यः सर्वकार्येषु गमने केनचिन्नृप॥ १७॥

नारदजीने कहा—नरेश्वर! जहाँतक ब्रह्माण्डकी स्थिति है, मैं सदा सर्वत्र जा सकता हूँ। किसी भी पुरुषको अपने समस्त कार्योंके लिये मेरी शरण लेनी चाहिये। सर्वत्र जानेकी कलामें तो मैं आचार्य ही हूँ॥ १७॥

किं नु वक्तुं तथा राजन्नुत्सहे नृपसत्तम।
महीं शासति देवेशे चक्रपाणौ जनार्दने॥ १८॥
विष्णौ सर्वत्रगे देवे दुष्टान् हत्वा सबान्धवान्।
वासुदेवेति को नाम तिष्ठत्यस्मिन् हराविति॥ १९॥

राजन्! नृपश्रेष्ठ! तुम जैसा चाहते हो, वैसी बात कहनेका उत्साह मैं कैसे कर सकता हूँ। जबतक बन्धु-बान्धवोंसहित समस्त दुष्टोंका वध करके सर्वत्र जा सकनेवाले सर्वव्यापी देव, देवेश्वर, चक्रपाणि जनार्दन इस पृथ्वीका शासन कर रहे हैं, तबतक उन श्रीहरिके रहते हुए दूसरा कौन वासुदेव कहला सकता है॥ १८-१९॥

को नाम वक्तुमेवेदं कृष्णे शासति गोमती।
अज्ञानाद् वक्तुमेवं च समर्थाः प्राकृता जनाः॥ २०॥

सूर्य-किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले द्युलोक और भूलोकपर जबतक श्रीकृष्णका शासन चल रहा है, तबतक कौन मनुष्य ऐसी बात कह सकता है। कि 'पौण्ड्रक वासुदेव है'। तुम्हारे-जैसे मूढ़ मनुष्य ही अज्ञानवश ऐसी बात कहनेमें समर्थ हो सकते हैं॥ २०॥

हरिः सर्वत्रगो विष्णुर्दर्पं ते व्यपनेष्यति।
अचिन्त्यविभवो विष्णुः शार्ङ्गधन्वा गदाधरः॥ २१॥

सर्वत्र जानेकी क्षमता रखनेवाले, अचिन्त्य वैभवशाली, पापहारी, सर्वव्यापी, शार्ङ्गधन्वा, गदाधर विष्णु तुम्हारे घमंडको दूर कर देंगे॥ २१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदिदेवः पुराणात्मा दर्पं ते व्यपनेष्यति।
हास्यमेतन्महाराज यच्च वै तत्र संस्थितम् ॥ २२ ॥
शार्ङ्गं खड्गं तथा राजन् महाघोरं न दाप्यते।
अतीव ह्रासकालोऽयं तव सम्प्रति वर्तते ॥ २३ ॥

दलन कर देंगे। तुम जो कुछ सोचते या कहते हो, यह उपहासकी बात है। राजन्! श्रीकृष्णके पास जो शार्ङ्ग-धनुष और महाभयंकर खड्ग है, उनका तुम्हारे इन अस्त्रोंसे उच्छेद नहीं हो सकता। इस समय तुम्हारे लिये यह महान् हासका समय आ पहुँचा है ॥ २२-२३ ॥

महाराज! आदिदेव, पुराणपुरुष श्रीकृष्ण तुम्हारे दर्पका

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकनारदसंवादे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौण्ड्रक और नारदका संवादविषयक बानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

नारदजीका श्रीकृष्णके पास जाना और पौण्ड्रकका द्वारकापर आक्रमण

वैशम्पायन उवाच

ततः क्रुद्धो महाराज पौण्ड्रो मदबलान्वितः।
नारदं विप्रवर्यं तं प्रोवाच नृपसंसदि ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज! तदनन्तर बलके मदसे उन्मत्त रहनेवाला पौण्ड्रक कुपित हो उस राजसभामें विप्रवर नारदजीसे बोला—॥ १ ॥

किमिदं प्राह विप्रर्षे राजाहं च द्विजैः सह।
गच्छ त्वं काममथ वा मुने शापप्रदः सदा ॥ २ ॥
भीतस्त्वत्तो महाबुद्धे गच्छ त्वं काममद्य हि।

'ब्रह्मर्षे! आप यह क्या कहते हैं? मैं राजा हूँ और इन ब्राह्मणोंके साथ हूँ। मुने! आप सदा शाप देनेवाले हैं, अतः अपनी इच्छाके अनुसार यहाँसे चले जाइये। महाबुद्धे! मैं आपसे डरता हूँ, अतः चाहें तो अभी चले जाइये' ॥ २½ ॥

इत्युक्तो नृपवर्येण तूष्णीमेव स नारदः ॥ ३ ॥
जगामाकाशगमनो यत्र तिष्ठति केशवः।

नृपश्रेष्ठ पौण्ड्रकके ऐसा कहनेपर आकाशचारी नारदजी चुपचाप वहाँसे उस स्थानको चले गये, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण थे ॥ ३½ ॥

स गत्वा विष्णुसंकाशं विष्णोः सर्वं शशंस ह ॥ ४ ॥
तच्छ्रुत्वा भगवान् विष्णुर्यथेष्टं वदतामिति।
दर्पं तस्यापनेष्यामि श्वोभूते द्विजसत्तम ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णके पास जाकर उन्होंने उनसे उसकी सारी बातें कह सुनायीं। उन्हें सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'द्विजश्रेष्ठ! पौण्ड्रक जैसा चाहे बकता रहे, कल मैं उसका घमंड दूर कर दूँगा' ॥ ४-५ ॥

इत्युक्त्वा विररामैव तस्मिन् बदरिकाश्रमे।
ततः पौण्ड्रो महाबाहुर्बलैर्बहुभिरीश्वरः ॥ ६ ॥

ऐसा कहकर उस बदरिकाश्रममें भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो रहे। इधर सामर्थ्यशाली महाबाहु पौण्ड्रकने बहुत-सी सेनाओंके साथ द्वारकापुरीको प्रस्थान किया ॥ ६ ॥

अश्वैरनेकसाहस्रैर्गजैर्बहुभिरन्वितः।
शस्त्रकोटिसमायुक्तः स राजा सत्यसंगरः ॥ ७ ॥

अनेक सहस्र अश्वों, बहुसंख्यक हाथियों और करोड़ों अस्त्र-शस्त्रोंसे संयुक्त हुआ वह सत्यप्रतिज्ञ राजा द्वारकाकी ओर प्रस्थित हुआ ॥ ७ ॥

अनेकशतसाहस्रैः पत्तिभिश्च समन्वितः।
एकलव्यप्रभृतिभी राजभिश्च समन्ततः ॥ ८ ॥

उसके साथ कई लाख पैदल सैनिक थे। एकलव्य आदि राजा उसे सब ओरसे घेरकर चलते थे ॥ ८ ॥

अष्टौ रथसहस्राणि नागानामयुतं तथा।
अर्बुदं पत्तिसंघानां तद्बलं समपद्यत ॥ ९ ॥

आठ हजार रथ, दस हजार हाथी और एक अर्बुद (दस करोड़) पैदल सैनिकोंसे वह सारी सेना सम्पन्न थी ॥

एतेन च बलेनाजौ प्रस्फुरन् नृपसत्तमः।
विरराज महाराज उदयस्थो महारविः ॥ १० ॥

महाराज! इस विशाल सेनासे युद्धस्थलमें प्रकाशित होनेवाला नृपश्रेष्ठ पौण्ड्रक उदयगिरिपर प्रकाशमान महासूर्यके समान शोभा पा रहा था ॥ १० ॥

स ययौ मध्यरात्रेण नगरीं द्वारकामनु।
पत्तयो दीपिकाहस्ता रात्रौ तमसि दारुणे ॥ ११ ॥

उसने आधी रातके समय द्वारकापुरीपर धावा किया। रातके उस भयंकर अन्धकारमें पैदल सैनिकोंने हाथोंमें जलती हुई मशालें ले रखी थीं ॥ ११ ॥

ययुर्विविधशस्त्रौघाः सम्पतन्तो महाबलाः।
द्वारकां वीर्यसम्पन्नां महाघोरां नृपोत्तमाः ॥ १२ ॥

वे महाबली श्रेष्ठ नरेश नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न हो पराक्रमशालिनी महाघोर द्वारकापुरीपर आक्रमण करनेके लिये जा रहे थे ॥ १२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रथं महान्तमारुह्य शस्त्रौघैश्च समावृतम्।
पट्टिशासिसमाकीर्णं गदापरिघसंकुलम् ॥ १३ ॥
शक्तितोमरसंकीर्णं ध्वजमालासमाचितम्।
किङ्किणीजालसंयुक्तं शरासिप्राससंयुतम् ॥ १४ ॥
महाघोरं महारौद्रं युगान्तजलदोपमम्।
धनुर्गदासमाकीर्णं महावाद्योपमं महत् ॥ १५ ॥
अग्न्यर्कसदृशाकारं ययौ द्वारवतीमनु।
गृहीतदीपिको राजा वीर्यवान् बलवान् नृप ॥ १६ ॥

नरेश्वर! पराक्रमी एवं बलवान् राजा पौण्ड्रक भी मशालें साथ लेकर एक विशाल रथपर आरूढ़ हो द्वारकापुरीकी ओर प्रस्थित हुआ। वह रथ नाना प्रकारके शस्त्रसमूहोंसे भरा हुआ था। पट्टिश, खड्ग, गदा और परिघोंसे परिपूर्ण था, शक्ति, तोमर, बाण, खड्ग और प्राससे सम्पन्न था, अनेकों ध्वज उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। घुँघुरू लगी हुई झालरोंसे उस रथको सजाया गया था। उसमें धनुष और गदाएँ यथास्थान रखी गयी थीं। वह महाघोर महारौद्र विशाल रथ प्रलयकालीन मेघ एवं महावाद्यके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाला था। उसका स्वरूप अग्नि और सूर्यके तुल्य प्रकाशमान था ॥ १३–१६ ॥

हन्तुमैच्छज्जगन्नाथं वृष्णींश्चैव समन्ततः।
आकर्षन् बलमुख्यांस्तान् राज्ञः सर्वान् महाद्युतिः॥ १७॥
पुरद्वारं समासाद्य बलं संस्थाप्य यत्नतः।
इदं प्रोवाच राजा तु नृपान् सर्वानवस्थितान् ॥ १८ ॥

महातेजस्वी राजा पौण्ड्रक जगदीश्वर श्रीकृष्णको तथा उनके चारों ओर खड़े होनेवाले वृष्णिवंशी वीरोंको मार डालना चाहता था। वह अपनी सेनाके मुख्य-मुख्य सभी राजाओंको अपने साथ खींच ले गया और नगरद्वारपर पहुँचकर वहाँ सेनाको यत्नपूर्वक स्थापित करके सब ओर खड़े हुए समस्त नरेशोंसे इस प्रकार बोला—॥ १७-१८ ॥

ताड्यतामत्र भेरी तु नाम विश्राव्य मामकम्।
युध्यतां युध्यतामत्र देयं वा प्रतिदीयताम् ॥ १९ ॥
आगतः पौण्ड्रको राजा युद्धार्थी वीर्यवत्तरः।
हन्तुकामः समग्रान् वः कृष्णबाहुबलाश्रयान् ॥ २० ॥

"वीरो! रणभेरी बजाओ और मेरा नाम सुनाकर कहो—'यादवो! यहाँ आकर युद्ध करो! युद्ध करो!! अथवा देने योग्य राजकीय कर प्रदान करो। महान् पराक्रमी राजा पौण्ड्रक युद्धके लिये पधारे हैं और श्रीकृष्णके बाहुबलका आश्रय लेनेवाले तुम समस्त यादवोंका वध करना चाहते हैं" ॥ १९-२० ॥

इति ते प्रेषिताः सर्वे समीयुः सूचकान् बहून्।
दीपिकाश्च प्रदीप्यन्ते बह्वयः शतसहस्रशः ॥ २१ ॥
इतश्चेतश्च राजानो युध्यन्ते युद्धलालसाः।
पुरीं ते पुरतस्तत्र क्षत्रियाः शस्त्रिणस्तदा ॥ २२ ॥
सिंहनादं प्रकुर्वन्तः शस्त्रधारासमाकुलाः।
कुतोऽयं वृष्णिप्रवरः कुतो राजा जगत्पतिः ॥ २३ ॥
कुतोऽयं सात्यकिर्वीरः कुतो हार्दिक्य एव च।
कुतो नु बलभद्रश्च सर्वयादवसत्तमः।
इत्येवं कथयन्तो वै राजानः सर्व एव ते ॥ २४ ॥

आदाय शस्त्राणि बहूनि सर्वतः
शरांश्च चापानि बहूनि सर्वे।
युद्धाय सन्नाहनिबद्धशो ययु-
र्हरेः पुरीं द्वारवतीं नृपोत्तमाः ॥ २५ ॥

इस प्रकार भेजे गये वे समस्त नरेश बहुसंख्यक सूचकों (बाहर-भीतरके वृत्तान्तको जाननेवाले यादव भटों) से मिले। उस समय बहुतेरी मशालें लाखोंकी संख्यामें जल रही थीं। युद्धकी लालसा रखनेवाले राजाओंने इधर-उधर युद्ध छेड़ दिया था। वहाँ पुरीके द्वारपर शस्त्रधारी क्षत्रिय सिंहनाद करते हुए शस्त्रोंकी धारा बरसा रहे थे और कहते थे 'कहाँ है वृष्णिवंशका श्रेष्ठ वीर? कहाँ है राजा जगदीश्वर? कहाँ है यह वीर सात्यकि? कहाँ है कृतवर्मा और कहाँ है सबयादवशिरोमणि बलभद्र?' ऐसा कहते हुए वे समस्त श्रेष्ठ राजा सब ओरसे बहुतेरे अस्त्र-शस्त्र, बाण और बहुसंख्यक धनुष ले युद्धके लिये कमर कसकर श्रीहरिकी द्वारकापुरीपर धावा बोलने लगे ॥ २१—२५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकस्य द्वारकागमने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौण्ड्रकका द्वारकापर आक्रमणविषयक तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

यादववीरोंद्वारा पौण्ड्रककी सेनाका और एकलव्यद्वारा यादवसेनाका संहार

वैशम्पायन उवाच

ततश्च यादवाः सर्वे दृष्ट्वा सैनिकसंचयम्।
रात्रौ च व्यसनं प्राप्तं महाशस्त्रसमाकुलम् ॥ १ ॥
महावातसमुद्भूतं कल्पान्ते सागरोपमम्।
संनद्धाः समपद्यन्त शस्त्रिणो युद्धलालसाः ॥ २ ॥
गृहीतदीपिकाः सर्वे यादवाः शस्त्रयोधिनः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर समस्त यादवोंने देखा कि शत्रुसैनिकोंका बड़ा भारी जमाव हो रहा है। वे सब-के-सब महान् अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न हैं और प्रचण्ड वायुसे उमड़े हुए प्रलयकालके समुद्रकी भाँति दिखायी देते हैं। विशेषतः रात्रिके समय यह महान् संकट प्राप्त हुआ है। यह देख और सोचकर वे समस्त यादव युद्धकी लालसासे अस्त्र-शस्त्र लेकर कमर कसकर तैयार हो गये। उन सभी शस्त्रयोधी यादवोंने अपने हाथोंमें मशालें ले रखी थीं ॥ १-२½ ॥

सात्यकिर्बलभद्रश्च हार्दिक्यो निशठस्तथा ॥ ३ ॥
उद्धवोऽथ महाबुद्धिरुग्रसेनो महाबलः।
अन्ये च यादवाः सर्वे कवचप्रग्रहे रताः ॥ ४ ॥

सात्यकि, बलभद्र, हार्दिक्य (कृतवर्मा), निशठ, परम बुद्धिमान् उद्धव, महाबली उग्रसेन तथा अन्य सब यादववीर कवच बाँधने लगे ॥ ३-४ ॥

समस्तयुद्धकुशला रात्रौ सन्नाहयोधिनः।
शस्त्रिणः खड्गिनश्चैव सर्वे शस्त्रसमाकुलाः ॥ ५ ॥

ये सब-के-सब सम्पूर्ण युद्धोंमें कुशल, रातमें भी कमर कसकर जूझनेवाले, शस्त्रधारी और खड्गधारी थे। सभी सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे ॥ ५ ॥

युद्धाय समपद्यन्त बहवो बाहुशालिनः।
रथिनो गजिनश्चैव सादिनः सायुधास्तथा ॥ ६ ॥

वे बहुसंख्यक बाहुशाली वीर युद्धके लिये उद्यत हो गये। उनके साथ रथी, हाथीसवार, घुड़सवार और शस्त्रधारी पैदल योद्धा भी थे ॥ ६ ॥

नित्ययुक्ता महात्मानो धन्विनः पुरुषोत्तमाः।
निर्ययुर्नगरात् तूर्णं दीपिकाभिः समन्ततः ॥ ७ ॥

वे नित्य उद्यत रहनेवाले, महामनस्वी, धनुर्धर, पुरुषप्रवर वीर सब ओरसे मशालोंके साथ तुरंत नगरसे बाहर निकले ॥ ७ ॥

कुतः पौण्ड्रक इत्येवं वदन्तः सर्वसात्वताः।
दीपिकादीपितो देशो निस्तमाः समपद्यत ॥ ८ ॥

वे समस्त यादव यह कहते हुए निकले कि 'कहाँ है पौण्ड्रक ?' मशालोंसे प्रकाशित हुआ वह देश सर्वथा अन्धकाररहित हो गया ॥ ८ ॥

ततो विततिमिरो देशः समन्तात् प्रत्यपद्यत।
युद्धं समभवद् घोरं वृष्णिभिः शत्रुभिः सह ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् वह स्थान सब ओरसे अन्धकारशून्य हो गया। उस समय वहाँ शत्रुओंके साथ वृष्णिवंशियोंका घोर युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ९ ॥

ततो महान् समभवत् संनादो रोमहर्षणः।
हया हयैः समायुक्ताः गजाश्च गजयूथपैः ॥ १० ॥
रथा रथैः समायुक्ताः सादिभिः सादिनस्तथा।

फिर तो महान् कोलाहल होने लगा, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। घोड़े घोड़ोंसे, गजराज गजराजोंसे, रथ रथोंसे और सवार सवारोंसे भिड़ गये ॥ १०½ ॥

खड्गिनः खड्गिभिः सार्धं गदिभिर्गदिनस्तथा ॥ ११ ॥
परस्परव्यतीकारो रण आसीत् सुदारुणः।
महाप्रलयसंक्षोभः शब्दस्तेषां महात्मनाम् ॥ १२ ॥

खड्गधारी वीर खड्गधारियोंसे और गदाधारी गदाधारियोंसे लड़ने लगे। उस रणभूमिमें उभयपक्षके सैनिकोंका परस्पर बड़ा भयंकर घोल-मेल हो गया। उन महामनस्वी वीरोंके गर्जन-तर्जनका शब्द महाप्रलयके समय उमड़े हुए समुद्रोंकी गर्जनाके समान जान पड़ता था ॥ ११-१२ ॥

धावन्तः प्रहरन्त्येतान् घ्नन्त्येतान् सर्वतो नृपान्।
अयमेष महाबाहुः खड्गी पतति वीर्यवान् ॥ १३ ॥
अयमेष शरो घोरो वर्ततेऽतिसुदारुणः।
गदी चायं महावीर्यः सर्वान् नो बाधते नृपः ॥ १४ ॥

दोनों ओरके योद्धा धावा करके विपक्षी सैनिकोंपर प्रहार करते और इन समस्त नरेशोंको घायल करते थे। (वहाँ आपसमें इस प्रकारकी चर्चाएँ होती थीं) 'यह खड्गधारी महाबाहु पराक्रमी वीर धराशायी हो रहा है। यह अत्यन्त दारुण बाण बड़ा ही भयंकर है। यह गदाधारी महापराक्रमी नरेश हम सब लोगोंको पीड़ा दे रहा है ॥ १३-१४ ॥

अयं रथी शरी चापी गदी तूणी तनुत्रवान्।
पट्टिशी सर्वतो याति कुन्तपाणिरयं बली ॥ १५ ॥

'यह धनुष, बाण, गदा, तरकस, कवच, पट्टिश और कुन्त धारण करनेवाला बलवान् रथी वीर रणभूमिमें सब ओर विचर रहा है ॥ १५ ॥

अयमत्र महाशूली संश्रितः सर्वतो दिशम्।
गजोऽयं सविषाणाग्रो वर्तते सर्वतः प्रति ॥ १६ ॥

'यह महाशूलधारी योद्धा यहाँ सारी दिशाओंमें चक्कर लगाता है। यह हाथी अपने दाँतोंका अग्रभाग सामने किये सब ओर दौड़ लगाता है' ॥ १६ ॥

अतिसर्वत्रगः शूरो वेगवान् वातसंनिभः।
शराञ्छरैः समाहन्ति दण्डान् दण्डैर्जगत्पते ॥ १७ ॥

राजन् ! कोई-कोई वेगशाली शूरवीर वायुके समान अत्यन्त तीव्र गतिसे सर्वत्र जा पहुँचता और अपने बाणोंसे शत्रुओंके बाणोंका तथा दण्डोंसे उनके दण्डोंका नाश कर देता था ॥ १७ ॥

कुन्तान् कुन्तैः समाजघ्नुर्गदाभिश्च गदास्तथा।
परिघान् परिघैः सार्धं शूलाञ्छूलैः समन्ततः ॥ १८ ॥

किसी-किसी योद्धा कुन्तों (भालों) से कुन्तोंका, गदाओंसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गदाओंका, परिघोंसे परिघोंका, साथ ही सब ओर शूलोंसे शूलोंका उच्छेद कर डालते थे ॥ १८ ॥

एवं तेषां महाराज कुर्वतां रणमुत्तमम् ।
संग्रामः सुमहानासीच्छब्दश्चापि महानभूत् ॥ १९ ॥

महाराज जनमेजय ! इस प्रकार उत्तम युद्ध करते हुए उन योद्धाओंमें बड़ा भारी संग्राम छिड़ गया और महान् कोलाहल होने लगा ॥ १९ ॥

भूतानि सुबहून्याजौ शब्दवन्ति महान्ति च ।
प्रादुरासन् सहस्राणि शङ्खानां भीमनिःस्वनः ॥ २० ॥

उस युद्धस्थलमें बहुत-से बड़े-बड़े प्राणी भाँति-भाँतिके शब्द करते हुए सहस्रोंकी संख्यामें प्रकट हो गये । वहाँ होनेवाली शङ्खोंकी ध्वनि बड़ी भयंकर प्रतीत होती थी ॥ २० ॥

रात्रौ प्रादुरभूच्छब्दः संग्रामे रोमहर्षणः ।
वर्तमाने महायुद्धे वृष्णीनां चैव तैः सह ॥ २१ ॥
केचिद् ग्रस्ताः समापेतुः पृथिव्यां पृथिवीक्षितः ।

रात्रिमें उस संग्रामके भीतर बड़ा रोमाञ्चकारी शब्द प्रकट होने लगा । शत्रुओंके साथ होनेवाले वृष्णिवंशियोंके उस महायुद्धमें कितने ही भूपाल कालके ग्रास बनकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २१½ ॥

केचिच्च पतिताः श्लिष्टाः विप्रकीर्णशिरोरुहाः ॥ २२ ॥
पेतुरुर्व्यां महावीर्या राजानः शस्त्रपाणयः ।

कितने ही महापराक्रमी राजा हाथमें शस्त्र लिये ही एक दूसरेसे सटे हुए गिरते और सिरके बाल बिखेरे धराशायी हो जाते थे ॥ २२½ ॥

केचित् तु भिन्नवर्माणः समापेतुः सहस्रधा ॥ २३ ॥
परस्परं समाश्रित्य परस्परवधैषिणः ।
न्यस्तशस्त्रा महात्मानः समन्तात् क्षतविग्रहाः ॥ २४ ॥
पेतुर्गतासवः केचिद् यमराष्ट्रविवर्धनाः ।
एवं ते निहता राजन् योधिताः सर्व एव तु ॥ २५ ॥

कितने ही योद्धा कवच विदीर्ण हो जानेके कारण सहस्रों टुकड़े होकर गिर पड़ते थे । एक दूसरेके वधकी इच्छावाले कितने ही महामनस्वी योद्धा परस्पर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करके सब ओरसे शरीरके क्षत-विक्षत हो जानेपर प्राणशून्य होकर गिर पड़ते और यमराजके राष्ट्रकी वृद्धि करते थे । राजन् ! इस प्रकार युद्धमें भाग लेनेवाले वे सब नरेश वहाँ मारे गये ॥ २३–२५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शूर एकलव्यो निषादपः ।
धनुर्गृह्य महाघोरं कालान्तकयमोपमः ॥ २६ ॥
शरैरनेकसाहस्रैरर्दयामास यादवान् ।

इसी बीचमें निषादोंका अधिपति शूरवीर एकलव्य, जो काल, अन्तक और यमके समान भयंकर था, महाघोर धनुष लेकर सहस्रों बाणोंद्वारा यादवोंको पीड़ा देने लगा ॥ २६½ ॥

परःशतैः शराणां तु निशितैर्मर्मभेदिभिः ॥ २७ ॥
वृष्णीनां च बलं सर्वं पोथयामास सर्वतः ।
युद्धयतः शस्त्रपाणींश्च क्षत्रियान् वीर्यवत्तरान् ॥ २८ ॥

उसने सैकड़ों तीखे और मर्मभेदी बाणोंसे वृष्णिवंशियोंकी सारी सेनाको मार गिराया । हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लेकर जूझनेवाले अत्यन्त बलशाली क्षत्रियोंको भी धराशायी कर दिया ॥ २७-२८ ॥

निशठं पञ्चविंशत्या शराणां नतपर्वणाम् ।
सारणं दशभिर्विद्ध्वा हार्दिक्यं पञ्चभिः शरैः ॥ २९ ॥
उग्रसेनं नवत्याशु वसुदेवं च सप्तभिः ।
उद्धवं दशभिश्चैव ह्यक्रूरं पञ्चभिः शरैः ॥ ३० ॥

उसने झुकी हुई गाँठवाले पचीस बाणोंसे निशटको, दस बाणोंसे सारणको, पाँचसे कृतवर्माको, नब्बे बाणोंसे उग्रसेनको तथा सात सायकोंद्वारा वसुदेवको भी उग्रतापूर्वक घायल करके दस बाणोंसे उद्धवको और पाँच सायकोंसे अक्रूरको भी बींध डाला ॥ २९-३० ॥

एवमेकैकशः सर्वे निहता निशितैः शरैः ।
विद्राव्य यादवीं सेनां नाम विश्राव्य वीर्यवान् ॥ ३१ ॥

इस प्रकार एक-एक करके उस पराक्रमी वीरने तीखे बाणोंद्वारा सभी यादव-वीरोंको घायल कर दिया तथा यादवी सेनाको भगाकर वह अपना नाम सुनाते हुए इस प्रकार कहने लगा—॥ ३१ ॥

एकलव्यो यदुवृषान् वीर्यवान् बलवानहम् ।
इदानीं सात्यकिर्वीरः क्व यास्यति महाबलः ॥ ३२ ॥
मदमत्तो हली साक्षात् क्व यातीह गदाधरः ।
इत्याह सिंहनादेन सिंहान् विस्मापयन्निव ॥ ३३ ॥

'मैं बलवान् एवं पराक्रमी वीर एकलव्य हूँ । इस समय महाबली वीर सात्यकि मुझसे बचकर कहाँ जायँगे ? बलके मदसे उन्मत्त रहनेवाले साक्षात् हलधर हाथमें गदा लिये कहाँ जा रहे हैं ?' इस प्रकार वह यदुकुलके श्रेष्ठ वीरोंको ललकार कर कहता और अपने सिंहनादसे सिंहोंको भी विस्मित-सा किये देता था ॥ ३२-३३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकवधे रात्रियुद्धे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौण्ड्रक-वधके प्रसङ्गमें रात्रिकालका युद्धविषयक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

पौण्ड्रकद्वारा पूर्वद्वारके परकोटोंको तोड़नेका प्रयत्न, सात्यकि आदि यादववीरोंका रक्षाके लिये पहुँचना, सात्यकिका वायव्यास्त्रद्वारा पौण्ड्रकसैनिकोंको भगाकर पौण्ड्रकको युद्धके लिये ललकारना और पौण्ड्रककी गर्वोक्ति

वैशम्पायन उवाच

निवृत्तेष्वथ सैन्येषु वृष्णिवीरेषु चैव हि।
भीतेष्वथ महाराज हतेषु युधि सर्वतः॥ १॥
दीपिकासु प्रशान्तासु निःशब्दे सति सर्वतः।
जितमित्येव यन्मत्वा वृष्णीनां बलमुत्तमम्॥ २॥
ततः पौण्ड्रो महावीर्यो बभाषे सैनिकान् स्वकान्।
शीघ्रं गच्छत राजेन्द्राष्टङ्कैः कुन्तैः पुरीमिमाम्॥ ३॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय! जब यादवोंकी सारी सेना और वृष्णिवंशी वीर युद्धमें घायल और भयभीत होकर सब ओरसे लौट गये, सारी मशालें बुझ गयीं और चारों ओर सन्नाटा छा गया, तब यह समझकर कि वृष्णिवंशियोंकी उत्तम सेना पराजित हो गयी, महापराक्रमी पौण्ड्रक अपने सैनिकोंसे बोला—'राजेन्द्रगण! शीघ्र जाओ और टङ्कों तथा कुन्तोंसे इस पुरीको खोद डालो॥ १—३॥

कुठारैः कुन्तलैश्चैव पाषाणैः सर्वतोदिशम्।
कर्षणस्थैः सुपाषाणैः सर्वतो यात भूमिपाः॥ ४॥

'भूमिपालो! कुठार, कुन्तल (हल), पाषाण तथा पत्थर फेंकनेवाले यन्त्रोंपर रखे गये बड़े-बड़े प्रस्तर-खण्ड लेकर इस पुरीके चारों ओर चले जाओ॥ ४॥

भिद्यन्तां प्राकारचयाः प्रासादाश्च समन्ततः।
गृह्यन्तां कन्यकाः सर्वा दास्यश्चैव समन्ततः॥ ५॥

'इस पुरीके परकोटे विदीर्ण कर डालो, महलोंको भी सब ओरसे गिरा दो, समस्त यादव कन्याओं और दासियोंको भी अपने अधिकारमें कर लो॥ ५॥

गृह्यन्तां वसुमुख्यानि धनानि सुबहून्यथ।
ते तथेति महात्मानो राजानः सर्व एव तु॥ ६॥
कुठारैः सर्वतश्चैव चिच्छिदुः पौण्ड्रकाज्ञया।
प्राकारांश्चैव सर्वत्र प्रासादान् नरसंचयान्॥ ७॥

'मुख्य-मुख्य रत्न और बहुत-सी धनराशियोंको लूट लो।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर वे सभी महामनस्वी नरेश पौण्ड्रककी आज्ञासे कुठारोंद्वारा सब ओरसे पुरीके परकोटोंको तथा सब ओर मनुष्योंके समुदायसे भरे हुए महलोंको छिन्न-भिन्न करने लगे॥ ६-७॥

अथ तत्र महाशब्दः प्रादुरासीत् समन्ततः।
टङ्केषु पात्यमानेषु प्राकारेषु महाबलैः॥ ८॥

उन महाबली वीरोंद्वारा जब परकोटोंपर टङ्क गिराये जाने लगे, उस समय चारों ओर बड़ा भारी शब्द होने लगा॥ ८॥

पूर्वद्वारे महाराज भिन्नाः प्राकारसंचयाः।
श्रुत्वा शब्दं महाघोरं सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः॥ ९॥

महाराज! पूर्वद्वारपर जो बहुत-से परकोटे थे, वे प्रायः विदीर्ण कर दिये गये। परकोटोंके गिराये जानेका महाभयंकर शब्द सुनकर सात्यकि क्रोधसे मूर्छित हो गये॥ ९॥

मयि सर्वं समारोप्य केशवो यादवेश्वरः।
गतः कैलासशिखरं द्रष्टुं शंकरमव्ययम्॥ १०॥
अवश्यं हि मया रक्ष्या पुरी द्वारवती त्वियम्।
इति संचिन्त्य मनसा धनुरादाय सत्वरम्॥ ११॥
रथं महान्तमारुह्य दारुकस्य महात्मनः।
पुत्रेण संस्कृतं घोरं यन्ता च स्वयमेव हि॥ १२॥

उन्होंने सोचा—'यदुनाथ केशव इस पुरीकी रक्षाका सारा भार मुझपर ही रखकर अविनाशी भगवान् शंकरका दर्शन करनेके लिये कैलासपर्वतके शिखरपर गये हैं। अतः इस समय इस द्वारकापुरीकी रक्षा मुझे अवश्य करनी चाहिये। मन-ही-मन ऐसा सोचकर वे तुरंत धनुष लेकर एक विशाल एवं भयंकर रथपर आरूढ़ हुए, जिसे महात्मा दारुकके पुत्रने सजाया था और वह स्वयं ही उसका सारथि बना था॥ १०—१२॥

धनुर्महत् तदादाय शरांश्चाशीविषोपमान्।
आमुच्य कवचं घोरं शस्त्रसम्पातदुःसहम्॥ १३॥
अङ्गदी कुण्डली तूणी शरी चापी गदासिमान्।
ययौ युद्धाय शैनेयः संस्मरन् कैशवं वचः॥ १४॥

वे वह विशाल धनुष और विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाण लेकर शस्त्रोंका प्रहार जिसकी टंकारको कठिनतासे सह सके ऐसे भयंकर कवचको धारण करके बाजूबंद, कुण्डल, तरकस, बाण, धनुष, गदा और खड्गसे संयुक्त हो सात्यकि भगवान् श्रीकृष्णके वचनोंको स्मरण करते हुए युद्धके लिये चल दिये॥ १३-१४॥

दीपिकादीपिते देशे ययौ सात्यकिरुत्तमः।
तथैव बलदेवोऽपि रथमारुह्य भास्वरम्॥ १५॥
गदी शरी महावीर्यः प्रायाद् रणचिकीर्षया।
सिंहनादं प्रकुर्वन्तो मुञ्चन्तो भैरवं स्वनम्॥ १६॥

जो स्थान मशालोंसे प्रकाशित था, वहीं उत्तम वीर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सात्यकि गये। उसी प्रकार महापराक्रमी बलदेव भी युद्ध करनेकी इच्छासे गदा और धनुष-बाण ले तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो वहाँ तीव्र गतिसे गये। उनके साथके सभी सैनिक भयंकर सिंहनाद करते हुए आगे बढ़ रहे थे॥ १५-१६॥

उद्धवोऽपि बली साक्षाद् गजमारुह्य सत्वरम्।
मत्तं महारवं घोरं संग्रामे नीतिमत्तरः॥ १७॥
ययौ नीतिं विचिन्वानः परां प्रीतिं महाबलः।
अन्ये च वृष्णयः सर्वे ययुः संग्रामलालसाः॥ १८॥

नीतिमानोंमें श्रेष्ठ, महापराक्रमी बलवान् उद्धव भी उत्तम नीति और प्रीतिका अनुसंधान करते हुए महान् गर्जन करनेवाले भयंकर मतवाले हाथीपर आरूढ़ हो तुरंत ही संग्रामभूमिकी ओर चल दिये। अन्य सब वृष्णिवंशी योद्धा भी संग्रामकी लालसा लेकर वहाँ गये॥ १७-१८॥

रथान् गजान् समारुह्य हार्दिक्यप्रमुखास्तथा।
दीपिकाभिश्च सर्वत्र पुरोवृत्ताभिरीश्वराः॥ १९॥
सिंहनादं प्रकुर्वन्तः स्मरन्तः कैशवं वचः।

कृतवर्मा आदि प्रधान-प्रधान सामर्थ्यशाली योद्धा भगवान् श्रीकृष्णके वचनोंका स्मरण करके रथों और हाथियोंपर आरूढ़ हो सर्वत्र अपने आगे मशालोंको जलवाकर सिंहनाद करते हुए चले॥ १९½॥

पूर्वद्वारं समागम्य वृष्णयो युद्धलालसाः॥ २०॥
ते समेत्य यथायोगं स्थितास्तत्र महाबलाः।

पूर्वद्वारपर आकर युद्धकी इच्छावाले महाबली वृष्णिवंशी योद्धा यथायोग्य एक दूसरेसे मिलकर युद्धकी लालसासे वहाँ डट गये॥ २०½॥

स्थिते सैन्ये महाघोरे दीपिकादीपिते पथि॥ २१॥
शिनिर्वीरः शरी चापी गदी तूणीरवान् विभो।
वायव्यास्त्रं समादाय योजयित्वा महाशरम्॥ २२॥
आकर्णं तूर्णमाकृष्य धनुःप्रवरमुत्तमम्।
मुमोच परसैन्येषु शिनिर्वीरः प्रतापवान्॥ २३॥

राजन्! मशालोंसे प्रकाशित हुए पथपर जब वह महाभयंकर सेना खड़ी हो गयी, तब धनुष, बाण, तरकस और गदासे युक्त हो वीरवर प्रतापी सात्यकिने वायव्यास्त्र लेकर उसके द्वारा अपने महान् बाणको संयुक्त करके उस उत्तम एवं श्रेष्ठ धनुषको पूरे कानतक खींचकर वह अस्त्र शत्रुओंकी सेनापर छोड़ दिया॥ २१—२३॥

वायव्यास्त्रेण ते सर्वे तत्रस्था नरसत्तमाः।
विजिता ह्यस्त्रवीर्येण यत्र तिष्ठति पौण्ड्रकः॥ २४॥

वहाँ खड़े हुए शत्रुपक्षके सभी श्रेष्ठ योद्धा वायव्यास्त्रसे पीड़ित हो उस अस्त्रकी शक्तिसे पराजित हो वहीं जा पहुँचे, जहाँ पौण्ड्रक खड़ा था॥ २४॥

तत्र गत्वा स्थिताः सर्वे निर्धूता वातरंहसा।
यत्र पूर्वं स्थिताः सर्वे विद्रुता राजसत्तमाः॥ २५॥

वायुके वेगसे कम्पित हो वे सभी श्रेष्ठ नरेश भागकर उसी स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ पहले खड़े थे॥ २५॥

तत्र स्थित्वा च शैनेयः शरमादाय सत्वरम्।
निशितं सर्पभोगाभं बभाषे सात्यकिस्तदा॥ २६॥

पूर्वद्वारपर खड़े हुए शिनिवंशी सात्यकि तुरंत ही एक सर्पाकार तीखा बाण ले बोले—॥ २६॥

क्व इदानीं महाबुद्धिः पौण्ड्रको राजसत्तमः।
स्थितोऽस्मि व्यवसायेन शरी चापी महाबलः॥ २७॥
यदि द्रष्टा दुरात्मानं ततो हन्ता नृपाधमम्।
भृत्योऽस्मि केशवस्याहं जिघांसुः पौण्ड्रकं स्थितः॥ २८॥

'राजाओंमें श्रेष्ठ परम बुद्धिमान् पौण्ड्रक इस समय कहाँ है? मैं महाबली सात्यकि धनुष-बाण लेकर उसके साथ युद्धके निश्चयसे यहाँ खड़ा हूँ। यदि उस दुरात्मा नीच नरेशको मैं देख लूँगा तो बिना मारे नहीं रहूँगा। मैं भगवान् श्रीकृष्णका सेवक हूँ और पौण्ड्रकका वध करनेके लिये यहाँ खड़ा हूँ॥ २७-२८॥

छित्त्वा शिरस्तु तस्यास्य सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।
बलिं दास्यामि गृध्रेभ्यः श्वभ्यश्चैव दुरात्मनः॥ २९॥

'मैं समस्त क्षत्रियोंके देखते-देखते उस दुरात्माका सिर काटकर गीधों और कुत्तोंको उसकी बलि दे दूँगा॥ २९॥

को नाम ईदृशं कर्म चौरवच्च समाचरेत्।
सुप्तेषु निशि सर्वत्र यादवेषु महात्मसु॥ ३०॥
चौरोऽयं सर्वथा राजा न हि राजा बलान्वितः।
यदि शक्तो न कुर्याच्च चौर्यमेवं नृपाधमः॥ ३१॥

'रातमें जब सर्वत्र महात्मा यादव सो रहे हों, कौन श्रेष्ठ पुरुष इस तरह चोरकी भाँति जघन्य कर्म कर सकता है! यह बलवान् राजा नहीं, सर्वथा चोर है। यदि इस नीच नरेशमें शक्ति होती तो यह इस तरह चोरी न करता॥ ३०-३१॥

अहोऽस्य बलिनो राज्ञश्चौरकार्यं प्रकुर्वतः।
सर्वथाऽऽगमनं तस्य न हि पश्यामि साम्प्रतम्॥ ३२॥

'अहो! चोरका काम करनेवाले इस बलवान् राजाका मेरे सामने किसी तरह आगमन नहीं हो रहा है। मैं उस चोरको इस समय देख नहीं पा रहा हूँ'॥ ३२॥

इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीरः प्रजहास महाबलः।
विस्फार्य सुदृढं चापं संदधे कार्मुके शरम्॥ ३३॥

ऐसा कहकर महाबली वीर सात्यकि जोर-जोरसे हँसने लगे। उन्होंने अपने सुदृढ़ धनुषको कानतक खींचकर उसपर बाणका संधान किया॥ ३३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आकर्ण्य वचनं वीरः सात्यकेस्तस्य धीमतः।
क नु कृष्णः क गोपालः कुतः सोऽथ प्रवर्तते ॥ ३४ ॥
स्त्रीहन्ता पशुहन्ता च क च स्वामीति सेवितः।
स इदानीं क वर्तेत गृहीत्वा मम नाम तत् ॥ ३५ ॥

बुद्धिमान् वीर सात्यकिका यह वचन सुनकर वीर पौण्ड्रक बोल उठा—'कहाँ है कृष्ण ! कहाँ है वह ग्वाला ? स्त्री और पशुकी हत्या करनेवाला कृष्ण इस समय कहाँ है ? जो यहाँ स्वामी बनकर सेवा लेता है, वह मेरा शत्रु कहाँ है ? मेरा नाम ग्रहण करके वह अब कहाँ छिपा हुआ है ? ॥ ३४-३५ ॥

हन्ता सख्युर्महावीर्यो नरकस्य महात्मनः।
ममैव तात युद्धेऽस्मिन् हते तस्मिन् दुरात्मनि ॥ ३६ ॥

'उसने मेरे ही मित्र महात्मा नरकासुरका वध किया है, इसीलिये वह महापराक्रमी बना फिरता है। तात ! इस युद्धमें उस दुरात्माके मारे जानेपर मेरा क्रोध शान्त होगा ॥

गच्छ त्वं कामतो वीर योद्धुं नक्षमते भवान्।
अथ वा तिष्ठ किंचित् तु ततो द्रष्टासि मे बलम् ॥ ३७ ॥

'वीर ! तुम इच्छानुसार लौट जाओ। तुममें मेरे साथ युद्ध करनेकी क्षमता नहीं है। अथवा थोड़ी देर ठहर जाओ, फिर स्वयं ही मेरा बल देख लोगे ॥ ३७ ॥

शिरस्ते पातयिष्यामि शरैर्घोरैर्दुरासदैः।
हतस्य तव वीरेह भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ ३८ ॥

'वीर ! मैं भयंकर दुर्जय बाणोंद्वारा तुम्हारा सिर काट गिराऊँगा ! इस रणभूमिमें मेरेद्वारा मारे जानेपर यहाँकी भूमि तुम्हारा रक्तपान करेगी ॥ ३८ ॥

श्रोष्यते स तथा गोपो हतः सात्यकिरित्यपि।
यो गर्वस्तस्य गोपस्य सर्वदा वर्तते महान् ॥ ३९ ॥
विनङ्क्ष्यति स तु क्षिप्रं हते त्वयि यदूत्तम।

'वह ग्वाला भी सुन लेगा कि सात्यकि मारा गया। यदुश्रेष्ठ ! उस गोपको जो सदा महान् गर्व बना रहता है, वह तुम्हारे मारे जानेपर शीघ्र ही नष्ट हो जायगा ॥ ३९½ ॥

त्वयि रक्षां समादिश्य गोपः कैलासपर्वतम् ॥ ४० ॥
गत इत्येवमस्माभिः श्रुतं पूर्वं महामते।

'महामते ! हमलोगोंने पहलेसे ही सुन रखा है कि वह गोप तुम्हारे ऊपर नगरकी रक्षाका भार रखकर कैलास-पर्वतपर गया है ॥ ४०½ ॥

शरं गृहाण निशितं यदि शक्तोऽसि सात्यके।
इत्युक्त्वा बाणमादाय ययौ योद्धुं व्यवस्थितः ॥ ४१ ॥

'सात्यके ! यदि तुममें शक्ति हो तो कोई तीखा बाण हाथमें लो।' ऐसा कहकर पौण्ड्रक बाण लेकर आगे बढ़ा और युद्धके लिये डट गया ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकवधे रात्रियुद्धे सात्यकिपौण्ड्रकभाषणे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौण्ड्रक-वधके प्रसंगमें रात्रियुद्धके समय सात्यकि और पौण्ड्रकका संवादविषयक पंचानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

पौण्ड्रक और सात्यकिका युद्ध

वैशम्पायन उवाच

ततः क्रुद्धो महाराज सात्यकिर्वृष्णिपुङ्गवः।
उवाच वचनं राजन् वासुदेवं स्मरन्निव ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय ! तदनन्तर वृष्णिकुलके श्रेष्ठ वीर सात्यकिने कुपित होकर भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए-से इस प्रकार कहा—॥

अवोचदीदृशं वाक्यं वासुदेवं नृपाधमः।
को नाम जगतां नाथमित्थं ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥ २ ॥

'पौण्ड्रक ! तू राजाओंमें अधम है। इसीलिये भगवान् वासुदेवके प्रति तूने ऐसी बात कह डाली है। अपने जीवनकी इच्छा रखनेवाला कौन ऐसा पुरुष होगा, जो जगन्नाथ श्रीकृष्णके प्रति ऐसी बात कह सकेगा ? ॥ २ ॥

मृत्युस्त्वां सर्वथा याति वदन्तं तादृशं वचः।
जिह्वा ते शतधा दीर्यादेवं वदतस्तादृशं वचः ॥ ३ ॥

'वैसी कठोर बात कहते हुए तेरे पीछे-पीछे सर्वथा मृत्यु चल रही है। इस तरहकी अनुचित बात कहते समय तेरी जिह्वाके सौ-सौ टुकड़े हो जाने चाहिये ॥ ३ ॥

एष ते पातयिष्यामि शिरः कायाच्च पौण्ड्रक।
यन्नाम वासुदेवेति तव सम्प्रति वर्तते ॥ ४ ॥
यावत् पतति कायात् ते शिरस्तावत् प्रवर्तते।
स एव श्वो न भगवान् वासुदेवो भविष्यसि ॥ ५ ॥

'पौण्ड्रक ! मैं अभी तेरा सिर धड़से काट गिराऊँगा। इस समय जिनका वासुदेव नाम तेरे साथ जुड़ा हुआ है, वह तभीतक है, जबतक कि धड़से तेरा सिर नीचे नहीं गिर जाता। अब कलसे तू भगवान् वासुदेव नहीं रह जायगा (कालका ग्रास बन जायगा) ॥ ४-५ ॥

एक एव जगन्नाथः कर्ता सर्वस्य सर्वगः।
दुरात्मन् सर्वथा देवो भविष्यति न संशयः ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'दुरात्मन्! जो सबके कर्ता और सर्वव्यापी हैं, वे एकमात्र जगदीश्वर श्रीकृष्ण ही सर्वथा वासुदेव बने रहेंगे—इसमें संशय नहीं है ॥ ६ ॥

एष तेऽहं शिरः कायात् पातयिष्यामि राजक।
यदसौ भगवान् विष्णुर्नागमिष्यति साम्प्रतम्॥ ७ ॥
अस्त्रवीर्यं बलं चैव सर्वं दर्शय साम्प्रतम्।
नातः परतरं राजन् वीर्यं च तव वर्तते ॥ ८ ॥

'तुच्छ नरेश! मैं अभी तेरे मस्तकको शरीरसे काट गिराता हूँ। इस समय वे भगवान् श्रीकृष्ण जबतक लौटकर नहीं आ जाते, तबतक ही तू अपना सारा अस्त्रबल और पराक्रम दिखा ले। राजन्! इससे बढ़कर तुझे अपने बल-पराक्रमको प्रकट करनेका अवसर नहीं मिलेगा ॥ ७-८ ॥

सर्वं दर्शय यत्नेन स्थितोऽस्मि व्यवसायवान्।
शरी चापी गदी खड्गी सर्वथाहमुपस्थितः ॥ ९ ॥

'मैं युद्धका निश्चय लेकर खड़ा हूँ। तू यत्नपूर्वक अपनी सारी शक्ति दिखा। मैं धनुष, बाण, गदा और खड्गसे युक्त हो सर्वदा तेरा सामना करनेके लिये उपस्थित हूँ ॥ ९ ॥

नैतन्नगरमायासीः सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्।
सर्वथा कृतकृत्योऽस्मि दृष्ट्वा त्वां वासुदेवकम् ॥ १० ॥

'मैं सच कहता हूँ, तू आजसे पहले इस नगरमें नहीं आया था। तुझ-जैसे वासुदेवके पुतलेको देखकर मैं कृतकृत्य हो गया हूँ ॥ १० ॥

तवाङ्गं तिलशः कृत्वा श्वभ्यो दास्यामि राजक।
इत्युक्त्वा बाणमादाय वासुदेवं महाबलः ॥ ११ ॥
आकर्णपूर्णमाकृष्य विव्याध निशितं शरम्।

'अधम नरेश! तेरे शरीरके तिलके बराबर टुकड़े-टुकड़े करके कुत्तोंको बाँट दूँगा। वासुदेव नामधारी पौण्ड्रकसे ऐसा कहकर महाबली सात्यकिने एक तीखा बाण लेकर उसे कान-तक खींचकर छोड़ा और पौण्ड्रकको घायल कर दिया ॥

स तेन विद्धो यदुना वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १२ ॥
वमञ्छोणितमत्युष्णमङ्गान्नेत्रान्नृपोत्तम ।

नृपश्रेष्ठ! यदुवंशी वीर सात्यकिके द्वारा बाणसे घायल किये जानेपर प्रतापी वीर वासुदेव अपने अङ्गों और नेत्रोंसे अत्यन्त गरम-गरम रक्त बहाने लगा ॥ १२½ ॥

ततश्चुकोध नृपतिर्वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १३ ॥
नवभिर्दशभिश्चैव शरैः संनतपर्वभिः।
विव्याध सात्यकिं राजा नदंश्च बहुधा किल ॥ १४ ॥

तब प्रतापी राजा वासुदेव भी कुपित हो उठा। उसने बारंबार सिंहनाद करते हुए झुकी हुई गाँठवाले नौ-दस बाणोंसे सात्यकिको घायल कर दिया ॥ १३-१४ ॥

ततो नाराचमादाय निशितं यमसंनिभम्।
धनुराकृष्य भगवान् वासुदेवो नृपोत्तम ॥ १५ ॥
विव्याध सात्यकिं भूयो निशि प्रह्लादयन् स्वकान्।

नृपश्रेष्ठ! तत्पश्चात् तथाकथित भगवान् वासुदेव पौण्ड्रकने धनुष खींचकर उसपर यमराजके समान भयंकर तीखे नाराच-का संधान किया और उस रातमें अपने सैनिकोंका हर्ष बढ़ाते हुए पुनः सात्यकिको घायल कर दिया ॥ १५½ ॥

नाराचेन समाविद्धः सात्यकिः सत्यसङ्गरः ॥ १६ ॥
ललाटे सुदृढं वीरो वृष्णीनामग्रणीस्तदा।
निषसाद रथोपस्थे निश्चेष्ट इव सत्तमः ॥ १७ ॥

ललाटमें उस नाराचकी गहरी चोट खाकर वृष्णिवंशके अग्रगण्य वीर सत्यप्रतिज्ञ सात्यकि, जो सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे, अपने रथके पिछले भागमें निश्चेष्टकी भाँति बैठ गये ॥

ततः स पौण्ड्रको राजा विद्ध्वा दशभिराशुगैः।
सारथिं पञ्चविंशत्या हयांश्च चतुरो नृप ॥ १८ ॥

नरेश्वर! तदनन्तर राजा पौण्ड्रकने दस शीघ्रगामी बाणों-द्वारा सारथिको और पचीस बाणोंसे सात्यकिके चारों घोड़ों-को क्षत-विक्षत कर दिया ॥ १८ ॥

ते हया रुधिराक्ताङ्गाः सारथिश्च समन्ततः।
विह्वलाः समपद्यन्त वासुदेवस्य पश्यतः ॥ १९ ॥

वे घोड़े और सारथि सब ओरसे घायल हो खूनसे लथ-पथ हो गये और वासुदेवके सामने ही अत्यन्त व्याकुल हो उठे ॥ १९ ॥

वासुदेवो रथे चापि सिंहनादं समाददे।
तेन नादेन तत्राभूद् विबुद्धः सात्यकिर्नृप ॥ २० ॥

नरेश्वर! वासुदेव अपने रथपर बैठा हुआ जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा। उसकी उस गर्जनासे सात्यकि मूर्च्छासे जग उठे ॥ २० ॥

विद्धान् हयांस्तथा दृष्ट्वा सारथिं च तथागतम्।
शैनेयोऽथ महावीर्यो रुषितो नृपसत्तम ॥ २१ ॥

नृपश्रेष्ठ! अपने घोड़ों और सारथिको इस प्रकार घायल हुआ देख महापराक्रमी सात्यकि रोषसे भर गये ॥ २१ ॥

अलं द्रक्ष्यामि ते वीर्यमित्युक्त्वा बाणमाददे।
विव्याध तेन बाणेन वक्षस्येनं महाबलः ॥ २२ ॥

वे बोले—'अब देखूँगा कि तुझमें कितना बल है।' ऐसा कहकर महाबली सात्यकिने बाण हाथमें लिया और उसके द्वारा पौण्ड्रककी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २२ ॥

ततश्चचाल तेनाजौ वासुदेवः शरेण ह।
सुस्राव रुधिरं घोरमत्युष्णं वक्षसो नृप ॥ २३ ॥
रथोपस्थे पपाताशु निःश्वसन्नुरगो यथा।
कृत्यं चापि न जानाति केवलं निषसाद ह ॥ २४ ॥

राजन्! उस बाणसे घायल होकर वासुदेव युद्धस्थलमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काँप उठा और उसकी छातीसे अत्यन्त गरम-गरम भयंकर रक्तकी धारा बहने लगी। वह फुफकारते हुए सर्पके समान लंबी साँस खींचता हुआ तुरंत रथकी बैठकमें गिर पड़ा। उसे कर्तव्यका भी ज्ञान न रहा। वह केवल रथपर बैठा रहा॥

सात्यकिस्तु रथं विद्ध्वा दशभिः सायकैस्तथा।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन वासुदेवस्य वृष्णिपः॥ २५॥

इधर वृष्णिवंशके पालक वीर सात्यकिने दस बाणोंसे रथको छिन्न-भिन्न करके एक भल्लसे वासुदेवकी ध्वजा काट डाली॥ २५॥

हयांश्च चतुरो हत्वा बाणैः सारथिमेव च।
युयुधानोऽथ राजेन्द्र पौण्ड्रकस्य च पश्यतः॥ २६॥
सारथेश्च शिरः कायादहरत् स रथात् तदा।
रथग्रन्थिं च चिच्छेद हयाश्च व्यसवोऽभवन्॥ २७॥

राजेन्द्र! इसके बाद सात्यकिने पौण्ड्रकके देखते-देखते बाणोंद्वारा उसके चारों घोड़ों और सारथिको घायल करके सारथिके सिरको धड़से अलग करके रथसे नीचे गिरा दिया। रथकी ग्रन्थियोंको काट डाला, पौण्ड्रकके घोड़े भी प्राणहीन हो गये॥ २६-२७॥

चक्रं च तिलशः कृत्वा बाणैर्दशभिरञ्जसा।
जहास विपुलं राजन् वासुदेवं महाबलः॥ २८॥

तदनन्तर दस बाणोंसे अनायास ही रथके पहियोंको तिल-तिल करके काट डाला। राजन्! यह सब करके महाबली सात्यकि वासुदेवपर जोर-जोरसे हँसने लगे॥ २८॥

ततः परं महत्प्रायं सात्यकिर्वृष्णिनन्दनः।
शब्दं कृत्वा बली साक्षात् सर्वक्षत्रस्य पश्यतः॥ २९॥
शरैः सप्ततिसंख्याकैर्दयामास सत्वरम्।

इसके बाद वृष्णिनन्दन बलवान् वीर सात्यकिने जोर-जोरसे सिंहनाद करके सम्पूर्ण क्षत्रियोंके देखते-देखते सत्तर बाण मारकर मिथ्या वासुदेवको तुरंत पीड़ित कर दिया॥

ते शराः शलभाकारा निपेतुः सर्वशस्तदा॥ ३०॥
शिरस्तः पार्श्वतश्चैव पृष्ठतः पुरतस्तथा।
केवलं धैर्यनिन्नयस्तृषार्तः शरवान् यथा॥ ३१॥
यथा मनस्वी रिक्तश्च तथा तिष्ठति पौण्ड्रकः।

वे बाण टिड्डियोंके समान सब ओरसे उसपर पड़ने लगे। सिरपर, अगल-बगलमें, पीठपर और सामनेसे उन बाणोंकी चोट खाता हुआ वह केवल धैर्यके सहारे प्याससे पीड़ित पुरुषकी भाँति बाणोंसे बिंधा हुआ खड़ा रहा। जैसे उदार पुरुष निर्धन हो जाय और किसीको कुछ दे न सके, इसी प्रकार पौण्ड्रक प्रतीकारशून्य होकर वहाँ चुपचाप खड़ा रहा॥ ३०–३१½॥

ततश्चुक्रोध बलवान् वासुदेवः प्रतापवान्॥ ३२॥
अर्धचन्द्रं समादाय विव्याध युधि सात्यकिम्।

इसके बाद बलवान् एवं प्रतापी वीर वासुदेवने कुपित हो अर्धचन्द्र लेकर युद्धस्थलमें सात्यकिको घायल कर दिया॥

विद्ध्वा सप्तभिरायान्तं क्रोधेन प्रस्फुरन्निव॥ ३३॥
विद्धोऽथ सात्यकिस्तेन शरैः पञ्चभिराशुगैः।
चापं चिच्छेद पौण्ड्रस्य सिंहनादं व्यनीनदत्॥ ३४॥

उस समय वासुदेव क्रोधसे उद्दीप्त-सा हो रहा था। उसने अपने सामने आते हुए सात्यकिको सात बाणोंसे बींध डाला। उसके द्वारा घायल किये गये सात्यकिने पाँच शीघ्रगामी बाणोंद्वारा पौण्ड्रकके धनुषको काट डाला और बड़े जोरसे सिंहनाद किया॥ ३३-३४॥

वासुदेवो गदां गृह्य भ्रामयित्वा पदात्पदम्।
त्वरितं पातयामास सात्यकेर्वक्षसि प्रभो॥ ३५॥

प्रभो! तब वासुदेवने गदा हाथमें लेकर उसे पग-पगपर घुमाते हुए तुरंत सात्यकिकी छातीपर दे मारा॥ ३५॥

सव्येन तां समाकृष्य करेण यदुनन्दनः।
शरं प्रगृह्य विव्याध सात्यकिर्युधि पौण्ड्रकम्॥ ३६॥

यदुनन्दन सात्यकिने उस गदाको बायें हाथसे खींचकर एक बाण हाथमें ले उसके द्वारा पौण्ड्रकको युद्धमें घायल कर दिया॥ ३६॥

तमन्तरे गृहीत्वाशु वासुदेवः प्रतापवान्।
शक्तिभिर्दशभिश्चैव सात्यकिं निजघान ह॥ ३७॥

इसी बीचमें प्रतापी वासुदेवने सात्यकिको लक्ष्य करके शीघ्र ही दस शक्तियोंद्वारा प्रहार किया॥ ३७॥

ताभिर्विद्धो रणे वीरः सात्यकिः सत्यसंगरः।
अपास्य धनुरन्यत् तद् धनुरादाय सत्वरम्।
आजघान तदा वीरो वृष्णीनामग्रणीर्नृप॥ ३८॥

राजन्! उन शक्तियोंसे बिंधे हुए सत्यप्रतिज्ञ वीर सात्यकिने उस धनुषको फेंककर तुरंत दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और उसके द्वारा वृष्णिवंशके उस अग्रणी वीरने उस समय शत्रुओंको घायल करना आरम्भ किया॥ ३८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकसात्यकियुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः॥ ९६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णकी कैलासयात्राके प्रसङ्गमें पौण्ड्रक और सात्यकिका युद्धविषयक छियानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सप्तनवतितमोऽध्यायः

सात्यकि और पौण्ड्रकका युद्ध

वैशम्पायन उवाच

ततः क्रुद्धो गदापाणिः सात्यकिर्वृष्णिनन्दनः।
वासुदेवं जघानाशु गदया तीक्ष्णया नृप॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर वृष्णि-कुलको आनन्दित करनेवाले सात्यकिने कुपित हो गदा हाथमें ले ली और उस दुःसह गदासे शीघ्र ही वासुदेवपर आघात किया॥ १॥

सात्यकिं वासुदेवस्तु गदयाभ्यहनद् बली।
तावुद्यतगदौ वीरौ शुशुभाते सुदारुणौ॥ २॥
इभौ वने यथा सिंहौ परस्परवधैषिणौ।

इसी तरह बलवान् वीर वासुदेवने भी सात्यकिपर गदासे प्रहार किया। गदा उठाये वे दोनों अत्यन्त भयंकर वीर वनमें एक दूसरेके वधकी इच्छावाले दो बलाभिमानी सिंहोंके समान शोभा पा रहे थे॥ २½॥

ततः स सात्यकिः क्रुद्धः सव्यं मण्डलमागमत्॥ ३॥
दक्षिणं वासुदेवस्तु तं जघान स्तनान्तरे।
युयुधानोऽथ वीरस्तु बाह्वोर्मध्यमताडयत्॥ ४॥

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए सात्यकिने बायें पैंतरेका आश्रय लिया और वासुदेवने दाहिने पैंतरेका। उसने सात्यकिकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी। साथ ही वीर सात्यकिने भी उसकी दोनों भुजाओंके मध्यभाग (वक्षःस्थल) में गदासे आघात किया॥ ३-४॥

दृढं स ताडितो वीरो जानुभ्यामपतद् भुवि।
तत उत्थाय वीरस्तु ललाटेऽभ्यहनद् गदाम्॥ ५॥
विषण्णः किंचिदास्थाय तत उत्थाय सत्वरम्।
गदयाभ्यहनद् वीरः सात्यकिः पौण्ड्रसत्तमम्॥ ६॥

उस गदाकी गहरी चोट खाकर वीर वासुदेव घुटनोंके बल गिर पड़ा। फिर उठकर उस वीरने सात्यकिके ललाटपर गदा मारी। सात्यकि भी कुछ पीड़ित हो बैठे रह गये, फिर तुरंत उठकर वीर सात्यकिने पौण्ड्रदेशके उस श्रेष्ठ योद्धा वासुदेवपर गदासे चोट की॥ ५-६॥

वासुदेवो बली वीरः साक्षान्मृत्युरिवापरः।
जघान गदया वृष्णिं निर्दहन्निव चक्षुषा॥ ७॥

वीर वासुदेव बड़ा बलवान् था। वह साक्षात् दूसरे मृत्युके समान प्रतीत होता था। वह सात्यकिकी ओर इस तरह देख रहा था, मानो अपने नेत्रोंसे उन्हें दग्ध कर डालेगा। उसने गदासे सात्यकिपर चोट की॥ ७॥

स तया ताडितो वृष्णिर्गदया बाहुमुक्तया।
आलम्ब्य भूमिं सहसा मृत्योरङ्कगतो यथा॥ ८॥

उसकी भुजाओंद्वारा छोड़ी गयी उस गदासे आहत हो सात्यकिने सहसा धरतीका सहारा ले लिया, मानो वह मृत्युके अङ्कमें पहुँच गये हों॥ ८॥

संज्ञां पुनः समालम्ब्य पाणिभ्यां दृढमेव च।
गदां तस्य महाराज गृहीत्वा प्रग्रहेण ह॥ ९॥
द्विधा कृत्वा महागुर्वीं गदां कालायसीं शुभाम्।
उत्सृज्य सहसा वीरः सिंहनादं व्यनीनदत्॥ १०॥

महाराज! फिर होशमें आकर उन्होंने शत्रुकी चलायी हुई गदाको उछलकर दोनों हाथोंसे दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया और काले लोहेकी बनी हुई उस सुन्दर एवं बड़ी भारी गदाके सहसा दो टुकड़े करके उसे दूर फेंक दिया। इसके बाद वीर सात्यकिने बड़े जोरसे सिंहनाद किया॥ ९-१०॥

तत उत्सृज्य राजा तु वासुदेवो महाबलः।
सव्येन सात्यकिं गृह्य दक्षिणेन करेण ह॥ ११॥
मुष्टिं कृत्वा महाघोरं वासुदेवः प्रतापवान्।
ताडयामास मध्ये तु स्तनयोः सात्यकेर्नृप॥ १२॥

नरेश्वर! तब महाबली एवं प्रतापी राजा वासुदेवने उस गदाको त्यागकर सात्यकिको बायें हाथसे पकड़ लिया और दाहिने हाथसे बड़ी भयंकर मुट्ठी बाँधकर सात्यकिके दोनों स्तनोंके बीचमें प्रहार किया॥ ११-१२॥

शैनेयो वृष्णिवीरस्तु गदामुत्सृज्य सत्वरम्।
तलेनाभ्यहनद् वीरो वासुदेवं रणाजिरे॥ १३॥

तब वृष्णिवीर सात्यकिने भी तुरंत अपनी गदा नीचे डाल दी और समराङ्गणमें वासुदेवको एक तमाचा जड़ दिया॥ १३॥

तलेन वासुदेवोऽपि सात्यकिं सत्यसंगरम्।
तयोरेवं महाघोरं तलयुद्धं प्रवर्तत॥ १४॥

फिर वासुदेवने भी सत्यप्रतिज्ञ सात्यकिको थप्पड़से मारा। इस प्रकार उन दोनोंमें बड़ा भयंकर थप्पड़ोंका युद्ध आरम्भ हो गया॥ १४॥

जानुभ्यां मुष्टिभिश्चैव बाहुभ्यां शिरसा तदा।
उरसोरः समाहत्य जानुभ्यां जानुनी तथा॥ १५॥
कराभ्यां करमाहत्य तौ युद्धं सम्प्रचक्रतुः।
तालयोस्तत्र राजेन्द्र वृक्षयोः संनिकर्षयोः॥ १६॥
वने यथा निरुत्पन्नस्तथैवाभून्महास्वनः।

राजेन्द्र! घुटनोंसे, मुक्कोंसे, भुजाओंसे और मस्तकसे भी उस समय उनमें युद्ध होने लगा। वे छातीसे छातीपर,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घुटनोंसे घुटनोंपर और हाथोंसे हाथोंपर आघात करते हुए युद्ध करते थे। जैसे वनमें दो निकटवर्ती तालवृक्षोंके टकरानेका शब्द होता है, उसी प्रकार उन दोनोंके युद्धमें बड़ी भारी आवाज हो रही थी ॥ १५–१६½ ॥

तावाजौ प्रथितौ वीरावुभौ पौण्ड्रकसात्यकी ॥ १७ ॥
निशि स्तिमितमूकायां शस्त्रं त्यक्त्वा महावलौ ।
युयुधाते महारङ्गे मल्लौ द्वाविव विश्रुतौ ॥ १८ ॥

उस नीरव एवं निस्तब्ध निशामें समराङ्गणमें वे दोनों प्रख्यात वीर महाबली पौण्ड्रक और सात्यकि अपना-अपना शस्त्र त्यागकर विशाल अखाड़ेमें उतरे हुए दो सुप्रसिद्ध पहलवानोंकी भाँति युद्ध कर रहे थे ॥ १७-१८ ॥

उभे सेने महाराज्ञोः संशयं जग्मतुस्तदा ।
किं नु स्यात् सात्यकिर्वीरो हतस्तेन भविष्यति ॥ १९ ॥
आहोस्विद् वासुदेवस्तु हतस्तेन महात्मना ।

महाराज उग्रसेन और पौण्ड्रक दोनोंकी सेनाएँ उस समय संशयमें पड़ गयी थीं कि 'क्या वीर सात्यकि वासुदेवके द्वारा मारे जायँगे अथवा वासुदेव ही उस महात्माके द्वारा मार डाला जायगा ॥ १९½ ॥

अद्य वै तौ महावीरौ परस्परवधैषिणौ ॥ २० ॥
युध्यमानौ महावीरौ तदा स्वर्गं गमिष्यतः ।
अन्यथा नोपरम्येतां युद्धाद् वीरौ सुनिश्चितौ ॥ २१ ॥

'आज वे दोनों महावीर एक दूसरेका वध करनेकी इच्छासे युद्ध करते हुए निश्चय ही स्वर्गलोकको चले जायँगे, अन्यथा ये दोनों दृढ़ निश्चयवाले वीर युद्धसे विरत नहीं होंगे ॥ २०-२१ ॥

अहो वीर्यमहो धैर्यमेतयोर्वलशालिनोः ।
एतौ महावलौ लोके एतौ प्रकृतिसत्तमौ ॥ २२ ॥
नैवं युद्धं महाघोरमासीद् देवासुरेष्वपि ।
न श्रुतो न च वा दृष्टः संग्रामोऽयं कदाचन ॥ २३ ॥

'अहो ! इन बलशाली वीरोंका धैर्य और पराक्रम अद्भुत है। ये ही दोनों इस जगत्में महाबली हैं और ये ही स्वभावतः श्रेष्ठ पुरुष हैं। देवताओं और असुरोंमें भी कभी ऐसा महाभयंकर युद्ध नहीं हुआ था। ऐसा संग्राम न तो कभी सुना गया था और न कभी देखनेमें आया था' २२-२३

एते वै सैनिका ब्रूयुः सेनयोरुभयोरपि ।
रात्रौ निशीथे मेघौघे दृष्ट्वा युद्धं सुदारुणम् ॥ २४ ॥

इस प्रकार दोनों सेनाओंके सैनिक मेघोंकी घटासे घिरे हुए रात्रिके निशीथकालमें उस भयंकर युद्धको देखकर उपर्युक्त बातें कहते थे ॥ २४ ॥

अथ तौ बाहुभिर्वीरौ संनिपेततुरञ्जसा ।
दशभिर्मुष्टिभिर्जघ्ने सात्यकिः पौण्ड्रकं तदा ॥ २५ ॥

तदनन्तर वे दोनों वीर अनायास ही परस्पर बाहुयुद्ध करने लगे। उस समय सात्यकिने पौण्ड्रकको दस मुक्के मारे ॥ २५ ॥

पञ्चभिः सात्यकिं पौण्ड्रः समाजघ्ने महाबलः ।
तयोश्चटचटाशब्दो ब्रह्माण्डक्षोभणो महान् ।
प्रादुरासीत् तु सर्वत्र सर्वान् विस्मापयन्निव ॥ २६ ॥

महाबली पौण्ड्रकने सात्यकिको पाँच मुक्के मारे। उन दोनोंके मुक्कोंका महान् चटचट शब्द समूचे ब्रह्माण्डको क्षुब्ध किये देता था। वह शब्द सबको विस्मयमें डालता हुआ-सा सर्वत्र प्रकट होता (सुनायी पड़ता) था ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकसात्यकियुद्धे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौण्ड्रक और सात्यकिका युद्धविषयक सत्तानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

बलभद्र और एकलव्यका युद्ध तथा बलभद्रद्वारा निषादोंका संहार

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्ध एकलव्यो निषादपः ।
बलभद्रमभि क्षिप्रं धनुरादाय सत्वरम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इसी बीचमें निषादराज एकलव्य कुपित हो तुरंत धनुष लेकर बलभद्रजीके सामने गया ॥ १ ॥

नाराचैर्दशभिर्विद्ध्वा बाणैश्च दशभिः परैः ।
चिच्छेद धनुरग्र्यं तत् सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ २ ॥

उसने दस नाराचोंसे उन्हें घायल करके दूसरे दस बाणोंसे समस्त क्षत्रियोंके देखते-देखते उनके धनुषको बीचसे काट डाला ॥ २ ॥

सूतं दशभिराहत्य रथं त्रिंशद्भिरेव च ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन निषादस्य जगत्पतिः ॥ ३ ॥

तब जगदीश्वर बलरामजीने दस बाणोंसे निषादके सारथिको आहत करके तीस बाणोंसे उसके रथको जगह-जगहसे तोड़ डाला ॥ ३ ॥

ततः परं महच्चापं निषादो वीर्यसम्मतः ।
दृढमौर्व्या समायुक्तं दशतालप्रमाणतः ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कामपालं शरेणाशु जघान जनमध्यतः।

तत्पश्चात् पराक्रमी निषादने एक विशाल धनुष, जिसकी लंबाई लगभग साढ़े चार हाथकी थी तथा जो सुदृढ़ प्रत्यञ्चासे युक्त था, लेकर तुरंत ही एक बाणद्वारा उस जन-समुदायके मध्यभागमें बलभद्रजीको घायल कर दिया ॥ ४½ ॥

बलदेवो महावीर्यः सर्पः शेष इव श्वसन् ॥ ५ ॥
दशभिस्तद्धनुर्दिव्यं शरैः सर्पसमैर्बलः।
चिच्छेद मुष्टिदेशे तु माधवो माधवाग्रजः ॥ ६ ॥

तब श्रीकृष्णके बड़े भाई मधुवंशी महापराक्रमी बलदेवजीने फुफकारते हुए शेषनागके समान लंबी साँस खींचकर दस सर्पाकार बाणोंद्वारा एकलव्यके दिव्य धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट डाला ॥ ५-६ ॥

एकलव्यो निषादेशः खड्गमादाय सत्वरः।
प्राहिणोद् बलमादाय निशितं घोरविग्रहम् ॥ ७ ॥

यह देख निषादराज एकलव्यने बड़ी उतावलीके साथ एक तेज धारवाली भयंकर तलवार लेकर उसे बलदेवजीपर दे मारा ॥ ७ ॥

तमन्तरे पटुर्वीरो वृष्णिवीरः प्रतापवान्।
तिलशः पञ्चभिर्बाणैश्चकार यदुनन्दनः ॥ ८ ॥

युद्ध करनेमें कुशल प्रतापी वृष्णिवीर शौर्यसम्पन्न यदुनन्दन बलरामने पाँच बाणोंद्वारा बीचमें ही उस तलवारको तिल-तिल करके काट डाला ॥ ८ ॥

ततोऽपरं महत् खड्गं सर्वकालायसं शुभम्।
प्राहिणोत् सारथेः कायमालोक्याथ निषादजः ॥ ९ ॥

तदनन्तर निषादपुत्रने बलभद्रजीके सारथिके शरीरको लक्ष्य करके एक दूसरा विशाल खड्ग चलाया, जो सब-का-सब काले लोहेका बना हुआ और सुन्दर था ॥ ९ ॥

तं चापि दशभिर्वीरो माधवो यदुनन्दनः।
बाह्वोरन्तरयोश्चैव निर्बिभेद महारणे ॥ १० ॥

परंतु यदुनन्दन वीर माधवने उस महासमरमें उसकी दोनों भुजाओंके बीचमें ही दस बाण मारकर उस खड्गके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ १० ॥

ततः शक्तिं समादाय घण्टामालाकुलां नृपः।
निषादो बलदेवाय प्रेषयित्वा महाबलः ॥ ११ ॥
सिंहनादं महाघोरमकरोत् स निषादपः।

तब महाबली निषादराजने घण्टा-मालाओंसे सुशोभित एक शक्ति हाथमें लेकर उसे बलदेवजीपर चलाया और बड़ा भयंकर सिंहनाद किया ॥ ११½ ॥

सा शक्तिः सर्वकल्याणी बलदेवमुपागमत् ॥ १२ ॥
उत्पतन्तीं महाघोरां बलभद्रः प्रतापवान्।
आदायाथ निषादेशं सर्वान् निस्सादयन्निव ॥ १३ ॥
तयैव तं जघानाशु वक्षोदेशे च माधवः।

वह सर्वकल्याणी शक्ति जब बलदेवजीके पास आयी, तब प्रतापी बलभद्रजीने ऊपरको उठती हुई उस महाघोर शक्तिको हाथसे पकड़ लिया। फिर सबको विस्मयमें डालते हुए-से माधवने उसी शक्तिसे निषादराजकी छातीमें तत्काल गहरी चोट पहुँचायी ॥ १२-१३½ ॥

स तया ताडितो वीरः स्वशक्त्याथ निषादपः ॥ १४ ॥
विह्वलः सर्वगात्रेषु निपपात महीतले।
प्राणसंशयमापन्नो निषादो रामताडितः ॥ १५ ॥

अपनी ही शक्तिसे ताड़ित होकर वीर निषादराजका सारा शरीर व्याकुल हो उठा और वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। बलरामद्वारा आहत हुआ निषाद एकलव्य प्राणसंशयकी स्थितिमें पहुँच गया था ॥ १४-१५ ॥

निषादास्तस्य राजेन्द्र शतशोऽथ सहस्रशः।
अष्टाशीतिसहस्राणि निषादास्तस्य योधिनः ॥ १६ ॥

राजेन्द्र ! उस निषादके सैकड़ों और हजारों निषाद सहायक थे। उसकी सेनामें अट्ठासी हजार निषाद योद्धा मौजूद थे ॥ १६ ॥

गदिनः खड्गिनश्चैव महेष्वासा महाबलाः।
शरैरनेकसाहस्रैः शक्तिभिश्च परश्वधैः ॥ १७ ॥
गदाभिः पट्टिशैः शूलैः परिघैः प्रासतोमरैः।
कुन्तैरथ कुठारैश्च यादवानां महौजसाम् ॥ १८ ॥
शलभा इव राजेन्द्र दीप्यमानं हुताशनम्।
ते शरैः पातयांचक्रू रामं राममिवापरम् ॥ १९ ॥

राजाधिराज ! वे जैसे पतिंगे जलती हुई आगपर टूट पड़ते हैं, उसी प्रकार वे महाबली महाधनुर्धर निषाद गदा और खड्गसे युक्त हो अनेक सहस्र बाणों, शक्तियों, फरसों, गदाओं, पट्टिशों, शूलों, परिघों, प्रासों, तोमरों, कुन्तों और कुठारोंद्वारा महाबली यादवोंके बीचमें खड़े हुए दूसरे श्रीरामचन्द्रजीके समान पराक्रमी बलरामपर प्रहार करने लगे। उन्होंने उनपर बहुत-से बाण मारे ॥ १७—१९ ॥

केचित् कुठारैराजघ्नुः केचित् कुन्तैः परश्वधैः।
गदाभिः केचिदाघ्नन्ति शक्तिभिश्च तथा परे ॥ २० ॥
निजघ्नुः सहसा रामं स्फुरन्तं पावकं यथा।

प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित होनेवाले बलरामपर कुछ निषादोंने कुठारोंसे प्रहार किया, कुछ निषादोंने कुन्तों और फरसोंद्वारा आघात किया। कोई गदासे चोट करते थे तो कोई शक्तियोंसे। इस प्रकार उन्होंने सहसा प्रहार आरम्भ कर दिया ॥ २०½ ॥

ततः क्रुद्धो हली साक्षाद्धलमुद्यम्य सत्वरम् ॥ २१ ॥
सर्वानाकर्षयामास मुसलेन हि पीडयन्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब क्रोधमें भरे हुए हलधर साक्षात् हल उठाकर उसके द्वारा तुरंत ही सबको खींचने और मुसलसे मारने लगे ॥ २१½ ॥

ते हन्यमाना राजेन्द्र निषादाः पर्वताश्रयाः ॥ २२ ॥
निपेतुर्धरणीपृष्ठे शतशोऽथ सहस्रशः ।

राजेन्द्र ! उनके मुसलकी मार खाकर सैकड़ों और हजारों पर्वतवासी निषाद पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ २२½ ॥

क्षणेन तन्महाराज हत्वा सर्वान् महाबलान् ॥ २३ ॥
सिंहवद् व्यनदंस्तत्र तस्थौ रामो महाबलः ।

महाराज ! क्षणभरमें उन समस्त महाबली निषादोंका वध करके महापराक्रमी बलराम सिंहके समान गर्जना करते हुए वहाँ खड़े हो गये ॥ २३½ ॥

ततो रात्रौ महाघोराः पिशाचाः पिशिताशनाः ॥ २४ ॥
आकृष्य मांसयूथानि भक्षयन्तः समासते ।
पिबन्तः शोणितं कोष्ठात् संछिद्य च शवं बहु ॥ २५ ॥

तदनन्तर रातमें बड़े भयंकर मांसभक्षी पिशाच ढेर-के-ढेर मांस खींचकर खाने लगे । वे मरे हुए वीरोंके कोष्ठसे रक्त पीते और बहुत-से मुर्दोंको काट-काटकर खाते थे २४-२५

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि एकलव्यसैन्यवधे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें एकलव्यकी सेनाका वधविषयक अट्ठानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९८ ॥

नवनवतितमोऽध्यायः

बलभद्र और एकलव्यका तथा पौण्ड्रक और सात्यकिका युद्ध

वैशम्पायन उवाच

क्रव्यादाः सर्व एवाशु भक्षयन्तस्तदा शवम् ।
हसन्तो विविधं घोरं नादयन्तो वसुंधराम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! समस्त मांस-भक्षी जीव उस समय शीघ्रतापूर्वक मृतकोंका मांस खाते और नाना प्रकारका घोर अट्टहास करते हुए पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते थे ॥ १ ॥

राक्षसाश्च पिशाचाश्च पिबन्तः शोणितं बहु ।
आशिखं भुञ्जते राजञ्छवस्य पिशिताशनाः ॥ २ ॥

राजन् ! कच्चा मांस खानेवाले राक्षस और पिशाच बहुत-सा रक्त पीते और नखसे शिखतक मृतकोंका मांस खाकर तृप्त होते थे ॥ २ ॥

नृत्यन्ति स्म तदा राजन् नगर्यां रणतोषिताः ।
काका बलाका गृध्राश्च श्येना गोमायवस्तथा ॥ ३ ॥
भक्षयन्तः प्रवर्तन्ते राक्षसाश्चैव दारुणाः ।

नरेश्वर ! उस नगरीमें उस युद्धसे संतुष्ट हुए कौए, बक, गृध्र, श्येन और गीदड़ उस समय नृत्य करते थे । भयानक राक्षस भी मृतकोंके मांस-भक्षणमें लगे थे ॥ ३½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो निषादो लब्धसंज्ञकः ॥ ४ ॥
हतान् सर्वान् समालोक्य निषादान् नगचारिणः ।
गदामादाय कुपितो राममेव जगाम ह ॥ ५ ॥

इसी बीचमें वीर निषाद एकलव्यको चेतना प्राप्त हुई, समस्त पर्वतवासी निषादोंको मारा गया देख, कुपित हो गदा लेकर वह बलरामजीकी ओर चला ॥ ४-५ ॥

जघान गदया राजञ्जत्रुदेशे निषादपः ।
ततो रामो गदी राजन् निषादं बाहुशालिनम् ॥ ६ ॥
आजघ्ने गदया क्रूरं मदमत्तो हलायुधः ।

राजन् ! उस निषादराजने बलरामजीकी हँसलीपर गदासे आघात किया । तब गदाधारी मदमत्त हलधर बलरामने उस बाहुशाली क्रूरकर्मा निषादको गदासे गहरी चोट पहुँचायी ॥

तयोश्च तुमुलं युद्धं गदाभ्यां समवर्तत ॥ ७ ॥
आकाशे शब्द आसीत् तु तयोर्युद्धे महाभुज ।
समुद्राणां यथा घोषः सर्वेषां संनिगच्छताम् ॥ ८ ॥

फिर तो उन दोनोंमें गदाओंद्वारा तुमुल युद्ध होने लगा । महाबाहो ! उन दोनोंके युद्धमें परस्पर मिलते हुए समस्त समुद्रोंके गम्भीर घोषकी भाँति आकाशमें बड़ा भारी शब्द होने लगा ॥ ७-८ ॥

कल्पक्षये महाराज शब्दः सुतुमुलोऽभवत् ।
क्षोभितो नागराजश्च नागाः क्षोभं समाययुः ॥ ९ ॥

महाराज ! प्रलयकालमें समुद्रोंका जो तुमुल घोष होता है, वैसा ही शब्द होने लगा । उससे नागराज शेष भी क्षुब्ध हो उठे और दिग्गजोंको भी महान् क्षोभ प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥

पृथिवी चान्तरिक्षं च सर्वं शब्दमयं बभौ ।
ततः स पौण्ड्रको राजा सात्यकिं वृष्णिनन्दनम् ॥ १० ॥
गदयैव जघानाशु सत्वरं रणकोविदः ।
युयुधानो बली राजन् वासुदेवं जघान ह ॥ ११ ॥

पृथ्वी और आकाश—ये सब-के-सब शब्दमय ही प्रतीत होने लगे । इसी बीचमें रणकुशल राजा पौण्ड्रकने तुरंत ही वृष्णिनन्दन सात्यकिपर गदासे आघात किया । राजन् ! तब-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बलवान् सात्यकिने भी मिथ्या वासुदेवपर गदाका प्रहार किया ॥ १०-११ ॥

तयोश्च तुमुलः शब्दः प्रादुरासीन्महारणे।
चतुर्णां युध्यतां राजन् परस्परवधैषिणाम् ॥ १२ ॥
ब्रह्माण्डक्षोभणो राजञ्छब्द आसीत् सुदारुणः।
ततो रजः प्रादुरभूत् तस्मिन् संग्राममूर्धनि ॥ १३ ॥
तारका निष्प्रभा राजंस्तमस्येवं क्षयं गते।
उषसि प्रतिबुद्धायां ततो निःशेषतां ययौ ॥ १४ ॥
उदितो भगवान् सूर्यश्चन्द्रश्च क्षयमाययौ।
तेषां युद्धं प्रादुरभूच्चतुर्णां बाहुशालिनाम्।
देवासुरसमं राजन्नुदिते भास्करे महत् ॥ १५ ॥

राजन्! उन दोनोंके महासमरमें बड़ा भयंकर शब्द प्रकट होने लगा। एक दूसरेके वधकी इच्छावाले इन चारों योद्धाओंका अत्यन्त भयानक शब्द समूचे ब्रह्माण्डमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला था। राजन्! तदनन्तर उस संग्रामके मुहानेपर प्रातःकालकी लाली प्रकट हुई, तारे प्रकाशहीन हो गये। इसी तरह अन्धकार क्षीण होने लगा। उषःकालके जाग्रत् होनेपर अन्धकार पूर्णतः मिट गया। भगवान् सूर्यका उदय हुआ और चन्द्रमा क्षीण हो चले। राजन्! भगवान् भास्करका उदय होनेपर उन चारों बाहुशाली वीरोंका महान् युद्ध होने लगा, जो देवताओं और असुरोंके संग्राम-सा प्रतीत होता था ॥ १२—१५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि पौण्ड्रकयुद्धे नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें पौण्ड्रकयुद्धविषयक निन्यानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९९ ॥

शततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका द्वारकामें आगमन और पौण्ड्रकसे उनकी बातचीत

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रभाते विमले भगवान् देवकीसुतः।
गन्तुमैच्छज्जगन्नाथः पुरं बदरिकाश्रमात् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल आनेपर देवकीनन्दन भगवान् जगन्नाथने बदरिकाश्रमसे अपनी द्वारकापुरीको जानेकी इच्छा की ॥ १ ॥

नमस्कृत्य मुनीन् सर्वान् ययौ द्वारवतीं नृप।
आरुह्य गरुडं विष्णुर्वैनतेन महता प्रभुः ॥ २ ॥

नरेश्वर! समस्त मुनियोंको नमस्कार करके भगवान् श्रीकृष्ण गरुड़पर आरूढ़ हो बड़े वेगसे द्वारकापुरीकी ओर चल दिये ॥ २ ॥

सुमहान्छुश्रुवे शब्दस्तेषां युद्धं प्रकुर्वताम्।
गच्छता देवदेवेन पुरीं द्वारवतीं नृप ॥ ३ ॥

राजन्! द्वारकापुरीकी ओर जाते हुए देवाधिदेव श्रीकृष्णने वहाँ युद्ध करते हुए उन समस्त योद्धाओंका महान् कोलाहल सुना ॥ ३ ॥

अचिन्तयज्जगन्नाथः को न्वयं शब्द उत्थितः।
संग्रामसम्भवो घोर आर्यशैनेयसंयुतः ॥ ४ ॥

उसे सुनकर जगदीश्वर श्रीकृष्ण सोचने लगे—'यह कैसा युद्धजनक घोर शब्द प्रकट हो रहा है, जिसमें भैया बलराम और सात्यकिकी भी गर्जना मिली हुई है ॥ ४ ॥

व्यक्तमागतवान् पौण्ड्रो नगरीं द्वारकामनु।
तेन युद्धं समभवत् पौण्ड्रकेण दुरात्मना ॥ ५ ॥
यदूनां वृष्णिवीराणां युद्धयतामितरेतरम्।
शब्दोऽयं सुमहान् व्यक्तो नात्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥

'निश्चय ही पौण्ड्रकने द्वारकापुरीपर आक्रमण किया है। उसी दुरात्मा पौण्ड्रकके साथ यादवों एवं वृष्णिवीरोंका युद्ध हो रहा है। परस्पर युद्ध करनेवाले इन्हीं योद्धाओंका यह महान् शब्द प्रकट हो रहा है। इसमें कोई अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है' ॥ ५-६ ॥

इत्येवं चिन्तयित्वा तु दध्मौ शङ्खं महारवम्।
पाञ्चजन्यं हरिः साक्षात् प्रीणयन् वृष्णिपुङ्गवान् ॥ ७ ॥

ऐसा सोचकर साक्षात् श्रीहरिने वृष्णिशिरोमणि वीरोंको प्रसन्न करते हुए महान् शब्द करनेवाले पाञ्चजन्य शङ्खको बजाया ॥ ७ ॥

रोदसी पूरयामास तेन शब्देन केशवः।
यादवा वृष्णयश्चैव श्रुत्वा शङ्खस्य ते रवम् ॥ ८ ॥
व्यक्तमायाति भगवान् पाञ्चजन्यरवो ह्ययम्।

केशवने उस शङ्खध्वनिसे पृथ्वी और आकाशको परिपूर्ण कर दिया। उस शङ्खनादको सुनकर यादव और वृष्णिवंशी परस्पर कहने लगे—'निश्चय ही भगवान् श्रीकृष्ण पधार रहे हैं। यह पाञ्चजन्यकी ही ध्वनि सुनायी पड़ती है' ॥ ८½ ॥

इति ते मेनिरे राजन् वृष्णयो यादवास्तथा ॥ ९ ॥
निर्भयाः समपद्यन्त वृष्णयो यादवाश्च ते।

राजन्! यादवों और वृष्णिवंशियोंको इस बातका दृढ़ निश्चय हो गया। वे वृष्णि और यादव निर्भय हो गये ॥ ९½ ॥

तस्मिन्नेव क्षणे दृष्टस्तार्क्ष्यश्च पततां वरः ॥ १० ॥
ततश्च देवकीसूनुर्दृष्टस्तैर्यादवेश्वरः।
सूताश्च मागधाश्चैव पुरो यान्ति जगत्पतेः ॥ ११ ॥

उसी क्षण पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ दिखायी दिये। तदनन्तर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यादवेश्वर देवकीनन्दन श्रीकृष्णका दर्शन हुआ। सूत और मागधजन उन जगदीश्वरके सामने गये ॥ १०-११ ॥

स्तुत्या स्तुतं हरिं विष्णुमीश्वरं कमलेक्षणम्।
गताश्च यादवाः सर्वे परिवव्रुर्जनार्दनम् ॥ १२ ॥

जिनकी स्तुति की गयी थी, उन कमलनयन सर्वव्यापी ईश्वर जनार्दन हरिके पास समस्त यादव गये और उन्हें घेरकर खड़े हो गये ॥ १२ ॥

कृष्णस्तु गरुडं भूयो गच्छ त्वं नाकमुत्तमम्।
इत्युक्त्वा गरुडं विष्णुर्विसृज्य यदुनन्दनः ॥ १३ ॥
दारुकं पुनराहेदं रथमानय मे प्रभो।

इसके बाद यदुनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने पुनः गरुड़से कहा—'तुम उत्तम स्वर्गलोकको जाओ' ऐसा कहकर उन्होंने गरुड़को तो विदा कर दिया और पुनः दारुकसे कहा—'सामर्थ्यशाली सारथे! तुम मेरा रथ ले आओ' ॥ १३½ ॥

स तथेति प्रतिज्ञाय रथमादाय सत्वरम् ॥ १४ ॥
रथोऽयं भगवन् देव किमतः कृत्यमस्ति मे।
इत्युक्त्वा रथमादाय प्रणम्याग्रे स्थितो हरेः ॥ १५ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर सारथि तुरंत रथ ले आया और बोला—'भगवन्! देव! यह रथ उपस्थित है। इसके अतिरिक्त मेरे लिये क्या आज्ञा है?' ऐसा कहकर दारुक रथ ले आया और भगवान्‌को प्रणाम करके उनके सामने खड़ा हो गया ॥ १४-१५ ॥

गतेऽथ गरुडे विष्णू रथमारुह्य सत्वरम्।
यत्र युद्धं समभवत् तत्र याति स्म केशवः ॥ १६ ॥

गरुड़के चले जानेपर केशव श्रीकृष्ण तुरंत रथपर आरूढ़ हुए और जहाँ युद्ध हो रहा था, वहाँ गये ॥ १६ ॥

तत्र गत्वा महाराज युध्यतां च महात्मनाम्।
पाञ्चजन्यं महाशङ्खं दध्मौ यदुवृषोत्तमः ॥ १७ ॥

महाराज! वहाँ जाकर यदुकुलतिलक श्रीकृष्णने उन जूझते हुए महामनस्वी वीरोंके बीचमें पाञ्चजन्य नामक महान् शङ्ख बजाया ॥ १७ ॥

पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु कृष्णं दृष्ट्वा रणोत्सुकम्।
सात्यकिं पृष्ठतः कृत्वा वासुदेवमुपागमत् ॥ १८ ॥

पौण्ड्रक वासुदेव श्रीकृष्णको युद्धके लिये उत्सुक देख सात्यकिको पीछे करके उन वसुदेवनन्दनके समीप चला ॥

क्रुद्धोऽथ सात्यकी राजन् वारयामास पौण्ड्रकम्।
न गन्तव्यमितो राजन्नैष धर्मः सनातनः ॥ १९ ॥

राजन्! यह देख क्रोधमें भरे हुए सात्यकिने पौण्ड्रकको रोका और कहा—'राजन्! तुम्हें यहाँसे नहीं जाना चाहिये। यह सनातन धर्म नहीं है ॥ १९ ॥

जित्वा मां गच्छ राजेन्द्र परं योद्धुं महारणे।
क्षत्रियोऽसि महावीर स्थिते मयि रणोत्सुके ॥ २० ॥
एष ते गर्वमखिलं नाशयिष्यामि संयुगे।

'राजेन्द्र! इस महासमरमें मुझे परास्त करके तुम दूसरेसे युद्ध करनेके लिये जाओ। महावीर! तुम क्षत्रिय हो, जबतक मैं युद्धके लिये उत्सुक हूँ, तबतक तुम्हें अन्यत्र नहीं जाना चाहिये। मैं अभी युद्धस्थलमें तुम्हारा सारा घमंड चूर किये देता हूँ' ॥ २०½ ॥

इत्युक्त्वा चाग्रतस्तस्थौ गच्छतो यादवेश्वरः ॥ २१ ॥
पौण्ड्रस्य शिनिनप्ता तु पश्यतः केशवस्य ह।
अवज्ञाय शिनेः पौत्रं कृष्णमेव जगाम ह ॥ २२ ॥

ऐसा कहकर शिनिके पोते यादवेश्वर सात्यकि श्रीकृष्णके देखते-देखते जाते हुए पौण्ड्रकके आगे खड़े हो गये तो भी वह सात्यकिकी अवहेलना करके श्रीकृष्णकी ओर चल दिया ॥

निर्भर्त्स्य सहसा भूयः सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः।
गदया प्राहरत् पौण्ड्रं वासुदेवस्य पश्यतः ॥ २३ ॥

तब क्रोधसे भरे हुए सात्यकिने सहसा उसे डाँटकर भगवान् श्रीकृष्णके देखते-देखते पुनः पौण्ड्रकपर गदासे प्रहार किया ॥ २३ ॥

यथाप्राणं यथायोगं सात्यकिः सत्यविक्रमः।
दृष्ट्वाथ भगवानेवं सात्यकिं प्रशशंस ह ॥ २४ ॥

सत्यपराक्रमी सात्यकिने पूरी सावधानी और शक्तिका उपयोग करके पौण्ड्रकपर गदा चलायी थी। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्णने सात्यकिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २४ ॥

निवार्य सात्यकिं कृष्णो यथेष्टं क्रियतामसौ।
उपारमद् यथायोगं सात्यकिः कृष्णवारितः ॥ २५ ॥

तत्पश्चात् 'वह जैसा चाहे वैसा ही करे' यह कहकर श्रीकृष्णने सात्यकिको रोक दिया। श्रीकृष्णके रोकनेपर सात्यकि यथावसर युद्धसे विरत हो गये ॥ २५ ॥

स ततः पौण्ड्रको राजा वासुदेवमुवाच ह।
भो भो यादव गोपाल इदानीं क्व गतो भवान् ॥ २६ ॥

तदनन्तर राजा पौण्ड्रकने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'ओ यादव! ओ गोपाल! इस समय तुम कहाँ चले गये थे?' ॥

त्वां द्रष्टुमथ सम्प्राप्तो वासुदेवोऽस्मि साम्प्रतम्।
हत्वा त्वां सबलं कृष्ण बलैर्बहुभिरन्वितः ॥ २७ ॥
अहमेको भविष्यामि वासुदेवो महीतले।

'मैं इस समय तुमसे ही मिलने आया हूँ। आजकल मैं ही वासुदेव नामसे विख्यात हूँ। श्रीकृष्ण! मैं बहुत-सी सेनाओंके साथ हूँ। इस समय सेनासहित तुम्हारा वध करके मैं अकेला ही इस भूतलपर वासुदेव रहूँगा ॥ २७½ ॥

यच्चक्रं तव गोविन्द प्रथितं सुप्रभं महत् ॥ २८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेन मम चक्रेण पीडितोऽसि च तद्रणे।
चक्रमस्तीति तद्वीर्यं तव माधव साम्प्रतम् ॥ २९ ॥
नाशयिष्यामि तत् सर्वं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।

'गोविन्द! तुम्हारा जो विख्यात, उत्तम प्रभासे युक्त और महान् चक्र है, उसका मेरे इस चक्रसे अभी नाश हो जायगा। इसके लिये मुझे खेद है। माधव! परंतु रणभूमिमें अब तुम्हें 'मेरे पास चक्र है' ऐसा सोचकर उसके बलका घमंड नहीं होना चाहिये; क्योंकि आज मैं समस्त क्षत्रियोंके देखते-देखते तुम्हारे उस सारे बलका नाश कर डालूँगा ॥ २८-२९½ ॥

शार्ङ्गीति मां विजानीहि न त्वं शार्ङ्गीति शिष्यसे ॥ ३० ॥
शङ्खमस्तीति तद्वीर्यं तव माधव साम्प्रतम्।
शङ्खी चाहं गदी चाहं चक्री चाहं जनार्दन ॥ ३१ ॥

'जनार्दन! तुम मुझे शार्ङ्गी भी समझो। 'केवल तुम्हीं शार्ङ्गी नामसे यहाँ शेष हो' ऐसा न समझो। माधव! मेरे पास शङ्ख है। ऐसा समझकर तुम्हें अब उसके बलका भी घमंड नहीं करना चाहिये; क्योंकि मैं शङ्खी भी हूँ, गदाधर भी हूँ और चक्रपाणि भी हूँ ॥ ३०-३१ ॥

मामेव हि सदा यूयं जानन्तो वीर्यशालिनः।
आदौ त्वं बलवद् वृद्धान् हत्वा स्त्रीबालकान् बहून् ॥ ३२ ॥
गाश्च हत्वा महागर्वस्तव सम्प्रति वर्तते।
तत् तेऽहं व्यपनेष्यामि यदि तिष्ठसि मत्पुरः ॥ ३३ ॥

'जगत्में जो पराक्रमशाली और ज्ञानी पुरुष हैं, वे अब सदा मुझे ही शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाला कहेंगे। पहलेकी बात है, तुमने बलवानोंमें बढ़े-चढ़े कुछ कंसके अनुचरोंका, स्त्री (पूतना) का तथा बहुत-से बालकोंका (छः गर्भोंका कंसद्वारा) वध करके कुछ गौओं (वत्सासुर, अरिष्टासुर आदि) का भी वध किया था। इसीसे तुम्हें अपनी वीरतापर बड़ा गर्व है। यदि मेरे सामने खड़े रह गये तो तुम्हारे उस गर्वको चूर्ण कर दूँगा ॥ ३२-३३ ॥

शस्त्रं गृहाण गोविन्द यदि योद्धुं व्यवस्थितः।
इत्युक्त्वा बाणमादाय तस्थौ पार्श्वे जगत्पतेः ॥ ३४ ॥

'गोविन्द! यदि तुम युद्धके लिये खड़े हो तो शस्त्र ग्रहण करो।' ऐसा कहकर पौण्ड्रक बाण हाथमें लेकर जगदीश्वर श्रीहरिके पास खड़ा हो गया ॥ ३४ ॥

एतद् वचनमाकर्ण्य वासुदेवेन भाषितम्।
स्मितं कृत्वा हरिः कृष्णो बभाषे पौण्ड्रकं नृपम् ॥ ३५ ॥
कामं वद नृप त्वं हि पातक्यस्मि सदा नृप।
गोघाती बालघाती च स्त्रीहन्ता सर्वथा नृप ॥ ३६ ॥

मिथ्या वासुदेवके इस कथनको सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुस्कराये और उस पौण्ड्रक नरेशसे इस प्रकार बोले—'नरेश्वर! तुम इच्छानुसार जो-जो चाहो कहो। मैं सदा पातकी ही हूँ। मैंने सर्वथा गोहत्या, बालहत्या और स्त्री हत्या की है ॥ ३५-३६ ॥

चक्री भव गदी राजञ्छार्ङ्गी च सततं भव।
नामधेयं वृथा मह्यं वासुदेवेति च प्रभो ॥ ३७ ॥

'राजन्! तुम सदा चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले बने रहो। प्रभो! मेरा वासुदेव यह मिथ्या नाम भी लिये रहो ॥ ३७ ॥

शार्ङ्गी चक्री गदी शङ्खीत्येवमादि वृथा मम।
किं तु वक्ष्यामि किंचित् तु शृणुष्व यदि मन्यसे ॥ ३८ ॥

'शार्ङ्गी, चक्री, गदी और शङ्खी आदि जो मेरे नाम हैं, उनका भी व्यर्थ भार लिये रहो; परंतु मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, यदि ठीक समझो, तो सुनो ॥ ३८ ॥

क्षत्रिया बलिनो ये तु स्थिते मयि जगत्पतौ।
तथानुब्रुवते त्वां हि जीवत्येव मयि प्रभो ॥ ३९ ॥

'प्रभो! मुझ जगदीश्वरके जीते-जी ही बलवान् क्षत्रिय तुम्हें वैसे (मेरे-जैसे) नामोंद्वारा पुकारते हैं ॥ ३९ ॥

यन्मे चक्रं महाघोरमसुरान्तकरं महत्।
तत्तुल्यं तव चक्रं तु वृत्ततो न तु वीर्यतः।
आयुधेष्वथ सर्वत्र शब्दसादृश्यमस्ति ते ॥ ४० ॥

'मेरा जो असुरोंका अन्त करनेवाला महाघोर एवं महान् चक्र है, तुम्हारा चक्र केवल गोलायीमें उसकी समानता करता है, शक्तिमें नहीं। तुम्हारे सम्पूर्ण आयुधोंमें भी मुझसे नाममात्रकी समता है, शक्तितः नहीं ॥ ४० ॥

गोपोऽहं सर्वदा राजन् प्राणिनां प्राणदः सदा।
गोप्ता सर्वेषु लोकेषु शास्ता दुष्टस्य सर्वदा ॥ ४१ ॥

'राजन्! मैं सर्वदा गोप हूँ, अर्थात् प्राणियोंका सदा प्राणदान करनेवाला हूँ, सम्पूर्ण लोकोंका रक्षक तथा सर्वदा दुष्टोंका शासक हूँ ॥ ४१ ॥

कत्थनं सर्वकार्यं हि जित्वा शत्रून् नृपाधम।
अजित्वा किं भवान् ब्रूते स्थिते मयि च शस्त्रिणि ॥ ४२ ॥

'नृपाधम! तुम्हें शत्रुओंको जीतकर ही सब प्रकारसे बड़ी-बड़ी बातें बनानी चाहिये। जब मैं शस्त्र लेकर तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, तब तुम मुझे पराजित किये बिना ऐसी बातें क्यों कहते हो? ॥ ४२ ॥

हत्वा मां ब्रूहि राजेन्द्र यदि शक्तोऽसि पौण्ड्रक।
स्थितोऽहं चक्रमाश्रित्य रथी चापी गदासिमान् ॥ ४३ ॥

'राजेन्द्र पौण्ड्रक! यदि तुममें शक्ति हो तो मुझे मारकर अपनी प्रशंसा करो। मैं रथ, धनुष, गदा और खड्गसे युक्त हो चक्र लेकर तुम्हारे सामने खड़ा हूँ ॥ ४३ ॥

रथमारुह्य युद्धाय सन्नद्धो भव मानद।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुः सिंहनादं व्यनीनदत्॥ ४४ ॥
'मानद! रथपर आरूढ़ हो युद्धके लिये तैयार हो जाओ।

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कृष्णपौण्ड्रकयुद्धे शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्ण और पौण्ड्रकका युद्धविषयक सौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

पौण्ड्रक और श्रीकृष्णका युद्ध तथा पौण्ड्रकका वध

वैशम्पायन उवाच

ततः शरं समादाय वासुदेवः प्रतापवान्।
पौण्ड्रं जघान सहसा निशितेन शरेण ह ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं— जनमेजय! तदनन्तर प्रतापी भगवान् वासुदेवने बाण लेकर सहसा उस पैने बाणके द्वारा पौण्ड्रकपर प्रहार किया ॥ १ ॥

पौण्ड्रोऽथ वासुदेवस्तु शरैर्दशभिराशुगैः।
वासुदेवं जघानाशु वार्ष्णेयं वृष्णिनन्दनम् ॥ २ ॥

पौण्ड्रक वासुदेवने भी दस शीघ्रगामी बाणोंद्वारा वृष्णिवंशी एवं वृष्णिकुलनन्दन वासुदेवपर शीघ्र ही आघात किया॥

दारुकं पञ्चविंशत्या हयान् दशभिरेव च।
सप्तत्या वासुदेवं तु यादवं वासुदेवकः ॥ ३ ॥

उस मिथ्या वासुदेवने दारुकको पचीस, घोड़ोंको दस और यदुकुलतिलक श्रीकृष्णको सत्तर बाण मारे ॥ ३ ॥

ततः प्रहस्य सुचिरं केशवः केशिसूदनः।
धृष्टोऽसाविति मनसा सम्पूज्य यदुनन्दनः ॥ ४ ॥

तब केशिहन्ता यदुनन्दन केशवने देरतक हँसकर मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—'पौण्ड्रक बड़ा ढीठ है'॥

आकृष्य शार्ङ्गं बलवान् संधाय रिपुसूदनः।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन ध्वजं चिच्छेद केशवः ॥ ५ ॥

उसके बाद शत्रुसूदन बलवान् केशवने शार्ङ्ग धनुषको खींचकर उसपर तीखे नाराचका संधान किया और उसके द्वारा पौण्ड्रककी ध्वजा काट डाली ॥ ५ ॥

सारथेश्च शिरः कायादाहृत्य यदुनन्दनः।
अश्वांश्च चतुरो हत्वा चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ६ ॥
रथं राज्ञः समाहत्य तदोभौ पार्ष्णिसारथी।
चक्रे च तिलशः कृत्वा हसन् किंचिदिव स्थितः॥ ७ ॥

तत्पश्चात् यदुनन्दन श्रीहरिने उसके सारथिके सिरको धड़से अलग करके चार उत्तम सायकोंद्वारा चारों घोड़ोंको मारकर उस राजाके रथको भी तोड़-फोड़ डाला तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंको घायल करके उसके रथके पहियोंको तिल-तिल करके काट डाला और वे कुछ मुसकराते हुए-से खड़े हो गये ॥

पौण्ड्रको वासुदेवस्तु रथादुत्प्लुत्य सत्वरः।
आदाय निशितं खड्गं प्राहिणोत् केशवाय सः ॥ ८ ॥

तब पौण्ड्रक वासुदेव तुरंत ही रथसे कूद पड़ा और एक तीखी तलवार लेकर उसने भगवान् केशवपर चला दी ॥

स खड्गं शतधा कृत्वा तूष्णींमासीच्च केशवः।
ततः परं महाघोरं परिघं कालसम्मितम् ॥ ९ ॥
गृहीत्वा वासुदेवाय वासुदेवः प्रतापवान्।
प्राहिणोद् वृष्णिवीराय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ १० ॥

भगवान् केशव उस तलवारके सौ टुकड़े करके चुपचाप रथपर बैठे रहे। तत्पश्चात् प्रतापी पौण्ड्रक वासुदेवने एक कालके समान महाघोर परिघ लेकर समस्त क्षत्रियोंके देखते-देखते उसे वृष्णिवीर भगवान् वासुदेवपर चला दिया ॥९-१०॥

तद् द्विधा जगतां नाथश्चकार यदुनन्दनः।
ततश्चक्रं महाघोरं सहस्रारं महाप्रभम् ॥ ११ ॥
त्रिंशद्भारसमायुक्तमायसास्यमित्रहा ।
आदायाथ महाराज केशवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥

तब जगदीश्वर यदुनन्दनने उस परिघके दो टुकड़े कर दिये। महाराज! तत्पश्चात् शत्रुसूदन पौण्ड्रकने महाघोर परम कान्तिमान् सहस्रों अरोंसे युक्त तीस भार लोहेके बने हुए क्षेपणीय चक्रको हाथमें लेकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥

पश्येदं निशितं घोरं तव चक्रविनाशनम्।
अनेन तव गोविन्द दर्पं दर्पवतां वर ॥ १३ ॥
अपनेष्यामि वार्ष्णेय सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।

'दर्पवाले पुरुषोंमें श्रेष्ठ गोविन्द! देखो, यह भयंकर एवं तीखा चक्र तुम्हारे चक्रका विनाश करनेवाला है। वार्ष्णेय! मैं इसी चक्रसे समस्त क्षत्रियोंके देखते देखते तुम्हारा सारा घमंड चूर्ण कर दूँगा ॥ १३½ ॥

त्वामुद्दिश्य महाघोरं कृतमन्यद् दुरासदम् ॥ १४ ॥
यदि शक्तो हरे कृष्ण दारयेदं महास्पदम्।

'हरे! कृष्ण! तुम्हारे उद्देश्यसे ही मैंने यह महाभयंकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरा दुर्जय चक्र तैयार कराया है। यदि तुममें शक्ति हो तो इस विशाल चक्रको विदीर्ण करो' ॥ १४½ ॥

इत्युक्त्वा तच्छतगुणं भ्रामयित्वा महाबलः ॥ १५ ॥
चिक्षेपाथ महावीर्यः पौण्ड्रको नृपसत्तमः ।

ऐसा कहकर महाबली महापराक्रमी नृपश्रेष्ठ पौण्ड्रकने उस चक्रको सौ बार घुमाकर श्रीकृष्णपर चला दिया ॥

अवप्लुत्य ततो देशात् तदुत्सृज्य महाबलः ॥ १६ ॥
सिंहनादं महाघोरं व्यनदद् वीर्यवांस्तदा ।

तब महाबली और पराक्रमशाली श्रीकृष्ण उस स्थानसे नीचे उतर गये और उस चक्रको विफल करके महाघोर सिंहनाद करने लगे ॥ १६½ ॥

ततो विस्मयमापन्नो भगवान् देवकीसुतः ॥ १७ ॥
अहो वीर्यमहो धैर्यमस्य पौण्ड्रस्य दुःसहम् ।

पहले तो भगवान् देवकीनन्दन उसका साहस देखकर विस्मित हो उठे और यह कहने लगे कि 'अहो! पौण्ड्रकका दुःसह पराक्रम और धैर्य अद्भुत है' ॥ १७½ ॥

इति मत्वा जगन्नाथ उत्थितश्च रथोत्तमात् ॥ १८ ॥
ततः शिलां समादाय प्रेषयामास केशवम् ।
तां शिलां प्रेषयामास तस्मै यदुकुलोद्वहः ॥ १९ ॥

यही सब सोचकर जगन्नाथ श्रीकृष्ण अपने उत्तम रथसे उतर पड़े थे। तदनन्तर पौण्ड्रकने एक शिलाखण्ड लेकर भगवान् श्रीकृष्णपर चलाया, किंतु यदुकुलतिलक श्रीकृष्णने वह शिला फिर उसीपर दे मारी ॥ १८-१९ ॥

पौण्ड्रेण सुचिरं कालं विक्रीड्य भगवान् हरिः ।
ततश्चक्रं समादाय निशितं रक्तभोजनम् ॥ २० ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीहरिने पौण्ड्रकके साथ चिरकालतक युद्धका खेल करके अपना तीखा चक्र हाथमें लिया, जो दैत्योंके रक्तका आहार करनेवाला था ॥ २० ॥

दैत्यमांसप्रदिग्धाङ्गं नारीगर्भविमोचनम् ।
शातकुम्भमयं घोरं दैत्यदानवनाशनम् ॥ २१ ॥
सहस्रारं शतारं तदद्भुतं दैत्यभीषणम् ।
ऐश्वर्यवर्म परमं नित्यं सुरगणार्चितम् ॥ २२ ॥

उस चक्रका अङ्ग-प्रत्यङ्ग दैत्योंके मांससे पुष्ट हुआ था। वह दैत्यनारियोंके गर्भ गिरा देनेवाला था। उसका निर्माण सुवर्णसे हुआ था। वह घोर चक्र दैत्यों और दानवोंका नाश करनेवाला था। उसके अरे कभी सहस्रोंकी संख्यामें प्रकट होते थे और कभी सैकड़ोंकी। ऐश्वर्य ही उसका कवच था। वह देवगणोंद्वारा पूजित उत्तम अस्त्र नित्य अद्भुत तथा दैत्योंको भयभीत करनेवाला था ॥ २१-२२ ॥

विष्णुः कृष्णस्तथा शार्ङ्गी नित्ययुक्तः सदा हरिः ।
जघान तेन गोविन्दः पौण्ड्रकं नृपसत्तमम् ॥ २३ ॥

सर्वव्यापी शार्ङ्गधनुर्धर पापहारी श्रीकृष्ण सदा उस अस्त्रसे युक्त रहते हैं। गोविन्दने उसी अस्त्रसे नृपश्रेष्ठ पौण्ड्रकको मार डाला ॥ २३ ॥

तस्य देहं विदार्याशु चक्रं पिशितभोजनम् ।
कृष्णस्याथ करं भूयः प्राप सर्वेश्वरस्य ह ॥ २४ ॥

उसके शरीरको विदीर्ण करके वह मांसभोजी चक्र पुनः शीघ्र ही सर्वेश्वर श्रीकृष्णके हाथमें आ गया ॥ २४ ॥

ततः स पौण्ड्रको राजा गतासुः प्रापतद् भुवि ।
निहत्य भगवान् विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ।
प्रतिपेदे सुधर्मां तु यादवैः पूजितो हरिः ॥ २५ ॥

तदनन्तर वह राजा पौण्ड्रक प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। जिनके स्वरूपको समझना अत्यन्त कठिन है, वे सर्वसमर्थ भगवान् विष्णु हरि पौण्ड्रकका वध करके यादवोंसे पूजित हो सुधर्मा नामक सभामें चले गये ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवासुदेववधे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णकी कैलासयात्राके प्रसङ्गमें पौण्ड्रक वासुदेवका वधविषयक एक सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

एकलव्यका द्वीपान्तरगमन, भगवान् श्रीकृष्णका यादवोंको अपनी यात्राका संक्षिप्त वृत्तान्त बताना तथा अन्तःपुरमें रुक्मिणी और सत्यभामासे मिलकर उन्हें संतोष देना

वैशम्पायन उवाच

निषादेशं ततो रामः शक्त्या वीर्यवतां वरः ।
आजघान स्तनद्वन्द्वे सिंहनादं व्यनीनदत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजीने शक्तिसे निषादराज एकलव्यकी छातीमें प्रहार किया और फिर सिंहके समान गर्जना की ॥ १ ॥

ततः क्रुद्धो निषादेशो रामं मत्तं महाबलम् ।
गदया लोकविख्यातो जघान स्तनवक्षसि ॥ २ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए लोकविख्यात निषादराजने महाबली एवं बलके मदसे उन्मत्त हुए बलरामजीकी छातीमें गदासे चोट पहुँचायी ॥ २ ॥

आहतः स तु तेनाशु बलभद्रो महाबलः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

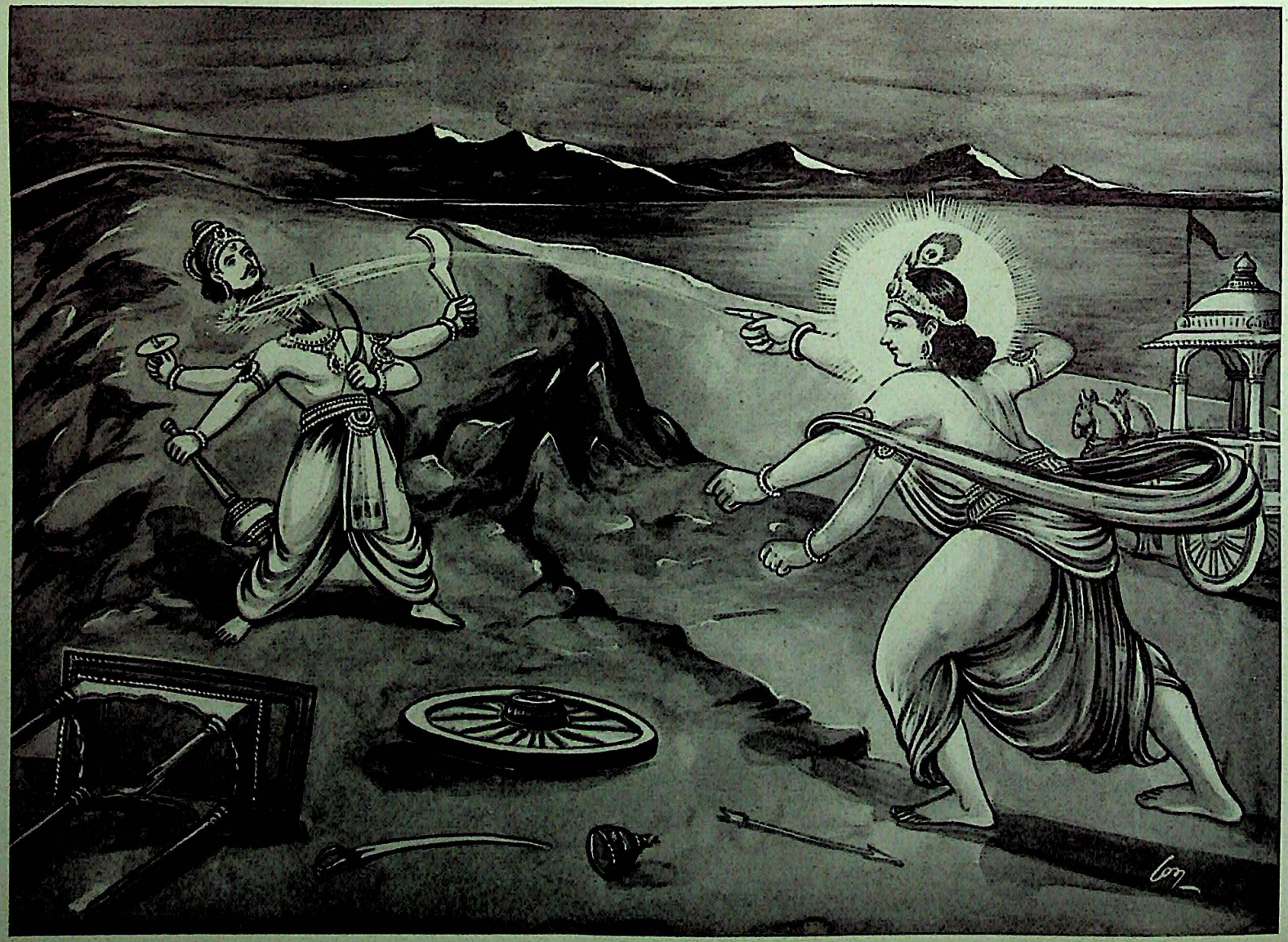

पौण्ड्रकका उद्धार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उभाभ्यां चैव रामस्तु कराभ्यां वृष्णिपुङ्गवः ॥ ३ ॥
गदां गृह्य महाघोरामायान्तीं प्राणहारिणीम् ।
दुद्रावाथ निषादेशः समुद्रं मकरालयम् ॥ ४ ॥

उसके द्वारा आहत होकर महाबली वृष्णिपुङ्गव वीर बलभद्र एवं बलरामने दोनों हाथोंसे अपनी ओर आती हुई उस प्राणहारिणी महाभयंकर गदाको पकड़कर एकलव्यपर आक्रमण किया। यह देखकर निषादराज एकलव्य मगर आदि जलजन्तुओंके निवासस्थान समुद्रकी ओर भागा ॥ ३-४ ॥

धावत्येवं तदा राज्ञि एकलव्ये निषादपे ।
धावत्येवं च रामोऽपि यत्र यातो निषादपः ॥ ५ ॥

निषादराज एकलव्यके इस प्रकार भागनेपर बलरामजी भी उसका पीछा करने लगे। वह जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ वे भी गये ॥ ५ ॥

सागरं स प्रविश्याशु गत्वा योजनपञ्चकम् ।
भीत एव तदा राजन्नेकलव्यो निषादपः ॥ ६ ॥

राजन्! समुद्रमें घुसकर निषादराज एकलव्य पाँच योजन दूर चला गया और वहाँ बलभद्रजीसे डरता हुआ ही निवास करने लगा ॥ ६ ॥

कंचिद् द्वीपान्तरं राजन् प्रविश्य न्यवसत् तदा ।
इत्थं रामो निषादेशं जिगाय यदुनन्दनः ॥ ७ ॥

नरेश्वर! किसी दूसरे द्वीपमें प्रवेश करके वह वहीं रहने लगा; इस प्रकार यदुनन्दन बलरामजीने निषादराजपर विजय पायी ॥ ७ ॥

तां सभां मणिरत्नाढ्यां प्रविवेश हलायुधः ।
सात्यकिर्युद्धसंसक्तस्तां सभां प्रविवेश ह ॥ ८ ॥

तदनन्तर हलायुध बलरामजीने मणि तथा रत्नोंसे विभूषित उस सुधर्मा-सभामें प्रवेश किया। युद्धमें फँसे हुए सात्यकि भी उससे विरत हो सभामें लौट आये ॥ ८ ॥

अन्ये च यादवा राजन् यथायोगमुपस्थिताः ।
आसीनेषु च सर्वेषु वृष्णिवीरेषु सर्वतः ॥ ९ ॥
अभिवाद्य यथायोगं वृष्णीन् सर्वांश्च केशवः ।
उवाच वचनं काले भगवान् देवकीसुतः ॥ १० ॥

राजन्! अन्य यादव भी यथावसर वहाँ उपस्थित हुए। जब सभी वृष्णिवंशी वीर वहाँ सब ओर बैठ गये, तब देवकीनन्दन भगवान् केशवने योग्यताके अनुसार सभी वृष्णिवंशियोंका अभिवादन करके उस समय यह बात कही—॥

दृष्टं कैलासशिखरं शंकरो नीललोहितः ।
स तु मह्यं यदुवराः प्रीतिमांश्च ददौ वरम् ॥ ११ ॥

'यदुवरो! मैंने कैलासशिखरका दर्शन किया। वहाँ नीललोहित भगवान् शङ्करने मुझे प्रसन्न होकर वर दिया है॥

तत्र देवाः समायाता मुनयश्च तपोधनाः ।
दृष्ट्वा मां शंकरश्चैव प्रीतः स्तुत्वा समाययौ ॥ १२ ॥

'वहाँ देवता और तपोधन मुनि भी पधारे थे। भगवान् शङ्कर मुझसे मिलकर प्रसन्न हुए और मेरी स्तुति करके लौट गये ॥ १२ ॥

अत्यद्भुतं मया दृष्टं रात्रौ यादवसत्तमाः ।
पिशाचौ द्वौ महाघोरौ वदन्तौ मामिकां कथाम् ॥ १३ ॥
मृगयां चक्रतुस्तौ तु चिन्तयन्तौ तु मां सदा ।

'यादवशिरोमणियो! इस यात्रामें रातके समय मैंने एक बड़ी अद्भुत बात देखी थी। दो महाभयंकर पिशाच मेरी ही कथा कहते और सदा मेरा ही चिन्तन करते हुए शिकार खेल रहे थे ॥ १३½ ॥

दृष्ट्वा मां तौ तु राजेन्द्राः प्रीतिमन्तौ तपस्विनौ ॥ १४ ॥
भक्तिनम्रौ महात्मानौ प्रणामं चक्रतुस्तदा ।

'राजेन्द्रगण! वे दोनों तपस्वी मुझे देखकर बड़े प्रसन्न हुए। वे महात्मा थे, उन्होंने भक्तिभावसे नम्र होकर मुझे प्रणाम किया ॥ १४½ ॥

ततोऽहं सर्वथा प्रीतस्तौ नीतौ स्वर्गमुत्तमम् ॥ १५ ॥
तोषयित्वा महादेवं मया चाद्य समागतम् ।

'तब मैंने सर्वथा प्रसन्न होकर उन दोनोंको उत्तम स्वर्गलोकमें भेज दिया। इसके बाद तपस्याद्वारा महादेवजीको संतुष्ट करके आज मैं यहाँ आया हूँ' ॥ १५½ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते वृष्णयः सर्वे देवदेवं शशंसिरे ॥ १६ ॥
सर्वथा कृतकृत्यास्ते वृष्णयः केशवाश्रयाः ।
यादवाः सर्व एवैते स्वं स्वं जग्मुर्यथालयम् ॥ १७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब उन सभी वृष्णिवंशियोंने देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। श्रीकेशवका आश्रय लेकर वे वृष्णिवंशी सर्वथा कृतकृत्य हो गये। तत्पश्चात् वे सभी यादव अपने-अपने घरको चले गये ॥ १६-१७ ॥

अभ्यन्तरे जगन्नाथः प्रविश्य हरिरीश्वरः ।
रुक्मिणीसत्यभामाभ्यामाचचक्षे यथाभवत् ॥ १८ ॥

फिर जगन्नाथ सर्वेश्वर श्रीहरिने भी अन्तःपुरमें प्रवेश करके रुक्मिणी और सत्यभामासे जो जैसे घटित हुई थीं, वे सारी बातें बतायीं ॥ १८ ॥

ते प्रीते प्रीतियुक्तेन केशवेन समन्विते ।
एतत् ते सर्वमाख्यातं केशवस्य विचेष्टितम् ॥ १९ ॥

वे दोनों प्रीतियुक्त केशवके साथ वह सब सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं। इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् श्रीकृष्णकी सारी लीलाएँ कह सुनायीं ॥ १९ ॥

शशास पृथिवीं कृत्स्नां दुष्टान् हत्वा महाबलान् ।
नरकं घोरकर्माणं पौण्ड्रकं नृपसत्तमम् ॥ २० ॥
हयग्रीवं निशुम्भं च तथा सुन्दोपसुन्दकौ ।
ररक्ष विप्रान् देवेशो मुनीन् मुनिवरार्चितः ॥ २१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीकृष्णने महाबली दुष्टोंका वध करके सारी पृथ्वीका शासन किया। बड़े-बड़े मुनियोंसे पूजित हुए उन देवेश्वरने घोर कर्म करनेवाले नरकासुरको, नृपश्रेष्ठ पौण्ड्रकको, हयग्रीव और निशुम्भको तथा सुन्द और उपसुन्दको मारकर मुनियों एवं ब्राह्मणोंकी रक्षा की ॥ २०-२१ ॥

विप्रेभ्यश्च ददौ वित्तं गाश्च दत्त्वा स केशवः।
अग्निहोत्रं प्रयुञ्जानो ब्राह्मणांश्च सुतर्पयन् ॥ २२ ॥

भगवान् केशव ब्राह्मणोंको गौएँ देकर उनके लिये धन भी देते थे, अग्निहोत्र करते और ब्राह्मणोंको भोजन आदिसे तृप्त करते थे ॥ २२ ॥

मुनींश्च ब्रह्मचर्येण देवान् यज्ञैरनेकधा।
स्वधया च पितॄन् सर्वान् प्रीणयन्नेव सर्वदा ॥ २३ ॥

ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक वेदोंके स्वाध्यायसे मुनियोंको, अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा देवताओंको तथा स्वधाकर्म (श्राद्ध-तर्पण) से समस्त पितरोंको सदा तृप्त करते रहते थे ॥ २३ ॥

तस्मिञ्छासति देवेशे राज्यं निष्कण्टकं प्रभो।
सुखमेव प्रजाः सर्वा जीवन्ति ब्राह्मणादयः ॥ २४ ॥

प्रभो ! देवेश्वर श्रीकृष्णके निष्कण्टक राज्य शासन करते समय ब्राह्मण आदि सारी प्रजाएँ सुखपूर्वक ही जीवन-निर्वाह करती थीं ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि कैलासयात्रायां पौण्ड्रकवधसमाप्तौ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णकी कैलासयात्राके प्रसङ्गमें पौण्ड्रकवधकी समाप्तिविषयक एक सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

हंस और डिम्भकके विषयमें जनमेजयका प्रश्न

जनमेजय उवाच

भूय एव द्विजश्रेष्ठ शङ्खचक्रगदाभृतः।
चरितं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ॥ १ ॥

जनमेजयने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! तपोधन ! मैं शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रको पुनः विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतः कैशवीं कथाम्।
को नु नाम हरेर्विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः ॥ २ ॥
शृण्वंस्तथा रमन् वापि तृप्तिं याति दिवानिशम्।
पुरुषार्थोऽयमेवैको यत्कथाश्रवणं हरेः ॥ ३ ॥

भगवान् केशवकी कथा सुनते हुए यहाँ मुझे कभी तृप्ति नहीं होती। कौन ऐसा पुरुष होगा, जो देवाधिदेव चक्रपाणि विष्णु हरिके नाम और यशको दिन-रात सुनता और उसीमें रमण करता हुआ कभी तृप्तिका अनुभव करेगा ? (उसे न सुनना चाहेगा ?) भगवान् श्रीहरिकी कथाका जो श्रवण है, यही एकमात्र पुरुषार्थ माना गया है ॥ २-३ ॥

कथमासीज्जगद्धेतोर्हंसस्य डिम्भकस्य च।
समितिः सर्वभूतानां सदा विस्मयदायिनी ॥ ४ ॥

जगत्के लिये हंस और डिम्भककी कैसी समिति संगठित हुई थी, जो समस्त प्राणियोंको सदा ही विस्मय प्रदान करनेवाली थी ? ॥ ४ ॥

विचक्रस्य कथं युद्धं दानवस्य महात्मनः।
स तयोर्मित्रतां यात इत्येवमनुशुश्रुम ॥ ५ ॥

महामनस्वी दानव विचक्रका युद्ध किस प्रकार हुआ था ? सुननेमें आया है कि वह उन दोनोंका मित्र हो गया था॥

तौ सुतौ वीर्यसम्पन्नौ शिष्यौ भृगुसुतस्य ह।
सर्वास्त्रकुशलौ वीरौ हरालब्धवरौ किल ॥ ६ ॥

वे दोनों राजकुमार बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा मुनिवर भार्गवके शिष्य थे। कहते हैं कि उन दोनोंने भगवान् शङ्करसे वर प्राप्त किये थे। वे दोनों वीर सम्पूर्ण अस्त्रोंमें कुशल थे॥

संग्रामः सुमहानासीदित्युक्तं भवता पुरा।
तयोश्च नृपयोर्विप्र केशवस्य जगत्पतेः ॥ ७ ॥

विप्रवर ! आपने पहले कहा था कि जगदीश्वर श्रीकृष्णका उन दोनों राजाओं (हंस और डिम्भक) के साथ बड़ा भारी संग्राम हुआ था ॥ ७ ॥

कस्य पुत्रौ समुत्पन्नौ यथाभूद् विग्रहो महान्।
अष्टाशीतिसहस्राणि दानवानां तरस्विनाम् ॥ ८ ॥
बलान्यथ विचक्रस्य शितशूलधराणि च।
आसन् युद्धे महाराज दानवस्य जयैषिणः ॥ ९ ॥

वे दोनों किसके पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे, जिससे उनके साथ महान् युद्ध हुआ। महाराज ! सुना है कि विजयकी अभिलाषा रखनेवाले दानव विचक्रके पास युद्धके लिये अड़ासी हजार वेगशाली दानवोंकी सेनाएँ थीं। वे सबके-सब दानव तीखे शूल धारण करते थे ॥ ८-९ ॥

यदूनामन्तरं प्रेप्सुर्यदूनां युद्धकाङ्क्षया।
देवासुरे महायुद्धे देवाञ्जयति दुर्धरः।
तद्वधार्थं सदा यत्नमकरोच्चैव केशवः ॥ १० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दानव निचक्र दुर्जय वीर था। वह युद्धकी इच्छासे यादवोंकी त्रुटि या दुर्बलता देखा करता था। देवताओं और असुरोंके महायुद्धमें वह देवताओंपर विजय पाता था और भगवान् श्रीकृष्ण उसके वधके लिये सदा प्रयत्नशील रहते थे॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने जनमेजयवाक्ये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भकके उपाख्यानके प्रसङ्गमें जनमेजयका वाक्यविषयक एक सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

राजा ब्रह्मदत्तको भगवान् शङ्करकी आराधनासे हंस और डिम्भक नामक पुत्रोंकी प्राप्ति तथा राजसखा विप्रवर मित्रसहको भगवान् विष्णुकी उपासनासे जनार्दन नामक पुत्रका लाभ

वैशम्पायन उवाच

आसीच्छाल्वेषु राजेन्द्र ब्रह्मदत्तो नृपोत्तमः।
नाम्ना राजन् स पूतात्मा सर्वभूतदयापरः॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजेन्द्र! शाल्वदेशमें ब्रह्मदत्त नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ राजा राज्य करते थे। राजन्! उनका हृदय बड़ा ही पवित्र था। वे सम्पूर्ण भूतोंपर दयाभाव बनाये रखते थे॥ १॥

पञ्चयज्ञपरो नित्यं जितात्मा विजितेन्द्रियः।
ब्रह्मविद् वेदविच्चैव सदा यज्ञमयः शिवः॥ २ ॥

सदा पञ्चयज्ञका अनुष्ठान करते तथा मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते थे। वे ब्रह्मवेत्ता और वेदवेत्ता थे तथा सदा यज्ञके अनुष्ठानमें लगे रहते थे। राजा ब्रह्मदत्त सबके लिये कल्याणकारी थे॥ २॥

तस्य भार्ये महीपाल रूपौदार्यगुणान्विते।
बभूवतुः सुसम्पन्ने अनपत्ये नृपोत्तम॥ ३ ॥

महीपाल! नृपश्रेष्ठ! उनके रूप और उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न दो पत्नियाँ थीं; उनमें सारे गुण होनेपर भी उन दोनोंके कोई संतान नहीं हुई॥ ३॥

स ताभ्यां मुमुदे राजा शच्या शक्र इवाम्बरे।
नाम्ना मित्रसहो नाम सखा चासीद् द्विजोत्तमः॥ ४ ॥
तस्य राज्ञो महायोगी वेदवेदान्ततत्परः।
अनपत्यः स विप्रेन्द्रो यथा राजा बभूव ह॥ ५ ॥

जैसे स्वर्गमें इन्द्र शचीके साथ आनन्दपूर्वक रहते हैं, उसी प्रकार राजा ब्रह्मदत्त उन दोनों पत्नियोंके साथ सदा आनन्दमग्न रहते थे। राजाके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण मित्र थे, जिनका नाम था मित्रसह। वे महान् योगी तथा वेद और वेदान्तके अनुशीलनमें तत्पर रहनेवाले थे। वे ब्राह्मणशिरोमणि भी राजाके ही समान संतानहीन थे॥ ४-५॥

स राजा सहितस्ताभ्यामर्चयामास शंकरम्।
पुत्रार्थं शूलिनं शर्वं दश वर्षाण्यनन्यधीः॥ ६ ॥

राजाने अपनी दोनों पत्नियोंके साथ रहकर पुत्र-प्राप्तिके उद्देश्यसे एकाग्रचित्त हो दस वर्षोंतक शूलधारी भगवान् शंकरकी आराधना की॥ ६॥

स विप्रो वैष्णवं सत्रं पुत्रार्थे समयोजयत्।
अर्चितस्तेन राजेन्द्र शंकरो नीललोहितः॥ ७ ॥
आत्मानं दर्शयामास स्वप्ने राजानमब्रवीत्।
प्रीतोऽस्मि तव भद्रं ते वरं वरय सुव्रत॥ ८ ॥

राजेन्द्र! ब्राह्मण मित्रसहने पुत्रके लिये वैष्णवयागका अनुष्ठान किया। राजा ब्रह्मदत्तके द्वारा पूजित हुए नीललोहित भगवान् शंकरने स्वप्नमें उन्हें अपने दिव्य रूपका दर्शन कराया और कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नरेश! तुम्हारा कल्याण हो! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो'॥ ७-८॥

अथ राजा जगन्नाथमुवाचेदं स्मयन्निव।
पुत्रौ मम भवेतां हि तथेत्युक्त्वा वृषध्वजः॥ ९ ॥
अन्तर्धानं गतः शम्भुः प्रतिबुद्धस्ततो नृपः।

राजाने मुसकराते हुए-से भगवान् विश्वनाथसे यह बात कही—'प्रभो! मेरे दो पुत्र हों।' तब 'तथास्तु' (ऐसा ही हो) यह कहकर वृषभध्वज भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् राजाकी नींद खुल गयी॥ ९½॥

सोऽपि मित्रसहो विद्वान् देवं केशवमव्ययम्॥ १० ॥
पञ्चवर्षं जगन्नाथमर्चयामास भक्तितः।

विद्वान् मित्रसहने भी अविनाशी जगदीश्वर भगवान् केशवकी पाँच वर्षोंतक बड़े भक्तिभावसे आराधना की॥ १०½॥

अर्चितस्तेन विप्रेण देवदेवो जनार्दनः॥ ११ ॥
पुत्रमेकं ददौ तस्मै स्वात्मना सदृशं हरिः।

उन ब्राह्मणसे पूजित हो देवाधिदेव जनार्दन हरिने उन्हें अपने ही-जैसा एक पुत्र प्रदान किया॥ ११½॥

ते भार्ये गर्भमाधत्तां तेजसा शंकरस्य ह॥ १२ ॥
विप्रभार्या महाराज वैष्णवं तेज आदधत्।

महाराज! राजाकी उन दोनों पत्नियोंने भगवान् शंकरके तेजसे गर्भ धारण किया और ब्राह्मणकी पत्नीने वैष्णव तेजको ही गर्भके रूपमें धारण किया॥ १२½॥

महिष्यौ ते महावीर्यौ पुत्रौ शंकरनिर्मितौ॥ १३ ॥
असूयेतां महीपाल क्रमेणैव नृपस्य ह।

महीपाल! राजाकी उन दो रानियोंने भगवान् शंकरके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृपासे प्राप्त हुए दो महापराक्रमी पुत्रोंको क्रमशः जन्म दिया था ॥ १३½ ॥

स तयोश्च महाराज नामकर्मादिकाः क्रियाः ॥ १४ ॥
चकार विधिवत् सर्वा विप्रेभ्योऽदान्महद्धनम् ।

महाराज जनमेजय ! ब्रह्मदत्तने उन दोनों पुत्रोंके नामकर्म आदि सारे संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न किये और ब्राह्मणोंको बहुत धन दिया ॥ १४½ ॥

स च विप्रो विनीतात्मा पुत्रमेकं हि लब्धवान् ॥ १५ ॥
साक्षादिव जगन्नाथं स्थितं पुत्रात्मना नृप ।

नरेश्वर ! विनयशील हृदयवाले ब्राह्मण मित्रसहने भी एक पुत्र प्राप्त किया, जिसके रूपमें मानो साक्षात् जगन्नाथ श्रीहरि ही उनके घरमें आ गये हों ॥ १५½ ॥

जातकर्मादिकं सर्वं ब्राह्मणः स चकार ह ॥ १६ ॥

ब्राह्मणने भी पुत्रके जातकर्म आदि सभी संस्कार पूर्ण किये ॥ १६ ॥

तौ कुमारावयं चैव त्रयः सवयसोऽभवन् ।
वेदानधीत्य ते सर्वाञ्छ्रुत्वा चान्वीक्षिकीं तथा ॥ १७ ॥
धनुर्वेदे तथाऽस्त्रे च निपुणास्तेऽभवंस्तदा ।

वे दोनों राजकुमार और यह ब्राह्मणपुत्र तीनों ही समवयस्क थे । उन्होंने सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करके आन्वीक्षिकी विद्या (वेदान्त आदि) का अनुशीलन करनेके पश्चात् धनुर्वेद तथा सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञानमें निपुणता प्राप्त की ॥ १७½ ॥

हंसो ज्येष्ठो नृपसुतो डिम्भकोऽनन्तरोऽभवत् ॥ १८ ॥
स च विप्रसुतो राजन् जनार्दन इति स्मृतः ।
अन्योन्यं मित्रतां याताः सर्वे चैव कुमारकाः ॥ १९ ॥

ज्येष्ठ राजकुमारका नाम हंस था और उससे छोटा डिम्भक नामसे प्रसिद्ध हुआ । राजन् ! ब्राह्मणपुत्रका नाम जनार्दन रखा गया था । वे सभी कुमार एक दूसरेके प्रति मित्रभाव रखते थे ॥ १८-१९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोत्पत्तौ चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भककी उत्पत्तिविषयक एक सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

हंस और डिम्भककी तपस्या, वरप्राप्ति, जनार्दनसहित उन दोनोंका विवाह तथा तीनों कुमारोंकी धर्मनिष्ठा

वैशम्पायन उवाच

हंसश्च डिम्भकश्चैवं तपश्चर्तुं महामती ।
मनश्चक्रतुरात्मांशौ शंकरस्य नृपोत्तम ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—नृपश्रेष्ठ ! राजकुमार हंस और डिम्भक भगवान् शंकरके अपने अंशसे उत्पन्न और परम बुद्धिमान् थे । उन दोनोंने तपस्या करनेका विचार किया ॥ १ ॥

गत्वा तु हिमवत्पार्श्वं तपश्चक्रतुरञ्जसा ।
उद्दिश्य शंकरं शर्वं नीलग्रीवमुमापतिम् ॥ २ ॥
वीर्यास्त्रे चैव नौ स्यातामित्याधाय तु मानसे ।
एकाग्रौ प्रयतौ भूत्वा वाय्वम्बुप्राशिनौ नृप ॥ ३ ॥

नरेश्वर ! हिमालयके पास जाकर वायु और जलका आहार करते हुए वे दोनों एकाग्र एवं संयतचित्त हो मनमें यह संकल्प लेकर कि 'हमें दिव्य पराक्रम और अस्त्र प्राप्त हो जायँ' कल्याणकारी कष्टहारी नीलकण्ठ भगवान् उमापतिकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे सानन्द तपस्या करने लगे ॥ २-३ ॥

नमस्ते देवदेवेति शंकरेति दिवानिशम् ।
हर शर्व शिवानन्द नीलग्रीव उमापते ॥ ४ ॥
वृषध्वज विरूपाक्ष हर्यक्ष जगतां पते ।
भक्तप्रिय गिरीशेश वासुदेव शिवाच्युत ॥ ५ ॥
सद्योजात महादेव देवदेव गुहाशय ।
भूतभावन देवेश प्रणवात्मन् सदाशिव ॥ ६ ॥
इत्यादिनामभिर्नित्यं स्तुवन्तौ शंकरं भवम् ।
हृदि कृत्वा विरूपाक्षं तपस्तेपतुरञ्जसा ॥ ७ ॥

वे दिन-रात देवाधिदेव ! शंकर ! हर ! शर्व ! शिवानन्द ! नीलग्रीव ! उमापते ! वृषभध्वज ! विरूपाक्ष ! हर्यक्ष ! जगत्पते ! भक्तप्रिय ! गिरीश ! ईश ! वासुदेव ! शिव ! अच्युत ! सद्योजात ! महादेव ! देवदेव ! अन्तर्यामीरूपसे हृदयगुहामें शयन करनेवाले ! भूतभावन ! देवेश्वर ! ओङ्कारस्वरूप ! सदाशिव ! आपको नमस्कार है । इत्यादि रूपसे भगवान्के नामोंद्वारा नित्य-निरन्तर कल्याणकारी भगवान् भवकी स्तुति करते हुए उन्हीं भगवान् विरूपाक्ष (शिव) को हृदयमें धारण करके सुखपूर्वक तपस्यामें लगे रहे ॥ ४—७ ॥

निर्ममौ निरहंकारौ मौनव्रतसमास्थितौ ।
वर्षाणीह तदा राजन् पञ्च चक्रतुरोजसा ॥ ८ ॥
ततः प्रीतोऽभवच्छर्वस्ताभ्यां संयमनेन च ।
स ददौ दर्शनं नैजं व्याघ्रचर्माम्बरो हरः ॥ ९ ॥
त्रियक्षः शंकरः शर्वः शूलपाणिरुमापतिः ।

राजन् ! उनमें ममता और अहंकारका अभाव हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गया। वे मौनव्रतका आश्रय लेकर उन दिनों पाँच वर्षोंतक उत्साहपूर्वक तपस्यामें लगे रहे। उन दोनोंके तप और संयमसे भगवान् शंकरको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उन दोनोंको अपने स्वरूपका दर्शन दिया। उस समय उनके श्रीअङ्गोंपर व्याघ्रचर्ममय वस्त्र शोभा पा रहा था। वे पापहारी, त्रिनेत्रधारी और कल्याणकारी उमावल्लभ भगवान् शिव हाथमें त्रिशूल लिये वहाँ उपस्थित थे॥ ८-९½॥

अग्रतः संस्थितं शर्वं चन्द्रार्धकृतशेखरम्।
तौ दृष्ट्वा प्रीतमनसौ नमश्चक्रतुरञ्जसा॥ १०॥

चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिवको अपने सामने खड़ा देख वे दोनों प्रसन्नचित्त हो उन्हें बारंबार नमस्कार करने लगे॥

श्रीभगवानुवाच

वरं वरय भद्रं वां यथेच्छा वां तथास्तु वै।
तावूचतुस्तदा राजन् प्रीतस्त्वं भगवन् यदि॥ ११॥
देवासुरचमूमुख्यैर्यक्षगन्धर्वदानवैः।
आवामजय्यौ सर्वात्मन्नेष नौ प्रथमो वरः॥ १२॥

तब श्रीभगवान् बोले—राजकुमारो! तुम दोनोंका कल्याण हो! तुम कोई वर माँगो! तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वह पूर्ण हो। राजन्! यह सुनकर वे दोनों बोले—'भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो हम आपकी कृपासे देवताओं और असुरोंके मुख्य-मुख्य सेनापतियों, यक्षों, गन्धर्वों और दानवोंके लिये भी अजेय हो जायँ। सर्वात्मन्! यही हम दोनोंका पहला वर है॥ ११-१२॥

द्वितीयो नौ विरूपाक्ष रौद्रास्त्राणां च संग्रहः।
माहेश्वरं तथा रौद्रमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत्॥ १३॥

'विरूपाक्ष! हमारा दूसरा वर यह है कि हमारे पास सभी भयंकर अस्त्रोंका संग्रह हो। माहेश्वरास्त्र, रौद्रास्त्र तथा महान् ब्रह्मशिर नामक अस्त्र हमें उपलब्ध हों॥ १३॥

अभेद्यं कवचं दिव्यमच्छेद्यं चापि कार्मुकम्।
परशुं च तथा शर्व सदा रक्षार्थमेव च॥ १४॥

'शर्व! अभेद्य कवच, दिव्य एवं अच्छेद्य धनुष और परशु—ये सदा हमें रक्षाके लिये सुलभ हों॥ १४॥

सहायौ द्वौ महादेव भूतौ युद्धे हि गच्छताम्।
एवमस्त्विति देवेश आह भृङ्गिरिटी हरः॥ १५॥
कुण्डोदरं विरूपाक्षं सर्वप्राणिहिते रतम्।
युवामथ च भूतेशौ सहायौ सततं रणे॥ १६॥
संग्रामं गच्छतां घोरमेतयोर्बलशालिनोः।
इत्युक्त्वा भगवाञ्छर्वस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १७॥

'महादेव! युद्धमें आपके दो-दो भूत हमारी सहायताके लिये जाया करें।' तब देवेश्वर हरने 'ऐसा ही होगा', यह कहकर अपने दो पार्षद भृङ्गि और रिटिसे तथा कुण्डोदर एवं समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले विरूपाक्षसे कहा—'तुम दोनों दो-दो करके दो भूतेश्वरों, तुम युद्धके अवसरपर सदा घोर-से-घोर संग्राममें इन दोनों बलशाली वीरोंकी सहायताके लिये अवश्य पहुँच जाना।' ऐसा कहकर भगवान् शर्व वहीं अन्तर्धान हो गये॥ १५—१७॥

ततस्तौ वीर्यसम्पन्नौ हंसो डिम्भक एव च।
कृतास्त्रौ शस्त्रसम्पन्नौ चापिनौ वीर्यवत्तरौ॥ १८॥

तदनन्तर बल और पराक्रमसे सम्पन्न हंस और डिम्भक सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता, अस्त्र-शस्त्रोंके सञ्चयसे युक्त, धनुर्धर एवं अत्यन्त बलवान् हो गये॥ १८॥

आमुक्तकवचौ वीरावजय्यौ देवदानवैः।
अत्यन्तभक्तौ देवेशे शंकरे नीललोहिते॥ १९॥

कवच बाँधकर वे दोनों वीर जब युद्धमें खड़े होते, उस समय देवता और दानवोंके लिये भी उन्हें जीतना असम्भव हो जाता था। नीललोहित भगवान् शंकरमें उन दोनोंकी बड़ी भक्ति थी॥ १९॥

नित्योत्सवकरौ देवे भस्मोद्धूलनशोभिनौ।
कृतत्रिपुण्ड्रकौ नित्यं जटायुक्तशिरोधरौ॥ २०॥

वे महादेवजीके लिये नित्य उत्सव रचाते, अपने अङ्गोंमें भस्म लगाकर सुशोभित होते, ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाते और सदा सिरपर जटाएँ धारण करते थे॥ २०॥

रुद्राक्षार्पितसर्वाङ्गौ व्याघ्रचर्माम्बरावृतौ।
नमः शिवाय शान्ताय महादेवाय धीमते॥ २१॥
इत्यादिभिर्महादेवं स्तुवन्तौ नामभिः शिवम्।
साक्षादिव महादेवौ रेजतुर्जलधारिणौ॥ २२॥

सारे अङ्गोंमें रुद्राक्ष धारण करते, अपने अङ्गोंको व्याघ्रचर्मसे आच्छादित करते और 'परमबुद्धिमान् शान्तस्वरूप महान् देव शिवको नमस्कार है' इत्यादि नामोंद्वारा महादेव शिवकी स्तुति करते थे। इस प्रकार वे दोनों अपनी भीगी जटाओंमें जल धारण करके साक्षात् गङ्गाधर महादेवके दो विग्रहोंके समान शोभा पाते थे॥ २१-२२॥

ततः स्वभवनं गत्वा पितुः पादावगृह्यताम्।
पितुश्च सख्युर्बलिनौ मातुश्च चरणौ तदा॥ २३॥

तदनन्तर उन दोनों बलवान् वीरोंने अपने घर जाकर पिताके चरण पकड़े, पिताके सखा मित्रसहके पैर छुये और माताके चरणोंमें प्रणाम किया॥ २३॥

जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कालेन महता नृप।
विद्यापारं महाबुद्धिर्युक्तेनासावुपेयिवान्॥ २४॥

नरेश्वर! परम बुद्धिमान् धर्मात्मा जनार्दनने भी दीर्घ-कालतक अध्ययन करके योगयुक्त होकर सम्पूर्ण विद्याओंमें पारङ्गत योग्यता प्राप्त की॥ २४॥

स च विष्णुं हृषीकेशं पीतकौशेयवाससम्।
ब्रह्मतत्त्वपरो नित्यमुपास्ते विजितेन्द्रियः॥ २५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके ब्रह्मतत्त्वके चिन्तनमें तत्पर रहकर नित्य-निरन्तर इन्द्रियोंके प्रेरक, रेशमी पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुकी उपासना करता था ॥ २५ ॥

हंसश्च डिम्भकश्चैव कृतदारो बभूवतुः ।
जनार्दनोऽपि धर्मात्मा कृतदारो बभूव ह ॥ २६ ॥

हंस और डिम्भकके विवाह हो गये, फिर धर्मात्मा जनार्दनने भी पत्नीका पाणिग्रहण किया ॥ २६ ॥

सर्वे ते यज्ञनिरताः पञ्चयज्ञपरास्तथा ।
स्वदारनिरताः सर्वे गुरुशुश्रूषणे रताः ।
धर्म एव परं श्रेय इति ते मेनिरे नृप ॥ २७ ॥

वे सब-के-सब यज्ञमें तत्पर, पञ्चयज्ञपरायण और अपनी ही पत्नीमें अनुरक्त रहकर गुरुजनोंकी सेवामें संलग्न रहते थे । नरेश्वर ! वे यह मानते थे कि 'धर्म ही परम कल्याण करनेवाला है' ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भकका उपाख्यानविषयक एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

हंस और डिम्भककी मृगया

वैशम्पायन उवाच

ततः कदाचित् तौ वीरौ मृगयामाटतुः किल ।
जनार्दनेन सहितौ रथैरश्वैर्गजैरपि ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर किसी समय वे दोनों वीर हंस और डिम्भक जनार्दनको साथ ले रथ, हाथी और अश्वोंद्वारा शिकार खेलनेके लिये गये ॥

वनं गत्वा तु तौ वीरौ सिंहव्याघ्रांश्च जघ्नतुः ।
शितैर्बाणैर्महाराज वराहानथ सर्वशः ॥ २ ॥

महाराज ! वनमें जाकर वे दोनों वीर अपने पैने बाणोंद्वारा सिंहों, व्याघ्रों और वराहोंका सब प्रकारसे वध करने लगे ॥ २ ॥

व्यालानन्यान् मृगान् हिंस्राञ्छ्वभिश्च सहितौ नृप ।
एष आयाति विपुलो वराहो दीर्घलोचनः ॥ ३ ॥
एनं बाणेन संछिन्धि याति चायं मृगाधिपः ।
अयमन्योऽथ महिषः शृङ्गप्रोतसरीसृपः ॥ ४ ॥
एते खलु मृगाः सार्धं शावैर्बाधन्ति सर्वशः ।
एतद् भ्रमति सर्वत्र भीतं शशकुलं महत् ॥ ५ ॥
शावं स्तनं पिबत्साधु न हन्तव्यमिदं शुभम् ।
प्रहीतव्यमिदं सर्वं निरुध्य श्वगणैरिह ॥ ६ ॥
इत्यादिशब्दः सुमहान् मृगयां कुर्वतां नृप ।
क्षत्रियाणां नृपश्रेष्ठ व्याधानां चैव धावताम् ॥ ७ ॥

नरेश्वर ! सर्पों तथा अन्यान्य हिंसक पशुओंका कुत्तोंके साथ रहकर उन दोनों भाइयोंने वध किया । नृपश्रेष्ठ ! उस समय शिकार खेलते हुए इधर-उधर दौड़नेवाले क्षत्रियों और व्याधोंका यह महान् शब्द सब ओर सुनायी देता था, 'यह बड़े-बड़े नेत्रोंवाला विशाल वराह आ रहा है । यह सिंह जा रहा है, इसे बाणद्वारा काट डालो । यह दूसरा भैंसा जा रहा है, इसके सींगमें सर्प गुँथ गया है । ये मृग अपने बच्चोंके साथ बाधाका अनुभव करते हुए भाग रहे हैं । यह खरगोशोंका महान् समुदाय भयभीत होकर सर्वत्र भटक रहा है । यह छोटा बच्चा स्तन पी रहा है, इसे नहीं मारना चाहिये, ऐसा करनेमें ही भलाई है । इन सबको कुत्तोंसे घेरकर जीवित ही पकड़ लेना चाहिये' इत्यादि ॥ ३—७ ॥

हत्वा मृगान् सुबहुशो व्याघ्रान् सिंहान् नृपोत्तमौ ।
श्रमं च जग्मतुर्वीरौ मध्यं याते दिवाकरे ॥ ८ ॥

नृपश्रेष्ठ वीर हंस और डिम्भक दोपहर होते-होते बहुतसे हिंसक पशुओं, व्याघ्रों और सिंहोंको मारकर अधिक श्रमके कारण थक गये ॥ ८ ॥

अलं हि मृगयास्माकं श्रमः समुपजायते ।
इत्यूचतुर्महाराज पुष्करं जग्मतुः सरः ॥ ९ ॥

महाराज ! वे दोनों बोले—'अब शिकार बंद किया जाय, हमें थकावट हो रही है ।' यों कहकर वे पुष्कर सरोवरकी ओर चले गये ॥ ९ ॥

सरःसमीपमागम्य मुनिसिद्धनिषेवितम् ।
वीजन् मारुतसानूपं श्रमात् तत्र सुखस्थितौ ॥ १० ॥

सरोवरके तटपर आकर वे दोनों परिश्रमके कारण वहाँ सुखपूर्वक बैठ गये । वह स्थान मुनियों और सिद्धोंसे सेवित था तथा उस सजल प्रदेशमें मंद-मंद वायु इस प्रकार चल रही थी मानो व्यजन डुला रही हो ॥ १० ॥

ततो जनाः सरः सर्वे विगाह्य श्रमकर्षिताः ।
बिसान् प्रवालान् पद्मानां भक्षयामासुरार्तवत् ॥ ११ ॥

तदनन्तर परिश्रमसे थके हुए सब लोग उस सरोवरमें स्नान करके भूखसे पीड़ित हुएकी भाँति भसीड़ और कमलगट्टा खाने लगे ॥ ११ ॥

जनार्दनेन सहितौ हंसो डिम्भक एव च ।
सरः कचित् समाश्रित्य श्रमं संत्यज्य तिष्ठतः ॥ १२ ॥

जनार्दनसहित हंस और डिम्भक भी उस सरोवरके किसी तटका आश्रय लेकर अपना परिश्रम दूर करके बैठे हुए थे ॥ १२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्रम्य सरसस्तीरे तदाऽऽसाते सुखं नृपौ।
अशृण्वातां परं ब्रह्म मुनिमुख्यैः समीरितम् ॥ १३ ॥

सरोवरके तटपर विश्राम लेकर वे दोनों नरेश वहाँ सुख-पूर्वक बैठे ही थे कि उसी समय प्रधान-प्रधान मुनियोंद्वारा उच्चारित उत्तम वेदवाणी उन्हें सुनायी दी ॥ १३ ॥

मध्यंदिनं तथा सर्वैः सवनं सस्वरं नृपौ।
ततः प्रीतौ नृपौ भूत्वा श्रुत्वा वेदध्वनिं तदा ॥ १४ ॥
ऐच्छेतां तौ तदा द्रष्टुं यज्ञं मुनिकृतं तदा।

उन राजकुमारोंने मध्यंदिन सवनके समय सबके साथ सस्वर वेदपाठ सुना। उस समय उस वेदध्वनिको सुनकर वे दोनों नरेश बड़े प्रसन्न हुए और मुनियोंद्वारा किये गये उस यज्ञको देखनेकी इच्छा करने लगे ॥ १४½ ॥

स्थापयित्वा ततः सेनां सर्वां मृगसमन्विताम् ॥ १५ ॥
आदाय च महाचापे शरान् कतिचिदेव च।
जनार्दनस्तदा वीरौ हंसो डिम्भक एव च ॥ १६ ॥
पदातिनौ महाराज जग्मतुश्चाश्रमं किल।
महर्षेः काश्यपस्याथ सत्रं वैष्णवसंज्ञकम्।
यजतो मुनिभिः सार्धं जपहोमपरायणैः ॥ १७ ॥

महाराज! तदनन्तर मृगोंसहित उस सारी सेनाको वहीं ठहराकर स्वयं दो बड़े-बड़े धनुष और कुछ बाण लेकर जनार्दनसहित वे दोनों वीर हंस और डिम्भक पैदल ही उन महर्षि काश्यपके आश्रममें गये, जो जप और होममें तत्पर रहनेवाले मुनियोंके साथ वैष्णव सत्रका अनुष्ठान कर रहे थे ॥ १५–१७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने मृगयावर्णने षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसंगमें हंस और डिम्भककी मृगयाका वर्णनविषयक एक सौ छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

सेनासहित हंस और डिम्भकका पुष्कर-तटपर विश्राम, महर्षि कश्यपके वैष्णवसत्रका दर्शन तथा दुर्वासा आदि यतियोंके समुदायमें जाकर उनके प्रति अपनी अश्रद्धाका प्रदर्शन

वैशम्पायन उवाच

जनार्दनश्च धर्मात्मा हंसो डिम्भक एव च।
सदः प्रविश्य सत्रस्य नमश्चक्रुर्मुनीश्वरान् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उस समय धर्मात्मा जनार्दन, हंस और डिम्भकने उस यज्ञमण्डपमें प्रवेश करके उन मुनीश्वरोंको प्रणाम किया ॥ १ ॥

तानागतान् महात्मानो मुनयः शिष्यसंयुताः।
अर्घ्यपाद्यासनादीनि चक्रुः पूजां प्रयत्नतः ॥ २ ॥

शिष्योंसहित उन महात्मा मुनियोंने अर्घ्य, पाद्य तथा आसन आदि देकर वहाँ पधारे हुए उन अतिथियोंका यत्न-पूर्वक सत्कार किया ॥ २ ॥

तौ नृपौ स च विप्रेन्द्रः सपर्यां प्रतिगृह्य च।
प्रीतात्मानो महात्मान आसते ससुखं नृप ॥ ३ ॥

नरेश्वर! वे दोनों राजकुमार और वह विप्रवर जनार्दन तीनों महामनस्वी पुरुष वह सत्कार ग्रहण करके मन-ही-मन प्रसन्न होकर वहाँ सुखपूर्वक बैठे ॥ ३ ॥

ततो हंसो बभाषे तान् मुनीन् संयतवाङ् नृप।
पिता हि नौ मुनिश्रेष्ठा यष्टुमैच्छत् ससाधनम् ॥ ४ ॥

राजन्! तत्पश्चात् वाणीको संयममें रखनेवाले हंसने उन मुनियोंसे कहा—'मुनिश्रेष्ठगण! हम दोनोंके पिता साधन-सहित राजसूय यज्ञ करनेकी इच्छा रखते हैं ॥ ४ ॥

गन्तव्यं तत्र युष्माभिः सत्रान्ते मुनिसत्तमाः।
राजसूयेन यज्ञेन कृत्वा दिग्विजयं वयम् ॥ ५ ॥
याजयिष्यामहे विप्राः पितरं धार्मिकं नृपम्।
आयान्तु तत्र विप्रेन्द्राः सशिष्याः सपरिच्छदाः ॥ ६ ॥

'मुनिवरो! इस सत्रके अन्तमें आपलोगोंको मेरे पिताके उस यज्ञमें पधारना चाहिये। ब्राह्मणो! हमलोग दिग्विजय करके अपने पिता धर्मात्मा नरेशसे राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करायेंगे। उसमें शिष्यों तथा अग्निहोत्र आदि सामग्रियों-सहित आप सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण अवश्य पधारें ॥ ५-६ ॥

वयमद्यैव सहितौ दिशो जेष्यामहे वयम्।
शक्ता वयमिहैवैतत् कर्तुं सैनिकसंचयैः ॥ ७ ॥
आवयोः पुरतः स्थातुं न शक्ता देवदानवाः।
कैलासनिलयाद् देवाद् वरं लब्धाः स यत्नतः ॥ ८ ॥
अजय्यौ शत्रुसंघानामस्त्राणि विविधानि च।
इत्युक्त्वा विररामैव हंसो मदबलान्वितः ॥ ९ ॥

'हम दोनों भाई सदा एक साथ रहनेवाले हैं। हमारे साथ जनार्दनजी भी हैं। हम तीनों आज ही दिग्विजय प्रारम्भ कर देंगे। यों तो अपने सैनिकसमूहोंद्वारा हमलोग ही इस यज्ञका अनुष्ठान कर सकते हैं; क्योंकि हमारे सामने युद्धमें दानव और देवता भी नहीं ठहर सकते। हमने कैलासवासी महादेवजीसे यत्नपूर्वक वर प्राप्त किया है। हम शत्रुसमूहोंके लिये अजेय हैं और हमारे पास नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र हैं।' ऐसा कहकर बलके मदसे उन्मत्त हुआ हंस चुप हो गया ॥ ७–९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुनय ऊचुः

यदि स्यात् तत्र गच्छामो वयं शिष्यैर्नृपोत्तम।
आस्महे वान्यथा राजन्नित्यूचुः किल तापसाः॥ १०॥

मुनि बोले—नृपश्रेष्ठ! यदि आपका यज्ञ होगा तो हम शिष्योंसहित उसमें अवश्य चलेंगे। राजन्! अन्यथा (यदि वह यज्ञ नहीं हुआ तो) हम यहीं रहेंगे। ऐसा उन तपस्वी मुनियोंने उत्तर दिया॥ १०॥

वैशम्पायन उवाच

ततो देशान् महाराज गन्तुं निश्चितमानसौ।
पुष्करस्योत्तरं तीरं दुर्वासा यत्र तिष्ठति॥ ११॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज! तदनन्तर उस स्थानसे जानेका निश्चय करके वे दोनों पुष्करके उत्तर तटपर गये, जहाँ दुर्वासा मुनि रहते थे॥ ११॥

यतयो नियता भूत्वा मन्त्रब्रह्मनिषेविणः।
ब्रह्मसूत्रपदे सक्तास्तदर्थालोकतत्पराः॥ १२॥

वहाँ यतिगण शौच-संतोष आदि नियमोंमें तत्पर रहकर मन्त्रमय ब्रह्म (प्रणव) का जप एवं उसके अर्थका चिन्तन करते थे। ब्रह्मसूत्रके पदोंके स्वाध्यायमें संलग्न रहकर उनके अर्थ (ब्रह्म) के साक्षात्कारके लिये यत्नशील रहते थे॥ १२॥

निर्ममा निरहंकाराः कौपीनाच्छादनव्रताः।
तमात्मानं जगद्योनिं विष्णुं विश्वेश्वरं विभुम्॥ १३॥
ब्रह्मरूपं शुभं शान्तमक्षरं सर्वतोमुखम्।
वेदान्तमूर्तिमव्यक्तमनन्तं शाश्वतं शिवम्॥ १४॥
नित्ययुक्तं विरूपाक्षं भूताधारमनामयम्।
ध्यायन्तः सर्वदा देवं मनसा सर्वतोमुखम्॥ १५॥
दुर्वाससा सदोपास्यं वेदान्तैकरसं गुरुम्।

उनमें ममता और अहंकारका सर्वथा अभाव था। वे नियमपूर्वक कौपीन तथा आच्छादन वस्त्र धारण करते थे। जो सबके आत्मा, जगत्‌की उत्पत्तिके कारण, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण विश्वके नियन्ता, विभु, ब्रह्मस्वरूप, शुभ, शान्त, अक्षर (अविनाशी), सब ओर मुखवाले, वेदान्तस्वरूप, अव्यक्त, अनन्त, सनातन, कल्याणमय, नित्ययुक्त, विरूपाक्ष (रुद्ररूप), सम्पूर्ण भूतोंके आधार, अनामय, सर्वतोमुख, दुर्वासाजीके द्वारा सदा उपासनीय, वेदान्तैकरस तथा गुरुस्वरूप हैं, उन परमात्मदेवका वे यतिगण अपने मनसे सदा ही चिन्तन करते थे॥ १३–१५½॥

तर्कनिश्चिततत्त्वार्था ज्ञाननिर्मलचेतसः॥ १६॥
हंसाः परमहंसाश्च शिष्या दुर्वाससः प्रभो।

प्रभो! वे हंस और परमहंससंज्ञक संन्यासी मुनिवर दुर्वासाके शिष्य थे। उन्होंने तर्कयुक्त बुद्धिके द्वारा परमार्थका निश्चय कर लिया था और ज्ञानके आलोकसे उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया था॥ १६½॥

गत्वा तत्र महात्मानौ तौ दृष्ट्वा तूर्ध्वरेतसम्॥ १७॥
दुर्वाससं महाबुद्धिं विचिन्वानं परं पदम्।

उन दोनों महामनस्वी राजकुमारोंने वहाँ पहुँचकर ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) परम बुद्धिमान् एवं परमपदके अनुसंधानमें लगे हुए दुर्वासा मुनिका दर्शन किया॥ १७½॥

क्रुद्धो यदि स दुर्वासा दग्धुं लोकानिमान् क्षमः॥ १८॥
देवा अपि च यं द्रष्टुं क्रुद्धं वै न क्षमाः सदा।
रोषमूर्तिः सदा यस्तु रुद्रात्मा विश्वरूपधृक्॥ १९॥

वे दुर्वासामुनि यदि कुपित हो जायँ तो इन सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध करनेमें समर्थ हैं। कुपितावस्थामें देवता भी उनका दर्शन करनेका कभी साहस नहीं कर सकते। वे सदा रोषमूर्ति माने गये हैं। उन्हें विश्वरूपधारी रुद्रात्मा बताया गया है॥ १८-१९॥

रक्तकौपीनवसनो हंसः परम एव च।
दृष्ट्वैनं च तयोरेवं बुद्धिरासीन्महामते॥ २०॥

वे गेरुए रंगका कौपीन वस्त्र धारण किये हुए थे और परमहंसस्वरूपमें स्थित थे। महामते! उनका दर्शन करके उन दोनों राजकुमारोंके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—॥२०॥

को नामासौ महाभूतः काषायी वर्णवित्तमः।
कश्चायमाश्रमो नाम विहाय च गृहाश्रमम्॥ २१॥

'यह कौन महाभूत है, जो काषायवस्त्र पहने हुए है, वर्ण-विभागके विद्वानोंमें यह श्रेष्ठ जान पड़ता है (क्योंकि इसमें किसी भी वर्णके चिह्न नहीं हैं!) तथा गृहस्थाश्रमको छोड़कर यह आश्रम भी कौन-सा है?॥ २१॥

गृहस्थ एव धर्मात्मा गृहस्थो धर्मवित्तमः।
गृहस्थो धर्मरूपस्तु गृहस्थो वर्ण एव च॥ २२॥

'गृहस्थ ही धर्मात्मा होता है, गृहस्थ ही धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ है, गृहस्थ ही धर्मस्वरूप है तथा गृहस्थ ही चातुर्वर्ण्यमय है॥ २२॥

गृहस्थश्च सदा माता प्राणिनां जीवनं सदा।
तं विनान्येन रूपेण वर्तते योऽतिमूर्खवत्॥ २३॥

'गृहस्थ सदा सभी प्राणियोंका माताके समान पालन करनेवाला और सर्वदा उनके जीवनकी रक्षा करनेवाला है। उस आश्रमको छोड़कर जो दूसरे रूपसे बर्ताव करता है, वह अत्यन्त मूर्खके समान है॥ २३॥

उन्मत्तोऽयं विरूपोऽयमथवा मूर्ख एव च।
ध्यायन्निव सदा चायमास्ते वञ्चयितापि वा॥ २४॥

'यह तो कोई पागल, विचित्र रूपधारी अथवा मूर्ख ही है। यह ध्यान करता हुआ-सा बैठा है; परंतु ठग ही जान पड़ता है॥ २४॥

किमेते प्राकृतज्ञाना ध्यायन्त इति किंचन।
वयमेतान् दुष्परोहाश्रमान्तरकल्पकान्॥ २५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थापयिष्यामहे सर्वान् मन्दबुद्धीनिमान् गृहे।
बलादेव द्विजानेतान् मूढविज्ञानतत्परान् ॥ २६ ॥

'ये प्राकृत ज्ञानवाले मनुष्य क्यों कुछ ध्यान-सा कर रहे हैं, इनके लिये उन्नतिके पथपर आरूढ़ होना सर्वथा कठिन है। ये दूसरे आश्रमोंकी कल्पना करनेवाले हैं। हम इन समस्त मन्दबुद्धि द्विजोंको, जो मूढ़ ज्ञानमें तत्पर हैं, बलपूर्वक गृहस्थाश्रमके भीतर स्थापित करेंगे ॥ २५-२६ ॥

असद्ग्राहगृहीतांश्च बालिशान् दुर्मतीनिमान्।
एषां शास्ता च को मूढो न विप्रो वयमत्र ह ॥ २७ ॥
धर्म्ये वर्त्मनि संस्थाप्य पुनर्यास्याव निर्वृतौ।

'क्योंकि ये मूर्ख लोग दुराग्रहसे गृहीत हैं और इनकी बुद्धि खोटी है। इन सबको उपदेश देनेवाला यह कौन मूर्ख बैठा है ? यह ब्राह्मण तो नहीं है ! अब हमलोग यहाँ आ गये हैं तो पहले इनके इस गुरुको ही धर्मके मार्गपर स्थापित करके फिर संतोषपूर्वक यहाँसे घरको जायँगे' ॥२७½॥

इति संचिन्त्य तौ वीरौ विप्रेण सहितौ नृप ॥ २८ ॥
जनार्दनेन राजानौ मोहाद् भाग्यक्षयान्नृप।
समीपं तस्य राजेन्द्र यतेः संयतचेतसः ॥ २९ ॥
गत्वा च प्रोचतुरुभौ दुर्वाससमतीन्द्रियम्।
यतींश्च नियतान् क्रुद्धौ राजानौ राजसत्तम ॥ ३० ॥

नरेश्वर ! ऐसा निश्चय करके ब्राह्मण जनार्दनके साथ वे दोनों वीर राजा मोह अथवा भाग्यक्षयके कारण उन संयतचित्त यतिके पास गये। राजेन्द्र ! नृपशिरोमणे ! वहाँ जाकर क्रोधमें भरे हुए उन दोनों राजाओंने इन्द्रियातीत दुर्वासा तथा नियमपरायण यतियोंसे इस प्रकार कहा २८–३०

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानविषयक एक सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

हंस और डिम्भकद्वारा संन्यासकी निन्दा तथा जनार्दनद्वारा संन्यास-आश्रमका मण्डन

हंसडिम्भकावूचतुः

ज्ञानलेशाद् विहीनात्मन् किं ते व्यवसितं द्विज।
कश्चायमाश्रमो विप्र भवता यः समाश्रितः ॥ १ ॥

हंस और डिम्भक बोले—ओ द्विज ! यह तूने क्या करनेका निश्चय किया है ? तेरा अन्तःकरण तो लेशमात्र ज्ञानसे भी शून्य जान पड़ता है। विप्र ! तूने जिसका आश्रय लिया है, यह कौन-सा आश्रम है ? ॥ १ ॥

गृहमेधं परित्यज्य किं त्वया साधितं पदम्।
दम्भ एव भवान् व्यक्तं शङ्के नास्त्यत्र कारणम् ॥ २ ॥

गृहस्थाश्रमको त्यागकर तूने किस अभिलषित वस्तुकी सिद्धि प्राप्त कर ली है; मुझे संदेह है कि 'तू स्पष्ट ही मूर्तिमान् दम्भ है', इसके सिवा इस त्यागमें दूसरा कोई कारण नहीं है ॥ २ ॥

लोकांश्चेमान् सदा मूढ नाशयिष्यसि निर्वृतः।
एतान् सर्वान् विनेतासि नरके पातयिष्यसि ॥ ३ ॥

मूढ़ ! तू सदा इन सब लोगोंका नाश करेगा और इसीमें सुख मानेगा। इन सबका शिक्षक बना हुआ है, अतः अपने साथ इन्हें भी नरकमें गिरायेगा ॥ ३ ॥

स्वयं नष्टः परान् मूर्ख नाशयिष्यसि यत्नतः।
अहो शास्ता कथं नास्ति तव मन्दमतेर्द्विज ॥ ४ ॥
सर्वथा त्वद्विनेता च पापो नास्त्यत्र संशयः।

मूढ़ ब्राह्मण ! तू स्वयं तो नष्ट हो ही गया है, दूसरोंका भी यत्नपूर्वक नाश करेगा। अहो ! तुझ मन्दबुद्धि द्विजका कोई शासन क्यों नहीं करता है ? जिसने तुझे ऐसी शिक्षा दी है, वह भी सर्वथा पापी है; इसमें संशय नहीं है ॥४½॥

त्यक्त्वेममाश्रमं विप्र गृही भव यतात्मवान् ॥ ५ ॥
पञ्च यज्ञान् सदा विप्र कुरु यत्नपरो भव।
ततः स्वर्गं परं गत्वा स्वर्गे हि सुमहत् सुखम् ॥ ६ ॥
एष श्रेयःपथो विप्र जीविते चेत् स्पृहा तव।

विप्र ! इस आश्रमको छोड़कर गृहस्थ हो जा और मनको संयममें रख। ब्रह्मन् ! पाँच महायज्ञोंका अनुष्ठान कर और इसीके लिये निरन्तर प्रयत्नशील बना रह। तदनन्तर उत्तम स्वर्गलोकमें जाकर सुखी हो जा; क्योंकि स्वर्गलोकमें महान् सुख प्राप्त होता है। बाबाजी ! यही कल्याणका मार्ग है; यदि तुझे जीनेकी इच्छा हो तो यही कर ॥ ५–६½ ॥

इत्युक्तवन्तौ धर्मात्मा श्रुत्वा विप्रो जनार्दनः ॥ ७ ॥
उवाच च यतिं दृष्ट्वा प्रणम्यासौ सुनीतवत्।

धर्मात्मा ब्राह्मण जनार्दनने उन दोनोंकी कही हुई ऐसी बात सुनकर यति दुर्वासाकी ओर देखा और अत्यन्त विनीतकी भाँति उनके चरणोंमें प्रणाम करके अपने मित्रोंसे कहा—॥

मा ब्रूतामीदृशं वाक्यं राजानौ मन्दतेजसौ ॥ ८ ॥
अश्राव्यमीदृशं घोरं लोकयोरुभयोरपि।
को वक्तुमीशो मन्दात्मा यदि जीवेत् सबान्धवः ॥ ९ ॥

'राजाओ ! तुम दोनोंकी बुद्धि और तेज दोनों मन्द हो गये हैं। मित्रो ! ऐसी बात मुँहसे न निकालो। ऐसा घोर अमङ्गलकारी वचन इहलोक और परलोकमें भी सुनने योग्य नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है; कौन मन्दबुद्धि मानव यदि वह बन्धु-बान्धवोंसहित जीवित रहना चाहता हो तो ऐसी बात कह सकता है ? ॥ ८-९ ॥

सर्वथा काल एवायं युवयोर्मन्दचेतसोः ।
समाप्त आयुषः शेषो ब्रह्मदण्डहतौ युवाम् ॥ १० ॥

'ये महात्मा तुम दोनों मन्दबुद्धि राजाओंके लिये सर्वथा कालरूप ही हैं ! जान पड़ता है तुम्हारी शेष आयु भी आज समाप्त हो गयी । तुम दोनों ब्रह्मदण्डद्वारा मारे गये ॥ १० ॥

एते हि यतयः शुद्धा ज्ञानदीपितचेतसः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति ॥ ११ ॥

'ये सब-के-सब शुद्ध हृदयवाले यति (संन्यासी) हैं। इनका अन्तःकरण ज्ञानके तेजसे प्रकाशित है । इन्होंने ज्ञानाग्निके द्वारा अपनी सारी संचित कर्मराशि दग्ध कर डाली है और ये अब अपने प्राणोंका ही प्राणस्वरूप अग्नियोंमें होम करते हैं ॥ ११ ॥

ऋते वामीदृशं वाक्यं कः समर्थो ह्यनुब्रुवन् ।
सर्वथा ज्ञातमस्माभिः समाप्तमिह जीवितम् ॥ १२ ॥

'ऐसे महात्माओंके प्रति तुम दोनोंको छोड़कर दूसरा कौन मनुष्य बारंबार ऐसी अनुचित बात कहनेमें समर्थ है ? हमने सर्वथा समझ लिया, तुम दोनोंकी जीवनलीला यहीं समाप्त हो गयी ॥ १२ ॥

चत्वार आश्रमाः पूर्वमृषिभिर्विहिता नृपौ ।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ॥ १३ ॥

'नरेश्वरो ! मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने पूर्वकालसे ही चार आश्रमोंका विधान किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक (संन्यासी) ॥ १३ ॥

तेषामग्र्यश्चतुर्थोऽयमाश्रमो भिक्षुकः स्मृतः ।
आस्ते तस्मिन् महाबुद्धिः स हि पुण्यतरः स्मृतः ॥ १४ ॥

'इनमें सबसे श्रेष्ठ यह चौथा आश्रम, जिसका नाम भिक्षु या संन्यास है, माना गया है । उस आश्रममें जिसकी महत्त्वपूर्ण बुद्धि है, वह महान् पुण्यात्मा बताया गया है ॥

नोपासिता भवद्भ्यां च वृद्धाः सम्यग् विनीतवत् ।
ज्ञानं नाप्तं तपस्विभ्यस्तथा चैवं वदेत कः ॥ १५ ॥

'तुम दोनोंने भलीभाँति विनीत पुरुषके समान कभी वृद्ध पुरुषोंकी उपासना या सेवा नहीं की है तथा तपस्वी मुनियोंसे ज्ञान नहीं प्राप्त किया है, यह बात स्पष्ट हो गयी; अन्यथा उस प्रकार सत्सङ्ग एवं ज्ञान प्राप्त करनेवाला कौन पुरुष ऐसी बात कह सकता है ? ॥ १५ ॥

अश्राव्यमीदृशं घोरं मया प्राणभृता नृप ।
किं करिष्यामि मन्दात्मन् मित्रत्वाद् भवतो नृप ॥ १६ ॥

'राजा हंस ! मैं प्राण रहते ऐसा घोर अनुचित शब्द नहीं सुन सकता; किंतु क्या करूँ ? मन्दात्मन् ! तू मेरा मित्र है, इसलिये कुछ करते नहीं बनता ॥ १६ ॥

ज्ञानं यदाप्तं भवता गुरुभ्य-
स्तदत्र दुःखाय हि केवलं नृप ।
ज्ञानं हि धर्मप्रभवं यथेष्टं
बलाद्धि पापस्य विधातृरूपम् ॥ १७ ॥

'नरेश्वर ! तूने गुरुजनोंसे जो ज्ञान प्राप्त किया था, वह तो यहाँ केवल दुःखका ही जनक हुआ । जो ज्ञान धर्माचरणसे प्राप्त होता है, वही यथेष्ट फलकी प्राप्ति करानेवाला है । बल अथवा हठसे प्राप्त किया हुआ ज्ञान तो पापका ही विधायक होता है ॥ १७ ॥

युवां विहाय यास्ये वा पतेयं वा शिलातलम् ।
पिबेयं वा विषं घोरं पतेयं वा महोर्मिषु ॥ १८ ॥

'मैं तुम दोनोंको छोड़कर चला जाऊँ, या ऊँचेसे पत्थर पर कूद पड़ूँ अथवा घोर विष पी लूँ किंवा महासागरकी तरङ्गोंमें गिर जाऊँ ॥ १८ ॥

आत्मानं वात्र संत्यक्ष्ये पश्यतां शृण्वतां पुनः ।
इत्युक्त्वा विललापैवं मा ब्रूतमिति तौ वदन् ॥ १९ ॥

'अथवा तुम सबके देखते-सुनते आत्महत्या कर लूँ।' ऐसा कहकर जनार्दन उन दोनों राजाओंसे 'ऐसी बात न कहो, न कहो' यह कहता हुआ इस प्रकार विलाप करने लगा ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भकका उपाख्यानविषयक एक सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमोऽध्यायः

दुर्वासाका रोष, हंसद्वारा उनका तिरस्कार, दुर्वासाद्वारा उन दोनोंके लिये शाप और जनार्दनके लिये वरदान

वैशम्पायन उवाच

ततः क्रुद्धोऽथ दुर्वासा धक्ष्यन्निव तयोरसून् ।
एकेनाक्ष्णाथ दुर्वासा रौद्रेणाग्नियुजा सदा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए दुर्वासाने सदा रौद्र अग्निसे युक्त एक नेत्रद्वारा इस प्रकार उन राजकुमारोंकी ओर देखा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानो उन दोनोंके प्राणोंको दग्ध कर डालेंगे ॥ १ ॥

पश्यंस्तौ च दुरात्मानौ रोषव्याकुलितेन्द्रियः ।
कुर्वन्निव तदा लोकान् भस्मभूतानिमान् नृप ॥ २ ॥

नरेश्वर ! उनकी इन्द्रियाँ रोषसे व्याकुल हो रही थीं। वे उस समय उन दुरात्मा राजकुमारोंकी ओर इस तरह देख रहे थे मानो इन सम्पूर्ण लोकोंको जलाकर भस्म कर देंगे ॥ २ ॥

ब्राह्मणं चक्षुषा पश्यन् सौम्येनान्येन केवलम् ।
उवाच वचनं राजन् ध्वंसत ध्वंसतेतरान् ॥ ३ ॥

साथ ही वे उस ब्राह्मण जनार्दनको ओर दूसरे नेत्रसे, जो केवल सौम्यभावसे युक्त था, देख रहे थे। राजन् ! इस तरह देखते हुए वे उन राजाओंसे बोले—'अरे ! अपने स्वजनोंके पास भाग जाओ ! भाग जाओ !!' ॥ ३ ॥

इतो गच्छत राजानौ किं विलम्बत मा चिरम् ।
न वां वचनसम्भूतं रोषं धारयितुं क्षमे ॥ ४ ॥

'यहाँसे जाओ ! क्यों विलम्ब करते हो ! शीघ्र भाग जाओ ! राजाओ ! तुम दोनोंकी बातोंसे जो रोष प्रकट हुआ है, उसे मैं अपने भीतर रोक रखनेमें असमर्थ हूँ ॥ ४ ॥

अन्यथा वो महीपालान् सर्वान् दग्धुमहं क्षमः ।
किमतः साहसं वक्तुं कश्च शक्नोति मत्परः ॥ ५ ॥

'चले जाओ ! नहीं तो मैं तुम सभी भूपालोंको जलाकर भस्म कर डालनेमें समर्थ हूँ। इससे बढ़कर दुःसाहसकी बात और क्या होगी ? कौन मेरे सामने ऐसी बात कह सकता है ? ॥ ५ ॥

दर्पं वां लोकविख्यातः शङ्खचक्रगदाधरः ।
व्यपनेष्यति मन्दशौ किं वां वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ६ ॥

'मन्दबुद्धि राजकुमारो ! इस समय तुम दोनोंसे क्या कहूँ ? तुम्हारे बढ़े हुए घमंडको शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले लोकविख्यात भगवान् श्रीकृष्ण चूर्ण कर देंगे' ॥ ६ ॥

तत उत्थाय धर्मात्मा गन्तुमैच्छद् यतीश्वरः ।
ततो निषेद्धुं हंसस्तं यतते स्म यतीश्वरम् ॥ ७ ॥

यह कहकर धर्मात्मा यतिराज दुर्वासा वहाँसे उठकर अन्यत्र जानेकी इच्छा करने लगे। तब हंस उन यतीश्वरको रोकनेका प्रयत्न करने लगा ॥ ७ ॥

तस्य बाहुं समादाय हंसो नृपवरोत्तम ।
कौपीनं चिच्छिदे क्रूरः कृतान्त इव सत्तम ॥ ८ ॥

राजाओंमें श्रेष्ठ जनमेजय ! साधुशिरोमणे ! कृतान्तके समान क्रूर हंसने दुर्वासाकी बाँह पकड़कर उनका कौपीन फाड़ डाला ॥ ८ ॥

यतयोऽन्ये पलायन्ति दिशो दश विचेतसः ।
कष्टं हेति वदन् विप्रो मित्रभावाज्जनार्दनः ॥ ९ ॥
न्यवारयद् यथाशक्ति किमिदं साहसं त्विति ।

यह देख दूसरे यति होश-हवास खोकर दसों दिशाओंमें भागने लगे। ब्राह्मण जनार्दन मित्रताके कारण 'हाय ! बड़े कष्टकी बात है' ऐसा कहता हुआ विलाप करने लगा। उसने यथाशक्ति रोका और कहा—'यह क्या दुःसाहस कर रहे हो ?' ॥ ९½ ॥

दुर्वासाः सत्यधर्मस्तु हन्तुमीशोऽपि तं ततः ॥ १० ॥
मन्दं मन्दमुवाचेदं हंसं डिम्भकमेव च ।

सत्यधर्मपरायण दुर्वासा उसे मार डालनेमें समर्थ होते हुए भी उस समय हंस और डिम्भकसे धीरे-धीरे इस प्रकार बोले—॥ १०½ ॥

शापेनाहं समर्थोऽपि हन्तुं राजकुलाधमौ ॥ ११ ॥
तथापि न करोम्यन्तं यतयो ह्यत्र ते वयम् ।

'राजवंशके नीच पुरुषो ! मैं शापद्वारा तुम दोनोंको मार डालनेमें समर्थ हूँ, तो भी तुम्हारा विनाश नहीं कर रहा हूँ; क्योंकि यहाँ हमलोग यतिधर्ममें प्रतिष्ठित हैं ॥ ११½ ॥

यो हि देवो जगन्नाथः केशवो यादवेश्वरः ॥ १२ ॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्गर्वं वां व्यपनेष्यति ।

'जो सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, यदुकुलके नायक तथा हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वे ही तुम दोनोंके दर्पका दलन करेंगे ॥ १२½ ॥

लोके तस्मिन् यदुश्रेष्ठे रक्षत्येवं जगत्पतौ ॥ १३ ॥
युवयोः सर्वथा जीवः सञ्जीव इति मे मतिः ।

'वे यदुश्रेष्ठ जगदीश्वर जब जगत्में इस प्रकार संरक्षण-कार्य कर रहे हैं, तब तुम दोनोंका पृथक्-पृथक् जीव सर्वथा श्रेष्ठ जीव है; ऐसा मेरा विश्वास है (क्योंकि उनके हाथसे मारे जानेपर तुम दोनोंकी सद्गति होगी) ॥ १३½ ॥

जरासंधोऽपि वां बन्धुः स च वक्तुं न चेच्छति ॥ १४ ॥
ईदृशं लोकविद्विष्टं स हि धर्मपथे सदा ।

'तुम दोनोंका सहायक बन्धु जरासंध भी कभी ऐसी लोकनिन्दित बात मुँहसे नहीं निकालना चाहता है। वह सदा धर्मके मार्गपर स्थित रहता है ॥ १४½ ॥

एतावता स वां बन्धुर्न हि भूयो भविष्यति ॥ १५ ॥
विद्वेषो ह्यस्तु वां तस्य मागधस्य महीपतेः ।

'तुम्हारे इस अपराधके कारण जरासंध अब फिर तुम्हारा बन्धु नहीं रह जायगा। उस मगधनरेशके साथ तुम्हारा विद्वेष हो जायगा ॥ १५½ ॥

श्रुत्वेदं घोररूपं तु स हि बन्धुः सहेत चेत् ॥ १६ ॥
धर्मनाशो भवेत् तस्य नात्र कार्या विचारणा ।

'यदि तुम्हारे इस भयंकर अपराधको सुनकर भी वह बन्धुभावसे चुपचाप सह लेगा तो उसके भी धर्मका नाश हो जायगा। इसमें अन्यथा विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है' ॥ १६½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्युक्त्वा गच्छ गच्छेति हंसं प्राह पुनः पुनः॥ १७ ॥
जनार्दनमुवाचेदं दुर्वासा यतिसत्तमः।
स्वस्त्यस्तु तव विप्रेन्द्र भक्तिरस्तु जनार्दने ॥ १८ ॥
संसृतिस्तव तस्यास्तु शङ्खचक्रगदाभृतः।
अद्य श्वो वा परश्वो वा साधुरेव सदा भवान् ॥ १९ ॥

ऐसा कहकर दुर्वासाने पुनः हंससे बारंबार कहा—'चले जाओ! चले जाओ!!' तदनन्तर यतिश्रेष्ठ दुर्वासा जनार्दनसे इस प्रकार बोले—'विप्रवर! तुम्हारा कल्याण हो! भगवान् जनार्दनमें तुम्हारी भक्ति बनी रहे। शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले उन भगवान्‌के साथ आज, कल या परसोंतक तुम्हारा समागम होगा। तुम सदा साधुस्वभावके ही बने रहोगे ॥ १७–१९ ॥

न हि साधोर्विनाशोऽस्ति लोकयोरुभयोरपि।
गच्छ सर्वं पितुर्ब्रूहि ज्ञात्वा वृत्तं यथाखिलम्॥ २०॥

'साधु पुरुषका दोनों लोकोंमें कभी विनाश नहीं होता। जाओ, सारी बातें जानकर अपने पिताको बताओ' ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने दुर्वासोभाषणे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस-डिम्भकोपाख्यानके प्रसंगमें दुर्वासाका भाषणविषयक एक सौ नौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०९ ॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः

दुर्वासा आदि मुनियोंका द्वारकागमन

वैशम्पायन उवाच

ततस्तौ हंसडिम्भकौ क्रुद्धौ कालेन चोदितौ।
शिक्यं कमण्डलुं चैव द्विदलं दारुमेव च ॥ १ ॥
दण्डान् पात्रविशेषांश्च छित्त्वा भित्त्वा च सर्वशः।
तस्मिन् देशे महाराज व्याधैर्मांसान्यदीदहन् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय! तदनन्तर कालसे प्रेरित हो क्रोधमें भरे हुए हंस और डिम्भकने उन यतियोंके छींके, कमण्डलु, दो दलोंसे युक्त काष्ठमय भोजनपात्र, दण्ड और दूसरे-दूसरे विभिन्न पात्रोंको तोड़-फोड़कर उसी स्थानमें व्याधोंद्वारा मांस पकवाये ॥ १-२ ॥

भक्षयित्वा ततो देशात् स्वपुरीं तौ प्रजग्मतुः।
जनार्दनश्च धर्मात्मा स्नेहादनुययौ तयोः ॥ ३ ॥

उन्हें खाकर वे दोनों उस स्थानसे अपने नगरको गये। धर्मात्मा जनार्दन भी स्नेहवश उन दोनोंका अनुसरण करता रहा ॥ ३ ॥

नष्टाविमाविति तदा स्म मेने दुःखितः परम्।

उसने अत्यन्त दुःखित होकर यह विश्वास कर लिया कि अब इन दोनोंके नष्ट होनेमें कोई संदेह नहीं है ॥ ३½ ॥

गतेषु तेषु सर्वेषु दुर्वासा यतिसत्तमः ॥ ४ ॥
पलायनपरान् सर्वानिदं प्राह यतीश्वरान्।

उन सबके चले जानेपर यतियोंमें श्रेष्ठ दुर्वासाने यहाँसे पलायन करनेवाले समस्त यतीश्वरोंसे इस प्रकार कहा—॥ ४½ ॥

इतो देशाद् विनिर्गत्य पुष्करात् पुण्यसंयुतात् ॥ ५ ॥
मन्दं मन्दं समाश्वस्य विश्रम्य च ततस्ततः।
प्रविश्य द्वारकां देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा च तस्मै प्रभवे वक्ष्यामो यतिसत्तमाः।

'यतिवरो! इस पुण्ययुक्त देश पुष्करसे निकलकर धीरे-धीरे सुस्ताते और यत्र-तत्र विश्राम करते हुए द्वारकापुरीमें प्रवेश करके हमलोग शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णसे मिलेंगे और उनसे अपनी सारी कष्ट-कथा कहेंगे ॥ ५-६½ ॥

स हि रक्षञ्जगदिदं धर्मवर्त्मनि संस्थितः ॥ ७ ॥
आद्यो लोकगुरुर्विष्णुर्यतात्मा तत्त्ववित्प्रियः।
उद्धृत्य कण्टकान् सर्वाञ्छशास पृथिवीमिमाम्॥ ८ ॥

'वे इस सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करते हुए धर्मके मार्गमें स्थित हैं। वे ही आदिपुरुष, लोकगुरु, सर्वव्यापी, मनको वशमें रखनेवाले और तत्त्ववेत्ताओंके प्रिय हैं। उन्होंने सारे कण्टकोंका उन्मूलन करके इस पृथ्वीका शासन किया है॥ ७-८॥

स च पापान् महाघोरान् सर्वान् पापकृतान् प्रभुः।
रक्षेन्नः सकलान् सर्वाञ्ज्ञानेषु नियतात्मनः ॥ ९ ॥

'वे ही प्रभु समस्त महाभयंकर, पापजन्मा पापियोंका उच्छेद करके अमानित्व और अदम्भित्व आदि ज्ञानसाधनोंमें नियतरूपसे मन लगानेवाले हम सम्पूर्ण यतियोंकी रक्षा करेंगे ॥ ९ ॥

इदमद्य क्षमं विप्रा यानमद्य विधीयताम्।
साहसं यत्कृतं ताभ्यां पात्रभेदादि सत्तमाः ॥ १० ॥
एतत् सर्वमशेषेण दर्शयाम जनार्दनम्।

'ब्राह्मणो! इस समय यही हमारे योग्य है; अतः अब द्वारकाकी यात्रा करो। साधुशिरोमणियो! हंस और डिम्भकने जो हमारे पात्रोंके तोड़ने-फोड़ने आदिका दुःसाहस किया है, ये सारी वस्तुएँ हमलोग भगवान् जनार्दनको दिखायें' ॥ १०½ ॥

तथेति ते प्रतिज्ञाय यतयो ज्ञानचक्षुषः ॥ ११ ॥
छिन्नं ताभ्यां समादाय शिक्यं दारुमयं तथा।
द्विदलं कर्पटं चैव कौपीनमथ वल्कलम् ॥ १२ ॥
कमण्डलुं तथा राजन्नर्धप्रोतकपालकम्।
एतान्यान्यं समादाय द्रष्टुं केशवमाययुः ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब 'बहुत अच्छा' कहकर वे सब ज्ञानदर्शी संन्यासी हंस और डिम्भकद्वारा छिन्न-भिन्न किये गये छींके, लकड़ीके बने हुए द्विदल (दो दलोंसे युक्त भोजन-पात्र, जो गौके कानकी-सी आकृतिका बना होता है), गेरुए वस्त्र, कौपीन, वल्कल तथा कमण्डलुका आधा टुकड़ा (जो पूरे कमण्डलुको बीचसे चीर डालनेके कारण दो खण्डोंमें विभक्त हो गया था)— इन सबको तथा अन्य सब तोड़ी-फोड़ी गयी वस्तुओंको साथ लेकर भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये आये ॥११-१३॥

पञ्च चैव सहस्राणि पुरस्कृत्य महामुनिम् ।
दुर्वाससं तपोयोनिमीश्वरस्यात्मसम्भवम् ॥ १४ ॥
अहोरात्रेण ते सर्वे द्वारकां कृष्णपालिताम् ।
ययुर्दान्ता महात्मानो लोमशाः केशवर्जिताः ॥ १५ ॥

उनकी संख्या पाँच हजार थी, वे जितेन्द्रिय महात्मा सिरके केश मुड़ाये रहते थे और उनके शेष शरीर रोमावलियोंसे युक्त थे। वे यतिगण भगवान् शङ्करके अंशसे उत्पन्न हुए तपोयोनि महामुनि दुर्वासाको आगे करके दिन-रात चलते हुए श्रीकृष्णपालित द्वारकापुरीमें जा पहुँचे ॥१४-१५॥

प्रातः प्रविश्य राजेन्द्र वापिकायां यतीश्वराः ।
स्नात्वोपस्पृश्य ते सर्वे यत्नेन महता तदा ॥ १६ ॥
द्रष्टुमभ्युद्यता विष्णुं कण्टकोद्धृतितत्परम् ।
एकरूपं समास्थाय सुधर्मायामवस्थितम् ॥ १७ ॥

राजेन्द्र ! प्रातःकाल पुरीमें प्रवेश करके वे यतीश्वरगण वहाँकी एक बावड़ीमें स्नान और आचमन करके बड़े प्रयत्नसे उन भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये उद्यत हुए, जो एकरूप धारण करके सुधर्मा-सभामें विराजमान हो जगत्के कण्टकोंको उखाड़ फेंकनेके प्रयत्नमें लगे हुए थे ॥ १६-१७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने यतीनां द्वारकागमने दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसंगमें यतियोंका द्वारकागमनविषयक एक सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी गोलक्रीडा, सुधर्मा-सभामें दुर्वासा आदि मुनियोंका आगमन तथा यादवों और श्रीकृष्णद्वारा उनका सत्कार, श्रीकृष्णका उनसे वहाँ आनेका कारण पूछना और दुर्वासाका भगवान्की स्तुति एवं उपालम्भपूर्वक उनके प्रश्नका प्रतिवाद करके अपनी दुर्दशाका वृत्तान्त सुनाना

वैशम्पायन उवाच

अथ सर्वेश्वरो विष्णुः पद्मकिञ्जल्कलोचनः ।
श्यामः पीताम्बरः श्रीमान् प्रलम्बाम्बरभूषणः ॥ १ ॥
किरीटी श्रीपतिः कृष्णो नीलकुञ्चितमूर्धजः ।
अव्यक्तः शाश्वतो देवः सकलो निष्कलः शिवः ॥ २ ॥
क्रीडाविहारोपगतः कदाचिदभवद्धरिः ।
कुमारैरपरैः सार्धं सात्यकिप्रमुखैर्नृप ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरेश्वर ! जो सबके ईश्वर और सर्वव्यापी हैं, जिनके नेत्र कमलदलके समान सुन्दर हैं, जो श्यामसुन्दर, पीताम्बरधारी, श्रीसम्पन्न, लटकते हुए लंबे वस्त्रों और आभूषणोंसे विभूषित, मुकुट-मण्डित और लक्ष्मीके अधिपति हैं, जिनके मस्तकपर काले-काले घुँघराले केश शोभा पाते हैं, जो अव्यक्त, सनातनदेव, सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त, कलातीत एवं कल्याणमय हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण किसी समय सात्यकि आदि अन्य कुमारोंके साथ क्रीडा-विहारमें लगे हुए थे ॥ १—३ ॥

गोलक्रीडां सुधर्माया मध्ये यादवसत्तमः ।
चकार प्रियकृत् कृष्णो युयुधानेन केशवः ॥ ४ ॥

सुधर्मा-सभाके मध्यभागमें विराजमान हो सबका प्रिय करनेवाले यादवशिरोमणि केशव कृष्ण सात्यकिके साथ गोल-क्रीड़ा कर रहे थे ॥ ४ ॥

ममायं प्रथमो गोलस्तव पश्चाद् भविष्यति ।
इति ब्रुवंस्तदा विष्णुः सात्यकिं कमलेक्षणः ॥ ५ ॥

उस समय कमलनयन श्रीकृष्ण सात्यकिसे यह कह रहे थे कि 'यह पहला गोल मेरा है, तुम्हारा पीछे होगा' ॥

पार्श्वस्था यादवास्तस्य वसुदेवपुरोगमाः ।
उद्धवप्रमुखा राजन्नासेदुः क्वचिदत्र वै ॥ ६ ॥

राजन् ! उनके पार्श्वभागमें वसुदेव तथा उद्धव आदि प्रमुख यादव यथोचित स्थानपर बैठे थे ॥ ६ ॥

अन्यव्यापाररहितो भूतात्मा भूतभावनः ।
विजहार यथा रामः सुग्रीवेण पुरा नृप ॥ ७ ॥

नरेश्वर ! जैसे पूर्वकालमें भगवान् श्रीराम अपने सखा सुग्रीवके साथ क्रीड़ा-विहार करते थे, उसी प्रकार जब दूसरा व्यापार (कार्य) नहीं रहता, तब भूतात्मा भूत-भावन भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने सुहृदोंके साथ मनोरञ्जन करते थे ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मध्यंदिने महाविष्णुः शैनेयेन सहाच्युतः।
विक्रीड्य सुचिरं कृष्ण उपारंसीत् स यादवः ॥ ८ ॥

उस दिन दोपहरके समय महाविष्णुस्वरूप अच्युत श्रीकृष्ण सात्यकिके साथ देरतक गोलक्रीड़ा करके यादवों-सहित उससे विरत हो गये ॥ ८ ॥

द्वाःस्थेन वारिताः पूर्वं द्वार्येव च समास्थिताः।
इदमन्तरमित्येव विविशुस्तां सभां नृप ॥ ९ ॥

राजन् ! जिन्हें द्वारपालने पहले भीतर आनेसे रोक दिया था और द्वारपर ही आदरपूर्वक बिठा रखा था, वे मुनि 'यह भीतर प्रवेश करनेका अवसर है' ऐसा जानकर उस समय उस सभामें प्रविष्ट हुए ॥ ९ ॥

यतयो दीर्घतपसः पुरस्कृत्य तपोधनम्।
दुर्वाससं सुमनसो ददृशुर्यादवेश्वरम् ॥ १० ॥
गोलक्रीडासमासक्तं करसंस्थितगोलकम्।
पद्मपत्रविशालाक्षं विष्णुं तं सात्यकिं हरिम् ॥ ११ ॥
एकेनाक्ष्णा ह्लादयन्तं परेणान्येन गोलकम्।
यतयश्च महाराज प्रत्यदृश्यन्त तत्पुरः ॥ १२ ॥

दीर्घकालसे तपस्या करनेवाले उन शुद्धचेता यतियोंने तपोधन दुर्वासाको आगे करके यादवेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन किया, जो पहले गोलक्रीड़ामें आसक्त थे और उस समय भी जिनके हाथमें गोल मौजूद था। वे प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल नेत्रवाले श्रीविष्णु हरि एक नेत्रसे सात्यकिको आनन्द प्रदान करते थे और दूसरेसे उस गोलकी ओर देख रहे थे। महाराज ! इसी समय वे यति उनके सामने दिखायी दिये ॥ १०—१२ ॥

वृष्णिपः पुण्डरीकाक्षः सात्यकिर्बलभद्रकः।
वसुदेवस्तथाक्रूर उग्रसेनस्तथा नृप ॥ १३ ॥
अन्ये च यादवाः सर्वे सम्भ्रमं प्रतिपेदिरे।
इदं किमिदमित्येवं व्याशङ्कमनसोऽभवन् ॥ १४ ॥

वृष्णिपालक कमलनयन श्रीकृष्ण सात्यकि, बलभद्र, वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन तथा अन्य सब यादव उन यतियोंको देखकर बड़ी घबराहटमें पड़ गये और शङ्कितचित्त होकर एक दूसरेसे पूछने लगे—'यह क्या है ? कैसी बात है ?' ॥

पृष्ठतोऽप्यनुगच्छन्ति दिधक्षन्तं जगत्त्रयम्।
अर्धकौपीनवसनं स्मरन्तं कमपि द्विजम् ॥ १५ ॥
अन्तस्तापसमायुक्तं छिन्नदण्डधरं यतिम्।
अन्तर्ज्वलन्तं रोषेण हंसासादितकल्मषम् ॥ १६ ॥
नेत्रोत्थितमहावह्निं प्रेक्षन्तं यादवेश्वरम्।
दुर्वाससं ते ददृशुर्भीता यादवसत्तमाः ॥ १७ ॥

वे यादव उन अद्भुत प्रभावशाली ब्राह्मण दुर्वासाके पीछे-पीछे चलने लगे, जो मानो तीनों लोकोंको जलाकर भस्म कर देना चाहते थे। उनके कौपीनका आधा ही वस्त्र शेष था। वे बार-बार किसीको याद करते थे, उनके मनमें बड़ा संताप था। उन्होंने टूटा हुआ दण्ड धारण कर रखा था। राजा हंसने उन्हें बहुत कष्ट पहुँचाया था, अतः वे भीतर-ही-भीतर रोषसे जल रहे थे। उनके नेत्रसे महा-भयंकर अग्नि प्रकट हो रही थी। वे यादवेश्वर श्रीकृष्णकी ओर देख रहे थे। इस अवस्थामें संन्यासी दुर्वासाको उन यादवशिरोमणियोंने भयभीत होकर देखा ॥ १५—१७ ॥

किं करिष्यत्यसौ क्रुद्धः किं वा वक्ष्यति नः प्रभुः।
इति प्राञ्जलयः सर्वे यादवाः प्रतिपेदिरे ॥ १८ ॥
इदमासनमित्येवं किंचिदूचुश्च वृष्णयः।

वे मन-ही-मन सोचने लगे—'पता नहीं, यह कुपित होकर क्या करेंगे ? और हमारे स्वामी श्रीकृष्ण इनसे क्या कहेंगे।' ऐसा विचार करते हुए वे समस्त यादव और वृष्णिवंशी हाथ जोड़कर उनकी सेवामें उपस्थित हुए और कुछ मन्द स्वरमें बोले—'भगवन् ! आपके लिये यह आसन है' ॥ १८½ ॥

ततः कृष्णो हृषीकेशः किंचिदुत्प्लुत्य तत्पुरः ॥ १९ ॥
इदमासनमित्येवं स्थीयतामिह निर्वृतः।
अहमद्य स्थितो विप्र किंकरोऽस्मीति चाब्रवीत् ॥ २० ॥

इसी समय इन्द्रियोंके नियन्ता भगवान् श्रीकृष्ण कुछ उछलकर दुर्वासाके आगे चले आये और बोले—'विप्रवर! यह आसन है, इसपर सुखपूर्वक बैठिये। आज मैं आपकी सेवामें खड़ा हूँ, मैं आपका किङ्कर हूँ' ॥ १९-२० ॥

ततः किंचिदिवासीन आसने यतिविग्रहः।
आसने संस्थिते तस्मिन् यतयो वीतमत्सराः ॥ २१ ॥
आसनानि यथायोगं भेजिरे निर्वृताः किल।

तब वे संन्यासीरूपधारी दुर्वासा उस आसनपर कुछ बैठ-से गये। उनके आसन ग्रहण कर लेनेपर अन्य मात्सर्यरहित संन्यासियोंने भी संतोषपूर्वक यथायोग्य आसन स्वीकार किये ॥ २१½ ॥

अर्घ्यादिसमुदाचारं चक्रे कृष्णः किरीटभृत् ॥ २२ ॥
आह भूयो हृषीकेशो यतिं दुर्वाससं प्रभुम्।

किरीटधारी श्रीकृष्णने अर्घ्य आदिके क्रमसे उनका उत्तम आतिथ्य-सत्कार किया, फिर वे भगवान् हृषीकेश उन प्रभावशाली यति दुर्वाससे इस प्रकार बोले—॥ २२½ ॥

किमर्थं ब्रूहि विप्रेन्द्र अस्मिन् प्रत्यागमो हि वः ॥ २३ ॥
दृष्टं वा ह्यथवा किंचिन् कारणं चास्ति वो महत्।

'विप्रवर ! बताइये, इस नगरमें आपलोगोंका शुभागमन किस लिये हुआ है ? अथवा आपलोगोंको यहाँ आनेमें कोई महान् कारण दिखायी दिया है ? ॥ २३½ ॥

संन्यासिनो द्विजश्रेष्ठा यूयं विगतकल्मषाः ॥ २४ ॥
निःस्पृहाश्च सदा यूयमसक्तो द्विजपुङ्गवाः।

'आपलोग द्विजोंमें श्रेष्ठ एवं निष्पाप संन्यासी हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

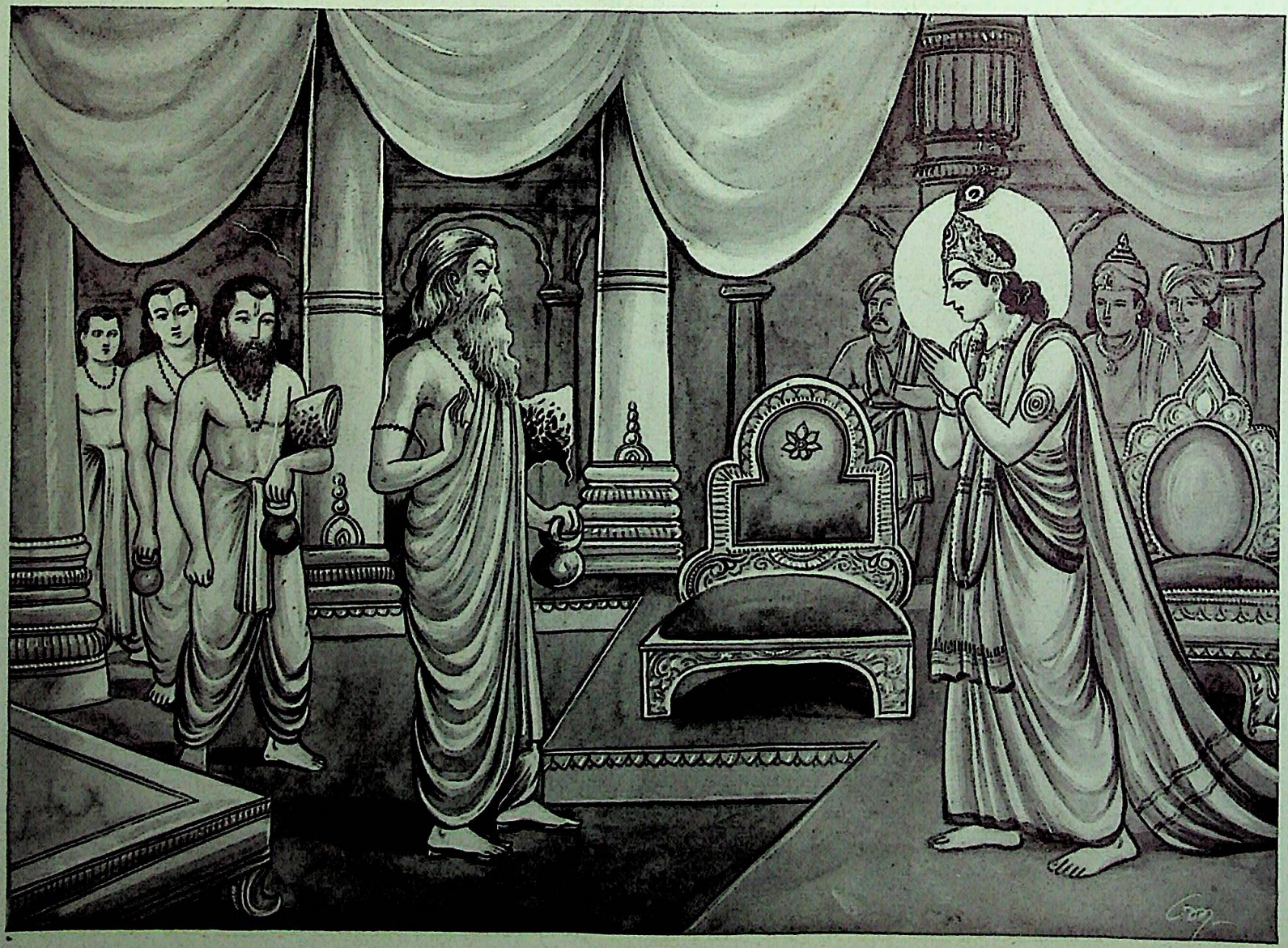

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा दुर्वासा मुनिका स्वागत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विप्रवरो ! आपलोग हम-जैसे गृहस्थोंसे सदा निःस्पृह रहते हैं ॥ २४½ ॥

प्रार्थ्यं नाम न चैवास्ति स्पृहा नैवास्ति वो यतः॥ २५ ॥
स्पृहाप्रेरितकर्माणः क्षत्रियान् यान्ति सुव्रताः।

'आपके लिये कोई प्रार्थनीय वस्तु ही नहीं है; क्योंकि आपलोगोंके हृदयमें किसी वस्तुकी कामना ही नहीं होती है। जो लोग किसी स्पृहासे प्रेरित होकर कर्म करनेवाले हैं वे उत्तम व्रतधारी ब्राह्मण अपनी अभीष्ट वस्तु माँगनेके लिये क्षत्रियोंके पास जाते हैं ॥ २५½ ॥

निरूप्यमाणमस्माभिर्विप्र किंचिन्न दृश्यते ॥ २६ ॥
न जाने कारणं ब्रह्मन् युष्मदागमनं प्रति।

'किंतु विप्रवर ! हमारे बहुत सोचने-विचारनेपर भी कोई ऐसी बात दिखायी नहीं देती, जिसके लिये आपलोगोंका यहाँतक आना सम्भव हो। ब्रह्मन् ! फिर आपके आगमनका क्या कारण है। यह मेरी समझमें नहीं आता ॥ २६½ ॥

एतावता चानुमेयं किंचित्कारणमस्ति वै ॥ २७ ॥
तद् ब्रूहि यदि विद्येत त्वत्तो ज्ञास्यामहे वयम्।

'आप यहाँतक पधारे हैं, इतनेसे ही यह अनुमान होता है कि आपके शुभागमनका कोई-न-कोई कारण अवश्य है। यदि है तो आप उसे बताइये। हम आपसे ही उसका ज्ञान प्राप्त करेंगे' ॥ २७½ ॥

इत्युक्तवति देवेशे चक्रपाणौ जनार्दने ॥ २८ ॥
तस्यापि राजन् विप्रस्य भूयः कोपो महानभूत्।

राजन् ! देवेश्वर चक्रपाणि जनार्दनके ऐसा कहनेपर उन ब्राह्मण दुर्वासाका महान् कोप और भी बढ़ गया ॥ २८½ ॥

तस्मादभ्यधिकः पूर्वात् कोपः संजायते महान् ॥२९ ॥
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीन् भक्षयन्निव पश्यतः।

पहलेका जो क्रोध था, उससे अधिक और महान् कोप प्रकट होने लगा, मानो वे तीनों लोकोंको जला देना और अपनी ओर देखनेवाले लोगोंको खा जाना चाहते हों ॥२९½॥

रोषरक्तेक्षणः क्रुद्धो हसन्निव दहन्निव ॥ ३० ॥
उवाच वचनं विष्णुं दुर्वासा क्रोधमूर्च्छितः।

क्रोधसे मूर्च्छित हुए दुर्वासा रोषसे लाल आँखें करके क्रोधपूर्वक हँसते और जलाते हुए-से उस समय श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले—॥ ३०½ ॥

न जाने इति कस्मात् त्वं ब्रूषे नो यादवेश्वर ॥ ३१ ॥
जानामि त्वां महादेवं वञ्चयन्निव भाषसे।

'यादवेश्वर ! आप हमसे ऐसी बात क्यों कहते हैं कि आपके आगमनका कारण मेरी समझमें नहीं आता ? मैं आपको जानता हूँ। आप महान् देव विष्णु हैं; फिर भी हमें ठगते हुए-से बात करते हैं ॥ ३१½ ॥

पुरातना वयं विष्णो पूर्ववृत्तान्तवेदिनः ॥ ३२ ॥
यथा हि देवदेवोऽसि मायामानुषदेहवान्।
निगूहसे प्रभुरतः कस्मान्नो जगतीपते ॥ ३३ ॥

'विष्णो ! हम बहुत पुराने हैं और पूर्वकालके वृत्तान्तोंको जानते हैं, जिसके अनुसार हम कहते हैं कि आप देवताओंके भी देवता हैं और आपने मायासे मानवशरीर धारण किया है। जगदीश्वर ! अतः आप हमारे स्वामी होकर हमसे अपने-आपको क्यों छिपा रहे हैं ? ॥ ३२-३३ ॥

सोऽसि ब्रह्मविदां मूर्तिस्तवैतत् परमं पदम्।
यदभ्यर्च्य पुरा ब्रह्मा यच्च ज्ञाना वयं पुरा ॥ ३४ ॥

'आप ही ब्रह्मवेत्ताओंके आत्मा हैं। यह परमपद आपका ही स्वरूप है, पूर्वकालमें जिसकी आराधना करके ब्रह्माजी ज्ञानवान् हुए और हम भी जिसकी उपासना करके ज्ञानी हुए हैं ॥ ३४ ॥

यतो विश्वमिदं भूतं तदेतत् परमं पदम्।
यच्च स्थूलं विजानन्ति पुरा तत्त्वेन चेतसा ॥ ३५ ॥
पुराविदोऽथ विश्वेश यदेतत् परमं वपुः।

'जिससे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकट हुआ है, वही आपका यह परम-पद है। विश्वेश्वर ! जिसे पूर्वकालमें पुराणवेत्ता पुरुष तत्त्वनिष्ठ चित्तसे स्थूल (विराट्) रूपसे जानते थे, यह भी आपका ही सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है ॥ ३५½ ॥

कर्मणा प्राप्यते यत् तु यत् स्मृत्वा निर्वृता वयम् ॥ ३६ ॥
प्रत्यक्षमपि यद्रूपं नैव जानन्ति मानुषाः।
न हि मूढधियो देव न वयं तादृशा हरे ॥ ३७ ॥
न जाने इति यद् ब्रूषे किमतः साहसं वचः।

'जो भगवदर्थ कर्म (भगवान्के समर्पणपूर्वक किये गये यज्ञ आदिके अनुष्ठान अथवा भजन-साधन)से प्राप्त होता है, जिसका स्मरण करके हम वीतराग संन्यासी भी परमानन्दमें निमग्न हो जाते हैं तथा प्रेमी भक्तोंको जिसका प्रत्यक्ष दर्शन होता है, आपके उस सगुण-साकार (सच्चिदानन्दघन) विग्रहको मूढ-बुद्धि मनुष्य नहीं जानते हैं। देव ! हरे ! हम वैसे (अज्ञानी) नहीं हैं (हम आपको जानते और पहचानते हैं) ! अतः आप हमारे सामने जो यह कहते हैं कि 'हम आपके आनेका कारण नहीं जानते हैं,' इससे अधिक साहसपूर्ण बात और क्या हो सकती है ? ॥ ३६-३७½ ॥

ये हि मूलं विजानन्ति तेषां तु प्रविवेचनम् ॥ ३८ ॥
कुर्वतः किं फलं देव तव केशिनिषूदन।

'देव ! केशिनिषूदन ! जो जड-मूलकी बातें जानते हैं, उनके सामने इस प्रकार ऊपर-ऊपरकी बातोंका विवेचन करनेसे आपको क्या लाभ होगा ? ॥ ३८½ ॥

वेदान्ते प्रथितं तेजस्तव चेदं विचार्यते ॥ ३९ ॥
ये च विज्ञानतृप्तास्तु योगिनो वीतकल्मषाः।
पश्यन्ति हृत्सरोजेऽपि तदेवेदं वपुः प्रभो ॥ ४० ॥

'वेदान्त-शास्त्र (उपनिषद् आदि) में भी आपके इसी विख्यात तेजोमय स्वरूपका ब्रह्म आदि नामोंसे विचार किया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाता है। प्रभो! जो विज्ञानसे तृप्त निष्पाप योगी जन हैं, वे भी अपने हृदयकमलमें आपके इसी स्वरूपका दर्शन करते हैं॥ ३९-४०॥

वेदैर्यद् गीयते तेजो ब्रह्मेति प्रतिपाद्य वै।
तदेवेदं विजानेऽहं रूपमैश्वरमेव च॥ ४१॥

'वेदोंद्वारा ब्रह्म कहकर जिस तेजोमय परमतत्त्वका गान किया जाता है, आपका यह ऐश्वर्यशाली रूप वही है (उस परब्रह्मसे अभिन्न ही है), ऐसा मैं जानता हूँ॥ ४१॥

वैष्णवं परमं तेज इति वेदेषु पठ्यते।
अवगच्छाम्यहं विष्णो तदेवेदं वपुस्तव॥ ४२॥

'विष्णो! वेदोंमें 'तद्विष्णोः परमं पदम्' इत्यादिरूपसे विष्णुके जिस परम तेजोमय तत्त्वका प्रतिपादन किया जाता है, वही आपका यह स्वरूप है—यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ॥ ४२॥

य ओमित्युच्यते शब्दो यस्य वागिति गीयते।
स एवासि प्रभो विष्णो न जाने इति मा वद॥ ४३॥

'प्रभो! विष्णो! जिस ॐ शब्दका उच्चारण होता है, वह जिनकी वाणीके रूपमें गाया जाता है, वे ही परमात्मा आप हैं; अतः आप यह न कहिये कि मैं आपके आनेका कारण नहीं जानता॥ ४३॥

परोक्षं यदि किंचित् स्यात् तव वक्तुं प्रयुज्यते।
न जाने इति गोविन्द मा वादीः साहसं हरे॥ ४४॥

'गोविन्द! हरे! यदि आपके लिये कोई भी वस्तु परोक्ष होती तो आपका ऐसा कहना उचित हो सकता था; अतः 'मैं नहीं जानता' यह साहसपूर्ण वचन आप मत कहिये॥

विश्वं यतः प्रादुरासीद् यस्मिँल्लीनं क्षये सति।
इदं तदैश्वरं तेजस्त्वदगच्छामि केशव॥ ४५॥

'केशव! पूर्वकालमें यह विश्व जिससे प्रकट हुआ था और संहारकालमें यह फिर जिसमें लीन हो जायगा, वही आपका यह ईश्वरीय तेजोमय विग्रह है, ऐसा मैं जानता हूँ॥

कर्ता त्वं भूतभव्येश प्रतिभासि सदा हृदि।
यद् यद् रूपं स्मरे नित्यं तत् तदेवासि मे हृदि॥ ४६॥

'भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी हरे! आप ही सबके कर्ता हैं और सदा मेरे हृदयमें प्रकाशित होते रहते हैं। मैं जिस-जिस रूपका स्मरण करता हूँ, आप सदा उसी-उसी रूपसे मेरे हृदयमें विद्यमान हैं॥ ४६॥

वायुरेव यदा विष्णुरिति मे धीयते मतिः।
तदा तद्रूप एवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो॥ ४७॥

'विभो! जब मेरी बुद्धि ऐसा निश्चय करती है कि वायु भी विष्णु हैं, तब आप वायुरूपसे ही मेरे हृदयमें विराजमान होते हैं॥ ४७॥

आकाशो विष्णुरित्येव कदाचिद्धीयते मतिः।
तदा तद्रूप एवासि हृन्मध्ये संस्थितो विभो॥ ४८॥

'प्रभो! जब मेरी बुद्धि कभी इस निश्चयपर पहुँचती है कि आकाश ही विष्णु है, तब आप उसी रूपसे मेरेमें प्रतिष्ठित होते हैं॥ ४८॥

पृथिवी विष्णुरित्येतत् कदाचिद्धीयते मतिः।
तदा पार्थिवरूपस्त्वं प्रतिभासि सदा मम॥ ४९॥

'जब कभी मेरी बुद्धिका यह निश्चय होता है कि 'पृथिवी ही विष्णु है', तब आप सदा मुझे पार्थिवरूप ही प्रतीत होते हैं॥ ४९॥

रसोऽयं देव इत्येव कदाचिच्चिन्त्यते मया।
तदा रसात्मना विष्णो हृन्मध्ये संस्थितो विभो॥ ५०॥

'प्रभो! विष्णो! जब कभी मैं यह सोचता हूँ, कि 'यह रस ही नारायणदेव है', तब आप रसरूपसे मेरे हृदयमें प्रतिष्ठित होते हैं॥ ५०॥

यदा त्वां तेज इत्येवं स्मर्ता स्यां पुरुषोत्तम।
तदा तद्रूपसम्पन्नः प्रतिभासि सदा हृदि॥ ५१॥

'पुरुषोत्तम! जब मैं आपका तेजोरूपसे स्मरण करता हूँ, तब आप सदा उसी रूपसे सम्पन्न होकर मेरे हृदयमें प्रकाशित होते हैं॥ ५१॥

चन्द्रमा हरिरित्येवं तदा चान्द्रमसं वपुः।
निरीक्ष्य चक्षुषा देव ततः प्रीतोऽस्मि केशव॥ ५२॥

'देव! केशव! जब मैंने ऐसा निश्चय किया कि 'चन्द्रमा ही श्रीहरि हैं,' तब मैं चन्द्रमाके रूपमें ही आपके स्वरूपका नेत्रोंद्वारा दर्शन करके प्रसन्न होता हूँ॥ ५२॥

यदा सौरं वपुरिति स्मर्ता स्यां जगतीपते।
तदा तद्भावनायोगात् सूर्य एव विराजसे॥ ५३॥

'पृथ्वीनाथ! जब मैं ऐसा चिन्तन करता हूँ कि 'यह सूर्यमण्डल ही आपका स्वरूप है,' तब आप मेरी उस भावनाके योगसे सूर्यरूप होकर ही विराजमान होते हैं॥ ५३॥

तस्मात् सर्वं त्वमेवासि निश्चिता मतिरीदृशी।
अतो न जानेऽहमिति वक्तुं नेशो जनार्दन॥ ५४॥

'अतः सब कुछ आप ही हैं, यह मेरी बुद्धिका निश्चय है; इसलिये जनार्दन! आप यह नहीं कह सकते कि 'मैं आपलोगोंके आनेका कारण नहीं जानता'॥ ५४॥

इत्यर्थे संस्थितो विष्णो पीडां नो नैव चिन्तयसे।
अत्यन्तदुःखिता विष्णो वयं त्वामनुसंस्थिताः॥ ५५॥

'विष्णो! इस सिद्धान्तमें प्रतिष्ठित होकर भी आप हमारी पीड़ाका कुछ विचार नहीं कर रहे हैं। भगवन्! हम अत्यन्त दुःखित होकर आपकी शरणमें आये हैं॥ ५५॥

ईदृशीयमवस्था नो नैतां स्मरसि केशव।
एतत् पुनर्भाग्यमतो नष्टमित्येव चिन्तये॥ ५६॥
मन्दभाग्या वयं विष्णो यतो नो न स्मरेः प्रभो।

'केशव! हमारी तो ऐसी दुर्दशा हो रही है और आप इसकी ओर ध्यान ही नहीं देते हैं; इससे हम बार-बार यही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोचते हैं कि हमारा भाग्य ही नष्ट हो गया है। प्रभो ! विष्णो ! हमलोग बड़े भाग्यहीन हैं, क्योंकि आप हमारा स्मरण नहीं करते हैं ॥ ५६½ ॥

कौचित् क्षत्रियदायादौ गिरीशवरगर्वितौ ॥ ५७ ॥
नाम्ना च हंसडिम्भकौ बाधेते नो जनार्दन ।
गार्हस्थ्यं हि सदा श्रेयो वदन्ताविति केशव ॥ ५८ ॥

'जनार्दन ! कोई दो क्षत्रियकुमार हैं, जो भगवान् शङ्करका वर पाकर घमंडमें भर गये हैं। उन दोनोंके नाम हंस और डिम्भक हैं। केशव ! वे दोनों यह कहते हुए कि गृहस्थ आश्रम ही सदा श्रेयस्कर है, हमें सताने लगे हैं ॥

इतस्ततश्च धावन्तौ वदन्तौ बहु किल्बिषम् ।
अयुक्तं बहु भाषन्तौ धर्षयन्तौ च नः सदा ॥ ५९ ॥

'वे इधर-उधर दौड़ते, बहुत-सी पापपूर्ण बातें मुँहसे निकालते और बहुत-सा अनुचित भाषण करते हुए सदा हमारा तिरस्कार करते हैं ॥ ५९ ॥

इदमन्यत् कृतं देव असह्यं पापमुच्यते ।
पश्येदं बहुधा देव भिन्नं भिन्नं सहस्रशः ॥ ६० ॥
शक्यं च दारवं पात्रं द्विदलान् वेणुकान् बहून् ।

'देव ! उन दोनोंने जो दूसरा असह्य अपराध किया है, उसे बताया जाता है—देखिये ! ये जो हमारे सहस्रों छींके, लकड़ीके पात्र, द्विदल और बहुत-से बाँसके पिटारे आदि हैं, इन सबके उन्होंने अनेकानेक टुकड़े कर डाले हैं ॥ ६०½ ॥

इदमप्यपरं पश्य तयोः साहसचेष्टितम् ॥ ६१ ॥
कौपीनं बहुधा छिन्नं तदस्माकं महद्धनम् ।

'उन दोनोंकी यह दूसरी दुःसाहसपूर्ण चेष्टा देखिये—हमारा जो कौपीन था, उसके भी उन्होंने चीथड़े-चीथड़े कर डाले हैं; वह कौपीन ही हमारा महान् धन है ॥ ६१½ ॥

कृतं कपालमात्रेण कमण्डलु जगत्प्रभो ॥ ६२ ॥
त्वं तु नो रक्षसे नित्यं क्षात्रं वै व्रतमास्थितः ।
चित्रं चित्रमिदं देव रक्षस्यसि सदानिशम् ॥ ६३ ॥

'जगदीश्वर ! उन्होंने हमारे कमण्डलुको भी तोड़-फोड़कर कपाल (खपड़े या खप्पर) का रूप दे दिया है। आप क्षत्रियधर्मका आश्रय लेकर सदा हम सबकी रक्षा करते हैं, तो भी हमारी यह दशा हो गयी। देव ! यह बड़ी विचित्र और अद्भुत बात है। आप निरन्तर रक्षा करते हैं और सदा सर्वत्र विद्यमान भी हैं तो भी हमारी रक्षा न हो सकी ॥

किं करिष्यामि मन्दात्मा मन्दभाग्या वयं विभो ।
किं नः शरणमद्यैव तद् ब्रूहि जगतां पते ॥ ६४ ॥

'प्रभो ! मेरी बुद्धि मन्द है। मैं क्या करूँ ? हम सब लोग बड़े भाग्यहीन हैं। जगत्पते ! इस समय हम किसकी शरणमें जायँ, यह बताइये ॥ ६४ ॥

जीवन्तौ तौ यदि स्यातां नष्टा लोका इमे त्रयः ।
न विप्रा न च राजानो न वैश्या न च पादजाः ॥ ६५ ॥

'यदि वे दोनों जीवित रह गये तो ये तीनों लोक नष्ट हो जायँगे। न ब्राह्मण बचेंगे न क्षत्रिय, न वैश्य रह जायँगे और न शूद्र ॥ ६५ ॥

अत्यन्तबलिनौ मत्तौ तीक्ष्णदण्डधरौ नृप ।
न तयोः पुरतः स्थातुं शक्ता देवाः सवासवाः ॥ ६६ ॥

'नरेश्वर ! वे दोनों अत्यन्त बलवान्, मदमत्त और कठोर दण्ड धारण करनेवाले हैं; उन दोनोंके सामने इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी टिक नहीं सकते ॥ ६६ ॥

न च भीष्मो न वा राजा वाह्लीको भीमविक्रमः ।
यो हि वीरो जरासंधः क्षत्रियाणां भयंकरः ॥ ६७ ॥
नैव च प्रायशः स्थातुं गिरीशवरदर्पिणोः ।
तयोः कृष्ण हरे शक्तो नित्यमप्रतिसङ्गिनोः ॥ ६८ ॥

'न भीष्म और न भयंकर पराक्रमी राजा बाह्लीक ही उन दोनोंका सामना कर सकते हैं। श्रीकृष्ण ! हरे ! क्षत्रियोंके लिये भयंकर जो वीर जरासंध है, वह भी प्रायः उन दोनोंके सामने नहीं ठहर सकता; क्योंकि भगवान् शङ्करके वरदानसे उनका गर्व बहुत बढ़ गया है। वे सदा एक दूसरेके साथ रहते हैं। उनमें कभी पार्थक्य अथवा विरोध नहीं होता ॥ ६७–६८ ॥

तस्मात् त्वं जहि तौ वीरौ रक्ष लोकानिमान् प्रभो ।
अन्यथा रक्षसीत्येवं व्यर्थः शब्दोऽत्र जायते ॥ ६९ ॥

'प्रभो ! इसलिये आप ही उन दोनों वीरोंका वध कीजिये और इन तीनों लोकोंको विनाशसे बचाइये; अन्यथा 'आप रक्षा करते हैं' यह कथन यहाँ व्यर्थ हो रहा है ॥ ६९ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन रक्ष रक्ष जगत्त्रयम् ।
इत्युक्त्वा विरराम्रैव दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ७० ॥

'यहाँ अधिक कहनेसे क्या लाभ ? आप तीनों लोकोंकी रक्षा कीजिये ! रक्षा कीजिये !!' ऐसा कहकर क्रोधसे मूर्च्छित हुए दुर्वासा चुप हो गये ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने दुर्वाससःसमागमे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें श्रीकृष्ण और दुर्वासाका समागमविषयक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णकी हंस और डिम्भकके वधके लिये प्रतिज्ञा तथा क्षमाप्रार्थनापूर्वक उनका यतियोंको भोजन कराना

वैशम्पायन उवाच

यतेर्वचनमाकर्ण्य मन्दमुच्छ्वस्य केशवः।
दुर्वाससं समालोक्य बभाषे यादवेश्वरः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यतिका यह वचन सुनकर यादवेश्वर श्रीकृष्णने धीरेसे उच्छ्वास लेकर दुर्वासाकी ओर देखा और इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥ १॥

क्षन्तव्यं भवता सर्वं दोष एष ममैव हि।
शृणु वाक्यं ममैतत् तु श्रुत्वा शान्तिपरो भव॥ २॥

'भगवन्! अब जो कुछ हो गया, उस सबके लिये आप क्षमा करें; वास्तवमें यह मेरा ही दोष है। आप मेरी यह बात सुनें और सुनकर शान्त हो जायँ॥ २॥

जेष्यामि तौ रणे विप्र हंसं डिम्भकमेव च।
गिरीशो वा वरं दद्याच्छक्रो वा धनदोऽपि वा॥ ३॥
यमो वा वरुणो वापि ब्रह्मा वाथ चतुर्मुखः।
सबलौ सानुजौ हत्वा पुनर्दास्यामि वो रतिम्॥ ४॥

'विप्रवर! मैं हंस और डिम्भकको युद्धमें पराजित करूँगा। उन्हें भगवान् शङ्कर, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण अथवा चतुर्मुख ब्रह्मा कोई भी वर क्यों न दे, मैं सेना और बन्धु-बान्धवोंसहित उन दोनोंका वध करके पुनः आप-लोगोंको प्रसन्नता प्रदान करूँगा॥ ३-४॥

सत्येनैव शपाम्यद्य मा रोषवशगो भव।
रक्षां वोऽहं करिष्यामि हत्वा तौ च नृपाधमौ॥ ५॥

'आज मैं सत्यकी ही शपथ लेकर कहता हूँ कि आप रोषके वशीभूत न होइये। मैं उन दोनों नीच नरेशोंका वध करके आपलोगोंकी रक्षा करूँगा॥ ५॥

जानामि तौ दुरात्मानौ युष्मद्दोषकरौ हि तौ।
श्रुतं च पूर्वमस्माभिस्तीक्ष्णदण्डधराविति॥ ६॥
अत्यन्तबलिनौ मत्तौ गिरीशवरदर्पितौ।
नाल्पप्रयत्नसंसाध्यौ जरासंधहितैषिणौ॥ ७॥

'मैं उन दोनों दुरात्माओंको जानता हूँ, उन्हीं दोनोंने आपलोगोंका अपराध किया है। मैंने पहलेसे ही सुन रखा है कि वे दोनों कठोर दण्ड धारण करनेवाले हैं, अत्यन्त बलवान् और मदमत्त हैं। भगवान् शङ्करका वर पानेसे उनका घमंड बढ़ा हुआ है। थोड़े-से प्रयत्नद्वारा उन्हें वशमें नहीं किया जा सकता। वे जरासंधके हितैषी हैं॥ ६-७॥

प्राणानपि तयो राजा दास्यत्येव न संशयः।
जरासंधो न भूपालो विना तौ जयते महीम्॥ ८॥

'इसमें संदेह नहीं कि राजा जरासंध उन दोनोंके लिये अपने प्राण भी दे डालेगा; क्योंकि उन दोनोंके बिना राजा जरासंध इस पृथ्वीपर विजय नहीं पा सकता॥ ८॥

जये तयोर्विप्रवर्य तत्र श्रेयो भवेत् ततः।
यत्र यत्र तु तौ गत्वा स्थितावित्यनुशुश्रुम॥ ९॥
तत्र तत्र च हन्ताहं नात्र कार्या विचारणा।

'विप्रवर! उन दोनोंको पराजित करते समय उन्हें वहाँ जरासंधकी ओरसे श्रेष्ठ सहायता प्राप्त हो सकती है, तो भी वे दोनों जहाँ-जहाँ जाकर खड़े होंगे और इसका समाचार हम सुन लेंगे, वहाँ-वहाँ पहुँचकर मैं उन दोनोंका वध करूँगा, इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ ९½॥

गच्छध्वं यतयः स्वैरं निजकार्यपरायणाः॥ १०॥
अचिरेणैव कालेन जेष्यामि रणपुङ्गवौ।

'संन्यासियो! आपलोग अपने कर्तव्य-पालनमें तत्पर रहकर जहाँ चाहें इच्छानुसार जायँ। मैं थोड़े ही समयमें उन रणकुशल वीरोंको परास्त करूँगा'॥ १०½॥

ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा यादवेश्वरमाह सः॥ ११॥
स्वस्त्यस्तु भवते कृष्ण जगतां स्वस्ति कुर्वते।
किं नु नाम जगन्नाथ दुःसाध्यं तव केशव॥ १२॥

तब प्रेमपूर्वक प्रसन्नचित्त हो दुर्वासाने यादवेश्वर श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण! तीनों लोकोंका कल्याण करने-वाले आपका मङ्गल हो। जगन्नाथ! केशव! कौन-सा ऐसा कार्य है, जो आपके लिये दुष्कर हो॥ ११-१२॥

त्रिलोकेश त्रिधामासि सर्वसंहारकारकः।
देवानामपि देवेशः सर्वत्र समदर्शनः॥ १३॥

'त्रिलोकीनाथ! आप त्रिधामा हैं। आप ही सबका संहार करनेवाले हैं, देवताओंके भी देवेश्वर हैं। आपकी सर्वत्र समान दृष्टि है॥ १३॥

विष्णो देव हरे कृष्ण नमस्ते चक्रपाणये।
नमः स्वभावशुद्धाय शुद्धाय नियताय च॥ १४॥

'विष्णो! देव! हरे! कृष्ण! हाथमें चक्र धारण करने-वाले! आपको नमस्कार है। आप स्वभावसे शुद्ध हैं, शुद्ध-स्वरूप हैं तथा शौच, संतोष आदि नियमोंसे सम्पन्न एवं सर्वव्यापी हैं॥ १४॥

शब्दगोचर देवेश नमस्ते भक्तवत्सल।
अज्ञानादथवा ज्ञानाद् यन्मयोक्तं क्षमस्व तत्॥ १५॥

'देवेश्वर! आप ही वैदिक शब्दोंके चरम तात्पर्य हैं। भक्तवत्सल! आपको मेरा नमस्कार है। मैंने जानकर अथवा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनजानमें जो अनुचित बात कह दी हो, उसके लिये आप मुझे क्षमा करें ॥ १५ ॥

त्वमेवाहं जगन्नाथ नावयोरन्तरं पृथक् ।
अतः क्षमस्व भगवन् क्षमासारा हि साधवः ॥ १६ ॥

'जगन्नाथ ! मैं आपका ही स्वरूप हूँ । हम दोनोंमें कोई भेद या पार्थक्य नहीं है । अतः भगवन् ! आप मुझे क्षमा करें; क्योंकि साधुपुरुषोंका सारतत्त्व क्षमा ही है' ॥ १६ ॥

श्रीभगवानुवाच

क्षन्तव्यं भवता विप्र क्षमासारा वयं सदा ।
संन्यासिनः क्षमासाराः क्षमा तेषां परं बलम् ॥ १७ ॥

श्रीभगवान् बोले—विप्रवर ! क्षमा तो आपको करनी चाहिये । हमलोग तो सदा आप महापुरुषोंकी ही क्षमाका आश्रय लेनेवाले हैं । संन्यासियोंका सारतत्त्व क्षमा ही है । क्षमा ही उनका उत्तम बल है ॥ १७ ॥

क्षमा मोक्षकरी नित्यं तत्त्वज्ञानमिव द्विज ।
क्षमा धर्मः क्षमा सत्यं क्षमा दानं क्षमा यशः ॥ १८ ॥
क्षमा स्वर्गस्य सोपानमिति वेदविदो विदुः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन क्षमां पालयत स्वकाम् ॥ १९ ॥

ब्रह्मन् ! क्षमा तत्त्वज्ञानकी भाँति सदा ही मोक्ष प्रदान करनेवाली है । क्षमा धर्म, क्षमा सत्य, क्षमा दान और क्षमा यश है । वेदज्ञ पुरुष ऐसा मानते हैं कि क्षमा ही स्वर्गकी सीढ़ी है । अतः आपलोग पूरा प्रयत्न करके अपने क्षमा-धर्मका पालन करें ॥ १८-१९ ॥

प्रत्यक्षज्ञानसंयुक्ता यूयं सर्वे यतीश्वराः ।
य एते यतयो विप्राः पूजनीया मयाद्य वै ॥ २० ॥
भोक्तव्या यतयो विप्रा भिक्षुकाः सर्व एव हि ।

यतीश्वरो ! आप सब लोग प्रत्यक्ष ज्ञानसे संयुक्त हैं । यहाँ जो यति-ब्राह्मण पधारे हैं, उन सबका आज मुझे पूजन करना है । यतिधर्ममें तत्पर रहनेवाले इन सभी भिक्षु ब्राह्मणोंको भोजन भी कराना है ॥ २०½ ॥

तथेति ते प्रतिज्ञाय भोक्तुमैच्छन् हरेर्गृहे ॥ २१ ॥
ततः स्वभवनं विष्णुः प्रविश्य हरिरीश्वरः ।
चतुर्विधं तथाऽऽहारं कारयित्वा यथाविधि ॥ २२ ॥
भोजयामास तान् सर्वान् यतीन् यतिवरार्चितः ।

तब 'बहुत अच्छा' कहकर उन सबने भगवान्‌के भवनमें भिक्षा ग्रहण करनेका विचार किया । तदनन्तर सर्वेश्वर विष्णु हरिने अपने भवनके भीतर प्रवेश करके विधिपूर्वक चार[1] प्रकारकी भोजन-सामग्री तैयार करायी और उन समस्त यतियोंको भोजन कराया । उस समय यतिश्रेष्ठ दुर्वासाने श्रीकृष्णका सम्मान किया ॥ २१-२२½ ॥

छित्त्वा छित्त्वा च देवेशो दुकूलानि मृदूनि सः ॥ २३ ॥
ददौ तेभ्यस्तदा विष्णुः सर्वेभ्यो जनमेजय ।
ते च प्रीता यथायोगं यथापूर्वं ततो गताः ॥ २४ ॥

जनमेजय ! देवेश्वर श्रीकृष्णने उस समय कोमल वस्त्र फाड़-फाड़कर उन सब संन्यासियोंके लिये कौपीन आदि बनानेके लिये दिया वे उन्हें पूर्ववत् यथायोग्य पाकर बहुत प्रसन्न हुए । तत्पश्चात् सब लोग वहाँसे चले गये ॥ २३-२४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने यतिभोजने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें यतियोंका भोजनविषयक एक सौ बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

जनार्दनका हंसको समझाना; किंतु हंसका उनकी बात न मानकर उन्हें दूत बनाकर द्वारकाको भेजना

वैशम्पायन उवाच

दुर्वासास्त्वथ तत्रैव नारदेन महात्मना ।
चिन्तयन् ब्रह्मणस्तत्त्वं विजहार यथासुखम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! दुर्वासा मुनि वहीं महात्मा नारदजीके साथ ब्रह्मतत्त्वका चिन्तन करते हुए सुखपूर्वक विचरण करने लगे ॥ १ ॥

भगवानपि गोविन्दस्तयोर्वासममन्यत ।
ततस्तौ हंसडिम्भकौ तस्मिन् काले महीपतिम् ॥ २ ॥
ब्रह्मदत्तं महीपालं पितरं वीर्यशालिनम् ।
प्रावोचतामिदं वाक्यं समन्ताज्जनसंसदि ॥ ३ ॥

भगवान् गोविन्दने भी वहाँ उन दोनोंको रहनेकी अनुमति दे दी । तदनन्तर दोनों भाई हंस और डिम्भक उस समय अपने पराक्रमशाली पिता महाराज ब्रह्मदत्तके पास जाकर सब ओरसे भरे हुए दरबारमें उनसे इस प्रकार बोले—॥ २-३ ॥

राजसूयं महायज्ञं पितः कुरु सुयन्त्रितः ।

१. खाने, पीने, चाटने और चूसनेके भेदसे चार प्रकारकी भोजन-सामग्री होती है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्मिन् मासि नृपश्रेष्ठ यतावो यज्ञसिद्धये ॥ ४ ॥

'पिताजी ! आप यत्नपूर्वक राजसूय महायज्ञका अनुष्ठान कीजिये। नृपश्रेष्ठ ! हम दोनों इसी मासमें आपके इस यज्ञकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करेंगे ॥ ४ ॥

आवां तेऽद्य महाराज दिशां विजयतत्परौ।
यतिष्यावो बलैः सार्धं गजैरश्वैः रथैरपि ॥ ५ ॥
सम्भारा यज्ञसिद्ध्यर्थमानेतव्या नृपोत्तम।

'महाराज ! हम दोनों भाई आपके लिये दिग्विजय करनेके लिये तत्पर हैं। हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी चतुरङ्गिणी सेनाएँ साथ लेकर हम सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय पानेका प्रयत्न करेंगे। नृपश्रेष्ठ ! आपको यज्ञकी सिद्धिके लिये सामग्रियोंका संग्रह कराना चाहिये' ॥ ५½ ॥

तथेति स महाबाहो ब्रह्मदत्तोऽब्रवीत् तदा ॥ ६ ॥
जनार्दनस्तु विप्रेन्द्रो दृष्ट्वा साहसतत्परौ।
अशक्यमिति मन्वानो वयस्यं हंसमब्रवीत् ॥ ७ ॥
शृणु हंस वचो मह्यं श्रुत्वा निश्चित्य वीर्यवान्।

महाबाहु जनमेजय ! तब राजा ब्रह्मदत्तने 'तथास्तु' कहकर उन दोनोंकी बात मान ली। उन दोनोंको दुःसाहसमें तत्पर होते देख, उनके प्रयासको असम्भव मानकर विप्रवर जनार्दनने अपने मित्र हंससे कहा—'हंस ! पहले मेरी बात सुनो। सुनकर उसपर भलीभाँति विचार करके किसी निश्चयपर पहुँचो और उसके अनुसार पराक्रमपूर्वक कार्य करो ॥ ६-७½ ॥

आयुष्मन् साहसं कर्तुमुद्यतोऽसि नृपोत्तम ॥ ८ ॥
स्थिते भीष्मे जरासंधे बाह्लीके च नृपोत्तमे।
किं च वीरेषु सर्वेषु यादवेषु नृपोत्तम ॥ ९ ॥

'आयुष्मन् ! नृपश्रेष्ठ ! भीष्म, जरासंध, नृपशिरोमणि बाह्लीक तथा समस्त यादव वीरोंके रहते हुए तुम दुःसाहसपूर्ण कार्य करनेके लिये उद्यत हुए हो ॥ ८-९ ॥

भीष्मो हि बलवान् वृद्धः सत्यसंधो जितेन्द्रियः॥
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं यो जिगाय भृगूत्तमः ॥ १० ॥
तं युद्धे जितवान् भीष्मः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।

'भीष्मजी बलवान्, वृद्ध, सत्यप्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय हैं। जिन भृगुकुलतिलक परशुरामने इक्कीस बार पृथ्वीपर विजय पायी है, उन्हें भीष्मने सम्पूर्ण क्षत्रियोंके देखते-देखते युद्धमें जीत लिया था ॥ १०½ ॥

जरासंधस्य यद् वीर्यं तद् भवान् वेत्ति संयुगे ॥ ११ ॥
वृष्णिवीरास्तु ते सर्वे कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः।
तत्र कृष्णो हृषीकेशो जितशत्रुः कृती सदा ॥ १२ ॥

'जरासंधका युद्धमें जो पराक्रम है, उसे तुम अच्छी तरह जानते हो। समस्त वृष्णिवंशी वीर भी अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता तथा युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले हैं। उनमें जो भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वे सबकी इन्द्रियोंके नियन्ता, शत्रुविजयी तथा सदा ही रणकुशल हैं ॥ ११-१२ ॥

जरासंधेन सहितः सदा युद्धे जितश्रमः।
प्रमुखे तस्य न स्थातुं शक्तो जीवन् नृपोत्तमः ॥ १३ ॥

'जरासंधके साथ सदा युद्ध करके उन्होंने परिश्रमको जीत लिया है। कोई भी श्रेष्ठ नरेश उनके सामने जीते-जी नहीं ठहर सकता ॥ १३ ॥

बलभद्रस्तथा मत्तः क्रुद्धो यदि भवेद् बली ॥
लोकानिमान् समाहर्तुं शक्नोतीति मतिर्मम ॥ १४ ॥

'बलवान् बलभद्रजी बलके मदसे उन्मत्त रहते हैं, वे यदि कुपित हो जायँ तो अकेले ही इन तीनों लोकोंका संहार कर सकते हैं, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ १४ ॥

तथा च सात्यकिर्वीरः शक्तो जेतुं रणे रिपून्।
तथान्ये यादवाः सर्वे कृष्णमाश्रित्य दंशिताः ॥ १५ ॥

'इसी तरह वीर सात्यकि भी रणभूमिमें शत्रुओंको जीतनेकी शक्ति रखते हैं। अन्य सब यादव भी श्रीकृष्णका आश्रय लेकर सदा युद्धके लिये कवच बाँधे रहते हैं ॥ १५ ॥

अस्माभिश्च कृतः पूर्वं विरोधो यतिभिः सह।
दुर्वासा यतिभिः सार्धं गतो द्रष्टुं स केशवम् ॥ १६ ॥

'हमलोगोंने पहले यतियोंके साथ विरोध किया था। उन सब यतियोंके साथ दुर्वासा मुनि भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये गये हैं ॥ १६ ॥

इति श्रुतं नृपश्रेष्ठ ब्राह्मणाद् भोक्तुमागतात्।
तथा सति यथा सिद्ध्येत् तथा चिन्त्यं च मन्त्रिभिः॥ १७ ॥
ततः पश्चाद् विधास्यामो राजसूयं महाक्रतुम्।

'नृपश्रेष्ठ ! यह बात मैंने अपने घर भोजन करनेके लिये आये हुए एक ब्राह्मणसे सुनी है। ऐसी अवस्थामें जिस प्रकार अपना कार्य सिद्ध हो, उस उपायका मन्त्रियोंके साथ विचार करना चाहिये। इसके बाद हम राजसूय नामक महायज्ञका अनुष्ठान करेंगे' ॥ १७½ ॥

हंस उवाच

को नाम भीष्मो मन्दात्मा वृद्धो हीनबलः सदा ॥ १८ ॥
आवयोः पुरतः स्थातुं शक्तः स किल वृद्धकः।

हंस बोला—मन्दबुद्धि बूढ़ा और सदाका बलहीन भीष्म कौन-सा वीर है ? क्या वह बूढ़ा हम दोनोंके सामने ठहर सकता है ॥ १८½ ॥

यादवा इति चित्रं नः शक्ताः स्थातुं रणे द्विज ॥ १९ ॥
कश्च कृष्णः पुरः स्थातुं बलदेवश्च मत्तकः।
शैनेयश्चापि विप्रेन्द्र स्थातुं न इति चिन्तय ॥ २० ॥

ब्रह्मन् ! युद्धमें यादव हमारे सामने ठहर सकते हैं, यह तुम्हारी बात भी विचित्र ही है। वह कृष्ण और मतवाला बलभद्र भी कौन ऐसे वीर हैं, जो हमारे सामने ठहर सकें। विप्रवर ! तुम यह निश्चय समझो कि सात्यकि भी हम दोनोंके सामने नहीं ठहर सकता ॥ १९-२० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जरासंधस्तु धर्मात्मा बन्धुरेव सदा मम।
गच्छ प्रिय यदुश्रेष्ठं ब्रूहि मद्वचनात् त्वरन् ॥ २१ ॥

धर्मात्मा जरासंध तो सदा हमलोगोंका हितैषी बन्धु ही है। विप्रवर! तुम यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णके पास जाओ और मेरी आज्ञासे तुरंत यह बात उनसे कहो—॥ २१ ॥

दीयतां करसर्वस्वं यज्ञार्थे सुन्दरं बहु।
लवणानि बहून्यद्य गृह्य केशव मा चिरम् ॥ २२ ॥
आगच्छ त्वरितं कृष्ण न ते कार्यं विलम्बनम्।

'केशव! तुम यज्ञके लिये बहुत सुन्दर सामग्री तथा करके रूपमें अपना सारा धन दे दो, साथ ही बहुत-से नमकका संग्रह करके शीघ्र आओ। श्रीकृष्ण! तुम्हें इस कार्यमें विलम्ब नहीं करना चाहिये' ॥ २२½ ॥

इति ब्रूहि यदुश्रेष्ठं याहि त्वरितविक्रमः ॥ २३ ॥
न ब्रूयाश्चोत्तरं विप्र शपेयं त्वां प्रियोऽसि मे।
मित्रभावादिदं ब्रूहि पश्यामि त्वां पुनः पुनः ॥ २४ ॥

ब्रह्मन्! तुम शीघ्रतापूर्वक जाओ और यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णसे मेरा यह संदेश सुना दो। विप्र! मैं शपथ दिलाता हूँ, तुम मेरी बातका कोई उत्तर न देना। तुम मेरे प्रिय मित्र हो, मित्रभावसे ही यह बात जाकर कहो। मैं बारंबार तुम्हारी ओर देखता हूँ ॥ २३-२४ ॥

इति संचोदितो विप्रो नोत्तरं प्रत्यभाषत।
मित्रभावात् तथा राजन् स्नेहाच्च जनमेजय ॥ २५ ॥

राजन्! जनमेजय! हंससे इस प्रकार प्रेरित होकर ब्राह्मणने मित्रभाव तथा स्नेहके कारण उसे कोई उत्तर नहीं दिया ॥ २५ ॥

जनार्दनस्तु धर्मात्मा नित्यं गन्तुं समुद्यतः।
अद्य श्वो वा परश्वो वा गच्छामीति यतेत सः ॥ २६ ॥

सदा धर्ममें मन लगाये रखनेवाले जनार्दन श्रीकृष्णके पास जानेके लिये उद्यत हो गये। 'आज, कल या परसों मैं अवश्य जाऊँगा' ऐसा कहकर वे जानेकी तैयारी करने लगे ॥ २६ ॥

देवं द्रष्टुं जगद्योनिं शङ्खचक्रगदाधरम्।
एक एव च धर्मात्मा हयमारुह्य सत्वरम् ॥ २७ ॥
प्रातरेव जगामाशु द्रष्टुं द्वारवतीं द्विजः।
हरिं कृष्णं हृषीकेशं मनसा संस्मरन् द्विजः ॥ २८ ॥

धर्मात्मा जनार्दन शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले जगत्कारण श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये अकेले ही तीव्रगामी अश्वपर आरूढ़ हो प्रातःकाल ही द्वारकाके लिये शीघ्रतापूर्वक चल दिये। उनकी यात्राका एक ही उद्देश्य था—इन्द्रियोंके प्रेरक सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीहरिका दर्शन। ब्राह्मण जनार्दन उन्हींका मन-ही-मन स्मरण करते हुए चले ॥ २७ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भकका उपाख्यान-विषयक एक सौ तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११३ ॥

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

जनार्दनकी भगवद्-दर्शनविषयक उत्कण्ठा

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रायाद्धरिं विष्णुं ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः।
हयेनैकेन राजेन्द्र त्वरितं स ययौ नृप ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजेन्द्र! नरेश्वर! तदनन्तर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण जनार्दन एक अश्वपर सवार हो तुरंत भगवान् विष्णु हरिके पास चल दिये ॥ १ ॥

यथा निदाघसमये सूर्यांशुपरिपीडितः।
पान्थो याति जलं दृष्ट्वा त्वरितं तत्पिपासया ॥ २ ॥
धावत्येव तथा विप्रो हरिं द्रष्टुं जनार्दनः।
गच्छन् स चिन्तयामास चोदयन् हयमुत्तमम् ॥ ३ ॥

जैसे ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे पीड़ित हुआ पथिक कहीं दूर जल देखकर उसे पीनेकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक उसके पास जाता है, उसी प्रकार ब्राह्मण जनार्दन भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये दौड़ते हुए ही चले। वे अपने उत्तम अश्वको हाँकते हुए मन-ही-मन इस प्रकार सोचने लगे—॥ २-३ ॥

हंस एव प्रियो मह्यं कुर्यात् प्रियहितं मम।
तथा हि प्रेषितस्तेन हरिं पश्याम्यहं प्रभुम् ॥ ४ ॥

'वास्तवमें हंस ही मेरा प्रिय मित्र है। वही मेरा प्रिय और हित कर सकता है; क्योंकि उसीने मुझे द्वारका भेजा है, जहाँ मैं भगवान् श्रीहरिका दर्शन करूँगा ॥ ४ ॥

अहमेव सदा धन्यो मत्तो ह्यभ्यधिको न हि।
यतो द्रक्ष्याम्यहं विष्णुं वसन्तं द्वारकापुरे ॥ ५ ॥

'मैं ही सदा धन्य हूँ, मुझसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि मैं द्वारकापुरीमें निवास करनेवाले भगवान् विष्णुका दर्शन करूँगा ॥ ५ ॥

सा हि मे जननी धन्या हरिं दृष्ट्वा पुनर्गतम्।
कृतार्थं सर्वदा देवी द्रक्ष्यत्येषा मनस्विनी ॥ ६ ॥

'मेरी वह माता धन्य है, जो मनस्विनीदेवी भगवान्का दर्शन करके सदाके लिये कृतार्थ होकर लौटे हुए मुझ अपने पुत्रको पुनः देखेगी ॥ ६ ॥

मुखमुन्निद्रहेमाब्जकिञ्जल्कसदृशप्रभम्।

CC0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्रक्ष्यामि देवदेवस्य चक्रिणः शार्ङ्गधन्वनः ॥ ७ ॥

'मैं शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले देवाधिदेव श्रीकृष्णके उस मुखका दर्शन करूँगा, जो विकसित सुवर्णमय कमलके केसरकी-सी कान्तिसे प्रकाशित होता है ॥ ७ ॥

वपुर्द्रक्ष्याम्यहं विष्णोर्नीलोत्पलदलच्छवि ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम् ॥ ८ ॥

'मैं श्रीकृष्णके नीलकमलदलकी-सी कान्तिवाले उस श्यामसुन्दर शरीरका दर्शन करूँगा, जो शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और वनमालासे विभूषित है ॥ ८ ॥

नेत्रे ते देवदेवस्य पद्मकिञ्जल्कसप्रभे ।
पश्याम्यहमदीनात्मा नष्टदुःखोऽस्मि निर्वृतः ॥ ९ ॥

'मैं देवाधिदेव श्रीकृष्णके उन दोनों नेत्रोंका दर्शन करूँगा, जो विकसित कमलदलके समान कान्तिमान् हैं। उस समय मेरे हृदयका सारा दैन्य दूर हो जायगा, दुःख मिट जायँगे और मैं परमानन्दमें निमग्न हो जाऊँगा ॥ ९ ॥

अपि द्रक्ष्यति योगात्मा सौम्येनैव स्वचक्षुषा ।
अपि वा मत्प्रियं ब्रूयात् स्वस्ति चेति च वा वदेत् ॥ १० ॥

'क्या योगात्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सौम्यदृष्टिसे ही मेरी ओर देखेंगे, अथवा मुझे प्रिय लगनेवाली बातें कहेंगे, या 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसी वाणीका प्रयोग करेंगे ॥ १० ॥

द्रक्ष्यामि चक्रिणो वर्ष्म ततस्त्रैलोक्यसंनिभम् ।
पादाब्जं चक्रिणो द्रष्टुं त्वरत्येव च मे मनः ॥ ११ ॥

'वहाँ चलकर मैं चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णके उस विग्रहका दर्शन करूँगा, जो तीनों लोकोंको अपने भीतर रखनेके कारण त्रिलोकीके समान है। मेरा मन उन चक्रपाणि-के चरणारविन्दोंका दर्शन करनेके लिये उतावला हो उठा है ॥ ११ ॥

वक्षःस्थलं सदा विष्णोः स्फुरद्रत्नप्रभायुतम् ।
पश्यन्निव च गच्छामि स्मरंश्चानिशमीश्वरम् ॥ १२ ॥

'मैं भगवान् विष्णुके उस वक्षःस्थलको देखता हुआ-सा चलता हूँ, जो सदा उद्दीप्त कौस्तुभमणिकी प्रभासे प्रकाशित होता है तथा उन्हीं परमेश्वरका निरन्तर स्मरण करता हुआ उनकी सेवामें चल रहा हूँ ॥ १२ ॥

पीतकौशेयवसनं लम्बहारविभूषितम् ।
ईषत्स्मिताधरं विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः ॥ १३ ॥

'जो रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं, नीचेतक लटकी हुई विशाल वनमालासे विभूषित हैं तथा जिनके अधरोंपर मन्द मुसकानकी छटा छायी रहती है, उन भगवान् श्रीकृष्णका आज मैं बारंबार दर्शन करूँगा ॥ १३ ॥

स्मरतश्च हरे रूपं रोमहर्षोऽयमीदृशः ।
गच्छतश्च पुरो भाति शङ्खचक्रगदासिमान् ॥ १४ ॥

'श्रीहरिके उस रूपका स्मरण करते ही मेरे शरीरमें यह इस तरह रोमाञ्च हो रहा है। चलते समय मेरे सामने शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये भगवान् खड़े-से पड़ते हैं ॥ १४ ॥

यातीव च पुरो भाति मह्यं देवः जगद्गुरुः ।
एषोऽयमिति मे वक्तुं जिह्वा प्रस्फुरतीव तम् ॥ १५ ॥

'देव जगद्गुरु श्रीकृष्ण मेरे आगे-आगे जाते हुए-से प्रतीत होते हैं। मेरी जिह्वा बार-बार यह कहनेके लिये उत्सुक-सी होती है कि 'ये रहे मेरे भगवान्' ॥ १५ ॥

इदं दुःखतरं मन्ये करं देहीति मद्वचः ।
इदं तत्साहसं मन्ये तद्वचस्तस्य भूपतेः ॥ १६ ॥

'मैं जो उनके सामने यह कहनेके लिये जा रहा हूँ कि 'मुझे कर दीजिये', अपनी इस बातको मैं अत्यन्त दुःखजनक मानता हूँ तथा मैं इसे राजा हंसका अत्यन्त दुःसाहसपूर्ण वचन समझता हूँ ॥ १६ ॥

हंसस्य करदो विष्णुस्तदाज्ञापरिचारकः ।
तस्य सर्वं पुरो गत्वा वक्ताहं किल निर्दयः ॥ १७ ॥

'भगवान् विष्णु हंसको कर दें, उसकी आज्ञाका पालन और सेवा करें, ये सारी बातें मुझे उनके सामने जाकर कहनी पड़ेंगी। निश्चय ही मैं बड़ा निर्दय हूँ ॥ १७ ॥

मूढानामग्रणीरस्मि निर्लज्जश्च तथा वदन् ।
करं देहि हरे विष्णो हंसस्य यदुपुङ्गव ॥ १८ ॥

'हरे ! विष्णो ! यदुपुङ्गव ! आप हंसको कर दीजिये' ऐसी बात कहता हुआ मैं मूर्खोंका अगुआ और निर्लज्ज समझा जाऊँगा ॥ १८ ॥

लवणानि बहून्याशु दातव्यानि करात्मना ।
इति वक्तुं न मे युक्तं पुरतस्तस्य शार्ङ्गिणः ॥ १९ ॥

'आपको कररूपमें शीघ्र ही बहुत-सा नमक देना होगा' शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णके सामने ऐसी बात कहना मेरे लिये कदापि उचित न होगा ॥ १९ ॥

तथापि मित्रभावात् तु वक्तव्यं घोरमीदृशम् ।
कष्टो ह्ययं मित्रभावो मनुष्याणां कृतात्मनाम् ॥ २० ॥

'तथापि मित्रताके कारण मुझे ऐसा घोर वचन कहना होगा। पवित्रात्मा पुरुषोंके लिये यह मित्रभाव भी कष्टप्रद ही होता है ॥ २० ॥

अथवा सर्वविद् विष्णुः सर्वस्य हृदि संस्थितम् ।
जानात्येव सदा भावं प्राणिनां शोभने रतः ॥ २१ ॥

'अथवा भगवान् विष्णु सर्वज्ञ हैं। वे सबके हृदयके भावको सदा जानते हैं और प्राणियोंके कल्याणमें तत्पर रहते हैं ॥ २१ ॥

तथा सति न मे दोषो मित्रभावो यतो ह्ययम् ।
सर्वथा रक्षतां विष्णुर्घोरं वक्तुं यतस्य मे ॥ २२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'ऐसी दशामें मेरा कोई दोष नहीं है; क्योंकि यह मित्रता ही मुझसे ऐसा कार्य कराती है। मैं जो घोर बात कहनेके लिये उद्यत हुआ हूँ, उसके लिये भगवान् विष्णु सर्वथा मेरी रक्षा करें ॥ २२ ॥

द्रक्ष्याम्यहं जगन्नाथं नीलकुञ्चितमूर्धजम्।
कम्बुग्रीवधरं विष्णुं श्रीवत्साच्छादितोरसम् ॥ २३ ॥

'जो सम्पूर्ण जगत्के स्वामी और रक्षक हैं, जिनके सिरपर काले घुँघराले केश शोभा पाते हैं, जो शङ्खके समान ग्रीवा धारण करते हैं तथा जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्स-चिह्नसे आच्छादित है, उन भगवान् विष्णुका मैं दर्शन करूँगा ॥

स्फुरत्पद्ममहाबाहुं रत्नच्छायाविराजितम्।
द्रक्ष्यामि केशवं विष्णुं चक्रिणं यादवेश्वरम् ॥ २४ ॥

'जिनकी विशाल भुजाओंमें पद्मरागमणिके आभूषण शोभा पाते हैं तथा जो कौस्तुभ आदि रत्नोंकी कान्तिसे प्रकाशित होते हैं, उन सर्वव्यापी, चक्रधारी, यादवेश्वर श्रीकृष्णका मैं दर्शन करूँगा ॥ २४ ॥

अचिन्त्यविभवं देवं भूतभव्यभवन्प्रभुम्।
आत्मेच्छया जगद्रक्षं द्रक्ष्यामि जलशायिनम् ॥ २५ ॥

'जिनका वैभव अचिन्त्य है, जो भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी हैं, जो अपनी ही इच्छासे जगत्की रक्षामें तत्पर रहते हैं, उन एकार्णवके जलमें शयन करनेवाले श्रीनारायण-देवका मैं दर्शन करूँगा ॥ २५ ॥

कृतार्थः सर्वथा चाहं भवामि विगतज्वरः।
अद्य मे सफलं जन्म साक्षाद् दृष्टवतो हरिम् ॥ २६ ॥

'उनका दर्शन करके मैं सर्वथा कृतार्थ हो जाऊँगा। मेरी सारी चिन्ताएँ तथा व्याधियाँ दूर हो जायँगी। आज श्रीहरिका साक्षात् दर्शन कर लेनेपर मेरा जन्म सफल हो जायगा ॥२६॥

अद्य मे सफला यज्ञाः साक्षात्कृतवतो हरिम्।
नेत्रे मे सफले विष्णुं पश्यतश्च जगन्मयम् ॥ २७ ॥

'आज श्रीहरिका साक्षात्कार करनेपर मेरे यज्ञ सफल हो जायँगे। जगन्मय विष्णुका दर्शन करनेसे मेरे दोनों नेत्र भी सफल हो जायँगे ॥ २७ ॥

प्रीतिमान्नस्तु मे विष्णुर्वक्तुर्घोरस्य कर्मणः।
उन्मिषन्नेत्रयुग्मेन द्रक्ष्यामि सकृदीश्वरम् ॥ २८ ॥

'मैं भयंकर कर्मके लिये प्रस्ताव करनेवाला हूँ। उस समय भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न रहें। क्या मैं अपनी खुली हुई दोनों आँखोंसे एक बार उन जगदीश्वरका दर्शन करूँगा ॥ २८ ॥

आमूलमसकृद् विष्णुं पश्यामि च पुनः पुनः।
पिबामि नेत्रयुग्मेन वपुः कृष्णस्य केवलम् ॥ २९ ॥

'मैं नीचेसे ऊपरतक बारंबार भगवान् विष्णुका दर्शन करूँगा, दोनों नेत्रोंसे केवल श्रीकृष्णके शरीरकी रूपमाधुरीका पान करूँगा ॥ २९ ॥

धारयिष्याम्यहं पांसुं तत्पादप्रभवं शिवम्।
ततः कृतार्थतां यास्ये स्वर्गमार्गो हि तद्रजः ॥ ३० ॥

'तदनन्तर उनके चरणोंसे प्रकट हुई कल्याणमयी धूलको सिरपर धारण करूँगा। ऐसा करके कृतार्थ हो जाऊँगा, क्योंकि उनकी चरणरज स्वर्गका सोपान है ॥ ३० ॥

मेघगम्भीरनिर्घोषं श्रोष्यामि च हरेः स्वरम्।
पादाब्जं चक्रिणो विष्णोः पश्यामि च जगत्पतेः ॥ ३१ ॥

'मैं श्रीहरिके मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान स्वरको सुनूँगा और चक्रधारी जगदीश्वर विष्णुके चरणारविन्दका दर्शन करूँगा ॥

पश्यामि च हरेर्वक्त्रं पूर्णेन्दुसदृशप्रभम्।
हरेरिदं जगद् रूपं पश्यामीव च सर्वतः ॥ ३२ ॥
प्रसीदतु सदा विष्णुरयुक्तं वक्तुमिच्छतः।

'पूर्ण चन्द्रमाके समान जो श्रीकृष्णका मनोहर मुख है, उसका अवलोकन करूँगा। यह सारा जगत् श्रीहरिका ही रूप है, इस रूपमें मैं सब ओर उन्हींका दर्शन-सा कर रहा हूँ। अनुचित बात कहनेकी इच्छावाले मुझ सेवकके ऊपर भगवान् विष्णु सदा प्रसन्न रहें ॥ ३२½ ॥

आलोलकुण्डलयुतं हरिचन्दनचर्चितम् ॥ ३३ ॥
स्फुरत्केयूररत्नार्चिर्बाहुद्वयविराजितम् ।
सव्ये द्योतन्महाशङ्खं रश्मिजालविराजितम् ॥ ३४ ॥
प्रोद्यद्भास्करवर्णाभं चक्रज्वालाविराजितम्।
प्रोज्ज्वलत्कङ्कणयुतं तप्तजाम्बूनदाङ्गदम् ॥ ३५ ॥
पीतकौशेयवसनं विस्तीर्णोरस्कमच्युतम्।
कदा द्रक्ष्यामि देवेशमिदानीमथवान्यदा ॥ ३६ ॥

'जिनके कानोंमें हिलते हुए कुण्डल जगमगा रहे हैं, जो हरिचन्दनसे चर्चित हैं, चमकीले बाजूबंदोंमें जड़े गये रत्नोंकी प्रभासे उद्भासित दोनों भुजाओंसे जिनकी विशेष शोभा होती है, जिनके बायें हाथमें महान् पाञ्चजन्य शङ्ख देदीप्यमान है, जो किरणजालसे प्रकाशित हैं, उदयकालके सूर्यके समान जिनकी सुनहरी कान्ति शोभा पाती है, जो सुदर्शनचक्रकी ज्वालामालाओंसे उद्भासित हैं, जिनके हाथोंमें जगमगाते हुए कङ्कण तथा तपे हुए सुवर्णके बने बाजूबंद शोभा पाते हैं, जो रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं तथा जिनकी छाती चौड़ी है, उन देवेश्वर अच्युतका मैं इस समय अथवा दूसरे समयमें कब दर्शन करूँगा ॥ ३३–३६ ॥

सर्वथा कृतकृत्योऽहं यद्वपुर्द्रष्टुमुद्यतः।
नमो मह्यं नमो मह्यं यतो द्रष्टुमहं हरिम् ॥ ३७ ॥

'मैं सर्वथा कृतकृत्य हूँ; क्योंकि आज मैं श्रीहरिके साक्षात् शरीरका दर्शन करनेके लिये उद्यत हुआ हूँ। मैं श्रीहरिका दर्शन करनेको कटिबद्ध हूँ, इसलिये मुझे नमस्कार है! मुझे नमस्कार है!! ॥ ३७ ॥

उद्यतोऽस्मि जगन्नाथं बलभद्रकृतास्पदम्।
द्रक्ष्यामि यदवश्यमहं विष्णुं विष्णुं जगद्गुरुम् ॥ ३८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'शेषस्वरूप बलभद्रपर शयन करनेवाले जगदीश्वर श्रीकृष्णके दर्शनके लिये आज मैं उद्यत हूँ। उन विजयशील सर्वव्यापी जगद्गुरु श्रीकृष्णका अवश्य आज ही मैं दर्शन करूँगा ॥ ३८ ॥

श्रीकौस्तुभोद्भवरुचि स्फुरितोरुवक्षः
पीताम्बरं मकरकुण्डलपङ्कजाक्षम्।
कृष्णं किरीटवरचक्रगदोर्ध्वहस्तं
तेजोमयं मम हरेर्वपुरस्तु भूत्यै ॥ ३९ ॥

'जो श्रीकौस्तुभमणिकी प्रभासे प्रकाशित है, जिसका विशाल वक्षःस्थल उसी कौस्तुभ एवं श्रीवत्सकी शोभासे उद्दीप्त हो रहा है, जिसने पीताम्बर धारण कर रखा है, जो मकराकार कुण्डल तथा कमलसदृश नेत्रोंसे सुशोभित है, जिसके मस्तकपर उत्तम किरीट और ऊपर उठे हुए हाथोंमें चक्र एवं गदा विराजमान हैं, श्रीहरिका वह श्यामवर्णमय तेजस्वी विग्रह मेरा कल्याण करनेवाला हो ॥ ३९ ॥

वेदोदधौ विशदशास्त्रमहाहियोगे
निष्णातशुद्धमतिमन्दरमथ्यमाने।
उद्योतमानममरैरनिशं निषेव्यं
नारायणाख्यममृतं प्रपिबामि वाद्य ॥ ४० ॥

'विशद शास्त्ररूपी महान् सर्प (वासुकि) से जुड़े हुए निष्णात शुद्धबुद्धिरूपी मन्दराचलद्वारा मथे जानेवाले वेदरूप समुद्रसे जिसका प्राकट्य हुआ है तथा अमरगण निरन्तर जिसका सेवन करते हैं, उस नारायण नामक अमृतका आज मैं अपने नेत्रोंद्वारा पान करूँगा ॥ ४० ॥

ध्येयं मुमुक्षुभिरमेयमनाद्यनन्तं
स्थूलं सुसूक्ष्मतरमेकमनेकमाद्यम्।
ज्योतिस्त्रिलोकजनकं त्रिदशैकवन्द्य-
मक्ष्णोर्ममास्तु सततं हृदयेऽच्युताख्यम्

'जो मुमुक्षुओंके द्वारा चिन्तन करनेके योग्य, अप्रमेय, अनादि, अनन्त, स्थूल, अत्यन्त सूक्ष्म, एक, अनेक, आद्य, त्रिभुवनका जनक तथा देवताओंद्वारा एकमात्र वन्दनीय है, वह अच्युत नामक तेज सदा मेरे नेत्रोंके समक्ष और हृदयमें प्रकाशित होता रहे' ॥ ४१ ॥

चिन्तयन्निति विप्रेन्द्रो ययौ द्वारवतीं पुरीम्।
मत्वा कृतार्थमात्मानं वाहयन् हयमुत्तमम् ॥ ४२ ॥

इस प्रकार सोचते हुए विप्रवर जनार्दन अपनेको कृतार्थ मानकर उस उत्तम अश्वको हाँकते हुए द्वारकापुरीमें पहुँचे ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने विप्रस्य द्वारवतीगमने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसंगमें ब्राह्मणका द्वारकागमनविषयक एक सौ चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११४ ॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

जनार्दनका सुधर्मा सभामें जाकर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे संतुष्ट हो उनकी आज्ञासे भगवत्स्तवन-पूर्वक हंस और डिम्भकका संदेश सुनाना और उसे सुनकर यादवोंका उपहास करना

वैशम्पायन उवाच

स निवेदितसर्वस्वो द्वाःस्थेन हि जनार्दनः।
अथ प्रविश्य धर्मात्मा सुधर्मां वै द्विजोत्तमः ॥ १ ॥
अपश्यद् देवदेवेशं सुधर्माकृतिसंस्थितम्।
बलभद्रेण संयुक्तमध्यासितमहासनम् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था, उन द्विजश्रेष्ठ धर्मात्मा जनार्दनने द्वारपालकी सहायतासे सुधर्मा-सभामें प्रवेश करके देवदेवेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन किया, जो वहाँ उत्तम धर्ममय स्वरूपसे विराजमान थे और बलभद्रजीके साथ ऊँचे सिंहासनपर बैठे हुए थे ॥ १-२ ॥

अग्रतः स्थितशैनेयं पार्श्वतः स्थितनारदम्।
दुर्वाससा कृतकथमुग्रसेनपुरस्कृतम् ॥ ३ ॥

उनके सामने सात्यकि खड़े थे तथा उनके पार्श्वभागमें नारदजी विराजमान थे। भगवान् श्रीकृष्ण दुर्वासामुनिसे बातचीत कर रहे थे। राजा उग्रसेन उनके सामने थे ॥ ३ ॥

गायद्गन्धर्वमुख्यैश्च नृत्यदप्सरसां गणैः।
सेव्यमानं महाराज सूतमागधवन्दिभिः ॥ ४ ॥

महाराज! गाते हुए मुख्य-मुख्य गन्धर्व, नाचती हुई झुंड-की-झुंड अप्सराएँ तथा सूत, मागध एवं वन्दीजन योग्यतानुसार उनकी सेवा कर रहे थे ॥ ४ ॥

उद्गीयमानयशसं माधवं मधुसूदनम्।
उद्गीयमानं विप्रैश्च सामभिः सामगैर्हरिम् ॥ ५ ॥

वहाँ माधव मधुसूदनके यशका उच्चस्वरसे गान हो रहा था तथा सामगान करनेवाले ब्राह्मण भी साममन्त्रोंद्वारा श्रीहरिका गुणगान करते थे ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा प्रीतमना विष्णुं प्रोद्भूतपुलकच्छविः।
नाम्ना जनार्दनोऽस्मीति ननाम चरणौ हरेः।
बलभद्रं ततो देवं ववन्दे शिरसा द्विजः ॥ ६ ॥
दूतोऽस्मि देवदेवेश हंसस्य डिम्भकस्य च।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन पाकर जनार्दनका मन प्रसन्न हो गया। अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो उठा। 'मैं जनार्दन हूँ' ऐसा कहकर उन्होंने श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम किया। तत्पश्चात् ब्राह्मण जनार्दनने भगवान् बलभद्रको मस्तक झुकाया और श्रीकृष्णसे कहा—'देवदेवेश्वर! मैं हंस और डिम्भकका दूत हूँ' ॥ ६½ ॥

इति ब्रुवाणं विप्रेन्द्रमिदमाह स माधवः ॥ ७ ॥
आस्स्वेदं विष्टरं पूर्वं पश्चाद् ब्रूहि प्रयोजनम्।
तथेति चाब्रवीद् विप्रो महदासनमास्थितः ॥ ८ ॥

इस तरह कहते हुए विप्रवर जनार्दनसे भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'ब्रह्मन्! पहले आप इस आसनपर बैठिये, इसके बाद अपने आगमनका प्रयोजन बताइये।' तब ब्राह्मणने 'बहुत अच्छा' कहा और वे एक महान् आसनपर विराजमान हुए ॥ ७-८ ॥

वाचा सम्पूज्य विप्रेन्द्रमपृच्छत् कुशलं हरिः।
ब्रह्मदत्तस्य राजेन्द्र हंसस्य डिम्भकस्य च ॥ ९ ॥

राजेन्द्र! भगवान् श्रीकृष्णने वाणीद्वारा विप्रवर जनार्दनका स्वागत-सत्कार करके फिर उनसे ब्रह्मदत्त, हंस और डिम्भकका कुशल-समाचार पूछा ॥ ९ ॥

श्रुतं चापि तयोर्वीर्यं प्रयोजनमतो द्विज।
अपि वा कुशलं विप्र पितुस्तव जनार्दन ॥ १० ॥

वे बोले—'विप्र जनार्दन! मैंने हंस और डिम्भकका पराक्रम और प्रयोजन पहलेसे सुन रखा है। तुम्हारे पिताजी तो कुशलपूर्वक हैं न?' ॥ १० ॥

जनार्दन उवाच

कुशलं ब्रह्मदत्तस्य पितुश्च मम केशव।
तयोरेव जगन्नाथ हंसस्य डिम्भकस्य च ॥ ११ ॥

जनार्दनने कहा—केशव! राजा ब्रह्मदत्त और मेरे पिताजी सकुशल हैं। जगन्नाथ! दोनों भाई हंस और डिम्भक भी कुशलसे ही हैं ॥ ११ ॥

श्रीभगवानुवाच

किमाहतुर्महीपालौ तौ हंसडिम्भकौ नृपौ।
ब्रूहि सर्वमशेषेण नात्र शङ्का द्विजोत्तम ॥ १२ ॥

श्रीभगवान् बोले—द्विजश्रेष्ठ! राजा हंस और डिम्भकने क्या संदेश दिया है? आप सारी बातें विस्तारपूर्वक बतावें। इसके लिये आपके मनमें कोई शङ्का नहीं होनी चाहिये ॥ १२ ॥

वाच्यं वाप्यथवाऽवाच्यं कर्तव्यमथ चेतरत्।
श्रुत्वा तस्य विधास्यामो युक्तरूपं द्विजोत्तम ॥ १३ ॥

विप्रवर! उन्होंने जो कुछ कहा हो, वह कहने योग्य हो या न कहने योग्य हो, करने योग्य हो या न करने योग्य हो, उसे पूरा-पूरा सुनकर हमलोग उसका उचित उत्तर देंगे ॥

दूतोऽसि सर्वथा विप्र न वाच्यावाच्यकल्पना।
यत् कर्मकारनिर्दिष्टं तद् वाच्यं दूतजन्मना ॥ १४ ॥

ब्रह्मन्! आप दूत हैं। आपके लिये वाच्य और अवाच्यका विचार सर्वथा अनावश्यक है। भेजनेवालेने जो कुछ जैसे कहा हो, दूतको वह सब उसी प्रकार कहना चाहिये ॥ १४ ॥

नात्र शङ्का त्वया कार्या वक्तव्यस्येतरस्य च।
अतो वद यथा प्रोक्तं ताभ्यामिह जनार्दन ॥ १५ ॥

जनार्दनजी! आपको वाच्य और अवाच्यकी शङ्का नहीं करनी चाहिये। अतः हंस और डिम्भकने जैसा कहा है, वैसा ही यहाँ कहिये ॥ १५ ॥

केशवेनैवमुक्तस्तु प्रोवाच स जनार्दनः।
अजानन्निव किं ब्रूषे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ १६ ॥

भगवान् केशवके ऐसा कहनेपर जनार्दन बोले—'भगवन्! आप अनजानकी भाँति क्यों बात कर रहे हैं? आप तो सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले हैं ॥ १६ ॥

न चास्ति ते परोक्षं तु जगद्वृत्तान्तमच्युत।
सर्वं हि मनसा पश्यन् किं त्वमात्थ वदेति माम् ॥ १७ ॥

'अच्युत! जगत्का कोई भी वृत्तान्त आपकी आँखोंसे ओझल नहीं है। आप अपने मनसे सब कुछ देखते हुए भी मुझसे क्यों कहते हैं कि 'तुम बताओ' ॥ १७ ॥

विद्वद्भिर्गीयसे विष्णुस्त्वमेव जगतीपते।
इच्छया सर्वमाप्नोषि दृष्टादृष्टविवेचनम् ॥ १८ ॥

'पृथ्वीनाथ! विद्वान् पुरुष आपको ही विष्णु कहते हैं। आप इच्छा करते ही दृष्ट और अदृष्ट वस्तुका पूर्ण विवेक प्राप्त कर लेते हैं ॥ १८ ॥

त्वमेवेदं जगत् सर्वं जगच्च त्वयि तिष्ठति।
न त्वया रहितो ह्येकः पदार्थः सचराचरः ॥ १९ ॥

'आप ही यह सम्पूर्ण जगत् हैं, आपमें ही इस जगत्की स्थिति है। एक भी ऐसा कोई चर या अचर पदार्थ नहीं है, जो आपसे रहित हो ॥ १९ ॥

नास्ति किंचिदवेद्यं ते सर्वगोऽसि जगत्पते।
त्वमिन्द्रः सर्वभूतानां रुद्रः संहारकर्मकृत् ॥ २० ॥

'जगदीश्वर! आप सर्वज्ञ एवं सर्वव्यापी हैं, आपके लिये कुछ भी अज्ञेय नहीं है। आप ही समस्त भूतोंके इन्द्र हैं और आप ही संहार कर्म करनेवाले रुद्र हैं ॥ २० ॥

रक्षितासि सदा विष्णुः सर्वलोकस्य माधव।
संसारस्य भवान् स्रष्टा किं त्वमात्थ वदेति माम् ॥ २१ ॥

'माधव! सदा सम्पूर्ण लोककी रक्षा करनेवाले विष्णु आप ही हैं। आप ही जगत्स्रष्टा ब्रह्मा हैं। फिर आप मुझसे क्यों कहते हैं कि 'तुम बताओ' ॥ २१ ॥

विद्वद्भिर्गीयसे नित्यं ज्ञानात्मेति च माधव।
प्राणं प्राणविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम ॥ २२ ॥

'माधव! विद्वान् पुरुष सदा आपको ही ज्ञानात्मा कहते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। पुरुषोत्तम! प्राणवेत्ता पुरुष आपको ही प्राण कहते हैं॥

शब्दं शब्दविदः प्राहुस्त्वामेव पुरुषोत्तम।
तथा सति हृषीकेश किं त्वमात्थ वदेति माम्॥ २३॥

'पुरुषोत्तम! शब्दशास्त्रके ज्ञाता वैयाकरण आपको ही शब्द कहते हैं। हृषीकेश! ऐसी दशामें आप मुझसे क्यों कहते हैं कि 'तुम अपने राजाका संदेश कहो'॥ २३॥

तथापि शृणु देवेश चोदितोऽस्मि यतस्त्वया।
वदेत्यसकृदेवैतत् तस्माद् वक्ष्यामि माधव॥ २४॥

'देवेश्वर माधव! तथापि सुनिये। आपने मुझे बारंबार कहनेके लिये प्रेरित किया है। इसलिये मैं कहूँगा॥ २४॥

राजसूयेन यज्ञेन ब्रह्मदत्तोऽद्य यक्ष्यते।
तदर्थं प्रेषितस्ताभ्यां हंसेन डिम्भकेन च॥ २५॥

'भगवन्! राजा ब्रह्मदत्त अब राजसूय यज्ञ करेंगे। उसीके लिये हंस और डिम्भकने मुझे आपके पास भेजा है॥

करार्थं यदुमुख्येभ्यस्तव चामन्त्रणाय हि।
लवणं बहु देयं ते यज्ञार्थं तस्य केशव॥ २६॥

'उसने मुख्य-मुख्य यादवोंसे कर लेने और आपको आमन्त्रित करनेके लिये मुझे यहाँतक आनेके लिये विवश किया है। केशव! आपको उसके यज्ञके लिये बहुत-सा नमक देना है॥ २६॥

इत्यर्थं प्रेषितस्ताभ्यां करं देहि तदाज्ञया।
इदं त्वमपरं ताभ्यामुक्तं शृणु जगत्पते॥ २७॥

'जगत्पते! उन दोनोंने इसीलिये मुझे यहाँ भेजा है कि आप उनकी आज्ञासे उनके लिये कर दीजिये। उन दोनोंने जो यह दूसरी बात कही है, उसे भी सुन लीजिये॥ २७॥

लवणानि बहून्याशु प्रगृह्य त्वरितं भवान्।
आगच्छतु तयो राज्ञोः सेयं केशव वाग् विभो॥ २८॥

'आप शीघ्र ही बहुत-सा नमक लेकर मेरे यहाँ आइये।' प्रभो! केशव! यही उन दोनों राजाओंका आपके लिये संदेश है'॥

इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे दूते तत्र तयोर्नृप।
प्रहस्य सुचिरं कृष्णो बभाषे दूतमीश्वरः॥ २९॥

नरेश्वर! उन दोनोंके दूत विप्रवर जनार्दन जब इस प्रकार कह चुके, तब भगवान् श्रीकृष्णने बहुत देरतक जोर-जोरसे हँसकर उस दूतसे कहा—॥ २९॥

शृणु दूत वचो मह्यं युक्तमुक्तं द्विजोत्तम।
करं दक्षामि ताभ्यां तु करदोऽस्मि यतो नृपः॥ ३०॥

'दूत! द्विजश्रेष्ठ! तुम मेरी कही हुई यह युक्तियुक्त बात सुनो। मैं उन दोनोंको कर दूँगा; क्योंकि मैं उन्हें कर देनेवाला नरेश हूँ॥ ३०॥

धाष्टर्यमेतत् तयोर्विप्र मत्तो यस्तु करग्रहः।
अहो धाष्टर्यमहो धाष्टर्यं तयोः क्षत्रियबीजयोः॥ ३१॥

'विप्रवर! मुझसे जो कर लेनेका संकल्प है, यह उन दोनों भाई हंस और डिम्भककी बहुत बड़ी धृष्टता है। अहो! क्षत्रियके बीजसे उत्पन्न हुए उन दोनोंकी यह कैसी अद्भुत धृष्टता है! यह कैसी आश्चर्यजनक ढिठाई है॥ ३१॥

इदमश्रुतपूर्वं मे मत्तो यस्तु करग्रहः।
इत्युक्त्वा केशवो दूतमिदमाह स्म यादवान्॥ ३२॥

'मुझसे कर लेनेकी बात पहले-पहल सुननेमें आयी। इससे पूर्व कभी ऐसी बात नहीं सुनी गयी थी।' दूतसे ऐसा कहकर भगवान् केशवने यादवोंसे कहा—॥ ३२॥

हास्यमेतद् यदुश्रेष्ठा मत्तो यस्तु करग्रहः।
यष्टासौ राजसूयस्य ब्रह्मदत्तो महीपतिः॥ ३३॥
तौ तु याजयितारौ हि हंसो डिम्भक एव च।
वोढा किल यदुश्रेष्ठो लवणस्य दुरात्मनः॥ ३४॥

'यदुवरो! मुझसे जो कर-ग्रहणकी माँग है, यह कैसी उपहासास्पद बात है। राजा ब्रह्मदत्त राजसूय यज्ञ करेंगे और इस यज्ञके करानेवाले हैं उन्हींके बेटे हंस और डिम्भक। यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण उस दुरात्माके यहाँ नमक ढोकर ले जायँगे॥

करदो वासुदेवो हि जितोऽस्मि यदुसत्तमाः।
हास्यं हास्यमिदं भूयः शृणुध्वं यादवा वचः॥ ३५॥

'यदुश्रेष्ठ वीरो! मुझ वासुदेवको उसने कर देनेवाला कह दिया, मानो उसने मुझे युद्धमें पराजित कर दिया। यादवो! यह कितनी हँसीकी बात है, इसे तुमलोग फिर सुनो'॥

इत्युक्तवति देवेशे बलभद्रपुरोगमाः।
यादवाः सर्व एवैते हासाय समवस्थिताः॥ ३६॥

देवेश्वर श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर बलभद्र आदि समस्त यादव हंस-डिम्भकके उस कथनकी हँसी उड़ानेके लिये खड़े हो गये॥ ३६॥

करदः कृष्ण इत्येवं ब्रुवन्तः सर्वसात्वताः।
हासं मुमुचुरत्यर्थं तलं दत्त्वा परस्परम्॥ ३७॥

'श्रीकृष्ण कर देनेवाले हैं' ऐसा कहते हुए समस्त यादव परस्पर ताली बजाकर या एक-दूसरेका हाथ पकड़कर जोर-जोरसे हँसने लगे॥ ३७॥

तलशब्दो हासशब्दो रोदसी पर्यपूरयत्।
स च विप्रो नृपश्रेष्ठ निन्दयन् मित्रमात्मनः॥ ३८॥
अहो कष्टमहो कष्टं दौत्यं यत् कृतवानहम्।
इति लज्जासमाविष्टस्तूष्णीमासीदवाङ्मुखः॥ ३९॥

ताली बजाने और हँसनेकी गम्भीर ध्वनि पृथ्वी और आकाशमें गूँज उठी। नृपश्रेष्ठ! ब्राह्मण जनार्दन अपने मित्र हंसकी निन्दा करते हुए मन-ही-मन कहने लगे—'अहो! मैंने जो दूतका कार्य किया, यह बड़े कष्टकी बात है। बड़े कष्टकी बात है' ऐसा कहकर लज्जित हो वे नीचे मुख करके चुपचाप बैठे रहे॥ ३८-३९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने वासुदेववाक्ये पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस-डिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका जनार्दनको संदेश देकर लौटाना

वैशम्पायन उवाच

हासं कुर्वत्सु तेष्वेवं केशवः केशिसूदनः।
उवाच वचनं दूतं गच्छ मद्वचनाद् द्विज ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! जब यादव इस प्रकार उपहास कर रहे थे, उस समय केशिहन्ता भगवान् केशवने दूतसे इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन् ! आप मेरा संदेश लेकर जाइये ॥ १ ॥

तावित्थं हंसडिम्भकौ ब्रूहि त्वरितविक्रमः।
बाणैर्दास्यामि निशितैः शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः ॥ २ ॥

'शीघ्रगतिसे वहाँ जाकर उन हंस और डिम्भकसे इस प्रकार कहिये—मैं शार्ङ्ग धनुषद्वारा छोड़े गये और शिलापर तेज किये गये पैने बाणोंद्वारा तुम दोनोंको कर दूँगा ॥ २ ॥

असिना वाथ दास्यामि निशितेन महात्मनोः।
शिरो वा छेत्स्यते चक्रं मत्करप्रहितं बलिम् ॥ ३ ॥

'अथवा उन महामनस्वी राजाओंको अपनी तीखी तलवारसे कर समर्पित करूँगा। अथवा मेरे हाथसे छोड़ा गया चक्र उनका सिर काट लेगा और उसीको करके रूपमें समर्पित करेगा ॥ ३ ॥

यो वरं दत्तवान् रुद्रो युवयोर्धार्ष्ट्यकारणम्।
स एव रक्षिता वां स्यात् तं जित्वा वां निहन्म्यहम् ॥ ४ ॥

'भगवान् रुद्रने तुम दोनोंको जो वर दिया है, वही तुम दोनोंकी ढिठाईका कारण है। यदि वे रुद्रदेव ही तुम दोनोंके रक्षक हो जायँ तो मैं उनको भी जीतकर तुम दोनोंको मार डालूँगा ॥ ४ ॥

देशोऽयं संविधातव्यो यत्र नः संगतिर्भवेत्।
तत्र गन्ता तथा चास्मि सबलः सहवाहनः ॥ ५ ॥

'राजाओ ! कोई ऐसा स्थान निश्चित कर लेना चाहिये, जहाँ हमलोगोंका समागम हो। मैं सेना और सवारियोंसहित वहाँ उस स्थानमें आ जाऊँगा ॥ ५ ॥

भवन्तौ निर्भयौ भूत्वा गच्छेतां सबलौ नृपौ।
पुष्करे वा प्रयागे वा मथुरायामथापि वा ॥ ६ ॥
तत्राहं सबलो याता नात्र कार्या विचारणा।

'नरेश्वरो ! तुम दोनों वीर भी निर्भय होकर सेनासहित वहाँ आ जाना। पुष्करमें या प्रयागमें अथवा मथुरामें जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहीं मैं सेनासहित आ जाऊँगा, इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ ६½ ॥

अथवा मित्रभावाच्च वक्तुमेवं न ते क्षमम् ॥ ७ ॥
न शक्यं यत् त्वया वक्तुं तच्च वक्ष्यति सात्यकिः।
त्वया सह ततो गत्वा साक्षिभूतो भव द्विज ॥ ८ ॥

'अथवा मित्रताके नाते आपसे ऐसी बात कहलाना उचित न होगा। आप जिसे नहीं कह सकेंगे, उसे आपके साथ जाकर यह सात्यकि कहेंगे। ब्रह्मन् ! आप केवल साक्षी बने रहें ॥ ७-८ ॥

इदं च जाने विप्रेन्द्र स्नेहो मयि सदा तव।
तेन त्वं विजयी भूत्वा संसारे दुःखसंकुले।
मत्कथापरमो नित्यं सदा भव जनार्दन ॥ ९ ॥

'विप्रेन्द्र ! मैं यह भी जानता हूँ कि आपका सदा मेरे ऊपर स्नेह बना रहता है। अतः जनार्दनजी ! आप दुःखोंसे भरे हुए इस संसारमें विजयी होकर सदा नित्य-निरन्तर मेरी कथा-वार्तामें लगे रहिये' ॥ ९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भकका उपाख्यानविषयक एक सौ सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिसहित जनार्दनका शाल्वनगरमें जाना, हंससे मिलना तथा हंसका जनार्दनसे कार्यसिद्धिके विषयमें पूछना

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा ब्राह्मणं कृष्णः सात्यकिं पुनराह सः।
गत्वा शैनेय विप्रेण ब्रूहि मद्वचनात् तयोः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ब्राह्मणसे ऐसा कहकर श्रीकृष्णने सात्यकिसे फिर कहा—'शिनिनन्दन ! तुम इन ब्राह्मण देवता जनार्दनके साथ जाकर मेरे कथनानुसार उन दोनों भाई हंस और डिम्भकसे कहो ॥ १ ॥

यन्मयोक्तमशेषेण वद गत्वा तयोः पुरः।
यथा नः संगतिर्युद्धे तथा वद बलात् तदा ॥ २ ॥

'मैंने जो कुछ कहा है, वह सब उन दोनोंके सामने जाकर कहो, जिससे हमलोगोंका युद्ध-स्थलमें शीघ्र समागम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो। उक्त उद्देश्यकी सिद्धिके लिये तुम बलपूर्वक भी बात कर सकते हो ॥ २ ॥

धनुरादाय गच्छ त्वं बद्धगोधाङ्गुलित्रवान्।
एकेनाश्वेन गच्छ त्वमसहायो यदूत्तम ॥ ३ ॥

'यदुकुलतिलक सात्यके ! तुम धनुष लेकर जाओ; हाथमें गोहके चमड़ेके बने दस्तानेको भी बाँध लेना, एकमात्र अश्वके साथ जाना, दूसरे किसी सहायकको साथ न लेना' ॥ ३ ॥

सात्यकिस्तं तथेत्युक्त्वा हयमारुह्य शीघ्रगम्।
गन्तुमैच्छत् ततो राजन्नसहायः स सात्यकिः ॥ ४ ॥

सात्यकिने 'बहुत अच्छा' कहकर एक शीघ्रगामी अश्वपर आरूढ़ हो वहाँसे जानेका विचार किया। राजन्! उन्होंने कोई दूसरा सहायक साथ नहीं लिया था ॥ ४ ॥

जनार्दनं विसृज्याशु दूतं तं यादवेश्वरः।
अहो धार्ष्ट्यमहो धार्ष्ट्यमित्युवाच जनार्दनः ॥ ५ ॥

जनार्दन नामक दूतको शीघ्र ही विदा करके यादवेश्वर जनार्दन बोले—'अहो ! हंस और डिम्भककी धृष्टता अद्भुत है, उनकी ढिठाई आश्चर्यजनक है' ॥ ५ ॥

नमस्कृत्य तदा दूतो माधवं माधवेश्वरम्।
स ययौ शाल्वनगरं शैनेयेन समन्वितः ॥ ६ ॥

उस समय माधवेश्वर माधवको नमस्कार करके दूत जनार्दन सात्यकिके साथ शाल्वनगरको गये ॥ ६ ॥

ततः प्रविश्य धर्मात्मा ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः।
आसनं महदास्थाय विसृज्य यादवे पुनः ॥ ७ ॥
आस्ते सुखं यदा विप्रः शैनेयेन समन्वितः।
अथ तं हंसडिम्भयोर्दर्शयामास सात्यकिम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा ब्राह्मण जनार्दन वहाँ राजसभामें प्रवेश करके सात्यकिको एक महान् आसन देकर जब स्वयं भी उस श्रेष्ठ आसनपर उनके साथ सुखपूर्वक बैठ गये, तब उन्होंने हंस और डिम्भकसे सात्यकिको मिलाया ॥ ७-८ ॥

दूतोऽयं सात्यकिः प्राप्तः सव्यो[1] बाहुरयं हरेः।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा हंसः प्राह वचस्तदा ॥ ९ ॥

उस समय वे बोले—'राजन्! यह सात्यकि द्वारकासे दूत होकर आये हैं। ये भगवान् श्रीकृष्णकी दाहिनी भुजाके समान हैं।' जनार्दनकी यह बात सुनकर हंस बोला—॥ ९ ॥

श्रुतः समागमः पूर्वमद्य दृष्टो मया त्वसौ।
धनुर्वेदे च वेदे च शास्त्रे शस्त्रे तथैव च ॥ १० ॥
निपुणोऽयं सदा धीर इत्येवमनुशुश्रुम।
अथो दृष्टिपथं प्राप्तः प्रीतिं नौ विदधात्यसौ ॥ ११ ॥

'पहले इसके समागम होनेकी बात सुननेमें आयी थी, आज मुझे इसका दर्शन हो गया। हमने सुना है कि यह वीर सात्यकि वेद, धनुर्वेद, शास्त्र-विद्या और शस्त्र-विद्यामें सदा निपुण एवं धीर है। अब हमारी दृष्टिपथमें आकर यह हम दोनों भाइयोंको प्रीति प्रदान कर रहा है ॥ १०-११ ॥

कुशलं वासुदेवस्य बलभद्रस्य वा पुनः।
कुशलाः सात्वताः सर्वे उग्रसेनपुरोगमाः ॥ १२ ॥

'सात्यके ! वासुदेव श्रीकृष्ण और बलभद्र कुशलसे तो हैं न ? उग्रसेन आदि सभी यादव सकुशल हैं न ?' ॥ १२ ॥

तथेति सात्यकिः प्राह मन्दमुन्मथिताननः।
ततो जनार्दनं प्राह हंसो वाक्यविशारदः ॥ १३ ॥

तब सात्यकिने मन्दस्वरमें कहा—'जी हाँ ! सब लोग सकुशल हैं। उस समय उनका मुख रोषसे तमतमा उठा था। तदनन्तर बातचीत करनेमें कुशल हंसने जनार्दनसे कहा—॥ १३ ॥

अपि दृष्टस्त्वया चक्री सिद्धं नः कार्यमीहितम्।
वद सर्वमशेषेण मा वृथा कालमत्यगाः ॥ १४ ॥

'ब्रह्मन् ! क्या तुम चक्रधारी श्रीकृष्णसे मिले थे ? क्या हमारा अभीष्ट कार्य सिद्ध हुआ ? वहाँका सब समाचार पूर्णरूपसे बताओ, व्यर्थ समय न बिताओ' ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसवाक्ये सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें हंसका वाक्यविषयक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११७ ॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

जनार्दनका हंसको श्रीकृष्णदर्शनजनित अपना उल्लास बताना, द्वारकामें हंसके संदेशकी प्रतिक्रियाका वर्णन करके उसे राजद्रूय न करनेकी सलाह देना, हंसका उसे रोषपूर्वक तिरस्कृत करके चले जानेके लिये कहना, फिर सात्यकिका हंसको श्रीकृष्णका संदेश सुनाते हुए फटकारना

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तवति हंसे च धर्मात्माथ जनार्दनः।
उवाच प्रहसन् वीरः स्तुवन् नारायणं सदा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! हंसके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा वीर जनार्दनने, जो नारायणस्वरूप श्रीकृष्णकी सदा स्तुति करता था, हँसते हुए कहा—॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१. 'सव्य' शब्दका अर्थ बायाँ और दाहिना भी है। देखिये संस्कृत शब्दार्थ-कौस्तुभ।

अद्राक्षमद्राक्षमहं जनार्दनं
हस्तस्थशङ्खं वरचक्रधारिणम्।
आतप्तजाम्बूनदभूषिताङ्गदं
स्फुरत्प्रभाद्योतितरत्नधारिणम्॥ २॥

'हाँ! मैंने उन जनार्दनका दर्शन किया है! दर्शन किया है!! जिनके एक हाथमें शङ्ख शोभा पाता है तथा जो दूसरे हाथमें श्रेष्ठ चक्र धारण करते हैं, जिनका बाजूबन्द तपाये हुए जाम्बूनद नामक सुवर्णसे भूषित है तथा जो झलमलाती हुई प्रभासे प्रकाशित रत्न (कौस्तुभमणि) धारण करते हैं॥ २॥

अद्राक्षमेनं यदुभिः पुरातनैः
संसेव्यमानं मुनिवृन्दमुख्यैः।
संस्तूयमानं प्रभुभिः समागधैः
स्मितप्रवालाधरपल्लवारुणम्॥ ३॥

'मैंने इन भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन किया है, जिनकी सेवामें पुरातन यादव-वीर तथा मुख्य-मुख्य मुनिवृन्द उपस्थित रहते हैं, मागधोंसहित बहुत-से राजा भी इनकी स्तुति करते हैं, मूँगे तथा नूतन पल्लवके समान इनका अरुण अधर मन्द मुसकानकी आभासे प्रकाशित होता रहता है॥ ३॥

अद्राक्षमेनं कविभिः पुरातनै-
र्विविच्य वेद्यं विधिवत्सहामरैः।
प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितं श्रिया
विनिद्रहेमाब्जविराजितोदरम्॥ ४॥

'प्राचीन विद्वान् ऋषि-मुनि देवताओंके साथ बैठकर जिनके स्वरूपका विधिपूर्वक विवेचन करके उसे जाननेके योग्य बताते हैं, जो खिले हुए नीलकमलके समान श्याम-कान्तिसे सुशोभित हैं तथा जिनका उदर विकसित सुवर्णमय कमलसे सुशोभित होता है, उन्हीं पद्मनाभस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका मैंने दर्शन किया है॥ ४॥

भूयोऽहमद्राक्षमजं जगद्गुरुं
प्रमोदयन्तं वचनेन यादवान्।
निरूपयन्तं विधिवन्मुनीश्वरैः
प्रवृत्तवेदार्थविधिं पुरातनैः॥ ५॥

'मैंने बारंबार उन अजन्मा जगद्गुरुका दर्शन किया, जो अपनी वाणीद्वारा यादवोंको आनन्द प्रदान कर रहे थे और प्राचीन मुनीश्वरोंके साथ प्रवृत्तिमार्गसम्बन्धी वेदार्थके विधानका विधिपूर्वक निरूपण करते थे॥ ५॥

अद्राक्षमद्राक्षमहं पुनः पुनः
समस्तलोकैकहितैषिणं हरिम्।
वसन्तमस्मिञ्जगतो हिताय
जगन्मयं तान् परिभूय शत्रून्॥ ६॥

'मैंने समस्त लोकोंके एकमात्र हितैषी उन जगन्मय श्रीहरिका बारंबार दर्शन किया है, जो जगत्‌के हितके लिये इसके समस्त शत्रुओंको पराजित करके इस भूलोकमें निवास करते हैं॥ ६॥

भूयोऽप्यपश्यं सह यादवेश्वरै-
र्विक्रीडमानं च विहारकाले।
रमन्तमीड्यं रमयन्तमीश्वरान्
यदूत्तमान् यादवमुख्यमीश्वरम्॥ ७॥

'यादवकुलके प्रधान पुरुष तथा स्तवनीय ईश्वररूप उन श्रीकृष्णका मैंने अनेक बार दर्शन किया है, जो विहारकालमें यादवेश्वरोंके साथ नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करते हैं तथा स्वयं तो क्रीडाओंमें रत रहते ही हैं, सामर्थ्यशाली यादवशिरोमणियोंको भी उनमें प्रवृत्त करते रहते हैं॥ ७॥

भूयोऽप्यपश्यं सरसीरुहेक्षणं
समेतया भीष्मतनूजया हरिम्।
वसन्तमम्भोनिधिशायिनं विभुं
भक्तप्रियं भक्तजनास्पदं शिवम्॥ ८॥

'मैंने पुनः उन कमलनयन श्रीहरिका दर्शन किया, जो पत्नीरूपमें प्राप्त हुई भीष्मनन्दिनी रुक्मिणी देवीके साथ द्वारकामें निवास करते हैं, नारायणरूपसे समुद्रके जलमें सोते हैं तथा जो वैभवशाली, भक्तप्रिय, भक्तजनोंके आश्रय तथा कल्याणस्वरूप हैं॥ ८॥

अद्राक्षमद्राक्षमहं सुनिर्वृतः
पिबन् पिबंस्तस्य वपुः पुरातनम्।
नेत्रेण मीलद्विवरेण केवलं
धन्योऽहमस्मीति तदा व्यचिन्तयम्॥ ९॥

'मैंने अत्यन्त आनन्दमग्न होकर बारंबार भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन किया है और अपलक नेत्रके द्वारा उनके पुरातन श्रीअङ्गकी शोभाका पान किया है। उस समय मैं अपने विषयमें केवल यही सोचता रहा कि 'मैं धन्य हो गया'॥ ९॥

अद्राक्षमम्भोजयुगं दधानं
प्रभुं विभुं भूतमयं विभावनम्।
आद्यं ककुभ्मानमुरुं विभावसुं
संस्मृत्य संस्मृत्य तमेव निर्वृतः॥ १०॥

'मैंने देखा कि वे सर्वसमर्थ, सर्वव्यापी, भूतमय तथा सबका पालन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने हाथोंमें दो कमल लिये हुए थे। मैं उन्हीं माहात्म्यशाली, प्रकाशमान, आदि पुरुष एवं महान् ईश्वरका बारंबार स्मरण करके आनन्दमग्न हो रहा हूँ॥ १०॥

अद्राक्षं जगतामीशं वक्षोराजितकौस्तुभम्।
वीज्यमानं हरिं कृष्णं चामराणां शतैः सदा॥ ११॥

'जिनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि प्रकाशित होती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है तथा जिनपर सौ-सौ चँवर डुलाये जाते हैं, उन जगदीश्वर श्रीकृष्ण हरिका मैंने दर्शन किया है ॥ ११ ॥

युवां विद्वेषयुक्तेन चेतसा यादवेश्वरम् ।
स्मरन्तं सर्वदा विष्णुं क्व चैवं क्व च वेत्ति कः ॥ १२ ॥

'वे यादवेश्वर विष्णु विद्वेषयुक्त चित्तसे सदा तुम दोनोंका स्मरण करते थे और जानना चाहते थे कि वे दोनों कहाँ हैं ? तथा कहाँ और कौन उन्हें जानता है ?॥

क्व च द्रक्ष्यामि तौ मन्दौ कुतो वा मत्पुरोगतौ ।
ध्यायन्तमित्थं देवेशं करे शङ्खवहं सदा ॥ १३ ॥

'उन दोनों मूर्खोंको मैं कब देखूँगा ? वे किस उपायसे मेरे सामने उपस्थित होंगे ? हाथमें शङ्ख लिये हुए वे देवेश्वर निरन्तर ऐसी ही बात सोच रहे थे ॥ १३ ॥

हसन्तमेनमद्राक्षं करदं हास्यतत्परम् ।
वदन्तं नारदे वाचं दुर्वाससि यतीश्वरे ॥ १४ ॥

'अपनेको करदाता सुनकर वे हँसने लगे और तुम्हारे उपहासमें तत्पर हो गये, उस अवस्थामें मैंने उन्हें देखा था । वे देवर्षि नारद तथा यतीश्वर दुर्वासासे बात करते थे ॥ १४ ॥

ब्रह्मसूत्रपदां वाणीं दापयन्तं मुनीश्वरम् ।
दृष्ट्वाहं तं हरिं देवं पुनः पुनरचिन्तयम् ॥ १५ ॥

'वे मुनीश्वर दुर्वासाको ब्रह्मसूत्रके पदोंसे युक्त वेदान्तमयी वाणीका शिष्योंको उपदेश देने या पढ़ानेके लिये अनुमति दे रहे थे । उस समय उन भगवान् श्रीहरिका दर्शन करके मैंने बारंबार इस प्रकार विचार किया ॥ १५ ॥

असाध्यमिदमारब्धं ताभ्यामिति नृपोत्तम ।
नारब्धव्यमिदं कार्यमितःप्रभृति भूमिप ॥ १६ ॥

'मेरे उन मित्रोंने यह असाध्य कार्य आरम्भ किया है। नृपश्रेष्ठ ! भूमिपाल ! अबसे आप दोनोंको इस कार्यका आरम्भ नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥

निवृत्ता सा कथा हंसाचिन्तयद् ग्रहणं तव ।
तद् वृत्तमखिलं सर्वं वदिष्यति हि सात्यकिः ।
एतद् वचनमाकर्ण्य हंसः क्रुद्धोऽब्रवीद् वचः ॥ १७ ॥

'श्रीकृष्णसे कर लेना है, यह तुम्हारी बात जब वहाँ समाप्त हो गयी, तब भगवान् श्रीकृष्णने तुम्हें कैद करनेकी बात सोची थी। यह सारा वृत्तान्त सात्यकि ही तुम्हें बतायेंगे।' जनार्दनकी यह बात सुनकर हंसने कुपित होकर कहा ॥१७॥

हंस उवाच

अरे ब्राह्मणदायाद का नाम तव वागियम् ।
आवयोः पुरतो वक्तुं त्रैलोक्यं जेतुमिच्छतोः ॥ १८ ॥

हंस बोला—अरे ओ ब्राह्मणके बेटे ! यह तुम्हारे मुखसे कैसी बात निकल रही है । तीनों लोकोंको जीतनेकी इच्छा करनेवाले हम दोनों वीरोंके आगे कहनेके लिये क्या तुम्हें यही बात मिली है ॥ १८ ॥

मायया त्वां भ्रामयति कृष्णो लीलाविधानवित् ।
तं दृष्ट्वा भ्रम एवैष तव संजायते महान् ॥ १९ ॥

लीलाविधानके ज्ञाता श्रीकृष्ण तुम्हें मायासे चक्करमें डाल रहे हैं । उनका दर्शन करके तुम्हारे मनमें यह महान् भ्रम ही उत्पन्न हो गया है ॥ १९ ॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम् ।
वृष्णिवीरं समावेक्ष्य समुच्छ्रितयशोधरम् ॥ २० ॥
सूतमागधसंस्तवप्रकटद्बाहुवीर्यकम् ।
अत्यद्भुतयशोराशिं विक्रमालोकमण्डनम् ॥ २१ ॥
चतुर्भुजं बलाक्रान्तं वृष्णियादवसम्मतम् ।
अहोऽद्य भ्रम एवैष दर्शनात् तस्य चक्रिणः ॥ २२ ॥

जो शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और वनमालासे विभूषित हैं, सब ओर फैले हुए यशको धारण करते हैं। सूतों और मागधोंद्वारा की गयी स्तुतिमात्रसे जिनके बाहुबलका कुछ पता चलता है । जो अत्यन्त अद्भुत यशकी राशि हैं और अपने पराक्रमसे लोकको अलंकृत करते हैं । जिनके चार भुजाएँ हैं । जो सेनाओंसे घिरे हुए तथा वृष्णि और यादवकुलके सम्मानित पुरुष हैं, उन वृष्णिवीर श्रीकृष्णका दर्शन करके तुम चक्करमें पड़ गये हो । अहो ! उस चक्रपाणिके दर्शनसे आज तुम्हें भ्रम ही हो गया ॥२०-२२॥

इदानीं च महाराज भ्रामयत्येव दुर्मतिः ।
त्वामेव विप्र मन्दात्मन्निन्द्रजालिकता हि या ॥ २३ ॥

महाराज ! मन्दमते विप्र ! इस समय भी यह दुर्बुद्धि कृष्ण तुम्हें चक्करमें ही डाले हुए है। उसकी जो इन्द्रजालिकता (बाजीगरी) है, वह तुमपर ही प्रभाव डालती है ॥ २३ ॥

चापल्यमिदमेवैतत् तव विप्र भ्रमोद्भवम् ।
अहो हि खलु सादृश्यं वक्तव्यं भवता मम ॥ २४ ॥

विप्र ! यह तुम्हारा भ्रमजनित चापल्य ही प्रकट हुआ है । अहो ! तुम्हें मेरी और उनकी समानता बतानी चाहिये थी (किंतु तुमने हमारी लघुता व्यक्त की है) ॥ २४ ॥

अहमेव त्वया विप्र मर्षये प्रोदितं वचः ।
सखिभावाद् द्विजश्रेष्ठ अन्यथा कः सहेदिदम् ॥ २५ ॥

ब्रह्मन् ! द्विजश्रेष्ठ ! एक मैं ही हूँ, जिसने मित्रताके कारण तुम्हारी इस अनुचित बातको सह लिया, अन्यथा कौन ऐसी बात सह सकता है ? ॥ २५ ॥

गच्छ मन्दमते विप्र यथेष्टं साम्प्रतं तव ।
द्विज गच्छ यथेष्टं त्वं पृथिवीं पृथिवी तव ॥ २६ ॥

मन्दबुद्धि ब्राह्मण ! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो चले जाओ, इस समय सारी पृथ्वी तुम्हारे लिये खुली हुई है । द्विज ! तुम भूतलपर चाहे जहाँ जा सकते हो ॥ २६ ॥

जित्वा गोपालदायादं हत्वा यादवकान् बहून् ।
एष मः प्रथमः कल्पो जेष्याम इति यादवान् ॥ २७ ॥

मैं उस ग्वालबालको जीतकर और बहुत-से यादवोंका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संहार करके अपना यज्ञ करूँगा। हमारा पहला संकल्प यही है कि 'हम यादवोंको जीतेंगे' ॥ २७ ॥

गच्छ गच्छेति विप्र त्वं धृष्टं परुषवादिनम्।
शत्रुपक्षस्तुतिपरं सह युक्त्वा सदा मया ॥ २८ ॥

ब्राह्मण! जाओ! जाओ!! तुम धृष्ट और कटुवादी हो! सदा मेरे साथ रहकर भी शत्रुपक्षकी स्तुतिमें लगे रहे हो (इसलिये मैंने तुम्हें त्याग दिया) ॥ २८ ॥

न मे विप्रवधः कार्यः कष्टादपि हि सर्वतः।
इत्युक्त्वा ब्राह्मणं भूयो हंसः सात्यकिमब्रवीत् ॥ २९ ॥

सब ओरसे कष्ट प्राप्त होनेपर भी मुझे ब्राह्मणका वध नहीं करना चाहिये (इसीलिये तुम्हें जीवित छोड़ रहा हूँ)। ब्राह्मणसे ऐसा कहकर हंसने फिर सात्यकिसे कहा—॥ २९ ॥

भो भो यादवदायाद किमर्थं प्राप्तवानिह।
किमब्रवीन्नन्दसुतः किं वासौ मेऽदिशत् करम् ॥ ३० ॥

'ओ यादवकुमार! तुम किसलिये यहाँ आये हो? उस नन्दपुत्रने तुमसे क्या कहा है? अथवा उसने मेरे लिये कौन-सा कर प्रदान किया है?' ॥ ३० ॥

सात्यकिरुवाच

इदं सत्यं वचो हंस शङ्खचक्रगदाभृतः।
शरैर्निशितधाराग्रैः शार्ङ्गमुक्तैः शिलाशितैः ॥ ३१ ॥
दास्यामि करसर्वस्वमसिना निशितेन ते।
शिरश्छेत्स्यामि ते हंस करदानस्य संग्रहम् ॥ ३२ ॥

सात्यकि बोले—हंस! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले श्रीकृष्णका यह सत्य वचन सुनो। उनका कहना है कि 'मैं शार्ङ्ग धनुषसे छूटे हुए, शिलापर तेज किये गये और पैनी धारवाले बाणोंद्वारा तुम्हारा सारा कर चुका दूँगा। हंस! अपनी तीखी तलवारसे तेरा सिर काट लूँगा' यह तेरे लिये करदानका अच्छा संग्रह होगा' ॥ ३१-३२ ॥

धार्ष्ट्यं हि तव मन्दात्मन् किमतोऽपि नृपाधम।
देवदेवाज्जगन्नाथात् करमिच्छति यो नृपः ॥ ३३ ॥
तस्यैष करसंक्षेपो जिह्माच्छेदो नराधम।

मन्दात्मन्! नृपाधम! इससे बढ़कर तेरी धृष्टता क्या हो सकती है? नराधम! जो राजा देवाधिदेव जगन्नाथसे कर लेना चाहता है, उसकी जीभ काट ली जाय, यही उसके करको समाप्त करनेका उपाय है ॥ ३३½ ॥

तस्य शार्ङ्गरवं श्रुत्वा शङ्खस्य च हरेः पुनः ॥ ३४ ॥
को नाम जीवितं काङ्क्षेत् तिष्ठेदानीं त्वमद्य वै।

श्रीहरिके शार्ङ्गधनुषकी टङ्कार और पाञ्चजन्य शङ्खका हुंकार सुनकर कौन जीवित रहनेकी आशा कर सकता है। तू अब हमारे सामने खड़ा तो हो ॥ ३४½ ॥

गिरीशवरदर्पेण को ब्रूयादीदृशं वचः ॥ ३५ ॥
सहाया वयमेवैते बलभद्रपुरोगमाः।

भगवान् शङ्करसे मिले वरके घमंडमें आकर कौन पुरुष भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसी बात कह सकता है, जैसी तूने कही है। बलभद्र आदि हम सभी वीर श्रीकृष्णके सहायक हैं ॥

प्रथमो बलभद्रोऽसौ द्वितीयोऽहं च सात्यकिः ॥ ३६ ॥
कृतवर्मा तृतीयस्तु चतुर्थो निशठो बली।
पञ्चमोऽथ च बभ्रुस्तु षष्ठश्चैवोत्कलः स्मृतः ॥ ३७ ॥
सप्तमस्तारणो धीमानस्त्रशस्त्रविशारदः।
अष्टमस्त्वथ सारङ्गो नवमो विपृथुस्तथा ॥ ३८ ॥
दशमश्चोद्धवो धीमान् वयमेते बलान्विताः।

प्रथम तो बलभद्रजी हैं, दूसरा मैं सात्यकि हूँ, तीसरा कृतवर्मा है, चौथा बलवान् निशठ है, पाँचवाँ बभ्रु, छठा उत्कल, सातवाँ अस्त्रशस्त्रविशारद बुद्धिमान् तारण, आठवाँ सारङ्ग, नवाँ विपृथु और दसवें बुद्धिमान् उद्धवजी हैं। ये हम सभी सहायक बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं ॥ ३६–३८½ ॥

त एते पुरतो गोप्तुः शङ्खचक्रगदाभृतः ॥ ३९ ॥
देवदेवस्य युद्धेषु तिष्ठन्त्येव दिवानिशम्।

ये सभी वीर समस्त युद्धोंमें अपने रक्षक शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवाधिदेव श्रीकृष्णके आगे ही खड़े होते हैं ॥ ३९½ ॥

यौ हि वीरौ सुतौ तस्य नासत्यसदृशौ बले ॥ ४० ॥
तावेव वां क्षमौ युद्धे हन्तुं बलमदान्वितौ।

उनके जो दो विख्यात पुत्र (प्रद्युम्न और साम्ब) हैं, वे दोनों बलमें अश्विनीकुमारोंके समान हैं। केवल वे दोनों ही युद्धमें बलके मदसे उन्मत्त हुए तुम दोनों भाइयोंको मार सकते हैं ॥ ४०½ ॥

यो गिरीशो गिरां देवो वरं दत्त्वा स तिष्ठति ॥ ४१ ॥
युवां हि किंबलौ युद्धे तिष्ठतः सशरं धनुः।
गृहीत्वा शत्रुभिः सार्धं युद्धं कर्तुं समुद्यतौ ॥ ४२ ॥

वाणीके देवता जो गिरीश शिव हैं, वे तो वर देकर अलग खड़े हैं। तुम दोनों किसके बलका सहारा लेकर युद्धमें खड़े हुए हो और धनुष-बाण लेकर शत्रुओंके साथ जूझनेको तैयार हुए हो? ॥ ४१-४२ ॥

ईदृशेष्वथ भृत्येषु युद्धं कुर्वत्सु शत्रुभिः।
त्रैलोक्यं रक्षतस्तस्मात् करमिच्छन् व्रजेतकः ॥ ४३ ॥

जिनके हम-जैसे सेवक शत्रुओंके साथ युद्ध कर रहे हों, त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाले उन जगदीश्वरसे कर लेनेकी इच्छा रखकर कौन जीवित लौट सकता है? ॥ ४३ ॥

हनिष्यत्येव वां युद्धे त्रैलोक्यं यो हि रक्षति।
शरेण निशितेनाजौ शार्ङ्गमुक्तेन केवलम् ॥ ४४ ॥

जो तीनों लोकोंकी रक्षा करते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण युद्धस्थलमें केवल शार्ङ्ग धनुषसे छूटे हुए पैने बाणसे तुम दोनोंको अवश्य मार डालेंगे ॥ ४४ ॥

क्व नः संग्राम इत्येवं पुनराह जगत्पतिः।
पुष्करे पुण्यदे नित्यमुत गोवर्धने गिरौ ॥ ४५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मथुरायां प्रयागे वा दर्शयन्तो बलानि मे ।

उन जगदीश्वरने फिर यह पूछा था कि हमलोगोंका यह संग्राम कहाँ होगा ? सदा ही पुण्य प्रदान करनेवाले पुष्करमें, गोवर्धन पर्वतपर, मथुरामें अथवा प्रयागमें । जहाँ इच्छा हो मुझे अपना बल दिखानेके लिये आ जायँ ॥ ४५½ ॥

शङ्खचक्रधरे देवे जगत्पालनतत्परे ॥ ४६ ॥
राजसूयं महायज्ञं कर्तुमिच्छति कः स्वयम् ।
वदन् वा स्वस्तिमान् मर्त्यस्त्वां विना को व्रजेत् सुखम् ॥

शङ्ख और चक्र धारण करनेवाले श्रीकृष्ण जब जगत्के पालनमें तत्पर हों, उस समय कौन उनकी आज्ञा लिये बिना स्वयं राजसूय नामक महायज्ञका अनुष्ठान करना चाहेगा ? अथवा तुम्हारे सिवा दूसरा कौन मनुष्य है, जो ऐसी बात कहकर सकुशल एवं सुखपूर्वक घरको जा सकता है ? ॥४६-४७॥

इदमिच्छसि चेन्मूढ हास्यतां यासि भूतले ।
इत्युक्त्वा सात्यकिर्वीरो हसन्निव भुवि स्थितः ॥४८॥

मूढ ! यदि तू ऐसा चाहता है तो इस भूतलपर उपहासका पात्र बनेगा । ऐसा कहकर वीर सात्यकि हँसते हुए-से भूतलपर खड़े हो गये ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सात्यकिवाक्ये अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस-डिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें सात्यकिका वाक्यविषयक एक सौ अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११८ ॥

एकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः

हंस और डिम्भकके सात्यकिके प्रति रोषपूर्ण वचन तथा सात्यकिका उन्हें वैसा ही उत्तर देकर द्वारकाको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

ततः क्रुद्धौ महाराज हंसो डिम्भक एव च ।
इदं वै प्रोचतुर्वाक्यं रोषव्याकुलितेक्षणौ ॥ १ ॥
दिधक्षन्तौ दिशः सर्वाः सर्वान् वीक्ष्य नृपोत्तमान् ।
करेण निष्पीड्य करं स्मरन्तौ तद्वचो महत् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज ! सात्यकिकी यह बात सुनकर हंस और डिम्भक कुपित हो उठे । उनके नेत्र रोषसे चञ्चल हो उठे । वे सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर इस प्रकार देखने लगे, मानो उन्हें जलाकर भस्म कर देना चाहते हैं । उन्होंने समस्त श्रेष्ठ नरेशोंकी ओर देखकर और एक हाथसे दूसरे हाथको दबाकर सात्यकिके उस महान् वचनका स्मरण करते हुए इस प्रकार कहा—॥ १-२ ॥

क्व नु क्व वा नन्दसूनुः क्व वा रामो बलोत्कटः ।
इति ब्रुवाणौ साक्षेपौ सात्यकिं सत्यसंगरम् ॥ ३ ॥

'कहाँ है ? कहाँ है ? वह नन्दका बेटा, और कहाँ है वह बलोन्मत्त बलराम' सत्यप्रतिज्ञ सात्यकिपर आक्षेप करके ऐसी बातें कहते हुए वे दोनों फिर बोले—॥ ३ ॥

अरे यादवदायाद किं ब्रूषे नः पुरो गतः ।
इतो निर्गच्छ मन्दात्मन् दूतस्त्वमसि साम्प्रतम् ॥ ४ ॥
अन्यथा वध्य एव त्वं प्रलपन् परुषं वचः ।

'अरे ओ यादवके बच्चे ! हमारे सामने आकर तू यह क्या बक रहा है ? मन्दात्मन् ! तू यहाँसे निकल जा । इस समय दूत बनकर आया है, नहीं तो ऐसा कठोर वचन कहनेके कारण तू मार डालनेके योग्य था ॥ ४½ ॥

सत्यं निर्लज्ज एवासि यद् ब्रूया ईदृशं वचः ॥ ५ ॥
आवामिदं जगत् सर्वं शासितुं संयतौ नृपौ ।
को नाम मानुषे लोके करदो नैव जीवति ॥ ६ ॥

'सचमुच तू निर्लज्ज ही है, जो ऐसी बातें बक रहा है । हम दोनों नरेश इस सम्पूर्ण जगत्पर शासन करनेके लिये उद्यत हैं । मनुष्यलोकमें कौन ऐसा पुरुष है, जो हमें कर न देकर जीवित रह सके ? ॥ ५-६ ॥

हत्वा गोपालकान् सर्वान् बद्ध्वा यादवकान् बहून् ।
गृह्णीमः करसर्वस्वं ततो गच्छ नराधम ॥ ७ ॥

'हम समस्त ग्वालों और बहुसंख्यक यादवोंको कैद करके उनका सर्वस्व करके रूपमें ग्रहण करेंगे । अतः नराधम ! तू यहाँसे चला जा ॥ ७ ॥

अवध्यो दूततां प्राप्तो बह्वबद्धं प्रभाषसे ।
ईश्वरौ नौ वरं दाता ह्यस्त्राणामपि च प्रभुः ॥ ८ ॥
रक्षितारौ महाभूतौ संग्रामं गच्छतोश्च नौ ।
पितरं याजयिष्यावो जित्वा गोपालकं रणे ॥ ९ ॥

'तू बहुत अंट-संट बक रहा है, किंतु क्या किया जाय, दूत बनकर आया है, इसलिये अवध्य है । भगवान् शङ्करने हम दोनोंको वर दिया है और वे ही हमारे अस्त्रोंके भी दाता हैं । संग्राममें जाते समय दो महाभूत हम दोनोंकी रक्षा करते हैं । हमलोग उस ग्वालेको जीतकर अपने पितासे राजसूय यज्ञ करायेंगे ॥ ८-९ ॥

एते प्रोक्ता भृशं युद्धे कातराः सर्व एव ते ।
हत्वा तान् सबलान् युद्धे पुनर्जेष्यामि केशवम् ॥ १०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'तुमने जिन सहायकोंके नाम बताये हैं, वे सब-के-सब युद्धमें अत्यन्त कायर हैं। मैं रणभूमिमें सेनासहित उन सबको मारकर फिर केशवको पराजित करूँगा ॥ १० ॥

संहर्तव्या महासेना प्रगृहीतशरासना।
गृहीतप्रासमुशला गृहीतकवचा सदा ॥ ११ ॥
आरूढरथसाहस्रा गदापरिघसंकुला।
सुप्रभूतेन्धनवती प्रभूतबलसाधना ॥ १२ ॥
चाल्यतां वाहिनी घोरा बलाध्यक्षाः समन्ततः।
अवध्य एव गच्छ त्वं न ते मरणतो भयम् ॥ १३ ॥

'इस समय धनुष-बाण धारण करनेवाली विशाल सेनाका संग्रह करना है। वह प्रास, मुसल, कवच आदिसे सम्पन्न होगी। उसमें सहस्रों रथ होंगे, जिनमें रथी वीर आरूढ़ रहेंगे। वह सेना गदा और परिघ आदि अस्त्रोंसे भरी-पूरी होगी, उसके पास बहुत-से ईंधन होंगे तथा वह प्रचुर बल एवं साधनसे सम्पन्न होगी। ऐसी भयङ्कर वाहिनी युद्धके लिये कूँच करे। सेनानायकगण चारों ओरसे इसकी देख-रेख करें, तू अवध्य रहकर ही चला जा। तुझे यहाँ मृत्युसे भय नहीं है ॥ ११–१३ ॥

संग्रामः पुष्करेऽस्माकं श्वः परश्वोऽपि वा नृप।
ततो ज्ञास्यामहे वीर्यं केशवस्य बलस्य च।
ये त्वयोक्ता नृपाः संख्ये तेषामपि च यद् बलम् ॥ १४ ॥

'नरेश्वर! कल-परसोंतक हमलोगोंका पुष्करमें संग्राम होगा। उस समय हम समझ लेंगे कि श्रीकृष्ण और बलराममें कितना बल है। तूने जिन नरेशोंके नाम बताये हैं, उनमें भी युद्धके मुहानेपर कितना बल है, इसका पता लग जायगा' ॥ १४ ॥

सात्यकिरुवाच

हंसागच्छामि वां हन्तुं श्वः परश्वोऽपि वा नृप।
अद्यैव हि मया वध्यौ न चेद् दूतौ भवाम्यहम् ॥ १५ ॥

सात्यकि बोले—राजा हंस! मैं तुम दोनों भाइयोंका वध करनेके लिये कल या परसों भी आऊँगा। यदि मैं दूत न होता तो आज ही तुम दोनों मेरे हाथसे मार डाले जाते ॥ १५ ॥

न हि श्वो वा परश्वो वा युवां कटुकभाषिणौ।
दौत्ये हि दुःखमतुलं वहाम्येव सदा नृणाम् ॥ १६ ॥

तुम दोनों कटुभाषियोंको मैं कल या परसोंके लिये जीवित नहीं छोड़ता। मनुष्योंको दूत बननेपर भी सदा अनुपम दुःखका सामना करना पड़ता है। मैं भी उस महान् दुःखका भार ढो रहा हूँ ॥ १६ ॥

अन्यथाहं युवां हत्वा ततो यास्यामि निर्वृतिम्।
स्ववीर्यं बाहुदर्पं च दर्शयन् वां नृपाधमौ ॥ १७ ॥

अन्यथा नीच नरेशो! मैं अपने पराक्रम और बाहुबलका घमंड दिखाता हुआ तुम दोनों भाइयोंको मारकर परम संतोष प्राप्त करता ॥ १७ ॥

शङ्खचक्रगदापाणिः शार्ङ्गधन्वा किरीटभृत्।
नीलकुञ्चितकेशाढ्यो लम्बबाहुः श्रिया वृतः ॥ १८ ॥
स सर्वलोकप्रभवो विश्वरूपः सुरूपवान्।
दैत्यदानवहन्तासौ योगिध्येयः पुरातनः ॥ १९ ॥
पद्मकिञ्जल्कनयनः श्यामलः सिंहविक्रमः।
सृष्टिस्थितिलयेष्वेकः कर्ता त्रिजगतो गुरुः ॥ २० ॥
शरेण निशितेनाजौ दर्पं वां व्यपनेष्यति।
इत्युक्त्वा रथमारुह्य प्रययौ सात्यकिः किल ॥ २१ ॥

जो अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्गधनुष धारण करते हैं, जिनके मस्तकपर मुकुट शोभा पाता है, जो काले-काले घुँघराले केशोंसे अलङ्कृत हैं, जिनकी भुजाएँ बहुत बड़ी हैं, जो अनुपम शोभासे सम्पन्न हैं, सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिके कारण हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका रूप है, जो परम सुन्दर रूपसे सुशोभित हैं, योगीजन जिनका ध्यान करते हैं, जो दैत्यों और दानवोंका वध करनेवाले पुराणपुरुष हैं, जिसके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान सुन्दर हैं, जिनकी अङ्गकान्ति श्याम है, जो सिंहके समान बल-विक्रमशाली तथा सृष्टि, पालन और संहारके एकमात्र कर्ता हैं, वे तीनों लोकोंके गुरु भगवान् श्रीकृष्ण युद्धस्थलमें तीखे बाणोंसे तुम दोनों भाइयोंका घमंड चूर करेंगे। ऐसा कहकर सात्यकि रथपर आरूढ़ हो चले गये ॥ १८–२१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सात्यकिप्रतिप्रयाणे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें सात्यकिका प्रत्यागमनविषयक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११९ ॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्ण तथा यादवसेनाका पुष्करतीर्थमें जाकर हंस और डिम्भककी प्रतीक्षा करना

वैशम्पायन उवाच

प्रविश्य स पुरं विष्णोः सात्यकिः शिनिपुङ्गवः।
आचचक्षेऽथ कृष्णाय यथा वृत्तं तयोस्तथा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! शिनिवंशशिरोमणि सात्यकिने श्रीकृष्णपुरीमें प्रवेश करके उनसे हंस और डिम्भकका सारा समाचार ज्यों-का-त्यों कह सुनाया ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ततः प्रभाते विमले केशवः केशिसूदनः।
बलाध्यक्षानुवाचेदं चक्रपाणिर्गदाधरः॥ २॥

तदनन्तर निर्मल प्रातःकाल आनेपर हाथमें चक्र और गदा धारण करनेवाले केशिहन्ता केशवने समस्त सेनापतियोंसे इस प्रकार कहा—॥ २॥

संनह्यतां बलं सर्वं रथकुञ्जरवाजिमत्।
अनेकभेरीपणवं प्रासासिपरिघाकुलम्॥ ३॥
सध्वजं सपताकं च सालंकारपरिच्छदम्।

'रथ, हाथी और घोड़ोंसे युक्त सारी सेनाको युद्धके लिये तैयार करो। उसके साथ अनेकानेक भेरी, पणव आदि बाजे भी होने चाहिये। प्रास, खड्ग और परिघ आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे वह सेना सम्पन्न होनी चाहिये। ध्वजा, पताका, अलङ्कार तथा अन्य आवश्यक उपकरणोंसे सारी सेनाको सुसज्जित किया जाय'॥ ३½॥

ते तथेति प्रतिज्ञाय सर्वे चक्रुरधीनगाः॥ ४॥
आदाय सुदृढं चापं रथमारुह्य दंशिताः।
अग्रतो जग्मुरत्यर्थं सेनायाः पुरुषोत्तमाः॥ ५॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीकृष्णके अधीन रहनेवाले उन सेनापतियोंने सब कुछ उसी प्रकार किया। वे पुरुषप्रवर वीर कवच धारण करके रथपर आरूढ़ हो सुदृढ़ धनुष ले सेनाके आगे-आगे तीव्रगतिसे चलने लगे॥ ४-५॥

सात्यकिश्च तथा राजन् प्रगृहीतशरासनः।
बभौ क्रोधसमायुक्तो जगामाग्रे महाबलः॥ ६॥

राजन्! महाबली सात्यकि भी धनुष हाथमें लेकर अद्भुत शोभा पाने लगे। वे क्रोधमें भरकर आगे-आगे चले॥ ६॥

अन्ये च यादवाः शूराः प्रगृहीतमहायुधाः।
सिंहनादं प्रकुर्वन्तो जग्मुरत्यर्थमुत्तमाः॥ ७॥

अन्य श्रेष्ठ एवं शूरवीर यादव भी महान् आयुध लेकर सिंहनाद करते हुए तीव्र-गतिसे चल दिये॥ ७॥

हरिस्तु रथमारुह्य संस्कृतं दारुकेण ह।
शार्ङ्गभारसहं घोरं गृहीत्वा सशरं धनुः॥ ८॥

भगवान् श्रीकृष्ण दारुकके द्वारा सुसज्जित किये गये रथपर आरूढ़ हो, भार सहन करनेमें समर्थ भयङ्कर शार्ङ्ग-धनुष और बाण लेकर प्रस्थित हुए॥ ८॥

चक्रपाणिस्तदा शङ्खी गदाशरवरासिमान्।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः पीतवासा जनार्दनः॥ ९॥
पद्ममालावृतोरस्को नवजीमूतसंनिभः।
ययौ रथगतो विप्रैः स्तूयमानो मुदान्वितैः॥ १०॥

उस समय उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, बाण और उत्तम खड्ग शोभा पाते थे। उन्होंने हाथोंमें गोह-चर्मके बने दस्ताने भी बाँध रखे थे। वे पीताम्बरधारी जनार्दन नूतन जलधरके समान श्याम कान्तिसे सुशोभित थे। उनका वक्षःस्थल कमलपुष्पोंकी मालासे आच्छादित था। वे रथपर बैठकर आनन्दमग्न ब्राह्मणोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए जा रहे थे॥ ९-१०॥

सूतैर्मागधपुत्रैश्च गीयमानस्ततस्ततः।
आनीय सेनां सकलां ययौ काष्ठामथोत्तराम्॥ ११॥

जहाँ-तहाँ सूत, मागध और बन्दीजन उनके गुण गाते रहते थे। उन्होंने सारी सेनाको एकत्रित करके उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया॥ ११॥

पाञ्चजन्यं मुखे न्यस्य सर्वप्राणेन केशवः।
दध्मौ महारवं कुर्वञ्छत्रूणां भयवर्धनम्॥ १२॥

पाञ्चजन्य शङ्खको अपने मुखपर रखकर केशवने सम्पूर्ण प्राणशक्ति लगाकर उसे बड़े जोरसे बजाया। उसका महान् शब्द प्रकट करके वे शत्रुओंके भयकी वृद्धि करने लगे॥ १२॥

आध्मातस्तेन हरिणा स चक्रे शङ्खराट् ध्रुवम्।
रवः स रोदसी राजन् पूरयामास सर्वतः॥ १३॥

राजन्! श्रीहरिके बजानेपर उस शङ्खराज पाञ्चजन्यने महानाद किया। उसका वह शब्द पृथ्वी और आकाशमें सब ओर व्याप्त हो गया॥ १३॥

तस्मिञ्छङ्खे तथाऽऽध्माते दध्मुः शङ्खान् सहस्रशः।
भेर्यश्चापि समाध्माता मृदङ्गा बहवो नृप॥ १४॥

नरेश्वर! पाञ्चजन्य शङ्खके उस प्रकार बजाये जानेपर दूसरे-दूसरे वीरोंने भी सहस्रों शङ्ख बजाये। बहुत-सी भेरियाँ और मृदङ्ग भी बज उठे॥ १४॥

नेदुरत्यर्थमतुलं घर्मान्ते जलदा यथा।
अथाययुर्महाराज पुष्करं पुण्यवर्धनम्॥ १५॥

महाराज! वर्षाऋतुमें जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले मेघोंकी भाँति वे मृदङ्ग आदि बाजे अनुपम गम्भीर स्वरसे बजने लगे। इस प्रकार समस्त यादव सैनिक पुण्यवर्धक पुष्करतीर्थमें आ पहुँचे॥ १५॥

सरस्तस्य राजेन्द्र पुष्करस्य नृपोत्तमाः।
प्रतीक्ष्य हंसडिम्भकौ युद्धाय समवस्थिताः॥ १६॥

राजेन्द्र! वे नृपश्रेष्ठ यादव वीर युद्धके लिये हंस और डिम्भककी प्रतीक्षा करते हुए उस पुष्कर सरोवरके तटपर ठहर गये॥ १६॥

निवेशं कारयामासुर्यादवाः सर्व एव हि।
स्वं स्वं ययुः सुखं राजन् प्रगृहीतकुटीमठम्॥ १७॥

राजन्! सभी यादवोंने वहाँ सेनाकी छावनी डाल दी। सब लोग अपने-अपने लिये स्वीकृत कुटी और मठ आदिमें सुखपूर्वक गये॥ १७॥

भगवानपि गोविन्दः सरो दृष्ट्वा सुशोभनम्।
उपस्पृश्य जले तस्मिन् प्रणम्य यतिपुङ्गवान्॥ १८॥
तयोरागमनं लिप्सुरास्ते तीरे यथासुखम्।
शृण्वन् वेदध्वनिं विष्णुर्ब्राह्मणानां समन्ततः॥ १९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस शोभाशाली सरोवरको देखकर भगवान् गोविन्दने भी उसके जलमें आचमन किया और वहाँ रहनेवाले श्रेष्ठ यतियोंको नमस्कार करके हंस और डिम्भकके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए उसके तटपर सुखपूर्वक बैठे। वे भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ सब ओर ब्राह्मणोंकी वेद-ध्वनि सुन रहे थे ॥ १८-१९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने कृष्णपुष्करप्रवेशे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस और डिम्भकके उपाख्यानके प्रसंगमें श्रीकृष्णका पुष्करमें प्रवेशविषयक एक सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२० ॥

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

हंस और डिम्भककी सेनाओंका पुष्करतीर्थमें प्रवेश

वैशम्पायन उवाच

अथ तौ हंसडिम्भकौ जग्मतुः पुष्करं प्रति।
प्रगृहीतमहाचापौ सरथौ सध्वजौ नृप ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर हंस और डिम्भक भी विशाल धनुष लिये रथ और ध्वजसहित पुष्करतीर्थमें गये ॥ १ ॥

पुरःसरमहाभूतौ संहरन्ताविवोल्बणौ।
प्रकुर्वन्तौ सिंहरवं भस्मना परिलेपितौ ॥ २ ॥

उन दोनोंके आगे दो बड़े-बड़े भूत चल रहे थे। वे इतने भयङ्कर थे कि संहार करनेके लिये उद्यत-से जान पड़ते थे। उन्होंने अपने सारे अङ्गोंमें भस्म रमा रखा था तथा वे जोर-जोरसे सिंहनाद करते थे ॥ २ ॥

त्रिपुण्ड्रकललाटान्तौ रुद्राक्षपरिशोभितौ।
अन्यौ द्वाविव रुद्रौ तौ लोकसंहारकारकौ ॥ ३ ॥

उनके ललाटके प्रान्तभागोंतक फैली हुई त्रिपुण्ड्रकी रेखा शोभा पाती थी। वे दोनों रुद्राक्षकी मालाओंसे सुशोभित थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो दो दूसरे रुद्र सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेके लिये आ गये हों ॥ ३ ॥

ततोऽनुजग्मुः शतशः सैन्यानि नृपसत्तम।
अक्षौहिण्यो दशैवासंस्तयोरथ समागताः ॥ ४ ॥

नृपश्रेष्ठ! उन दोनोंके पीछे-पीछे सैकड़ों सैनिक चल रहे थे। हंस और डिम्भककी दस अक्षौहिणी सेनाएँ वहाँ आ गयी थीं ॥ ४ ॥

विचक्रस्तु महाराज दानवो नगसंनिभः।
तयोरेव सखा पूर्वमासीच्च बलशालिनोः ॥ ५ ॥

महाराज! उन दोनोंके साथ विचक नामक पर्वताकार दानव भी था, जो उन बलशाली बन्धुओंका पहलेसे ही मित्र था ॥ ५ ॥

शक्रो यस्य पुरःसरः स्थातुं शक्तो न वज्रभृत्।
यो हि वीरो महाराज देवदैत्यसमागमे ॥ ६ ॥
देवान् निघ्नंस्तथा राजन् देवेन्द्रमजयन्महान्।

वज्रधारी इन्द्र भी उसके आगे आकर ठहर नहीं सकते थे। महाराज जनमेजय! देवताओं और दैत्योंके संग्राममें उस महान् वीरने देवताओंपर चोट करते हुए वहाँ देवराज इन्द्रको भी पराजित कर दिया था ॥ ६½ ॥

अकरोच्च पुरा युद्धं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ७ ॥
यो हि द्वारवतीं प्राप्य बबाधे यदुपुङ्गवान्।

पूर्वकालमें इस विचकने प्रभावशाली भगवान् विष्णुके साथ युद्ध किया था और द्वारकापुरीमें जाकर श्रेष्ठ यादवोंको बड़ा कष्ट दिया था ॥ ७½ ॥

स तदानीं महाराज श्रुत्वा युद्धमुपस्थितम् ॥ ८ ॥
अनेकशतसाहस्रैर्दानवैः परिघायुधैः।
वृतः समभवद् दैत्यो वृष्णिद्वेषान् नृपोत्तम ॥ ९ ॥
हंसस्य डिम्भकस्याथ साहाय्यं कर्तुमुद्यतः।

महाराज नृपश्रेष्ठ! उस समय युद्ध उपस्थित हुआ सुनकर कई लाख परिघधारी दानवोंसे घिरा हुआ वह दैत्य वृष्णिवंशियोंसे द्वेष रखनेके कारण हंस और डिम्भककी सहायता करनेके लिये उद्यत हो गया ॥ ८-९½ ॥

विचक्रस्याथ दैत्यस्य हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ॥ १० ॥
अतीव मित्रतां यातो दद्याद् प्राणांश्च संयति।

उन दिनों राक्षसराज हिडिम्ब विचक्रनामक दैत्यका बड़ा भारी मित्र हो गया था। वह युद्धमें उसके लिये प्राण भी दे सकता था ॥ १०½ ॥

राक्षसैरपरैः सार्धं शिलाशूलासिपाणिभिः ॥ ११ ॥
ययौ तस्य सहायार्थं हिडिम्बः पुरुषादपः।

राक्षसराज हिडिम्ब शिला, शूल और खड्ग धारण करनेवाले दूसरे राक्षसोंके साथ विचक्रकी सहायताके लिये वहाँ गया ॥ ११½ ॥

अष्टाशीति सहस्राणि राक्षसास्तस्य चाभवन् ॥ १२ ॥
अनुयाता महाराज शिलापरिघबाहवः।

महाराज! अपने हाथोंमें शिला और परिघ लिये अठासी हजार राक्षस उस हिडिम्बके अनुगामी होकर वहाँ गये थे ॥ १२½ ॥

तयोस्तत्र महासैन्यं गच्छतोः केशवं प्रति ॥ १३ ॥
मिश्रितं दैत्यसंघैश्च राक्षसैश्च समन्ततः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्यद्भुतं महारौद्रं त्रैलोक्यभयदायकम् ॥ १४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णपर चढ़ाईके लिये जाते हुए हंस और डिम्भककी विशाल सेना वहाँ सब ओरसे दैत्यसमूहों तथा राक्षसोंसे मिश्रित हो गयी। वह अत्यन्त अद्भुत और महा-भयंकर सेना तीनों लोकोंको भय देनेवाली थी॥ १३-१४॥

दैत्येन सहितौ तौ हि जग्मतुः पुष्करं प्रति।
तावेतौ हंसडिम्भकौ हन्तुं केशवमञ्जसा ॥ १५ ॥

विचक्र नामक दैत्यके साथ ये दोनों हंस और डिम्भक श्रीकृष्णका अनायास वध करनेके लिये पुष्करतीर्थको गये॥ १५॥

ततः श्रुत्वा जरासंधो विग्रहं यदुभिः सह।
नाकरोन्नृपसाहाय्यं पापं मे भवितेति ह ॥ १६ ॥

तदनन्तर यादवोंके साथ हंस और डिम्भकके युद्धका समाचार सुनकर जरासंधने उन दोनों नरेशोंकी सहायता नहीं की। उसने सोचा कि ऐसा करनेसे मुझे पाप लगेगा *॥ १६॥

गच्छतोः समितिं राजन् हंसस्य डिम्भकस्य च।
अतित्वरितविक्रान्तास्ते ययुः पुष्करं प्रति ॥ १७ ॥

राजन्! युद्धमें जाते हुए हंस और डिम्भकके साथ वे शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले नरेशगण भी पुष्करको गये॥ १७॥

सिंहनादं विमुञ्चन्तः कथयन्तः परस्परम्।
अहमेव नृपा युद्धं करोमि प्रथमं हरेः ॥ १८ ॥

वे सब-के-सब सिंहनाद करते हुए परस्पर कहते थे कि 'राजाओ! पहले मैं ही श्रीकृष्णके साथ युद्ध करूँगा'॥ १८॥

इत्यब्रुवन् नृपा राजञ्छतशः केशवं प्रति।
सम्प्राप्तास्ते नृपश्रेष्ठाः पुष्करं पुण्यवर्धनम् ॥ १९ ॥

राजन्! इस तरह सैकड़ों नरेशोंने श्रीकृष्णसे युद्ध करनेकी बात कही। इस प्रकार बातचीत करते हुए वे श्रेष्ठ नरेश पुण्यवर्धक पुष्करतीर्थमें जा पहुँचे॥ १९॥

मुनिजुष्टं तपोवृद्धैर्ऋषिभिश्च निषेवितम्।
अत्यन्तभद्रं लोकेषु पुष्करं प्रथमं नृप ॥ २० ॥

नरेश्वर! तपस्यामें बढ़े-चढ़े ऋषि-मुनि उस तीर्थका सेवन करते हैं। पुष्कर ही वह प्रथम तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें अत्यन्त कल्याणकारी बताया गया है॥ २०॥

पुष्करं पुण्डरीकाक्षो द्वावेव जगतीपते।
दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव किल्बिषच्छेदिनौ नृप ॥ २१ ॥

पृथ्वीनाथ! राजा जनमेजय! पुष्करतीर्थ और पुण्डरीकाक्ष भगवान् श्रीकृष्ण—ये दो ही ऐसे हैं, जो दर्शन और स्पर्शसे सारे पापोंका उच्छेद करनेवाले हैं॥ २१॥

पुष्करं पुण्डरीकाक्षो द्वावेव नृपसत्तम।
सेव्यमानौ मुनिश्रेष्ठैरमरैर्महात्मभिः ॥ २२ ॥

नृपश्रेष्ठ! पुष्कर और पुण्डरीकाक्ष—इन दोका ही श्रेष्ठ मुनि तथा महामनस्वी देववृन्द सेवन करते हैं॥ २२॥

द्वावेव हि नृपश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशकौ।
तावुभौ यत्र सहितौ तत्र ते संस्थिता नृपाः ॥ २३ ॥

नृपश्रेष्ठ! वे दो ही सब पापोंका नाश करनेवाले हैं। वे दोनों जहाँ एक साथ हो गये थे, वहाँ वे सब नरेश उपस्थित हुए॥ २३॥

दृष्टवन्तो हरिं विष्णुं विष्टरश्रवसं परम्।
पुष्करं पुण्यसलिलं तीर्थं ब्रह्मनिषेवितम् ॥ २४ ॥

उन सबने वहाँ विस्तृत यशवाले परम पुरुष भगवान् विष्णु हरिका तथा ब्रह्माजीके द्वारा सेवित पुण्य-सलिल पुष्करतीर्थका दर्शन साथ ही किया॥ २४॥

ताभ्यां कुरु नमस्कारं मनसा नृपसत्तम।
अहो निःशेषमभवत् तत्र भूयो न संशयः ॥ २५ ॥
सैन्यं तत्र च सम्प्राप्तं दैत्यरक्षःसमाकुलम्।

नृपश्रेष्ठ जनमेजय! तुम भी अपने मनसे पुष्करतीर्थ और भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करो। अहो! वहाँ दैत्यों और राक्षसोंसे भरी हुई जो सेना पहुँची थी, वह सारी-की-सारी फिर नष्ट हो गयी, इसमें संशय नहीं है॥ २५½॥

अनेकभेरीपणवझर्झरीडिण्डिमाकुलम् ॥ २६ ॥
नानापणवसम्मिश्रं रक्षोनादविनादितम्।

वह सेना अनेकानेक भेरी, पणव, झाँझ और नगाड़ोंकी ध्वनिसे व्याप्त थी, नाना प्रकारके वाद्योंकी ध्वनिसे मिश्रित राक्षसोंके सिंहनादसे गूँज रही थी॥ २६½॥

प्रविश्य सरसस्तीरं पुष्करस्य विशाम्पते।
दर्शयामास देवेशं युद्धाय समुपस्थितम् ॥ २७ ॥

प्रजानाथ! उस सेनाने पुष्कर-सरोवरके तटपर पहुँचकर युद्धके लिये उपस्थित हुए देवेश्वर श्रीकृष्णका एक दूसरेको दर्शन कराया॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने युद्धार्थं हंसडिम्भकसैन्यानां पुष्करागमने एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें युद्धके लिये हंस और डिम्भककी सेनाका पुष्करतीर्थमें आगमनविषयक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२१॥

---

* शास्त्रकी आज्ञा है कि 'परासक्तः परेण न हन्तव्यः' (दूसरेके साथ युद्धमें फँसे हुए पुरुषको दूसरा न मारे), हंसकी सहायतामें जानेसे जरासंधको उक्त शास्त्राज्ञाके उल्लङ्घनजनित दोषकी प्राप्ति होती, इसीलिये वह नहीं गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

उभयपक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध

वैशम्पायन उवाच

द्वे सेने संगते राजन् सध्वजे सपरिच्छदे।
महापरिघसंकीर्णे गदाशक्तिसमाकुले ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! वे दोनों ओरकी सेनाएँ वहाँ एक दूसरीसे मिल गयीं। वे ध्वज तथा अन्य उपकरणोंसे सम्पन्न थीं। दोनों ही दलोंमें बड़े-बड़े परिघ सज्जित थे। दोनों ही सेनाएँ गदा और शक्तियोंसे भरी-पूरी थीं ॥ १ ॥

भेरीझर्झरसम्पूर्णे डिण्डिमारावसंकुले।
प्रगृहीतमहाशस्त्रशूलासिवरकार्मुके ॥ २ ॥

दोनोंमें भेरी और झाँझकी ध्वनि हो रही थी। दोनों ही डिंडिम-घोषसे व्याप्त थीं। दोनों ही दलोंके सैनिकोंने बड़े-बड़े शस्त्र, शूल, खड्ग और श्रेष्ठ धनुष ले रखे थे ॥२॥

परस्परकृतोत्साहे चक्राते युद्धमुल्बणम्।
ते शराः कार्मुकोत्सृष्टा निर्भिद्याथ शरीरिणाम् ॥ ३॥
शरीराणि महाराज जग्मुर्दूरं सहस्रशः।

महाराज! दोनों सेनाएँ एक दूसरीको जीतनेका उत्साह रखती थीं। दोनों भयंकर युद्ध करने लगीं। उनके धनुषोंसे छूटे हुए सहस्रों बाण देहधारियोंके शरीरोंको विदीर्ण करके दूरतक चले जाते थे ॥ ३½ ॥

भटबाहुविनिर्मुक्ताः खड्गा निर्भिद्य वक्षसि ॥ ४ ॥
स्फुरन्तश्च तथा राजञ्छिरांस्याहृत्य खं ययुः।

राजन्! योद्धाओंकी भुजाओंसे छूटे हुए खड्ग शत्रुकी छातीमें घाव करके जब उछलते, तब उनके सिर काटकर आकाशमें चले जाते ॥ ४½ ॥

परिघाश्च तथा राज्ञां बाहुभिः परिचोदिताः ॥ ५ ॥
तिलशश्चक्रतुलं शरीरं नृपरक्षसाम्।
दैत्यानां कुर्वतां नादमन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ॥ ६ ॥

क्षत्रियोंकी भुजाओंद्वारा फेंके गये परिघ राजाओं तथा राक्षसोंके अनुपम शरीरको तिल-तिल करके काट डालते थे तथा एक दूसरेके वधकी इच्छासे गर्जना करनेवाले दैत्योंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे ॥ ५-६ ॥

दैत्या रक्षांसि राजेन्द्र राजानश्च समन्ततः।
अन्योन्यं परिघैर्जघ्नुश्चापमुक्तैः शिलाशितैः ॥ ७ ॥
शरैश्च भोगिभोगाभैस्तीक्ष्णमन्ये महाबलाः।

राजेन्द्र! दैत्य, राक्षस और राजा लोग सब ओर एक दूसरेपर परिघोंद्वारा प्रहार करते थे तथा अन्य महाबली वीर शिलापर तेज करके धनुषसे छोड़े गये सर्पाकार बाणोंद्वारा गहरा आघात करते थे ॥ ७½ ॥

राक्षसा दानवाश्चान्ये मत्तमातङ्गविक्रमाः ॥ ८ ॥
अन्योन्यं जघ्निरे राजंश्चापमुक्तैर्महाशरैः।

राजन्! मतवाले हाथियोंके समान पराक्रमी राक्षस और अन्य दानव धनुषसे छोड़े गये महान् बाणोंद्वारा परस्पर चोट पहुँचाते थे ॥ ८½ ॥

नागा नागैर्महाराज हया अश्वैः समन्ततः ॥ ९ ॥
रथा रथैः समाजग्मुः सादिनः सादिभिस्तथा।

महाराज! वहाँ सब ओर हाथी हाथियोंसे, घोड़े घोड़ोंसे, रथ रथोंसे और सवार सवारोंसे भिड़ गये ॥ ९½ ॥

पट्टिशासिशरव्रातैः कुन्तैः सायककर्षणैः ॥ १० ॥
सशक्तिपरिघप्रासपरश्वधसमाकुलैः।
भिन्दिपालैर्महारौद्रैर्जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ११ ॥

पट्टिश, खड्ग, बाणसमूह, सायकोंको भी काट गिरानेवाले कुन्त, शक्ति, परिघ, प्रास और फरसोंसहित महाभयंकर भिन्दिपाल आदि अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा समी योद्धा रणभूमिमें एक दूसरेको मारने लगे ॥ १०-११ ॥

अन्योन्यं जघ्निरे राजंश्चापमुक्तैः शिलाशितैः।
राक्षसा दानवा राजन् क्षत्रियाश्च समन्ततः।
इतश्चेतश्च धावन्तः कुर्वन्तो विस्वरं रवम् ॥ १२ ॥

राजन्! इधर-उधर दौड़ते और विकट गर्जना करते हुए राक्षस, दानव तथा क्षत्रिय शिलापर तेज कर धनुषसे छोड़े गये बाणोंद्वारा सब ओर परस्पर प्रहार करते थे ॥१२॥

हताः केचिन्महाराज पेतुरुर्व्यां महासिभिः।
केचिन्मथितमस्तिष्का गदाभिर्वीर्यवत्तमाः ॥ १३ ॥

महाराज! कोई बड़ी-बड़ी तलवारोंसे मारे जाकर पृथ्वीपर गिर पड़े। कितने ही महापराक्रमी वीरोंके मस्तक गदाओंके आघातसे चूर-चूर हो गये ॥ १३ ॥

भिन्नग्रीवा महाराज परिघैः परिघायुधैः।
यमराष्ट्रं गताः केचित् केचित् स्वर्गं समाययुः ॥१४॥

महाराज! कितने ही परिघधारी योद्धाओंने अपने परिघोंद्वारा शत्रुओंकी गर्दनें तोड़ डालीं, उन मारे शत्रुओंमेंसे कुछ तो यमराजके राज्यमें गये और कुछ स्वर्गलोकमें जा पहुँचे ॥ १४ ॥

अप्सरोभिः समासेदुः पश्यन्तः स्वं कलेवरम्।
केचित् स्वांश्च परांश्चैव हत्वा भ्रान्ता इवाभवन् ॥१५॥

वे अपने मृत शरीरको देखते हुए अप्सराओंसे जा मिले। कितने ही योद्धा परायों तथा अपनोंको भी मारकर भ्रान्त-से हो गये थे ॥ १५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजञ्छङ्खा भेर्यः सहस्रशः।
प्रध्मुः सर्वतः सैन्ये मृदङ्गा बहवस्तथा ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजन् ! इसी बीचमें सहस्रों शङ्खों और भेरियोंकी ध्वनि होने लगी। सेनामें सब ओर बहुत-से मृदङ्ग बजने लगे ॥ १६ ॥

मध्यंदिनगते सूर्ये तापं दधति घोरवत्।
ततः पिशाचा विकृताः करालविततोदराः ॥ १७ ॥
राक्षसाश्च महाघोराः पिशितं केशशाद्वलम्।
मुदिता भक्षयामासुः पिबन्तः शोणितं बहु ॥ १८ ॥

सूर्य मध्याह्नकालमें पहुँचकर जब घोर ताप देने लगे, उस समय विशाल एवं विकराल पेटवाले विकृताकार पिशाच और महाघोर राक्षस आकर बड़ी प्रसन्नताके साथ बहुत-सा रक्त पीने और केशयुक्त मांस खाने लगे ॥ १७-१८ ॥

संचितानि शवान्यासन् कबन्धाः खड्गपातिताः।
विभज्य देशं बहुशो युद्धभूमौ शवाशिनः ॥ १९ ॥

वहाँ ढेर-की-ढेर लाशें पड़ीं थीं, खड्गोंद्वारा गिराये हुए बिना सिरके धड़ एकत्र हो गये थे। वे शवका भक्षण करनेवाले पिशाच युद्धभूमिमें परस्पर बहुत-से देशका विभाजन करके मृतकोंके मांस खाते थे ॥ १९ ॥

अथ श्येना मृगाश्चैव कङ्का गृध्रास्तथा परे।
तुण्डैः शवान् विनिष्कृष्य भक्षयन्ति ततस्ततः ॥ २० ॥

तदनन्तर बहुत-से बाज, हिंसक जन्तु, कंक, गृध्र तथा अन्य पक्षी इधर-उधरसे आकर अपनी चोंचोंसे मुर्दोंको खींच-खींचकर खाने लगे ॥ २० ॥

सप्ताशीतिसहस्राणि हता नागा नृपोत्तम।
त्रिंशत्सहस्रमयुतं निहता हयसत्तमाः ॥ २१ ॥

नृपश्रेष्ठ ! उस युद्धमें सत्तासी हजार हाथी मारे गये तथा तीस करोड़ अच्छे घोड़ोंका संहार हुआ ॥ २१ ॥

हतं लक्षं महाराज रथानां रथिभिः सह।
त्रिंशत्कोट्यो हतास्तत्र सादिनः सायुधा भृशम् ॥ २२ ॥

महाराज ! रथियोंसहित एक लाख रथ नष्ट हुए तथा वहाँ तीस करोड़ शस्त्रधारी घुड़सवार गहरी चोट खाकर मारे गये थे ॥ २२ ॥

मध्यंदिनगते सूर्ये हताः केचन निर्गताः।
केचिच्च तृषिता राजन् विविशुः पुष्करं सरः ॥ २३ ॥

राजन् ! सूर्यके मध्याह्नकालमें पहुँचते-पहुँचते कितने ही योद्धा घायल होकर रणभूमिसे निकल गये और कितने ही प्याससे पीड़ित हो पुष्कर-सरोवरमें घुस गये ॥ २३ ॥

केचिद् भूमिं समालिङ्ग्य भीता इत्यब्रुवन् रणे।
मुक्तकेशाः पतन्ति स्म रथान् संत्यज्य केचन ॥ २४ ॥

कितने ही सैनिक पृथ्वीका आलिङ्गन करके पड़ गये और रणभूमिमें अपनेको भयभीत बताने लगे। कितने ही योद्धा केश खोले हुए रथोंको छोड़कर पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ २४ ॥

संदष्टौष्ठपुटाः केचित् सादिनः पुरतो हताः।
अत्यद्भुतं महायुद्धमासीत् पुष्करतीर्थके।
यथा देवासुरं युद्धमासीत् पूर्वं नृपोत्तम ॥ २५ ॥

कितने ही घुड़सवार दाँतोंसे ओठ दबाये सामने मारे गये। नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार पुष्करतीर्थमें अत्यन्त अद्भुत महान् युद्ध हुआ। पूर्वकालमें जिस प्रकार देवासुर-संग्राम हुआ था, वैसा ही वह भी था ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने संकुलयुद्धे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें संकुल-युद्धविषयक एक सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२२ ॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और विचक्रका घोर युद्ध तथा विचक्रका वध

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्वन्द्वयुद्धमवर्तत।
विचक्रं योधयामास शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इसी बीचमें वहाँ द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। शार्ङ्गधन्वा गदाधारी श्रीकृष्णने विचक्रके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ १ ॥

बलभद्रोऽथ हंसेन डिम्भकेन च सात्यकिः।
वसुदेवोग्रसेनाभ्यां हिडिम्बः पुरुषादकः ॥ २ ॥

बलभद्रने हंसके साथ और सात्यकिने डिम्भकके साथ लोहा लिया। नरभक्षी हिडिम्ब वसुदेव तथा उग्रसेनके साथ युद्ध करने लगा ॥ २ ॥

शेषाश्च शेषै राजेन्द्र चक्रुर्युद्धमदीनवत्।
वासुदेवस्त्रिसप्तत्या दैत्यं वक्षस्यताडयत् ॥ ३ ॥

राजेन्द्र ! किसीके सामने दीनता न प्रकट करनेवाले शेष वीर शेष योद्धाओंके साथ जूझने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने दैत्यकी छातीमें तिहत्तर बाण मारे ॥ ३ ॥

शरैर्निशितधाराग्रैर्विस्मयं दर्शयन् रणे।
दानवो देवदेवेशं दृढेन निशितेन च ॥ ४ ॥
शरेणाकर्णमाकृष्य धनुःप्रवरमीश्वरम्।
जघान स्तनमध्ये च पश्यतस्तु शचीपतेः ॥ ५ ॥

उन बाणोंकी धार बड़ी तीखी थी। उन्होंने रणभूमिमें विस्मय प्रकट करते हुए उस दैत्यपर प्रहार किया था। तब उस दानवने भी अपने श्रेष्ठ धनुषको कानतक खींचकर एक सुदृढ़ और पैने बाणसे देवदेवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी छातीमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शचीपति इन्द्रके देखते-देखते प्रहार किया ॥ ४-५ ॥

तेन विद्धोऽथ भगवान् वक्षोदेशे जनार्दनः।
अवमच्छोणितं विष्णुरादिकाले यथा प्रजाः ॥ ६ ॥

वक्षःस्थलमें उसके बाणकी चोट खाकर भगवान् जनार्दन विष्णु रक्त वमन करने लगे, ठीक उसी तरह जैसे सृष्टिके आदि कालमें उन्होंने प्रजावर्गको अपने मुखसे प्रकट किया था॥

ततः क्रुद्धो हृषीकेशः क्षुरप्रेणाहनद् ध्वजम्।
अश्वांश्च चतुरो हत्वा सारथिं च शरैस्त्रिभिः ॥ ७ ॥
ततो दध्मौ महाशङ्खं यथा तारामये रणे।

तदनन्तर कुपित हुए भगवान् हृषीकेशने एक क्षुरप्रसे उस दानवकी ध्वजा काट डाली, फिर उसके चारों घोड़ोंको मारकर तीन बाणोंसे सारथिको भी कालके गालमें डाल दिया। तदनन्तर तारकामय संग्रामकी भाँति उन्होंने अपना महान् शङ्ख बजाया ॥ ७½ ॥

रथादुत्प्लुत्य सहसा दानवः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ८ ॥
गदां गृह्य महाघोरां दुःसहां वीर्यशालिनीम्।
तया जघान दैत्येन्द्रः किरीटे केशवस्य ह ॥ ९ ॥
ललाटे च पुनर्विष्णुं सिंहनादं व्यनीनदत्।

तब क्रोधसे मूर्च्छित हुए उस दानवने सहसा रथसे उछलकर एक दुःसह शक्तिशालिनी एवं महाभयंकर गदा हाथमें ले ली और उसके द्वारा उस दैत्यराजने पहले तो श्रीकृष्णके किरीटपर आघात किया, फिर उनके ललाटमें चोट पहुँचायी। तत्पश्चात् वह जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा ॥ ८-९½ ॥

ततः शिलां च महतीं प्रगृह्य दनुजः किल ॥ १० ॥
भ्रामयित्वा दशगुणं प्राहरत् केशवोरसि।

इसके बाद उस दानवने एक बहुत बड़ी शिला उठायी और उसे दस बार घुमाकर भगवान् श्रीकृष्णकी छातीपर दे मारा॥

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य हस्तेनादाय केशवः ॥ ११ ॥
जघान च तया दैत्यं स पपातार्दितः क्षितौ।
गतासुरिव संजज्ञे श्वसन्निव पपात ह ॥ १२ ॥

उस शिलाको अपनी ओर आते देख भगवान् श्रीकृष्णने हाथसे पकड़ लिया और उसीसे उस दैत्यपर आघात किया। उस प्रहारसे पीड़ित हो वह दैत्य प्राणहीन-सा हो गया और लंबी साँस-सा खींचता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ११-१२ ॥

प्राप्य संज्ञां ततो दैत्यः क्रोधाद् द्विगुणमाबभौ।
आदाय परिघं घोरमिदमाह जनार्दनम् ॥ १३ ॥

तदनन्तर होशमें आकर वह दैत्य कुपित हो उठा। क्रोधसे उसकी आभा दुगुनी हो गयी। उसने भयंकर परिघ लेकर भगवान् जनार्दनसे इस प्रकार कहा—॥ १३ ॥

अनेन तव गोविन्द दर्पजातं निहन्म्यहम्।
विक्रमज्ञस्तदा चासि मम देवासुरे रणे ॥ १४ ॥

'गोविन्द! इस परिघसे मैं तुम्हारा सारा घमंड चूर्ण किये देता हूँ। उन दिनों जब देवासुर-संग्राम हो रहा था, तुम मेरा पराक्रम जान चुके हो ॥ १४ ॥

तावेव विपुलौ बाहू स एवास्सि जनार्दन।
तथापि युध्यसे वीर ज्ञात्वा त्वं मामकं बलम् ॥ १५ ॥
वारयैनं महाबाहो परिघं बाहुनिःसृतम्।

'जनार्दन! वे ही दोनों मेरी विशाल भुजाएँ हैं और वही मैं हूँ। वीर! तुम मेरे बलको जान चुके हो, तो भी मुझसे युद्ध करते हो। महाबाहो! मेरी भुजाओंसे छूटे हुए इस परिघको रोको तो सही' ॥ १५½ ॥

इत्युक्त्वा देवदेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम्।
चिक्षेप दैत्यो लोकेशं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ १६ ॥

ऐसा कहकर उस दैत्यने सब लोगोंके देखते-देखते शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवदेवेश्वर जगदीश्वर श्रीकृष्णपर वह परिघ चला दिया ॥ १६ ॥

तं गृह्य बाहुना कृष्णो हतोऽसीति वदन् हरिः।
खण्डशः कारयामास खड्गेन निशितेन ह ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने उस परिघको हाथसे पकड़ लिया और 'अब तू शीघ्र ही मारा जायगा' ऐसा कहते हुए उन्होंने अपनी तीखी तलवारसे उस परिघके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥

उत्पाट्य वृक्षं दैत्येशः शतशाखं महाशिखम्।
तेन सम्पोथयामास विष्टरश्रवसं विभुम् ॥ १८ ॥

तब उस दैत्यराजने सौ शाखा और बहुत ऊँची शिखावाले एक विशाल वृक्षको उखाड़कर उसे विस्तृत यशवाले भगवान् श्रीकृष्णपर दे मारा ॥ १८ ॥

छित्त्वा तं चापि खड्गेन तिलशश्च चकार ह।
विक्रीड्य सुचिरं विष्णुस्तेन दैत्येन माधवः ॥ १९ ॥
हन्तुमैच्छत् तदा दैत्यमादाय निशितं शरम्।
आग्नेयास्त्रेण संयोज्य जघानैनं महान् हरिः ॥ २० ॥

माधव श्रीकृष्णने अपनी तलवारसे उस वृक्षको भी तिल-तिल करके काट डाला। इस प्रकार उस दैत्यके साथ चिरकालतक क्रीड़ा करके भगवान् महाविष्णुने उस समय उसे मार डालनेकी इच्छा की और एक तीखा बाण हाथमें लेकर उसे आग्नेयास्त्रसे संयुक्त करके उसके द्वारा उस दैत्यपर आघात किया ॥ १९-२० ॥

संदह्य स शरो दैत्यं सर्वलोकस्य पश्यतः।
यथापूर्वं जगामाशु करं भगवतः पुनः ॥ २१ ॥

उस बाणने सब लोगोंके देखते-देखते दैत्यको जलाकर भस्म कर दिया और पहलेकी भाँति वह शीघ्र ही भगवान्के हाथमें चला गया ॥ २१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हतशिष्टास्ततो दैत्याः पलायन्तो दिशो दश ।
अद्यापि न निवर्तन्ते गच्छन्तो वै महोदधिम् ॥ २२ ॥

फिर मरनेसे बचे हुए दैत्य दसों दिशाओंमें भागते हुए महासागरको चले गये। वे अब भी वहाँसे लौट नहीं रहे हैं॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने कृष्णस्योत्कर्षे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसंगमें श्रीकृष्णकी विजयविषयक एक सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

हंस और बलभद्रका युद्ध

वैशम्पायन उवाच

बलदेवस्तु धर्मात्मा धनुरादाय सत्वरम्
जघान हंसं दशभिर्बाणैर्बाणभृतां वर १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! बाणधारियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा बलदेवजीने तुरंत धनुष लेकर दस बाणोंसे हंसको घायल कर दिया ॥ १ ॥

तं प्रत्यविध्यन्नाराचैर्हंसः पञ्चभिराशुगैः
तानन्तरे हली छित्त्वा नाराचैर्दशभिः पुनः ।
नाराचेनाशु विव्याध ललाटे हंसमोजसा ॥ २ ॥

हंसने भी बदलेमें पाँच शीघ्रगामी नाराचोंद्वारा उनपर प्रहार किया; परंतु हलधरने पुनः दस नाराच मारकर बीचमें ही उन्हें काट दिया और शीघ्र ही एक नाराचसे हंसके ललाटमें बलपूर्वक आघात किया ॥ २ ॥

दृढं पतन् स नाराचस्तस्य संज्ञां समाददे ।
रथोपस्थे चिरं स्थित्वा तूणाद् बाणं समाददे ॥ ३ ॥
लब्ध्वा हंसः स संज्ञां तु विद्ध्वा तेन यदूत्तमम् ।
सिंहवद् व्यनदद्धंसो देवान् विस्मापयन् रणे ॥ ४ ॥

उस नाराचने गहरी चोट पहुँचाकर हंसको अचेत कर दिया। वह देरतक रथके पिछले भागमें बैठा रहा। इसके बाद होशमें आकर हंसने तरकससे बाण निकाला और उससे यदुश्रेष्ठ बलभद्रको घायल करके रणभूमिमें देवताओंको विस्मयमें डालते हुए उसने सिंहके समान गर्जना की ॥ ३-४ ॥

ततः क्रुद्धो हली विद्धस्तेन बाणेन माधवः ।
वमञ्छोणितमत्युष्णं निःश्वसंश्च रणाजिरे ॥ ५ ॥

उसके बाणसे आहत होकर माधव हलधर कुपित हो उठे और समराङ्गणमें अत्यन्त उष्ण रक्त वमन करते हुए लंबी साँस खींचने लगे ॥ ५ ॥

लोहितावृष्टगात्रस्तु कुंकुमार्द्र इवाभवत् ।
नाराचैः शतसाहस्रैरर्दयामास माधवः ॥ ६ ॥
हंसं हंसगतिं वीरं नीलवासा हलायुधः ।

उनका शरीर रक्तसे रञ्जित हो कुङ्कुमसे भीगा हुआ-सा प्रतीत होने लगा। तब नीलवस्त्रधारी हलधर माधवने हंसके समान गतिवाले वीर हंसको लाखों नाराचोंसे पीड़ित कर दिया ॥ ६½ ॥

ते मुक्ता निशिता घोरा नाराचाश्च सुवाजिनः ॥ ७ ॥
रथे ध्वजे तथा चापे अक्षे तूणीद्वये नृप ।
पतिताः सर्वतो राजन् व्यथां चैव तथा ददुः ॥ ८ ॥

राजन् ! उनके धनुषसे छूटे हुए वे सुन्दर पंखवाले तीखे और भयंकर नाराच हंसके रथ, ध्वज, धनुष, चक्र और दोनों तरकसपर पड़कर सब ओरसे पीड़ा देने लगे ॥ ७-८ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज हंसो वीर्यमदान्वितः ।
शरेण हलिनं विद्ध्वा ध्वजं चिच्छेद कालवित् ॥ ९ ॥
शरैश्चतुर्भिरश्वांश्च सूतं प्रेताधिपे ददौ ।

महाराज ! तब बल-पराक्रमके मदसे उन्मत्त हुए और समयका ज्ञान रखनेवाले हंसने कुपित होकर एक बाणसे हलधरको घायल करके उनकी ध्वजा काट डाली; फिर चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको मारकर एक बाणसे उनके सारथिको भी यमराजके हवाले कर दिया ॥ ९½ ॥

ततः क्रुद्धो हली तस्मै गदां गृह्य महारणे ॥ १० ॥
आपपात महाबाहुर्हंसं शेष इव श्वसन् ।

तब क्रोधमें भरे हुए महाबाहु हलधर उस महान् समरमें गदा लेकर फुफकारते हुए शेषनागके समान हंसपर टूट पड़े ॥ १०½ ॥

तया रथं ध्वजं चक्रमश्वान् सूतं हलायुधः ।
बभञ्ज तिलशः सर्वं ननाद च पुनः पुनः ॥ ११ ॥

हलधर बलरामजीने उस गदाके द्वारा हंसके रथ, ध्वज, चक्र, अश्व तथा सारथि सबको तिल-तिल करके काट डाला और बारंबार गर्जना की ॥ ११ ॥

भूयश्च गदया हंसं चिक्षेप च बली किल ।
सोऽपि हंसो गदां गृह्य रथात् तस्मादवापतत् ॥ १२ ॥

बलवान् वीर बलभद्रने पुनः गदाद्वारा हंसको चोट पहुँचायी। यह देख हंस भी गदा लेकर अपने रथसे कूद पड़ा ॥ १२ ॥

ततस्तौ हंसहलिनौ युयुधाते महारणे ।
महारथौ महाबाहू लोके प्रथिततेजसौ ॥ १३ ॥

तदनन्तर लोकमें विख्यात तेजवाले महाबाहु महारथी हंस और हलधर उस महासमरमें युद्ध करने लगे ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्यद्भुतं सुविक्रान्तौ परस्परवधैषिणौ।
कृतश्रमौ महायुद्धे हंसविक्रान्तगामिनौ॥ १४॥

वे दोनों परम पराक्रमी, एक-दूसरेके वधकी इच्छा रखनेवाले, महायुद्धके लिये परिश्रम करनेवाले और हंसके समान चलनेवाले थे। उनमें अत्यन्त अद्भुत युद्ध होने लगा॥ १४॥

यथा देवासुरे युद्धे शक्रवृत्रौ पुराम्बरे।
उभौ संसिक्तसर्वाङ्गौ शोणितेन महारणे॥ १५॥

जैसे पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर इन्द्र और वृत्रासुर आकाशमें जूझते थे, उसी प्रकार वे हंस और बलभद्र भी परस्पर युद्ध कर रहे थे। उस महासमरमें दोनोंके सारे अङ्ग खूनसे रँग गये थे॥ १५॥

अत्यन्तखेदिनौ युद्धे परस्परबलेन ह।
ततश्च दक्षिणं मार्गं बलभद्रोऽन्वगच्छत॥ १६॥

उस युद्धस्थलमें एक-दूसरेके बलसे दोनोंको अत्यन्त खेद हो रहा था। तदनन्तर बलभद्रने दाहिने मार्गका अनुसरण किया॥ १६॥

सव्यं तु हंसो राजेन्द्र व्यगृह्णात् स्वयमेव हि।
पोथयाञ्चक्रतुर्युद्धे गदाभ्यां गजविक्रमौ॥ १७॥

राजेन्द्र! हंसने स्वयं ही बायें पैंतरेको अपनाया। हाथीके समान पराक्रम प्रकट करनेवाले उन दोनों वीरोंने युद्धमें एक दूसरेको गदाद्वारा घायल किया॥ १७॥

यथाप्राणं महाबाहू जघ्नतुर्मरणाय तौ।
अतिप्रवृद्धं संग्रामं देवासुररणोपमम्॥ १८॥
विदधाते महारङ्गे पश्यतां त्रिदिवौकसाम्।

उन महाबाहु वीरोंने पूरा बल लगाकर एक दूसरेके वधके लिये परस्पर प्रहार किया। उस महान् समराङ्गणमें समस्त देवताओंके देखते-देखते वे दोनों वीर देवासुर-संग्रामके समान बड़ा भारी युद्ध करने लगे॥ १८½॥

देवाश्च मुनयश्चैव विस्मयं परिजग्मिरे॥ १९॥
अहो खल्वीदृशं युद्धं दृष्टं पूर्वं न च श्रुतम्।
इत्यूचुर्विस्मयवशाद् देवगन्धर्वकिन्नराः॥ २०॥

देवता और मुनि भी बड़े विस्मयको प्राप्त हुए। देवता, गन्धर्व और किन्नर विस्मयके वशीभूत होकर इस प्रकार कहने लगे—'अहो! ऐसा युद्ध हमने न तो पहले कभी देखा है और न सुना ही है'॥ १९-२०॥

परस्परकृतोत्साहौ चक्रतुर्युद्धमुत्तमम्।
अथ हंसो महारङ्गे दक्षिणं दक्षिणोत्तमः।
व्यचरन्मार्गमत्यर्थं सव्यं तु बलवान् बलः॥ २१॥

एक दूसरेको जीतनेका उत्साह मनमें लिये वे दोनों वीर उत्तम युद्ध कर रहे थे। तदनन्तर उदार पुरुषोंमें श्रेष्ठ हंसने उस महासमरमें दाहिने पैंतरेपर विचरना आरम्भ किया और बलवान् बलभद्र बायें पैंतरेपर अत्यन्त तीव्र गतिसे विचरने लगे॥ २१॥

निकुञ्च्य जानुनी पूर्वं चक्रतुर्गदया भृशम्।
रणे रणविदां श्रेष्ठौ पश्यतां त्रिदिवौकसाम्॥ २२॥

युद्धकी कला जाननेवाले विद्वानोंमें श्रेष्ठ बलभद्र और हंसने देवताओंके देखते-देखते पहले दोनों घुटनोंको मोड़कर रणभूमिमें एक-दूसरेको गदाद्वारा गहरी चोट पहुँचायी॥ २२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसबलभद्रयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें हंस और बलभद्रका युद्ध-विषयक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२४॥

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकि और डिम्भकका युद्ध

वैशम्पायन उवाच

युद्धं चक्रतुरत्यर्थं ततो डिम्भकसात्यकी।
तावुभौ बलिनौ वीरौ विख्यातौ क्षत्रियेषु च॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर डिम्भक और सात्यकि अत्यन्त घोर युद्ध करने लगे। वे दोनों बलवान् वीर क्षत्रियोंमें विख्यात थे॥ १॥

कृतश्रमौ महायुद्धे सततं वृद्धसेविनौ।
सात्यकिर्दशभिर्वीरो डिम्भकं वेदपारगम्॥ २॥
अविध्यन्निशितैर्बाणैः स्तने वक्त्रे तथोरसि।

उन्होंने महायुद्धमें बड़ा परिश्रम किया था। वे दोनों सदा वृद्ध पुरुषोंका सेवन करनेवाले थे। वीर सात्यकिने वेदोंके पारङ्गत विद्वान् डिम्भकके स्तन, मुख और छातीमें दस पैने बाणोंसे प्रहार किया॥ २½॥

स तेन विद्धो बलिना डिम्भकः क्षत्रियोत्तमः॥ ३॥
नाराचैः पञ्चसाहस्रैर्विव्याध युधि गर्वितः।
तानन्तरे वृष्णिवीरो निषिद्धन् निनदन् ध्रुवन्॥ ४॥

उस बलवान् वीरके द्वारा घायल किये गये क्षत्रियशिरोमणि डिम्भकने जिसे युद्धमें अपने पराक्रमपर बड़ा गर्व था, सात्यकिको पाँच हजार नाराचोंद्वारा चोट पहुँचायी, परंतु वृष्णिवीर सात्यकिने उन नाराचोंको बीचमें ही गर्जना करके तथा बोलकर हुंकारमात्रसे ही खण्डित कर दिया॥ ३-४॥

अथ युद्धे नृपश्रेष्ठो विद्धः सप्तभिराशुगैः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुनः शतसहस्रेण प्रत्यविध्यत सात्यकिम् ॥ ५ ॥

तब सात शीघ्रगामी बाणोंसे घायल होकर कुपित हुए नृपश्रेष्ठ डिम्भकने पुनः एक लाख बाणोंसे सात्यकिको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ५ ॥

सात्यकिस्त्वथ विक्रान्तो धनुश्चिच्छेद तस्य तत्।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन डिम्भकस्य स यादवः ॥ ६ ॥

तत्पश्चात् पराक्रमी यादव वीर सात्यकिने एक तीखे अर्धचन्द्राकार बाणसे डिम्भकके उस धनुषको काट डाला ॥ ६ ॥

आजघ्ने डिम्भको वीरश्चापमादाय चापरम्।
क्षुरप्रेणाथ रौद्रेण तैलधौतेन विक्रमी ॥ ७ ॥

तब पराक्रमी वीर डिम्भकने दूसरा धनुष लेकर तेलसे धुले हुए भयंकर क्षुरप्रके द्वारा सात्यकिको गहरी चोट पहुँचायी ॥ ७ ॥

स तेन विद्धो बाणेन वमञ्छोणितकं नृप।
अतीव शुशुभे राजन् वसन्ते किंशुको यथा ॥ ८ ॥

राजन्! उस बाणसे घायल हो रक्त वमन करते हुए सात्यकि वसन्तमें खिले हुए पलाशके समान बड़ी शोभा पाने लगे ॥ ८ ॥

धनुश्चिच्छेद भूयस्तु गृहीतं यत् पुनर्महत्।
ततोऽन्यद् धनुरादाय डिम्भको यादवेश्वरम् ॥ ९ ॥
जघान निशितैर्बाणैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।

तब उन्होंने पुनः डिम्भकके उस विशाल धनुषको काट डाला, जिसको उसने दुबारा हाथमें लिया था। तदनन्तर डिम्भकने पुनः दूसरा धनुष हाथमें लेकर समस्त क्षत्रियोंके देखते-देखते यादवेश्वर सात्यकिको पैने बाणोंसे घायल करना आरम्भ किया ॥ ९½ ॥

स धनुः पुनरत्युग्रं चिच्छेद युधि सात्यकिः ॥ १० ॥
शरेण तीक्ष्णपुङ्खेन डिम्भकस्य दुरात्मनः।

सात्यकिने युद्धस्थलमें दुरात्मा डिम्भकके उस अत्यन्त भयंकर धनुषको तीखे पंखवाले बाणसे पुनः काट डाला ॥ १०½ ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय सत्वरं स नृपोत्तमः ॥ ११ ॥
धनुषा तेन राजेन्द्र सात्यकिं विव्यधे पुनः।

राजेन्द्र! फिर नृपश्रेष्ठ डिम्भकने तुरंत दूसरा धनुष लेकर उसके द्वारा सात्यकिको पुनः बींधना आरम्भ किया ॥ ११½ ॥

एवं धनूंषि राजेन्द्र शतं पञ्च च पञ्च च ॥ १२ ॥
छित्त्वा ननाद शैनेयः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः।

राजाधिराज जनमेजय! इस प्रकार सात्यकिने सब क्षत्रियोंके देखते-देखते डिम्भकके एक सौ दस धनुष काटकर बड़े जोरसे गर्जना की ॥ १२½ ॥

धनुषी तौ परित्यज्य वीरौ डिम्भकसात्यकी ॥ १३ ॥
खड्गौ प्रगृह्य चात्युग्रौ युद्धाय समुपस्थितौ।

तौ हि खड्गविदां श्रेष्ठौ वीरौ डिम्भकसात्यकी ॥ १४ ॥

तब डिम्भक और सात्यकि दोनों वीर अपने धनुषोंको त्यागकर अत्यन्त भयंकर खड्ग हाथमें ले परस्पर युद्धके लिये उपस्थित हुए। वे दोनों वीर खड्गयुद्धके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ थे ॥ १३-१४ ॥

दौःशासनिर्महाभागः सौमदत्तिस्तथैव च।
अभिमन्युश्च विक्रान्तो नकुलश्च तथैव च ॥ १५ ॥
एते खड्गविदां श्रेष्ठाः कीर्तिता युधि सत्तमाः।

महाभाग दुःशासनकुमार, सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा, पराक्रमी अभिमन्यु तथा नकुल (और डिम्भक, सात्यकि)—ये युद्धस्थलके छः श्रेष्ठतम वीर खड्गयुद्धके ज्ञाताओंमें उत्कृष्ट माने गये हैं ॥ १५½ ॥

एतेष्वेतौ नृपश्रेष्ठौ षट्सु वै नृपसत्तम ॥ १६ ॥
तावेतावसिना युद्धं चक्रतुर्युद्धलालसौ।

नृपश्रेष्ठ! इन छहोंमें भी ये दोनों श्रेष्ठ नरेश सर्वोत्तम कहे गये हैं। वे ही दोनों युद्धकी लालसा लेकर खड्गद्वारा परस्पर जूझने लगे ॥ १६½ ॥

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धं प्रविद्धं बाहुनिःसृतम् ॥ १७ ॥
आकरं विकरं भिन्नं निर्मर्यादममानुषम्।
संकोचितं कुलचितं सव्यजानु विजानु च ॥ १८ ॥
आहिकं चित्रकं क्षिप्तं कुसुम्बं लम्बनं धृतम्।
सर्वबाहु विनिर्बाहु सव्येतरमथोत्तरम् ॥ १९ ॥
त्रिबाहु तुङ्गबाहुत्वं सव्योन्नतमुदासि च।
पट्टिकं मौष्टिकं चैव यौधिकं प्रथितं तथा ॥ २० ॥
इति प्रकारान् द्वात्रिंशच्चक्रतुः खड्गयोधिनौ।
पुनः पुनः प्रहरन्तौ न च श्रममुपेयतुः ॥ २१ ॥
पुष्करस्थौ महाराज युद्धाय कृतनिश्चयौ।

भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, प्रविद्ध, बाहुनिःसृत, आकर, विकर, भिन्न, निर्मर्याद, अमानुष, संकोचित, कुलचित, सव्यजानु, विजानु, आहिक, चित्रक, क्षिप्त, कुसुम्ब, लम्बन, धृत, सर्वबाहु, विनिर्बाहु, दक्षिण, उत्तर, त्रिबाहु, तुङ्गबाहु, सव्योन्नत, उदासि, पट्टिक, मौष्टिक, यौधिक और प्रथित—ये खड्गयुद्धके बत्तीस पैंतरे हैं। खड्गयुद्धमें लगे हुए उन दोनों वीरोंने ये सभी पैंतरे वहाँ प्रकट किये। वे बारंबार प्रहार करते हुए भी थकते नहीं थे। महाराज! पुष्करमें रहकर उन दोनों वीरोंने युद्धके लिये दृढ़ निश्चय कर लिया था ॥ १७—२१½ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ २२ ॥
तुष्टुवुस्तौ महाराज जये कृतपरिश्रमौ।

जनमेजय! तदनन्तर देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि विजयके लिये परिश्रम करनेवाले उन दोनों वीरोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे—॥ २२½ ॥

अहो वीर्यमहो धैर्यमनयोर्बाहुशालिनोः ॥ २३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतावेव रणे शक्तौ खड्गे धनुषि पारगौ।
एकः शिष्यो गिरीशस्य द्रोणस्यान्यो हि धीमतः॥ २४॥

'अहो ! बाहुबलसे सुशोभित होनेवाले इन दोनों वीरोंका धैर्य और पराक्रम अद्भुत है। ये ही दोनों युद्धमें समर्थ हैं तथा खड्गविद्या और धनुर्वेदके पारङ्गत विद्वान् हैं। इनमेंसे एक तो भगवान् शङ्करका शिष्य है और दूसरा बुद्धिमान् द्रोणाचार्यका॥ २३-२४॥

अर्जुनः सात्यकिश्चैव वासुदेवो जगत्पतिः।
त्रय एते महावीराः प्रथिताः सङ्गरे सदा॥ २५॥

'अर्जुन, सात्यकि और जगदीश्वर भगवान् वासुदेव—ये तीन सदा ही युद्धस्थलमें 'महावीर' के नामसे विख्यात हैं॥ २५॥

डिम्भकः शक्तिभृच्छर्वस्त्रय एते महारथाः।
प्रसिद्धाः सर्व एवैते वीर्येषु च बलेषु च॥ २६॥

'डिम्भक, कुमार कार्तिकेय और भगवान् शिव—ये तीन मुख्य 'महारथी' हैं। ये सभी बल और वीर्यमें विख्यात हैं'॥ २६॥

इति ते देवगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महोरगाः।
दिविस्थिताः समं ब्रूयुर्युद्धदर्शनलालसाः॥ २७॥

इस प्रकार वे देवता, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष और बड़े-बड़े नाग युद्ध देखनेकी इच्छासे खड़े होकर एक साथ उपर्युक्त बातें कर रहे थे॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने सात्यकिडिम्भकयुद्धे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस-डिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें सात्यकि और डिम्भकका युद्धविषयक एक सौ पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२५॥

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

हिडिम्बके साथ वसुदेव और उग्रसेनका युद्ध तथा बलभद्रके द्वारा हिडिम्बका वध

वैशम्पायन उवाच

वसुदेवोग्रसेनौ च वृद्धौ युद्धे सुनिर्वृतौ।
जराजरितसर्वाङ्गौ पलिताङ्गशिरोरुहौ॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! वसुदेव और उग्रसेन बूढ़े होनेपर भी युद्धमें परम सुख माननेवाले थे। उनके सारे अङ्ग जरासे जीर्ण हो गये थे, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी थीं और सिरके बाल सफेद हो गये थे॥ १॥

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नौ राजमार्गविशारदौ।
युयुधाते महारङ्गे राक्षसेन दुरात्मना॥ २॥

वे ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न तथा राजमार्ग (क्षत्रियधर्म—युद्ध) में चतुर थे। ये दोनों उस महासमरमें दुरात्मा राक्षस हिडिम्बके साथ युद्ध करने लगे॥ २॥

शरैरनेकसाहस्रैरर्दयामासतू रणे।
राक्षसेन्द्रं दुरात्मानं हिडिम्बं पुरुषादकम्॥ ३॥

उन दोनोंने अनेक सहस्र बाणोंद्वारा रणभूमिमें नरभक्षी राक्षसराज दुरात्मा हिडिम्बको पीडित कर दिया॥ ३॥

हिडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भक्षयन् सर्वतो नरान्।
अतिप्रवृद्धो दुष्टात्मा लम्बबाहुर्महाहनुः॥ ४॥
लम्बोदरो विरूपाक्षः पिङ्गकेशो विलोचनः।
श्येननासो महारौद्र ऊर्ध्वरोमा महाभुजः॥ ५॥

राक्षसराज हिडिम्ब सब ओरसे मनुष्योंको खाता हुआ अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट हो गया था। उसकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी और ठोड़ी विशाल थी। वह बड़ा दुष्टात्मा था। उसका पेट लंबा और नेत्र विकराल थे। सिरके बाल पिंगल वर्णके दिखायी देते थे। उसकी आँखें विकृत थीं। नासिका बाजकी चोंचके समान जान पड़ती थीं। वह महाभयंकर और विशाल भुजाओंसे युक्त था। उसके रोम ऊपरको उठे हुए थे॥ ४-५॥

पर्वताकारवर्ष्मा च दीर्घदंष्ट्रः शिवाननः।
लम्बोदरो दीर्घदन्तो जगद्ग्रासपरस्तथा॥ ६॥

शरीर पर्वताकार दिखायी देता था। दाढ़ें बड़ी-बड़ी थीं और मुँह गीदड़के समान प्रतीत होता था। लंबे पेट और बड़े-बड़े दाँतोंवाला वह राक्षस सम्पूर्ण जगत्को अपना ग्रास बना लेनेके लिये तत्पर जान पड़ता था॥ ६॥

उत्तुङ्गांसो महोरस्को दीर्घग्रीवो गजोपमः।
भक्षयन् मांसपिटकं पिबञ्शोणितसंचयम्॥ ७॥

उसके कंधे ऊँचे, छाती चौड़ी और गर्दन लंबी थी। वह देखनेमें हाथी-जैसा जान पड़ता था। वह पिटारी भर मांस खाता और संचित करके रखे हुए घड़ों रक्त पी जाता था॥ ७॥

गजान् नागैः समाहत्य हयैरश्वान् नृपोत्तम।
रथान् रथैः समाहत्य सादिनः सादिभिस्तथा॥ ८॥

नृपश्रेष्ठ ! वह हाथियोंसे हाथियोंको, घोड़ोंसे घोड़ोंको, रथोंसे रथोंको और सवारोंसे सवारोंको मारकर कुचल देता था॥ ८॥

मनुष्यान् स पुरो दृष्ट्वा नास्यग्रासं चकार सः।
काम्यिद्धत्वा महाराज वृष्णिपालान् समन्ततः॥ ९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्ष्यामास सहसा हिडिम्बः पुरुषादकः।
यान् पश्यन् पुरतो रक्षस्ताञ्जघान विरूपधृक् ॥ १० ॥

वह मनुष्योंको अपने सामने देखकर उन्हें नासिकाका ग्रास बना लेता था—नसकी तरह श्वासमार्गसे भीतर खींच लेता था। महाराज! नरभक्षी हिडिम्बने सब ओरसे आक्रमण करके कुछ वृष्णिपालक योद्धाओंको मारकर सहसा अपना आहार बना लिया। उस विकराल रूपधारी राक्षसने जिन्हें सामने देखा, उन्हींका वध कर डाला॥ ९-१० ॥

भक्षयन्नपरान् वृष्णीन् यादवान् राक्षसेश्वरः।
चिक्षेप सहसा कांश्चिद्धिडिम्बः पुरुषादकः ॥ ११ ॥

पुरुषभक्षी राक्षसराज हिडिम्बने कितने ही वृष्णियों और यादवोंको खाते हुए उनमेंसे कुछको उठाकर सहसा दूर फेंक दिया॥ ११ ॥

अन्तकाले यथा क्रुद्धो रुद्रः प्राणभृतो नृप।
क्षणेनैकेन सर्वांस्तान् भक्षयामास राक्षसः ॥ १२ ॥

नरेश्वर! जैसे कुपित हुए रुद्रदेव अन्तकालमें प्राणियोंका संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार उस राक्षसने एक ही क्षणमें उन सबका भक्षण कर लिया॥ १२ ॥

केचिद् भीता दिशः प्रापुर्वृष्णयो वीर्यशालिनः।
केचित् तु भक्षितास्तेन रक्षसा वृष्णिपुङ्गवाः ॥ १३ ॥

कुछ पराक्रमशाली वृष्णिवंशी भयभीत हो विभिन्न दिशाओंमें भाग गये तथा कितने ही वृष्णिवंशके श्रेष्ठ योद्धा उस राक्षसके आहार बन गये॥ १३ ॥

कुम्भकर्णो यथा राजन् भक्षयामास वानरान्।
निःशेषं वृष्णिसैन्यं तु चकार पुरुषादकः ॥ १४ ॥

राजन्! जैसे कुम्भकर्ण वानरोंको खा गया था। उसी प्रकार उस नरभक्षी निशाचरने वृष्णिवंशकी सेनाको समाप्त-सी कर दिया॥ १४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धौ वृद्धौ यादवपुङ्गवौ।
धनुर्गृह्य महाघोरं राक्षसस्य पुरः स्थितौ ॥ १५ ॥
यथा क्रुद्धस्य सिंहस्य मृगौ वृद्धतमाविव।

इसी बीचमें बूढ़े यादवशिरोमणि वसुदेव और उग्रसेन कुपित हो महाभयंकर धनुष हाथमें लेकर उस राक्षसके सामने खड़े हुए, मानो क्रोधमें भरे हुए सिंहके समक्ष दो अत्यन्त वृद्ध मृग आ गये हैं॥ १५½ ॥

व्यादायास्यं महारक्षस्तौ वृद्धावभ्यधावत ॥ १६ ॥
चिखादिषुर्विरूपाक्षः पातालतलसंनिभः।

उस समय वह महाराक्षस मुँह बाकर उन दोनों बूढ़ोंको खा जानेकी इच्छासे उनकी ओर दौड़ा। उसके नेत्र बड़े भयंकर थे। वह अपने खुले हुए मुखसे पाताल-तलके समान प्रतीत होता था॥ १६½ ॥

ततो रक्षः पर्यधावत् खादत् खादत् कलेवरम् ॥ १७ ॥
पूरयामासतुर्वीरौ शरैर्यदुवृषौ नृप।
हिडिम्बस्य महाघोरं व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ १८ ॥

नरेश्वर! तदनन्तर मनुष्यके शरीरको बारंबार चबाता हुआ वह राक्षस उन दोनोंकी ओर वेगपूर्वक दौड़ा। उस समय उन यदुश्रेष्ठ वीरोंने अपने बाणोंद्वारा हिडिम्बके महाभयंकर खुले हुए मुखको, जो मुँह बाये हुए यमराजके समान जान पड़ता था, अपने बाणोंसे भर दिया॥ १७-१८॥

सर्वांस्तान् वारयामास देवशत्रुर्विरूपधृक्।
धावति स्म ततो रक्षो व्यादितास्यं भयानकम् ॥ १९ ॥

तब उस विकराल रूपधारी देवद्रोही भयानक राक्षसने उन सब बाणोंका निवारण कर दिया और पुनः मुँह फैलाकर उनपर धावा किया॥ १९ ॥

तयोर्गृहीत्वा धनुषी बभञ्ज युधि सत्वरम्।
बाहू प्रसार्य दुष्टात्मा राक्षसो विकृताननः ॥ २० ॥
वसुदेवं महीपालं राजानं वृद्धसेविनम्।
ग्रहीतुं राक्षसश्रेष्ठो यतते नृपसंसदि ॥ २१ ॥

उसने उन दोनोंके धनुष छीनकर तुरंत उस युद्धस्थलमें ही तोड़ डाले; फिर वह विकराल मुखवाला दुष्टात्मा राक्षस अपनी दोनों बाहें फैलाकर वृद्धसेवी भूपाल राजा वसुदेवको उस राजसमाजमें ही पकड़नेकी चेष्टा करने लगा। वह राक्षसोंमें श्रेष्ठ समझा जाता था॥ २०-२१ ॥

हिडिम्ब उवाच

एष वां भक्षयिष्यामि वसुदेवं त्वया सह।
उग्रसेन किमर्थं त्वं तिष्ठसे मत्पुरोगमः ॥ २२ ॥

हिडिम्ब बोला—उग्रसेन! तुम किस लिये मेरे सामने खड़े हो। मैं अभी तुम दोनोंको खा जाऊँगा। तुम्हारे साथ वसुदेवको भी चट कर जाऊँगा॥ २२ ॥

आगच्छ प्रविशास्यं मे ग्रासभूतौ तु वां मम।
विधिना निर्मितो वृद्धो वसुदेवो हरेः पिता ॥ २३ ॥
बुभुक्षितः श्रमार्तश्च युद्धे त्वरितविक्रमः।
मन्मुखान्नैव गच्छेतां प्रविशेतां त्वरान्वितौ ॥ २४ ॥

आओ! मेरे मुखमें प्रवेश करो। तुम दोनों मेरे ग्रास-स्वरूप हो। जिसे विधाताने श्रीकृष्णका पिता बना दिया है, वह बूढ़ा वसुदेव भूखसे पीड़ित है, परिश्रमसे कष्ट पाता है और युद्धमें शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करता है। अब तुम दोनों मेरे मुँहसे छूटकर नहीं जा सकते, तुरंत ही मेरे मुखके भीतर प्रवेश करो॥ २३-२४ ॥

युवयोः शोणितं पीत्वा तृप्तिं यास्यामि निर्वृतः।
खादामि च पुनर्मांसं वृद्धयोर्युवयोः सुखम् ॥ २५ ॥

तुम दोनोंका रक्त पीकर मैं तृप्त होऊँगा और संतोष प्राप्त करूँगा। इसके बाद तुम दोनों वृद्धोंके मांसको मैं सुखपूर्वक खाऊँगा॥ २५ ॥

इति ब्रुवंस्तथा रक्षो व्यादितास्यो महाहनुः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धावति स्म तदा क्षिप्रं हिडिम्बो राक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥

ऐसा कहता हुआ विशाल ठोड़ीवाला राक्षसराज निशाचर हिडिम्ब उस समय मुँह बाकर उनकी ओर दौड़ा ॥ २६ ॥

वसुदेवोग्रसेनौ च भीतौ विप्रेक्ष्य सर्वतः।
दिशोऽभ्यभजतां राजन् निःशस्त्रौ वृष्णिपुङ्गवौ ॥ २७ ॥

राजन्! तब शस्त्रहीन हुए वृष्णिशिरोमणि वसुदेव और उग्रसेन भयभीत हो सब ओर देखकर विभिन्न दिशाओंमें भागने लगे ॥ २७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा बलभद्रः प्रतापवान्।
दृष्ट्वा च तौ तथाभूतौ वसुदेवोग्रसेनकौ ॥ २८ ॥
वासुदेवे समादिश्य हंसं युध्यन्तमीश्वरे।
निर्गत्य चान्तरं तस्य राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ २९ ॥

इसी बीचमें प्रतापी बलभद्रने वसुदेव और उग्रसेनको वैसी अवस्थामें पड़ा देख, जूझते हुए हंसका भार बलवान् श्रीकृष्णको सौंप दिया और स्वयं वे उस दुरात्मा राक्षसके बीचमें आकर इस प्रकार बोले—॥ २८-२९ ॥

मा कृथाः साहसं रक्षो मुञ्चैतौ राजसत्तमौ।
स्थितोऽस्मि युध्यतां रक्षो मया शत्रूञ्जिघांसता ॥ ३० ॥
अहमेव हनिष्ये त्वां का चेयं तव भीषिका।

'ओ राक्षस! ऐसा दुःसाहस न कर। इन दोनों भूपशिरोमणियोंको छोड़ दे। मैं खड़ा हूँ। शत्रुओंके वधकी इच्छासे यहाँ आये हुए मुझ बलभद्रके साथ तू युद्ध कर। केवल मैं ही तुझे मार डालूँगा, यह क्या तेरी विभीषिका है!॥

इति ब्रुवाणं हलिनं तौ विसृज्य महारणे ॥ ३१ ॥
महानयमसौ दुष्टो भक्षयाम्येनमग्रतः।
विदार्य पूर्ववद् वक्त्रं बलभद्रमुपाद्रवत् ॥ ३२ ॥

इस तरह बोलते हुए हलधरकी बात सुनकर हिडिम्बने उस महासमरमें वसुदेव और उग्रसेनको तो छोड़ दिया और सोचा—'यह महान् दुष्ट है, अतः पहले इसीको खा जाऊँ' ऐसा विचारकर पूर्ववत् मुँह फैलाये हुए उसने बलभद्रपर धावा किया ॥ ३१-३२ ॥

विसृज्य सशरं चापं राक्षसस्य पुरः स्थितः।
मुष्टिं प्रगृह्य बलवान् स्फोटयन् बाहुमुत्तमम् ॥ ३३ ॥

बलवान् बलभद्र बाणसहित धनुषको त्यागकर अपनी उत्तम भुजापर ताल ठोंकते हुए उस राक्षसके आगे मुट्ठी बाँधकर खड़े हो गये ॥ ३३ ॥

हिडिम्बस्त्वथ दुष्टात्मा मुष्टिं कृत्वा भयानकम्।
जघान वक्षो रामस्य व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ३४ ॥

दुष्टात्मा हिडिम्बने भी मुँह बाये हुए यमराजकी भाँति भयंकर मुट्ठी बाँधकर बलरामके वक्षःस्थलपर प्रहार किया ॥

क्रुद्धोऽथ बलभद्रस्तु मुष्टिना तेन ताडितः।
जघान मुष्टिना तेन राक्षसेशमनिन्दितः ॥ ३५ ॥

उसके मुक्केकी मार खाकर अनिन्द्य बलशाली बलभद्रजी कुपित हो उठे। फिर उन्होंने भी उस राक्षसराजको मुक्केसे मारा॥

मुष्टियुद्धं समभवन्नरराक्षसवीरयोः।
युद्ध्यतोर्युद्धरङ्गेऽथ नरराक्षससिंहयोः ॥ ३६ ॥
तयोश्चटचटाशब्दः प्रादुरासीद् भयानकः।

फिर तो उन नर और निशाचर वीरोंमें मुक्केसे ही युद्ध होने लगा। युद्धकी रङ्गभूमिमें जूझते हुए नरसिंह बलभद्र और राक्षससिंह हिडिम्बके मुक्कोंका भयंकर चट-चट शब्द प्रकट होने लगा ॥ ३६½ ॥

अथ राक्षसराजस्तु मुष्टिना राममाहवे ॥ ३७ ॥
जघान वक्षोदेशे तु वज्रेणेव पुरंदरः।

तदनन्तर राक्षसराज हिडिम्बने समराङ्गणमें बलरामके वक्षःस्थलपर मुक्केसे प्रहार किया, मानो देवराज इन्द्रने किसी पर्वतपर वज्रसे आघात किया हो ॥ ३७½ ॥

अथ रामो बली साक्षान्मुष्टिं संवर्त्य यत्नतः ॥ ३८ ॥
हिडिम्बं ताडयामास वक्षस्यमरविद्विषम्।
तलाभ्यामथ रामस्तु वक्त्रे हत्वा स राक्षसम् ॥ ३९ ॥

इसके बाद साक्षात् बलवान् बलरामने यत्नपूर्वक मुट्ठी बाँधकर देवद्रोही हिडिम्बके वक्षःस्थलपर बड़े जोरसे आघात किया। तत्पश्चात् उन्होंने उस राक्षसके मुँहपर दो तमाचे जड़ दिये ॥ ३८-३९ ॥

आहतस्तलघातेन हिडिम्बो राक्षसेश्वरः।
जानुभ्यामपतद् भूमौ गतासुर्वीरराक्षसः ॥ ४० ॥

उनके तमाचेकी मार खाकर वीर निशाचर राक्षसराज हिडिम्ब प्राणहीन-सा होकर घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥

तत उत्पत्य रामस्तु दोर्भ्यां संगृह्य राक्षसम्।
आदाय बहुवेगेन भ्रामयित्वा पदात् पदम् ॥ ४१ ॥
व्याविध्यत् सुचिरं रामो दर्शयन्नात्मनो बलम्।
उत्क्षिप्य राक्षसेन्द्रं तं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ ४२ ॥
गव्यूतिमात्रं चिक्षेप ततो देशाद्बलायुधः।
गतासू राक्षसश्रेष्ठस्ततो देशान्निराक्रमत् ॥ ४३ ॥

फिर बलरामजीने उछलकर उस राक्षसको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और उसे उठाकर पग-पगपर बड़े वेगसे घुमाया। इस तरह अपना बल दिखाते हुए बलरामजी देरतक उसे घुमाते रहे। फिर सब लोगोंके देखते-देखते हलधरने उस राक्षसराजको उछालकर वहाँसे दो कोस दूर फेंक दिया। इस प्रकार राक्षसप्रवर हिडिम्ब प्राणशून्य होकर उस स्थानसे दूर निकल गया* ॥ ४१–४३ ॥

ये केचिद् राक्षसास्तत्र हतशेषा महारणे।
बलभद्रात् ततो भीता जग्मुश्चैवं दिशो दश ॥ ४४ ॥

* पाण्डव भीमसेनने एकचक्रा नगरीमें जानेसे पूर्व जिस हिडिम्ब नामक राक्षसको मारा था, वह इससे भिन्न था और वह इससे पहले ही मारा जा चुका था। यह दूसरा हिडिम्ब बलभद्रजीके हाथों मारा गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस महासमरमें जो कोई भी राक्षस वहाँ मरनेसे बचे हुए थे, वे बलभद्रजी से भयभीत हो वहाँसे दसों दिशाओंमें भाग गये ॥

अथांशुमाली भगवान् दिनेशः
संहृत्य तेजांसि सहस्ररश्मिः ।
अस्तं ययौ चक्षुरपि प्रजाना-
मीषत्तमश्चापि समाविवेश ॥ ४५ ॥

तदनन्तर सहस्रों किरणोंसे सुशोभित दिनके स्वामी अंशुमाली भगवान् सूर्य अपने तेज समेटकर अस्ताचलको चले गये और प्रजाजनोंके नेत्रोंमें कुछ-कुछ अन्धकारका समावेश हो गया ॥ ४५ ॥

तस्मिन् प्रविष्टेऽथ समुद्रतोयं
प्रजापतौ विश्वमुखे जगद्गुरौ ।
नक्षत्रनाथः समुपाजगाम
संध्यातमोऽपि व्यनशन्नृपोत्तम ॥ ४६ ॥

नृपश्रेष्ठ जनमेजय ! सम्पूर्ण विश्वके मुखस्वरूप प्रजापालक जगद्गुरु सूर्यदेवके समुद्रके जलमें प्रवेश कर जानेपर नक्षत्रनाथ चन्द्रमाका उदय हुआ, जिससे संध्याकालका अन्धकार भी नष्ट हो गया ॥ ४६ ॥

प्रभातकाले नृप सत्तमो रणो
गोवर्धने किन्नरगीतनादिते ।
इति ब्रुवन्तो नृपसत्तमास्तदा
व्युपारमंस्तत्र रणोत्सवे नृप ॥ ४७ ॥

जनमेजय ! उस समय हंसकी सेनामें जो श्रेष्ठ नरेश थे, वे यह कहते हुए वहाँ समरोत्सवसे विरत हो गये कि 'राजन्! कल प्रातःकालका युद्ध किन्नरोंके गीतसे गूँजते हुए गोवर्धन पर्वतपर हो तो अच्छा होगा' (ऐसा कहकर वे सब नरेश वहाँसे भागकर गोवर्धन पर्वतपर चले गये) ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हिडिम्बपराभवे षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस-डिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें हिडिम्बका पराभवविषयक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१२६॥

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोवर्धन पर्वतके समीप हंस और डिम्भकके साथ यादवोंका युद्ध, श्रीकृष्णद्वारा भूतेश्वरोंकी पराजय तथा श्रीकृष्ण और हंसका घोर युद्ध

वैशम्पायन उवाच

उभौ तौ हंसडिम्भकौ रात्रावेव महागिरिम् ।
जग्मतुः सहितौ राजन् गोवर्धनमथो नृप ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! नरेश्वर! तदनन्तर वे दोनों भाई हंस और डिम्भक रातमें ही एक साथ महागिरि गोवर्धन पर्वतको चल दिये ॥ १ ॥

अथ प्रभाते विमले सूर्ये चाभ्युदिते सति ।
गोवर्धनं जगामाशु केशवः केशिसूदनः ॥ २ ॥

जब निर्मल प्रभातकाल आनेपर सूर्यदेवका उदय हुआ, तब केशिहन्ता भगवान् केशव भी शीघ्रतापूर्वक गोवर्धन पर्वतकी ओर चले ॥ २ ॥

शैनेयो बलभद्रश्च यादवाः सारणादयः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नादितं बहुधा गिरिम् ॥ ३ ॥

सात्यकि, बलभद्र और सारण आदि यादव भी गन्धर्वों और अप्सराओंके नाना प्रकारके गीतोंसे निनादित गोवर्धन पर्वतपर गये ॥ ३ ॥

जग्मुस्ते सहिता राजन् गोवर्धनमथो गिरिम् ।
गोधनैरथ सैन्यैश्च नादितं बहुधा गिरिम् ॥ ४ ॥

राजन्! वे सब लोग एक साथ गोवर्धन पर्वतपर जा पहुँचे। वह पर्वत गोधनों और सेनाओंके नाना प्रकारके शब्दोंसे प्रतिध्वनित हो रहा था ॥ ४ ॥

तस्योत्तरं नृपश्रेष्ठ पार्श्वं सम्प्राप्य यादवाः ।
निकषा यमुनां राजंस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ५ ॥

नृपश्रेष्ठ! राजन्! जब यादव उस पर्वतके उत्तर तटपर पहुँच गये, तब यमुनाके निकट पुनः युद्ध आरम्भ हुआ ॥

विव्याध हंसडिम्भकौ वसुदेवश्च सप्तभिः ।
सारणः पञ्चविंशत्या दशभिः कङ्क एव च ॥ ६ ॥

वसुदेवने सात बाणोंसे हंस और डिम्भकको घायल कर दिया। सारणने पचीस और कङ्कने दस बाण मारे ॥ ६ ॥

हंसेन डिम्भकेनाथ यादवैश्च समन्ततः ।
उग्रसेनस्त्रिसप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार हंस और डिम्भकके साथ यादवोंका सब ओरसे युद्ध छिड़ गया। उग्रसेनने झुकी हुई गाँठवाले तिहत्तर बाण मारे ॥ ७ ॥

विराटस्त्रिंशता राजन् सात्यकिश्चापि सप्तभिः ।
अशीत्या विपृथू राजन्नुद्धवो दशभिः शरैः ॥ ८ ॥

राजन्! विराटने तीस, सात्यकिने सात, विपृथुने अस्सी तथा उद्धवने दस बाणोंका प्रहार किया ॥ ८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रद्युम्नस्त्रिंशता राजन् साम्बश्चापि च सप्तभिः।
अनाधृष्टिस्त्वेकषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ९ ॥

जनमेजय ! प्रद्युम्नने तीस, साम्बने सात और अनाधृष्टिने झुकी हुई गाँठवाले इकसठ बाणोंद्वारा शत्रुओंको घायल कर दिया ॥ ९ ॥

एवं ते सहिता राजंश्चक्रुर्युद्धमदीनवत्।
अत्यद्भुतं महाघोरं यादवाः सर्व एव हि ॥ १० ॥

राजन् ! इस प्रकार वे समस्त यादव एक साथ होकर उत्साहसम्पन्न पुरुषकी भाँति अत्यन्त अद्भुत और महाघोर युद्ध करने लगे ॥ १० ॥

चक्रुस्ताभ्यां महायुद्धं वासुदेवस्य पश्यतः।
सर्वानपि महाराज यादवान् बलदर्पितान् ॥ ११ ॥
तावुभौ हंसडिम्भकौ नृपांस्तान् प्रत्यविध्यताम्।

महाराज ! भगवान् श्रीकृष्णके देखते-देखते समस्त यादवोंने हंस और डिम्भकके साथ महान् युद्ध छेड़ दिया। दोनों भाई हंस और डिम्भकने भी उन समस्त यादवनरेशोंको अपने बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ११½ ॥

प्रत्येकं दशभिर्विद्ध्वा बाणैर्निशितनिर्मलैः ॥ १२ ॥
जघ्नतुश्च शरैस्तीक्ष्णैरत्यर्थं यादवेश्वरान्।

उन दोनोंने तेज धारवाले चमचमाते हुए दस-दस बाणोंद्वारा प्रत्येकको घायल करके पैने बाणोंसे समस्त यादवेश्वरोंको गहरी चोट पहुँचायी ॥ १२½ ॥

व्यथिताः सर्व एवैते वमन्तः शोणितं बहु ॥ १३ ॥
माधवे किंशुका राजन् पुष्पिता इव ते बभुः।

राजन् ! उन बाणोंसे व्यथित हो ये सब-के-सब मुँहसे बहुत-सा रक्त वमन करते हुए वसन्त ऋतुमें खिले हुए पलाशवृक्षोंके समान शोभा पाने लगे ॥ १३½ ॥

भीताश्च यादवा राजन् पलायनपरायणाः ॥ १४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे राजन् वसुदेवात्मजो नृप।
वासुदेवो हली युद्धे प्रमुखे धन्विनौ तयोः ॥ १५ ॥
चक्रतुर्युद्धमतुलं स्कन्दशक्राविवाम्बरे।

राजन् ! उस समय यादव सैनिक भयभीत होकर भागने लगे। महाराज जनमेजय ! इसी बीचमें वसुदेवके पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण और हलधर बलराम धनुष हाथमें लिये युद्धके मुहानेपर उन दोनोंके सामने आकर उसी तरह अनुपम संग्राम करने लगे, जैसे इन्द्र और कार्तिकेय आकाशमें खड़े होकर असुरोंसे युद्ध करते हैं ॥ १४-१५½ ॥

तयोरेव सगन्धर्वाः सिद्धा यक्षा महर्षयः ॥ १६ ॥
विमानस्थाश्च ददृशुर्युद्धं देवासुरोपमम्।

उस समय विमानोंपर बैठे हुए गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष और महर्षि देवासुर-संग्रामके समान उन दोनोंका युद्ध देखने लगे ॥ १६½ ॥

ततः प्रादुरभूतां तौ दूतौ भूतेश्वरौ नृप ॥ १७ ॥
शूलिना प्रेषितौ युद्धे रक्षार्थं बलिनोस्तयोः।

नरेश्वर ! तदनन्तर वहाँ युद्धमें उन दोनों बलवान् वीर हंस और डिम्भककी रक्षा करनेके लिये महादेवजीके भेजे हुए वे दोनों भूतेश्वर दूत प्रकट हुए ॥ १७½ ॥

हंसोऽथ वासुदेवश्च युद्धं चक्रतुरीश्वरौ ॥ १८ ॥
रामश्च डिम्भकश्चैव संयुक्तौ युद्धकाङ्क्षया।

उस समय भगवान् श्रीकृष्ण और हंस दोनों सामर्थ्यशाली वीर एक दूसरेके साथ युद्ध करने लगे। उधर बलराम और डिम्भक भी युद्ध करनेकी इच्छासे परस्पर उलझ गये ॥ १८½ ॥

विक्रान्ताः सर्व एवैते ह्यस्त्रे शस्त्रे तथा बले ॥ १९ ॥
शङ्खान् दध्मुः पृथग्घ्रादं स्वे स्वे सर्वे रथे स्थिताः।

ये सब-के-सब अस्त्र, शस्त्र और बलमें पराक्रमी थे। इन सबने अपने-अपने रथमें स्थित होकर पृथक्-पृथक् शङ्ख बजाना आरम्भ किया ॥ १९½ ॥

अथ कृष्णो हृषीकेशः पाञ्चजन्यं महारवम् ॥ २० ॥
दध्मौ पद्मपलाशाक्षः सर्वान् विस्मापयन्निव।

तदनन्तर इन्द्रियोंके प्रेरक कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने सबको विस्मयमें डालते हुए-से महान् शब्द करनेवाले पाञ्चजन्य शङ्खको बजाया ॥ २०½ ॥

अथ भूतौ महाघोरौ लम्बोदरशरीरिणौ ॥ २१ ॥
दुद्रुवतुर्महाराज शूलमादाय केशवम्।

महाराज ! इतनेमें ही लंबे पेट और विशाल शरीरवाले उन महाभयंकर भूतोंने शूल लेकर भगवान् श्रीकृष्णपर आक्रमण किया ॥ २१½ ॥

शूलेन पोथयां राजञ्चक्रतुर्यादवेश्वरम् ॥ २२ ॥
ताभ्यां समाहतो विष्णुर्देवगन्धर्वसंनिधौ।
ईषत्स्मिताधरो देवः किंचिदुत्प्लुत्य सत्वरम् ॥ २३ ॥
रथाद् रथिवरश्रेष्ठस्तौ प्रगृह्य जनार्दनः।
भ्रामयित्वा शतगुणमलातमिव केशवः ॥ २४ ॥
कैलासं च समुद्दिश्य प्रचिक्षेप ततो हरिः।

राजन् ! उन दोनोंने यादवेश्वर श्रीकृष्णपर एक साथ ही शूलसे प्रहार किया। देवताओं और गन्धर्वोंके समीप उन दोनोंके आघातसे आहत हो भगवान् श्रीकृष्णके अधरपर मन्द मुसकानकी छटा बिखर गयी। वे रथियोंमें श्रेष्ठ भगवान् जनार्दन कुछ उछलकर तुरंत रथसे कूद पड़े और दोनों भूतेश्वरोंको पकड़कर उन्हें अलातचक्रके समान सौ बार घुमानेके पश्चात् उन केशव हरिने कैलासपर्वतकी ओर फेंक दिया ॥ २२–२४½ ॥

तावुपेत्य गिरेः शृङ्गं कैलासस्य महामते ॥ २५ ॥
दृष्ट्वा तत्कर्म देवस्य विस्मयं जग्मतुः परम्।

महामते ! वे दोनों कैलासपर्वतके शिखरपर पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णका वह पराक्रम देख बड़े विस्मयमें पड़ गये ॥ २५½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हंसश्च दृष्ट्वा तत्कर्म रोषताम्रायतेक्षणः ॥ २६ ॥
उवाच वचनं हंसः शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ।

श्रीकृष्णका वह कर्म देखकर हंसके बड़े-बड़े नेत्र रोषसे लाल हो गये। उसने समस्त देवताओंके सुनते हुए यह बात कही—॥ २६½ ॥

किमर्थं राजसूयस्य विघ्नं चरसि केशव ॥ २७ ॥
ब्रह्मदत्तो महीपालो यष्टा तस्य महाक्रतोः ।
करं दिश यथायोगं यदि प्राणान् हि रक्षसि ॥ २८ ॥

'केशव ! हमारे राजसूय यज्ञमें क्यों विघ्न डाल रहे हो ? महाराज ब्रह्मदत्त उस महायज्ञका अनुष्ठान करेंगे। यदि अपने प्राणोंकी रक्षा चाहते हो तो उसमें यथायोग्य कर दो ॥

अथवा त्वं क्षणं तिष्ठ ततो ज्ञात्वा परं बहु ।
ददासि त्वं नन्दपुत्र ततो यष्टा स मे गुरुः ॥ २९ ॥

'अथवा नन्दपुत्र ! तुम क्षणभर मेरे सामने खड़े रहो, फिर मेरी श्रेष्ठताको जानकर स्वयं ही बहुत-सा कर प्रदान करोगे; फिर मेरे पिता यज्ञका आरम्भ करेंगे ॥ २९ ॥

ईश्वरोऽहं सदा राज्ञां देवानामिव शूलभृत् ।
एष ते वीर्यमतुलं नाशयिष्यामि संयुगे ॥ ३० ॥

'जैसे देवताओंके ईश्वर शूलधारी महादेव हैं; उसी प्रकार सदा समस्त राजाओंका ईश्वर मैं हूँ। इस युद्धमें मैं तुम्हारे अनुपम बलको अभी नष्ट किये देता हूँ' ॥ ३० ॥

इत्युक्त्वा सशरं चापं शालतालोपमं नृप ।
आकृष्य च यथाप्राणं नाराचेन च केशवम् ॥ ३१ ॥
ललाटे चिक्षिपे हंसो ललाम इव सोऽभवत् ।

नरेश्वर ! ऐसा कहकर हंसने शाल और तालके समान विशाल धनुष और बाण ले उसे बलपूर्वक खींचकर उस नाराचके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके ललाटमें प्रहार किया। वह नाराच उनके लिये मनोहर आभूषण-सा प्रतीत हो रहा था ॥ ३१½ ॥

उवाच सात्यकिं कृष्णो रथं वाहय मे प्रभो ॥ ३२ ॥
दारुकं पृष्ठवाहं तं कृत्वा देशं तमीश्वरः ।
अथ तेन समादिष्टः सात्यकिर्वाहयन् रथम् ॥ ३३ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने सात्यकिसे कहा—'प्रभावशाली वीर ! तुम मेरा रथ हाँको।' भगवान्‌ने जब सात्यकिको इस प्रकार आदेश दिया, तब वे दारुकको पीछे करके उस स्थानपर बैठकर उनका रथ हाँकने लगे ॥ ३२-३३ ॥

मण्डलानि बहून्याजौ दर्शयामास सत्वरम् ।
अथ विद्धो दृढं तेन शरेण हरिरीश्वरः ॥ ३४ ॥
आग्नेयमस्त्रं संयोज्य शरे कस्मिंश्चिदव्ययः ।
उवाच हंसं राजेन्द्र सात्यकिं प्रेरयन् रणे ॥ ३५ ॥

राजेन्द्र ! सात्यकिने युद्धस्थलमें शीघ्रतापूर्वक रथके बहुत-से पैंतरे दिखाये। उधर हंसके बाणसे गहरी चोट खाकर अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णने किसी बाणपर आग्नेयास्त्रका आधान करके सात्यकिको रणभूमिमें आगे बढ़नेके लिये प्रेरित करते हुए हंससे कहा—॥ ३४-३५ ॥

अनेन त्वां दहे पाप यदि शक्तोऽसि वारय ।
अलं ते बह्वबद्धेन क्षत्रियोऽसि सदा शठ ॥ ३६ ॥

'पापी ! शठ ! मैं इस बाणसे तुझे अभी दग्ध किये देता हूँ, यदि शक्ति हो तो इसे रोक। अब तेरे लिये बहुत-सी असङ्गत बातें बकनेसे कोई लाभ न होगा। तू क्षत्रिय है, सदा अपने कर्तव्यका पालन कर ॥ ३६ ॥

मत्तश्चेत् करमिच्छेस्त्वं दर्शयाद्य पराक्रमम् ।
यतयो बाधिता हंस पुष्करे संस्थितास्त्वया ॥ ३७ ॥

'यदि मुझसे कर लेना चाहता है तो आज दिखा अपना पराक्रम ! हंस ! तूने पुष्करमें रहनेवाले यतियोंको सताया है ॥

शास्ता त्वं खलु विप्राणां स्थिते मयि नराधम ।
स्थिते मयि जगन्नाथे हत्वा क्षत्रियकण्टकान् ॥ ३८ ॥
शास्तास्म्यथो सतां लोके दुष्टानां ब्रह्मविद्विषाम् ।

'नराधम ! मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌का ईश्वर हूँ। तू मेरे रहते ब्राह्मणोंपर शासन करता है। मैं तुझ-जैसे क्षत्रियरूपी कण्टकोंका वध करके सत्पुरुषोंके जगत्‌में ब्रह्मद्रोही दुष्टोंका शासन करनेवाला हूँ ॥ ३८½ ॥

शापेन यतिमुख्यानां हत एव नराधम ॥ ३९ ॥
मृत्यवे त्वां निवेद्याद्य रक्षिता ब्राह्मणानहम् ।

'नराधम ! तू मुख्य-मुख्य यतियोंके शापसे ही मर चुका है। आज तुझे मृत्युके हवाले करके मैं ब्राह्मणोंकी रक्षा करूँगा' ॥ ३९½ ॥

इति ब्रुवंस्तदस्त्रं तु मुमोच युधि केशवः ॥ ४० ॥
तदस्त्रं वारुणेनाथ हंसोऽपि प्रत्यषेधयत् ।

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने युद्धमें हंसपर उस आग्नेयास्त्रको छोड़ दिया; तब हंसने भी वारुणास्त्रसे उस अस्त्रका निवारण कर दिया ॥ ४०½ ॥

वायव्यमथ गोविन्दो मुमोच युधि हंसके ॥ ४१ ॥
तदस्त्रं वारयामास माहेन्द्रेण नृपोत्तमः ।

यह देख गोविन्दने रणभूमिमें हंसपर वायव्यास्त्र चलाया, किंतु नृपश्रेष्ठ हंसने माहेन्द्रास्त्रसे उसका वारण कर दिया ॥ ४१½ ॥

अथ माहेश्वरं कृष्णो मुमोचात्युग्रमाहवे ॥ ४२ ॥
रौद्रेण तत् ततो हंसो वारयामास तत्क्षणात् ।

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें अत्यन्त भयंकर माहेश्वरास्त्रका प्रयोग किया, परंतु हंसने रौद्रास्त्रद्वारा तत्काल उसका निवारण कर दिया ॥ ४२½ ॥

गान्धर्वं राक्षसं चैव पैशाचमथ केशवः ॥ ४३ ॥
ब्रह्मास्त्रमथ कौबेरमासुरं याम्यमेव च ।
चत्वार्येतानि हंसस्तु मुमोच युधि सत्वरम् ॥ ४४ ॥
वारणार्थं तदस्त्राणां चतुर्णां माधवस्य ह ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब श्रीकृष्णने लगातार गान्धर्व, राक्षस और पैशाच अस्त्र छोड़े (पूर्वोक्त माहेश्वर अस्त्रको लेकर ये चार हुए)। माधवके उन चारों अस्त्रोंका निवारण करनेके लिये हंसने युद्धस्थलमें तुरंत ही ब्रह्मास्त्र, कौबेरास्त्र, आसुरास्त्र और याम्यास्त्र—ये चार अस्त्र छोड़े ॥ ४३-४४½ ॥

अथ ब्रह्मशिरो नाम घोरमस्त्रं विनाशकम् ॥ ४५ ॥
मुमोच हंसमुद्दिश्य देवदेवो जनार्दनः ।
योजयामास तद्धंसे महाघोरपराक्रमम् ॥ ४६ ॥

तदनन्तर देवाधिदेव जनार्दनने ब्रह्मशिर नामक महान् विनाशकारी भयानक अस्त्र हंसपर छोड़ा। उन्होंने महान् एवं घोर पराक्रमवाले उस अस्त्रका हंसके लिये ही प्रयोग किया था ॥ ४५-४६ ॥

अथ भीतो महारौद्रमस्त्रं दृष्ट्वा नृपोत्तमः ।
हंसोऽपि तेन राजेन्द्र वारयामास तं शरम् ॥ ४७ ॥

राजेन्द्र ! उस महाभयंकर अस्त्रको देखकर नृपश्रेष्ठ हंस भयभीत हो उठा; फिर उसने भी उसी अस्त्रसे उस बाणका वारण किया ॥ ४७ ॥

यमुनाप उपस्पृश्य देवदेवो जनार्दनः ।
अस्त्रं वैष्णवमादाय शरे स निशिते हरिः ॥ ४८ ॥
योजयामास भूतात्मा भूतभावनभावनः ।

तदनन्तर सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति और पालन करनेवाले भूतात्मा देवाधिदेव जनार्दन हरिने यमुनाजीके जलका आचमन करके एक तीखे बाणपर वैष्णवास्त्रकी संयोजना की ॥

येन देवा रणे हत्वा राज्यमापुः पुरासुरान् ।
तदस्त्रं योजयामास वधार्थं तस्य भूपतेः ॥ ४९ ॥

पूर्वकालमें देवताओंने रणभूमिमें जिसके द्वारा असुरोंका वध करके अपना राज्य प्राप्त किया था, उसी अस्त्रका राजा हंसके वधके लिये श्रीकृष्णने प्रयोग किया ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसकेशवयुद्धे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंसडिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें हंस और श्रीकृष्णका युद्धविषयक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२७ ॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णद्वारा हंसका वध

वैशम्पायन उवाच

अथ भीतो महारौद्रमस्त्रं दृष्ट्वा नृपोत्तम ।
हंसो राजा महाराज निश्चेष्ट इव सम्बभौ ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ ! महाराज ! उस महाभयंकर अस्त्रको देखकर राजा हंस भयके मारे निश्चेष्ट-सा प्रतीत होने लगा ॥ १ ॥

उत्प्लुत्य स रथात् तस्माद् यमुनामभ्यधावत ।
यत्र कृष्णो हृषीकेशः कालियार्हिं ममर्द ह ॥ २ ॥

वह उस रथसे उछलकर यमुनाजीकी ओर भागा, जहाँ पूर्वकालमें हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णने कालियनागका मर्दन किया था ॥ २ ॥

महाह्रदं महारौद्रं यावत्पातालसंस्थितम् ।
तावद्दीर्घं महानीलं कालाञ्जननिभं हि यत् ॥ ३ ॥

वह महान् ह्रद बड़ा भयंकर और पातालपर्यन्त गहरा था। उसका विस्तार भी उतना ही था। वह काली अञ्जन-राशि (अथवा कोयले) के समान महानील (या काला) प्रतीत होता था ॥ ३ ॥

तस्मिन् ह्रदे महाघोरे पपाताथ स हंसकः ।
हंसे पतति तस्मिंस्तु महान् रावो बभूव ह ॥ ४ ॥
गिरीणां पात्यमानानां समुद्र इव वज्रिणा ।

उसी महाघोर कालियह्रदमें हंस कूद पड़ा। उसके कूदनेपर वहाँ बड़ा भारी धमाकेका-सा शब्द हुआ, मानो इन्द्रके द्वारा समुद्रमें गिराये जाते हुए पर्वतोंका कोलाहल प्रकट हुआ हो ॥ ४½ ॥

रथादुत्प्लुत्य कृष्णोऽपि तस्योपरि पपात ह ॥ ५ ॥
देवदेवो जगन्नाथो जगद् विस्रापयन्निव ।

तब जगदीश्वर देवाधिदेव श्रीकृष्ण भी सम्पूर्ण जगत्को विस्रयमें डालते हुए-से रथसे उछलकर उस कुण्डमें हंसके ऊपर कूद पड़े ॥ ५½ ॥

प्राहरन् तं महाबाहुः पादाभ्यामथ केशवः ॥ ६ ॥
पादक्षेपं नृपस्तस्माल्लब्ध्वा हंसो नृपोत्तम ।
ममार च नृपश्रेष्ठ केचिदेवं वदन्ति हि ॥ ७ ॥

उस समय महाबाहु केशवने उसपर दोनों पैरोंसे प्रहार किया। नृपश्रेष्ठ जनमेजय ! श्रीकृष्णके चरणोंका प्रहार पाकर राजा हंस मर गया—ऐसा कुछ लोग कहते हैं ॥ ६-७ ॥

अन्ये पातालमायातो भक्षितः पन्नगैरिति ।
अद्यापि नैव राजेन्द्र दृष्ट इत्यनुशुश्रुम ॥ ८ ॥

राजेन्द्र ! दूसरोंका कहना है कि वह पातालमें धँस गया और वहाँ सर्प उसे खा गये। वह अबतक वहाँसे लौटा नहीं देखा गया—ऐसा उसके विषयमें हमने सुना है ॥ ८ ॥

यथापूर्वं जगन्नाथो रथं समुपजग्मिवान् ।
हते तस्मिन् महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अकरोद् राजसूयं च तव पूर्वपितामहः।
यदि जीवेदसौ हंसः को नमस्यति तं क्रतुम् ॥ १० ॥

तदनन्तर जगदीश्वर श्रीकृष्ण पूर्ववत् रथपर आ गये। महाराज! हंसके मारे जानेपर ही तुम्हारे पूर्वपितामह धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया था। यदि हंस जीवित होता तो कौन उस यज्ञके सामने मस्तक झुकाता ॥ ९-१० ॥

स च सर्वास्त्रविन्नित्यं रुद्रालब्धवरः प्रभो।
क्षणादेव महाराज वार्तेयं गाममाहत ॥ ११ ॥
हतो हंसो हतो हंसः कृष्णेन रिपुमर्दिना।
जगुर्गन्धर्वपतयो देवलोके दिवानिशम् ॥ १२ ॥

प्रभो! वह भगवान् रुद्रसे वर पाकर सदाके लिये सम्पूर्ण अस्त्रोंका ज्ञाता हो गया था। महाराज! क्षणभरमें यह समाचार भूमण्डलमें फैल गया। 'शत्रुओंका मान-मर्दन करनेवाले श्रीकृष्णने हंसको मार डाला, हंसको मार डाला'—यह गन्धर्वराजगण देवलोकमें दिन-रात गान करने लगे ॥ ११-१२ ॥

कृष्णेन लोकनाथेन विष्णुना प्रभविष्णुना।
यमुनाया ह्रदे घोरे हंसो निहत इत्यपि ॥ १३ ॥

'सम्पूर्ण जगत्के स्वामी प्रभावशाली विष्णुस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने यमुनाके भयंकर ह्रदमें हंसको मार डाला।' इस प्रकार उनके यशका सर्वत्र गान होने लगा ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि हंसडिम्भकोपाख्याने हंसवधे अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें हंस-डिम्भकोपाख्यानके प्रसङ्गमें हंसका वधविषयक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२८ ॥

एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

डिम्भककी आत्महत्या

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा निहतमत्युग्रं भ्रातरं वीर्यशालिनम्।
बलदेवं परित्यज्य युध्यमानं महारणे ॥ १ ॥
डिम्भको वीर्यसम्पन्नो यमुनामनुजग्मिवान्।
तमन्वधावद् वेगेन बलभद्रो हलायुधः ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अपने पराक्रमशाली भाई अत्यन्त उग्र हंसको उस महासमरमें मारा गया सुनकर बलवान् डिम्भक जूझते हुए बलभद्रको वहीं छोड़कर यमुनाजीके तटपर गया। उस समय हलधर बलभद्रने बड़े वेगसे उसका पीछा किया ॥ १-२ ॥

हंसो हि यत्र पतितस्तत्रासौ निपपात ह।
यमुनायां महाराज विलोड्य जलसंचयम् ॥ ३ ॥

महाराज! हंस जहाँ यमुनाजीमें कूदा था, वहीं डिम्भक भी कूद पड़ा। उसने यमुनाकी जलराशिको मथ डाला ॥ ३ ॥

अथ क्रुद्धः स डिम्भको भ्रामयित्वा जलं बहु।
उन्मज्ज्योन्मज्ज्य सहसा निमज्ज्य च पुनः पुनः ॥ ४ ॥
न ददर्श तदा राजन् भ्रातरं वीर्यशालिनम्।

क्रोधमें भरा हुआ डिम्भक उस जलमें चक्कर लगाकर सहसा गोता लगाता और ऊपरको निकल आता था। राजन्! इस प्रकार बारंबार डुबकी लगानेपर भी उसने अपने पराक्रमशाली भाईको वहाँ नहीं देखा ॥ ४½ ॥

उन्मज्ज्याथ महाबाहुर्वासुदेवं विलोक्य च ॥ ५ ॥
उवाच वचनं राजन् डिम्भको वीर्यवत्तमः।

राजन्! तब बलवानोंमें श्रेष्ठ महाबाहु डिम्भक जलसे ऊपर आकर वासुदेव श्रीकृष्णको सामने देख उनसे इस प्रकार बोला—॥ ५½ ॥

अरे गोपकदायाद कासौ हंस इति स्थितः ॥ ६ ॥
वासुदेवोऽपि धर्मात्मा यमुनां पृच्छ राजक।

'अरे गोपपुत्र! वह हंस कहाँ है?' धर्मात्मा वासुदेवने भी उत्तर दिया—'नीच नरेश! यमुनाजीसे पूछ' ॥ ६½ ॥

इत्यब्रवीत् प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ७ ॥
तच्छ्रुत्वा यमुनां भूयः प्रविश्य डिम्भकः किल।
बहुप्रकारमुद्वीक्ष्य भ्रातरं भ्रातृवत्सलः ॥ ८ ॥
विललाप ततो राजा डिम्भको भ्रान्तमानसः।

प्रतापी वासुदेवने जब प्रसन्नचित्त होकर इस प्रकार कहा, तब भ्रातृवत्सल डिम्भकने उनकी बात सुनकर पुनः यमुनामें प्रवेश किया और नाना प्रकारसे अपने भाईकी खोज करके भ्रान्तचित्त हुआ वह राजा विलाप करने लगा ॥ ७-८½ ॥

क्व नु गच्छसि राजेन्द्र विहायैनमबान्धवम् ॥ ९ ॥
कुतो भ्रातरितो गच्छेः परित्यज्यैव मामिह।

'राजेन्द्र! इस बन्धुहीन डिम्भकको छोड़कर कहाँ जा रहे हो? भैया! मुझे यहीं छोड़कर यहाँसे कहाँ चले जा रहे हो?' ॥ ९½ ॥

विलप्यैवं नृपश्रेष्ठ डिम्भको भ्रातृवत्सलः ॥ १० ॥
आत्मत्यागे मनः कुर्वन् यमुनाया महाह्रदे।

नृपश्रेष्ठ जनमेजय! इस प्रकार विलाप करके भ्रातृवत्सल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

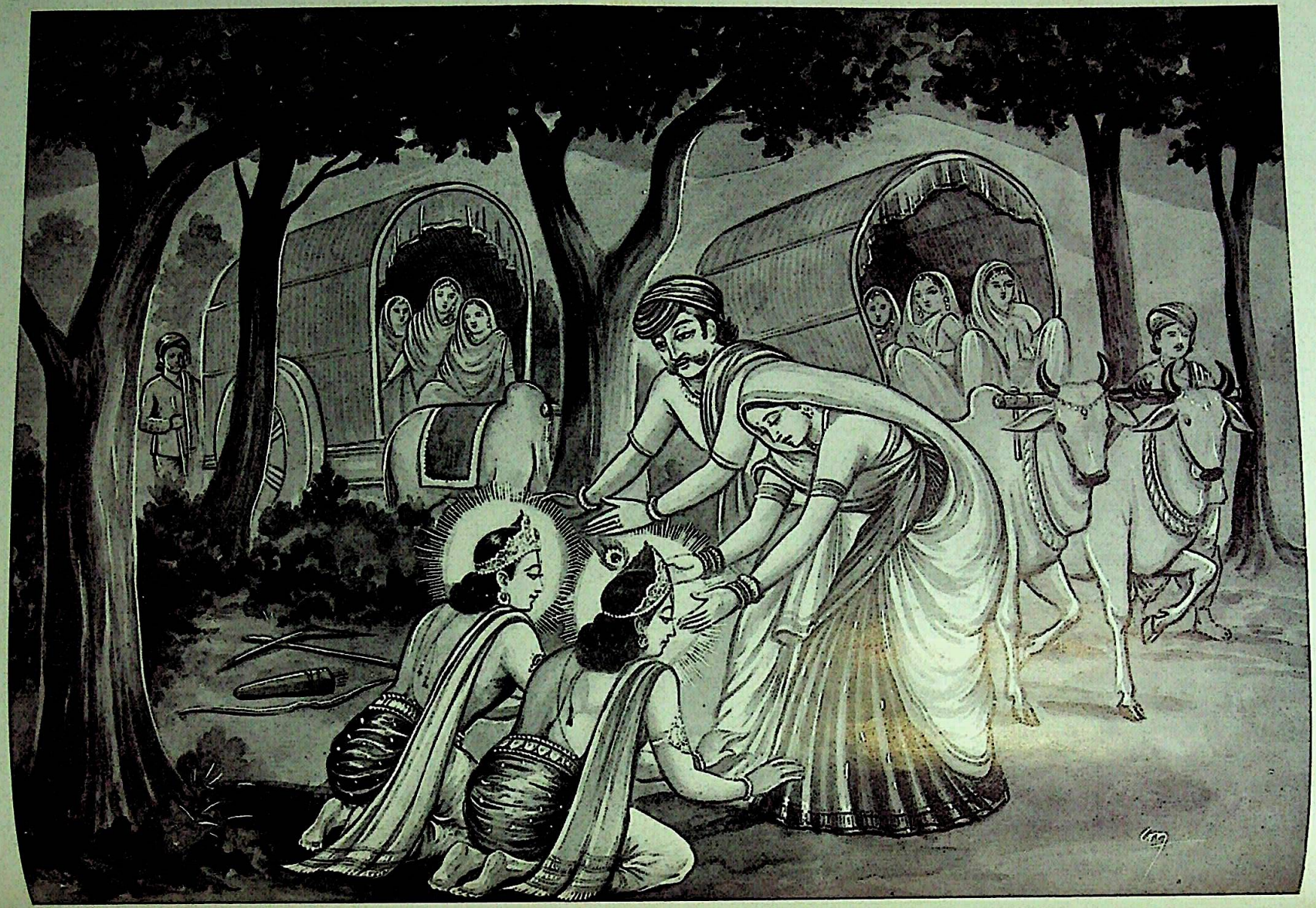

श्रीकृष्ण-बलरामकी नन्द-यशोदासे भेंट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डिम्भकने यमुनाजीके महान् कुण्डमें अपने शरीरको त्याग देनेका विचार किया ॥ १०½ ॥

निमज्ज्योन्मज्ज्य सहसा मरणे कृतनिश्चयः ॥ ११ ॥
हस्तेन जिह्वामाकृष्य भूयो भूयो विलप्य च ।
ततः समूलामाकृष्य जिह्वां साहसकृत् स्वयम् ॥ १२ ॥
ममारान्तर्जले राजन् डिम्भको नरकाय वै ।

सहसा गोता लगाकर वह जलसे ऊपरको उठा और मरनेका निश्चय करके बारंबार विलाप करनेके पश्चात् स्वयं दुःसाहस करनेवाला वह डिम्भक हाथसे जिह्वाको जड़सहित बाहर खींचकर जलके भीतर मर गया । राजन् ! उसका यह दुर्मरण नरककी प्राप्ति करानेवाला था ॥ ११-१२½ ॥

एवं तु निहते हंसे डिम्भके वीर्यशालिनि ॥ १३ ॥
आगमत् पुण्डरीकाक्षो भूतान् विस्मापयन्निव ।

इस प्रकार पराक्रमशाली हंस और डिम्भकके मारे जानेपर कमलनयन श्रीकृष्ण सम्पूर्ण भूतोंको विस्मयमें डालते हुएसे लौट आये ॥ १३½ ॥

ततः प्रीतः प्रसन्नात्मा वासुदेवः प्रतापवान् ॥ १४ ॥
गोवर्धनेऽथ विश्रम्य बलभद्रसहायवान् ।
कंचित् कालं महाराज पूर्वभुक्तमुवास ह ॥ १५ ॥

महाराज ! इससे प्रीतियुक्त और प्रसन्नचित्त हुए प्रतापी भगवान् वासुदेवने बलभद्रजीके साथ गोवर्धन पर्वतपर विश्राम करके अपने पूर्वभुक्त स्थानपर कुछ कालतक निवास किया ॥ १४-१५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि डिम्भकमरणे एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें डिम्भकका मरणविषयक एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२९ ॥

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

गोप-गोपियोंसहित यशोदा और नन्दका गोवर्धन पर्वतपर आकर श्रीकृष्ण और बलभद्रसे मिलना

वैशम्पायन उवाच

यशोदा नन्दगोपश्च कृष्णदर्शनलालसौ ।
गोवर्धनगतं श्रुत्वा वासुदेवं सहाग्रजम् ॥ १ ॥
नवनीतं च दधि च पायसं कृसरं तथा ।
वन्यं पुष्पं महाराज मयूराङ्गदमेव च ॥ २ ॥
बल्लवैरपरैः सार्धं गोपिभिश्च समन्ततः ।
जग्मतुः सहसा प्रीतौ गोवर्धनमथो नृप ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय ! यशोदा और नन्दगोपके मनमें श्रीकृष्णको देखनेके लिये बड़ी लालसा थी । जब उन्होंने सुना कि श्रीकृष्ण अपने बड़े भाईके साथ गोवर्धन पर्वतपर आये हैं, तब वे दोनों सहसा बड़े प्रसन्न हुए और मक्खन, दही, खीर, खिचड़ी, जंगली फूल तथा मोरपंखके बाजूबंद लेकर सब ओरसे एकत्र हुए दूसरे गोपों और गोपियोंके साथ गोवर्धन पर्वतपर गये ।१–३।

क्वचिद् वृक्षे समासक्तं कृष्णं कृष्णमृगेक्षणम् ।
ददर्शतुर्महाबाहुं वासुदेवं सहाग्रजम् ॥ ४ ॥

वहाँ उन्होंने कृष्णमृगके समान विशाल नेत्रवाले वसुदेवनन्दन महाबाहु श्रीकृष्णको अपने बड़े भाईके साथ कहीं वृक्षके नीचे उससे सटकर बैठे देखा ॥ ४ ॥

प्रणेमतुः सुसंहृष्टौ तत्र दृष्ट्वा महाबलौ ।
दर्शयामासतुर्देवौ पायसानि महान्ति च ॥ ५ ॥

उन्हें देखकर नन्द और यशोदा बड़े प्रसन्न हुए, फिर उन महाबली देवता श्रीकृष्ण-बलदेवने नन्द और यशोदाको प्रणाम किया । इसके बाद यशोदा और नन्दने खीर आदि महत्त्वपूर्ण उपहार उनके सामने प्रस्तुत किया ॥ ५ ॥

तात मातर्व्रजे गोष्ठे कुशलं वा स्वगोधनम् ।
अपि गावः क्षीरवत्यो वत्सा वत्सतराः पितः ॥ ६ ॥

उस समय श्रीकृष्णने पूछा—'बाबा ! मैया ! व्रजके गोष्ठमें अपने सभी गोधन सकुशल तो हैं न ? पिताजी ! गौएँ दूध देती हैं न ? उनके बड़े-छोटे बछड़े सुखी हैं न ॥ ६ ॥

अपि वा सुशुभं क्षीरमपि गावः सुशोभनाः ।
अपि वा दारका मातर्वत्सपालाः पिबन्ति च ॥ ७ ॥

'क्या व्रजकी गौओंका दूध शुद्ध एवं मङ्गलकारी होता है ? क्या अपने यहाँ सुन्दर शोभामयी गौएँ हैं ? मैया ! छोटे-छोटे बच्चे और बछड़े चरानेवाले बालक भरपूर दूध पीते हैं न ? ॥ ७ ॥

बहूनि चापि दामानि कीलका अपि वा बहु ।
तृणानि बहुरूपाणि किं वा सन्ति पितः सदा ॥ ८ ॥

'बाबा ! क्या अपने यहाँ बहुत-सी रस्सियाँ, बहुतेरे खूँटे तथा अनेक प्रकारकी घासें सदा प्रस्तुत रहती हैं ?॥८॥

शकटानि सुगन्धीनि किं वा सन्ति पितर्व्रजम् ।
अपि गोप्यः पुत्रवत्यो दारकान् किमजीजनन् ॥ ९ ॥

'पिताजी ! क्या छकड़े सदा गोरससे सुगन्धित रहते हैं ? क्या गोपियाँ पुत्रवती हुई हैं ? क्या उन्होंने बच्चोंको जन्म दिया है ?॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घटाः किं बहवो मातरभिन्नाः सर्वतो व्रजे।
किं गावः क्षीरमतुलं स्रवन्त्यहरहः पितः॥ १०॥

'मैया! क्या व्रजमें सब ओर बिना फूटे हुए बहुत-से घड़े हैं? बाबा! क्या गौएँ प्रतिदिन अतुलनीय दुग्ध प्रदान करती हैं?॥ १०॥

हैयङ्गवीनं क्षीराणि दधि वा किमजीजनन्।
गोधनं सर्वमेवेदं नीरोगं प्रतिपद्यते॥ ११॥

'क्या अपनी गौओंने दूध-दही और मक्खनकी उपज बढ़ायी है? अपना सारा गोधन नीरोग तो है न?'॥ ११॥

नन्द उवाच

सर्वमेतद् यदुश्रेष्ठ नीरोगं बहुशः प्रभो।
कुशलं गोधनस्यैव सर्वकालेषु केशव॥ १२॥

नन्द बोले—प्रभो! यदुश्रेष्ठ! अपना यह सारा गोधन प्रायः नीरोग ही है। केशव! गोधन तो सदा ही सकुशल है॥ १२॥

रक्षणात् तव देवेश सदा कुशलिनो वयम्।
सगोधनाः सवत्साश्च नीरोगा इव केशव॥ १३॥

देवेश्वर! तुम्हारे संरक्षणसे हमलोग सदा कुशलपूर्वक रहते हैं। केशव! हम गोधन और बछड़ोंसहित नीरोग-से ही हैं॥ १३॥

एकमेव सदा दुःखं न त्वां द्रक्ष्यामि केशव।
यदेतत् केवलं दुःखमिति धीः शीर्यते सदा॥ १४॥

श्रीकृष्ण! मुझे तो सदा एक ही दुःख बना रहता है कि मैं तुम्हें भर आँख देख नहीं पाता हूँ। यह जो एक ही दुःख है, इससे सदा मेरा अन्तःकरण व्यथित रहता है॥ १४॥

वैशम्पायन उवाच

एवमादि विलप्यन्तं गच्छेत्याह स केशवः।
यशोदां पुनराहेदं मातर्गच्छ गृहं प्रति॥ १५॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस तरह विलाप करते हुए नन्दसे भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'बाबा! रोओ मत! अपने घरको जाओ।' फिर उन्होंने यशोदासे कहा—'मैया! तुम भी घर जाओ॥ १५॥

ये च त्वां कीर्तयिष्यन्ति ते च स्वर्गमवाप्नुयुः।
ये केचित् त्वां नमस्यन्ति ते मे प्रियतराः सदा॥ १६॥
मद्भक्ताः सर्वदा सन्तु गच्छेत्याह च तां हरिः।

'जो लोग तुम्हारा कीर्तन करेंगे, वे स्वर्गलोकमें जायँगे तथा जो कोई तुम्हें नमस्कार करेंगे, वे सदा-सर्वदा मेरे परम प्रिय भक्त होंगे।' ऐसा कहकर श्रीहरिने मैयासे कहा—'तुम जाओ'॥ १६½॥

इत्युक्त्वा पितरौ देवो वासुदेवः सनातनः॥ १७॥
गाढमालिङ्ग्य तौ प्रीतौ प्रेषयामास केशवः।
यशोदा नन्दगोपश्च जग्मतुः स्वगृहं प्रति॥ १८॥

माता-पितासे ऐसा कहकर सनातन भगवान् वासुदेवने प्रसन्नतापूर्वक उनके गलेसे लगकर उन्हें विदा किया। तत्पश्चात् यशोदा और नन्दगोप अपने घरको लौट गये॥ १७-१८॥

ततः कृष्णो हृषीकेशो यादवैः सह वृष्णिभिः।
गन्तुमैच्छत् तदा विष्णुः पुरीं द्वारवतीं किल॥ १९॥

तदनन्तर इन्द्रियोंके प्रेरक विष्णुस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने यादवों तथा वृष्णिवंशियोंके साथ द्वारकापुरीको लौट जानेकी इच्छा की॥ १९॥

य एतच्छृणुयान्नित्यं पठेद् वापि समाहितः।
पुत्रवान् धनवांश्चैव अन्ते मोक्षं च गच्छति॥ २०॥

जो एकाग्रचित्त हो सदा इस प्रसंगको सुनता अथवा पढ़ता है, वह इस लोकमें पुत्रवान् और धनवान् होता है तथा अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ २०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि यशोदानन्दगोपबलभद्रकृष्णसमागमे त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें यशोदा, नन्दगोप, बलभद्र और श्रीकृष्णका समागमविषयक एक सौ तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३०॥

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

द्वारका जाते हुए श्रीकृष्णका पुष्करमें ऋषियोंसे मिलना तथा ऋषियोंद्वारा उनका स्तवन

वैशम्पायन उवाच

गच्छन्नथ महाविष्णुः पुष्करं प्राप्य यादवैः।
अपश्यन्मुनिमुख्यांस्तु पुस्करस्थान् नृपोत्तम॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ जनमेजय! वहाँसे जाते हुए महाविष्णुस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने यादवोंके साथ पुष्करमें पहुँचकर वहाँ रहनेवाले श्रेष्ठ मुनियोंका दर्शन किया॥ १॥

ते समेत्य महादेवमृषयो वीतमत्सराः।
अर्घ्यादिसमुदाचारं कृत्वैनं यादवोत्तमम्॥ २॥
प्रोचुर्विश्वेश्वरं विष्णुं भूतभव्यभवत्प्रभुम्।

उन मात्सर्यरहित ऋषियोंने इन यदुकुलतिलक महादेव श्रीकृष्णसे मिलकर उन्हें अर्घ्य आदि निवेदन करनेके पश्चात् भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी जगदीश्वर श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥ २½॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्यद्भुतमिदं विष्णो तव वीर्यं जनार्दन ॥ ३ ॥
येन तौ निहतौ युद्धे हंसो डिम्भक एव च ।

'विष्णो ! जनार्दन ! आपका यह बल-पराक्रम अत्यन्त अद्भुत है, जिससे आपने युद्धमें हंस और डिम्भकको मार डाला ॥ ३½ ॥

यो विचक्रो दुराधर्षो देवैरपि सुदुःसहः ॥ ४ ॥
संगरे निहतो देव दुःसाध्य इति नो मतिः ।

'देव ! जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुःसह था। उस दुर्जय वीर विचक्रको भी आपने युद्धस्थलमें मार डाला ! उसे पराजित करना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन था। ऐसा हमारा विश्वास है ॥ ४½ ॥

क्षेमो नः सर्वकार्येषु चरतां तप उत्तमम् ॥ ५ ॥
निष्कल्मषा भविष्यामस्तव संस्मरणाद्धरे ।

'अब उत्तम तपका आचरण करनेवाले हमलोगोंके सभी कार्योंमें क्षेम सुलभ हो गया। हरे ! हम आपके स्मरणसे सर्वथा निष्पाप हो जायँगे ॥ ५½ ॥

त्वं हि सर्वस्य दुःखस्य हर्ता त्वां ध्यायतां सदा ॥ ६ ॥
त्वदनुस्मरणं जन्तोः सदा पुण्यप्रदं प्रभो ।

'जो सदा आपका ध्यान करते हैं, उनके सभी दुःखोंको आप हर लेते हैं। प्रभो ! आपका बारंबार चिन्तन प्राणिमात्रके लिये सदा पुण्य-प्रदान करनेवाला है ॥ ६½ ॥

त्वं हि नः सततं धाता विधाता तपसो हरे ॥ ७ ॥
त्वमोंकारो वषट्कारस्त्वं यज्ञस्त्वं पितामहः ।

'हरे ! आप ही सदा हमारी तपस्याके धारण-पोषण करनेवाले हैं। आप ही ओंकार हैं। आप ही वषट्कार हैं। आप ही यज्ञ हैं और आप ही पितामह हैं ॥ ७½ ॥

त्वं ज्योतिर्ब्रह्मणो मूर्तिस्त्वं ब्रह्मा रुद्र एव च ॥ ८ ॥
प्राणस्त्वं सर्वभूतानामन्तरात्मेति कथ्यते ।
उपास्यः सर्वभूतानां यज्ञैर्दानैर्जगत्पते ॥ ९ ॥

'आप ही ज्योति हैं। आप ही ब्रह्ममूर्ति हैं। आप ही ब्रह्मा और रुद्र हैं। आप ही सम्पूर्ण भूतोंके प्राण हैं। आप ही अन्तरात्मा कहलाते हैं। जगत्पते ! यज्ञों और दानोंद्वारा समस्त प्राणियोंके लिये उपासना करने योग्य आप ही हैं ॥ ८-९ ॥

नमो विश्वसृजे देव नमस्ते विश्वमूर्तये ।
पाहि लोकमिमं देव हत्वा ब्रह्मद्विषः सदा ॥ १० ॥

'देव ! आप विश्वकी सृष्टि करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्व आपकी मूर्ति है, आपको नमस्कार है। देव ! आप ब्रह्मद्रोहियोंका वध करके सदा इस विश्वका पालन कीजिये' ॥ १० ॥

स तथेति हरिर्विष्णुर्ययौ द्वारवतीं पुरीम् ।
अवसद् वृष्णिभिः सार्धं स्तूयमानः स मागधैः ॥ ११ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीविष्णु हरि द्वारकापुरीको गये और मागधोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए वृष्णिवंशियोंके साथ वहाँ निवास करने लगे ॥ ११ ॥

इयं च देवदेवस्य चेष्टा हि जनमेजय ।
प्रोक्ता ते पृच्छते राजन् किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १२ ॥

राजा जनमेजय ! तुम्हारे पूछनेपर मैंने देवाधिदेव श्रीकृष्णकी यह लीला तुम्हें बतायी है। तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि द्वारकायां कृष्णस्य प्रत्यागमने एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रीकृष्णका द्वारकामें प्रत्यागमन-विषयक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३१ ॥

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महाभारत और हरिवंशके श्रवणकी विधि और फल, वाचकके गुण, प्रत्येक पर्वपर दान देने योग्य वस्तु, एकसे लेकर दस पारणाओंकी महत्ता तथा महाभारत एवं हरिवंशका माहात्म्य

जनमेजय उवाच

भगवन् केन विधिना श्रोतव्यं भारतं बुधैः ।
फलं किं के च देवाश्च पूज्या वै पारणेष्विह ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन् ! विद्वान् पुरुषोंको महाभारतका श्रवण किस विधिसे करना चाहिये ? इसका फल क्या है ? तथा इसकी समाप्तिपर किन-किन देवताओंका पूजन करना चाहिये ? ॥ १ ॥

देयं समाप्ते भगवन् किं च पर्वणि पर्वणि ।
वाचकः कीदृशश्चात्र यष्टव्यस्तद् ब्रवीहि मे ॥ २ ॥

भगवन् ! प्रत्येक पर्वके समाप्त होनेपर क्या दान देना चाहिये ? तथा इसमें कैसे वाचकका पूजन करना चाहिये ? यह सब मुझे बताइये ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन् विधिमिमं फलं यच्चापि भारतात् ।
श्रुताद् भवति राजेन्द्र यत् त्वं मामनुपृच्छसि ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! महाभारत सुननेकी इस विधिको सुनिये। राजेन्द्र ! महाभारत श्रवण करनेसे जो फल होता है, जिसके विषयमें तुम मुझसे पूछ रहे हो, वह भी बताता हूँ, सुनो ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिवि देवा महीपाल क्रीडार्थमवनिं गताः।
कृत्वा कार्यमिदं चैव ततश्च दिवमागताः॥ ४॥

महीपाल! स्वर्गके देवता लीलाके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए थे। वे यह (अवतार-) कार्य करके वहाँसे देवलोकको लौट आये॥ ४॥

हन्त यत् ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः।
ऋषीणां देवतानां च सम्भवं वसुधातले॥ ५॥

जनमेजय! मैं प्रसन्नतापूर्वक तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो। भूतलपर ऋषियों और देवताओंका प्रादुर्भाव हुआ था॥ ५॥

अत्र रुद्रास्तथा साध्या विश्वेदेवाश्च शाश्वताः।
आदित्याश्चाश्विनौ देवौ लोकपाला महर्षयः॥ ६॥
गुह्यकाश्च सगन्धर्वा नागा विद्याधरास्तथा।
सिद्धा धर्मः स्वयम्भूश्च मुनिः कात्यायनो वरः॥ ७॥
गिरयः सागरा नद्यस्तथैवाप्सरसां गणाः।
ग्रहाः संवत्सराश्चैव अयनान्यृतवस्तथा॥ ८॥
स्थावरं जङ्गमं चैव जगत् सर्वं सुरासुरम्।
भारते भरतश्रेष्ठ एकस्थमिह दृश्यते॥ ९॥

भरतश्रेष्ठ! रुद्र, साध्य, सनातन विश्वेदेव, आदित्य, दोनों अश्विनीकुमारनामक देवता, लोकपाल, महर्षि, गुह्यक, गन्धर्व, नाग, विद्याधर, सिद्ध, धर्म, स्वयम्भू ब्रह्माजी, श्रेष्ठ कात्यायन मुनि, पर्वत, सागर, नदियाँ, अप्सराएँ, ग्रह, संवत्सर, अयन, ऋतु, स्थावर-जङ्गमरूप सारा जगत्, देवता और असुर—ये इस महाभारतमें एकत्र स्थित देखे जाते हैं॥ ६—९॥

तेषां श्रुतिप्रतिष्ठानां नामकर्मानुकीर्तनात्।
कृत्वापि पातकं घोरं सद्यो मुच्येत मानवः॥ १०॥

श्रुतिमें प्रतिष्ठित हुए इन सबके नाम और कर्मोंका बारंबार कीर्तन करनेसे मनुष्य घोर पातक करनेपर भी उससे तत्काल मुक्त हो जाता है॥ १०॥

इतिहासमिमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वशः।
संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारं गत्वा च भारते॥ ११॥
तेषां शृणु त्वं श्राद्धानि श्रुत्वा भारत भारतम्।
ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भक्त्या च भरतर्षभ॥ १२॥
महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च।
गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्चैव स्वलंकृताः॥ १३॥

भारत! मनुष्य संयतचित्त एवं पवित्र हो इस इतिहासको क्रमशः यथावत् रूपसे सुनकर समूचे महाभारतके पार जाकर भारतयुद्धमें काम आये हुए वीरोंके किस प्रकार श्राद्ध करने चाहिये, यह बताता हूँ सुनो। भरतश्रेष्ठ! महाभारत सुनकर यथाशक्ति भक्तिपूर्वक उनके लिये ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके रत्न एवं बड़े-बड़े दान देने चाहिये। गौएँ, काँसके दुग्धपात्र तथा वस्त्राभूषणोंसे विभूषित कन्या देनी चाहिये॥ ११—१३॥

सर्वकामगुणोपेता यानानि विविधानि च।
भाजनानि विचित्राणि भूमिर्वासांसि काञ्चनम्॥ १४॥

वे कन्याएँ सम्पूर्ण कमनीय गुणोंसे सम्पन्न हों। इसके सिवा, नाना प्रकारके वाहन, विचित्र पात्र, पृथ्वी, वस्त्र एवं सुवर्णका दान करना चाहिये॥ १४॥

वाहनानि च देयानि हया मत्ताश्च वारणाः।
शयनं शिबिकाश्चैव स्यन्दनाश्च स्वलंकृताः॥ १५॥

वाहन, घोड़े, मतवाले हाथी, शय्या, शिविका और सजे-सजाये रथ भी देने चाहिये॥ १५॥

यद् यद् गृहे वरं किंचिद् यद् यदस्ति महद्वसु।
तत् तद् देयं द्विजातिभ्य आत्मा दाराश्च सूनवः॥ १६॥

अपने घरमें जो-जो कोई श्रेष्ठ वस्तु हो और जो-जो महान् धन हो, उसका ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। अपने स्त्री-पुत्र और शरीरको भी उनकी सेवामें अर्पण कर देना चाहिये॥ १६॥

श्रद्धया परया दद्यात् क्रमशस्तस्य पारगः।
शक्तितः सुमना हृष्टः शुश्रूषुरविकम्पनः॥ १७॥

क्रमशः महाभारतको समाप्त करनेवाला पुरुष शुद्ध हृदयसे हर्षपूर्वक मनमें सेवाभाव रखते हुए स्थिरतापूर्वक बड़ी श्रद्धाके साथ यथाशक्ति पूर्वोक्त वस्तुओंका दान करे॥ १७॥

सत्यार्जवरतो यत्तः शुचिः शौचपरायणः।
श्रद्दधानो जितक्रोधो यथा सिद्ध्यति तच्छृणु॥ १८॥

सत्य और सरलतामें तत्पर, प्रयत्नशील, पवित्र, शौचाचारपरायण, क्रोधको जीतनेवाले तथा श्रद्धालु श्रोताको जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त होती है, वह बताता हूँ, सुनो॥ १८॥

शुचिः शीलान्विताचारः शुक्लवासा जितेन्द्रियः।
संस्कृतः सर्वशास्त्रज्ञः श्रद्दधानोऽनसूयकः॥ १९॥
रूपवान् सुभगो दान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दानमानग्रहीता च कार्यो भवति वाचकः॥ २०॥

जो शुद्ध, सुशील, सदाचारी, श्वेतवस्त्रधारी, जितेन्द्रिय, संस्कारसम्पन्न, सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता, श्रद्धालु, अदोषदर्शी, रूपवान्, सौभाग्यशाली, मन और इन्द्रियोंका दमन करनेवाला, सत्यवादी, इन्द्रियविजयी तथा दान-मानको ग्रहण करनेवाला हो, ऐसे विद्वान् पुरुषको ही वाचक बनाना चाहिये॥ १९-२०॥

अविलम्बमनायस्तमद्रुतं घोरमूर्जितम्।
असंसक्ताक्षरपदं न च भावसमन्वितम्॥ २१॥
त्रिषष्टिवर्णसंयुक्तमष्टस्थानसमीरितम्।
वाचयेद् वाचकः स्वस्थः स्वाधीनः सुसमाहितः॥ २२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वस्थ वाचक स्वाधीन और एकाग्रचित्त हो इस तरह कथा बाँचे कि विलम्बसे या रुक-रुककर शब्द न निकले (धारावाहिकरूपसे कथा चलती रहे), कठोर अक्षरका उच्चारण न करे, जल्दबाजी न करे, अस्पष्ट रूपसे शब्दोंका उच्चारण न करे—इस तरह बोले कि कोई अक्षर या पद टूटने न पावे, मनमें कोई विशेष अभिप्राय (लोभ आदि) रखकर कथा न बाँचे । आठ[1] स्थानोंसे उच्चरित होनेवाले तिरसठ[2] वर्णोंसे युक्त महाभारतका इस तरह पाठ करे कि प्रत्येक वर्णका स्पष्टतः विवेक होता रहे ॥ २१-२२ ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ २३ ॥

वाचक पहले अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्यसखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (इतिहास, पुराण एवं महाभारत) का पाठ आरम्भ करे ॥ २३ ॥

ईदृशाद् वाचकाद् राजञ्छ्रुत्वा भारत भारतम् ।
नियमस्थः शुचिः श्रोता शृण्वन् स फलमश्नुते ॥ २४ ॥

राजन् ! भरतनन्दन ! जो श्रोता शौच, संतोष आदि नियमोंके पालनमें तत्पर एवं पवित्र रहकर ऐसे वाचकसे महाभारत सुनता है, वह उसके पूर्ण फलको प्राप्त कर लेता है ॥ २४ ॥

पारणं प्रथमं प्राप्य द्विजान् कामैश्च तर्पयेत् ।
अग्निष्टोमस्य यागस्य फलं वै लभते नरः ॥ २५ ॥

प्रथम बार नियमपूर्वक हरिवंशान्त महाभारतका श्रवण पूरा करके ब्राह्मणोंको उनके इच्छानुसार वस्तुओंसे तृप्त करे । ऐसा करनेवाला मनुष्य अग्निष्टोम यागका फल पाता है ॥ २५ ॥

अप्सरोगणसंकीर्णं विमानं लभते महत् ।
प्रहृष्टः स तु देवैश्च दिवं याति समाहितः ॥ २६ ॥

उसे अप्सराओंसे भरा हुआ महान् विमान प्राप्त होता है और वह हर्षसे उत्फुल्ल एवं एकाग्रचित्त होकर देवताओंके साथ स्वर्गलोकमें जाता है ॥ २६ ॥

द्वितीयं पारणं प्राप्य अतिरात्रफलं लभेत् ।
सर्वरत्नमयं दिव्यं विमानमधिरोहति ॥ २७ ॥

दूसरी बार हरिवंशान्त महाभारतका श्रवण कर लेनेपर श्रोताको अतिरात्रयज्ञका फल मिलता है तथा वह सम्पूर्ण रत्नोंसे बने हुए दिव्य विमानपर आरूढ़ होता है ॥ २७ ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धविभूषितः ।
दिव्याङ्गदधरो नित्यं देवलोके महीयते ॥ २८ ॥

वहाँ वह दिव्य माला और वस्त्र धारण करके दिव्य गन्धसे विभूषित हो, दिव्य अङ्गद आदि आभूषण पहनकर सदा देवलोकमें सम्मानित होता है ॥ २८ ॥

तृतीयं पारणं प्राप्य द्वादशाहफलं लभेत् ।
वसत्यमरसंकाशो वर्षाण्ययुतशो दिवि ॥ २९ ॥

तीसरी पारणा पूरी करनेपर उसे द्वादशाह यज्ञका फल प्राप्त होता है तथा वह देवताओंके समान तेजस्वी रूप धारण करके दस हजार वर्षोंतक देवलोकमें निवास करता है ॥

चतुर्थे वाजपेयस्य पञ्चमे द्विगुणं फलम् ।
उदितादित्यसंकाशं ज्वलन्तमनलोपमम् ॥ ३० ॥
विमानं विबुधैः सार्धमारुह्य दिवि गच्छति ।
वर्षायुतानि भवने शक्रस्य दिवि मोदते ॥ ३१ ॥

चौथी पारणापर वाजपेय यज्ञका और पाँचवींपर उससे दूना फल मिलता है । वह उदयकालके सूर्य तथा प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी विमानपर देवताओंके साथ आरूढ़ हो देवलोकमें जाता है और वहाँ इन्द्रभवनमें दस हजार वर्षोंतक आनन्द भोगता है ॥ ३०-३१ ॥

षष्ठे द्विगुणमस्तीति सप्तमे त्रिगुणं फलम् ।
कैलासशिखराकारं वैदूर्यमणिवेदिकम् ॥ ३२ ॥
परिक्षिप्तं च बहुधा मणिविद्रुमभूषितम् ।
विमानं समधिष्ठाय कामगं साप्सरोगणम् ॥ ३३ ॥
सर्वाँल्लोकान् विचरते द्वितीय इव भास्करः ।

---

१. कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, नासिका, जिह्वामूल और हृदय—ये वर्णोंके उच्चारणके आठ स्थान हैं ।

२. पाणिनीय शिक्षामें तिरसठ वर्णोंकी गणना इस प्रकार दी गयी है—इक्कीस स्वर, पचीस स्पर्श, आठ यादि, चार यम, अनुस्वार, विसर्ग, ९ क, ९ प तथा दुःस्पृष्ट—ये सब मिलाकर तिरसठ वर्ण हैं । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—'अ इ उ ऋ' ये चार स्वर ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतके भेदसे तीन-तीन तरहके माने गये हैं, अतः ये बारह हुए । ऌकारका केवल ह्रस्वरूप ही ग्रहण किया गया है—इस प्रकार ये तेरह स्वर हुए । इनके सिवा, 'ए ओ ऐ औ' ये दीर्घ और प्लुतके भेदसे दो-दो प्रकारके हैं, अतः आठ हुए । पूर्वोक्त १३ और ये ८ मिलकर २१ स्वर होते हैं । 'क' से लेकर 'म' तकके २५ अक्षर स्पर्श कहलाते हैं । इनको मिलानेसे ४६ अक्षर हुए । 'य' से लेकर 'ह' तकके आठ अक्षरोंको जोड़ लेनेपर इनकी संख्या ५४ होती है । प्रतिशाख्यके अनुसार चार यम होते हैं । यथा—'पलिक्क्नी' 'चख्ख्नतुः' 'अग्निः' 'घ्घ्नन्ति' इन उदाहरणोंमें क् ख् ग् घ् से परे जो इन्हींके सदृश वर्ण हैं, इन्हींकी 'यम' संज्ञा है । इन चार यमोंको जोड़ लेनेसे अक्षरोंकी संख्या ५८ तक पहुँचती है । इनके सिवा, अनुस्वार (अं), विसर्ग (अः) ९ क (जिह्वामूलीय), ९ प (उपध्मानीय) तथा दुःस्पृष्टवर्ण (दो स्वरोंके मध्यमें वर्तमान लकार)—ये पाँच अक्षर और हैं । इन सबका योग तिरसठ होता है । ये ही तिरसठ अक्षर हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छठी पारणामें इससे दूना अर्थात् चार वाजपेय यज्ञोंका फल पाता है। सातवेंमें तीन गुने अर्थात् बारह वाजपेय यज्ञोंके फलकी प्राप्ति होती है। वह कैलास-शिखरके समान उज्ज्वल एवं विशाल वैदूर्यमणिकी वेदीसे विभूषित, अनेक प्रकारके मण्डलाकार मार्गोंसे युक्त, मणियों और मूँगोंसे अलंकृत, अप्सराओंसे परिपूर्ण तथा इच्छानुसार चलनेवाले विमानपर बैठकर दूसरे सूर्यके समान सम्पूर्ण लोकोंमें विचरता है ॥ ३२-३३½ ॥

अष्टमं राजसूयस्य पारणे लभते फलम् ॥ ३४ ॥
चन्द्रोदयनिभं रम्यं विमानमधिरोहति ।
चन्द्ररश्मिप्रतीकाशैर्हयैर्युक्तं मनोजवैः ॥ ३५ ॥

आठवीं पारणा पूरी होनेपर उसे राजसूय यज्ञका फल मिलता है। वह चन्द्रोदयके समान रमणीय विमानपर आरूढ़ होता है। जिसमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल और मनके समान वेगशाली घोड़े जुते होते हैं ॥ ३४-३५ ॥

सेव्यमानो वरस्त्रीणां चन्द्रकान्ततरैर्मुखैः ।
मेखलानां निनादेन नूपुराणां च निःस्वनैः ॥ ३६ ॥
अङ्के परमनारीणां सुखं सुप्तो विबुध्यते ।

वह देवसुन्दरियोंके चन्द्रमासे भी अधिक कमनीय मुखोंसे, उनकी मेखलाओंकी ध्वनिसे तथा नूपुरोंकी झनकारोंसे सेवित हो दिव्याङ्गनाओंके अङ्कमें सुखपूर्वक सोता और जागता है ॥ ३६½ ॥

नवमं क्रतुराजस्य वाजिमेधस्य भारत ॥ ३७ ॥
काञ्चनस्तम्भनिर्व्यूहं वैदूर्यकृतवेदिकम् ।
जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्गवाक्षैः सर्वतो वृतम् ॥ ३८ ॥
सेवितं चाप्सरःसंघैर्गन्धर्वैर्दिविचारिभिः ।
विमानं समधिष्ठाय श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ३९ ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यचन्दनभूषितः ।
मोदते दैवतैः सार्धं दिवि देव इवापरः ॥ ४० ॥

भरतनन्दन ! नवीं पारणा पूर्ण करके श्रोता यज्ञोंके राजा अश्वमेधका फल पाता है। वह सोनेके खंभों और कँगूरोंसे सुशोभित, वैदूर्यमणिकी वेदीसे अलंकृत, सब ओर बने हुए सुवर्णमय दिव्य गवाक्षोंसे आवृत तथा स्वर्गमें विचरनेवाले गन्धर्वों और अप्सराओंसे सेवित विमानपर बैठकर अपनी उत्कृष्ट प्रभासे प्रकाशित होता है तथा दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करके दिव्य चन्दनसे चर्चित हो दूसरे देवताकी भाँति देवलोकमें देवगणोंके साथ आनन्द भोगता है ॥ ३७—४० ॥

दशमं पारणं प्राप्य द्विजातीनभिवन्द्य च ।
किङ्किणीजालनिर्घोषं पताकाध्वजशोभितम् ॥ ४१ ॥
रत्नवेदिकसंकाशं वैदूर्यमणितोरणम् ।
हेमजालपरिक्षिप्तं प्रवालवलभीमुखम् ॥ ४२ ॥
गन्धर्वैर्गीतकुशलैरप्सरोभिर्निषेवितम् ।
विमानं सुकृतावासं सुखेनैवोपपद्यते ॥ ४३ ॥

दसवीं पारणा पूरी करके ब्राह्मणोंको प्रणाम करके, फिर करके श्रोता पुण्यात्माओंके आवासस्थान दिव्य विमानमें सुखपूर्वक पा लेता है। उस विमानमें छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त झालरें लगी होती हैं, जिनसे मधुर ध्वनि होती रहती है। ध्वजा और पताकाएँ उस विमानकी शोभा बढ़ाती हैं। वह रत्नमयी वेदिकाओंसे प्रकाशित होता है। उसमें वैदूर्यमणि के फाटक लगे होते हैं। वह सब ओरसे सोनेकी जालीसे घिरा रहता है। उसके छज्जोंका मुखभाग मूँगोंसे अलंकृत होता है तथा गीतकुशल गन्धर्व और अप्सराएँ उस विमानपर सेवाके लिये उपस्थित रहती हैं ॥ ४१—४३ ॥

मुकुटेनार्कवर्णेन जाम्बूनदविभूषणः ।
दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गो दिव्यमाल्यविभूषितः ॥ ४४ ॥
दिव्याँल्लोकान् प्रचरति दिव्यैर्भोगैः समन्वितः ।
विबुधानां प्रसादेन श्रिया परमया युतः ॥ ४५ ॥

वह पुरुष अपने मस्तकपर सूर्यके समान प्रकाशमान मुकुटसे सुशोभित हो जाम्बूनद (सुवर्ण) के आभूषण धारण करके सारे अङ्गोंमें दिव्य चन्दनसे चर्चित और दिव्य मालाओंसे विभूषित हो, दिव्य भोगों तथा उत्कृष्ट शोभासे सम्पन्न होकर देवताओंके प्रसादसे दिव्य लोकोंमें विचरता है ॥

अथ वर्षगणानेवं स्वर्गलोके महीयते ।
ततो गन्धर्वसहितः सहस्राण्येकविंशतिः ॥ ४६ ॥
पुरंदरपुरे रम्ये शक्रेण सह मोदते ।

इस प्रकार बहुत वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर गन्धर्वोंके साथ रमणीय पुरन्दरपुरी अमरावतीमें रहकर इक्कीस हजार वर्षोंतक इन्द्रके साथ आनन्द भोगता है ॥

दिव्ययानविमानेषु लोकेषु विविधेषु च ॥ ४७ ॥
दिव्यनारीगणाकीर्णो निवसत्यमरो यथा ।

इसके बाद नाना प्रकारके पुण्यलोकोंमें दिव्य यानों और विमानोंपर दिव्य नारियोंसे घिरा रहकर वहाँ देवताके समान निवास करता है ॥ ४७½ ॥

ततः सूर्यस्य भवने चन्द्रस्य भवने तथा ॥ ४८ ॥
शिवस्य भवने राजन् विष्णोर्याति सलोकताम् ।

राजन् ! तत्पश्चात् वह क्रमशः सूर्यभवनमें, चन्द्रलोकमें तथा भगवान् शिवके धाममें निवास करके अन्तमें भगवान् विष्णुका सालोक्य प्राप्त कर लेता है ॥ ४८½ ॥

एवमेतन्महाराज नात्र कार्या विचारणा ॥ ४९ ॥
श्रद्दधानेन वै भाव्यमेवमाह गुरुर्मम ।

महाराज ! यह ठीक ऐसी ही बात है। इस विषयमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। इसपर श्रद्धा करनी चाहिये। यह मेरे गुरु व्यासजीका कथन है ॥ ४९½ ॥

वाचकस्य तु दातव्यं मनसा यद् यदिच्छति ॥ ५० ॥
हस्त्यश्वरथयानादि वाहनं च विशेषतः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाचकको वह मनसे जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करे, वही देनी चाहिये। विशेषतः हाथी, घोड़े, रथ और शिविका आदि वाहनका दान करना उचित है ॥ ५०½ ॥

कटके कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं तथापरम् ॥ ५१ ॥
वस्त्रं चैव विचित्रं च गन्धं चैवं विशेषतः ।
देववत् पूजयेत् तं तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥

उसके लिये कड़े, कुण्डल, नूतन यज्ञोपवीत, विचित्र वस्त्र तथा विशेषतः गन्ध आदि देकर देवताके समान उनकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है ॥ ५१-५२ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि यानि देयानि भारते ।
वाच्यमानेऽथ विप्रेभ्यो राजन् पर्वणि पर्वणि ॥ ५३ ॥

राजन् ! अब मैं यह बता रहा हूँ कि जब महाभारतका पारायण आरम्भ हो जाय, तब प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर ब्राह्मणोंके लिये किन-किन वस्तुओंका दान देना चाहिये ॥

जातिं देशं च सत्यं च माहात्म्यं भरतर्षभ ।
धर्मवृत्तिं च विज्ञाय ब्राह्मणानां नराधिप ॥ ५४ ॥
स्वस्ति वाच्यं द्विजैरादौ ततः कार्यं प्रवर्तयेत् ।
समाप्तपर्वणि ततः स्वशक्त्या तर्पयेद् द्विजान् ॥ ५५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! नरेश्वर ! पर्वके आरम्भमें ब्राह्मणोंकी जाति, देश, सत्य, माहात्म्य तथा धर्मवृत्तिको जानकर पहले उनके द्वारा स्वस्तिवाचन कराना चाहिये। तदनन्तर कार्य (कथा-श्रवण) आरम्भ करे। फिर उस पर्वकी समाप्ति होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको तृप्त करे ॥ ५४-५५ ॥

आदौ तु वाचकं चैव वस्त्रगन्धसमन्वितम् ।
विधिवद् भोजयेद् राजन् मधुपायससंयुतम् ॥ ५६ ॥

राजन् ! आदिपर्वके अनुक्रमणिकापर्वमें पहले वाचककी वस्त्र और गन्ध आदिसे पूजा करके उसे मधुयुक्त खीरका विधिवत् भोजन कराये ॥ ५६ ॥

ततो मूलफलप्रायं पायसं मधुसर्पिषा ।
आस्तीके भोजयेद् राजन् दद्याच्चैव गुडौदनम् ॥ ५७ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर आस्तीकपर्वमें प्रायः फल-मूल तथा मधु और घीसे युक्त खीर भोजन कराये तथा गुड़ और चावलका दान करे ॥ ५७ ॥

अपूपैश्चैव पूपैश्च मोदकैश्च समन्वितम् ।
सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद् द्विजान् ॥ ५८ ॥

राजेन्द्र ! फिर सभापर्वमें पूप (पुआ), अपूप (मालपुआ) और मोदक (लड्डू) के साथ खीर ब्राह्मणोंको भोजन कराये ॥ ५८ ॥

आरण्यके मूलफलैस्तर्पयेच्च द्विजोत्तमान् ।
अरणीपर्व आसाद्य जलकुम्भान् प्रदापयेत् ॥ ५९ ॥

आरण्यक (वन) पर्वमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको फल-मूलसे तृप्त करे। अरणीपर्वमें पहुँचकर जलसे भरे हुए घड़ोंका दान करे ॥ ५९ ॥

तर्पणानि च मुख्यानि वन्यमूलफलानि च ।
सर्वकामगुणोपेतं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदापयेत् ॥ ६० ॥

तृप्तिके मुख्य साधन, जंगली फल-मूल तथा मनोवाञ्छित गुणोंसे सम्पन्न अन्नका ब्राह्मणोंको दान करे ॥ ६० ॥

विराटपर्वणि तथा वासांसि विविधानि च ।
उद्योगे भरतश्रेष्ठ सर्वकामगुणान्वितम् ॥ ६१ ॥
भोजनं भोजयेद् विप्रान् गन्धमाल्यैरलंकृतान् ।

विराटपर्वमें भाँति-भाँतिके वस्त्र दान करे। भरतश्रेष्ठ ! उद्योगपर्वमें ब्राह्मणोंको गन्ध और मालाओंसे अलंकृत करके उन्हें मनोवाञ्छित गुणोंसे सम्पन्न अन्नका भोजन कराये ॥ ६१½ ॥

भीष्मपर्वणि राजेन्द्र दत्त्वा यानमनुत्तमम् ।
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात् सुसंस्कृतम् ॥ ६२ ॥

राजेन्द्र ! भीष्मपर्वमें परम उत्तम शिविकाका दान करके अच्छी तरह छौंक-बघारकर तैयार किये गये सर्वगुण-सम्पन्न अन्नका दान करे ॥ ६२ ॥

द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्चितम् ।
शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसिवरांस्तथा ॥ ६३ ॥

राजेन्द्र ! द्रोणपर्वमें ब्राह्मणोंको परम उत्तम भोजन अर्पित करे तथा उन्हें धनुष, बाण एवं उत्तम खड्ग दे ॥ ६३ ॥

कर्णपर्वण्यपि तथा भोजनं सार्वकामिकम् ।
विप्रेभ्यः संस्कृतं सम्यग् दद्यात् संयतमानसः ॥ ६४ ॥

कर्णपर्वमें भी मनको संयममें रखकर ब्राह्मणोंको सबकी रुचिके अनुकूल उत्तम संस्कारयुक्त भोजन दे ॥ ६४ ॥

शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडौदनैः ।
अपूपैस्तर्पयेच्चैव सर्वमन्नं प्रदापयेत् ॥ ६५ ॥

महाराज ! शल्यपर्वमें लड्डू, गुडमिश्रित ओदन और पूओंसे ब्राह्मणोंको तृप्त करे तथा उन्हें सब प्रकारके अन्नका दान दे ॥ ६५ ॥

गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत् ।
स्त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेत् तु द्विजोत्तमान् ॥ ६६ ॥

गदापर्वमें भी मूँग मिलायी हुई खिचड़ीका दान करे। स्त्रीपर्वमें उत्तम ब्राह्मणोंको रत्नोंद्वारा तृप्त करे ॥ ६६ ॥

घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐषीके दापयेत् पुनः ।
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात् सुसंस्कृतम् ॥ ६७ ॥

ऐषीकपर्वमें पहले घी मिलाये हुए भातका दान करे। तत्पश्चात् अच्छी तरह छौंक-बघारकर बनाया हुआ सर्वगुण-सम्पन्न अन्नका दान दे ॥ ६७ ॥

शान्तिपर्वण्यपि गते हविष्यं भोजयेद् द्विजान् ।
आश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्वकामिकम् ॥ ६८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शान्तिपर्व पूर्ण होनेपर ब्राह्मणोंको हविष्यका भोजन कराये। फिर आश्वमेधिकपर्वमें पहुँचकर सबकी रुचिके अनुकूल भोजन दे ॥ ६८ ॥

तथाऽऽश्रमनिवासे तु हविष्यं भोजयेद् द्विजान्।
मौसले सार्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनम् ॥ ६९ ॥

आश्रमवासिकपर्वमें ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन कराये। मौसलपर्वमें सर्वगुणसम्पन्न अन्न तथा गन्ध, माला और अनुलेपनका दान करे ॥ ६९ ॥

महाप्रास्थानिके तद्वत् सर्वकामगुणान्वितम्।
स्वर्गपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद् द्विजान् ॥ ७० ॥

उसी प्रकार महाप्रस्थानिकपर्वमें समस्त मनोवाञ्छित गुणोंसे सम्पन्न अन्नका तथा स्वर्गारोहणपर्वमें हविष्यका ब्राह्मणोंको भोजन कराये ॥ ७० ॥

हरिवंशसमाप्तौ तु सहस्रं भोजयेद् द्विजान्।
गामेकां निष्कसंयुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ७१ ॥

हरिवंशकी समाप्ति होनेपर एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा स्वर्णपदकसे युक्त एक गौका ब्राह्मणको दान करे ॥ ७१ ॥

तदर्धेनापि दातव्या दरिद्रेणापि पार्थिव।
प्रतिपर्वसमाप्तौ तु पुस्तकं वै विचक्षणः ॥ ७२ ॥
सुवर्णेन च संयुक्तं वाचकाय निवेदयेत्।

पृथ्वीनाथ! दरिद्रको भी पूरा नहीं तो आधा दान अवश्य करना चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्य प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर वाचकको सुवर्णयुक्त पुस्तक अर्पित करे ॥७२½॥

हरिवंशे पर्वणि च पायसं तत्र भोजयेत् ॥ ७३ ॥
श्लोकं वा श्लोकपादं वा अक्षरं वा नृपात्मज।
शृणुयादेकचित्तस्तु स विष्णुदयितो भवेत् ॥ ७४ ॥

हरिवंशपर्वमें ब्राह्मणोंको खीर भोजन कराये। राजकुमार! जो एकाग्रचित्त होकर हरिवंशके एक श्लोक, एक चरण अथवा एक अक्षरका भी श्रवण करता है, वह भगवान् विष्णुका प्रिय भक्त होता है ॥ ७३-७४ ॥

व्यासं चैव सपत्नीकं पूजयेच्च यथाविधि।
लक्ष्मीनारायणं देवं पूजितं तं च पूजयेत् ॥ ७५ ॥

कथावाचक व्यासकी उसकी पत्नीके साथ विधिवत् पूजा करे। इससे भगवान् लक्ष्मीनारायणका पूजन हो जाता है। फिर पूर्वपूजित भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी भी पूजा करे ॥७५॥

वाचकं पूजयेद् यस्तु भूमिवस्त्रसुधेनुभिः।
विष्णुः सम्पूजितस्तेन स साक्षाद् देवकीसुतः ॥७६॥

जो भूमि, वस्त्र और उत्तम धेनु देकर वाचककी पूजा करता है, उसके द्वारा साक्षात् विष्णुस्वरूप देवकीनन्दन श्रीकृष्णका पूजन सम्पन्न हो जाता है ॥ ७६ ॥

पारणे पारणे राजन् यथावद् भरतर्षभ।
समाप्य सर्वाः प्रयतः संहिताः शास्त्रकोविदः ॥ ७७ ॥
शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृतः।
शुक्लाम्बरधरः श्रीमाञ्छुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः ॥ ७८ ॥
अर्चयेत् तं यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक्।
संहितापुस्तकान् राजन् प्रयतः शिष्टसम्मतः ॥७९॥

राजन्! भरतवंशावतंस जनमेजय! शास्त्रज्ञ पुरुष इन्द्रिय-संयमपूर्वक यथोचित रूपसे सम्पूर्ण महाभारत-संहिताको (हरिवंशसहित) पूर्ण करके प्रत्येक पारणामें वाचकको शुभ स्थानमें बैठाकर रेशमी वस्त्र अथवा शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण करके शोभा-सम्पन्न, पवित्र एवं अलंकृत हो यथोचित रीतिसे पृथक्-पृथक् गन्ध, माल्य आदि अर्पित करके उस वाचककी पूजा करे। राजन्! संयतचित्त एवं शिष्ट पुरुषोंद्वारा सम्मानित पुरुष संहिताकी पुस्तकोंका भी पूजन करे ॥ ७७–७९ ॥

भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च कामैश्च विविधैः शुभैः।
हिरण्यं गां च वस्त्रं च दक्षिणामथ दापयेत् ॥ ८० ॥

वाचकको उत्तमोत्तम भक्ष्य-भोज्य पदार्थ, पेय रस आदि तथा नाना प्रकारकी शुभ मनोवाञ्छित वस्तुओंके साथ सुवर्ण, गौ, वस्त्र तथा दक्षिणा समर्पित करे ॥ ८० ॥

सर्वत्र त्रिपलं स्वर्णं दातव्यं प्रणतात्मना।
तदर्धं पादशेषं वा वित्तशाठ्यविवर्जितम् ॥ ८१ ॥

सभी पारणाओंमें प्रणतभावसे तीन पल (तीन भर) सुवर्ण देना चाहिये। इतना सम्भव न हो तो सवा दो भर या डेढ़ भर अवश्य दे। धन रहते हुए कंजूसी न करे ॥ ८१ ॥

यद् यदेवात्मनोऽभीष्टं तत् तद् देयं द्विजातये।
सर्वथा तोषयेद् भक्त्या वाचकं गुरुमात्मनः।
देवताः कीर्तयेत् सर्वा नरनारायणौ तथा ॥ ८२ ॥

जो-जो वस्तु अपनेको अभीष्ट हो, उसी-उसीका ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। वाचक अपना गुरु है, अतः भक्तिभावसे उसको सर्वथा संतुष्ट करे। उस समय सम्पूर्ण देवताओंका तथा नर-नारायणका कीर्तन करे ॥ ८२ ॥

ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृतद्विजोत्तमान्।
तर्पयेद् विविधैः कामैर्दानैश्चोच्चावचैस्तथा ॥ ८३ ॥

तदनन्तर गन्ध, माल्य आदिसे भलीभाँति अलंकृत किये गये श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार नाना प्रकारके कमनीय पदार्थ तथा अनेक प्रकारके छोटे-बड़े दान देकर तृप्त करे ॥ ८३ ॥

अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
प्राप्नुयाच्च क्रतुफलं तथा पर्वणि पर्वणि ॥ ८४ ॥

ऐसा करनेवाला मनुष्य अतिरात्र यज्ञका फल पाता है। प्रत्येक पर्वपर ऐसा करनेसे यज्ञ-फलकी प्राप्ति होती है ॥८४॥

वाचको भरतश्रेष्ठ व्यक्ताक्षरपदस्वरः।
भविष्यं श्रावयेद् विप्रान् भारतं भरतर्षभ ॥ ८५ ॥

भरतकुलतिलक जनमेजय! वाचकको चाहिये कि वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुस्पष्ट अक्षर, पद एवं स्वरके साथ ब्राह्मणोंके। भविष्यपर्व एवं भारतका श्रवण कराये ॥ ८५ ॥

भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु यथावत् सम्प्रदापयेत्।
वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम् ॥ ८६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके भोजन कर लेनेपर वाचकको भी भोजन कराकर उसे भलीभाँति अलंकृत करके यथोचित रूपसे दक्षिणा दे ॥ ८६ ॥

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा।
ब्राह्मणेषु च तुष्टेषु प्रसन्नाः सर्वदेवताः ॥ ८७ ॥

वाचकके संतुष्ट होनेपर परम उत्तम मङ्गलमयी प्रीति प्राप्त होती है। अन्य ब्राह्मणोंके संतुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ८७ ॥

ततो हि भरणं कार्यं द्विजानां भरतर्षभ।
सर्वकामैर्यथान्यायं साधुभिश्च यथाक्रमम् ॥ ८८ ॥

भरतभूषण ! तत्पश्चात् यथोचित रूपसे सब प्रकारके उत्तम, मनोवाञ्छित पदार्थ देकर क्रमशः सभी द्विजोंका भरण-पोषण करना चाहिये ॥ ८८ ॥

इत्येष विधिरुद्दिष्टो मया ते द्विपदां वर।
श्रद्दधानेन वै भाव्यं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ८९ ॥

नरश्रेष्ठ ! तुमने मुझसे जो पूछा था, उसके अनुसार मैंने तुमसे महाभारत और हरिवंश सुननेकी यह विधि बतायी है। तुम्हें इसपर श्रद्धा करनी चाहिये ॥ ८९ ॥

भारतश्रवणे राजन् पारणे च नृपोत्तम।
सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता ॥ ९० ॥

राजन् ! नृपश्रेष्ठ ! जो परम कल्याणकी इच्छा रखता हो, उसे हरिवंशसहित महाभारत सुनने और उसकी पारणा पूरी करनेके लिये सदा यत्नशील रहना चाहिये ॥ ९० ॥

भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत्।
भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः ॥ ९१ ॥

प्रतिदिन भारतका श्रवण करे। नित्य-प्रति भारतका कीर्तन करे। जिसके घरमें महाभारतकी पुस्तक है, उसके हाथमें विजय है ॥ ९१ ॥

भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः।
भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परिकीर्तयेत् ॥ ९२ ॥

भारत परम पुण्यमय ग्रन्थ है। भारतमें नाना प्रकारकी कथाएँ हैं। देवतालोग भी भारतका सेवन करते हैं, अतः भारतका अवश्य कीर्तन करे ॥ ९२ ॥

भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ।
भारतात् प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ९३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! भारत सम्पूर्ण शास्त्रोंमें उत्तम है। भारतके अनुशीलनसे मोक्ष प्राप्त होता है। यह मैं तुम्हें तत्त्वकी बात बता रहा हूँ ॥ ९३ ॥

महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम्।
ब्राह्मणं केशवं चापि कीर्तयन् नावसीदति ॥ ९४ ॥

जो महाभारत इतिहास, पृथ्वी, गौ, सरस्वती, ब्राह्मण और भगवान् श्रीकृष्णका कीर्तन करता है, वह कभी कष्टमें नहीं पड़ता ॥ ९४ ॥

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥ ९५ ॥

भरतभूषण ! वेद, रामायण तथा पवित्र महाभारतके आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र श्रीहरिका गान किया जाता है ॥ ९५ ॥

यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः।
तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता ॥ ९६ ॥

जो इस लोकमें परम पदकी इच्छा रखना हो, उस मनुष्यको चाहिये कि जिसमें भगवान् विष्णुकी दिव्य कथाएँ और सनातन श्रुतियाँ हैं, उस महाभारत एवं हरिवंशका वह श्रवण करे ॥ ९६ ॥

एतत् पवित्रं परममेतद् धर्मनिदर्शनम्।
एतत् सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता ॥ ९७ ॥

यह परम पवित्र है। यह धर्मका निरूपण करनेवाला शास्त्र है तथा यह समस्त उत्तम गुणोंसे युक्त है। अतः कल्याण-कामी पुरुषको इसका श्रवण करना चाहिये ॥ ९७ ॥

क्रियतेऽसारसंसारे वाञ्छितस्यैव कारणम्।
हरिवंशस्य श्रवणमिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ९८ ॥

इस असार संसारमें हरिवंशका श्रवण सभी मनोरथोंकी पूर्ति करनेवाला है, इसलिये श्रेष्ठ पुरुष इसका श्रवण करते हैं। ऐसा द्वैपायन वेदव्यासका कथन है ॥ ९८ ॥

अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा।
यत् फलं प्राप्यते पुंभिस्तद्धरेर्वंशपारणात् ॥ ९९ ॥

एक हजार अश्वमेध और एक सौ वाजपेय यज्ञ करनेसे मनुष्योंको जो फल प्राप्त होता है, वह हरिवंशका पारायण करनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है ॥ ९९ ॥

अजरममरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं
सगुणमगुणमाद्यं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम्।
निरुपममनुमेयं योगिनां ज्ञानगम्यं
त्रिभुवनगुरुमीशं त्वां प्रपन्नोऽस्मि विष्णो ॥१००॥

विष्णो ! आप अजर, अमर, एक (अद्वितीय), ध्यान करने योग्य, अनादि, अनन्त, सगुण, निर्गुण, सबके आदि-कारण, स्थूल, अत्यन्त सूक्ष्म, उपमारहित, अनुमानके योग्य, योगियोंके लिये ज्ञानगम्य, तीनों लोकोंके गुरु तथा ईश्वर हैं, अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ १०० ॥

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वेषां वाञ्छिता अर्था भवन्त्वस्य च पारणात्॥ १०१॥

इस ग्रन्थके नियमपूर्वक पठन एवं श्रवणसे सब लोग दुर्गम संकटोंसे पार हो जायँ, सब कल्याणका दर्शन करें तथा सबके मनोवाञ्छित अर्थ सिद्ध हो जायँ ॥ १०१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि श्रवणफलकथने द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें महाभारत और हरिवंशके श्रवणके फलका वर्णनविषयक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३२ ॥

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रिपुर-वधकी कथा

जनमेजय उवाच

कथमेषां वधो ब्रह्मन्नेतेषां त्र्यक्षाद् वधमहं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
त्रयाणां पुरसंज्ञानां खेचराणां समासतः॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! दैत्योंके जो आकाशमें विचरनेवाले तीन पुर थे, उनका त्रिनेत्रधारी महादेवजीके हाथसे किस प्रकार वध हुआ? इस प्रसङ्गको मैं ठीक-ठीक और संक्षेपसे सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु विस्तरतः सर्वं यन्मां पृच्छसि नैधनम्।
दैत्यानां बाहुबलिनां सर्वप्राणिविरोधिनाम्॥ २ ॥
शंकरेण वधं राजञ्शूलैस्त्रिभिरजिह्मगैः।
कृतं पुरासुरेन्द्राणां सर्वभूतवधैषिणाम्॥ ३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! जो समस्त प्राणियोंके विरोधी थे, उन बाहुबलशाली दैत्योंका भगवान् शङ्करके हाथ किस प्रकार निधन हुआ? यह जो तुम मुझसे पूछते हो, यह सारा प्रसङ्ग विस्तारपूर्वक सुनो—पूर्वकालमें सम्पूर्ण प्राणियोंके वधकी इच्छावाले उन असुरेन्द्रोंका वध भगवान् शिवने अपने सीधे जानेवाले तीन शूलोंद्वारा किया था॥२-३॥

त्रिपुरं पुरुषव्याघ्र बृहद्धातुसमीरितम्।
विक्रामति नभोमध्ये मेघवृन्दमिवोत्थितम्॥ ४ ॥

नरव्याघ्र! वे तीनों पुर बृहद् (बहुमूल्य एवं महान्) धातुओंसे निर्मित हुए थे। वे आकाशमें उमड़े हुए मेघ-समूहोंकी भाँति प्रकट होकर सर्वत्र विचरते थे ॥ ४ ॥

प्राकारेण प्रवृद्धेन काञ्चनेन विराजता।
मणिभिश्च प्रकाशद्भिः सर्वरत्नैश्च तोरणैः॥ ५ ॥
बभासे नभसो मध्ये श्रिया परमया ज्वलत्।
गन्धर्वाणामिवोदग्रं कर्मणा साधितं पुरम्॥ ६ ॥

सुवर्णनिर्मित ऊँचे विशाल एवं प्रकाशमान परकोटेसे उद्दीप्त होनेवाली मणियोंसे तथा सर्वरत्नमय फाटकोंसे वे तीनों पुर आकाशमण्डलमें चमकते रहते थे। वे अपनी उत्कृष्ट प्रभासे प्रज्वलित हो रहे थे। तपस्यारूपी कर्मसे साधित हुए वे भयंकर पुर गन्धर्वोंके नगर-से जान पड़ते थे ॥ ५-६ ॥

वाजिनः पक्षसंयुक्ता वहन्ति बलदर्पिताः।
पुरं प्रभाकरश्रेष्ठं मनोभिः कामबृंहणैः॥ ७ ॥

बलके अभिमानसे युक्त, पङ्खवाले घोड़े सूर्यसे भी अधिक प्रकाशमान उस पुरको इच्छानुसार बढ़नेवाले मनके तुल्य वेगसे ढोया करते थे ॥ ७ ॥

धावन्ति ह्रेषमाणास्ते विक्रमैः प्राणसम्भृतैः।
आहूयत इवाकाशं खुरैः श्यामदलप्रभैः॥ ८॥

सारी प्राणशक्ति लगाकर संचित किये गये बल-विक्रमसे जब वे घोड़े हिनहिनाते हुए दौड़ते थे, उस समय उनकी काली टापोंसे आकाश आहूत होता-सा प्रतीत होता था॥

वायुवेगसमैर्वेगैः कालयन्त इवाम्बरम्।
असुराः समदृश्यन्त चक्षुर्भिर्विदितात्मभिः॥ ९॥
ऋषिभिर्ज्वलनप्रख्यैस्तपसा दग्धकिल्बिषैः।

जिन्होंने तपस्यासे सारे पापोंको दग्ध कर दिया था तथा जो अग्निके समान तेजस्वी थे, वे आत्मज्ञानी महर्षि ही अपने नेत्रोंद्वारा उन असुरोंको देख पाते थे। वे वायुके समान वेगसे समूचे आकाशको अपना ग्रास बनाते हुए-से जान पड़ते थे॥

गीतवादित्रबहुलं गन्धर्वनगरोपमम्॥ १०॥
चित्रायुधसमाकीर्णैः प्रतप्तकनकप्रभैः।
भवनैर्बहुभिश्चैव प्रांशुभिः समलंकृतैः॥ ११॥
देवेन्द्रभवनाकारैः शुशुभे तन्महाद्युति।

उन पुरोंमें प्रायः गीत और वाद्यके समारोह होते रहते थे। वे गन्धर्वनगरके समान प्रतीत होते थे। विचित्र आयुधोंसे भरे हुए, तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् तथा विविध अलंकारोंसे अलंकृत बहुसंख्यक ऊँचे भवन, जो देवराज इन्द्रके भवनकी भाँति सुशोभित होते थे, उन महातेजस्वी पुरोंकी शोभा बढ़ाते थे ॥ १०-११½ ॥

प्रासादाग्रैः प्रवृद्धैश्च कैलासशिखरप्रभैः॥ १२॥
शुशुभे दैत्यनगरं बहुसूर्यमिवाम्बरम्।

कैलासके शृङ्गोंकी भाँति प्रकाशित होनेवाले बड़े-बड़े प्रासादशिखरोंसे युक्त दैत्योंका वह नगर अनेक सूर्योंसे प्रकाशित आकाशके समान सुशोभित होता था ॥ १२½ ॥

वरार्ट्टालकसम्पन्नं तप्तकाञ्चनसप्रभम्॥ १३॥
प्रदीप्तमिव तेजोभी रराजाथ महाप्रभो।

महाराज! बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओंसे सम्पन्न, तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् तथा तेजसे प्रज्वलित-सा वह दैत्य-नगर बड़ी शोभा पाता था ॥ १३½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्ष्वेडितोत्क्रुष्टबहुलं सिंहनादविनादितम् ॥ १४ ॥
बभौ वल्गुजनाकीर्णं वनं चैत्ररथं यथा।

वहाँ गर्जना और कोलाहल अधिक होते थे। वह नगर वीरोंके सिंहनादसे गूँजता रहता था। मनोहर स्त्री-पुरुषोंसे भरा होनेके कारण वह चैत्ररथ नामक वनके समान सुशोभित होता था ॥ १४½ ॥

समुच्छ्रितपताकं तदसिभिश्च विराजितम् ॥ १५ ॥
रराज त्रिपुरं राजन् महाविद्युदिवाम्बरे।

राजन्! ऊँची-ऊँची पताकाओंसे सुशोभित तथा चमचमाती हुई तलवारोंसे प्रकाशित वह त्रिपुर नामक नगर आकाशमें विशाल विद्युत्के समान उद्भासित होता था ॥

सूर्यनाभश्च दैत्येन्द्रश्चन्द्रनाभश्च भारत ॥ १६ ॥
तथान्ये च महावीर्या दानवा बलदर्पिताः।

भारत! उस नगरमें दैत्यराज सूर्यनाभ, चन्द्रनाभ तथा अन्य महापराक्रमी बलाभिमानी दानव रहते थे ॥ १६½ ॥

ममृदुश्च बभञ्जुश्च मोहिताः परमेष्ठिना ॥ १७ ॥
पन्थानं देवगमनं पितृयानं च भारत।

भारत! वे अभिमानसे मोहित होकर ब्रह्माजीके बनाये हुए देवयान और पितृयान मार्गको तोड़ने-फोड़ने एवं नष्ट करने लगे ॥ १७½ ॥

तैरेवमसुराग्रैश्च प्रगृहीतशरासनैः ॥ १८ ॥
दानवैर्नरशार्दूल देवयाने महापथे।
पितृवह्निबलोपेते हृते भरतसत्तम ॥ १९ ॥
ब्रह्माणमभ्यधावन्त सर्वे सुरगणास्तथा।
विवर्णवदना दीनाश्छिन्ने वै गतिकर्मणि ॥ २० ॥

पुरुषसिंह! भरतवंशशिरोमणे! इस प्रकार हाथमें धनुष लेकर उन श्रेष्ठ असुरों और दानवोंने जब अग्निबलसे युक्त देवयान और पितरोंके बलसे युक्त पितृयान नामक महामार्गका अपहरण कर लिया, तब समस्त देवगण ब्रह्माजीके पास दौड़े गये। उनका मुख उदास हो गया था। वे दोनों मार्गोंके नष्ट होनेसे गमन-कर्मका उच्छेद हो जानेके कारण अत्यन्त विवर्ण (शोकाकुल) हो रहे थे ॥ १८—२० ॥

अब्रुवंश्च गताः स्थित्वा स्वरेणार्तनिनादिना।
हन्यामहे शत्रुगणैर्भागोच्छेदेन भागद ॥ २१ ॥

वे ब्रह्माजीके सामने खड़े होकर आर्तनादयुक्त स्वरसे बोले—'देवताओंको भाग देनेवाले पितामह! शत्रुगण हमारे यज्ञभागका उच्छेद करके हमें मार रहे हैं ॥ २१ ॥

तेषां चैव वधोपायं वदस्व वदतां वर।
यं ज्ञात्वा बाहुबलिनो बाधेम समरे परान् ॥ २२ ॥

'वक्ताओंमें श्रेष्ठ! उन दैत्योंके वधका कोई उपाय बताइये, जिसे जानकर हम बाहुबलशाली देवता समरमें शत्रुओंको पीड़ित कर सकें ॥ २२ ॥

सान्त्वयित्वा तु वरदो ब्रह्मा प्रोवाच देवताः।
शृणुध्वं देवताः सर्वाः शत्रुप्रतिकृतिं पराम् ॥ २३ ॥
अवध्या दानवाः सर्वे ऋते शंकरमव्ययम्।

तब वरदायक ब्रह्माजीने उन देवगणोंको सान्त्वना देकर उनसे कहा—'देवताओ! तुम सब लोग शत्रुओंसे बदला लेनेका उत्तम उपाय सुनो—वे समस्त दानव अविनाशी भगवान् शङ्करके सिवा दूसरेके लिये अवध्य हैं' ॥ २३½ ॥

प्रतिगृह्य च तद् वाक्यं मनोभिर्वाग्भिरेव च ॥ २४ ॥
भूमौ प्रपेदिरे सर्वे सह रुद्रैश्च भारत।

भरतनन्दन! उनके उस वचनको मन और वाणीद्वारा स्वीकार करके सब देवता रुद्रगणोंके साथ पृथ्वीपर आये ॥

विन्ध्यपादे च मेरौ च मध्ये च पृथिवीतले ॥ २५ ॥
तपसोग्रेण योगज्ञाः सर्वे ते मुनयोऽभवन्।
काश्यपेयं हरं प्राप्ता जपन्तो ब्रह्मसंहिताम् ॥ २६ ॥

वे विन्ध्य और मेरुपर्वतकी तलैटीमें तथा भूतलके मध्यभागमें उग्र तपस्या करते हुए सब-के-सब योगज्ञ मुनि हो गये और ब्रह्मसंहिता (प्रणव) का जप करते हुए कश्यपनन्दन हरकी शरणमें गये ॥ २५-२६ ॥

तेषां च परदाराणामभवद् वन्ध्यता जने।
विन्यस्तदर्भनिचये ताम्रलोहं च भूषणम् ॥ २७ ॥

उनके लिये जनसमुदायमें परायी स्त्रियाँ वन्ध्य—निष्फल अर्थात् मोह उत्पन्न करनेमें असमर्थ थीं। वे कुशकी चटाई बिछाकर उसीपर सोते थे। ताँबा और लोहा ही उनका आभूषण था ॥ २७ ॥

परिधानानि चर्माणि मृदूनि च शुभानि च।
स्वयं मृतानां कृष्णानां मृगाणां कुरुसत्तम ॥ २८ ॥
गृहीतानि विमुक्तानि देहेभ्यो वनचारिणाम्।

कुरुश्रेष्ठ! स्वयं मरे हुए वनचारी काले मृगोंके शरीरोंसे उधेड़कर लिये गये सुन्दर और कोमल मृगचर्म एवं बाघम्बर ही उनके पहननेके वस्त्र थे ॥ २८½ ॥

अन्तरिक्षमथोपेत्य विविशुर्मायया ऽऽवृताः ॥ २९ ॥
हरालयं सुराः सर्वे व्याघ्रचर्मनिवासिनः।
प्रणिपत्याथ ते दीना भगवन्तं जगत्पतिम् ॥ ३० ॥
सुव्यक्तेनाभिधानेन प्रभाषन्त हरं ततः।

व्याघ्रचर्म धारण करके मायासे अपनेको छिपाकर समस्त देवता आकाशमार्गका आश्रय ले भगवान् शङ्करके धाममें जा पहुँचे और उन भगवान् विश्वनाथ हरको प्रणाम करके स्पष्ट शब्दोंमें उनसे बोले—॥ २९-३०½ ॥

हविर्दत्तमविज्ञानाद् भस्मच्छन्नेषु वह्निषु ॥ ३१ ॥
वरदानं वृथास्मासु भगवन् विमुखे त्वयि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथादेशं यथाकालं क्रियतां ब्रह्मणो वचः ॥ ३२ ॥
यदुक्तं देवदेवेन खेचराणां समीपतः ।

'भगवन्! आपने हमारी ओरसे मुँह फेर लिया है, इसलिये जैसे राखसे ढकी हुई आगमें अज्ञानवश दी हुई आहुति निष्फल हो जाती है, उसी प्रकार हमें मिला हुआ वरदान व्यर्थ हो गया है। अतः देवाधिदेव ब्रह्माजीने आकाश-चारी देवताओंके समीप जो बात कही थी, उनके उस वचन-का आप देश-कालके अनुसार पालन करें' ॥ ३१-३२½ ॥

एवं देववचोभिश्च भाविनोऽर्थस्य वैभवात् ॥ ३३ ॥
समनह्यन्महादेवो देवैः सह सवासवैः ।

इस प्रकार देवताओंके कहनेसे तथा भावी कार्यके प्रभावसे प्रेरित हो इन्द्र आदि देवताओंके साथ महादेवजी कवच बाँधकर युद्धके लिये तैयार हो गये ॥ ३३½ ॥

आदित्यपथमास्थाय संनद्धाः समलंकृताः ॥ ३४ ॥
सर्वे काञ्चनवर्णाभा बभुर्दीप्ता इवाग्नयः ।

वे सब-के-सब कवच और अलंकार धारण करके सुवर्णकी-सी कान्तिसे प्रकाशित हो सूर्यके मार्गका आश्रय ले प्रज्वलित अग्नियोंके समान उद्भासित होने लगे ॥ ३४½ ॥

रुद्रेण सहिता रुद्रा दहन्त इव तेजसा ॥ ३५ ॥
संनद्धाः कुशलाः सर्वे प्रांशवः पर्वता इव ।

महादेवजीके साथ कवच बाँधकर युद्धकुशल समस्त रुद्रगण अपने तेजसे शत्रुओंको दग्ध से करने लगे। वे पर्वतोंके समान ऊँचे दिखायी देते थे ॥ ३५½ ॥

विश्वे विश्वेन वपुषा बलिनः कामरूपिणः ॥ ३६ ॥
समनह्यन्महात्मानो दानवान्तं विधित्सवः ।

दानवोंका अन्त करनेकी इच्छावाले वे सभी महात्मा बलवान् तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे। वे अपने विश्वमय शरीरसे कवच बाँधकर युद्धके लिये तैयार हो गये ॥

एभिः सहधनाध्यक्षैः समन्तात् परिवारितः ॥ ३७ ॥
त्रिपुरं योधयत् त्र्यक्षः प्रगृह्य सशरं धनुः ।

कुबेरसहित इन समस्त देवताओंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए त्रिनेत्रधारी महादेवने धनुष-बाण लेकर त्रिपुरवासियोंके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ ३७½ ॥

अथ दैत्या भिन्नदेहाः पुराट्टालं गता इव ॥ ३८ ॥
न्यपतन्त विदेहास्ते विशीर्णा इव पर्वताः ।

तदनन्तर जैसे नगरकी अट्टालिकापर चढ़े हुए लोग गिरते हों, उसी प्रकार वे त्रिपुरवासी दैत्यगण अपने शरीरोंके विदीर्ण हो जानेसे देहरहित हो जीर्ण-शीर्ण हुए पर्वतोंके समान उस नगरसे नीचे गिरने लगे ॥ ३८½ ॥

अतिवृद्धाः सुविद्राश्च रणमध्यगता नृप ॥ ३९ ॥
न्यपतन् दैत्यसंघाता वज्रेणेव हता नगाः ।

नरेश्वर! समराङ्गणमें आये हुए दैत्यसमूह अत्यन्त घायल और क्षत-विक्षत हो वज्रके मारे हुए पर्वतोंके समान धराशायी होने लगे ॥ ३९½ ॥

असिभिश्च हता देवैः शक्तिचक्रपरश्वधैः ॥ ४० ॥
बाणैश्च भिन्नमर्माणो दैत्येन्द्रा युद्धगोचरे ।
प्रपेतुः सहिता उर्व्यां छिन्नपक्षा इवाचलाः ॥ ४१ ॥

देवताओंके खड्गों, शक्तियों, चक्रों, फरसों और बाणोंसे युद्धस्थलमें मारे गये उन दैत्यराजोंके मर्म विदीर्ण हो गये और वे पंख कटे हुए पर्वतोंके समान एक साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४०-४१ ॥

तत्र संज्ञां विमुञ्चन्ति दीप्यमानेन तेजसा ।
एवं तेऽन्योन्यसम्बाधे क्षीयन्ते क्षयकर्मणा ॥ ४२ ॥
नोपालभ्यन्त चक्षुर्भ्यामपि दिव्येन चक्षुषा ।

देवताओंके बढ़ते हुए तेजसे दग्ध हो वे दैत्य वहाँ अपनी सुध-बुध खोने लगे। इस प्रकार वे देवता और दैत्य एक-दूसरेको बाधा देते हुए युद्धरूपी क्षयकर्मसे क्षीण होने लगे। दैत्योंके दोनों नेत्रोंसे तथा दिव्य दृष्टिसे देखनेपर भी उस समय देवता उनकी पकड़में नहीं आते थे ॥ ४२½ ॥

अस्तं प्राप्ते दिनकरे सुरेन्द्रास्ते निशामुखे ।
छिन्नभिन्नक्षतमुखा निपेतुर्वसुधातले ॥ ४३ ॥

सूर्यके अस्त हो जानेपर प्रदोषकालमें (सबल हुए दैत्योंके आक्रमणसे) उन देवेश्वरोंके मुख छिन्न-भिन्न एवं क्षत-विक्षत हो गये तथा वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४३ ॥

अथ दैत्या जयं प्राप्ता निशायां निशितैः शरैः ।
विनेदुर्विपुलैर्नादैर्मेघा इव महारवाः ॥ ४४ ॥

रातमें अपने तीखे बाणोंसे विजयको प्राप्त हुए दैत्यगण महान् सिंहनाद करते हुए जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले मेघों-की भाँति बड़ा भारी कोलाहल मचाने लगे ॥ ४४ ॥

जयप्राप्त्यासुराश्चैव तेऽन्योन्यमभिजल्पिरे ।
त्रासितास्त्रिदशाः सर्वे संग्रामजयकाङ्क्षिणः ॥ ४५ ॥
अस्माभिर्बलसम्पन्नैः सह प्रासासितोमरैः ।

विजयकी प्राप्तिसे उत्साहित हुए वे असुर आपसमें कहने लगे—'संग्राममें विजयकी इच्छा रखनेवाले समस्त देवताओंको हम बलवान् दैत्योंने संगठित होकर प्रास, खड्ग और तोमरोंसे भयभीत कर दिया' ॥ ४५½ ॥

विरेजुश्च जयं प्राप्ता उशनोहव्यबोधिताः ॥ ४६ ॥
समरे बलसम्पन्नाः सायुधा दैत्यसत्तमाः ।

शुक्राचार्यके हविष्यसे सजग एवं बलसम्पन्न हुए विजयी दैत्यशिरोमणि समराङ्गणमें आयुधोंसहित बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ४६½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुरैश्च सहितः सर्वैं रथमास्थाय शंकरः ॥ ४७ ॥
दर्पितान् निनदन् दैत्यान् प्रदहन्निव तेजसा ।

तब दर्पमें भरे हुए उन दैत्योंको अपने तेजसे दग्ध-से करते हुए भगवान् शङ्कर समस्त देवताओंके साथ रथपर बैठकर गर्जना करने लगे ॥ ४७½ ॥

युगान्तकाले विततेे रश्मिवानिव निर्दहन् ॥ ४८ ॥
सर्वभूतानि भूताग्र्यः प्रलये समुपस्थिते ।

जैसे युगान्तकाल आनेपर अंशुमाली सूर्य सम्पूर्ण लोगोंको दग्ध करने लगते हैं तथा प्रलय उपस्थित होनेपर भूतनाथ भगवान् रुद्र सम्पूर्ण भूतोंका संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार वे अपने तेजसे दैत्योंको दग्ध करने लगे ॥ ४८½ ॥

स रथो वाजिभिः शीघ्रैरुह्यमानो मनोजवैः ॥ ४९ ॥
विबभौ नभसो मध्यं सविद्युदिव तोयदः ।

मनके समान वेगशाली और शीघ्रगामी घोड़ोंके द्वारा खींचा जाता हुआ वह रथ आकाशके मध्यभागमें पहुँचकर विद्युत्सहित मेघकी भाँति प्रकाशित होने लगा ॥ ४९½ ॥

वृषभेण ध्वजाग्रेण गर्जमानेन भारत ॥ ५० ॥
भाति स्म स रथो राजन् सेन्द्रायुध इवाम्बुदः ।

भरतनन्दन ! नरेश्वर ! ध्वजके अग्रभागमें गर्जते हुए वृषभसे उपलक्षित होनेवाला वह रथ इन्द्रधनुषसहित मेघके समान शोभा पाने लगा ॥ ५०½ ॥

ततोऽम्बरगताः सिद्धास्तुष्टुवुर्वृषभध्वजम् ॥ ५१ ॥
कर्मभिः पूर्वजं पूर्वैः शुचिभिस्त्र्यम्बकं तदा ।

तदनन्तर आकाशमें उपस्थित हुए सिद्धोंने सबके पूर्वज त्रिनेत्रधारी भगवान् वृषभध्वजका उनके परम पवित्र पूर्वकर्मोंका उल्लेख करते हुए स्तवन किया ॥ ५१½ ॥

ऋषयश्च तपःशान्ताः सत्यव्रतपरायणाः ॥ ५२ ॥
अमृतप्राशिनश्चैव सुरसंघास्तथैव च ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गान्धर्वेण स्वरेण वै ॥ ५३ ॥
प्रहृष्टवदनाः सौम्याः पैत्र्ये स्थानान्तरे नृप ।

तपस्यासे शान्तिको प्राप्त हुए सत्यव्रतपरायण ऋषियों, अमृतभोजी देवसमूहों तथा गन्धर्वों और अप्सराओंने भी गान्धर्वस्वरसे उनकी स्तुति की । नरेश्वर ! पितृसम्बन्धी दूसरे स्थानपर खड़े हुए सौम्यस्वभाववाले देवताओंके मुखपर महान् हर्ष छा रहा था ॥ ५२-५३½ ॥

चयाट्टालकसम्पन्ने शतघ्नीशतसंकुले ॥ ५४ ॥
तस्मिंस्तु दैत्यनगरे सर्वभूतभयावहे ।
ततस्तु शरवर्षाणि मुमुचुर्दैत्यदानवाः ॥ ५५ ॥
सुराणामरयो मध्ये तीक्ष्णाग्राणि समन्ततः ।

तदनन्तर परकोटे और अट्टालिकाओंसे युक्त, सैकड़ों शतघ्नियों (तोपों) से व्याप्त तथा समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर उस दैत्यनगरके मध्यभागमें खड़े हुए देववैरी दैत्यों और दानवोंने सब ओरसे तीखे अग्रभागवाले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ५४-५५½ ॥

शतघ्नीभिश्च निघ्नन्तो भल्लैः शूलैश्च भारत ॥ ५६ ॥
ते चक्रिरे महत्कर्म दानवा युद्धकोविदाः ।

भारत ! वे युद्धकुशल दानव शतघ्नियों, भल्लों और शूलोंसे चोट करते हुए महान् पराक्रम प्रकट कर रहे थे ॥

गदाभिश्च गदा जघ्नुर्भल्लैर्भल्लांश्च चिच्छिदुः ॥ ५७ ॥
अस्त्रैरस्त्राण्यबाधन्त माया मायाभिरेव च ।

उन्होंने गदाओंसे गदाएँ तोड़ डालीं, भल्लोंसे भल्ल काट दिये, अस्त्रोंसे अस्त्रोंको बाधा पहुँचायी और मायाओंको मायाओंसे ही शान्त कर दिया ॥ ५७½ ॥

ततोऽपरे समुद्यम्य शरशक्तिपरश्वधान् ॥ ५८ ॥
अशनींश्च महाघोरानमुञ्चन्त सहस्रशः ।

तदनन्तर दूसरे दैत्योंने सहस्रों बाणों, शक्तियों, फरसों और महाभयंकर अशनियोंको उठाकर देवताओंपर चलाया ॥

असिभिर्मायाविहितैर्मृत्योर्विषयगोचरे ॥ ५९ ॥
ते वध्यमाना विबुधाः शरवर्षैरवस्थिताः ।
गन्धर्वनगराकारः सोऽसीदत् सहरो रथः ॥ ६० ॥

उनके मायानिर्मित खड्गों और बाण-वर्षाओंसे आहत होते हुए देवता मृत्युके पथपर खड़े थे और गन्धर्वनगरके समान आकारवाला महादेवजीका वह रथ उनके साथ ही बड़े सङ्कटमें पड़ गया ॥ ५९-६० ॥

हन्यमानोऽसुरगणैः प्रासासिशरतोमरैः ।
तैश्च दैत्यप्रहरणैर्गुरुभिर्भारसाहिभिः ।
चित्रैश्च बहुभिः शस्त्रैरतिष्ठत शचीपतिः ॥ ६१ ॥

उन असुरोंके प्रासों, खड्गों, बाणों और तोमरोंकी मार खाकर तथा दैत्योंके भार सहन करनेमें समर्थ, भारी, विचित्र और बहुसंख्यक अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित होकर शचीपति इन्द्र जहाँ-के-तहाँ खड़े रह गये ॥ ६१ ॥

ततो मध्ये दिव्यशब्दः प्रादुरासीन्महीपते ।
ऋषीणां ब्रह्मपुत्राणां महतामपि भारत ॥ ६२ ॥

पृथ्वीनाथ ! भरतनन्दन ! इसी बीचमें ब्रह्माजीके पुत्ररूप महर्षियोंका दिव्य शब्द प्रकट हुआ—॥ ६२ ॥

स एष शंकरस्याग्रे रथो भूमिं प्रतिष्ठितः ।
अजेयो जय्यतां प्राप्तः सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ ६३ ॥

'यह आगे चलनेवाला भगवान् शङ्करका रथ भूमिपर प्रतिष्ठित हो रहा है । यह अजेय होकर भी सब लोकोंके देखते-देखते जीतने योग्य हो गया' ॥ ६३ ॥

तस्मिन्निपतिते राजन् रथानां प्रवरे रथे ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निपेतुः सर्वभूतानि भूतले वसुधाधिप ॥ ६४ ॥

राजन्! वसुधापते! रथोंमें श्रेष्ठ भगवान् शङ्करके उस रथके पृथ्वीपर गिरते ही समस्त प्राणी भूतलपर आ गिरे ॥ ६४ ॥

विचेलुः पर्वताग्राणि चेलुश्चैव महाद्रुमाः।
विचुक्षुभुः समुद्राश्च न रेजुश्च दिशो दश ॥ ६५ ॥

पर्वतोंके शिखर हिलने लगे। बड़े-बड़े वृक्ष झोंके खाने लगे। समुद्रोंमें तूफान आ गया और दसों दिशाएँ श्रीहीन हो गयीं ॥ ६५ ॥

वृद्धाश्च ब्राह्मणास्तत्र जेपुश्च परमं जपम्।
यत् तद् ब्रह्ममयं तेजः सर्वत्र विजयैषिणाम् ॥ ६६ ॥
शान्त्यर्थं सर्वभूतानामिह लोके परत्र च।

वहाँ जो वृद्ध ब्राह्मण थे, वे उस परम उत्तम मन्त्रका जप करने लगे। जो सर्वत्र विजय चाहनेवाले पुरुषोंके लिये ब्रह्ममय तेजःस्वरूप है, वह तेज इहलोक और परलोकमें भी समस्त प्राणियोंको शान्ति प्रदान करनेवाला है ॥ ६६½ ॥

समाधायात्मनाऽऽत्मानं योगप्राप्तेन हेतुना ॥ ६७ ॥
रथन्तरेण साम्नाथ ब्रह्मभूतेन भारत।
तेजसा ज्वलयन् विष्णोस्त्र्यक्षस्य च महात्मनः ॥ ६८ ॥
सर्वेषां चैव देवानां बलिनां कामरूपिणाम्।
ऋषीणां तपसाऽऽढ्यानां वसतां विजने वने ॥ ६९ ॥
अथ विष्णुर्महायोगी सर्वतोदृश्य तत्त्वतः।
वृषरूपं समास्थाय प्रोज्जहार रथोत्तमम् ॥ ७० ॥

भारत! तदनन्तर उस तेजःस्वरूप महायोगी विष्णुने सब ओर दृष्टि डालकर अपने-आप ही मनको एकाग्र करके योगबलसे वृषरूप धर्मके स्वरूपका आश्रय ले ब्रह्मभूत रथन्तर सामके द्वारा महादेवजीके उस उत्तम रथको ऊपर उठाया। उस समय वे विष्णुदेव अपने, महात्मा त्रिनेत्रधारी शिवके, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सम्पूर्ण बलवान् देवताओंके तथा निर्जन वनमें वास करनेवाले तपोबलसम्पन्न महर्षियोंके तेजसे प्रकाशित हो रहे थे ॥ ६७–७० ॥

समाक्रान्तं देवगणैः समग्रबलपौरुषैः।
बलवांस्तोलयित्वा तु विषाणाभ्यां महाबलः।
ननाद प्राणयोगेन मथ्यमान इवार्णवः ॥ ७१ ॥

सम्पूर्ण बल-पौरुषसे सम्पन्न देवता जिसपर आरूढ़ थे, उस उत्तम रथको अपने दोनों सींगोंसे उठाकर वे महाबली श्रीहरि मथे जाते हुए समुद्रकी भाँति पूरी प्राणशक्तिसे गर्जना करने लगे ॥ ७१ ॥

तृतीयं वायुविषयं समाक्रम्य विषाणवान्।
ननाद बलवान् नादं समुद्र इव पर्वणि ॥ ७२ ॥

दो सींगोंसे युक्त वृषभरूपधारी बलवान् विष्णु तृतीय[1] वायु (उद्वह) के स्थानमें पहुँचकर पूर्णिमाके समुद्रकी भाँति जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ७२ ॥

ततो नादेन वित्रस्ता दैतेया युद्धदुर्मदाः।
पुनस्ते कृतसन्नाहा युयुधुः सुमहाबलाः ॥ ७३ ॥

तब उस गर्जनासे भयभीत हो वे महाबली रणदुर्मद दैत्य कवच बाँधकर पुनः युद्ध करने लगे ॥ ७३ ॥

सर्वे वै बाहुबलिनः समर्थबलपौरुषाः।
सुरसैन्यं प्रमर्दन्तः प्रगृहीतशरासनाः ॥ ७४ ॥

वे सब-के-सब बाहुबलशाली और समर्थ बल-पौरुषसे सम्पन्न थे। उन्होंने धनुष लेकर देवताओंकी सेनाका मर्दन करना आरम्भ किया ॥ ७४ ॥

अग्निं संधाय धनुषि शितं बाणं सुपत्रिणम्।
ब्रह्मास्त्रेणाभिसंयोज्य ब्रह्मदण्डं शिवोऽव्ययः।
मुमोच दैत्यनगरं त्रिधाशब्देन संज्ञितम् ॥ ७५ ॥

तब अविनाशी शिवने अपने धनुषपर सुन्दर पंखवाले और तीखे अग्नितुल्य तेजस्वी बाणको रखकर उसे ब्रह्मास्त्रसे संयुक्त किया, फिर उस ब्रह्मदण्डको उस त्रिपुर-संज्ञक दैत्य-नगरपर छोड़ दिया ॥ ७५ ॥

तं बाणं त्रिविधं वीर्यात् संधाय मनसा प्रभुः।
सत्येन ब्रह्मयोगेन तपसोग्रेण भारत ॥ ७६ ॥
मुमोच दैत्यनगरे सर्वप्राणहरान्छरान्।
दीप्तान् कनकवर्णाभान् सुवर्णांश्च सुनिर्मलान् ॥ ७७ ॥

भरतनन्दन! भगवान् शिवने मन-ही-मन उस बाणका सत्य, ब्रह्मयोग तथा उग्र तपस्याद्वारा बलपूर्वक तीन रूपोंमें संधान करके उस दैत्यनगरपर ऐसे बाण छोड़े, जो सबके प्राण हर लेनेवाले थे। वे बाण उद्दीप्त, सुवर्णकी-सी कान्ति-वाले, सुवर्णमय और अत्यन्त निर्मल थे ॥ ७६-७७ ॥

मुक्त्वा वरशरान् घोरान् सविषानिव पन्नगान्।
सुप्रदीप्तैस्त्रिभिर्बाणैर्वेगिभिस्तद्विदारितम् ॥ ७८ ॥

विषैले सर्पोंके समान उन श्रेष्ठ एवं भयंकर बाणोंको

---

१. महाभारत शान्तिपर्वके अध्याय ३२८ में श्लोक ३८ से ४० तक तृतीय वायुका परिचय इस प्रकार दिया गया है—जो सदा सोम, सूर्य आदि ग्रहोंका उदय एवं उद्भव करता है। मनीषी पुरुष शरीरके भीतर जिसे 'उदान' कहते हैं। जो चारों समुद्रोंसे जलको ऊपर उठाकर जीमूत नामक मेघोंमें स्थापित करता है तथा जीमूत नामक मेघोंको जलसे संयुक्त करके उन्हें पर्जन्यके हवाले कर देता है, वह महान् वायु 'उद्वह' कहलाता है। जो तृतीय मार्गपर चलनेके कारण तीसरा कहा गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छोड़कर तीन प्रज्वलित एवं वेगशाली बाणोंद्वारा उस दैत्य-नगरको विदीर्ण कर दिया ॥ ७८ ॥

शरघातप्रदीप्तानि विन्ध्याग्राणीव भारत।
गोपुराणि पुरैः सार्धं व्यशीर्यन्त नराधिप ॥ ७९ ॥

भरतनन्दन ! नरेश्वर ! बाणोंके आघातसे जलते हुए गोपुर विन्ध्यपर्वतके शिखरोंके समान उन तीनों पुरोंसहित भस्म होकर बिखर गये ॥ ७९ ॥

अग्निना सम्प्रदीप्तानि वह्निगर्भाणि भारत।
धरणीं सम्प्रपद्यन्त पुराणि वसुधाधिप ॥ ८० ॥

भारत ! पृथ्वीनाथ ! अग्निसे जलकर भीतर आग छिपाये हुए वे तीनों पुर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८० ॥

तानि वैदूर्यवर्णानि शिखराणि गिरेरिव।
शंकरेण प्रदग्धानि ब्रह्मास्त्रेणापतन्नृप ॥ ८१ ॥

नरेश्वर ! पर्वत-शिखरोंके समान वे वैदूर्य-वर्णवाले नगर भगवान् शङ्करके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध होकर नीचे गिर पड़े ॥ ८१ ॥

हते च त्रिपुरे देवैर्वाचो हर्षात् किलेरिताः।
सर्वाञ्जहीति शत्रूंस्त्वं प्रवृद्धान् पुरुषोत्तम ॥ ८२ ॥

त्रिपुरके नष्ट हो जानेपर देवताओंने बड़े हर्षसे यह बात कही—'पुरुषोत्तम ! आप ही सम्पूर्ण बढ़े हुए शत्रुओंको नष्ट कीजिये' ॥ ८२ ॥

विष्णुरेव महायोगी योगेन प्रस्मयन्निव।
स्तूयते ब्रह्मसदृशैर्ऋषिभिः शंकरेण च।
ब्रह्मणा सहितैर्देवैः सम्पन्नबलपौरुषैः ॥ ८३ ॥

इस प्रकार उस समय योगबलसे सम्पन्न एवं मुस्कराते हुए महायोगी विष्णुकी ही ब्रह्मतुल्य ऋषियोंने, भगवान् शङ्करने तथा बल-पौरुषसे सम्पन्न ब्रह्माजीसहित देवताओंने स्तुति की ॥ ८३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि त्रिपुरवधे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें त्रिपुरवधविषयक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३३ ॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

हरिवंशमें वर्णित वृत्तान्तोंका संग्रह

वैशम्पायन उवाच

हरिवंशेऽत्र वृत्तान्ताः प्रकीर्त्यन्ते क्रमोदिताः।
तत्रादावादिसर्गस्तु भूतसर्गस्ततः परः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय ! इस हरिवंशमें क्रमशः कहे गये वृत्तान्तोंका यहाँ संक्षेपसे कीर्तन किया जाता है—इसमें पहले (हरिवंशपर्वमें) आदिसृष्टिका वर्णन है, तत्पश्चात् भूतसृष्टिका वर्णन किया गया है ॥ १ ॥

पृथोर्वैन्यस्य चाख्यानं मनूनां कीर्तनं तथा।
वैवस्वतकुलोत्पत्तिर्धुन्धुमारकथा तथा ॥ २ ॥

फिर वेनके पुत्र पृथुकी कथा है। इसके बाद मनुओंका वर्णन, वैवस्वत मनुके कुलकी उत्पत्ति तथा धुन्धुमारकी कथा आयी है ॥ २ ॥

गालवोत्पत्तिरिक्ष्वाकुवंशस्याप्यनुकीर्तनम् ।
पितृकल्पस्तथोत्पत्तिः सोमस्य च बुधस्य च ॥ ३ ॥

फिर गालवकी उत्पत्ति, इक्ष्वाकुवंशका वर्णन, पितृकल्प (श्राद्ध) तथा सोम एवं बुधकी उत्पत्तिका प्रसंग है ॥ ३ ॥

अमावसोरन्वयस्य कीर्तनं कीर्तिवर्धनम्।
च्युतिप्रतिष्ठे शक्रस्य प्रसवः क्षत्रवृद्धजः ॥ ४ ॥

तदनन्तर अमावसुके वंशका वर्णन है, जो पढ़ने और सुननेवालेकी कीर्तिको बढ़ानेवाला है। इसके बाद इन्द्रके अपने स्थानसे च्युत होने और पुनः उसपर प्रतिष्ठित होनेका प्रसंग है। तत्पश्चात् क्षत्रवृद्धकी संततिका वर्णन आया है ॥ ४ ॥

दिवोदासप्रतिष्ठा च त्रिशङ्कोः क्षत्रियस्य च।
ययातिचरितं चैव पूरुवंशस्य कीर्तनम् ॥ ५ ॥

फिर दिवोदासकी प्रतिष्ठा, राजा त्रिशङ्कुकी कथा, ययातिका चरित्र और पूरुवंशका वर्णन है ॥ ५ ॥

कीर्तनं कृष्णसम्भूतेः स्यमन्तकमणेस्तथा।
संक्षेपात् कीर्तिता विष्णोः प्रादुर्भावास्ततः परम् ॥ ६ ॥

इसके बाद श्रीकृष्णके प्राकट्यका वर्णन है, फिर स्यमन्तकमणिकी कथा संक्षेपसे कही गयी है। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुके अवतार बताये गये हैं ॥ ६ ॥

तारकामययुद्धं च ब्रह्मलोकस्य वर्णनम्।
योगनिद्रासमुत्थानं विष्णोर्नाक्यं च वेधसः ॥ ७ ॥
पृथ्वीवाक्यं च देवानामंशावतरणं तथा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदनन्तर तारकामय युद्धका प्रसंग है। फिर ब्रह्मलोकका वर्णन है। भगवान् विष्णुके योगनिद्रासे उठनेकी कथा है। इसके बाद ब्रह्माजी और पृथ्वीके वचन हैं। तत्पश्चात् देवताओंके अंशावतरणकी कथा है ॥ ७½ ॥

ततो नारदवाक्यं च खप्नगर्भविधिस्तथा ॥ ८ ॥
आर्यास्तवः पुनः कृष्णसमुत्पत्तिः प्रपञ्चतः।
गोव्रजे गमनं विष्णोः शकटस्य निवर्तनम् ॥ ९ ॥
पूतनाया वधो भङ्गो यमलार्जुनयोरपि।
वृकसंदर्शनं चैव वृन्दावननिवेशनम् ॥ १० ॥

तदनन्तर (द्वितीय विष्णुपर्वमें) कंसके प्रति नारदजीका वचन, भगवान् विष्णुका जलमें सोये हुए षड्गर्भ नामक दैत्योंके जीवोंको खींचकर निद्रादेवीके हाथमें देना, आर्यादेवी-की स्तुति, श्रीकृष्णके अवतारका विस्तारपूर्वक वर्णन, उनका गौओंके व्रजमें गमन, छकड़ेको उलटना, पूतनाका वध करना, अर्जुन नामक जुड़वें वृक्षोंको तोड़ देना, गोपोंको भेड़ियोंका दर्शन तथा समस्त गोव्रजका वृन्दावनमें निवास—इन विषयोंका क्रमशः वर्णन है ॥ ८—१० ॥

प्रावृषो वर्णनं चापि यमुनाह्रददर्शनम्।
कालियस्यापि दमनं धेनुकस्य च भञ्जनम् ॥ ११ ॥
प्रलम्बनिधनं चैव शरद्वर्णनमेव च।
गिरियज्ञप्रवृत्तिश्च गोवर्धनविधारणम् ॥ १२ ॥
गोविन्दस्याभिषेकं च गोपीसंक्रीडनं तथा।
रिष्टासुरस्य निधनमक्रूरप्रेषणं तथा ॥ १३ ॥

इसके बाद वर्षाका वर्णन, श्रीकृष्णद्वारा यमुनाके कालियदहका दर्शन, कालियनागका दमन, बलरामद्वारा धेनुकासुर और प्रलम्बासुरका वध, शरद्-वर्णन, गिरियज्ञका आरम्भ, श्रीकृष्णद्वारा गोवर्धन-धारण, उनका गोविन्द-पदपर अभिषेक, उनकी गोपियोंके साथ क्रीड़ा, उनके द्वारा अरिष्टासुरका वध और कंसका अक्रूरको व्रजमें भेजना—इन विषयोंका उल्लेख है ॥ ११—१३ ॥

अन्धकस्य च वाक्यानि केशिनो निधनं तथा।
अक्रूरागमनं चैव नागलोकस्य दर्शनम् ॥ १४ ॥
धनुर्भङ्गस्य कथनं कंसवाक्यमतः परम्।
कुवलयापीडवधश्चाणूरान्ध्रवधस्तथा ॥ १५ ॥
कंसस्य निधनं चापि विलापः कंसयोषिताम्।
उग्रसेनाभिषेकश्च यादवाश्वासनं तथा ॥ १६ ॥

फिर कंसके प्रति अंधकके वचन, केशीका वध, अक्रूरका व्रजमें आगमन, लौटते समय उन्हें यमुनामें नागलोकका दर्शन, श्रीकृष्णके द्वारा कंसके धनुषके तोड़े जानेका वर्णन, कंसकी चाणूर और मुष्टिकसे बातचीत, तत्पश्चात् श्रीकृष्णद्वारा कुवलयापीड़, चाणूर एवं अन्ध्र-देशीय मुष्टिकका वध, कंसका निधन, कंसकी स्त्रियोंका विलाप, उग्रसेनका अभिषेक तथा श्रीकृष्णद्वारा यादवोंको आश्वासन आदि विषयोंका वर्णन है ॥ १४—१६ ॥

प्रत्यागतिर्गुरुकुलादथोक्ता रामकृष्णयोः।
मथुरायाश्चोपरोधो जरासंधनिवर्तनम् ॥ १७ ॥
विकद्रुवाक्यं रामस्य दर्शनं भाषणं तथा।
गोमन्तारोहणं चापि जरासंधगतिस्तथा ॥ १८ ॥
गोमन्तस्य गिरेर्दाहः करवीरपुरे गतिः।
शृगालस्य वधस्तत्र मथुरागमनं ततः ॥ १९ ॥

बलराम और श्रीकृष्णका गुरुकुलसे विद्या पढ़कर लौटना, जरासंधका मथुरापर घेरा डालना और पराजित होकर लौटना, विकद्रुका भाषण, श्रीकृष्ण और बलरामको परशुरामजीका दर्शन और उनसे बातचीत, उन सबका गोमंत पर्वतपर चढ़ना, जरासंधका आक्रमण, उसके द्वारा गोमंतपर्वतका दाह, श्रीकृष्ण और बलरामका करवीरपुरमें जाना, श्रीकृष्णद्वारा शृगालका वध तथा दोनों भाइयोंका मथुरामें आगमन आदिक प्रसंगोंका वर्णन है ॥ १७—१९ ॥

यमुनाकर्षणं चैव मथुरापक्रमस्तथा।
उपायेन वधः कालयवनस्य प्रकीर्तितः ॥ २० ॥

इसके बाद बलरामद्वारा यमुनाका आकर्षण, यादवोंका मथुरासे हट जाना और कालयवनका युक्तिपूर्वक वध—इन विषयोंका वर्णन है ॥ २० ॥

निर्माणं द्वारवत्यास्तु रुक्मिणीहरणं तथा।
विवाहश्चैव रुक्मिण्या रुक्मिणो निधनं तथा ॥ २१ ॥
बलदेवाह्निकं पुण्यं बलमाहात्म्यमेव च।

तदनन्तर द्वारकाका निर्माण, रुक्मिणीका हरण, रुक्मिणीके साथ श्रीकृष्णका विवाह, बलरामद्वारा रुक्मीका वध, ६२ वें अध्यायमें बलदेवजीके माहात्म्य तथा १०९ वें अध्यायमें बलदेवजीके द्वारा प्रद्युम्नको आह्निक स्तोत्रके उपदेशका वर्णन है ॥ २१½ ॥

नरकस्य वधः पारिजातस्य हरणं तथा ॥ २२ ॥
द्वारवत्या विशेषेण पुनर्निर्माणकीर्तनम्।
द्वारकायां प्रवेशश्च सभायां च प्रवेशनम् ॥ २३ ॥
नारदस्य च वाक्यानि वृष्णिवंशानुकीर्तनम्।

फिर ६३ वें अध्यायमें नरकासुरके वधका वर्णन है। तदनन्तर पारिजात-हरण, द्वारकापुरीका पुनः विशेषरूपसे निर्माण, द्वारकामें प्रवेश, सभामें प्रवेश, नारदजीके वचन तथा वृष्णिवंशकी परम्पराका वर्णन है ॥ २२–२३½ ॥

षट्पुरस्य वधाख्यानमन्धकस्य निबर्हणम् ॥ २४ ॥
समुद्रयात्रा कृष्णस्य जलक्रीडाकुतूहलम्।
तथा भैमप्रवीराणां मधुपानप्रवर्तकम् ॥ २५ ॥
ततश्छालिक्यगान्धर्वसमुदाहरणं हरेः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भानोश्च दुहितुर्भानुमत्या हरणकीर्तनम् ॥ २६ ॥
शम्बरस्य वधश्चैव धन्योपाख्यानमेव च ।
वासुदेवस्य माहात्म्यं बाणयुद्धं प्रपञ्चितम् ॥ २७ ॥

इसके बाद षट्पुर-वधकी कथा, अन्धकासुर-संहार, श्रीकृष्णकी समुद्रयात्रा और जलक्रीड़ा-कौतूहल, भीमवंशी वीरोंकी मधुपानमें प्रवृत्ति, श्रीहरिकी इच्छासे छालिक्य गान्धर्वका भूतलपर आनयन, भानुपुत्री भानुमतीके हरणकी कथा, शम्बरासुरका वध, धन्योपाख्यान, वासुदेव-माहात्म्य तथा बाणासुरके युद्ध आदि विषयोंका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है ॥ २४—२७ ॥

भविष्यं पुष्करं चैव प्रपञ्चेनैव कीर्तितम् ।
वाराहं नारसिंहं च वामनं बहुविस्तरम् ॥ २८ ॥

(तीसरे भविष्यपर्वमें) भविष्य राजवंश एवं भावी कलियुगका वर्णन, फिर पुष्कर-प्रादुर्भावका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । तत्पश्चात् भगवान्‌के वराह, नृसिंह और वामन अवतारकी कथाका अधिक विस्तृत वर्णन है ॥ २८ ॥

कैलासयात्रा कृष्णस्य पौण्ड्रकस्य वधस्ततः ।
हंसस्य डिम्भकस्यैव वधश्चैव प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्णकी कैलासयात्रा, पौण्ड्रक-वध तथा हंस और डिम्भकके मारे जानेके प्रसंगका वर्णन आया है ॥ २९ ॥

पुरत्रयस्य संहार इति वृत्तान्तसंग्रहः ।
कथितो नृपशार्दूल सर्वपापप्रणाशनः ॥ ३० ॥

नृपश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् महादेवजीके द्वारा त्रिपुरके संहारकी कथा है । इस प्रकार हरिवंशके वृत्तान्तोंका यह संक्षिप्त संग्रह बताया गया है । यह समस्त पापोंका नाश करनेवाला है ॥ ३० ॥

वृत्तान्तं शृणुयाद् यस्तु सायं प्रातः समाहितः ।
स याति वैष्णवं धाम लब्धकामः कुरूद्वह ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ३१ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! जो एकाग्रचित्त होकर प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल इस वृत्तान्तको सुनता है, वह सफलमनोरथ होकर भगवान् विष्णुके धाममें जाता है । यह वृत्तान्त धन, यश और आयुकी प्राप्ति करानेवाला तथा भोग और मोक्षरूपी फलको देनेवाला है ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि वृत्तान्तसंग्रहे
चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें वृत्तान्तसंग्रहविषयक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३४ ॥

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

हरिवंश-श्रवणकी दक्षिणा, फल एवं माहात्म्यका वर्णन

जनमेजय उवाच

हरिवंशे पुराणे तु श्रुते मुनिवरोत्तम ।
किं फलं किं च देयं वै तद् ब्रूहि त्वं ममाग्रतः ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—मुनिवरोत्तम ! अब आप मेरे सामने यह बताइये कि हरिवंश-पुराण सुन लेनेपर क्या फल होता है और उस समय क्या दान देना चाहिये ? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

हरिवंशे पुराणे तु श्रुते च भरतोत्तम ।
कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम् ॥ २ ॥
तत् सर्वं नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा ।

वैशम्पायनजीने कहा—भरतवंशशिरोमणे ! हरिवंशपुराण सुन लेनेपर शरीर, वाणी और मनके द्वारा उपार्जित सारे पापोंका उसी प्रकार नाश हो जाता है, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार ॥ २½ ॥

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद् यत् फलं भवेत् ॥ ३ ॥
तत् फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः ।

अठारह पुराणोंके श्रवणसे जो फल प्राप्त होता है, उसे विष्णुभक्त पुरुष केवल हरिवंश सुनकर प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ३½ ॥

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा हरिवंशसमुद्भवम् ॥ ४ ॥
शृण्वन्ति श्रद्धया युक्ता वैष्णवं पदमाप्नुयुः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो श्रद्धापूर्वक हरिवंशके आधे या चौथाई श्लोकको भी सुनते हैं, वे भगवान् विष्णुके धाममें चले जाते हैं ॥४½॥

जम्बूद्वीपं समाश्रित्य श्रोतारो दुर्लभाः कलौ ॥ ५ ॥
भविष्यन्ति नरा राजन् सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः ॥ ६ ॥

राजन् ! कलियुगमें जम्बूद्वीपका आश्रय लेकर रहनेवाले लोगोंमें इस ग्रन्थके श्रोता दुर्लभ हो जायँगे, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ । पुत्रकी कामना रखनेवाली स्त्रियोंको भगवान् विष्णुके सुयशसे भरे हुए इस ग्रन्थका अवश्य श्रवण करना चाहिये ॥ ५-६ ॥

दक्षिणा चात्र देया वै निष्कत्रयसुवर्णकम् ।
वाचकाय यथाशक्त्या यथोक्तं फलमिच्छता ॥ ७ ॥

जो शास्त्रोक्त फलको प्राप्त करनेकी इच्छा रखता हो, उस श्रोताको चाहिये कि वह अपनी शक्तिके अनुसार वाचकको हरिवंश सुननेकी दक्षिणाके रूपमें तीन निष्क[1] सुवर्ण प्रदान करे ॥ ७ ॥

स्वर्णशृङ्गीं च कपिलां सवत्सां वस्त्रसंयुताम् ।
वाचकाय प्रदद्याद् वै आत्मनः श्रेयकाङ्क्षया ॥ ८ ॥

अपने कल्याणकी इच्छासे वह वाचकको वस्त्र और बछड़ेसहित एक कपिला गौ भी दे, जिसके सींगोंमें सोना मढ़ा हुआ हो ॥ ८ ॥

अलंकारं प्रदद्याच्च पाण्योर्वै भरतर्षभ ।
कर्णस्याभरणं दद्याद् यानं च सविशेषतः ॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वह दोनों हाथोंके लिये अलंकार (कड़े, बाजूबन्द, अँगूठी आदि) भी दे तथा कानके आभूषण (कुण्डल आदि) भी अर्पित करे; विशेषतः, शिविका आदि कोई सवारी अवश्य दे ॥ ९ ॥

भूमिदानं समादद्याद् ब्राह्मणाय नराधिप ।
भूमिदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ १० ॥

नरेश्वर ! उसे ब्राह्मणके लिये भूमिका दान भी देना चाहिये; क्योंकि भूमिदानके समान दूसरा कोई दान न तो हुआ है और न होगा ही ॥ १० ॥

शृणोति श्रावयेद् वापि हरिवंशं तु यो नरः ।
सर्वथा पापनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥ ११ ॥

जो मनुष्य हरिवंशको सुनता और सुनाता है, वह सब प्रकारसे पापमुक्त होकर भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त कर लेता है ॥ ११ ॥

पितॄनुद्धरते सर्वानेकादशसमुद्भवान् ।
आत्मानं ससुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ ॥ १२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वह अपनी ग्यारह पीढ़ीके समस्त पितरोंका उद्धार कर देता है । साथ ही अपना, अपने पुत्रका तथा अपनी पत्नीका भी उद्धार करता है ॥ १२ ॥

दशांशश्चात्र होमो वै कार्यः श्रोत्रा नराधिप ।
इदं मया तवाग्रे च सर्वं प्रोक्तं नरर्षभ ॥ १३ ॥

नरेश्वर ! नरश्रेष्ठ ! श्रोताको इस हरिवंश-श्रवणके उपलक्ष्यमें इसकी श्लोकसंख्याका दशांश हवन करना चाहिये। यह सब कुछ मैंने तुम्हारे सामने कह दिया ॥ १३ ॥

यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति अधनो धनमाप्नुयात् ॥ १४ ॥

इसके स्मरणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । इसके श्रवणसे पुत्रहीनको पुत्र और निर्धनको धनकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥

नरमेधाश्वमेधाभ्यां यत् फलं प्राप्यते नरैः ।
तत् फलं लभते नूनं पुराणश्रवणाद्धरेः ॥ १५ ॥

नरमेध और अश्वमेध यज्ञोंसे मनुष्योंको जो फल प्राप्त होता है, उसीको श्रीहरिके इस पुराणका श्रवण करनेसे मनुष्य निश्चय ही प्राप्त कर लेता है ॥ १५ ॥

ब्रह्महा भ्रूणहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ।
सकृत्पुराणश्रवणात् पूतो भवति नान्यथा ॥ १६ ॥

ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, गोहत्या, सुरापान और गुरुपत्नी-गमन—इन महापातकोंसे युक्त मनुष्य भी इस पुराणको एक बार पूर्वोक्त विधिसे सुन लेनेपर पवित्र हो जाता है । इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥

इदं मया ते परिकीर्तितं महच्
छ्रीकृष्णमाहात्म्यमपारमद्भुतम् ।
शृण्वन् पठन्नाशु समाप्नुयात् फलं
यच्चापि लोकेषु सुदुर्लभं महत् ॥ १७ ॥

यह मैंने तुमसे श्रीकृष्णके अपार, अद्भुत एवं महान् माहात्म्यका वर्णन किया है । जो इसे सुनता और पढ़ता है, वह लोकमें जो परम दुर्लभ और महान् फल है, उसे भी शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां खिलभागे हरिवंशे भविष्यपर्वणि श्रवणफलकथने पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतमें व्यासनिर्मित एक लाख श्लोकोंकी संख्याके अन्तर्गत उसके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत भविष्यपर्वमें श्रवणफलका वर्णनविषयक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३५ ॥

॥ हरिवंशपर्व सम्पूर्ण ॥

१. सोलह मासे वजनका एक निष्क होता है । (संस्कृत शब्दार्थकौस्तुभ)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीहरिवंशमाहात्म्यम्

प्रथमोऽध्यायः

हरिवंश-श्रवणका माहात्म्य, नारीके पाँच दोष और हरिवंशश्रवणसे उनकी निवृत्ति, पाठके उत्तम, मध्यम आदि भेद तथा गोव्रतकी विधि

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ १॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (इतिहास-पुराण एवं महाभारत) का पाठ करना चाहिये॥

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति॥२॥

सत्यवतीके हृदयको आनन्दित करनेवाले उन पराशर-पुत्र व्यासजीकी जय हो, जिनके मुखारविन्दसे निकले हुए वाङ्मय अमृतका सारा जगत् पान करता है॥ २॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३॥

मैं अज्ञानरूपी तिमिररोग (रतौंधी) से अन्धा हो रहा था, उस दशामें जिन्होंने ज्ञानरूपी अञ्जनकी शलाकासे मेरे बुद्धिरूपी नेत्रको खोल दिया है—उसमें ज्ञानका प्रकाश भर दिया है, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है॥ ३॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत् पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ४॥

जिससे यह अखण्ड मण्डलाकार चराचर जगत् व्याप्त है, उस परमात्माके पद (स्वरूप) का जिन्होंने साक्षात्कार कराया है, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है॥ ४॥

जनमेजय उवाच

त्वया मे भगवन् प्रोक्तो भारतश्रवणे विधिः।
श्रवणे हरिवंशस्य विशेषाद् वद मे विधिम्॥ ५॥

जनमेजय बोले—भगवन्! आपने मुझे महाभारत-श्रवणकी विधि बतायी है। अब हरिवंश सुननेकी जो विधि है, उसे विशेषरूपसे मुझे बताइये॥ ५॥

वैशम्पायन उवाच

ब्रह्मविष्णुमहेशानां हरिवंशे जगुर्वपुः।
शब्दब्रह्ममयं विद्धि हरिवंशं सनातनम्॥ ६॥
शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! ऋषि-मुनि हरिवंश-को ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीका स्वरूप बताते हैं। तुम यह समझ लो कि हरिवंश सनातन शब्द-ब्रह्ममय है। इस शब्दब्रह्ममें निष्णात हुआ पुरुष परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है॥ ६½॥

हरिवंशपुराणे तु श्रुते वै राजसत्तम॥ ७॥
कायिकं वाचिकं पापं मनसा समुपार्जितम्।
तत् सर्वं नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा॥ ८॥

नृपश्रेष्ठ! हरिवंशपुराण सुन लेनेपर शरीर, वाणी और मनके द्वारा संचित किये हुए सारे पाप उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार॥ ७-८॥

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद् यत् फलं लभेत्।
तत् फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः॥ ९॥

अठारह पुराणोंका श्रवण करनेसे जो फल मिलता है, उसीको विष्णुभक्त पुरुष केवल हरिवंश सुनकर प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है॥ ९॥

स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव वैष्णवं पदमाप्नुयुः।
जम्बूद्वीपं समाश्रित्य श्रोतारो दुर्लभाः कलौ॥ १०॥
भविष्यन्ति नरा राजन् सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।

स्त्रियाँ और पुरुष इसे सुनकर भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं। राजन्! कलियुगमें जम्बूद्वीपका आश्रय लेकर रहनेवाले लोगोंमें इस ग्रन्थके श्रोता दुर्लभ हो जायँगे, यह मैं सत्य-सत्य बता रहा हूँ॥ १०½॥

स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः॥ ११॥
बालघाती च पुरुषो मृतवत्सः प्रजायते।
श्रवणं हरिवंशस्य कर्तव्यं च यथाविधि॥ १२॥

पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाली स्त्रियोंको भगवान् विष्णुके इस यशका श्रवण करना चाहिये। बालकोंकी हत्या करने-वाले पुरुषके पुत्र हो-होकर मर जाते हैं। ऐसे मनुष्यको विधिपूर्वक हरिवंश सुनना चाहिये॥ ११-१२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुरुचन्द्राग्निसूर्याणां सम्मुखे मेहते च यः।
बीजमुत्सृज्यते तेन त्यक्तरेता नरो भवेत् ॥ १३ ॥

जो गुरु, चन्द्रमा, अग्नि और सूर्यकी ओर मुँह करके पेशाब करता है अथवा वीर्य छोड़ता है, वह पुरुष जन्मान्तरमें वीर्यहीन (नपुंसक) हो जाता है ॥ १३ ॥

योषित्पुष्पफलानां च बालानां घातिनी तथा।
फलानां कर्तनकरी मातापितृवियोगिनी ॥ १४ ॥
स्राविणी परगर्भाणां तत् तत् प्रायोपजोषिणी।
ईदृग्विधा भविष्यन्ति पञ्चदोषयुताः स्त्रियः ॥ १५ ॥
अपुष्पा मृतवत्साश्च काकवन्ध्यास्तथैव च।
कन्याप्रजात्वं च तथा स्रावयुक्ताः स्वपातकैः ॥ १६ ॥

जो स्त्री फूलों और फलोंका नाश तथा बालकोंकी हत्या करनेवाली होती है, जो फलोंको काटती तथा बालकोंका माता-पितासे वियोग करा देती है, जो दूसरी स्त्रियोंके गर्भ गिरानेवाली और प्रायः ऐसी ही स्त्रियोंके सम्पर्कमें रहनेवाली है, इस तरहकी सारी स्त्रियाँ अपने पापोंके कारण पाँच प्रकार-के दोषोंसे युक्त होती हैं—अपुष्पा (रजोदर्शनसे रहित), मृतवत्सा (जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हों ऐसी), काकवन्ध्या (जिसके एक ही संतान होकर रह जाय, दूसरी संतति न हो वह), कन्याप्रजा (केवल कन्या पैदा करनेवाली) तथा स्रावयुक्ता (जिसका गर्भ ही गिर जाता हो, ऐसी) ॥

तासां दोषापहारार्थं हरिवंशोऽभिगर्जति।
मदीयश्रवणात् सद्यो दोषा नश्यन्ति सत्वरम् ॥ १७ ॥

उन सभी स्त्रियोंके दोषोंका निवारण करनेके लिये हरिवंश गर्जता रहता है। वह कहता है, मेरा श्रवण करनेसे सारे दोष तत्काल नष्ट हो जाते हैं ॥ १७ ॥

नरः सुवर्णं सर्पिश्च पददानैः समन्वितम्।
दशावृत्तीः शृणोत्येवं बीजसाफल्यमाप्नुयात् ॥ १८ ॥

जो मनुष्य सुवर्णदान, घृतदान और पददानके साथ हरिवंशको दस बार सुनता है, उसका वीर्य सफल होता है ॥ १८ ॥

दशावृत्तीरपुष्पार्थं मृतवत्सा तु सप्त वै।
पञ्चावृत्तीः स्रवद्गर्भा काकवन्ध्या त्रयं तथा ॥ १९ ॥

अपुष्पा—रजोदर्शनसे रहित नारीके लिये दस आवृत्ति हरिवंश सुननेका विधान है। जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हों, वह सात बार हरिवंश सुने। जिसके गर्भ गिर जाते हों, वह पाँच बार और जो काकवन्ध्या हो, वह तीन बार हरिवंशकी कथा सुने ॥ १९ ॥

कन्याप्रसूश्चैकावृत्तिं श्रुत्वा पुत्रमवाप्नुयात्।
जीवितावधिकं श्राव्यं सर्वदोषोपशान्तये ॥ २० ॥
भविष्यं जन्म सम्प्राप्य न भवेत् तादृशी पुनः।

केवल कन्या पैदा करनेवाली स्त्री एक ही आवृत्ति हरिवंशकी कथा सुनकर पुत्र प्राप्त कर सकती है। सम्पूर्ण दोषोंकी शान्तिके लिये जीवनभर हरिवंश सुनते रहना चाहिये, जिससे भावी जन्म पाकर वह फिर उन दोषोंसे युक्त न हो ॥ २०½ ॥

उत्तमं सार्थपाठं च मध्यमं च निरर्थकम् ॥ २१ ॥

हरिवंशका पाठ उत्तम और मध्यमके भेदसे दो प्रकारका होता है। यदि अर्थसहित इसका पाठ या श्रवण किया जाय तो वह उत्तम है। बिना अर्थका पाठ मध्यम श्रेणीका माना गया है ॥ २१ ॥

विनार्थं शुद्धपाठश्चेदुत्तमेन समो भवेत्।
नवाहमुत्तमं प्रोक्तमेकत्रिंशाहं मध्यमम् ॥ २२ ॥
निकृष्टमेकत्रिंशाहं सुखसाध्यं समाचरेत्।

बिना अर्थके भी यदि शुद्ध पाठ हो तो वह उत्तमके ही समान होता है। (दिनोंकी संख्याके भेदसे इसके पाठकी उत्तम, मध्यम और अधम तीन श्रेणियाँ हैं—) नौ दिनोंमें इसका पाठ हो तो वह उत्तम कहा गया है, इक्कीस दिनोंमें हो तो मध्यम माना गया है और एकतीस दिनोंमें हो तो उसे निकृष्ट श्रेणीका पाठ बताया गया है। जो भी सुगमता-पूर्वक साध्य हो, वही पाठ करना चाहिये ॥ २२½ ॥

बहुभिर्दिवसै राजन् साध्यानां साधनं कलौ ॥ २३ ॥
तेन पारायणं साध्यं प्रोक्तं नारायणात्मना।

राजन्! कलियुगमें बहुत दिनोंके प्रयत्नसे साध्य फलोंकी सिद्धि होती है, अतः नारायणस्वरूप व्यासजीने हरिवंशका यह पारायण साध्यरूप बताया है ॥ २३½ ॥

नवाहो गर्जति कलौ चैकत्रिंशाहिकस्तथा ॥ २४ ॥
एकत्रिंशाहिको यज्ञो वन्ध्यादोषविनाशकः।

कलियुगमें नवाह्नपारायण और इक्कीस दिनोंका पारायण श्रोताके अभीष्टकी सिद्धि करनेके लिये गर्जना करता है। एकतीस दिनोंमें पूर्ण होनेवाला हरिवंशपारायण-यज्ञ नारीके वन्ध्यात्व-दोषका नाश करनेवाला है ॥ २४½ ॥

गोव्रतं तु स्त्रिया कार्यं पारणं पुरुषेण च ॥ २५ ॥
श्रवणारम्भणे राजन् यथावत् कथयामि ते।

राजन्! हरिवंश-कथा-श्रवण आरम्भ करना हो तो पहले स्त्री और पुरुषको भी गोव्रत करना चाहिये, फिर व्रतके अन्तमें उसका पारण भी स्त्री और पुरुष दोनोंको करना चाहिये। इसकी विधि मैं तुम्हें यथावत्‌रूपसे बता रहा हूँ ॥ २५½ ॥

अवसायान्तपर्यन्तं कार्यं मासव्रतं शुभम् ॥ २६ ॥
चतुर्थ्यां प्रातरुत्थाय स्त्रिया हृष्टेन चेतसा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोव्रतं नियतं कार्यं निराहारं निरूदकम् ॥ २७ ॥
सूर्यास्तकालपर्यन्तं यावद्ग्रामागमो भवेत् ।

इसका आरम्भ करके अन्ततोगत्वा एक मासतक इस शुभ व्रतका अनुष्ठान करना उचित है। स्त्रीको चाहिये कि वह मनमें अत्यन्त प्रसन्न हो चतुर्थी तिथिको प्रातःकाल उठकर नियमपूर्वक गोव्रत आरम्भ करे। प्रातःकालसे सूर्यास्ततक जबतक चरनेको गयी हुई गौएँ गाँवमें लौट न आयें, तबतक अन्न और जल ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥ २६—२७½ ॥

आगतां च सवत्सां हि पूजयित्वा यथाविधि ॥ २८ ॥
यवसं पुष्कलं दत्त्वा यवान्नं कुरुते स्वयम् ।

जब गौ द्वारपर आ जाय, तब बछड़ेसहित उसकी विधिवत् पूजा करके उसे प्रचुरमात्रामें घास-भूसा देकर स्वयं भी यवान्न ग्रहण करे ॥ २८½ ॥

एवं मासे चतुर्थ्यां सा शुक्लायां व्रतमाचरेत् ॥ २९ ॥
स्त्रीव्रतं कथितं राजन् पुरुषस्य तथैव च ।
एवं मासव्रतं कृत्वा सुपुत्रं लभते ध्रुवम् ॥ ३० ॥

इस प्रकार किसी भी मासके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको नारी यह व्रत आरम्भ करे और उसे एक मासतक निभाये। राजन्! इस तरह यह स्त्री और पुरुषके लिये व्रत बताया गया है। इसका इसी प्रकार एक मासतक आचरण करके मनुष्य निश्चय ही उत्तम पुत्र प्राप्त कर लेता है ॥२९-३०॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीपद्मपुराणके अन्तर्गत हरिवंशमाहात्म्यमें श्रवण आदिकी विधिका वर्णनविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

(१) हरिवंशश्रवणकी विधि और फल

वैशम्पायन उवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि नवाहश्रवणे विधिम् ।
सहायैर्बहुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिस्त्वयम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! अब मैं तुम्हें हरिवंशके नवाह्न-श्रवणकी विधि बताऊँगा। यह विधि प्रायः बहुत-से सहायकोंकी सहायतासे ही सिद्ध होनेवाली है ॥ १ ॥

दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः ।
विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्प्य च ॥ २ ॥

पहले यत्नपूर्वक ज्यौतिषीको बुलाकर मुहूर्त पूछना चाहिये तथा विवाहके लिये जितने धनका प्रबन्ध किया जाता है, उतने धनकी व्यवस्था इसके लिये करनी चाहिये ॥ २ ॥

नभस्यश्वयुजौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभः ।
एते मासाः कथारम्भे श्रोतॄणां कामसूचकाः ॥ ३ ॥

भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़ और श्रावण—ये छः मास कथा आरम्भ करनेमें श्रोताओंके लिये अभीष्ट सिद्धिके सूचक हैं ॥ ३ ॥

सहायाश्च त एवात्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ।
देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रोच्या प्रयत्नतः ॥ ४ ॥
भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः ।

इस कार्यमें उन्हीं लोगोंको सहायक बनाना चाहिये, जो उद्योगी हों। फिर प्रयत्न करके देश-देशान्तरों (विभिन्न स्थानों) में यह संदेश कहला देना चाहिये कि यहाँ कथा होगी, अतः आप सब सज्जनोंको सपरिवार पधारना चाहिये ॥ ४½ ॥

देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः ॥ ५ ॥
तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ।
सतां समाजो भविता नवरात्रं सुदुर्लभः ॥ ६ ॥

भिन्न-भिन्न स्थानोंमें हरिकीर्तनके लिये उत्सुक रहनेवाले जो विरक्त वैष्णव हों, उनके पास अवश्य निमन्त्रण-पत्र भेजना चाहिये। उस पत्रके लेखनकी विधि इस प्रकार बतायी गयी है—'महानुभावो! यहाँ नौ दिनोंतक सत्पुरुषोंका समागम—सत्संगका सुअवसर रहेगा, जो सबके लिये परम दुर्लभ है (अतः आपलोग हरिवंश-कथामृतका पान करनेके लिये अवश्य पधारनेकी कृपा करें)' ॥ ५-६ ॥

आगन्तुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ।
तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं स्मृतम् ॥ ७ ॥

जो लोग आवें, उन सबके रहनेके लिये स्थानका यथोचित प्रबन्ध करे। कथाका श्रवण किसी तीर्थमें, वनमें अथवा अपने घरपर भी अच्छा माना गया है ॥ ७ ॥

विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत् कथास्थलम् ।
शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ॥ ८ ॥

जहाँ लंबा-चौड़ा मैदान हो, वहीं कथा-स्थल बनाना चाहिये। उस भूमिका शोधन, मार्जन और लेपन करके रंग-बिरंगी धातुओंसे वहाँ चौक पूरे ॥ ८ ॥

गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ।
कर्तव्यो मण्डपः प्रोच्चैः कदलीस्तम्भमण्डितः ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घरकी सारी सामग्री उठाकर एक कोनेमें रख दे और कथाके लिये एक ऊँचा मण्डप तैयार कराये, जो केलेके खम्भोंसे सुशोभित हो ॥ ९ ॥

फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः ।
चतुर्दिक्षु ध्वजारोपस्तोरणेन विराजितः ॥ १० ॥

उसे सब ओर फल, फूल, पल्लव और चँदोवेसे अलंकृत करे । चारों दिशाओंमें ध्वजारोपण करे । उस मण्डपमें सुन्दर फाटक लगाकर उसकी शोभा बढ़ावे ॥१०॥

ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च सप्ताधः परिकल्पयेत् ।
तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य वै ॥ ११ ॥

उस मण्डपमें कुछ ऊँचाईपर सात विशाल लोकोंकी कल्पना करे और उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको बुला-बुलाकर समझा-बुझाकर बैठाये । इसी प्रकार नीचे भी सात लोकोंकी कल्पना करे (और उनमें साधारण जनताको बिठावे) ॥११॥

पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् ।
वक्तुश्चापि तथा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥ १२ ॥

पहले उन विरक्त ब्राह्मणोंके लिये उत्तमोत्तम आसनोंका प्रबन्ध करना चाहिये । फिर वक्ता (वाचक) के लिये भी दिव्य आसनकी व्यवस्था करे ॥ १२ ॥

उदङ्मुखो भवेद् वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तथा ।
प्राङ्मुखोऽथ भवेद् वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तथा ॥

जब वक्ताका मुँह उत्तरकी ओर रहे, तब श्रोताका मुख पूर्वकी ओर होना चाहिये और यदि वक्ताका मुख पूर्वकी ओर हो तब श्रोताको उत्तराभिमुख होकर बैठना चाहिये ॥ १३ ॥

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशारदः ।
दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्यो दयान्वितः ॥ १४ ॥

जो विरक्त, विष्णुभक्त, वेदशास्त्रविशारद, जातिका ब्राह्मण, भाँति-भाँतिके दृष्टान्त देकर ग्रन्थके भावको हृदयङ्गम करानेमें कुशल, धीर और दयालु हो, ऐसे पुरुषको ही वक्ता बनाना चाहिये ॥ १४ ॥

वेदवेदान्ततत्त्वज्ञैर्गुरुभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
नृणां कृतोपदेशानां सद्यः सिद्धिर्हि जायते ॥ १५ ॥

जिन मनुष्योंको वेद-वेदान्तके तत्त्वज्ञ, ब्रह्मवादी गुरुओंसे उपदेश प्राप्त होता है, उन्हें तत्काल सिद्धि सुलभ होती है ॥ १५ ॥

अथान्यजनसामान्यैर्गुरुभिर्नीतिकोविदैः ।
नृणां कृतोपदेशानां सिद्धिर्भवति कीदृशी ॥ १६ ॥

जो गुरु अन्य सामान्य लोगोंके समान ही नीतिकुशल हैं, उनसे जिन मनुष्योंको उपदेश प्राप्त होता है, उनको कैसी सिद्धि मिलेगी ? ॥ १६ ॥

अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः ।
धर्मशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः ॥ १७ ॥

जो अनेक मत मतान्तरोंके चक्करमें पड़कर भ्रान्त हो रहे हों, स्त्रीलम्पट हों और पाखण्डकी बातें करते हों, ऐसे लोग यदि पण्डित भी हों तो उन्हें धर्ममय शास्त्र—इतिहास-पुराणकी कथा कहनेके लिये वक्ता न बनावे, उन्हें ऐसे कार्यसे दूर ही रखे ॥ १७ ॥

वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ।
पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥ १८ ॥

वक्ताके पास उसकी सहायताके लिये उसी योग्यताका एक और विद्वान् रखे । वह भी संशय-निवारण करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल होना चाहिये ॥१८॥

वक्ता क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाग् व्रतात्यये ।
वक्तुः श्रोतुश्चन्द्रशुद्धौ दम्पत्योः शुभतारके ॥ १९ ॥

वक्ताको उचित है कि वह कथा आरम्भ होनेसे एक दिन पहले क्षौर करा ले, जिससे व्रतका पूर्णतया निर्वाह हो सके । जब वक्ता और श्रोता दोनोंके चन्द्रबल ठीक हों और सुननेवाले दम्पतिके ग्रह एवं ताराबल भी अनुकूल हों, तब कथा आरम्भ करनी चाहिये ॥ १९ ॥

अरुणोदये विनिर्वर्त्य शौचं स्नानं समाचरेत् ।
नित्यं संक्षेपतः कृत्वा संध्याद्यं प्रयतस्ततः ॥ २० ॥
सुक्षालितपाणिपादः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।
गोमयोपलिप्तदेशे सर्वतोभद्रकल्पनम् ॥ २१ ॥
स्वीयशक्त्यनुसारेण पूजनं सर्वमाचरेत् ।
कथाविघ्नविनाशाय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥ २२ ॥

श्रोता अरुणोदयकालमें—दिन निकलनेसे दो घड़ी पहले शौच आदिसे निवृत्त होकर विधिपूर्वक स्नान करे । प्रतिदिन मनको संयममें रखकर संक्षेपसे संध्या-वन्दन आदि करके हाथ-पैरोंको अच्छी तरह धोकर पहले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करावे । फिर गोबरसे लिपे-पुते स्थानपर सर्वतोभद्रमण्डलकी रचना करे और अपने शक्तिके अनुसार सम्पूर्ण पूजन कर्म सम्पन्न करे । कथाके विघ्नोंका निवारण करनेके लिये श्रीगणेशजीकी पूजा करे ॥ २०—२२ ॥

सलक्ष्मीपुत्रसहितं गोपालं स्थापयेत् ततः ।
निर्विघ्नेनैव सिद्ध्यर्थं देवपूजनपूर्वकम् ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् लक्ष्मी (रुक्मिणी) तथा (प्रद्युम्न आदि) पुत्रोंसहित गोपालक भगवान् श्रीकृष्णकी स्थापना करे । कथाकी निर्विघ्नतापूर्वक सिद्धिके लिये ही देवपूजनपूर्वक पत्नी और पुत्रसहित भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे ॥२३॥

संकल्पं कुर्यात्—

इसके बाद निम्नाङ्कितरूपसे संकल्प करना चाहिये—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अद्येहेत्यादिदेशकालौ स्मृत्वा अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्यामुकशर्मणः सपत्नीकस्य मम जन्मनि जन्मनि संचितमहापातकपटलनाशपूर्वकं तेन पापसंचयेन कृतसंतानबाधकताविनाशपूर्वकमिह जन्मनि संतानोत्पत्तिहेतवे तस्य संतानस्य शरदां शतमायुषो वृद्ध्यर्थमात्मनश्च सकलसुखाप्तिहेतवे इह शरीरशुद्ध्यर्थं परत्र चेन्द्रादिलोकातिक्रमणपूर्वकश्रीमद्विष्णुभक्त्युद्रेकजनितकल्पावधितल्लोकगमनतत्रवासपूर्वकतत्स्वरूपावाप्तिहेतवे आवां दम्पती श्रीमद्धरिवंशपुराणश्रवणं कर्तृकतया करिष्यावहे। अन्यतरकर्तृत्वे करिष्ये इत्येवसंकल्पः।

आज यहाँ इत्यादिरूपसे वर्तमान देशकालका स्मरण करके यजमान यों कहें—अमुक गोत्र, अमुक प्रवर और अमुक नाम और जातिवाले मुझ सपत्नीक यजमानके जन्म-जन्मान्तरोंमें संचित महापातकसमूहोंके नाशपूर्वक उस पापसंचयसे होनेवाली संतानबाधाका निवारण करके इस जन्ममें संतानोत्पत्तिके उद्देश्यसे और उस संतानकी आयु बढ़कर सौ वर्षोंकी हो जाय—इस अभिलाषासे अपनेको भी सम्पूर्ण सुखोंकी प्राप्ति हो—इस कामनासे इहलोकमें शरीरकी शुद्धिके लिये और परलोकमें इन्द्रादि लोकोंको लाँघकर भगवान् विष्णुकी भक्तिके उद्रेकसे सुलभ विष्णुलोकमें गमन और वहाँ एक कल्पतक निवासपूर्वक अन्ततोगत्वा भगवत्स्वरूपकी प्राप्तिके लिये हम दोनों दम्पती यज्ञकर्तारूपसे हरिवंशपुराणका श्रवण करेंगे। यदि पति और पत्नीमेंसे कोई एक ही कथाश्रवणका कर्ता हो तो एकवचन 'करिष्ये' (करूँगा) ऐसी क्रिया बोलकर संकल्प करना चाहिये।

इति कृत्वा तु संकल्पं वक्तारं वृणुयात्ततः।
श्रुताध्ययनसम्पन्नं पूजयित्वा यथाविधि ॥ २४ ॥

इस प्रकार संकल्प करनेके अनन्तर वेद-शास्त्रोंके अध्ययनसे सम्पन्न वक्ताका विधिपूर्वक पूजन करके उसका वरण करे ॥ २४ ॥

सुवर्णमुद्रिकां गृह्य कुण्डले च विशेषतः।
धौतवस्त्रं सोत्तरीयं चोष्णीषेण समन्वितम् ॥ २५ ॥
सुवर्णषोडशपलं पुष्पताम्बूलसंयुतम्।
पूगीफलं चाक्षतान् वै गृहीत्वा शुद्धमानसः ॥ २६ ॥

सोनेकी अँगूठी, विशेषतः दो सुवर्णमय कुण्डल, धोती, चादर, पगड़ी, सोलह पल सुवर्ण, फूल, पान, सुपारी और अक्षत लेकर शुद्ध-चित्त हो निम्नाङ्कितरूपसे संकल्प बोलकर वक्ताका वरण करे ॥ २५-२६ ॥

संकल्पः—अद्येहेत्यादिअमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिश्चन्दनताम्बूलसुवर्णवस्त्रादिभिर्हरिवंशश्रवणे वाचकत्वेनावां दम्पती त्वां वृणीवहे।

(१) वरणका संकल्प इस प्रकार है—आज यहाँ इत्यादिरूपसे वर्तमान देशकालका स्मरण करके यजमान यों कहे—हम दोनों दम्पती अमुकगोत्रवाले, अमुक शर्मा ब्राह्मणका इन चन्दन, ताम्बूल, सुवर्ण और वस्त्र आदि उपकरणोंद्वारा हरिवंश सुनानेके लिये वाचक (व्यास) रूपसे वरण करते हैं।

वृतोऽस्मीति तेनोक्ते—

(२) फिर वाचक कहे—'मेरा वरण हो गया' उसके ऐसा कहनेपर—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति इति मन्त्रेण वक्तुर्दक्षिणकरमूले रक्षाबन्धनं कार्यम्। ब्राह्मणेन श्रोतृणां रक्षाबन्धनं कार्यम्।

(३) यजमान 'व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्, दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते' अर्थात् 'साधक व्रतसे दीक्षाको पाता है, दीक्षासे दक्षिणाको और दक्षिणासे श्रद्धाको पा लेता है। फिर उस श्रद्धासे सत्यकी प्राप्ति होती है।' इस मन्त्रसे वक्ताके दाहिने हाथके मूलभागमें रक्षाबन्धन करे, तत्पश्चात् ब्राह्मणको श्रोताओंके हाथमें भी रक्षाबन्धन करना चाहिये।

चन्दनाद्युपचारैस्तु वस्त्रपुष्पाक्षतैस्तथा।
हेमालंकरणैः पूगैः फलैर्ऋतुसमुद्भवैः ॥ २७ ॥
पुराणपूजनं प्रोक्तं विधिना षोडशेन तु।

(४) तदनन्तर चन्दनादि उपचारोंसे तथा वस्त्र, पुष्प, अक्षत, सुवर्णमय आभूषण, सुपारी और ऋतुफल आदिसे षोडशोपचारकी विधिद्वारा पुराणका पूजन करना आवश्यक बताया गया है ॥ २७½ ॥

पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्श्रवणं फलदं स्मृतम् ॥ २८ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं विधिपूर्वकम्।

श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करके हरिवंशका श्रवण करना अभीष्ट फलदायक माना गया है, इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके विधिपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये ॥ २८½ ॥

अथ व्यासं नमस्कुर्युर्मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ २९ ॥
नमस्ते भगवन् व्यास सर्वशास्त्रार्थकोविद।
ब्रह्मविष्णुमहेशानमूर्ते सत्यवतीसुत ॥ ३० ॥

तदनन्तर सभी श्रोता व्यासको नमस्कार करें। उस समय यजमान इस मन्त्रका उच्चारण करे—'समस्त शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाले, ब्रह्म, विष्णु, शिवस्वरूप, सत्यवतीनन्दन भगवान् व्यास! आपको नमस्कार है' ॥ २९-३० ॥

इति व्यासं नमस्कृत्य शुभदेशे कुशासने।
उपविश्य प्रतिदिनमुल्लसत्प्रीतमानसः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार व्यासको नमस्कार करके सुन्दर पवित्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थानमें कुशासनपर बैठकर प्रतिदिन उल्लासपूर्ण प्रसन्नचित्त हो कथा श्रवण करे ॥ ३१ ॥

बालो युवाथ वृद्धो वा दरिद्रो दुर्बलोऽपि वा ।
पुराणज्ञः सदा वन्द्यः पूज्यश्च सुकृतार्थिभिः ॥ ३२ ॥

पुराणज्ञ पुरुष बालक हो या जवान, बूढ़ा हो या दरिद्र एवं दुर्बल, पुण्यकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंके लिये वह सदा ही वन्दनीय एवं पूजनीय है ॥ ३२ ॥

नीचबुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन ।
यस्य वक्त्रोद्गता वाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ॥ ३३ ॥

जिसके मुखसे निकली हुई वाणी देहधारियोंके लिये कामधेनुके तुल्य है, उस पुराणवेत्ता विद्वान्‌के प्रति कभी नीचबुद्धि न करे ॥ ३३ ॥

गुरवः सन्ति लोकस्य जन्मतो गुणतश्च ये ।
तेषामपि च सर्वेषां पुराणज्ञः परो गुरुः ॥ ३४ ॥

जगत्‌के मनुष्योंके लिये जो जन्मसे और गुणोंकी शिक्षा देनेके कारण गुरु हैं, पुराणका विद्वान् उन सबका भी परम गुरु है ॥ ३४ ॥

भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वा च सीदते ।
यो ददाति पुण्यवृत्तिं कोऽन्यस्तस्मात् परो गुरुः ॥ ३५ ॥

कोटि सहस्र जन्मोंमें बारंबार उत्पन्न होकर कष्ट पानेवाले जीवको जो पुराणकथा सुनाकर पुण्यवृत्ति प्रदान करता है, उससे श्रेष्ठ गुरु दूसरा कौन है ? ॥ ३५ ॥

पुराणज्ञः शुचिर्दान्तः शान्तोऽपि जितमत्सरः ।
साधुः कारुण्यवान् वाग्मी वदेत् पुण्यकथां सुधीः ॥ ३६ ॥

जो पुराणोंका ज्ञाता, पवित्र, जितेन्द्रिय, शान्त, मात्सर्यरहित, साधु और दयालु है, वह विद्वान् वक्ता पुराणोंकी पुण्यकथा कहे ॥ ३६ ॥

व्यासासनसमारूढो यदा पौराणिको द्विजः ।
आ समाप्तेः प्रसंगस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ ३७ ॥

पुराणवेत्ता द्विज जब व्यासासनपर आरूढ़ हो जाय, तबसे कथा-प्रसंगकी समाप्तितक वह दूसरे किसीको नमस्कार न करे ॥ ३७ ॥

ये धूर्ता ये च दुर्वृत्ता ये चान्ये विजिगीषवः ।
तेषां कुटिलवृत्तीनामग्रे नैव वदेत् कथाम् ॥ ३८ ॥

जो धूर्त हों, जो दुराचारी हों तथा दूसरे जो-जो तर्कसे हरानेकी इच्छा रखकर आये हों, उन कुटिल वृत्तिवाले मनुष्योंके सामने कभी कथा न कहे ॥ ३८ ॥

न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते ।
देशे नापूतसदने वदेत् पुण्यकथां सुधीः ॥ ३९ ॥

जो स्थान दुर्जनोंसे भरा हो, शूद्रों और हिंसक जन्तुओंसे आवृत हो वहाँ और अपवित्र गृहमें विद्वान् पुरुष कभी पुराणोंकी पवित्र कथा न कहे ॥ ३९ ॥

सद्ग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवतालये ।
पुण्ये नदनदीतीरे वदेत् पुण्यकथां सुधीः ॥ ४० ॥

सज्जनोंसे भरे हुए अच्छे ग्राममें, उत्तम क्षेत्रमें, देवताके मन्दिरमें तथा नदों और नदियोंके पावन तटपर विद्वान् वक्ता पुण्यकथाका उपदेश करे ॥ ४० ॥

ईदृशाद् वाचकाद् राजञ्छ्रुत्वा फलमवाप्नुयात् ।
ऐहिकामुष्मिकं शर्म पुण्यं पुत्रादिसिद्धिदम् ॥ ४१ ॥
महापापादिशमनं पुराणं हरिवंशकम् ।

राजन् ! ऐसे वाचकसे कथा सुनकर मनुष्य अभीष्ट फलको पा लेता है । हरिवंशपुराण इहलोक और परलोकमें भी कल्याणकारी, पुण्यदायक, पुत्र आदि अभीष्ट वस्तुओंकी सिद्धि देनेवाला तथा बड़े-बड़े पाप आदिका शमन करनेवाला है ॥ ४१½ ॥

योज्यं पुत्रादिसिद्ध्यर्थं हरिवंशं जितेन्द्रियैः ॥ ४२ ॥
श्रृणुयात् सर्वभावेन पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥ ४३ ॥

जितेन्द्रिय पुरुषोंको पुत्र आदिकी सिद्धिके लिये हरिवंशका सहारा लेना चाहिये । इस पुण्यदायक और पापनाशक पुराणको पूर्ण श्रद्धा और एकाग्रताके साथ सुनना चाहिये ॥ ४२-४३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीपद्मपुराणमें हरिवंशमाहात्म्यके अन्तर्गत श्रवण आदिकी विधिका प्रतिपादनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

(२) हरिवंशश्रवणकी विधि और फल

वैशम्पायन उवाच.

जपाद्धि श्रवणं प्रोक्तं हरिवंशस्य सूरिभिः ।
पितॄन् संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! विद्वान् पुरुषोंने

जपसे हरिवंश-श्रवणकी सफलता बतायी है। पहले पितरोंका तर्पण करके आत्मशुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करे ॥ १ ॥

सुमण्डपं च कर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा।
कृष्णमुद्दिश्य मन्त्रेण चरेत् पूजाविधिं क्रमात् ॥ २ ॥

उत्तम मण्डप बनावे और उसमें श्रीहरिकी स्थापना करे, फिर भगवान् श्रीकृष्णके उद्देश्यसे मन्त्रद्वारा क्रमशः पूजा-विधि सम्पन्न करे ॥ २ ॥

प्रदक्षिणानमस्कारान् पूजान्ते स्तुतिमाचरेत्।
संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ॥ ३ ॥
कर्मग्राहगृहीतोऽहं मामुद्धर भवार्णवात्।

पूजाके अन्तमें प्रदक्षिणा और नमस्कार करके इस प्रकार स्तुति करे—'करुणानिधे ! मैं इस संसार-समुद्रमें डूबा हुआ हूँ। मुझे कर्मरूपी ग्राहने पकड़ रखा है। आप मुझ दीनका इस भवसागरसे उद्धार कीजिये ॥ ३½ ॥

ततः श्रीहरिवंशस्य पूजा कार्या प्रयत्नतः ॥ ४ ॥
विधिना षोडशेनैव धूपदीपसमन्विता।

तदनन्तर धूप, दीप आदि सामग्रियोंसे षोडशोपचारकी विधिके अनुसार प्रयत्नपूर्वक श्रीहरिवंशकी भी पूजा करनी चाहिये ॥ ४½ ॥

ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत् ॥ ५ ॥
स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा।

तदनन्तर पुस्तकके आगे श्रीफल (नारियल) रखकर नमस्कार करे और उस समय प्रसन्नचित्तसे अनन्यभावपूर्वक इस प्रकार स्तुति करे—॥ ५½ ॥

स्वीकृतोऽसि मया नाथ पुत्रार्थं भवसागरे ॥ ६ ॥
मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया।
निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोऽहं तव केशव ॥ ७ ॥

'नाथ ! मैंने इस भवसागरमें पुत्रकी प्राप्तिके लिये आपकी शरण ली है। केशव ! मेरे इस मनोरथको किसी विघ्न-बाधाके बिना ही आप सब प्रकारसे सफल करें। मैं आपका दास हूँ' ॥ ६-७ ॥

एवं दीनवचः प्रोक्त्वा वक्तारं चाथ पूजयेत्।
सम्भूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते तं च संस्तवेत् ॥ ८ ॥

इस प्रकार दीन वचन कहकर वक्ताको वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित करके उसका पूजन करे और पूजनके पश्चात् उसकी इस प्रकार स्तुति करे—॥ ८ ॥

व्यासरूप प्रबोधश्च सर्वशास्त्रविशारद।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥ ९ ॥

'व्यासस्वरूप महानुभाव ! आप समझानेकी कलामें निपुण और समस्त शास्त्रोंके विशेषज्ञ हैं। इस हरिवंशकी कथाको प्रकाशित करके आप मेरे अज्ञानको दूर कीजिये' ॥

तदग्रे नियमः पश्चात् कर्तव्यः श्रेयसे मुदा।
नवरात्रं यथाशक्त्या धारणीयः स एव हि ॥ १० ॥
वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये।
कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ११ ॥
संतानगोपालमन्त्रो महारुद्रजपस्तथा।
पूजनं पार्थिवस्यैव गणनाथमनोर्जपः ॥ १२ ॥

तदनन्तर वक्ताके आगे अपने कल्याणके लिये प्रसन्नता-पूर्वक नियम ग्रहण करे और यथाशक्ति नौ दिनोंतक निश्चय ही उसका पालन करे। कथामें कोई विघ्न न पड़े, इसके लिये पाँच ब्राह्मणोंका वरण करना चाहिये और उन ब्राह्मणों-को द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का जप, संतानगोपालमन्त्रका जप, महारुद्रमन्त्रका जप, पार्थिवपूजन तथा गणेशमन्त्रका जप करना चाहिये ॥ १०–१२ ॥

ब्राह्मणान् वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः।
नत्वा सम्पूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत् ॥ १३ ॥

इसके बाद वहाँ उपस्थित हुए ब्राह्मणों, वैष्णवों तथा कीर्तन करनेवाले अन्य लोगोंको भी नमस्कार करके उनकी पूजा करे और उनसे आज्ञा लेकर स्वयं श्रोताके आसन-पर बैठे ॥ १३ ॥

लोकवित्तधनागारसर्वचिन्ता व्युदस्य च।
कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत् फलमुत्तमम् ॥ १४ ॥

जो पुरुष लोक, सम्पत्ति, धन और घर आदिकी सारी चिन्ता छोड़कर शुद्ध बुद्धिसे केवल कथामें ही मन लगाये रहता है, उसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥

दम्पती शुद्धमनसौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितौ।
श्रद्धैव सर्वधर्माणां मातेव हितकारिणी ॥ १५ ॥

कथा सुननेवाले पति-पत्नी शुद्ध हृदयसे श्रद्धा और भक्तिके साथ कथा सुनें। सब धर्मोंमें श्रद्धा ही माताके समान हितकारिणी है ॥ १५ ॥

श्रद्धयैव नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः।
श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी ॥ १६ ॥

श्रद्धासे ही मनुष्योंको इहलोक और परलोकमें सिद्धि प्राप्त होती है। श्रद्धापूर्वक आराधना करनेवाले पुरुषको शिला भी अभीष्ट फल देनेवाली है ॥ १६ ॥

मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति ज्ञानदः।
श्रद्धया भजतो मन्त्रस्त्वसद् योऽपि फलप्रदः ॥ १७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूर्ख भी यदि भक्तिभावसे पूजित हो तो वह ज्ञानदाता गुरु हो जाता है। असत् मन्त्रका भी यदि श्रद्धापूर्वक सेवन (जप) किया जाय तो वह फलदायक हो जाता है ॥

श्रद्धया पूजितो देवो नीचस्यापि वरप्रदः।
अश्रद्धया कृता पूजा दानं यज्ञस्तपो व्रतम् ॥ १८ ॥
सर्वं निष्फलतां याति पुष्पं बन्धुतरोरिव।

यदि देवताकी श्रद्धापूर्वक पूजा की गयी तो वह नीच पुरुषको भी वर प्रदान करता है। अश्रद्धासे की हुई पूजा, दान, यज्ञ, तप और व्रत—ये सभी दुपहरियाके फूलकी भाँति निष्फल हो जाते हैं ॥ १८½ ॥

सर्वत्र संशयाविष्टः श्रद्धाहीनोऽतिचञ्चलः ॥ १९ ॥
परमार्थात् परिभ्रष्टः संसृतेर्न हि मुच्यते।

जो सर्वत्र संशययुक्त, श्रद्धाहीन और अत्यन्त चञ्चल होता है, वह परमार्थसे भ्रष्ट होकर संसार-बन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता ॥ १९½ ॥

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ॥ २० ॥
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।

मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, औषध और गुरुके विषयमें जैसी जिसकी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २०½ ॥

अतो भावमयं विश्वं पुण्यपापं च भावतः ॥ २१ ॥
ते उभे भावहीनस्य न भवेतां कदाचन।
तस्मात् सर्वात्मना राजञ्छ्रद्धाभक्ती समाश्रयेत् ॥ २२ ॥

यह सारा विश्व भावमय है। पुण्य और पाप भी भावसे ही होते हैं। जो भावसे हीन है, उसे वे दोनों पुण्य और पाप कभी नहीं प्राप्त होते हैं। अतः राजन्! सम्पूर्ण हृदयसे श्रद्धा और भक्तिका आश्रय लेना चाहिये ॥ २१-२२ ॥

आ सूर्योदयमारभ्य सार्धं त्रिप्रहरार्धकम्।
वाचनीया कथा सम्यग् धीरकण्ठं सुधीमता ॥ २३ ॥

बुद्धिमान् वक्ताको उचित है कि वह सूर्योदयसे लेकर साढ़े तीन प्रहरतक मध्यम-स्वरसे अच्छी तरह कथा बाँचे ॥ २३ ॥

कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम्।
तत् कथामनु कार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा ॥ २४ ॥
एवं श्रुत्वा विधानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ २५ ॥

दोपहरके समय दो घड़ीतक कथा बंद रखे। कथा बंद होनेपर वैष्णव पुरुषोंको उस बीचमें कुछ देरतक कीर्तन करना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक कथा सुनकर मनुष्य अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करे ॥ २४-२५ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीपद्मपुराणमें हरिवंश-माहात्म्यके अन्तर्गत श्रवण आदि विधिका वर्णनविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

नवाहव्रती श्रोताओंके पालन करने योग्य नियम, उनके द्वारा त्याज्य वस्तुओंका उल्लेख, न्यायविरुद्ध कथा श्रवण करनेवालोंकी दुर्गति, कथामें विघ्न डालनेके कारण एक नारीको नरकयातना एवं राक्षसयोनिकी प्राप्ति तथा श्रोताओंके चौदह भेद

वैशम्पायन उवाच

नवाहव्रतिनां पुंसां नियमाञ्छृणु सत्तम।
एककालाशनश्चैव अधःशायी भवेन्नरः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—साधुशिरोमणे! नवाह-कथा-श्रवणका व्रत लेनेवाले पुरुषोंके लिये जो आवश्यक नियम हैं, उन्हें बताता हूँ, सुनो! व्रती पुरुष एक समय भोजन करे और नीचे भूमिपर सोये ॥ १ ॥

स्थातव्यं ब्रह्मचर्येण यावद् ग्रन्थः समाप्यते।
हरिवंशे तथा राजन् पायसं चरुभोजनम् ॥ २ ॥
पारणे पारणे यातं यथावद् भरतर्षभ।

जबतक ग्रन्थ समाप्त न हो जाय, तबतक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए रहना चाहिये। राजन्! भरतश्रेष्ठ! हरिवंशकी प्रत्येक पारणामें यथावत् रूपसे खीर अथवा चरुके भोजनका विधान प्राप्त होता है ॥ २½ ॥

मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ॥ ३ ॥
हविष्यान्नेन कर्तव्यमेकवारं कथार्थिना।
उपोष्य नवरात्रं वा शक्तिश्चेच्छृणुयात् तदा ॥ ४ ॥
घृतपानं पयःपानं कृत्वा वा शृणुयात् सुखम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तेन वा पुनः ॥ ५ ॥

कथाके समय मल-मूत्रके वेगको काबूमें रखनेके लिये हल्का भोजन करना सुखद होता है, अतः कथा सुननेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको एक बार हविष्यान्न भोजन करना उचित है। यदि शक्ति हो तो नौ रात उपवास करके कथा सुने अथवा केवल घी अथवा दूध पीकर सुखपूर्वक कथा सुने। इससे काम न चले तो फलाहार अथवा एक समय भोजन करके कथा सुननी चाहिये ॥ ३–५ ॥

सुखसाध्यं भवेद् यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत्।
भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारकम् ॥ ६ ॥

तात्पर्य यह है कि जिससे जो नियम सुगमतापूर्वक निभ सके, वह उसीको कथा सुननेके लिये ग्रहण करे। मैं तो उपवासकी अपेक्षा भोजनको ही श्रेष्ठ मानता हूँ, यदि वह कथा-श्रवणमें सहायक हो सके ॥ ६ ॥

नोपवासो वरः प्रोक्तो कथाविघ्नकरो यदि।
शृणुयाद् यः शुचिस्तिष्ठन्नेकचित्ततया सदा ॥ ७ ॥

यदि उपवाससे कथामें विघ्न पड़ता हो तो वह अच्छा नहीं बताया गया है। जो इस कथाको सुने, वह सदा पवित्र हो एकाग्र-चित्तसे सुननेके लिये बैठे ॥ ७ ॥

प्रातःस्नानादिकं कृत्वा पुत्रदारसमन्वितः।
पुराणश्रवणं कुर्यात् कृष्णपूजनपूर्वकम् ॥ ८ ॥

श्रोता स्त्री-पुत्रोंके साथ प्रातःस्नान आदि कर्म करके पहले भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे। तत्पश्चात् इस पुराणको सुने ॥ ८ ॥

पुष्पधूपफलैः सम्यङ् नैवेद्यैः श्रद्धयोद्धृतैः।
गुरोः शुश्रूषणं तेन कर्तव्यं फलकाङ्क्षिणा ॥ ९ ॥

अभीष्ट फलकी इच्छा रखनेवाला श्रोता श्रद्धापूर्वक अर्पित किये हुए पुष्प, धूप, फल और उत्तम नैवेद्यके द्वारा गुरुकी शुश्रूषा करे ॥ ९ ॥

श्रुत्वा यथेच्छया शौचं कार्यं पुण्येन वर्त्मना।
सायंकाले गुरुश्रेष्ठं तोषयित्वा सबान्धवः ॥ १० ॥
स्वपरिग्रहसङ्गेन सुखं स्वपिति वै तदा।
नियमादि प्रकर्तव्यं पापानां विनिवर्तने ॥ ११ ॥
यथासुखं व्यवहरेन्नित्यं विष्णुपरायणः।

कथा सुननेके पश्चात् अपनी इच्छाके अनुसार सायंकालमें पवित्र मार्गसे शौच-सम्बन्धी कार्य सम्पन्न करे, फिर बन्धु-बान्धवोंसहित सेवामें उपस्थित हो गुरुश्रेष्ठ व्यासको संतुष्ट करके अपनी स्त्रीके साथ घर जाकर पृथक् आसनपर सुखपूर्वक सोये। पापोंके निवारणके लिये शौच–, संतोष आदि नियमों और ब्रह्मचर्य आदि यमोंका दृढ़ताके साथ पालन करना चाहिये। नित्य-निरन्तर भगवान् विष्णुके चिन्तनमें तत्पर रहकर वह सुखपूर्वक पूर्वोक्त नियमोंका पालन करे ॥ १०-११½ ॥

शुचिः शुद्धमनास्तिष्ठन् पत्रावल्यां च भोजनम् ॥ १२ ॥
कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती।

कथाका व्रत लेनेवाला पुरुष पवित्र एवं शुद्ध-चित्त रहकर कथा सुने और प्रतिदिन कथा समाप्त होनेपर पत्तलमें ही भोजन करे ॥ १२½ ॥

द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ॥ १३ ॥
भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती।

कथा-श्रवणकालमें दाल, मधु, तेल, गरिष्ठ अन्न, भाव-दूषित पदार्थ और बासी अन्नको कथाव्रती पुरुष प्रतिदिन त्याग दे ॥ १३½ ॥

वृन्ताकं च कलिङ्गं च दग्धमन्नं मसूरिकाम् ॥ १४ ॥
निष्पावानामिषाद्यं च वर्जयेच्च कथाव्रती।

बैंगन, कलिंग (सिरस), जला हुआ अन्न, मसूर, निष्पाव (लौबिया या सेम) तथा मांस आदिको कथाव्रती सर्वथा त्याग दे ॥ १४½ ॥

पलाण्डुं लशुनं हिंगुं मूलकं गृञ्जनं तथा ॥ १५ ॥
नालिकामूलकूष्माण्डं नैवाश्नाच्च कथाव्रती।

प्याज, लहसुन, हींग, मूली, गाजर, नालिका (नाड़ीका शाक), मूल (जमीनके अंदर पैदा होनेवाले कंद, आलू, अरवी आदि) और कुम्हड़ा—इन सबको कथा सुननेका व्रत लेनेवाला पुरुष कदापि न खाय ॥ १५½ ॥

कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ॥ १६ ॥
दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती।

कथाव्रती पुरुष काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दम्भ, मोह तथा द्वेषको अपने मनसे दूर कर दे ॥ १६½ ॥

वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ १७ ॥
स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेच्च कथाव्रती।

वह वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गोसेवक, स्त्री, राजा और महापुरुषोंकी निन्दाको सर्वथा त्याग दे ॥ १७½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितव्रात्यकैः सह ॥ १८ ॥
द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेच्च कथाव्रती ।

कथाव्रती रजस्वला स्त्री, अन्त्यज (चाण्डाल आदि), म्लेच्छ, पतित, गायत्रीहीन द्विज, ब्राह्मणद्रोही तथा वेदको न माननेवाले पुरुषोंसे बात न करे ॥ १८½ ॥

सत्यं शौचं दया मौनमार्जवं विनयं तथा ॥ १९ ॥
उदारं मानसं तद्वत् कुर्यादेव कथाव्रती ।

नियमसे कथाका व्रत लेनेवाले पुरुषको सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता तथा विनयका पालन करना चाहिये और अपने हृदयको उदार बनाये रखना चाहिये ॥ १९½ ॥

श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः ॥ २० ॥
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ।

जो श्रद्धा और भक्तिसे सम्पन्न हो, दूसरे किसी कार्यकी लालसा न रखते हुए पवित्र, मौन और शान्तभावसे कथा सुनते हैं, वे पुण्यके भागी होते हैं ॥ २०½ ॥

अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः ॥ २१ ॥
तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि ।

जो अधम मनुष्य भक्तिभावसे रहित होकर इस पुण्य कथाको सुनते हैं, उन्हें कभी पुण्य-फल नहीं प्राप्त होता और जन्म-जन्ममें दुःख भोगना पड़ता है ॥ २१½ ॥

पुराणं ये तु सम्पूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः ॥ २२ ॥
शृण्वन्ति च कथां भक्त्या दरिद्राः स्युर्न पापिनः ।

जो ताम्बूल आदि उपहारोंसे पुराणका पूजन करके भक्तिभावसे इस कथाको सुनते हैं, वे दरिद्र और पापी नहीं होते हैं ॥ २२½ ॥

कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः ॥ २३ ॥
भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः ।

जो कथा होते समय उसे छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं, उनकी स्त्री और सम्पदाएँ भोगके बीचमें ही नष्ट हो जाती हैं (वह उनका पूर्णतः उपभोग नहीं कर पाता है) ॥ २३½ ॥

सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम् ॥ २४ ॥
ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ।

जो पापी नराधम सिरपर पगड़ी रखकर इस पावन कथाको सुनते हैं, वे बगुले होते हैं ॥ २४½ ॥

ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम् ॥ २५ ॥
स्वविष्ठां खादयन्त्येतान्नरके यमकिङ्कराः ।
नार्या रजस्वलायाश्च योनितुल्यं मुखं भवेत् ॥ २६ ॥

जो लोग पान खाते हुए पुराणकी पावन कथाको सुनते हैं, उन्हें यमराजके दूत नरकमें डालकर अपनी ही विष्ठा खिलाते हैं । उनका मुख रजस्वला स्त्रीकी योनिके समान हो जाता है ॥ २५-२६ ॥

ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः ।
अक्षय्यान् नरकान् भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः ॥ २७ ॥

जो दम्भी मनुष्य ऊँचे आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं, वे अक्षय नरकोंका उपभोग करके अन्तमें कौए होते हैं ॥ २७ ॥

ये च वीरासनारूढा ये च शय्यासनस्थिताः ।
शृण्वन्ति तत्कथां ते वै भवन्त्यर्जुनपादपाः ॥ २८ ॥

जो वीरासनपर आरूढ हो तथा जो शय्यारूप आसनपर बैठकर उस पुराण-कथाको सुनते हैं, वे अर्जुन नामक वृक्ष होते हैं ॥ २८ ॥

असम्प्रणम्य शृण्वन्तो विषवृक्षा भवन्ति ते ।
तथा शयानाः शृण्वन्तो भवन्त्यजगरा नराः ॥ २९ ॥

जो कथाको प्रणाम किये बिना ही सुनते हैं, वे विषवृक्ष होते हैं । जो सोते हुए सुनते हैं, वे मनुष्य अजगर सर्प होते हैं ॥ २९ ॥

यः शृणोति कथां वक्रः समानासनमास्थितः ।
गुरुतल्पसमं पापं सम्प्राप्य नरकं व्रजेत् ॥ ३० ॥

जो वक्र स्वभाववाला मनुष्य वक्ताके समान आसनपर बैठकर कथा सुनता है, वह गुरुपत्नीगमन-तुल्य पापका भागी होकर नरकमें पड़ता है ॥ ३० ॥

ये निन्दन्ति पुराणज्ञान् कथां वा पापहारिणीम् ।
ते वै जन्मशतं मर्त्याः शुनकाः सम्भवन्ति च ॥ ३१ ॥

जो लोग पुराणवेत्ताओं तथा पुराणकी पापहारिणी कथाकी निन्दा करते हैं, वे मनुष्य सौ जन्मोंतक कुत्ते होते हैं ॥ ३१ ॥

कथायां वर्तमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम् ।
ते गर्दभाः प्रजायन्ते कुकलासास्ततः परम् ॥ ३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो कथा होते समय दूषित उत्तर-प्रत्युत्तर करते हैं, वे पहले तो गदहे होते हैं, तत्पश्चात् गिरगिटकी योनिमें जन्म पाते हैं ॥ ३२ ॥

कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः।
ते भुक्त्वा नरकान् घोरान् भवन्ति वनशूकराः ॥३३॥

जो कभी भी पुराणकी पुण्यमयी कथाको नहीं सुनते हैं, वे घोर नरकोंका कष्ट भोगकर वनैले सूअर होते हैं ॥३३॥

कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः।
कोट्यब्दान् नरकान् भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः॥३४॥

जो शठ कथा-कीर्तनमें विघ्न डालते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरक भोगकर अन्तमें ग्रामसूकर होते हैं ॥ ३४ ॥

मध्ये वार्तां न कुर्वीत चेत् कुर्यान्निरयं व्रजेत्।
कथायां श्रूयमाणायां न कुर्याच्छिशुलालनम् ॥ ३५॥

कथा सुनते समय बीचमें बातचीत न करे। यदि कोई करे तो वह नरकमें जायगा। कथा-श्रवणकालमें बच्चोंका लाड़-प्यार भी न करे ॥ ३५ ॥

नर्मवादान् वदेन्नैव स्त्रिया सम्भाषणं तथा।
न कर्तव्यं प्रयत्नेन कथाविच्छेदकारणम् ॥ ३६॥

कथा होते समय हँसी-परिहासकी बातें न करे, स्त्रीके साथ वार्तालाप भी न करे। इन बातोंका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये; क्योंकि ये सब बातें कथामें विच्छेद (विघ्न) डालनेवाली हैं ॥ ३६ ॥

विच्छेदेन कथायास्तु ब्रह्महत्यासमं त्वघम्।
प्राप्नोति नृपशार्दूल कथाविच्छेदकः पुमान् ॥ ३७॥

राजसिंह! कथामें विच्छेद पैदा करनेसे वह कथाविच्छेदक पुरुष ब्रह्महत्याके समान पापका भागी होता है ॥ ३७ ॥

न कुर्यात् तु कथामध्ये त्वन्यवार्ताः प्रयत्नतः।
नारी वा पुरुषो वापि कुर्यान्निरयमाप्नुयात् ॥ ३८॥

स्त्री हो या पुरुष, कथाके बीचमें दूसरी बातें न करे और इसके लिये सदा प्रयत्नशील रहे। यदि कोई बात करता है तो वह नरकमें पड़ता है ॥ ३८ ॥

इतिहासं वदाम्यत्र शृणुष्वैकं हि मानद।
यं श्रुत्वा न वदेद् वार्तां कथामध्ये कदाचन ॥ ३९॥

मानद! इस विषयमें मैं एक इतिहास बताता हूँ, इसे सुनो। इसे सुन लेनेपर कोई भी मनुष्य कभी कथाके बीचमें वार्तालाप नहीं कर सकता ॥ ३९ ॥

जनस्थाने पुरा कश्चिद् ब्राह्मणो वेदपारगः।
धर्मशास्त्रेऽतिनिपुणः सदाचारपरायणः ॥ ४०॥

प्राचीन कालकी बात है, जनस्थानमें कोई ब्राह्मण रहते थे, जो वेदोंके पारङ्गत विद्वान् थे। वे धर्म-शास्त्रमें अत्यन्त निपुण तथा सदाचारमें तत्पर रहनेवाले थे ॥ ४० ॥

गङ्गास्नानं विधायादौ कृत्वा माध्याह्निकं तथा।
कृत्वा देवार्चनं चैव श्रवणे तत्परोऽभवत् ॥ ४१॥

वे प्रतिदिन पहले गङ्गा-स्नान और मध्याह्न-संध्या-वन्दन आदि करके देवपूजन करनेके पश्चात् कथा-श्रवणमें प्रवृत्त होते थे ॥ ४१ ॥

तस्य भार्यातिदुष्टा च कर्कशा कलहप्रिया।
असत्यालापनिपुणा परद्वेषपरायणा ॥ ४२॥

उनकी स्त्री बड़ी दुष्ट और कर्कशा थी। सदा कलह करना ही उसे प्रिय लगता था। वह झूठ बोलनेमें निपुण थी और दूसरोंसे द्वेष करनेमें ही लगी रहती थी ॥ ४२ ॥

हृत्वा चक्रे धनस्यापि संग्रहं पापनिश्चया।
दधि दुग्धं समानीय शर्करागुडमेव च ॥ ४३॥
घृतं च नवनीतं च स्वयमानीय सर्वदा।
एकान्ते भक्षणं चक्रे भर्तर्यन्नं प्रशुष्ककम् ॥ ४४॥

वह पापपूर्ण निश्चयवाली नारी चोरी-चोरी धनका भी संग्रह करने लगी। वह स्वयं दही, दूध, शक्कर, गुड़-घी और माखन खरीद लाती और एकान्तमें बैठकर अकेली ही खाती थी। पतिको केवल रूखा-सूखा अन्न परोस दिया करती थी ॥ ४३-४४ ॥

दुराग्रहा दुष्टमनाः पतिनिन्दापरायणा।
बहुपापप्रकर्त्री च परवेश्मोपवेशिनी ॥ ४५॥

उसका स्वभाव दुराग्रही था, मनमें दुष्टता भरी रहती थी। वह सदा अपने पतिकी निन्दामें ही लगी रहनेवाली और पाप करनेवाली थी, प्रायः दूसरेके घरमें ही बैठी रहती थी ॥ ४५ ॥

सुभाषणं वदेन्नैव द्विषः क्षेमविधायिनी।
पंक्तिभेदं प्रकुर्वाणा सदा निष्ठुरभाषिणी ॥ ४६॥

वह अच्छी बात तो कभी बोलती ही नहीं थी। जो पतिके द्वेषी थे, उन्हींका वह भला किया करती थी। भोजनमें सदा पंक्तिभेद करती थी—किसीको कुछ परोसती और किसीको कुछ। सदा निष्ठुर बात ही बोलती थी ॥ ४६ ॥

अतिथीषु सदा वैरकारिणी धर्मनाशिनी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by

सज्जनोऽपि गुणी सौम्यस्तस्या भर्ता सुपूजितः ॥ ४७ ॥

अतिथियोंसे सदा वैर रखती और धर्मका नाश करती थी। उसके पति बड़े सज्जन, गुणवान्, सौम्य तथा सर्वत्र सम्मानित होनेवाले थे ॥ ४७ ॥

यदा भर्ता पुराणस्य श्रवणाय हि संस्थितः।
प्रत्यहं तत्र गत्वा तु तस्य निन्दां चकार ह ॥ ४८ ॥

जब उसके पति प्रतिदिन पुराण सुननेके लिये बैठते, तब वहाँ जाकर वह उनकी निन्दा करने लगती थी—॥४८॥

संन्यासिवत् कथं ह्यत्र श्रवणे व्यासवत् कृतः।
समुत्पन्ननिरुद्योग किं कर्तव्यं मया वद ॥ ४९ ॥

'संसारमें पैदा होकर भी जीवन-निर्वाहके लिये कोई उद्योग न करनेवाले आलसी! यहाँ संन्यासीकी तरह कथा सुनने कैसे बैठे हो? तुम तो यहाँ आकर व्यासबाबा बन गये, अब मुझे बताओ, मैं क्या करूँ? ॥ ४९ ॥

शिशवो मां पीडयन्ति भक्षणाय दिने दिने।
किं तेषां च प्रकर्तव्यं भक्षणार्थं मया वद ॥ ५० ॥

'बच्चे प्रतिदिन भोजनके लिये मुझे तंग करते रहते हैं; बताओ, मैं उनके खानेके लिये क्या प्रबन्ध करूँ? ॥ ५० ॥

नास्त्येवान्नं गृहे किञ्चिद् वस्त्रं वाप्यथवा धनम्।
किं मया च प्रकर्तव्यं कुत्र गन्तव्यमेव च ॥ ५१ ॥

'मेरे घरमें न तो मुट्ठीभर अन्न है, न वस्त्र है और न धन ही है। मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? ॥ ५१ ॥

कथं विलिखितं दिष्टं धात्रा पापेन मे पुरा।
मूर्खश्चालस्यसंयुक्तो दरिद्रो निष्ठुरस्तथा ॥ ५२ ॥
स्नेहहीनः कुटुम्बे च कथायाः श्रवणे रतः।
एतादृशः पतिर्मह्यं धात्रा दत्तो दुरात्मना ॥ ५३ ॥

'न जाने पापी विधाताने पूर्वकालमें मेरा भाग्य कैसा लिख दिया? दुरात्मा ब्रह्माने मुझे ऐसा पति दिया, जो मूर्ख, आलसी, दरिद्र और निष्ठुर है। इसका अपने कुटुम्ब-पर तनिक भी स्नेह नहीं है। यह सिर्फ कथा सुननेमें लगा रहता है ॥ ५२-५३ ॥

पृथिव्यां दुर्भगैकाहं दरिद्रगृहमागता।
उदरापूर्तिमात्रं हि नान्नं मे भक्षितं कदा ॥ ५४ ॥

'इस पृथ्वीपर एकमात्र मैं ही ऐसी अभागिनी हूँ, जो इस दरिद्रके घरमें आ गयी। यहाँ आकर कभी मैंने भरपेट भोजन भी नहीं किया ॥ ५४ ॥

सौभाग्यास्ताः स्त्रियो लोके यासामुद्योगशालिनः।
पतयो धनधान्यादिसमृद्धिपरिशोभिताः ॥ ५५ ॥

'संसारमें वे ही स्त्रियाँ सौभाग्यशालिनी हैं, जिनके पति उद्योगशील हैं, धन-धान्य आदिकी समृद्धिसे सुशोभित हैं ॥ ५५ ॥

ते वै स्त्रीणां वाक्यकराः शिशुपालनतत्पराः।
नित्यं गृहेषु तिष्ठन्ति स्त्रीणां संतोषकारकाः ॥ ५६ ॥

'वे अपनी स्त्रियोंकी आज्ञा मानते हैं, बच्चोंके लालन-पालनमें तत्पर रहते हैं, सदा घरमें रहते हैं और स्त्रियोंको संतुष्ट रखते हैं ॥ ५६ ॥

सदन्नभक्षणात् पुष्टा भार्याज्ञापरिपालकाः।
व्यवसायं च भार्याणां कुर्वन्ति बुद्धिशालिनः ॥ ५७ ॥

'वे उत्तम अन्न खाकर पुष्ट होते हैं, पत्नीकी आज्ञाका पालन करते हैं, बुद्धिशाली हैं और पत्नियोंका जैसा निश्चय होता है, वैसा ही वे करते हैं ॥ ५७ ॥

अयं मूर्खश्च जडधीरुपेक्षां कुरुते गृहे।
अद्य तैलं गृहे नास्ति चेन्धनं लवणं तथा ॥ ५८ ॥

'यह मेरा पति तो मूर्ख और जडबुद्धि है, घरके प्रति उपेक्षाका भाव रखता है। आज घरमें न नमक है, न तेल है और न लकड़ी ही है ॥ ५८ ॥

शाकञ्च मम नास्त्येव धान्यलेशो न मद्गृहे।
किं मया तु प्रकर्तव्यं पतिरेतादृशो मम ॥ ५९ ॥

'साग भी मेरे घरमें नहीं है। अनाज तो लेशमात्र भी नहीं है। क्या करूँ? मेरा पति ऐसा आलसी है' ॥ ५९ ॥

कथायां श्रूयमाणायां पत्या सन्मार्गमूर्तिना।
धान्यादौ विद्यमानेऽपि मिथ्याभाषणतत्परा ॥ ६० ॥

सन्मार्गकी मूर्तिरूप पतिके कथा सुनते समय वह घरमें अनाज आदिके रहते हुए भी वहाँ आकर इस प्रकार मिथ्या भाषण किया करती थी ॥ ६० ॥

कथाविघ्नं चकारासौ कर्कशा सा दिने दिने।
ततः कालेन मरणं प्राप्ता सा दुष्टमानसा ॥ ६१ ॥

वह कर्कशा स्त्री प्रतिदिन इसी तरह कथामें विघ्न डाला करती थी। उसका हृदय दुष्टतासे भरा था। तदनन्तर काल आनेपर उसकी मृत्यु हो गयी ॥ ६१ ॥

यमदूतैस्तु बद्धा सा नीता च यममन्दिरे।
ततो यमाज्ञया तैस्तु नरके पातिता चिरम् ॥ ६२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यमराजके दूत आये और उसे बाँधकर यमराजके घर ले गये। वहाँ यमकी आज्ञासे उन्होंने उसे चिरकालके लिये नरकमें गिरा दिया ॥ ६२ ॥

पश्चात् सा राक्षसी जाता भैरवे जलवर्जिते।
अरण्ये क्षुत्तृषायुक्ता पूर्वपापप्रभावतः ॥ ६३ ॥

नरकसे छूटनेपर वह पूर्व पापके प्रभावसे ही भयानक वनमें, जहाँ पानीका सर्वथा अभाव था, राक्षसी हुई और भूख-प्याससे पीड़ित रहने लगी ॥ ६३ ॥

तस्माद् विघ्नं न कर्तव्यं भार्यया पुरुषेण वा।
श्रीहरेः सत्कथायास्तु तव सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६४ ॥

अतः स्त्री हो या पुरुष, किसीको भी श्रीहरिकी उत्तम कथामें विघ्न नहीं डालना चाहिये। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ६४ ॥

मीनालिनो महिषहंसबकस्वभावा
मार्जारकाकवृककंकजलौकतुल्याः।
सच्छिद्रकुम्भजलसिन्धुशिलोपमाश्च
ते श्रावकाश्च सुचतुर्दशधा भवन्ति ॥ ६५ ॥

वे भले-बुरे श्रोता चौदह प्रकारके होते हैं—मीन, भ्रमर, महिष, हंस, बक, मार्जार, काक, वृक, कङ्क, जोंक, छिद्र-युक्त घट, जल, सिन्धु और शिला। इनके समान स्वभाववाले होनेके कारण वे इन्हीं नामोंसे कहे गये हैं ॥ ६५ ॥

दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान्।
अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयात् स कथामिमाम् ॥ ६६ ॥

दरिद्र, क्षयका रोगी, अन्य किसी रोगसे पीड़ित, भाग्य-हीन, पापाचारी, संतानहीन तथा मुमुक्षु पुरुष इस हरिवंश-कथाको अवश्य सुने ॥ ६६ ॥

अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका।
स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्या प्रयत्नतः ॥ ६७ ॥

जिस स्त्रीका मासिक धर्म रुक गया हो, जिसके एक ही संतान होकर रह गयी हो, जिसके बच्चे होते ही न हों, जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हों तथा जिसका गर्भ गिर जाता हो, उस स्त्रीको प्रयत्नपूर्वक इस हरिवंशकथाका श्रवण करना चाहिये ॥ ६७ ॥

सुपुत्रं लभते राजन् व्यासस्य वचनं यथा।
सर्वान् कामानवाप्नोति कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ॥ ६८ ॥

राजन्! नारी यह कथा सुनकर उत्तम पुत्र प्राप्त कर लेती है। जैसा कि व्यासजीका वचन है। श्रीहरिकी इस कथाको सुनकर मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको पा लेता है ॥ ६८ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीपद्मपुराणमें हरिवंशमाहात्म्यके अन्तर्गत कथा-श्रवण आदिकी विधिका वर्णन विषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

हरिवंशके नवाह-पारायणका उद्यापन, उसमें किये जानेवाले दान, पुस्तकपूजा और वाचक-पूजन आदिका विधान एवं माहात्म्य

वैशम्पायन उवाच

एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत्।
जन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार व्रतकी विधि पूर्ण करके उसका उद्यापन करे। उत्तम फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको जन्माष्टमी-व्रतके समान इसका उद्यापन करना चाहिये ॥ १ ॥

अकिञ्चनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनग्रहः।
श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥ २ ॥

जो अकिंचन भक्त हैं, उनके लिये प्रायः उद्यापनका आग्रह नहीं है। वे कथा-श्रवणमात्रसे ही शुद्ध हो जाते हैं; क्योंकि वे निष्काम वैष्णव हैं ॥ २ ॥

एवं नवाहयज्ञेऽस्मिन् समाप्ते श्रोतृभिस्तदा।
पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्यातिभक्तितः ॥ ३ ॥
प्रसादतुलसीमाला श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम्।

इस प्रकार नवाह-यज्ञ पूर्ण होनेपर श्रोताओंको बड़ी भक्तिके साथ पुस्तक तथा कथावाचककी पूजा करनी चाहिये और वक्ताको उचित है कि वह श्रोताओंको प्रसाद और तुलसीकी माला दे ॥ ३½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मृदङ्गतालललितं कीर्तनं कीर्त्यतां ततः ॥ ४ ॥
जयशब्दो नमःशब्दः शङ्खशब्दश्च गीयताम् ।
विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् मृदंग बजाकर तालस्वरके साथ कीर्तन किया जाय, जय-जयकार और नमस्कार शब्दके साथ शङ्खोंकी ध्वनि हो तथा ब्राह्मण और याचकोंको अन्न और धन दिया जाय ॥ ४-५ ॥

श्रवणान्ते हरेर्मूर्तिः सश्रीकस्य प्रदीयताम् ।
सुवर्णस्य कृता सम्यग्लक्ष्मयङ्का पलमानतः ॥ ६ ॥

कथाश्रवणके अन्तमें एक पल सुवर्णकी बनी हुई लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी मूर्ति, जो श्रीवत्सचिह्नसे अङ्कित हो, वाचकके लिये देनी चाहिये ॥ ६ ॥

समाप्तौ विधिवद् वस्त्रं क्षौमं दद्याच्च वाचके ।
विशेषोऽयं समुद्दिष्टो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ७ ॥

कथा समाप्त होनेपर वाचकको विधिपूर्वक रेशमी वस्त्र भी देना चाहिये । तत्त्वदर्शी मुनियोंने यह विशेष बात बतायी है ॥ ७ ॥

समाप्य सर्वं प्रयतः संहिताशास्त्रकोविदः ।
शुभे दिने निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृतः ॥ ८ ॥
शुक्लाम्बरधरस्तत्र शुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः ।
अर्चयत् तु यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक्पृथक् ॥ ९ ॥
संहितापुस्तकं तत्र प्रयतः सुसमाहितः ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्चापूपैश्च कौतुकैर्विविधैः शुभैः ॥ १० ॥

संहिताशास्त्रका विद्वान् वाचक पवित्र हो सम्पूर्ण हरिवंशको समाप्त करके शुभ दिनमें पुस्तकको सिंहासनपर स्थापितकर रेशमी वस्त्र ओढ़ श्वेत वस्त्र धारण करके पवित्र एवं विभूषित हो गन्ध, माल्य आदि पृथक्-पृथक् उपचारोंसे संहिता-पुस्तककी यथोचितरूपसे पूजा करे । उस समय चित्त शुद्ध एवं एकाग्र होना चाहिये । भक्ष्य, भोज्य और पुआ आदि नैवेद्यों तथा नाना प्रकारके शुभ कौतुकोंद्वारा उस पूजनकर्मको सम्पन्न करना चाहिये ॥ ८—१० ॥

हिरण्यमन्यद् द्रव्यं च दक्षिणां तत्र दापयेत् ।
ये श्रावयन्ति मनुजान् पुण्यां पौराणिकीं कथाम् ॥ ११ ॥
कल्पकोटिशतं साग्रं यान्ति ते ब्रह्मणः पदे ।

यजमान वहाँ सुवर्ण तथा अन्य द्रव्योंको दक्षिणारूपसे दे । जो लोग अपने यहाँ आयोजन करके लोगोंको पुण्यमयी पौराणिक कथा सुनवाते हैं, वे सौ कोटि कल्पोंसे अधिक कालतक ब्रह्मधाममें विराजते हैं ॥ ११½ ॥

आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ॥ १२ ॥
कम्बलाजिनवासांसि मञ्चाफलकमेव च ।
स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ॥ १३ ॥
स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ।

जो मानव पुराणवेत्ता वाचकको आसनके लिये कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, शय्या और चौकी आदि प्रदान करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाकर मनोवाञ्छित भोगोंका उपभोग करके ब्रह्मा आदिके लोकोंमें निवास करते हुए अन्ततोगत्वा निरामय पद (वैकुण्ठ-धाम) को प्राप्त होते हैं ॥ १२-१३½ ॥

पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये सूत्रवसनं नवम् ॥ १४ ॥
भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्ते भवन्ति भवे भवे ।

जो पुराणके वेष्टनके लिये नया सूती वस्त्र देते हैं, वे जन्म-जन्ममें भोग और ज्ञानसे सम्पन्न होते हैं ॥ १४½ ॥

ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्च ये ॥ १५ ॥
पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमं पदम् ।

जो महापातकों और उपपातकोंसे युक्त हैं, वे भी इस पुराणके श्रवणमात्रसे परमपदको प्राप्त कर लेते हैं ॥ १५½ ॥

हरिवंशं लिखित्वा यो वाचकाय प्रदापयेत् ॥ १६ ॥
यत् फलं भूमिदानस्य तत् फलं लभते हि सः ।

जो हरिवंशको लिखकर उसका वाचकको दान करता है, उसे भूमिदानका फल प्राप्त होता है ॥ १६½ ॥

राजसूयेन तेनेष्टमश्वमेधेन वै नृप ॥ १७ ॥
दत्तानि सर्वदानानि हरिवंशे श्रुतेऽखिले ।

नरेश्वर ! जिसने सारा हरिवंश सुन लिया, उसने राजसूय और अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कर लिया तथा सम्पूर्ण दान दे दिये ॥ १७½ ॥

राजसूयाश्वमेधाद्या यज्ञाश्चैव युगे युगे ॥ १८ ॥
श्रवणं हरिवंशस्य कलौ यज्ञफलप्रदम् ।

राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञ प्रत्येक युगमें केवल अपना फल देते हैं, परंतु हरिवंशका श्रवण कलियुगमें समस्त यज्ञोंका फल देनेवाला है ॥ १८½ ॥

श्रद्धावानास्तिको दान्तो हरिवंशं यदारभेत् ॥ १९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पातकानि प्रकम्पन्ते प्रत्यूहानि ज्वलन्ति च ।

श्रद्धालु, आस्तिक एवं जितेन्द्रिय पुरुष जब हरिवंश आरम्भ करता है, तब सारे पातक काँपने लगते हैं और समस्त विघ्न जल जाते हैं ॥ १९½ ॥

समारभ्य नयेत् पारं हरिवंशं य आदितः ॥ २० ॥
स्पर्शनाद् दर्शनात् तस्य विष्णुर्दृष्टो भवेन्नृप ।

नरेश्वर ! जो हरिवंशकी कथाको आदिसे आरम्भ करके अन्ततक पहुँचा देता है, उसके दर्शन और स्पर्शसे भगवान् विष्णुका ही दर्शन और स्पर्श हुआ ऐसा मानना चाहिये ॥ २०½ ॥

जन्मत्रयस्य निकषः पातकस्य क्षयो ध्रुवम् ॥ २१ ॥
फलाप्तिश्च समाप्तौ च हरिवंशस्य बुद्ध्यते ।

हरिवंशकी समाप्ति होनेपर श्रोताके तीन जन्मोंके पातकोंका निश्चय ही नाश हो जाता है और अभीष्ट फलकी प्राप्तिका भी बोध होता है, यही इसकी सफलताकी कसौटी है ॥ २१½ ॥

श्रोतुर्भारत विज्ञेयं पूर्वं सुकृतिलक्षणम् ॥ २२ ॥
येन संजायते बुद्धिर्हरिवंशावधारणे ।

भरतनन्दन ! यह श्रोताके पूर्व पुण्यका लक्षण समझना चाहिये, जिससे उसके मनमें हरिवंश सुननेका विचार उत्पन्न होता है ॥ २२½ ॥

सर्वाणि च पुराणानि वेदाश्च स्मृतयस्तथा ॥ २३ ॥
हरिवंशेन बद्धार्था व्यासेन च महर्षिणा ।

महर्षि व्यासने समस्त पुराणों, वेदों और स्मृतियोंके भावोंको हरिवंशके साथ बाँध रखा है ॥ २३½ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानां निन्दकेभ्यः कथंचन ॥ २४ ॥
पापिभ्यश्च महाराज श्रावयेन्नैव वाचकः ।

महाराज ! वाचकको उचित है कि वह श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणोंके निन्दकोंको तथा पापियोंको किसी तरह कथा न सुनावे ॥ २४½ ॥

श्रुत्वा तुष्टेन मनसा वाचकं परिपूजयेत् ॥ २५ ॥
दान्तं यशस्विनं कान्तं शुचिं स्पष्टाक्षरब्रुवम् ।
त्रिशुक्लमाचारपरमक्रोधनमवादिनम् ॥ २६ ॥

कथा सुनकर श्रोता संतुष्ट चित्तसे जितेन्द्रिय, यशस्वी, कान्तिमान्, पवित्र, अक्षरोंका सुस्पष्ट उच्चारण करनेवाले, जन्म, विद्या और संस्कार तीनोंसे शुद्ध, सदाचारपरायण, क्रोधहीन और वाद-विवादसे रहित वाचककी पूजा करे ॥ २५-२६ ॥

ग्रामं दद्यात् सुवसितं कुण्डलोष्णीषमालिकाम् ।
पादुकोपानहौ छत्रं सवितानं मसूरिकाम् ॥ २७ ॥
एवं कृत्वा तु विधिवद् वाचकाय प्रदापयेत् ।
यानं वार्षं हयगजौ क्षौमं मणिमयासनम् ॥ २८ ॥
पञ्च भाण्डानि ताम्रस्य ताम्रस्यैवाम्बुभाजनम् ।

उसे भलीभाँति बसा हुआ ग्राम दे, कुण्डल, पगड़ी और माला अर्पित करे, खड़ाऊँ, जूता, छाता, चँदोवा और मसहरी—इन सबको एकत्र करके विधिपूर्वक वाचकको अर्पित करे । साथ ही बैलगाड़ी, घोड़ा, हाथी, रेशमी वस्त्र और मणिमय आसन, ताँबेके पाँच बर्तन तथा ताँबेका ही जलपात्र दे ॥ २७-२८½ ॥

सकुटुम्बं च सस्त्रीकं वाचकं परया मुदा ॥ २९ ॥
विभूषणैरलंकृत्य परिधाप्य सुवाससी ।
कृष्णद्वैपायनं ध्यायन् नमस्कुर्वीत भावतः ॥ ३० ॥

पत्नी और कुटुम्बसहित वाचकको बड़ी प्रसन्नताके साथ आभूषणोंद्वारा अलंकृत करके उन्हें दो सुन्दर वस्त्र पहनावे और श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीका चिन्तन करते हुए उन्हें भक्तिभावसे नमस्कार करे ॥ २९-३० ॥

वाचके परितुष्टे तु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं हरिवंशफलेप्सुभिः ॥ ३१ ॥

वाचकके संतुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो जाते हैं, अतः हरिवंशके फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको धन खर्च करनेमें कंजूसी नहीं करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

प्रदेया गौः शुभा चैका सवत्सा हेमपूरिता ।
पलेन च पलार्धेन तदर्धं वाथ वा पुनः ॥ ३२ ॥

एक, आधे या चौथाई पल सुवर्णके साथ बछड़ेसहित एक सुन्दर गौ भी वाचकको देनी चाहिये ॥ ३२ ॥

वाचकं येन केनापि तोषयेत् सुसमाहितः ।
तुष्टे तु वाचके राजंस्तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ ३३ ॥
तुष्टेषु सर्वदेवेषु कार्यं तु सफलं भवेत् ।

राजन् ! जिस किसी उपायसे सम्भव हो, एकाग्रचित्त हो वाचकको संतुष्ट करे । वाचकके संतुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण देवताओंके संतुष्ट होनेपर यजमानका कार्य सफल होता है ॥ ३३½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरिवंशे समाप्ते तु वाचके परिपूजिते ॥ ३४ ॥

ऋणत्रयेण मुक्ताः स्युस्ते नरा जनमेजय।
मोदन्ते पितरस्तेषां लोकान् प्राप्याक्षयान् नृप ॥ ३५ ॥

जनमेजय! हरिवंश समाप्त होनेपर वाचककी भलीभाँति पूजा कर लेनेके पश्चात् मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाते हैं। नरेश्वर! उनके पितर अक्षय लोकोंमें पहुँचकर आनन्द भोगते हैं ॥ ३४-३५ ॥

हरिवंशस्य प्रारम्भे समाप्तौ चैव तैः सह।
सर्वान् कामानवाप्नोति विपाप्मा जायते नरः ॥ ३६ ॥

हरिवंशका आरम्भ करके उसकी पूर्ति हो जानेपर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और अपने उन पितरोंके साथ सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है ॥ ३६ ॥

एवं कृते विधाने तु प्रजां प्राप्नोति मानवः।
धनमारोग्यमायुष्यं सौभाग्यं गुणगौरवम् ॥ ३७ ॥
प्राप्नोति मनुजः सम्यङ्नात्र कार्या विचारणा ॥ ३८ ॥

इस प्रकार विधि-विधानका पालन करनेपर मनुष्य उत्तम संतान तो पाता ही है, धन, आरोग्य, आयु, सौभाग्य, गुण-जनित गौरवको भी भलीभाँति प्राप्त कर लेता है। इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥ ३७-३८ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणादिविधिकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीपद्मपुराणमें हरिवंशमाहात्म्यके अन्तर्गत श्रवण आदि विधिका वर्णन-विषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

हरिवंश आरम्भ करनेके लिये उत्तम मास, तिथि, नक्षत्र आदिका निर्देश, देवपूजन, व्यासपूजन तथा कथा-समाप्तिपर दी जानेवाली दक्षिणा एवं दान आदिका उल्लेख तथा श्रवणका माहात्म्य

जनमेजय उवाच

प्रारम्भस्तु कथं कार्यः कथं पूजाविधिः स्मृतः।
कथं विसर्जयेद् व्यासं कथं सम्यक् फलं लभेत्॥ १ ॥
एतत् सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मुनिसत्तम।

जनमेजयने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! हरिवंशका प्रारम्भ कैसे करना चाहिये? उसकी पूजाका विधान किस प्रकार बताया गया है? व्यासका विसर्जन कैसे करे? और किस प्रकार उत्तम फलकी प्राप्ति सम्भव है? यह सब विस्तारपूर्वक बताइये ॥ १½ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन् यथा वन्ध्या संततिं लभते ध्रुवम् ॥ २ ॥
वैशाखे माघ ऊर्जे च अन्यस्मिञ्छुभमासके।
शुक्लपक्षे तिथौ पूर्णानन्दाभद्राजयासु च ॥ ३ ॥
वारे गुरौ तथा शुक्रे चन्द्रे चन्द्रात्मजे तथा।
नक्षत्रे श्रवणे हस्ते पुष्ये मूले पुनर्वसौ ॥ ४ ॥
वासवे तुहिनांशौ च पौष्णे च हयतारके।
सौभाग्यादिषु योगेषु करणे विष्टिवर्जिते ॥ ५ ॥
श्रोतुश्चाथापि वक्तुश्च चन्द्रे च बलशालिनि।
पूर्वाह्णे चापि मध्याह्ने प्रारम्भः क्रियते बुधैः ॥ ६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! जिस प्रकार कथा सुननेसे वन्ध्या स्त्री निश्चय ही संतान प्राप्त कर लेती है, वह विधि बताता हूँ, सुनो—वैशाख, माघ, कार्तिक अथवा दूसरे किसी शुभ मासमें, शुक्ल पक्षमें, पूर्णा (५, १०, १५), नन्दा (१, ६, ११), भद्रा (२, ७, १२), तथा जया (३, ८, १३) तिथियोंमें, बृहस्पति, शुक्र, सोम तथा बुधवारको, श्रवण, हस्त, पुष्य, मूल, पुनर्वसु, धनिष्ठा, मृगशिरा, रेवती और अश्विनी नक्षत्रोंमें, सौभाग्य आदि शुभ योगों तथा विष्टिरहित करणोंमें, वक्ता और श्रोताके चन्द्रमा जब बलिष्ठ हों, उस समय पूर्वाह्ण अथवा मध्याह्नकालमें विद्वान् पुरुष हरिवंश-कथाका आरम्भ करते हैं ॥ २—६ ॥

आदौ लम्बोदरः पूज्यः कलशस्तु ततः परम्।
श्रीखण्डागुरुकर्पूरकुङ्कुमामोदलेपनैः ॥ ७ ॥
पङ्कजैश्चम्पकैरन्यैर्जातीपुष्पैः सुगन्धिभिः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुलसीविल्वधात्रीणां पत्रैरन्यैर्नवाङ्कुरैः ॥ ८ ॥
धूपैर्दीपैश्च विविधैर्नारिकेलफलादिभिः।
ताम्बूलैर्मुखवासैश्चाखण्डितैः शुक्लतण्डुलैः ॥ ९ ॥
चामरैर्व्यजनैश्चैव घण्टावाद्यादिभिस्तथा।
प्रत्यहं पूजयेद् देवं यावद् ग्रन्थः समाप्यते ॥ १० ॥

पहले गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये, तत्पश्चात् कलशकी। चन्दन, अगर, कपूर, कुङ्कुम, गन्ध, अनुलेपन, कमल, चम्पा, सुगन्धित चमेलीके फूल, तुलसीदल, विल्वपत्र, आँवलेके पत्ते, दूर्वा आदिके नूतन अङ्कुर, धूप, दीप, नारियलके फल आदि विविध नैवेद्य, मुखको, सुवासित करनेवाले ताम्बूल, अखण्ड श्वेत तण्डुल, चँवर, व्यजन तथा घंटा-वाद्य आदि उपकरणोंसे श्रोता प्रतिदिन तबतक भगवान्‌का पूजन करता रहे, जबतक कि ग्रन्थ समाप्त न हो जाय ॥ ७—१० ॥

लत्तादिदोषरहिते वारे च शुभसंज्ञके।
समर्पयेत् पुराणं तु ततः पूजां समाचरेत् ॥ ११ ॥

लत्ता आदि दोषसे रहित शुभ दिनको हरिवंशपुराण वक्ताके हाथमें समर्पित करे। तदनन्तर प्रारम्भिक पूजा आरम्भ करे ॥ ११ ॥

प्रारम्भे च यथा पूजा तथा कार्या विसर्जने।
चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमैर्गन्धकादिभिः ॥ १२ ॥

कथाके आरम्भमें जैसी पूजा की जाय, उसके विसर्जनमें भी वैसी ही पूजा करनी चाहिये। चन्दन, अगर, कपूर, रोली और गन्ध आदिसे पूजन सम्पन्न करे ॥ १२ ॥

गीतवादित्रनृत्यैश्च राजन् कार्यो महोत्सवः।
ततः पुराणपूजायां यथा दानं तथा शृणु ॥ १३ ॥

राजन्! फिर गीत, वाद्य और नृत्यके द्वारा महान् उत्सव करना चाहिये। तदनन्तर पुराणपूजामें जैसा दान बताया गया है, वैसा सुनो ॥ १३ ॥

अष्टादशशतं दानं पुराणाय समर्पयेत्।
अभावे द्वादशशतं पूजा वै जनमेजय ॥ १४ ॥
तदभावेऽपि राजेन्द्र षट्शतं परिकीर्तितम्।
उत्तमं मध्यमं दानमधमं च प्रकीर्तितम् ॥ १५ ॥

जनमेजय! पुराणके लिये अठारह सौ रुपयेकी दक्षिणा समर्पित करे। उसके अभावमें बारह सौ रुपयेकी पूजा चढ़ावे। राजेन्द्र! उतना भी न बन सके तो कम-से-कम छः सौ रुपयेकी दक्षिणा बतायी गयी है। यह क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणीका दान कहा गया है ॥ १४-१५ ॥

सपत्नीकं ततो व्यासं दुकूलैरंशुकैर्नवैः।
पूजयेत् सर्वभावेन स सम्यक् फलमश्नुते ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् नूतन वस्त्रोंद्वारा पत्नीसहित व्यासका सम्पूर्ण भावसे पूजन करे। ऐसा करनेसे यजमानको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥

परिधेयानि देयानि कुण्डलानि शुभानि च।
मुकुटाद्यैरलंकृत्य केयूराङ्गदभूषणैः ॥ १७ ॥

वाचकको केयूर और अंगद आदि आभूषणों तथा मुकुट आदिसे अलंकृत करके उन्हें पहिनने योग्य सुन्दर कुण्डल भी देने चाहिये ॥ १७ ॥

गावस्तु कपिला देयाः सवत्सा गर्भसंयुताः।
यानमश्वादिकं राजन् दासीदासान् समर्पयेत् ॥ १८ ॥
आसनं पुरुषव्याघ्र धूपदीपादि भाजनम्।
शय्या तूलादिकं सर्वं सोपधानं सलड्डुकम् ॥ १९ ॥
स्थाली पीठादिकं राजञ्जलपात्रं तथैव च।
अन्नं च बहु दातव्यं लवणं जनमेजय ॥ २० ॥
घृततैलादिकं राजन् यावद् वर्षं समाप्यते।
एतत् सर्वं द्विजेन्द्राय व्यासासनगताय च ॥ २१ ॥

बछड़ेसहित तथा गर्भवती कपिला गौओंका भी दान करना चाहिये। राजन्! पुरुषसिंह जनमेजय! यजमान वाचकको अश्व आदि वाहन और दास-दासी भी समर्पित करे। आसन, धूप, दीप आदि वस्तुएँ, पात्र, शय्या, गद्दा-रजाई आदि, तकिया, लड्डू, बटलोई, पीढ़ा आदि, जलपात्र, बहुत-सा अन्न, नमक तथा घी, तेल आदि सामग्री भी, जो एक वर्षतक अँट सके, वाचककी सेवामें दे। ये सारी वस्तुएँ व्यासासनपर विराजमान हुए द्विजराज वक्ताकी भेंट करनी चाहिये ॥ १८—२१ ॥

---

१. सूर्य, पूर्णचन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु ग्रह क्रमशः अपने आश्रित नक्षत्रसे आगे और पीछे १२, २२, ३, ७, ६, ५, ८ तथा नवें दैनिक नक्षत्रको लातोंसे दूषित करते हैं, इसलिये इसका नाम लत्ता दोष है। इनमें सूर्य अपनेसे आगे और पूर्णचन्द्र पीछे, फिर मङ्गल आगे और बुध पीछे, गुरु आगे और शुक्र पीछे तथा शनि आगे और राहु पीछेके नक्षत्रोंको दूषित करते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनोऽभीष्टं वरं लब्ध्वा ततः कुर्यात् प्रदक्षिणाम्।
पारणान्ते तु राजेन्द्र द्विजेन्द्रं रुद्रजापिनम्॥ २२॥
वस्त्रादिभिरलंकृत्य मुद्रिकाभिस्तथैव च।
नवीनं कम्बलं शुभ्रं ताम्रपात्रं तथैव च॥ २३॥

फिर वाचकसे मनोवाञ्छित वर पाकर यजमान उनकी परिक्रमा करे। राजेन्द्र! पारणा पूरी होनेपर रुद्रमन्त्रका जप करनेवाले द्विजराजको वस्त्र आदि तथा मुद्रिकाओंसे अलंकृत करके उसे नवीन कम्बल और सुन्दर ताम्रपात्र दे॥ २२-२३॥

द्विजं द्विजं समुद्दिश्य दातव्या दक्षिणा बहु।
ततोऽभिषेकसंयुक्तं गुरुं चैव पुरोधसम्॥ २४॥
वस्त्रादिभिरलंकृत्य दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।

प्रत्येक द्विजके उद्देश्यसे बहुत-सी दक्षिणा देनी चाहिये। तत्पश्चात् अभिषेकयुक्त गुरु और पुरोहितको वस्त्र आदिसे विभूषित करके दक्षिणाओंसे संतुष्ट करे॥ २४½॥

ततोऽन्यान् ब्राह्मणान् सर्वान् दक्षिणाभिः समर्चयेत्॥ २५॥
हवनं च तथा राजन् कर्तव्यं कर्मशान्तये।
प्रतिश्लोकं च जुहुयाद् दशांशेनैव वा पुनः॥ २६॥
पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम्।

तदनन्तर अन्य सब ब्राह्मणोंको भी दक्षिणा देकर उनका सत्कार करे। राजन्! कर्मकी शान्तिके लिये होम भी करना चाहिये। ग्रन्थके प्रत्येक श्लोकसे खीर, मधु, घी, तिल और अन्न आदिसे युक्त हवनसामग्रीकी आहुति दे अथवा ग्रन्थमें जितने श्लोक हों, उनके दशांशसे ही हवन करे॥ २५-२६½॥

अथवा हवनं कुर्याद् गायत्र्या सुसमाहितः॥ २७॥
तन्मयत्वात् पुराणस्य परमस्यास्य तत्त्वतः।

अथवा एकाग्रचित्त होकर गायत्रीमन्त्रसे हवन करे; क्योंकि वास्तवमें यह उत्कृष्ट पुराण गायत्रीमन्त्र ही है॥ २७½॥

होमाशक्तौ बुधो हेम दद्यात् तत्फलसिद्धये॥ २८॥
नानाच्छिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकताख्ययोः।
दोषयोः प्रशमार्थं च पठेन्नामसहस्रकम्॥ २९॥

यदि होम करानेकी शक्ति न हो तो विद्वान् पुरुष उसका फल प्राप्त करनेके लिये ब्राह्मणोंको कुछ सुवर्ण दान कर दे तथा कर्ममें जो नाना प्रकारकी त्रुटियाँ रह गयी हों, या विधिमें जो न्यूनता अथवा अधिकता हो गयी हो, उन दोषोंकी शान्तिके लिये विष्णुसहस्रनामका पाठ करे॥२८-२९॥

तेन स्यात् सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः।
भोजयेन्मिथुनान्येव चतुर्विंशतिमादरात्॥ ३०॥

उससे सभी कर्म सफल हो जाते हैं; क्योंकि इससे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। हवनके पश्चात् चौबीस सपत्नीक ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक भोजन करावे॥ ३०॥

ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृत्य द्विजोत्तमान्।
तोषयेद् दक्षिणाहेमैर्धान्यै रत्नादिभिस्तथा॥ ३१॥

तत्पश्चात् उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको गन्ध और मालाओंसे अलंकृत करके सुवर्णमयी दक्षिणा धान्य और रत्न आदि देकर संतुष्ट करे॥ ३१॥

भुक्तवत्सु च विप्रेषु यथावत् समया च तान्।
वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम्॥ ३२॥
सपत्नीकं च संतोष्य वस्त्रालङ्करणादिभिः।
ब्राह्मणेषु प्रसन्नेषु प्रसन्नास्तस्य देवताः॥ ३३॥

भरतश्रेष्ठ! उन ब्राह्मणोंके यथावत् भोजन कर लेनेपर उन्हींके निकट सपत्नीक वाचकको भी भलीभाँति अलंकृत करके भोजन करावे और वस्त्र तथा आभूषणोंसे संतुष्ट करके नमस्कार करे। ब्राह्मणोंके प्रसन्न होनेपर यजमानके ऊपर देवता प्रसन्न होते हैं॥ ३२-३३॥

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा।
दद्यात् सुवर्णं धेनुं च व्रतपूर्णत्वसिद्धये॥ ३४॥

वाचकके संतुष्ट होनेपर श्रोताको शुभ एवं सर्वोत्तम प्रीति प्राप्त होती है। व्रतकी पूर्तिके लिये यजमान दूध देनेवाली गौ तथा सुवर्णका दान करे॥ ३४॥

शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च।
तत्रास्य पुस्तकं स्थाप्य लिखितं ललिताक्षरम्॥ ३५॥
सम्पूज्यावाहनाद्यैश्च उपचारैः सदक्षिणैः।
वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय महात्मने॥ ३६॥
आचार्याय सुधीर्दत्त्वा मुक्तः स्याद् भवबन्धनैः।

यदि शक्ति हो तो तीन पल सोनेका एक सिंहासन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बनवाकर उसके ऊपर सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई हरिवंश-की पोथी रखे और आवाहन आदि दक्षिणासहित उपचारोंसे उसका पूजन करके वस्त्र, आभूषण और गन्ध आदिसे पूजित हुए महात्मा आचार्यको वह पुस्तक दान कर दे। इस प्रकार दान करके उत्तम बुद्धिवाला विद्वान् श्रोता संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाय ॥ ३५-३६½ ॥

एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे ॥ ३७ ॥
फलदं स्यात् पुराणं तु सर्वकामार्थसिद्धिदम् ।

नवाह-यज्ञका यह विधान सम्पूर्ण पापोंका निवारण करनेवाला है। इसका इस प्रकार यथावत् रूपसे पालन करनेपर यह हरिवंशपुराण मनोवाञ्छित फल प्रदान करता है तथा समस्त कामनाओं और पुरुषार्थोंका साधक होता है ॥

अनेन विधिना राजन् यः पुराणं समापयेत् ॥ ३८ ॥
तस्य स्त्री लभते गर्भं मासेनैकेन भारत ।

राजन्! भरतनन्दन! जो इस विधिसे इस पुराणको समाप्त करता है, उसकी पत्नी एक ही महीनेमें गर्भ धारण कर लेती है ॥ ३८½ ॥

अनेन विधिना राजन् व्यासं यस्तु समर्चयेत् ॥ ३९ ॥
पूजयेद् दानमानाभ्यां तस्य स्त्री गर्भिणी भवेत् ।

राजन्! जो इस विधिसे व्यासकी पूजा करता है तथा दान-मानके द्वारा उसका सत्कार करता है, उसकी स्त्री अवश्य गर्भवती होती है ॥ ३९½ ॥

यन्मया विविधं प्रोक्तं भक्तिपूजादिकं पुनः ॥ ४० ॥
तत् कृत्वा लभते नारी पुत्रं भास्करतेजसम् ।
तथा वन्ध्या लभेद् गर्भं व्यासस्य वचनं यथा ॥ ४१ ॥

मैंने जो नाना प्रकारके भजन-पूजन आदि बताये हैं, उन्हें करके नारी सूर्यतुल्य तेजस्वी पुत्र प्राप्त करती है तथा वन्ध्या नारी भी अवश्य गर्भ धारण कर लेती है। जैसा कि व्यासजीका वचन है ॥ ४०-४१ ॥

विप्ररत्नापहारी च सोऽनपत्यः प्रजायते ।
तेन कायविशुद्ध्यर्थं महारुद्रजपादिकम् ॥ ४२ ॥

जो ब्राह्मणके रत्नका अपहरण करता है, वह संतानहीन हो जाता है। उससे शरीरकी शुद्धिके लिये महारुद्र-मन्त्रके जप आदिका विधान है ॥ ४२ ॥

अथ पारीक्षितो राजा श्रद्धायुक्तेन चेतसा ।
भावतः सत्ययुक्तेन चैकाग्रमनसा तथा ॥ ४३ ॥
श्रुत्वान्ते निश्चयं कृत्वा दम्भशाठ्यविवर्जितः ।
श्रुत्वेमं हरिवंशं वै व्यासं सम्पूज्य भक्तितः ॥ ४४ ॥
दानं च बहुलं कृत्वा व्यासाशीर्गृह्य भारतः ।
प्रसन्नवदनो भूत्वा रमते रमणीयुतः ॥ ४५ ॥

(सूतजी कहते हैं—शौनक!) तदनन्तर भरतवंशी राजा जनमेजयने भक्ति-भाव एवं सत्यसे युक्त श्रद्धापूर्ण एकाग्र चित्तसे हरिवंशकी कथा सुनकर अन्तमें दृढ़ निश्चय करके दम्भ और शठता (कंजूसी) छोड़कर भक्तिपूर्वक व्यास (वक्ता) का पूजन किया। फिर वे बहुत-सा दान करके व्यासका आशीर्वाद ले प्रसन्नमुख होकर अपनी पत्नीके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ ४३–४५ ॥

प्राग्जन्मजनिते पापे क्षीणे वै जनमेजय ।
ऋतावाद्ये तु संधत्ते गर्भं तस्य कुलाङ्गना ॥ ४६ ॥

(वैशम्पायनजी कहते हैं—) जनमेजय! हरिवंशके श्रवणसे पूर्व जन्मके पापका नाश हो जानेपर यजमानकी कुलवती पत्नी प्रथम ऋतुकालमें ही गर्भ धारण कर लेती है ॥ ४६ ॥

द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थे मासि वै पुनः ।
पञ्चमे वापि षष्ठे वा सप्तमे अष्टमेऽपि वा ॥ ४७ ॥
नवमे दशमे मासि दोहदं निश्चयं भवेत् ।
व्यासेनोक्तमिदं पुण्यं वन्ध्यागर्भस्य लक्षणम् ॥ ४८ ॥

अथवा दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें, नवें या दसवें मासमें उसे निश्चय ही गर्भ रह जाता है। वन्ध्याके गर्भ-धारणका यह पवित्र लक्षण साक्षात् व्यासजीने कहा है ॥ ४७-४८ ॥

पितॄनुद्धरते सर्वान् दश पूर्वान् दशापरान् ।
हरिवंशं नरः श्रुत्वा सेतिहासं पुरातनम् ॥ ४९ ॥

इतिहाससहित इस पुरातन हरिवंशको सुनकर मनुष्य अपनी दस पीढ़ी पहलेके समस्त पितरों और दस पीढ़ी बादकी संतानोंका उद्धार कर देता है ॥ ४९ ॥

इदं मया तवाग्रे च सर्वं प्रोक्तं नरर्षभ ।
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नरश्रेष्ठ ! यह सब माहात्म्य मैंने तुम्हारे सामने कह सुनाया, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ५० ॥

अपुत्रः पुत्रमाप्नोति ह्यधनो धनमाप्नुयात् ।
नरमेधाश्वमेधाभ्यां यत् फलं प्राप्यते नरैः ॥ ५१ ॥
तत् फलं लभ्यते सर्वं पुराणश्रवणाद्धरेः ।

इससे पुत्रहीनको पुत्र और धनहीनको धनकी प्राप्ति होती है । नरमेध और अश्वमेध यज्ञोंसे मनुष्योंको जो फल प्राप्त होता है, वह सारा फल श्रीहरिके हरिवंशपुराणका श्रवण करनेसे ही मिल जाता है ॥ ५१½ ॥

ब्रह्महा भ्रूणहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ।
सकृत् पुराणश्रवणात् पूतो भवति नान्यथा ॥ ५२ ॥

ब्रह्महत्यारा, गर्भघाती, गोहत्यारा, शराबी और गुरुपत्नीगामी पुरुष भी एक बार इस पुराणका श्रवण कर लेनेसे पवित्र हो जाता है । इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५२ ॥

इदं मया ते परिकीर्तितं मह-
च्छ्रीकृष्णमाहात्म्यमपारमद्भुतम् ।
शृण्वन् पठन्नाशु समाप्नुयात् फलं
यच्चापि लोकेषु सुदुर्लभं महत् ॥ ५३ ॥

जनमेजय ! यह मैंने तुमसे श्रीकृष्णके अपार, अद्भुत एवं महान् माहात्म्यका वर्णन किया है । इसका श्रवण और पाठ करनेवाला पुरुष तीनों लोकोंमें जो अत्यन्त दुर्लभ है, उस महान् फलको भी शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है ॥ ५३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे हरिवंशमाहात्म्ये श्रवणविधौ दानविधानकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीपद्मपुराणमें हरिवंशमाहात्म्यके अन्तर्गत श्रवणविधिके प्रसङ्गमें दानविधिका वर्णनविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

॥ सविधि हरिवंशमाहात्म्य सम्पूर्ण ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(१) संतानगोपालमन्त्रविधिः

श्रीगणेशाय नमः। अब संतानगोपालमन्त्रके अनुष्ठानकी विधि दी जा रही है।

निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर विनियोग करे—

अस्य श्रीसंतानगोपालमन्त्रस्य श्रीनारद ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीकृष्णो देवता, ग्लौं बीजम्, नमः शक्तिः, पुत्रार्थे जपे विनियोगः।

अङ्गन्यास

'देवकीसुत गोविन्द' हृदयाय नमः (इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी मध्यमा, अनामिका और तर्जनी अङ्गुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे)। **'वासुदेव जगत्पते' शिरसे स्वाहा** (इस वाक्यको बोलकर सिरका स्पर्श करे)। **'देहि मे तनयं कृष्ण' शिखायै वषट्** (इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथके अँगूठेसे शिखाका स्पर्श करे)। **'त्वामहं शरणं गतः'** (इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथकी पाँचों अङ्गुलियोंसे बायीं भुजाका और बायें हाथकी पाँचों अङ्गुलियोंसे दाहिनी भुजाका स्पर्श करे)। **'ॐ नमः' अस्त्राय फट्** (इस वाक्यको बोलकर दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा अङ्गुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये)।

इसके पश्चात् निम्नाङ्कित रूपसे ध्यान करे—

वैकुण्ठादागतं कृष्णं रथस्थं करुणानिधिम्।
किरीटिसारथिं पुत्रमानयन्तं परात्परम्॥ १॥
आदाय तं जलस्थं च गुरवे वैदिकाय च।
अर्पयन्तं महाभागं ध्यायेत् पुत्रार्थमच्युतम्॥ २॥

'पार्थसारथि अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण करुणाके सागर हैं। वे जलमें डूबे हुए गुरु-पुत्रको लेकर आ रहे हैं। वे वैकुण्ठसे अभी-अभी पधारे हैं और रथपर विराजमान हैं। अपने वैदिक गुरु सान्दीपनिको उनका पुत्र अर्पित कर रहे हैं—साधक पुत्रकी प्राप्तिके लिये इस रूपमें महाभाग भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करे'॥ १-२॥

मूल मन्त्र

'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥'

यह सम्पूर्ण मन्त्र है। इसका तीन लाख जप करना चाहिये।

इस मन्त्रका भावार्थ इस प्रकार है—सच्चिदानन्दस्वरूप, ऐश्वर्यशाली, शक्तिशाली, कामनापूरक, सौम्यस्वरूप, देवकीनन्दन! गोविन्द! वासुदेव! जगत्पते! श्रीकृष्ण! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप मुझे पुत्र प्रदान कीजिये।

(२) संतानगोपालमन्त्र

विनियोग

अस्य श्रीसंतानगोपालमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री-च्छन्दः, श्रीकृष्णो देवता, क्लीं बीजम्, नमः शक्तिः, पुत्रार्थे जपे विनियोगः।

अङ्गन्यास

ग्लौं हृदयाय नमः। क्लीं शिरसे स्वाहा। ह्रीं शिखायै वषट्। श्रीं कवचाय हुम्। ॐ अस्त्राय फट्।

ध्यान

शङ्खचक्रगदापद्मं दधानं सूतिकागृहे।
अङ्के शयानं देवक्याः कृष्णं वन्दे विमुक्तये॥

जो सूतिकागृहमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये माता देवकीकी गोदमें सो रहे हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णकी मैं (संतान एवं) मोक्षकी प्राप्तिके लिये वन्दना करता हूँ।

(मूल मन्त्र इस प्रकार है—)

'ॐ नमो भगवते जगदात्मसूतये नमः' (सम्पूर्ण जगत् जिनकी अपनी संतान है, उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है)।

इसका भी तीन लाख जप करना चाहिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(३) सनत्कुमारोक्त संतानगोपालमन्त्र

विनियोग

ॐ अस्य श्रीसंतानगोपालमन्त्रस्य श्रीनारद ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीकृष्णो देवता, ग्लौं बीजम्, नमः शक्तिः, पुत्रार्थे जपे विनियोगः।

अङ्गन्यास

इस मन्त्रका अङ्गन्यास ठीक वैसा ही है, जैसा कि द्वितीय-मन्त्रका है। अथवा—

'देवकीसुत गोविन्द' हृदयाय नमः। 'वासुदेव जगत्पते' शिरसे स्वाहा। 'देहि मे तनयं कृष्ण' शिखायै वषट्। 'त्वामहं शरणं गतः' कवचाय हुम्। 'देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥' अस्त्राय फट्।

ध्यान

शङ्खचक्रगदापद्मं धारयन्तं जनार्दनम्।
अङ्के शयानं देवक्याः सूतिकामन्दिरे शुभे॥
एवं रूपं सदा कृष्णं सुतार्थं भावयेत् सुधीः॥

'उत्तम बुद्धिवाला साधक पुत्रकी प्राप्तिके लिये सदा ऐसे रूपवाले जनार्दन भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करे, जो मङ्गलमय सूतिकागारमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये देवकीके अङ्कमें शयन करते हैं'।

सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥

इसका भी तीन लाख जप करे।

इस मन्त्रके पूजन आदिका विधान जैसा सनत्कुमारजी-ने बताया है, इस प्रकार है—वैष्णव[1] पीठपर देवताओंका आवाहन करके उनकी पूजा करे। प्रथम आवृत्ति (आवरण) में छः कोणोंमेंसे आग्नेय-कोणमें 'हृदयाय नमः' नैर्ऋत्य कोणमें 'शिरसे स्वाहा', वायव्यकोणमें 'शिखायै वषट्', ईशानकोणमें 'कवचाय हुम्' अग्रभागमें 'नेत्रत्रयाय वौषट्' तथा पूर्व आदि चारों दिशाओंमें 'अस्त्राय फट्' इस प्रकार मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः हृदय आदि अङ्गोंकी पूजा करे।

दूसरे आवरणमें पीठकी पूर्व आदि आठ दिशाओंमें क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और ईशानकी पूजा करे।

तथा तीसरे आवरणमें उन्हीं दिशाओंमें क्रमशः वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा और शूलकी पूजा करे।

शुक्ल पक्षकी दशमी तिथिको आधी रातके समय भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे। पूजाके लिये स्वस्तिककी रचना करके उसपर घीसे भरा हुआ सकोरा या कोसा स्थापित करे। फिर उसमें रूईकी बत्ती डालकर उत्तम दीप प्रज्वलित करे। तत्पश्चात् अष्टदल कमल बनाकर उसमें स्थापित हुए श्रीकृष्ण-की पूजा करे। फिर दो कलशोंको जलसे भरकर उनकी विधि-वत् स्थापना करके सम्पूर्ण उपचारोंसे युक्त पूजा करे। तत्पश्चात् उन कलशोंमें भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णका आवाहन करके पुनः उनका पूर्वोक्त रीतिसे पूजन करे। तदनन्तर उन दोनों कलशोंका स्पर्श करके अनन्यभावसे एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार उपर्युक्त मन्त्रका जप करे। इसके बाद द्वादशीको गोविन्दकी विधिपूर्वक पूजा करके अगहनीके चावलकी स्वादिष्ठ खीर तथा गायके घी और गुड़से युक्त पकवानका भोग अर्पण करे। इन सबके साथ सामयिक फल भी होना चाहिये। इसके अतिरिक्त दाल, भात, स्वादिष्ठ सुस्निग्ध व्यञ्जन, कपिला गायके दूधका दही और खाँड भी रहना चाहिये। इन समस्त भोज्य पदार्थोंको सोनेके पात्रमें रखकर इनके पात्रभूत भगवान् विष्णुको इन्हें निवेदन करे। साथ ही शीतल कर्पूर और गुलाबसे सुवासित तथा कपड़ेसे छाना हुआ स्वच्छ जल अर्पण करे।

इसके बाद अपनी आर्थिक शक्तिके अनुसार शुद्धबुद्धिसे भगवान् श्रीकृष्णमें श्रद्धा रखते हुए अपनी सम्पूर्ण कामनाओं-की पूर्तिके लिये ब्राह्मणोंको भोजन दे। संस्कारयुक्त अग्निमें भगवान् विष्णुका आवाहन करके अर्घ्य आदिसे उनका पूजन करे। फिर १०८ बार या २८ बार हविष्य (खीर) की आहुति देकर शेष हविष्यको कहीं सुरक्षित रख दे। इसके बाद घीकी ८०० आहुतियाँ दे। हुतशेष घृतको उक्त दोनों कलशोंमें गिराकर उनके घृतमिश्रित जलद्वारा दम्पती (यज-मान और उसकी पत्नी दोनों) का अभिषेक करे। तदनन्तर जलमय श्रीहरिका ध्यान करते हुए ब्राह्मण पुनः उन कलशोंके जलसे उन दोनोंका अभिषेक करके एक सौ आठ बार पूर्वोक्त मन्त्रका जप करनेके पश्चात् शेष रखे हुए हविष्यको यजमान-पत्नीके हाथमें दे दे।

यजमान-पत्नी उस हविष्यको लेकर श्रीकृष्णका ध्यान करती हुई एक सुखद आसनपर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जाय और उसका भक्षण करे; उस समय यह भावना करे कि इस हविष्यके साथ भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं मेरे उदरमें आकर विराजमान हुए हैं। फिर जब श्रेष्ठ ब्राह्मणलोग अच्छी तरह भोजन कर लें, तब यजमान पान और मोदक आदिसे उन्हें

१. वैष्णव पीठ एवं देवपूजनकी विधि कल्याणके नारद-विष्णु-पुराणाङ्कमें पृष्ठ ३५७ से ३६४ तक विस्तारपूर्वक दी गयी है, उसे पढ़कर उसीके अनुसार पूजन करना चाहिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तृप्त करे। तत्पश्चात् वह श्रीविष्णुके चिन्तनपूर्वक उन ब्राह्मणोंके चरणोंमें मस्तक झुकावे। उस समय ब्राह्मणलोग यजमान दम्पतीसे यह कहें कि 'आप दोनोंके अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि हो।' फिर वे निष्पाप दम्पती यह भावना करते हुए कि 'अब हमारा मनोरथ सफल हो गया' अत्यन्त प्रसन्न हो स्वयं भी भोजन करें।

जो ब्राह्मण इस प्रकार धन खर्च करनेमें कंजूसी न करके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको भगवान् विष्णुके प्रति भक्तिभावसे युक्त हो इस प्रकार पूजन आदि करता है, वह शीघ्र ही तेजस्वी एवं चिरायु पुत्र प्राप्त कर लेता है। उसका वह पुत्र भी वंश-परम्पराको चलानेवाला, विष्णुभक्त एवं परम बुद्धिमान् होता है।

जो श्रेष्ठ द्विज दरिद्र होनेके कारण ऐसा न कर सके, वह यदि पूर्वोक्त मन्त्रका जप एवं तर्पण करे तो उसे भी पुत्र प्राप्त हो सकता है।

मन्त्रसारोक्त संतानकर यन्त्र

पहले अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिकामें 'क्लीं' इस कामबीजका उल्लेख करे। फिर वहीं यजमान पति-पत्नीके नाम और उसकी कामना भी लिख दे। यथा—'अमुकस्य धर्मपत्न्याः अमुकदेव्याः पुत्रं कुरु-कुरु।' फिर आठ दलोंके निम्न भागोंमें दो-दो करके अकरादि सोलह स्वरोंको अङ्कित करे तथा उन्हींके ऊपरी भागोंमें संतानगोपाल-मन्त्रके चार चार अक्षरोंको लिखे। फिर उन दलोंके बाह्य भागमें एक गोल रेखा खींचकर उसे ककारादि वर्णोंसे आवेष्टित करे। तत्पश्चात् उस वृत्तके बाहर चतुष्कोण बनावे। किसी पात्रमें माखन रखकर उसपर यह यन्त्र अङ्कित करे अथवा सूक्ष्म स्वर्ण आदिके पत्रपर इस यन्त्रको लिखे। यन्त्रसे अङ्कित नवनीतको नारी खा जाय और स्वर्णादि पत्रोंपर लिखे हुए यन्त्रको वह धारण करे। इससे वह पुत्रको जन्म देती है।

(शारदातिलकमें बताये अनुसार यह संतान-गोपालके मन्त्रकी अनुष्ठानविधि यहाँ दी गयी है।)

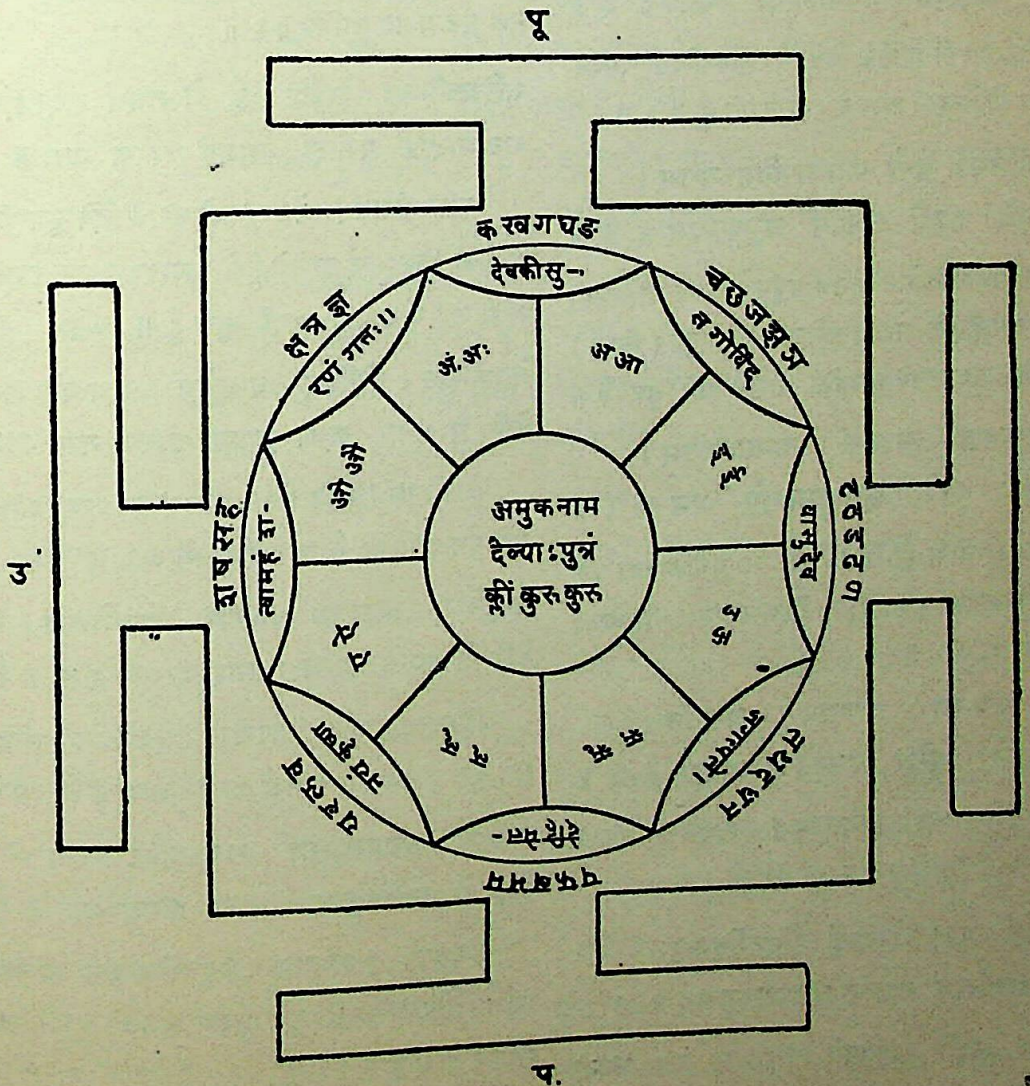

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

संतानगोपालस्तोत्रम्

श्रीशं कमलपत्राक्षं देवकीनन्दनं हरिम्।
सुतसम्प्राप्तये कृष्णं नमामि मधुसूदनम्॥ १॥

मैं पुत्रकी प्राप्तिके लिये लक्ष्मीपति, कमलनयन, देवकी-नन्दन तथा सर्वपापहारी, मधुसूदन, श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ॥ १॥

नमाम्यहं वासुदेवं सुतसम्प्राप्तये हरिम्।
यशोदाङ्कगतं बालं गोपालं नन्दनन्दनम्॥ २॥

मैं पुत्रप्राप्तिके उद्देश्यसे उन वासुदेव श्रीहरिको प्रणाम करता हूँ, जो यशोदाके अङ्कमें बालगोपालरूपसे विराजमान हैं और नन्दको आनन्द दे रहे हैं॥ २॥

अस्माकं पुत्रलाभाय गोविन्दं मुनिवन्दितम्।
नमाम्यहं वासुदेवं देवकीनन्दनं सदा॥ ३॥

अपनेको पुत्रकी प्राप्तिके लिये मैं मुनिवन्दित वसुदेव-देवकीनन्दन गोविन्दकी सदा वन्दना करता हूँ॥ ३॥

गोपालं डिम्भकं वन्दे कमलापतिमच्युतम्।
पुत्रसम्प्राप्तये कृष्णं नमामि यदुपुङ्गवम्॥ ४॥

मैं पुत्र पानेकी कामनासे उन यदुकुलतिलक श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ, जो साक्षात् कमलापति अच्युत (विष्णु) होकर भी गोपबालकरूपसे गौओंकी रक्षामें लगे हुए हैं॥

पुत्रकामेष्टिफलदं कञ्जाक्षं कमलापतिम्।
देवकीनन्दनं वन्दे सुतसम्प्राप्तये मम॥ ५॥

मुझे पुत्रकी प्राप्ति हो, इसके लिये मैं पुत्रेष्टियज्ञका फल देनेवाले कमलनयन लक्ष्मीपति देवकीनन्दन श्रीकृष्णकी वन्दना करता हूँ॥ ५॥

पद्मापते पद्मनेत्र पद्मनाभ जनार्दन।
देहि मे तनयं श्रीश वासुदेव जगत्पते॥ ६॥

पद्मापते! कमलनयन! पद्मनाभ! जनार्दन! श्रीश! वासुदेव! जगत्पते! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ६॥

यशोदाङ्कगतं बालं गोविन्दं मुनिवन्दितम्।
अस्माकं पुत्रलाभाय नमामि श्रीशमच्युतम्॥ ७॥

यशोदाके अङ्कमें बालरूपसे विराजमान तथा अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले मुनिवन्दित लक्ष्मीपति गोविन्दको मैं प्रणाम करता हूँ। ऐसा करनेसे मुझे पुत्रकी प्राप्ति हो॥ ७॥

श्रीपते देवदेवेश दीनार्तिहरणाच्युत।
गोविन्द मे सुतं देहि नमामि त्वां जनार्दन॥ ८॥

श्रीपते! देवदेवेश्वर! दीन-दुखियोंकी पीड़ा दूर करनेवाले अच्युत! गोविन्द! मुझे पुत्र दीजिये। जनार्दन! मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥ ८॥

भक्तकामद गोविन्द भक्तं रक्ष शुभप्रद।
देहि मे तनयं कृष्ण रुक्मिणीवल्लभ प्रभो॥ ९॥

भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले गोविन्द! भक्तकी रक्षा कीजिये। शुभदायक! रुक्मिणीवल्लभ! प्रभो! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये॥ ९॥

रुक्मिणीनाथ सर्वेश देहि मे तनयं सदा।
भक्तमन्दार पद्माक्ष त्वामहं शरणं गतः॥ १०॥

रुक्मिणीनाथ! सर्वेश्वर! मुझे सदाके लिये पुत्र दीजिये। भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षस्वरूप कमलनयन श्रीकृष्ण! मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ १०॥

देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ ११॥

देवकीपुत्र! गोविन्द! वासुदेव! जगन्नाथ! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ ११॥

वासुदेव जगद्वन्द्य श्रीपते पुरुषोत्तम।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ १२॥

विश्ववन्द्य वासुदेव! लक्ष्मीपते! पुरुषोत्तम! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ १२॥

कञ्जाक्ष कमलानाथ परकारुणिकोत्तम।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥ १३॥

कमलनयन! कमलाकान्त! दूसरोंपर दया करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ १३॥

लक्ष्मीपते पद्मनाभ मुकुन्द मुनिवन्दित।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ १४ ॥

लक्ष्मीपते ! पद्मनाभ ! मुनिवन्दित मुकुन्द ! श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये । मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ १४ ॥

कार्यकारणरूपाय वासुदेवाय ते सदा ।
नमामि पुत्रलाभार्थं सुखदाय बुधाय ते ॥ १५ ॥

आप कार्य-कारणरूप, सुखदायक एवं विद्वान् हैं । मैं पुत्रकी प्राप्तिके लिये आप वासुदेवको सदा नमस्कार करता हूँ ॥ १५ ॥

राजीवनेत्र श्रीराम रावणारे हरे कवे ।
तुभ्यं नमामि देवेश तनयं देहि मे हरे ॥ १६ ॥

राजीवनेत्र (कमलनयन) ! रावणारे (रावणके शत्रु) ! हरे ! कवे (विद्वन्) ! देवेश्वर ! विष्णो ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ । आप मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥१६॥

अस्माकं पुत्रलाभाय भजामि त्वां जगत्पते ।
देहि मे तनयं कृष्ण वासुदेव रमापते ॥ १७ ॥

जगदीश्वर ! मैं अपने लिये पुत्र-प्राप्तिके उद्देश्यसे आपकी आराधना करता हूँ । रमावल्लभ ! वासुदेव ! श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये ॥ १७ ॥

श्रीमानिनीमानचोर गोपीवस्त्रापहारक ।
देहि मे तनयं कृष्ण वासुदेव जगत्पते ॥ १८ ॥

मानिनी श्रीराधाके मानका अपहरण करनेवाले तथा अपनी आराधना करनेवाली गोपाङ्गनाओंके वस्त्रको यमुनातटसे हटा (कर उन्हें सुख प्रदान कर)नेवाले जगन्नाथ वासुदेव श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये ॥ १८ ॥

अस्माकं पुत्रसम्प्राप्तिं कुरुष्व यदुनन्दन ।
रमापते वासुदेव मुकुन्द मुनिवन्दित ॥ १९ ॥

यदुनन्दन ! रमापते ! वासुदेव ! मुनिवन्दित मुकुन्द ! हमें पुत्रकी प्राप्ति कराइये ॥ १९ ॥

वासुदेव सुतं देहि तनयं देहि माधव ।
पुत्रं मे देहि श्रीकृष्ण वत्सं देहि महाप्रभो ॥ २० ॥

वासुदेव ! मुझे बेटा दीजिये । माधव ! मुझे तनय (संतान) दीजिये । श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये । महाप्रभो ! मुझे वत्स (बच्चा) दीजिये ॥ २० ॥

डिम्भकं देहि श्रीकृष्ण आत्मजं देहि राघव ।
भक्तमन्दार मे देहि तनयं नन्दनन्दन ॥ २१ ॥

श्रीकृष्ण ! मुझे डिम्भक (पुत्र) दीजिये । रघुनन्दन ! मुझे आत्मज (औरस पुत्र) दीजिये । भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षस्वरूप नन्दनन्दन ! मुझे तनय दीजिये ॥ २१ ॥

नन्दनं देहि मे कृष्ण वासुदेव जगत्पते ।
कमलानाथ गोविन्द मुकुन्द मुनिवन्दित ॥ २२ ॥

श्रीकृष्ण ! वासुदेव ! जगत्पते ! कमलानाथ ! गोविन्द ! मुनिवन्दित मुकुन्द ! मुझे आनन्ददायक पुत्र प्रदान कीजिये ॥ २२ ॥

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।
सुतं देहि श्रियं देहि श्रियं पुत्रं प्रदेहि मे ॥ २३ ॥

प्रभो ! यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो दूसरा कोई मुझे शरण देनेवाला नहीं है । आप ही मेरे शरणदाता हैं । मुझे पुत्र दीजिये । सम्पत्ति दीजिये । सम्पत्ति और पुत्र दोनों प्रदान कीजिये ॥ २३ ॥

यशोदास्तन्यपानज्ञं पिबन्तं यदुनन्दनम् ।
वन्देऽहं पुत्रलाभार्थं कपिलाक्षं हरिं सदा ॥ २४ ॥

यशोदाजीके स्तनोंके दुग्धपानके रसको जाननेवाले और उनका स्तनपान करनेवाले, भूरे नेत्रोंसे सुशोभित यदुनन्दन श्रीकृष्णकी मैं सदा वन्दना करता हूँ । इससे मुझे पुत्रकी प्राप्ति हो ॥ २४ ॥

नन्दनन्दन देवेश नन्दनं देहि मे प्रभो ।
रमापते वासुदेव श्रियं पुत्रं जगत्पते ॥ २५ ॥

देवेश्वर ! नन्दनन्दन ! प्रभो ! मुझे आनन्ददायक पुत्र दीजिये । रमापते ! वासुदेव ! जगन्नाथ ! मुझे धन और पुत्र दीजिये ॥ २५ ॥

पुत्रं श्रियं श्रियं पुत्रं पुत्रं मे देहि माधव ।
अस्माकं दीनवाक्यस्य अवधारय श्रीपते ॥ २६ ॥

माधव ! पुत्र और धन (दीजिये), धन और पुत्र (दीजिये), मुझे पुत्र प्रदान कीजिये । श्रीपते ! हमारे दीनतापूर्ण वचनपर ध्यान दीजिये ॥ २६ ॥

गोपालडिम्भ गोविन्द वासुदेव रमापते ।
अस्माकं डिम्भकं देहि श्रियं देहि जगत्पते ॥ २७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोपकुमार गोविन्द ! रमावल्लभ वासुदेव ! जगन्नाथ ! मुझे पुत्र दीजिये, सम्पत्ति दीजिये ॥ २७ ॥

मद्वाञ्छितफलं देहि देवकीनन्दनाच्युत ।
मम पुत्रार्थितं धन्यं कुरुष्व यदुनन्दन ॥ २८ ॥

देवकीनन्दन ! अच्युत ! मुझे मनोवाञ्छित फल (पुत्र) दीजिये । यदुनन्दन ! मेरी पुत्रविषयक प्रार्थनाको सफल एवं धन्य कीजिये ॥ २८ ॥

याचेऽहं त्वां श्रियं पुत्रं देहि मे पुत्रसम्पदम् ।
भक्तचिन्तामणे राम कल्पवृक्ष महाप्रभो ॥ २९ ॥

भक्तोंके लिये चिन्तामणिस्वरूप राम ! भक्तवाञ्छाकल्पतरो ! महाप्रभो ! मैं आपसे धन और पुत्रकी याचना करता हूँ । मुझे पुत्र और धन-सम्पत्ति दीजिये ॥ २९ ॥

आत्मजं नन्दनं पुत्रं कुमारं डिम्भकं सुतम् ।
अर्भकं तनयं देहि सदा मे रघुनन्दन ॥ ३० ॥

रघुनन्दन ! आप सदा मुझे आनन्ददायक आत्मज, पुत्र, कुमार, डिम्भक (बालक), सुत, अर्भक (बच्चा) एवं तनय (बेटा) दीजिये ॥ ३० ॥

वन्दे संतानगोपालं माधवं भक्तकामदम् ।
अस्माकं पुत्रसंप्राप्त्यै सदा गोविन्दमच्युतम् ॥ ३१ ॥

मैं अपने लिये पुत्रकी प्राप्तिके उद्देश्यसे संतानप्रद गोपाल, माधव, भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाले अच्युत गोविन्दकी वन्दना करता हूँ ॥ ३१ ॥

ॐकारयुक्तं गोपालं श्रीयुक्तं यदुनन्दनम् ।
क्लींयुक्तं देवकीपुत्रं नमामि यदुनायकम् ॥ ३२ ॥

ॐकारयुक्त गोपाल, श्रीयुक्त यदुनन्दन तथा क्लींयुक्त देवकीपुत्र यदुनाथको मैं प्रणाम करता हूँ (अर्थात् 'ॐ श्रीं क्लीं' इन तीनों बीजोंसे युक्त 'देवकीसुत गोविन्द...', इत्यादि मन्त्रका मैं आश्रय लेता हूँ) ॥ ३२ ॥

वासुदेव मुकुन्देश गोविन्द माधवाच्युत ।
देहि मे तनयं कृष्ण रमानाथ महाप्रभो ॥ ३३ ॥

वासुदेव ! मुकुन्द ! ईश्वर ! गोविन्द ! माधव ! अच्युत ! श्रीकृष्ण ! रमानाथ ! महाप्रभो ! मुझे पुत्र दीजिये ॥ ३३ ॥

राजीवनेत्र गोविन्द कपिलाक्ष हरे प्रभो ।
समस्तकाम्यवरद देहि मे तनयं सदा ॥ ३४ ॥

राजीवनयन (कमल-सदृश नेत्रवाले) ! गोविन्द ! कपिलाक्ष ! हरे ! प्रभो ! सम्पूर्ण कमनीय मनोरथोंकी सिद्धिके लिये वर देनेवाले श्रीकृष्ण ! मुझे सदाके लिये पुत्र दीजिये ॥

अब्जपद्मनिभं पद्मवृन्दरूप जगत्पते ।
देहि मे वरसत्पुत्रं रमानायक माधव ॥ ३५ ॥

नीलकमलसमूहके समान श्यामसुन्दर रूपवाले जगन्नाथ ! रमानायक ! माधव ! मुझे जलज कमलके सदृश मनोहर एवं श्रेष्ठ सत्पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ३५ ॥

नन्दपाल धरापाल गोविन्द यदुनन्दन ।
देहि मे तनयं कृष्ण रुक्मिणीवल्लभ प्रभो ॥ ३६ ॥

अजगर और वरुणके दूतोंसे नन्दजीकी रक्षा करनेवाले ! पृथ्वीपालक ! यदुनन्दन ! गोविन्द ! प्रभो ! रुक्मिणीवल्लभ श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ३६ ॥

दासमन्दार गोविन्द मुकुन्द माधवाच्युत ।
गोपाल पुण्डरीकाक्ष देहि मे तनयं श्रियम् ॥ ३७ ॥

अपने सेवकोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षस्वरूप ! गोविन्द ! मुकुन्द ! माधव ! अच्युत ! गोपाल ! पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) ! मुझे संतान और सम्पत्ति दीजिये ॥ ३७ ॥

यदुनायक पद्मेश नन्दगोपवधूसुत ।
देहि मे तनयं कृष्ण श्रीधर प्राणनायक ॥ ३८ ॥

यदुनायक ! लक्ष्मीपते ! यशोदानन्दन ! श्रीधर ! प्राणवल्लभ ! श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ३८ ॥

अस्माकं वाञ्छितं देहि देहि पुत्रं रमापते ।
भगवन् कृष्ण सर्वेश वासुदेव जगत्पते ॥ ३९ ॥

रमापते ! भगवन् ! सर्वेश्वर ! वासुदेव ! जगत्पते ! श्रीकृष्ण ! हमें मनोवाञ्छित वस्तु दीजिये । पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ३९ ॥

रमाहृदयसम्भार सत्यभामामनःप्रिय ।
देहि मे तनयं कृष्ण रुक्मिणीवल्लभ प्रभो ॥ ४० ॥

रमा (लक्ष्मी) को अपने वक्षःस्थलमें धारण करनेवाले ! सत्यभामाके हृदयवल्लभ ! तथा रुक्मिणीके प्राणनाथ ! प्रभो ! मुझे पुत्र दीजिये ॥ ४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चन्द्रसूर्याक्ष गोविन्द पुण्डरीकाक्ष माधव।
अस्माकं भाग्यसत्पुत्रं देहि देव जगत्पते ॥ ४१ ॥

चन्द्रमा और सूर्यरूप नेत्र धारण करनेवाले गोविन्द! कमलनयन माधव! देव! जगदीश्वर! हमें भाग्यशाली श्रेष्ठ पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ४१ ॥

कारुण्यरूप पद्माक्ष पद्मनाभसमर्चित।
देहि मे तनयं कृष्ण देवकीनन्दनन्दन ॥ ४२ ॥

करुणामय! कमलनयन! पद्मनाभ श्रीविष्णुसे सम्मानित देवकीनन्दनन्दन श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये ॥ ४२ ॥

देवकीसुत श्रीनाथ वासुदेव जगत्पते।
समस्तकामफलद देहि मे तनयं सदा ॥ ४३ ॥

देवकीपुत्र! श्रीनाथ! वासुदेव! जगत्पते! समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाले श्रीकृष्ण! मुझे सदा पुत्र दीजिये ॥ ४३ ॥

भक्तमन्दार गम्भीर शङ्कराच्युत माधव।
देहि मे तनयं गोपबालवत्सल श्रीपते ॥ ४४ ॥

भक्तवाञ्छाकल्पतरो! गम्भीर स्वभाववाले कल्याणकारी अच्युत! माधव! ग्वाल-बालोंपर स्नेह करनेवाले श्रीपते! मुझे पुत्र दीजिये ॥ ४४ ॥

श्रीपते वासुदेवेश देवकीप्रियनन्दन।
भक्तमन्दार मे देहि तनयं जगतां प्रभो ॥ ४५ ॥

श्रीकान्त! वसुदेवनन्दन! ईश्वर! देवकीके प्रिय पुत्र! भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष रूप! जगत्प्रभो! मुझे पुत्र दीजिये ॥ ४५ ॥

जगन्नाथ रमानाथ भूमिनाथ दयानिधे।
वासुदेवेश सर्वेश देहि मे तनयं प्रभो ॥ ४६ ॥

जगन्नाथ! रमानाथ! पृथ्वीनाथ! दयानिधे! वासुदेव! ईश्वर! सर्वेश्वर! प्रभो! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ४६ ॥

श्रीनाथ कमलपत्राक्ष वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ४७ ॥

श्रीनाथ! कमलदललोचन! वासुदेव! जगत्पते! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥

दासमन्दार गोविन्द भक्तचिन्तामणे प्रभो।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ४८ ॥

अपने दासोंके लिये कल्पवृक्ष! गोविन्द! भक्तोंकी इच्छा-पूर्तिके लिये चिन्तामणि-स्वरूप प्रभो! श्रीकृष्ण! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ४८ ॥

गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रमानाथ महाप्रभो।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ४९ ॥

गोविन्द! पुण्डरीकाक्ष! रमानाथ! महाप्रभो! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥

श्रीनाथ कमलपत्राक्ष गोविन्द मधुसूदन।
मत्पुत्रफलसिद्ध्यर्थं भजामि त्वां जनार्दन ॥ ५० ॥

श्रीनाथ! कमलदललोचन! गोविन्द! मधुसूदन! जनार्दन! मैं अपने लिये पुत्ररूप फलकी सिद्धिके निमित्त आपकी आराधना करता हूँ ॥ ५० ॥

स्तन्यं पिबन्तं जननीमुखाम्बुजं
विलोक्य मन्दस्मितमुज्ज्वलाङ्गम्।
स्पृशन्तमन्यस्तनमङ्गुलीभि-
र्वन्दे यशोदाङ्कगतं मुकुन्दम् ॥ ५१ ॥

जो मैया यशोदाके मुखारविन्दकी ओर देखते हुए मन्द मुसकराहटके साथ उनके एक स्तनका दूध पी रहे हैं और दूसरे स्तनका अङ्गुलियोंसे स्पर्श कर रहे हैं तथा जिनका प्रत्येक अङ्ग उज्ज्वल आभासे प्रकाशित होता है, मैया यशोदाके अङ्कमें बैठे हुए उन बाल-मुकुन्दकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ५१ ॥

याचेऽहं पुत्रसंतानं भवन्तं पद्मलोचन।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ५२ ॥

कमललोचन! मैं आपसे पुत्र-संततिकी याचना करता हूँ। श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ५२ ॥

अस्माकं पुत्रसम्पत्तेश्चिन्तयामि जगत्पते।
शीघ्रं मे देहि दातव्यं भवता मुनिवन्दित ॥ ५३ ॥

जगत्पते! हमें पुत्रकी प्राप्ति हो, इस उद्देश्यसे हम आपका चिन्तन करते हैं। आप मुझे शीघ्र पुत्र प्रदान कीजिये। मुनिवन्दित श्रीकृष्ण! आपको मुझे अवश्य मेरी प्रार्थित वस्तु संतान देनी चाहिये ॥ ५३ ॥

वासुदेव जगन्नाथ श्रीपते पुरुषोत्तम।
कुरु मां पुत्रदं च कृष्ण देवेन्द्रपूजित ॥ ५४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वासुदेव ! जगन्नाथ ! श्रीपते ! पुरुषोत्तम ! देवेन्द्रपूजित श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र-दान दीजिये ॥ ५४ ॥

कुरु मां पुत्रदत्तं च यशोदाप्रियनन्दन ।
मह्यं च पुत्रसंतानं दातव्यं भवता हरे ॥ ५५ ॥

यशोदाके प्रिय नन्दन ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये । हरे ! आपको मुझे पुत्ररूप संतानका दान अवश्य करना चाहिये ॥ ५५ ॥

वासुदेव जगन्नाथ गोविन्द देवकीसुत ।
देहि मे तनयं राम कौसल्याप्रियनन्दन ॥ ५६ ॥

वासुदेव ! जगन्नाथ ! गोविन्द ! देवकीकुमार ! कौसल्याके प्रिय पुत्र राम ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ५६ ॥

पद्मपत्राक्ष गोविन्द विष्णो वामन माधव ।
देहि मे तनयं सीताप्राणनायक राघव ॥ ५७ ॥

कमलदललोचन ! गोविन्द ! विष्णो ! वामन ! माधव ! सीताके प्राणवल्लभ ! रघुनन्दन ! मुझे पुत्र दीजिये ॥५७॥

कञ्जाक्ष कृष्ण देवेन्द्रमण्डित मुनिवन्दित ।
लक्ष्मणाग्रज श्रीराम देहि मे तनयं सदा ॥ ५८ ॥

कमलनयन श्रीकृष्ण ! देवराजसे अलंकृत एवं पूजित हरे ! लक्ष्मणके बड़े भैया मुनिवन्दित श्रीराम ! मुझे सदाके लिये पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ५८ ॥

देहि मे तनयं राम दशरथप्रियनन्दन ।
सीतानायक कञ्जाक्ष मुचुकुन्दवरप्रद ॥ ५९ ॥

दशरथके प्रिय नन्दन श्रीराम ! सीतापते ! कमलनयन ! मुचुकुन्दको वर देनेवाले श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये ॥५९॥

विभीषणस्य या लङ्का प्रदत्ता[1] भवता पुरा ।
अस्माकं तत्प्रकारेण तनयं देहि माधव ॥ ६० ॥

माधव ! आपने पूर्वकालमें जो विभीषणको लङ्काका राज्य दिया था, उसी प्रकार हमें पुत्र दीजिये ॥ ६० ॥

भवदीयपदाम्भोजे चिन्तयामि निरन्तरम् ।
देहि मे तनयं सीताप्राणवल्लभ राघव ॥ ६१ ॥

सीताके प्राणवल्लभ रघुनन्दन ! मैं आपके चरणारविन्दोंका निरन्तर चिन्तन करता हूँ, मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥

राम मत्काम्यवरद पुत्रोत्पत्तिफलप्रद ।
देहि मे तनयं श्रीश कमलासनवन्दित ॥ ३२ ॥

मुझे मनोवाञ्छित वर और पुत्रोत्पत्तिरूप फल देनेवाले श्रीराम ! ब्रह्माजीके द्वारा वन्दित लक्ष्मीपते ! आप मुझे पुत्र दीजिये ॥ ६२ ॥

१. भवता दीयते पुरा इति पाठान्तरम्

राम राघव सीतेश लक्ष्मणानुज देहि मे ।
भाग्यवत्पुत्रसंतानं दशरथात्मज श्रीपते ॥ ६३ ॥

लक्ष्मणके बड़े भाई ! सीताके प्राणवल्लभ ! दशरथकुमार ! रघुकुलनन्दन ! श्रीराम ! श्रीपते ! आप मुझे भाग्यशाली पुत्ररूप संतान दीजिये ॥ ६३ ॥

देवकीगर्भसंजात यशोदाप्रियनन्दन ।
देहि मे तनयं राम कृष्ण गोपाल माधव ॥ ६४ ॥

देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए यशोदाके लाड़ले लाल ! गोपाल कृष्ण ! राम ! माधव ! मुझे पुत्र दीजिये ॥ ६४ ॥

कृष्ण माधव गोविन्द वामनाच्युत शङ्कर ।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालकनायक ॥ ६५ ॥

माधव ! गोविन्द ! वामन ! अच्युत ! कल्याणकारी श्रीपते ! गोपबालकनायक ! श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये ॥ ६५ ॥

गोपबाल महाधन्य गोविन्दाच्युत माधव ।
देहि मे तनयं कृष्ण वासुदेव जगत्पते ॥ ६६ ॥

गोपकुमार ! सबसे बढ़कर धन्य ! गोविन्द ! अच्युत ! माधव ! वासुदेव ! जगत्पते ! श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ६६ ॥

दिशतु दिशतु पुत्रं देवकीनन्दनोऽयं
दिशतु दिशतु शीघ्रं भाग्यवत्पुत्रलाभम् ।
दिशतु दिशतु श्रीशो राघवो रामचन्द्रो
दिशतु दिशतु पुत्रं वंशविस्तारहेतोः ॥ ६७ ॥

ये भगवान् देवकीनन्दन मुझे पुत्र दें, पुत्र दें । शीघ्र ही भाग्यवान् पुत्रकी प्राप्ति करावें । श्रीसीताके स्वामी ! रघुकुलनन्दन श्रीरामचन्द्र ! मेरे वंशके विस्तारके लिये मुझे पुत्र प्रदान करें, पुत्र प्रदान करें ॥ ६७ ॥

दीयतां वासुदेवेन तनयो मत्प्रियः सुतः ।
कुमारो नन्दनः सीतानायकेन सदा मम ॥ ६८ ॥

वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण तथा सीतापति भगवान् श्रीराम सदा मुझे आनन्ददायक कुमारोपम प्रिय पुत्र प्रदान करें ॥ ६८ ॥

राम राघव गोविन्द देवकीसुत माधव ।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालकनायक ॥ ६९ ॥

राघव ! गोविन्द ! देवकीपुत्र ! माधव ! श्रीपते ! गोपबालकनायक श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये ॥ ६९ ॥

वंशविस्तारकं पुत्रं देहि मे मधुसूदन ।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः ॥ ७० ॥

मधुसूदन ! मुझे वंशका विस्तार करनेवाला पुत्र दीजिये ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुत्र दीजिये !! पुत्र दीजिये !!! मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ७० ॥

ममाभीष्टसुतं देहि कंसारे माधवाच्युत।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः ॥ ७१ ॥

कंसारे ! माधव ! अच्युत ! मुझे मनोवाञ्छित पुत्र प्रदान कीजिये ! पुत्र दीजिये !! पुत्र दीजिये !!! मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ७१ ॥

चन्द्रार्ककल्पपर्यन्तं तनयं देहि माधव।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः ॥ ७२ ॥

माधव ! जबतक चन्द्रमा, सूर्य और कल्पकी स्थिति रहे, तबतकके लिये मुझे पुत्रपरम्परा प्रदान कीजिये ! पुत्र दीजिये !! पुत्र दीजिये !!! मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ७२ ॥

विद्यावन्तं बुद्धिमन्तं श्रीमन्तं तनयं सदा।
देहि मे तनयं कृष्ण देवकीनन्दन प्रभो ॥ ७३ ॥

प्रभो ! देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ! आप सदा मेरे लिये विद्वान्, बुद्धिमान् और धनसम्पन्न पुत्र प्रदान कीजिये ॥७३॥

नमामि त्वां पद्मनेत्र सुतलाभाय कामदम्।
मुकुन्दं पुण्डरीकाक्षं गोविन्दं मधुसूदनम् ॥ ७४ ॥

कमलनयन श्रीकृष्ण ! मैं पुत्रकी प्राप्तिके लिये समस्त कामनाओंके दाता आप पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण मुकुन्द मधुसूदन गोविन्दको प्रणाम करता हूँ ॥ ७४ ॥

भगवन् कृष्ण गोविन्द सर्वकामफलप्रद।
देहि मे तनयं स्वामिंस्त्वामहं शरणं गतः ॥ ७५ ॥

सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके दाता ! गोविन्द ! स्वामिन्! भगवन् ! श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ७५ ॥

स्वामिंस्त्वं भगवन् राम कृष्ण माधव कामद।
देहि मे तनयं नित्यं त्वामहं शरणं गतः ॥ ७६ ॥

स्वामिन् ! भगवन् ! राम ! कृष्ण ! कामनाओंके दाता माधव ! मुझे सदा पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ७६ ॥

तनयं देहि गोविन्द कञ्जाक्ष कमलापते।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः ॥ ७७ ॥

गोविन्द ! कमलनयन ! कमलापते ! मुझे पुत्र दीजिये ! पुत्र दीजिये !! पुत्र दीजिये !!! मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ७७ ॥

पद्मापते पद्मनेत्र प्रद्युम्नजनक प्रभो।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः ॥ ७८ ॥

लक्ष्मीपते ! कमललोचन ! प्रद्युम्नको जन्म देनेवाले प्रभो ! मुझे पुत्र दीजिये ! पुत्र दीजिये !! मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ७८ ॥

शङ्खचक्रगदाखड्गशार्ङ्गपाणे रमापते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ७९ ॥

अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग और शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले रमापते ! श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ७९ ॥

नारायण रमानाथ राजीवपत्रलोचन।
सुतं मे देहि देवेश पद्मपद्मानुवन्दित ॥ ८० ॥

नारायण ! रमानाथ ! कमलदललोचन ! देवेश्वर ! कमलालया लक्ष्मीसे वन्दित श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ८० ॥

राम राघव गोविन्द देवकीवरनन्दन।
रुक्मिणीनाथ सर्वेश नारदादिसुरार्चित ॥ ८१ ॥
देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालकनायक ॥ ८२ ॥

राम ! राघव ! गोविन्द ! देवकीके श्रेष्ठ पुत्र ! रुक्मिणीनाथ ! सर्वेश्वर ! नारदादि महर्षियों तथा देवताओंसे पूजित देवकीकुमार गोविन्द ! वासुदेव ! जगत्पते ! श्रीकान्त ! गोपबालकनायक ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ८१-८२ ॥

मुनिवन्दित गोविन्द रुक्मिणीवल्लभ प्रभो।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ८३ ॥

मुनिवन्दित गोविन्द ! रुक्मिणीवल्लभ ! प्रभो ! श्रीकृष्ण! मुझे पुत्र दीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ८३ ॥

गोपिकार्जितपङ्केजमरन्दासक्तमानस ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ८४ ॥

गोपियोंद्वारा लाकर समर्पित किये गये कमलोंके मकरन्दमें आसक्त चित्तवाले श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ८४ ॥

रमाहृदयपङ्केजलोल माधव कामद।
ममाभीष्टसुतं देहि त्वामहं शरणं गतः ॥ ८५ ॥

लक्ष्मीके हृदयकमलके लिये लोलुप माधव ! समस्त कामनाओंके दाता श्रीकृष्ण ! मुझे मनोवाञ्छित पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ८५ ॥

वासुदेव रमानाथ दासानां मङ्गलप्रद।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ८६ ॥

अपने सेवकोंके लिये मङ्गलदायक रमानाथ वासुदेव श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ८६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कल्याणप्रद गोविन्द मुरारे मुनिवन्दित।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ८७ ॥

कल्याणप्रद गोविन्द ! मुनिवन्दित मुरशत्रु श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥८७॥

पुत्रप्रद मुकुन्देश रुक्मिणीवल्लभ प्रभो।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ८८ ॥

पुत्रदाता मुकुन्द ! ईश्वर ! रुक्मिणीवल्लभ प्रभो ! श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ८८ ॥

पुण्डरीकाक्ष गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ८९ ॥

पुण्डरीकाक्ष ! गोविन्द ! वासुदेव ! जगदीश्वर ! श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ८९ ॥

दयानिधे वासुदेव मुकुन्द मुनिवन्दित।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ९० ॥

दयानिधे ! वासुदेव ! मुनिवन्दित मुकुन्द ! श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥९०॥

पुत्रसम्पत्प्रदातारं गोविन्दं देवपूजितम्।
वन्दामहे सदा कृष्णं पुत्रलाभप्रदायिनम् ॥ ९१ ॥

पुत्र और सम्पत्तिके दाता, पुत्र-लाभदायक, देवपूजित गोविन्द श्रीकृष्णकी हम सदा वन्दना करते हैं ॥ ९१ ॥

कारुण्यनिधये गोपीवल्लभाय मुरारये।
नमस्ते पुत्रलाभार्थं देहि मे तनयं विभो ॥ ९२ ॥

प्रभो ! आप करुणाके सागर, गोपियोंके प्राणवल्लभ और मुरनामक दैत्यके शत्रु हैं, पुत्रकी प्राप्तिके लिये आपको मेरा नमस्कार है, मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ९२ ॥

नमस्तस्मै रमेशाय रुक्मिणीवल्लभाय ते।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालकनायक ॥ ९३ ॥

लक्ष्मीके स्वामी तथा रुक्मिणीके प्राणवल्लभ ! आप भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। गोपबालकोंके नायक श्रीकान्त ! मुझे पुत्र दीजिये ॥ ९३ ॥

नमस्ते वासुदेवाय नित्यश्रीकामुकाय च।
पुत्रदाय च सर्पेन्द्रशायिने रङ्गशायिने ॥ ९४ ॥

सदा ही श्रीजीकी कामना रखनेवाले आप वासुदेवको नमस्कार है। आप पुत्रदायक, नागराज शेषकी शय्यापर शयन करनेवाले तथा श्रीरङ्ग-क्षेत्रमें सोनेवाले हैं, आपको नमस्कार है ॥ ९४ ॥

रङ्गशायिन् रमानाथ मङ्गलप्रद माधव।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालकनायक ॥ ९५ ॥

रङ्गशायी रमानाथ ! मङ्गलदायक माधव ! गोपबालकनायक श्रीपते ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ९५ ॥

दासस्य मे सुतं देहि दीनमन्दार राघव।
सुतं देहि सुतं देहि पुत्रं देहि रमापते ॥ ९६ ॥

दीनोंके लिये कल्पवृक्षस्वरूप रघुनन्दन ! मुझ दासको पुत्र दीजिये। रमापते ! पुत्र दीजिये। पुत्र दीजिये ॥ पुत्र दीजिये !!! ॥ ९६ ॥

यशोदातनयाभीष्टपुत्रदानरतः सदा।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ९७ ॥

सदा मनोवाञ्छित पुत्र देनेमें तत्पर रहनेवाले यशोदानन्दन श्रीकृष्ण ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ९७ ॥

ममदिष्टदेव गोविन्द वासुदेव जनार्दन।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ९८ ॥

मेरे इष्टदेव गोविन्द ! वासुदेव ! जनार्दन ! श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ९८ ॥

नीतिमान् धनवान् पुत्रो विद्यावांश्च प्रजायते।
भगवंस्त्वत्कृपायाश्च वासुदेवेन्द्रपूजित ॥ ९९ ॥

भगवन् ! इन्द्रपूजित वासुदेव ! आपकी कृपासे नीतिज्ञ, धनवान् और विद्वान् पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ९९ ॥

यः पठेत् पुत्रशतकं सोऽपि सत्पुत्रवान् भवेत्।
श्रीवासुदेवकथितं स्तोत्ररत्नं सुखाय च ॥१००॥

जो श्रीवासुदेवकथित पुत्रशतकका पाठ करता है, वह भी उत्तम पुत्रसे सम्पन्न होता है। यह स्तोत्ररत्न सुखकी भी प्राप्ति करानेवाला है ॥ १०० ॥

जपकाले पठेन्नित्यं पुत्रलाभं धनं श्रियम्।
ऐश्वर्यं राजसम्मानं सद्यो याति न संशयः ॥१०१॥

जो प्रतिदिन जपके समय इसका पाठ करता है, उसे तत्काल पुत्रलाभ होता है तथा वह शीघ्र ही धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य एवं राजसम्मान प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १०१ ॥

॥ इति श्रीसंतानगोपालस्तोत्र सम्पूर्ण ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीविष्णुशतनामस्तोत्रम्

नारद उवाच

ॐवासुदेवं हृषीकेशं वामनं जलशायिनम्।
जनार्दनं हरिं कृष्णं श्रीवत्सं गरुडध्वजम्॥ १॥
वाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं नरकान्तकम्।
अव्यक्तं शाश्वतं विष्णुमनन्तमजमव्ययम्॥ २॥
नारायणं गदाध्यक्षं गोविन्दं कीर्तिभाजनम्।
गोवर्धनोद्धरं देवं भूधरं भुवनेश्वरम्॥ ३॥
वेत्तारं यज्ञपुरुषं यज्ञेशं यज्ञवाहकम्।
चक्रपाणिं गदापाणिं शङ्खपाणिं नरोत्तमम्॥ ४॥
वैकुण्ठं दुष्टदमनं भूगर्भं पीतवाससम्।
त्रिविक्रमं त्रिकालज्ञं त्रिमूर्तिं नन्दकेश्वरम्॥ ५॥
रामं रामं हयग्रीवं भीमं रौद्रं भवोद्भवम्।
श्रीपतिं श्रीधरं श्रीशं मङ्गलं मङ्गलायुधम्॥ ६॥
दामोदरं दमोपेतं केशवं केशिसूदनम्।
वरेण्यं वरदं विष्णुमानन्दं वसुदेवजम्॥ ७॥
हिरण्यरेतसं दीप्तं पुराणं पुरुषोत्तमम्।
सकलं निष्कलं शुद्धं निर्गुणं गुणशाश्वतम्॥ ८॥
हिरण्यतनुसंकाशं सूर्यायुतसमप्रभम्।
मेघश्यामं चतुर्बाहुं कुशलं कमलेक्षणम्॥ ९॥
ज्योतीरूपमरूपं च स्वरूपं रूपसंस्थितम्।
सर्वज्ञं सर्वरूपस्थं सर्वेशं सर्वतोमुखम्॥ १०॥
ज्ञानं कूटस्थमचलं ज्ञानदं परमं प्रभुम्।
योगीशं योगनिष्णातं योगिनं योगरूपिणम्॥ ११॥
ईश्वरं सर्वभूतानां वन्दे भूतमयं प्रभुम्।

नारदजी कहते हैं—१- ॐ (सच्चिदानन्दस्वरूप) वासुदेव, २-हृषीकेश, ३-वामन, ४-जलशायी, ५-जनार्दन, ६-हरि, ७-कृष्ण, ८-श्रीवत्स, ९-गरुडध्वज, १०-वाराह, ११-पुण्डरीकाक्ष, १२-नृसिंह, १३-नरकान्तक, १४-अव्यक्त, १५-शाश्वत, १६-विष्णु, १७-अनन्त, १८-अज, १९-अव्यय, २०-नारायण, २१-गदाध्यक्ष, २२-गोविन्द, २३-कीर्तिभाजन, २४-गोवर्धनोद्धर, २५-देव, २६-भूधर, २७-भुवनेश्वर, २८-वेत्ता (ज्ञानी), २९-यज्ञपुरुष, ३०-यज्ञेश, ३१-यज्ञवाहक, ३२-चक्रपाणि, ३३-गदापाणि, ३४-शङ्खपाणि, ३५-नरोत्तम, ३६-वैकुण्ठ, ३७-दुष्टदमन, ३८-भूगर्भ, ३९-पीतवासा, ४०-त्रिविक्रम, ४१-त्रिकालज्ञ, ४२-त्रिमूर्ति, ४३-नन्दकेश्वर, ४४-राम (परशुराम), ४५-राम (रामचन्द्र), ४६-हयग्रीव, ४७-भीम, ४८-रौद्र, ४९-भवोद्भव, ५०-श्रीपति, ५१-श्रीधर, ५२-श्रीश, ५३-मङ्गल, ५४-मङ्गलायुध, ५५-दमोदर, ५६-दमोपेत, ५७-केशव, ५८-केशिसूदन, ५९-वरेण्य, ६०-वरद, ६१-विष्णु, ६२-आनन्द, ६३-वसुदेवज, ६४-हिरण्यरेता, ६५-दीप्त, ६६-पुराण, ६७-पुरुषोत्तम, ६८-सकल, ६९-निष्कल, ७०-शुद्ध, ७१-निर्गुण, ७२-गुणशाश्वत, ७३-हिरण्यतनुसंकाश, ७४-सूर्यायुतसमप्रभ, ७५-मेघश्याम, ७६-चतुर्बाहु, ७७-कुशल, ७८-कमलेक्षण, ७९-ज्योतीरूप, ८०-अरूप, ८१-स्वरूप, ८२-रूपसंस्थित, ८३-सर्वज्ञ, ८४-सर्वरूपस्थ, ८५-सर्वेश, ८६-सर्वतोमुख, ८७-ज्ञान, ८८-कूटस्थ, ८९-अचल, ९०-ज्ञानद, ९१-परम, ९२-प्रभु, ९३-योगीश, ९४-योगनिष्णात, ९५-योगी, ९६-योगरूपी, ९७-ईश्वर, ९८-सर्वभूतेश्वर, ९९-भूतमय और १००-प्रभुकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १—११½॥

इति नामशतं दिव्यं वैष्णवं खलु पापहम्॥ १२॥
व्यासेन कथितं पूर्वं सर्वपापप्रणाशनम्।

भगवान् विष्णुके ये सौ दिव्य नाम निश्चय ही पापोंका नाश करनेवाले हैं। व्यासजीने सर्वप्रथम इनका उपदेश दिया है। इसके पाठसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है॥ १२½॥

यः पठेत् प्रातरुत्थाय स भवेद् वैष्णवो नरः॥ १३॥
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्।

जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करेगा, वह मनुष्य भगवान् विष्णुका भक्त हो जायगा। उसके हृदयके सारे पाप धुल जायँगे और वह शुद्धचित्त होकर भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेगा॥ १३½॥

चान्द्रायणसहस्राणि कन्यादानशतानि च॥ १४॥
गवां लक्षसहस्राणि मुक्तिभागी भवेन्नरः।
अश्वमेधायुतं पुण्यं फलं प्राप्नोति मानवः॥ १५॥

इसके पाठसे सहस्रों चान्द्रायण व्रत, सैकड़ों कन्यादान-जनित पुण्य तथा सहस्रों लक्ष गोदानोंका फल पाकर मनुष्य मोक्षका भागी होता है; उसे दस हजार अश्वमेध यज्ञोंका पुण्य फल प्राप्त होता है॥ १४-१५॥

॥ इति श्रीविष्णुशतनामस्तोत्र सम्पूर्ण॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वन्ध्यानां पुत्रोत्पत्त्यर्थं संतानगोपालमन्त्रविधिः

अथ वन्ध्यानां पुत्रोत्पत्त्यर्थं संतानगोपालविधानम् ॥ मन्त्रसारे—आदौ शरीरशुद्ध्यर्थं कर्माधिकारार्थं जन्मान्तरीयसंततिप्रतिबन्धकदुरदृष्टजनितदोषपरिहारार्थं कर्माधिकारसिद्ध्यर्थं द्वादशाब्दषडब्दत्र्यब्दसार्द्धाब्दादीनि यथाशक्त्यनुसारेण प्रायश्चित्तानि दद्यात्—

"प्रायः पापं विजानीयाच्चित्तं तस्य विशोधनम् ।
कृत्वा शुद्धिं तु देहस्य ततः कर्माणि कारयेत् ॥"
—इति नियमात् ॥

अर्धादिप्रायश्चित्तलक्षणं तु महार्णवादावुक्तम् "त्रिंशद्भिश्च तथा गोभिरर्धं तु मुनिभिः स्मृतम्" इत्यादिना द्रष्टव्यम् । उक्तविधानेन प्रायश्चित्ते कृते वन्ध्यात्वनिरासार्थं महार्णवोक्तं सुवर्णधेनुदानं तथा षोडशशूर्पसौभाग्यद्रव्यं वस्त्रालंकारसहितयज्ञोपवीतदानं च विधेयम् । उक्तं च—

"वन्ध्यात्वस्य निरासार्थं धेनुं दद्याच्च हेमजाम् ।
तथा यज्ञोपवीतं तु दद्याद्धेममयं शुभम् ।
षोडशानि च शूर्पाणि फलयुक्तानि दापयेत् ॥
एवं कृते विधानेन वन्ध्यत्वात् प्रतिमुच्यते ।
सत्पुत्रं लभते नूनमेतत् कर्म प्रयोजयेत् ॥"
—इति नियमात् ।

अथ प्रयोगः—आचार्यहस्तेन देयमिति नियमात् तस्मादादौ आचार्यवरणं कार्यं "सर्वमाचार्यः प्रतिजानीते" इति नियमात् । तत्र धेनुमानमाह सूर्यार्णवे—

"धेनुं निष्कचतुष्कस्य तदर्द्धं स्यात्तदर्द्धकम् ।
तदर्द्धस्य च वा तत्र चतुर्थांशेन वत्सकम् ॥"
—इति हेमाद्रिवचनानुसारेण विदध्यात् । एवं यज्ञोपवीतमपि देयम् । सोमो धेनुमिति मन्त्रेण होमाचरणं कुर्यात् । तद्विशेषविधानं महार्णवादौ द्रष्टव्यम् । एवं पूर्वोक्तमादौ निर्वर्त्य प्रायश्चित्तोत्तरं पूर्वाणि दशस्नानानि कृत्वा तत्प्रोक्तानि गोदानानि दत्त्वा पञ्चगव्यं प्राश्य तद्दिने उपोषणं कार्यम् । अशक्तश्चेद्धविष्यान्नं भुञ्जीत । ततः सुदिने चन्द्रतारानुकूल्ये पुरुषनक्षत्रे संतानगोपालविधानं कार्यम् ।

अथ विधानम् । पुरश्चरणस्य लक्षसंख्या नियमः, तत्रापि कलौ चतुर्गुणं कार्यं तदुक्तम् "कलौ चतुर्गुणः प्रोक्तः पुरश्चरणके विधिः ॥" इति वचनात् । तत्रादौ ऋत्विग्वरणं तत्र मूलमन्त्रजपार्थमष्टौ ब्राह्मणान् वृणुयाच्चतुरो वा । तत्र सर्वकर्माधिकारार्थं शान्तं तद्विधिज्ञमाचार्यं वृणुयात् । ततः तदङ्गत्वेन चतुर्विधवन्ध्यात्वदोषपरिहारार्थं च लक्षसंख्याकपार्थिवलिङ्गपूजनं च शतचण्डीपाठं मन्युसूक्तजपं नवग्रहजपं रुद्राध्यायजपं हरिवंशश्रवणं च कुर्यात् । तत्र ऋत्विजः स्वशक्त्यनुसारेण जपं कुर्युरेवं मन्युसूक्तजपं लक्षसंख्याकं तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा कुर्यात् । नित्यं तद्दशांशैर्मन्त्रितदशघटैः जलपूर्णैः दम्पती स्नायाताम् ।

'देवकीसुत गोविन्द' अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । 'वासुदेव जगत्पते' तर्जनीभ्यां नमः । 'देहि मे तनयं कृष्ण' मध्यमाभ्यां नमः । 'त्वामहं शरणं गतः' अनामिकाभ्यां नमः । 'ॐ क्लीं देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते ।' कनिष्ठिकाभ्यां नमः । 'देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः' करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादि न्यासः । एवं न्यासं विधाय मूलेन व्यापकं कुर्यात् । अथ ध्यानम्—

शान्तं सम्मुखसन्निषण्णममलं रक्ताम्बुजे बालकं
माणिक्योज्ज्वलमालभूषणलसत्संतप्तहेमद्युतिम् ।
प्रेम्णालिंग्य मुहुर्मुहुः सुखवशात् सम्भावितं स्वात्मना
ध्यायेत् पुत्रतया पुराणपुरुषं पुत्राभिलाषी पुमान् ॥
—एवं ध्यात्वा यथोक्तजपं कुर्यात् ।

जपान्ते दशांशहोमं कुर्यात् । तर्पणं ब्राह्मणभोजनं च सम्पाद्य दानान्तं कृत्वा कुण्डं पूजयित्वा पुनर्मण्डलदेवतानि सम्पूज्य (तत्र योनिकुण्डं मुख्यम्) एवं कुण्डमण्डपादि निर्वर्त्य गणेशादिलोकपालादिवास्तुयोगिनीनवग्रहमातृकाणां स्थापनं मूलदेवतास्थापनं मण्डलदेवतास्थापनं तोरणद्वारध्वजपताकानां स्थापनं कृत्वा तत्तन्मन्त्रैः तत्तत्स्थाने सम्पूज्य कुण्डसंस्कारं कृत्वा अग्निं प्रतिष्ठाप्य दशांशेन हुत्वा तर्पणं ब्राह्मण-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भोजनं मार्जनं मण्डलदेवतास्थापनं लोकपालानां नवग्रहादिमण्डलचतुष्टयदेवतानां च यथाशक्त्या हेमप्रतिमाः कृत्वा मूलदेवताप्रतिमां च निष्काष्टकेन वा निष्कत्रयेण सम्पाद्य अग्न्युत्तारणं कृत्वा अधिवासनादि विसर्जनान्तं पूजयित्वा आचार्याय निवेद्य दक्षिणां दद्यात्।

शक्तश्चेत् कृष्णविग्रहः कर्तव्यः। पद्मोपरि निविष्टो बालकरूपेण सुवर्णनिष्काष्टकस्य सुवर्णादिनिर्मितकलशे देवतानां प्रतिकलशं स्थापयित्वा एकादशकलशांस्तदुपरि आच्छादनपात्राणि वस्त्रफलसंयुतानि संस्थाप्य कलशपूजाविधानं कृत्वा मही द्यौरिति भूमिं प्रार्थ्य तण्डुलादिधान्यराशिं कृत्वा कलशं संस्थाप्य आकलशेष्विति इमं मे गङ्गे इत्यादिना उदकं पूरयित्वा तन्मध्ये पञ्चनद्येत्यादि तीर्थोदकं दत्त्वा पञ्चरत्नानि निक्षिप्य पञ्चामृतं पञ्चगव्यं पञ्चपल्लवान् पञ्चत्वचः सप्तमृत्तिका फलानि हिरण्यं च तत्तन्मन्त्रैर्निधायाच्छाद्यासनं दत्त्वा भूमौ स्थापयेत्।

तासां प्रतिमानामग्न्युत्तारणं विधाय प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् तत्तन्नाम्ना पृथक्पृथक्प्राणान् संस्थाप्य इष्टदेवैः सह स्नानं कारयित्वा ततः पुरुषसूक्तादिनाम्नाऽऽवाहनाद्युपचारैः सम्पूज्य—

आगच्छ देव भगवञ्छ्रीगोपाल नमोऽस्तु ते।
मम संतानसिद्ध्यर्थं सान्निध्यं कुरु सर्वदा॥

—एवमावाहनादिषोडशोपचारैः सम्पूज्य तिलसर्पिः फलपुष्पनैवेद्यान्तं विधाय एवं नियमो द्रष्टव्यः। तिलघृतपायसेन हुत्वा देवस्य शयनार्थमान्दोलकं चामरं छत्रमादर्शं पादुकान्तं षोडशोपचारान्तपूजां विधाय पूर्णाहुतिं कृत्वा तर्पणमार्जनादि विधाय श्रेयःसम्पादनं सम्पाद्य आचार्यादिऋत्विग्भ्यो वस्त्रालङ्कारादिना संतोष्य आचार्याय मूर्तिदानं कृत्वा जापकेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा दानपत्रे ब्राह्मणाय दक्षिणा देया—

देवतानां व्रतैर्युक्तं संतुष्टहृदयान्वितम्।
वेदाध्ययनसंयुक्तं सपत्नीकं सपुत्रकम्॥
सुगन्धवस्त्रमालाद्यैः कुण्डलैरङ्गुलीयकैः।
तस्मिन् संतानगोपालदानं भक्त्या समाचरेत्॥

अथ दानमन्त्रः—

करुणाकर देवेश नवनीताशन प्रिय।
देहि मे पुत्रसंतानं कुलवृद्धिकरं मम॥

—इति दत्त्वा सुवर्णदक्षिणां दद्यात्। आचार्याय द्विगुणां गोमिथुनं दत्त्वा संतोष्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा आशिषो गृहीत्वा यथासुखं विहरेत्। एवं कृते पुत्रवान् भवति, गोपालः स्वयमेवावतरिष्यति।

अथ मन्त्रचन्द्रिकावचनम्। होमस्तु जीवपुत्रवृक्षस्य समिद्भिर्वा फलैः कार्यः। तदभावे तिलसर्पिषा पायसेन वा कार्यः। अत्र पार्थिवपूजनं तु एकोत्तरवृद्धिलक्षं पृथक्पृथक् कार्यं तदभावे लक्षादिविधानैः सहैकतन्त्रेण वा कार्यम्। तदुक्तं लिङ्गार्चनविधाने एकोत्तरविधाने तु पृथक्पृथक्पूजनं च कार्यं लक्षलिङ्गप्रकारे तु सहैकतन्त्रेण कारयेत्। लिङ्गविधाने होमे तु दशांशनियमो नास्ति किंतु यत्संख्याकानि लिङ्गानि पूजयेत्तावदेव तु होमयेत्॥ तदुक्तं मन्त्रमहोदधौ—'यत्संख्याके यजेल्लिङ्गं तत्संख्यं होममाचरेत्' इति लिङ्गार्चनदीपिकोक्तं कुर्यात्।

आचार्यादिवरणप्रकारः—देशकालौ संकीर्त्य अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहममुकशर्माहमाचार्यत्वेन त्वामहं वृणे। तत आचार्यः—अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहम् अमुकशर्माहं वृतोऽसि करिष्यामीति प्रतिवचनम्। तं वासोऽलङ्कारादिभिः पूजयेत्। एवमृत्विजोऽपि पूजयेत्।

अथ जपविधिः॥ स्नात्वाऽऽचम्य प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य अमुकगोत्रस्य अमुकशर्मणो यजमानस्य धर्मपत्न्यां चिरञ्जीवशुभसंतानप्राप्त्यर्थं लक्षादिसंख्यान्तर्गतयथोक्तसंख्यां प्रारभ्यैतत्संख्यापर्यन्तं संतानगोपालमन्त्रस्य जपमहं करिष्ये॥ इति सङ्कल्प्य आसने उपविश्य भूशुद्धिं भूतशुद्धिं प्राणप्रतिष्ठामन्तर्मातृकाबहिर्मातृकान्यासांश्च कृत्वा तदुपरि षडङ्गानि कुर्यात्। यथा ॐ क्लां हृदि। ॐ क्लीं शिरसि। ॐ क्लूं शिखायै। ॐ क्लैं कवचम्। ॐ क्लौं नेत्रम्। ॐ क्लः अस्त्रम्। एवं करन्यासादि विधाय। ॐ भूर्भुवः स्वरोमिति दिग्बन्धं कृत्वा मूलमन्त्रेण न्यासं च

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुर्यात्। यथा क्लीं देवकीसुतसंतानगोपालस्यायुधध्यानम्—

शङ्खचक्रधरं देवं श्यामवर्णं चतुर्भुजम्।
सर्वाभरणसंदीप्तं पीतवासःसमन्वितम्॥
मयूरपिच्छसंयुक्तं विष्णुतेजोपबृंहितम्।
समर्पयन्तं विप्राय नष्टानानीय बालकान्॥
करुणामृतसम्पूर्णं चेष्टैकनिलयं त्वजम्॥

चतुर्भुजमित्यनेन गदाम्बुजे सूचिते। वामाद्यर्ध्वयोराद्ये तदाद्यन्ययोरन्ये इत्यायुधध्यानम्॥

स्त्रीभिस्तु—स्वान्ते सम्मुखसन्निविष्टममले रक्ताम्बुजे बालकं माणिक्योज्ज्वलबालभूषणगणं संतप्तहेमद्युतिम्॥ प्रेम्णाऽऽलिंग्य मुहुर्मुहुः सुखवशात् संलालितं स्वात्मना पुत्रत्वेन विभावयेन्मुररिपुं पुत्रार्थिनी कामिनी॥ इति ध्यात्वा पूजादि विधाय मन्त्रो जप्यः।

इति संतानगोपालमन्त्रानुष्ठानविधानपद्धतिः॥

शुभम्भवतु॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष ४ | गोरखपुर, भाद्रपद २०१६, सितम्बर १९५९ | संख्या ९ पूर्ण संख्या ४५

बालकृष्णका स्तवन

कारायां धृतजनुषं कमपि पितृभ्यां स्तुतं भजे बालम् ।
बाहुचतुष्टयशालिनमञ्जगदाशङ्खचक्रयुक्पाणिम् ॥

जिसने कारागारमें अवतार ग्रहण किया, जिसकी माता-पिताने स्तुति की, जो चार भुजाओंसे सुशोभित था तथा जिसके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पाते थे, ऐसे किसी अनिर्वचनीय वैभवशाली बालक (श्रीकृष्ण) का मैं भजन करता हूँ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

जैमिनीयाश्वमेधपर्वकी विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१	युधिष्ठिरकी चिन्ता, व्यासजीका उन्हें समझाते हुए द्रव्य-प्राप्तिका उपाय, अश्वमेध-यज्ञकी विधि तथा उसमें छोड़े जानेवाले अश्वके लक्षणोंका वर्णन करना, यज्ञके विषयमें युधिष्ठिर-भीमसेन-संवाद और व्यासजीका अश्वका पता बताना ...	१
२	भीमसेनकी अश्व लानेके लिये दृढ़ प्रतिज्ञा, भीमसेनके साथ वृषकेतु और मेघवर्णकी बातचीत, युधिष्ठिरका अश्वमेध-यज्ञके लिये चिन्तित होकर भाइयोंसे पूछना, भीमसेनका उत्तर, युधिष्ठिरके स्मरण करनेपर श्रीकृष्णका आगमन और युधिष्ठिरके साथ उनका वार्तालाप	६
३	भीमसेनका श्रीकृष्णकी बातोंका उत्तर देते हुए उनके गुणोंका वर्णन, श्रीकृष्णकी प्रसन्नता, भीमसेनका वृषकेतु और मेघवर्णके साथ भद्रावती-पुरीमें पहुँचकर वहाँकी शोभा देखना और अश्वकी प्रतीक्षामें पर्वतपर स्थित होना ...	१२
४	वृषकेतुद्वारा भीमको प्रोत्साहन, सरोवरमें हाथियों और घोड़ोंके स्नान एवं जलपानका वर्णन, श्यामकर्ण अश्वके लिये भीमकी चिन्ता, उस अश्वका सरोवरतटपर आगमन, मेघवर्णका भीमकी आज्ञा लेकर उस अश्वको हर लाना, देवताओंकी शङ्का और मेघवर्णकी बातसे उनका संतुष्ट होना, मेघवर्णकी विजय, वृषकेतुद्वारा अश्वरक्षक सैनिकोंकी पराजय, सेनासहित राजा नीलध्वजका आगमन, वृषकेतुका उसकी सेनाके साथ स्वयं ही युद्ध करनेके लिये भीमसेनसे आग्रह तथा भीमसेनकी स्वीकृति और वृषकेतु तथा राजा नीलध्वजकी बातचीत	१७
५	वृषकेतु और यौवनाश्वका युद्ध, उसमें दिव्यास्त्रोंका प्रयोग, वृषकेतुके मूर्च्छित होनेपर भीमसेनका रणभूमिमें आगमन, भीमसेन और सुवेगका युद्ध और दोनोंकी मूर्च्छा, पुनः वृषकेतु और यौवनाश्वका युद्ध, यौवनाश्वके मूर्च्छित होनेपर वृषकेतुद्वारा उनकी जीवनरक्षा और सचेत होनेपर यौवनाश्वद्वारा वृषकेतुका आलिङ्गन ...	२८
६	राजा यौवनाश्वका भीमसेनसे कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन सबको नगरमें ले जाना और प्रभावतीद्वारा उनकी आरती उतारा जाना, राजाद्वारा अपने राज्य आदिका श्रीकृष्णको समर्पण, हस्तिनापुर चलनेके लिये प्रजाको आदेश देना, सुदेवकी माता जरद्गवा और राजाका संवाद, जरद्गवाको बाँध कर साथ ले चलना, मार्गमें भीमसेनका पहले ही हस्तिनापुर पहुँचना और युधिष्ठिरको अश्वसहित यौवनाश्वके आगमनकी सूचना देना ...	३२
७	युधिष्ठिरकी आज्ञासे भीमसेनका द्रौपदीके पास जाना और उसके साथ भीमसेनकी बातचीत, युधिष्ठिरद्वारा राजा यौवनाश्वका स्वागत और उनसे वार्तालाप, सुदेवद्वारा वृषकेतुकी प्रशंसा, श्रीकृष्णका युधिष्ठिरकी आज्ञासे द्वारकापुरीको लौटना, युधिष्ठिरके पूछनेपर व्यासजीका उनसे राजा मरुत्तके यज्ञका वृत्तान्त सुनाना	३७
८	युधिष्ठिरका व्यासजीसे धर्मविषयक प्रश्न करना और व्यासजीद्वारा वर्णधर्म, विधवाओंके कर्तव्य और कुलटा स्त्रियोंके स्वरूप एवं लक्षणका निरूपण ...	४१
९	युधिष्ठिरका व्यासजीसे लक्ष्मीकी स्थिरता तथा भगवान्‌की प्रसन्नताका उपाय पूछना, व्यासजीका युधिष्ठिरको उनके प्रश्नका उत्तर देते हुए श्रीकृष्णको बुलानेके लिये आदेश देना, युधिष्ठिरका भीमसेनको श्रीकृष्णको बुलानेके लिये आदेश देना, भीमसेनका द्वारकामें पहुँचना, वहाँ श्रीकृष्णके भोजनका वर्णन और सत्यभामा और देवकीका वार्तालाप, श्रीकृष्णका अपने पास आते हुए भीमसेनको रोकना	४४
१०	श्रीकृष्णका भीमसेनको दिखाकर भोजन करना, भीमसेनके श्रीकृष्णके प्रति आक्षेपपूर्ण वचन, श्रीकृष्णका भीमसेनको भोजन कराकर पान देना और नगरवासियोंको कृतवर्माद्वारा नगारा बजाकर हस्तिनापुर चलनेके लिये आदेश देना तथा दल-बलसहित हस्तिनापुरको प्रस्थान, मार्गमें मालिन और तेलिनकी श्रीकृष्णसे बातचीत ...	५०
११	श्रीकृष्ण और भीमसेनका विनोदपूर्ण वार्तालाप, मार्गमें ऊँटकी पीठसे गिरी हुई सूतिकाकी प्रार्थना, वसुदेवजीका श्रीकृष्णको उपदेश, भीमसेनद्वारा वसुदेवजीकी बातका खण्डन, श्रीकृष्णका सरोवरपर आना और रुक्मिणीको बुलाकर नलिनीके व्याजसे स्त्रियोंपर आक्षेप करना, रुक्मिणीका उन्हें उत्तर देना, व्रजमें पहुँचकर गोप-गोपियोंकी श्रीकृष्णसे भेंट और उनकी दशाका वर्णन, श्रीकृष्णका देवकी, यशोदा, रुक्मिणी और प्रद्युम्न आदिको कर्तव्यका उपदेश तथा हस्तिनापुरमें याज्ञिक ब्राह्मण, संन्यासी, शम्भली और वन्दियोंद्वारा श्रीकृष्णकी आलोचना ...	५६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१२—जनमेजयके पूछनेपर महर्षि जैमिनिद्वारा स्मार्तोंके भाषणका वर्णन, नर्तकी और श्रीकृष्णका वार्तालाप, श्रीकृष्णका युधिष्ठिरके भवनमें प्रवेश और सत्कार, युधिष्ठिरका दल-बलसहित यादवोंके सत्कारार्थ गङ्गा-तटपर जाना और वहाँ परस्पर मिलन, सत्यभामा-द्रौपदी-संवाद, उषाद्वारा द्रौपदी तथा कुन्तीका सत्कार, सत्यभामाका अश्वको देखनेकी इच्छा प्रकट करना, श्रीकृष्णके कहनेसे युधिष्ठिरका अपने सैनिकोंको आदेश देना, नारियोंद्वारा घोड़ेका दर्शन, अनुशाल्वका आगमन और उसका यज्ञिय अश्वको पकड़कर सैनिकोंको आदेश देते हुए संग्रामभूमि-में डटकर खड़ा होना ६९

१३—जनमेजयके प्रश्न, श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे वार्तालाप और वीरोंको बीड़ा उठानेका आदेश, प्रद्युम्नका बीड़ा उठाकर युद्धके लिये प्रस्थान, श्रीकृष्णका पुनः वीरोंसे बीड़ा उठानेके लिये कहना, वृषकेतु-की बीड़ा उठाकर प्रतिज्ञा और प्रद्युम्नके साथ युद्धके लिये प्रस्थान, प्रद्युम्नके प्रति अनुशाल्वके आक्षेपपूर्ण वचन, प्रद्युम्नकी मूर्च्छा, श्रीकृष्णका प्रद्युम्नपर पादप्रहार करके उनपर आक्षेप करना, भीमसेनका श्रीकृष्णको रोककर उनका उत्तर देना, प्रद्युम्नके साथ युद्धके लिये प्रस्थान एवं घोर युद्ध, वृषकेतुके साथ बातचीत और अनुशाल्वके प्रहार-से उसका मूर्च्छित होना, श्रीकृष्णका युद्धके लिये जाना, उन्हें देखकर उनके प्रति अनुशाल्वका कथन, अनुशाल्वके प्रहारसे घोड़ोंका रथ लेकर भाग जाना, श्रीकृष्णको न देखकर अनुशाल्वके खेदपूर्ण वचन, श्रीकृष्णका प्रकट होकर अनुशाल्वपर प्रहार करना, अनुशाल्वका उन बाणोंको काटकर श्रीकृष्णको मूर्च्छित कर देना, दारुकका रथ लेकर लौटना, सेनाका पलायन, श्रीकृष्णके प्रति सत्य-भामाके कठोर वचन ७७

१४—वृषकेतु और अनुशाल्वका युद्ध, वृषकेतुका अनु-शाल्वको पकड़कर श्रीकृष्णके हाथों सौंपना, अनुशाल्वद्वारा वृषकेतुके प्रति कृतज्ञताप्रकाश और श्रीकृष्णकी स्तुति, श्रीकृष्णका अनुशाल्वको युधिष्ठिरके पास ले जाना और युधिष्ठिरका उसे भाईकी तरह ग्रहण करना, युधिष्ठिरका यज्ञकी दीक्षा लेना, घोड़ेका पूजनपूर्वक छोड़ा जाना और अर्जुनका उसकी रक्षामें जाना, अर्जुन और कुन्तीकी बातचीत, वृषकेतु और उसकी पत्नीका संवाद, घोड़ेका माहिष्मतीपुरीमें जाना और पत्नीके कहनेसे प्रवीरद्वारा पकड़ा जाना ...

१५—प्रवीरके साथ वृषकेतु और अनुशाल्वका युद्ध, नीलध्वजका अर्जुनके साथ युद्ध, उनके द्वारा अग्निका बाणरूपमें छोड़ा जाना, अग्निद्वारा अर्जुनकी सेनाका संहार, अर्जुनद्वारा अग्निका स्तवन, जनमेजयके पूछनेपर जैमिनिजीका अग्निके नीलध्वजके जामाता होनेका वृत्तान्त सुनाना, अर्जुनद्वारा नारायणास्त्रका संधान और अग्निका शान्त होकर अपने उद्दीप्त होनेका कारण बताना तथा नगरमें जाकर नीलध्वजको युद्ध बंद करनेके लिये कहना, पत्नीके कहनेसे नीलध्वजका पुनः अर्जुनके साथ युद्ध करना और मूर्च्छित होकर घर लौटना; वहाँ पत्नीको फटकारकर घोड़ा तथा भेंट-सामग्री लेकर अर्जुनसे मिलना और उनके साथ घोड़ेकी रक्षामें जाना, ज्वालाका अपने भाई उल्मुकको अर्जुनको मारनेके लिये उसकाना और ... उससे ठुकराये जानेपर गङ्गातीरपर जाना, वहाँ ... गङ्गामें डूबकर बाणरूपमें बभ्रुवाहनके तूणीरमें प्रवेश करना तथा गङ्गाजीद्वारा अर्जुनको शाप ... ९४

१६—घोड़ेका विन्ध्यपर्वतपर जाना और वहाँ एक शिलासे चिपक जाना, अर्जुनका दूतोंको शिलाका वृत्तान्त पूछनेके लिये मुनियोंके पास भेजना, दूतके कथना-नुसार अर्जुनका सौभरि मुनिके आश्रमपर जाना और शिलाका वृत्तान्त पूछना, सौभरिका उसका वृत्तान्त सुनाते हुए उद्दालक और चण्डीका वृत्तान्त वर्णन करना, अर्जुनके करस्पर्शसे चण्डी-की मुक्ति और घोड़ेका मुक्त होकर आगे बढ़ना ... १०५

१७—अर्जुनके यज्ञिय अश्वका चम्पापुरीमें प्रवेश और राजा हंसध्वजद्वारा उसका पकड़ा जाना तथा राजसैनिकोंका युद्धके लिये प्रस्थान, अट्टालिकाओं-पर बैठी हुई स्त्रियोंकी परस्पर विनोद वार्ता, राजा-की घोषणा, खौलते हुए तैलपूर्ण कड़ाहका आयो-जन, सुधन्वाका रणके लिये उद्यत हो माता और बहिनको प्रणाम करके उनकी आज्ञाके अनु-सार युद्ध करनेका आश्वासन देना, प्रभावती[illegible]नीके अपने पति सुधन्वाकी आरती उतारना, सुधन्वाका संवाद, पत्नीके आग्रहसे विवश जाना, राजाका उसे रतिदान देकर युद्धके[illegible] बुलवाकर फट-रोष, यवन-सैनिकोंद्वारा[illegible]वेषयमें पूछना, शङ्खका कारना, शङ्खमुनिके राजा सुधन्वाको कड़ाहमें राज्य छोड़कर[illegible]चवको आज्ञा देकर जाना, शङ्ख डालनेके[illegible]तको लेकर लौटना, सुधन्वाके द्वारा [illegible] भगवान्‌का स्मरण, उसके जीवनकी रक्षा [illegible] तैलकी परीक्षाके समय शङ्ख और लिखितके ललाटमें नारियलके टुकड़ोंसे चोट पहुँचना ... ११३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२८–शङ्खमुनिका सुधन्वाको अक्षत देखकर नौकरोंसे कारण पूछना, स्वयं तेलके कड़ाहेमें कूदना, सुधन्वाको हृदयसे लगाकर उसकी प्रशंसा करना और युद्ध-क्षेत्रमें राजा हंसध्वजके पास ले जाना, हंसध्वजका घोड़ेको पकड़वा लेना और वीरोंके साथ युद्धके लिये डटकर खड़ा होना, अर्जुन, प्रद्युम्न और वृषकेतुका वार्तालाप, वृषकेतुका युद्धके लिये प्रस्थान, सुधन्वाके साथ बातचीत और युद्ध, वृषकेतुका मूर्च्छित होकर युद्धक्षेत्रसे हटना, सुधन्वाका प्रद्युम्नको मूर्च्छित करना, कृतवर्माको खदेड़ना और अनुशाल्वको पराजित करके घोर पराक्रम प्रकट करना १२१

१९–सुधन्वा और सात्यकिके युद्धमें सात्यकिका मूर्च्छित होना, सुधन्वा और अर्जुनका युद्ध, अर्जुनका सारथिके मारे जानेपर श्रीकृष्णका स्मरण करना, श्रीकृष्णका वहाँ पधारना, तीन बाणों-द्वारा सुधन्वाका वध करनेके लिये अर्जुनकी प्रतिज्ञा, सुधन्वाद्वारा तीनों बाणोंका काटा जाना और तीसरे बाणके आधे भागसे सुधन्वाकी मृत्यु १३८

चित्र-सूची

१–महाभारत-लेखन ...	...	...	(तिरंगा)	मुखपृष्ठ
२–पाण्डवोंद्वारा छोड़ा हुआ अश्वमेधका घोड़ा	...	...	(,,)	... १
३–पाण्डवोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका स्वागत	...	...	(एकरंगा)	... १०
४–पटरानियोंके बीचमें भोजन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण		...	(,,)	... ४८
५–सौभरि ऋषि अपने आश्रममें शिष्योंको पढ़ा रहे हैं		...	(,,)	... १०७
६–उबलते हुए तेलके कड़ाहेमें प्रसन्नमुख सुधन्वा	...	...	(,,)	... १२८

वार्षिक मूल्य
भारतमें १५)
विदेशमें २०)
(३० शिलिंग)

हनुमानप्रसाद, मुद्रक तथा प्रकाशक
टीकाकार—[illegible]र, गीताप्रेस, गोरखपुर
[illegible]ार शुक्ल शास्त्री

एक प्रतिका
भारतमें १॥)
विदेशमें २)
(३ शिलिंग)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

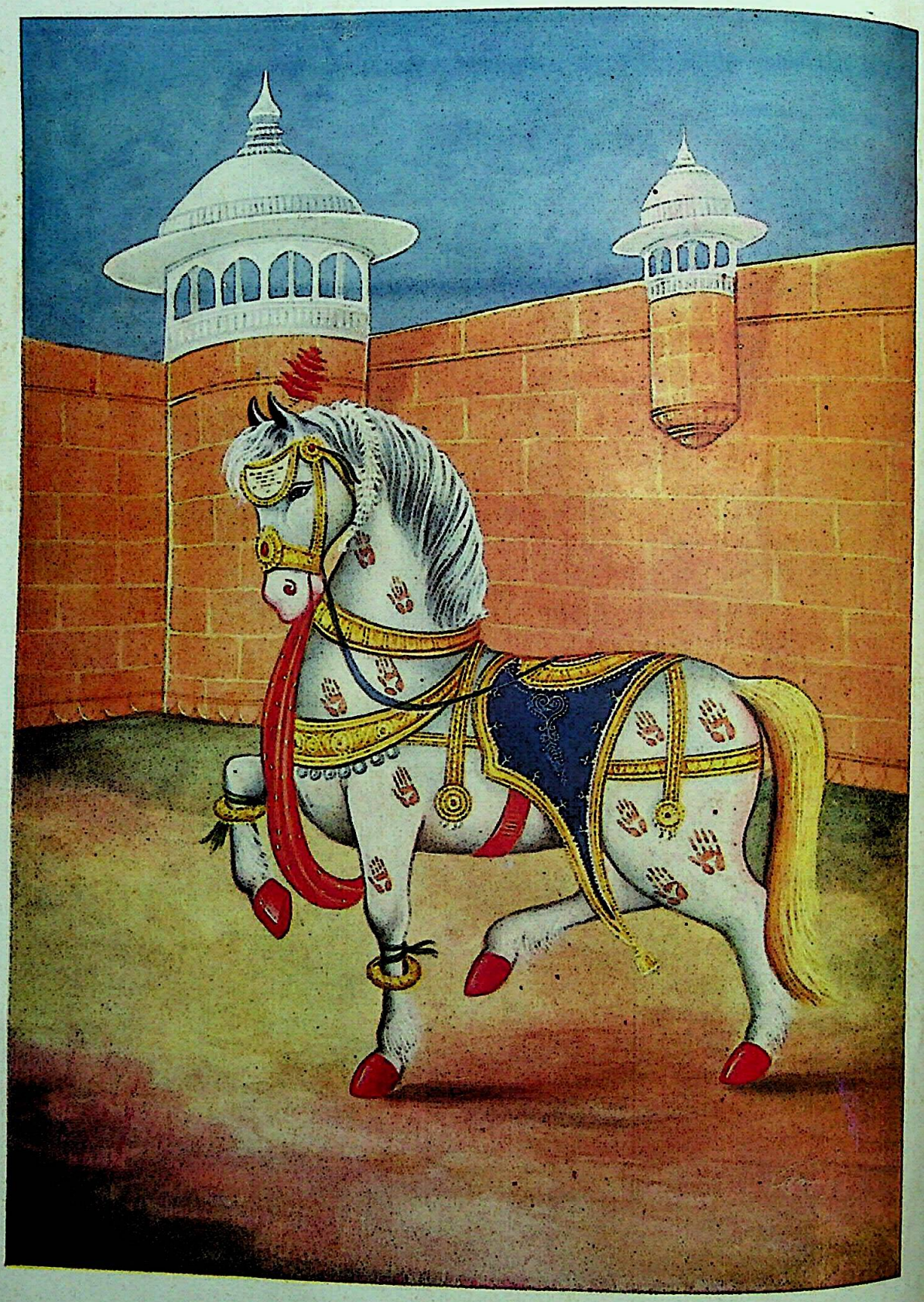

पाण्डवोंद्वारा छोड़ा हुआ अश्वमेधका घोड़ा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतस्य जैमिनीयाश्वमेधपर्व[1]

प्रथमोऽध्यायः

युधिष्ठिरकी चिन्ता, व्यासजीका उन्हें समझाते हुए द्रव्य-प्राप्तिका उपाय, अश्वमेध-यज्ञकी विधि तथा उसमें छोड़े जानेवाले अश्वके लक्षणोंका वर्णन करना, यज्ञके विषयमें युधिष्ठिर-भीमसेन-संवाद और व्यासजीका अश्वका पता बताना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उनकी लीलाओंको संकलित करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत आदि इतिहास-पुराण) का पाठ करना चाहिये ॥ १ ॥

जनमेजय उवाच

कथं युधिष्ठिरः प्रीतो मम पूर्वपितामहः ।
हयमेधं क्रतुवरं चक्रे बन्धुभिरन्वितः ॥ २ ॥

जनमेजयने पूछा—मुने ! (महाभारत-युद्धके पश्चात्) मेरे परदादा महाराज युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक यज्ञोंमें श्रेष्ठ अश्वमेधका अनुष्ठान किस प्रकार किया था ? ॥ २ ॥

जैमिनिरुवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि धर्मराजस्य चेष्टितम् ।
दिवं पितामहे याते धर्मपुत्रोऽतिदुःखितः ॥ ३ ॥
यदृच्छया च सम्प्राप्तं व्यासं पप्रच्छ सादरम् ।
केनोपायेन मे ब्रह्मन् गोत्रहत्याकृतं भयम् ॥ ४ ॥
ध्रुवं विनाशमाप्नोति तन्मे ब्रूहि तपोधन ।

जैमिनिजीने कहा—राजन् ! मैं धर्मराज युधिष्ठिरका चरित्र विस्तारपूर्वक कहता हूँ, सुनो ! पितामह भीष्मके स्वर्गलोक चले जानेपर जब धर्मनन्दन युधिष्ठिर अत्यन्त शोकमें डूबे हुए थे, उसी समय स्वेच्छानुसार विचरते हुए व्यासजी उनके समीप पधारे । तब युधिष्ठिरने व्यासजीका आदर-सत्कार करके उनसे पूछा—'ब्रह्मन् ! जाति-भाइयोंकी हत्यासे उत्पन्न हुआ मेरा भय (पाप) किस उपायसे निश्चय ही नष्ट हो सकता है ? तपोधन ! वह उपाय मुझे बताइये ॥ ३–४½ ॥

विना भीष्मेण कर्णेन तथा द्रोणेन वर्जितम् ॥ ५ ॥
न मे प्रीतिप्रदं राज्यं यत् प्राप्तं पूर्वजार्जितम् ।

'क्योंकि पूर्वजोंद्वारा उपार्जित जो यह राज्य मुझे प्राप्त हुआ है, वह भीष्म, कर्ण तथा द्रोणाचार्यसे रहित होनेके कारण मेरे लिये हर्षप्रद नहीं हो रहा है ॥ ५½ ॥

कर्णस्य मन्दिरं रम्यं ब्रह्मघोषसमन्वितम् ॥ ६ ॥
मया शून्यं कृतं तच्च साम्प्रतं दानवर्जितम् ।

'कर्णका रमणीय भवन, जो नित्य वेदध्वनिसे गूँजता रहता था, वह मेरे द्वारा शून्य कर दिया गया । इस समय वह दानकर्मसे वञ्चित हो गया है ॥ ६½ ॥

यत्रार्थिनां गणा नित्यं लब्ध्वा मानं तथा धनम् ॥ ७ ॥
हर्षादश्रूणि मुञ्चन्ति तत्र मुञ्चन्ति शोकजम् ।

'जिस भवनमें याचकोंके दल प्रतिदिन सम्मान और धन पाकर हर्षके आँसू बहाते थे, वहीं अब वे शोकजन्य अश्रु गिरा रहे हैं ॥ ७½ ॥

धिङ् मदीयमिदं राज्यं यत्र भीष्मो न भानुजः ॥ ८ ॥
ताभ्यां विरहितं तद्वद् देहं चक्षुर्विवर्जितम् ।

'जिसमें पितामह भीष्म तथा सूर्यपुत्र कर्ण नहीं हैं, मेरे इस राज्यको धिक्कार है ! क्योंकि उन दोनोंसे हीन होनेके कारण यह राज्य नेत्रोंसे हीन शरीरकी भाँति शोभाहीन प्रतीत हो रहा है ॥ ८½ ॥

बहुधा शासितस्तेन भीष्मेणामितबुद्धिना ॥ ९ ॥
न जहाति च मां शोको घातयित्वा तथाविधान् ।
त्यक्त्वा राज्यं गमिष्यामि राज्यं भीमः करोतु वै ॥ १० ॥

'यद्यपि उन अगाधबुद्धि पितामह भीष्मने मुझे अनेक प्रकारके उपदेश देकर समझाया था, तथापि वैसे महानुभावोंका वध करनेके कारण शोक मेरा पिण्ड नहीं छोड़ रहा है । अतः मैं राज्यका परित्याग करके चला जाऊँगा । भीमसेन ही इस राज्यका शासन करें ॥ ९-१० ॥

यानि तीर्थानि दानानि तथा यज्ञक्रियाः शुभाः ।
कृत्वा पूतो भविष्यामि न पश्यामि हि साम्प्रतम् ॥ ११ ॥

जिन तीर्थों, दानों और शुभ यज्ञकर्मोंका सेवन एवं अनुष्ठान करके मैं पवित्र हो सकूँ, वे भी मुझे इस समय नहीं सूझ रहे हैं ॥ ११ ॥

---

१. यह ग्रन्थ जैमिनिरचित महाभारतका एक पर्व है । उसके अन्य पर्व अब उपलब्ध नहीं होते हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यास उवाच

मा भयं कुरु राजेन्द्र न दोषस्ते भविष्यति।
तमुपायं करिष्यामि येन पूतो भविष्यसि ॥ १२ ॥

व्यासजीने कहा—राजेन्द्र ! तुम भयभीत मत होओ ! मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे तुम पवित्र हो जाओगे और तुम्हें किसी प्रकारका दोष नहीं लगेगा ॥१२॥

यथा गोत्रकृतां हिंसामपहास्यसि पाण्डव।
अश्वमेधं क्रतुवरं यजस्व कुरुनन्दन ॥ १३ ॥

पाण्डुपुत्र ! कुरुनन्दन ! तुम क्रतुश्रेष्ठ अश्वमेधका अनुष्ठान करो, जिसके द्वारा कुल एवं जाति-भाइयोंके वधके पापसे छूट जाओगे ॥ १३ ॥

रामेणापि पुरा वीर हयमेधत्रयं कृतम्।
यज्ञं कृत्वा तथा पुत्र राज्यं पालय मारिष ॥ १४ ॥

श्रेष्ठ वीर ! प्राचीनकालमें भगवान् रामने भी तीन अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। पुत्र ! तुम भी उसी प्रकार अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करके राज्यका पालन करो ॥

राजधर्मेण यल्लब्धं शासनान्माधवस्य तु।
तद् राज्यं तु परित्यज्य कस्माद् गन्तुमिहेच्छसि ॥ १५॥

भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे राजधर्मानुसार युद्ध करके तुमने जिस राज्यको प्राप्त किया है, उसे छोड़कर क्यों जाना चाहते हो ? ॥ १५ ॥

इह लोके परां कीर्तिं कुरु पुत्रक सुस्थिराम्।
यावत् ते बान्धवाः सर्वे वशगाः सन्ति साम्प्रतम् ॥ १६॥

बेटा ! तुम्हारे सभी भाई इन दिनों जबतक तुम्हारे वशमें हैं; तबतक ही तुम इस लोकमें अपनी उत्तम कीर्तिको सुस्थिर बना लो ॥ १६ ॥

शरीरं दोषरहितं तावच्छ्रेयः समाचर।
दिवं प्राप्ता हि राजानः कृत्वा पुण्यादिकाः क्रियाः ॥१७॥

जबतक तुम्हारा शरीर जरा-व्याधि आदि दोषोंसे रहित है, तबतक तुम अपने श्रेयका भलीभाँति सम्पादन कर लो; क्योंकि पूर्वकालमें भी बहुत-से नरेश पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करके स्वर्गको प्राप्त हुए हैं ॥ १७ ॥

जैमिनिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य व्यासस्यामिततेजसः।
उवाच दीनया वाचा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! अमित तेजस्वी महर्षि व्यासके इस वचनको सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने दीन वाणीमें कहा ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

न वित्तं विद्यते मह्यं विना वित्तं न वै क्रतुः।
जायते मम विप्रर्षे न च पीडयितुं प्रजाः ॥ १९ ॥
न शक्नोमि नृपान् हन्तुं पितृमातृविवर्जितान्।

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्मर्षे ! मेरे पास धन नहीं है और धनके बिना यज्ञ नहीं हो सकता। धनके लिये न तो मुझे प्रजाओंको पीड़ा देनेकी इच्छा होती है और न मैं माता-पिताओंसे हीन बालक राजाओंको ही मार सकता हूँ ॥१९½॥

दुर्योधनेन क्षपिता पृथिवी वित्तकारणात् ॥ २०॥
तां कथं पीडयिष्यामि धरणीं काञ्चनेच्छया।

एक तो दुर्योधनने ही इस पृथ्वीको धनके निमित्त नष्ट कर डाला है, फिर उसे मैं भी सुवर्ण-प्राप्तिकी इच्छासे कैसे पीड़ा पहुँचाऊँ ? ॥ २०½ ॥

साहाय्यं नैव पश्यामि सुहृदः समरे हताः ॥ २१॥
तस्माद् राज्यं परित्यज्य गमनं मम रोचते।
किमत्रानन्तरं कार्यं तन्मे गदितुमर्हसि ॥ २२॥

इसके अतिरिक्त मुझे कोई अपना सहायक भी नहीं दीख रहा है; क्योंकि अपने सभी सुहृद् समरमें मारे जा चुके हैं। इसलिये अब राज्यको छोड़कर चला जाना ही मुझे अच्छा जान पड़ता है। ऐसी स्थितिमें अब आगे मेरा क्या कर्तव्य है ? यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥ २१-२२ ॥

व्यास उवाच

मरुत्तेन कृतो यागस्तुष्टाः सर्वे द्विजोत्तमाः।
तैस्त्यक्तं बहुलं भूमौ काञ्चनं नृपनन्दन ॥ २३॥
हिमाचले तिष्ठति तत् पतितं त्वं समानय।
यज्ञेतुमसमर्थास्ते विप्रा राज्ञा समर्पितम् ॥ २४॥
मरुत्तेन वदान्येन द्रविणं शतधा मखे।

व्यासजीने कहा—राजपुत्र ! पूर्वकालमें राजा मरुत्तने एक यज्ञ किया था, जिसमें उन्होंने सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दक्षिणा आदिसे संतुष्ट किया था। उदार दानी राजा मरुत्तने उस यज्ञमें सैकड़ों प्रकारके द्रव्य ब्राह्मणोंको समर्पित किये थे, जिन्हें ले जानेमें वे ब्राह्मण असमर्थ हो गये। तब उन्होंने बहुत-सा सुवर्ण वहीं पृथ्वीपर छोड़ दिया। वह सुवर्ण हिमालयपर्वतपर अभीतक पड़ा हुआ है, उसे तुम ले आओ॥

युधिष्ठिर उवाच

धन्योऽसौ मरुतो राजा येन यागस्तथाविधः ॥ २५॥
कृतो बहुसुवर्णाढ्यो यत्र विप्रास्तु तर्पिताः।
त्यक्त्वा सुवर्णं च गताः कथं तदहमानये ॥ २६॥

युधिष्ठिर बोले—महर्षे ! वे राजा मरुत्त धन्य हैं, जिन्होंने बहुत अधिक सोनेसे भरा-पूरा वैसा यज्ञ किया और उसमें ब्राह्मणोंको ऐसा तृप्त किया कि वे उस सुवर्णको छोड़कर चले गये। भला, उस धनको मैं कैसे ले आऊँ ? ॥२५-२६॥

ब्राह्मणानां विशेषेण वित्तं दुःखतरं मम।
मत्तः परो न निन्द्योऽन्यो भविष्यति नराधिपः ॥ २७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मणोंका धन (ले लूँ तो वह) मेरे लिये विशेषरूपसे कष्टदायक होगा। ऐसा करनेपर मुझसे बढ़कर निन्दनीय राजा दूसरा कोई नहीं होगा ? ॥ २७ ॥

ब्रह्मस्वे यस्य नृपतेर्मतिर्भवति दारुणा।
ग्रहणान्मज्जयत्येनं शिलेवाम्भसि दुस्तरा ॥ २८ ॥

जिस राजाकी बुद्धि ब्राह्मणका धन हड़प लेनेके लिये क्रूरतापूर्ण हो जाती है, उसे वह बुद्धि उस धनको ग्रहण करनेसे जलमें पड़ी हुई दुस्तर शिलाकी भाँति डुबो देती है ॥

प्रहसिष्यन्ति मां विप्रा मम यज्ञे तथाविधे।
अस्मदीयं धनं राजा प्रयच्छति हि नः करे ॥ २९ ॥
तस्मान्न कुत्सितं कर्म करिष्यामि कथंचन।

उस प्रकारके धनसे मेरे यज्ञके सम्पादित होनेपर द्विज मेरी हँसी उड़ायेंगे और कहेंगे कि यह राजा हमारे ही धनको हमलोगोंके हाथोंमें समर्पित कर रहा है, अतः ऐसा निन्दनीय कर्म मैं किसी प्रकार भी नहीं करूँगा ॥ २९½ ॥

एका त्रपा मे महती यन्मया संगरे हताः ॥ ३० ॥
कुरवो गुरवश्चैव सुहृत्सम्बन्धिबान्धवाः।
सम्मार्जयितुमेकां हि न समर्थोऽस्मि तां त्रपाम् ॥ ३१ ॥
द्वितीयैषा महाभाग विप्रद्रव्याद् भविष्यति।

महाभाग ! मैंने युद्धस्थलमें जो कौरवों, गुरुजनों, सुहृदों, सम्बन्धियों और बान्धवोंका संहार कर डाला है, यही मेरे लिये एक बहुत बड़ी लज्जाकी बात हो गयी है। मैं उस एक लज्जाका ही मार्जन करनेमें समर्थ नहीं हो पाता हूँ; फिर ब्राह्मणोंका द्रव्य ग्रहण करनेसे तो मेरे लिये दूसरी लज्जाकी बात उपस्थित हो जायगी ॥ ३०-३१½ ॥

व्यास उवाच

धन्योऽसि नृपशार्दूल सम्यगुक्तं त्वया वचः ॥ ३२ ॥
ब्रह्मस्वं प्रति यां शङ्कां प्रकरोषि वृथा हि सा।
यदा त्यक्तं धनं तैर्हि स्वाम्यं तेषां तदा गतम् ॥ ३३ ॥

व्यासजीने कहा—राजसिंह ! तुम धन्य हो ! तुमने बहुत अच्छी बात कही है। परंतु ब्राह्मणोंका धन लेनेके विषयमें जो तुम शङ्का कर रहे हो, तुम्हारी वह शङ्का व्यर्थ है; क्योंकि ब्राह्मणोंने जिस समय उस धनको त्याग दिया, उसी समय उनका स्वामित्व उस धनसे उठ गया ॥ ३२-३३ ॥

रामेण भूः पुरा दत्ता कश्यपाय महात्मने।
कथं गृह्णन्ति च महीं राजानः पापभीरवः ॥ ३४ ॥

पूर्वकालमें परशुरामजीने महात्मा कश्यपको यह पृथ्वी दानमें दे दी थी; फिर पापसे भय करनेवाले नरेश अब इस पृथ्वीको कैसे ग्रहण करते हैं ? ॥ ३४ ॥

दैत्यैर्जिता धरा चेयं दैत्येभ्यः क्षत्रियैर्जिता।
गतं स्वाम्यं च विप्राणां तस्माद् दोषो न विद्यते ॥ ३५ ॥

पहले इस पृथ्वीको दैत्योंने जीता था, फिर दैत्योंसे इसको क्षत्रियोंने जीता। इस प्रकार उसपरसे ब्राह्मणोंका अधिकार जाता रहा, अतः इसमें कोई दोष नहीं है ॥ ३५ ॥

यदा धराधिपत्यं हि प्राप्तं येन नृपेण च।
तदा तस्याखिलं वित्तं जायते नात्र संशयः ॥ ३६ ॥

जिस समय जिस राजाको इस पृथ्वीका स्वामित्व प्राप्त होता है, उसी समय उसका पृथ्वीके समस्त धनपर अधिकार होता है—इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ३६ ॥

तद् धनं त्वं समानीय कुरु यज्ञं च पाण्डव।
श्रुत्वा व्यासवचो राजाह्यपृच्छद् यज्ञसाधनम् ॥ ३७ ॥

अतः पाण्डुपुत्र ! तुम उस धनको लाकर यज्ञ करो। व्यासजीके इस वचनको सुनकर राजा युधिष्ठिरने यज्ञके साधनके विषयमें जिज्ञासा प्रकट की ॥ ३७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

ब्राह्मणाः कतिसंख्याका दक्षिणा कीदृशी क्रतौ।
हयश्च कीदृशो भाव्यस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३८ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—महर्षे ! अश्वमेध यज्ञमें कितने ब्राह्मण होने चाहिये ? इसमें किस प्रकारकी दक्षिणा दी जाती है ? और कैसा अश्व होना चाहिये ? इन सब बातोंका विशद विवेचन कीजिये ॥ ३८ ॥

व्यास उवाच

द्विजा विंशतिसाहस्रा मखादौ सम्प्रकीर्तिताः।
कुलीनाः सम्मताः प्राज्ञा वेदशास्त्रार्थपारगाः।
एकैकस्मै द्विजायात्र दक्षिणां प्रवदामि ते ॥ ३९ ॥

व्यासजीने कहा—राजन् ! यज्ञके आदिमें ब्राह्मणोंकी संख्या बीस हजार बतलायी गयी है। वे ब्राह्मण उत्तम कुलमें उत्पन्न, माननीय, बुद्धिमान् तथा वेद-शास्त्रोंके अर्थ-ज्ञानमें पारंगत होने चाहिये। इस यज्ञमें एक-एक ब्राह्मणको कितनी दक्षिणा देनी चाहिये ? यह मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ ३९ ॥

एको गजो रथश्चैको हयश्चैकः सकाञ्चनः।
प्रत्येकं गोसहस्रं च रत्नप्रस्थं सकाञ्चनम् ॥ ४० ॥
भारश्च काञ्चनस्यैकः प्रदेया दक्षिणा मखे।
यस्मिन् दिने हयो राजन् मुच्यते प्रथमा हि सा ॥ ४१ ॥

इस यज्ञमें प्रत्येक ब्राह्मणको एक हाथी, एक रथ, सुवर्ण-भूषित एक अश्व, एक हजार गौएँ, सुवर्णयुक्त एक सेर रत्न और एक भार सोना दक्षिणारूपमें दिया जाना चाहिये। राजन् ! जिस दिन अश्व छोड़ा जाता है, उस दिनकी यह पहली दक्षिणा कही गयी है ॥ ४०-४१ ॥

दक्षिणा कथिता रम्या तुरगं कथयामि ते।
गोक्षीरसमवर्णं च कुन्देन्दुहिमसंनिभम् ॥ ४२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीतपुच्छं श्यामकर्णं सर्वतोगतिमुत्तमम् ।
श्यामं चापि महीपाल यज्ञेऽस्मिंस्तुरगं विदुः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार यज्ञकी रमणीय दक्षिणा कही गयी। अब तुमसे अश्वका वर्णन करता हूँ। उस अश्वका वर्ण गो-दुग्धके समान अथवा कुन्द, चन्द्रमा और हिमके सदृश उज्ज्वल होना चाहिये। उसकी पूँछ पीली और दोनों कान श्याम होने चाहिये। वह सब ओर जा सकनेवाला हो। भूपाल! ऐसे उत्तम श्यामकर्ण अश्वको मुनिजन इस यज्ञमें ग्रहण करने योग्य मानते हैं॥ ४२-४३ ॥

चैत्रमासस्य राकायां मोच्योऽयं तुरगो नृप ।
वर्षमात्रं रक्षणीयः सर्वयोधैर्महाबलैः ॥ ४४ ॥

नरेश! चैत्रमासकी पूर्णिमा तिथिको यह अश्व छोड़ा जाना चाहिये और ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि बहुत-से महाबली योद्धा सालभरतक इसकी रक्षामें नियुक्त रहें ॥४४॥

पुत्रो वा बान्धवः शूरो रक्षणार्थं नियोज्यते ।
स्वयं यः कुरुते यज्ञमसिपत्रव्रतं चरेत् ॥ ४५ ॥
नियतः स च राजेन्द्र नात्र कार्या विचारणा ।
इष्टभोगान् वर्षमात्रं सेवेन्नारीविवर्जितान् ॥ ४६ ॥
एकत्र शयनं कार्यं पत्न्या सह नराधिप ।

राजेन्द्र! अपने शूरवीर पुत्र अथवा बान्धवको इस अश्वकी रक्षाके लिये नियुक्त किया जाता है तथा जो यज्ञका अनुष्ठान करता है, वह यजमान स्वयं नियमपूर्वक रहकर असिपत्र-व्रतका* पालन करे। जनेश्वर! इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। यजमान एक वर्षतक स्त्री-समागमके अतिरिक्त अन्य सभी इष्ट भोगोंका सेवन कर सकता है। इस व्रतमें पत्नीके साथ एक शय्यापर शयन करना चाहिये॥ ४५-४६½ ॥

यावदागमनं तस्य पुनरेव प्रजायते ॥ ४७ ॥
तावत् प्रयत्नवान् कर्त्ता निवसेद् धैर्यसंयुतः ।

जबतक वह अश्व पुनः लौटकर न आवे, तबतक यज्ञकर्ताको चाहिये कि वह धैर्यके साथ उपर्युक्त नियमोंका प्रयत्नपूर्वक पालन करता रहे॥ ४७½ ॥

हयः पुरीषं मूत्रं वा कुरुते यत्र यत्र च ॥ ४८ ॥
गोसहस्रं प्रदेयं हि कर्तव्यं हवनं द्विजैः ।
पूजनीयाश्च ते विप्रा दक्षिणाभिर्न संशयः ॥ ४९ ॥

(पृथ्वीपर भ्रमणके लिये छोड़ा हुआ) अश्व जहाँ-जहाँ विष्ठा अथवा मूत्रका त्याग करता है, वहाँ एक सहस्र गोदान करे और ब्राह्मणोंद्वारा हवन करावे। फिर प्रचुर दक्षिणाओंद्वारा उन ब्राह्मणोंका सत्कार करना चाहिये, इसमें संशय नहीं है॥ ४८-४९ ॥

ललाटे तुरगस्यापि पत्रं संलिख्य काञ्चनम् ।
बद्ध्वा स्वनामसंयुक्तं स्वप्रतापसमन्वितम् ॥ ५० ॥
कथनीयमिदं वाक्यं मयायं तुरगोत्तमः ।
विमुक्तोऽस्ति नृपः कश्चित् प्रतिगृह्णातु चेद् बली॥५१॥

इसके सिवा, राजा एक सोनेके पत्रपर अपने नाम और प्रतापके सूचक वाक्यका उल्लेख करके उसे अश्वके ललाटपर बाँधे। उस पत्रमें निम्नाङ्कित वक्तव्य वाक्य लिखा जाय—'मैंने इस उत्तम अश्वको (दिग्विजयके लिये) छोड़ा है। यदि किसी राजामें बल हो तो वह इसे पकड़ ले'॥ ५०-५१ ॥

यस्तु तं प्रतिगृह्णाति स जेतव्यो बलात् स्वयम् ।
अनेन विधिना वीर क्रतुरेष प्रजायते ॥ ५२ ॥

तदनन्तर यदि कोई राजा उस अश्वको पकड़ लेता है तो स्वयं पराक्रम करके उसे जीतना चाहिये। वीर! इस विधिसे यह अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न होता है॥ ५२ ॥

असिपत्रव्रतयुतो बहुपुण्यफलप्रदः ।
एवमेव पुरा शक्रश्चक्रे हयक्रतोः शतम् ॥ ५३ ॥
देवेन्द्रत्वमवाप्यासौ मोदते च त्रिविष्टपे ।

असिपत्रव्रतके पालनपूर्वक किये जानेपर यह यज्ञ अधिक पुण्यफल प्रदान करनेवाला होता है। प्राचीनकालमें इन्द्रने इसी विधिसे सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे, जिसके फलस्वरूप उन्हें देवराजपदकी प्राप्ति हुई और वे स्वर्गमें आनन्दका अनुभव कर रहे हैं॥ ५३½ ॥

हयमेधशतं चक्रे देवेन्द्रो व्रतवर्जितम् ॥ ५४ ॥
यस्तु व्रतयुतं कुर्यादश्वमेधं महाक्रतुम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तां प्रकरोति वसुन्धराम् ॥ ५५ ॥

उन देवराज इन्द्रने तो असिपत्रव्रतके बिना ही सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे, परंतु जो उस व्रतके साथ-साथ इस यज्ञश्रेष्ठ अश्वमेधका अनुष्ठान करता है, वह पृथ्वीको समस्त पापोंसे रहित कर देता है॥ ५४-५५ ॥

अनङ्गं को भवेज्जेता विना भीष्मं हि मानवः ।
तस्माद् भीता न कुर्वन्ति व्रतयुक्तं महामखम् ॥ ५६ ॥

भीष्मके अतिरिक्त दूसरा कौन मनुष्य है, जो कामदेवपर विजय पा सके? इसीलिये कामदेवसे भयभीत होकर मनुष्य असिपत्रव्रतके साथ इस श्रेष्ठ यज्ञका अनुष्ठान नहीं करते हैं॥ ५६ ॥

यदि ते विद्यते शक्तिरनङ्गं प्रति भारत ।
विजेतुं कुरु यज्ञस्य प्रारम्भं कुरुनन्दन ॥ ५७ ॥

भारत! कुरुनन्दन! यदि तुम कामदेवको जीतनेकी शक्ति रखते हो तो इस यज्ञका आरम्भ करो॥ ५७ ॥

---

* निर्विकारं मनः कुर्यादसिपत्रव्रतं त्विदम् ॥ पत्नीके साथ रहकर भी ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक मनको निर्विकार रखे—यह असिपत्र-व्रत कहलाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युधिष्ठिर उवाच

सर्वथा हयमेधेऽहं शोच्योऽस्मि मुनिसत्तम।
न च द्रव्यं न च हयो न सहायाश्च सन्ति मे ॥ ५८ ॥

युधिष्ठिर बोले—मुनिश्रेष्ठ! अश्वमेध यज्ञके विषयमें तो मैं सर्वथा शोचनीय ही हूँ; क्योंकि न तो मेरे पास धन है, न वैसा अश्व है और न सहायता करनेवाले योद्धा ही हैं ॥५८॥

भीमादयोऽपि च मया क्लेशिता बहवो रणे।
कर्णस्य पुत्रो बलवान् वृषकेतुरुदारधीः ॥ ५९ ॥
बालः षोडशवर्षीयो धर्मतस्तं न योजये।
घटोत्कचसुतं चैकं मेघवर्णं न योजये ॥ ६० ॥
पितास्य निहतो रात्रौ मदर्थे भानुसूनुना।

भीमसेन आदि अपने भाइयोंको भी मैंने युद्धमें बहुत कष्ट पहुँचाया है। हाँ, कर्णका पुत्र वृषकेतु अवश्य बलवान् तथा उदार बुद्धिवाला है; परंतु वह अभी सोलह वर्षका बालक है, अतः धर्मतः उसे इस अश्व-रक्षणरूप कार्यमें नहीं नियुक्त करूँगा। इसी प्रकार घटोत्कचके पुत्र मेघवर्णको भी इस कार्यमें मैं नियुक्त नहीं कर सकता; क्योंकि वह अपने पिताका एकलौता पुत्र है। इसका पिता घटोत्कच मेरे ही लिये सूर्यपुत्र कर्णद्वारा रात्रियुद्धमें मार डाला गया था ॥ ५९-६०½ ॥

यस्य प्रसादात् सततं पाण्डवः पृथिवीपतीन् ॥ ६१ ॥
जितवान् केशवश्चापि स दूरे मधुसूदनः।

जिसकी कृपासे पाण्डुपुत्र अर्जुन सदा राजाओंको जीतते रहे हैं, वे मधुसूदन श्रीकृष्ण भी तो इस समय दूर हैं॥६१½॥

एतावदुक्त्वा वचनं समाहूय वृकोदरम् ॥ ६२ ॥
प्रत्युवाच महाबुद्धिर्भीमसेनमिदं वचः।

व्यासजीसे इतनी बात कहकर महाबुद्धिमान् युधिष्ठिरने भीमसेनको बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—॥ ६२½ ॥

भीम भीम महाबाहो कथं यज्ञः प्रजायते ॥ ६३ ॥
गोत्रहिंसां कथं भीम नाशयिष्ये हि तद्वद।

'महाबाहु भीमसेन! यह यज्ञ किस प्रकार सम्पन्न हो सकता है? तथा गोत्रहिंसाजनित अपना पाप मैं किस प्रकार नष्ट कर सकूँगा? वह उपाय मुझे बताओ ॥६३½॥

बहुविघ्नकरो यागस्तस्माच्छोचामि पाण्डव ॥ ६४ ॥
उपहास्यपदं यास्ये यद्यपूर्णो भविष्यति।

'पाण्डुनन्दन! अश्वमेध यज्ञमें बहुत-से विघ्न उपस्थित हो जाते हैं, इसीलिये मैं चिन्तामें पड़ा हूँ। यदि यज्ञ पूर्ण नहीं हुआ तो मैं उपहासका पात्र बन जाऊँगा ॥ ६४½ ॥

भीम उवाच

हयो न विद्यते राष्ट्रे न वित्तं भवतोदितम् ॥ ६५ ॥
न समीपे हृषीकेशः कस्मात् शोकं हि तद्वचः।
समीपस्थः सदा कृष्णो विद्यते तव भारिष ॥ ६६ ॥
सर्वाश्च सम्पदः सन्ति यदि कृष्णः समीपगः।

भीमसेनने कहा—राजन्! आपने किस कारणसे यह बात कही कि मेरे राज्यमें न तो (श्यामकर्ण) अश्व है, न मेरे पास धन है और न इस समय श्रीकृष्ण ही मेरे समीप हैं। आर्य! श्रीकृष्ण तो सदा आपके सन्निकट ही रहते हैं और यदि श्रीकृष्ण समीप हैं तो वहाँ सारी सम्पदाएँ अपने-आप आ जाती हैं ॥ ६५–६६½ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्ता यन्नामग्रहणेन च ॥ ६७ ॥
नरा भवन्ति राजेन्द्र समीपस्थस्य किं फलम्।

राजेन्द्र! जिनके नामका संकीर्तन करनेसे ही मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं, वे भगवान् स्वयं समीप हों तो उनके सान्निध्यका कैसा महान् फल होगा? ॥ ६७½ ॥

न पातकं ते नृपते गोत्रहिंसाकृतं भुवि ॥ ६८ ॥
विनापि माधवो यज्ञं पावयिष्यति मे मतिः।

नरेश्वर! इस पृथ्वीपर गोत्रहिंसाजनित पाप तो आपको लगा ही नहीं है, (यदि लगा हुआ मान भी लिया जाय तो) मेरी ऐसी धारणा है कि यज्ञानुष्ठान न करनेपर भी श्रीकृष्ण ही आपको पवित्र कर देंगे ॥ ६८½ ॥

पूर्वमेव हि राजेन्द्र युद्धकाल उपस्थिते ॥ ६९ ॥
नोदिताः स्मो वयं तेन कृष्णेनामितबुद्धिना।
कुर्वन्तु युद्धं सततमिति ते विस्मृतं कथम् ॥ ७० ॥

राजेन्द्र! उन अगाधबुद्धि श्रीकृष्णने युद्धका अवसर उपस्थित होनेपर पहले ही हमें प्रेरित किया था कि तुमलोग निरन्तर युद्ध करो * उनकी इस बातको आप भूल कैसे गये? ॥ ६९–७० ॥

राजसूयाश्वमेधानां पुण्यं पावयितुं जनम्।
न समर्थं महाराज विना तं यज्ञनायकम् ॥ ७१ ॥

महाराज! श्रीकृष्ण तो यज्ञोंके अधीश्वर हैं, अतः उनके बिना तो राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका पुण्यफल भी मनुष्यको पवित्र करनेमें समर्थ नहीं हो सकता ॥ ७१ ॥

व्यासं पृच्छस्व राजेन्द्र क्रतुयोग्यं तुरङ्गमम्।
कुत्रापि वर्तमानं मे शंसन्वेष महामुनिः ॥ ७२ ॥

राजेन्द्र! अश्वमेधयज्ञमें छोड़े जाने योग्य अश्वके विषयमें आप व्यासजीसे पूछिये। वे महामुनि, वह अश्व कहीं भी वर्तमान हो, मुझे सूचित करनेकी कृपा करें ॥ ७२ ॥

जैमिनिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य भीमस्यामिततेजसः।
प्रत्युवाच पुनर्व्यासो धर्मराजमिदं वचः ॥ ७३ ॥

---

* देखिये गीता २। ५८; २। ३१ से ३८ तक; ८। ७; ११। ३३-३४।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! अमित तेजस्वी भीमसेनके इस कथनको सुनकर व्यासजीने धर्मराज युधिष्ठिरके सामने भीमसेनसे पुनः निम्नाङ्कित वचन कहना आरम्भ किया ॥ ७३ ॥

व्यास उवाच

धन्योऽसि वीर भद्रं ते रुचिरं तव भाषितम् ।
हयस्तु विद्यते दूरे पुरीं भद्रावतीं प्रति ॥ ७४ ॥

व्यासजीने कहा—वीर ! तुम्हारा कल्याण हो ! तुम धन्य हो ! तुमने तो बड़ी सुन्दर बात कही । अश्वमेधयज्ञके योग्य अश्व तो यहाँसे बहुत दूर भद्रावतीपुरीमें विद्यमान है ॥ ७४ ॥

यौवनाश्वेन वीरेण रक्ष्यमाणो दिने दिने ।
अक्षौहिणीभिर्दशभिः पाल्यते धर्मनन्दन ॥ ७५ ॥

धर्मनन्दन ! वह अश्व वीर यौवनाश्वद्वारा सुरक्षित है । दस अक्षौहिणी सेनाएँ प्रतिदिन उसकी रखवाली करती हैं ॥

पवनेनापि सम्पर्को लभ्यते नास्य वाजिनः ।
मानवस्य वराकस्य संख्या का ग्रहणे नृप ॥ ७६ ॥

राजन् ! उस अश्वके पास तो वायुदेव भी नहीं फटक सकते, फिर बेचारे मनुष्यकी क्या गणना है ? जो उसे पकड़ सके ॥ ७६ ॥

कृपणेन यथा वित्तं पाल्यते तुरगस्तथा ।
राजा रक्षापरो नित्यं बलात् तं कः समानयेत् ।
तुरङ्गं यज्ञसिद्ध्यर्थं धर्मराजस्य पाण्डव ॥ ७७ ॥

जैसे कृपण मनुष्य अपने धनकी रक्षा करता है, उसी प्रकार उस अश्वकी रखवाली होती है । वह राजा सदा उस अश्वकी रक्षामें तत्पर रहता है । पाण्डुनन्दन ! ऐसी दशामें ऐसा कौन वीर है, जो धर्मराज युधिष्ठिरके यज्ञकी सिद्धिके लिये बलपूर्वक उस अश्वको ले आवे ? ॥ ७७ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि यज्ञप्रारम्भो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें यज्ञका प्रारम्भविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

भीमसेनकी अश्व लानेके लिये दृढ़ प्रतिज्ञा, भीमसेनके साथ वृषकेतु और मेघवर्णकी बातचीत, युधिष्ठिरका अश्वमेध यज्ञके लिये चिन्तित होकर भाइयोंसे पूछना, भीमसेनका उत्तर, युधिष्ठिरके स्मरण करनेपर श्रीकृष्णका आगमन और युधिष्ठिरके साथ उनका वार्तालाप

जैमिनिरुवाच

ततोऽब्रवीद् भीमसेनः प्रहसन्निव भारत ।
अहं हयं तं तु बलादानयिष्यामि मारिष ॥ १ ॥
एकाकी तत्र यास्यामि जित्वा तं बलिनं नृपम् ।
ससैन्यं यातु ते राजन् संशयः सुमहानपि ॥ २ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—भारत ! तदनन्तर भीमसेन हँसते हुए-से कहने लगे—'आर्य ! मैं अकेला ही भद्रावती-पुरीको जाऊँगा और सेनासहित उस बलवान् राजा यौवनाश्वको पराजित करके बलपूर्वक उस अश्वको ले आऊँगा; अतः राजन् ! इस विषयमें आपके मनमें जो बड़ा भारी संदेह हो, वह भी दूर हो जाना चाहिये ॥ १-२ ॥

वासुदेवं चिन्तयानो नरः कर्म करोति यः ।
सर्वार्थसिद्धिं लभते सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ३ ॥

'जो मनुष्य वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करके कार्य आरम्भ करता है, उसके सारे प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं, यह मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ ॥ ३ ॥

वासुदेवमनादृत्य तपोयज्ञादिकं च यत् ।
निष्फलं जायते सर्वं यथा भाग्यस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥

'श्रीकृष्णका अनादर करके जो तप और यज्ञ आदि कर्म किये जाते हैं, वे भी भाग्यहीन मनुष्यके प्रयत्नकी भाँति निष्फल हो जाते हैं ॥ ४ ॥

नानये तुरगं चाहं गतिं घोरामवाप्नुयाम् ।
ये लोका मातृहन्तॄणां ये चैव पितृघातिनाम् ॥ ५ ॥
ते लोका मम जायेरन् यदि तं नानये हयम् ।

'यदि मैं उस अश्वको न ले आऊँ तो मुझे घोर गतिकी प्राप्ति हो । यदि मैं उस घोड़ेको न ला सकूँ तो माता-पिताकी हत्या करनेवालोंको जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है, वे ही लोक मुझे भी मिलें ॥ ५½ ॥

एककूपोदकग्रामे ये वसन्ति द्विजातयः ॥ ६ ॥
न वेदाध्ययनं यत्र यत्र नो शिवपूजनम् ।
तत्र क्षणं निवसतां लोका ये मम सन्तु ते ॥ ७ ॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं भीमस्तूष्णीं स्थितस्तदा ।

'इतना ही नहीं, जिस ग्राममें एक ही कूपका जल सबके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपयोगमें आता हो, उसमें जो द्विज निवास करते हैं; तथा जहाँ वेदाध्ययन और शिवपूजन न होता हो, वहाँ क्षणमात्र भी जो लोग वास करते हैं, उनके लिये जो लोक नियत हैं, वे ही मेरे लिये भी प्राप्त हों।' ऐसी बात कहकर भीमसेन उस समय चुपचाप खड़े रहे ॥ ६-७½ ॥

युधिष्ठिर उवाच

भीमसेन महाबाहो ग्रहणं तुरगस्य मे ॥ ८ ॥
विषमं भाति हृदये त्वयैकेन वृकोदर।
यौवनाश्वोऽपि बलवान् बलिनस्तस्य सैनिकाः ॥ ९ ॥
एकाकी तत्र गन्तासि चिन्ता तु महती मम।

तब युधिष्ठिर बोले—महाबाहु भीमसेन ! अकेले तुम्हारे द्वारा उस घोड़ेका लाया जाना मेरे मनमें कठिन जान पड़ता है; क्योंकि वृकोदर ! राजा यौवनाश्व स्वयं भी बलवान् है तथा उसके सैनिक भी शूरवीर हैं। इधरसे तुम अकेले ही वहाँ जाओगे, इस बातकी मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है ॥ ८–९½ ॥

जैमिनिरुवाच

धर्मराजस्य तद् वाक्यं श्रुत्वा कर्णात्मजोऽब्रवीत्।
भीमसेन द्वितीयं मां सहायं नय मा चिरम् ॥१०॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! धर्मराज युधिष्ठिरका वह वचन सुनकर कर्णपुत्र वृषकेतुने कहा—'चाचा भीमसेनजी ! आप अपने साथ द्वितीय सहायकके रूपमें मुझे ले चलिये। अब इस कार्यमें विलम्ब नहीं होना चाहिये' ॥१०॥

भीमसेन उवाच

पिता तव हतोऽस्माभिर्यदाप्रभृति पुत्रक।
विलोक्य त्वन्मुखं लज्जा जायते महती हि नः ॥ ११ ॥

भीमसेनने कहा—बेटा ! जबसे हमलोगोंने तुम्हारे पिता कर्णको मार डाला है, तबसे तुम्हारे मुखकी ओर देखकर हमें बड़ी लज्जा होती है (फिर तुम्हें युद्धकार्यमें कैसे लगायें ?) ॥ ११ ॥

वृषकेतुरुवाच

उपकारः कृतः सम्यग् जनको मे रणे हतः।
भवद्भिः क्षात्रधर्मेण कुत्सितं तस्य नाशितम् ॥ १२ ॥
दुर्योधनस्य भृत्योऽसौ यावज्जीवं धरातले।
संजातो धर्मविद्वेषी समलोऽनन्तवर्जितः ॥ १३ ॥

वृषकेतु बोला—चाचाजी ! आपलोगोंने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार युद्धस्थलमें जो मेरे पिताका वध किया है, वह तो उनका सब प्रकारसे उपकार ही किया है; क्योंकि ऐसा करके आपलोगोंने उनके कुत्सित कर्म (पाप) का नाश कर डाला है। वे जीवनपर्यन्त पृथ्वीपर दुर्योधनके भृत्य होकर रहे, धर्मस्वरूप युधिष्ठिरसे द्वेष रखते थे और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे सदा अपनेको अलग ही रखा था, अतः वे पापलिप्त हो गये थे ॥ १२-१३ ॥

क्लिश्यन्ती च सभामध्ये द्रौपदी योषितां वरा।
तेन कर्णेन सा दृष्टा यथा तु विजने सती ॥ १४ ॥

जब स्त्रियोंमें श्रेष्ठ महारानी द्रौपदी कौरव-सभामें कष्ट पा रही थीं, उस समय उन ख्यातनामा कर्णने उनकी ओर उसी प्रकार देखा, मानो वह सती-साध्वीदेवी निर्जन वनमें रो रही हो (उनके उस रोदनका उनपर कोई प्रभाव न पड़ा) ॥ १४ ॥

गोसहस्राणि मत्स्यस्य गृहीतानि मया श्रुतम्।
मत्पित्रा पाण्डवेनापि मोचितानीति चिन्तये ॥ १५ ॥

मैंने सुना है कि मेरे पिता कर्णने मत्स्यराज विराटकी हजारों गौओंका अपहरण कर लिया था, जिन्हें चाचा अर्जुनने छुड़ाया था। अपने पिताके इस कुकृत्यके कारण मैं सदा चिन्तित रहता हूँ ॥ १५ ॥

अत्यन्तमलपूर्णाय कर्णाय युधि पातनम्।
कृतं तु पाण्डवैर्वीरैः शुद्ध्यर्थं दानमुत्तमम् ॥ १६ ॥

शूरवीर पाण्डवोंने युद्धस्थलमें जो घोर पापोंसे भरे हुए कर्णका वध किया, वह मानो उनके द्वारा कर्णकी शुद्धिके लिये उत्तम दान किया गया है ॥ १६ ॥

कश्चिद् गृह्णाति हि करात् काचं वापि वराटिकाम्।
दत्त्वा चिन्तामणिं यद्वदर्जुनेन तथा कृतम् ॥ १७ ॥

जैसे कोई मनुष्य हस्तगत चिन्तामणिको देकर उसके बदले क्षुद्र काच अथवा कौड़ी ले ले, चाचा अर्जुनने भी वैसा ही किया है अर्थात् कर्ण-वधजनित क्षुद्र अपकीर्ति लेकर उन्हें चिन्तामणिस्वरूप स्वर्गलोक प्रदान किया है ॥ १७ ॥

गृहाङ्गणे वर्तमानं कस्यचित् त्वफलं तरुम्।
समुन्मूल्य नयेत् कश्चित् संस्थाप्य सुरपादपम् ॥१८॥
तदापराधः किं तेन ब्रूहि भीम महामते।
भवत्प्रसादात् कर्णोऽसौ प्राप्तवान् भास्करं पदम् ॥१९॥

भीमसेनजी ! आप तो स्वयं ही महान् बुद्धिमान् हैं, बताइये, यदि कोई मनुष्य किसीके घरके आँगनमें लगे हुए एक फलहीन वृक्षको उखाड़ ले जाय और उसकी जगह कल्पवृक्ष लगा दे तो इसमें उसने क्या अपराध किया ? चाचाजी ! आपकी कृपासे ही तो कर्णको सूर्यपदकी प्राप्ति हुई है ॥ १८-१९ ॥

अपकीर्तिस्तु तस्येयं वर्ततेऽद्यापि भूतले।
तामस्मिन् यज्ञकाले ते नाशयिष्यामि पाण्डव ॥ २० ॥

पाण्डुनन्दन ! उनका यह कलंक जो अभीतक भूतलपर वर्तमान है, उसे मैं आपके इस अश्वमेध यज्ञके अवसरपर धो डालूँगा ॥ २० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यौवनाश्वस्य नृपतेर्निर्मथ्य बलसागरम्।
तुरङ्गं भीमसेनस्तु समानयतु सत्वरम् ॥ २१ ॥

इस समय आप राजा यौवनाश्वके सैन्यसमुद्रका मन्थन करके शीघ्र ही उस अश्वको ले आइये ॥ २१ ॥

जैमिनिरुवाच

भीमस्तस्य वचः श्रुत्वा समालिङ्ग्याथ कर्णजम्।
समीपस्थं निजं पौत्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! कर्णपुत्र वृषकेतुकी यह बात सुनकर भीमसेनने उसे छातीसे लगा लिया और फिर समीपमें खड़े हुए अपने पौत्र मेघवर्णसे निम्नाङ्कित वचन कहना आरम्भ किया—॥ २२ ॥

घटोत्कचेन ते पित्रा तारिताः सर्वपाण्डवाः।
स्वपृष्ठं तान् समारोप्य नीता वै गन्धमादनम् ॥ २३ ॥

'वत्स! तेरे पिता घटोत्कचने तो पाण्डवोंको अपनी पीठपर चढ़ाकर गन्धमादन पर्वतपर पहुँचाया था, इस प्रकार उसने सभी पाण्डवोंका संकटसे उद्धार किया था ॥ २३ ॥

तथा त्वं धर्मराजानं वीर पालय पृष्ठतः।
अहं तु कर्णपुत्रेण सहितो हयमानये ॥ २४ ॥

'वीर! उसी प्रकार तू भी मेरे चले जानेके बाद धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षामें तत्पर रहना और मैं कर्णपुत्र वृषकेतुके साथ जाकर उस अश्वको ले आऊँगा ॥ २४ ॥

पार्थेन च त्वया राजा रक्षणीयः प्रयत्नतः।
यावद् गृहीत्वा तुरगं पुनरायामि सत्वरम् ॥ २५ ॥

'जबतक मैं घोड़ेको लेकर पुनः शीघ्र ही लौटकर आऊँ, तबतक तुझे और अर्जुनको प्रयत्नपूर्वक राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करनी चाहिये' ॥ २५ ॥

मेघवर्ण उवाच

तव गात्रात् समुत्पन्नो धीरः स च घटोत्कचः।
पवित्रं तत् कृतं कर्म तेन कश्चात्र विस्मयः ॥ २६ ॥

मेघवर्णने कहा—दादाजी! वे धैर्यशाली मेरे पिता घटोत्कच आपके शरीरसे उत्पन्न हुए थे, अतः उन्होंने यदि वैसा पवित्र कार्य किया तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? ॥ २६ ॥

तावद् रथ्याजलं हीनं यावत् सुरनदीगतम्।
न जायते पुनः प्राप्तं वारि तत् पातकापहम् ॥ २७ ॥

(वर्षाकालमें) गलियोंका जल तभीतक तुच्छ माना जाता है, जबतक कि वह गङ्गाजीमें नहीं मिल जाता है। गङ्गामें पहुँच जानेपर तो पुनः वही जल पापोंका संहार करनेवाला हो जाता है ॥ २७ ॥

सतां सङ्गाच्च दुष्प्रापं किं च नैवास्ति देहिनाम्।
शिला रामपदं प्राप्य किं न पूता पुराभवत् ॥ २८ ॥

सत्पुरुषोंका सङ्ग प्राप्त होनेसे देहधारियोंके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता। क्या पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका स्पर्श पाकर शिलारूपिणी अहल्या पवित्र नहीं हुई थी? (अर्थात् पवित्र हो ही गयी थी) ॥ २८ ॥

पुरीं भद्रावतीं वीर गमिष्यस्यमुना सह।
तत्र मां नय भद्रं ते हयं तमहमानये ॥ २९ ॥

वीर! आपका कल्याण हो। आप इस वृषकेतुके साथ भद्रावतीपुरीको जाना चाहते हैं तो मुझे भी वहाँ ले चलिये। मैं उस घोड़ेको ले आऊँगा ॥ २९ ॥

भवान् युद्धगतस्थो हि युद्धं कर्ता तु कर्णजः।
अहं स्वपृष्ठमारोप्य तुरगं तमिहानये ॥ ३० ॥

क्योंकि जिस समय आप युद्धस्थलमें खड़े होंगे और कर्णपुत्र वृषकेतु युद्ध करनेमें संलग्न रहेंगे, उस समय मैं उस अश्वको अपनी पीठपर लादकर यहाँ ले आऊँगा ॥ ३० ॥

शीघ्रं निर्गच्छ भीमाद्य नमस्कृत्य धराधिपम्।
ध्रुवस्ते विजयः पार्थ भविष्यति महद् यशः ॥ ३१ ॥

दादा भीमसेनजी! भूतलके स्वामी महाराज युधिष्ठिरको नमस्कार करके शीघ्र ही आज प्रस्थान कीजिये। कुन्तीपुत्र! आपकी विजय तो निश्चित ही है, साथ ही आपको महान् यशकी भी प्राप्ति होगी ॥ ३१ ॥

नमस्कारो हरेः पुंसां किं किं न कुरुते बत।
पुत्रमित्रकलत्रार्थराज्यस्वर्गापवर्गदः ॥ ३२ ॥

श्रीहरिके चरणोंमें किया गया प्रणाम पुरुषोंको क्या-क्या नहीं दे सकता? वह उन्हें पुत्र, मित्र, स्त्री, धन, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष भी प्रदान करनेवाला है ॥ ३२ ॥

हरिस्त्वघं ध्वंसयति व्याधीनाधीन् निरस्यति।
धर्मं विवर्धयन् नित्यं प्रयच्छति मनोरथम् ॥ ३३ ॥
किञ्चिन्न दुष्कृतं पार्थ हरिं प्रणमतां नृणाम्।

श्रीहरि पापोंका नाश कर देते हैं, रोग तथा मानसिक चिन्ताओंको हर लेते हैं और सदा धर्मकी वृद्धि करते हुए सभी मनोरथोंको पूर्ण कर देते हैं। यहाँतक कि श्रीहरिके चरणोंमें नमस्कार करनेवाले मनुष्योंका थोड़ा-सा भी पाप शेष नहीं रह जाता ॥ ३३½ ॥

भीम उवाच

धन्योऽसि पुत्र कुशलं भाषसे परमं हितम् ॥ ३४ ॥
त्वमागच्छ मया सार्द्धं वृषकेतुरयं तथा।
साहाय्यार्थं महावीर तथा त्वमपि पुत्रक ॥ ३५ ॥
त्रयो वयं गमिष्यामः परराष्ट्रे न संशयः।

भीमसेन बोले—महान् वीर! वत्स! तू धन्य है! तेरा वचन कौशलपूर्ण एवं परम हितकारी है। अतः यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृषकेतु तथा तू भी दोनों सहायताके लिये मेरे साथ चलो। इस प्रकार हम तीनों ही उस राजाके राज्यमें चलेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ३४-३५½ ॥

जैमिनिरुवाच

एतत् तयोः शुभं वाक्यं निशम्य कुरुनन्दनः ॥ ३६ ॥
महता चैव हर्षेण प्रत्युवाच वृकोदरम्।

जैमिनिजी कहते हैं— जनमेजय ! उन दोनोंके इस शुभ वचनको सुनकर कुरुनन्दन युधिष्ठिर परम प्रसन्न हुए और भीमसेनसे बोले—॥ ३६½ ॥

मुनिना भाषितं कार्यं तत् सर्वमवधारितम् ॥ ३७ ॥
क्रियते भवता सर्वमावाभ्यामपि पाण्डव।
रात्रिर्जाता तु महती गन्तुकामस्तपोधनः ॥ ३८ ॥
तस्माद् गच्छामहे सर्वे ऋषिं भावयितुं गृहात्।
व्यासस्ततो निर्जगाम गृहात् सम्पूजितस्तु तैः ॥ ३९ ॥

'पाण्डुनन्दन ! महर्षि व्यासजीने जो कार्य बतलाया है, वह सब तो हमलोगोंने सुन ही लिया और वह तुम्हारे तथा हमलोगोंके द्वारा भी सम्पन्न किया ही जायगा । परंतु इस समय बहुत अधिक रात्रि बीत चुकी है, जिससे तपोधन व्यासजी जानेके लिये उद्यत हैं । इसलिये हम सबको उन महर्षिका सत्कार करनेके लिये घरसे चलना चाहिये । तदनन्तर व्यासजी पाण्डवोंद्वारा भलीभाँति पूजित एवं प्रशंसित होकर राजमहलसे चले गये ॥ ३७–३९ ॥

गते व्यासे धर्मराजः पुनश्चिन्तापरोऽभवत्।
कं च पृच्छामि सुहृदं कथं वित्तसमागमः ॥ ४० ॥
भ्रातृभिः सहितो रात्रौ दुःखितो वाक्यमब्रवीत्।

व्यासजीके चले जानेपर उस रातमें भाइयोंसहित बैठे हुए धर्मराज युधिष्ठिर पुनः चिन्तामग्न हो विचार करने लगे कि 'किस प्रकार मुझे धनकी प्राप्ति हो सकती है, इसके लिये मैं अपने किस हितैषी मित्रसे परामर्श करूँ ?' इसी चिन्तासे दुखी होकर कहने लगे ॥ ४०½ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथं हयस्यानयनं कथं यज्ञक्रिया भवेत् ॥ ४१ ॥
सर्वास्वापत्सु नः पाति सर्वदा मधुसूदनः।
स दूरे देवकीपुत्रः को हितं मे करिष्यति ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिर बोले—भाइयो ! किस प्रकार उस अश्वका लाया जाना तथा यज्ञकार्यका सम्पन्न होना सम्भव हो सकता है; क्योंकि सभी आपत्तियोंमें मधुसूदन श्रीकृष्ण ही सदा हमलोगोंकी रक्षा करते आये हैं, किंतु इस समय वे देवकी-नन्दन हमसे दूर हैं। ऐसी स्थितिमें कौन हमारा हित करेगा ? ॥

हा निमग्नोऽस्मि गोविन्द गोत्रहिंसार्णवेऽप्लवे।
कथं यज्ञं करिष्यामि त्वं चेत् त्राता न जायसे ॥ ४३ ॥

'हा गोविन्द ! मैं इस ज्ञातिवधरूपी हिंसाके समुद्रमें, जिसे पार करनेके लिये कोई नौका (सहारा) भी नहीं है, डूब गया हूँ । यदि आप मेरे रक्षक नहीं होंगे तो किस प्रकार मैं इस यज्ञको पूर्ण कर सकूँगा ? ॥ ४३ ॥

यथा लज्जार्णवे मग्ना द्रौपदी तारिता त्वया।
तथा तारय मामस्माद् वृजिनान्मधुसूदन ॥ ४४ ॥

'मधुसूदन ! जिस प्रकार आपने लज्जाके अगाध सागरमें डूबती हुई द्रौपदीको उबारा था, उसी प्रकार मेरा भी इस संकटसे उद्धार कीजिये ॥ ४४ ॥

एह्येहि कृष्ण गोविन्द दामोदर दयार्णव।
त्वं चेत् त्राता न चास्माकं तर्हि ह्येष विधिश्च्युतः॥ ४५॥

'श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! आइये, आइये । दयासागर दामोदर ! यदि आप हमारे रक्षक नहीं होंगे तो यह यज्ञविधि भ्रष्ट हो जायगी' ॥ ४५ ॥

जैमिनिरुवाच

एतावदुक्त्वा वचनं पुनः कृष्णकथामृतम्।
यावत् स्मरति गोविन्दं तावद् द्वारे समागतः ॥ ४६ ॥
स्वयं स कृष्णो भगवान् सर्वव्यापी रमापतिः।
अब्रवीच्च प्रतीहारं मां निवेदय भूपतेः ॥ ४७ ॥
समयेनैव राजानो द्रष्टव्या विदुषां मतम्।
तत् केशववचः श्रुत्वा द्वारपो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४८ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! इतनी बात कहकर धर्मराज युधिष्ठिर श्रीकृष्णकी अमृतमयी कथाओंके साथ ज्यों ही गोविन्दका चिन्तन करने लगे, त्यों ही वे सर्वव्यापी लक्ष्मी-पति भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही राजद्वारपर आ पहुँचे और द्वारपालसे बोले—'राजा युधिष्ठिरको मेरे आनेकी सूचना दे दो; क्योंकि राजाओंद्वारा निश्चत किये हुए समयके अनुसार उनसे मिलना चाहिये, ऐसा विद्वानोंका मत है ।' श्रीकृष्णके उस वचनको सुनकर द्वारपालने उत्तर दिया ॥ ४६–४८ ॥

प्रतीहार उवाच

सर्वदा तव गोविन्द समयो धर्मनन्दने।
कथितो धर्मराजेन ममाग्रे समयस्तव।
परापवादनिरताः परद्रव्यापहारिणः ॥ ४९ ॥
परस्त्रीकामुका यत्र तत्र नावसरस्तव।
नायं परद्रव्यरतो नापवादी न कामुकः ॥ ५० ॥

द्वारपाल बोला—गोविन्द ! धर्मनन्दन युधिष्ठिरके पास आपके लिये सदा ही समय है; क्योंकि धर्मराजने मुझसे आपके समयके विषयमें ऐसा कहा था कि 'जहाँ परायी निन्दा करनेवाले, दूसरेका धन हड़प लेनेवाले तथा परस्त्री-लम्पट लोग निवास करते हैं, वहाँ आपके जानेका अवसर नहीं होता' परंतु ये हमारे महाराज तो न परद्रव्यापहारी हैं, न परनिन्दक अथवा कामी हैं ॥ ४९-५० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्माद् विलोकय नृपं कुरु चास्य मनोरथम्।
अर्जुनं पुरतः कृत्वा भीमसेनसमन्वितः॥ ५१॥
त्वां चिन्तयति गोविन्द तस्याशां परिपूरय।

इसलिये आप महाराजसे मिलिये और उनका मनोरथ पूर्ण कीजिये। इस समय वे अर्जुनको आगे करके भीमसेनके साथ बैठे हुए आपका ही ध्यान कर रहे हैं। गोविन्द! आप उनकी आशा परिपूर्ण कीजिये॥ ५१½॥

जैमिनिरुवाच

एवं तु कथ्यमानं तं प्रत्युवाच जनार्दनः॥ ५२॥
राजानं याहि भद्रं ते शासनान्मम सत्वरम्।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तब इस प्रकार कहनेवाले उस द्वारपालसे जनार्दन श्रीकृष्णने कहा—'द्वारपाल! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी आज्ञासे शीघ्र ही राजाके पास जाओ'॥ ५२½॥

इत्युक्तो वासुदेवेन त्वरितो धर्मनन्दनम्॥ ५३॥
प्रत्युवाच हसन् वाग्मी गत्वा कृष्णं न्यवेदयत्।
कृष्णश्चैवागतो द्वारि प्रवेशं कर्तुमिच्छति।

वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर वचन-रचनामें निपुण वह द्वारपाल तुरंत ही हँसते हुए धर्मनन्दन युधिष्ठिरके पास पहुँचा और उनसे श्रीकृष्णके आगमनकी सूचना देता हुआ बोला—'महाराज! श्रीकृष्ण राजद्वारपर आये हुए हैं और भीतर प्रवेश करना चाहते हैं'॥ ५३½॥

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य धर्मराजस्त्वरान्वितः॥५४॥
विहाय चासनं भीमं प्रत्युवाच महामतिः।

द्वारपालका यह कथन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर शीघ्रतापूर्वक अपने आसनसे उठ खड़े हुए और उन महाप्राज्ञने भीमसेनसे कहा॥ ५४½॥

युधिष्ठिर उवाच

भीम ब्रूते प्रतीहारः कृष्णमत्र समागतम्॥ ५५॥
अर्धरात्रे मत्प्रियार्थं मखनिष्पत्तयेऽथवा।
त्वमायाहि मया सार्धं यामि यत्र स मे प्रियः॥ ५६॥

युधिष्ठिर बोले—भीमसेन! द्वारपाल कह रहा है कि 'राजद्वारपर श्रीकृष्ण पधारे हुए हैं।' इस आधी रातके समय उनका आगमन अवश्य ही मेरा प्रिय कार्य सम्पादन करनेके लिये अथवा अश्वमेध यज्ञको निष्पन्न करनेके निमित्त ही हुआ है। अतः जहाँ वे मेरे प्यारे श्रीकृष्ण हैं, मैं वहीं चल रहा हूँ, तुम भी मेरे साथ आओ॥ ५५-५६॥

निर्ययौ धर्मराजोऽथ भ्रातृभिस्तं हरिं प्रति।
तावत् तेनापि हरिणा शिरसा स नमस्कृतः॥ ५७॥
समुत्थाप्य कराभ्यां तं मूर्ध्नि चाघ्राय पाण्डवः।
समालिङ्ग्य स्थितः कृष्णं नेत्राम्भः शिरसि क्षिपन्॥५८॥

धर्मराज युधिष्ठिर भाइयोंसहित ज्यों ही श्रीकृष्णके पास पहुँचे, त्यों ही उन श्रीहरिने उन्हें सिर झुकाकर नमस्कार किया। तब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने श्रीकृष्णको अपने दोनों हाथोंसे उठाकर उनका मस्तक सूँघा और फिर उनके सिरपर अश्रुजल गिराते हुए वे उन्हें छातीसे लगाकर खड़े हो गये॥ ५८॥

कृष्णबाह्वन्तरे लीनः स तद्दोरन्तरे हरिः।
भीमार्जुनौ हरिपदे संलग्नौ पुरतो यमौ॥ ५९॥

उस समय श्रीकृष्णकी दोनों बाहोंके बीचमें युधिष्ठिर थे और युधिष्ठिरकी दोनों भुजाओंके बीचमें श्रीकृष्ण। फिर भीमसेन और अर्जुन भी उनसे मिले तथा नकुल, सहदेवने भी आगे आकर श्रीकृष्णके चरणोंमें नमस्कार किया॥ ५९॥

अर्घ्यादिक्रिययाभ्यर्च्य पाण्डवा विस्मयं ययुः।
द्रौपदी तं नमस्कृत्य हसन्ती वाक्यमब्रवीत्॥ ६०॥

तत्पश्चात् पाण्डवोंने अर्घ्य-पाद्य आदि क्रियाद्वारा श्रीकृष्णका सत्कार किया और (उन्हें आधी रातके समय अकस्मात् आया हुआ देखकर) वे परम आश्चर्यमें पड़ गये। उस समय द्रौपदी वहाँ आकर श्रीकृष्णको नमस्कार करके हँसती हुई कहने लगी॥ ६०॥

द्रौपद्युवाच

किमर्थं क्रियते वीरैर्विस्मयः केशवं प्रति।
अर्धरात्रे पुरा प्राप्तो यदा दुर्वाससो भयम्॥ ६१॥
आजगाम भयत्राता युष्मान् स मधुसूदनः।
वस्त्ररूपी सभामध्ये मिषतां वः पुरा हरिः।
भक्तानामनुकम्पार्थं तस्याविर्भाव इष्यते॥ ६२॥

द्रौपदी बोली—इस आधी रातके समय श्रीकृष्णके पधारनेसे आप वीरोंको आश्चर्य क्यों हो रहा है? क्योंकि पहले भी तो ये इस प्रकार हमारे पास आ चुके हैं। जिस समय महर्षि दुर्वासासे भय प्राप्त हुआ था, उस समय भी ये मधुसूदन उस भयसे रक्षा करनेके लिये आपलोगोंके पास आये थे। पहले भी कौरवसभामें आपलोगोंके सामने ही इन श्रीहरिने वस्त्ररूप धारण करके मेरी लाज बचायी थी। इस तरह भक्तोंपर कृपा करनेके हेतु इनका प्राकट्य हुआ करता है॥ ६१-६२॥

यस्मिन् काले न जननी न पिता न च बान्धवाः।
भर्तारो न भवन्तश्च गुरवो न पितामहाः॥ ६३॥
रक्षितुं मां समर्था हि तदा संरक्षितामुना।

जिस (चीरहरणके) समय न माता, न पिता, न भाई-बन्धु, न आपलोगों-जैसे पति, न गुरुजन तथा न पितामह भीष्म आदि भी मेरी रक्षा करनेमें समर्थ हुए, उस समय इन्हीं श्रीकृष्णने मेरी रक्षा की थी॥ ६३½॥

दुर्योधनेन प्रहितो दुर्वासा मुनिपुङ्गवः॥ ६४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

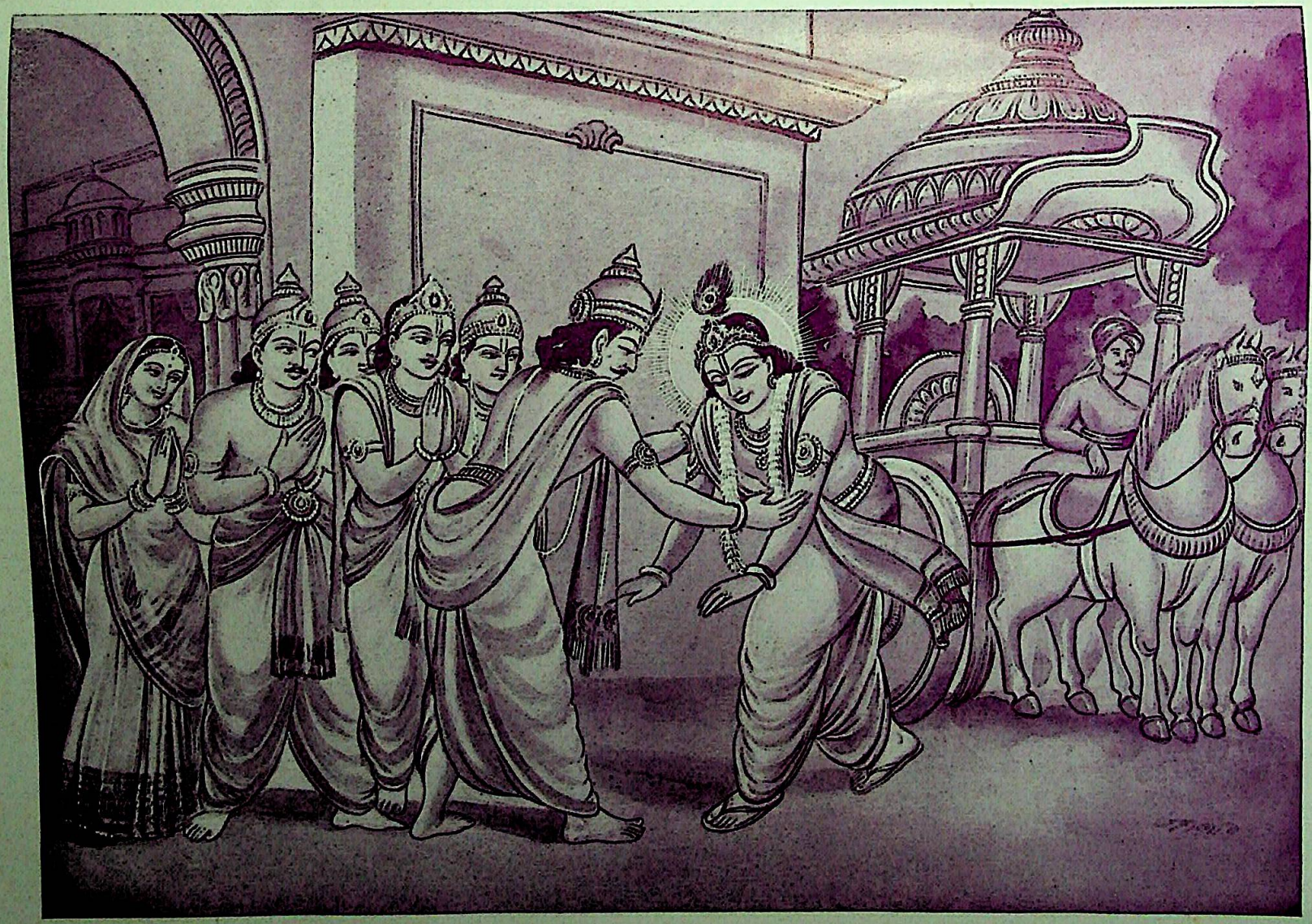

पाण्डवोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका स्वागत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिष्यायुतैः परिवृतो वने निवसतां यदा।
तदा मे मनसा ध्यातो दयासिन्धुर्जनार्दनः ॥ ६५ ॥

जिस समय आपलोग वनमें निवास कर रहे थे, उस समय जब दुर्योधनने दस हजार शिष्योंसहित मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा-को असमयमें आपके पास भेजा था, तब मैंने इन्हीं दयासागर जनार्दनका मनसे स्मरण किया था ॥ ६४-६५ ॥

प्रियामङ्कगतां त्यक्त्वा वायुवेगः समागतः।
स्थाल्याः कोणेऽवशिष्टं तु शाकपत्रं नराधिप ॥ ६६ ॥
भुक्त्वा मुनिगणाः सर्वे नीतास्तृप्तिं कृपालुना।

नरेश्वर! उस समय ये अङ्कशायिनी प्रियतमाको भी छोड़कर वायुके समान वेगसे आ पहुँचे थे और फिर इन कृपालुने बटलोईके कोनेमें चिपके हुए शाकपत्रको खाकर सभी मुनियोंको तृप्त कर दिया था ॥ ६६½ ॥

यदा यदा सतां ग्लानिर्जायते भुवि भारत ॥ ६७ ॥
तदा तदा स्वयं कृष्णस्त्राता भवति संस्मृतः।

भारत! जब-जब भूतलपर सत्पुरुषोंको कष्ट होता है, तब-तब स्मरण किये जानेपर स्वयं श्रीकृष्ण उनके रक्षक होते हैं ॥ ६७½ ॥

जैमिनिरुवाच

इत्थं स्तुतस्तया देव्या तुतोष निषसाद च।
ततः परं धर्मराजो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६८ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! देवी द्रौपदीद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर श्रीकृष्ण परम संतुष्ट होकर आसन-पर विराजमान हुए। तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा ॥ ६८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अधुनैव स्मृतोऽसि त्वं क्लेशितेन मया हरे।
सफलं कार्यमेतन्मे भविष्यति जनार्दन ॥ ६९ ॥

युधिष्ठिर बोले—हरे! दुःखमें पड़कर मैंने अभी-अभी आपका स्मरण किया है। जनार्दन! अब आपके पधारनेसे मेरा यह कार्य अवश्य सफल होगा ॥ ६९ ॥

हयमेधे मतिर्जाता हितं ब्रूहि केशव।
यदि यज्ञं प्रति विभो समर्थोऽस्मि धरातले ॥ ७० ॥

केशव! मेरा विचार अश्वमेध यज्ञ करनेका है। विभो! इस भूतलपर यदि मैं वह यज्ञ करनेमें समर्थ होऊँ तो आप मुझे हितकारक सलाह दीजिये ॥ ७० ॥

श्रीकृष्ण उवाच

त्वया कर्तुं न शक्योऽस्ति समये धर्मनन्दन।
यागोऽयं सहसा भूमौ वीराणां तपतामिह ॥ ७१ ॥

श्रीकृष्णने कहा—धर्मनन्दन! इस भूतलपर प्रतापी शूरवीरोंके मध्य इस समय आप सहसा यह यज्ञ करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ७१ ॥

भीममन्त्रेण राजेन्द्र क्रियते शोभना मतिः।
नायं जानाति बह्वाशी कश्चिन्मन्त्रं तथा मतिम् ॥ ७२ ॥

राजेन्द्र! मालूम होता है भीमसेनकी सम्मतिसे ही आप-को यह सुन्दर बुद्धि उत्पन्न हुई है। अरे! इन भोजनभट्टको तो न किसी मन्त्रकी ही जानकारी है और न इनकी बुद्धि ही उत्तम है ॥ ७२ ॥

स्थूलोदरः परं मन्दो जायते नात्र संशयः।
विवर्णा राक्षसी भार्या विद्यतेऽस्य गृहे सदा ॥ ७३ ॥
तया हृता मतिश्चास्य तस्माद् वेत्ति न पाण्डवः।

जिसका उदर स्थूल होता है, निस्संदेह वह मन्दबुद्धि होता है। तथा इनके महलमें सदा वर्णहीना राक्षसी भार्या हिडिम्बा निवास करती है। उसने इनकी बुद्धि हर ली है। इसीसे भीमसेन कुछ भी नहीं जानते हैं ॥ ७३½ ॥

ईदृशस्याल्पबुद्धेश्च भवान् मन्त्रं करोति चेत् ॥ ७४ ॥
तर्हि जातः परो यागो मन्त्री यस्य वृकोदरः।

अतः यदि आप ऐसे अल्पबुद्धिकी सलाहपर चलेंगे तब तो भीमसेन जिनके मन्त्री हैं, उस आप-जैसे यजमानका यह उत्तम यज्ञ हो चुका ॥ ७४½ ॥

व्यङ्गाङ्गहीना बधिराः कुयोनिषु रताश्च ये ॥ ७५ ॥
तेषां मन्त्रो ह्यसुखदः प्रोक्तः कविभिरेव च।
कामुकानां जडानां च स्त्रीजितानां तथैव च ॥ ७६ ॥

विद्वानोंका कथन है कि जो अधिक अङ्गवाले अथवा अङ्गहीन, बहरे, कुयोनिमें रत रहनेवाले, कामी, मूर्ख तथा स्त्रीके वशीभूत हैं, उनकी सलाह सुखदायिनी नहीं होती ॥

श्वशुरस्य गृहे नित्यं जामाता कर्मकारकः।
तस्यापि न भवेन्मन्त्रः कार्यसिद्धौ कदाचन ॥ ७७ ॥

जो जामाता सदा श्वशुरके घरमें रहकर उसका कर्म करता रहता है, उसकी सम्मति भी कभी कार्यसिद्धि करनेवाली नहीं होती ॥ ७७ ॥

भीमो वेत्ति जरासंधं हिडिम्बं बकमेव च।
साम्प्रतं ये तु संजाताः क्षत्रियाः सुमहाबलाः ॥ ७८ ॥
ये न दृष्टा राजसूये भीमसेनादिभिर्नृपाः।
धर्मिष्ठाः सुमहावीर्या वदान्याश्च जितेन्द्रियाः ॥ ७९ ॥
तान् न जानाति भीमोऽसौ सुबहून् बलदर्पितान्।

साथ ही भीमसेनको तो केवल जरासंध, हिडिम्ब और बकासुरका ही ज्ञान है, परंतु आजकल तो और भी बहुत-से महाबली क्षत्रिय नरेश उत्पन्न हो गये हैं। वे सब धर्मात्मा, महान् पराक्रमी, उदार तथा जितेन्द्रिय हैं। राजसूय यज्ञके अवसरपर तो भीमसेन आदिको उन नरेशोंका दर्शन भी नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुआ होगा, अतः बलके घमंडमें भरे हुए उन बहुत-से राजाओंको ये भीमसेन नहीं जानते हैं ॥ ७८–७९½ ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञातं जयद्रथवधं प्रति ॥ ८० ॥
अनामन्त्र्य मया सार्धं तत् साहसतरं महत् ।
अधुनापि महाराज भीमसेनबलेन च ॥ ८१ ॥
कथं यास्यसि यज्ञस्य पारं पाण्डव भूमिप ।
यज्ञेऽस्मिंश्च महीपाल तत् साहसतरं मम ।
कथं सम्पाल्यते घोटो दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ८२ ॥

पहले भी अर्जुनने जो मुझसे सलाह लिये बिना ही जयद्रथ-वधके लिये प्रतिज्ञा कर ली थी, वह एक बड़े भारी साहसका काम था । महाराज ! इस समय भी आप भीमसेनके बलसे किस प्रकार यज्ञ पूर्ण कर सकेंगे । पाण्डुपुत्र ! भूपाल ! इस यज्ञके विषयमें आपका विचार मुझे अत्यन्त साहसका ही कार्य प्रतीत हो रहा है । भारत ! बताइये, किस प्रकार सभी दिशाओंमें घोड़ेकी रक्षा हो सकेगी ? ॥ ८०–८२ ॥

सर्वत्र परिगन्तासौ देवगन्धर्वमानवान् ।
तेऽपि वीरा विजेतव्या धारयन्ति च ये हयम् ॥ ८३ ॥

क्योंकि वह अश्व देवता, गन्धर्व और मनुष्योंके लोकोंमें सभी जगह परिभ्रमण करेगा और जो वीर उसे पकड़ लेंगे, उन्हें भी जीतना पड़ेगा ॥ ८३ ॥

असिपत्रव्रतं कार्यं प्रथमं दीक्षितेन हि ।
पुरा रामेण रक्षार्थं तुरगस्य महाबलः ॥ ८४ ॥
नियुक्तो भरतो वीरो बद्धः स च हयान्वितः ।
वीरेण सुरथेनैव पुरीं शुक्तिमतीं प्रति ॥ ८५ ॥
पश्चात् स राघवेणापि मोचितः पौरुषेण सः ।

साथ ही जो अश्वमेध यज्ञके लिये दीक्षित होता है, उसे पहले असिपत्रव्रतका पालन करना चाहिये । पूर्वकालमें भी श्रीरामचन्द्रजीने अपने अश्वमेध यज्ञके अश्वकी रक्षाके लिये महाबली भरतको नियुक्त किया था; परंतु शुक्तिमतीपुरीमें पहुँचनेपर वीरवर राजा सुरथने घोड़ेसहित उन भरतको बाँध लिया था । फिर पीछे रामचन्द्रजीने ही अपने पुरुषार्थसे उन्हें उस बन्धनसे मुक्त किया था ॥ ८४–८५½ ॥

हयं ते पाण्डवः पार्थः पालयिष्यति मत्सखा ॥ ८६ ॥
कस्त्वामत्र स्थितं ज्ञाता कस्तु मोचयितार्जुनम् ।
गृहीतं तत्र केनापि वीरेण हयरक्षकम् ।
एष मे संशयस्तीव्रो जायते धर्मनन्दन ॥ ८७ ॥

धर्मनन्दन ! जब मेरे प्रिय सखा पाण्डुपुत्र अर्जुन आपके अश्वकी रक्षामें नियुक्त होकर चले जायँगे और यदि कहीं किसी वीरने उन अश्वरक्षकको पकड़ लिया तो ऐसी दशामें कौन वीर यहाँ आपकी रक्षा करेगा और कौन अर्जुनको छुड़ा सकेगा । मेरे मनमें यह बड़ा भारी संदेह उत्पन्न हो रहा है ।

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि श्रीकृष्णोक्तिश्रवणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें श्रीकृष्णके वचनका श्रवणनामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

भीमसेनका श्रीकृष्णकी बातोंका उत्तर देते हुए उनके गुणोंका वर्णन, श्रीकृष्णकी प्रसन्नता, भीमसेनका वृषकेतु और मेघवर्णके साथ भद्रावतीपुरीमें पहुँचकर वहाँकी शोभा देखना और अश्वकी प्रतीक्षामें पर्वतपर स्थित होना

जैमिनिरुवाच

वासुदेवस्य वाक्यानि श्रुत्वा भीमोऽब्रवीद् वचः ।
मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन्निव केशवम् ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णके वचनोंको सुनकर भीमसेन हँसने लगे और फिर वे मेघके समान गम्भीर वाणीमें उन केशवसे बोले ॥ १ ॥

भीम उवाच

रम्योऽयं समयः श्लाघ्यः सहसा वीरपूजितः ।
धर्मराजेनैव कृष्ण कर्तुं शक्यो महाक्रतुः ॥ २ ॥

भीमसेनने कहा—श्रीकृष्ण ! यह बड़ा रमणीय एवं स्पृहणीय समय है । इस समय धर्मराज युधिष्ठिर वीरोंद्वारा प्रशंसित उस महान् यज्ञ अश्वमेधका अनुष्ठान करनेमें पूर्णतः समर्थ हैं ॥ २ ॥

प्रत्युत्तरं मया दत्तं त्वां विचिन्त्य जनार्दन ।
सत्यं स्थूलोदरादेव जायन्ते मतिवर्जिताः ॥ ३ ॥
त्वयोदितं च बह्वाशी मतिहीनश्च जायते ।
एतत् सर्वं त्वच्छरीरे मयैव च निरीक्षितम् ॥ ४ ॥

जनार्दन ! आपके महत्त्वका विचार करके ही मैं यह उत्तर दे रहा हूँ । आपने जो यह कहा कि उदरके स्थूल होनेसे लोग बुद्धिहीन हो जाते हैं तथा अधिक भोजन करनेवाला मतिहीन होता है, वह सत्य ही है; परंतु यह सब तो मैंने आपके ही शरीरमें देखा है ॥ ३-४ ॥

तवोदरे विश्वमिदं भाति सर्वं चराचरम् ।
स्थूलोदरः कस्त्वदन्यो बह्वाशी कस्तवाधिकः ॥ ५ ॥
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे सरितः सागरादयः ।
सर्वाधारः त्वमेवैकः किं न माति तवोदरे ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब यह समस्त चराचर विश्व आपके उदरमें ही भासित होता है, तब आपसे अधिक स्थूल पेटवाला दूसरा कौन है? तथा आपसे बढ़कर अधिक भोजन करनेवाला भी और कौन है? क्या ब्रह्मा आदि देवता, सारी नदियाँ, सागर, सबको धारण करनेवाली यह धरणी एवं दिशाएँ आपके उदरमें नहीं समा जाती हैं? ॥ ५-६ ॥

त्वत्तः स्थूलोदरः कश्चिन्न भूतो न भविष्यति।
स भवान् मामकं भोज्यमुदरं च जनार्दन ॥ ७ ॥
शंसँल्लज्जां न चाप्नोषि त्वं वै मां भाषसे मृषा।

जनार्दन! आपसे अधिक स्थूल उदरवाला न कोई हुआ है और न होगा ही। फिर आप मेरे बहुभोजन तथा बढ़े हुए उदरकी बात कहनेमें लज्जाका अनुभव क्यों नहीं करते? आप झूठे ही मुझे बदनाम कर रहे हैं ॥ ७½ ॥

कस्तु जाम्बवतीं भार्यां वानरीं माधवं विना ॥ ८ ॥
कुरुते रुक्मिणीं प्राप्य गुणज्ञः खलु केशवः।
वराहमत्स्यकूर्माणां योनिः प्रियतमा तव ॥ ९ ॥

भला, श्रीकृष्णके अतिरिक्त कौन ऐसा पुरुष होगा, जो रुक्मिणी-सी स्त्रीको पत्नीरूपमें पाकर रीछ या वानर जातिकी कन्या (जाम्बवती)को अपनी भार्या बनायेगा? ऐसा तो गुणज्ञ केशव ही कर सकते हैं; आपको ही सूकर, मीन और कच्छपकी योनियाँ अत्यन्त प्यारी हैं ॥ ८-९ ॥

वामनस्त्वं पुरा जातस्तस्माद् वक्रं प्रभाषसे।
लज्जाश्रयस्ते सततं कामः पुत्रपदं गतः ॥ १० ॥

पूर्वकालमें आप वामनरूपसे अवतीर्ण हुए थे; इसीलिये ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी बातें कर रहे हैं। कामदेव, जो सर्वदा लज्जाका स्थान है, वह आपका पुत्र होकर पैदा हुआ है ॥ १० ॥

स्त्रीजितो न त्वदन्योऽस्ति देवानां त्वं महातरुम्।
पारिजातं समुत्पाट्य स्त्रीनिमित्तमिहानयत् ॥ ११ ॥

आप अपनी भार्या सत्यभामाके लिये देवताओंके महान् वृक्ष पारिजातको उखाड़कर देवलोकसे भूतलपर उठा लाये, अतः आपसे बढ़कर स्त्रीका दास दूसरा कोई नहीं है ॥

क्षीराब्धौ सततं वासः श्वशुरस्य गृहे तव।
एते रम्यगुणाः प्रोक्ता बहवोऽन्येऽपि तैरलम् ॥ १२ ॥

जो आपके श्वशुरका गृह है, उस क्षीरसागरमें आप ही सदा निवास करते हैं। इस प्रकार मैंने आपके इन कुछ ही सुन्दर गुणोंका वर्णन किया है। यों तो आपके दूसरे भी ऐसे बहुत-से गुण हैं; परंतु उनके कहनेसे क्या लाभ? ॥१२॥

कस्माद् दूषयसे यज्ञं भीषयन् वै नराधिपम्।
ये हताः क्षत्रियाः पूर्वं जरासंधमुखा मया ॥ १३ ॥
भवन्तं पुरतः कृत्वा तथैवारीञ्जयाम्यहम्।
बाहुभ्यामुद्धरे चोर्वीं विकिरन् सर्वपर्वतान् ॥ १४ ॥

केशव! जिस प्रकार पहले आपको आगे करके मैंने जरासंध आदि प्रमुख क्षत्रियोंका संहार किया था, उसी तरह इस समय भी मैं शत्रुओंको परास्त कर दूँगा। अपनी भुजाओंसे समस्त पर्वतोंको बिखेरता हुआ मैं इस पृथ्वीको उठा सकता हूँ। ऐसी दशामें आप महाराज युधिष्ठिरको भयभीत करते हुए किसलिये यज्ञमें दोष दिखा रहे हैं ॥

कारयिष्याम्यश्वमेधं नान्यथा नृपचिन्तितम्।
आगमिष्यति मे कृष्णः करिष्यति च मत्प्रियम् ॥ १५ ॥
इत्थं चिन्तितमस्माभिः समागत्यान्यथा कथम्।
करोषि देवकीपुत्र सफलोऽस्तु तवाश्रयः ॥ १६ ॥

देवकीनन्दन! मैंने तो ऐसा सोचा था कि मैं महाराज युधिष्ठिरसे अश्वमेध यज्ञ कराऊँगा; क्योंकि उन नरेशका विचार अन्यथा नहीं हो सकता। तथा उस यज्ञमें मेरे प्यारे श्रीकृष्ण अवश्य पधारेंगे और मेरा प्रिय सम्पादन करेंगे; परंतु यहाँ आ करके भी आप ऐसी विपरीत बातें क्यों कर रहे हैं? केशव! मैंने जो आपका आश्रय लिया है, यह सफल होना चाहिये ॥ १५-१६ ॥

पिपासया पीड्यमानो बहुकालेन चातकः।
मेघस्योदयमुद्रीवः साभिलाषं निरीक्षते ॥ १७ ॥
तादृशस्य गले वृष्टिं खदिराङ्गारपूरिताम्।
यदि पातयते मेघस्तेन किं क्रियते तदा ॥ १८ ॥

अधिक समयसे प्याससे पीड़ित हुआ चातक चोंच ऊपर उठाकर अभिलाषापूर्वक मेघके उदयकी बाट जोहता रहता है। ऐसे प्रेमी चातकके गलेमें यदि मेघ खैरके अंगारोंसे भरी हुई वृष्टि करता है तो उस समय वह बेचारा चातक क्या कर सकता है? ॥ १७-१८ ॥

पंके मग्नां हि गां त्रातुं प्राप्तो नाथः सुहर्षिता।
धेनुर्भवति गोविन्द स च तां चेन्निमज्जयेत् ॥ १९ ॥
तया कस्यैव पुरतः कथनीयं जनार्दन।
अस्माकमपि सावस्था त्वामाश्रित्यात्र दृश्यते ॥ २० ॥

गोविन्द! कीचड़में फँसी हुई गायका उद्धार करनेके लिये यदि उसका स्वामी आ जाता है तो उसे देखकर गौ परम प्रसन्न हो जाती है, परंतु यदि वही स्वामी उस गौको कीचड़में डुबा दे तो वह बेचारी गौ किसके आगे अपना दुःख निवेदन करे। जनार्दन! आज आपका आश्रय लेकर हमारी भी वही दशा दीख रही है ॥ १९-२० ॥

जैमिनिरुवाच

भीमस्य वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच जनार्दनः।
हर्षेण महता युक्तस्तेजः संवर्द्धयन्निव ॥ २१ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! भीमसेनकी बात सुनकर श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके तेजकी वृद्धि करते हुए-से बोले ॥ २१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीकृष्ण उवाच

धन्योऽसि भीम भद्रं ते दीयतां परिरम्भणम् ।
त्वद्वाक्येनामुना वीर संतुष्टं मम मानसम् ॥ २२ ॥

श्रीकृष्णने कहा—भीमसेन ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम धन्य हो । आओ, मेरे गलेसे लग जाओ । वीर ! तुम्हारे इस वचनसे मेरा चित्त प्रसन्न हो गया है ॥ २२ ॥

एकं पृच्छामि राजानं किमर्थं भयविह्वलः ।
करोति हयमेधं हि घातयित्वा रणे कुरून् ॥ २३ ॥
द्रोणं भीष्मं तथा कर्णं सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।
मन्यते पातकं जातमात्मनस्तु कलेवरे ॥ २४ ॥
प्रददातु च तत् सर्वं मत्करे किल्बिषं नृपः ।
नाशयिष्येऽखिलं पापं पूतस्तिष्ठतु धर्मजः ॥ २५ ॥

परंतु मैं राजा युधिष्ठिरसे एक बात पूछता हूँ कि वे किसलिये भयभीत होकर अश्वमेध यज्ञ करना चाहते हैं ? यदि धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिर संग्राममें कौरवोंका तथा द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कर्ण, सुहृदों, सम्बन्धियों और बान्धवोंका संहार करके अपने शरीरमें पापको प्रविष्ट हुआ मानते हैं तो वे उस सारे पापको मेरे हाथमें सौंपकर पवित्र हो जायँ । मैं इनके सम्पूर्ण पापोंका नाश कर डालूँगा ॥

भीम उवाच

त्वत्करे चार्पितं देव स्वल्पं तद् बहुलं भवेत् ।
वस्तुजातं नृपो वेत्ति न ददाति हि दुष्कृतम् ॥ २६ ॥
यज्ञजं सुकृतं हस्ते तव दास्यति पाण्डवः ।

भीमसेन बोले—देव ! आपके हाथमें यदि कोई थोड़ी-सी वस्तु भी समर्पित की जाय तो वह बढ़कर बहुत अधिक हो जाती है और ये महाराज इस वस्तुस्थितिको जानते हैं; अतः ये पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर आपके हाथमें अपना पाप नहीं दे सकते; परंतु यज्ञानुष्ठानसे प्राप्त हुआ पुण्य ये अवश्य आपको समर्पित कर देंगे ॥ २६½ ॥

अहं तत्र गमिष्यामि तुरगार्थं रमापते ॥ २७ ॥
भवान् रक्षतु राजानं यावदागमनं मम ।
सुरक्षिते नृपे चैव सफलाः सर्वसिद्धयः ॥ २८ ॥
धर्मा भवन्ति देवेश सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।
सुकृतेन विना जीवा न राजन्ते कथंचन ॥ २९ ॥

रमापते ! अब मैं उस अश्वको लानेके लिये भद्रावती पुरीको जाऊँगा और जबतक मैं लौटकर आऊँ, तबतक आप महाराजकी रक्षा करें; क्योंकि राजाके सुरक्षित रहनेपर ही सारी सिद्धियाँ तथा सभी धर्म सफल होते हैं । देवेश ! यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि शुभ कर्मके बिना किसी प्रकार भी जीवोंकी शोभा नहीं होती ॥ २७–२९ ॥

सर्वं सुकृतिजं पुण्यं भवान् गृह्णातु नः करात् ।
फलार्थी नैव राजासौ न चाहं देवकीसुत ॥ ३० ॥

देवकीनन्दन ! फिर भी शुभ कर्मजनित समस्त पुण्य आप हमारे हाथसे ग्रहण करनेकी कृपा करें; क्योंकि न तो इन महाराज युधिष्ठिरको ही फलकी कामना है और न मुझे ही ॥ ३० ॥

हरिं विना न ते लोका वैकुण्ठप्रमुखा हि नः ।
प्रिया भवन्ति सुखदा संगतिश्चास्तु ते सदा ॥ ३१ ॥

हमलोग तो यही चाहते हैं कि आपकी सुखदायिनी संगति सदा प्राप्त होती रहे; क्योंकि आपके बिना तो हम-लोगोंको वैकुण्ठ आदि प्रमुख लोक भी प्रिय नहीं हैं ॥ ३१ ॥

जैमिनिरुवाच

ततो युधिष्ठिरः प्रीतो बभूव जनमेजय ।
बुभुजे कृष्णसहितः सुष्वाप भवने सुखम् ॥ ३२ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर युधिष्ठिर परम प्रसन्न हुए और फिर उन्होंने श्रीकृष्णके साथ भोजन करके राजभवनमें सुखपूर्वक शयन किया ॥ ३२ ॥

प्रभातसमये जाते भीमः कर्णात्मजस्तथा ।
मेघवर्णो महाबाहुस्त्रयस्ते निर्गता मुदा ॥ ३३ ॥
कुन्तीं युधिष्ठिरं कृष्णं नमस्कृत्य तथापरान् ।
ददौ कुन्ती मोदकांश्च पाथेयं पाण्डवाय सा ॥ ३४ ॥

प्रातःकाल होनेपर भीमसेन, कर्णपुत्र वृषकेतु और महाबाहु मेघवर्ण—ये तीनों कुन्ती, युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण तथा अन्यान्य गुरुजनोंको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक भद्रावतीपुरी-के लिये प्रस्थित हुए । उस समय माता कुन्तीने भीमसेनको पाथेयके रूपमें मोदक प्रदान किया ॥ ३३-३४ ॥

जननीकरसंस्पृष्टांस्तृप्तः प्राश्य वृकोदरः ।
मोदकैस्त्वन्यथा तृप्तिर्जायते न कथंचन ॥ ३५ ॥

माताके हाथसे दिये जानेके कारण उन मोदकोंको खाकर भीमसेन तृप्त हो गये, अन्यथा उन्हें लड्डुओंसे किसी प्रकार तृप्ति होती ही न थी ॥ ३५ ॥

तथान्यान् मोदकान् भीमो मेघवर्णकरे ददौ ।
समालिङ्ग्यार्जुनं तत्र चेदं वचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥

तत्पश्चात् शेष मोदकोंको भीमसेनने मेघवर्णके हाथमें दे दिया और फिर वे वहाँ अर्जुनका आलिङ्गन करके इस प्रकार बोले—॥ ३६ ॥

पार्थ पालय राजानं ब्राह्मणान् प्रतिपालय ।
प्राप्तं मां मन्दिरं विद्धि गृहीत्वा तुरगं प्रति ॥ ३७ ॥

पार्थ ! तुम महाराज युधिष्ठिरकी और ब्राह्मणोंकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सब तरहसे रक्षा करना तथा मुझे उस अश्वको लेकर राजमहलको लौटा हुआ ही समझो ॥ ३७ ॥

प्रसन्नं केशवं पश्यन् संतुष्टं मम मानसम् ।
सहायौ चापि हृषितावुद्योगं प्रति पाण्डव ॥ ३८ ॥

'क्योंकि श्रीकृष्णको प्रसन्न देखकर मेरा मन सब तरहसे संतुष्ट हो गया है । पाण्डुनन्दन ! मेरे ये दोनों सहायक भी उस कार्यके प्रति हर्ष प्रकट कर रहे हैं ॥ ३८ ॥

स्मरणाद् वासुदेवस्य लयं गच्छन्त्युपद्रवाः ।
पातकानि यथा पार्थ विद्रवन्ति तथाहिताः ॥ ३९ ॥

'पार्थ ! श्रीकृष्णका स्मरण करनेसे जैसे सारे उपद्रव तथा पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार शत्रु भी भाग खड़े होते हैं ॥ ३९ ॥

यौवनाश्वं सतुरगं प्राप्तं विद्धि ससैनिकम् ।
प्रसादात् केशवस्यास्य संशयो मे न विद्यते ॥ ४० ॥

'इन श्रीकेशवकी कृपासे अश्व तथा सेनासहित राजा यौवनाश्वको यहाँ आया हुआ ही समझो, इसमें मुझे कुछ भी संदेह नहीं है' ॥ ४० ॥

जैमिनिरुवाच

एतावदुक्त्वा वचनं पुरीं भद्रावतीं प्रति ।
ययौ ताभ्यां युतो धीमान् पदातिः प्राङ्मुखस्तदा ॥ ४१ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! उस समय अर्जुनसे इतनी बात कहकर बुद्धिमान् भीमसेन वृषकेतु और मेघवर्णको साथ लेकर पूर्व दिशाकी ओर मुख करके पैदल ही भद्रावतीपुरीको चल दिये ॥ ४१ ॥

लङ्घयित्वा स विषयांस्तृतीयेऽहनि तां पुरीम् ।
प्राप्तः कतिपयैर्वीरैः पुरीं रम्यां कुरूद्वह ॥ ४२ ॥
ददर्श पर्वतारूढो यौवनाश्वेन पालिताम् ।
काननानां सहस्रैस्तु समन्तात् परिवारिताम् ॥ ४३ ॥

कुरुनन्दन ! बहुत-से देशोंको लाँघते हुए वे तीसरे दिन उस पुरीके समीप पहुँचे । वहाँ भीमसेनने पर्वतपर चढ़कर राजा यौवनाश्वद्वारा पालित उस रमणीय पुरीको देखा, जिसकी रक्षामें कुछ वीर नियुक्त थे । वह चारों ओरसे हजारों काननोंसे घिरी हुई थी ॥ ४२–४३ ॥

सम्पूर्णसरसीयुक्तां भूषितां नगरीं शुभाम् ।
यूपैर्न लभ्यते मार्गो होमधूमैर्न दृश्यते ॥ ४४ ॥

उस सुन्दर नगरीकी बावड़ियाँ जलसे परिपूर्ण थीं, जिससे वह और सुशोभित हो रही थी । वहाँ इतने यज्ञ-स्तम्भ थे कि उनके कारण मार्ग मिलना कठिन हो रहा था तथा हवनके धूएँकी अधिकताके कारण वहाँ कुछ सूझता भी न था ॥ ४४ ॥

न बहिः श्रूयते शब्दो वेदघोषैर्धनुःस्वनैः ।
नगर्यास्तोरणै रम्यैः प्रासादैर्मण्डपैर्मठैः ॥ ४५ ॥
सत्रैस्त्रयस्ते संतुष्टाः प्राकारैः परिखादिभिः ।

वहाँ इतनी वेदोंकी ध्वनि तथा धनुषोंके टंकारकी आवाज होती थी कि बाहर कोई शब्द सुनायी ही नहीं पड़ता था । उस नगरीके रमणीय फाटक, प्रासाद, मण्डप, मठ, यज्ञ, परकोटा और खाई आदिको देखकर वे तीनों परम प्रसन्न हुए ॥ ४५½ ॥

ददर्श भीमसेनो वै वनं चैव द्रुमैर्युतम् ॥ ४६ ॥
फलिता यत्र रम्भास्ताः स्वफलैर्भान्ति भूरिशः ।
नम्राः फलातिभारेण सुगुणैः सज्जना इव ॥ ४७ ॥

तत्पश्चात् भीमसेन उस नगरीके समीपस्थ वनको देखने लगे, जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त था । जहाँ केलेके वृक्षोंमें खूब फल लगे हुए थे । वे अपने फलोंसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त भले मालूम पड़ते थे और फलोंके अत्यन्त भारसे वे ऐसे झुक गये थे, जैसे सत्पुरुष अपने सुन्दर गुणोंसे नम्र हो जाते हैं ॥ ४६-४७ ॥

सुवृत्तैः सरला दीर्घा नारिकेलद्रुमाः फलैः ।
दृश्यन्ते बहुला यत्र वंशाः सत्पुरुषैरिव ॥ ४८ ॥

जहाँ बहुत-से सीधे तथा लंबे नारियलके वृक्ष दिखायी पड़ते थे, जो सत्पुरुषोंद्वारा शोभित कुलकी भाँति अपने सुन्दर गोलाकार फलोंसे सुशोभित हो रहे थे ॥ ४८ ॥

रक्षन्ति स्वफलैर्नित्यं नरवक्त्राणि सर्वदा ।
सर्वकार्याणि कुर्वन्ति तत्र वै क्रमुकद्रुमाः ॥ ४९ ॥

उस वनमें उगे हुए सुपारीके वृक्ष अपने फलोंद्वारा सदा मनुष्योंके मुखोंकी रक्षा (अर्थात् मुखशुद्धि) करते थे । इस प्रकार वे वृक्ष सर्वदा उनके सभी सम्भावित कार्य पूर्ण करते थे ॥ ४९ ॥

सकण्टकैः फलैर्नित्यं पनसाः परतृप्तये ।
स्थिताः सर्वाङ्गजैस्तत्र दृष्टा भीमेन भारत ॥ ५० ॥

भारत ! भीमसेनने यह भी देखा कि काँटेदार फलोंसे युक्त कटहलके वृक्ष नित्य दूसरोंको तृप्त करनेके लिये वहाँ खड़े हैं ॥ ५० ॥

अनन्तत्वं गता वृक्षाः खर्जूराणां सहस्रशः ।
फलैः संकुचितैरेव नृणां तापापहारिणः ॥ ५१ ॥

उस वनमें सहस्रों प्रकारके खजूरके वृक्ष थे, जिनकी गणना नहीं हो सकती थी । वे अपने सिकुड़े हुए फलोंसे ही मनुष्योंके तापका अपहरण करनेवाले थे ॥ ५१ ॥

विदीर्णैर्यत्र दाडिम्यः स्वफलैः शुकसंयुतैः ।
बीजपूरैः सरागैस्तैः कुर्वन्ति हि हितं जने ॥ ५२ ॥

उस वनके अनारके वृक्ष अपने फलोंद्वारा जनताका हितसाधन कर रहे थे । वे फल विदीर्ण हो गये थे, जिससे उनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लाल-लाल दाने दीख रहे थे और उन दानोंके लोभसे उनपर शुकपक्षी बैठे हुए थे ॥ ५२ ॥

रसालाः कोकिलैर्लुब्धैः सारंगैश्च शिखण्डिभिः ।
सेव्यन्ते माधवस्येव गुणाः सद्भिर्निरन्तरम् ॥ ५३ ॥

जैसे संतलोग निरन्तर माधवके गुणोंका सेवन करते हैं, उसी तरह वहाँ कोयल, भ्रमर और मयूर मुग्ध होकर आम्र-वृक्षोंका सेवन कर रहे थे ॥ ५३ ॥

पञ्चधैव त्वचात्यन्तां फलानि करमर्दिनाम् ।
प्रयच्छन्ति रुचिं रम्यां नामानीव हरेर्गतिम् ॥ ५४ ॥

वहाँ हरे, सफेद, बैगनी, गुलाबी और काले—इन पाँच प्रकारके छिलकोंसे युक्त करौंदेके फल उसी तरह अत्यन्त सुन्दर रुचि उत्पन्न करते थे, जैसे श्रीहरिके नाम शुभ गति प्रदान करते हैं ॥ ५४ ॥

वहतां जलयन्त्राणामुदकं सरसीगतम् ।
प्रीणाति विविधान् वृक्षानतिथीनातिथेयवत् ॥ ५५ ॥

तालाबके जलको खैंचकर बहानेवाले जलयन्त्रोंका जल नाना प्रकारके वृक्षोंको उसी प्रकार तृप्त करता था, जैसे अतिथि-सत्कारमें कुशल मनुष्य अतिथियोंको (भोजन आदिसे) संतुष्ट करता है ॥ ५५ ॥

बीजपूरकनारङ्गजम्बीरामलकद्रुमाः ।
जम्बूनिम्बकदम्बाश्च वातादाः कोलका वने ॥ ५६ ॥
विंचिणीबदरीशालाः पुष्पिताशोकचम्पकाः ।
नागकेसरपुन्नागा बकुलाः पाटलाः शुभाः ॥ ५७ ॥
चञ्चरीकाः शुका बर्हिसारिकारुतनादिताः ।

उस वनमें बिजौरा नीबू, नारंगी, जँबीरी नीबू, आँवला, जामुन, नीम, कदम्ब, बादाम, बहुवार, इमली, बेर, शाखू, फूले हुए अशोक, चम्पा, नागकेसर, पुन्नाग (जायफल), मौलसिरी और सुन्दर पाटलके वृक्ष शोभा पा रहे थे। वे वृक्ष भ्रमरोंके गुंजार तथा शुक, मयूर और सारिकाओंके कलरवोंसे गूँज रहे थे ॥ ५६-५७½ ॥

सुवर्णकेतकीजातीयूथिकामुद्रादयः ॥ ५८ ॥
शतपत्री सुपत्री च कर्णिकाश्चापि पुष्पिताः ।
विलोक्य भीमः संतुष्टो वनं सुरभिपादपम् ॥ ५९ ॥

वहाँ सुवर्णकेतकी (पीला केवड़ा), चमेली, जूही, मोगरा, शतपत्री (गुलाब), सुपत्री (पीली जीवन्ती) और कनेरके पुष्प भी खिले हुए थे। ऐसे सुगन्धित वृक्षोंसे भरे हुए उस वनको देखकर भीमसेन परम प्रसन्न हुए॥५८-५९॥

वीराय कर्णपुत्राय दर्शयित्वा महद्वनम् ।
नगरीं च सुरम्यां तां वाजिपानं सरः शुभम् ॥ ६० ॥
रत्नालयं रौप्यशिलाबद्धं शीतजलं शिवम् ।
नानासत्त्वसमाकीर्णं केशवस्येव मानसम् ॥ ६१ ॥

तदनन्तर भीमसेनने कर्णपुत्र वीर वृषकेतुको उस महान् वन एवं अत्यन्त रमणीय भद्रावती नगरीको दिखाकर उस सुन्दर सरोवरकी ओर भी लक्ष्य कराया, जिसमें घोड़ोंको जल पिलाया जाता था। उसके तटपर रत्नोंके घर बने थे, उसका घाट चाँदीकी शिलाओंसे बनाया गया था, उसमें सदा शीतल जल भरा रहता था, वह कल्याणकारी सरोवर समस्त प्राणियों-से परिपूर्ण श्रीकृष्णके हृदयकी भाँति नाना प्रकारके जल-जन्तुओंसे व्याप्त था ॥ ६०–६१ ॥

अब्रवीद् वृषकेतुं तं किं कर्त्तव्यं मयाधुना ।
मध्याह्ने तुरगस्यात्र भविष्यति समागमः ॥ ६२ ॥
रक्ष्यमाणः सुबलिभिर्वीरैः संग्रामकोविदैः ।
न मुञ्चन्ति हयं वीराः कृपणाः स्वधनं यथा ॥ ६३ ॥

तत्पश्चात् भीमसेनने वृषकेतुसे कहा कि 'इस समय मुझे क्या करना चाहिये। दोपहरके समय उस अश्वका इस सरो-वरपर आगमन होगा। उस समय युद्धकलामें निपुण बहुत-से बलवान् शूरवीर उसकी रक्षामें नियुक्त रहेंगे। वे वीर उस अश्वको उसी प्रकार नहीं छोड़ते हैं, जैसे कंजूस अपने धनको ॥ ६२–६३ ॥

त्रयो वयं पर्वतेऽस्मिँल्लतावृक्षसमाकुले ।
तावत्तिष्ठामहे सर्वे यावद्धयसमागमः ॥ ६४ ॥

अतः जबतक वह अश्व यहाँ नहीं आता, तबतक हम सब तीनों व्यक्ति लताओं एवं वृक्षोंसे व्याप्त इस पर्वतपर ही खड़े रहें ॥ ६४ ॥

पाल्यमानं च तुरगं ग्रहीष्यामो न संशयः ।
अहमादौ गमिष्यामि रणमध्ये महाबलः ॥ ६५ ॥
मत्पृष्ठपालकौ वीरौ भवन्तौ भवतां प्रभू ।
एवं मन्त्रस्तु सुखदो भविष्यति यशःप्रदः ॥ ६६ ॥

वीरोंद्वारा सुरक्षित रहनेपर भी हमलोग उस अश्वको पकड़ लेंगे, इसमें संदेह नहीं है। उस समय युद्धस्थलमें पहले मैं जाऊँगा, क्योंकि मुझमें बलकी अधिकता है। तथा तुम दोनों सामर्थ्यशाली वीर मेरे पृष्ठभागकी रक्षा करना। यही विचार सुखदायक एवं यश प्रदान करनेवाला होगा ॥ ६५–६६ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि भीमवाक्यं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें भीमसेनका वाक्यनामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्थोऽध्यायः

वृषकेतुद्वारा भीमको प्रोत्साहन, सरोवरमें हाथियों और घोड़ोंके स्नान एवं जलपानका वर्णन, श्यामकर्ण अश्वके लिये भीमकी चिन्ता, उस अश्वका सरोवरतटपर आगमन, मेघवर्णका भीमकी आज्ञा लेकर उस अश्वको हर लाना, देवताओंकी शङ्का और मेघवर्णकी बातसे उनका संतुष्ट होना, मेघवर्णकी विजय, वृषकेतुद्वारा अश्वरक्षक सैनिकोंकी पराजय, सेनासहित राजा नीलध्वजका आगमन, वृषकेतुका उसकी सेनाके साथ स्वयं ही युद्ध करनेके लिये भीमसेनसे आग्रह तथा भीमसेनकी स्वीकृति और वृषकेतु तथा राजा नीलध्वजकी बातचीत

जैमिनिरुवाच

भीमस्य वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच स कर्णजः।
अक्षौहिणीनां दशकं श्रूयते चास्य भूपतेः॥ १॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! भीमसेनकी बात सुनकर कर्णपुत्र वृषकेतुने कहा—'चाचाजी! सुना जाता है कि इस राजा यौवनाश्वके पास दस अक्षौहिणी सेनाएँ हैं॥ १॥

तन्मध्ये हयरक्षार्थमागमिष्यन्ति केचन।
त्वद्बाहुबलमासाद्य न भवन्ति रणे जनाः॥ २॥

'उनमेंसे कुछ लोग उस अश्वकी रक्षाके हेतु यहाँ आयेंगे, परंतु युद्धस्थलमें आपके बाहुबलका सामना पड़नेपर वे जीवित नहीं बचेंगे॥ २॥

गङ्गातटमिवासाद्य पातकानां गणा नृणाम्।
विनाशं चैव गच्छन्ति तथा भीम तवाहिताः॥ ३॥

'भीमसेनजी! जैसे मनुष्योंके पापसमूह गङ्गातटपर पहुँचकर विनष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार आपके शत्रु आपके सामने पड़नेपर जीवित नहीं रह सकते॥ ३॥

कालकूटं विषं तावत् परितापेन दारुणम्।
रुद्रस्य पुरतो नैव यावद् भवति संगतम्॥ ४॥

'कालकूट विष अपने संतापदायक प्रभावसे तभीतक भयंकर होता है, जबतक वह भगवान् रुद्रके सामने नहीं प्राप्त होता॥ ४॥

कामुका विषयैस्तावद् बाध्यन्ते प्राणिनो भुवि।
यावद् वस्तुविचारेण संगता न भवन्ति ते॥ ५॥

'भोगोंकी इच्छा रखनेवाले जीव भूतलपर सांसारिक विषयोंसे तभीतक पीड़ित होते हैं, जबतक कि वे वस्तुके परमार्थ स्वरूपके विचारमें नहीं लग जाते हैं॥ ५॥

गमनागमनं तावद् देहिनामिह जायते।
स्मरणं वासुदेवस्य यावत् तेषां न रोचते॥ ६॥

'प्राणियोंको तभीतक इस संसारमें आवागमनके चक्करमें पड़ना पड़ता है, जबतक कि उन्हें भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण नहीं रुचता है॥ ६॥

पितॄणां बन्धनं तावन्नरके पतनं तथा।
न यावत् कुलजः पुत्रो गयापिण्डप्रदो भवेत्॥ ७॥

'तभीतक पितरोंका बन्धन एवं नरकमें पतन होता है, जबतक कि उनके कुलमें उत्पन्न हुआ पुत्र गयामें पिण्डदान नहीं कर देता है॥ ७॥

धर्मराजनिमित्तं च कृष्णप्रीत्यै वृकोदर।
तुरगग्रहणे नूनं सिद्धिरत्र विलोक्यते॥ ८॥

'वृकोदर! धर्मराज युधिष्ठिरके कार्यके निमित्त तथा श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये इस अश्वके पकड़नेमें हमें अवश्य सिद्धि प्राप्त होगी, ऐसा लक्षण दिखायी देता है॥८॥

एते पश्य गजाः प्राप्ताः समदा मधुपैर्वृताः।
करेणवश्च करभाः कज्जलस्येव पर्वताः॥ ९॥

'चाचाजी! देखिये, जिनके गण्डस्थल भ्रमरोंसे व्याप्त हैं, ऐसे ये बहुत-से मदमत्त गजराज, हथिनियाँ तथा उनके बच्चे आ पहुँचे हैं, जो कज्जलके पर्वत-से दीख रहे हैं॥९॥

जलपानं न कुर्वन्ति निर्मलं कलुषं जलम्।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति महामात्रैरधिष्ठिताः॥ १०॥
प्रीताः प्रेमजलैः स्त्रीणां कामुकाः पुरुषा इव।

'ये जलपान नहीं करते हैं, केवल जलमें गोते लगाते और ऊपरको उठते हैं, अतः सरोवरके निर्मल जलको मटमैला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर रहे हैं। इनके ऊपर महावत बैठे हुए हैं। इन्हें सरोवरके जलसे उसी प्रकार प्रसन्नता प्राप्त हो रही है, जैसे स्त्रियोंके प्रेमरूपी जलसे कामी पुरुषोंको तृप्ति प्राप्त होती है ॥१०½॥

जलेन येन जीवन्ति सरागं कुर्वते च तत् ॥ ११ ॥
सिन्दूरेणातिरागेण स्वकपोलच्युतेन च ।

'जिस जलसे समस्त प्राणी जीवन धारण करते हैं, इसीको ये हाथी अपने गण्डस्थलसे गिरे हुए गहरे लाल रंगवाले सिन्दूरसे रँग दे रहे हैं ॥ ११½ ॥

नागकुम्भान् दानहीनान् मधुपा नलिनीवने ॥ १२ ॥
प्रविष्टास्तान् परित्यज्य मलिनेषु न सौहृदम् ।

'धुल जानेसे मदहीन हुए गजराजोंके कुम्भस्थलोंका परित्याग करके भौंरे कमलिनीके वनमें घुस गये। सच है, मलिन प्राणियोंमें सौहार्द नहीं होता है ॥ १२½ ॥

मृणालानि मरालाश्च गृह्णन्ति कृपयान्विताः ॥ १३ ॥
षट्पदेभ्यः प्रयच्छन्ति भूतसाम्यं गता इव ।
उच्छलन्ति जले मत्स्या धनं प्राप्य यथाधनाः ॥ १४ ॥

'हंस कमल-नालोंको ग्रहण कर रहे हैं और फिर वे समस्त प्राणियोंमें समत्वभावको प्राप्त हुए संतोंकी भाँति कृपा-पूर्वक भ्रमरोंके लिये उन मृणालोंको दे रहे हैं। जैसे निर्धन मनुष्य धन पाकर हर्षसे उछलने लगते हैं, उसी प्रकार इस सरोवरके जलमें मछलियाँ उछल रही हैं ॥ १३–१४ ॥

चक्रवाकाश्चक्रवाक्यः संगताः प्रेमपूरिताः ।
दृश्यन्तेऽस्मिन् हि सरसि भीमसेन महाबल ॥ १५ ॥

'महाबली भीमसेन ! इस सरोवरमें चकई-चकवे प्रेमपूर्ण हृदयसे परस्पर मिलते दिखायी देते हैं ॥ १५ ॥

अतः परं हि तुरगाः समागच्छन्ति सत्वराः ।
गोक्षीरहिमवर्णाश्च रक्ष्यमाणा महारथैः ॥ १६ ॥
रेणुः समुत्थितो भूरि पश्य पाण्डव वाजिभिः ।
वादित्राणां तथा घोषः पताका गगनं गताः ॥ १७ ॥
धूयन्ते च महाबाहो कालजिह्वा यथा स्थिताः ।
यौवनाश्वो नृपः प्राप्तो भविष्यति न संशयः ॥ १८ ॥

'पाण्डुनन्दन ! इसके बाद वह देखिये, गोदुग्ध एवं हिमके समान उज्ज्वल वर्णवाले घोड़े, जो महारथी वीरोंद्वारा सुरक्षित हैं, बड़े वेगसे इधर आ रहे हैं। इन घोड़ोंकी टापोंसे बहुत-सी धूल ऊपरको उठ रही है, बाजोंका शब्द हो रहा है और पताकाएँ आकाशमें इस प्रकार फहरा रही हैं, मानो कालकी जिह्वाएँ लपलपा रही हों। महाबाहो ! इससे सूचित होता है कि राजा यौवनाश्व भी पधारेंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ १६–१८ ॥

वीराणां पश्य धीराणां मण्डलानि सहस्रशः ।
ध्वजाग्रे विद्यते गृध्रः कस्य तं च न विद्महे ॥ १९ ॥

'चाचाजी ! इन धैर्यशाली वीरोंके सहस्रों मण्डलोंकी ओर भी दृष्टिपात कीजिये। इनमेंसे किसकी ध्वजाके अग्र-भागपर गीधका चिह्न विद्यमान है। उसे हमलोग नहीं जानते हैं ॥ १९ ॥

शुको भाति ध्वजस्थोऽपि रोरवीति च दुन्दुभिः ।
एवं हि बहवो यान्ति वीरा रणविशारदाः ॥ २० ॥
एवं विलोक्यते यत्र तत्र वीरसमागमः ।

'किसीकी ध्वजापर तोतेका चिह्न सुशोभित हो रहा है। कहीं दुन्दुभियोंका गम्भीर नाद हो रहा है। इस प्रकार बहुत-से रणबाँकुरे वीर इस सरोवरकी ओर आ रहे हैं। इसी तरह जहाँ-तहाँ वीरोंका समागम दीख रहा है' ॥ २०½ ॥

जैमिनिरुवाच

इत्थं वदति वीरे तु वृषकेतौ महाबले ॥ २१ ॥
तुरगा जलपानार्थं यौवनाश्वस्य मारिष ।
मध्याह्ने तत्र सम्प्राप्ता नानावर्णाः सहस्रशः ॥ २२ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—मारिष ! महाबली वीर वृषकेतु इस प्रकार कह ही रहा था कि राजा यौवनाश्वके अनेक रंगवाले सहस्रों घोड़े दोपहरके समय जल पीनेके लिये उस सरोवरपर आ पहुँचे ॥ २१ २२ ॥

त्रिभिस्त्रिभिस्ते विधृता दशध्रुवकमण्डिताः ।
मन्दुरैर्बलिभिश्चित्रगतयः शिक्षिताश्च ये ॥ २३ ॥

उन घोड़ोंमेंसे प्रत्येकको तीन-तीन साईसोंने पकड़ रखा था। वे दस 'ध्रुवकों' (स्तम्भाकार चिह्नों) से विभूषित थे। बलवान् अश्वशिक्षकोंद्वारा सिखाये जानेके कारण वे विचित्र गतिसे चल रहे थे ॥ २३ ॥

धाराभिः पञ्चभिर्युक्ताश्चलत्प्रोथाः सुकन्धराः ।
मुखेभ्यो निःसरन्तीव दृश्यते खुरसन्ततिः ॥ २४ ॥
द्विजाननेभ्यो हि यथा निर्याति पदपद्धतिः ।

वे अश्व पाँच प्रकारकी धारियों (रेखाओं) से युक्त थे। उनके नथुने फड़क रहे थे तथा उनकी गर्दन बड़ी सुहावनी थी। जैसे ब्राह्मणोंके मुखसे पदावली प्रकट होती है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसी प्रकार उन शीघ्रगामी अश्वोंके मुखोंसे खुरोंकी पङ्क्ति प्रकट होती-सी दीख रही थी ॥ २४½ ॥

मायूरीं तैत्तिरीमौष्ट्रीं कुर्वन्तो गतिमुत्तमाम् ॥ २५ ॥
नाकुलीं गतिमास्थाय समायान्ति महत्सरः ।

उनमेंसे कुछ मोर, तीतर और ऊँटोंकी-सी उत्तम गतिका प्रदर्शन करते हुए चल रहे थे और कुछ नेवलोंकी-सी गतिका आश्रय लेकर उस महान् सरोवरके तटपर आ रहे थे ॥ २५½ ॥

आकण्ठं विनिमग्नास्ते पपुस्तोयं सनिःस्वनम् ॥ २६ ॥
आगता निर्गताश्चान्ये दृष्ट्वा भीमेन भारत ।
वृषकेतुं प्रत्युवाच भीमो वचनमुत्तमम् ॥ २७ ॥

वहाँ कण्ठपर्यन्त जलमें डूबकर वे हिनहिनाते हुए जल पीने लगे । भारत ! भीमसेनने देखा, फिर बहुत-से अश्व वहाँ आये और दूसरे अश्व वहाँसे निकल गये, तब उन्होंने वृषकेतुसे यह उत्तम वचन कहा ॥ २६-२७ ॥

भीम उवाच

प्राप्ता हयाश्च बहवः स हयो नैव वीक्ष्यते ।
यन्निमित्तमिह प्राप्ता वयं तावत् त्रयो जनाः ॥ २८ ॥

भीमसेन बोले—वीर ! घोड़े तो बहुत-से आये; परंतु जिसके लिये हम तीनों यहाँ आये हैं, वह अश्व तो नहीं दीख रहा है ॥ २८ ॥

किं वा नृपगृहे बद्धः स जलं परिपास्यति ।
हरिं विना नैव गतिर्धर्मराजस्य मन्दिरे ॥ २९ ॥
अस्माकं विद्यते तात भवान् जानाति नेतरः ।

क्या वह अश्व राजमहलमें बँधा हुआ ही जल पियेगा ? उस अश्वके बिना तो हमलोगोंका धर्मराज युधिष्ठिरके भवनमें किसी प्रकार प्रवेश ही नहीं हो सकता । तात ! इस बातको तुम्हीं जानते हो, दूसरा कोई नहीं जानता ॥ २९½ ॥

अपुत्राणां यथा लोका भवन्ति न सुखप्रदाः ॥ ३० ॥
अदातॄणां यथा कामा ब्रह्मचर्यवतां यथा ।
बन्धूनां च यथा सङ्गो जितस्त्रीणां विलोक्यते ॥ ३१ ॥
नृपतीनाममन्त्राणां चिरं राज्यं न सुस्थिरम् ।
न यशः पुण्यहीनानां न सुखं परिवादिनाम् ॥ ३२ ॥
न मोक्षो भक्तिहीनानां विष्णोरमिततेजसः ।
वैभवं हि यथा नृणामनाराध्य च शंकरम् ॥ ३३ ॥
तथा हयं विनास्माकं गमनं न भविष्यति ।

बेटा ! जैसे पुत्रहीनोंको कोई भी लोक सुखप्रद नहीं होते, जैसे दान न करनेवालोंकी कामनाएँ सफल नहीं होतीं; जिन्होंने स्त्रीरूपी विषयको जीत लिया है, ऐसे ब्रह्मचारियोंको जिस प्रकार बन्धुओंका संग सुखद नहीं दिखायी देता, जैसे योग्य मन्त्रियोंसे रहित राजाओंका राज्य चिरकालतक स्थिर नहीं रह सकता, जैसे पुण्यहीनोंको यशकी प्राप्ति दुर्लभ है, जैसे निन्दकोंको सुख नहीं मिलता, जैसे अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुकी भक्तिसे हीन पुरुषोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती तथा जैसे भगवान् शंकरकी आराधना बिना मनुष्योंको धन नहीं मिलता, उसी प्रकार उस अश्वके बिना हमलोगोंका हस्तिनापुरमें जाना सम्भव नहीं है ॥ ३०–३३½ ॥

भीमस्य वचनं श्रुत्वा यावद् वदति कर्णजः ॥ ३४ ॥
तावत् स तुरगः प्राप्तो रथिभिः परिवारितः ।
महागजैश्च समदैः सादिभिः पत्तिभिस्तथा ॥ ३५ ॥

भीमसेनकी बात सुनकर कर्णपुत्र वृषकेतु जबतक कुछ कहे, तबतक वह अश्व वहाँ आ पहुँचा । उस समय वह रथियों, मदमत्त गजराजों, घुड़सवारों तथा पैदल सैनिकोंसे घिरा हुआ था ॥ ३४-३५ ॥

चामरैर्वीज्यमानस्तु सबलो बद्धचामरः ।
श्वेतातपत्रैः संछन्नः क्षुद्रघण्टाभिरन्वितः ॥ ३६ ॥

उस बलवान् अश्वको चँवर डुलाये जा रहे थे । उसके मस्तकपर कलँगी तथा गलेमें घुँघुरू बँधे हुए थे । उसपर श्वेत छत्र तना हुआ था ॥ ३६ ॥

चन्दनेन सुगन्धेन कुङ्कुमेनापि चर्चितः ।
तरुणीकरचिह्नानि धारयन् स्वतनौ हयः ॥ ३७ ॥

सुगन्धित चन्दन तथा कुङ्कुमसे उसकी पूजा की गयी थी । उसके शरीरपर तरुणी स्त्रियोंके हाथके छापे (थापे) लगे हुए थे ॥ ३७ ॥

धृतमाल्यो विचित्राङ्गो मालाभिश्च विभूषितः ।
उभाभ्यां संगृहीतश्च जयशब्दैः सुमङ्गलैः ॥ ३८ ॥

उसके गलेमें हार पड़ा था तथा विचित्र अङ्गोंवाला वह अश्व पुष्पमालाओंसे विभूषित था । सुन्दर माङ्गलिक जयजयकार शब्दके साथ दो साईस उसे पकड़े हुए थे ॥ ३८ ॥

कृष्णागुरुमुखैर्धूपैर्धूप्यमानः पुरोगमैः ।
स्पृशते न खुराग्रैश्च धरणीं बहुवल्लभाम् ॥ ३९ ॥

उसके आगे चलनेवाले लोग काले अगुरु आदि उत्तम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धूपोंसे उसके लिये धूप निवेदन करते चलते थे। वह इतनी जल्दी-जल्दी पैर उठा रहा था, मानो बहुत-से पुरुषोंकी वल्लभा बननेवाली इस पृथ्वीका अपने खुरोंके अग्रभागोंसे स्पर्श ही नहीं करना चाहता हो ॥ ३९ ॥

नानावादित्रनादेन वीराणां गर्जितेन च।
हयहेषेण नागानां बृंहितेन बभौ हयः ॥ ४० ॥

अनेक प्रकारके बाजोंके शब्द, वीरोंके गर्जन, घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा हाथियोंके चिग्घाड़नेसे उस अश्वकी विशेष शोभा हो रही थी ॥ ४० ॥

भाविदर्शनपुण्येन श्रीकृष्णस्य न संशयः।
पूज्यते तुरगो नानाधूपैर्दीपैः सुमङ्गलैः ॥ ४१ ॥

निःसंदेह श्रीकृष्णके भावी दर्शनजन्य पुण्यसे ही वह अश्व अनेक प्रकारके धूप-दीप आदि माङ्गलिक द्रव्योंद्वारा पूजित हो रहा था ॥ ४१ ॥

तं विलोक्य तथारूपं रक्षितं सुमहारथैः।
बालस्तद्ग्रहणे बुद्धिं स चक्रे भीमनन्दनः ॥ ४२ ॥
उत्सुकं तं तथाऽऽलोक्य भीमसेनोऽब्रवीत् सुतम्।

इस प्रकार उस अश्वको बड़े-बड़े महारथियोंद्वारा सुरक्षित देखकर भीमसेनको आनन्द देनेवाले मेघवर्णने बालस्वभाव-वश उसे पकड़ लेनेका विचार किया। उसे ऐसा करनेके लिये उत्सुक देखकर भीमसेनने अपने उस पौत्रसे कहा ॥ ४२½ ॥

भीमसेन उवाच

किं चिकीर्षसि वत्स त्वं ब्रूहि सत्यं ममाग्रतः ॥ ४३ ॥

भीमसेन बोले—वत्स! मेरे सामने सच-सच कह दे कि तू क्या करना चाहता है? ॥ ४३ ॥

उवाच भीमं तरसा मेघवर्णोऽथ राक्षसः।

तब राक्षस मेघवर्ण शीघ्रतापूर्वक भीमसेनसे बोला ॥ ४३½ ॥

मेघवर्ण उवाच

त्वयाऽऽज्ञप्तो भीमसेन तुरगं पर्वतोपरि ॥ ४४ ॥
गृहीत्वा वत्सवद् वीर तिष्ठामीति मतिर्मम।
सर्वेषां पश्यतां वीर वीराणां गणना न मे ॥ ४५ ॥

मेघवर्णने कहा—वीरवर दादा भीमसेनजी! मेरा ऐसा विचार है कि यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इन सभी शूरवीरोंके देखते-देखते उस अश्वको बछड़ेकी भाँति पकड़कर इस पर्वतपर ले आऊँ और यहीं खड़ा रहूँ। वीर! मैं इन वीरोंको कुछ नहीं गिनता ॥ ४४-४५ ॥

तं हरिं प्रसमीक्ष्याथ वायुजं समयाचत।
अनुज्ञां देहि मे स्वामिन् यौवनाश्वं सपुत्रकम् ॥ ४६ ॥
बद्ध्वाऽऽनयामि पश्य त्वं वृषकेतुश्च कर्णजः।
अथवा क्षात्रधर्मेण युद्धे जित्वा महारिपुम् ॥ ४७ ॥
तुरङ्गमानयिष्यामि सम्भूतो यद्यहं त्वया।
स्वभृत्ये विद्यमाने किं स्वामी युध्यति मारिष ॥ ४८ ॥

तदनन्तर पुनः उस अश्वकी ओर देखकर मेघवर्ण वायु-नन्दन भीमसेनसे याचना करने लगा—'स्वामिन्! यदि आप मुझे आज्ञा दे दें तो मैं पुत्रोंसहित राजा यौवनाश्वको बाँध-कर यहाँ ले आऊँ और आप तथा कर्णपुत्र वृषकेतु इस दृश्यको देखते रहें। अथवा यदि मैं आपका वंशज हूँ तो क्षात्रधर्मानुसार युद्धस्थलमें उस महान् शत्रुको जीतकर घोड़ेको ले आऊँगा। आर्य! अपने दासके रहते हुए क्या कहीं स्वामी भी युद्ध करता है? ॥ ४६–४८ ॥

आनीयाहं च तुरगं करिष्ये वृक्षसंयुतम्।
एतावदुक्त्वा वचनं प्रययौ राक्षसस्तदा ॥ ४९ ॥

'मैं घोड़ेको लाकर वृक्षसे बाँध दूँगा।' इतनी बात कह-कर वह राक्षस उस समय आगे बढ़ा ॥ ४९ ॥

भूधरात् खं समुत्पत्य मायां कुर्वन् स राक्षसीम्।
अन्धकारस्तदा ह्यासीत् कालमेघ इवोदितः ॥ ५० ॥
स्फुरन्ति विद्युतोऽजस्रं स्फूर्जथुश्च मुहुर्मुहुः।
तन्मध्ये सिंहनादं च स चकार पुनः पुनः ॥ ५१ ॥

वह उस पर्वतसे उछलकर आकाशमें पहुँचा और राक्षसी मायाका विस्तार करने लगा। उस समय वहाँ उमड़े हुए काले मेघकी भाँति घोर अन्धकार छा गया, लगातार बिजली कौंधने लगी और बारंबार वज्रकी गड़गड़ाहटके समान शब्द होने लगा। उसी बीचमें वह राक्षस भी बारंबार सिंहनाद करने लगा ॥ ५०-५१ ॥

व्याकुलाश्च दिशः सर्वा न प्राज्ञायत किंचन।
देवासुरमनुष्याणां महद्भयमुपाविशत् ॥ ५२ ॥

उस समय सारी दिशाएँ व्याकुल हो गयीं। अन्धकारके कारण कुछ सूझ नहीं पड़ता था। देवता, असुर और मनुष्यों-के मनमें महान् भय समा गया ॥ ५२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेघनादस्य रूपेण व्याप्तं तद् व्योममण्डलम्।
विमानानि च सर्वाणि भ्रमन्ति स्म इतस्ततः ॥ ५३ ॥

मेघके समान गर्जना करनेवाले मेघवर्णके रूपसे वह सारा आकाशमण्डल व्याप्त हो गया, जिससे देवताओंके सारे विमान इधर-उधर चक्कर काटने लगे ॥ ५३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवः कश्चिदागत्य सत्वरः।
उवाच शक्रमासीनं सभामध्येऽतिदुःखितः ॥ ५४ ॥

इसी बीचमें किसी देवताने शीघ्रताके साथ आकर सभामें बैठे हुए इन्द्रसे अत्यन्त दुःखपूर्वक निवेदन किया ॥ ५४ ॥

देव उवाच

भोभोः स्वामिन् न जानीषे ह्यात्मनश्च शुभाशुभम्।
दैत्यः कश्चिदिहागत्य कुरुते लोकयातनाम् ॥ ५५ ॥
मायां विकुरुतेऽत्यन्तं लोकक्षयचिकीर्षया।
तं त्वं जहि महाबाहो लोकानां रक्षको ह्यसि ॥ ५६ ॥

देवताने कहा—भो स्वामिन् ! इस समय आपको अपने शुभ और अशुभका कुछ भी ज्ञान नहीं है। कोई दैत्य यहाँ आकर समस्त लोकोंको यातना दे रहा है। वह जगत्का विनाश करनेकी इच्छासे घोर मायाका विस्तार कर रहा है। अतः महाबाहो ! आप उसका वध कर डालिये; क्योंकि आप लोकोंके रक्षक हैं ॥ ५५-५६ ॥

इति श्रुत्वा महेन्द्रोऽसौ रोषात् प्रस्फुरिताधरः।
उवाच सकलान् देवाञ्जानीध्वं कोऽयमागतः ॥ ५७ ॥

उसकी यह बात सुनकर इन्द्रमें रोषका आवेश हो गया, उनके होठ फड़कने लगे और उन्होंने समस्त देवताओंको आज्ञा दी कि 'पता लगाओ, यह कौन आया है ?' ॥ ५७ ॥

समागत्य प्रपश्यन्ति देवा दूरस्थिताश्च तम्।
दूतस्तु तैः समाहूतः पृच्छ गत्वा च को भवान् ॥ ५८ ॥

तब वे देवता उस स्थानपर आये और दूरसे ही खड़े होकर मेघवर्णको देखने लगे। फिर उन्होंने एक दूतको बुलाकर कहा—'तुम उसके पास जाओ और उससे पूछो कि तू कौन है ?' ॥ ५८ ॥

स दूतस्तत्र गत्वा वै पृष्टवान् मेघवर्णकम्।

वह देवदूत मेघवर्णके पास जाकर पूछने लगा ॥ ५८½ ॥

देवदूत उवाच

कस्त्वं वीर समायातः सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥ ५९ ॥
त्वयि दृष्टे महावीर देवानां भयमाविशत्।
दूतोऽहं प्रेषितस्तैस्तु किं तवात्र चिकीर्षितम् ॥ ६० ॥

देवदूत बोला—वीर ! तुम कौन हो ? यह मुझसे सच-सच बतलाओ; क्योंकि महावीर ! तुम्हें देखकर देवगण भयभीत हो गये हैं, अतः उन्होंने मुझ दूतको भेजा है। बताओ, तुम यहाँ क्या करना चाहते हो ? ॥ ५९-६० ॥

मेघवर्ण उवाच

न भेतव्यं सुरैः क्वापि नाम्नाहं मेघवर्णकः।
भीमस्य पौत्रो हैडिम्बिर्यज्ञसाहाय्यकारकः ॥ ६१ ॥
हयं ग्रहीष्ये राज्ञोऽहं यौवनाश्वस्य भोः सुर।
सम्भ्रमस्तु तदर्थं मे धर्मयज्ञार्थसिद्धये ॥ ६२ ॥

मेघवर्णने कहा—देवदूत ! देवताओंको कभी भी मुझसे भय नहीं करना चाहिये; क्योंकि मेरा नाम मेघवर्ण है। मैं भीमसेनका पौत्र और हिडिम्बाकुमार घटोत्कचका पुत्र हूँ तथा यज्ञमें सहायता करनेके लिये आया हूँ। मैं धर्मराज युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञकी सिद्धिके लिये राजा यौवनाश्वके अश्वको ले जाऊँगा, उसीके लिये यह मेरा सारा उद्योग है ॥ ६१-६२ ॥

इति श्रुत्वा स दूतस्तु हर्षनिर्भरमानसः।
इन्द्राय सर्ववृत्तान्तं धर्मराजार्थमुत्तमम् ॥ ६३ ॥
कथयामास हृष्टास्ते देवा इन्द्रादयस्तदा।
अपश्यन् कौतुकं तत्र मेघवर्णस्य संयुगे ॥ ६४ ॥

यह सुनकर देवदूतका मन प्रसन्नतासे भर गया और उसने इन्द्रके पास आकर उनसे धर्मराज युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञके लिये होनेवाले इस सारे उत्तम वृत्तान्तका वर्णन किया। तब वे इन्द्र आदि समस्त देवता प्रसन्न हो वहाँ आकर मेघवर्णके उस युद्धमें कौतुक देखने लगे ॥ ६३-६४ ॥

मेघवर्णोऽपि तं दृष्ट्वा हयं चाम्बरमाश्रितः।
जिहीर्षुराव्रजत् तत्र यत्रासौ यज्ञियो हयः ॥ ६५ ॥

तत्पश्चात् मेघवर्ण भी उस घोड़ेको देखकर उसका अपहरण करनेकी इच्छासे आकाशमार्गसे उस स्थानपर आया, जहाँ वह यज्ञसम्बन्धी अश्व खड़ा था ॥ ६५ ॥

मोहयित्वा तु तान् सर्वान् भूमौ सम्पात्य वायुना।
रज उद्धूय च बलात् सैनिका भयविह्वलाः ॥ ६६ ॥

वहाँ पहुँचकर उसने उन समस्त अश्वरक्षकोंको मोहित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके उन्हें बलपूर्वक भूतलपर गिरा दिया और आँधी चलाकर इतनी धूल उड़ायी कि वे सभी सैनिक भयसे व्याकुल हो गये ॥ ६६ ॥

केचिद् गृहीतशस्त्रास्ते केऽप्यधावन्नितस्ततः।
एवं तु व्याकुलीकृत्य शिलावर्षेण वायुना ॥ ६७ ॥
सिंहनादं प्रकुर्वाणो हरिं तं जगृहे मुदा।

कोई तो अस्त्र-शस्त्र लेकर वहाँ डटे रहे और कुछ सैनिक इधर-उधर भागने लगे। इस तरह आँधी और पत्थरोंकी वर्षाद्वारा सबको व्याकुल करके स्वयं भी सिंहनाद करते हुए मेघवर्णने हर्षपूर्वक उस घोड़ेको पकड़ लिया ॥ ६७½ ॥

खमुत्पतन्तं ददृशुर्नीलमेघाकृतिं जनाः ॥ ६८ ॥
कुण्डलाङ्गदकेयूरमुकुटाद्यैर्विराजितम्।

उस समय लोगोंने नील मेघकी-सी आकृतिवाले मेघवर्णको आकाशमार्गसे जाते हुए देखा। वह कुण्डल, अंगद, केयूर और मुकुट आदि आभूषणोंसे विभूषित था ॥ ६८½ ॥

कोऽयं कोऽयं कुतश्चायं छिन्धि भिन्धीति वादिनः ॥ ६९ ॥
इति जल्पन्ति ते वीरा वीक्षन्तः खं समाश्रितम्।

फिर तो वे शूरवीर योद्धा उसे आकाशमें स्थित देखकर 'यह कौन है ? यह कौन है ? यह कहाँसे आया है ? इसके टुकड़े-टुकड़े कर दो। इसे विदीर्ण कर दो' इस तरह कोलाहल करने लगे ॥ ६९½ ॥

साश्वं व्रजन्तं ते देवाः पुष्पवृष्ट्या सिषेविरे ॥ ७० ॥
हैडिम्बे कृतकृत्योऽसौ धर्मराजोऽनुजैः सह।
त्वादृशो यस्य पौत्रोऽभूद् धर्मसाहाय्यहेतवे ॥ ७१ ॥
इति स्तुत्वा तु तं देवा जग्मुस्ते स्वमथालयम्।
मेघनादोऽपि हंसं तं गृहीत्वा शीघ्रमागतः ॥ ७२ ॥

देवताओंने घोड़ेको लेकर जाते हुए मेघवर्णके ऊपर पुष्पवृष्टि करके उसकी सेवा की और कहा—'हैडिम्बे ! जिसके तुम-जैसा धर्मकार्यमें सहायता देनेवाला पौत्र उत्पन्न हुआ है, वे धर्मराज युधिष्ठिर भाइयोंसहित कृतकृत्य ही हैं।' इस प्रकार मेघवर्णकी प्रशंसा करके वे देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। मेघवर्ण भी उस घोड़ेको लेकर शीघ्र ही अपने स्थानपर लौट आया ॥ ७०–७२ ॥

आकाशस्थं समालोक्य साश्वं तौ हर्षपूरितौ।
सिंहनादं प्रकुर्वन्तौ वीक्षन्तौ च मुहुर्मुहुः ॥ ७३ ॥

अश्वसहित मेघवर्णको आकाशमें स्थित देख भीमसेन और वृषकेतु हर्षसे परिपूर्ण हो गये और उसकी ओर देखते हुए बारंबार सिंहनाद करने लगे ॥ ७३ ॥

अत्रान्तरे महानासीद् गते हंसे रवस्तदा।
यौवनाश्वबले तस्मिन्नन्योन्यं जघ्नुरुद्भटाः ॥ ७४ ॥

इस बीचमें घोड़ेके अपहृत हो जानेपर राजा यौवनाश्वकी सेनामें महान् कोलाहल होने लगा। उस समय उस सेनाके योद्धा एक दूसरेपर प्रहार करने लगे ॥ ७४ ॥

गत्वा ते कथयामासू राज्ञे वृत्तान्तमादितः।
तच्छ्रुत्वा सहसा राजा पुत्रैः सह समागतः ॥ ७५ ॥

फिर उन योद्धाओंने राजधानीमें जाकर राजा यौवनाश्वके सामने आदिसे लेकर सारा वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह सुनाया। उस समाचारको सुनकर राजा यौवनाश्व अपने पुत्रोंके साथ सहसा उस स्थानपर आ पहुँचे ॥ ७५ ॥

गतं हंसं तु तं श्रुत्वा दुःखक्रोधसमन्वितः।
उवाच केन नीतोऽयं हंसो ह्यल्पायुषा मम ॥ ७६ ॥
सदेवानपि नेष्यामि मानवान् यमसादनम्।

उस घोड़ेको अपहृत हुआ सुनकर वे दुःख और क्रोधमें भरकर बोले—'किसकी आयु समाप्त हो चुकी है, जिसने मेरे इस घोड़ेका अपहरण किया। यदि देवता भी उस अश्व चुरानेवाले मनुष्योंका साथ देते हों तो मैं उनके सहित उन सारे मनुष्योंको यमलोकमें भेज दूँगा' ॥ ७६½ ॥

इत्युक्त्वा सहसा राजा क्रोधेन व्याकुलीकृतः ॥ ७७ ॥
आजुहाव रथान् दिव्यान् नाम्ना कालान्तकोपमान्।

ऐसा कहकर राजा यौवनाश्व क्रोधसे व्याकुल हो गये और सहसा अपने उन दिव्य रथियोंका नाम ले-लेकर पुकारने लगे, जो काल एवं यमराजके समान थे ॥ ७७½ ॥

आयातास्ते रथाः शीघ्रं नमस्कृत्य च तं प्रभुम् ॥ ७८ ॥
आदेशो दीयतां स्वामिन् कोऽद्य प्राणैर्वियोज्यताम्।

फिर तो वे रथी शीघ्र ही वहाँ पहुँचे और राजाको नमस्कार करके बोले—'स्वामिन् ! आज्ञा दीजिये। आज किसको प्राणोंसे हीन कर दिया जाय ?' ॥ ७८½ ॥

राजोवाच

वियन्नीतो हरिर्वीराः शीघ्रं धावत मा चिरम् ॥ ७९ ॥

राजा यौवनाश्वने कहा—शूरवीरो ! किसीने आकाश-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मार्गसे घोड़ेका अपहरण कर लिया है, अतः शीघ्र ही दौड़ो, विलम्ब मत करो ॥ ७९ ॥

इत्युक्ताः सहसोत्पत्य सहस्राणां चतुष्टयम् ।
तरसा गगने तं तु रुरुधुर्मुमुचुः शरान् ॥ ८० ॥

ऐसा आदेश पाकर चार हजार दिव्य रथी सहसा वेग-पूर्वक उछलकर आकाशमें पहुँचे । उन्होंने मेघवर्णको चारों ओरसे घेर लिया और उसपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

मेघनादस्तु तान् वीरान् प्रहसन् वाक्यमब्रवीत् ।

तब मेघवर्णने हँसते हुए उन वीरोंसे कहा ॥ ८०½ ॥

मेघनाद उवाच

यमलोके हि गन्तव्यं भवद्भिर्नात्र संशयः ॥ ८१ ॥

मेघवर्ण बोला—वीरो ! निस्संदेह अब आपलोगोंको यमलोकका पथिक होना पड़ेगा ॥ ८१ ॥

इत्युक्त्वा ताञ्जघानाशु तलमुष्टिभिराशुगान् ।
शिलामादाय तान् सर्वान् पोथयामास राक्षसः ॥ ८२ ॥

ऐसा कहकर राक्षस मेघवर्णने वेगपूर्वक धावा करनेवाले उन रथियोंको शीघ्र ही थप्पड़ और मुक्कोंसे मारना आरम्भ किया । फिर बड़ी भारी शिला उठाकर उसके प्रहारसे उन सबको पीस डाला ॥ ८२ ॥

ते हता भीमकर्माणः कायं त्यक्त्वा दिवं गताः ।
शापान्मनुष्यजन्मानः प्राप्तास्ते वै सुरालयम् ॥ ८३ ॥

इस प्रकार मारे गये वे भयंकर कर्म करनेवाले रथी शरीरको त्यागकर स्वर्गलोकको चले गये । वे शापवश मनुष्य-योनिमें उत्पन्न हुए थे । इस समय वे शापमुक्त होकर पुनः देवलोकको प्राप्त हो गये ॥ ८३ ॥

स तान् निर्मथ्य संग्रामे यत्र तौ वृषपाण्डवौ ।
विहायसा तत्र गन्तुं मेघवर्णः प्रचक्रमे ॥ ८४ ॥

जब मेघवर्णने संग्राममें उन वीरोंको मथ डाला, तब वह जहाँ वृषकेतु और भीमसेन थे, वहाँ आकाशमार्गसे जानेके लिये आगे बढ़ा ॥ ८४ ॥

सैनिकाश्च परे राज्ञो युद्धायैव मनो दधुः ।
हाहाकारो महानासीत् संगृहीते हये तदा ॥ ८५ ॥

उस समय राजा यौवनाश्वके दूसरे सैनिकोंने भी युद्धमें ही मन लगाया । घोड़ेके पकड़ लिये जानेके कारण वहाँ महान् हाहाकार मचा हुआ था ॥ ८५ ॥

गृहीतस्तुरगो येन तं गृह्णीतेति वादिनः ।
क्व गतः केन नीतोऽसौ कुतो यास्यति नः पुरः ॥ ८६ ॥

वहाँ लोग कह रहे थे कि 'जिसने घोड़ेको पकड़ लिया है, उसे बाँध लो । वह कहाँ चला गया ? किसने उस घोड़ेका अपहरण किया है ? वह हमारे सामनेसे निकलकर कहाँ जा सकेगा ? ॥ ८६ ॥

नूनमात्मविनाशाय जहार तुरगं हि यः ।
अमर्त्यमपि नेष्यामो मृत्युलोकं न संशयः ॥ ८७ ॥

'जिसने घोड़ेको चुराया है, निश्चय ही उसने अपने विनाशका साधन जुटाया है; क्योंकि यदि वह देवता भी होगा तो भी हम निस्संदेह उसे मृत्युके लोकमें पहुँचा देंगे' ॥

जैमिनिरुवाच

एवं ब्रुवन्तस्ते सर्वे गगने राक्षसेन हि ।
नीयमानं च ददृशुर्हरिं कोपसमन्विताः ॥ ८८ ॥
मुमुचुः शरवर्षाणि रुरुधुस्ते दिशो दश ।
बाणैर्व्याप्य नभः सर्वे पातयन्ति स्म राक्षसम् ॥ ८९ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! इस तरहकी बातें कहते हुए उन्होंने देखा, एक राक्षस आकाशमार्गसे उस अश्वको लिये जा रहा है । फिर तो वे क्रोधमें भरकर उसपर बाणोंकी वर्षा करने लगे । उन्होंने बाणोंसे दसों दिशाओंको भर दिया । वे सारे आकाशमण्डलको बाणोंसे व्याप्त करके उस राक्षसको गिराना चाहते थे ॥ ८८-८९ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु वृषकेतुर्महाबलः ।
उवाच भीमं प्रहसन् प्राप्तोऽसौ मेघवर्णकः ॥ ९० ॥

इसी समय महाबली वृषकेतु हँसता हुआ भीमसेनसे बोला—'चाचाजी ! मेघवर्ण आ पहुँचा' ॥ ९० ॥

वृषकेतुरुवाच

धन्योऽसौ राक्षसो भीम श्लाघ्यं कर्मामुना कृतम् ।
गृहीत्वा तुरगं प्राप्तः स कथं पात्यते परैः ॥ ९१ ॥
एतान् पश्य रणे प्राप्तान् वीरान् रणविशारदान् ।
धारयामि समक्षं ते पातयिष्ये न संशयः ॥ ९२ ॥

(इतना कहकर) वृषकेतुने फिर कहा—भीम-सेनजी ! यह राक्षस मेघवर्ण धन्य है । इसने बड़ा ही प्रशंसनीय कार्य किया है; क्योंकि यह घोड़ेको लेकर आ गया । अब इसे शत्रु कैसे गिरा सकते हैं ? देखिये, रणभूमिमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपस्थित हुए इन सभी युद्धकुशल वीरोंको मैं अभी रोके लेता हूँ। आपके सामने ही मैं इन सबको मार गिराऊँगा—इसमें संदेह नहीं है ॥ ९१-९२ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं गृहीत्वा परमं धनुः।
पदातिः प्रययौ धन्वी भीमसेनस्य पश्यतः ॥ ९३ ॥
पिनाकपाणिर्भगवान् यथा दैत्यगणांस्तथा।

इतनी बात कहकर वृषकेतुने अपना विशाल धनुष हाथमें लिया और भीमसेनके देखते-देखते वह धनुर्धर वीर पैदल ही आगे बढ़ा। ठीक उसी तरह जैसे पिनाकपाणि भगवान् शङ्कर दैत्यगणोंपर आक्रमण करते हैं ॥ ९३½ ॥

अधुना च रणे वीरास्तिष्ठध्वमिति चाब्रवीत् ॥ ९४ ॥
निवर्त्तध्वं वृथा प्राणान् मा त्यजध्वं ममान्तिके।

वहाँ पहुँचकर उसने कहा—'वीरो! अब युद्धस्थलमें डटकर मेरा सामना करो अथवा लौट जाओ। मेरे समीप आकर व्यर्थ अपने प्राणोंको मत गँवाओ' ॥ ९४½ ॥

ते तु श्रुत्वा वचस्तस्य विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ ९५ ॥
कोऽयं कस्यात्मजो वीरः किं वा ज्ञापयति स्वयम्।
अस्माकं पुरतः स्थित्वा समाह्वयति कालवत् ॥ ९६ ॥

वृषकेतुके इस वचनको सुनकर उन वीरोंके नेत्र विस्मयसे खिल उठे और वे कहने लगे—'यह वीर पुरुष कौन है? और किसका पुत्र है? तथा यह अपने-आप क्या आदेश दे रहा है? हमलोगोंके सामने स्थित होकर यह कालकी भाँति हमलोगोंको बुला रहा है' ॥ ९५-९६ ॥

प्रब्रुवन्तो वचश्चैवं पुनस्ते रुरुधुस्तदा।
तं कर्णपुत्रं समरेऽवर्षयंस्ते यथा घनाः ॥ ९७ ॥

उस समय इस प्रकारके वचन कहते हुए उनके सैनिकोंने समरभूमिमें कर्णपुत्र वृषकेतुको चारों ओरसे घेर लिया और फिर वे बादलकी भाँति उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे॥

स तान् बाणगणैर्घोरैः पातयित्वा धरातले।
ननाद सिंहवद् वीरः सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥ ९८ ॥

तब जिसके कंधे सिंहके समान तथा भुजाएँ लंबी-लंबी थीं, वह वीर वृषकेतु अपने भयंकर बाणसमूहोंसे उन वीरोंको धराशायी करके सिंहके समान दहाड़ने लगा ॥ ९८ ॥

महारथाः शरैश्छन्ना न दृश्यन्ते नराधिप।
गजा विदारिता बाणैः पतिता धरणीतले ॥ ९९ ॥

नरेश्वर! उस समय सायकोंसे ढके होनेके कारण बड़े-बड़े विशाल रथोंका दीखना बंद हो गया। बड़े-बड़े गजराज बाणोंसे विदीर्ण करके पृथ्वीपर गिरा दिये गये ॥ ९९ ॥

सादिनः पत्तयः सर्वे विनष्टाः शतशो रणे।
तानि सैन्यानि भग्नानि तस्मात् कर्णात्मजात् तदा॥१००॥
स्मरणाद् वासुदेवस्य पातकानीव सर्वशः।

उस युद्धमें सैकड़ों घुड़सवार तथा समस्त पैदल सैनिक विनष्ट हो गये। उस समय वृषकेतुसे पीड़ित हो वे सारी सेनाएँ उसी प्रकार छिन्न-भिन्न हो गयीं, जैसे भगवान् वासुदेवके स्मरणसे समस्त पातक विलीन हो जाते हैं॥१००½॥

तत्र केचित् पुरीं प्राप्ताः कथयन्ति हि वै क्षयम् ॥१०१॥
हयो नीतः परैः राजन्नयुतं विदलीकृतम्।
वीराणां रणधीराणां यौवनाश्वं नृपं प्रति ॥१०२॥

उनमेंसे कुछ वीर भद्रावतीपुरीमें राजा यौवनाश्वके पास गये और सैन्यविनाशकी सूचना देते हुए कहने लगे—'राजन्! शत्रु हमारे घोड़ेको तो ले ही गये, उन्होंने हमारी सेनाके दस सहस्र रणधीर वीरोंका संहार भी कर डाला' ॥ १०१-१०२ ॥

जैमिनिरुवाच

यौवनाश्वो महाबाहुर्विस्मयं परमं गतः।
तच्छ्रुत्वा भाषितं तेषां महाकोपेन पूरितः ॥१०३॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! सैनिकोंका वह कथन सुनकर महाबाहु राजा यौवनाश्वको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अत्यन्त क्रोधसे भर गये ॥ १०३ ॥

निर्ययौ स्वबलेनैव निखिलेन जनाधिपः।
पप्रच्छ कति ते प्राप्ताः सन्ति वीराः कियद् बलम्॥१०४॥

अब राजा यौवनाश्व अपनी सारी सेनाको साथ लेकर नगरसे बाहर निकले और पूछने लगे—'वीरो! वे कितने योद्धा आये हैं और उनकी सेना कितनी है?' ॥ १०४ ॥

ऊचुस्तेऽपि त्रयो दृष्टाश्चतुर्थो न समागतः।
एकेन गगने राजन् नीतः स तुरगस्तव ॥१०५॥

तब उन सैनिकोंने उत्तर दिया—'राजन्! शत्रुपक्षमें तीन ही योद्धा देखे गये हैं; चौथा कोई नहीं आया है। उनमेंसे एक वीर आपके घोड़ेको लेकर आकाशमें चला गया है॥

यूना परेण सैन्यं तु पातितं चापरः स्थितः।
यथा हावैष्णवः पुत्रः स्वकुलं निरये ऽशुचौ ॥१०६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'दूसरे नवयुवक वीरने आपकी सेनाको उसी तरह धराशायी कर दिया है, जैसे विष्णुभक्तिसे हीन पुत्र अपने कुलको अपवित्र नरकमें गिरा देता है और तीसरा योद्धा अभीतक चुपचाप खड़ा है' ॥ १०६ ॥

यौवनाश्व उवाच

त्रयो देवाश्च ते नूनं गृह्णन्ति तुरगं मम।
न मानुषैः शक्यतेऽसौ हयो नेतुं कथंचन ॥१०७॥

राजा यौवनाश्वने कहा—वीरो ! निश्चय ही वे तीनों देवता हैं, जिन्होंने मेरे घोड़ेको पकड़ लिया है; क्योंकि मनुष्योंमें किसी प्रकार भी उस अश्वको ले जानेकी शक्ति नहीं है ॥ १०७ ॥

नयन्ति मानुषा हंसं यदि ते नैव मानुषाः।
रणयज्ञे हि तान् देवांस्तोषयिष्येऽहमद्य वै ॥१०८॥

यदि मनुष्य ही उस घोड़ेको ले जा रहे हैं तो भी वे मनुष्य नहीं, देवता ही हैं; अतः आज मैं इस युद्धरूपी यज्ञमें उन देवोंको संतुष्ट करूँगा ॥ १०८ ॥

जैमिनिरुवाच

इत्युक्त्वा प्रययौ राजा सैन्येन महता वृतः।
प्रथमं राजशार्दूलस्तं ददर्श वृकोदरम् ॥१०९॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! ऐसा कहकर अपनी विशाल सेनासे घिरे हुए राजा यौवनाश्व आगे बढ़े। उन राजसिंहने पहले-पहल भीमसेनको देखा ॥ १०९ ॥

वृषध्वजं स्थितं युद्धे विलोक्य हृषितोऽभवत्।
धन्योऽसौ बालकश्चैको वीक्षते मां समागतम् ॥११०॥

फिर युद्धस्थलमें वृषकेतुको खड़ा हुआ देखकर वे परम प्रसन्न हुए और कहने लगे—'यह बालक धन्य है, जो अकेला ही युद्धस्थलमें उपस्थित हुए मुझको देख रहा है ॥

न भयं विद्यते चास्य मृगराडिव लक्ष्यते।
मृत्योर्भयं न कुरुते यथा योगी तथा शिशुः ॥१११॥
तस्मात् सर्वे ममैतस्य पश्यन्तु बलमुत्तमम्।

'इसमें लेशमात्र भी भय नहीं है। यह सिंहके सदृश निर्भय दिखायी देता है। जैसे योगीको मृत्युका भय नहीं होता, उसी तरह यह शिशु भी मृत्युसे भय नहीं मान रहा है; अतः सभी योद्धा आज मेरे और इसके उत्तम बलको देखें' ॥

जैमिनिरुवाच

तं तथा भाषमाणं तु ससैन्यं हि समागतम् ॥११२॥
निरीक्ष्य भीमस्तरसा योद्धुं प्रायाद् गदान्वितः।
वारयन् कर्णपुत्रं च पातयन्निव तद्बलम् ॥११३॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! सेनासहित आये हुए राजा यौवनाश्वको इसप्रकार भाषण करते देख भीमसेन हाथमें गदा लेकर युद्धके लिये वेगपूर्वक आगे बढ़े। वे वृषकेतुको मना करके राजा यौवनाश्वकी सेनाको धराशायी करते हुए-से जान पड़ते थे ॥ ११२-११३ ॥

प्रत्युवाच तदा भीमं वृषकेतुर्मुदा वचः।
त्रैलोक्यं यदि सम्प्राप्तं संग्रामे कुन्तिनन्दन ॥११४॥
तदा तव भवेद् युद्धं स्वल्पं सैन्यं च मामकम्।
सेनेयं तु वृता तात प्रथमं पुत्रकेण ते ॥११५॥

उस समय वृषकेतु प्रसन्नतापूर्वक भीमसेनको उत्तर देता हुआ बोला—'कुन्तीनन्दन ! यदि त्रिलोकीके सभी वीर संग्रामभूमिमें उपस्थित हो जायँ तभी आपका उनके साथ युद्ध होना चाहिये। यह थोड़ी-सी सेना तो मेरे हिस्सेमें है। आपके इस पुत्रने पहले ही इस सेनाका वरण कर लिया है॥

मया भीम महायुद्धे वर्जनीया त्वयाद्य सा।
इमां निर्मथ्य सकलां यशः पैत्रं तु ते करे ॥११६॥
समुत्पाद्य प्रदास्यामि मा त्वं क्रीडय मारिष।

'इसलिये भीमसेनजी ! आपको अब मेरे द्वारा वरण की हुई उस सेनाके निकट नहीं जाना चाहिये। इस महायुद्धमें मैं सारी सेनाको मथकर अपने पैतृक यशका भलीभाँति उत्पादन करके उसे आपके हाथमें समर्पित कर दूँगा। आर्य ! आप इसके साथ क्रीडा मत कीजिये ॥ ११६½ ॥

न स्थिरः सर्वदा देहस्तारुण्यं चञ्चलं तथा ॥११७॥
स्थिरा रमा न कस्यापि दृश्यते मन्दिरे विभो।
तस्माद् यशः स्थिरं कार्यं प्राणिभिर्भूतलेऽखिले ॥११८॥

'विभो ! यह शरीर सर्वदा स्थिर रहनेवाला नहीं है। युवावस्था भी चञ्चल ही है। सारे भूमण्डलमें किसीके भी घरमें लक्ष्मी स्थिर नहीं देखी जाती; अतः प्राणियोंको अपना यश स्थिर कर लेना चाहिये ॥ ११७-११८ ॥

विपरीतः परो धर्मः कविभिर्भाषितः क्षितौ।
परसेनामतिप्रौढां नानामुखविलोकिनीम् ॥११९॥
निर्मथ्य ये नरा यान्ति प्राप्नुयुस्ते यशः स्थिरम्।

'विद्वानोंने पृथ्वीपर जो यह परम धर्म बतलाया है कि बहुतोंके मुखकी अपेक्षा रखनेवाली अत्यन्त प्रौढ़ शत्रुसेनाका जो लोग मन्थन करके आगे बढ़ते हैं, उन्हें स्थिर यशकी प्राप्ति होती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, उनका वह कथन धर्मविपरीत मालूम पड़ता है; क्योंकि एक वीरके वरण कर लेनेपर वह सेना पर-स्त्रीके समान हो जाती है, अतः दूसरेको उसपर आक्रमण नहीं करना चाहिये॥

वधूस्ते मम सेनास्त्री सभावं मां निरीक्षते ॥१२०॥
कर्तुं च सक्षतं वक्षः शस्त्ररूपैर्नखैर्दृढम्।
सेनामुखं मम मुखे सङ्गतं पश्य पाण्डव ॥१२१॥

'यह सेना मेरी स्त्री है, अतः आपकी पुत्रवधू है। यह अपने कठोर वक्षःस्थलको शस्त्ररूपी नखोंद्वारा क्षत-विक्षत करनेके लिये भावसहित मेरी ओर देख रही है। पाण्डुनन्दन! देखिये न, इस सेनाका मुख मेरे मुखकी ओर ही संलग्न हो रहा है॥ १२०-१२१॥

भवन्तं श्वशुरं वीक्ष्य विमुखा हि भविष्यति।
पताकापल्लववृतं न मुखं दर्शयिष्यति ॥१२२॥

'आप इसके श्वशुर हैं, अतः आपको देखकर यह विमुख हो जायगी और पताकारूपी अञ्चलसे ढके हुए अपने मुखको नहीं दिखायेगी॥ १२२॥

तस्मात् त्वया च स्थातव्यं यावद् भवति सङ्गतम्।
ममाद्य संगरे तात सेनायास्तावदेव हि ॥१२३॥

'अतः तात! जबतक आज मेरा इस सेनाके साथ युद्धस्थलमें समागम होता है, तबतक आपको दूर ही खड़ा रहना चाहिये'॥ १२३॥

भीमसेन उवाच

भवान् प्रयातु प्रथमं सेनामेनां विलासिनीम्।
वधूजितं यदा वीक्ष्ये त्वां तु पुत्रक संगरे ॥१२४॥
तदा वधूं शासयिष्ये गदादण्डेन दूरतः।
शासिता हि वधूः पुत्र सफला ते भविष्यति ॥१२५॥

भीमसेनने कहा—बेटा! अच्छा, इस विलासिनी सेनाके पास पहले तुम्हीं जाओ। जिस समय मैं देखूँगा कि युद्धभूमिमें वधूने तुम्हारे ऊपर अधिकार जमा लिया है, उस समय दूरसे ही मैं अपने गदादण्डद्वारा उस बहूको ताड़ना अथवा शिक्षा दूँगा। वत्स! मेरेद्वारा शासित (दण्डित) होनेपर वह वधू तुम्हारे लिये विजयरूप उत्तम फल देनेवाली होगी॥

गुरुभिः शास्यते नैव स्नुषा यदि धरातले।
तस्या दुर्वृत्तभावेन तेषां हि पतनं ध्रुवम् ॥१२६॥

यदि भूतलपर गुरुजन बहूका शासन न करें तो उस बहूके दुराचरणसे उनका पतन हो जाना निश्चित ही है॥

एतत् समीक्ष्य गन्तव्यं त्वया वीर महाचमूम्।
पदातिस्त्वं रथस्थास्ते परे प्राप्ता हि कर्णज ॥१२७॥
एकाकिनं प्रेरयितुं न क्षमोऽस्मि महाबल।

वीर! इन सब बातोंका विचार करके तुम्हें इस विशाल सेनामें प्रवेश करना चाहिये; परंतु कर्णनन्दन! तुम पैदल हो और ये युद्धस्थलमें आये हुए शत्रु रथारूढ़ हैं; इसलिये महाबली वीर! तुम्हें अकेले ही युद्धस्थलमें जानेकी आज्ञा देनेके लिये मैं समर्थ नहीं हूँ॥ १२७½॥

जैमिनिरुवाच

एतस्मिन्नन्तरे राजन् वृषकेतुरुदारधीः ॥१२८॥
भीमं प्रदक्षिणीकृत्य निर्ययौ स चमूं प्रति।
कामीवारुणनेत्रोऽयमबलां वरवर्णिनीम् ॥१२९॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजन्! इसी बीचमें उदार-बुद्धि वृषकेतु भीमसेनकी प्रदक्षिणा करके लाल आँखें किये उस सेनाकी ओर इस तरह बढ़ा, जैसे काममदसे अरुण नेत्रवाला कामी पुरुष किसी सुन्दरी स्त्रीके पास जाता है॥

श्रीखण्डघनसारेण कटदानेन वासिताम्।
बिभेद वाहिनीं मध्ये गजकुम्भपयोधराम् ॥१३०॥

युद्धस्थलमें पहुँचकर उसने चन्दन तथा कपूरसे और हाथियोंके गण्डस्थलसे बहते हुए मदकी सुगन्धसे सुवासित एवं गजराजोंके कुम्भस्थलरूपी स्तनोंसे सुशोभित उस सेनाको बीचोबीचसे विदीर्ण कर दिया॥ १३०॥

बाणैस्तीक्ष्णैर्महाबाहुर्वीक्षमाणः पितामहम्।
वीरान् पातयते रोषान्न रोषस्तस्य शाम्यति ॥१३१॥

महाबाहु वृषकेतु पितामह सूर्यकी ओर देखता हुआ अपने पैने बाणोंसे शत्रु-वीरोंको रोषपूर्वक गिराने लगा; फिर भी उसका क्रोध शान्त नहीं होता था॥ १३१॥

मद्बाणैः पातिता वीरा रणमध्ये विदारिताः।
शत्रुतां नैव मुञ्चन्ति किं कर्त्तव्यमितो मया ॥१३२॥

(वह सोचने लगा—) संग्रामभूमिमें शत्रु-पक्षके बहुत-से वीर मेरे बाणोंद्वारा विदीर्ण करके पृथ्वीपर गिरा दिये गये तो भी वे शत्रुता नहीं छोड़ रहे हैं। अतः अब मुझे क्या करना चाहिये?॥ १३२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवं संचिन्तयानोऽपि पुनः शत्रून् व्यपोथयत् ।
चन्दनागुरुगन्धीनि रणे राज्ञां मुखानि सः ॥१३३॥
विच्छिन्नानीव पद्मानि निरीक्ष्य समरे हसन् ।
एतानि जलहीनानि न म्लायन्ति ममाग्रतः ॥१३४॥

इस तरह विचार करते हुए भी वह पुनः शत्रुओंका मर्दन करने लगा। रणभूमिमें कटकर गिरे हुए राजाओंके मुखोंको, जो चन्दन और अगुरुकी सुगन्धसे युक्त तथा नालसे टूटकर गिरे हुए कमलोंकी भाँति सुशोभित हो रहे थे, देखकर वृषकेतु हँसता हुआ कहने लगा—'अहो! ये कमल जलसे रहित होनेपर भी मेरे सामने मलिन नहीं हो रहे हैं' ॥

मत्वा बिभेद राजेन्द्र रणे गजघटाः पुनः ।
मौक्तिकानि सुवृत्तानि गजकुम्भच्युतानि च ॥१३५॥
शूरकण्ठेषु चिक्षेप मण्डनानि स कर्णजः ।

राजेन्द्र! ऐसा मानकर कर्णपुत्र वृषकेतु पुनः काली घटाके समान स्थित हुई गजसेनाको विदीर्ण करने लगा। उस समय गजराजोंके कुम्भस्थल फट जानेसे उनसे जो सुन्दर गोल-गोल गजमुक्ताएँ गिर रही थीं, उन्हें वह शूर वीरोंके कण्ठोंपर आभूषणोंके रूपमें फेंक देता था ॥ १३५½ ॥

तं तथा समरे वीरं संहरन्तं निजं बलम् ॥१३६॥
यौवनाश्वो गजारूढः समागत्येदमब्रवीत् ।

इस प्रकार समरभूमिमें अपनी सेनाका संहार करनेवाले उस वीर वृषकेतुके पास आकर राजा यौवनाश्व, जो उस समय एक विशाल गजराजपर सवार थे, यों कहने लगे ॥

यौवनाश्व उवाच

रथं गृहाण वीर त्वं मया दत्तं समारुह ॥१३७॥
भूमिस्थेन समं युद्धं न प्रशंसन्ति सूरयः ।

राजा यौवनाश्वने कहा—वीर! विद्वान् लोग भूमिपर खड़े हुए शत्रुके साथ किये गये युद्धकी प्रशंसा नहीं करते; अतः मैं तुम्हें यह रथ प्रदान कर रहा हूँ, तुम इसे स्वीकार कर लो और इसपर सवार हो जाओ ॥ १३७½ ॥

परदेशात् पुरं प्राप्तं बालं श्रमसमन्वितम् ॥१३८॥
योधितं बहुभिः सार्धं विरथं योधये कथम् ।

क्योंकि तुम अभी बालक हो और परदेशसे मेरे नगरमें आये हो। साथ ही तुमने बहुत-से वीरोंके साथ युद्ध भी किया है, जिससे थके-माँदे भी हो। ऐसी दशामें मैं तुम-जैसे रथहीनके साथ कैसे युद्ध कर सकता हूँ? ॥ १३८½ ॥

तव नाम न जानामि न गोत्रं जनकं च ते ॥१३९॥
विष्णोरिव जगत्पूज्यं न वेद्मि कुलनिर्णयम् ।
तस्मात् प्रब्रूहि समरे यथा युद्धं करोमि ते ॥१४०॥
धन्यस्त्वमपरो धन्यस्त्वत्तो नास्तीति मे मतिः ।

वीर! मैं तुम्हारा नाम और गोत्र नहीं जानता, न तुम्हारे पिताका ही मुझे ज्ञान है। जैसे भगवान् विष्णुके विश्ववन्द्य कुलका निर्णय किसीको ज्ञात नहीं होता, उसी प्रकार तुम्हारे भी जगन्मान्य वंशका निर्णय मुझे ज्ञात नहीं है, अतः मुझे यह सब विस्तारपूर्वक बताओ, जिससे मैं रणभूमिमें तुम्हारे साथ युद्ध कर सकूँ। तुम धन्य हो। मेरा तो ऐसा विचार है कि तुमसे बढ़कर धन्यवादका पात्र दूसरा कोई है ही नहीं ॥ १३९-१४०½ ॥

वृषकेतुरुवाच

कुलं कश्यपसम्भूतं मामकं रविभासितम् ॥१४१॥
पृथिव्यां नापरो दाता यं विना जनकः स मे ।
सभामध्ये द्रौपदी च क्लिश्यती येन वीक्षिता ॥१४२॥
धर्मादयो न गणिता दुर्योधनहितैषिणा ।
विना नतं स्थितो यस्तु तस्य पुत्रं निबोध माम् ॥१४३॥
अर्जुनेनैव नीतोऽसौ परमं पदमव्ययम् ।
कर्णः पिता मे संग्रामे वृषकेतुरहं स्थितः ॥१४४॥

वृषकेतुने कहा—राजन्! मेरा कुल सूर्यदेवसे प्रकाशित एवं महर्षि कश्यपसे उत्पन्न हुआ है। मेरे पिता वे थे, जिनके अतिरिक्त उस समय पृथ्वीपर दूसरा कोई दानी नहीं था। जिन्होंने कौरव-सभामें कष्ट पाती हुई महारानी द्रौपदीकी ओर कुदृष्टिसे देखा था तथा दुर्योधनके हितमें तत्पर रहकर धर्मराज युधिष्ठिर आदिको कुछ नहीं गिना था। जो किसीके सामने झुके नहीं थे तथा जिन्हें अर्जुनने संग्राममें अविनाशी परमपदको भेज दिया है, वे कर्ण मेरे पिता हैं। मुझे उन्हींका पुत्र जानिये। मेरा नाम वृषकेतु है, जो आपके सामने युद्धमें स्थित हूँ ॥१४१–१४४॥

युधिष्ठिरस्य यज्ञार्थं तुरगो नीयते मया ।
न रथं च त्वया दत्तं प्रतिगृह्णामि संगरे ॥१४५॥
युद्धे जितं तु गृह्णन्ति न दत्तं वै नराधिप ॥१४६॥

राजा युधिष्ठिरके अश्वमेध-यज्ञका सम्पादन करनेके लिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं घोड़ा ले जा रहा हूँ। युद्धस्थलमें आपके द्वारा दिये गये दान नहीं लेते, वे तो युद्धमें जीती हुई वस्तुओंको रथको मैं ग्रहण नहीं कर सकता, क्योंकि नराधिप! क्षत्रिय ही ग्रहण करते हैं॥ १४५-१४६॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि यौवनाश्ववृषकेतुवाक्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें यौवनाश्व और वृषकेतुके वाक्यका वर्णननामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

वृषकेतु और यौवनाश्वका युद्ध, उसमें दिव्यास्त्रोंका प्रयोग, वृषकेतुके मूर्च्छित होनेपर भीमसेनका रणभूमिमें आगमन, भीमसेन और सुवेगका युद्ध और दोनोंकी मूर्च्छा, पुनः वृषकेतु और यौवनाश्वका युद्ध, यौवनाश्वके मूर्च्छित होनेपर वृषकेतुद्वारा उनकी जीवनरक्षा और सचेत होनेपर यौवनाश्वद्वारा वृषकेतुका आलिङ्गन

यौवनाश्व उवाच

धन्योऽसि कर्णपुत्र त्वं प्रथमं प्रहराशु माम्।
बालं चपलमालोक्य तस्मान्न प्रहरामि ते॥ १॥

राजा यौवनाश्वने कहा—कर्णपुत्र! तुम धन्य हो। पहले तुम्हीं मुझपर शीघ्र प्रहार करो; तुम्हें एक चपल बालक समझकर मैं पहले तुमपर प्रहार करना नहीं चाहता॥ १॥

वृषकेतुरुवाच

बहुपुत्रोऽसि राजेन्द्र मत्तो वृद्धतरो भवान्।
कृष्णदर्शनहीनोऽसि न समो मद्बलेन वै॥ २॥

वृषकेतुने कहा—राजेन्द्र! आपके बहुत-से पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं अतः आप मेरी अपेक्षा बहुत वृद्ध हैं; परंतु आपको श्रीकृष्णका दर्शन नहीं हुआ है, अतः आप बलमें मेरी समानता नहीं कर सकते॥ २॥

त्वच्छरीरे महाराज विद्यते न बलं क्वचित्।
अहं तावद् युवा राजन् भवान् वृद्धतरो मम॥ ३॥

महाराज! आपके शरीरमें कहीं बल नहीं है; क्योंकि मैं तो नौजवान हूँ और आप मेरी दृष्टिमें बहुत वृद्ध हो चुके हैं॥

जैमिनिरुवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नृपतिर्दशभिः शरैः।
ताडयामास हृदये वृषकेतुं हसन्निव॥ ४॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! वृषकेतुका वह वचन सुनकर हँसते हुए-से राजा यौवनाश्वने उसके हृदयपर दस बाणोंद्वारा प्रहार किया॥ ४॥

स ताञ्छरांस्त्रिधा चक्रे नृपकोदण्डनिर्गतान्।
बाणेनैकेन तरसा छित्त्वा तं त्रिभिरार्दयत्॥ ५॥

तब वृषकेतुने राजाके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंको वेगपूर्वक चलाये हुए एक ही बाणसे काटकर उनके तीन-तीन टुकड़े कर डाले और तीन बाण मारकर राजाको भी पीड़ित कर दिया॥ ५॥

तस्य बाणा नृपं विद्ध्वा प्रविष्टा धरणीतलम्।
पूर्वजाः कूटसाक्ष्यं हि ब्रुवतो यान्त्यधो यथा॥ ६॥

उसके बाण राजाको घायल करके पृथ्वीमें समा गये। ठीक उसी तरह, जैसे झूठी गवाही देनेवालेके पूर्वज अधोगतिको प्राप्त होते हैं॥ ६॥

अर्धचन्द्रेण चिच्छेद कोदण्डं नृपतेः पुनः।
सगुणं चातपत्रं च चामरव्यजनानि सः॥ ७॥

तत्पश्चात् वृषकेतुने एक अर्धचन्द्राकार बाण चलाकर राजाके प्रत्यञ्चासहित धनुष, छत्र, चामर और व्यजनको भी काट डाला॥ ७॥

वक्रवाक्येन तीक्ष्णेन च्छिद्यन्ते प्रीतिजा गुणाः।
यथा चैकेन बालस्य बाणेनैकेन तत् तथा॥ ८॥
निखिलं भूपतेस्तत्र पातितं धनुरादिकम्।

जैसे एक ही टेढ़ी बात कह देनेसे प्रेमजनित समस्त गुणोंका उच्छेद हो जाता है, उसी प्रकार बालक वृषकेतुने एक ही बाणसे रणभूमिमें राजा यौवनाश्वके धनुष आदि सम्पूर्ण उपकरणोंको काट गिराया॥ ८½॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सज्यं कृत्वा महाबलः ॥ ९ ॥
विव्याध कर्णजं षष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ।

तब महाबली राजा यौवनाश्वने दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और झुकी हुई गाँठवाले साठ बाण मारकर वृषकेतुको घायल कर दिया ॥ ९½ ॥

ते तस्य हृदयं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ १० ॥
जीवनं भानुकिरणाः पिबन्ति तरसा यथा ।

वे बाण वृषकेतुके हृदयको विदीर्ण करके उसके रक्तका पान करने लगे, जैसे सूर्यकी किरणें वेगपूर्वक पृथ्वीके जलको सोख लेती हैं ॥ १०½ ॥

तथा स भिन्नहृदयो बहुभिः परिवारितः ॥ ११ ॥
चकार युद्धं सुमहन्नृपतिं परिपीडयन् ।

तब घायल हृदयवाला वृषकेतु बहुत-से योद्धाओंद्वारा घिरा होनेपर भी राजाको पीड़ित करता हुआ अत्यन्त घोर युद्ध करने लगा ॥ ११½ ॥

चतुर्भिस्तुरगांस्तस्य शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १२ ॥
सारथेश्च शिरः कायात् पातयामास भूतले ।

उसने चार बाण मारकर राजाके घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया और सारथिका सिर उसके धड़से काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ १२½ ॥

अदृश्यं नृपतिं चक्रे योधानां पश्यतामपि ॥ १३ ॥
हतो राजेति शब्दोऽभूत् तस्मिन् युद्धे तथाविधे ।

साथ ही वृषकेतुने समस्त योद्धाओंके देखते-देखते राजाको अदृश्य कर दिया । उस समय उस युद्धस्थलमें 'राजा मारे गये' ऐसा कोलाहल मच गया ॥ १३½ ॥

बाणान्धकारे च कृते कर्णपुत्रेण लीलया ॥ १४ ॥
पितामहस्य स्वस्यैव नाशं युधि रिपोः पुरः ।
लज्जितः संदधे घोरं पावकास्त्रं समन्त्रकम् ॥ १५ ॥

जब कर्णपुत्रने लीलापूर्वक बाणोंकी वर्षा करके वहाँ अन्धकार फैला दिया, तब युद्धस्थलमें शत्रुके समक्ष अपने ही पितामह (सूर्य) को अदृश्य हुआ देख उसे संकोच हुआ । फिर तो उसने मन्त्र पढ़कर भयंकर आग्नेयास्त्रका संधान किया ॥ १४-१५ ॥

प्रकाशमकरोत् तेन वह्निना नृपसत्तम ।
वारुणेनाथ राजापि शमयामास पावकम् ॥ १६ ॥

नृपश्रेष्ठ ! तब उस अस्त्रसे प्रकट हुई अग्निके द्वारा उसने वहाँ प्रकाश फैला दिया । तदनन्तर राजा यौवनाश्वने भी वारुणास्त्रका प्रयोग करके उस आग्नेयास्त्रको शान्त कर दिया ॥ १६ ॥

पवनास्त्रेण बलवान् कर्णपुत्रोऽपि वारुणम् ।
विध्वंसयित्वा व्यनदन्महानादं रणाङ्गणे ॥ १७ ॥

तब महाबली वृषकेतु भी पवनास्त्रद्वारा वारुणास्त्रका विनाश करके युद्धके मैदानमें घोर सिंहनाद करने लगा ॥ १७ ॥

यौवनाश्वस्तदा क्रुद्धो दृष्ट्वामानुषपौरुषम् ।
रथमन्यं समारुह्य पर्वतास्त्रेण संहरन् ॥ १८ ॥
मारुतास्त्रं च राजेन्द्र कर्णपुत्रमपीडयत् ।
शिलाः सहस्रधाऽऽकाशादपतन् भुवि भासुराः ॥ १९ ॥

उस समय उसके अमानुषिक पुरुषार्थको देखकर राजा यौवनाश्व क्रोधमें भर गये और दूसरे रथपर चढ़कर पर्वतास्त्रद्वारा पवनास्त्रका संहार करके वृषकेतुको पीड़ित करने लगे । उस समय आकाशसे हजारों चमकती हुई शिलाएँ पृथ्वीपर गिरने लगीं ॥ १८-१९ ॥

तस्योपरि शरास्तीक्ष्णाः पतिता नृपहस्ततः ।
शरैर्न दृश्यते वीरः संग्रामे लोमहर्षणे ॥ २० ॥

तथा वृषकेतुके ऊपर राजाके हाथसे छूटे हुए तीखे बाण गिर रहे थे । उस रोमाञ्चकारी संग्राममें बाणोंसे आच्छादित हो जानेके कारण वीर वृषकेतुका दीखना बंद हो गया ॥ २० ॥

तं वीक्ष्य कुपितो भीमः पुत्रं मोचयितुं ययौ ।
तं विलोक्य रणे प्राप्तं भीमं कर्णात्मजस्त्वरन् ॥ २१ ॥
प्रमथ्य शरवृष्टिं तां नृपमुक्तां हसन्निव ।
पर्वतास्त्रं च चक्रेण विनाश्य व्यचरद् रणे ॥ २२ ॥

उसे इस अवस्थामें पड़ा हुआ देख भीमसेन कुपित होकर अपने पुत्र (भतीजे) को उस संकटसे मुक्त करनेके लिये युद्धस्थलमें गये । तब कर्णपुत्र वृषकेतु उन भीमसेनको रणभूमिमें आया हुआ देख बड़ी उतावलीके साथ राजाद्वारा की हुई उस बाणवर्षाको मथकर और चक्रास्त्रद्वारा पर्वतास्त्रका विनाश करके हँसता हुआ युद्धस्थलमें विचरने लगा २१-२२

यौवनाश्वेन वीरेण तदस्त्रं च वृथा कृतम् ।
भल्लेन हृदयं तस्य भिन्नं तेन महात्मना ॥ २३ ॥

तब महामनस्वी वीर राजा यौवनाश्वने उस चक्रास्त्रको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यर्थ कर दिया और एक भल्ल मारकर वृषकेतुके हृदयको भी बींध दिया ॥ २३ ॥

मूर्च्छितो निपपातोर्व्यां वृषकेतुर्महाबलः ।
कर्णपुत्रे च पतिते भीमः कोपसमन्वितः ॥ २४ ॥
चिन्तयित्वा स्वहृदये किं वदिष्यामि धर्मजम् ।
कुन्तीं कृष्णं च पार्थं तं विना कर्णसुतं गतः ॥ २५ ॥

उस प्रहारसे महाबली वृषकेतु मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसके धराशायी हो जानेपर भीमसेन परम कुपित होकर अपने हृदयमें विचार करने लगे कि वृषकेतुके बिना हस्तिनापुरमें लौटकर मैं धर्मनन्दन युधिष्ठिर, माता कुन्ती, श्रीकृष्ण और अर्जुनको क्या उत्तर दूँगा ? ॥ २४-२५ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु गृहीत्वा महतीं गदाम् ।
तद् बलं पोथयामास वेगाद् रुद्र इवाहरत् ॥ २६ ॥

इसी बीचमें उन्होंने अपनी विशाल गदा लेकर वेगपूर्वक उस सेनाको कुचलना आरम्भ किया और (प्रलयकालमें) रुद्रदेवकी भाँति सारी सेनाका संहार कर डाला ॥ २६ ॥

गजकुम्भान् स गदया विदार्य च बहून् क्षणात् ।
रथानश्वानपि नरान् पातयामास भूतले ॥ २७ ॥

उन्होंने क्षणमात्रमें अपनी गदासे बहुत-से गजराजोंके कुम्भस्थल विदीर्ण कर दिये और रथों, घोड़ों तथा पैदल सैनिकोंको भी पृथ्वीपर मार गिराया ॥ २७ ॥

जानुभ्यां भीमसेनस्य पवनस्तु समुत्थितः ।
भ्रामितास्तेन मातङ्गा गगने सरथा हयाः ॥ २८ ॥

रणमें विचरते हुए भीमसेनकी जानुओंसे जो प्रचण्ड वायु उठी, उससे प्रेरित होकर गजराज तथा घोड़ोंसहित रथ आकाशमें ही चक्कर काटने लगे ॥ २८ ॥

नरा भ्रमन्ते राजेन्द्र मुक्तकेशा यथासुराः ।
गजा गजैर्नीयमानाः सम्प्राप्ता वसुधातले ॥ २९ ॥

राजेन्द्र ! जिनके बाल खुल गये थे, ऐसे सैनिक बिखरे हुए केशवाले असुरोंकी भाँति आकाशमें ही चक्कर काट रहे थे । हाथी हाथियोंको पकड़े हुए भूतलपर गिर पड़ते थे ॥ २९ ॥

भ्राम्यमाणं च तत्सैन्यमितश्चेतश्च दृश्यते ।
वासुदेवस्य माहात्म्यमश्रुत्वा च यथा जगत् ॥ ३० ॥

जैसे श्रीकृष्णके माहात्म्यको न सुननेसे जगत्के प्राणी आवागमनके चक्करमें पड़े रहते हैं, उसी प्रकार वह सेना इधर-उधर चक्कर काटती हुई दिखायी देती थी ॥ ३० ॥

ऊर्ध्वपादा वस्त्रहीना नानालंकारवर्जिताः ।
अधोवक्त्राः सरुधिराः शुष्कास्या गजसादिनः ॥ ३१ ॥

(उस समय गजारोहियोंकी दशा विचित्र थी) वे नीचे मुख किये गिर रहे थे । उनके पैर ऊपरकी ओर थे, शरीरसे वस्त्र खिसक गये थे तथा उनके अनेक प्रकारके आभूषण भी गिर पड़े थे । वे खूनसे लथपथ थे और उनके मुख सूख गये थे ॥ ३१ ॥

राजपुत्रा भिन्नगात्राः स्रवन्तो रुधिरं मुखात् ।
गगनाद् भूतलं प्राप्ताः क्षीणपुण्या यथा नराः ॥ ३२ ॥

राजकुमारोंके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये थे । वे मुखसे खून उगलते हुए आकाशसे पृथ्वीपर गिर रहे थे, ठीक उसी तरह, जैसे पुण्य क्षीण हो जानेपर मनुष्य स्वर्गलोकसे नीचे गिर जाते हैं ॥ ३२ ॥

नराश्वगजदेहेभ्यः शोणितौघाः सहस्रशः ।
प्रावर्तन्त महाराज भीमे युध्यति भूतले ॥ ३३ ॥

महाराज ! भीमसेनके युद्ध करते समय पृथ्वीपर मनुष्य, घोड़े तथा हाथियोंके शरीरसे निकली हुई हजारों रुधिरकी धाराएँ बह चलीं ॥ ३३ ॥

ततो नृपसुतः प्राप्तः सुवेगो नाम वीर्यवान् ।
भीमं योधयितुं क्रोधादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३४ ॥

तब राजा यौवनाश्वका पराक्रमी पुत्र, जिसका नाम सुवेग था, भीमसेनसे युद्ध करनेके लिये सामने आया और क्रोधपूर्वक इस प्रकार कहने लगा ॥ ३४ ॥

सुवेग उवाच

यौवनाश्वसुतं विद्धि सुवेगं मां महाबलम् ।
तिष्ठ युद्धं कुरु मया सार्द्धं यास्यसि वै कुतः ॥ ३५ ॥

सुवेग बोला— वीर ! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं राजा यौवनाश्वका महाबली पुत्र सुवेग हूँ । अतः खड़े रहो, मेरे साथ युद्ध करो, अब तुम कहाँ जाओगे ॥ ३५ ॥

इत्युक्त्वा स रथं त्यक्त्वा गृहीत्वा महतीं गदाम् ।
भीमं जघान गदया मूर्ध्नि वक्षःस्थले तदा ॥ ३६ ॥

ऐसा कहकर सुवेग अपनी विशाल गदा हाथमें लेकर रथसे उतर पड़ा । उसने तत्काल ही भीमसेनके मस्तक और छातीपर उस गदासे प्रहार किया ॥ ३६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृकोदरस्तं गदया जघान समरे बली।
तावन्योन्यं गदाभ्यां च जघ्नतुः क्रोधमूर्च्छितौ ॥ ३७ ॥

तब महाबली भीमसेनने भी युद्धमें गदाद्वारा सुवेगपर आघात किया। इस तरह वे दोनों वीर क्रोधसे मोहित होकर एक दूसरेको गदासे चोट पहुँचाने लगे ॥ ३७ ॥

ततो भीमः समुत्थाप्य सुवेगं गगनेऽक्षिपत्।
भ्रामयित्वा शतगुणं निष्पिपेष धरातले ॥ ३८ ॥

तदनन्तर भीमसेनने सुवेगको पकड़कर उठा लिया और उसे सौ बार घुमाकर आकाशमें फेंक दिया। फिर वे उसे पृथ्वीपर रगड़ने लगे ॥ ३८ ॥

सुवेगः पुनरुत्थाय गृहीत्वा पवनात्मजम्।
भूमौ ममर्द राजेन्द्र तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३९ ॥

राजेन्द्र! तब सुवेग पुनः उठ खड़ा हुआ और पवन-पुत्र भीमसेनको पकड़कर उन्हें भूमिपर गिराकर मसलने लगा। यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ३९ ॥

भीमो गजं गृहीत्वैकं सुवेगोपरि चिक्षिपे।
समायान्तं गजं तं तु चिक्षेप पवनात्मजे।
स गजः प्रेरितस्ताभ्यां यातायातं करोति वै ॥ ४० ॥

तब भीमसेनने एक गजराजको पकड़कर उसे सुवेगके ऊपर फेंक दिया। फिर सुवेगने भी अपनी ओर आते हुए उस गजराजको पकड़कर भीमसेनपर फेंका। यों उन दोनोंद्वारा फेंका जाता हुआ वह गजराज इधर-उधर दोनों ओर आने-जाने लगा ॥ ४० ॥

मुष्टिभिर्जानुभिर्घोरैः प्रहारैस्तौ च जिग्यतुः।
उभौ तौ मर्दितौ तत्र पतितौ धरणीतले ॥ ४१ ॥

फिर वे दोनों वीर मुक्कों, घुटनों तथा भयंकर प्रहारोंसे एक दूसरेको पराजित करनेकी चेष्टा करने लगे। इस तरह एक दूसरेको मसलते हुए वे दोनों पृथ्वीपर गिर पड़े ॥४१॥

जैमिनिरुवाच

वृषकेतुस्ततो मूर्च्छां त्यक्त्वा राजानमाहवे।
पञ्चभिस्ताडयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ ४२ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! उधर वृषकेतुने भी मूर्च्छा त्यागकर युद्धस्थलमें राजा यौवनाश्वको झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाण मारे ॥ ४२ ॥

तैर्बाणैर्मूर्च्छितो राजा यौवनाश्वो महाबलः।
विसंज्ञं समरे वीक्ष्य वृषकेतुः समीपगः ॥ ४३ ॥
वस्त्रवातेन नृपतिं वीजयन् वाक्यमब्रवीत्।

उन बाणोंकी चोटसे महाबली राजा यौवनाश्व मूर्च्छित हो गये। तब समरभूमिमें राजाको संज्ञाशून्य हुआ देख वृषकेतु उनके पास गया और अपने वस्त्रसे उनपर हवा करता हुआ बोला ॥ ४३½ ॥

वृषकेतुरुवाच

यत्किंचिद् विद्यते पुण्यं कृष्णाराधनसम्भवम् ॥ ४४ ॥
सर्वेण तेन राजासौ पुनर्जीवतु संगरे।
पौरुषं वेत्ति मे कस्तु चेन्न जीवति पार्थिवः ॥ ४५ ॥

वृषकेतुने कहा—भगवान् श्रीकृष्णकी आराधनासे उत्पन्न हुआ मेरा जो कुछ भी पुण्य है, उस समस्त पुण्यके प्रभावसे इस युद्धमें ये राजा यौवनाश्व पुनः जीवित हो जायँ; क्योंकि यदि राजा जीवित नहीं होंगे तो कौन मेरे पुरुषार्थको जान सकेगा? ॥ ४४–४५ ॥

मूर्च्छां विहाय राजापि तिष्ठ तिष्ठेति वै पुनः।
उत्थाय च रणे प्राह तं ददर्श तथाविधम् ॥ ४६ ॥
कर्णपुत्रं समालिङ्ग्य चेदं वचनमब्रवीत्।

इसी समय राजाकी भी मूर्च्छा दूर हो गयी और वे उठकर रणभूमिमें पुनः 'खड़ा रह, खड़ा रह' ऐसा कहने लगे। परंतु उसी क्षण जब उन्होंने वृषकेतुको उस तरह अपनी सेवा करते देखा, तब वे उसको गलेसे लगाकर इस प्रकार बोले ॥ ४६½ ॥

यौवनाश्व उवाच

प्राणदस्त्वं मदीयोऽसि यत्त्वया परिभाषितम् ॥ ४७ ॥
तच्छ्रुत्वा क्रियते युद्धं न निन्द्योऽस्ति हि मां विना।
गृहाण राज्यं सकलं जीवितं वशगं तव ॥ ४८ ॥

यौवनाश्वने कहा—वीर! तुम मेरे प्राणदाता हो। तुमने मेरे प्रति जो कुछ कहा है, उसे सुनकर भी यदि मैं युद्ध करूँ तो मेरे समान निन्दनीय दूसरा कोई नहीं है। अब तुम मेरा सम्पूर्ण राज्य ग्रहण करो; क्योंकि मेरा जीवन अब तुम्हारे अधीन है ॥ ४७–४८ ॥

त्वत्प्रसादाद्धरिं वीक्ष्ये भीमं दर्शय मारिष।
मर्त्ये कर्णः सदा दाता दातृत्वं तस्य दर्शितम् ॥ ४९ ॥
त्वया पुत्रेण वीरेण पालयित्वा हि मां रणे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आर्य ! तुम्हारी कृपासे मैं श्रीकृष्णका दर्शन करूँगा, इस समय मुझे भीमसेनसे मिला दो। मृत्युलोकमें कर्ण सदा दानी रहे हैं, तुम उन्हीं दानी कर्णके वीर पुत्र हो। तुमने युद्धमें मेरे जीवनकी रक्षा करके (प्राणदान देकर) उनके दातापनको सिद्ध कर दिखाया है ॥ ४९½ ॥

त्वमायाहि मया सार्धं यत्र तौ बलिनौ रणे।
सुवेगभीमौ पतितौ मूर्च्छिताविव लक्षितौ ॥ ५० ॥

अब तुम मेरे साथ उस स्थानपर चलो, जहाँ दोनों महाबली वीर सुवेग और भीमसेन रणभूमिमें गिरे हुए मूर्च्छित-से दीख रहे हैं ॥ ५० ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि यौवनाश्वपराजयो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें यौवनाश्वकी पराजयनामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

राजा यौवनाश्वका भीमसेनसे कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन सबको नगरमें ले जाना और प्रभावतीद्वारा उनकी आरती उतारा जाना, राजाद्वारा अपने राज्य आदिका श्रीकृष्णको समर्पण, हस्तिनापुर चलनेके लिये प्रजाको आदेश देना, सुदेवकी माता जरद्वा और राजाका संवाद, जरद्गवाको बाँधकर साथ ले चलना, मार्गमें भीमसेनका पहले ही हस्तिनापुर पहुँचना और युधिष्ठिरको अश्वसहित यौवनाश्वके आगमनकी सूचना देना

जैमिनिरुवाच

ततो बुद्धौ महावीरौ यौवनाश्वेन वारितौ।
संस्तूय भीमं तरसा पुरीं प्रावेशयत् स्वकाम् ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर वे दोनों महाबली वीर भीमसेन और सुवेग मूर्च्छासे जाग उठे। उस समय राजा यौवनाश्वने उन दोनोंको युद्ध करनेसे रोक दिया तथा भीमसेनकी प्रशंसा करके वे उन्हें जोर देकर अपनी नगरीमें ले जानेका विचार करने लगे ॥ १ ॥

मेघवर्णस्तु तुरगं गृहीत्वा भीमसंनिधौ।
स्थितः प्राह हसन् वीरः किमिदं भाग्यकारितम् ॥ २ ॥

उस समय वीर मेघवर्ण उस घोड़ेको लेकर भीमसेनके निकट उपस्थित हुआ और हँसता हुआ कहने लगा—'दादाजी ! देखिये, भाग्यने यह क्या कर दिखाया ?' ॥ २ ॥

चिन्तयन् बहुधा देवमनन्तं सर्वतोमुखम्।
ततो नृपः प्रसन्नात्मा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३ ॥
प्रशंसन् पाण्डवं वीरं वृषकेतुं च मारिष।

आर्य ! तदनन्तर सब ओर मुखवाले, अनन्तस्वरूप परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णका बारंबार ध्यान करनेसे राजाका चित्त प्रसन्न हो गया। फिर वे नरेश भीमसेन तथा वीर वृषकेतुकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥ ३½ ॥

यौवनाश्व उवाच

भीम पश्य कुमारस्य वृषकेतोर्महद्बलम् ॥ ४ ॥
संजीवितोऽस्यनेनाजौ दयायुक्तेन साधुना।
प्राणदेन कथं युद्धं पुनरेव प्रजायते ॥ ५ ॥

यौवनाश्व बोले—भीमसेन ! कुमार वृषकेतुके महान् बलको तो देखिये। इस दयालु एवं साधु (परोपकारी) वीरने युद्धस्थलमें मुझे जीवनदान दिया है। फिर ऐसे प्राणदाता वीरके साथ युद्ध कैसे किया जा सकता है ? ॥ ४-५ ॥

तस्मान्मां नय भद्रं ते गोविन्दं प्रति पाण्डव।
मदीयं मानसं चाद्य त्वरते धर्मदर्शने ॥ ६ ॥

इसलिये पाण्डुनन्दन ! आपका कल्याण हो। आप मुझे भगवान् गोविन्दके पास ले चलिये। इस समय मेरा मन धर्मराज युधिष्ठिरका दर्शन करनेके लिये उतावला हो रहा है ॥ ६ ॥

यस्य कृष्णे परा भक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी।
यत् किंचिद् विद्यते वित्तं पुत्रपौत्रादिकं मम ॥ ७ ॥
शरीरमपि राज्यं च सर्वं कृष्णवशं कुरु।
गजानां मम शुभ्राणामयुतं विद्यते शुभम् ॥ ८ ॥

क्योंकि जिसकी भगवान् श्रीकृष्णमें अनन्यभक्ति हो जाती है, उसके लिये वह मुक्तिसे भी बढ़कर सुखदायिनी होती है। वीर ! मेरे पास जो कुछ भी धन, पुत्र, पौत्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदि विद्यमान हैं, उनको तथा शरीर और सम्पूर्ण राज्यको भी श्रीकृष्णके समर्पण कर दीजिये। साथ ही मेरे पास जो ये उज्ज्वल वर्णके दस हजार सुन्दर गजराज हैं, इन्हें भी श्रीकृष्णको ही सौंप दीजिये ॥ ७-८ ॥

इदं शिरस्तथा वीर धर्मराजार्थमाहवे।
पातयिष्यामि यज्ञेऽस्मिंस्तुरगस्यापि रक्षणे ॥ ९ ॥

तथा वीर! मैं धर्मराज युधिष्ठिरके कार्यकी सिद्धिके लिये उनके इस अश्वमेध यज्ञमें अश्वकी रक्षा करता हुआ अपने इस मस्तकको युद्धमें निछावर कर दूँगा ॥ ९ ॥

शुभ्रे गजे भीमसेन मया सार्धं समारुह।
सुवेगकर्णजावेतौ गजे मत्ते सकाञ्चने ॥ १० ॥
आरूढौ मत्पुरीं रम्यां प्रविशेतां ममाज्ञया।
नगरीं तु जना यान्तु केचिच्छोभयितुं पुरः ॥ ११ ॥
पताकाभिर्विचित्राभिश्चन्दनोदकशीतलाम् ।
प्रभावती भीमसेनं नीराजयतु भामिनी ॥ १२ ॥
लाजाभिश्चैव मालाभिर्भावयन्तु हि कन्यकाः।

भीमसेनजी! आप मेरे साथ इस उज्ज्वल वर्णके गजराज-पर सवार होइये और सुवेग तथा वृषकेतु सुवर्णभूषित मदमत्त गजराजपर चढ़कर मेरी रमणीय पुरीमें प्रवेश करें। मेरी आज्ञासे जिसके राजमार्ग चन्दनमिश्रित जलके छिड़कावसे शीतल कर दिये गये हैं, उस नगरीको अनेक रंगकी पताकाओं-से सुशोभित करनेके लिये कुछ लोग पहले ही जायँ। सुन्दरी प्रभावती भीमसेनकी आरती उतारें तथा कन्याएँ लाजा और पुष्पमालाओंद्वारा इनका स्वागत-सत्कार करें ॥ १०–१२½ ॥

एवमादिश्य नृपतिः प्रविवेश सपाण्डवः ॥ १३ ॥
मेघवर्णेन सहितो मुदायुक्तो नराधिपः।

इस प्रकार आज्ञा देकर प्रजाओंका पालन करनेवाले राजा यौवनाश्वने भीमसेन और मेघवर्णके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ १३½ ॥

राजमन्दिरमायान्तं भीमं देवी ददर्श सा ॥ १४ ॥
सुवर्णपात्रे दीपं तु कृत्वा पञ्चशिखं शिवम्।
कर्पूरपुलकोद्भूतं स्त्रीभिर्युक्ता समाययौ।
नीराजयित्वा तान् वीरानिदं वचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥

जब देवी प्रभावतीने देखा कि भीमसेन राजमहलकी ओर आ रहे हैं, तब वह सोनेकी थालमें कपूरकी डलीसे प्रज्वलित पाँच शिखावाले माङ्गलिक दीपको सँजोकर (सौभाग्यवती) स्त्रियोंके साथ आगे बढ़ी और उन वीरोंकी आरती उतारकर इस प्रकार कहने लगी ॥ १४-१५ ॥

प्रभावत्युवाच

येन मे कण्ठसूत्रं हि सुश्लथं परिरक्षितम्।
कर्णजेनाद्य तस्याथ कीर्तिः स्थूला भविष्यति ॥ १६ ॥

प्रभावती बोली—जिस कर्णपुत्र वृषकेतुने (सौभाग्य-चिह्नस्वरूप) मेरे ढीले हुए कण्ठसूत्रकी रक्षा की है, उसे विशाल कीर्तिकी प्राप्ति होगी ॥ १६ ॥

जैमिनिरुवाच

जाते नीराजने राजन्नुपविष्टा वरासने।
ततो नानाकथाः कृत्वा भुक्त्वा च शयनं गताः ॥ १७ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजन्! आरतीका कार्य सम्पन्न हो जानेपर वे वीर उत्तम आसनोंपर विराजमान हुए। तदनन्तर नाना प्रकारकी बातें करते हुए उन्होंने भोजन किया। फिर (शय्याओंका आश्रय लेकर) वे सो गये ॥ १७ ॥

प्रभातसमये जाते कृतकार्यो नराधिपः।
उपविष्टः सभामध्ये सह भीमेन भारत ॥ १८ ॥

भारत! प्रातःकाल होनेपर राजा यौवनाश्व अपने आवश्यक कार्यसे निवृत्त होकर भीमसेनके साथ सभाभवनमें विराजमान हुए ॥ १८ ॥

आदिदेश जनं सर्वं पुरस्थं धर्मकोविदः।
सर्वे गच्छन्तु वै तत्र यत्र तौ कृष्णपाण्डवौ ॥ १९ ॥

उस समय उन धर्मज्ञ नरेशने समस्त पुरवासियोंको इस प्रकार आज्ञा दी—'सब लोग उस स्थानपर चलें, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण और पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर विद्यमान हैं ॥

यः कश्चिन्मामके राष्ट्रे चातुर्वर्णोऽन्त्यजोऽपि वा।
न गच्छेत् कृष्णसान्निध्यं स वध्यश्चोरवन्मया ॥ २० ॥

'मेरे राज्यमें बसनेवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा अन्त्यज जो कोई भी हो, यदि वह श्रीकृष्णके समीप नहीं जायगा तो मेरेद्वारा चोरकी भाँति मारा जायगा' ॥

इत्याघोष्य तदा तेन भेरीदुन्दुभिनिःस्वनैः।
सदाराः पुत्रकैः साकं सघनास्तु ममाज्ञया ॥ २१ ॥

उस समय भेरियों और नगाड़ोंको बजवाकर राजाने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसी घोषणा कर दी कि 'मेरी आज्ञासे सब लोग स्त्री, पुत्र और धनके साथ वहाँ चलें ॥ २१ ॥

निर्यातु द्रौपदीं द्रष्टुं रुक्मिणीं च यशस्विनीम् ।
प्रभावती च नारीणामयुतेन विभूषिता ॥ २२ ॥
वधूवृन्देन संयुक्ता धर्मराजपुरं प्रति ।

'दस हजार नारियोंसे घिरकर सुशोभित होती हुई रानी प्रभावती अपनी बहुओंको साथ लेकर द्रौपदी तथा यशस्विनी रुक्मिणीका दर्शन करनेके लिये धर्मराज युधिष्ठिरके नगर हस्तिनापुरको प्रस्थान करें ॥ २२½ ॥

मदीयो वीणकश्चायमयुतस्तम्भमण्डितः ॥ २३ ॥
पश्चिमाशामुपाश्रित्य दीयतां गमनाय मे ।

'मेरे इस वीणक नामवाले खेमेको, जो दस हजार खंभोंसे शोभित होता है, मेरी यात्राके लिये पश्चिम दिशाकी ओर भेज दिया जाय ॥ २३½ ॥

दुन्दुभिस्ताड्यतां घोरो मेघरावो गजोपरि ॥ २४ ॥
सुवर्णपूरिता यान्तु करभाः शकटा वृषाः ।

'हाथीकी पीठपर रखकर मेघके समान गम्भीर शब्द करनेवाले विशाल नगाड़ेको पीटकर यह घोषित कर दिया जाय कि 'ऊँट, छकड़े तथा बैल सुवर्णका भार लेकर चलें' ॥

बहुनात्र किमुक्तेन मदीयं वसु यद् भवेत् ॥ २५ ॥
तत् सर्वं कृष्णसांनिध्ये नीयतामात्मकारिणः ।

'इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ ? मेरे पास जो कुछ भी धन है, वह सब-का-सब भगवान् श्रीकृष्णके समीप पहुँचा दिया जाय; क्योंकि मैं अपने आत्माका कल्याण करना चाहता हूँ ॥ २५½ ॥

यत्र भागीरथी गङ्गा यज्ञेशो भगवान् हरिः ॥ २६ ॥
संयोगश्चैव सर्वेषां कस्य चित्तं न तोषयेत् ।

'जहाँ भागीरथी गङ्गा और यज्ञोंके स्वामी भगवान् श्रीहरि वर्तमान हों, वहाँ इनके साथ समागम होना किसके चित्तको संतुष्ट नहीं करेगा ?' ॥ २६½ ॥

सुदेवं च समाहूय संदिदेश नराधिपः ॥ २७ ॥
वसुवृन्देन संयुक्तो नानासज्जनसंयुतः ।
त्वमस्माकं पुरे श्रीमान् सन्त्यन्ये सधना जनाः ।
आत्मना सहितान् सर्वान् धर्मराजपुरं नय ॥ २८ ॥

फिर राजाने सुदेवको बुलाकर आज्ञा दी—'सुदेव ! तुम हमारे नगरके सबसे बड़े धनवान् हो, तुम्हारे अतिरिक्त दूसरे धनाढ्य लोग भी यहाँ रहते हैं, तुम भारी धनराशि और नानाप्रकारके सत्पुरुषोंसे संयुक्त हो। उन सब धनवानों-को अपने साथ धर्मराज युधिष्ठिरके नगरको ले चलो' ॥

जैमिनिरुवाच

एवं तेन समादिष्टो जनं प्राह पुरः स्थितम् ।
भवद्भिर्गम्यतां तत्र यत्र तौ कृष्णपाण्डवौ ॥ २९ ॥
युधिष्ठिरस्याश्वमेधो भविष्यति सुशोभनः ।
एवमुक्ता जनाः सर्वे हृष्टा जाताः सुखान्विताः ॥ ३० ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! राजासे ऐसा आदेश पाकर सुदेवने सामने खड़े हुए लोगोंसे कहा—'जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण और पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर विद्यमान हैं, आपलोग वहीं चलिये; क्योंकि वहाँ महाराज युधिष्ठिरका अत्यन्त सुन्दर अश्वमेध यज्ञ होगा।' सुदेवके ऐसा कहनेपर वहाँकी सारी जनता प्रसन्न एवं सुखी हो गयी ॥ २९-३० ॥

सुदेवो मातरं प्राह राजा मां नेतुमिच्छति ।
यत्र धर्मसुतो राजा यत्र तौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ३१ ॥

फिर सुदेवने अपनी मातासे कहा—'माँ ! जहाँ धर्म-नन्दन महाराज युधिष्ठिर तथा श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, वहाँ राजा मुझे ले जाना चाहते हैं' ॥ ३१ ॥

जननी स्वसुतस्येदं वाक्यमाकर्ण्य चाप्रियम् ।
प्रोवाच वचनं पुत्र न गन्तव्यं कदाचन ॥ ३२ ॥

तब अपने पुत्रके इस अप्रिय वचनको सुनकर माता बोली—'बेटा ! तुझे वहाँ कभी भी नहीं जाना चाहिये ॥

वित्तव्ययो न कर्त्तव्यो मयि जीवति पुत्रक ।
वित्तहीना ह्यहं तात न जीवितुमिहोत्सहे ॥ ३३ ॥

'पुत्र ! मेरे जीते-जी तुझे इस प्रकार धनका अपव्यय नहीं करना चाहिये; क्योंकि तात ! धनसे हीन होकर मैं इस संसारमें जीना नहीं चाहती' ॥ ३३ ॥

पुत्र उवाच

तत्र भागीरथी गङ्गा नाना सन्तः समागताः ।
स्वयं स भगवान् यत्र कृष्णस्तिष्ठति साग्रजः ॥ ३४ ॥
युधिष्ठिरस्य यज्ञेऽन्ये ऋषयोऽपि समागताः ।
उत्तिष्ठ जननि त्वं हि गोविन्दं पश्य साग्रजम् ॥ ३५ ॥

तब पुत्र (सुदेव) ने कहा—माँ ! वहाँ महाराज

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युधिष्ठिरके यज्ञमें भागीरथी गङ्गाका सांनिध्य है, बहुत-से संत-महात्मा पधारे हुए हैं, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अपने बड़े भ्राता बलरामजीके साथ विराजमान हैं तथा और भी बहुत से ऋषि-मुनि आये हुए हैं; अतः माता ! तुम भी उठो और वहाँ चलकर बलदेवसहित भगवान् गोविन्दका दर्शन करो ॥

वृद्धोवाच

मैवं वद सुदेव त्वं न गमिष्याम्यहं पुरम् ।
न देवो न च धर्मोऽपि श्रुतपूर्वः कदाचन ॥ ३६ ॥

तब वृद्धा बोली—सुदेव ! तू ऐसा मत कह । मैं हस्तिनापुरको नहीं जाऊँगी । मैंने पहले भी कभी देवता और धर्मकी बात नहीं सुनी है ॥ ३६ ॥

भर्त्रा नैव कृतो धर्मो मत्पित्रा तु कदाचन ।
कस्योपदेशात् त्वं पुत्र प्रवृत्तोऽसि धनक्षये ॥ ३७ ॥

मेरे पिता तथा पतिने भी कभी धर्म नहीं किया है । पुत्र ! किसके उपदेशसे तू धनका विनाश करनेपर उतारू हो गया है ? ॥ ३७ ॥

सर्वं प्रतारणं मन्ये यज्ञदानादिकाः क्रियाः ।
अर्थवादो मतो वेदो ब्राह्मणा लोकवञ्चकाः ॥ ३८ ॥

ये जो यज्ञ-दान आदि कर्म हैं, इन सबको मैं ठगविद्या समझती हूँ । मेरी समझसे तो वेद भी अर्थवादस्वरूप है और ब्राह्मण लोगोंको बहकाने या ठगनेवाले हैं ॥ ३८ ॥

प्राणव्ययेन यल्लब्धं धनं तत् को नु नाशयेत् ।
अस्माकं च कुले धर्मो न कस्यापि सुखप्रदः ॥ ३९ ॥

अपनी जानको जोखिममें डालकर जो धन प्राप्त किया गया है, उसे कौन नष्ट कर सकता है । हमारे कुलमें किसीको भी यह धर्म सुखदायी नहीं हुआ है ॥ ३९ ॥

वृद्धाहं साम्प्रतं जाता कथं धर्मं समाचरे ।
अकृतं न करिष्यामि ह्येतत् सत्यं वचो मम ॥ ४० ॥

अब तो मैं बूढ़ी हो गयी, अतः किस प्रकार धर्मका अनुष्ठान कर सकती हूँ । साथ ही जो काम मैंने आजतक नहीं किया, उसे मैं नहीं करूँगी—यह मैं सत्य कह रही हूँ ॥ ४० ॥

जैमिनिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्याः सुदेवो नृपतिं ययौ ।
प्रत्युवाच वचो रम्यं नृप हास्यकरं परम् ॥ ४१ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजन् ! माताकी यह बात सुनकर सुदेव राजाके पास गया और उनके लिये हास्यजनक परम सुन्दर वचन कहने लगा ॥ ४१ ॥

सुदेव उवाच

नायाति जननी देव मया सह महाक्रतुम् ।
धर्मराजस्य तं द्रष्टुं न गृहं परिमुञ्चति ॥ ४२ ॥

सुदेव बोला—देव ! माताजी धर्मराज युधिष्ठिरके उस महान् यज्ञको देखनेके लिये मेरे साथ नहीं चल रही हैं; क्योंकि वे घरको नहीं छोड़ सकतीं ॥ ४२ ॥

राजा तस्य वचः श्रुत्वा समानीय जरद्गवाम् ।
प्रोवाच वचनं रम्यं हितं तस्या यथा भवेत् ॥ ४३ ॥

सुदेवकी बात सुनकर राजा उस बूढ़ी रानीको बुलवाकर उसे ऐसे मनोहर वचनोंसे समझाने लगे, जिनसे उसका कल्याण हो जाय ॥ ४३ ॥

राजोवाच

सर्वे लोकास्तत्र यान्ति यत्र तौ धर्ममाधवौ ।
मयैव सहिता याहि कुरु पुण्यं गजाह्वये ॥ ४४ ॥

राजाने कहा—देवि ! सभी लोग वहाँ जा रहे हैं, जहाँ धर्मराज युधिष्ठिर और माधव हैं । तुम भी मेरे साथ हस्तिनापुरको चलो और वहाँ पुण्यका अनुष्ठान करो ॥ ४४ ॥

तत्र तिष्ठति कृष्णोऽपि रुक्मिणी च वधूवृता ।
अन्याश्च पावना नार्यस्तत्र मान्याः समागताः ॥ ४५ ॥

वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण और वधुओंसे घिरी हुई महारानी रुक्मिणी भी विद्यमान हैं तथा और भी बहुत-सी सम्माननीया सती-साध्वी नारियाँ वहाँ आयी हुई हैं ॥ ४५ ॥

सतां दर्शनमात्रेण विलयं यान्ति देहिनाम् ।
पातकानि समग्राणि नात्र कार्या विचारणा ॥ ४६ ॥

सत्पुरुषोंके दर्शनमात्रसे प्राणियोंके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । इसमें अन्यथा विचार करनेकी कोई बात नहीं है ॥ ४६ ॥

वृद्धोवाच

नागमिष्यामि राजेन्द्र द्रव्यं मम गमिष्यति ।
वधूगणश्च मे दुष्टो नाशयिष्यति मद्गृहम् ॥ ४७ ॥

वृद्धा बोली—राजेन्द्र ! मैं हस्तिनापुर नहीं चलूँगी; क्योंकि मेरे जानेसे मेरा धन लुट जायगा । मेरी बहुएँ दुष्ट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वभावकी हैं, वे मेरे घरका विनाश कर देंगी ॥ ४७ ॥

गोधूमाः परिपक्वा मे क्षेत्रे तिष्ठन्ति साम्प्रतम् ।
नवनीतं च गोपा वै संक्षयिष्यन्ति मामकम् ॥ ४८ ॥

इस समय मेरे खेतमें गेहूँ पके हुए खड़े हैं (वे चौपट हो जायँगे) । ग्वाले मेरे मक्खन आदिका सर्वनाश कर डालेंगे ॥ ४८ ॥

दासदासीगणो रौद्रो गमिष्यति यथागतम् ।
मदाधारं गृहमिदं स्थितं राजन् न संशयः ॥ ४९ ॥

मेरे नौकर तथा नौकरानियाँ भी विकट हैं, वे जैसे आये हैं, वैसे ही चल देंगे (घरका काम-काज पड़ा रह जायगा) । राजन् ! यह घर मेरे ही सहारे टिका हुआ है, इसमें संदेह नहीं है ॥ ४९ ॥

मम कृष्णेन किं कार्यं न मे धर्मेण साम्प्रतम् ।
यथा स्वकर्मणि व्यग्राः कृष्णधर्मादयः स्थिताः ॥ ५० ॥
तथा स्वगृहकार्येषु सावधानास्मि भूमिप ।

मुझे श्रीकृष्णसे क्या काम है और धर्मराजसे भी मेरा कोई प्रयोजन नहीं है । भूपाल ! जैसे श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर आदि अपने-अपने काममें लगे हुए हैं, उसी तरह मैं भी अपने घरके कामोंमें सावधानीसे लगी हुई हूँ ॥ ५०½ ॥

भवान् राज्यं परित्यज्य वृथा गच्छति तत् पुरम् ॥ ५१ ॥
बालोऽसि द्रव्यहानिस्ते भविष्यति न संशयः ।

नरेश्वर ! आप नादान हैं, जो राज्यकार्यको छोड़कर व्यर्थ ही उस नगरको जा रहे हैं; क्योंकि वहाँ जानेसे आपके धनका नाश होगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ५१½ ॥

गताः प्राणा वरं मन्ये न धनं भूपते क्वचित् ॥ ५२ ॥
सर्वलोकस्य संक्लेशो भविष्यति नराधिप ।

भूपते ! मैं प्राणोंका चला जाना उत्तम मानती हूँ, परंतु धनका विनाश मुझे किसी तरह सह्य नहीं है; क्योंकि धनकी हानि होनेसे सभी लोगोंको कष्ट भोगना पड़ेगा ॥ ५२½ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं ब्रुवाणां नृपतिर्गृहीत्वा तां जरद्गवाम् ।
बद्ध्वा तत्र रुदन्तीं च दोलामारोप्य तां ययौ ॥ ५३ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! बूढ़ी रानी इस प्रकार ही रही थी कि राजा यौवनाश्वने उसे पकड़कर बाँध लिया और उस रोती हुई वृद्धाको डोलीमें चढ़ाकर वे अपने साथ ले चले ॥ ५३ ॥

प्रहसन् विस्मयन्नेव तृष्णां गर्हन् पुनः पुनः ।
भीमाय कथयामास चरितं चित्तविभ्रमम् ॥ ५४ ॥
तस्या जरद्गवायास्तु ततो नागपुरं ययौ ।
आशा बलवती भीम काचिदाश्चर्यशृङ्खला ॥ ५५ ॥
यया बद्धाः प्रधावन्ति मुक्तास्तिष्ठन्ति पङ्गुवत् ।

उस समय राजा यौवनाश्व आश्चर्यचकित-से होकर हँसते हुए बारंबार तृष्णाकी निन्दा करने लगे । उन्होंने वृद्धाके चरित्र एवं चित्त-व्यामोहका वृत्तान्त भीमसेनसे कहा । तत्पश्चात् वे हस्तिनापुरको चले । (राजा बोले—) 'भीमसेन ! आशा बड़ी बलवती होती है, वह एक ऐसी आश्चर्यमयी साँकल है, जिससे बँधे हुए प्राणी वेगपूर्वक दौड़ते हैं, किंतु जो उससे मुक्त हैं, वे पंगुकी भाँति एक जगह पड़े रहते हैं ॥ ५४—५५½ ॥

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ॥ ५६ ॥
चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका न तु जीर्यते ।
तृष्णायाः परमं दुःखं तत्त्यागात् परमं सुखम् ॥ ५७ ॥

'वृद्ध हुए प्राणीके बाल पककर गिर जाते हैं, दाँत जीर्ण होकर टूट जाते हैं, चक्षु-इन्द्रिय तथा श्रोत्रेन्द्रियकी शक्ति जाती रहती है, परंतु एक तृष्णा ही ऐसी है, जो कभी बूढ़ी नहीं होती (प्रत्युत वह तरुण होती जाती है) । तृष्णासे महान् दुःख होता है और उसका त्याग कर देनेसे परम आनन्द प्राप्त होता है' ॥ ५६-५७ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं स भीमं परितोषयन् ।
न्यवसत् पञ्चरात्रं च पश्चाद् वीरो विनिर्ययौ ॥ ५८ ॥
बलेन महता युक्तो धर्मराजपुरं प्रति ।

इतनी बात कहकर भीमसेनको संतुष्ट करते हुए राजा यौवनाश्वने पाँच राततक मार्गमें निवास किया । तत्पश्चात् वे वीर नरेश बहुत बड़ी सेनाके साथ युधिष्ठिरके नगरके लिये प्रस्थित हुए ॥ ५८½ ॥

योजनानां स्थितो भूमिर्यत्र विंशतिरेव सः ॥ ५९ ॥
पप्रच्छ भीमो राजानमहं यास्येऽग्रतो नृपम् ।
त्वां निवेदयितुं देवं सम्प्राप्तं बलसंयुतम् ॥ ६० ॥

रास्तेमें जहाँसे हस्तिनापुरकी दूरी बीस योजन (अस्सी कोस) शेष रह गयी, वहाँ खड़े हो भीमसेनने राजासे पूछा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'महाराज! क्या मैं सेनासहित पधारे हुए आपका समाचार निवेदन करनेके लिये राजा युधिष्ठिरके पास पहले ही जाऊँ?'५९-६०

कर्णजस्तव शुश्रूषां करिष्यति गते मयि।
एवं निरूप्य तरसा स जगाम युधिष्ठिरम्॥ ६१॥

'मेरे चले जानेपर यह वृषकेतु आपकी सेवा करेगा।' ऐसा कहकर भीमसेन (उनकी अनुमति ले) बड़े वेगसे युधिष्ठिरके पास गये॥ ६१॥

ततो ददर्श राजानं भ्रातृभिः परिवारितम्।
नमस्कृत्य महाबुद्धिर्धर्मराजं वृकोदरः।
समालिंग्य जनान् सर्वानिदं वचनमब्रवीत्॥ ६२॥

वहाँ पहुँचकर महाबुद्धिमान् भीमसेनने भाइयोंके साथ बैठे हुए धर्मराज युधिष्ठिरका दर्शन किया और उनको प्रणाम करनेके पश्चात् उपस्थित सभी लोगोंका आलिङ्गन करके वे इस प्रकार बोले॥ ६२॥

भीम उवाच

तव प्रसादान्नृपते वयं कुशलिनः सदा।
समायातः स तुरगो यौवनाश्वेन संयुतः॥ ६३॥

भीमसेनने कहा—नृपते! आपकी कृपासे हमलोग सदा सकुशल रहे और राजा यौवनाश्वसहित वह यज्ञिय अश्व भी आ रहा है॥ ६३॥

कर्णपुत्रेण संग्रामे राजा स परितोषितः।
बलेन महता राजा सदारः ससुहृद्वृतः॥ ६४॥

वृषकेतुने संग्रामभूमिमें राजाको संतुष्ट कर दिया था, जिससे वे नरेश अपनी स्त्री, सुहृद् और बहुत बड़ी सेनाके साथ आ रहे हैं॥ ६४॥

प्रभावती तस्य भार्या द्रौपदीं द्रष्टुमागता।
महत्या सा श्रिया युक्ता स्त्रीसहस्रैर्विलासिनी॥ ६५॥
विष्णुभक्तिर्यथा राजञ्छान्तिक्षान्तियुता नृप॥ ६६॥

नरेश्वर! राजा यौवनाश्वकी पत्नी महारानी प्रभावती भी द्रौपदीको देखनेके लिये आ रही हैं। वे बहुत बड़े ऐश्वर्यसे सम्पन्न तथा सहस्रों स्त्रियोंसे सुशोभित हैं। ठीक उसी तरह, जैसे भगवान् विष्णुकी भक्ति शान्ति और क्षमा आदिसे युक्त होती है॥ ६५-६६॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि भीमागमो नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें भीमसेनका आगमननामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः

युधिष्ठिरकी आज्ञासे भीमसेनका द्रौपदीके पास जाना और उसके साथ भीमसेनकी बातचीत, युधिष्ठिरद्वारा राजा यौवनाश्वका स्वागत और उनसे वार्तालाप, सुदेवद्वारा वृषकेतुकी प्रशंसा, श्रीकृष्णका युधिष्ठिरकी आज्ञासे द्वारकापुरीको लौटना, युधिष्ठिरके पूछनेपर व्यासजीका उनसे राजा मरुत्तके यज्ञका वृत्तान्त सुनाना

जैमिनिरुवाच

समागतं नृपं श्रुत्वा धर्मो वचनमब्रवीत्।
भीमसेनं प्रति तदा हर्षेण महता युतः॥ १॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! राजा यौवनाश्वके आगमनका समाचार सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर बड़े हर्षके साथ भीमसेनसे बोले॥ १॥

युधिष्ठिर उवाच

गच्छ त्वं द्रौपदीपार्श्वं कथयैतद् वृकोदर।
यथा करोति वै भूषां प्रभावत्याश्च दर्शने॥ २॥

युधिष्ठिरने कहा—वृकोदर! तुम द्रौपदीके पास जाओ और उससे यह समाचार कह दो, जिससे वह प्रभावतीसे मिलनेके लिये आभूषण आदि धारण करके तैयार हो जाय॥ २॥

जैमिनिरुवाच

जगाम भीमसेनोऽथ यत्र सा पार्षतात्मजा।
विलोक्य भीमं सम्प्राप्तं पार्षती हर्षपूरिता॥ ३॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तब भीमसेन उस स्थानपर गये, जहाँ द्रुपदकुमारी द्रौपदी विद्यमान थी। भीमसेनको आया हुआ देखकर द्रौपदी हर्षसे भर गयी॥ ३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्थौ भीमं शशिमुखी स्वागतं चेति वादिनी।
ददर्श गात्रं सम्भिन्नं नानाशस्त्रैश्च मुष्टिभिः ॥ ४ ॥

उस समय 'आइये, आपका स्वागत है' ऐसा कहकर चन्द्रमुखी द्रौपदी भीमके सम्मुख खड़ी हो गयी और नाना प्रकारके शस्त्रों तथा मुक्कोंसे क्षत-विक्षत हुए उनके शरीरको देखने लगी ॥ ४ ॥

ददौ निजासनं देवी पप्रच्छ कुशलं पुनः।
वृषकेतुं मेघवर्णं तदा कुशलिनं सती ॥ ५ ॥

फिर सती-साध्वी देवी द्रौपदीने भीमसेनको बैठनेके लिये अपना आसन समर्पित किया और उनका कुशल-समाचार पूछा। साथ ही उसने वृषकेतु और मेघवर्णकी कुशलताके विषयमें भी जिज्ञासा की ॥ ५ ॥

भीम उवाच

राजा समागतो देवि सभार्यः ससुतः स्वयम्।
यौवनाश्वो मुदा युक्तः समृद्धबलवाहनः ॥ ६ ॥

तब भीमसेनने कहा—देवि! अपनी स्त्री तथा पुत्रके साथ स्वयं राजा यौवनाश्व हर्षपूर्वक यहाँ पधार रहे हैं, उनके साथ बहुत बड़ी सेना तथा वाहन आदि भी हैं ॥ ६ ॥

तस्य भार्या विशालाक्षी स्त्रीसहस्रैः समन्विता।
वीक्षितुं त्वां च मानार्हामिह चायाति सुन्दरी ॥ ७ ॥

उनकी पत्नी परम सुन्दरी तथा विशाल नेत्रोंवाली है। वह सहस्रों नारियोंके साथ तुझ माननीया महारानीका दर्शन करनेके लिये यहाँ आ रही है ॥ ७ ॥

तस्माद् भूषां कुरु शुभे स्वनारीगणसंयुता।
सहितास्तत्र वै यान्तु सर्वे देवि नृपं प्रति ॥ ८ ॥

इसलिये शुभे! देवि! तुम अपनी सखियोंके साथ शृङ्गार करके तैयार हो जाओ, जिससे सब लोग एक साथ होकर राजाका स्वागत करनेके लिये वहाँ चलें ॥ ८ ॥

कृष्णो देवि कुतो यातस्तं विना तव मण्डनम्।
न पश्यामि तथा रूपं सम्भवेन्मम विस्मयः ॥ ९ ॥

देवि! भगवान् श्रीकृष्ण कहाँ चले गये? उनके बिना तुम्हारा वैसा शृंगार होता नहीं दिखायी देता, जो मुझे भी विस्मयमें डालनेवाला हो ॥ ९ ॥

यदि द्वारवतीं कृष्णः परित्यज्य नृपं गतः।
भवित्री तव का शोभा प्रभावत्या सहाधुना।
वित्तेन महता चासौ पूरिता नृपतेः प्रिया ॥ १० ॥

यदि श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिरको छोड़कर द्वारका चले गये होंगे तो इस समय प्रभावतीके सामने तुम्हारी क्या शोभा होगी; क्योंकि राजा यौवनाश्वकी वह प्रियतमा भार्या बहुत अधिक धनसे सम्पन्न है ॥ १० ॥

द्रौपद्युवाच

अन्तर्गृहे निवसति गोविन्दः किल पाण्डव।
सर्वं सुमण्डनं मह्यं निगच्छामो वृकोदर ॥ ११ ॥

द्रौपदी बोली—पाण्डुनन्दन वृकोदर! भगवान् गोविन्द महलके भीतर विराजमान हैं। मेरा सारा शृंगार सुन्दर ही होगा, अच्छा अब हमलोग जा रही हैं ॥ ११ ॥

जैमिनिरुवाच

ततः कृष्णः समागत्य सह धर्मात्मजेन वै।
यौवनाश्वं भावयितुं सपुत्रं प्रययौ मुदा ॥ १२ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर श्रीकृष्ण वहाँ आये और धर्मपुत्र युधिष्ठिरके साथ पुत्रसहित राजा यौवनाश्वका स्वागत-सत्कार करनेके लिये हर्षपूर्वक प्रस्थित हुए ॥ १२ ॥

चम्पका यत्र बहुलाः पुष्पितास्तत्र संस्थिताः।
यौवनाश्वोऽपि तुरगं पुरस्कृत्य तु कर्णजम् ॥ १३ ॥
सम्मुखं स्थित एवासौ वीक्षमाणो नृपागमम्।
नानावाद्यनिनादेन कम्पयन् वसुधातलम् ॥ १४ ॥

राजा यौवनाश्व भी श्यामकर्ण अश्व तथा वृषकेतुको आगे करके जहाँ खिले हुए बहुत-से चम्पाके वृक्ष खड़े थे, वहाँ आकर नाना प्रकारके बाजोंके शब्दसे भूतलको कम्पित करते हुए महाराज युधिष्ठिरके आगमनकी प्रतीक्षामें सम्मुख ही खड़े थे ॥ १३-१४ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु धर्मपुत्रः समागतः।
ददर्श नृपतिं पार्श्वे सर्वसैन्यसमन्वितम् ॥ १५ ॥

इसी बीचमें धर्मपुत्र युधिष्ठिर वहाँ आ पहुँचे और पास पहुँचकर उन्होंने सम्पूर्ण सेनासहित राजा यौवनाश्वको देखा ॥ १५ ॥

उत्तीर्य वाहनात् तस्मादालिङ्ग्य वसुधाधिपम्।
तमस्कृतः स तेनापि यौवनाश्वेन धीमता ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फिर तो अपने वाहनसे उतरकर उन्होंने राजा यौवनाश्वका आलिङ्गन किया और उन बुद्धिमान् राजा यौवनाश्वने भी युधिष्ठिरको प्रणाम किया ॥ १६ ॥

तमुवाच स धर्मात्मा यथा भीमादयो मम ।
तथा त्वमसि राजेन्द्र नात्र कार्या विचारणा ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने यौवनाश्वसे कहा—'राजेन्द्र ! मेरे लिये जैसे भीमसेन आदि हैं, उसी तरह आप भी हैं; इस विषयमें आपको कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥ १७ ॥

पश्य कृष्णं महाबुद्धे सहायं मम भूपते ।
प्रभावती द्रौपदीं च कुन्तीं पश्यतु सत्वरा ॥ १८ ॥

'महाबुद्धिमान् भूपाल ! ये मेरे सहायक भगवान् श्रीकृष्ण हैं, आप इनका दर्शन करें और रानी प्रभावती भी शीघ्र ही माता कुन्ती तथा द्रौपदीसे मिलें' ॥ १८ ॥

जैमिनिरुवाच

यौवनाश्वोऽच्युतं कृष्णमनन्तं प्रणतोऽब्रवीत् ।
प्रहृष्टवदनो भूत्वा धर्मपुत्रस्य शृण्वतः ॥ १९ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! यह सुनकर यौवनाश्वका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और वे धर्मपुत्र युधिष्ठिरके सुनते-सुनते अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले अनन्त भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके बोले ॥ १९ ॥

यौवनाश्व उवाच

धन्योऽस्मि देव तुरगो धन्योऽयं यस्य कारणे ।
भीमादयस्त्रयो वीराः सम्प्राप्ता मत्पुरं प्रति ॥ २० ॥

यौवनाश्वने कहा—देव ! मैं धन्य हूँ तथा जिसके कारण भीमसेन आदि तीनों वीर मेरे नगरमें पहुँचे, वह यह घोड़ा भी धन्य है ॥ २० ॥

वृषकेतुरयं धन्यो ममात्मा येन रक्षितः ।
कृपाविष्टेन मनसा युद्धभूमिगतेन च ॥ २१ ॥

तथा इन वृषकेतुको भी धन्यवाद है, जिनके मनमें करुणाभरी हुई है तथा जिन्होंने युद्धस्थलमें मेरे प्राणोंकी रक्षा की है ॥ २१ ॥

क्व पार्थस्ते सखा कृष्ण वैष्णवानां सदाग्रणीः ।
येन त्वं दर्शितो लोके सर्वपापप्रणाशनः ॥ २२ ॥
जितवान् वै कुरुक्षेत्रे यस्त्वया सहितो रणे ।

श्रीकृष्ण ! जो वैष्णवोंमें सदा अग्रगण्य हैं, जिन्होंने समस्त पापोंका समूल नाश करनेवाले आपके स्वरूपको संसारमें प्रकट करके दिखा दिया है तथा आपकी सहायतासे कुरुक्षेत्रके मैदानमें होनेवाले महाभारत युद्धमें जिन्होंने सभी वीरोंपर विजय पायी है, वे आपके सखा अर्जुन कहाँ हैं ? ॥ २२½ ॥

जैमिनिरुवाच

प्रभावतीं च तां कुन्तीं पार्षतीं चैव सात्वतीम् ॥ २३ ॥
समालिङ्ग्य नमस्कृत्य तस्थौ हर्षपरायणा ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! रानी प्रभावतीने भी कुन्ती, द्रौपदी तथा सुभद्राको नमस्कार करके उनका आलिङ्गन किया और फिर हर्षमग्न होकर उनके पास खड़ी हो गयी ॥ २३½ ॥

तथा ब्रुवन्तं नृपतिं नमस्कृत्यार्जुनोऽब्रवीत् ॥ २४ ॥

उधर अर्जुन पूर्वोक्त रूपसे जिज्ञासा करनेवाले राजा यौवनाश्वको प्रणाम करके बोले ॥ २४ ॥

अर्जुन उवाच

यथा युधिष्ठिरोऽस्माकं तथा त्वं हि नराधिप ।
वृद्धो मान्यश्च सततं दृष्टो दैवात् समागतः ॥ २५ ॥

अर्जुनने कहा—नरेश ! हमारे लिये जैसे महाराज युधिष्ठिर हैं, वैसे ही आप भी वृद्ध एवं माननीय हैं । बड़े भाग्यसे आप यहाँ पधारे और हमें आपका दर्शन हुआ ॥

सुवेगोऽपि हि तान् सर्वान् नमस्कृत्य जनार्दनम् ।
प्रोवाच वचनं तत्र धर्मराजं महामतिम् ॥ २६ ॥

फिर सुवेग* भी वहाँ उपस्थित सभी गुरुजनोंको तथा भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके महाप्राज्ञ धर्मराज युधिष्ठिरसे कहने लगा—॥ २६ ॥

किं वर्णयामि राजेन्द्र वृषकेतोर्महात्मनः ।
महिमानमतीवास्य यत्कृष्णो दर्शितोऽमुना ॥ २७ ॥

'राजेन्द्र ! इन महामनस्वी वृषकेतुकी महिमा तो बहुत बड़ी है; मैं उसका क्या वर्णन करूँ ? क्योंकि इन्होंने मुझे भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन कराया ॥ २७ ॥

---

* सुवेगके दो नाम थे—सुदेव और सुवेग, दोनों नामोंका प्रयोग जहाँ-तहाँ देखनेमें आता है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विना कृष्णं हि यद् राज्यं शरीरं च तथा धनम्।
धार्यते मानवैर्भूप तत् सर्वं प्रेतभूसमम् ॥२८॥

'भूपाल! मनुष्योंके पास जो कुछ भी राज्य, धन अथवा शरीर आदि हैं, वे सभी श्रीकृष्णके बिना श्मशानभूमिके सदृश हैं' ॥ २८ ॥

अतः परं हृषीकेश न मोक्ष्ये ते पदाम्बुजम्।
विसर्जयाशु तुरगं यज्ञार्थं वै नृपस्य हि ॥ २९ ॥

(इतना कहकर सुदेव पुनः श्रीकृष्णसे बोला——) 'हृषीकेश! अब भविष्यमें मैं आपके चरणकमलोंका आश्रय नहीं छोड़ूँगा। भगवन्! अब शीघ्र ही महाराज युधिष्ठिरके यज्ञके लिये घोड़ा छोड़िये' ॥ २९ ॥

जैमिनिरुवाच

ततो हरिस्तुष्टमनास्तद्वाक्येन च भारत।
सहैव संस्थितं वीरमालिङ्ग्य रविपौत्रकम् ॥ ३० ॥
प्रविवेश पुरीं कृष्णो धर्मपुत्रेण संयुतः।
उषित्वा मासमेकं तु प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ ३१ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—भारत! तदनन्तर सुदेवकी वह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णका हृदय प्रसन्न हो गया। साथ ही वहाँ खड़े हुए सूर्यपौत्र वृषकेतुको छातीसे लगाकर वे धर्मनन्दन युधिष्ठिरके साथ हस्तिनापुरको लौट गये और वहाँ एक मासतक निवास करनेके पश्चात् युधिष्ठिरसे बोले ॥

श्रीकृष्ण उवाच

चैत्री गता महाराज पौर्णमासीह पृष्ठतः।
यज्ञस्यावसरो दूरे मासि चैकादशे नृप ॥ ३२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! अब तो चैत्रमासकी पूर्णिमा तिथि व्यतीत हो चुकी, अतः यज्ञका समय बहुत दूर चला गया। अब वह अवसर पुनः ग्यारहवें मासमें आयेगा ॥ ३२ ॥

तस्माद् गच्छामि नगरीं द्वारकां यादवाश्रयाम्।
नान्योऽस्ति रक्षकस्तस्यां मां विना पाण्डुनन्दन ॥३३॥

इसलिये पाण्डुनन्दन! अब मैं यादवोंकी निवासभूता द्वारकापुरीको जा रहा हूँ; क्योंकि मेरे अतिरिक्त वहाँ दूसरा कोई रक्षक नहीं है ॥ ३३ ॥

अतोऽहं त्वरितो यामि पृच्छे त्वां गन्तुमुत्सुकः।
गते मयि भविष्यन्ति यादवा हर्षनिर्भराः ॥३४॥

इसीलिये मैं तुरंत जाऊँगा। जानेके लिये उत्सुक होकर ही मैं आपसे पूछता हूँ; क्योंकि मेरे वहाँ जानेपर सभी यदुवंशी हर्षसे परिपूर्ण हो जायँगे ॥ ३४ ॥

तावत् त्वं यौवनाश्वेन सह पालय वाजिनम्।
तव यज्ञे वयं सर्वे ह्यश्वमेधे निमन्त्रिताः।
आगमिष्यामहे नूनं तथा कार्यं विधीयताम् ॥ ३५ ॥

तबतक आप राजा यौवनाश्वके साथ रहकर इस अश्वकी रक्षा कीजिये। आपके अश्वमेध यज्ञमें निमन्त्रित होकर हम सब लोग अवश्य आयेंगे। अतः आप उसी तरह कार्य करें ॥ ३५ ॥

जैमिनिरुवाच

तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य वचनं धर्मनन्दनः।
अनुज्ञां दत्तवांस्तस्मै ज्ञात्वा कृष्णस्य मानसम् ॥३६॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर उनका मनोभाव जान लेनेपर धर्मनन्दन युधिष्ठिरने उन्हें जानेकी आज्ञा दे दी ॥ ३६ ॥

केशवे तु गते राजा व्यासेन हि समन्वितः।
तुरगं पालयामास यौवनाश्वेन चानुजैः ॥ ३७ ॥

उन केशवके चले जानेपर राजा युधिष्ठिर महर्षि व्यास, राजा यौवनाश्व तथा अपने भाइयोंके सहयोगसे उस अश्वकी रक्षा करने लगे ॥ ३७ ॥

सभां च कारयामास मण्डपं समकारयत्।
द्वैपायनं ततोऽपृच्छन्मरुत्तस्य विचेष्टितम् ॥ ३८ ॥

फिर उन्होंने सभाभवन तथा यज्ञमण्डपका निर्माण कराया। तदनन्तर व्यासजीसे राजा मरुत्तका वृत्तान्त पूछा ॥

व्यासश्च कथयामास मरुत्तस्य महाध्वरम्।
मरुत्तेन वृतः पूर्वं यज्ञार्थे जीव एव हि ॥ ३९ ॥
इन्द्रस्तं वारयामास न याज्यो जीव मानवः।

तब महर्षि व्यासने राजा मरुत्तके महान् यज्ञका वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—'राजन्! राजा मरुत्तने यज्ञ-कार्य सम्पन्न करानेके लिये पहले बृहस्पतिजीको वरण किया था; परंतु इन्द्रने यह कहकर कि 'बृहस्पते! (आप देवताओंके पुरोहित हैं, अतः) मनुष्योंका यज्ञ मत कराइये।' उन्हें मना कर दिया ॥ ३९½ ॥

ततो नृपोऽपि संवर्तं नारदादशृणोन्मुनिम् ॥ ४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रार्थयित्वा क्रतुं चक्रे संवर्त्तोच्छक्रपावकौ।
स्तम्भयित्वा वरं प्राप्य क्रतुं कृत्वा च शोभनम्।
यथागतं गतो राजा पूतः स्नात्वा दिवं ययौ ॥४१॥

तदनन्तर राजा मरुत्तने नारदजीके मुखसे महर्षि संवर्तके विषयमें सुना (कि वे यज्ञ करा सकते हैं), तब राजाने संवर्तमुनिके पास जाकर उनसे प्रार्थना की और उन्हें लाकर अपना यज्ञ पूर्ण किया। उस यज्ञमें महर्षि संवर्तकी कृपासे राजाने इन्द्र और अग्निको स्तम्भित करके उनसे वर प्राप्त किया और उस सुन्दर यज्ञको समाप्त करके अपनी मनोगत अभिलाषा पूर्ण की। तत्पश्चात् अवभृथ-स्नानसे पवित्र होकर वे स्वर्गलोकको चले गये ॥ ४०-४१ ॥

जैमिनिरुवाच

युधिष्ठिरोऽपि पप्रच्छ व्यासं धर्मान् पुनः पुनः।
यथामति श्रुतान् सर्वान् कथयामास पावनान् ॥४२॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार राजा युधिष्ठिर व्यासजीसे धर्मके विषयमें बारंबार पूछते रहते थे और व्यासजी भी उन सभी पवित्र धर्मोंके विषयमें जैसा उन्होंने सुना था, अपनी बुद्धिके अनुसार उत्तर देते थे ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि मरुत्तयज्ञकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें मरुत्तके यज्ञका वर्णनविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका व्यासजीसे धर्मविषयक प्रश्न करना और व्यासजीद्वारा वर्णधर्म, विधवाओंके कर्तव्य और कुलटा स्त्रियोंके स्वरूप एवं लक्षणका निरूपण

जैमिनिरुवाच

श्रुत्वा व्यासमुखाद् धर्मान् धर्मराजो युधिष्ठिरः।
पप्रच्छ चापरान् धर्मान् सर्वलोकहितावहान् ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! व्यासजीके मुखसे धर्मविषयक चर्चा सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने उनसे दूसरे धर्मोंके विषयमें भी प्रश्न किया, जो सम्पूर्ण लोकोंके लिये हितकारी थे—॥ १ ॥

भगवन् किं नरैः कार्यं संसारभयभीरुभिः।
कथमत्र भवेत् कीर्तिः परत्र च कथं सुखम् ॥ २ ॥
वासुदेवः कथं तुष्येत् तत् तद् ब्रूहि यथातथम्।

'भगवन्! संसारके भयसे भीत मनुष्योंको उससे मुक्त होनेके लिये कौन-सा प्रयत्न करना चाहिये? कैसा कर्म करनेसे इहलोकमें उत्तम कीर्ति और परलोकमें परम सुखकी प्राप्ति हो सकती है? तथा वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण किस प्रकार प्रसन्न हो सकते हैं? यह सब यथार्थरूपसे वर्णन कीजिये' ॥ २½ ॥

व्यास उवाच

ब्राह्मणो धर्मशास्त्राणि सम्यग् ज्ञात्वा न कुत्सितम् ॥३॥
प्रकरोति शुभं कर्म चेह कीर्तिं सुखं परे।
परापवादाद् भीतश्च परद्रव्यं परस्त्रियम् ॥ ४ ॥
न कामयेन्न गृह्णाति न शृणोति हि तद्वचः।

व्यासजीने कहा—राजन्! ब्राह्मण यदि धर्मशास्त्रोंके सम्यक् ज्ञानका उपार्जन करके निन्दित कर्म न करे, सदा शुभ कर्मोंका ही अनुष्ठान करे, परायी निन्दासे डरे, दूसरेके धन तथा स्त्रीकी न तो कामना करे और न उन्हें ग्रहण ही करे तथा इन विषयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले वचनोंको भी न सुने तो उसे इस लोकमें उत्तम कीर्ति तथा परलोकमें परमानन्दकी प्राप्ति होती है ॥ ३-४½ ॥

क्षत्रियः सर्वधर्मज्ञो दाता युद्धपरायणः ॥ ५ ॥
आत्मवित् संगरे प्राणान् सम्मुखस्त्यजते यदि।
सम्प्राप्नोत्यमलां कीर्तिमिह लोके परत्र च ॥ ६ ॥

क्षत्रिय यदि सम्पूर्ण धर्मोंका ज्ञाता, दानी, आत्मज्ञानसम्पन्न और युद्धमें तत्पर रहनेवाला हो तथा संग्रामभूमिमें शत्रुके सम्मुख जूझते हुए प्राणोंका परित्याग करे तो वह इहलोक एवं परलोकमें निर्मल कीर्तिका भागी होता है ॥ ५-६ ॥

वैश्यो धनसमृद्धस्तु सत्यवादी प्रियातिथिः।
शुश्रूषणं गवां कुर्यात् तत्परः प्राणिनां हितम् ॥ ७ ॥
प्राप्नोति विमलां कीर्तिं गतिं कृष्णनिषेवणात्।

वैश्य धनसम्पन्न होनेपर यदि सत्य बोलनेवाला और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतिथियोंका प्रेमी हो, गौओंकी सेवा तथा तत्परतापूर्वक समस्त प्राणियोंका हितसाधन करे और भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करता रहे तो वह इस लोकमें उत्तम कीर्ति और परलोकमें परमगतिको प्राप्त कर लेता है ॥ ७½ ॥

शूद्रस्तु सेवते विप्राञ्छ्रद्धया नावमन्यते ॥ ८ ॥
यशः परमवाप्नोति ध्यात्वा नारायणं विभुम् ।

शूद्र यदि श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, कभी उनका अपमान नहीं करता और सर्वव्यापी भगवान् नारायणके ध्यानमें लीन रहता है तो वह उत्तम यश पाता है ॥ ८½ ॥

विधवा या भवेन्नारी कामासक्ता सुभोगिनी ॥ ९ ॥
गुरुवादकरी दुष्टा हृष्टा परनरं प्रति ।
धनयुक्ता रागपरा सर्पिणीव सपक्षिणी ॥ १० ॥
आत्मानं पातयेदाशु पत्या सह महीपते ।

पृथ्वीनाथ ! जो नारी विधवा होनेपर काममें आसक्त, भलीभाँति भोगोंको भोगनेवाली, गुरुजनोंके साथ विवाद करनेमें तत्पर, दुष्टा, परपुरुष-सम्पर्कसे प्रसन्न रहनेवाली, धनसे सम्पन्न होकर विषयोंमें आसक्त होनेवाली और नागिन-की-सी वेणी धारण करनेवाली होती है, वह शीघ्र ही पतिसहित अपने-आपको घोर नरकमें गिराती है ॥ ९-१०½ ॥

तां यः कामयते मन्दो दुष्टात्मा स नराधमः ॥ ११ ॥
सोऽपि वै नारकीं योनिं प्राप्नोतीह न संशयः ।
सा रण्डा दुर्गतिं याति शरीरस्य च विक्रयात् ॥ १२ ॥

राजन् ! जो मूर्ख उस विधवाकी कामना करता है, वह दुष्टात्मा और मनुष्योंमें अधम है। वह भी नारकी योनिको प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है। साथ ही वह राँड़ भी अपने शरीरका विक्रय करनेके कारण दुर्गति भोगती है ॥

शुद्धस्नानं च ताम्बूलं चन्दनं चासनानि च ।
इच्छाभोज्यं तथा पेयं पत्युरिच्छाविहारिणी ॥ १३ ॥
नित्यं धर्मपरा या तु गृहकार्यकरी तथा ।
श्वश्रूश्वशुरयोश्चैव पादवन्दनतत्परा ॥ १४ ॥
ज्येष्ठदेवरयोश्चापि ह्यनुवृत्तिपरायणा ।
प्राप्नोति सद्गतिं कीर्तिमिह लोके परत्र च ॥ १५ ॥

इसके विपरीत, जो स्त्री शुद्ध स्नान, ताम्बूल, चन्दन, आसन, इच्छानुकूल भोजन एवं पीनेके योग्य पदार्थ पतिको अर्पित करके उसके इच्छानुसार विहार करती है, नित्य धर्म-परायण रहकर गृहकार्यमें संलग्न रहती है, सास-ससुरके चरणोंकी वन्दनामें तत्पर रहा करती है, ज्येष्ठ तथा देवरके भी अनुकूल चलती है, उसे इस लोकमें उत्तम कीर्ति तथा परलोकमें भी सद्गतिकी प्राप्ति होती है ॥ १३–१५ ॥

प्राक्कर्मयोगजं चिह्नं बिभ्रती लक्षणं त्विदम् ।
कृष्णवर्णा तालुजिह्वा स्वाङ्गुल्या स्पृशते भुवम् ॥ १६ ॥
एतैश्च लक्षणैर्युक्ता भर्तृसम्बन्धघातिनी ।
स्वकर्मवशतस्ते तु तस्या वै संगतिं गताः ॥ १७ ॥
तया स्थेयं पितुर्गेहे न परेषां गृहं व्रजेत् ।

पूर्वजन्मके कर्मोंके योगसे उत्पन्न होनेवाले चिह्नको शरीरमें धारण करनेवाली नारीका लक्षण इस प्रकार है—जिसके तालु तथा जिह्वा काले रंगकी होती है और चलते समय जो पहले अपनी अँगुलियोंसे ही पृथ्वीका स्पर्श करती है—ऐसे लक्षणोंसे युक्त नारी अपने पतिके सम्बन्धका विनाश करने-वाली (विधवा) होती है। वे अशुभ लक्षण उसके शरीरमें अपने पूर्वकर्मवश ही प्रकट होते हैं। ऐसी कुलक्षणा स्त्रीको चाहिये कि वह आजीवन पिताके घरमें ही निवास करे, विवाहित होकर दूसरेके घरमें न जाय ॥ १६-१७½ ॥

जटिला पङ्कबहुला भोजने लुब्धमानसा ॥ १८ ॥
अनाचारवती या तु सा सुखं नैव विन्दति ।

(कंघी न करनेके कारण) जिस स्त्रीके बाल जटाका रूप धारण कर लेते हैं, (स्नान न करनेके कारण) जिसके शरीरपर बहुत-सी मैल जम जाती है, जिसका मन सदा भोजन-में ही लुभाया रहता है, जो आचार-भ्रष्टा होती है, वह कभी सुखकी भागिनी नहीं होती ॥ १८½ ॥

बालत्वे रक्षति पिता यौवनत्वे निजः पतिः ॥ १९ ॥
वार्धके रक्षते पुत्रो न स्वतन्त्रा हि योषितः ।
स्वतन्त्रता योषितां हि न शुभायोपकल्पते ॥ २० ॥

बाल्यावस्थामें पिता, युवावस्थामें अपना पति और बुढ़ापेमें पुत्र स्त्रियोंकी रक्षा करता है। स्त्रियाँ कभी स्वतन्त्र नहीं रहती हैं; क्योंकि नारियोंकी स्वतन्त्रता कभी कल्याणकारिणी नहीं होती ॥ १९-२० ॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्रपराकैः परं शोषयते तनुम् ।
विधवा सा सुखं जीवेत् परलोके च मोदते ॥ २१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो विधवा नारी कृच्छ्र[1], अतिकृच्छ्र[2] तथा पाराक[3]नामक व्रतोंका पालन करके अपने शरीरको सुखा डालती है, वह इस लोकमें सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती है और परलोकमें वह आनन्दका उपभोग करती है ॥ २१ ॥

न व्रजेत् तीर्थयात्रां हि न कदाचिच्छुभव्रतम् ।
करोति विधवा नारी सा गच्छेन्नरकं ध्रुवम् ॥ २२ ॥

वह न तो तीर्थयात्राको जाय और न (सधवा स्त्रीके द्वारा करनेयोग्य) किसी माङ्गलिक व्रतका ही पालन करे। यदि (इस निषेधको न मानकर वह) ऐसा करती है तो निश्चय ही नरकमें गिरती है ॥ २२ ॥

कर्तव्यं तु तया राजञ्छरीरपरिशोषणम् ।
उपवासादिभिर्नित्यं शमः कार्यो न संशयः ॥ २३ ॥

राजन्! विधवाको तो उपवास आदि कठोर नियमोंका पालन करके सर्वथा अपने शरीरको सुखाना ही चाहिये। उसे सदा शम (मनको वशमें करने) का ही अनुष्ठान करना चाहिये, इसमें संशय नहीं है ॥ २३ ॥

शीलभङ्गे तु नारीणां दोषास्तु बहवो नृप ।
स्त्रीणां नैव तु विश्वासः कर्तव्यस्तु कदाचन ॥ २४ ॥
अन्याश्रितान्यचित्तानां विश्वासो न सुखप्रदः ।

नरेश्वर! नारियोंका शील भंग होनेपर उनमें बहुत-से दोष घटित हो जाते हैं। साधारणतया स्त्रियोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो नारियाँ परपुरुषोंका आश्रय लेती तथा उनमें मन लगाती—आसक्त होती हैं, उनपर किया हुआ विश्वास सुखदायक नहीं होता है ॥ २४½ ॥

बहुधा हसते या तु बालं च परिचुम्बति ॥ २५ ॥
दृष्ट्वा पुमांसं त्वरिता प्रस्खलन्त्यनुधावति ।
गायन्ती सुस्वरं दृष्ट्वा कर्णं कण्डूयते कटिम् ॥ २६ ॥
अचैलं मस्तकं स्वं तु हासं च कुरुते वृथा ।
ईदृशी या भवेन्नारी विज्ञेया बन्धकी नरैः ॥ २७ ॥

जो (दूसरे पुरुषको दिखाकर) बारंबार हँसती एवं बालकका चुम्बन करती है तथा पर-पुरुषको देखकर स्खलित होती हुई उसके पीछे दौड़ पड़ती है, हर्षमें भरकर उच्च एवं मधुर स्वरसे गाती हुई अपने कान तथा कटिप्रदेशको खुजलाने लगती है, मस्तकपरसे वस्त्र हटाकर उसे नंगा कर देती है और अकारण ही हँसती रहती है—ऐसी स्त्रीको 'कुलटा' जानना चाहिये ॥ २५–२७ ॥

वृथा परगृहं याति वृथा पश्यति तं जनम् ।
दूतिकां जननीं वेत्ति तत्सङ्गेऽतीवलालसा ॥ २८ ॥
मालाकारी नापिती च नटी प्रव्राजिका तथा ।
फणिव्रततिपत्राणि विक्रीणाति तु या भुवि ॥ २९ ॥
सैरन्ध्री चापि दासी च तथा पतिविवर्जिता ।
सूतिका धवहीना च तथा कापालिकी तु या ।
ईदृशीनां सङ्गमेन यस्यास्तुष्यति मानसम् ॥ ३० ॥
स्वैरिणीनां तु सा राज्ञी विज्ञेया धर्मनन्दन ।
तस्माद् रक्षेत् स्त्रियं पार्थ दुष्टसङ्गाद् विशेषतः॥ ३१ ॥

धर्मनन्दन! जो व्यर्थ ही दूसरेके घर जाती है और उस घरके पुरुषोंकी ओर व्यर्थ ही निहारा करती है, जो दूती (कुटनी) को माताके समान समझती है और उसके साथ रहनेके लिये जिसके मनमें विशेष लालसा बनी रहती है, मालिन, नाइन, नटी, जोगिन, भूतल्पर पत्ते बेचनेवाली, सैरन्ध्री (स्त्रियोंके

---

१. कृच्छ्र अथवा कृच्छ्रसांतपन व्रतका लक्षण इस प्रकार है—

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥
(मनुस्मृति अध्याय ११, श्लोक २१२)

पहले दिन गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशाका जल—इन सबको मिलाकर पिये और दूसरे दिन उपवास करे; यह कृच्छ्र-सांतपन व्रत माना गया है।

२. अतिकृच्छ्र व्रतका लक्षण इस प्रकार है—

एकैकं ग्रासमश्नीयात् त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन् द्विजः ॥
(मनुस्मृति अध्याय ११, श्लोक २१३)

अतिकृच्छ्र व्रतका आचरण करनेवाला द्विज पूर्ववत् (प्राजापत्य-के समान) तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल और तीन दिन बिना माँगे मिले हुए भोजनका केवल एक-एक ग्रास ग्रहण करे और अन्तमें तीन दिनोंतक उपवास करे।

३. पराकव्रतका लक्षण इस प्रकार है—

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ॥
(मनुस्मृति अध्याय ११, श्लोक २१६)

जिसमें मन और इन्द्रियोंको वशमें करके सावधान होकर बारह दिनोंतक निराहार रहना पड़ता है, यह पराक नामक कृच्छ्र है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केश आदि गूँथकर आजीविका चलानेवाली), दासी, पतिसे परित्यक्ता, कापालिकी तथा विधवा दाई—ऐसी स्त्रियोंकी संगतिसे जिस नारीका मन प्रसन्न होता है, उसे कुलटाओंकी महारानी समझना चाहिये। अतः पार्थ! दुष्ट-संगसे स्त्रियोंकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये ॥ २८–३१ ॥

असूयकोऽथ पिशुनो नास्तिको धूर्तको नरः।
समीपे संस्थितो राज्ञां प्रजानां दुर्लभं सुखम् ॥ ३२ ॥
प्रजाः पालय भद्रं ते तासु नष्टासु नश्यति।

जब राजाओंके समीप परदोषदर्शी, चुगलखोर, नास्तिक और धूर्त मनुष्य रहने लगते हैं, तब प्रजाओंके लिये सुख दुर्लभ हो जाता है। राजन्! प्रजाके नष्ट हो जानेपर राजाका भी नाश हो जाता है, अतः तुम्हारा कल्याण हो। तुम प्रजाका पालन करो ॥ ३२½ ॥

नाचरन्ति तु ये धर्मान् नृपते ब्राह्मणादयः ॥ ३३ ॥
न चिन्तयन्ति देवेशं देवकीनन्दनं हरिम्।
नास्तिकास्ते नरा ज्ञेयाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ३४ ॥
एतैः सहासनं स्पर्शं मनसापीह नाचरेत्।

जनेश्वर! जो ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके लोग अपने वर्णधर्मका पालन नहीं करते तथा देवोंके भी अधीश्वर देवकी-नन्दन भगवान् श्रीहरिका स्मरण नहीं करते, उन्हें समस्त धर्मकृत्योंसे बहिष्कृत नास्तिक समझना चाहिये। ऐसे लोगोंके साथ बैठनेका तथा इन्हें स्पर्श करनेका विचार भी मनमें नहीं लाना चाहिये ॥ ३३-३४½ ॥

आराधयन्ति देवेशं प्राणिनां मुक्तिदं हरिम्।
देवतुल्याश्च ते ज्ञेयाश्चाण्डालोऽपि हरेः प्रियः ॥ ३५ ॥

तथा जो लोग प्राणियोंको मोक्ष प्रदान करनेवाले देवेश्वर भगवान् श्रीहरिकी आराधना करते हैं, उन्हें देवताओंके समान समझना चाहिये; क्योंकि भगवद्भक्त चाण्डाल भी श्रीहरिको अत्यन्त प्यारा है ॥ ३५ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि व्यासवाक्यं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें व्यासवाक्यनामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका व्यासजीसे लक्ष्मीकी स्थिरता तथा भगवान्‌की प्रसन्नताका उपाय पूछना, व्यासजीका युधिष्ठिरको उनके प्रश्नका उत्तर देते हुए श्रीकृष्णको बुलानेके लिये आदेश देना, युधिष्ठिरका भीमसेनको श्रीकृष्णको बुलानेके लिये आदेश देना, भीमसेनका द्वारकामें पहुँचना, वहाँ श्रीकृष्णके भोजनका वर्णन और सत्यभामा और देवकीका वार्तालाप, श्रीकृष्णका अपने पास आते हुए भीमसेनको रोकना

युधिष्ठिर उवाच

कथं लक्ष्मीः स्थिरा तात प्राणिनां जायते गृहे।
गोविन्देन सहावासः कथं जायेत तद् वद ॥ १ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—तात! प्राणियोंके घरमें किस उपायसे लक्ष्मी स्थिर होकर रहती हैं तथा कैसा कर्म करनेसे उनका भगवान् गोविन्दके साथ मनुष्योंके घरमें निवास होता है? उसे बताइये ॥ १ ॥

व्यास उवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि यथा लक्ष्मीः स्थिरा भवेत्।
सत्यं शौचं विशेषेण प्राणिनां शिवचिन्तनम् ॥ २ ॥
तत्र स्थिरायते लक्ष्मीस्तत्र नारायणो हरिः।

व्यासजी बोले—वत्स! जिस प्रकार लक्ष्मी स्थिर होकर निवास करती हैं, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। जहाँ सत्य और पवित्रताका पालन होता है तथा विशेष-रूपसे प्राणियोंके हितका चिन्तन किया जाता है, वहाँ लक्ष्मी स्थिर रहती हैं और भगवान् श्रीहरि भी वहीं निवास करते हैं॥

मातरं पितरं पुत्रो भ्रातरं ज्येष्ठमेव च ॥ ३ ॥
मन्यते बान्धवगणं तत्र लक्ष्मीः स्थिरायते।

जहाँ पुत्र माता, पिता, ज्येष्ठ भाई तथा बन्धुगणोंका आदर-सत्कार करता है, वहाँ लक्ष्मी स्थिर हो जाती हैं॥

भार्या पतिपरा यत्र पतिः क्रोधवशो न चेत् ॥ ४ ॥
कृतं जानाति योऽमानी कूटसाक्ष्यं न यो वदेत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्राद्धं न वञ्चयेद् यस्तु वित्तशाठ्येन पैतृकम् ॥ ५ ॥
श्रद्धावान् कुरुते कर्म दत्त्वा दानं न यो वदेत् ।
कृत्वा शूरत्वमाजौ हि न भवेद् यो विकत्थनः ॥ ६ ॥
परस्त्रियं हि वन्देत मातृतुल्यां महीपते ।
आरामकारकश्चैव वापीकूपमठादिकृत् ॥ ७ ॥
तडागसत्रप्रासादविप्रमन्दिरकारकः ।
कन्यादानं च यो दद्यात् सदा तीर्थावगाहकः ॥ ८ ॥
सदा दानपरोऽतीतः पापाच्चैव नरोत्तमः ।
एवंविधं नरं पार्थ रमा संश्रयते भुवि ॥ ९ ॥

पार्थ ! जहाँ पत्नी पतिपरायणा होती है और पति क्रोधके अधीन नहीं होता, जो स्वयं मान न करके दूसरेके किये हुए उपकारको मानता है, जो झूठी गवाही नहीं देता, कंजूसी करके पिताके श्राद्धका उल्लङ्घन नहीं करता, श्रद्धापूर्वक यथोचित कर्म करता है तथा दान देकर उसका ढिंढोरा नहीं पीटता है, जो युद्धस्थलमें वीरता दिखाकर अपने मुखसे अपनी प्रशंसा नहीं करता, परायी स्त्रीको माताके समान समझकर उसकी वन्दना करता है, जो बगीचा लगानेवाला तथा बावड़ी, कुआँ और देवमन्दिर बनवानेवाला है, जो पोखरा, यज्ञशाला और ब्राह्मणोंके गृहका निर्माण करानेवाला है, जो कन्यादान करनेवाला तथा तीर्थस्नायी होता है तथा जो सदा दानपरायण और सभी पापोंसे दूर रहता है—लक्ष्मी इस भूतलपर ऐसे ही श्रेष्ठ पुरुषोंका आश्रय लेती हैं ॥४–९॥

दुष्टात्मानं त्यजेल्लक्ष्मीः पिशुनं वृषलीपतिम् ।
तथा च द्यूतकर्तारं द्यूतं च तव सुप्रियम् ॥ १० ॥
प्रथमं वारिताश्चासि सर्वैः पार्थिव बन्धुभिः ।
दुर्योधनादिभिः सार्द्धं कृतं द्यूतं वराटकैः ॥ ११ ॥
अक्षैश्चतुर्भिर्भवता क्रीडितं न च शोभनम् ।

जो दुष्टात्मा, चुगलखोर, शूद्राके साथ समागम करनेवाले और जुआरी हैं, उनको लक्ष्मी त्याग देती हैं । परंतु जूआ तो तुम्हें भी बहुत प्रिय है । भूपाल ! पहले तुम्हारे सभी भाइयोंने तुम्हें जूआ खेलनेसे रोका था, तो भी तुमने (क्षुद्र प्रकृतिवाले) दुर्योधन आदिके साथ कौड़ियों या पासोंसे जूआ खेला ही । उस समय तुमने चार पासोंसे जूआ खेला था, किंतु उसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ ॥१०-११½॥

जितमित्येव शकुनिः सह तातामैर्नरैः ॥ १२ ॥
मया तदैव विज्ञातं कौरवाणां ध्रुवं क्षयः ।
स त्वं श्रिया परित्यक्तो द्यूतदोषेण भारत ॥ १३ ॥

तात ! जिस समय अधम पुरुषोंके साथ बैठे हुए शकुनिने 'मैंने जीत लिया' ऐसी घोषणा की, उसी समय मैंने समझ लिया था कि अब कौरवोंका विनाश निश्चित है । भारत ! उसी जूएके दोषसे लक्ष्मीने तुम्हारा भी परित्याग कर दिया था॥

त्यज्यते स श्रिया नित्यं परान्ने यस्तु लम्पटः ।
मदिरापानमत्तो यो मृगयासक्तचेतनः ॥ १४ ॥
साधुनिन्दाकरो यस्तु यस्त्वारामादिभञ्जकः ।
तस्करः काञ्चनादीनां धातूनां च तथा नृप ॥ १५ ॥

राजन् ! जो सदा दूसरेके अन्नका लोभी और मदिरापान करके नशेमें चूर रहता है, जिसका चित्त शिकार खेलनेमें आसक्त होता है, जो सत्पुरुषोंकी निन्दा करनेवाला है, बाग-बगीचा आदिको कटवा डालता है तथा सुवर्ण आदि धातुओंकी चोरी करनेवाला है, ऐसे लोग लक्ष्मीसे रहित हो जाते हैं ॥ १४-१५ ॥

रसानां चैव धान्यानां पुस्तकस्यापहारकः ।
तृणकाष्ठसमूहानां फलादीनां नराधिप ॥ १६ ॥
स्तेनोऽपि वस्तुजातानां स श्रिया त्यज्यते नरः ।

जनेश्वर ! जो रासायनिक पदार्थ, धान्य, पुस्तक, तृण, काष्ठ और फल आदिका अपहरण करनेवाला है । यहाँतक कि वस्तुमात्रकी चोरी करनेवाला है, ऐसे पुरुषका लक्ष्मी परित्याग कर देती हैं ॥ १६½ ॥

अमायां रविसंक्रान्तौ व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ १७ ॥
पितृक्षयाहे तीर्थे यो मैथुनी न रमास्पदम् ।
इति ते कथिता धर्मा अत ऊर्ध्वं निशामय ॥ १८ ॥

जो अमावस्या तिथि, सूर्यकी संक्रान्ति, व्यतिपात और वैधृति योग, पिताकी मृत्युतिथि और तीर्थमें मैथुन करता है, वह लक्ष्मीका पात्र नहीं रह जाता । इस प्रकार मैंने तुमसे धर्मके विषयमें वर्णन किया । अब आगेके कर्तव्यके विषयमें सुनो॥

समानय त्वं गोविन्दं यथा यज्ञः प्रजायते ।
विना तु वासुदेवं ते न हि वासः सुखावहः ॥ १९ ॥

राजन् ! अब तुम भगवान् श्रीकृष्णको बुलवाओ, जिससे यज्ञ-कार्य आरम्भ हो; क्योंकि उन वासुदेवके बिना आपका निवासस्थान सुखप्रद नहीं प्रतीत होता ॥ १९ ॥

जैमिनिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मुनेरमिततेजसः ।
प्रत्युवाच ततो राजा भीमं विनयतत्परम् ॥ २० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! अमित तेजस्वी महर्षि व्यासकी यह बात सुनकर राजा युधिष्ठिरने विनम्र रहनेवाले भीमसेनसे कहा ॥ २० ॥

युधिष्ठिर उवाच

भीम याहि महाबाहो कृष्णं प्रति ममाज्ञया ।
तमानयाशु गोविन्दं पुत्रपौत्रसमन्वितम् ॥ २१ ॥
यशोदां देवकीं देवीं सत्यभामां च रुक्मिणीम् ।

युधिष्ठिर बोले—महाबाहु भीमसेन ! तुम मेरी आज्ञासे भगवान् श्रीकृष्णके पास जाओ और पुत्र-पौत्रोंसहित उन गोविन्दको तथा यशोदा, देवी देवकी, सत्यभामा और रुक्मिणीको शीघ्र ही यहाँ लिवा लाओ ॥ २१½ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य धर्मराजस्य धीमतः ॥ २२ ॥
नमस्कृत्य च तं भीमः प्रतस्थे द्वारकां प्रति ।

बुद्धिमान् धर्मराजका यह वचन सुनकर भीमसेन उन्हें प्रणाम करके द्वारकाके लिये चल पड़े ॥ २२½ ॥

मार्गे बहुविधान् देशानतिचक्राम सत्वरः ॥ २३ ॥
नानाविधानि रम्याणि नानावृक्षयुतानि च ।
वनानि समतिक्रम्य चचार पवनात्मजः ॥ २४ ॥

मार्गमें उन्होंने शीघ्रतापूर्वक चलकर बहुत-से देशोंको पार किया । पवननन्दन भीमसेन अनेक प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुए बहुत-से मनोहर वनोंको लाँघकर आगे बढ़ गये॥ २३-२४॥

पर्वतान् विविधान् रम्याञ्छिखरैरतिशोभितान् ।
अतिवेगवतीश्चैव सरितो विपुलाः पथि ॥ २५ ॥
अतिक्रम्य ददर्शासौ दूरात् कृष्णपुरीं तदा ।

द्वारकाके पथमें पड़नेवाले अपने शिखरोंद्वारा सुशोभित बहुत-से रमणीय पर्वतों तथा अत्यन्त वेगपूर्वक बहनेवाली बड़ी-बड़ी नदियोंको लाँघनेके बाद उन्होंने दूरसे ही श्रीकृष्णकी पुरी द्वारकाको देखा ॥ २५½ ॥

सुवर्णकलशोपेतां तोरणैरतिशोभिताम् ॥ २६ ॥
चन्दनोदकसेकेन सिक्तमार्गां तथैव च ।
हृष्टपुष्टजनोपेतामुग्रसेनेन पालिताम् ॥ २७ ॥
नानावृक्षसमाकीर्णैर्नानावल्लिविराजितैः ।
क्रीडावनैर्विराजन्तीं प्राकारैः परिखावृताम् ॥ २८ ॥
अक्रूराद्या यत्र भक्ताः सेवन्ते गरुडध्वजम् ।
रुक्मिणीसत्यभामाद्याः स्त्रियो भगवतश्च याः ॥ २९ ॥
ताः सर्वा भगवत्प्रीत्या यस्यां सेवन्ति तं हरिम् ।
एवंविधां द्वारकां तां दृष्ट्वा भीमो महाबलः ॥ ३० ॥
हर्षेण महता युक्तो बभूव जनमेजय ।
द्वारकाया बहिर्देशे महासरसि शोभने ॥ ३१ ॥
स्नात्वा सर्वविधिं कृत्वा प्रवेशायोपचक्रमे ।
परद्वारेण सम्प्राप्य द्वारवत्यां वृकोदरः ॥ ३२ ॥

वह पुरी सोनेके कलशोंसे युक्त एवं बड़े-बड़े फाटकोंसे सुशोभित हो रही थी । उसके राजमार्ग चन्दनमिश्रित जलसे सिंचे हुए थे । वह हृष्ट-पुष्ट लोगोंसे भरी हुई थी । महाराज उग्रसेनद्वारा वह पुरी सुरक्षित थी । नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त एवं अनेक तरहकी लताओंसे सुशोभित क्रीडा-उद्यानोंसे उसकी विशेष शोभा हो रही थी । वह परकोटे और खाइयोंसे घिरी हुई थी । वहाँ अक्रूर आदि भक्त भगवान् गरुडध्वजकी सेवा करते थे । उस पुरीमें भगवान् श्रीकृष्णकी जो रुक्मिणी और सत्यभामा आदि पटरानियाँ थीं, वे सभी भगवान्‌के प्रति प्रेम होनेके कारण वहाँ उन श्रीहरिकी सेवा करती रहती थीं । ऐसी द्वारकापुरीको देखकर महाबली भीमसेनको महान् हर्ष हुआ । जनमेजय ! फिर उन्होंने द्वारकापुरीके बाहरी प्रदेशमें स्थित एक सुन्दर सरोवरमें स्नान किया और अपने सभी नित्य-नियमोंको पूरा करके पुरीमें प्रवेश करनेके लिये वे आगे बढ़े तथा पश्चिम दरवाजेसे द्वारकापुरीके भीतर जा पहुँचे ॥ २६–३२ ॥

यदा प्रवेशं कुरुते मन्दिरे माधवस्य सः ।
तदा स कुरुते कृष्णो भोजनं बहुभिर्वृतः ॥ ३३ ॥
रम्यं तु देवकीदत्तं पात्रे वै काञ्चने शुभे ।
कचोलानां चतुःषष्ट्यस्ते सुघटिते हरिः ॥ ३४ ॥

जब उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके महलमें प्रवेश किया, उस समय वे श्रीहरि बहुत-से लोगोंके साथ भोजन कर रहे थे । माता देवकीने सुन्दरताके साथ बनायी गयी एक सोनेकी सुन्दर थालीमें, जिसके भीतर चौंसठ कटोरियाँ सजाकर रखी गयी थीं, बढ़िया अन्न परोसकर उनके सामने रख दिया था ॥ ३३-३४ ॥

पायसं चन्द्रसंकाशं सितशर्करया युतम् ।
भक्तं कुमुदवर्णाभं मुद्गदालिस्तथैव च ॥ ३५ ॥
नानाव्यञ्जनसंयुक्तं त्रिभिः षड्भिरेव च ।
निम्बूरसेन सार्द्रेण फलमूलयुतेन च ॥ ३६ ॥

उस भोजनमें श्वेत शकरसे मिश्रित चन्द्रमाके समान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उज्ज्वल वर्णकी खीर, कुमुदके सदृश सफेद भात और मूँगकी दाल थी। वह भात तीन पङ्क्तियोंमें सजाये गये नाना प्रकारके व्यञ्जनोंसे संयुक्त था। वह भोजन नीबूके रस, अदरख और फल-मूलसे युक्त था ॥ ३५-३६ ॥

विकृतानि कृतान्येव शतशो भोजने विभो।
मरीचं पिप्पली चार्द्रं रम्भा शर्करया युता ॥ ३७ ॥
सितया सहितेनाथ दुग्धेन कथितेन च।
घृतं सितायुतं देव्या दत्तं प्रीत्या यशोदया ॥ ३८ ॥
पूरिकाश्च तथा क्षीरविकाराश्च प्रसाधिताः।
मृद्वीकाशिंशुपाचूतकरमर्दकृताः शुभाः ॥ ३९ ॥

प्रभो! उस भोजन-सामग्रीमें सैकड़ों प्रकारकी उत्तम वस्तुएँ तैयार करके रखी गयी थीं। उसमें काली मिर्च, पीपर और अदरख भी थे। केलेके फल और शक्कर भी रखे गये थे। चीनी डालकर औंटाया हुआ दूध परोसा गया था। यशोदा मैयाने प्रेमपूर्वक मिश्री मिलाया हुआ घी (माखन) परोसा था। अनेक प्रकारकी पूरियाँ थीं। दूधसे बनाये गये रबड़ी-मलाई आदि पदार्थ भी प्रस्तुत किये गये थे। मुनक्का, शिंशुपा-फल आम और करौंदेकी बनी हुई सुन्दर-सुन्दर चटनी आदि सामग्रियाँ भी थीं ॥ ३७–३९ ॥

मरीचपिप्पलीयुक्ता एलाचन्द्रकसंयुताः।
कथिताः कथिका यस्मिन् भोजने भूरिशो हरेः ॥ ४० ॥

श्रीहरिके उस भोजनमें काली मीर्च, पीपर, इलायची और कपूर मिलाकर औंटायी गयी कथिका (कढ़ी) की मात्रा अधिक थी ॥ ४० ॥

प्रलेहिकाः कृता यत्र कचोले रससंयुताः।
नानाकुसुमसम्मोदयुक्ताः सूदैः कृता हि ताः ॥ ४१ ॥

कटोरियोंमें रसदार चटनी रखी गयी थी, जिसे रसोइयोंने नाना प्रकारके पुष्पोंकी सुगन्ध (इत्र) से सुवासित करके तैयार किया था ॥ ४१ ॥

मण्डका वर्तुला रम्याः समाः सर्वत्र बिम्बवत्।
मधुयुक्तेन गव्येन युक्ते तस्मिन् सुभाजने ॥ ४२ ॥
काञ्चने तु कचोले वै स्थितं काञ्चनसुप्रभम्।
घृतं सुवासितं प्रीत्या दत्तं देव्या यशोदया ॥ ४३ ॥

मधु और दहीसे युक्त उस सुन्दर पात्रमें मैदेकी रोटियाँ शोभा पा रही थीं, जो देखनेमें सुन्दर, गोल-गोल, चन्द्रमाके बिम्बके समान तथा सब ओरसे बराबर थीं। सोनेकी कटोरीमें स्वर्णकी सी आभावाला सुगन्धित घी रखा था, जिसे देवी यशोदाने प्रेमपूर्वक परोसा था ॥ ४२-४३ ॥

तत्र गोधूमचूर्णेन चन्द्रकेण विलोडितम्।
घृतं न दृश्यते तत्र काञ्चनप्रभयान्वितम् ॥ ४४ ॥

वहाँ गेहूँका आटा और कपूर डालकर विलोया हुआ घृत रखा था, जिसकी प्रभा सुवर्णके समान थी। वह उस सोनेकी कटोरीमें उसीकी प्रभाके साथ इस प्रकार मिल गया था कि पृथक् दिखायी ही नहीं देता था ॥ ४४ ॥

सौहालिकाः पूरिकास्तु शतच्छिद्रास्तु वेष्टिकाः।
पूपिकास्तु तथा क्षीरविकारास्तु प्रकाशिताः ॥ ४५ ॥

वहाँ सोहाल या सोहारी, पूरी, शतछिद्र (घेवर), जलेबियाँ, पूए तथा दूधसे बने हुए रबड़ी-मलाई-दही आदि पदार्थ चमक रहे थे ॥ ४५ ॥

मणयः सूत्रसंघाश्च मालतीकुसुमादयः।
पर्पटाः कर्बुरा रम्या माषकूष्माण्डसंयुताः ॥ ४६ ॥

मणि (गोझा या गुझिया), सूत्रसंघ (सेंवई या भुजिया), मालतीकुसुम आदि (मिष्टान्नविशेष) और उड़द तथा कुम्हड़ेसे बने हुए सुन्दर चितकबरे पापड़ भी थे ॥ ४६ ॥

वटकान् विविधान् रम्यान् भुङ्क्तेवै देवकीसुतः।
हिङ्गुजाजीरमरिचैः पूरितार्द्रेण ते शुभाः ॥ ४७ ॥

देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण अनेक प्रकारके बड़े खा रहे थे। वे बड़े हींग, जीरा, काली मिर्च और अदरखसे युक्त एवं सुन्दर थे ॥ ४७ ॥

शुक्लेन लवणेनापि शुद्धतैलेन पूरिताः।
कुङ्कुमाभाः स्नेहहीनाः सक्षता इव दुर्जनाः ॥ ४८ ॥

कुछ बड़े सेंधानमक डालकर शुद्ध तैलमें तले हुए थे, उनकी कान्ति कुङ्कुमकी-सी दीख रही थी। किसीके द्वारा चोट खाये हुए दुष्ट मनुष्य उसके प्रति स्नेहहीन हो जाते हैं, उसी प्रकार उन बड़ोंमें भी स्नेह (चिकनाई) की प्रतीति नहीं होती थी ॥ ४८ ॥

दधिदुग्धयुताः केचिच्छ्रिण्णीचूतसंयुताः।
द्राक्षारसयुताः केचित् तथान्ये कथिकायुताः ॥ ४९ ॥

कुछ बड़े दुग्धमिश्रित दहीमें भिगोये गये थे। कुछमें इमली और आमका रस पड़ा हुआ था। कुछ दाखके रसमें भीग रहे थे और कुछमें कढ़ी पड़ी हुई थी ॥ ४९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजिकाजलमध्याश्च शुभान्ये सितया युताः।
रसैश्चतुर्भिश्चैवान्ये वटका नवधा स्थिताः ॥ ५० ॥

कुछ राईके जलमें भिगोये गये थे तो कुछ खाँड़में पगे हुए थे और कुछ चार प्रकारके रसोंसे संयुक्त थे। इस तरह वहाँ नौ प्रकारके बड़े रखे थे ॥ ५० ॥

वज्रप्रभास्तु कनकाश्चारबीजसुखारिकैः।
शकलैर्नारिकेलस्य लवङ्गशतसंयुतैः ॥ ५१ ॥

उस थालमें कनक (बर्फी) नामवाले पदार्थ हीरेकी भाँति चमक रहे थे, उनमें चारबीज, सुखारिक, गरीके टुकड़े और सैकड़ों लौंग पड़े थे ॥ ५१ ॥

घृतक्षीरसितान्यस्ताः कटाहे तु प्रलोडिताः।
लब्ध्वा सितास्तु कृसरं रम्यास्तत्रैव फेनिकाः ॥ ५२ ॥

वहीं फेनिका (फेनी) नामक मिठाइयाँ रखी थीं, जो कड़ाहीमें घी, दूध और चीनी डालकर पलटेसे उलट-पलटकर तैयार की गयी थीं। शक्कर और खिचड़ीके मेलसे उनकी मनोहरता और बढ़ गयी थी ॥ ५२ ॥

पेडारिकास्तु वै बह्व्यः कृता राजन् कवोष्णिकाः।
मोदकास्तत्र सम्भूताश्चारबीजभवाः परे ॥ ५३ ॥
सितया तु कृताश्चान्ये दुग्धाज्येन विनिर्मिताः।
नारिकेलफलैश्चान्ये वृक्षनिर्यासनिर्मिताः ॥ ५४ ॥
चणकैश्च शुभाश्चान्ये तिलैश्चणकबीजकैः।
ईदृशान् मोदकान् रम्यान् कृष्णस्यार्थे तु भोजने ॥ ५५ ॥

राजन्! उस थालमें बहुत-से पेड़े परोसे गये थे, जो कुछ गरम थे। वहीं लड्डू भी थे, जिनमें कुछ चारबीज (मोतीचूर) के और कुछ बेसनके बने हुए थे। कुछ खाँड़के बने थे और कुछका निर्माण घी और दूध डालकर हुआ था। कुछ नारियलके फलोंसे तथा कुछ वृक्षोंकी गोंदसे निर्मित हुए थे। कुछ सुन्दर लड्डू केवल चनेके बने हुए थे और कुछको तिल एवं चनेके सम्मिश्रणसे तैयार किया गया था। श्रीकृष्णके लिये परोसे गये उस भोजनमें इतने प्रकारके बढ़िया लड्डू थे ॥ ५३–५५ ॥

अर्शोघ्नं मानिनीकन्दं सिन्धुवारेन्द्रवाहकम्।
नारङ्गं चिञ्चिणीकन्दं कौकुरीफलमेव च ॥ ५६ ॥
दशारं कर्कटीजातं शुभं निम्बफलं शिवम्।
टिण्टाफलं लवङ्गं च श्रीफलं नीरकल्ककम् ॥ ५७ ॥
वल्कलं वंशकारीरं तथा कायफलं नवम्।
द्राक्षाफलं चूतफलं रम्यं कण्टकितं फलम् ॥ ५८ ॥
धात्रीफलं शुक्तिभवं फलमम्बाडकं तथा।
रम्भाफलं पिप्पली च मरीचाश्च मनोहराः ॥ ५९ ॥

उस थालमें बवासीरका विनाश करनेवाला जमीकन्द, सिंधुवार, इन्द्रवाहक, नारंगी, इमलीका गूदा, कौकुरीफल, दस धारियोंवाली ककड़ी, मङ्गलकारक सुन्दर निम्बफल (नीबू), टिंटाफल (टिंडा), लौंग, बेल, नीलकल्क, वल्कल, वंशकारीर, नवीन कायफल, दाख, आम, सुन्दर कटहल, आँवला, बादाम, अम्बाडक (अमड़ा), केला, पीपर और सुन्दर मिर्चें भी थे ॥ ५६–५९ ॥

शुद्धसर्षपतैलेन लवणेन च वेष्टितम्।
तथा राजिकया सिद्धं त्रिभिर्वर्षैर्घटे स्थितम् ॥ ६० ॥

जिनमें नमक तथा राई भरकर शुद्ध सरसोंके तेलमें डालकर तीन वर्षतक घड़ेमें रखकर उनका अचार तैयार किया गया था ॥ ६० ॥

भुङ्क्ते च भगवांस्तत्र देवकीवाक्यतोषितः।
समीपस्था रुक्मिणी तु लक्ष्मणा चारुलोचना ॥ ६१ ॥
सत्यभामा जाम्बवती व्यजनेन समन्विताः।
चारुनूपुरसंराचा रणद्वलयमेखलाः ॥ ६२ ॥

वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण माता देवकीके वचनोंसे संतुष्ट हो भोजन कर रहे थे। उस समय उनके समीप रुक्मिणी, सुन्दर नेत्रोंवाली लक्ष्मणा, सत्यभामा और जाम्बवती हाथमें पंखा लिये खड़ी थीं। उनके सुन्दर पायजेब बज रहे थे तथा कंगन और करधनीसे भी रुनझुन शब्द निकल रहे थे ॥ ६१-६२ ॥

हारकेयूरशोभिन्यः कृष्णपार्श्वे सुसंस्थिताः।
पृथक् पृथङ्निरीक्षन्त्यो वीजयन्त्यो हसन्ति च ॥ ६३ ॥

वे हार और बाजूबंदसे सुशोभित होकर श्रीकृष्णके पार्श्वभागमें खड़ी थीं और पंखा झलती हुई पृथक्-पृथक् उनकी ओर देखकर हँस रही थीं ॥ ६३ ॥

कथयन्त्यः कथाः काश्चिन्निरीक्षन्त्यो जगत्प्रभुम्।
पारिजातभवान्यानि बिभ्रत्यः कुसुमानि ताः ॥ ६४ ॥
सत्यभामा स्मितं कृत्वा कृष्णं वचनमब्रवीत्।

उस समय वे पारिजातके पुष्पों तथा अन्य प्रकारके फूलोंसे भी विभूषित थीं और जगदीश्वर श्रीकृष्णको निहारती हुई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

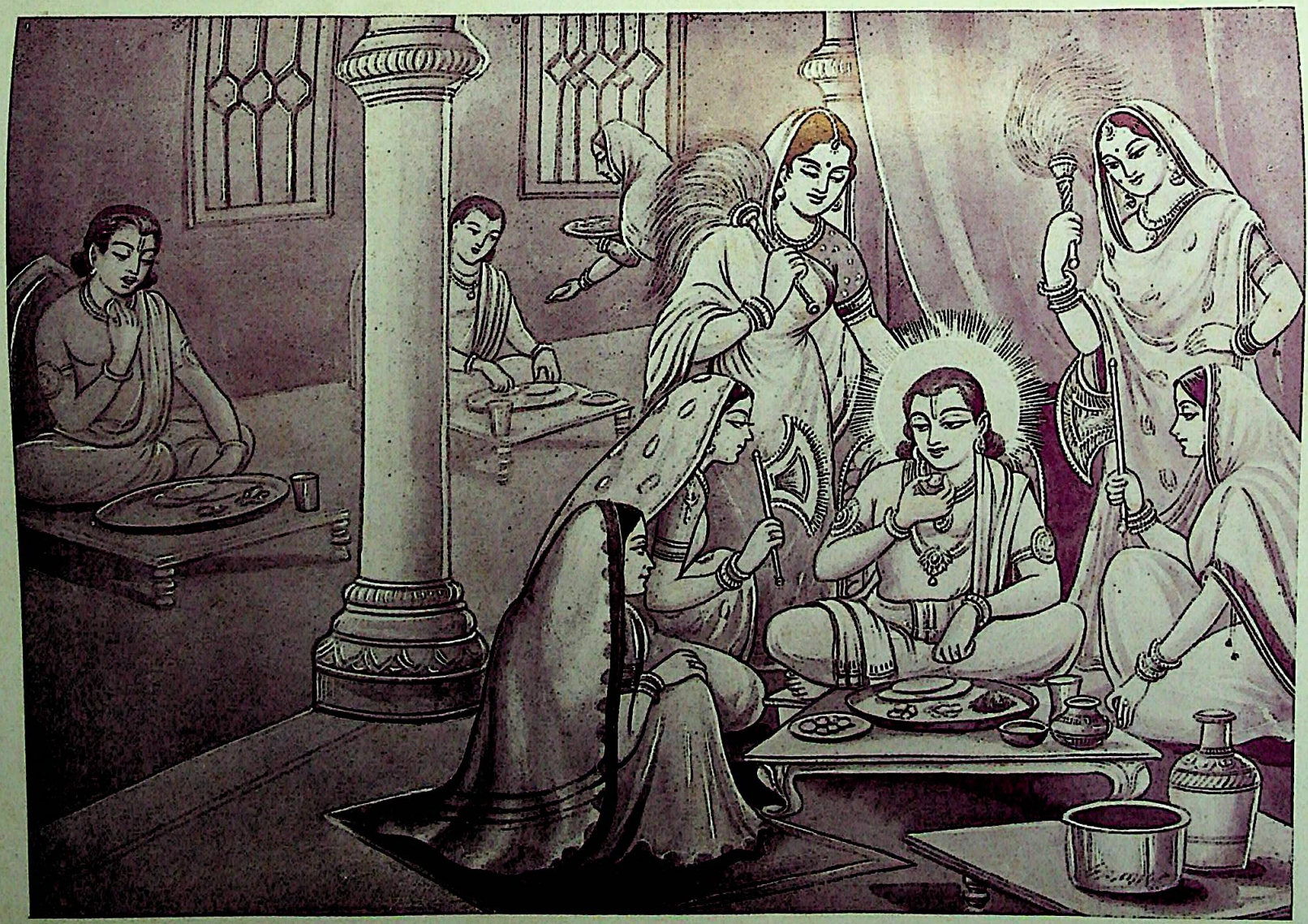

पटरानियोंके बीचमें भोजन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तरह-तरहकी कथाएँ कह रही थीं। तब सत्यभामाने मुसकराकर श्रीकृष्णसे कहा ॥ ६४½ ॥

सत्यभामोवाच

साम्प्रतं भोजनं कृष्ण समीचीनं सुशिक्षितम् ॥ ६५ ॥
गोपालत्वं परित्यज्य तक्रपानं तथोदकम्।
ईषन्नम्रो भवान् भूत्वा दुग्धं पक्वं तु यः पुरा ॥ ६६ ॥
पीत्वा च धावसेऽरण्ये कालिन्दीतीरसंस्थितः।
गोपालानां यदन्नानि हरसे तत्तु विस्मृतम् ॥ ६७ ॥

सत्यभामा बोलीं—श्रीकृष्ण ! इस समय आपने ग्वालेपनका परित्याग करके मट्ठा और जल पीना छोड़कर अच्छी तरह भोजन करना सीख लिया। पहले तो आप थोड़ा नम्र होकर औंटाया हुआ दूध पीकर वनमें गायोंके पीछे दौड़ते-फिरते थे तथा यमुना-तटपर खड़ा होकर ग्वालोंका अन्न छीना करते थे। वह सब तो भूल गया है ॥६५-६७॥

इदानीं मानुषं धर्मं जानाति सकलं भवान्।
धर्मपुत्रस्य सङ्गत्या विज्ञातं भवताखिलम् ॥ ६८ ॥

इस समय आप सारे मानवोचित धर्मको जान गये हैं। धर्म-नन्दन युधिष्ठिरकी संगतिसे आपको अब सब बातोंका ज्ञान हो गया है ॥ ६८ ॥

चामरैर्वीज्यते दिव्यैः पश्य रुक्मिणि वैभवम्।
अस्याश्रयेण मे नाशः कर्मणः सम्भविष्यति ॥ ६९ ॥

बहिन रुक्मिणी! इस समय इनका ऐश्वर्य तो देखो, अब इनके ऊपर दिव्य चँवर डुलाये जा रहे हैं। इनका आश्रय ग्रहण करनेसे मेरे कर्मोंका सर्वथा विनाश हो जायगा ॥ ६९ ॥

मत्तोऽन्यां पट्टमहिषीमात्मानं च सुशोभनम्।
न मां पश्यति कल्याणि भुञ्जानां कर्मणां फलम् ॥ ७० ॥

कल्याणि ! ये मतवाले-से होकर न तो दूसरी पटरानीको देखते हैं, न अपने ही सुन्दर रूपपर दृष्टिपात करते हैं और न अपने कर्मके फलको भोगती हुई मेरी ओर ही कभी दृष्टि डालते हैं ॥ ७० ॥

आयामि यामि पुरतो न मां वारयते हरिः।
वेदभाषितमाकर्ण्य कृष्णे मे रमते मनः ॥ ७१ ॥
तस्मान्मयापि क्रियते सेवनं सर्वदा क्षितौ।

बहिन ! मैं बारंबार इनके सामनेसे आती-जाती हूँ, परंतु ये श्रीहरि कभी मुझे मना नहीं करते हैं (मेरी ओर-से उदासीन बने रहते हैं), फिर भी (ईशावास्यमिदं सर्वम्—यह सारा जगत् इन परमेश्वर श्रीकृष्णसे ही व्याप्त है—यह) वेदोंका वचन सुनकर मेरा मन इन श्रीकृष्णमें ही रम रहा है। इसी कारण मैं भी इस भूतलपर सदा इनकी सेवा करती रहती हूँ ॥ ७१½ ॥

देवक्युवाच

न लज्जसे कथं त्वं तु ब्रुवन्ती केशवं प्रति ॥ ७२ ॥
अहं तथास्य जननी वसुदेवोऽस्य वै पिता।
उभाभ्यां क्रियते कर्म कृष्णतुष्टिकरं परम् ॥ ७३ ॥

सत्यभामाके यों कहनेपर देवकीने कहा—अरी सत्यभामे ! श्रीकृष्णके सम्बन्धमें ऐसी बातें कहते हुए तुझे लज्जा क्यों नहीं आती ? मैं इनकी माता हूँ और वसुदेवजी इनके पिता हैं, तो भी हम दोनों श्रीकृष्णको ही हर्ष प्रदान करनेवाले उत्तम कर्मोंको करते रहते हैं ॥ ७२-७३ ॥

निखिलोऽयं पुरा देहे विधृतस्तु मया लघुः।
अहं करोम्यस्य कर्मब्रुवती त्वं न लज्जसे ॥ ७४ ॥

पहले इन पूर्ण परमेश्वरको मैंने लघु शिशुके रूपमें अपने शरीरके भीतर (गर्भमें) धारण किया था। (तो भी मैं तो कुछ नहीं कहती और) तू कहती है कि 'मैं इनकी सेवा करती हूँ।' क्या ऐसा कहते तुझे लज्जा नहीं आती ? ॥७४॥

ममोदरे यदा प्राप्तस्तदा प्राप्तं सुबन्धनम्।
वसुदेवेन वीरेण पश्य त्वं कर्मणो गतिम् ॥ ७५ ॥

अरी ! तू कर्मकी गति तो देख, जिस समय ये मेरे गर्भमें आये, उस समय वीर वसुदेवजी गाढ़ बन्धनमें पड़ गये (बंदी बना लिये गये) थे ॥ ७५ ॥

अलक्ष्यलक्षणश्चायं संवृतः शत्रुसूदनः।
तस्मान्माता चास्य पिता न भार्या प्राप्नुते सुखम् ॥ ७६ ॥

ये शत्रुसंहारक श्रीकृष्ण सब तरहसे अपनेको छिपाये रखते हैं। इनके लक्षण किसीके जाननेमें नहीं आते। अतः इनके माता, पिता और पत्नीको जो सुख नहीं मिल रहा है (इसमें उनका प्रारब्ध कर्म ही कारण है) ॥ ७६ ॥

सर्वे स्वकर्मणा भद्रे जीवन्त्येव हि मानवाः।
ये भजन्ति हरिं कृष्णं प्राप्नुयुस्ते सुखं शुभे ॥ ७७ ॥

भद्रे ! सभी मनुष्य अपने प्रारब्ध-कर्मानुसार ही जीवन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धारण करते हैं, परंतु शुभे ! जो इन श्रीकृष्णका भजन करते हैं, उन्हें अवश्य सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ७७ ॥

सत्यभामोवाच

भवत्या साधु वचनं प्रोक्तं कृष्णस्य संनिधौ ।
तत् कथं वै प्रशंसन्ति सर्वे विप्रा जनार्दनम् ॥ ७८ ॥
एनं हि तावकं पुत्रं विक्षयस्तत्र मे परः ।
कर्मणां नाशकृद् देवो महतां देवकीसुतः ॥ ७९ ॥

तब सत्यभामा बोली—आर्ये ! इन श्रीकृष्णके समक्ष आपने यथार्थ बात कही है, परंतु मुझे तो इस बातपर परम आश्चर्य हो रहा है कि सभी ब्राह्मण आपके पुत्र इन जनार्दन-की यह कहकर प्रशंसा क्यों करते हैं कि देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण महान्[1] पुरुषोंके कर्मोंका विनाश करनेवाले हैं ॥ ७८–७९ ॥

अस्मिन् देहे महत् कष्टं कुर्वाणां वेत्ति माधवः ।
हृदये तु धृतः पूर्वं त्वया नैव निरीक्षितः ॥ ८० ॥
मया तु धार्यते भद्रे हृदये परिदृश्यते ।
तस्मान्मे कर्मणां नाशः क्रियते ह्यमुना शुभे ॥ ८१ ॥

देवि ! (बड़े-बड़ोंके कर्मोंका नाश करनेवाले) ये माधव इस जन्ममें मुझ महान् कष्ट सहन करनेवालीको भी जानते ही हैं । भद्रे ! पहले गर्भावस्थामें आपने इन्हें हृदयमें तो धारण किया था, परंतु इनका दर्शन नहीं किया था । मैं तो इन्हें प्रेमपूर्वक हृदयमें भी धारण करती हूँ और प्रत्यक्ष भी देख रही हूँ । शुभे ! इसी कारणसे ये मेरे कर्मोंका नाश कर रहे हैं ॥ ८०-८१ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा प्रसन्नवदनो हरिः ।
यावद् वदति तां देवीं तावद् भीमः समागतः ॥ ८२ ॥

सत्यभामाकी यह बात सुनकर श्रीहरिका मुख हर्षसे उत्फुल्ल हो उठा और ज्यों ही वे इस देवीसे कुछ कहें, त्यों ही वहाँ भीमसेन आ पहुँचे ॥ ८२ ॥

दृष्ट्वा तदा समायान्तं हृषीकेशो वृकोदरम् ।
वारयामास हि तदा सैरन्ध्रीवचनेन तम् ॥ ८३ ॥
किं वदिष्यति भीमोऽसाविति बुद्ध्या नराधिप ।
कौतुकी भीमवचनश्रवणे सर्वदा हरिः ॥ ८४ ॥

नरेश्वर ! उन्हें आते हुए देख भगवान् हृषीकेशने सैरन्ध्रीसे कहलाकर भीमसेनको वहाँ आनेसे मना कर दिया । उन्होंने ऐसा इसलिये किया कि देखें, रोक दिये जानेपर ये भीमसेन क्या कहते हैं ? क्योंकि उन श्रीहरिके मनमें भीमसेन-की व्यङ्ग्यपूर्ण बात सुननेके लिये बड़ी उत्सुकता रहती थी ॥ ८३-८४ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि भीमागमो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें भीमसेनका आगमनविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका भीमसेनको दिखाकर भोजन करना, भीमसेनके श्रीकृष्णके प्रति आक्षेपपूर्ण वचन, श्रीकृष्णका भीमसेनको भोजन कराकर पान देना और नगरवासियोंको कृतवर्माद्वारा नगारा बजाकर हस्तिनापुर चलनेके लिये आदेश देना तथा दल-बलसहित हस्तिनापुरको प्रस्थान, मार्गमें मालिन और तेलिनकी श्रीकृष्णसे बातचीत

जैमिनिरुवाच

निवारितं तु कृष्णेन ज्ञात्वाऽमानं वृकोदरः ।
प्रहसन्नब्रवीद् राजन् मेघगम्भीरया गिरा ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजन् ! जब श्रीकृष्णने भीम-सेनको भवनमें प्रवेश करनेसे मना कर दिया, तब वे इस निषेधाज्ञाको अपना अपमान समझकर हँसते हुए मेघकी-सी गम्भीर वाणीमें बोले ॥ १ ॥

भीम उवाच

मामवज्ञाय कृष्णोऽसौ भोजनं कुरुते यदि ।
सैरन्ध्रि वद देशेऽस्मिन् किं चिकीर्षति माधवः ॥ २ ॥

१. जो परम ज्ञान अथवा पराभक्तिसे सम्पन्न हैं, वे महान् पुरुष हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मृता किं देवकी देवी सत्यभामाथवा मृता।
महर्घे किल धान्यानां मेघो राष्ट्रे न वर्षति ॥ ३ ॥
किं च पुत्रास्तथा पौत्रा राक्षसेन हता बलात्।
किं वा स्त्रीभिः सहैवायं भोजनं कुरुते हरिः ॥ ४ ॥

भीमसेनने कहा—सैरन्ध्रि! यह तो बताओ, यदि माधव श्रीकृष्ण मेरी अवहेलना करके अकेले भोजन कर रहे हैं तो वे यहाँ क्या करना चाहते हैं? क्या देवकीदेवीकी मृत्यु हो गयी? या सत्यभामाका ही स्वर्गवास हो गया? अथवा इस राज्यमें मेघोंने जलकी वर्षा नहीं की है? जिससे अन्नकी महँगी पड़ गयी है? अथवा किसी राक्षसने इनके पुत्रों और पौत्रोंका बलपूर्वक संहार कर डाला है, या ये श्रीहरि स्त्रियोंके साथ ही भोजन करते हैं? ॥ २–४ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं वदति भीमे तु कौतुकार्थं महीपते।
कृष्णश्च वादयामास फेणिकाचर्वणस्वनम् ॥ ५ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—भूपाल! भीमसेन ऐसा कह ही रहे थे कि भगवान् श्रीकृष्णने कौतुकके लिये फेनिकाओंको चबाना आरम्भ किया, जिनके दबनेसे जोर-जोरकी आवाज होने लगी ॥ ५ ॥

पर्पटानां महच्छब्दस्तत्र कृष्णेन वै कृतः।
प्रपिबन् कथिकां शब्दघण्टिकाघटनिस्वनम् ॥ ६ ॥
कुर्वन्नोष्ठपुटं रम्यं भीमसेनं प्रकोपयन्।
वृकोदरस्तु तच्छ्रुत्वा वाक्यं प्राह हसन्निव ॥ ७ ॥

फिर श्रीकृष्ण पापड़ चबाने लगे, उससे और भी जोरसे शब्द होने लगा। इसके बाद वे कढ़ी पीने लगे, जिसको घोंटनेसे गलेमें 'घट-घट' शब्द होने लगा। उस समय भीमसेनको चिढ़ानेके लिये उन्होंने होठोंकी विचित्र ही भावभंगी बना ली। तब भीमसेन उस शब्दको सुनकर हँसते हुए-से कहने लगे—॥ ६–७ ॥

तक्रं पिबति यः पूर्वं साम्प्रतं कथितं कथम्।
सूतिकां तां न जानामि यया कण्ठोऽस्य वर्धितः ॥ ८ ॥
नासाच्छेदो वधो न्याय्यः पापिष्ठायास्ततोऽधिकम्।
किमङ्गुष्ठेन जनितो मुसलेन हलेन वा ॥ ९ ॥

'अरे! जो पहले मट्ठा पीनेके ही अभ्यासी थे, वे इस समय औंटाया हुआ दूध आदि कैसे पी रहे हैं? मैं उस दाईको भी नहीं जानता, जिसने उनके गलेको बढ़ा दिया हो। यदि पता लग जाय तो उस पापिनी दाईकी नाक ही काट लेनी चाहिये अथवा उसका वध कर डालना ही उचित है। न जाने उसने इनके गलेमें अँगूठा डालकर उसे बढ़ाया था या मूसल अथवा हल डालकर' ॥ ८-९ ॥

न शृणोति यदा शब्दं पुनरेवाह पाण्डवः।
वटकः किं गले लग्नो गदया पोथयाम्यहम् ॥ १० ॥

परंतु जब श्रीकृष्णने इनकी बात अनसुनी कर दी, तब पाण्डुनन्दन भीमसेन फिर बोले—'क्या तुम्हारे गलेमें बड़ा अटक गया है? क्या मैं आकर उसे गदासे मसल दूँ?' ॥ १० ॥

धिक् धिक् तर्कं मदीयं वै यस्य कण्ठे महीधराः।
दृश्यन्ते प्रलये नित्यं विशमाना निरर्गलम् ॥ ११ ॥
वटकस्य वराकस्य गणना कात्र कीर्त्यते।
तेनाभ्यासेन गोविन्द मा कुटुम्बं प्रभक्षय ॥ १२ ॥

'नहीं, नहीं, मेरे इस तर्कको धिक्कार है! धिक्कार है!! क्योंकि प्रलयकालमें जिनके गलेमें बड़े-बड़े पर्वत नित्य बिना किसी अटकके प्रविष्ट होते देखे जाते हैं, वहाँ इस बेचारे वटक (बड़े) की क्या गिनती की जा सकती है। परंतु गोविन्द! उस प्राचीन अभ्यासके कारण कहीं अपने कुटुम्बियोंको मत निगल जाना ॥ ११-१२ ॥

दूरदेशात् समायान्तं मा मा भक्षय मामितः।
भक्षितो नैव सुखदो भविष्यामि हरे तव ॥ १३ ॥
अधो न गमनं मह्यमूर्ध्वं गन्तास्मि ते शिरः।
यत्र प्रविष्टेन मया दृश्यते सचराचरम् ॥ १४ ॥

'हरे! कहीं दूर देशसे यहाँ आये हुए मुझ भीमको ही न खा जाना, नहीं तो तुम्हारे उदरमें पहुँचकर मैं सुखदायक नहीं सिद्ध होऊँगा; क्योंकि मेरा गमन नीचेकी ओर नहीं होता। मैं सदा ऊपरकी ओर ही गमन करनेवाला हूँ। ऐसी दशामें तुम्हारे सिरकी ओर ही जाऊँगा और वहाँ प्रवेश करके चराचर विश्वको देखूँगा ॥ १३-१४ ॥

कुत्सयिष्यन्ति वै लोकास्त्वामेव पुरुषोत्तम।
आशया परया प्राप्तं भक्षमाणं हि पाण्डवम् ॥ १५ ॥
एकाकिनं भीमसेनं नृपवाक्यप्रणोदितम्।

'पुरुषोत्तम! उस समय लोग तुम्हारी ही निन्दा करते हुए कहेंगे कि 'महाराज युधिष्ठिरकी आशासे पाण्डुपुत्र भीमसेन बहुत बड़ी आशा लेकर अकेले ही आये थे, उन्हें श्रीकृष्णने खा लिया ॥ १५½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किं करिष्यति कुन्ती सा विना भीमं रसातले ॥ १६ ॥
तस्मात् पुत्रयुतां कुन्तीं भक्षयित्वा सुखी भव ।

'भीमसेनके बिना इस भूतलपर माता कुन्ती क्या करेंगी (वे आश्रयहीना हो जायँगी), इसलिये मेरे साथ-साथ तुम उन्हें भी खाकर सुखी हो जाओ ॥ १६½ ॥

पालितं धर्मराजेन त्वया चाद्य निपातितम् ॥ १७ ॥
श्रुत्वा तु भगिनी भद्रा मंस्यते त्वां तु राक्षसम् ।
कथयिष्यति कस्मै सा बाला पुत्रवियोगिनी ॥ १८ ॥

'जिसकी धर्मराज युधिष्ठिरने सदा रक्षा की है, ऐसे मुझ भीमको आज तुम्हारे द्वारा खाया गया सुनकर तुम्हारी बहिन सुभद्रा तुम्हें राक्षस समझेगी, फिर वह पुत्रहीना बाला किससे अपना दुःख निवेदन करेगी ! ॥ १७-१८ ॥

सर्वान् संहरसे त्वं च तव दोषो न जायते ।
सर्वान् सृजसि पश्चात्त्वं भीमसेनं तु मा सृज ॥ १९ ॥
सृजसे यदि मां नाथ स्वदासं न वृथा सृज ।

'प्रलयकालमें तुम्हीं सबका संहार करते हो, अतः तुमको दोष नहीं लगता है; क्योंकि पीछे (सृष्टिकालमें ब्रह्मा-रूपसे) तुम सबकी सृष्टि भी कर देते हो । परंतु नाथ ! सृष्टिकालमें इस भीमसेनकी सृष्टि मत करना और यदि मुझे उत्पन्न ही करना हो तो व्यर्थमें अपना दास न बनाना' १९½

जैमिनिरुवाच

एतद् वृकोदरवचः श्रुत्वा विस्मितमानसः ॥ २० ॥
उवाच देवकीपुत्रो भीमसेनं स्मयन्निव ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! भीमसेनकी यह बात सुनकर देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके मनमें बड़ा विस्मय हुआ और वे मुसकराते हुए-से उनसे बोले ॥ २०½ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

भीमसेन स्वागतं ते कुशल्यास्ते युधिष्ठिरः ॥ २१ ॥
मया त्वं सहितो वीर भोजनं कुरु मानद ।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भीमसेन ! तुम्हारा स्वागत है । महाराज युधिष्ठिर सकुशल तो हैं न ? दूसरेको मान देनेवाले वीर ! आओ, तुम मेरे साथ बैठकर भोजन करो ॥ २१½ ॥

भीम उवाच

तृप्तोऽसि कृष्ण पश्चान्मां परिपृच्छसि सादरम् ॥ २२ ॥
तृप्ते त्वयि जगन्नाथे परां तृप्तिं गतोऽस्म्यहम् ।

तब भीमसेन बोले—श्रीकृष्ण ! पहले तुम खाकर भलीभाँति तृप्त हो लिये, तब पीछे आदरपूर्वक मुझे खानेके लिये पूछ रहे हो । तुम तो सारे संसारके स्वामी हो, तुम्हारे संतुष्ट हो जानेपर मैं भी परम तृप्त हो गया ॥ २२½ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

भुज्यतां भवता भीम मया दत्तं महाबल ॥ २३ ॥
न च मेऽस्ति प्रियं किञ्चिद् विना पार्थाद् धनंजयात् ।
न दारा न च पुत्रो वा न मित्राणि न बान्धवाः ॥ २४ ॥
कश्चिच्चान्यः प्रियतमः कुन्तीपुत्राद् धनंजयात् ।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाबली भीमसेन ! अब तुम मेरे परोसे हुए पदार्थोंको भोजन करो । मुझे पृथापुत्र अर्जुनके बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता । मेरे लिये उन कुन्तीनन्दनसे बढ़कर स्त्री, पुत्र, मित्र, बान्धव अथवा अन्य कोई भी प्रिय नहीं है ॥ २३-२४½ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं गृहीत्वा दक्षिणे करे ॥ २५ ॥
भीमसेनं भोजयित्वा सहैव स समुत्थितः ।

इतनी बात कहकर श्रीकृष्णने भीमसेनका दाहिना हाथ पकड़कर बैठा लिया और उन्हें भोजन कराकर उनके साथ ही वे भी आसनसे उठ पड़े ॥ २५½ ॥

फणिव्रततिपत्राणि फालेयं स्निग्धशालयः ॥ २६ ॥
दिव्यचन्दनकर्पूरमुखामोदसमन्वितम् ।
गृहीत्वा भीमसेनाय ददौ देवो जनार्दनः ॥ २७ ॥

(फिर आचमन आदि करनेके पश्चात्) भगवान् जनार्दनने सुपारी, चिकने चावल (इलायची) के दाने, दिव्य चन्दन, कपूर और मुखको सुगन्धित करनेवाले पदार्थोंसे युक्त पान लेकर भीमसेनको दिया ॥ २६-२७ ॥

उवाच च तदाक्रूरं साम्बं जाम्बवतीसुतम् ।
प्रद्युम्नमनिरुद्धं च निशठं शठमेव च ॥ २८ ॥
उवाच कृतवर्माणं दुन्दुभिं ताडयाशु वै ।
यथा महाजनः सर्वो धर्मराजपुरं व्रजेत् ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने अक्रूर, जाम्बवतीनन्दन साम्ब, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, शठ और निशठको (हस्तिनापुर चलनेके लिये)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आज्ञा दी और कृतवर्माको आदेश दिया कि 'तुम शीघ्र ही नगाड़ा बजाओ, जिससे सारा जनसमुदाय धर्मराजकी नगरी हस्तिनापुरको चलनेके लिये तैयार हो जाय ॥ २८-२९ ॥

मदाज्ञया वाजिमेधं प्रयान्त्वेते यथासुखम् ।
देवकीप्रमुखाश्चैव मातरो मम यान्तु वै ॥ ३० ॥
रुक्मिणीसत्यभामाद्याः सर्वा वध्वस्तथैव च ।

'मेरी आज्ञासे ये सब लोग अश्वमेध यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये सुखपूर्वक प्रस्थान करें । साथ ही देवकी आदि मेरी माताएँ तथा रुक्मिणी और सत्यभामा आदि सभी बहुएँ भी वहाँ चलें ॥ ३०½ ॥

एक एव पुरे रामो वसुदेवसमन्वितः ॥ ३१ ॥
पालयन् द्वारकां रम्यां तिष्ठत्वत्र यथासुखम् ।
अतः परं धर्मपुत्रो हयमेधं करिष्यति ॥ ३२ ॥

'यहाँ नगरमें अकेले बलरामजी पिता वसुदेवजीके साथ रमणीय द्वारकापुरीकी रक्षा करते हुए सुखपूर्वक रहेंगे । हम लोगोंके पहुँचनेपर धर्मनन्दन युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ आरम्भ करेंगे ! ॥ ३१-३२ ॥

यत् किंचिद् विद्यते वित्तं शकटैः करभैश्च तत् ।
अश्वैरश्वतरैर्यातु धर्मराजनिकेतनम् ॥ ३३ ॥
सुवर्णमणिमाणिक्यरुक्ममुक्ताफलानि च ।
यत्राहं तत्र दारिद्र्यं कथमेतद् भवेत् क्षमम् ॥ ३४ ॥

तथा मेरे पास सुन्दर-सुन्दर रंगवाली मणियाँ, जवाहरात सुवर्ण और मोती आदि जो कुछ भी धन है, वह सब छकड़ों, ऊँटों, घोड़ों और खच्चरोंपर लादकर धर्मराजके महलमें पहुँचाया जाय; क्योंकि जहाँ मैं रहूँ, वहाँ दरिद्रता रहे—यह कैसे उचित हो सकता है ! ॥ ३३-३४ ॥

जैमिनिरुवाच

कृतवर्मा तदा राजन् समाहत्याथ दुन्दुभिम् ।
प्रोवाच स्वजनान् सर्वान् कृष्णादेशेन यादवाः ॥ ३५ ॥
सर्वाः प्रकृतयश्चैव निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ।

जैमिनिजी कहते हैं—राजन् ! उस समय कृतवर्माने श्रीकृष्णके आदेशानुसार नगाड़ा पीटकर सभी आत्मीयजनोंसे कहा—'मेरी (श्रीकृष्णकी) आज्ञासे समस्त यदुवंशी तथा सारी प्रजा हस्तिनापुरको चलनेके लिये नगरसे बाहर निकलें' ॥ ३५½ ॥

श्रुत्वा भोजवचः सर्वे द्वारकावासिनो जनाः ॥ ३६ ॥
द्रष्टुं तमश्वमेधं च धर्मराजस्य मन्दिरे ।
विनिर्गता द्वारकाया गन्तुं तन्नागसाह्वयम् ॥ ३७ ॥

कृतवर्माद्वारा श्रीकृष्णकी वह आज्ञा सुनकर समस्त द्वारकावासी जन धर्मराज युधिष्ठिरके भवनमें होनेवाले उस अश्वमेध यज्ञको देखनेकी लालसासे हस्तिनापुर जानेके लिये द्वारकापुरीसे बाहर निकले ॥ ३६-३७ ॥

परं कौतुकयुक्तास्ते कृष्णादेशेन भूपते ।
ये ये विनिर्गता राजंस्तांस्तांश्च कथयामि ते ॥ ३८ ॥

भूपते ! उस समय उनके मनमें परम कौतूहल हो रहा था । राजन् ! अब श्रीकृष्णकी आज्ञासे यात्राके लिये जो-जो लोग नगरसे बाहर निकले थे, उन-उनका वर्णन तुम्हें सुनाता हूँ ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणा वेदनिपुणाः सर्वशास्त्रविशारदाः ।
धर्मज्ञाः कर्मनिपुणाः शुचयः समदर्शनाः ॥ ३९ ॥
भार्यापुत्रयुताः सर्वे शिष्यैर्बहुभिरन्विताः ।
वैश्या धनसमृद्धाश्च विनिर्यातास्तदाज्ञया ॥ ४० ॥

उस समाजमें बहुत-से ब्राह्मण थे, जो वेदोंके तत्त्वज्ञ, सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारंगत, धर्मज्ञ, कर्मकाण्डमें निपुण, पवित्र आचारवाले और समदर्शी थे । उनके साथ उनकी पत्नी और पुत्र तथा बहुत-से शिष्य भी थे । उस समय उन श्रीकृष्णकी आज्ञासे बहुत-से धन-सम्पन्न वैश्य भी यात्राके लिये निकले थे॥

शूद्रा विनिर्गताः सर्वे द्विजसेवारताः स्वयम् ।
कांस्योपजीविनः सर्वे बहुभाजनसंयुताः ॥ ४१ ॥

द्विजोंकी सेवामें तत्पर रहनेवाले सभी कोटिके शूद्र अपने आप ही चलनेकी तैयारी कर रहे थे । जो काँसेके पात्रसे अपनी जीविका चलानेवाले थे, वे सभी काँसेके बहुत-से बर्तन लेकर चले ॥ ४१ ॥

परीक्षकाश्च रत्नानां मणीनां चैव सर्वशः ।
मुक्ताफलानां च तथा साधकाः स्वर्णकारकाः ॥ ४२ ॥
गोविन्दपुरवासाद् वै साग्नयो निर्ययुश्च ते ।
मणीनां जन्मकर्तारः पूरकास्तपुजीविनः ॥ ४३ ॥

जो रत्नों तथा मणियोंको पूर्णरूपसे परखनेवाले (जौहरी) एवं मोतियोंको साफ करके उनके आभूषण बनानेवाले सुनार थे तथा जो मणियोंको खान आदिसे प्राप्त करने-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाले, पूरक (टूटे हुए बर्तन आदिकी मरम्मत करनेवाले) और राँगेसे जीवन-निर्वाह करनेवाले थे, वे सभी अग्नि आदि सामग्री साथ लेकर द्वारकापुरीसे बाहर निकले ॥ ४२-४३ ॥

धान्यविक्रयिणश्चैव वस्त्रनिर्णेजकास्तथा ।
पूगीफलयुताश्चान्ये वरताम्बूलजीविकाः ॥ ४४ ॥
मालाकारास्तैलकाराः सहयन्त्रा विनिर्ययुः ।

अन्नकी बिक्री करनेवाले, कपड़े धोनेवाले, सुपारी आदि सामग्रीसहित उत्तम पान बेचनेवाले तमोली, माली और अपने यन्त्रों (कोल्हू) सहित तेली भी प्रस्थित हुए ॥ ४४½ ॥

तन्तुवायास्तथैवान्ये वरसूत्रधराश्च ये ॥ ४५ ॥
कोष्ठिकाः कर्मनिरता मार्ष्टिकाः क्षौमवाससाम् ।
कर्मणो गुरवः सूत्रवर्धकारास्तथैष्टिकाः ॥ ४६ ॥
यन्त्रकाः शस्त्रकर्तारः कुलालाश्चाम्बुवाहकाः ।
निर्णेजकाः सरजका नटास्तत्रैव सूचकाः ॥ ४७ ॥
नापिता भित्तिकर्तारश्चित्रकर्मरतास्तथा ।
तथा सुराप्रकर्त्तारो ध्वजिनश्चर्मजीविनः ॥ ४८ ॥
मृगयाजीविनश्चैव गोविन्देन प्रणोदिताः ।

जुलाहे, दूसरे उत्तम सूतके व्यापारी, कर्ममें तत्पर रहनेवाले राजगीर, रेशमी वस्त्रोंको शुद्ध करनेवाले, कर्मगुरु (कारीगरोंके उस्ताद), सूत बढ़ानेवाले, ईंट बनाने या जोड़नेवाले, यन्त्रक (यन्त्र आदिके द्वारा वस्तुओंका निर्माण करनेवाले—शिल्पी), शस्त्र बनानेवाले, कुम्हार, पानी ढोनेवाले कहार, धोबी, रंगरेज, नट, दरजी, नाई, दीवार बनानेवाले चित्रकार, शराब खींचनेवाले कलवार, चर्मकार तथा शिकारसे जीविका चलानेवाले लोग भी भगवान् गोविन्दकी आज्ञा पाकर प्रस्थित हुए ॥ ४५–४८½ ॥

कुट्टिनीगुरवो वेश्या नानाभावप्रवेदकाः ॥ ४९ ॥
नृपमण्डनकर्त्तारो मल्ला भट्टाश्चिकित्सकाः ।
शैलूषा मागधाश्चैव सर्ववर्णोपजीविनः ॥ ५० ॥
तथेन्द्रजालकाराश्च कथकाः पाठकाः परे ।
तथा जाङ्गलिका भूप क्षुरकर्मोपजीविनः ॥ ५१ ॥
व्याधाः सपक्षराश्चैव कृष्णं संवाहयन्ति ये ।
घटकाश्चाम्बुवाहाश्च तृणवाहास्तथापरे ॥ ५२ ॥
सैरन्ध्रया सङ्गता दास्यस्तथा ये सौविदल्लकाः ।
सूतिकाः शस्त्रवैद्याश्च जलौकाजीविनश्च ये ॥ ५३ ॥
अन्ये कृष्णाज्ञया प्रीता द्वारकाया विनिर्ययुः ।
निर्गतं बहुधा सैन्यं चतुरङ्गं महत् तदा ॥ ५४ ॥

राजन् ! कुट्टिनी, वेश्याओंको नाना प्रकारके भावोंका ज्ञान करानेवाले गुरु (उस्ताद), राजाका शृङ्गार करनेवाले, पहलवान, भाट, वैद्य, सभी वर्णोंसे जीविका चलानेवाले नट, मागध आदि, इन्द्रजाल (जादूके खेल) करनेवाले बाजीगर, तरह-तरहकी कथाएँ कहनेवाले, सद्ग्रन्थोंका पाठ करनेवाले अथवा शिक्षक, जंगलकी जड़ी-बूटियोंसे चिकित्सा करनेवाले विषवैद्य, क्षौर-कर्म करके जीविका-निर्वाह करनेवाले, पिंजरा लिये हुए बहेलिये, श्रीकृष्णके चरण आदि दबानेवाले सेवक, घटक (काम पूरा करनेवाले चतुर व्यक्ति), पानी ढोनेवाले, घासका बोझ ढोनेवाले, सैरन्ध्रीके साथ रहनेवाली दासियाँ, रनवासके छड़ीदार, दाइयाँ, शस्त्रवैद्य (जर्राह), जोंक आदिके द्वारा दूषित रक्त निकालकर जीविका चलानेवाले—ये सभी तथा और भी बहुत-से लोग भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे प्रसन्नतापूर्वक द्वारकासे बाहर निकले। साथ ही उस समय एक बहुत बड़ी एवं विविध सैनिकोंसे भरी हुई चतुरंगिणी सेना द्वारकासे हस्तिनापुरको प्रस्थित हुई ॥

न दृश्यते तदा सूर्यो रजसा संवृतं नभः ।
महारावस्तदा ह्यासीत् तस्मिन् सैन्ये विसर्पति ॥ ५५ ॥

उस सेनाके चलते समय इतनी धूल उठी कि आकाश आच्छादित हो गया और सूर्यका दीखना बंद हो गया। साथ ही उस सेनामें महान् कोलाहल होने लगा ॥ ५५ ॥

वणिजानां तु शकटैर्नानावीथिवहैस्तथा ।
द्वीपिवाहैः पक्षिवाहैर्मार्गो नैव तु लभ्यते ॥ ५६ ॥

नाना प्रकारकी गलियों एवं मार्गोंपर चलनेवाले व्यापारियोंके छकड़े व्याघ्रोंकी भाँति उछलते और पक्षियोंके समान उड़ते हुए-से तीव्र वेगसे चल रहे थे, उनके कारण दूसरोंको आगे बढ़नेके लिये मार्ग नहीं मिल रहा था ॥ ५६ ॥

शम्भल्येका तदा वृद्धा प्रहसन्ती सखीजनैः ।
प्रोवाच धावमाना सा वृथा किं क्रियते श्रमः ॥ ५७ ॥
अविवेकी हरिश्चायं न धनं सम्प्रदास्यति ।
संतुष्टो हि भवेद् येषां तेषां हरति वै धनम् ॥ ५८ ॥

उसी समय एक बुढ़िया कुट्टिनी दौड़ती हुई आयी और अपनी सखियोंके साथ हँसकर कहने लगी—'सखियो ! क्यों व्यर्थ परिश्रम कर रही हो ? ये श्रीहरि तो विवेकशून्य हैं । तुम्हें धन नहीं देंगे; क्योंकि ये जिनपर प्रसन्न होते हैं उनके उनका सारा धन हर लेते हैं' ॥ ५७-५८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृषभे सा समारूढा यावद् याति खलीलया।
तावत् तस्याश्च वृषभो दृष्ट्वा दासेरकं पथि ॥ ५९ ॥
पलायनपरो भूत्वा पातयामास शम्भलीम्।
पतितां तां समालोक्य प्रहसन्ति स्म सैनिकाः ॥ ६० ॥

ऐसा कहकर बैलपर सवार हुई वह वृद्धा ज्यों ही लीला-पूर्वक आगे बढ़ी, त्यों ही उसका बैल मार्गमें एक ऊँटको देखकर (चौंका और) भागने लगा। उसने उस कुट्टिनीको अपनी पीठसे नीचे गिरा दिया। उसे गिरी हुई देखकर सभी सैनिक हँसते हुए कहने लगे—॥ ५९-६० ॥

श्रीकृष्णस्य कृता निन्दा साम्प्रतं दुष्टयानया।
स्वकर्मणेयं वृषभात् पतिता धरणीतले ॥ ६१ ॥
नूनमेतत् तु सम्भाव्यं पापिनां पतनं भुवि।

'इस दुष्टाने अभी-अभी भगवान् श्रीकृष्णकी निन्दा की है, अतः अपने उस दुष्कर्मके कारण ही यह बैलकी पीठसे पृथ्वीपर गिरी है। इस भूतलपर पापियोंका ऐसा पतन निश्चय ही होना चाहिये' ॥ ६१½ ॥

सा च तेषां वचः श्रुत्वा शम्भली पुनरुत्थिता ॥ ६२ ॥
कथयन्ती शुभं वाक्यं सैनिकान् प्रति भारत।
कृष्णमत्र विलोक्याहं पुनरेव वृषस्थिता ॥ ६३ ॥
तस्मान्मूढा न जानन्ति स्मरणं केशवस्य वै।
पतितानां पावनं हि नान्यं पश्यामि केशवात् ॥ ६४ ॥

भारत! उन सैनिकोंकी बात सुनकर वह कुट्टिनी पुनः उठकर खड़ी हो गयी और उनसे शुभ वचन बोली—'मैं यहाँ श्रीकृष्णका दर्शन करके जो पुनः बैलपर सवार हो गयी, इसीके फलस्वरूप मेरा पतन हुआ है। मूढ मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णके स्मरणका प्रभाव नहीं जानते। मैं तो इन केशवके अतिरिक्त अन्य किसीको पतितपावन नहीं समझती'॥ ६२–६४॥

जैमिनिरुवाच

कृष्णस्ततो हयं शुभ्रं समारुह्याग्रतो ययौ।
मध्याह्नसमये सर्वैर्हृष्टस्तु स्वपुराद् बहिः ॥ ६५ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर दोपहर होते-होते भगवान् श्रीकृष्ण एक श्वेत वर्णके घोड़ेपर सवार होकर सभी नगरवासियोंके साथ अपने नगरसे बाहर निकले और प्रसन्नतापूर्वक सबके आगे-आगे चलने लगे ॥ ६५ ॥

कशामादाय तत्रैव द्विगुणां दर्शयत्यसौ।
धर्मराजस्य तं मार्गं यथा लोका व्रजन्ति ते ॥ ६६ ॥

वहाँ उन्होंने अपने कोड़ेको, जो दो रस्सियोंके मेलसे बना था, हाथमें लेकर उससे धर्मराजके नगरकी ओर जाने-वाले मार्गका संकेत किया, जिससे सभी लोग उसी रास्तेसे चलने लगे ॥ ६६ ॥

कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा।
खर्वसंख्यैर्महासैन्यैर्वेष्टितो देवकीसुतः ॥ ६७ ॥
भीमसेनयुतो भूप स्वदारपरिवारितः।

भूपाल! उस समय करोड़ों रथों, हजारों दन्तारगजराजों और खर्वोंकी संख्यावाली विशाल सेनासे घिरे हुए देवकी-नन्दन श्रीकृष्ण भीमसेन तथा अपनी पत्नियोंके साथ चल रहे थे ॥ ६७½ ॥

कृष्णं विना न तिष्ठन्ति द्वारकावासिनो जनाः ॥ ६८ ॥
सर्वे विनिर्गता हर्षात् स्वेच्छया कौतुकेन तु।
मालाकारी हरिं वीक्ष्य हृष्टा वचनमब्रवीत् ॥ ६९ ॥

द्वारकावासी जन श्रीकृष्णके बिना उस पुरीमें ठहर नहीं सकते थे, अतः वे सब स्वेच्छानुसार कौतूहलवश बड़े हर्षके साथ नगरसे बाहर निकल पड़े थे। उस समय एक मालिन श्रीहरिको देखकर प्रसन्न हो इस प्रकार कहने लगी ॥

मालाकार्युवाच

कथं मध्यन्दिने कृष्ण निर्गमिष्यन्ति मानवाः।
सर्वे गच्छन्ति देवेश स्ववस्तुधनजीविनः ॥ ७० ॥
वयमत्र परं शोच्याः सुमनोभिश्च जीविनः।

मालिन बोली—श्रीकृष्ण! इस दोपहरीमें किस प्रकार लोग नगरके बाहर निकलेंगे? देवेश! अपनी वस्तुरूपी धनसे जीविका चलानेवाले ये सभी लोग चल रहे हैं; परंतु पुष्पोंद्वारा जीवन-निर्वाह करनेवाली हमलोगोंकी दशा तो इस समय बड़ी शोचनीय हो गयी है ॥ ७०½ ॥

त्वदर्थं संगृहीतानि सुमनांसि मयाच्युत ॥ ७१ ॥
न म्लायन्तु च तान्येव मम देयं च मौक्तिकम्।

अच्युत! मैंने आपके लिये जो इन पुष्पोंका संग्रह किया है, ये इस दोपहरीमें कुम्हला न जायँ, इसलिये आपको इनके मूल्यरूपमें मुझे मोती तो दे ही देना चाहिये ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छत्रच्छायासमुदितं वदनं तव माधव ॥ ७२ ॥
तापपूर्णा कथं यामि देव कृष्ण पदानुगा ।
गुणयुक्तानि माल्यानि गृहाण त्वं जनार्दन ॥ ७३ ॥

माधव ! आपका मुख तो छत्रकी छायासे आच्छादित है, परंतु देव ! श्रीकृष्ण ! पैदल ही यात्रा करनेवाली मैं तापसे संतप्त होकर कैसे चल सकूँगी ? अतः जनार्दन ! आप सुगन्ध-सौन्दर्य आदि गुणोंसे युक्त इन पुष्पहारोंको तो ग्रहण कर लीजिये ॥ ७२-७३ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा कृष्णः प्रोवाच सस्मितः ।

मालिनकी वह बात सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले ॥ ७३½ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

दास्यामि भद्रे सर्वं ते वाञ्छितं मौक्तिकं धनम् ॥ ७४ ॥
धर्ममाश्रय मद्वाक्याद् यथा तुष्यति मे मनः ।

श्रीकृष्णने कहा—भद्रे ! मैं तेरी इच्छाके अनुसार सब मुक्तामय धन तुझे प्रदान करूँगा, परंतु तू धर्मका आश्रय ग्रहण कर, जिससे मेरा मन प्रसन्न होता है ॥ ७४½ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं वदति वै यावत् तावत् तैलान्विता परा ॥ ७५ ॥
उवाच वचनं देव श्रूयतां क्रियतां विभो ।
तैलं निःसरते कृष्ण भित्त्वा जीर्णघटं मम ॥ ७६ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्ण ऐसा कह ही रहे थे कि तेल लिये हुए एक दूसरी स्त्री वहाँ आ पहुँची और बोली—'देव ! विभो ! मेरी बात सुनिये और उसे पूर्ण कीजिये । श्रीकृष्ण ! मेरे पुराने घड़ेको फोड़कर तेल चू रहा है ॥ ७५-७६ ॥

व्यथां न कृष्ण जानासि मदीयां यन्त्रसम्भवाम् ।
अधुनैव समुत्तीर्य गृहाण स्नेहमेव च ॥ ७७ ॥

'श्रीकृष्ण ! कोल्हूसे तेल पेरकर निकालनेमें मुझे कितना कष्ट भोगना पड़ा है, इसका तो आपको पता है नहीं; अतः इसी समय घोड़ेसे उतरकर आप मेरे स्नेह (तेल) को ग्रहण करें ॥ ७७ ॥

मार्गो न लभ्यते नाथ शकटैस्तैलपूरितैः ।
चलितुं नैव शक्नोमि तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ७८ ॥

'नाथ ! इन तेलसे भरे हुए छकड़ोंके कारण रास्ता नहीं मिल रहा है, जिससे मैं चलनेमें असमर्थ हो गयी हूँ। अतः इसके लिये किसी नीतिका विधान कीजिये' ॥ ७८ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि श्रीकृष्णप्रयाणं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें श्रीकृष्णका प्रस्थानविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और भीमसेनका विनोदपूर्ण वार्तालाप, मार्गमें ऊँटकी पीठसे गिरी हुई सूतिकाकी प्रार्थना, वसुदेवजीका श्रीकृष्णको उपदेश, भीमसेनद्वारा वसुदेवजीकी बातका खण्डन, श्रीकृष्णका सरोवर-पर आना और रुक्मिणीको बुलाकर नलिनीके व्याजसे स्त्रियोंपर आक्षेप करना, रुक्मिणी-का उन्हें उत्तर देना, व्रजमें पहुँचकर गोप-गोपियोंकी श्रीकृष्णसे भेंट और उनकी दशाका वर्णन, श्रीकृष्णका देवकी, यशोदा, रुक्मिणी और प्रद्युम्न आदिको कर्तव्यका उपदेश तथा हस्तिनापुरमें याज्ञिक ब्राह्मण, संन्यासी, शम्भली और वन्दियोंद्वारा श्रीकृष्णकी आलोचना

भीम उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबुद्धे पश्यैतास्तव सुप्रियाः ।
आतपम्लानवदना विश्रामय यथासुखम् ॥ १ ॥

भीमसेनने कहा—महाबुद्धिमान् श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण ! अपनी इन प्रियतमाओंकी ओर तो दृष्टिपात कीजिये । इनके मुख धूपसे कुम्हला गये हैं, अतः इन्हें थोड़ी देरतक सुखपूर्वक विश्राम कराइये ॥ १ ॥

विश्रामं कृतवान् कृष्णो ह्यदूरे स्वपुरात् ततः ।
तं भीमसेनः सम्प्राह वासुदेवं विनोदकृत् ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भीमसेनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपने नगरसे थोड़ी ही दूरपर विश्राम करनेके लिये पड़ाव डाल दिया। तब विनोद करनेवाले भीमसेनने उन वासुदेवसे कहा—॥ २ ॥

कृष्ण कृष्ण महाबाहो मम चेतसि भासते।
सर्वासां योषितामासां त्वमेव प्रायशः पतिः ॥ ३ ॥
मालाकारी तैलकारी नापिती शम्भली च सा।
त्वामेव खलु जानन्ति स्वपतिं न तथा हृदि ॥ ४ ॥

'श्रीकृष्ण! महाबाहु श्रीकृष्ण! मेरे मनमें तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इन सभी स्त्रियोंके पति प्रायः आप ही हैं; क्योंकि ये मालिन, तेलिन, नाइन और कुटनी आदि स्त्रियाँ अपने हृदयमें जैसा आपको समझती हैं, वैसा अपने पतिको नहीं मानतीं ॥ ३-४ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

भवान् गृह्णातु सततं पौरुषं चेद् वृकोदर।
स्थूलोदरं भीमसेनं वरं वरय शोभने ॥ ५ ॥
त्वं तु शम्भलि गच्छाशु भीमं दन्तविवर्जिते।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वृकोदर! यदि तुममें निरन्तर पुरुषार्थ हो तो तुम्हीं इन सबको रख लो। (भीमसेनसे ऐसा कहकर वे उस कुट्टनीसे बोले—) 'शोभने! तू इन बड़े पेटवाले भीमसेनको अपना पति स्वीकार कर ले। बिना दाँतोंवाली कुटनी! तू शीघ्र ही भीमसेनके पास चली जा'॥

भीमस्तु प्रत्युवाचेदं राक्षसी मे गृहे प्रिया ॥ ६ ॥
वारयिष्यति मा यातु भक्षयिष्यति तां हि सा।
तस्मात् कृष्णगताः सन्तु सर्वा दन्तविवर्जिताः ॥ ७ ॥

तब भीमसेनने यों उत्तर दिया—'श्रीकृष्ण! मेरे घरमें मेरी राक्षसी पत्नी रहती है। वह इसे 'यहाँ मत आ' ऐसा कहकर मना कर देगी और यदि नहीं मानेगी तो वह इसे खा जायगी। इसलिये बिना दाँतोंवाली सभी स्त्रियाँ आप श्रीकृष्णको ही प्राप्त हों ॥ ६-७ ॥

कृष्णाभिसक्तचित्तानां सर्वत्र सुखमेव हि।
रुक्मिणीप्रमुखा भार्याः साध्व्यः कृष्णैकमानसाः ॥८॥
यत्र नेर्ष्यां करिष्यन्ति प्रीयतां तेन केशवः।
अन्योऽन्यं च सपत्नीनां क्रोधश्चात्र न दृश्यते ॥ ९ ॥
यत्र जाम्बवती भार्या सेर्ष्या नैव प्रजायते।
त्वामाश्रित्य प्रवर्तन्ते ये जनाः सर्वतः सुखम् ॥ १० ॥
सम्भवन्ति कथं भूमौ पुनस्ते गतिवर्जिताः।

'क्योंकि जिनका चित्त श्रीकृष्णमें आसक्त है, उनके लिये सर्वत्र सुख-ही-सुख है। आपकी रुक्मिणी आदि सती-साध्वी पत्नियोंका मन एकमात्र आपमें ही आसक्त रहता है, अतः वे वहाँ (इन स्त्रियोंको देखकर भी) ईर्ष्या नहीं करेंगी। इससे आप भगवान् केशव ही इन स्त्रियोंको ग्रहण करके प्रसन्न हों; क्योंकि आपके यहाँ पत्नियोंमें परस्पर सौतियाडाह नहीं देखा जाता। यहाँतक कि ऋक्ष-कन्या जाम्बवती भी आपकी पटरानी है। वह भी किसीके प्रति ईर्ष्यायुक्त नहीं होती। ठीक ही है, जो लोग आपका आश्रय लेकर व्यवहार-में प्रवृत्त होते हैं, उन्हें सब तरहसे सुख ही प्राप्त होता है। फिर वे इस भूतलपर गतिहीन कैसे हो सकते हैं' ॥८–१०½॥

श्रीकृष्ण उवाच

स्थानभ्रष्टाञ्जनांश्चैवोद्धर्ता तु पवनात्मजः ॥ ११ ॥
तस्माद् याहि भीमसेनं समानय ममान्तिकम्।

श्रीकृष्णने कहा—भीमसेन! यह तो तुम ठीक ही कहते हो, परंतु स्थानभ्रष्ट लोगोंके उद्धारकर्ता तो पवननन्दन भीमसेन ही हैं, इसलिये शम्भलि! तू भीमसेनके पास जा और उन्हें मेरे पास ले आ ॥ ११½॥

एवं तां तु समादिश्य यावद् गच्छति केशवः॥ १२ ॥
सूतिका पतिता तावत् करभेणातिगामिना।
सा चाह देवकीबालं सूतिकां मां समुद्धर ॥ १३ ॥

उस कुट्टिनीको यों आदेश देकर श्रीकृष्ण ज्यों ही आगे बढ़े त्यों ही एक दाई अत्यन्त वेगसे चलनेवाले ऊँटकी पीठसे पृथ्वीपर गिर पड़ी। तब उसने देवकीनन्दनसे कहा—'प्रभो! मैं बालकोंके जन्म-समयमें परिचर्या करनेवाली दाई हूँ, अतः मेरा उद्धार कीजिये ॥ १२-१३ ॥

वसुदेवादयो ये च यादवाः सन्ति तेऽनघ।
तेषां मां सूतिकां विद्धि त्वन्मातृपरिवञ्चिता ॥ १४ ॥
देवकी त्वां तु सुषुवे नाहूतास्मि तदैव तु।

'अनघ! आपको विदित होना चाहिये कि ये वसुदेव आदि आपके जितने यदुवंशी हैं, मैं उन सबकी सूतिका हूँ। केवल आपकी माताने ही मुझे छोड़ दिया है; क्योंकि देव! जिस समय देवकी देवीने आपको जन्म दिया था, उस समय उन्होंने मुझे नहीं बुलाया था ॥ १४½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्मानमात्मना देव सृजन्येते च यादवाः ॥ १५ ॥
तथा सृजन्ति नात्मानं तेन जीवामि माधव।
सूतिकावचनं श्रुत्वा कृष्णः प्राह वृकोदरम् ॥ १६ ॥

'प्रभो! आप तो स्वयं ही अपने-आपको प्रकट कर लेते हैं, परंतु ये समस्त यदुवंशी उस तरह अपने स्वरूपको (मेरी सहायताके बिना ही) प्रकट न कर सकें—ऐसी कृपा कीजिये; क्योंकि माधव! मैं इसी सूतिका-कर्मसे ही अपना जीवन-निर्वाह करती हूँ।' दाईकी बात सुनकर श्रीकृष्णने भीमसेनसे कहा ॥ १५-१६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

उत्थापयाशु भीमैनां वसुदेवं विलोकय।
सम्प्राप्तं ददृशे भीमः समुत्थाप्य हि सूतिकाम्॥ १७ ॥

श्रीकृष्ण बोले—भीमसेन! इस दाईको जल्दी उठा दो; क्योंकि उधर देखो, वसुदेवजी आ रहे हैं। तब भीमसेनने उस दाईको उठाकर देखा कि वसुदेवजी आ पहुँचे हैं॥१७॥

वसुदेवं नमस्कृत्य कृष्णभीमौ महामती।
बद्धाञ्जलिपुटावग्रे प्रोचतुर्वचनं शुभम् ॥ १८ ॥

फिर तो महाबुद्धिमान् श्रीकृष्ण और भीमसेन वसुदेवजी-को प्रणाम करके हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े हो गये और यह सुन्दर वचन बोले—॥ १८ ॥

गच्छाव धर्मराजानं त्वयाऽऽज्ञप्तौ परंतप।
वसुदेवस्तु तत्रैव प्रागात् कृष्णं समादिशत् ॥ १९ ॥

'परंतप! आपकी आज्ञा हो तो हम दोनों धर्मराज युधिष्ठिरके पास जायँ।' तब वसुदेवजीने वहीं आकर श्रीकृष्णको आज्ञा दी ॥ १९ ॥

वसुदेव उवाच

गच्छ गच्छ हृषीकेश मयाऽऽज्ञप्तो गजाह्वयम्।
पुनरागमनं तेऽस्तु कुरु वाक्यं ममाच्युत ॥ २० ॥

वसुदेवजीने कहा—हृषीकेश! मैंने तुम्हें आज्ञा दे दी। तुम हस्तिनापुर जाओ और पुनः शीघ्र ही वहाँसे लौटो। साथ ही अच्युत! मेरी इस आज्ञाका पालन करना॥

ये वेदनिरता विप्राः शास्त्राध्ययनतत्पराः।
दानं तेभ्यस्त्वया देयं सदाचारपरेषु च ॥ २१ ॥

'जो वेदोक्त धर्मोंका पालन करनेवाले, शास्त्रोंके अध्ययन-में तत्पर और सदाचारपरायण हों, ऐसे विप्रोंको तुम्हें अवश्य दान देना चाहिये ॥ २१ ॥

परापवादविमुखाः शिष्टाचारपरास्तथा।
नेतव्याः सहितास्ते वै समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥ २२ ॥

'परायी निन्दा करनेमें जिनकी अभिरुचि न हो, जो शिष्टाचारपरायण हों और जिनकी दृष्टिमें मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्ण एक-समान हों, ऐसे सत्पुरुषोंको तुम्हें अपने साथ ले जाना चाहिये ॥ २२ ॥

न वस्त्रमलिने दानं नैवाचारविवर्जिते।
देयं त्वया च राज्ञा वै सत्पात्रं पूज्यते यतः ॥ २३ ॥

'मलिन वस्त्र धारण करनेवाले तथा आचारहीनको दान नहीं देना चाहिये; क्योंकि तुम तथा राजा युधिष्ठिर सत्पात्रकी ही पूजा करनेवाले हो ॥ २३ ॥

क्षत्रियाश्चापि नेतव्या दानधर्मपरायणाः।
युद्धे कुशलिनः शूराः क्षत्रधर्मरतास्तथा ॥ २४ ॥

'क्षत्रियोंमें भी उन्हींको अपने साथ ले जाना चाहिये, जो दानधर्ममें तत्पर रहनेवाले, युद्धकलामें निपुण, शूरवीर और क्षत्रिय-धर्मका पालन करनेवाले हों ॥ २४ ॥

वृथाभिमानिनो ये च स्त्रीजिता दुष्टसङ्गिनः।
विकत्थनाश्च संत्याज्यास्तथाऽऽत्मस्तुतिकारकाः॥ २५॥

'जो व्यर्थ ही अभिमान करनेवाले, स्त्रीके वशीभूत, कुसंगका सेवन करनेवाले, बकवादी तथा अपने मुखसे अपनी ही प्रशंसा करनेवाले हों, उनका परित्याग कर देना उचित है॥

परोपतापिनो ये च सदा कामपरा जनाः।
एवंविधा न संग्राह्याः श्वशुराहृतवृत्तयः ॥ २६ ॥

'जो परसंतापी, सदा कामपरायण और श्वशुरद्वारा प्राप्त हुई सम्पत्तिसे जीविका चलानेवाले हों, ऐसे लोग भी ग्रहण करनेयोग्य नहीं हैं ॥ २६ ॥

जामातृजेन वित्तेन ये जीवन्ति नराधमाः।
अपुत्रस्य मृतस्येह ये गृह्णन्ति धनं छलात् ॥ २७ ॥
द्यूतकर्मरता नित्यमपरीक्षितकारिणः।
गुर्विणीं येऽभिगच्छन्ति सुपर्वविमुखास्तथा ॥ २८ ॥
ऋतुकालं संत्यजन्ति ये वै मोहपरायणाः।
नारीभिः सहिताश्चैव ये प्रकुर्वन्ति भोजनम् ॥ २९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथोत्सृजन्ति ये वीर्यं कुयोनौ पापबुद्धयः।
परस्त्रियाभितप्यन्ते पिशुनाः पापबुद्धयः ॥ ३० ॥
तथान्ये पापिनो ये च ये च सज्जननिन्दकाः।
महापातकिनो ये च विशुद्धान् दूषयन्ति ये ॥ ३१ ॥
मासोपवासिनीं साध्वीं कामयाना हि पापिनः।
अर्थिनं धनसम्पन्नो विमुखं यः करोति वै ॥ ३२ ॥
दरिद्रस्तपसा हीनः कातरो बहुजल्पकः।
पापिष्ठा चापि या नारी पतिवञ्चनतत्परा ॥ ३३ ॥
गृहकार्येषु विमुखा सत्यशौचविवर्जिता।
न नेतव्या त्वया सार्धं कदाचिन्मधुसूदन ॥ ३४ ॥

जो नराधम जामाताद्वारा उपार्जित धनसे जीवन-निर्वाह करते हैं, जो यहाँ पुत्रहीन मृतकके धनको छलपूर्वक हथिया लेते हैं, जो सदा जुआ खेलनेमें तत्पर, बिना सोचे-विचारे काम करनेवाले, उत्तम-उत्तम पर्वोंके पालनसे विमुख और गर्भिणी स्त्रीके साथ समागम करनेवाले हैं, जो मोहपरायण पुरुष ऋतुकालके समय अपनी स्त्रीसे समागम नहीं करते, जो स्त्रियोंके साथ बैठकर एक थालमें भोजन करते हैं, जो पापबुद्धि पुरुष कुयोनिमें वीर्यपात करते हैं, परायी स्त्रीको देखकर काम-संतप्त हो जाते हैं, चुगलखोर हैं, जिनकी बुद्धि सदा पापकर्ममें लगी रहती है, इनके सिवा जो अन्य प्रकारके पाप कर्म करनेवाले हैं, जो सज्जनोंकी निन्दा करनेवाले, महापातकी और निर्दोषपर भी दोषारोपण करनेवाले हैं, जो पापी मास-पर्यन्त व्रतोपवासमें तत्पर रहनेवाली सती-साध्वी स्त्रीकी कामना करनेवाले हैं, जो धन-सम्पन्न होकर भी याचककी याचना पूर्ण नहीं करते, जो दरिद्र होनेपर भी तपस्या न करनेवाला, भयभीत और बहुत बक-बक करनेवाला हो तथा जो पापिनी नारी अपने पतिको धोखा देनेवाली, गृह-कार्यसे जी चुरानेवाली और सत्य, शौच आदि उत्तम आचरणोंसे रहित हो, मधुसूदन! ऐसे लोगोंको तुम्हें कभी भी अपने साथ नहीं ले जाना चाहिये ॥ २७–३४ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं ब्रुवन्तं पितरं नमस्कृत्य जनार्दनः।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य स्फुटं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर जनार्दनने ऐसी बात कहनेवाले अपने पिता वसुदेवजीको प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की और स्पष्ट शब्दोंमें कहा ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

सर्वं तात करिष्यामि त्वयोक्तं परमं हितम्।
महापातकिनस्त्यक्त्वा यास्यहं तं युधिष्ठिरम् ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण बोले—तात! आपके कहे हुए वचन मेरे लिये परम हितकारी हैं। मैं उन सबका पूर्णरूपसे पालन करूँगा। मैं ऐसे महापापियोंका परित्याग करके ही राजा युधिष्ठिरके पास जाऊँगा ॥ ३६ ॥

भीम उवाच

वसुदेवेन वृद्धेन यदुक्तं वचनं तव।
त्याज्याः सर्वे जना भूमौ तत् साहसतरं मम ॥ ३७ ॥

भीमसेनने कहा—श्रीकृष्ण! वृद्ध वसुदेवजीने आपसे जो बात कही है, उसके अनुसार तो पृथ्वीपर सभी लोग आपके लिये त्याज्य ही सिद्ध होते हैं। यह तो मुझे बड़े साहसकी बात प्रतीत होती है ॥ ३७ ॥

साधवो यत्र तिष्ठन्ति तत्र वासश्च ते सदा।
किमत्र चित्रं गोविन्द दुष्टे चित्तं निवेशय ॥ ३८ ॥

जहाँ सत्पुरुष निवास करते हैं, वहाँ तो आप सदा रहते ही हैं; इसमें कौन-सी विचित्रता हुई? गोविन्द! (विचित्रता तो इसमें है कि) आप पापियोंके उद्धार करनेमें अपना मन लगावें ॥

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥ ३९ ॥
समदृष्टिर्भवाशु त्वं सर्वभूतेषु केशव।

क्योंकि जो अपना उपकार करनेवालेके प्रति सद्भाव दिखाता है, उसकी उस साधुतामें क्या विशेषता हुई (ऐसा तो होना ही चाहिये); परंतु जो अपने अपकारीके प्रति उपकार करता है, सत्पुरुष उसीको साधु कहते हैं। अतः केशव! आप शीघ्र ही समस्त प्राणियोंके प्रति समान-दृष्टि रखनेवाले हों ॥ ३९½ ॥

भीमसेनवचः श्रुत्वा वसुदेवादयस्तथा ॥ ४० ॥
साधु साध्विति संवाच्य निर्ययुस्ते पुरीं प्रति।

भीमसेनकी बात सुनकर वसुदेव आदि सभी लोगोंने 'ठीक है, ठीक है' ऐसा कहकर उनकी प्रशंसा की और पुरीको लौट जानेके लिये प्रस्थित हुए ॥ ४०½ ॥

रामेण सहितो गच्छन् वसुदेवो महामनाः ॥ ४१ ॥
उवाच वाक्यं गोविन्दं विह्वलः स्नेहलालसः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस समय जब महामना वसुदेवजी बलरामजीके साथ चलनेके लिये उद्यत हुए, तब स्नेहसे विह्वल होकर श्रीकृष्णसे बोले ॥ ४१½ ॥

वसुदेव उवाच

किं करोमि हृषीकेश त्वद्वियोगेन जीवितम् ॥ ४२ ॥
न समर्थो धारयितुं यथा दशरथः पुरा।
सम्यक् त्यजामि कार्यं चेत् सर्वं नष्टं भविष्यति॥ ४३॥

वसुदेवजीने कहा—हृषीकेश ! जैसे पूर्वकालमें राजा दशरथ भगवान् रामके वियोगमें अपना जीवन नहीं रख सके थे वैसे ही इस समय तुम्हारे वियोगमें मैं जीवन धारण करनेमें असमर्थ हो गया हूँ; परंतु क्या करूँ ? यदि सहसा मैं प्राणत्याग कर देता हूँ तो सब कार्य नष्ट हो जायगा ॥४२-४३॥

राज्ञा दशरथेनैव वियोगाद् राघवस्य हि।
शोकभावेन संत्यक्तं जीवितं स्वं प्रियं भुवि ॥ ४४ ॥

राजा दशरथ ही एक ऐसे पुत्रवत्सल पिता थे, जिन्होंने अपने पुत्र श्रीरामसे वियोग होनेके कारण शोकाभिभूत होकर अपने प्यारे प्राणोंका इस भूतलपर परित्याग कर दिया था (मुझमें वैसा स्नेह कहाँ है ?) ॥ ४४ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं परिष्वज्यात्मजं ततः।
विससर्जाशु गमने परिवारसमन्वितम् ॥ ४५ ॥

इतनी बात कहकर वसुदेवजीने अपने पुत्र श्रीकृष्णको हृदयसे लगा लिया और फिर शीघ्र यात्रा करनेके लिये परिवारसहित उन्हें विदा कर दिया ॥ ४५ ॥

जैमिनिरुवाच

ततः कृच्छ्रेण महता वसुदेवः पुरं ययौ।
भीमेन सहितः कृष्णस्तथान्तःपुरसंयुतः ॥ ४६ ॥
यावद् गच्छति मार्गेऽसौ तावद् दृष्टं महत् सरः।
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ४७ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर वसुदेवजी बड़ी कठिनाईसे द्वारकापुरीको लौटे। भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने रनवास तथा भीमसेनके साथ आगे बढ़ गये। वे ज्यों ही कुछ दूरका मार्ग तै कर चुके, त्यों ही उन्हें एक विशाल सरोवर दिखायी पड़ा, जिसमें हंस और बत्तक आदि पक्षी सब ओर फैले हुए थे। वह चकवोंसे सुशोभित हो रहा था ॥

अम्लानपङ्कजां तत्र ददृशे पद्मिनीं ततः।
समाहूयाब्रवीत् तत्र रुक्मिणीं भीष्मकात्मजाम् ॥४८॥

उस सरोवरमें श्रीकृष्णने एक कमलिनीको देखा, जिसका पुष्प कुम्हलाया हुआ नहीं था। तब उन्होंने भीष्मककुमारी रुक्मिणीको वहाँ बुलाकर कहा ॥ ४८ ॥

वासुदेव उवाच

इमां त्वं पश्य सुभगे रविभार्यामनिन्दिताम्।
गजैर्गृहीतां मुक्तां च मरालैर्विदलीकृताम् ॥ ४९ ॥
चञ्चरीकद्वयवृतां स्त्रीणां चित्तं तु चञ्चलम्।
निजं नाथं वञ्चयित्वा रमयन्ति परं जनम् ॥ ५० ॥

वासुदेव बोले—सुभगे ! तुम सूर्यकी इस अनिन्द्य सुन्दरी भार्या कमलिनीको तो देखो, इसे गजराजोंने अपने सूँडरूपी हाथोंसे पकड़ा और फिर मुक्त कर दिया है। हंसोंने इसे रौंदकर विदलित (पत्रहीन या नग्न) कर दिया है। यह दो रस-लोलुप भ्रमरोंसे घिरी हुई है। अहो ! स्त्रियोंका चित्त बड़ा चञ्चल होता है। वे अपने पतिको धोखा देकर पर-पुरुषके साथ रमण करती हैं ॥ ४९-५० ॥

न विलोक्य निजं कान्तं म्लायन्ति च निशागमे।
हृदये कलुषं गृह्य षट्पदं प्रस्वपन्ति च ॥५१॥
नाथागमे प्रहृष्यन्ति चित्रं मे योषितां मनः।

ये कमलिनियाँ सायंकालमें अपने प्रियतम सूर्यको न देखकर मलिन हो जाती हैं; किंतु उस काले-कलूटे भ्रमरको हृदयसे लगाकर सो जाती हैं। फिर प्रातःकाल अपने स्वामी सूर्यके आने या उदय होनेपर पुनः हर्षसे खिल उठती हैं। अतः मुझे तो स्त्रियोंका मन विचित्र ही प्रतीत होता है ॥

पद्मिनीनां सम्भवस्तु पङ्कादिह विलोक्यते ॥ ५२॥
कलुषं मानसं स्त्रीणां निदानादेव दृश्यते।

कमलिनियोंकी उत्पत्ति यहाँ कीचड़से ही देखी जाती है, उत्पत्तिस्थान अथवा कुलकी मलिनतासे ही स्त्रियोंका मन दूषित होता देखा जाता है ॥ ५२½ ॥

चञ्चलेन परामृष्टा दिवा कम्पत्यहर्निशम् ॥ ५३॥
प्राणनाथभयाद् भीता लक्ष्यते सधना यथा।

यह नलिनी दिनमें चञ्चल भौंरेद्वारा स्पर्श की जानेके कारण अपने प्राणनाथके डरसे डरी हुई-सी रात-दिन उसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तरह काँपती रहती है, जैसे धनी पुरुष अपने धनके विनाश-के भयसे सदा काँपते रहते हैं ॥ ५३½ ॥

वासुदेववचः श्रुत्वा रुक्मिणी वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥
स्मितं कृत्वा विशालाक्षी वक्रोक्त्या केशवं प्रति ।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर विशाल नेत्रोंवाली रुक्मिणीजी मुसकराकर उन केशवसे वक्रोक्तिपूर्वक कहने लगीं ॥ ५४½ ॥

रुक्मिण्युवाच

हरिं जानाति नाथं वै पद्मिनी पद्मलोचना ॥ ५५ ॥
स्वसुतानागतान् मत्वा पुष्णात्येषा गृहागतान् ।
पुत्रपौत्रादिकान् नाथ षट्पदादीञ्जनार्दन ॥ ५६ ॥

रुक्मिणी बोलीं—नाथ ! जनार्दन ! यह कमलनयनी पद्मिनी (कमलिनी अथवा 'पद्मिनी' नायिका रुक्मिणी) हरि (सूर्य अथवा श्रीकृष्ण) को ही अपना स्वामी समझती है। यह इन भ्रमरोंको घरपर आये हुए अपने पुत्र समझकर इनका पोषण करती है । ये भ्रमर आदि इसके पुत्र-पौत्र आदि हैं, जिनका यह पालन करती है ॥ ५५-५६ ॥

स्तनौ रुदन्तौ पद्मिन्याः पिबेते भ्रमराविमौ ।
प्राणनाथ समीपे तु षट्पदौ बालकाविव ॥ ५७ ॥

प्राणनाथ ! देखिये न, उस कमलिनीके समीप वे दोनों भ्रमर बालककी भाँति रो रहे हैं और उसका स्तन-पान कर रहे हैं ॥ ५७ ॥

दोषः कश्चात्र गोपाल रुचिरं क्रियतेऽनया ।
दूरे प्रियं तथा वीक्ष्य कुरुते चञ्चलं मनः ॥ ५८ ॥
न तु नाथं वञ्चयति रममाणा परात्परम् ।
एतत् सतां मतं नाथ पद्मिन्याश्चरितं महत् ॥ ५९ ॥

गोपाल ! इसमें दोषकी क्या बात है, यह तो वह बहुत अच्छा कर रही है । अपने प्रियतम पतिको परदेश गया जानकर इसका मन चञ्चल या व्याकुल हो उठा है, अपने कम्पनद्वारा यह उसी व्याकुलताको व्यक्त करती है । एकसे दूसरे पुरुषोंके साथ रमण करती हुई पतिको धोखा नहीं दे रही है । नाथ ! कमलिनीका यह महान् चरित्र तो सत्पुरुषों-को भी मान्य है ॥ ५८-५९ ॥

कथं न म्लायते कृष्ण नारी नाथः परां व्रजेत् ।
रात्रौ विरहिणी बालं गृहीत्वा पश्य षट्पदम् ॥ ६० ॥
नित्यं निद्रां च कुरुते ह्येष धर्मः सनातनः ।

श्रीकृष्ण ! (आप जो यह कहते हैं कि यह सायंकालमें मलिन हो जाती है तो भला) जिस नारीका पति रातमें परायी स्त्रीके पास चला जाय, उसका मन कैसे उदास नहीं होगा ! देखिये न, यह बेचारी विरहिणी पद्मिनी रातमें नित्य ही (पतिके लिये चिन्तामग्न हो) अपने भ्रमररूपी बालकोंको गोदमें लेकर सोती है । यही नारीका सनातन धर्म है ! ॥

पद्मिनीकुचमादाय तप्तोऽलिर्विरहाग्निना ॥ ६१ ॥
कुर्वन् कृष्णमुखं प्राप्य मृतोऽसौ षट्पदो यदि ।
ये कृष्णहृदया देव ते तिष्ठन्ति कथं विभो ॥ ६२ ॥

यह भ्रमर कमलिनीके स्तनके सम्पर्कमें आकर उसकी विरहाग्निसे संतप्त हो उठा है । देव ! यदि काले मुखवाले उसके स्तनोंका पान करके (अथवा कृष्णमुख (सर्प) का सम्पर्क पाकर) यह भ्रमर मर गया तो विभो ! जो काले हृदयवाले(अथवा श्रीकृष्णमें ही मन लगानेवाले) हैं, वे भला, कैसे चैनसे रह सकते हैं ! ॥ ६१-६२ ॥

प्रियोदये विकसिता यदि गोविन्द पद्मिनी ।
जायते कमलं चास्याः समारोहति शङ्करम् ॥ ६३ ॥
विलोक्य नलिनीं नाथ विस्मितोऽसि वदाधुना ।

गोविन्द ! अपने प्रियतम सूर्यके उदय होनेपर यदि कमलिनी विकसित हो जाती है तो उससे कमल-पुष्पकी उत्पत्ति होती है, जो पूजाके समय भगवान् शङ्करके मस्तकपर चढ़ता है । नाथ ! अब बताइये, आप पद्मिनीको देखकर क्यों विस्मित हो गये हैं ! ॥ ६३½ ॥

धरा हरिपदक्षुण्णा सरजा हि पुराभवत् ॥ ६४ ॥
तस्या रजस्तु पतितं जले हरिपदच्युतम् ।
ततो जलरजोभ्यां हि जातः पङ्कः किलाच्युत ॥ ६५ ॥

प्रभो ! पूर्वकालमें यह पृथ्वी वाराहरूपधारी भगवान् विष्णुके चरणोंसे खुदकर धूलसे युक्त हो गयी थी । उसकी वह धूलि श्रीहरिके पदोंसे झरकर जलमें गिरी । अच्युत ! निश्चय ही उसी जल और धूलिके संयोगसे पंककी उत्पत्ति हुई है ॥ ६४-६५ ॥

पङ्कं विलोक्य न विरान्निदानं तु निरीक्ष्य हि ।
ज्ञायते तव वाक्येन भीमसेनस्य शृण्वतः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार कीचड़को देखकर और उसकी उत्पत्तिके कारणपर भी विचार करके भीमसेनके सुनते-सुनते आपने जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बात कही है, उसीसे शीघ्र ही मेरी कही हुई सारी बातें भी स्पष्टतः समझमें आ जाती हैं ॥ ६६ ॥

यथा सर्वगतस्त्वं मां न तथा वेत्ति किं भवान् ।
स्त्रियस्तु बह्व्यः सन्त्यन्या मां जानासि दिने दिने ६७

प्रभो ! जैसे आप सर्वव्यापी हैं, उसी तरह सर्वज्ञ भी तो हैं। फिर मैं जैसी हूँ वैसी ही क्या आप मुझे नहीं जानते हैं ? यद्यपि आपके अन्य भी बहुत-सी पत्नियाँ हैं, तथापि मैं कैसी हूँ, इस बातको तो आप प्रतिदिन जानते (या परखते) हैं॥

न त्वदन्यं हि पश्यामि चिन्तयन्ती जनार्दनम् ।
यत् किंचिद् दृश्यते लोके त्वया व्याप्तं विभाति मे॥ ६८॥

मैं आपके अतिरिक्त किसी अन्य पुरुषको देखती ही नहीं, सदा आप जनार्दनका ही चिन्तन करती रहती हूँ। संसारमें जो कुछ भी दीखता है, वह सब मुझे आपसे ही व्याप्त प्रतीत होता है ॥ ६८ ॥

जैमिनिरुवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा कृष्णस्तोषसमन्वितः ।
समुत्तीर्य हयात् तस्मात् समाहूय बलाधिपम् ॥ ६९॥
अब्रवीत् केशवस्तं वै भेरीं वादय मा चिरम् ।
कृतवर्मा तथा चक्रे गोविन्दवचनान्नृप ॥ ७० ॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजन् ! रुक्मिणीकी बात सुनकर श्रीकृष्ण परम संतुष्ट हुए। तदनन्तर उस घोड़ेसे उतरकर केशवने सेनापतिको बुलाया और उसे आज्ञा दी—'सेनापते ! अब पड़ाव डालनेके लिये नगाड़ा बजाओ, विलम्ब मत करो।' नरेश्वर ! श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर कृतवर्माने तुरंत वह कार्य सम्पन्न किया ॥ ६९-७० ॥

रात्रौ परिजनेनाथ सहितो न्यवसद्धरिः ।
कृताह्निकः स प्रभाते सैन्यं निजमचोदयत् ॥ ७१ ॥

तत्पश्चात् रातमें श्रीहरिने अपने परिजनोंके साथ वहीं निवास किया और प्रातःकाल उठकर संध्या आदि आह्निक कृत्योंको समाप्त करके अपनी सेनाको प्रस्थान करनेकी आज्ञा दी ॥ ७१ ॥

शनैः शनैश्च सम्प्राप्तो देशं धर्मेण पालितम् ।
मार्गे यान्तं हरिं वीक्ष्य पामराः पशुपालकाः ॥ ७२ ॥
व्रजौकसश्च पश्यन्ति कृष्णं दधिभृतः परे ।
गोपाला वंशहस्ताश्च गुञ्जाभूषणभूषिताः ॥ ७३ ॥

धीरे-धीरे चलकर वे धर्मराज युधिष्ठिरद्वारा सुरक्षित देशमें जा पहुँचे। मार्गमें निम्न वर्गके पशुपालक, व्रजवासी तथा दूसरे दही बेचनेवाले ग्वाले भी श्रीकृष्णको देखने लगे। उस समय उनके हाथमें बाँसकी बाँसुरी थी और वे गुंजा (घुँघुची) का आभूषण धारण किये हुए थे ॥ ७२-७३ ॥

वादित्राणि स्वकान्येव वादयन्ति पुनः पुनः ।
मुख्योऽस्माकमसौ गोपो नन्दपुत्रो न संशयः॥ ७४॥

वे बारंबार अपने-अपने बाजे बजा रहे थे और कह रहे थे कि 'निस्संदेह ये नन्दबाबाके पुत्र हैं। ये हमलोगोंमें प्रधान गोप हैं' ॥ ७४ ॥

इति ब्रुवन्तस्ते कृष्णं समालिङ्ग्य पथि स्थिताः ।
पृच्छन्ति च हसन्त्यन्ये साट्टहासं मुहुर्नृप ॥ ७५॥
दध्योदनं प्रयच्छन्ति प्रणिपातपुरःसरम् ।
पश्य कृष्णाद्य मे वंशवीणामतिमनोरमाम् ॥ ७६॥

ऐसा कहते हुए वे श्रीकृष्णका गाढ़ आलिङ्गन करके मार्गमें खड़े हो गये। राजन् ! उनमेंसे कुछ तो उनका कुशल-मङ्गल पूछने लगे और दूसरे बारंबार ठहाका मारकर हँसने लगे। कुछ गोप प्रणामपूर्वक दही-भात देने लगे। कुछ कहने लगे—'श्रीकृष्ण ! आज मेरी इस बाँसकी बाँसुरीको तो देखो, यह कैसी सुन्दर है' ॥ ७५-७६ ॥

गावो मया रक्ष्यमाणा देव यान्ति त्वितस्ततः ।
इदानीं ताः स्वयं प्राप्तास्त्वां विलोक्यातिदुर्धरम् ।७७।

कुछ कहने लगे—'देव ! मेरे रक्षा करनेपर भी गायें इधर-उधर चली जाती थीं, परंतु आज आप अत्यन्त दुर्धर्ष वीरको देखकर वे स्वयं ही लौट आयी हैं ॥ ७७ ॥

भीताश्चास्ताधुना व्याघ्रैर्लोभमोहमयैर्हरे ।
मोचिता मम गोविन्द त्वया मित्रेण साम्प्रतम् ॥ ७८ ॥

'हरे ! इस समय मेरी गौएँ लोभ-मोहरूपी सिंहोंसे अत्यन्त भयभीत तथा उद्विग्न थीं, परंतु गोविन्द ! आज मित्रस्वरूप आपके द्वारा वे भयसे मुक्त कर दी गयीं॥ ७८ ॥

कथं हयं समारूढः स्त्रीभिश्चैव समन्वितः ।
कुतो मणिस्त्वया लब्धः कौस्तुभः कुञ्जरा इमे॥ ७९ ॥
क्व यासि कृष्ण पदकं कुतो लब्धं त्वया ह्यदि ।
तमाप्तोऽब्रवीद् वाक्यं मूढ वेत्सि न केशवम्॥ ८० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यावद्धृदि पदं लग्नं श्रीवत्सं च द्विजन्मनः।
तावच्छ्रीमानयं जातः सर्वं च लभते हरिः ॥ ८१ ॥

कुछ पूछने लगे—'आप कैसे घोड़ेपर चढ़े हुए हैं और इन स्त्रियोंके साथ कहाँ जा रहे हैं? आपको यह कौस्तुभ मणि कहाँसे प्राप्त हुई है और ये हाथी कहाँ मिले हैं? श्रीकृष्ण! आप कहाँ जाते हैं? वक्षःस्थलपर सुशोभित होता हुआ यह पदक आपको कहाँसे मिला है?' यह सुनकर वहाँ दूसरा गोप बोल उठा—'मूर्ख! तू इन केशवको नहीं जानता? अरे जबसे इनकी छातीपर ब्राह्मण भृगुजीका चरण-चिह्न श्रीवत्सके रूपमें अङ्कित हुआ, तबसे ये श्रीहरि श्री-सम्पन्न हो गये और इन्हें सब कुछ प्राप्त हो जाता है' ॥

जैमिनिरुवाच

गोपानां तद् वचः श्रुत्वा प्रहृष्टो भगवानभूत्।
सर्वान् सम्पूज्य चापश्यत् स्त्रियश्चैव समागताः ॥ ८२ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! ग्वालोंका वह कथन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण परम प्रसन्न हुए। उन्होंने उन सबका आदर-सत्कार किया और फिर वे वहाँ आयी हुई स्त्रियोंकी ओर देखने लगे ॥ ८२ ॥

पात्रहस्ताः सदीपास्ताः कृष्णदर्शनलालसाः।
सत्वरं माधवं द्रष्टुमाव्रजन्ति निजाद् गृहात् ॥ ८३ ॥

उन गोपियोंके मनमें श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसा भरी हुई थी। उनके हाथोंमें थालियाँ थीं। वे उनमें दीप जलाकर लायी थीं। सभी गोप-बालाएँ माधवको देखनेके लिये अपने घरसे बड़ी उतावलीके साथ चली आ रही थीं ॥ ८३ ॥

काचिद् गृहे प्रकुर्वाणा मथनं सा प्रधाविता।
गोमयेनापि लिप्ताङ्गी काचित् कृष्णं समागता ॥ ८४ ॥

कोई गोपी घरमें दही मथ रही थी, वह उसे यों ही छोड़कर दौड़ पड़ी। किसीके अङ्गोंमें गोबर पुते हुए थे, वह उसी दशामें श्रीकृष्णके समीप आ पहुँची ॥ ८४ ॥

एका कृष्णस्य केशे स्वां स्रजं च प्रददौ नृप।
सर्वकर्माणि संत्यज्य काचित् प्राप्ता हरिं प्रति ॥ ८५ ॥

राजन्! एक गोपीने अपनी पहनी हुई माला श्रीकृष्णके केशोंपर डाल दी। कोई अपने घरके सारे काम-काजको छोड़कर श्रीकृष्णके समीप आ पहुँची ॥ ८५ ॥

काचिद् रजोवती गोपी चचाल कृष्णसंनिधिम्।
अपरा प्राह तां यान्तीं रजः प्रक्षाल्य गम्यताम् ॥ ८६ ॥
सरजाश्चाद्य वै सुभ्रु गच्छती किं न लज्जसे।

किसी गोपीके वदनमें धूलि लिपटी हुई थी, वह उसी अवस्थामें श्रीकृष्णके पास चल पड़ी। उसे जाती देखकर दूसरी गोपीने कहा—'अरी, सुन्दर भौंहोंवाली! पहले इस रजको धो ले, फिर गोविन्दके पास जा। क्या इस समय रजसे आवृत होकर जाते हुए तुझे लज्जा नहीं आ रही है?' ॥

गोप्युवाच

रजः प्रक्षालितं मूढे न तु तत् परिशाम्यति ॥ ८७ ॥
कर्मणा मलिनं गात्रं क्षालितुं नैव शक्यते।
जीवितं क्षपितं गेहे शेषं च कलुषं स्थितम् ॥ ८८ ॥
तस्माद् गच्छामि गोविन्दं रजसा चावृताधुना।
मलिनैर्गम्यते तत्र जलं यत्र हि पुष्कलम् ॥ ८९ ॥
शिलातले वा पीठे वा क्रियते मलनाशनम्।
पादपीठेऽद्य कृष्णस्य मलयुक्तं कलेवरम्।
विरजस्कं करोम्यद्य लज्जां संत्यज्य संसदि ॥ ९० ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ चाथ श्रीकृष्णस्य समीपतः।

तब उस गोपीने उत्तर दिया—मूर्खे! मैंने रजको धोया है, परंतु वह मिट नहीं रही है। कर्मसे मलिन हुए शरीरको धोकर शुद्ध नहीं किया जा सकता। मैंने गृह-कार्योंमें ही आसक्त रहकर आजतक अपने जीवनको बरबाद कर दिया; जो शेष है वह भी कलुषित ही है; इसीलिये आज रज (धूल या रजोगुण) से आवृत होकर ही गोविन्दके पास जा रही हूँ; क्योंकि जहाँ पर्याप्त जल होता है, मलिन प्राणी वहीं जाते हैं। वहाँ किसी पत्थरकी शिलापर अथवा लकड़ी-के पाटेपर पटककर जिस तरह कपड़ेकी मैल साफ की जाती है, उसी तरह आज मैं इस समाजमें लज्जाका परित्याग करके अपने इस मलयुक्त शरीरको श्रीकृष्णके चरणपीठपर पछारकर रजसे रहित (स्वच्छ या शुद्ध) करूँगी। ऐसा कहकर वह श्रीकृष्णके समीप चली गयी ॥ ८७–९०½ ॥

उवाच केशवं चान्या प्रहसन्ती पुनः पुनः ॥ ९१ ॥
नवनीतं गृहाण त्वं कर्मणा यन्मयाऽऽहृतम्।
यशोदा त्वन्मुखे देव नवनीतं ददौ पुरा ॥ ९२ ॥
तया दृष्टं जगत् सर्वं तमहं त्वां विलोकये।
तया यथा पुरा दृष्टं तथाहमवलोकये ॥ ९३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वदन्यः कश्च गोविन्द जगदास्ये प्रदर्शयेत् ।

तबतक दूसरी गोपी आकर बारंबार हँसती हुई श्रीकृष्णसे बोली—'देव ! मैं स्वयं परिश्रम करके जो माखन निकालकर लायी हूँ, उसे आप ग्रहण करें । पहले यशोदाने भी तो आपके मुखमें मक्खन दिया था, उस समय उन्हें आपके मुखमें सारा जगत् दीख पड़ा था । आज उन्हीं आप (श्रीकृष्ण) को मैं देख रही हूँ । यशोदाजीने पहले जैसा जगत् देखा था, वैसा ही मैं भी देखूँगी । गोविन्द ! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन है, जो अपने मुखमें सारे संसारको दिखा सके ?' ॥ ९१–९३½ ॥

तावच्चान्या समागत्य दृष्ट्वा कृष्णं च हर्षिता ।
नमस्कृत्य स्थिता राजन् सर्वं विस्मृत्य कर्मजम् ॥ ९४ ॥
भयं गोविन्दमासाद्य तदद्भुतमिवाभवत् ।

राजन् ! तबतक वहाँ दूसरी गोपी आकर श्रीकृष्णका दर्शन करके अत्यन्त प्रसन्न हुई । वह अपने कर्मजनित भयको भूलकर गोविन्दके पास जा उन्हें प्रणाम करके सामने चुपचाप खड़ी हो गयी । यह एक अद्भुत-सी बात थी ॥

जैमिनिरुवाच

ततः प्राप्तो महाबुद्धिर्भगवान् देवकीसुतः ॥ ९५ ॥
कालिन्दीतीरसांनिध्ये यत्र रम्यं महद् वनम् ।
संस्थाप्य वीणकं रम्यं सैन्यं तत्र न्यवेशयत् ।
सुहृज्जनं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ९६ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर महाबुद्धिमान् भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्ण यमुना-तटके समीप उस स्थान-पर पहुँचे, जहाँ एक विशाल रमणीय वन था । वहाँ उन्होंने अपने सुन्दर खेमेको गड़वाकर सेनाका पड़ाव डाल दिया और फिर सुहृदोंको बुलाकर इस प्रकार कहा—॥ ९५-९६ ॥

देवकीं मातरं प्राह यशोदां रुक्मिणीमपि ॥ ९७ ॥
कार्या भवद्भिः कुन्त्याश्च परिचर्या दिने दिने ।
भगिनी वसुदेवस्य जननी चार्जुनस्य च ॥ ९८ ॥
अन्या वृद्धतमाः प्राप्ताः सेवनीयाः प्रयत्नतः ।
अनसूयारुन्धती च ऋषिभार्याश्च शोभनाः ।

पहले उन्होंने माता देवकी, यशोदा और महारानी रुक्मिणीसे कहा—'आपलोगोंको प्रतिदिन कुन्तीदेवीकी सेवा करनी चाहिये; क्योंकि वे हमारे पिता वसुदेवजीकी बहिन और अर्जुनकी माता हैं । तथा अनसूया, अरुन्धती आदि कल्याणी ऋषिपत्नियाँ एवं और भी जो बड़ी-बूढ़ी नारियाँ वहाँ आयी हों, वे भी आपलोगोंद्वारा सेवा करने योग्य हैं ॥

प्रद्युम्नप्रमुखाः सर्वे शृण्वन्तु वचनं मम ॥ ९९ ॥
धर्मराजस्य च पुरे बहुलोकसमागमे ।
बहुवीरयुते रम्ये यज्ञोत्सवविनोदिते ।
गुरूणां च प्रकर्तव्यं भवद्भिः पूजनं तथा ॥ १०० ॥

'अब प्रद्युम्न आदि सब लोग मेरी बात सुनें—धर्मराज युधिष्ठिरका रमणीय नगर इन दिनों अश्वमेध यज्ञके उत्सवसे आमोद-प्रमोदमय हो रहा है । वहाँ बहुत-से लोगोंका समागम होगा और बहुत-से शूरवीर भी पधारेंगे, अतः तुमलोगोंको वहाँ सभी गुरुजनोंका सब प्रकारसे आदर-सत्कार करना चाहिये ॥ ९९-१०० ॥

तावत् तेजांसि वीराणां यावत् पार्थो न दृश्यते ।
सर्वतीर्थानि गर्जन्ति तावत् पापप्रणाशने ॥ १०१ ॥
यावन्न सिंहगे जीवे दृश्यते गौतमी नदी ।

'अन्य वीरोंके तेज तभीतक प्रकाशित होते हैं, जबतक अर्जुनका दर्शन नहीं होता । (उनके सामने आते ही सभी-के तेज शान्त हो जाते हैं, ठीक उसी तरह जैसे) पाप नाश करनेके लिये दूसरे समस्त तीर्थ तभीतक गरजते हैं, जबतक कि बृहस्पतिके सिंह राशिमें स्थित होनेपर गौतमी (गोदावरी) नदीका दर्शन नहीं हो जाता ॥ १०१½ ॥

प्रद्युम्नेन यथा राष्ट्रे स्थीयते राजलीलया ॥ १०२ ॥
तथात्र शक्यते नैव स्थातुं धर्मपुरेऽधुना ।
न कदाचिद् भवान् प्राप्तः पुरे हि गजसाह्वये ॥ १०३ ॥
यत्र भीमो विद्यमानो महाबुद्धिः सदा शुचिः ।
जननीं भवतां देवीं पार्षतीं भगिनीं मम ॥ १०४ ॥
सम्भावयतु यज्ञेऽस्मिन् भामया सहिताः शुभाः ।
अयुतेनापि नारीणां सदा तिष्ठति सा वृता ॥ १०५ ॥
दीपहस्ता यज्ञकाले भावयन्तु च पार्षतीम् ।
अहं तत्र गमिष्यामि प्रथमं धर्मनन्दनम् ॥ १०६ ॥
सत्कर्तुं स्वजनं तं तु यूयं गच्छत पृष्ठतः ।

'प्रद्युम्न अपने राज्यमें जिस तरह राजसी ठाट-बाटसे रहते हैं, उस प्रकार इस समय वहाँ धर्मराज युधिष्ठिरके हस्तिनापुरमें रहना उचित नहीं है; क्योंकि जहाँ महाबुद्धिमान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा सदा पवित्र आचरण करनेवाले भीमसेन रहते हैं, उस हस्तिनापुरमें तुम पहले कभी नहीं गये हो। तुम इस यज्ञमें पृषत-नन्दिनी द्रौपदीका सम्मान करना; क्योंकि वह देवी हमारी बहिन तथा तुमलोगोंकी माताके समान है। वह शुभ-लक्षणा द्रौपदी सदा दस हजार नारियोंसे घिरी रहती है। यज्ञके अवसरपर सत्यभामासहित सभी स्त्रियाँ हाथमें दीपक लेकर द्रौपदीका सम्मान करें। मैं अपने प्रेमी धर्मनन्दन युधिष्ठिरका सत्कार करनेके लिये पहले ही वहाँ जाऊँगा। तुम लोग मेरे पीछे आना' ॥ १०२–१०६½ ॥

एवं संदिश्य तान् सर्वान् भीमं संस्थाप्य वीणके ॥१०७॥
एकाकी हयमारुह्य प्रययौ हस्तिनापुरम्।
वासुदेवो महाबुद्धिः परिमेयपुरःसरः ॥१०८॥

महाबुद्धिमान् श्रीकृष्णने इस प्रकार उन सबको आदेश देकर भीमसेनको खेमेमें ही ठहरा दिया और स्वयं आगे चलनेवाले कुछ इने-गिने घुड़सवारोंको साथ लेकर घोड़ेपर सवार हो वे अकेले ही हस्तिनापुरको चल दिये ॥१०७-१०८॥

प्रविशन्तं हरिं वीक्ष्य नागरो हि महाजनः।
हर्षेण महता युक्तः सम्मुखोऽभूज्जनाधिप ॥१०९॥

जनेश्वर ! नगरमें प्रवेश करते हुए श्रीकृष्णको देखकर नागरिकोंका महान् जनसमूह अत्यन्त हर्षसे उल्लसित होकर उनका स्वागत करनेके लिये सामने उपस्थित हुआ ॥१०९॥

ब्राह्मणा याज्ञिकाः सर्वे वचनं चेदमब्रुवन्।
अस्माभिः क्रियते कर्म भुवि स्वर्गेच्छया सदा ॥११०॥
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैः स्वर्गास्ते हरिणा कृताः।
यज्ञभुग् यज्ञकर्ता च फलदाता च कर्मणाम् ॥१११॥
सोऽयमायाति यज्ञेशोऽनेकयज्ञफलप्रदः।
कथं धूमान्धया दृष्ट्या दृश्यते यज्ञनायकः ॥११२॥

उस समाजमें जो याज्ञिक ब्राह्मण थे, वे सब इस प्रकार कहने लगे—'हमलोग इस भूतलपर जिन स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्तिकी इच्छासे अग्निष्टोम आदि यज्ञोंद्वारा सदा कर्म करते रहते हैं, उन स्वर्गादि लोकोंके रचयिता तो श्रीकृष्ण ही हैं। ये ही यज्ञोंके भोक्ता, कर्ता और कर्मफलदाता हैं। अनेक प्रकारके यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाले और यज्ञोंके स्वामी वे ही ये श्रीकृष्ण स्वयं यहाँ पधार रहे हैं। भला, जिनकी दृष्टि हवनके धुएँसे अंधी हो गयी है, उन हमलोगोंको इन यज्ञेश्वरका दर्शन कैसे हो सकता है ॥ ११०–११२ ॥

यथा भक्तेन पार्थेन दर्शितोऽयं जनार्दनः।
न तथा पावकेनापि बहुसंतर्पितेन च ॥११३॥

'यद्यपि हमलोगोंने इन अग्निदेवको बहुत तृप्त किया है, तथापि ये उन जनार्दनका वैसा दर्शन नहीं करा सके, जैसा कि भक्त पार्थने हमें इनका प्रत्यक्ष दर्शन कराया है ॥

कृष्णं न वेत्ति किं वह्निः सप्तजिह्वोऽपि विश्रुतः।
क्षीरं पिबति वै साक्षाद् द्विजिह्वः कुरुते विषम् ॥११४॥
सप्तजिह्वः कथं कृष्णं दर्शयेत् कृष्णवर्त्मना।

'क्या ये अग्निदेव श्रीकृष्णको नहीं जानते हैं ? (जो इनका दर्शन नहीं करा सके।) ये तो सात जीभवाले भी सुने जाते हैं। भला, जब दो जीभवाला सर्प साक्षात् (अमृत-तुल्य) दूधको पीकर उसे विष बना देता है, तब जो अपनी सात जीभोंसे धूमका पान करते रहते हैं, वे अग्निदेव धूम-मार्गसे श्रीकृष्णका दर्शन कैसे करा सकते हैं?' ॥ ११४½ ॥

तत्राब्रवीद् द्विजः कश्चिन्न दोषः पावकस्य सः ॥११५॥
अस्माकं चास्ति दोषोऽयं कर्मादीनामनर्पणात्।

तबतक वहाँ कोई दूसरा ब्राह्मण बोल उठा—'यह अग्निदेवका दोष नहीं है, यह तो हमारा ही दोष है, जो हमने अपने कर्मों तथा उनके फलोंको श्रीकृष्णके अर्पण नहीं कर दिया' ॥ ११५½ ॥

ततोऽन्यः प्राह तान् सर्वान् दृश्यतां देवकीसुतः ॥११६॥
यज्ञजं सुकृतं चास्मै कृष्णायाशु प्रदीयताम्।
तेन स्वर्गेण किं कार्यं यस्मात् पतनजं भयम् ॥११७॥
निर्भयं विचरिष्यामः साम्प्रतं हरिणा वयम्।

तदनन्तर एक दूसरा ब्राह्मण उन सबसे कहने लगा—'सज्जनो ! इन देवकीनन्दनका दर्शन करो और यज्ञानुष्ठानसे प्राप्त हुआ अपना समस्त पुण्य इन श्रीकृष्णको समर्पित कर दो। हमें उस स्वर्गको लेकर क्या करना है, जहाँसे सदा गिरनेका भय बना रहता है। (पुण्य अर्पण कर देनेसे) इस समय हमलोग श्रीकृष्णके साथ निर्भय होकर विचरेंगे' ॥

जैमिनिरुवाच

एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योन्यं निरीक्ष्य यदुनन्दनम् ॥११८॥
ऊचुः कृष्णं तदा सर्वे यदा देवेन वन्दिताः।
चराचरस्य देव त्वं गमनागमनादिकम् ॥११९॥
छिन्धि विप्राशिषः प्राप्य स्वस्ति तेऽस्तु जगत्पते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! उन यदुनन्दनको देखकर वे ब्राह्मण जब परस्पर ऐसी बातें कर रहे थे, इसी बीचमें भगवान् श्रीकृष्णने उनकी वन्दना की। तब वे सब उनसे बोले—'देव! हम ब्राह्मणोंका आशीर्वाद पाकर आपका कल्याण हो। जगत्पते! आप चराचर विश्वके प्राणियोंके आवागमनरूपी बन्धनको काट दीजिये' ॥ ११८-११९½ ॥

जैमिनिरुवाच

वृष्णिवीरं हि ददृशुस्तदा संन्यासिनो हि ते ॥१२०॥
पादानतं प्रब्रुवाणा नमो नारायणेति च।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! उस समय जो वहाँ संन्यासी उपस्थित थे, उन लोगोंने भी वृष्णिवंशके उत्तम वीर श्रीकृष्णका दर्शन किया। तब श्रीकृष्णने 'ॐ नमो नारायणाय' ऐसा कहकर उनके चरणोंमें प्रणिपात किया॥

संन्यासिन ऊचुः

नारायणस्त्वमात्मानमात्मनासि नमस्कृतः॥१२१॥
नारायणेति हि गिरास्माभिर्वक्तुं न पार्यते।
यतो वाचो निवर्तन्ते स भवान् पादयोर्नतः ॥१२२॥
वेदान्तवेद्यमभयं प्रत्यक्षं त्वामुपास्महे।
द्वे रूपे वासुदेवस्य चलं चाचलमेव च ॥१२३॥
चलं संन्यासिनां रूपमचलं प्रतिमादिकम्।
प्रणवाभ्यासनिरताः प्रणवोऽपि पदाम्बुजम् ॥१२४॥
त्वदीयं चिन्तयत्येव सदाद्यापि न वेत्ति तत्।

तदनन्तर उन संन्यासियोंने कहा—भगवन्! आप ही नारायण हैं और आपने अपनेको ही नमस्कार किया है। नारायणतत्त्व क्या है? यह हम अपनी वाणीद्वारा नहीं बता सकते। जहाँसे वाणी उन्हें न पाकर लौट आती है, वे ही नारायणस्वरूप आप हमारे चरणोंमें नतमस्तक हुए हैं। आप वेदान्त शास्त्रद्वारा जानने योग्य अभयपद—परब्रह्मस्वरूप हैं, उन्हीं आपकी इस समय हमलोग प्रत्यक्ष उपासना कर रहे हैं। आप वासुदेवके दो रूप हैं—एक चल और दूसरा अचल। संन्यासियोंका रूप आपका चल स्वरूप है और प्रतिमा आदि अचल। हमलोग प्रणवके अभ्यासमें तत्पर रहनेवाले हैं। किंतु प्रणव भी आपके चरणकमलोंका सदैव ध्यान करता ही रहता है; फिर भी आजतक उसके तत्त्वको न जान सका॥

श्रीकृष्ण उवाच

कर्मणः फलसंन्यासात् पुष्टं विष्णोः कलेवरम् ॥१२५॥
भवद्भिर्ध्यानसंयुक्तैर्विश्वरूपमयं कृतम्।
हंसा यथा भवन्तश्च तथा कृष्णोऽस्मि भूतले ॥१२६॥
आवयोः सङ्गतिश्चास्तु रम्ये धर्मपुरे सदा।

श्रीकृष्णने कहा—संन्यासियो! सदा ध्यानमें तत्पर रहनेवाले आपलोगोंने कर्मफलके त्यागद्वारा भगवान् विष्णुके विश्वरूपमय शरीरको परिपुष्ट किया है। जैसे आपलोग परमहंस वृत्ति धारण करके पृथ्वीपर विचरते रहते हैं, उसी प्रकार मैं भी भक्तोंके हितार्थ श्रीकृष्णरूपमें अवतीर्ण हुआ हूँ। अतः धर्मराजके इस रमणीय नगरमें हमारी और आप लोगोंकी संगति सदा बनी रहे। ॥ १२५-१२६½ ॥

जैमिनिरुवाच

अनुज्ञातस्ततः कृष्णो राजमार्गे जगाम सः ॥१२७॥
प्रासादस्थाश्च पश्यन्ति योषितश्चारुलोचनाः।
पण्याङ्गनाश्च गोविन्दं विलोक्येदमथाब्रुवन् ॥१२८॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण उन संन्यासियोंसे अनुमति ले राजमार्गपर आगे बढ़े। उस समय सुन्दर नेत्रोंवाली नगरकी स्त्रियाँ अटारियोंपर चढ़कर उनका दर्शन कर रही थीं। उसी समय वेश्याएँ गोविन्दको देखकर ऐसा कहने लगीं॥ १२७-१२८ ॥

पण्याङ्गना ऊचुः

कथमायाति गोविन्दो गृह्णीतेति सकृच्छुभः।
दाता हि कामुको धूर्तः कृष्णः कमललोचनः ॥१२९॥
पेशलः सबलः श्रीमाँल्लुब्धः स्त्रीषु निरन्तरम्।

वेश्याएँ बोलीं—सखी! न जाने ये शुभलक्षण गोविन्द इधर कैसे आ रहे हैं, इन्हें एक बार पकड़ तो लो। (इसमें भय करनेकी कोई बात नहीं है, क्योंकि) ये कमलनयन श्रीकृष्ण बड़े दाता, कामी, धूर्त, मनोहर, बलवान्, श्रीसम्पन्न और स्त्रियोंपर सदा लुभाये रहनेवाले हैं॥ १२९½॥

शम्भल्युवाच

एवं पुराणपुरुषं वृथा नारीजनो हृदि ॥१३०॥
धर्तुं प्रयत्नं कुरुते नायं धर्तुं भवेत् क्षमः।
स मुक्तस्तत् कथं मुग्धे मुक्तो धर्तुं न शक्यते ॥१३१॥

यह सुनकर एक कुटनीने कहा—यह नारी-समाज अपने हृदयमें ऐसे पुराणपुरुषको पकड़नेके लिये व्यर्थ ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयत्न कर रहा है। ये पकड़े जाने योग्य नहीं हैं। मुग्धे! जो विषय-वासनाओंसे सर्वथा मुक्त हैं, ऐसे पुरुषका पकड़ा जाना कैसे सम्भव हो सकता है॥ १३०-१३१॥

षोडशस्त्रीसहस्राणि येन भुक्तानि भूतले।
यूना पुराद्य वृद्धेन बहुपुत्रेण किं फलम्॥१३२॥
तथापि कारणं त्वेकं केशवग्रहणे हि नः।
मुक्ताः सर्वा भविष्यामः सकामास्तेन सङ्गताः॥१३३॥

जिन्होंने पहले युवावस्थामें इस पृथ्वीपर सोलह हजार स्त्रियोंका उपभोग किया है, जिनके बहुत-से पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं तथा जो अब वृद्ध हो चले हैं, ऐसे पुरुषको पकड़नेसे कौन-सा प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? तथापि इन केशवको ग्रहण करनेमें हमलोगोंको एक ही लाभका कारण प्रतीत होता है कि यदि हमलोग इनके साथ सकामभावसे भी सम्पर्क स्थापित करें तो भी सब-की-सब मुक्त हो जायँगी।१३२-१३३।

तस्मात् पुराणपुरुषात् परमार्थो हि गृह्यताम्।
पुमान् युवास्तु वृद्धो वा न सङ्गे सस्पृहा वयम्॥१३४॥

इसलिये इन पुराणपुरुषसे (तो मुक्तिरूप) उत्तम अर्थ ही ग्रहण करना चाहिये। ये तरुण पुरुष हों अथवा वृद्ध, इससे हमें क्या लेना है; क्योंकि अब तो हमलोगोंके मनमें पुरुष-समागमकी लालसा ही नहीं रह गयी है॥ १३४॥

युवतीभिर्न वृद्धाभिर्मोचनीयो जनार्दनः।
कृष्णाद् वृद्धो न वै कश्चिद् दृश्यतेऽत्र महाजनः॥१३५॥

अतः चाहे तरुणी स्त्रियाँ हों या बूढ़ी, उन्हें श्रीकृष्णको कदापि नहीं छोड़ना चाहिये; क्योंकि यहाँ हमें श्रीकृष्णसे बड़ा-बूढ़ा दूसरा कोई महाजन (महापुरुष) नहीं दीख रहा है॥ १३५॥

ब्रूते महाजनो मन्दः साम्प्रतं देवकीसुतम्।
जानाम्यहं यथा चास्य चेष्टितं वेत्ति नापरा॥१३६॥

आजकल यह मूर्ख जनसमुदाय इन्हें देवकीका पुत्र बतलाता है; परंतु इनका वृत्तान्त जैसा मैं जानती हूँ, वैसा कोई दूसरी स्त्री नहीं जानती॥ १३६॥

कुब्जा च कामिता येन तथा वानरकन्यका।
स्त्रीसमूहमिमं रम्यं स कथं परिहास्यति॥१३७॥

भला, जिन्होंने कुब्जा तथा वानर-कन्या जाम्बवतीकी भी कामना की है, वे रमणियोंके इस रमणीय समूहको कैसे छोड़ सकेंगे?॥ १३७॥

जैमिनिरुवाच

एवं ब्रुवाणा सा कृष्णं सर्वाभिः सहिताग्रतः।
नमस्कृत्य स्थिता हृष्टा देवेनापि प्रतोषिता॥१३८॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! यों कहती हुई वह शम्भली (कुटनी) सभी नारियोंको साथ ले श्रीकृष्णको प्रणाम करके हर्षपूर्वक उनके आगे खड़ी हो गयी। तब भगवान् श्रीकृष्णने भी (मधुर वाणीद्वारा) उसे संतुष्ट किया॥ १३८॥

ततः कृष्णस्य पुरतः स्थितो वन्दिगणो महान्।
तेषां वृद्धतमः प्राह संस्तुवच्छ्रीपतिं मुहुः॥१३९॥

तदनन्तर श्रीकृष्णके समक्ष वंदियोंका महान् दल उपस्थित हुआ। उनमें जो सबसे बूढ़ा था, वह उन लक्ष्मीपतिकी बारंबार स्तुति करता हुआ कहने लगा॥ १३९॥

वन्दिराज उवाच

प्राप्तोऽयं देवकीपुत्रः कृष्णः कंसनिषूदनः।
अद्यार्थिनां च सर्वेषां भवदैन्यं गमिष्यति॥१४०॥

वंदिराज बोला—ये श्रीकृष्ण, जो देवकीदेवीके पुत्र और कंसका संहार करनेवाले हैं, बड़े भाग्यसे यहाँ पधारे हैं। आज सभी याचकोंकी संसारमें फँसे रहनेकी दीनता दूर हो जायगी॥ १४०॥

इदं ममेति जल्पन्तो जना मोहरुजा वृताः।
कृष्णवैद्येन ते सर्वे स्वनामौषधदायिना॥१४१॥
सत्यं वच्मि न संदेहो भवन्ति च निरामयाः।
व्याधयः कामजाः सर्वे संक्षयं यान्ति चिन्तनात्॥१४२॥

'यह मेरा है' यों कहते हुए जो लोग मोहरूपी रोगसे ग्रस्त हो गये हैं, वे सभी इन वैद्यराज श्रीकृष्णकी कृपासे, जो नाम-रूपी औषध प्रदान करनेवाले हैं, निस्संदेह नीरोग हो जायँगे, यह मैं सत्य कह रहा हूँ; क्योंकि कामनाओंसे उत्पन्न होनेवाली जितनी व्याधियाँ हैं, वे सभी इनका ध्यान करनेसे नष्ट हो जाती हैं॥ १४१-१४२॥

ब्रह्मायुरिति वै शब्दं कथं ब्रूमो हरिं प्रति।
नाभिपङ्कजमध्यात् तु समुत्पन्नः पितामहः॥१४३॥

भला, जिनके नाभिकमलके मध्यभागसे ब्रह्माकी उत्पत्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुई है, उन श्रीहरिके प्रति मैं 'ब्रह्मायुरस्तु—ये ब्रह्माकी-सी आयुवाले हों' इन शब्दोंका प्रयोग कैसे करूँ ? ॥ १४३ ॥

पिता पितामहः कोऽस्य वर्तते तन्न विद्महे ।
नामग्रहणमेवास्य कर्तव्यं किल सिद्धये ॥१४४॥

इनके पिता और पितामह कौन हैं । इसका तो हमें पता नहीं है, परंतु (इतना अवश्य जानते हैं कि) अपनी मनोरथ-सिद्धिके लिये निश्चय ही इनके नामका आश्रय लेना चाहिये ॥ १४४ ॥

महिमानं न जानामि नाम्नोऽस्य गदितुं भुवि ।
नामानि सुबहून्यस्य प्रतापजनितानि च ॥१४५॥

इनके नामोंकी महिमाका वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ; क्योंकि भूतलपर इनके बहुत-से ऐसे नाम प्रसिद्ध हैं, जो इनके प्रतापसे प्रकट हुए हैं ॥ १४५ ॥

नीतं निगममालोक्य शङ्खेनाद्झिषोऽभवत् ।
मानुषाणां कथं मध्ये वर्ण्यते मीनजन्म तत् ॥१४६॥

शंखासुरद्वारा वेदोंका अपहरण हुआ देखकर ये आदि-मत्स्यके रूपमें प्रकट हुए थे, उस मत्स्यावतारका वर्णन इन मनुष्योंके मध्यमें कैसे किया जा सकता है ? ॥ १४६ ॥

कूर्मः कोलोऽयमभवच्छ्रुतमेतस्य पौरुषम् ।
अर्धकेसरिवेषोऽयं विप्रोऽभूच्चैव वामनः ॥१४७॥

ये कच्छप और सूकरके रूपमें भी अवतीर्ण हुए थे । उन अवतारोंमें इन्होंने जो पुरुषार्थ किया था, वह हमने सुना है । इन्होंने ही आधा सिंह और आधा मनुष्य अर्थात् नृसिंह-का रूप धारण किया था और ये ही वामन ब्रह्मचारीके रूपमें भी प्रकट हुए थे ॥ १४७ ॥

एतानि किल जन्मानि श्रुत्वा चास्य महात्मनः ।
सर्वसम्पत्समायुक्तो भविष्यति न संशयः ॥१४८॥

महात्मा श्रीकृष्णके इन सभी अवतारोंका वर्णन सुनकर मनुष्य निश्चय ही सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे सम्पन्न हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १४८ ॥

मन्मुखाद् गतदोषस्तु किंचित्परमुखात् तथा ।
भविष्यति न संदेहः कृष्णः कोपं करिष्यति ॥१४९॥

वन्दिना मम जन्मानि कथितानि जनं प्रति ।
कुरूपाणि ध्रुवं मत्वा जिह्वां किं मे हरिष्यति ॥१५०॥

मेरे मुखसे तथा दूसरेके मुखसे इनके अवतारोंका थोड़ा-सा भी वर्णन सुननेवाला मनुष्य निस्संदेह पापरहित हो जायगा, परंतु श्रीकृष्ण यह समझकर मुझपर क्रोध करेंगे कि इस वंदीने जनताके समक्ष मेरे कुत्सित रूपवाले अवतारोंके रहस्यका उद्घाटन क्यों कर दिया ? क्या ऐसा मानकर ये अवश्य मेरी जीभ उखाड़ लेंगे ॥ १४९-१५० ॥

सर्वं हरति गोविन्दः शारीरं मानसं त्वघम् ।
नामानि कीर्तयिष्येऽहं राम रामेति वै पुनः ॥१५१॥

गोविन्द तो अपना नाम लेनेवालेके शारीरिक तथा मानसिक सभी पापोंका नाश कर देते हैं, इसलिये मैं 'राम, राम' कहकर निश्चय ही इनके नामोंका बारंबार कीर्तन करूँगा ॥ १५१ ॥

रामनाम्नापि सर्वज्ञः शङ्करः किल तुष्यति ।
तेन नाम्ना न किं तुष्येद् देवो गोपालमूर्तिमान् ॥१५२॥

क्योंकि जिस राम-नामके संकीर्तनसे सर्वज्ञ भगवान् शंकर संतुष्ट हो जाते हैं, उसीसे ये गोपालरूपधारी भगवान् श्रीकृष्ण क्यों नहीं प्रसन्न होंगे ? ॥ १५२ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं चिन्तयमानं तं वारयामास केशवः ।
प्रददौ मुक्तमालां स्वां तस्मै कण्ठविलम्बिनीम् ॥१५३॥

जैमिनिजी कहते हैं— जनमेजय ! ऐसा सोच-विचार करते हुए उस वंदीको भगवान् केशवने आगे कहनेसे रोक दिया और गलेमें लटकते हुए अपने मुक्ताहारको उसे पुरस्कार-रूपमें प्रदान किया ॥ १५३ ॥

मुक्ताफलानि सर्वेषां दत्त्वा स प्रययौ नृप ।
धर्माधिकारिभिर्दृष्टः सर्वैस्तैः परिवारितः ॥१५४॥

राजन् ! इसी तरह सभी भाटोंको मोतियोंका ही पुरस्कार देकर ज्यों ही वे आगे बढ़े, त्यों ही धर्माधिकारियोंने उन्हें देख लिया । फिर तो वे सब उन्हें घेरकर खड़े हो गये ॥ १५४ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि श्रीकृष्णहस्तिनापुरप्रवेशो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें श्रीकृष्णका हस्तिनापुरप्रवेशविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वादशोऽध्यायः

युधिष्ठिरके पूछनेपर महर्षि जैमिनिद्वारा स्मार्तोंके भाषणका वर्णन, नर्तकी और श्रीकृष्णका वार्तालाप, श्रीकृष्णका युधिष्ठिरके भवनमें प्रवेश और सत्कार, युधिष्ठिरका दलबलसहित यादवोंके सत्कारार्थ गङ्गातटपर जाना और वहाँ परस्पर मिलन, सत्यभामा-द्रौपदी-संवाद, उपाद्वारा द्रौपदी तथा कुन्तीका सत्कार, सत्यभामाका अश्व-को देखनेकी इच्छा प्रकट करना, श्रीकृष्णके कहनेसे युधिष्ठिरका अपने सैनिकोंको आदेश देना, नारियोंद्वारा घोड़ेका दर्शन, अनुशाल्वका आगमन और उसका यज्ञिय अश्वको पकड़कर सैनिकोंको आदेश देते हुए संग्राम-भूमिमें डटकर खड़ा होना

जनमेजय उवाच

ततः परं किमभवत् स्मार्तभाषितमादरम्।
किं जगाद स गोविन्दस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—तपोधन! तत्पश्चात् स्मार्तधर्मावलम्बी उन धर्माधिकारियोंने भगवान् श्रीकृष्णसे आदरपूर्वक क्या निवेदन किया और उन गोविन्दने उसके उत्तरमें उनसे क्या कहा, वह सब मुझे बताइये ॥ १ ॥

जैमिनिरुवाच

शृणु राजेन्द्र गोविन्दमब्रुवंस्ते च यद् वचः।
महता चैव हर्षेण धर्मराजपुरे तदा ॥ २ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजेन्द्र! उस समय धर्मराजके नगरमें उन स्मार्तोंने अत्यन्त हर्षपूर्वक श्रीकृष्णसे जो बातें कही थीं, उन्हें सुनो ॥ २ ॥

स्मार्ता ऊचुः

सम्यगाचारकरणाद् वर्त्तनात् सम्यगेव नः।
सम्प्रायश्चित्तदानाद् वै त्वमस्माभिर्विलोक्यसे ॥ ३ ॥

स्मार्तोंने कहा—भगवन्! सदाचारका सम्यक्रूपसे पालन करनेसे, उसे भलीभाँति व्यवहारमें लानेसे, पापोंका प्रायश्चित्त करनेसे एवं दान देनेसे हमलोगोंको आपका दर्शन प्राप्त हुआ है ॥ ३ ॥

नृपाज्ञया जनाः सर्वे धर्ममार्गे नियोजिताः।
धर्मसंरक्षणार्थं हि त्वया जन्मकृतं भुवि ॥ ४ ॥

प्रभो! राजा युधिष्ठिरकी आज्ञासे इस समय सारा जनसमुदाय धर्ममार्गपर नियुक्त किया गया है; क्योंकि आपने भी तो धर्मकी रक्षाके लिये ही इस भूतलपर अवतार धारण किया है ॥ ४ ॥

कुर्वन्ति पातकं ये च ब्रह्महत्यादिकं हरे।
ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ॥ ५ ॥
तत्संसर्गी पञ्चमस्तु महापातककारकाः।
त्वन्नामग्रहणादेव पूताः कृष्ण भवन्ति ते ॥ ६ ॥

हरे! जो ब्रह्महत्या आदि महान् पापोंको करनेवाले हैं तथा जो ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला, स्वर्ण चुरानेवाला, मदिरा पीनेवाला, गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला और पाँचवाँ जो इनके संसर्गमें रहनेवाला है—ये सभी महान् पातक करनेवाले हैं, अतएव 'महापातकी' कहलाते हैं। श्रीकृष्ण! ऐसे महापातकी भी आपके नाम-संकीर्तनसे ही पवित्र हो जाते हैं ॥ ५-६ ॥

एते पृच्छन्ति सर्वेऽस्मान् प्रायश्चित्तं हि कीदृशम्।
कृपया दीयतेऽस्माभिस्तेभ्यो नामाधिकं न हि ॥ ७ ॥

प्रभो! जब ये सभी पापी हमलोगोंसे पूछते हैं कि हमारे पापोंका कौन-सा प्रायश्चित्त हो सकता है? तब हमलोग कृपापूर्वक उनसे यही विधान बतलाते हैं कि हरि-नामसे बढ़कर दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ७ ॥

पापकेन समं वीक्ष्य प्रायश्चित्तं प्रयोजयेत्।
एतानि पातकान्येव खल्पानि हरिनामतः ॥ ८ ॥
द्वादशाब्दमुखं तस्मात् तेषु तेषु समं भवेत्।
द्वादशाब्दमुखं कृत्वा पात्रं तेषां तु तिष्ठति ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरिनाम प्रगृह्णन्ति न तिष्ठति कलेवरम्।
न पापानि वसन्त्येव तस्मिन् देव जनार्दन ॥ १० ॥
एकस्तु संशयो घोरो न कथंचन गच्छति।
प्रायश्चित्तप्रदानेन सदास्मच्चित्तसंस्थितः ॥ ११ ॥

क्योंकि ये सभी पातक हरि-नामके सामने कुछ भी नहीं हैं, परंतु पापकी समताका विचार करके ही प्रायश्चित्तका प्रयोग करना चाहिये, इसीलिये उन-उन पापोंकी शान्तिके लिये हरि-नामके अतिरिक्त बारह वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले दूसरे भी मुख्य-मुख्य प्रायश्चित्तोंका विधान है, जो उन पापोंकी समतामें आ सकते हैं; परंतु ऐसे प्रायश्चित्तोंके करनेपर भी उन पापियोंका शरीर रह जाता है—उन्हें पुनः जन्म लेना पड़ता है और जो हरि-नामका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, उनके शरीरमें तो पाप ठहरता ही नहीं; अतः उनका शरीर नहीं ठहरता—वे मुक्त हो जाते हैं। किंतु जनार्दन! देव! हमारे मनमें एक बहुत बड़ा संदेह समाया हुआ है, जो किसी प्रकार दूर नहीं हो रहा है। दूसरोंके लिये प्रायश्चित्तोंका विधान करते समय वह सदा हमारे चित्तमें बना रहता है ॥ ८–११ ॥

विष्णोर्नामानि ये मूढा न स्मरन्ति विमोहिताः।
तेषामिहात्महन्तॄणां प्रायश्चित्तं न विद्महे ॥ १२ ॥

(वह संशय यह है कि) जो मूर्ख विषय-विमुग्ध होकर भगवान् विष्णुके नामोंका स्मरण नहीं करते, उन आत्म-हत्यारोंके लिये यहाँ क्या प्रायश्चित्त हो सकता है, यह हम नहीं जानते ॥ १२ ॥

धर्मशास्त्राणि सर्वाणि वीक्षितानि पुनः पुनः।
प्रायश्चित्तानि दृष्टानि सर्वपातकहानि तु ॥ १३ ॥
न श्रुतं न च दृष्टं हि प्रायश्चित्तं जनार्दन।
त्वत्संस्मृतिविहीनानामधमानां कथंचन ॥ १४ ॥

हमने समस्त धर्मशास्त्रोंको बारंबार उलटकर देख लिया और उनमें सारे पातकोंका नाश करनेवाले प्रायश्चित्तोंको पाया भी; परंतु जनार्दन! जो तुम्हारे स्मरणसे हीन अधम पुरुष हैं, उनके लिये कोई प्रायश्चित्त न तो हमने कहीं देखा है और न सुना ही ॥ १३-१४ ॥

जैमिनिरुवाच

एवंविधं वचः श्रुत्वा प्रसन्नः परमेश्वरः।
सहैव तैः प्रयातोऽग्रे दृष्टवान् नर्तकीगणान् ॥ १५ ॥
प्रवर्त्तमानान् नृत्येषु कृष्णागमनकाङ्क्षया।
षड्विधातालकेनाथ तृप्तस्तेन च केशवः ॥ १६ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! उन स्मार्तोंके इस प्रकारके वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये और उन लोगोंके साथ ही आगे बढ़े। कुछ दूर जानेपर उन्हें नर्तकियोंकी मण्डलियाँ दिखायी पड़ीं, जो श्रीकृष्णके पधारनेकी अभिलाषासे छः प्रकारके तालोंके साथ नृत्य कर रही थीं। उन्हें देखकर केशव तृप्त हो गये ॥ १५-१६ ॥

ततो माधवमालोक्य नर्त्तकी च करं विना।
वल्लीव नन्दने रम्ये सुमनोभिरलंकृता ॥ १७ ॥
नेत्राभ्यां षट्पदाभ्यां च भ्रममाणा पुनः पुनः।

तदनन्तर माधवको देखकर एक नर्तकी हाथोंसे भाव दिखाना बंद करके नेत्रोंसे ही भाव प्रकट करती हुई बारंबार घूम-घूमकर नाचने लगी, ठीक उसी तरह जैसे रमणीय नन्दन-वनमें पुष्पोंसे सुशोभित कोई लता नृत्य कर रही हो और उसपर दो भौंरे मड़रा रहे हों ॥ १७½ ॥

वंशकीचकनादेन मृदङ्गकलनिःस्वनैः।
तोषयन्ती हृषीकेशं मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥

उस समय वह कीचक नामक बाँसकी बनी हुई बाँसुरीके सुरीले शब्दोंसे तथा मृदङ्गकी मधुर आवाजसे श्रीकृष्णको रिझाती हुई मधुर वचनोंमें बोली ॥ १८ ॥

नर्तक्युवाच

मां भ्रमन्तीं जना वीक्ष्य प्रहसन्ति तवाग्रतः।
न विदन्ति परं मूढा मद्भ्रमात् तुष्यते हरिः ॥ १९ ॥

नर्तकीने कहा—प्रभो! आपके सामने मुझे नाचती हुई देखकर लोग मेरी हँसी उड़ा रहे हैं, परंतु इन मूर्खोंको पता नहीं है कि मेरे नाचनेसे श्रीहरि प्रसन्न हो रहे हैं ॥ १९ ॥

किं ध्यानं किं तपस्तीव्रं किं दानं किं च तद्व्रतम्।
यस्मिन् कृतेन गोविन्दो दृश्यते भुवि चक्षुषा ॥ २० ॥

जिसके करनेपर इस पृथ्वीपर दोनों नेत्रोंद्वारा भगवान् गोविन्दका दर्शन न हो सके, वह ध्यान, कठोर तप, दान तथा व्रत-उपवास किस कामका है? ॥ २० ॥

ध्यानेन योगिनां नैव लीलया दृश्यते हरिः।
संस्थितं मद्भ्रमेणात्र सर्वे पश्यन्तु योगिनः ॥ २१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो श्रीहरि योगियोंके ध्यान करते रहनेपर भी लीलापूर्वक उनके सामने प्रकट नहीं होते, वे ही मेरे नाचनेसे प्रसन्न होकर यहाँ प्रत्यक्ष खड़े हैं, इसे सारा योगिसमुदाय देख ले ॥ २१ ॥

नृत्यतां गायतां चैव नानावाद्यं प्रकुर्वताम् ।
यथा संतुष्यते देवो न ध्यानाद्यैरिति श्रुतम् ॥ २२ ॥

मैंने तो ऐसा सुन रखा है कि नाचने, गाने तथा अनेक प्रकारके बाजा बजानेवालोंसे भगवान् श्रीकृष्ण जैसा संतुष्ट होते हैं, वैसा ध्यान आदि साधनोंद्वारा नहीं होते ॥ २२ ॥

एकं सुदर्शनं चक्रं तव हस्ते जनार्दन ।
पश्य मत्पाणिपदयोर्धृतं चक्रचतुष्टयम् ॥ २३ ॥

जनार्दन ! आपके हाथमें केवल एक ही सुदर्शन चक्र रहता है, परंतु देखिये न, मैंने अपने हाथों तथा पैरोंमें (कड़े-के रूपमें) चार चक्र धारण कर रखे हैं ॥ २३ ॥

त्वया पादे धृता गङ्गा कपोले शिरसा मया ।
अचलस्त्वं हृषीकेश चञ्चलास्मि सदाबला ॥ २४ ॥

आपने गङ्गाजीको अपने पैरोंमें स्थान दिया है, परंतु मैं उन्हें (स्वेद-विन्दुओंके रूपमें) अपने कपोलों तथा मस्तकपर धारण करती हूँ । हृषीकेश ! आप (अनन्त बलशाली होनेके कारण) अचल हैं और मैं अबला होनेके कारण चञ्चल ॥

त्वयैकं चाल्यते कृष्ण श्रूयते ब्रह्मगोलकम् ।
चाल्यन्ते पुरतस्तेऽद्य मयैते सप्त गोलकाः ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण ! सुना जाता है कि आप केवल इस एक ही ब्रह्माण्डगोलकका संचालन करते हैं, परंतु मैं आज आपके सामने ही इन सात गोलकोंका संचालन कर रही हूँ ॥ २५ ॥

षड्विंशत्संख्यका भावास्तव दृष्टेरुदाहृताः ।
क्रियन्ते न मया तेऽत्र पश्याम्येकेन केशवम् ॥ २६ ॥

प्रभो ! आपकी दृष्टिके (अर्थात् आपके देखनेके लिये) छब्बीस[2] भाव बतलाये गये हैं, परंतु मैं उन सबका यहाँ प्रदर्शन नहीं कर रही हूँ । केवल एक ही (उत्कण्ठा नामक) भावद्वारा मैं आप केशवको देख रही हूँ ॥ २६ ॥

नेत्राभ्यां कुसुमे कृष्ण गृहीते द्वे मया भुवः ।
पश्यामि त्वां तथैवात्र विस्मयः परमो हि मे ॥ २७ ॥

श्रीकृष्ण ! मैंने अपने नेत्रोंद्वारा पृथ्वीके दो पुष्पोंको ग्रहण कर लिया है अर्थात् मेरे नेत्र कमलके समान हैं । मैं उन्हीं नेत्रोंसे यहाँ आपको उसी कमलनयनके रूपमें देख रही हूँ, इससे मुझे परम आश्चर्य हो रहा है ॥ २७ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

पदानि मम गायन्ती नृत्यस्व त्वं वरानने ।
न गन्तव्यं त्वया क्वापि स्थातव्यं मद्गृहे सदा ॥२८॥

तब श्रीकृष्णने कहा—वरानने ! तू मेरे चरित्र-विषयक पदों (गीतों) का गान करती हुई नृत्य किया कर । तुझे अन्यत्र कहीं भी जानेकी आवश्यकता नहीं है । तू सदा मेरे गृहमें ही निवास कर ॥ २८ ॥

जैमिनिरुवाच

ततः प्रविष्टो भगवान् धर्मराजस्य मन्दिरे ।
ददर्श धृतराष्ट्रेण विदुरेण महात्मना ॥ २९ ॥
कृपेण सहितं वीरं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
नमस्कृत्याथ तान् सर्वानुपविष्टो वरासने ॥ ३० ॥
आलिङ्ग्य पाण्डवं वीरं माद्रीपुत्रौ तथापरान् ।
नमस्कृतश्च पार्थेन सर्वैस्तैर्जगतः पतिः ॥ ३१ ॥
धर्मराजेन चाघ्रातो मूर्ध्नि संतोषितो बहु ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने धर्मराज युधिष्ठिरके महलमें प्रवेश किया । वहाँ उन्होंने कुन्तीनन्दन वीरवर युधिष्ठिरको धृतराष्ट्र, महात्मा विदुर और कृपाचार्यके साथ बैठे हुए देखा । तत्पश्चात् वे उन सभी गुरुजनोंको प्रणाम करके तथा शूरवीर अर्जुन, माद्री-नन्दन नकुल-सहदेव एवं अन्य सभासदोंको भी हृदयसे लगाकर एक श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हुए । तब अर्जुन तथा उन सभी लोगोंने जगदीश्वर श्रीकृष्णके चरणोंमें नमस्कार किया और युधिष्ठिरने उनका मस्तक सूँघकर उन्हें सब प्रकारसे संतुष्ट किया॥

कुन्तीं हृष्टां च संवीक्ष्य द्रौपदीं सात्वतीमपि ।
युधिष्ठिरोऽपि संहृष्टः कृष्णं वचनमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

---

१. हाथ, पैर, कटि, नितम्ब, ग्रीवा, स्तनद्वय और नेत्र—ये सात अङ्ग ही सात गोलक हैं ।

२. जहाँ प्रेमी प्रियतमको देखता है, वहाँ उसके तन-मनमें निम्नाङ्कित छब्बीस प्रकारके भाव उदित होते हैं । नर्तकी अपनी दृष्टिद्वारा उन सभी भावों या विकारोंको व्यक्त कर सकती है । वे भाव इस प्रकार हैं—निर्वेद, ग्लानि, शङ्का, असूया, मद, भ्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, धृति, व्रीडा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, उत्सुकता, विरोध, अमर्ष, उग्रता, व्याधि, उन्माद, भास और वितर्क ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस समय कुन्ती, द्रौपदी तथा सात्वतवंशकी कुमारी सुभद्राको भी श्रीकृष्णके आगमनसे हर्षोत्फुल्ल हुई देखकर युधिष्ठिर भी बड़े प्रसन्न हुए और श्रीकृष्णसे बोले ॥ ३२ ॥

धर्मराज उवाच

कुशलं देवकीपुत्र वसुदेवमुखा जनाः ।
त्वं तु भीमेन चानीतो यज्ञेऽस्मिन् मामके शुभे ॥ ३३ ॥
देवकी च यशोदा च रोहिणी चैव केशव ।
मातरस्ते न सम्प्राप्ता नरा नार्यश्च मारिष ॥ ३४ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—देवकीनन्दन ! वसुदेव आदि गुरुजन सकुशल तो हैं न ? केशव ! भीमसेन मेरे इस शुभ यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये आपको तो लिवा लाये, परंतु आर्य ! आपकी जो देवकी, यशोदा और रोहिणी आदि माताएँ, रुक्मिणी आदि पटरानियाँ तथा सुहृद्वर्गके जो अन्य स्त्री-पुरुष हैं, वे सब क्यों नहीं आये ? ॥ ३३-३४ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

वसुदेवश्च रामेण सहितः स्थापितः पुरे ।
अन्ये सर्वे च सम्प्राप्ता नरा नार्यश्च मारिष ॥ ३५ ॥
भीमेन सहिताः सर्वे सन्ति गङ्गातटे शुभे ।
अहमग्रे च सम्प्राप्तस्तव दर्शनलालसः ॥ ३६ ॥

तब श्रीकृष्णने कहा—आर्य युधिष्ठिर ! मैं बलरामजीके साथ वसुदेवजीको तो नगरमें ही छोड़ आया हूँ, शेष सभी नर-नारी यहाँ आये हुए हैं । वे सब भीमसेनके साथ गङ्गाजीके पवित्र तटपर ठहरे हुए हैं । केवल मैं ही पहले चला आया हूँ; क्योंकि मेरे मनमें आपके दर्शनकी तीव्र लालसा उत्पन्न हो गयी थी ॥ ३५-३६ ॥

धर्मराज उवाच

पश्य पार्थ यथा कृष्णो ब्रूते प्राप्ता हि यादवाः ।
नाथेनानेन हि वयं नूनं धन्यतराः क्षितौ ॥ ३७ ॥
निर्गच्छामोऽद्य वै तत्र यत्र ते सुहृदः स्थिताः ।

धर्मराजने कहा—अर्जुन ! निश्चय ही इन श्रीकृष्णको अपना स्वामी पाकर हमलोग इस भूतलपर परम धन्य हो गये हैं । देखो न, जैसा श्रीकृष्ण कह रहे हैं, उसके अनुसार प्रतीत होता है कि सभी यदुवंशी आ गये हैं । अतः अब हमलोगोंको वहीं चलना चाहिये, जहाँ हमारे वे सुहृद्जन ठहरे हुए हैं ॥

कुन्ती च सौबलेयी च द्रौपदीसहिताधुना ॥ ३८ ॥
देवकीं सम्मुखं यान्तु सत्कर्तुं स्वजनं च तम् ।
महाजनाश्च सर्वे वै निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥ ३९ ॥

इस समय मेरी आज्ञासे द्रौपदीके साथ कुन्ती और सुबल-पुत्री गान्धारी देवकीका स्वागत करनेके लिये उनके सामने उपस्थित हों और सारा जनसमुदाय उस स्वजन-वर्गका समादर करनेके लिये नगरसे बाहर निकले ॥ ३८-३९ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं संदिश्य धर्मात्मा सह कृष्णेन निर्ययौ ।
यौवनाश्वेन वीरेण सबलेन पुराद् बहिः ॥ ४० ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! अर्जुनको यों आदेश देकर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण और सेनासहित वीर राजा यौवनाश्वके साथ हस्तिनापुरसे बाहर निकले ॥ ४० ॥

वादित्राणि तु सर्वाणि जघ्नुस्तस्मिन् समागमे ।
द्रौपदी केशवेनाथ स्वयं सा मण्डिता ययौ ॥ ४१ ॥

उस समारोहके अवसरपर सभी तरहके बाजे बजाये जाने लगे । द्रौपदी स्वयं शृंगार करके श्रीकृष्णके साथ प्रस्थित हुई ॥

तुरङ्गं पुरतः कृत्वा समेतं भूरि चामरैः ।
गायन्ति गायकास्तत्र नृत्यन्ति कुशला नटाः ॥ ४२ ॥

उस समय बहुत-से चामरोंसे सुशोभित उस यज्ञिय अश्वको आगे करके गायक गान करने लगे तथा नृत्यकलामें निपुण नट नाचने लगे ॥ ४२ ॥

वन्दिनः प्रतिगर्जन्ति स्तुवन्तः सूतमागधाः ।
तस्मिन् बले प्रचलिते शङ्खदुन्दुभिनादिते ॥ ४३ ॥
चक्रुर्नानाविधाश्चेष्टाः सर्वे लोकाश्च हर्षिताः ।

शङ्खों और नगाड़ोंके शब्दसे निनादित उस सेनाके प्रस्थान करनेपर वंदी, सूत और मागध राजाकी स्तुति-प्रशंसा करते हुए गर्जना कर रहे थे । उस समय सभी लोग हर्षित होकर नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगे ॥ ४३½ ॥

प्रभावती द्रष्टुकामा देवकीं रुक्मिणीमपि ॥ ४४ ॥
मणिरत्नान्युपादाय बन्धुभिः सहिता ययौ ।
अपरं चायुतं स्त्रीणां नानालङ्कारभूषितम् ॥ ४५ ॥

(राजा यौवनाश्वकी पत्नी) प्रभावती भी देवकी और रुक्मिणीको देखनेकी अभिलाषासे मणि-रत्न आदि भेंट-सामग्री

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेकर अपने भाई-बन्धुओंके साथ चली। उस समय उसके साथ दस सहस्र नारियोंका समुदाय था, जो अनेक प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित था ॥ ४४-४५ ॥

एतैः परिवृतो राजा सकृष्णः प्राप्तवान् स्वयम्।
यतस्ते यादवाः सर्वे सेनां व्यूह्य व्यवस्थिताः ॥ ४६ ॥

इन सबसे घिरे हुए स्वयं राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णके साथ उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ वे सभी यदुवंशी अपनी सेनाका व्यूह बनाकर ठहरे हुए थे ॥ ४६ ॥

देवकीप्रमुखानां हि शिबिकाः समलंकृताः।
सुवर्णमणिसंनद्धाश्चित्रकौशेयसंवृताः ॥ ४७ ॥

वहाँ देवकी आदि स्त्रियोंकी शिविकाएँ खूब सजी हुई थीं, उनमें सुवर्ण और मणि जड़े हुए थे तथा उनपर विचित्र रेशमी परदे पड़े हुए थे ॥ ४७ ॥

एका तु शिविका यत्र तत्र नारीशतं नृप।
चामरव्यजने धृत्वा हयारूढं प्रसर्पति ॥ ४८ ॥

राजन्! एक-एक पालकीके साथ सौ-सौ नारियाँ हाथोंमें चँवर और पंखा लिये हुए घोड़ोंपर चढ़कर चलती थीं ॥

ततो युधिष्ठिरः प्रीतो विलोक्य जननीं हरेः।
नमस्कृत्य स्थितश्चाग्रे भृत्यवज्जनमेजय ॥ ४९ ॥

जनमेजय! तदनन्तर राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णकी माता देवकीको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें प्रणाम करके उनके आगे सेवककी भाँति खड़े हो गये ॥ ४९ ॥

भीमो युधिष्ठिरं वीक्ष्य गजाद् भूमौ स्थितं गुरुम्।
स्ववाहनात् समुत्तीर्य पपात नृपपादयोः ॥ ५० ॥

उस समय भीमसेन अपने बड़े भाई राजा युधिष्ठिरको गजराजसे उतरकर भूमिपर खड़ा देख अपनी सवारीसे उतरकर उनके चरणोंमें गिर पड़े ॥ ५० ॥

प्रद्युम्नप्रमुखैर्वीरैर्धर्मराजो नमस्कृतः।
अर्जुनाद्यैः पाण्डवैश्च देवकी सा नमस्कृता ॥ ५१ ॥

तत्पश्चात् प्रद्युम्न आदि प्रधान-प्रधान वीरोंने धर्मराजको प्रणाम किया और अर्जुन आदि पाण्डवोंने उन देवकी देवीको नमस्कार किया ॥ ५१ ॥

गृहीत्वा वरवासांसि यशोदा देवकी तथा।
सौबलेयीं पृथां तत्र नमस्कृत्य करे ददौ ॥ ५२ ॥

उस समय यशोदा तथा देवकीने गान्धारी और कुन्तीको नमस्कार करके भेंटरूपमें उत्तम-उत्तम वस्त्र लेकर उनके हाथोंमें समर्पित किया ॥ ५२ ॥

प्रभावत्यान्विता देवी पार्षती कृष्णमातरम्।
नमस्कृत्याखिलं तस्यै वस्तुजातं ददौ नृप ॥ ५३ ॥

राजन्! फिर प्रभावतीके साथ देवी द्रौपदीने श्रीकृष्णकी माताको प्रणाम करके अपनी सारी वस्तुएँ उन्हें भेंट कर दीं ॥

स्त्रियः कृष्णस्य याः सर्वा रुक्मिणीप्रमुखाः शुभाः।
तस्थुः कुन्तीं पुरस्कृत्य प्रणिपत्य ददुर्धनम् ॥ ५४ ॥

और श्रीकृष्णकी जो रुक्मिणी आदि सभी सुन्दरी पत्नियाँ थीं, वे सभी कुन्तीको आगे करके खड़ी हो गयीं और उनके चरणोंमें पड़कर धन देने लगीं ॥ ५४ ॥

रुक्मिणीप्रमुखास्तत्र द्रौपदीं द्रष्टुमागताः।
चन्दनं रत्नजातानि वासांसि विविधानि च ॥ ५५ ॥
प्रणम्य भामा प्रददौ तथा सर्वाश्च योषितः।
प्रददुश्चाब्रवीत् सत्या द्रौपदीं स्मितपूर्वकम् ॥ ५६ ॥

फिर रुक्मिणी आदि प्रमुख सुन्दरियाँ वहाँ द्रौपदीसे मिलनेके लिये आगे बढ़ीं। उस समय सत्यभामाने द्रौपदीको प्रणाम करके चन्दन तथा रत्नखचित तरह-तरहके वस्त्र भेंटमें दिये। इसी तरह अन्य सब स्त्रियोंने भी द्रौपदीको प्रणाम करके भेंट दी। तत्पश्चात् सत्यभामा द्रौपदीसे मुसकराती हुई बोली ॥ ५५-५६ ॥

सत्यभामोवाच

कथं त्वया कृताः पञ्च वश्या भूमौ निरन्तरम्।
एको न शक्यतेऽस्माभिर्वशीकर्तुं जगत्पतिः ॥ ५७ ॥
तमेव हि त्वया मन्ये गृहीतं द्रुपदात्मजे।
भगिनी भवती तस्य हृदये ते कथं हरिः ॥ ५८ ॥
न मुञ्चति क्षणमपि तं विना त्वं न जीवसि।
अन्तःस्थाने संवृतानां पञ्चानामपि सांनधौ ॥ ५९ ॥
कथं गृह्णासि गोविन्दं तमुपायं हि मे वद।
ईदृशं कर्म कुर्वाणा लज्जसे न महाजनात् ॥ ६० ॥
भयं न कुरुषेऽस्मत्तो मान्यसे धर्मकर्तृभिः।

सत्यभामाने कहा—द्रुपदकुमारी! तुमने पृथ्वीपर अपने पाँच पतियोंको किस प्रकार सदाके लिये वशमें कर लिया है? हम तो एकमात्र जगदीश्वर श्रीकृष्णको भी अपने वशमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं कर सकीं। मैं तो समझती हूँ कि उन श्रीकृष्णको भी तुमने ही अपने प्रेम-पाशसे बाँध रखा है; परंतु तुम तो उनकी बहिन लगती हो, फिर भी वे श्रीहरि तुम्हारे हृदयमें कैसे विराजमान रहते हैं? वे क्षणभर भी तुमको नहीं छोड़ते हैं तथा तुम भी उनके बिना जीना नहीं चाहती हो। अन्तःपुरमें छिपे हुए अपने पाँचों पतियोंके निकट भी तुम श्रीकृष्णको कैसे पकड़े रखती हो? वह उपाय मुझे भी बतला दो। ऐसा कर्म करती हुई तुम न तो बड़े लोगोंसे लज्जा करती हो और न हमसे ही डरती हो। इतनेपर भी धर्मज्ञलोग तुम्हारा सम्मान ही करते हैं॥ ५७—६०½॥

द्रौपद्युवाच

त्वदीयं मानसं सत्ये सपत्नीमधिगच्छति॥ ६१॥
त्यक्त्वा कृष्णं त्रिलोकेशं ज्यायसः कर्मणः फलम्।
त्वयापमानितः कृष्णः समागत्य समाश्रये॥ ६२॥
दर्शयत्येव सकलमात्मनो हृदि सम्भवम्।
लज्जा मदीया जगति कृष्णेनैकेन रक्षिता॥ ६३॥
दुर्योधनसभामध्ये वस्त्रं दत्त्वाक्षयं मम।
त्वया न शक्यते दातुं चैलं कार्पासकादिकम्॥ ६४॥

तब द्रौपदी बोली—सत्यभामे! तुम्हारा मन तो श्रेष्ठ कर्मोंके फलस्वरूप त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णको छोड़कर किसी-न-किसी सौतके पीछे लगा रहता है (जिससे तुम उनका तिरस्कार कर बैठती हो)। तुमसे अपमानित हो श्रीकृष्ण मेरे आश्रयमें आकर निश्चय ही अपने हृदयकी सारी वेदना मेरे सामने खोलकर रख देते हैं। संसारमें श्रीकृष्ण ही एक ऐसे पुरुष हैं, जिन्होंने दुर्योधनकी भरी सभामें मुझे अक्षय वस्त्र प्रदान करके मेरी लाज बचायी थी। तुम तो एक सूती वस्त्र भी नहीं दे सकतीं॥ ६१—६४॥

मम भ्रात्रा त्वां प्रतार्य दत्तानि वसनानि मे।
बहूनां पश्यतां देवि धर्मज्ञः स तथाविधः॥ ६५॥

देवि! मेरे भाई श्रीकृष्णने तुमसे छल करके (मेरे पति आदि) बहुत-से पुरुषोंके सामने ही मुझे वस्त्र प्रदान किया था, ऐसे वे धर्मज्ञ हैं॥ ६५॥

नारदाय त्वया दत्तो माधवः पतिरात्मनः।
पारिजातस्तु देवानां मण्डनं यत् पुरा हृतम्॥ ६६॥

और तुमने तो अपने पति श्रीकृष्णका ही दान करके नारदजीको दे डाला था। पूर्वकालमें पारिजात वृक्षका, जो देवताओंके लोकका आभूषण था, तुमने उनके द्वारा अपहरण कराया॥ ६६॥

देवद्विजगुरूणां हि वित्तं नैवात्र पण्डिताः।
प्रतिगृह्णन्ति सुभगे त्वं गृहीत्वा न लज्जसे॥ ६७॥

सुभगे! इस संसारमें विद्वान् लोग देवता, ब्राह्मण और गुरुओंके धनको कभी ग्रहण नहीं करते, परंतु तुम देवसम्पत्तिको हड़पकर भी लज्जित नहीं होतीं॥ ६७॥

नारदं चैव गर्हामि प्रतिगृह्य जनार्दनम्।
प्रदत्तवान् कथं मन्दस्त्वां हस्ते जगत्पतिम्॥ ६८॥

मैं तो नारदजीकी भी निन्दा ही करती हूँ। भला, उस मन्दबुद्धि मुनिने जगत्पति जनार्दनको प्रतिग्रहरूपमें पाकर भी पुनः तुम्हारे हाथमें कैसे सौंप दिया?॥ ६८॥

कृष्णादप्यधिकं त्वत्तः किं लब्धं तेन धीमता।
ब्राह्मणानां मतिर्यस्मात् पश्चादुत्पद्यतेऽनघे॥ ६९॥

अनघे! उन बुद्धिमान् नारदजीको श्रीकृष्णसे भी बढ़कर कौन-सी वस्तु तुमसे मिली होगी? (जिससे उन्होंने श्रीकृष्णको तुम्हें वापस कर दिया।) इसीलिये कहा जाता है कि ब्राह्मणोंको पीछे (अवसर बीत जानेपर) बुद्धि उत्पन्न होती है॥ ६९॥

जैमिनिरुवाच

एवंविधं ब्रुवाणां तां द्रौपदीं बाणनन्दिनी।
नमस्कृत्य पृथां प्राप्ता नमस्कर्तुं विशाम्पते॥ ७०॥

जैमिनिजी कहते हैं—प्रजेश्वर! द्रौपदी इस प्रकार वार्तालाप कर ही रही थी कि बाणासुरकी पुत्री उषाने आकर उसे प्रणाम किया और फिर कुन्तीको नमस्कार करनेके लिये वह उनके पास जा पहुँची॥ ७०॥

प्रणिपत्यार्पयामास वासांसि मणिकाञ्चनम्।
उपविष्टा वीणके तु सखीभिः परिवारिता॥ ७१॥

वहाँ उसने कुन्तीके पैरों पड़कर तरह-तरहके वस्त्र, मणि, सुवर्ण आदि उन्हें भेंट किये और पुनः खेमेमें अपनी सखियोंके साथ बैठ गयी॥ ७१॥

ततोऽब्रवीत् सत्यभामा तुरङ्गं वीक्षयामहे।
देवकीसहिताः सर्वाः कौतुकं मम विद्यते॥ ७२॥

तदनन्तर सत्यभामाने कहा—'प्रभो! हमारी सास देवकी तथा हम सभी स्त्रियाँ उस यज्ञिय अश्वको देखना चाहती हैं, इसके लिये हमारे मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है॥ ७२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्याः कृष्णो राजानमब्रवीत्।

सत्यभामाका यह कथन सुनकर श्रीकृष्णने राजा युधिष्ठिरसे कहा ॥ ७२½ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

तुरङ्गं द्रष्टुकामापि देवकी वर्तते नृप ॥७३॥

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! माता देवकी यज्ञिय अश्वको भी देखना चाहती हैं ॥ ७३ ॥

युधिष्ठिर उवाच

सर्वे तिष्ठन्तु वै वीरा रथस्था गजमस्तके।
सादिनश्च भवन्त्वत्र पत्तयः शस्त्रपाणयः ॥ ७४ ॥
यथा नारीगणश्चायं हयं पश्यतु हर्षितः।
धौम्यः पूजां कारयतु हृष्यन्तु परमाः स्त्रियः ॥ ७५ ॥

तब युधिष्ठिरने (सैनिकोंसे) कहा—सभी रथी बीर रथोंपर स्थित हो जायँ, हाथीसवार गजराजोंके मस्तकपर सावधानीसे बैठ जायँ और घुड़सवार तथा पैदल सैनिक हाथोंमें शस्त्र धारण कर लें। जिससे नारियोंका यह समुदाय प्रसन्नतापूर्वक यज्ञसम्बन्धी अश्वका दर्शन कर ले, महर्षि धौम्य उस अश्वका पूजन करायें तथा ये श्रेष्ठ स्त्रियाँ यह सब देखकर हर्ष लाभ करें ॥ ७४-७५ ॥

जैमिनिरुवाच

सर्वाभिः पूजितश्चाश्वो वीराः सर्वे बले स्थिताः।
आरूढा योषितस्तत्र गवाक्षं वीणकस्य तु ॥७६॥
पश्यन्ति तुरगं तत्र नृत्यमानं महीतले।
तस्मिंश्च समये राजा प्राप्तवाननुशाल्वकः ॥ ७७ ॥
महता परिवारेण श्रीमता जनमेजय।
शाल्वस्य संस्मरन् वैरं वीक्षमाणो जनार्दनम् ॥ ७८ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजन्! जब सभी वीर सेनामें यथास्थान स्थित हो गये, तब उन सभी नारियोंने घोड़ेका पूजन किया। उस समय बहुत-सी स्त्रियाँ खेमेके झरोखोंपर चढ़कर पृथ्वीपर नाचते हुए उस घोड़ेको देख रही थीं। जनमेजय! उसी समय राजा अनुशाल्व अपने बहुत बड़े धन-समृद्ध परिवारके साथ वहाँ आ पहुँचा। वह सदा शाल्ववधके वैरका स्मरण करता हुआ श्रीकृष्णकी खोजमें लगा रहता था ॥ ७६–७८ ॥

धर्मराजपुरे दृष्ट्वा हर्षितोऽभूत् स भारत।
नृत्यन्तं हयमालोक्य जग्राह प्रहसन्निव ॥ ७९ ॥

भारत! हस्तिनापुरमें श्रीकृष्णको आया हुआ देखकर वह हर्षसे भर गया और फिर उस घोड़ेको नाचते हुए देख उसने हँसते-हँसते उसे पकड़ लिया ॥ ७९ ॥

पृष्ठे संस्थापयित्वा तु गृध्रव्यूहमथाकरोत्।
सुरथं सचिवं तत्र समाहूयेदमब्रवीत् ॥ ८० ॥

तत्पश्चात् उसे सैन्यदलके पीछे रखकर सेनाको गृध्रव्यूहके आकारमें खड़ी कर दिया और अपने मन्त्री सुरथको बुलाकर कहा ॥ ८० ॥

अनुशाल्व उवाच

भ्राता मे सौभमारूढः कृष्णेन निहतो जले।
शाल्वो नाम महाबाहुः स देवोऽत्र विलोक्यते ॥ ८१ ॥

अनुशाल्व बोला- मन्त्रिवर! जिन श्रीकृष्णने सौभ विमानपर बैठे हुए मेरे भाई शाल्वको जलमें मार गिराया था, वे ही महाबाहु देवता यहाँ दिखायी दे रहे हैं ॥ ८१ ॥

सपुत्रपौत्रो यज्ञार्थं सदारः पाण्डवं प्रति।
निमन्त्रितो हि सम्प्राप्तो माद्य गच्छतु केशवः ॥ ८२ ॥

ये अश्वमेध यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये निमन्त्रित होकर अपने पुत्र, पौत्र और पत्नियोंके साथ युधिष्ठिरके यहाँ आये हुए हैं। आज ये केशव किसी तरह बचकर न जाने पायें ॥

गृध्रं विलोक्य गरुडः स्थिरः स्थास्यति संगरे।
इमां मदीयां सेनां हि तथा पालय मारिष ॥ ८३ ॥
यथा गृह्णामि गोविन्दं पार्थं च रथिनां वरम्।

संग्राममें मेरी सेनाके गृध्रव्यूहको देखकर श्रीकृष्णवाहन गरुड़ स्थिर हो जायगा, इसलिये आर्य! तुम मेरी सेनाकी इस भाँति रक्षा करो, जिससे मैं श्रीकृष्ण तथा रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनको कैद कर लूँ ॥ ८३½ ॥

भीमादयश्च ये वीराः प्रद्युम्नसहिता अमी ॥ ८४ ॥
पालयन्ति बलं सर्वं धर्मराजस्य पश्यतः।

उधर जो ये प्रद्युम्नसहित भीमसेन आदि वीर हैं, ये युधिष्ठिरके सामने ही सारी सेनाका संरक्षण कर रहे हैं ॥८४½॥

तस्मान्मदीयैः संग्रामे सर्वैरपि न केशवः ॥ ८५ ॥
मोचनीयः प्रयत्नेन धारणीयः स बन्धुहा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसलिये मेरे सैनिकोंको भी यही उचित है कि वे युद्धमें श्रीकृष्णको किसी तरह न छोड़ें, उन्हें प्रयत्नपूर्वक पकड़ लें; क्योंकि वे मेरे भाईका वध करनेवाले हैं ॥ ८५½ ॥

यस्य हस्ताद् रणे कृष्णो गमिष्यति विलोकितः ॥ ८६ ॥
तं दुष्टं पातयिष्येऽहं यः कृष्णधरणेऽक्षमः ।

युद्धभूमिके भीतर दृष्टिपथमें आकर भी श्रीकृष्ण जिसके हाथसे बचकर निकल जायँगे और जो उन्हें पकड़नेमें असमर्थ होगा, उस दुष्टको मैं स्वयं ही मार गिराऊँगा ॥ ८६½ ॥

भ्राता वास्तु सुतो वास्तु सुहृन्मित्रं च वा सखा ८७
वासुदेवविहीनो यो न मे भ्राता सुहृत् सखा ।

कोई मेरा भाई, पुत्र, इष्ट-मित्र अथवा सखा ही क्यों न हो, यदि श्रीकृष्णको विना पकड़े ही आयेगा तो वह न मेरा भाई होगा न सुहृद् अथवा सखा ही होगा ॥ ८७½ ॥

किं गजैः किं रथैश्चैव पत्तिभिः किं हयैरपि ॥ ८८ ॥
ये च पश्यन्ति संग्रामे न गृह्णन्ति जनार्दनम् ।

जो रणभूमिमें श्रीकृष्णको देखते तो हैं परंतु उन्हें पकड़ नहीं लेते, उन रथों, हाथियों, घोड़ों तथा पैदल सैनिकोंसे क्या लाभ ? (अर्थात् ये सब निरर्थक ही हैं) ॥ ८८½ ॥

कृत्वा तु कुत्सितं कर्म राजवित्तापहारकम् ।
तत् सर्वं क्षमितं मेऽद्य यदि तैर्ध्रियते हरिः ॥ ८९ ॥

जो राजकीय सम्पत्तिका अपहरणरूप निन्दित कर्म कर चुके हैं, वे भी यदि श्रीकृष्णको कैद कर लेंगे तो मैं आज उनके उन सभी अपराधोंको क्षमा कर दूँगा ॥ ८९ ॥

सर्वे तिष्ठन्ति यदि मे भृत्या हि निखिलाः क्षमाः ।
नापराधो ध्रुवं तेषां ये कृष्णं सम्मुखा रणे ॥ ९० ॥
योधयन्त्यरिभिः सार्द्धं तेषां दास्याम्यहं वसु ।
नापराधो ध्रुवः कार्यो मदीयै राजशासनात् ॥ ९१ ॥
भृत्यैस्तैः कृष्णविमुखैर्यथा भवति मेऽप्रियम् ।

मेरे जितने सैनिक हैं, वे सब-के-सब युद्ध करनेमें समर्थ हैं, अतः यदि वे युद्धस्थलमें श्रीकृष्णके सम्मुख डटे रहेंगे तो निश्चय ही उनका कोई अपराध नहीं माना जायगा तथा जो शत्रुओंके साथ बलपूर्वक युद्ध करेंगे, उन्हें मैं बहुत-सा धन पुरस्काररूपमें प्रदान करूँगा; इसलिये इस राजाज्ञाके अनुसार निश्चय ही मेरे सैनिकोंको किसी प्रकारका अपराध नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो सैनिक श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेसे विमुख हो जायँगे, उनसे बढ़कर मेरा अप्रिय कार्य करनेवाला दूसरा कोई नहीं होगा ॥ ९०-९१½ ॥

कुलीना धर्मकुशला वीरा युद्धपरायणाः ॥ ९२ ॥
दत्त्वाऽऽत्मनस्तु सर्वस्वं स्थाप्या युद्धे महीभुजा ।
ते जयन्ति रणे शत्रून् राज्ञामिह यशस्विनः ॥ ९३ ॥

राजाको चाहिये कि जो कुलीन, धर्मकुशल तथा युद्ध-परायण वीर हों, उन्हें अपना सर्वस्व समर्पण करके भी युद्ध-कार्यमें नियुक्त करे; क्योंकि वे लोकविख्यात वीर संग्रामभूमिमें राजाके शत्रुओंको परास्त करनेवाले होते हैं ॥ ९२-९३ ॥

नास्माकं केशवादन्यो विद्यते सुखनाशनः ।
तस्मादेकं हि बहवो धारयन्तु रमापतिम् ॥ ९४ ॥
न दोषश्चात्र भविता धर्म एष सनातनः ।

श्रीकृष्णसे बढ़कर मेरे सुखोंका विनाश करनेवाला दूसरा कोई नहीं है, इसलिये इन अकेले लक्ष्मीपतिको मेरे बहुत-से योद्धा मिलकर कैद कर लें । ऐसा करनेमें कोई दोष न होगा, क्योंकि यह (क्षत्रियोंका) सनातन धर्म है ॥ ९४½ ॥

दातायं याचिता नैव विमुखः सम्मुखः सदा ॥ ९५ ॥
शस्त्रपाणिरयं नित्यं सरथोऽपि विहङ्गमः ।
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽयं निरन्तरम् ॥ ९६ ॥
कथमेकेन संग्रामे संधर्तुं शक्यते हरिः ।

(अन्यथा इनका पकड़ा जाना असम्भव है; क्योंकि) ये श्रीकृष्ण दाता हैं याचक नहीं, (अतः इनके सहायक अधिक हैं) । ये युद्धसे कभी विमुख नहीं होते, सदा सम्मुख रहकर शत्रुका सामना करते हैं (अतः वीर हैं) । इनके हाथमें सदा शस्त्र (सुदर्शनचक्र) वर्तमान रहता है । इनके साथ रथ तो है ही, आकाशचारी पक्षी गरुड़ भी है । इन्हें कभी कोई शस्त्र काट नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती और जल गीला नहीं कर सकता । ऐसे श्रीहरि संग्रामभूमिमें किसी एकके द्वारा कैसे पकड़े जा सकते हैं ? ॥ ९५-९६½ ॥

कृष्णस्य ग्रहणं वेत्ति ह्युत्तानचरणात्मजः ॥ ९७ ॥
स दूरे विद्यते बालः पाताले बलिरेव च ।
किंचिद् विभीषणो वेत्ति प्रह्लादः सम्यगेव हि ॥ ९८ ॥

इन श्रीकृष्णको पकड़नेका उपाय राजा उत्तानपादका पुत्र ध्रुव जानता है, परंतु वह बालक बहुत दूर है । राजा बलि भी जानते हैं; किंतु वे इस समय पातालमें हैं । विभीषण भी कुछ-कुछ जानते हैं और प्रह्लाद तो पूर्णरूपसे जानते हैं (परंतु वे भी दूर हैं) ॥ ९७–९८ ॥

ग्रहीतारं नारदं तु वदन्त्यन्ये मृषा वचः ।
सत्यमार्पितं कृष्णं परिजाने करागतम् ॥ ९९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संधर्तुमसमर्थोऽसौ नारदो दत्तवान् यतः।
नान्यं तस्मादद्य पश्ये समर्थं हरिधारणे ॥१००॥
स्वपौरुषेण गोविन्दं धारयिष्ये ससैनिकम्।

कुछ दूसरे सज्जन नारदको भी श्रीकृष्णको पकड़ने-वाला बतलाते हैं, परंतु उनका वह कथन मिथ्या है; क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जिस समय सत्यभामाने दान करके श्रीकृष्णको इन्हें समर्पित कर दिया था और वे पूर्णरूपसे इनके हाथमें आ गये थे, उस समय ये नारदबाबा उन्हें भलीभाँति पकड़ रखनेमें असमर्थ हो गये और फिर उन्होंने इन्हें सत्यभामाको ही लौटा दिया था। इन सब कारणोंसे आज मुझे कोई दूसरा वीर श्रीकृष्णको बाँध लेनेमें समर्थ नहीं दीख रहा है, अतः अब मैं अपने ही पुरुषार्थसे सेनासहित श्रीकृष्णको कैद करूँगा ॥ ९९-१००½ ॥

जैमिनिरुवाच

एतावदुक्त्वा वचनं स राजा संस्थितो रणे ॥१०१॥
गृध्रव्यूहे महावीर्यः श्वेतच्छत्रो रराज ह।
बबृंहिरे गजा मत्ता हयाः पुष्टा जिहेषिरे ॥१०२॥
रथाश्चक्रैः प्रणेदुश्च पदाताश्च डिडिम्बिरे।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! इतनी बात कहकर वह राजा अनुशाल्व युद्धके मैदानमें डटकर खड़ा हो गया। वह महापराक्रमी वीर अपनी सेनाके गृध्रव्यूहमें श्वेत छत्र धारण किये सुशोभित हो रहा था। उस समय उसके मद-मत्त गजराज चिग्घाड़ने लगे, हृष्ट-पुष्ट घोड़े हींसने लगे, रथोंके पहियोंसे घरघराहटकी आवाज होने लगी और पैदल सैनिक कोलाहल करने लगे ॥ १०१-१०२½ ॥

दृश्यन्ते तस्य ते वीरा नानालंकारमण्डिताः ॥१०३॥
दिव्याम्बरधराः सर्वे संवर्ते भास्करा इव।

उसके सभी सैनिक अनेक प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित तथा दिव्य वस्त्रोंसे सुसज्जित थे। उस समय वे सभी प्रलय-कालके सूर्यकी भाँति उद्दीप्त हो रहे थे ॥ १०३½ ॥

क्व पार्थः क्व च गोविन्द इति जल्पन्ति चेर्ष्यया।
रक्षन्तस्तुरगं सर्वे पश्यन्तः कृष्णवर्त्म च ॥१०४॥

वे सब-के-सब 'अर्जुन कहाँ हैं? श्रीकृष्ण कहाँ हैं?' इस तरह ईर्ष्यापूर्वक बोल रहे थे और यज्ञिय अश्वकी रक्षा करते हुए श्रीकृष्णका मार्ग देख रहे थे ॥ १०४ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वण्यनुशाल्वागमनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें अनुशाल्वका आगमनविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

जनमेजयके प्रश्न, श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे वार्तालाप और वीरोंको बीड़ा उठानेका आदेश, प्रद्युम्नका बीड़ा उठाकर युद्धके लिये प्रस्थान, श्रीकृष्णका पुनः वीरोंसे बीड़ा उठानेके लिये कहना, वृषकेतुकी बीड़ा उठाकर प्रतिज्ञा और प्रद्युम्नके साथ युद्धके लिये प्रस्थान, प्रद्युम्नके प्रति अनुशाल्वके आक्षेपपूर्ण वचन, प्रद्युम्नकी मूर्च्छा, श्रीकृष्णका प्रद्युम्नपर पादप्रहार करके उनपर आक्षेप करना, भीमसेनका श्रीकृष्णको रोककर उनका उत्तर देना, प्रद्युम्नके साथ युद्धके लिये प्रस्थान एवं घोर युद्ध, वृषकेतुके साथ बातचीत और अनुशाल्वके प्रहारसे उसका मूर्च्छित होना, श्रीकृष्णका युद्धके लिये जाना, उन्हें देखकर उनके प्रति अनुशाल्वका कथन, अनुशाल्वके प्रहारसे घोड़ोंका रथ लेकर भाग जाना, श्रीकृष्णको न देखकर अनुशाल्वके खेदपूर्ण वचन, श्रीकृष्णका प्रकट होकर अनुशाल्वपर प्रहार करना, अनुशाल्वका उन बाणोंको काटकर श्रीकृष्णको मूर्च्छित कर देना, दारुकका रथ लेकर लौटना, सेनाका पलायन, श्रीकृष्णके प्रति सत्यभामाके कठोर वचन

जनमेजय उवाच

नीते हये किमभवत् कथं कृष्णेन मोचितः।
युद्धार्थं प्रेषिताः केऽत्र तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—तपोधन! जब राजा अनुशाल्वने यज्ञिय अश्वको पकड़ लिया, तब उसके बाद कौन-सी घटना घटी? भगवान् श्रीकृष्णने किस प्रकार उस घोड़ेको छुड़ाया? उस समय कौन-कौन-से वीर युद्धके लिये भेजे गये थे? यह सब मुझे बताइये ॥ १ ॥

जैमिनिरुवाच

शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि तदा कृष्णेन यत् कृतम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाण्डवानां हयं नीतं विलोक्य हृदि लज्जितः ॥ २ ॥
आरूढः स्वे रथे दिव्ये दारुकेण नियन्त्रिते ।
पाञ्चजन्यं पूरयित्वा धर्मराजमथाब्रवीत् ॥ ३ ॥

जैमिनिजीने कहा—राजेन्द्र ! उस समय श्रीकृष्णने जो कुछ किया था, वह बताता हूँ; सुनो । उस समय पाण्डवोंके यज्ञिय अश्वका अपहरण हुआ देखकर श्रीकृष्णके हृदयमें बड़ी लज्जा हुई । फिर तो वे दारुकद्वारा जोतकर लाये हुए अपने दिव्य रथपर सवार हो गये और पाञ्चजन्य नामक शङ्खको बजाकर धर्मराजसे बोले ॥ २-३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

अनुशाल्वेन वीरेण तुरगस्तेऽधुना हृतः ।
पश्यतां यदुवीराणां पाण्डवानां तथाग्रतः ॥ ४ ॥
स्त्रियश्चैवात्र पश्यन्ति जाता मे महती त्रपा ।
भवान् रथस्थः संग्रामे पश्यत्वत्र कुतूहलम् ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! वीर अनुशाल्वने अभी-अभी शूरवीर यादवों तथा पाण्डवोंके देखते-देखते आपके यज्ञिय अश्वका अपहरण कर लिया है तथा यहाँ ये स्त्रियाँ भी अपने सामने ही यह घटना देख रही हैं, जिससे मुझे बड़ी लज्जा आ रही है; अतः अब आप यहीं रथपर बैठे हुए युद्धमें होनेवाले दृश्यको देखिये ॥ ४-५ ॥

सात्यकिः कृतवर्मा च प्रद्युम्नतनयस्तथा ।
यौवनाश्वो मेघवर्णो माद्रीपुत्रौ तथैव च ॥ ६ ॥
एते चान्ये च बहवस्तव रक्षन्तु मण्डलम् ।
अहं वृकोदरः पार्थः प्रद्युम्नः सुजयस्तथा ॥ ७ ॥
वृषकेतुरयं बालः साम्बो निशठ एव च ।
एते परे च तुरगं मोचयामो महाबलाः ॥ ८ ॥
कश्चित् करस्थितं वीरो गृह्णातु मम वीटकम् ।

सात्यकि, कृतवर्मा, प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध, यौवनाश्व, मेघवर्ण, माद्रीनन्दन नकुल-सहदेव—ये तथा और भी बहुतसे शूरवीर आपके सैन्यदलकी रक्षा करें तथा मैं, भीमसेन, अर्जुन, प्रद्युम्न, सुजय, यह बालक वृषकेतु, साम्ब और निशठ—ये तथा दूसरे महाबली योद्धा मिलकर उस घोड़ेको छुड़ायेंगे । कोई भी वीर, जो उस अश्वको छुड़ानेके लिये आगे बढ़ना चाहता हो, मेरे हाथपर रखे हुए इस बीड़ेको उठा ले ॥ ६-८½ ॥

जैमिनिरुवाच

पुनरेवाब्रवीद् वीराः शृण्वन्तु बलिनो नराः ॥ ९ ॥
समानयति यश्चाश्वं स हि गृह्णातु वीटकम् ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! श्रीकृष्णने पुनः कहा—सभी महाबली शूरवीर योद्धा मेरी बातको सुन लें—'जो उस अश्वको लानेमें समर्थ हो, वही इस बीड़ेको उठाये' ॥ ९½ ॥

ते सर्वे कृष्णवचनं श्रुत्वा वीरास्तु दारुणम् ॥ १० ॥
तस्थुर्विगतसंकल्पाश्चिन्तयन्तः पुनः पुनः ।
मुहूर्त्तमात्रं कृष्णस्य स्थितः पाणौ स वीटकः ॥ ११ ॥

श्रीकृष्णके इस कठोर वचनको सुनकर उन सभी वीरोंका उत्साह शिथिल पड़ गया और वे बारंबार सोचते हुए खड़े रह गये । इस प्रकार दो घड़ीतक वह बीड़ा श्रीकृष्णके हाथपर रखा ही रह गया ॥ १०-११ ॥

ततः कृष्णसुतः श्रीमान् प्रद्युम्नो हस्तसंस्थितम् ।
जग्राह वीटकं तं तु वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १२ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्णके पुत्र श्रीमान् प्रद्युम्नने पिताके हाथपर रखे हुए उस बीड़ेको उठा लिया और इस प्रकार कहा ॥ १२ ॥

प्रद्युम्न उवाच

आनयिष्यामि तुरगं शाल्वसैन्यगतं त्वहम् ।
इत्युक्त्वा प्रययौ कार्ष्णिः संनद्धः स्वरथेन तम् ॥ १३ ॥
अनुशाल्वं तृणीकृत्य तस्मिन् वीरसमागमे ।

प्रद्युम्न बोले—पिताजी ! अनुशाल्वकी सेनामें गये हुए उस अश्वको मैं ले आऊँगा । ऐसा कहकर प्रद्युम्न कवच धारण करके अपने रथपर सवार हो गये और वीरोंके उस समारोहमें अनुशाल्वको तृण-समान समझकर उसपर आक्रमण करनेके लिये चल पड़े ॥ १३½ ॥

पारावतनिभैरश्वैर्मणिकाञ्चनभूषितैः ॥ १४ ॥
उह्यमानं रथं दिव्यं मीनकेतोः सुतस्य तम् ।
निरीक्ष्य भगवानेवं पुनरेवाब्रवीद् वचः ॥ १५ ॥

उस समय प्रद्युम्नके रथको मणि और सोनेके साजोंसे सुशोभित कबूतरके समान रंगवाले घोड़े खींच रहे थे ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने मीनकेतु (कामदेव) स्वरूप पुत्रके उस दिव्य रथको प्रस्थित हुआ देखकर भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले॥१४-१५॥

श्रीकृष्ण उवाच

द्वितीयश्चात्र गृह्णातु मत्करात् वीटकं नरः।
प्रद्युम्नसहितो यातु पौरुषं यस्य विद्यते ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णने कहा—वीरो ! अब यहाँ दूसरा भी कोई पुरुष, जिसमें पुरुषार्थ हो, वह मेरे हाथसे बीड़ा उठाये और प्रद्युम्नकी सहायताके लिये जाय ॥ १६ ॥

जैमिनिरुवाच

तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य वचनं वीक्ष्य वीटकम्।
वृषकेतुरुवाचेदं तच्छृणुष्व विशाम्पते ॥ १७ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—प्रजानाथ ! भगवान् श्रीकृष्णकी वह बात सुनकर और बीड़ेकी ओर दृष्टिपात करके वृषकेतुने जो बात कही, उसे सुनो ॥ १७ ॥

वृषकेतुरुवाच

अहमेनं सहायो वै प्रद्युम्नं यामि संयुगे।
अनुशाल्वं महावीरं गृहीत्वा कृष्णसंनिधौ ॥ १८ ॥
नानये यदि गोविन्द प्रतिज्ञां शृणु मे प्रभो।

वृषकेतुने कहा—प्रभो ! मैं युद्धमें इन प्रद्युम्नकी सहायताके लिये जाऊँगा । प्रभो ! गोविन्द ! महाबली अनुशाल्वको बाँधकर यदि मैं आप श्रीकृष्णके समीप न ला सकूँ तो मेरी प्रतिज्ञा सुनिये—॥ १८½ ॥

ब्राह्मणीगमनाच्छूद्रो लभते दारुणां गतिम् ॥ १९ ॥
प्राप्नुयां तामहं नूनं महानरकदायिनीम्।

'ब्राह्मणीके साथ समागम करनेसे शूद्रको महान् नरकोंमें डालनेवाली जिस घोर गतिकी प्राप्ति होती है, निश्चय ही वही गति मुझे प्राप्त हो ॥ १९½ ॥

श्राद्धभुग् ब्राह्मणो मन्दो मैथुनं कुरुते यदि ॥ २० ॥
स यां गतिं याति देव प्राप्नुयां तामहं ध्रुवम्।

'देव ! यदि कोई मन्दमति ब्राह्मण श्राद्धमें भोजन करके उसी दिन स्त्री-समागम करता है तो उसे जिस गतिकी प्राप्ति होती है, अवश्य ही मुझे वही गति मिले ॥ २०½ ॥

ऋतुकाले तथा भार्यां परित्यजति मन्दधीः ॥ २१ ॥
तस्यापि गतिमार्गं तं सोऽहं गच्छे न चानये।

'तथा जो मन्दबुद्धि पुरुष ऋतुकालके अवसरपर अपनी भार्याके साथ समागम नहीं करता, उसे छोड़ देता है, ऐसे पुरुषको जिस दुर्गतिके मार्गपर चलना पड़ता है, मुझे भी उसी मार्गपर चलना पड़े, यदि घोड़ा न ले आऊँ ॥२१½॥

त्यक्त्वा विष्णुं वासुदेवं यो भजेदन्यदैवतम् ॥ २२ ॥
तस्यापि या गतिः स्वामिन् सा मे स्याद् दुःखदायिनी।
दीयतां वीटकं मह्यं नानृतं मम भाषितम् ॥ २३ ॥

'स्वामिन् ! जो सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णको छोड़कर अन्य देवताकी भक्ति करता है, उसकी जो गति होती है, वही दुःखदायिनी गति मेरी भी हो ।' इसलिये प्रभो ! यह बीड़ा मुझे दे दीजिये; क्योंकि मेरा कथन असत्य नहीं हो सकता ॥ २२-२३ ॥

जैमिनिरुवाच

ताम्बूलं कर्णपुत्राय मुदितः प्रददौ तदा।
प्रययौ तं नमस्कृत्य वृषकेतुरुदारधीः ॥ २४ ॥
सहैव कार्ष्णिना युद्धे दर्शयन् पौरुषं तदा।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तब श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर वह पानका बीड़ा कर्णपुत्र वृषकेतुको दे दिया । तदनन्तर उदारबुद्धि वृषकेतु श्रीकृष्णको प्रणाम करके युद्धमें अपना पुरुषार्थ प्रकट करता हुआ प्रद्युम्नके साथ ही आगे बढ़ा ॥ २४½ ॥

प्रविश्य सैन्यं तद् घोरमनुशाल्वेन पालितम् ॥ २५ ॥
शङ्खं च पूरयामास नाम विश्राव्य चात्मनः।

अनुशाल्वद्वारा सुरक्षित उस भयंकर सेनामें प्रवेश करके उसने अपना नाम सुनाकर शङ्ख बजाया ॥ २५½ ॥

ततो रणे कृष्णसुतं वृषकेतुसमन्वितम् ॥ २६ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तमिदं वचनमब्रवीत्।
पातयन्तं निजं सैन्यं वीक्ष्य तस्मिन् महाहवे ॥ २७ ॥

उस समय रणक्षेत्रमें जब अनुशाल्वने देखा कि वृषकेतुके साथ कृष्णकुमार प्रद्युम्न युद्धस्थलमें 'खड़ा रह, खड़ा रह' ऐसा कहते हुए मेरी सेनाको काट-काटकर धराशायी कर रहे हैं, तब वह प्रद्युम्नसे निम्नाङ्कित वचन बोला ॥ २६-२७ ॥

अनुशाल्व उवाच

कथं भवान् संगरेऽस्मिंस्त्यक्त्वा रम्यां पुरीं निजाम्।
प्राप्तो मम समीपेऽद्य मन्वा शत्रुं हि मां पुनः ॥ २८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुशाल्वने कहा—प्रद्युम्न! तुम अपनी रमणीय द्वारकापुरीको छोड़कर और मुझे शत्रु मानकर आज इस संग्राममें मेरे समीप कैसे आ गये? ॥ २८ ॥

त्वमनङ्गः पुष्पबाणस्त्रिनेत्रनयनार्चिषा।
कृष्णहृदि प्रविष्टोऽसि दग्धः पूर्वं मया श्रुतम् ॥ २९ ॥

तुम तो अङ्गहीन कामदेव हो, पुष्प ही तुम्हारे बाण हैं, तुम शंकरजीके तृतीय नेत्रकी ज्वालासे भस्म होकर श्रीकृष्णके हृदयमें प्रविष्ट हुए हो, ऐसा मैंने पहलेसे ही सुन रखा है ॥ २९ ॥

तपस्विनो यत्र सन्ति यत्र चैव पतिव्रताः।
विवेकरहिता लोकाः पौरुषं तत्र तावकम् ॥ ३० ॥

इसलिये तुम्हारा पुरुषार्थ तो वहीं काम दे सकता है, जहाँ तपस्वी, पतिव्रता स्त्रियाँ और सदसद्-विवेकशून्य लोग होंगे ॥ ३० ॥

जैमिनिरुवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य प्रद्युम्नः पञ्चभिः शरैः।
ताडयामास सहसा रणे शाल्वानुजं बली ॥ ३१ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! अनुशाल्वका वह कथन सुनकर बलवान् प्रद्युम्नने युद्धभूमिमें शाल्वके उस छोटे भाईपर सहसा पाँच बाणोंद्वारा प्रहार किया ॥ ३१ ॥

अनुशाल्वोऽपि तान् बाणान् मध्ये चिच्छेद वेगतः।
बाणेनैकेन हृदयं बिभेदास्य त्वरन्निव ॥ ३२ ॥

तब अनुशाल्वने भी वेगपूर्वक उन बाणोंको बीचमें ही काट डाला और शीघ्रतापूर्वक एक बाण मारकर प्रद्युम्नका हृदय विदीर्ण कर दिया ॥ ३२ ॥

स भिन्नहृदयः कार्ष्णिः कश्मलं चाविशन्महत्।
भ्राम्यमाणः शरेणाजौ पतितः कृष्णसंनिधौ ॥ ३३ ॥

हृदय विदीर्ण हो जानेसे प्रद्युम्नको बड़ी भारी मूर्च्छा आ गयी और वे उस बाणके वेगसे युद्धस्थलमें चक्कर काटते हुए श्रीकृष्णके समीप आ गिरे ॥ ३३ ॥

मूर्च्छितं वीक्ष्य कृष्णोऽपि प्रद्युम्नं लज्जितो हृदि।
समुत्तीर्य रथाद् भूमौ गृहीत्वा नन्दकं करे ॥ ३४ ॥
ताडयित्वा पदा पुत्रमिदं वचनमब्रवीत्।
क्रोधेन महता युक्तो भर्त्सयामास भारत ॥ ३५ ॥

भारत! श्रीकृष्ण भी प्रद्युम्नको मूर्च्छित देख हृदयमें लज्जित हो गये और अपना नन्दक नामक खड्ग हाथमें लेकर तुरंत रथसे पृथ्वीपर कूद पड़े। फिर अत्यन्त कुपित होकर अपने पुत्र प्रद्युम्नपर पादप्रहार करके उनकी भर्त्सना करते हुए इस प्रकार बोले ॥ ३४-३५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ रे मूढ नेयं द्वारवती पुरी।
यत्र त्वया क्रीड्यते हि स्थानमेतत् सुदारुणम् ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्णने कहा—रे मूर्ख! उठ, उठ। यह द्वारकापुरी नहीं है, जहाँ तू सदा क्रीडा करता रहता है। यह तो अत्यन्त भयंकर स्थान—युद्धस्थल है ॥ ३६ ॥

मयैतच्चिन्तितं नित्यं प्रद्युम्नस्य प्रभावतः।
न भयं न त्रपा क्वापि भविष्यति रणे मम ॥ ३७ ॥
लज्जा मयात्र सम्प्राप्ता प्राप्तं चापि महद्भयम्।
त्वया पुत्रेण दुष्टेन वीराणामत्र पश्यताम् ॥ ३८ ॥

मैं तो सदा यही सोचता था कि प्रद्युम्नके प्रभावसे कहीं भी युद्धमें मुझे लज्जित एवं भयभीत नहीं होना पड़ेगा, परंतु आज तुझ दुष्ट पुत्रके कारण यहाँ इन वीरोंके सामने मुझे लज्जित भी होना पड़ा और मैं बहुत बड़े भयमें भी पड़ गया ॥ ३७-३८ ॥

किमर्थं रक्षितश्चासि बालत्वे शम्बरेण हि।
त्वं दुरात्मन् पुरा नीतो गृहान्मम निशागमे ॥ ३९ ॥

दुरात्मन्! बाल्यावस्थामें जब शम्बरासुरने रातके समय मेरे अन्तःपुरसे तेरा अपहरण कर लिया था, उस समय किसलिये उसने तेरी रक्षा की थी अर्थात् व्यर्थ ही रक्षा की ॥ ३९ ॥

वनं याहि पुरीं त्यक्त्वा मुनिर्भूत्वा फलान्यद।
जनमध्ये न वै वासस्तव योग्यो भविष्यति ॥ ४० ॥

कायर! तू द्वारकापुरीको छोड़कर वनमें चला जा और वहाँ मुनि होकर फलाहार कर। मनुष्योंके बीचमें रहना तेरे लिये उचित न होगा ॥ ४० ॥

निजं शत्रुं हि मुनयस्त्वां निरीक्ष्य समागतम्।
कुशाग्रबुद्धयः सर्वे करिष्यन्ति च भस्मसात् ॥ ४१ ॥

वनमें रहनेवाले मुनियोंकी बुद्धि बड़ी दूरदर्शिनी होती है, वे सभी (कामदेवरूपमें) तुझ अपने शत्रुको समीप आया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुआ देखकर (शापद्वारा) तुझे जलाकर राखका ढेर बना देंगे ॥ ४१ ॥

भवान् बाणपुरे यातु तत्रत्या ये महाजनाः ।
भग्नं सम्बन्धिनं मत्वा पालयिष्यन्ति नापरे ॥ ४२ ॥
शिवपूजापरा लोकास्त्वां शत्रुं शङ्करस्य हि ।
ज्ञात्वा ते स्वामिनो वैरं घातयिष्यन्ति मे मतिः ॥ ४३ ॥

अथवा तू बाणासुरकी नगरीमें चला जा, वहाँ निवास करनेवाले कुछ सज्जन तुझे (युद्धसे भागा या घायल हुआ) सम्बन्धी मानकर तेरी रक्षा कर लेंगे; परंतु वहाँके दूसरे लोग, जो भगवान् शंकरकी पूजामें तत्पर रहनेवाले हैं, तेरा पालन नहीं करेंगे । वे तुझे शिवजीका शत्रु जानकर स्वामीका वैर निकालनेके लिये तेरा वध कर डालेंगे—ऐसा मेरा विचार है ॥

गर्भे न गलितश्चासि रुक्मिण्या जात एव किम् ।
अत्र प्रतिज्ञा या मूढ न कृता जीवसे कथम् ॥४४॥

मूर्ख ! तू गर्भमें ही क्यों न गल गया ? रुक्मिणीके उदरसे पैदा ही क्यों हुआ ? तूने यहाँ सबके सामने जो प्रतिज्ञा की, उसे पूर्ण किये बिना जी कैसे रहा है ? ॥४४॥

करान्मम न गृह्णन्ति यत्र वीरा महाबलाः ।
पत्राणि तत्र प्रथमं कथं गृह्णासि तानि हि ॥ ४५ ॥

जहाँ बड़े-बड़े बलवान् वीर मेरे हाथसे ताम्बूलपत्रके उस बीड़ेको न उठा सके, वहाँ तूने पहले ही उस बीड़ेको कैसे उठा लिया ? ॥ ४५ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं वदन्तं वसुदेवनन्दनं
जग्राह भीमो मतिमान् महाबलः ।
सुकोपितं कोपहराणि तानि वै
जगाद भीमो वचनानि मारिष ॥ ४६ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—आर्य ! अत्यन्त कुपित होकर यों कहते हुए वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको महाबली बुद्धिमान् भीमसेनने पकड़ लिया और उनके क्रोधको शान्त करनेवाले ये वचन कहे ॥ ४६ ॥

भीम उवाच

मैवं वद हृषीकेश प्रद्युम्नं मानिनं प्रति ।
नायं भग्नो भयाच्छत्रोर्बाणघातात् समागतः ॥ ४७ ॥

भीमसेन बोले—हृषीकेश ! आप मानी प्रद्युम्नके सम्बन्धमें ऐसी बातें मत कहें । ये शत्रुके भयसे भागकर नहीं आये हैं; बल्कि बाणके आघातसे यहाँ आ गिरे हैं ॥

पदा संताडितो बालः क्रोधेन महता त्वया ।
पौरुषं हृदये मत्वा मिथ्या दत्तं निजं पदम् ॥ ४८ ॥

आपने मन-ही-मन अपनेको महान् पुरुषार्थी मानकर बड़े क्रोधसे जो बालकपर पादप्रहार किया है, यह ठीक नहीं है । आपने अकारण ही प्रद्युम्नको लात मारी है ॥ ४८ ॥

जरासंधभयात् कृष्ण त्वया त्यक्तं निजं पुरम् ।
सागरस्यैव तीरे हि पुरी द्वारवती कृता ॥ ४९ ॥

क्योंकि श्रीकृष्ण ! आप भी तो जरासंधके भयसे अपनी मथुरापुरी छोड़कर भाग गये थे और सागरके तटपर जाकर द्वारकापुरी बसा ली है ॥ ४९ ॥

परदुःखं न जानासि सर्वेषां सुखदो भवान् ।
कस्मात् पलायसे कृष्ण कस्त्वदन्योऽधिकः पुमान् ५०
तच्छ्रुत्वा भीमसेनस्य वचनं केशवोऽब्रवीत् ।

आप तो सबको सुख प्रदान करनेवाले हैं, इसलिये पराये दुःखको जानते ही नहीं । श्रीकृष्ण ! आप किस कारण भाग गये थे, क्योंकि आपसे बढ़कर दूसरा वीर पुरुष कौन है ? भीमसेनकी यह बात सुनकर श्रीकृष्ण बोले ॥ ५०½ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

भीम गच्छ रणे योद्धुमनुशाल्वं महाबलम् ।
मयास्य क्षामितं पश्य कर्णपुत्रस्य पौरुषम् ॥ ५१ ॥

श्रीकृष्णने कहा—भीमसेन ! अच्छा, मैंने इसका अपराध क्षमा कर दिया । अब तुम महाबली अनुशाल्वसे युद्ध करनेके लिये रणभूमिमें जाओ और कर्णपुत्र वृषकेतुका पुरुषार्थ देखो ॥ ५१ ॥

जैमिनिरुवाच

ततो भीमो रणश्लाघी प्रद्युम्नसहितो ययौ ।
पातयामास तत् सैन्यं गदया क्रोधमूर्च्छितः ॥ ५२ ॥
पदातिरेव राजेन्द्र विष्णुवाक्यैः प्रणोदितः ।

जैमिनिजी कहते हैं—राजेन्द्र ! तदनन्तर युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले वीर भीमसेन भगवान् श्रीकृष्णके वचनोंसे प्रेरित होकर प्रद्युम्नके साथ पैदल ही उस सेनामें जा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पहुँचे और अत्यन्त कुपित होकर अपनी गदासे उस सेनाको मार-मारकर धराशायी करने लगे ॥ ५२½ ॥

गजा भिन्ना द्विधा युद्धे रथाश्च विदलीकृताः ॥ ५३ ॥
हया हताश्चूर्णिताङ्गा नरा रोषेण मर्दिताः ।
गजं जग्राह हस्तेन चिक्षेप गगने पुनः ॥ ५४ ॥
रथास्तु तुरगैः सार्धं वीराः सारथिभिः सह ।
गृहीत्वा भीमसेनेन जीवग्राहं विपोथिताः ॥ ५५ ॥
गजं रथं हयं भीमो गृहीत्वा लीलया करे ।
भूमौ चिक्षेप रुषितो निष्पिपेष पदा परान् ॥ ५६ ॥
विशीर्णगात्रा बहवो मुखाच्छोणितमावमन् ।
बाहवः पतिता रेजुः पञ्चास्या इव पन्नगाः ॥ ५७ ॥

उस युद्धमें भीमसेनने अपनी गदासे हाथियोंके शरीरोंके दो-दो टुकड़े कर दिये, रथोंको तोड़कर चूर्ण कर दिया, बहुत-से घोड़े मार डाले और पैदल सैनिकोंको रोषपूर्वक पटककर उनके सारे अङ्गोंको चूर-चूर कर दिया । वे हाथसे ही हाथीको पकड़ लेते और फिर उसे आकाशमें उछाल देते थे । घोड़ोंसहित रथों और सारथियोंसहित रथियोंको जीते-जी पकड़ लेते और उन्हें पृथ्वीपर पटककर मसल देते थे । खेल-ही-खेलमें रथ, हाथी और घोड़ोंको पकड़कर भीमसेन पृथ्वीपर पटक देते थे और कुछको तो क्रोधवश पैरोंसे ही पीस डालते थे । बहुतोंके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये और वे मुखसे खून उगलने लगे । वहाँ कटकर गिरी हुई वीरोंकी भुजाएँ पाँच मुखवाले सर्पोंकी भाँति सुशोभित हो रही थीं ॥

भीमपादप्रहारेण भिद्यतां शिरसां रवः ।
भिन्नानामिव भाण्डानां धरणीचलनेन हि ॥ ५८ ॥
श्रूयते यादृशो राजंस्तस्मिन् वीरमहाक्षये ।
ध्वजाः कणकणायन्ते वातेनाभ्युत्थितेन हि ॥ ५९ ॥

राजन् ! वीरोंके उस महान् संहारके समय भीमसेनके पादप्रहारसे फूटते हुए मस्तकोंका वैसा ही शब्द हो रहा था, जैसा भूकम्पके समय गिरकर टूटते हुए बर्तनोंका सुना जाता है । उस समय प्रचण्ड वायुके वेगपूर्वक उठनेसे झोंके खाते हुए ध्वजोंसे कड़-कड़ शब्द प्रकट होने लगा ॥ ५८-५९ ॥

गजानां रथिनां युद्धे सादिनां पत्तिनां तथा ।
मांसमेकत्र भीमोऽसौ पद्भ्यां संघट्टयन् ययौ ॥ ६० ॥

युद्धस्थलमें हाथियों, रथी वीरों, घुड़सवारों तथा पैदल सैनिकोंका मांस एकमेक हो गया था, जिसे भीमसेन पैरोंसे रौंदते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ ६० ॥

तावन्निरीक्षितस्तेन कर्णपुत्रेण पाण्डवः ।
अब्रवीद् भीमसेनं तं तोषयन्निव भारत ॥ ६१ ॥

तबतक कर्णपुत्र वृषकेतुकी दृष्टि उनपर पड़ी । भारत ! तब वह भीमसेनको प्रसन्न करता हुआ-सा बोला ॥ ६१ ॥

वृषकेतुरुवाच

भीमसेन महाबुद्धे बालकेन फलं यदि ।
अनेन संगृहीतं हि संग्रामाख्यं परंतप ॥ ६२ ॥
त्वदन्यः कः पिता लौल्यात् स्वयं गृह्णाति बालकात् ।
अनेन संगृहीतेन न ते तृप्तिर्भविष्यति ॥ ६३ ॥

वृषकेतुने कहा—शत्रुओंको संताप देनेवाले महाबुद्धिमान् भीमसेनजी ! यदि इस बालकने संग्रामरूपी इस एक फलका संग्रह किया है तो आपके अतिरिक्त ऐसा कौन पिता (चाचा) होगा, जो लोभवश स्वयं ही लड़केके हाथसे वह फल ले लेगा ? फिर इस एक फलके ले लेनेसे आपकी तृप्ति भी तो नहीं होगी ॥ ६२-६३ ॥

ईदृशानां सहस्राणि यदि प्राप्तानि मारिष ।
तवाग्रेऽल्पानि मन्येऽहं किमेकं सम्मुखे स्थितम् ॥ ६४ ॥

आर्य ! मैं तो ऐसा समझता हूँ—यदि इस तरहके सहस्रों फल आपके आगे आ जायँ तो भी वे आपके लिये थोड़े ही सिद्ध होंगे; फिर सामने उपस्थित इस एक फलकी क्या बिसात है ? ॥ ६४ ॥

अपकीर्तिश्च ते तात भविष्यति धरातले ।
पुत्रहस्तात् फलं चैकं गृहीतं पाण्डवेन हि ॥ ६५ ॥
वदिष्यन्ति जनाश्चैतत् तस्मात् त्याज्यं त्वयाधुना ।

तात ! इसे ले लेनेसे भूतलपर आपकी अपकीर्ति भी होगी । लोग ऐसा कहेंगे कि भीमसेनने बच्चेके हाथसे एक फल भी छीन लिया । इस कारण अब इसका परित्याग कर देना ही आपके लिये उचित होगा ॥ ६५½ ॥

अल्पामिषं भीमसेन न गृह्णाति च केसरी ॥ ६६ ॥
क्षुधातुरो गजं हन्ति नैव सर्पं मुखस्थितम् ।
महतां पौरुषं लोके हितं भवति देहिनाम् ॥ ६७ ॥

चाचा भीमसेन ! सिंह थोड़ा मांस नहीं ग्रहण करता । वह भूखसे व्याकुल होनेपर हाथीका ही वध करता है; मुखपर बैठे होनेपर भी सर्पको नहीं मारता । बड़े लोगोंका पुरुषार्थ संसारमें बहुत-से प्राणियोंके लिये हितकारक होता है ॥ ६६-६७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैमिनिरुवाच

ततो भीमोऽब्रवीद् वीरं वृषकेतुं महाबलम् ।
फलं निष्पीड्य बालस्य पित्रा हस्ते प्रदीयते ॥ ६८ ॥
स्वयमेव रणे वीर यदि गृह्णाति तत् फलम् ।
गृह्णातु याम्यहं वीरमनुशाल्वं नराधिपम् ।
एतावदुक्त्वा वचनमनुशाल्वं समाययौ ॥ ६९ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर भीमसेनने महाबली वीर वृषकेतुसे कहा—'बेटा ! पिता फलको तोड़कर बालकके हाथमें दे देता है; परंतु वीर ! यदि तू युद्धस्थलमें स्वयं ही उस फलको ग्रहण करनेमें समर्थ है तो जा ग्रहण कर ले । मैं शूरवीर राजा अनुशाल्वकी ओर जा रहा हूँ ।' इतनी बात कहकर भीमसेन अनुशाल्वकी ओर चल दिये ॥६८-६९॥

अनुशाल्वस्तमायान्तं बाणेनैकेन वक्षसि ।
ताडयामास वेगेन मूर्च्छितो निपपात सः ॥ ७० ॥

तब राजा अनुशाल्वने अपनी ओर आते हुए भीमसेनकी छातीमें वेगपूर्वक एक बाण मारकर गहरी चोट पहुँचायी । उसके आघातसे मूर्च्छित होकर भीमसेन पृथ्वीपर गिर पड़े ॥

मूर्च्छितं भीममालोक्य कृष्णः कोपसमन्वितः ।
स्वयं योद्धुं ययौ राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७१ ॥
दारुकेण रथो नीतः कृष्णस्य गरुडध्वजः ।

राजन् ! भीमसेनको मूर्च्छित हुआ देखकर श्रीकृष्ण कुपित हो गये और स्वयं ही युद्ध करनेके लिये चल पड़े । यह एक अद्भुत-सी घटना हुई । उस समय सारथि दारुकने श्रीकृष्णका गरुडध्वजवाला रथ लाकर उपस्थित कर दिया ॥

अनुशाल्वस्ततो वीक्ष्य गोविन्दं गरुडध्वजम् ॥ ७२ ॥
प्रत्युवाच महाबाहुस्तिष्ठ तिष्ठ जनार्दन ।
त्वया मम हतो बन्धुः सौभं मध्ये च पाटितम् ७३

तदनन्तर महाबाहु अनुशाल्वने गरुडध्वज गोविन्दको अपने सम्मुख उपस्थित देखकर कहा—'जनार्दन ! खड़े रहो, खड़े रहो । तुमने ही तो मेरे भाई शाल्वको मारा था और सौभ विमानको बीचसे फाड़ दिया था ॥ ७२-७३ ॥

एतस्मिन् समये पार्श्वे स्थितोऽहं नन्दनन्दन ।
पश्यतस्तव गोविन्द पुत्रकः पातितो मया ॥ ७४ ॥
द्वितीयः पाण्डवो भीमश्चित्रमेतत् प्रदर्शितम् ।

'नन्दनन्दन ! इस समय मैं तुम्हारे पास ही खड़ा हूँ । गोविन्द ! मैंने तुम्हारे देखते रहनेपर भी तुम्हारे पुत्र प्रद्युम्नको तथा दूसरे पाण्डुपुत्र भीमसेनको धराशायी कर दिया है । मैंने तुम्हें यह आश्चर्यकी बात कर दिखायी है ॥ ७४½ ॥

अहं न सम्मुखस्त्वां हि यस्मान्मे पातिता नराः ॥ ७५ ॥
पूर्वजाः कृष्ण जानामि त्वदीयौ पातिताविमौ ।
ब्रूते महाजनः सर्वः पतनं न कथंचन ॥ ७६ ॥
जायते सम्मुखानां हि कृष्णस्य पुरतः सकृत् ।
अहं युवा रणगतः पुराणपुरुषो भवान् ॥ ७७ ॥
कथं स्थास्यसि युद्धेऽस्मिन् समत्वं नैव दृश्यते ।

'(सौभ-युद्धके अवसरपर) मैं तुम्हारे सामने युद्धस्थलमें नहीं था, जिससे तुमने मेरे पूर्वजोंका संहार कर डाला था; परंतु इस समय मैंने तुम्हारे इन दोनों वीरोंको मार गिराया है । श्रीकृष्ण ! मैं भी जानता हूँ तथा सभी पुरुष भी कहते हैं कि एक बार भी श्रीकृष्णके सम्मुख जानेवालोंका किसी प्रकार भी पतन नहीं होता; परंतु मैं एक तरुण वीर तुम्हारे सामने युद्धस्थलमें खड़ा हूँ और तुम पुराणपुरुष (बूढ़े) हो, फिर किस प्रकार इस युद्धमें मेरा सामना करोगे । हमारा-तुम्हारा जोड़ तो नहीं दीख रहा है ॥ ७५–७७½ ॥

मद्बाणैः पञ्चभिर्भिन्नः क्व गमिष्यसि केशव ॥७८॥
पलायितस्य देवस्य स्थानं वेद्मि सतां मनः ।
तदेव तावकं दुर्गमन्यैर्जेतुं न शक्यते ॥ ७९ ॥
लोभयन्त्रादिभिर्घोरैः प्रपञ्चादिपदातिभिः ।

'केशव ! मेरे पाँच बाणोंद्वारा घायल हो जानेपर तुम भागकर कहाँ शरण लोगे ? मैं जानता हूँ, तुम भागे हुए देवताका आश्रयस्थान सत्पुरुषोंका मन है । वही तुम्हारा एक ऐसा दुर्ग है, जिसे दूसरे लोग लोभ आदि भयंकर यन्त्रों तथा प्रपञ्च आदि पैदल सैनिकोंकी सहायतासे भी नहीं जीत सकते ॥

स्वसङ्गत्या दर्शयन्ति लीनं त्वां हृदयेऽखिलम् ॥ ८० ॥
त एव नित्यं गोविन्द तव गुप्तप्रकाशकाः ।
न तेषां सङ्गतिं भूमौ कुर्वन्त्यत्र विमोहिताः ।
सन्मन्त्रवर्जिता नूनं राजानस्ते न संशयः ॥ ८१ ॥

'गोविन्द ! सदा तुम्हारे गुप्त रहस्यको प्रकट करनेवाले वे सत्पुरुष ही अपनी संगतिमें आनेवाले सत्सङ्गियोंको हृदयमें छिपे हुए तुम्हारा पूर्णरूपसे साक्षात्कार करा देते हैं, परंतु इस भूतलपर विषय-विमोहित जीव उनका सत्संग ही नहीं करते ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निश्चय ही इसी कारण ये राजालोग उत्तम नीतिसे हीन हो गये हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं है' ॥ ८०-८१ ॥

जैमिनिरुवाच

एतावदुक्त्वा वचनं विव्याध तुरगाञ्छरैः ।
चतुर्भिस्ते हया राजंस्त्रस्ता भिन्नकलेवराः ॥ ८२ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजन् ! इतनी बात कहकर अनुशाल्वने श्रीकृष्णके घोड़ोंको चार बाण मारकर घायल कर दिया । शरीरमें घाव हो जानेके कारण वे घोड़े भयसे उद्विग्न हो उठे ॥ ८२ ॥

स दूरमगमद् युद्धात् तस्मिन् काले विशाम्पते ।
न दृष्टः केशवस्तेन पुनः प्राहानुशाल्वकः ॥ ८३ ॥

प्रजानाथ ! उस समय श्रीकृष्ण युद्धस्थलसे दूर हट गये । इस कारण उन्हें वहाँ न देखकर अनुशाल्व पुनः कहने लगा ॥ ८३ ॥

अनुशाल्व उवाच

कस्माद् विलोकितः कृष्णो गतश्चादृश्यतां रणे ।
दुष्कृतं स्वं न पश्यामि नेतरेषामिहाधुना ॥ ८४ ॥

अनुशाल्व बोला—इस समय यहाँ न तो मुझे अपना ही कोई दुष्कर्म दीख रहा है और न दूसरोंका ही, फिर क्या कारण है कि श्रीकृष्ण अभी-अभी युद्धस्थलमें दीख पड़े और पुनः अदृश्य हो गये ? ॥ ८४ ॥

किं वा मदीये राष्ट्रे हि शूद्रो वा ब्राह्मणीं गतः ।
उत पित्रापि कन्याया धनं स्वीकृत्य मण्डले ॥ ८५ ॥
मामके केन दुष्टेन दत्ता कन्या धनेन च ।
अथवा रजसा युक्ता दुहिता निजमन्दिरे ॥ ८६ ॥
विना विवाहं विधृता जनकेनाल्पमेधसा ।
किं वा कोशे मदीयेऽत्र पुत्रहीनस्य पातितम् ॥ ८७ ॥
धनं मृतस्य दुर्वृत्तैर्मद्भृत्यैः पापकारिभिः ।
अथवा ब्राह्मणानां स्वं स्वीकृतं कुत्सितैर्जनैः ॥ ८८ ॥

क्या मेरे राज्यमें किसी शूद्रने ब्राह्मणीके साथ समागम किया है ? अथवा मेरे राष्ट्रमण्डलमें किस दुष्ट पिताने कन्याके मूल्यरूपसे धन लेना स्वीकार करके उस धनको लेकर कन्या बेंच दी है ? किंवा किसी मन्दबुद्धि पिताने अपनी रजोधर्मवती कन्याको विना विवाह किये ही अपने घरमें रख छोड़ा है । अथवा पापकर्म करनेवाले मेरे दुराचारी सेवकोंने किसी मरे हुए पुत्रहीनका धन लाकर मेरे खजानेमें डाल दिया है ? या निन्दित कर्म करनेवाले उन नीचोंने ब्राह्मणोंका धन ग्रहण कर लिया है ? ॥ ८५–८८ ॥

रजस्वलां प्रियां मूढा दिवा किं सङ्गतिं गताः ।
सुस्नाता कैश्च संत्यक्ता निशामध्ये तु कामिनी ॥ ८९ ॥
भ्रूणहत्या भवत्येव सकामानां धरातले ।
षष्ठेनांशेन वै तेषामहं पापेन केशवम् ॥ ९० ॥
दृष्टमत्र न पश्यामि कं पृच्छामि रणे हरिम् ।
मामकं सुकृतं किञ्चिद् विद्यते यदि तत्त्वतः ॥ ९१ ॥
तत् तस्मै सम्प्रयच्छामि यो मे दर्शयते हरिम् ।

क्या विषयविमोहित मेरे राज्यके मूढ़ पुरुषोंने अपनी रजस्वला पत्नीके साथ दिनमें समागम किया है ? या कुछ लोगोंने ऋतुकालिक स्नानसे शुद्ध हुई पतिकी कामनावाली अपनी पत्नीका रातमें परित्याग कर दिया है; क्योंकि इस तरह कामनावाली पत्नीका परित्याग भूतलपर भ्रूणहत्याके समान माना जाता है । (मालूम होता है, राजा होनेके कारण प्रजाओंके) उन पापोंके छठे अंशसे मैं भी लिप्त हो गया हूँ, इसी कारण रणभूमिमें श्रीकृष्णको देखकर भी अब नहीं देख रहा हूँ । मैं उन श्रीहरिका पता किससे पूछूँ ? वास्तवमें यदि मेरा कुछ भी पुण्य विद्यमान है तो वह सब मैं इस व्यक्तिको समर्पित कर दूँगा, जो मुझे श्रीहरिका दर्शन करा देगा ॥ ८९–९१½ ॥

किं पश्चात् तेन पुण्येन कार्यं येन क्षितौ हरिः ॥ ९२ ॥
न दृश्यते जगन्नाथः सर्वपापापनुत्तये ।

क्योंकि जिस पुण्यके प्रभावसे पृथ्वीपर सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेके लिये जगदीश्वर श्रीहरिका दर्शन न हो सका, पीछे उस पुण्यको लेकर क्या करना है ? ९२½ ॥

हंसतीर्थोदकं पीत्वा सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ९३ ॥
पूतो यथा नरो राजन् हरिं वीक्ष्य तथा भवेत् ।

जैसे हंसतीर्थका जल पीनेसे समस्त पापोंका विनाश हो जाता है, उसी तरह श्रीकृष्णका दर्शन करके मनुष्य पवित्र हो जाता है ॥ ९३½ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं वदति वीरे तु पुनः प्राप्तः स्वयं हरिः ॥ ९४ ॥
अनुशाल्वं त्रिभिर्बाणैर्जघान समरे हसन् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! अनुशाल्व यों कह ही रहा था कि पुनः श्रीहरि स्वयं वहाँ आ पहुँचे और समरभूमिमें हँसते हुए उन्होंने अनुशाल्वपर तीन बाणोंसे वार किया ॥९४½॥

बाणेनैकेनानुशाल्वस्ताञ्छरान् माधवस्य तु ॥ ९५ ॥
मध्ये चिच्छेद तरसा वचनं चेदमब्रवीत्।

तब अनुशाल्वने वेगपूर्वक एक बाण चलाकर श्रीकृष्णके उन बाणोंको बीचसे काट दिया और इस प्रकार कहा ॥ ९५½ ॥

अनुशाल्व उवाच

पश्य माधव मद्वीर्यं त्रिभिर्विरहितो भवान् ॥ ९६ ॥
मया कृतो हि संग्रामे ह्याशुगेनाशुपातिना।
मदीयमाशुगं चैकं न भवान् पातितुं क्षमः ॥ ९७ ॥
सहस्व त्वं शरं चैकं स्थिरो भूत्वा महाहवे।

अनुशाल्व बोला—माधव! मेरा पराक्रम देखिये, मैंने युद्धस्थलमें शीघ्र चोट करनेवाला एक ही बाण मारकर आपको तीन बाणोंसे रहित कर दिया है, परंतु आप मेरे एक बाणको भी विफल करनेमें समर्थ नहीं हुए। अब आप इस महासमरमें दृढ़तापूर्वक स्थित होकर मेरे एक बाणको तो सह लीजिये ॥ ९६-९७½॥

ततो मुमोच नाराचं वासुदेवस्य वक्षसि ॥ ९८ ॥
तेन चास्य प्रहारेण संतुष्ट इव मूर्च्छितः।

तदनन्तर अनुशाल्वने श्रीकृष्णके वक्षःस्थलको लक्ष्य करके एक नाराच चलाया। नाराचके उस आघातसे श्रीकृष्ण मूर्च्छित होकर गिर पड़े, मानो अनुशाल्वकी वीरतासे प्रसन्न होकर बैठ गये हों ॥ ९८½ ॥

दारुको वीक्ष्य गोविन्दं संतुष्टं तस्य तेजसा ॥ ९९ ॥
रथं रणादपोवाह यत्र राजा युधिष्ठिरः।
हाहाकारो महानासीत् कृष्णं वीक्ष्य तथाविधम्॥ १००॥

गोविन्दको अनुशाल्वके पराक्रमसे संतुष्ट (एवं मूर्च्छित) हुआ देखकर दारुक रथको युद्धस्थलसे दूर हटा ले गया और जहाँ राजा युधिष्ठिर थे, वहाँ जा पहुँचा। श्रीकृष्णको मूर्च्छित दशामें देखकर वहाँ महान् हाहाकार मच गया ॥ ९९-१०० ॥

पलायितं बलं सर्वं पाण्डवानां च पश्यताम्।
हतान् पुत्रान् पितॄन् बन्धून् सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान्॥
उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति वदन्त्येके परस्परम्।
पुत्र मां नय संग्रामात् पिताहं पतितस्तव ॥ १०२॥

उस समय पाण्डवोंके देखते रहनेपर भी सारी सेनामें भगदड़ मच गयी। लोग घायल होकर पड़े हुए पुत्रों, पिताओं, बन्धुओं, सुहृदों, सम्बन्धियों तथा जाति-भाइयोंको छोड़-छोड़कर भाग रहे थे। कुछ लोग परस्पर कह रहे थे—'बेटा! मैं तेरा पिता यहाँ गिरा पड़ा हूँ, तू मुझे इस संग्राम-भूमिसे ले चल' ॥ १०१-१०२ ॥

पुत्रः प्रोवाच पितरं पलायित्वा जवात् स्थितः।
तव श्राद्धं गयाशीर्षे करिष्यामीति निर्गतः ॥१०३॥
तावदन्यो जनः प्राप्तो भयाद् दैत्यानुशाल्वकात्।

तब वेगपूर्वक भागता हुआ पुत्र खड़ा होकर पितासे बोला—'मैं गयाजीमें आपके लिये श्राद्ध कर दूँगा', ऐसा कहकर वह चल दिया। तबतक दैत्य अनुशाल्वके भयसे भागते हुए दूसरे लोग भी वहाँ आ पहुँचे ॥ १०३½ ॥

ततः स दारुको धीमान् माधवं वीणकेऽनयत् ॥१०४॥
तं प्राप्तं मूर्च्छितं दृष्ट्वा हाहाकृत्वा प्रधाविताः।
कृष्णस्य नार्यः सकला रुक्मिणीप्रमुखाः किल ॥१०५॥
सत्यभामा हरिं वीक्ष्य प्रबुद्धं वाक्यमब्रवीत्।

तदनन्तर बुद्धिमान् सारथि दारुक श्रीकृष्णको खेमेमें ले गया। वहाँ श्रीकृष्णको मूर्च्छित होकर आया हुआ देख उनकी रुक्मिणी आदि सारी पत्नियाँ हाहाकार करके दौड़ पड़ीं। कुछ देर बाद श्रीकृष्णको सचेत हुआ देखकर सत्यभामा कहने लगीं ॥ १०४-१०५½ ॥

सत्यभामोवाच

समागतं रणात् पुत्रं प्रद्युम्नं रणकोविदम् ॥१०६॥
उक्तवानसि रूक्षाणि बहुदुःखकराणि च।
भवान् प्राप्तः कथं युद्धादनुशाल्वभयार्दितः ॥१०७॥
पलायन्ते जनाः सर्वे मृत्योर्भीता जगत्पते।

सत्यभामा बोली—जगदीश्वर! मृत्युसे भयभीत होकर प्रायः सभी लोग भागा करते हैं; परंतु जिस समय युद्ध-कलामें प्रवीण पुत्र प्रद्युम्न मूर्च्छित होकर युद्धभूमिसे लौट आया था, उस समय आपने उसके प्रति बहुत-से मर्मभेदी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवं कठोर वचनोंका प्रयोग किया था। फिर इस समय अनुशाल्वके भयसे पीड़ित होकर आप स्वयं युद्धके मैदानसे कैसे भाग आये ? ॥ १०६-१०७½ ॥

स्वयं गच्छामि किं नाथ चण्डी भूत्वा महाहवे ॥ १०८॥
हन्तुं तमनुशाल्वं हि यस्माद् भीतः समागतः।

नाथ ! जिससे भयभीत होकर आप भाग आये हैं, उस अनुशाल्वका वध करनेके लिये क्या मैं स्वयं चण्डी बनकर इस महायुद्धमें जाऊँ ? ॥ १०८½ ॥

न त्वां छिन्दन्ति शस्त्राणि न त्वां दहति पावकः ॥ १०९॥
कथं पलायितोऽसि त्वं कृष्ण देवकिनन्दन।

देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ! आपको तो न शस्त्र काट सकते हैं और न अग्नि जला सकती है, फिर आप भयभीत होकर कैसे भाग आये हैं ? ॥ १०९½ ॥

त्वया पादप्रहारेण पुत्रो वै ताडितो भृशम्।
वसुदेवस्तु दूरे वै यस्त्वां ताडयते तथा ॥११०॥

उस समय तो आपने पुत्र प्रद्युम्नको लातोंसे बहुत मारा था, परंतु जो उसी तरह आपको भी मार सकते हैं, वे आपके पिता वसुदेवजी तो इस समय दूर हैं ॥ ११० ॥

यद् गतं गतमेवास्तु शेषं चिन्तय केशव।
यथाऽऽयाति हयो राज्ञश्चानुशाल्वात् सुधीमतः॥१११॥

केशव ! जो बीत गया सो तो गया ही, अब आगेके कर्तव्यपर विचार कीजिये, जिससे बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरका वह यज्ञिय अश्व अनुशाल्वके हाथसे मुक्त होकर आ जाय ॥ १११ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि सत्यभामावाक्यं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें सत्यभामाका वचननामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

वृषकेतु और अनुशाल्वका युद्ध, वृषकेतुका अनुशाल्वको पकड़कर श्रीकृष्णके हाथों सौंपना, अनुशाल्वद्वारा वृषकेतुके प्रति कृतज्ञता-प्रकाश और श्रीकृष्णकी स्तुति, श्रीकृष्णका अनुशाल्वको युधिष्ठिरके पास ले जाना और युधिष्ठिरका उसे भाईकी तरह ग्रहण करना, युधिष्ठिरका यज्ञकी दीक्षा लेना, घोड़ेका पूजनपूर्वक छोड़ा जाना और अर्जुनका उसकी रक्षामें जाना, अर्जुन और कुन्तीकी बातचीत, वृषकेतु और उसकी पत्नीका संवाद, घोड़ेका माहिष्मतीपुरीमें जाना और पत्नीके कहनेसे प्रवीरद्वारा पकड़ा जाना

जैमिनिरुवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा निर्ययौ भगवान् पुनः।
अनुशाल्वं रणे योद्धुं तस्मिन् काले जनाधिप ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनेश्वर ! सत्यभामाके ऐसे वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण रणभूमिमें अनुशाल्वके साथ युद्ध करनेके लिये पुनः उसी समय चल पड़े ॥ १ ॥

तं वीक्ष्य च रणे प्राप्तं वृषकेतुर्महाबलः।
अनुशाल्वं समाहूय तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २ ॥
जघान सप्तभिर्बाणैर्दैत्यराजं हसन्निव।

तब महाबली वृषकेतु श्रीकृष्णको युद्धस्थलमें उपस्थित देख अनुशाल्वको पुकारकर बोला—'अरे खड़ा रह, खड़ा रह !' और हँसते-हँसते उसने सात बाणोंद्वारा उस दैत्यराजपर प्रहार किया ॥ २½ ॥

अनुशाल्वोऽपि संविद्धो दशभिः कर्णनन्दनम् ॥ ३ ॥
विव्याध हृदये घोरैः सायकैर्निशितैस्तथा।
चतुर्भिस्तुरगानस्य पातयामास भूतले ॥ ४ ॥
सारथेश्च शिरः कायात् क्षितौ क्षिप्रमपातयत्।

तत्पश्चात् उन बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर अनुशाल्वने भी दस भयंकर एवं पैने बाणोंसे वृषकेतुके हृदयको बींध दिया और चार बाणोंद्वारा उसके चारों घोड़ोंको मारकर धराशायी कर दिया। फिर शीघ्र ही सारथिके सिरको भी उसके शरीरसे काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ३-४½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

विरथं वृषकेतुं तं समीक्ष्य रविसारथिः ॥ ५ ॥
योजयित्वा रथं दिव्यं द्वितीयं समुपागतः ।

तदनन्तर जब सूर्य-सारथि अरुणने देखा कि वृषकेतु रथहीन हो गया है, तब वह दूसरा दिव्य रथ जोतकर उसके समीप जा पहुँचा ॥ ५½ ॥

तस्मिन् रथे समारुह्य पुनः कर्णसुतो बली ॥ ६ ॥
दैत्यराजं शरैस्तीक्ष्णैः समन्ताद् व्यकिरद् रणे ।

तब शूरवीर कर्णकुमार वृषकेतु उस रथपर सवार होकर पुनः रणभूमिमें चारों ओरसे दैत्यराज अनुशाल्वपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ६½ ॥

सारथिं पातयित्वास्य हयानपि महाबलः ।
जघान समरे भूप लीलया प्रहसन्निव ॥ ७ ॥

राजन् ! उस महाबली वीरने समरभूमिमें अनुशाल्वके सारथिको रथसे नीचे गिराकर हँसते-हँसते लीलापूर्वक उसके घोड़ोंको भी मार डाला ॥ ७ ॥

दैत्यनाथश्च तरसा रथस्थं कर्णनन्दनम् ।
समुत्थाप्य भुजाग्रेण भूमौ चिक्षेप कोपतः ॥ ८ ॥

तब अनुशाल्व भी क्रोधमें भर गया और उसने रथमें बैठे हुए वृषकेतुको हाथसे उठाकर वेगपूर्वक पृथ्वीपर दे मारा ॥ ८ ॥

सोऽप्येनं सरथं क्रुद्धो भूमौ चिक्षेप कोपतः ।
गृहीत्वा पुनरेवैनं निर्ययौ कृष्णसंनिधौ ॥ ९ ॥
ददौ कृष्णकरे दैत्यं वचः प्राह सुशोभनम् ।

तदनन्तर क्रोधमें भरा हुआ वृषकेतु रथसहित अनुशाल्वको उठाकर भूतलपर पटक दिया और उसे जीते-जी पकड़कर श्रीकृष्णके समीप चल दिया । वहाँ उस दैत्यको श्रीकृष्णके हाथों सौंपकर सुन्दर वाणीमें कहने लगा ॥ ९½ ॥

वृषकेतुरुवाच

एनं पश्य हृषीकेश तुरगग्रहणे क्षमम् ॥ १० ॥
त्वत्प्रसादेन सम्प्राप्तं प्रतिज्ञा सफलास्तु मे ।

वृषकेतु बोला—हृषीकेश ! मेरे घोड़ेको पकड़ लेनेमें अपनेको समर्थ समझनेवाले इस दैत्यकी ओर दृष्टिपात कीजिये; मैं इसे आपकी कृपासे पकड़ लाया हूँ । अब मेरी प्रतिज्ञा सफल हो ॥ १०½ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

धन्योऽसि कर्णपुत्र त्वं भाषितं सफलं कृतम् ॥ ११ ॥
अनुशाल्वं करस्त्वदन्यो रणादिह समानयेत् ।

श्रीकृष्णने कहा—कर्णपुत्र ! तू धन्य है ! तूने अपना कथन सत्य कर दिखाया । तेरे अतिरिक्त दूसरा कौन वीर अनुशाल्वको पकड़कर रणभूमिसे यहाँ ला सकता है ? ॥ ११½ ॥

एवं वदति गोविन्दे प्रबुद्धो दैत्यनायकः ॥ १२ ॥
यादवेन्द्रं ददर्शाग्रे घनश्यामं जगत्पतिम् ।

भगवान् गोविन्द यों कह ही रहे थे कि दैत्यराज अनुशाल्व मूर्च्छासे जाग उठा और उसने अपने सामने यादवोंके स्वामी जगदीश्वर घनश्यामको उपस्थित देखा ॥

उवाच वचनं वाग्मी कर्णपुत्रं महामतिम् ॥ १३ ॥
जितस्त्वयाहं वै वीर पातितः कृष्णपादयोः ।
न पिता जननी नैव न गुरुर्न च बान्धवाः ॥ १४ ॥
न देवास्त्वरितं देवमनन्तं दर्शयन्ति च ।
शत्रुणा स त्वया जित्वा दर्शितो मधुसूदनः ॥ १५ ॥

तब प्रवचनकुशल अनुशाल्व महाबुद्धिमान् वृषकेतुसे कहने लगा—'वीर ! तुमने मुझे जीतकर जो श्रीकृष्णके चरणोंमें डाल दिया है (यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात हुई); क्योंकि जिन अनन्तदेवका दर्शन पिता, माता, गुरु, भाई-बन्धु और देवता भी शीघ्र नहीं करा सकते, उन्हीं मधुसूदनका साक्षात्कार शत्रु होते हुए भी तुमने मुझे जीतकर करा दिया है ॥

येन मे बान्धवाः सर्वे गमिताः परमं पदम् ।
सङ्गतिं तेन सम्प्राप्य कृष्णेन मम विस्मयः ॥ १६ ॥
जायते कर्णपुत्राद्य संतोषश्च शुभावहः ।
ययोर्वैरं तयोर्मैत्री संजाता पौरुषेण ते ॥ १७ ॥

'कर्णपुत्र ! जिन्होंने मेरे सभी भाई-बन्धुओंको मारकर परमपदको भेज दिया है, उन्हीं श्रीकृष्णके साथ अपनी संगति देखकर मुझे परम विस्मय और मङ्गलकारी संतोष प्राप्त हो रहा है । जिन श्रीकृष्ण और मुझमें वैर बँधा हुआ था, उन्हीं दोनोंमें तुम्हारे पुरुषार्थसे मित्रता हो गयी ॥ १६-१७ ॥

प्रभूणां हि प्रभावेण सङ्गतासङ्गतं समम् ।
दृश्यते शङ्करे वीर विषं चैवामृतं सदा ॥ १८ ॥

'वीर ! सामर्थ्यशाली पुरुषोंके प्रभावसे संगत और असंगत—दोनों समान हो जाते हैं; जैसे भगवान् शंकरमें विष और अमृत सदा समान ही देखे जाते हैं ॥ १८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दातारो दर्शयन्त्येव जगन्नाथपदाम्बुजम् ।
त्वत्समो नास्ति दातान्यः काश्यपात्मजनन्दन ॥ १९॥

'कर्णनन्दन ! दाता पुरुष ही जगदीश्वर श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका अवश्य दर्शन कराते हैं; तुम्हारे समान दूसरा कोई दाता नहीं है (क्योंकि तुमने मुझे श्रीकृष्णके चरणोंका दर्शन कराया है)' ॥ १९ ॥

वृषकेतुरुवाच

भवान् कृष्णपदं प्राप्य ब्रूते हि मम विस्मयः ।
संजातः साम्प्रतं वीर मूकत्वं यत्र योगिनः ॥ २० ॥
गच्छन्ति शेषप्रमुखा विलोक्य मधुसूदनम् ।
तव भाषितमाकर्ण्य विस्मयोऽतीव जायते ॥ २१ ॥

तब वृषकेतुने कहा—वीर ! भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें पहुँचकर भी तुम बोल रहे हो, इससे इस समय मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है। जहाँ पहुँचकर मधुसूदनका दर्शन करके शेष आदि योगियोंकी भी वाणी मूक हो जाती है, वहाँ तुम्हारा कथन सुनकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है ॥

अनुशाल्व उवाच

वाक्प्रवृत्ता हरिं वीक्ष्य मदीया कर्णनन्दन ।
ध्रुवस्येवामुना दत्ता लोकास्तु हरिणा शुभाः ॥ २२ ॥

अनुशाल्वने कहा—कर्णनन्दन ! इन श्रीकृष्णको देखकर ही मेरी वाणी इनकी स्तुतिके लिये सचेष्ट हुई है; क्योंकि इन श्रीहरिने ही ध्रुवको उत्तम लोक प्रदान किये थे ॥

स्तौमि चात्र हृषीकेशं समक्षं तव मारिष ।
मत्प्रहारेण संत्यक्त्वा जगाम रणमण्डलम् ॥ २३ ॥
यः पाण्डवस्य पुरतो विश्वस्रक् शास्त्रधृग्धरिः ।
किं पीड्यतेऽस्य शस्त्रेण विष्णोर्विश्वमयं वपुः ॥ २४ ॥

आर्य ! मैं यहाँ तुम्हारे सामने इन हृषीकेशकी स्तुति करता हूँ। जो श्रीहरि विश्वके रचयिता हैं तथा शास्त्रोंको अपने निःश्वास और हृदयमें धारण करते हैं, वे मेरे प्रहारसे युद्धभूमि-को छोड़कर महाराज युधिष्ठिरके समीप चले आये (यह इनकी एक लीला ही तो है)। क्या इन विष्णु भगवान्‌के विश्वमय शरीरको शस्त्रद्वारा पीड़ित किया जा सकता है (कदापि नहीं)॥

चतुर्भुजाश्च जायन्ते स्मरणाद् यस्य मानवाः ।
वैनतेयं समारूढाः शङ्खचक्रगदाधराः ॥ २५ ॥
स स्वयं जायते मत्स्यः कूर्मः कोलो नृकेसरी ।

जिनका स्मरण करनेसे मनुष्य गरुड़पर सवार होकर शङ्ख-चक्र-गदाधारी चार भुजावाले (विष्णुस्वरूप) हो जाते हैं, वे ही भगवान् जीवोंपर कृपा करके स्वयं मत्स्य, कच्छप, शूकर और नृसिंहका रूप धारण करते हैं ॥ २५½ ॥

प्रसादाद् यस्य देवेन्द्रो विविधास्ताः सुराङ्गनाः ॥ २६ ॥
सम्प्राप्नोति स्वयं प्राप्तः कुब्जिकां गोपवेषधृक् ।

जिनकी कृपासे इन्द्र देवराजपदपर प्रतिष्ठित होकर नाना प्रकारकी देवाङ्गनाओंको उपलब्ध करते हैं, वे ही श्रीहरि स्वयं गोपालका वेष धारण करके कुब्जाके पास जाते हैं (यह इनकी कैसी विचित्र लीला है)॥ २६½ ॥

पुष्णाति कृष्णो विश्वं यो नानारत्नचयेन हि ॥ २७ ॥
स भोक्ता द्रौपदीदत्तं शाकपत्रं निशागमे ।
सक्तून् सुदाम्नः स्वल्पांस्तान् प्राश्य प्रासवान् मुदम् २८

जो श्रीकृष्ण नाना प्रकारके रत्न-समूहोंद्वारा सारे विश्वका भरण-पोषण करते हैं, उन्होंने स्वयं सायंकालमें (क्षुधातुर होकर) द्रौपदीद्वारा दिये गये शाकके पत्तेका भोग लगाया तथा सुदामाके थोड़े-से सत्तूको खाकर प्रसन्नता प्राप्त की॥

नन्दनादीनि दिव्यानि वनानि प्राप्नुवन्ति ते ।
स्वयं हि कृष्ण तुलसीकानने रमते हरिः ॥ २९॥

श्रीकृष्ण ! तुम्हारे भक्त तो नन्दन आदि स्वर्गीय काननोंमें पहुँच जाते हैं, परंतु स्वयं तुम तुलसी-कानन (वृन्दावन)में ही रमण करते हो॥ २९ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं ब्रुवन्तं नृपतिं समालिङ्ग्य स्थितो हरिः ।
गृहीत्वा दक्षिणे हस्ते दर्शयामास धर्मजम् ॥ ३० ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! यों स्तुति करते हुए राजा अनुशाल्वका श्रीकृष्णने उठकर आलिङ्गन किया और उसका दाहिना हाथ पकड़कर वे उसे धर्मराजके पास ले गये॥

ततो युधिष्ठिरं राजा नमस्कृत्य स्थितोऽग्रतः ।
उवाच धर्मराजस्तं सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥ ३१ ॥

तत्पश्चात् जब राजा अनुशाल्व युधिष्ठिरको प्रणाम करके उनके आगे खड़ा हो गया, तब धर्मराजने उससे सान्त्वना-पूर्वक कहा—॥ ३१ ॥

भीमादीनां पञ्चमस्त्वं बान्धवोऽसि ममाधुना ।
यज्ञं पालय मे नित्यं यथा कृष्णेन पाल्यते ॥ ३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'राजन्! अब तुम भीमसेन आदिकी भाँति मेरे पाँचवें भाईके समान हो गये हो, इसलिये जैसे श्रीकृष्ण इस यज्ञकी सारी सँभाल करते हैं, उसी तरह तुम भी सदा इसकी रक्षा करो' ॥ ३२ ॥

अनुशाल्वस्ततः सर्वान् भीमसेनमुखांस्ततः ।
समालिङ्ग्याब्रवीद् वाक्यं धर्मराजं महामतिम् ॥ ३३ ॥

तदनन्तर अनुशाल्वने भीमसेन आदि सभी वीरोंका गाढ़ आलिङ्गन किया और फिर महाबुद्धिमान् युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा ॥ ३३ ॥

अनुशाल्व उवाच

अहं बाहू शिरश्चैव स्वकीयं रणमण्डले ।
युधिष्ठिरार्थे कालेन यत्र तत्र प्रपातये ॥ ३४ ॥
एतावदुक्त्वा वचनं विरराम स पार्थिवः ।

अनुशाल्व बोला—महाराज ! मैं अवसर आनेपर आपके लिये समरभूमिमें अपने सिर तथा भुजाओंको प्रत्येक स्थानमें अर्पण करनेके लिये उद्यत हूँ । इतनी बात कहकर राजा अनुशाल्व चुप हो गया ॥ ३४½ ॥

ततो विजित्य सर्वांस्तान् पार्थिवान् कर्णनन्दनः ॥ ३५ ॥
आनयामास तुरगं यत्र राजा युधिष्ठिरः ।

तत्पश्चात् कर्णनन्दन वृषकेतु अनुशाल्वपक्षीय सभी भूपालोंको परास्त करके उस यज्ञिय अश्वको वहाँ ले आया, जहाँ महाराज युधिष्ठिर विराजमान थे ॥ ३५½ ॥

हृष्टो युधिष्ठिरः प्राह धन्यस्त्वं कर्णनन्दन ॥ ३६ ॥
प्रतिज्ञा सफला वीर तव जाता ममाग्रतः ।
अनुशाल्वोऽपि बन्धुत्वं गमितः पुण्यसंग्रहात् ॥ ३७ ॥

उसे आया हुआ देखकर युधिष्ठिर हर्षमें भरकर बोले—'कर्णनन्दन ! तू धन्य है । मेरे समक्ष की हुई तेरी प्रतिज्ञा आज सफल हो गयी । तूने बहुत बड़े पुण्य-संचयके फलस्वरूप अनुशाल्वको भी मेरा भाई बना दिया ॥ ३६-३७ ॥

दिष्ट्या सर्वं सुखाकारं संजातं कार्यमद्य मे ।
युवां कुशलिनौ प्राप्तौ प्रियौ मे कृष्णकर्णजौ ॥ ३८ ॥

'बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम दोनों श्रीकृष्ण और वृषकेतु, जो मेरे परम प्यारे हो, सकुशल लौट आये; इससे आज मेरे समस्त कार्य भावी सुखकी सूचना देनेवाले हो गये' ॥ ३८ ॥

एवं प्रशस्य तौ वीरौ मुदितो धर्मनन्दनः ।
पुरस्कृत्य हयं वीरैः प्रविवेश गजाह्वयम् ॥ ३९ ॥

इस प्रकार उन दोनों वीरोंकी प्रशंसा करके धर्मनन्दन युधिष्ठिरने आनन्दपूर्वक यज्ञिय अश्वको आगे करके उन वीरोंके साथ हस्तिनापुरमें प्रवेश किया ॥ ३९ ॥

उपविष्टः सभामध्ये सह कृष्णेन स द्विजैः ।
देवकी च यशोदा च कुन्ती चैवाथ रोहिणी ॥ ४० ॥
रुक्मिणी सत्यभामा च तथैवान्याश्च योषितः ।
अरुन्धती चानसूया पूजयन्त्यस्तथा शुभाः ॥ ४१ ॥

वहाँ वे ब्राह्मणों तथा श्रीकृष्णके साथ सभाभवनमें विराजमान हुए । तब देवकी, यशोदा, कुन्ती, रोहिणी, रुक्मिणी, सत्यभामा, अरुन्धती, अनसूया तथा वहाँ आयी हुई अन्य सौभाग्यवती स्त्रियाँ परस्पर एक-दूसरीका यथोचित पूजन एवं सत्कार करने लगीं ॥ ४०-४१ ॥

परस्परं भावयन्ति राजानस्ते समागताः ।
भोज्यैश्च विविधैः पेयैश्चन्दनागुरुधूपितैः ॥ ४२ ॥
वासोभिर्मृदुभिश्चैव राङ्कवैर्भावसंयुताः ।
वराश्वगजदानैश्च यज्ञारम्भे च मारिष ॥ ४३ ॥

आर्य ! यज्ञारम्भके अवसरपर वहाँ पधारे हुए सभी नरेश नाना प्रकारके भोजन करनेयोग्य एवं चन्दन और अगुरुसे सुवासित पीनेयोग्य पदार्थों, रंकु मृगके रोमसे बने हुए कोमल वस्त्रों तथा श्रेष्ठ घोड़ों और हाथियोंके दानद्वारा परस्पर सद्भावपूर्वक एक-दूसरेका सम्मान करने लगे ॥

समागते हृषीकेशे दिनानां विंशतिर्गता ।
चैत्री प्राप्ता पौर्णमासी दीक्षितोऽभूद् युधिष्ठिरः ॥ ४४ ॥

इधर जब श्रीकृष्णको हस्तिनापुरमें आये हुए बीस दिन व्यतीत हो चुके, तब चैत्र मासकी पूर्णिमा तिथि आयी । उस दिन युधिष्ठिरने अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा ग्रहण की ॥ ४४ ॥

द्रौपदीसहितो रौद्रमसिपत्रव्रतं चरन् ।
संस्थाप्य तुरगं तत्र पूजयित्वा यथाविधि ॥ ४५ ॥

वहाँ यज्ञमण्डपमें उन्होंने यज्ञिय अश्वको खड़ा करके शास्त्रविधिके अनुसार उसकी पूजा की और द्रौपदीको साथमें रखकर अत्यन्त कठोर असिपत्र-व्रतको भी धारण किया ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणान् वेदसम्पन्नान् वित्तेन महता नृपः ।
गीतवादित्रनादेन ब्रह्मघोषैः सुमङ्गलैः ॥ ४६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हयं सपत्रं यज्ञार्थं कुङ्कुमेनाभिचर्चितम्।
चन्दनेनापि मालाभिर्वरधूपैश्च धूपितम्॥ ४७॥
मुमोच धर्मराजोऽसौ तुरङ्गं बद्धचामरम्।
पालनार्थं हयस्याथ प्रेषयामास फाल्गुनम्॥ ४८॥

उस समय उन नरेशने गीत, वाद्यध्वनि तथा माङ्गलिक वेदपाठके साथ वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन देकर उन्हें तृप्त किया। तब उस यज्ञिय अश्वके मस्तकपर सोनेका पत्र बाँध दिया गया। कुङ्कुम, चन्दन और पुष्पमालाओंद्वारा उसकी पूजा की गयी और सुगन्धित धूपोंद्वारा उसे धूप अर्पित किया गया तथा उसके मस्तकपर चँवर बाँध दिया गया। तत्पश्चात् धर्मराजने (समस्त दिशाओंमें भ्रमणके लिये) उस अश्वको छोड़ दिया और उस अश्वकी रक्षाके लिये अर्जुनको जानेकी आज्ञा दी॥ ४६–४८॥

सुस्नातं शुभ्रवसनं दूर्वाचम्पकनिर्मिताम्।
मालां कण्ठे प्रोथयित्वा दधानं च किरीटकम्॥ ४९॥
गाण्डीवहस्तं सोत्साहं छत्रचामरशोभितम्।
पाण्डवं प्राह राजासौ पार्थ पालय वाजिनम्॥ ५०॥
वासुदेवप्रसादेन निर्विघ्नं तेऽस्तु पाण्डव।
शिवास्ते सन्तु पन्थानो जयं प्राप्नुहि भारत॥ ५१॥
कुशली पुनरागच्छ ससहायपरिच्छदः।
अनाथान् दीनवदनान् सद्वृत्तांश्च तथैव च॥ ५२॥
कृताञ्जलीन् सशरणांस्तवास्मीति च वादिनः।
पितृहीनान् बालकान् मा रणे पातय मारिष॥ ५३॥

तब अर्जुनने अच्छी तरह स्नान करके निर्मल श्वेत वस्त्र धारण किया, गलेमें दूर्वा और चम्पाके फूलोंसे गुँथी हुई माला पहन ली, मस्तकपर किरीट धारण किया और उत्साहपूर्वक गाण्डीव धनुष हाथमें ले लिया। उस समय वे छत्र-चँवरसे सुशोभित हो रहे थे। (इस प्रकार उन्हें यात्राके लिये उद्यत देखकर) धर्मराजने उनसे कहा—'पार्थ! तुम घोड़ेकी रक्षाके लिये जाओ। पाण्डुनन्दन! श्रीकृष्णकी कृपासे तुम्हारे सभी कार्य निर्विघ्न सिद्ध हों। भारत! तुम्हारे मार्ग मङ्गलमय हों और तुम सर्वत्र विजय लाभ करो तथा सहायकों और सामग्रियोंसहित पुनः सकुशल हस्तिनापुर लौटो। परंतु श्रेष्ठ वीर! जो अनाथ हों, जिनके मुखसे दीनता प्रकट हो रही हो, जो सदाचारी हों, हाथ जोड़कर शरणागत हो गये हों, 'मैं आपका ही हूँ' ऐसा कह रहे हों तथा जो पितृहीन बालक हों—ऐसे राजाओंका संग्राममें वध मत करना'॥ ४९–५३॥

ततो धनंजयः श्रुत्वा भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भाषितम्।
नमस्कृत्य च तं प्रायात् कुन्तीं प्रष्टुं च देवकीम्॥ ५४॥

तब अर्जुन अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिरका कथन सुनकर उन्हें प्रणाम करके कुन्ती और देवकीसे आज्ञा लेनेके लिये उनके पास गये॥ ५४॥

प्रणम्य कुन्तीं तां देवीं देवकीं कृष्णमातरम्।
अरुन्धतीं चानसूयां तथा तां रुक्मिणीमपि॥ ५५॥
गान्धारीं धृतराष्ट्रं च प्रत्युवाच व्रजाम्यहम्।
भ्रात्राऽऽदिष्टो रक्षणार्थं हयस्येति प्रहर्षितः॥ ५६॥

वहाँ वे कुन्ती, श्रीकृष्णकी माता देवी देवकी, अरुन्धती, अनसूया, रुक्मिणी, गान्धारी और धृतराष्ट्रके चरणोंमें अभिवादन करके अत्यन्त हर्षके साथ बोले—'मैं भाई युधिष्ठिरके आदेशसे घोड़ेकी रखवालीके लिये जा रहा हूँ'॥ ५५-५६॥

ततोऽर्जुनं परिष्वज्य कुन्ती वचनमब्रवीत्।
धर्मराजनिमित्तं हि यदि यासि धनंजय॥ ५७॥
के सहायाश्च ते दत्ताः सैन्यं च विविधं कियत्।
दत्तं युधिष्ठिरेणाद्य तन्मे ब्रूहि परंतप॥ ५८॥

तब कुन्तीने अर्जुनको हृदयसे लगाकर पूछा—'धनंजय! यदि तू आज धर्मराजका कार्य सम्पादन करनेके लिये जा रहा है तो युधिष्ठिरने तुझे कौन-कौन-से सहायक प्रदान किये हैं तथा (रथी, घुड़सवार आदि) अनेक प्रकारकी कितनी सेना दी है? परंतप! यह सब मुझे बता'॥ ५७-५८॥

अर्जुन उवाच

कृष्णेन नोदितः कार्ष्णिः स्वपुत्रस्तद्बलं स्वकम्।
समर्पयित्वा प्रोक्तो यो रुक्मिणीनन्दनः स्वयम्॥ ५९॥
रक्षार्थं पुत्र गच्छ त्वं ममादेशाच्च साम्प्रतम्।
धनंजयस्य रक्षार्थं मम प्राणो हि पाण्डवः॥ ६०॥
रक्षितुं तुरगं चैव सम्यक् पालय मां यथा।
पित्रा स्वकीयं सर्वस्वं पुत्रहस्ते प्रदीयते॥ ६१॥
सद्वृत्तो रक्षते वीर असद्वृत्तो न पालयेत्।

अर्जुनने कहा—माँ! श्रीकृष्णने अपनी विशाल सेना समर्पित करके अपने पुत्र प्रद्युम्नको मेरी सहायतामें जानेके लिये आज्ञा दी है और स्वयं उन्होंने ही उन रुक्मिणीनन्दनसे कहा भी है—'बेटा! इस समय तू मेरी आज्ञासे अर्जुनकी सहायताके लिये जा और सब तरहसे उनकी रक्षा कर; क्योंकि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाण्डुपुत्र अर्जुन मेरे प्राणोंके समान हैं। वे घोड़ेकी रक्षामें नियुक्त होकर जा रहे हैं, अतः तू जैसे सब तरहसे मेरी रक्षा करता है, वैसे ही उनकी भी रक्षा करना; क्योंकि पिता अपना सर्वस्व पुत्रके ही हाथमें तो सौंपता है। परंतु वीर! सदाचारी पुत्र ही उसकी रक्षा कर पाता है, खोटे स्वभाववाला नहीं कर सकता' ॥ ५९—६१½ ॥

तथा कर्णसुतं प्राह देवकीनन्दनो हरिः ॥ ६२ ॥
सर्वस्वं पुत्रकं सैन्यं तुरङ्गं वृषभध्वज।
महासैन्यगतं पाहि मयाऽऽदिष्टोऽसि भारत ॥ ६३ ॥

इसी प्रकार देवकीनन्दन श्रीकृष्णने कर्णकुमार वृषकेतुसे भी कहा है—'वृषभध्वज! युद्धके लिये खड़ी हुई विशाल सेनाओंके मध्यमें तू मेरे सर्वस्वरूप अर्जुन, प्रद्युम्न, सेनादल तथा यज्ञिय अश्वकी सर्वथा रक्षा करना। भारत! यही तेरे लिये मेरा आदेश है' ॥ ६२-६३ ॥

अनुशाल्वं सुबलिनं यौवनाश्वं सपुत्रकम्।
मत्साहाय्यार्थमादिश्य ततोऽहं प्रेषितः पृथे ॥ ६४ ॥
त्वया चिन्ता न मे कार्या प्रसन्नः केशवः प्रभुः।

माँ! पुनः उन्होंने महाबली अनुशाल्व तथा पुत्र सुवेग-सहित राजा यौवनाश्वको भी मेरी सहायताके लिये जानेका आदेश देकर तब मुझे अश्वरक्षार्थ यात्रा करनेकी आज्ञा दी है। माँ! आपको मेरी चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि सर्व-समर्थ भगवान् केशव मुझपर प्रसन्न हैं ॥ ६४½ ॥

कुन्त्युवाच

वृषकेतुस्त्वया पाल्यः सर्वयुद्धेषु भारत।
कृतुस्ते सर्वथा शोच्यः समागच्छेश्च तं विना ॥ ६५ ॥

तब कुन्तीने कहा—भारत! सभी जगह युद्धके अवसरोंपर तू वृषकेतुकी रक्षा करना; क्योंकि यदि तू उसे साथ लिये बिना ही लौटकर आयेगा तो तेरा यह अश्वमेध यज्ञ सर्वथा शोचनीय ही रहेगा ॥ ६५ ॥

लब्ध्वा जयं समायाहि पालयित्वा तुरङ्गमम्।
हरिणा भार्यते जन्तुर्हरिणा रक्ष्यते पुनः ॥ ६६ ॥
सर्वदा तं हरिं पार्थ स्मरञ्जयमवाप्स्यसि।
इत्युक्त्वा पुत्रकं कुन्ती सा बाष्पं प्रमुमोच ह ॥ ६७ ॥

(जा, तेरे लिये मेरी यह शुभकामना है कि) तू घोड़ेकी रक्षा करते हुए विजयी होकर लौट। पार्थ! ये श्रीकृष्ण ही जीवोंके संहारक हैं और पुनः ये ही उनके पालक भी हैं। अतः सर्वदा इनका स्मरण करते रहनेपर तुझे अवश्य विजय प्राप्त होगी। अपने पुत्र अर्जुनसे ऐसा कहकर कुन्तीदेवी अपने नेत्रोंसे स्नेहके आँसू बहाने लगीं ॥ ६६-६७ ॥

ततः पार्थो हरिं वीक्ष्य नमस्कृत्य पुनः पुनः।
आरुरोह रथं दिव्यं प्रययौ सैन्यसंवृतः ॥ ६८ ॥

तदनन्तर अर्जुनने श्रीकृष्णका दर्शन करके बारंबार उन्हें नमस्कार किया और फिर वे अपने दिव्य रथपर सवार होकर सेनाके साथ प्रस्थित हुए ॥ ६८ ॥

नानावादित्रनादेन होमधूमेन धूपितः।
रथारूढः कुमारीणां लाजैर्माल्यैः करच्युतैः ॥ ६९ ॥
संछन्नाङ्गो जयाशीर्भिः पौराणां चारुवीक्षितैः।
मध्याह्नसमये कृष्णस्तं मुमोच तुरङ्गमम् ॥ ७० ॥
हयो गतो दक्षिणाशां प्रेरितः कृष्णवीक्षणैः।

उस समय नाना प्रकारके वाद्योंका शब्द हो रहा था। रथपर बैठे हुए अर्जुन हवनके धुएँकी सुगन्धसे सुवासित हो रहे थे। उनके ऊपर कुमारी कन्याओंके हाथसे इतनी खीलें और पुष्पमालाएँ गिरी थीं कि उनका सारा शरीर ढक गया था। पुरवासी अपनी माङ्गलिक दृष्टिसे देखकर उन्हें विजयका आशीर्वाद दे रहे थे। तब अर्जुनने दोपहरके समय भ्रमण करनेके लिये उस यज्ञिय अश्वको खोल दिया। वह अश्व अर्जुनके संकेतानुसार प्रेरित होकर दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़ा ॥ ६९-७०½ ॥

वृषकेतुर्जनान् वृद्धान् प्रणम्य स्वगृहं गतः ॥ ७१ ॥
एकः पत्नीं तदा प्रष्टुं वीक्ष्य वाक्यमुवाच ताम्।

तब वृषकेतु वहाँ उपस्थित समस्त गुरुजनोंका अभिवादन करके अपनी पत्नीसे अनुमति लेनेके लिये अकेला ही अपने घर गया और उससे मिलकर कहने लगा ॥ ७१½ ॥

वृषकेतुरुवाच

एष गच्छामि सुभगे पाण्डवेनान्वितः पुरात् ॥ ७२ ॥
एताः कुन्तीमुखा नार्यः सेवनीयाः प्रयत्नतः।
श्वश्रूणां चैव वृद्धानां सेवनात् परमं फलम् ॥ ७३ ॥

वृषकेतु बोला—सुभगे! आज मैं अर्जुनके साथ नगरसे बाहर जा रहा हूँ। तुम इन कुन्ती आदि बड़ी-बूढ़ी महिलाओंकी प्रयत्नपूर्वक सेवा करना; क्योंकि सासुओं तथा वृद्ध गुरुजनोंकी सेवा करनेसे परम फलकी प्राप्ति होती है ॥ ७२-७३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सतां सम्पूजनादेव लभन्ते परमं स्त्रियः ।
स्मर्त्तव्या वयमप्यत्र भवत्या किल भामिनि ।
यस्मात् स्त्रीणां परो धर्मो भर्तुः स्मरणमेव च ॥ ७४ ॥

भामिनि ! श्रेष्ठ जनोंकी सम्यक् पूजा-सेवा करनेसे स्त्रियाँ परमपदकी भागिनी होती हैं । साथ ही तुम यहाँ हमारा भी स्मरण करती रहना; क्योंकि पतिका स्मरण करना ही स्त्रियोंका परम धर्म है ॥ ७४ ॥

भद्रावत्युवाच

मदीयं मानसं त्यक्त्वा त्वां कदाचिन्न गच्छति ।
त्वदीयं मानसं त्यक्त्वा मां चेद् गच्छति गच्छतु ॥ ७५ ॥

तब भद्रावतीने कहा—प्रियतम ! यदि आपका मन मेरा परित्याग करके अन्यत्र जाना चाहता है तो भले ही चला जाय, परंतु मेरा मन आपको छोड़कर कभी भी परपुरुषकी ओर नहीं जाता ॥ ७५ ॥

त्वं यथा वदसे नाथ तत् करोमि न चान्यथा ।
स्त्रीणां भर्त्ता परो देव इति शास्त्रविनिर्णयः ॥ ७६ ॥

प्राणनाथ ! आप मुझे जैसी आज्ञा दे रहे हैं, मैं वैसा ही करूँगी, उसमें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ने पायेगा; क्योंकि स्त्रियोंके लिये पति ही परम देवता हैं, ऐसा शास्त्रका सिद्धान्त है ॥ ७६ ॥

अर्जुनस्य हयो नाथ रक्षणीयः प्रयत्नतः ।
युद्धं हि सम्मुखं कार्यं विमुखं न कदाचन ॥ ७७ ॥

नाथ ! आप अर्जुनके अश्वकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा कीजियेगा और संग्रामभूमिमें सम्मुख होकर ही युद्ध कीजियेगा, कभी युद्धसे मुख मत मोड़ियेगा ॥ ७७ ॥

सन्ति कृष्णस्य नार्यस्तु मण्डलेऽस्मिन् सुकोविदाः।
सिताननाः भविष्यन्ति मां विलोक्य तव प्रियाम् ॥ ७८ ॥
श्रुत्वा भवन्तं विमुखं कुत्रापि सुमहद्रणात् ।
कथा तच्छक्यते हास्यं श्रोतुं स्त्रीमुखसम्भवम् ॥ ७९ ॥

आजकल इस समाजमण्डलमें श्रीकृष्णकी विदुषी पत्नियाँ पधारी हुई हैं । वे आपको कहीं भी किसी महायुद्धसे विमुख हुआ सुनकर आपकी प्रियतमा पत्नी मेरी ओर देखकर मुसकराने लगेंगी । भला, स्त्रियोंके मुखसे निकले हुए उस उपहासको सुननेके लिये कौन स्त्री समर्थ हो सकती है ? ॥

एतासां प्राणनाथो हि विमुखोऽपि हि सम्मुखः ।
एतत् संचिन्त्य सकलं गम्यतां कार्यसिद्धये ॥ ८० ॥

इन सबके प्राणनाथ श्रीकृष्ण तो (अभी-अभी अनुशाल्वके युद्धसे) विमुख होकर भी सम्मुख ही हैं, अतः स्वामिन् ! इन सब बातोंपर विचार करके आप अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये प्रस्थान कीजिये ॥ ८० ॥

जैमिनिरुवाच

ततः प्रियां कर्णसुतः प्रत्युवाच स्मयन्निव ।
त्रैलोक्यमपि सम्प्राप्तं संग्रामे मम सम्मुखम् ॥ ८१ ॥
पाण्डवार्थे मया भीरु श्रोष्यसे विदलीकृतम् ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तब वृषकेतुने अपनी प्यारी पत्नीको मुसकराते हुए यों उत्तर दिया—'भीरु ! यदि संग्रामभूमिमें मेरे सम्मुख त्रिलोकीके भी वीर उपस्थित हो जायँगे तो भी तुम सुनोगी कि मैंने अर्जुनके कार्यके निमित्त उनका खण्ड-खण्ड कर डाला है ॥ ८१½ ॥

यदि कर्णसुतश्चायं विमुखो जायते रणात् ॥ ८२ ॥
वासुदेवस्य माहात्म्यं विफलं सफलं तदा ।
काश्यां हि मरणान्मोक्षो गयायां पिण्डदानतः ॥ ८३ ॥
विपरीतमिदं भाव्यं माघे वेणीनिमज्जनात् ।

'प्रिये ! यदि यह कर्णका पुत्र युद्धसे विमुख हो जाय तो समझ लेना कि वासुदेवका सफल माहात्म्य निष्फल हो गया तथा काशीमें प्राण त्याग करनेसे, गयामें पिण्डदान देनेसे और माघमासमें त्रिवेणीमें स्नान करनेसे मोक्ष हो जाता है—ऐसा जो शास्त्रका निर्णय है, वह विपरीत फलवाला हो जायगा । (अर्थात् जैसे इन सब बातोंका व्यर्थ होना असम्भव है, उसी तरह मेरा युद्धविमुख होना भी असम्भव है) ॥ ८२-८३½ ॥

प्रियेऽहं यदि संग्रामे भविष्यामि पराङ्मुखः ॥ ८४ ॥
बिम्बाधरं ते वदनं न पश्यामि पुनस्त्वहम् ।

'प्रिये ! यदि मैं रणभूमिमें पहुँचकर युद्धसे विमुख हो जाऊँगा तो बिम्बाफलके सदृश लाल-लाल होठोंवाले तुम्हारे इस मुखको मैं फिर नहीं देखूँगा' ॥ ८४½ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं प्रययौ बहुभिर्वृतः ॥ ८५ ॥
ब्राह्मणांश्च गवां यूथं होमद्रव्यं च याज्ञिकम् ।
पुरस्कृत्य तदा राजन् वृषकेतुर्महाबलः ॥ ८६ ॥
कृष्णभीमादयः सर्वे प्रविष्टास्ते गजाह्वयम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजन्! उस समय इतनी बात कहकर महाबली वृषकेतु ब्राह्मण, गो-समूह, हवन तथा यज्ञकी सामग्रीको (शकुनरूपमें) आगे करके बहुत बड़ी सेनाके साथ प्रस्थित हुआ और श्रीकृष्ण तथा भीमसेन आदि सभी लोग हस्तिनापुरको लौट गये॥

अर्जुनस्य हयो राजन् पुरीं माहिष्मतीं ययौ॥ ८७॥
नीलध्वजेन वीरेण रक्षितां दुर्गमण्डिताम्।
नानाजनपदाकीर्णां नित्योत्सवविलासिनीम्॥ ८८॥
नर्मदाजलपानेन लिङ्गाकारां हि भारत।
मदनः किं शिवाद् भीतः प्रविष्टस्तां विभाति मे॥८९॥
नराणामपि नारीणां वेषैर्दिव्यैर्मनोरमाम्।

राजन्! इधर अर्जुनका वह अश्व घूमता हुआ माहिष्मती-पुरीमें जा पहुँचा। वह नगरी वीरवर राजा नीलध्वजद्वारा सुरक्षित थी, बड़े-बड़े दुर्गोंके कारण उसकी बड़ी शोभा हो रही थी, वह अनेक जनपदोंसे व्याप्त थी तथा नित्य उत्सवों-द्वारा सुशोभित होती रहती थी, नर्मदा नदीका जलपान करने-के कारण (अर्थात् नर्मदा-तटपर स्थित होनेके कारण) वह शिवजीकी मूर्ति-सी प्रतीत होती थी। भारत! मुझे तो ऐसा भान हो रहा था, मानो शिवजीसे भयभीत होकर साक्षात् कामदेव उस नगरीमें प्रविष्ट होकर उसकी शोभा बढ़ा रहा था। नर-नारियोंकी दिव्य वेष-भूषाके कारण भी वह अत्यन्त मनोरम लग रही थी॥ ८७–८९½॥

नीलध्वजस्य पुत्रोऽपि रममाणस्तु कानने॥ ९०॥
स्त्रीसहस्रेण सहितः पुष्पितासु लतासु च।
प्रवीरश्चम्पकस्याधः स्थितस्तत्र वरासने॥ ९१॥

उस नगरीके एक सुन्दर उपवनमें नीलध्वजका पुत्र प्रवीर भी सहस्रों स्त्रियोंके साथ विहार कर रहा था। वह खिली हुई लताओंके मध्य एक चम्पाके वृक्षके नीचे श्रेष्ठ आसनपर विराज-मान था॥ ९०-९१॥

सेव्यमानस्तु नारीभिर्गौरीभिर्जनमेजय।
श्यामाभिर्वरवर्णाभिर्विशालनयनः प्रभुः॥ ९२॥

जनमेजय! उस विशाल नेत्रोंवाले सामर्थ्यशाली राजकुमार-की श्रेष्ठ रूप-रंगवाली स्त्रियाँ सेवा कर रही थीं। उन स्त्रियोंमें कुछ गौरी (रजोधर्मसे पूर्वकी अवस्थावाली) और कुछ श्यामा (षोडशवर्षीया) थीं॥ ९२॥

उवाच वचनं वीरस्तदा मदनमञ्जरीम्।
भूषितां रत्नमालाभिर्विचित्राभिर्विशेषतः॥ ९३॥
गृह्णन्तु नार्यः सकला लताभ्यः सुमनांसि हि।

उस समय उस वीरने अपनी पत्नी मदनमंजरीसे, जो विचित्र ढंगके बने हुए रत्नोंके हारोंसे विशेषरूपसे विभूषित थी, कहा—'प्रिये! ये सभी स्त्रियाँ लताओंसे पुष्पसंचयन करें'॥

ततस्तास्तद्वचः श्रुत्वा रणद्वलयभूषिताः॥ ९४॥
सुस्मितास्तानि माल्यानि जगृहुः कृपयान्विताः।
सहिताः प्राणनाथेन गायन्त्यः सुस्वरं मुदा॥ ९५॥

तब प्रवीरकी बात सुनकर बजते हुए कंकणोंसे सुशोभित वे स्त्रियाँ अपनेको स्वामीकी कृपापात्र मानकर मुसकराती हुई पुष्प चुनने लगीं और अपने प्राणनाथके साथ आनन्दपूर्वक उत्तम स्वरसे गान करने लगीं॥ ९४-९५॥

ततः प्रवीरमहिषी वनमध्ये तुरङ्गमम्।
ददर्श स्वेच्छया प्राप्तं स्थितं मदनमञ्जरी॥ ९६॥

तदनन्तर प्रवीरकी रानी मदनमंजरीने उपवनमें स्वेच्छा-नुसार आकर खड़े हुए उस अश्वको देखा॥ ९६॥

भूषितं रत्नमालाभिर्बद्धपत्रं सुचर्चितम्।
नारीणां कुङ्कुमकरैर्माल्यैश्च विविधैरपि॥ ९७॥
अर्जुनस्य हयं वीक्ष्य प्रवीरं वाक्यमब्रवीत्।

वह अश्व रत्नहारोंसे विभूषित था, उसके मस्तकपर स्वर्णपत्र बँधा हुआ था, स्त्रियोंके कुंकुमसंयुक्त हाथोंके छाप (थापों) द्वारा तथा तरह-तरहकी पुष्पमालाओंसे उसकी विशेष-रूपसे पूजा की गयी थी। अर्जुनके उस यज्ञिय अश्वको देखकर उसने प्रवीरसे कहा॥ ९७½॥

मदनमञ्जर्युवाच

गोक्षीरवर्णं तुरगं नाथ पश्य समागतम्॥ ९८॥
ताम्राधरं रक्तशफं पीतपुच्छं सुकन्धरम्।
कृष्णकर्णं कृष्णनेत्रं मुक्तं कस्य करादमुम्॥ ९९॥
भाले पत्रं सुलिखितं बद्धं वाचय मारिष।
नाथ धारय मद्वाक्यात्तुरङ्गं कुरु मे प्रियम्॥१००॥

मदनमंजरी बोली—प्राणनाथ! यहाँ आये हुए इस घोड़ेको देखिये। इसके शरीरका रंग गोदुग्धकी भाँति उज्ज्वल है, थूथुन ताँबेके-से रंगवाला है, खुर (टाप) लाल-लाल हैं, पूँछ पीली है, गर्दन बड़ी सुन्दर है, इसके कान और नेत्र काले-काले हैं। यह किसी वीरके हाथसे छोड़ा हुआ प्रतीत होता है; क्योंकि आर्य! इसके मस्तकपर सुन्दर अक्षरोंसे खुदा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुआ सुवर्ण-पत्र बँधा हुआ है। स्वामिन्! आप उसे पढ़ लीजिये और मेरे कहनेसे उस घोड़ेको पकड़कर मेरा प्रिय कार्य सम्पादन कीजिये॥ ९८–१००॥

जैमिनिरुवाच

ततः प्रवीरस्तं वीक्ष्य प्रियावाक्येन नोदितः।
हयं जग्राह केशेषु माल्यवत्सु सुहर्षितः॥१०१॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तब प्रियतमा पत्नीके वाक्योंसे प्रेरित होकर प्रवीरने उस घोड़ेकी ओर दृष्टिपात किया और हर्षित होकर पुष्पोंसे गुँथे हुए उसके अयालको पकड़कर घोड़ेको रोक लिया॥ १०१॥

वाचयामास तत् पत्रं धर्मराजेन यत् कृतम्।
युधिष्ठिरस्य तुरगं यज्ञार्थे किल मोचितम्॥१०२॥
रक्ष्यमाणं तु पार्थेन गृह्णन्तु खबलान्नृपाः।
इति ज्ञात्वा प्रवीरोऽथ प्रेरयामास तं हयम्॥१०३॥
स्त्रियः सर्वाः पुरीं धैर्यात् स्थितो युद्धे स्वयं तदा।
सैन्येन महता तत्र तृणीकृत्य धनंजयम्॥१०४॥

फिर युधिष्ठिरने उसके मस्तकपर जो स्वर्णपत्र बाँध रखा था, उसे वह बाँचने लगा। उसमें लिखा था—'राजाओ! युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञके निमित्त यह घोड़ा छोड़ा गया है और अर्जुन उसकी रक्षामें नियुक्त हैं, अतः यदि बल-पौरुष हो तो इसे पकड़ लो।' ऐसा जानकर प्रवीरने उस समय उस घोड़ेको तथा वहाँ आयी हुई सारी स्त्रियोंको तो अपनी पुरीमें भेज दिया और स्वयं अर्जुनको तृण-समान समझकर बहुत बड़ी सेनाके साथ वहाँ युद्धके लिये धैर्यपूर्वक डटकर खड़ा हो गया॥ १०२–१०४॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि माहिष्मतीप्रवेशे तुरगग्रहणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें माहिष्मतीपुरीमें प्रवेश करनेपर घोड़ेका ग्रहणनामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

प्रवीरके साथ वृषकेतु और अनुशाल्वका युद्ध, नीलध्वजका अर्जुनके साथ युद्ध, उनके द्वारा अग्निका बाणरूपमें छोड़ा जाना, अग्निद्वारा अर्जुनकी सेनाका संहार, अर्जुनद्वारा अग्निका स्तवन, जनमेजयके पूछनेपर जैमिनिजीका अग्निके नीलध्वजके जामाता होनेका वृत्तान्त सुनाना, अर्जुनद्वारा नारायणास्त्रका संधान और अग्निका शान्त होकर अपने उद्दीप्त होनेका कारण बताना तथा नगरमें जाकर नीलध्वजको युद्ध बंद करनेके लिये कहना, पत्नीके कहनेसे नीलध्वजका पुनः अर्जुनके साथ युद्ध करना और मूर्च्छित होकर घर लौटना, वहाँ पत्नीको फटकारकर घोड़ा तथा भेंट-सामग्री लेकर अर्जुनसे मिलना और उनके साथ घोड़ेकी रक्षामें जाना, ज्वालाका अपने भाई उल्मुकको अर्जुनको मारनेके लिये उकसाना और उससे ठुकराये जानेपर गङ्गातीरपर जाना, वहाँ गङ्गामें डूबकर बाणरूपमें बभ्रुवाहनके तूणीरमें प्रवेश करना तथा गङ्गाजीद्वारा अर्जुनको शाप

जैमिनिरुवाच

ततः पार्थस्तु सम्प्राप्तो वीक्षमाणस्तुरङ्गमम्।
अनुशाल्वेन सहितो रुक्मिणीनन्दनेन च॥ १॥
यौवनाश्वेन राजेन्द्र कर्णपुत्रेण धीमता।

जैमिनिजी कहते हैं—राजेन्द्र! तदनन्तर अर्जुन अनुशाल्व, प्रद्युम्न, यौवनाश्व तथा बुद्धिमान् वृषकेतुके साथ घोड़ेकी देख-भाल करते हुए वहाँ आ पहुँचे॥ १½॥

सर्वेषामग्रतः प्राप्तो वृषकेतुर्महाबलः॥ २॥
ददर्शाग्रे प्रवीरं हि स्वसैन्यव्यूहसंस्थितम्।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तं गृहीत्वा वरकार्मुकम्॥ ३॥
नीलध्वजस्य पुत्रेण प्रवीरेण महाहयः।
पुरीं प्रवेशितः कोपान्मोचयत्वद्य पाण्डवः॥ ४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनमें सबसे पहले महाबली वृषकेतुने वहाँ पहुँचकर देखा कि प्रवीर अपना श्रेष्ठ धनुष हाथमें लिये हुए अपनी सेनाका व्यूह बनाकर सबसे आगे डटकर खड़ा है और 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहकर ललकार रहा है। वह कहता है कि नीलध्वजके पुत्र मुझ प्रवीरने यज्ञिय अश्वको पकड़कर माहिष्मतीपुरीमें भेज दिया है। अब अर्जुन कोप करके उसे छुड़ा लें ॥ २–४ ॥

प्रवीरं तत्र प्रोवाच कर्णपुत्रः समागतः।
प्रथमं योधय त्वं मां पश्चात् पार्थं धनंजयम् ॥ ५ ॥

तब वहाँ आये हुए कर्णकुमार वृषकेतुने प्रवीरसे कहा—'वीर! तुम पहले मेरे साथ युद्ध कर लो, फिर पीछे पृथापुत्र अर्जुनसे लड़ना' ॥ ५ ॥

प्रवीरः पञ्चभिर्बाणैर्विव्याध वृषभध्वजम्।
चतुर्भिश्चतुरो वाहान् बाणेनैकेन सारथिम् ॥ ६ ॥

यह सुनकर प्रवीरने पाँच बाणोंद्वारा वृषकेतुको, चार बाण मारकर उसके चारों घोड़ोंको और एक बाणसे सारथिको घायल कर दिया ॥ ६ ॥

सप्तभिः कर्णपुत्रस्तं निजघान हसन्निव।
शुकपिच्छनिभानस्य हयान् निन्ये यमक्षयम् ॥ ७ ॥
चतुर्भिः सायकैः कोपात् सिंहनादमथाकरोत्।

तब वृषकेतुने हँसते हुए-से सात बाणोंद्वारा प्रवीरपर प्रहार किया और कुपित होकर तोतेके पंखकी-सी आभावाले उसके घोड़ोंको चार बाण मारकर यमलोकका पथिक बना दिया। तत्पश्चात् वह सिंहकी भाँति दहाड़ने लगा ॥ ७½ ॥

प्रवीरः कर्णिना कर्णे कर्णपुत्रमताडयत् ॥ ८ ॥
तेन बाणेन मूर्च्छां हि वृषकेतू रणे ययौ।

तब प्रवीरने एक कर्णी नामक बाण चलाकर वृषकेतुके कानमें पीड़ा पहुँचायी। उस बाणकी चोट खाकर वृषकेतु रण-भूमिमें मूर्च्छित हो गया ॥ ८½ ॥

बाणेनैकेनानुशाल्वस्तेन विद्धः प्रतापिना ॥ ९ ॥
अनुशाल्वशरैर्घोरैः प्रवीरो नैव दृश्यते।
हाहाकारो महानासीत् तयोर्वीर समागमे ॥ १० ॥

पुनः उस प्रतापी प्रवीरने एक बाणसे अनुशाल्वको बींध दिया। तब अनुशाल्वने इतने भयंकर बाणोंकी वर्षा की कि उससे आच्छादित होकर प्रवीरकी दीखना ही बंद हो गया। वीर! उन दोनोंके युद्धके अवसरपर महान् हाहाकार मच गया ॥ ९-१० ॥

नीलध्वजोऽथ सम्प्राप्तः पावकेन समन्वितः।
अक्षौहिणीभिस्तिसृभिर्वेष्टितः संगरं प्रति ॥ ११ ॥

तदनन्तर तीन अक्षौहिणी सेनाओंसे घिरे हुए राजा नीलध्वज अग्निदेवके साथ वहाँ युद्धस्थलमें आ पहुँचे ॥ ११ ॥

मोचयामास तं पुत्रमनुशाल्ववशं गतम्।
स सर्वान् परिविव्याध दशभिर्दशभिः शरैः ॥ १२ ॥

उन्होंने अनुशाल्वके वशमें पड़े हुए अपने पुत्र प्रवीरको उस भयसे मुक्त किया और सभी विपक्षी वीरोंको दस-दस बाणोंसे बींध दिया ॥ १२ ॥

जैमिनिरुवाच

नीलध्वजो जघानाशु तदद्भुतमिवाभवत्।
तेन विद्धं बलं वीक्ष्य सव्यसाची रुषान्वितः।
नीलध्वजं समासाद्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १३ ॥
जघान पञ्चभिर्बाणै रणे माहिष्मतीपतिम्।
सोऽप्यर्जुनस्य तान् बाणांश्चिच्छेद तरसा हसन् ॥ १४ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! नीलध्वज शीघ्रतापूर्वक सेनाका संहार करने लगे। यह एक अद्भुत-सी बात हुई। उनके द्वारा अपनी सेनाका संहार होता देख सव्यसाची अर्जुन कुपित हो गये और माहिष्मती-नरेश नीलध्वजके समीप जाकर 'खड़े रहो, खड़े रहो' ऐसा कहते हुए उनपर पाँच बाणोंसे वार किया। तब नीलध्वजने हँसते हुए वेगपूर्वक अर्जुनके उन बाणोंको काट गिराया ॥ १३-१४ ॥

छिन्नाञ्छरान् स्वकान् दृष्ट्वा पार्थश्चक्रेऽतिपौरुषम्।
सरथं सध्वजं साश्वं ससूतं सबलं रणे ॥ १५ ॥
अदृश्यं बाणसाहस्रैर्नीलकेतुं तदाकरोत्।
यमदूतं शुभैः स्तोत्रैर्विष्णुरिव भयंकरम् ॥ १६ ॥
करोति वैष्णवः कोपान्मूर्छितं मदगर्वितम्।

अपने बाणोंको कटा हुआ देखकर अर्जुनने अपना प्रबल पुरुषार्थ प्रकट किया। उस समय उन्होंने क्रोधमें भरकर रण-भूमिमें सहस्रों बाणोंकी वर्षा करके रथ, ध्वजा, अश्व, सारथि और सेनासहित मदगर्वित नीलध्वजको मूर्च्छित एवं अदृश्य कर दिया, ठीक उसी तरह जैसे कोई विष्णुभक्त भगवान् विष्णुके माङ्गलिक स्तोत्रोंके पाठद्वारा भयंकर यमदूतको मूर्च्छित एवं अदृश्य कर देता है ॥ १५-१६½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ततो मूर्च्छां विहायाशु पुनरेवोत्थितस्तदा ॥ १७ ॥
नामगर्जितमालोक्य जनं दूतगणो यथा।
जामातरं पावकं हि संदधे कोपपूरितः ॥ १८ ॥

तदनन्तर जैसे (मरणासन्न मनुष्यके पास) भगवन्नामोंकी गर्जना होती देखकर यमदूत उस मनुष्यको त्यागकर पलायन कर जाते हैं, उसी तरह राजा नीलध्वज उस मूर्च्छाका परित्याग करके तुरंत ही उठ खड़े हुए और क्रोधमग्न होकर उन्होंने अपने जामाता अग्निदेवका बाणसमूहमें धनुषपर संधान किया ॥ १७-१८ ॥

नीलध्वजकरान्मुक्तः पावकोऽप्यदहच्चमूम्।
विशालैरर्चिभिर्दग्धाः पलायन्ते महाजनाः ॥ १९ ॥
तुरगा रथिनो राजन् पत्तयः शस्त्रवर्जिताः।
करभाश्च वृषा दग्धा भारं त्यक्त्वा वनं गताः ॥ २० ॥
वार्मीगणाश्च शकटाः पूरिता धनसंचयैः।
चामराणि च दह्यन्ते छत्राणि कवचानि च ॥ २१ ॥

राजन्! नीलध्वजके हाथसे छूटे हुए अग्निदेव अर्जुनकी सेनाको भस्म करने लगे। उनकी विशाल लपटोंसे दग्ध होकर शूरवीर योद्धा भागने लगे, रथियों तथा पैदल सैनिकोंके हाथोंसे शस्त्र छूटकर गिर पड़े, घोड़े, ऊँट और बैल जलने लगे तथा वे अपने बोझेको फेंककर वनको चल दिये, घोड़ियाँ, धनभंडारसे भरे हुए छकड़े, चँवर, छत्र और कवच भी जलने लगे ॥ १९–२१ ॥

मेदोधातुं समासाद्य पुनरेव प्रदीप्यते।
कृष्णवर्त्मा क्षये प्राप्ते भूतानां च यथाभवत् ॥ २२ ॥
तथा पार्थबलं सर्वं समन्ताद् बुभुजे रणे।

उस समय जीवोंकी चर्बीका संयोग पाकर अग्निदेव और अधिक उद्दीप्त होते जा रहे थे। जैसे प्राणियोंके संहारके समय संवर्तक नामक अग्नि प्रकट होती है, उसी तरह वे अग्निदेव युद्धस्थलमें चारों ओरसे अर्जुनकी सेनाको भस्म कर रहे थे ॥ २२½ ॥

ततोऽर्जुनो रणश्लाघी वारुणास्त्रं समादधे ॥ २३ ॥
मुमुचे वह्निनाशाय न शान्तस्तेन पावकः।
अर्जुनः प्रत्युवाचाथ पावकं परिदीपितम् ॥ २४ ॥

तदनन्तर युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले वीर अर्जुनने वारुणास्त्रका संधान किया और उसे अग्निदेवका विनाश करनेके लिये छोड़ दिया; परंतु जब उस वारुणास्त्रसे भी अग्निदेव शान्त नहीं हुए, तब अर्जुनने उन धधकते हुए पावकसे कहा ॥ २३-२४ ॥

अर्जुन उवाच

त्वमेव सर्वदेवानां मुखं तुभ्यं नमोऽग्नये।
त्वत्प्रीतये वाजिमेधं प्रकरोति युधिष्ठिरः ॥ २५ ॥

अर्जुन बोले—अग्निदेव! आप ही समस्त देवताओंके मुख हैं, आपको नमस्कार है। महाराज युधिष्ठिर आपको प्रसन्न करनेके लिये ही अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं ॥ २५ ॥

त्वया दत्तं हि गाण्डीवं रथो दिव्यस्तथैव च।
परमं सौहृदं दिव्यं सर्वदा क्रियते विभो ॥ २६ ॥
बलं हतं हयो नीतस्त्वमतीव प्रदीप्यसे।
किं करोमि भवान् प्रीतिं परित्यज्य प्रवर्तते ॥ २७ ॥

विभो! आपने ही मुझे गाण्डीव धनुष और दिव्य रथ प्रदान किया है तथा सर्वदा मेरे साथ उत्तम एवं दिव्य सौहार्दका व्यवहार करते आये हैं; परंतु आज जब कि मेरी सेनाका संहार हो गया और घोड़ेका भी अपहरण कर लिया गया, फिर भी आप अधिकाधिक उद्दीप्त होते जा रहे हैं। जब आप यों प्रेमभावको तिलाञ्जलि देकर विपरीत व्यवहार करनेपर उतारू हो गये हैं, तब बताइये, मैं क्या करूँ ॥ २६-२७ ॥

जनमेजय उवाच

कथं जामातरं वह्निं लब्धवान् स महीपतिः।
का च कन्या पावकाय दत्ता तेन महात्मना ॥ २८ ॥
एतत् सर्वं समाचक्ष्व मया पृष्टोऽसि जैमिने।
कौतुकं वर्त्ततेऽस्माकं श्रुत्वा पार्थबलं हतम् ॥ २९ ॥

यह सुनकर जनमेजयने पूछा—जैमिने! राजा नीलध्वजने अग्निदेवको अपने जामाताके रूपमें कैसे उपलब्ध किया? उन महात्मा भूपालने अपनी कौन-सी कन्या उन्हें समर्पित की थी? महर्षे! मैंने आपसे जो कुछ पूछा है, वह सब मुझे बताइये; क्योंकि अर्जुनकी सेनाका अग्निद्वारा संहार हुआ सुनकर इन बातोंको जाननेके लिये मुझे बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥ २८-२९ ॥

जैमिनिरुवाच

नीलध्वजस्य महिषी ज्वाला नाम्नी सुमध्यमा।
स्वाहां कन्यां प्रसूता सा सुन्दरीं धर्मतत्पराम् ॥ ३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वलक्षणसम्पन्नां कुमारीं लोकसुन्दरीम्।
वर्धमानां पितृगृहे सुन्दरीं बन्धुपूजिताम् ॥ ३१ ॥
अतीवरूपसम्पन्नां त्रैलोक्यस्यापि मोहिनीम्।
नीलध्वजस्तु तां वीक्ष्य कालेन कियता सुताम्॥ ३२ ॥
कस्मै प्रदेया कन्येयमिति चिन्तापरोऽभवत्।
पप्रच्छ तां चारुनेत्रां भर्ता कस्तव रोचते ॥ ३३ ॥

जैमिनिजीने कहा—राजन्! नीलध्वजकी एक रानीका नाम ज्वाला था। उसने एक कन्याको जन्म दिया, जिसका नाम स्वाहा था। वह कन्या परम सुन्दरी तथा धर्मपरायणा थी, सारे शुभलक्षणोंसे सम्पन्न तथा संसारमें अद्वितीय सुन्दरी थी, बन्धु-बान्धवोंद्वारा सत्कृत होकर पिताके घरमें बढ़ रही थी, अत्यन्त रूपवती होनेके कारण त्रिलोकीको भी मोहमें डालनेवाली थी। कुछ समयके बाद अपनी उस परम सुन्दरी कुमारी कन्याको (विवाहके योग्य) देखकर नीलध्वज इस चिन्तामें पड़ गये कि यह कन्या किसके हाथमें समर्पित की जाय? तब उन्होंने उस सुन्दर नेत्रवाली कन्यासे पूछा—'पुत्री! तुझे किसको अपना पति बनाना अच्छा लगता है?' ॥ ३०–३३ ॥

राजानो राजपुत्राश्च सन्ति पुत्रि सहस्रशः।
पट्टस्थान् पश्य वीरांस्तांस्ततो ब्रूहि स्ववल्लभम्॥ ३४॥

'बेटी! जगत्में सहस्रों राजा तथा राजकुमार हैं। यहाँ चित्रपटोंमें विराजमान इन वीरोंकी ओर दृष्टिपात कर ले, फिर तुझे जो प्रिय लगे, उसे बता' ॥ ३४ ॥

स्वाहा तं प्रत्युवाचाथ पितरं लज्जिता सती।

यह सुनकर स्वाहा लज्जित हो गयी और फिर पितासे बोली ॥ ३४½ ॥

स्वाहोवाच

न मानुषं कामयेऽहं लोलुपं मोहवेष्टितम् ॥ ३५ ॥
देववर्यं वरं तात मम योग्यं विचिन्तय।

स्वाहाने कहा—तात! मैं मनुष्यको अपना पति बनाना नहीं चाहती; क्योंकि वह लोलुप तथा मोहग्रस्त होता है, अतः देवताओंमेंसे किसी श्रेष्ठ देवताको मेरे योग्य वर बनानेका विचार कीजिये ॥ ३५½ ॥

नीलध्वज उवाच

देवराजं महाबाहुं वरं वरय शोभने ॥ ३६ ॥
आगमिष्यति लोकेऽस्मिन् मानुषीकामुकः स्वयम्।
मत्ते गजे समारूढः शक्रः सोऽनन्तलोचनः ॥ ३७ ॥

नीलध्वजने कहा—शोभने! तू देवताओंके राजा महाबाहु इन्द्रका पतिरूपमें वरण कर ले। वे बहुत-से नेत्रोंवाले इन्द्र मतवाले गजराज ऐरावतपर सवार होकर स्वयं ही इस लोकमें आयेंगे; क्योंकि वे मानुषी स्त्रियोंके कामुक हैं ॥ ३६-३७ ॥

पितुर्वाक्यं समाकर्ण्य स्वाहा वचनमब्रवीत्।

पिताकी बात सुनकर स्वाहा इस प्रकार कहने लगी ॥ ३७½ ॥

स्वाहोवाच

इन्द्रं न कामये तात सर्वदोषस्य कारणम् ॥ ३८ ॥
परोदयं न सहते तपसा दानकारितम्।
देवराजो गौतमस्य प्रियां कामयते यदि ॥ ३९ ॥
अनुजः केशवो येन कृतः का तं हि कामयेत्।
लघीयांसं जगन्नाथं विष्णुं चक्रेऽतिमोहितः ॥ ४० ॥
पदं यस्मान्महत् प्राप्तं कृतघ्नः किल वासवः।

स्वाहा बोली—तात! मुझे इन्द्रकी कामना नहीं है; क्योंकि वे सारे दोषोंके कारण हैं। तपस्या तथा दानके फलस्वरूप प्राप्त हुई दूसरेकी उन्नतिको नहीं सह पाते। इन्हीं देवराजने गौतमकी प्रियतमा पत्नी अहल्याकी कामना की थी। इन्द्र तो निश्चय ही बड़े कृतघ्न हैं; क्योंकि जिनकी कृपासे इन्हें इतने बड़े देवेन्द्रपदकी प्राप्ति हुई, उन्हीं जगदीश्वर भगवान् विष्णुको इन्होंने अपनेसे छोटा बना दिया। जिन्होंने श्रीकृष्णको (उपेन्द्ररूपसे) अपना अनुज बनाया, ऐसे इन्द्रको कौन स्त्री अपना पति बनाना चाहेगी? ॥ ३८–४०½ ॥

मानुषा ये मया त्यक्तास्तत्र मे कारणं शृणु ॥ ४१ ॥
स्त्रीणां शरीरं समलं प्रथमं तात जायते।
एकं नरं पतिं प्राप्य द्वितीयं कुरुतेऽत्र या।
सा याति नरकं घोरं शीलभङ्गान्मया श्रुतम् ॥ ४२ ॥

अब जिस कारणसे मैंने मनुष्योंको पति बनानेसे इनकार कर दिया है, उसको बताती हूँ, सुनिये। तात! स्त्रियोंका शरीर तो पहलेसे ही मलिन होता है, उसपर भी जो स्त्री संसारमें एक पतिको पाकर पुनः दूसरे पुरुषको पति बना लेती है, वह शील-भंगरूप दोषके कारण घोर नरकमें पड़ती है—ऐसा मैंने सुन रखा है ॥ ४१-४२ ॥

CC0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मृते भर्त्तरि गात्रस्य स्पर्शं पश्चात् करोति यः ।
स पावको देवमुखं भर्ता मे तात रोचते ॥ ४३ ॥

तात ! पतिकी मृत्युके पश्चात् जो स्त्रियोंके शरीरका स्पर्श करते हैं तथा देवोंके मुखस्वरूप हैं, उन अग्निदेवको ही अपना पति बनाना मुझे पसंद आ रहा है ॥ ४३ ॥

नान्यं देवं नासुरं वा किन्नरं वा महोरगम् ।
वरयामि वरं लोके विना तं हव्यवाहनम् ॥ ४४ ॥

मैं संसारमें उन हव्यवाहनके अतिरिक्त अन्य किसी देवता, असुर, किन्नर अथवा नागको पतिरूपमें वरण नहीं करूँगी ॥ ४४ ॥

यद्यायाति स्वयं वह्निरर्थयिष्यति मामिह ।
तन्मां तात महाबुद्धे तस्मै त्वं दातुमर्हसि ॥ ४५ ॥

महाबुद्धिमान् पिताजी ! यदि अग्निदेव स्वयं यहाँ आकर मेरे लिये आपसे याचना करें तो आपको मुझे उनके हाथमें समर्पित कर देना चाहिये ॥ ४५ ॥

जैमिनिरुवाच

एवंविधं वचः श्रुत्वा स्वाहाप्रोक्तं सुभाषितम् ।
नीलध्वजस्तदा हृष्टो विस्मितोऽभून्महाबलः ॥ ४६ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! उस समय स्वाहा-द्वारा कहे गये ऐसे सुन्दर वचनोंको सुनकर महाबली नीलध्वज हर्षित एवं आश्चर्यचकित हो गये ॥ ४६ ॥

प्रहसन्त्यः स्त्रियो राजन् पुरुषं वाक्यमब्रुवन् ।
किमिदं भाषसे बाले विपरीतं नृपं प्रति ॥ ४७ ॥

राजन् ! तब वहाँकी उपस्थित नारियाँ हँसती हुई स्वाहासे कठोर बातें कहने लगीं—'अरी बाले ! तू राजासे यह कैसी विपरीत बात कह रही है ? ॥ ४७ ॥

वह्निं वरं कथं ब्रूषे दाहकं सर्वभक्षकम् ।
तथा हि कृष्णवर्त्मानं मेषवाहनमातुरम् ॥ ४८ ॥
सप्तजिह्वं धूम्रमुखं हा कष्टं संस्थितं त्विदम् ।
स्त्रीणां चित्तं कुरूपे हि याति मन्दजने तथा ॥ ४९ ॥
उच्चानीचं गता गङ्गा पावनी या जगत्त्रये ।

'जो सबको जलानेवाले तथा सर्वभक्षी हैं, जो कृष्णवर्त्मा कहलाते हैं, मेष जिनका वाहन है, जो सदा आतुर रहते हैं, जिनके सात जिह्वाएँ हैं और धुआँ ही जिनका मुख है, ऐसे अग्निको तू कैसे पति बनानेके लिये कहती है ? हा ! यह तो बड़े कष्टकी बात उपस्थित हुई । परंतु ठीक है स्त्रियोंका मन कुरूप एवं मन्द पुरुषोंपर अधिक आसक्त होता है। देखो न, जो गङ्गाजी तीनों लोकोंमें परम पावनी विख्यात हैं, वे भी जब ऊँचे (स्वर्ग) से नीचे (मृत्युलोकमें) चली आयीं (तब औरोंकी क्या बात है)' ॥ ४८-४९½ ॥

स्वाहा तासां समाकर्ण्य वचनानि त्वरान्विता ॥ ५० ॥
स्नाता सा शुभ्रवसना स्थापयित्वा हुताशनम् ।
ब्राह्मणैः सहिता नित्यं ध्यायन्त्युपवने स्थिता ॥ ५१ ॥

उन स्त्रियोंका कथन सुनकर स्वाहाने तुरंत ही स्नान करके निर्मल वस्त्र धारण किया और ब्राह्मणोंके साथ उपवनमें जाकर अग्निदेवकी स्थापना करके निरन्तर उन्हींका ध्यान करती हुई बैठ गयी ॥ ५०-५१ ॥

अगुरुं चन्दनं विप्रा घृतं रम्यं च पायसम् ।
शर्करामिक्षुखण्डांश्च क्षौद्रं द्राक्षास्तथा तिलान् ।५२।
कर्पूरं वरताम्बूलं लवङ्गं जातिजं फलम् ।
रम्भाफलानि जुहुवुस्तथा वह्नौ प्रणोदिताः ॥ ५३ ॥

तदनन्तर स्वाहाकी प्रेरणासे ब्राह्मणलोग उस प्रज्वलित अग्निमें अगुरु, चन्दन, घृत, सुन्दर खीर, खाँड, इक्षुखण्ड (गड़ेरी), मधु, दाख, तिल, कपूर, उत्तम ताम्बूल, लौंग, जायफल और केलेके फलोंकी आहुतियाँ देने लगे ॥५२-५३॥

मुक्तामालां गृह्य बाला रणद्वलयनूपुरा ।
सखीपरिवृता स्वाहा शुश्रूषन्ती हुताशनम् ॥ ५४ ॥

उस समय जिसके हाथोंमें कंकण और पैरोंमें पायजेब बज रहे थे, ऐसी कुमारी स्वाहा सखियोंसे घिरी हुई हाथमें मोतियोंकी माला लेकर अग्निदेवकी उपासना करने लगी ॥ ५४ ॥

ततः कालेन महता नारदेन प्रबोधितः ।
पावको विप्ररूपेण प्राप्तो नीलध्वजं प्रति ॥ ५५ ॥

तदनन्तर बहुत समय व्यतीत हो जानेपर जब नारदजीने अग्निदेवको इस घटनाकी सूचना दी, तब वे ब्राह्मण-वेषमें राजा नीलध्वजके पास आये ॥ ५५ ॥

विप्रं पूजितमेवादौ दत्त्वार्घ्यं स्वासने स्थितम् ।
पप्रच्छ सादरं राजन् कुतः प्राप्तोऽसि वै मुने ॥ ५६ ॥
आदेशो दीयतां मह्यं किमाज्ञप्तः करोम्यहम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजन्! तब राजाने पहले अर्घ्य आदि प्रदान कर उन ब्राह्मण देवताकी पूजा की और फिर अपने आसनपर बैठाया। तत्पश्चात् आदरपूर्वक पूछा—'मुने! कहाँसे आपका आगमन हो रहा है? मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' ॥ ५६½ ॥

विप्र उवाच

कन्यार्थिनं विद्धि राजन् विप्रं शाण्डिल्यगोत्रजम् ५७
त्वद्गृहे विद्यते बाला मह्यं तां देहि कन्यकाम्।

तब ब्राह्मणदेव बोले—राजन्! तुम्हें विदित होना चाहिये कि मैं शाण्डिल्य-गोत्रमें उत्पन्न एक ब्राह्मण हूँ और कन्याकी इच्छासे यहाँ आया हूँ। तुम्हारे घरमें कुमारी कन्या वर्तमान है, अतः तुम मुझे उस कन्याको (पत्नीरूपमें) प्रदान कर दो ॥ ५७½ ॥

राजोवाच

न मानुषं वरयते पावके सस्पृहा सुता ॥५८॥
अन्यां कन्यां प्रयच्छामि यदि ते रोचते द्विज।

राजाने कहा—ब्रह्मन्! मेरी वह कन्या किसी मनुष्यको वरण करना नहीं चाहती, उसकी अभिलाषा है कि अग्निदेव मेरे पति हों; अतः यदि आपको रुचे तो मैं कोई दूसरी कन्या आपके लिये प्रदान करूँ ॥ ५८½ ॥

विप्र उवाच

मां विद्धि पावकं राजन् विप्रवेषेण संस्थितम् ॥५९॥
स्वाहासत्येन गुरुणा संतुष्टं कामपूरितम्।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! विप्रवेषमें उपस्थित हुए मुझे आप अग्नि ही समझिये। स्वाहाने अपने महान् सत्यव्रतके द्वारा मुझे संतुष्ट कर लिया है, अतः मेरा मन भी उसकी कामनासे परिपूर्ण हो रहा है ॥ ५९½ ॥

जैमिनिरुवाच

एतत् तस्य वचः श्रुत्वा सस्मेरवदनो जनः ॥ ६० ॥
प्रत्युवाचाथ नृपतिं तत्रस्थं विस्मितोऽपि सन्।
कन्यानिमित्तं विप्रोऽसौ जायते यदि पावकः ॥ ६१ ॥
विना पावकनाथेन स्वाहा देया न कस्यचित्।
सचिवः किं न जानाति विप्रं सम्यक् परीक्षितुम् ॥ ६२ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! ब्राह्मणकी यह बात सुनकर लोगोंके मुखपर मुसकराहट आ गयी। वे आश्चर्यचकित होकर वहाँ बैठे हुए राजा नीलध्वजसे कहने लगे—'महाराज! यदि सचमुच अग्निदेव ही कन्याके लिये ब्राह्मणका वेष धारण करके आये हैं तो ये अपने असली रूपमें प्रकट हों; क्योंकि अग्निदेवके अतिरिक्त किसी दूसरेके हाथमें स्वाहाको सौंपना उचित नहीं है। क्या मन्त्रीजी इन ब्राह्मण देवताकी भलीभाँति परीक्षा करना नहीं जानते?' ॥६०–६२॥

प्रधान उवाच

न जानीमो वयं सर्वे भवन्तं पावकं स्थितम्।
आत्मानं दर्शय विभो रम्यं पावकरूपिणम् ॥ ६३ ॥

तब प्रधान मन्त्रीने कहा—ब्रह्मन्! हमलोग यह नहीं समझ पा रहे हैं कि हमारे समक्ष खड़े हुए आप अग्निदेव ही हैं, अतः विभो! आप अपने रमणीय पावक रूपको यहाँ प्रकट कीजिये ॥ ६३ ॥

ततो विप्रमुखादग्निर्ज्वालामाली विनिर्गतः।
कूर्चं हि सचिवस्यापि ददाह कुपितस्तदा ॥ ६४ ॥

तदनन्तर ज्वालाओंकी माला धारण किये हुए अग्निदेव उस ब्राह्मणके मुखसे बाहर निकल पड़े और क्रुद्ध होकर उन्होंने उस समय उस प्रधानकी दाढ़ीको भी जला दिया ॥ ६४ ॥

प्रधाने दह्यमाने च सर्वे लोकाश्चकम्पिरे।
राजा तं शमयामास वह्निसूक्तेन तत्क्षणात् ॥ ६५ ॥

जब प्रधानजीकी दाढ़ी जलने लगी, तब सभी लोग भयसे काँप उठे। तब राजा नीलध्वजने तत्काल ही अग्निसूक्तका पाठ करके उन अग्निदेवको शान्त किया ॥ ६५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन् विनोदः सुमहानभूत्।
मातृष्वसाथ कन्याया राजानं वाक्यमब्रवीत् ॥ ६६ ॥
न दातव्या त्वया कन्या ब्राह्मणाय कथंचन।
इन्द्रजालिकवद् वह्निं दर्शयत्येव भूसुरः ॥ ६७ ॥

राजन्! इसी बीचमें एक और अत्यन्त विनोदकी बात घटित हुई। (वह यह है कि) उस कन्या (स्वाहा) की मौसीने राजा नीलध्वजसे यों कहा—'राजन्! आपको किसी प्रकार भी इन ब्राह्मणको कन्या नहीं देनी चाहिये; क्योंकि यह ब्राह्मण इन्द्रजाल करनेवाले (जादूगर) की भाँति ही अग्निको प्रकट करके दिखा रहा है ॥ ६६-६७ ॥

राजा तां प्रत्युवाचाथ श्यालिकां प्रहसन्निव।
स्वगृहं नय भद्रं ते मम जामातरं शुभे ॥ ६८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परीक्षय विशालाक्षि विप्रो वा पावकोऽपि वा ।

तब राजा हँसते हुए अपनी उस सालीसे बोले—'शुभे ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम मेरे इन जामाताको अपने घर ले जाओ और विशाललोचने ! वहाँ इस बातकी परीक्षा कर लो कि ये कोई साधारण ब्राह्मण हैं अथवा स्वयं अग्निदेव ही हैं' ॥ ६८½ ॥

ततो गृहं गता देवी ब्राह्मणेन समन्विता ॥ ६९ ॥
प्रत्युवाच परीक्षां मे देहि विप्र सनातनीम् ।

तब वह देवी (राजाकी साली) उन ब्राह्मणदेवको साथ लेकर अपने घर गयी और वहाँ उनसे बोली—'विप्र ! आप मुझे अपनी सनातनी परीक्षा दीजिये' ॥ ६९½ ॥

अग्निर्ददाह कुपितो मन्दिरं वरचित्रितम् ॥ ७० ॥
तस्याश्च गोपुरं रम्यं वासो रत्नविचित्रितम् ।
तिष्ठ तिष्ठेति वचनं जगाद च धनंजयः ॥ ७१ ॥

यह सुनकर अग्निदेव क्रुद्ध हो गये और उसके उत्तम शिल्प-कर्मसे सुशोभित महलको जलाने लगे । उन धनंजय नामक अग्निदेवने उसके रमणीय गोपुर (फाटक) और रत्नजटित वस्त्रको जलाकर उससे कहा—'अरी ! खड़ी रह, खड़ी रह' ॥ ७०-७१ ॥

प्रच्छादनं च तस्याश्च पट्टवस्त्रं सुशोभनम् ।
दह्यमानं परित्यज्य नग्ना सा प्राद्रवद् भृशम् ॥ ७२ ॥

जब उसका सुन्दर रेशमी दुपट्टा जलने लगा, तब वह उसे फेंककर नग्न-अवस्थामें ही बड़े वेगसे भाग चली ॥७२॥

कोलाहलश्च तत्रैव संजातो हि नरेश्वर ।
दुद्रुवुश्च जनाः सर्वे तत्र वह्निभयार्दिताः ॥ ७३ ॥

नरेश्वर ! उस समय वहाँ बड़ा कुहराम मच गया और सभी लोग अग्निके भयसे पीडित होकर भागने लगे ॥ ७३ ॥

सा प्राप्ता राजभवनं रुदन्ती सुस्वरं तदा ।
नृप वारय तं वह्निं ज्वालयन्तं गृहान्मम ॥ ७४ ॥

तत्पश्चात् वह उच्च स्वरसे विलाप करती हुई राजा नीलध्वजके महलमें पहुँचकर उनसे कहने लगी—'राजन् ! मेरे घरोंको जलाते हुए इन अग्निदेवका आप निवारण कीजिये' ॥ ७४ ॥

राजोवाच

परीक्षितस्त्वया भद्रे कालेनाल्पेन पावकः ।
क्षणं प्रतीक्ष विप्रस्य परीक्षा लभ्यते यथा ॥ ७५ ॥

राजा नीलध्वजने कहा—भद्रे ! अभी तो तूने बहुत थोड़े समयमें ही अग्निकी परीक्षा की है, क्षणभर और प्रतीक्षा कर ले, जिससे इन ब्राह्मणदेवकी पूरी परीक्षा हो जाय ॥७५॥

श्यालिकोवाच

त्वया साधु कृतं राजञ्जामाता तव तिष्ठतु ।
एतस्मिन्नन्तरे राजा समाहूय विभावसुम् ॥ ७६ ॥
समयं वह्निना चक्रे न गन्तव्यं हि मत्पुरात् ।
ततः कन्यां प्रदास्यामि यदि ते रोचते विभो ॥ ७७ ॥
आगमिष्यन्ति ये राष्ट्रे मदीये ते त्वया रणे ।
दाहनीयाः शत्रवस्तु मयाऽऽज्ञप्तेन पावक ॥ ७८ ॥

सालीने कहा—राजन् ! आपने बड़ा सुन्दर कार्य किया है । ये आपके जामाता होकर रहें (इसमें कोई आपत्ति नहीं है) । इसी अवसरपर राजाने अग्निको बुलाकर उनके सामने यह शर्त रखी—'पावक ! आपको मेरे नगरसे बाहर नहीं जाना होगा तथा जो शत्रु मेरे देशपर चढ़ आयेंगे, उन्हें मेरी आज्ञासे आपको रणभूमिमें भस्म कर देना पड़ेगा। विभो ! यदि आपको यह शर्त रुचती हो तभी मैं अपनी कन्या आपको प्रदान करूँगा' ॥ ७६–७८ ॥

ततः प्रधानो नृपतिं प्राह किं क्रियते त्वया ।
गृहे जामातरं वह्निं सर्वदा परिरक्षसि ॥ ७९ ॥
स्वाहां गृहीत्वा व्रजतु यथास्थानं नराधिप ।

तदनन्तर प्रधानजीने राजासे कहा—'महाराज ! यह आप क्या कर रहे हैं ? क्या अग्निको जामाता बनाकर सदा उन्हें अपने घरमें ही रखना चाहते हैं ? नरेश्वर ! ये अग्निदेव स्वाहाको साथ लेकर अपने अभिलषित स्थानको चले जायँ (यही उचित है)' ॥ ७९½ ॥

प्रधानवचनं श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत् ॥ ८० ॥
यावन्न गृहजामाता जायते मम पावकः ।
तावदेव महत् तेजो दृश्यतेऽस्य न संशयः ॥ ८१ ॥

मन्त्रीकी बात सुनकर राजाने यों उत्तर दिया—'प्रधानजी ! जबतक ये अग्निदेव मेरे घरके जामाता नहीं बन जाते हैं, तभीतक इनका यह महान् तेज दीख रहा है, इसमें संशय नहीं है ॥ ८०-८१ ॥

जामातरि गृहे जाते क्षीणतेजा भविष्यति ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथापि पुररक्षार्थं संश्रयामि धनंजयम् ॥ ८२ ॥
प्रदत्तास्मै मया कन्या स्वाहा सचिव साम्प्रतम् ।

'प्रधानजी ! जब ये मेरे घरके जामाता बन जायँगे, तब इनका तेज क्षीण हो जायगा । तो भी अपने नगरकी रक्षाके लिये मैं इन धनंजय नामक अग्निका आश्रय ग्रहण करूँगा । अब मैं अपनी कन्या स्वाहाका इन्हें दान कर चुका' ॥ ८२½ ॥

जैमिनिरुवाच

ततो ददौ निजां कन्यां सुलग्ने सोऽग्नये तदा ॥ ८३ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर उसी समय उत्तम लग्नमें राजाने अपनी कन्या अग्निदेवको समर्पित कर दी ॥ ८३ ॥

जाते पाणिग्रहे वह्निः स्थितो राजगृहे सुखम् ।
तं वह्निं संदधे राजा स्वजामातरमाहवे ॥ ८४ ॥

स्वाहाका पाणिग्रहण हो जानेपर अग्निदेव सुखपूर्वक राजमहलमें निवास करने लगे । उन्हीं जामाता अग्निदेवका राजाने युद्धस्थलमें धनुषपर संधान किया था ॥ ८४ ॥

कारणं कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं जनाधिप ।
जनमेजय महाबुद्धे शृणु चाग्रे कथानकम् ॥ ८५ ॥

जनेश्वर ! तुमने जो मुझसे पूछा था, वह सब कारण मैंने बतला दिया । महाबुद्धिमान् जनमेजय ! अब आगेकी कथा सुनो ॥ ८५ ॥

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा पुनर्वह्निः प्रदीपितः ।
चिन्तयामास पार्थोऽपि तदा नारायणास्त्रकम् ॥ ८६ ॥

जब अर्जुनके वचन सुनकर अग्निदेव पुनः प्रज्वलित हो उठे, तब अर्जुनने भी नारायणास्त्रका स्मरण किया ॥ ८६ ॥

ततो नारायणास्त्रं तत् संधितं वीक्ष्य पावकः ।
शान्तिं जगाम पार्थस्य पुरतः स्थितवानसौ ॥ ८७ ॥

तत्पश्चात् उस नारायणास्त्रका धनुषपर संधान हुआ देख अग्निदेव शान्त हो गये और अर्जुनके आगे आकर खड़े हो गये ॥ ८७ ॥

उवाच तत्र बीभत्सुं स्वकीयं कारणं च तत् ।
दण्डस्तु पातितः पार्थ तवोपरि मयाधुना ॥ ८८ ॥

उस समय वे अर्जुनसे अपने आक्रमणका कारण बताते लगे—'पार्थ ! इस समय मैंने तुम्हारी सेनापर जो दण्ड प्रहार किया है (उसका एक कारण है) ॥ ८८ ॥

अश्वमेधेन नृपतिं करोषि यदि पावनम् ।
समीपे पुण्डरीकाक्षे स्थिते तव धनंजय ॥ ८९ ॥
न यागो नैव देवा वा मन्त्रास्ते हरिणा विना ।
समर्थाः पावनं कर्तुं विश्वासस्ते न माधवे ॥ ९० ॥

'धनंजय ! यदि तुम कमलनयन श्रीकृष्णके समीप उपस्थित रहनेपर भी अश्वमेध यज्ञद्वारा राजा युधिष्ठिरको पवित्र करना चाहते हो तो उन श्रीहरिके बिना यज्ञ, देवता अथवा मन्त्र—कोई भी उन्हें पवित्र करनेमें समर्थ नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारा श्रीकृष्णपर विश्वास नहीं है ॥

क्षीरार्णवं भवान् प्राप्य किमजां दोग्धुमिच्छति ।
परित्यज्योदितं सूर्यं खद्योतं काङ्क्षते कथम् ॥ ९१ ॥

'तुम क्षीरसागरको पाकर भी दूधके लिये बकरी क्यों दुहना चाहते हो तथा उदित हुए सूर्यका परित्याग करके प्रकाशके लिये जुगनूकी आकाङ्क्षा कैसे कर रहे हो ? ॥ ९१ ॥

सख्यासि मम वीर त्वं न कृतघ्नोऽस्मि तेऽर्जुन ।
सैन्यं मया समासाद्य त्वदीयं पातितं रणे ॥ ९२ ॥
नारायणास्त्रं प्रथमं संधत्से यदि पाण्डव ।
न ते सैन्यं मया ग्रस्तं जायतेऽत्र कथंचन ॥ ९३ ॥
संसारतापहीनास्ते ये स्मरन्ति जनार्दनम् ।
तस्मात् तव बलं सर्वं पुनस्तिष्ठतु दर्शितम् ॥ ९४ ॥

'वीर ! तुम मेरे मित्र हो । अर्जुन ! मैं तुम्हारे प्रति कृतघ्न नहीं हूँ । संग्राममें जो मैंने तुम्हारी सेनासे टक्कर लेकर उसे भस्म कर डाला है । (इसमें तो तुम्हारी भूल ही कारण है; क्योंकि) पाण्डुनन्दन ! यदि तुमने नारायणास्त्रका संधान पहले ही कर लिया होता तो तुम्हारी सेना युद्धमें किसी प्रकार मेरेद्वारा ग्रस्त नहीं होती; क्योंकि जो जनार्दनका स्मरण करते हैं, वे संसारके तापसे मुक्त हो जाते हैं (फिर मेरे तापसे छूटना कौन बड़ी बात है ?); इसलिये तुम्हारी नष्ट हुई सारी सेना पुनः उठ खड़ी हो ॥ ९२-९४ ॥

प्रयुज्य मां गतो राजा स्वगृहं तन्निबोधये ।
यथाऽऽनयेत् स तुरगं सम्बद्धं मन्दुरोदरे ॥ ९५ ॥

'राजा नीलध्वज मुझे यहाँ नियुक्त करके अपने घर चला गया है, अतः मैं जाकर उसे इस प्रकार समझाऊँगा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिससे वह घुड़सालमें सुरक्षितरूपसे बँधे हुए घोड़ेको यहाँ ले आवे' ॥ ९५ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं क्षमयित्वा धनंजयम्।
नीलध्वजसमीपेऽग्निर्गत्वा संस्थितवानयम् ॥ ९६ ॥

इतनी बात कहकर और अर्जुनको क्षमा प्रदान करके अग्निदेव नीलध्वजके समीप जाकर उनके सम्मुख खड़े हो गये ॥ ९६ ॥

समागतं वीक्ष्य हुताशनं तं
प्रोवाच राजा मदगर्वितोऽसौ।
दग्धं बलं तस्य धनंजयस्य
त्वया विभो साधु कृतं रणेऽद्य ॥ ९७ ॥

अग्निदेवको आया हुआ देखकर मदके गर्वसे भरे हुए राजा नीलध्वजने उनसे कहा—'विभो ! आज आपने युद्ध-स्थलमें जो उस अर्जुनकी सेनाको जलाकर भस्म कर दिया है, यह आपने बड़ा उत्तम काम किया है ॥ ९७ ॥

न वेत्ति पार्थो मम बाहुवीर्यं
बलात् तुरङ्गं किमसौ विनेता।
जामातरं चापि भवन्तमीड्यं
विजित्य वै यास्यति मन्दबुद्धिः ॥ ९८ ॥

'बलपूर्वक घोड़ेको ले जानेकी चेष्टा करनेवाला अर्जुन मेरे बाहुबलको नहीं जानता है। क्या वह मन्दबुद्धि स्तुति करने योग्य मेरे जामाता आपको परास्त करके वापस जा सकेगा ?' ॥ ९८ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं नृपस्य वचनं निशम्योर्जितमाहवात्।
प्रत्युवाच हसन् वह्निस्तं हर्षात् प्रत्यषेधयत् ॥ ९९ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! नीलध्वजका ऐसा ओजस्वी वचन सुनकर अग्निदेवने हर्षपूर्वक उन्हें युद्ध करनेसे रोक दिया और मुसकराकर कहने लगे—॥ ९९ ॥

केनास्य शक्यते सैन्यं दग्धुं च परिपातितुम्।
सर्वपापहरो देवो यस्य चेतसि तिष्ठति ॥ १०० ॥

'राजन् ! जिनके हृदयमें सर्वपापापहारी भगवान् श्रीकृष्ण सदा विराजमान रहते हैं, उन अर्जुनकी सेनाको जलाने तथा धराशायी करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥ १०० ॥

उत्तिष्ठ नरशार्दूल परिशाम्य पाण्डवम्।
दीयतामस्य तुरगो यथा भद्रं भवेत् तव ॥ १०१ ॥

'अतः पुरुषसिंह ! उठो और पाण्डुनन्दन अर्जुनको सब तरहसे शान्त करो। उनका यज्ञिय अश्व वापस कर दो, जिससे तुम्हारा कल्याण हो ॥ १०१ ॥

कोऽहं धनंजयस्याग्रे हरिमित्रस्य धन्विनः।
खाण्डवं पूरितं बाणैर्यस्य वज्रपतेर्वनम् ॥ १०२ ॥
गृहजामातृभावेन विस्मृतं सौहृदं मया।

'भला, जिन्होंने इन्द्रके खाण्डववनको बाणोंसे आच्छादित कर दिया था, जो श्रीकृष्णके अन्तरङ्ग सखा हैं, उन धनुर्धारी अर्जुनके आगे मेरी क्या बिसात है ? मैं तो तुम्हारे घरका जामाता होनेके कारण अपनी पुरानी मित्रताको भूल गया था' ॥ १०२½ ॥

जैमिनिरुवाच

ततो नीलध्वजो राजा मत्वा तद् वचनं हितम् ॥ १०३ ॥
स्वां प्रियां प्राह तुरगो ह्यर्जुनस्यार्प्यते मया।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर राजा नीलध्वजने अग्निदेवके उस वचनको अपने लिये हितकारी समझकर अपनी पत्नीसे कहा—'प्रिये ! अब मैं अर्जुनका अश्व उन्हें वापस दे रहा हूँ' ॥ १०३½ ॥

ज्वालोवाच

किमर्थं दीयते हंसः सति सैन्ये भयानके ॥ १०४ ॥
पुत्राः पौत्राश्च सुहृदो विद्यन्ते तव बान्धवाः।
भवाञ्छूरतरो नित्यं वित्तं कोशे न माति ते ॥ १०५ ॥
क्षत्रियोऽसि विशेषेण नित्यं नृणां न जीवितम्।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ १०६ ॥
पराक्रमः प्रकर्तव्यो न देयोऽश्वः कथंचन।

तब ज्वाला बोली—प्राणनाथ ! जब आपके पास भयंकर सेना मौजूद है, आपके पुत्र, पौत्र, सुहृद् और भाई-बन्धु सभी विद्यमान हैं (मरे नहीं हैं), आप भी शूरवीरोंमें माननीय वीर हैं, आपके खजानेमें सदा इतना धन भरा रहता है कि उसमें समाता नहीं, आप क्षत्रियोंके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं, मनुष्योंका जीवन नित्य है नहीं, उसका अन्त आज हो अथवा सौ वर्ष बाद हो; परंतु प्राणियोंकी मृत्यु तो निश्चित है ही, तब आप किसलिये घोड़ेको वापस कर रहे हैं ? महाराज ! आप अपना पराक्रम प्रकट कीजिये और किसी प्रकार भी घोड़ेको लौटाइये नहीं ॥ १०४–१०६½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रियावचनमाकर्ण्य हृतबुद्धी रणे ययौ ॥१०७॥
पुनः ससैन्यको हृष्टः कर्णहन्तारमाहवे।

पत्नीकी यह बात सुनकर राजा नीलध्वजकी बुद्धि मारी गयी और वह पुनः प्रसन्नतापूर्वक सेनाको साथ लेकर कर्ण-हन्ता अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये रणभूमिमें गया ॥१०७½॥

ततोऽर्जुनो नृपं वीक्ष्य कोपादश्रूण्यमोचयत् ॥१०८॥
जघान तीक्ष्णैर्नाराचैस्तस्य सैन्यमनेकधा।
बाणैः संछादयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥१०९॥

तब राजा नीलध्वजको पुनः अपने सम्मुख उपस्थित देख क्रोधके कारण अर्जुनके नेत्रोंमें आँसू छलक आये। फिर तो वे अनेक प्रकारके तीखे नाराचोंद्वारा राजाकी सेनाका संहार करने लगे। उस समय उन्होंने बाणवर्षा करके सारी सेनाको आच्छादित कर दिया। यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ १०८-१०९ ॥

पुत्रास्तस्य हता युद्धे भ्रातरश्च महाबलाः।
नृपस्य च रथो भग्नः सारथिश्च निपातितः ॥११०॥
पार्थेन तरसा युद्धं स्मरता पूर्वकारितम्।
नीलध्वजश्च पतितो मूर्छितः स्यन्दनोपरि ॥१११॥

प्रथम युद्धमें की गयी राजाकी करतूतका स्मरण करके अर्जुनने वेगपूर्वक युद्धस्थलमें राजाके महाबली पुत्रों तथा भाइयोंको मार गिराया, राजाके रथको तोड़ दिया और सारथि-को भी रथसे नीचे गिरा दिया। राजा नीलध्वज भी मूर्च्छित होकर रथपर गिर पड़े ॥ ११०-१११ ॥

सारथिस्तमपोवाह कश्मलेनावृतं रणात्।
ततो रात्रिः समभवद् गृहं प्राप्तो नराधिपः ॥११२॥
ज्वालां प्राहाथ कुपितो भर्त्सयन्निव भारत।

तब सारथि राजाको कष्टमें पड़ा हुआ देखकर उन्हें रण-भूमिसे दूर हटा ले गया। इतनेमें रात्रि हो गयी, तब राजा नीलध्वज अपने घर पहुँचे। भारत! वहाँ वे क्रोधावेशमें ज्वालाकी भर्त्सना-सी करते हुए बोले ॥ ११२½ ॥

नीलध्वज उवाच

त्वया दुष्टा मतिर्दत्ता यथा मे सुहृदो हताः ॥११३॥
गच्छ वा तिष्ठ दुष्टे त्वं प्रयच्छामि तुरङ्गमम्।

नीलध्वजने कहा—दुष्टे! तूने ही मुझे ऐसी खोटी सलाह दी, जिससे मेरे सभी सुहृद् मारे गये। अब तू यहाँ रह अथवा कहीं अन्यत्र चली जा; परंतु मैं घोड़ेको अवश्य लौटा दूँगा ॥ ११३½ ॥

इत्युक्त्वा वचनं राजा गृहीत्वा यज्ञवाजिनम् ॥११४॥
प्रधानेनान्वितः शीघ्रं रत्नान्यादाय भूरिशः।
काञ्चनं स्त्रीसहस्रं च वस्त्राणि विविधानि च ॥११५॥
प्रययौ यत्र पार्थोऽसौ नमस्कृत्य व्यवस्थितः।
पार्थं च क्षमयामास वचनं चेदमब्रवीत् ॥११६॥
पार्थ पार्थ महाबाहो किं करोमि तव प्रियम्।

ज्वालासे इतनी बात कहकर राजा नीलध्वज शीघ्र ही मन्त्रीके साथ उस यज्ञिय अश्वको तथा बहुत-से रत्न, सुवर्ण, सहस्रों नारियों और नाना प्रकारके वस्त्र आदिकी भेंट लेकर जहाँ अर्जुन विराजमान थे, वहाँ जा पहुँचे और उन्हें नमस्कार करके सामने खड़े हो गये। पुनः अर्जुनसे क्षमा-याचना करते हुए इस प्रकार बोले—'पार्थ! महाबाहु पार्थ! मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?' ॥ ११४–११६½ ॥

अर्जुनस्तं प्रत्युवाच वीरस्त्वमसि भूपते।
हयं पालय वर्षेऽस्मिन् मामकं सहितो मया ॥११७॥

तब अर्जुनने राजासे कहा—'भूपाल! आप तो वीर पुरुष हैं, इसलिये मेरे साथ रहकर इस वर्षमें मेरे इस यज्ञिय अश्वकी रक्षा कीजिये' ॥ ११७ ॥

जैमिनिरुवाच

ततः पार्थस्य तुरगो निर्गतो दक्षिणामुखः।
नीलध्वजेन सहितः पार्थः पश्चाज्जगाम सः ॥११८॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर अर्जुनका वह अश्व दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके नगरसे बाहर निकला और नीलध्वजके साथ अर्जुन भी उसके पीछे-पीछे चले ॥

ज्वाला जगाम कुपिता चोलमुकस्य पुरं हि सा।
भ्रातुः पार्श्वं समागत्य तस्मिन् देशे पठच्चरे।
रुदन्ती तं नमस्कृत्य रोषादिदमभाषत ॥११९॥

इधर ज्वालादेवी क्रुद्ध होकर अपने भाई उल्मुकके नगर-को चल पड़ी। वहाँ लुटेरोंके उस देशमें भाईके समीप पहुँचकर उसने उसे प्रणाम किया और रोती हुई रोषावेशमें इस प्रकार कहा ॥ ११९ ॥

ज्वालोवाच

अर्जुनेन गृहं दग्धं मदीयं स्वेन तेजसा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भर्त्ता जितो हताः पुत्रा देवरा भासुरं बलम् ॥१२०॥
विध्वस्तं च हयो नीतो राजा चाग्रेसरः कृतः।
तं चेत् पातयसे वीर मन्निमित्तं धनंजयम् ॥१२१॥
तदा त्वं मे सुहृद्भ्राता नान्यथाश्रुप्रमार्जनम्।

ज्वाला बोली—मेरे वीर भाई! अर्जुनने अपने तेजसे मेरे घरको भस्म कर दिया है। उन्होंने मेरे स्वामीको परास्त कर दिया है, पुत्रों और देवरोंको मार डाला है, मेरी तेजस्विनी सेनाको विध्वंस कर दिया है और अपने घोड़ेको वापस लेकर राजाको आगे-आगे चलनेवाला सेवक बना लिया है। वीर! यदि तुम मेरे कारण उन अर्जुनको मार गिराओगे तभी तुम मेरे हितैषी बन्धु कहलाओगे, नहीं तो और किसी प्रकार मेरा आँसू नहीं पोंछा जा सकता ॥ १२०-१२१½ ॥

जैमिनिरुवाच

उल्मुको दूतवाक्येन ज्ञात्वा ज्वालाविचेष्टितम् ॥१२२॥
प्रत्युवाचाथ भगिनीं शमयन्निव भारत।
अत्र तिष्ठ पुरे भद्रे तावकं विद्धि मण्डलम् ॥१२३॥
कालेन कियता मातः करिष्ये सुप्रियं तव।
कुपिता प्राह राजानं कथमद्य न गच्छसि ॥१२४॥

जैमिनिजी कहते हैं—भारत! तब दूतके मुखसे ज्वालादेवीका सारा वृत्तान्त जानकर उल्मुक अपनी बहिनको शान्त करता हुआ बोला—'भद्रे! तुम मेरे इस नगरमें रहो। इसे तुम अपना ही राज्य समझो। मातासदृश बहिन! कुछ समयके बाद मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा।' तब ज्वाला क्रुद्ध होकर राजा उल्मुकसे बोली—'तुम आज ही क्यों नहीं जाते हो?' ॥ १२२–१२४ ॥

उल्मुकः कुपितस्तत्र ज्वालां वचनमब्रवीत्।
यथा स्वकीयं भवनं नाशितं मम तत् समम् ॥१२५॥
कर्तुमिच्छसि दुष्टे त्वं गच्छ शीघ्रं गृहादितः।

उस समय उल्मुक कुपित होकर ज्वालासे निम्नाङ्कित वचन बोला—'दुष्टे! तूने जैसे अपना घर चौपट कर दिया है, उसी तरह तू मेरा घर भी बरबाद करना चाहती है, अतः तू शीघ्र ही मेरे घरसे निकल जा' ॥ १२५½ ॥

निर्गता तद्वचः श्रुत्वा गङ्गातीरे समागता ॥१२६॥
नौकां समारुह्य तटे गच्छन्ती वाक्यमब्रवीत्।

भाईकी बात सुनकर ज्वाला राजमहलसे निकलकर गङ्गा-तटपर जा पहुँची। वहाँ गङ्गाके किनारे एक नावपर चढ़कर आगे जाती हुई वह इस प्रकार बोली ॥ १२६½ ॥

ज्वालोवाच

मदीये वामचरणे लग्नं गङ्गाजलं त्विदम् ॥१२७॥
पातकं सम्प्रतं जातमम्बुस्पर्शान्न संशयः।

ज्वालाने कहा—मेरे बायें पैरमें यह गङ्गाजल लग गया है, इस जलके स्पर्शसे निस्संदेह अब मैं पापकी भागिनी हो गयी ॥ १२७½ ॥

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्याः समीपस्थाः सुकोपिताः ॥१२८॥
किमिदं भाषसे दुष्टे नौकामाश्रित्य दारुणम्।
सर्वपापक्षयकरं तोयं वेत्सि न मोहिता ॥१२९॥
यस्यां मज्जनमात्रेण महापातकिनोऽपि ये।
विहाय पापसंघातं विष्णुलोकं व्रजन्ति ते ॥१३०॥
गङ्गेति नाममात्रेण न नरो नारकी भवेत्।

ज्वालाकी ऐसी बात सुनकर समीपमें बैठे हुए लोग अत्यन्त क्रोधमें भरकर कहने लगे—'दुष्टे! तू नावमें बैठकर ऐसी कठोर बात क्यों कह रही है? तू मोहमें पड़ी हुई है। तुझे पता नहीं कि गङ्गाजल समस्त पापोंका विनाश करनेवाला है। जो महान् पापी हैं, वे भी जिस गङ्गामें स्नानमात्र करनेसे अपने पापसमूहका परित्याग करके विष्णुलोकको चले जाते हैं। यहाँतक कि जो 'गङ्गा' इस नाममात्रका उच्चारण कर लेता है, उस मनुष्यको नरककी प्राप्ति नहीं होती (फिर तुझे ऐसे गङ्गाजलके स्पर्शसे पाप कैसे लग गया?) ॥१२८–१३०½॥

ततो गङ्गाजलात् तस्मादाविरासीत् सुमङ्गला ॥१३१॥
उवाच वचनं तां हि किमिदं गदितं त्वया।

तदनन्तर परम मङ्गलमयी गङ्गाजी उस जलसे प्रकट हो गयीं और ज्वालासे बोलीं—'तूने ऐसी बात क्यों कही है?' ॥१३१½॥

ज्वालोवाच

अपुत्रे शृणु मे वाक्यं त्वया पुत्रा जले हताः ॥१३२॥
सप्त पूर्वं शंतनुना प्रार्थितः कामजित् सुतः।
स पार्थेन हतो बाणैः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥१३३॥
तस्मात् पुत्रविहीनाया जलमत्र प्रदूषितम्।

ज्वालाने कहा—ओ निपूती! मेरी बात सुन। तूने पूर्वकालमें अपने सात पुत्रोंको जलमें डुबोकर मार डाला है। फिर राजा शंतनुने तुझसे प्रार्थना करके जिस आठवें काम-विजयी पुत्रको डुबोनेसे बचा लिया था, उसे भी अर्जुनने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिखण्डीको आगे करके अपने बाणोंद्वारा मार डाला। इसी कारण तुझ पुत्रहीनाका जल इस समय अत्यन्त दूषित है॥ १३२-१३३½॥

गङ्गा ततोऽर्जुनं क्रुद्धा श्रुत्वा तद्वचनं महत्॥ १३४॥
शशाप षष्ठे मासे तं पततां पार्थमस्तकम्।

तदनन्तर ज्वालाका ऐसा महान् अपमानजनक वचन सुनकर गङ्गाजी अर्जुनपर कुपित हो गयीं और उन्हें शाप देते हुए कहने लगीं—'आजसे छठे महीनेमें अर्जुनका मस्तक गिर जाय'॥ १३४½॥

सा दुष्टा पतिता वह्नौ बाणो भूत्वा भयानकः।
बभ्रुवाहनतूणे हि विवेशार्जुनमृत्यवे॥ १३५॥

तब वह दुष्टा ज्वाला आगमें कूद पड़ी और अर्जुनकी मृत्युके लिये भयंकर बाण बनकर बभ्रुवाहनके तरकसमें प्रवेश कर गयी॥ १३५॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि फाल्गुनशापो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें अर्जुनको गङ्गाजीका शापनामक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

षोडशोऽध्यायः

घोड़ेका विन्ध्यपर्वतपर जाना और वहाँ एक शिलासे चिपक जाना, अर्जुनका दूतोंको शिलाका वृत्तान्त पूछनेके लिये मुनियोंके पास भेजना, दूतके कथनानुसार अर्जुनका सौभरि मुनिके आश्रमपर जाना और शिलाका वृत्तान्त पूछना, सौभरिका उसका वृत्तान्त सुनाते हुए उद्दालक और चण्डीका वृत्तान्त वर्णन करना, अर्जुनके कर-स्पर्शसे चण्डीकी मुक्ति और घोड़ेका मुक्त होकर आगे बढ़ना

जैमिनिरुवाच

नीलध्वजस्य नगरादग्रतः प्रययौ हयः।
हरिर्हरिपदालम्बी हरिमुद्वीक्षयन् मुदा॥ १॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर वह यज्ञिय अश्व नीलध्वजके नगरसे निकलकर आगेकी ओर बढ़ा और श्रीकृष्णके चरणोंका आश्रय ग्रहण करनेवाले अर्जुन भी उसे देखते हुए आनन्दपूर्वक उसके पीछे-पीछे चले॥ १॥

अनेकार्जुनसम्बाधं सहदेवं धराभृतम्।
विवेश विन्ध्यं राजेन्द्र स हयः पृष्ठतोऽर्जुनः॥ २॥
सैन्यं पश्चाद् ययौ वृक्षांश्चूर्णयन्नर्जुनस्य तु।
विषमोऽपि समो मार्गः सैन्यागमनतोऽभवत्॥ ३॥

राजेन्द्र! तदनन्तर परिभ्रमण करता हुआ वह अश्व उस विन्ध्यपर्वतपर जा पहुँचा, जो बहुत-से अर्जुन-वृक्षोंसे व्याप्त तथा देवोंका निवासस्थान था। उसके पीछे अर्जुन भी उसी प्रदेशमें प्रविष्ट हुए। अर्जुनके पीछे उनकी विशाल सेना वृक्षोंको तोड़ती हुई चल रही थी। उस सेनाके चलनेसे विषम मार्ग भी सम हो जाते थे॥ १-३॥

वनस्था देवतास्तत्र वनस्थं हरिसेवकम्।
ददृशुर्वनराज्यस्ता अर्जुनं च हयं शुभम्॥ ४॥

वहाँ पहुँचनेपर वनवासी देवता तथा वनकी पङ्क्तियाँ उस सुन्दर अश्वको और उसकी रक्षामें नियुक्त होकर वनमें आये हुए अर्जुनको देखने लगीं॥ ४॥

ततो हयः शिलां दृष्ट्वा महतीं योजनायतीम्।
स्वाङ्गं घर्षितुमारेभे तस्यां हृषदि विस्मितः॥ ५॥

तत्पश्चात् वह अश्व वहाँ एक बहुत बड़ी एक योजन (चार कोस) लंबी शिलाको देखकर आश्चर्यचकित हो गया और उसी शिलापर अपने अङ्गोंको रगड़ने लगा॥ ५॥

पुरा हरिः शिलामंघ्रिस्पर्शात् स्त्रीत्वमुपानयत्।
इति मत्वा हरिर्मन्दः पस्पर्श हृषदं तदा॥ ६॥

पूर्वकालमें श्रीहरि (श्रीरामचन्द्रजी) ने अपने चरणोंसे छूकर शिलाको स्त्री (अहल्या) बना दिया था, मानो यही विचारकर उस मूर्ख हरि (घोड़े) ने भी अपने पैरोंसे उस शिलाका स्पर्श किया॥ ६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वज्रलेपत्वमापन्नश्चलितुं न शशाक ह।
नामसाधर्म्यतः केऽपि गच्छन्ति समतां हरेः ॥ ७ ॥
आराधनादृतेऽप्येवं भवन्ति जडदेहिनः।

फिर तो वह स्वयं ही वज्रलेप-सा होकर चलने-फिरनेमें असमर्थ हो गया; क्योंकि जो लोग भगवान् विष्णुकी आराधनाके बिना ही केवल नामकी समता मात्रसे उनकी बराबरी करने लगते हैं, उनके शरीर इसी प्रकार जड हो जाते हैं॥ ७½ ॥

जडीभूतं समालोक्य तं हरिं हरिसेवकाः ॥ ८ ॥
साट्टहासं जगर्जुस्ते जहसुः केऽपि सैनिकाः।
संघर्षणसुखाल्लीनः किमश्व इतरेऽब्रुवन् ॥ ९ ॥

उस अश्वको यों जडवत् निश्चल देखकर कुछ अश्वरक्षक अट्टहासपूर्वक गर्जना करने लगे, कुछ सैनिक हँसने भी लगे और कुछ कहने लगे कि 'क्या यह घोड़ा खुजलानेका सुख उठानेके हेतु शिलामें लीन-सा हो गया है?' ॥ ८-९ ॥

केऽपि गत्वार्जुनस्यापि कथयन्ति हयो मृतः।
शिलासंघट्टमासाद्य हयमेधोऽभवत् स्वयम् ॥ १० ॥

कुछ सैनिक अर्जुनके भी पास जाकर कहने लगे—'शिलासे टकराकर घोड़ा मर गया। अतः (अश्वकी बलिरूप) अश्वमेध तो स्वयं ही सम्पन्न हो गया!' ॥ १० ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषामर्जुनः कृष्णतामगात्।
प्रद्युम्नसहितस्तत्र हयं दृष्ट्वा तथाविधम् ॥ ११ ॥
विसिस्माय ततो वीरो मम्ले पङ्कजवन्निशि।
उवाच भीमावरजो मोच्यतां मोच्यतामिति ॥ १२ ॥

उन सैनिकोंकी वह बात सुनकर अर्जुनका रंग काला पड़ गया। तत्पश्चात् वे प्रद्युम्नके साथ वहाँ जाकर घोड़ेकी वह दशा देख बड़े विस्मित हुए। उस समय वीर अर्जुनका मुख उसी प्रकार मलिन हो गया, जैसे रात्रिके समय कमल कुम्हला जाता है। फिर तो भीमसेनके छोटे भाई अर्जुन बोल उठे—'अरे! घोड़ेको छुड़ाओ, शीघ्र छुड़ाओ' ॥ ११-१२ ॥

प्रदुद्रुवुः कशाः स्थूला गृहीत्वाताडयन् बलात्।
मुष्टिभिर्जानुभिः क्रुद्धा नराश्चार्जुननोदिताः ॥१३॥

तब अर्जुनकी आज्ञा पाकर लोग क्रुद्ध होकर हाथोंमें मोटे-मोटे कोड़े लेकर दौड़े और घोड़ेको चाबुक, मुक्कों तथा घुटनोंसे बलपूर्वक मारने लगे ॥ १३ ॥

नाश्वः पृथग् बभूवाथ वैष्णवो विष्णुसेवनात्।
तदा ते प्रेरिताश्चारा अर्जुनेन महात्मना ॥१४॥
प्रष्टुं केयं शिला किंस्विदिति ते त्वरिता मुनीन्।
ददृशुश्चाश्रमं रम्यं हरित्पत्रद्रुमाकुलम् ॥१५॥

परंतु वह अश्व शिलासे अलग नहीं हुआ, जैसे विष्णुभक्त बड़े-बड़े कष्टोंके पड़नेपर भी विष्णुकी सेवासे नहीं हटता। तब महात्मा अर्जुनने 'यह शिला कौन है? इसका क्या वृत्तान्त है?' मुनियोंसे यह पूछनेके लिये दूतोंको आज्ञा दी। उनकी आज्ञा पाकर वे दूत तुरंत ही चल पड़े। कुछ दूरपर उन्हें एक रमणीय आश्रम दिखायी पड़ा, जो हरे-हरे पत्तोंसे आच्छादित वृक्षोंसे भरा था ॥ १४-१५ ॥

सालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैः सुशोभनैः।
रसालैर्वकुलैश्चैव नालिकेरैः सकेसरैः ॥ १६ ॥
सरसीभिर्विचित्राभिरनेकाभिरलंकृतम्।
निर्बाधाः पशवो यत्र व्याघ्रा गोभिः समाकुलाः ॥ १७ ॥
मार्जारमुखदंष्ट्रासु कण्डूयन्त्याखवस्तनुम्।
सर्पाः सर्पारिभिर्युक्ता न वैरं यत्र कुर्वते ॥ १८ ॥
मत्स्यानलं महामत्स्या न ते भक्षन्ति बालकान्।
उलूकाः काकवृन्देन विक्रीडन्त्यभया दिने ॥१९॥
अन्ये च पशवः क्रूराः सौम्यसत्त्वैः समागताः।
ऋषेस्तस्य प्रभावेण सौभरेर्विश्रुतौजसः ॥२०॥

उस आश्रममें साखू, ताड़, तमाल, पुष्पोंसे सुशोभित कनेर, आम, मौलसिरी, नागकेसर और नारियलके वृक्ष लहलहा रहे थे। वह अनेकों विचित्र बावड़ियोंसे सुशोभित था। विख्यात ओजस्वी महर्षि सौभरिके तपोबलके प्रभावसे वहाँ पशु स्वच्छन्द विचर रहे थे। यहाँतक कि व्याघ्र गौओंके साथ हिल-मिलकर रहते थे, चूहे वनबिलावोंके मुखकी दाढ़ोंसे अपना शरीर खुजलाते थे तथा सर्प अपने वैरी जीवों (मोरों, न्योलों आदि) के साथ खेलते थे। कोई किसीसे वैर नहीं करता था। मगरमच्छ छोटे-छोटे मछलियोंको नहीं खाते थे, उल्लू दिनमें काकसमूहोंके साथ निर्भय होकर क्रीडा कर रहे थे। अन्य प्रकारके क्रूर पशु भी सौम्य स्वभाववाले जीवोंके साथ मिलकर रहते थे॥ १६—२० ॥

तमाश्रमं समालोक्य दृग्भिस्तं सौभरिं मुनिम्।
अर्जुनाय समाचख्युश्चारास्ते हर्षनिर्भराः ॥२१॥

उस आश्रमको तथा वहाँ उपस्थित महर्षि सौभरिको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

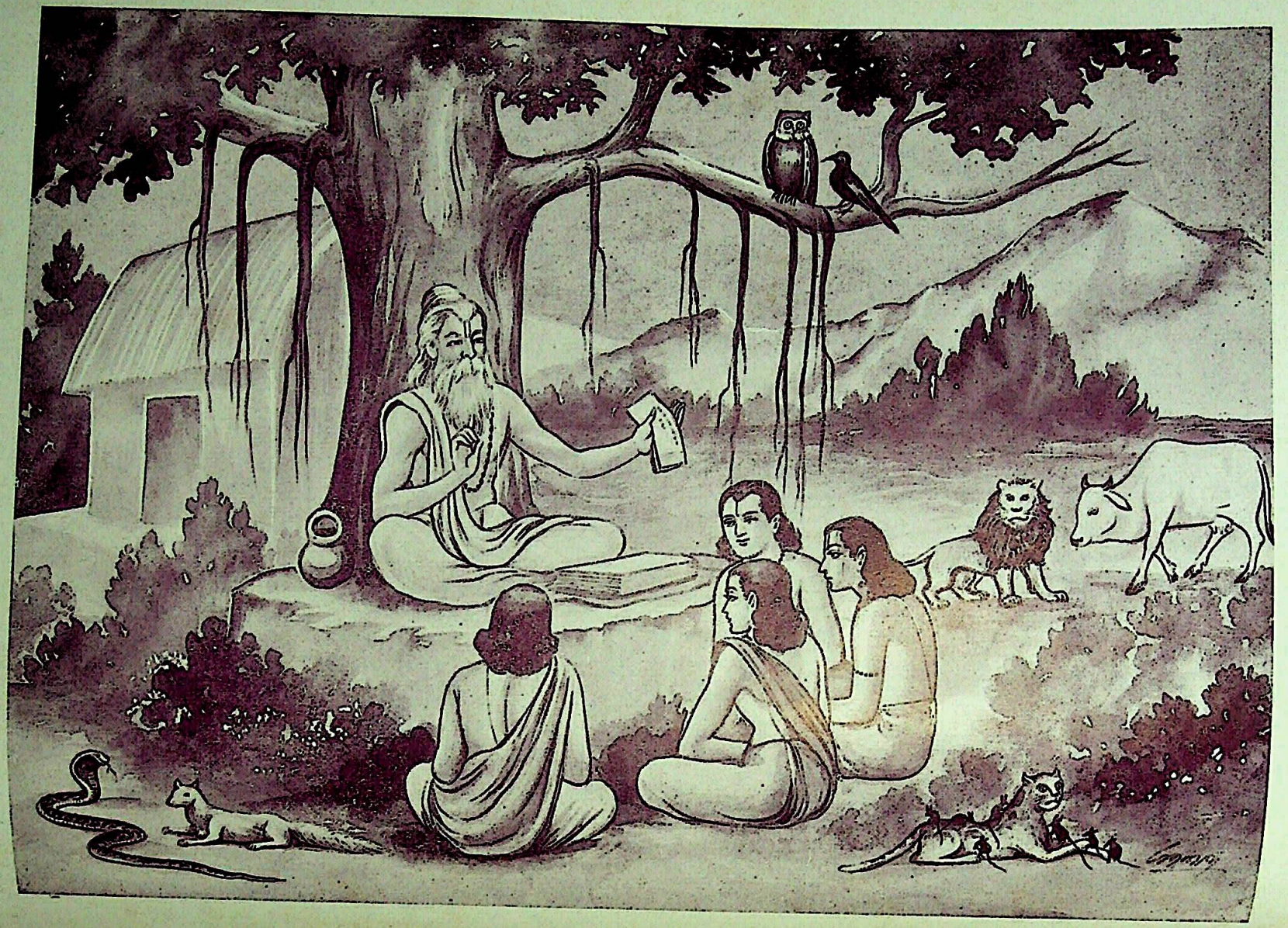

सौभरि ऋषि अपने आश्रममें शिष्योंको पढ़ा रहे हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने नेत्रोंसे देखकर वे दूत परम हर्षित हुए और लौटकर उन्होंने अर्जुनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २१ ॥

जैमिनिरुवाच

ततोऽर्जुनो महाबाहुर्यौवनाश्वो वृषध्वजः।
सात्यकिः कृष्णपुत्रश्च पञ्चैते तं मुनिं ययुः ॥ २२ ॥
अद्राक्षुस्ते सौभरिं तं तपस्विनमुपस्थितम्।
अध्यापयन्तं शिष्यान् स्वानृचं साम यजूंषि च ॥ २३ ॥
वेदान्तादीनि शास्त्राणि पाठयन्तमृषीन् बहून्।
अर्जुनस्तं नमस्कृत्य तान् मुनीनब्रवीद् वचः ॥ २४ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर महाबाहु अर्जुन, यौवनाश्व, वृषकेतु, सात्यकि और श्रीकृष्ण-कुमार प्रद्युम्न—ये पाँचों वीर उन मुनिके पास चले और थोड़ी ही दूरपर उन लोगोंने तपस्वी महर्षि सौभरिको बैठे हुए देखा। उस समय वे महर्षि अपने शिष्योंको ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदका अध्ययन करा रहे थे तथा अन्य बहुत-से ऋषियोंको भी वेदान्त आदि शास्त्रोंकी शिक्षा दे रहे थे। तब अर्जुन महर्षि सौभरि तथा वहाँ उपस्थित सभी मुनियोंके चरणोंमें अभिवादन करके बोले ॥ २२–२४ ॥

अर्जुन उवाच

तपस्विन् धर्मराजस्य भ्राताहं हयमेधिकम्।
हरिं रक्षन् समायातः सोऽश्वो दृषदि तस्थिवान् ॥ २५ ॥
अस्माभिर्निहताः शूरा बान्धवाः कुरवो रणे।
तत्पापनाशनार्थं हि मख आरब्ध एष नः ॥ २६ ॥
तस्मादपि वयं पापान्मुच्यामो दृषदो हयः।
तमुपायं वद विभो सौभरेऽस्याश्च कारणम् ॥ २७ ॥

अर्जुनने कहा—तपस्वी सौभरिजी! मैं धर्मराज युधिष्ठिरका भाई हूँ और उनके अश्वमेध यज्ञके अश्वकी रक्षा करता हुआ यहाँ आ गया हूँ। यहाँ वह अश्व एक शिलासे चिपक गया है। विभो! हमलोगोंने रणभूमिमें अपने शूरवीर बान्धव कौरवोंका संहार कर डाला है, उसी पापका विनाश करनेके लिये हमने यह अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया है; अतः आप ऐसा उपाय बतलाइये, जिसके करनेसे हमलोग उस पापसे छूट जायँ और यह अश्व शिलासे मुक्त हो जाय। साथ ही इस शिलाकी उत्पत्तिका कारण भी बताइये ॥ २५–२७ ॥

जैमिनिरुवाच

ततो मुनिः सौभरिरस्य वाक्यं
श्रुत्वा जहासाखिलशास्त्रकर्ता।
शृण्वोऽर्जुनं कृष्णमुखेन गीतां
वाचं समग्रां हृदि धारयन्तम् ॥ २८ ॥
निशम्य तां बन्धुजना मया ते
हता इति व्यर्थमवीवदस्त्वम्।
वृथाश्वमेधश्रम एष वोऽयं
साक्षाद्धरिस्तिष्ठति तन्न वेत्सि ॥ २९ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर सम्पूर्ण शास्त्रोंके प्रवचनकर्ता महर्षि सौभरि अर्जुनकी बात सुनकर हँस पड़े और कहने लगे—'मैंने सुना था कि अर्जुन श्रीकृष्णके मुखसे गायी गयी समस्त वाणी (भगवद्गीता) को अपने हृदयमें धारण करते हैं, परंतु उस भगवद्गीताको सुनकर भी तुम जो बारंबार यह कहते हो कि 'मैंने अपने उन बन्धुबान्धवोंका संहार कर डाला है', तुम्हारा यह कथन व्यर्थ है। तुम्हारा यह अश्वमेध यज्ञ करनेका परिश्रम भी व्यर्थ ही है; क्योंकि ये साक्षात् श्रीहरि तुम्हारे पास ही वर्तमान हैं, क्या तुम उन्हें नहीं जानते? ॥ २८-२९ ॥

वृथा भ्रमो वरीवर्ति कुरवो युधि पातिताः।
केन को हन्यते हन्ता कस्य हिंस्योऽपि कस्य कः ॥ ३० ॥
इति यो वक्ति वक्ता को यस्मादेतत् तमाश्रये।

'तुम्हारे हृदयमें यह व्यर्थ भ्रम बना हुआ है कि 'मैंने युद्धस्थलमें कौरवोंको मार गिराया है।' भला, कौन किसके द्वारा मारा जाता है, कौन किसको मारनेवाला है और कौन किसका वध्य है? ऐसा जो कहता है, वह वक्ता कौन है? मैं तो जिससे यह सब प्रवृत्त हुआ है, उसीकी शरण ग्रहण करता हूँ' ॥ ३०½ ॥

अर्जुन उवाच

तदश्रावि मया विप्र कुरुक्षेत्रे हरेर्वचः ॥ ३१ ॥
दूरं कृत्वा धर्मराजं तस्माच्च हृदि संस्थितम्।
भ्रमोऽयं मे यथा गच्छेत् तथा कुरु महामते।
तावद् देहे नृणां मोहो यावन्नो साधुसङ्गतिः ॥ ३२ ॥

अर्जुन बोले—ब्रह्मन्! मैंने कुरुक्षेत्रके मैदानमें भगवान् श्रीकृष्णके उन वचनोंको अवश्य सुना था, परंतु उस समय धर्मराज युधिष्ठिर दूर थे; इसलिये वे वचन मेरे हृदयमें ठहर न सके। अतः महामते! आप ऐसा प्रयत्न करें, जिससे मेरा यह भ्रम दूर हो जाय; क्योंकि मनुष्योंके शरीरमें मोह तभीतक ठहर सकता है, जबतक उन्हें सत्सङ्गकी प्राप्ति नहीं हो जाती ॥ ३१-३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सौभरिरुवाच

संसारोऽयं हरेर्माया समुद्राः सरितस्तथा।
पर्वता वृक्षगुल्मादिलताः सर्वं चराचरम्॥ ३३॥
यद् दृश्यं तदनित्यं स्यात् स नित्यो मधुसूदनः।
तं ध्यायेज्जगतां नाथमश्वमेधशतैर्वृथा॥ ३४॥

महर्षि सौभरिने कहा—अर्जुन! यह संसार श्रीहरिकी माया है। ये समुद्र, नदियाँ, पर्वत, वृक्ष, गुल्म-लता आदि तथा समस्त चराचर दृश्यवर्ग—ये सभी अनित्य हैं। नित्य तो केवल मधुसूदन ही हैं। उन्हीं जगन्नाथका ध्यान करना चाहिये। (उनकी महिमाके समक्ष) सैकड़ों अश्वमेध यज्ञ व्यर्थ ही हैं॥ ३३-३४॥

पृष्ठतस्तं हरिं कृत्वा प्राकृतं हरिमग्रतः।
कृत्वा यदागतस्तस्माज्ज्ञानमूढः प्रतीयसे॥ ३५॥

परंतु तुम जो साक्षात् श्रीहरि (श्रीकृष्ण) को पीछे करके प्राकृत हरि (अश्व) को आगे रखकर आये हो, इससे तो यही प्रतीत होता है कि तुम ज्ञानके विषयमें मूढ हो॥ ३५॥

कल्पवृक्षं समुत्सृज्य ह्येरण्डं च किलेच्छसि।
चिन्तामणिं समासाद्य काचाख्यं परिवाञ्छसि॥ ३६॥

निश्चय ही तुम कल्पवृक्षका परित्याग करके एरंड वृक्ष (रेंड़) की कामना करते हो तथा चिन्तामणिको पाकर भी उसके बदले काँच लेनेकी अभिलाषा करते हो॥ ३६॥

संसारेऽस्मिन्नसारे हि देहवाञ्जायते नरः।
तस्मिन् देहे च किं सारं पूयासृक्छ्लेष्मगन्धिनि॥ ३७॥

इस असार संसारमें मनुष्य जिस शरीरको लेकर उत्पन्न होता है, उस पीब, रक्त और कफकी गन्धसे युक्त शरीरमें क्या सार है?॥ ३७॥

पृथ्व्यप्तेजोवायुखानि गूढास्थित्वगसृग्दृशः।
प्राणादि दश कोशाश्च पञ्चभ्यः सम्भवन्ति हि।
ततो देहश्च भवति सव्यसाचिन् स्वरूपतः॥ ३८॥

सव्यसाची अर्जुन! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पाँच भूत, गुप्त अस्थि, त्वचा तथा रक्त आदि धातु, नेत्र आदि इन्द्रियाँ, प्राण आदि दस वायु और अन्नमय आदि कोश—ये सभी पाँच सूक्ष्म महाभूतोंसे उत्पन्न होते हैं। स्वरूपतः उन्हींसे इस शरीरकी उत्पत्ति होती है॥

आख्यायते देहमिदं तु पार्थ
सुरूपतां प्राप्तमसुस्थिरं स्यात्।
तस्मिन् सुरूपः पुरुषः पुराणः
प्रविश्य लीलां कुरुते जनार्दनः॥ ३९॥

पार्थ! इस शरीरको तो ऐसा कहा जाता है कि यह सुन्दर रूप पाकर भी अनित्य ही होता है। उसी शरीरमें सुन्दर रूपवाले पुराणपुरुष जनार्दन प्रवेश करके लीला कर रहे हैं॥ ३९॥

तेनापि प्रेरिता यूयमश्वमेधं प्रकुर्वते।
कुरुध्वं तस्य विष्णोर्हि माया कर्त्री न धर्मराट्॥ ४०॥

उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे तुमलोग अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कर रहे हो तो करो; परंतु उन भगवान् विष्णुकी माया ही उस यज्ञका सम्पादन करनेवाली है, धर्मराज युधिष्ठिर नहीं॥ ४०॥

अर्जुन उवाच

युष्मत्प्रसादान्माया नो गमिष्यति न संशयः।
शिलायाः कारणं ब्रूहि विस्तरेणाथ सौभरे॥ ४१॥

अर्जुनने कहा—सौभरिजी! आपकी कृपासे मेरी माया दूर हो जायगी—इसमें संशय नहीं है। अब आप इस शिलाकी उत्पत्तिका कारण विस्तारपूर्वक बताइये॥ ४१॥

सौभरिरुवाच

शृणु पार्थ महाबाहो शिलेयं ब्राह्मणी पुरा।
आसीदुद्दालकमुनेर्भार्या चण्डीति विश्रुता॥ ४२॥

तब सौभरिने कहा—महाबाहु अर्जुन! सुनो, पूर्वकालमें यह शिला एक ब्राह्मणी थी, जो महर्षि उद्दालककी भार्या थी और उसका नाम चण्डी था॥ ४२॥

विवाहसमये विप्रैर्भर्तृवाक्यं सदा कुरु।
इत्थं सङ्गिश्च चण्डी सा नियुक्ता पावकान्तिके॥ ४३॥
सा बालभावात् प्रोवाच भर्तृवाक्यं कदाचन।
न करिष्यामि भो विप्राः सत्यं सत्यं वदामि वः॥ ४४॥

विवाह-संस्कारके समय अग्निके समीप जब उत्तम ब्राह्मणोंने चण्डीसे कहा कि 'तू सदा पतिकी आज्ञाका पालन करना।' तब बाल-चापल्यवश उसने उत्तर दिया—'हे ब्राह्मणो! मैं आपसे यह सर्वथा सत्य कह रही हूँ कि मैं कभी पतिकी आज्ञाका पालन नहीं करूँगी'॥ ४३-४४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्या वचनमाकर्ण्य विप्राः प्रोचुर्महोत्सवे ।

तत्पश्चात् उस विवाह-महोत्सवके अवसरपर चण्डीकी बात सुनकर ब्राह्मणलोग कहने लगे ॥ ४४½ ॥

विप्रा ऊचुः

विस्मयोऽत्र न कर्तव्यः कन्या वक्तीदृशं वचः ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण बोले—यह अभी कन्या (अल्पवयस्का) है, इसीलिये ऐसी बात कह रही है; इस विषयमें किसीको आश्चर्य नहीं करना चाहिये ॥ ४५ ॥

उद्दालकोऽपि तां चण्डीमानयत् स्वं निवेशनम् ।
बालत्वान्न प्रयुक्ता सा गृहकर्मणि मानद ॥ ४६ ॥
अग्निहोत्रस्य शुश्रूषां कुरुते स स्वयं मुनिः ।

मानद ! तब उद्दालक मुनि उस चण्डीको विदा करा कर अपने घर ले आये । बाल्यावस्थाके कारण वे उसे गृह-कार्यमें नहीं लगाते थे । यहाँतक कि अग्निहोत्रकी परिचर्या भी वे मुनि स्वयं अपने हाथसे ही करते थे ॥ ४६½ ॥

दिनैः कतिपयैरेव प्रौढां तामवलोक्य सः ॥ ४७ ॥
प्रोवाच कुरु भद्रं ते शुश्रूषां कृष्णवर्त्मनः ।
पुत्रास्तव भविष्यन्ति वीर्यवन्तो बहुश्रुताः ॥ ४८ ॥

कुछ दिन बीतनेपर जब मुनिने देखा कि अब यह प्रौढा हो गयी है, तब उससे बोले—'प्रिये ! तुम्हारा कल्याण हो । अब तुम अग्निदेवकी परिचर्या किया करो, इससे तुम्हें पराक्रमी तथा शास्त्रज्ञ पुत्रोंकी प्राप्ति होगी' ॥ ४७-४८ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कोपादरुणलोचना ।
न करिष्येऽग्निशुश्रूषां पुत्रैः किं मे प्रयोजनम् ॥ ४९ ॥

मुनिकी वह बात सुनकर चण्डीके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वह कहने लगी कि 'मैं अग्निकी सेवा नहीं करूँगी । मुझे पुत्रोंसे क्या प्रयोजन है ?' ॥ ४९ ॥

स एवं ब्राह्मणः क्षिप्रं कमण्डलुमयाचत ।
तं कमण्डलुमादाय कराभ्यां धरणीतले ॥ ५० ॥
आस्फोटयामास ततो ब्राह्मणो विस्मितोऽभवत् ।
रात्रौ स शयने तिष्ठन्नेकाकी वाक्यमब्रवीत् ॥ ५१ ॥

इसी प्रकार ब्राह्मण उद्दालकने शीघ्र ही अपना कमण्डलु लानेके लिये उससे कहा । तब उसने उस कमण्डलुको लेकर दोनों हाथोंसे पृथ्वीपर पटककर फोड़ दिया । यह देखकर उद्दालक मुनि बड़े विस्मित हुए । पुनः रातमें अपनी शय्यापर अकेले लेटे हुए मुनिने उससे यों कहा—॥ ५०-५१ ॥

उद्दालक उवाच

त्वां न वक्ष्ये किंचिदहं मा शेथा दूरतो मम ।
गृहाद् विनिष्क्रम्य बलाद् बहिश्चण्डी स्थिताभवत् ॥ ५२ ॥

उद्दालक बोले—प्रिये ! मैं तुमसे कोई दूसरी बात नहीं कहूँगा, परंतु तुम मुझसे दूर मत सोओ । यह सुनते ही चण्डी बलपूर्वक घरसे निकलकर बाहर जा खड़ी हुई ॥ ५२ ॥

उद्दालको ब्राह्मणपुङ्गवोऽसौ
चण्ड्या तया विह्वलतां जगाम ।
किंचिन्न संध्यादिककर्म कर्तुं
शशाक पर्वस्वपि तर्पणादि ॥ ५३ ॥

इस प्रकार ब्राह्मणश्रेष्ठ उद्दालक उस चण्डीके व्यवहारसे व्याकुल हो गये । वे पर्वके अवसरोंपर भी संध्या-वन्दन तथा तर्पण आदि कोई कर्म नहीं कर पाते थे ॥ ५३ ॥

एकदा तद्गृहं प्राप्तः कौण्डिन्यो मुनिसत्तमः ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन शिष्यैः परिवृतः शुभैः ॥ ५४ ॥

एक समय मुनिश्रेष्ठ कौण्डिन्य अपने सदाचारी शिष्योंके साथ तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे घूमते हुए उद्दालक मुनिके घर पधारे ॥ ५४ ॥

उद्दालकोऽर्घ्यदानेन पूजयामास तं मुनिम् ।
पूजितः सुखमासीनः कौण्डिन्यो मुनिरब्रवीत् ॥ ५५ ॥

तब उद्दालकने अर्घ्य आदि प्रदान करके उन मुनिवरका आदर-सत्कार किया । सत्कार ग्रहण करके सुखपूर्वक बैठे हुए कौण्डिन्य मुनिने पूछा ॥ ५५ ॥

कौण्डिन्य उवाच

कस्मात् कृशोऽसि भो विप्र चिन्तया प्रवृतोऽसि किम् ।
पुत्राः कियन्तः कन्याश्च तव सन्ति तपोधन ॥ ५६ ॥

कौण्डिन्य बोले—ब्रह्मन् ! तुम किस कारण इतने दुबले हो गये हो ? तुम्हें कोई चिन्ता व्याप्त हो गयी है क्या ? तपोधन ! तुम्हारे कितने पुत्र तथा कन्याएँ हैं ? ॥ ५६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उद्दालक उवाच

न मे पुत्रा न मे कन्या जाया मे दुष्टभाषिणी।
यद् यद् वदामि तां दुष्टां तत्तन्नैव करोति सा।
तया मे न प्रकर्तव्यं वचनं कल्पकोटिभिः ॥ ५७ ॥

उद्दालकने कहा—मुने! न मेरे कोई पुत्र है और न कन्या ही है। मेरी स्त्री बड़ी कटुवादिनी है। मैं उस दुष्टासे जो कुछ भी कहता हूँ, वह उसे नहीं ही करती है। वह करोड़ों कल्पोंमें भी मेरी आज्ञाका पालन करना उचित नहीं समझेगी॥ ५७ ॥

परं पित्र्यं श्राद्धमस्ति करणीयं ततो भृशम्।
कृशश्चिन्तापरो ब्रह्मञ्छाधि मां स्त्रीवशंगतम् ॥ ५८ ॥

परंतु मुझे पितृसम्बन्धी श्राद्ध करना है, उसीकी चिन्तासे अभिभूत होकर दुबला हो गया हूँ। ब्रह्मन्! स्त्रीके वशमें पड़े हुए मुझको आप उचित शिक्षा दीजिये॥ ५८ ॥

तदालपितमाकर्ण्य प्रहसन्नब्रवीन्मुनिः।
कर्णे लगित्वा शनकैर्विपरीतं वचो वद ॥ ५९ ॥

तब उद्दालककी दुःखपूर्ण बात सुनकर कौण्डिन्य मुनि उनके कानसे लगकर मुसकराते हुए धीरेसे बोले—'ब्रह्मन्! उससे उलटी बात कहो॥ ५९॥

माग्नेः शुश्रूषणं कार्षीर्मा दा मह्यं कमण्डलुम्।
इत्यादि वचनं ब्रूयास्त्वमुद्दालक तां स्त्रियम् ॥ ६० ॥

'उद्दालक! तुम अपनी उस भार्यासे ऐसी बात कहो कि तू अग्निकी परिचर्या मत कर। मेरा कमण्डलु भी लाकर मुझे मत दे।' इत्यादि॥ ६०॥

इतो द्वियोजनं तीर्थं गौतमेनाभिपालितम्।
तद् दृष्ट्वागमिष्यामि श्राद्धमारभ्यतामिति।
तद्वचोऽमृतमापीय चण्डी वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ६१॥

'यहाँसे दो योजन (आठ कोस) पर महर्षि गौतमद्वारा सुरक्षित एक तीर्थ है, मैं उसका दर्शन करके पुनः लौटकर यहाँ आऊँगा। तुम अपना पितृ-श्राद्ध आरम्भ करो।' कौण्डिन्य ऋषिके इस वचनामृतका पान करके उद्दालक चण्डीसे निम्नाङ्कित वचन बोले॥ ६१॥

उद्दालक उवाच

प्रातरेष्यति कौण्डिन्यो गृहान्निष्कासयामि तम्।
तस्मै भोजनवस्त्रादि न दास्येऽहं कदाचन ॥ ६२ ॥

उद्दालकने कहा—प्रिये! प्रातःकाल महर्षि कौण्डिन्य पुनः यहाँ आयेंगे। उस समय मैं उन्हें घरसे निकाल बाहर करूँगा। मैं कभी भी उन्हें भोजन-वस्त्र आदि नहीं दूँगा॥६२॥

चण्ड्युवाच

तं भोजये चार्चयेऽहं वस्त्रैः पुष्पैः सुशोभनैः।
यदा प्रोवाच सा चण्डी हर्षितोऽभून्मुनिस्तदा ॥ ६३॥

तब चण्डी बोली—मैं उन्हें भोजन कराऊँगी और वस्त्रों तथा सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंद्वारा उनका आदर-सत्कार भी करूँगी। जब उस चण्डीने ऐसी बात कही, तब तो उद्दालक मुनि हर्ष-मग्न हो गये॥ ६३ ॥

अनयैव परं बुद्ध्या श्राद्धं कर्त्तापरेऽहनि।
इति मत्वा समालोच्य रात्रौ जायां ततोऽब्रवीत् ॥६४॥

तत्पश्चात् 'इसी बुद्धिके अनुसार दूसरे दिन उत्तम पितृ-श्राद्ध भी करूँगा।' ऐसा अपनी बुद्धिसे विचारकर वे रातके समय अपनी पत्नीसे बोले—॥ ६४ ॥

दूराद् दूरे त्वया चण्डि शयनं कार्यमद्य वै।
इत्युक्ता सा तदा चण्डी शय्यामेकामुवास सा ॥ ६५॥

'चण्डि! आज तुमको मुझसे दूर-से-दूर स्थानपर शयन करना चाहिये।' मुनिके ऐसा कहनेपर उस समय उस चण्डीने एक ही अर्थात् मुनिकी ही शय्यापर शयन किया॥ ६५॥

पुनः प्रोवाच विप्रोऽसौ हर्षाविष्टमनास्तदा।
भविता श्वः पितुः श्राद्धं करिष्येऽहं न चण्डिके ॥ ६६॥

उस समय ब्राह्मण उद्दालकका मन हर्षसे भर गया और वे पुनः बोले—'चण्डिके! कल पिताका श्राद्ध होनेवाला है, परंतु मैं उसे नहीं करूँगा'॥ ६६ ॥

चण्ड्युवाच

प्रभाते ते पितुः श्राद्धं करिष्येऽहं यथोचितम्।
श्वशुरस्य यथा तृप्तिर्भविष्यति सुखान्विता ॥ ६७॥

चण्डीने कहा—प्रातःकाल मैं आपके पिताके श्राद्धका ऐसा यथोचित प्रबन्ध करूँगी, जिससे मेरे श्वशुर सुखसंयुक्त तृप्ति लाभ करेंगे॥ ६७ ॥

उद्दालक उवाच

न रात्रौ ब्राह्मणमहं गच्छाम्यामन्त्रितुं क्वचित्।
काणं खञ्जं श्यामदन्तं कुब्जं विप्रं निमन्त्रये ॥ ६८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूर्खं सूचकमप्रीतं वेदहीनमवैष्णवम्।
व्यङ्गं द्यूतरतं नष्टं सरोगं वृषलीपतिम् ॥ ६९ ॥

उद्दालक बोले—प्रिये ! मैं रातके समय कहीं भी (किसी श्राद्धयोग्य) ब्राह्मणको निमन्त्रण देने नहीं जाऊँगा; बल्कि जो काना, लँगड़ा, काले दाँतोंवाला, कुबड़ा, मूर्ख, चुगलखोर, प्रसन्नतारहित, वेदहीन, विष्णुभक्तिसे रहित, अङ्ग-हीन, जुआरी, आचारभ्रष्ट, रोगी अथवा शूद्रासे उपभोग करनेवाला होगा, ऐसे किसी ब्राह्मणको निमन्त्रित कर लूँगा ॥

चण्ड्युवाच

अहं द्विजोत्तमान् विप्रान् वेदशास्त्रपरायणान्।
कुलीनान् सम्मतान् पुत्रपौत्रभार्यासमन्वितान् ॥ ७० ॥
आमन्त्रयित्वाद्य निशि प्रभाते तान् समानये।
न त्वदीयं वचस्तथ्यं करिष्यामि कदाचन ॥ ७१ ॥

चण्डीने कहा—मैं आज रातमें ही माननीय, उत्तम कुलमें उत्पन्न, पुत्र-पौत्र तथा पत्नीसे संयुक्त, वेद-शास्त्रके अध्ययनमें तत्पर रहनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित कर आऊँगी और प्रातःकाल उन्हें बुला लाऊँगी; परंतु आपकी बात कभी भी सत्य न होने दूँगी ॥ ७०-७१ ॥

उद्दालक उवाच

यदि श्राद्धं हठादेव क्रियते चण्डि मन्दिरे।
मदीयं वाक्यमुल्लङ्घ्य तन्न मे सुखदायकम् ॥ ७२ ॥

उद्दालक बोले—चण्डी ! यदि मेरे ही घरमें मेरी बातोंका उल्लङ्घन करके हठपूर्वक श्राद्ध किया जायगा तो वह मेरे लिये सुखदायक नहीं होगा ॥ ७२ ॥

अश्राद्धीयानि धान्यानि तान्येवाहं समानये।
श्रद्धया रहितं श्राद्धं करिष्ये चण्डि नान्यथा ॥ ७३ ॥

मैं जो धान्य श्राद्धके लिये निषिद्ध हैं, उन्हींको ले आऊँगा और श्रद्धारहित होकर ही वह श्राद्ध करूँगा। चण्डि ! मैं इसके विपरीत कुछ नहीं करूँगा ॥ ७३ ॥

चणकानाहरिष्यामि कोद्रवान् वर्तुलानपि।
मसूरान् राजमाषांश्च कुलित्थानाढकीः पुनः ॥ ७४ ॥
यावनालांश्च निष्पावान् वरटान् मर्कटानपि।
खर्जूरकांश्चित्रपत्राञ्छ्राद्धे शाकं च कुत्सितम् ॥ ७५ ॥
वृन्ताकं गृञ्जनं चैव चिल्लीं कोशातकीफलम्।
कूष्माण्डकं कलिङ्गं च पिण्डीं पिण्डालुकं तथा ॥ ७६ ॥
अलाबुं वर्तुलां झिण्टीं तन्दुलीयं च पल्लवम्।

मैं चना, कोदों, मटर, मसूर, राजमाष (नीले या काले रंगका बड़ा उड़द), कुलथी, अरहर, यावनाल (जुआर), निष्पाव (सफेद सेम या लोविया), वरट[1], मर्कट (मड़ुआ या मक्का), खजूर, चित्रपत्र (गूमा) आदिको तथा श्राद्ध-कर्ममें वर्जित शाकोंको, जैसे बैंगन, गाजर, चिल्ली (लोध), तुरई, कूष्माण्ड (कुम्हड़ा), कलिङ्ग (तरबूज), पिण्डी (कद्दू), पिण्डालुक (कन्दविशेष), लौकी, वर्तुला (केराव), झिंटी (कटसरैया) और चौराईके पत्ते आदि ले आऊँगा ॥ ७४–७६½ ॥

चण्ड्युवाच

गोधूमांस्तण्डुलान् मुद्गान् माषांश्चैव मनोरमान् ॥ ७७ ॥
आनीयाहं करिष्यामि पायसं मण्डकानपि।
मोदकान् फेणिकां रम्यां भक्तं कुमुदसंनिभम् ॥ ७८ ॥
गव्यं घृतं तथा क्षीरं सिता रम्भाफलानि च।
सहकाररसं स्वादु प्रियां शिखरिणीं गृहे ॥ ७९ ॥
काले च कुतपे श्राद्धं श्रद्धायुक्तं सवस्त्रकम्।
सदक्षिणं पूतशाकैर्धेनुदानेन संयुतम् ॥ ८० ॥
इति चण्डीवचः श्रुत्वा मुनिः प्रोवाच तां प्रियाम्।

चण्डीने कहा—मैं गेहूँ, चावल, मूँग तथा मनको भानेवाले उड़द आदि उत्तम अन्नोंको लाकर उनसे खीर, मैदेकी पूरी या लुचुई, लड्डू, फेणिका (फेनी लपेटे हुए सूतके लच्छेके आकारकी एक मिठाई) और कुमुद-पुष्पके समान उज्ज्वल वर्णका भात तैयार करूँगी तथा गौका घी, दूध, शक्कर, केलेके फल, स्वादिष्ट आम्ररस तथा मनको प्रिय लगने-वाले शिखरिन[2]का भी घरमें संग्रह कर लूँगी। फिर पितृसम्बन्धी कुतप काल (दिनके आठवें मुहूर्त) में श्रद्धापूर्वक वस्त्र, दक्षिणा, पवित्र शाक और गोदानसे संयुक्त श्राद्ध मेरे घरमें होगा। चण्डीकी ऐसी बात सुनकर उद्दालक मुनि अपनी पत्नीसे बोले ॥ ७७—८०½ ॥

---

१. बिरी या बरे नामक एक तेलहन अनाज, जिसका फूल केसरके रंगका होता है और उससे कुसुम रंग तैयार किया जाता है तथा उसका सफेद बीज खाने और तेल निकालनेके काममें आता है।

२. दही और चीनीका बनाया हुआ एक प्रकारका मीठा पेय पदार्थ या श्रीखंड, जिसमें केसर, कपूर तथा मेवे आदि डाले जाते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उद्दालक उवाच

प्रसभं क्रियते श्राद्धं पितृणां तत्र मेऽहितम् ॥ ८१ ॥
अहं नीलीमयं वस्त्रं परिधास्ये सुशोभने ।
दुष्टतैलेन दीपांश्च कर्त्तास्म्यसुकृतेच्छया ॥ ८२ ॥

उद्दालकने कहा—प्रिये ! यदि तुम हठपूर्वक पितरोंका श्राद्ध करोगी तो इसमें मेरा अमङ्गल ही होगा; अतः सुशोभने ! मैं नील रंगसे रञ्जित वस्त्र धारण कर लूँगा और पापकी इच्छासे दूषित तैलका दीपक जलाऊँगा ॥ ८१-८२ ॥

चण्ड्युवाच

मनोरमं गृहं कुर्यां तिलतैलेन दीपकान् ।
मया कृताञ्छुचीन् वस्त्रैस्तादृशैः परिवर्जितम् ॥ ८३ ॥

चण्डी बोली—मैं लीप-पोतकर घरको सुन्दर सजा लूँगी, (आटे आदिसे) अपने ही बनाये हुए पवित्र दीपकोंको तिलके तेलसे जलाऊँगी और नील रंगका वस्त्र घरमें आने ही नहीं दूँगी ॥ ८३ ॥

जैमिनिरुवाच

ततो विप्रः प्रसन्नात्मा चेतसा न बहिः स्थितः ।
तया बुद्ध्या पितुः श्राद्धं सर्वं चक्रे नराधिप ॥ ८४ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—नरेश्वर ! तदनन्तर ब्राह्मण उद्दालक मन-ही-मन प्रसन्न हो गये । परंतु उन्होंने अपनी उस प्रसन्नताको बाहर नहीं प्रकट होने दिया और उसी बुद्धिके अनुसार पिताका सारा श्राद्धकार्य सम्पन्न कर लिया ॥ ८४ ॥

यावदुक्ता द्विजाः सर्वे यावद् दत्तं धनं तथा ।
वस्त्रादिकं स्वयं भुक्तः सा चण्डी च तथा नृप ॥ ८५ ॥
तावद्रात्र्यागमे मोहादिदं वचनमब्रवीत् ।

राजन् ! श्राद्धमें जितने और जैसे ब्राह्मण होने चाहिये, वे सब वहाँ पधारे और उन्हें यथोचित धन-वस्त्र आदिका दान भी दे दिया गया । फिर स्वयं उद्दालक तथा चण्डीने भी भोजन किया । तत्पश्चात् रात होनेपर ब्राह्मणने मोहवश (विपरीत कथनकी बात भूलकर) चण्डीसे इस प्रकार कहा ॥८५½॥

उद्दालक उवाच

गृहीत्वा चण्डि पुटकं पिण्डानां जाह्नवीजले ॥ ८६ ॥
सुपूजितं पातयाशु श्रुत्वा सा गोमयावटे ।
पिण्डांश्चिक्षेप वेगेन स मुनिः कोपपूरितः ॥ ८७ ॥
तां शशाप शिला दुष्टे भविष्यसि ममाज्ञया ।
चिरकालं हयस्याङ्गं स्पृष्ट्वा मुक्ता भविष्यसि ॥ ८८ ॥
यज्ञार्थं भ्रममाणस्य सेयं पार्थ महाशिला ।
इमां मोचय भद्रं ते करस्पर्शान्महाबल ॥ ८९ ॥

उद्दालक बोले—चण्डि ! तुम भलीभाँति पूजित हुए पिण्डोंके दोनेको लेकर शीघ्र ही गङ्गाजीके जलमें डाल आओ। यह सुनकर उसने वेगपूर्वक पिण्डोंको गोबरके गड्ढेमें फेंक दिया । यह देखकर उद्दालक मुनि क्रोधसे भर गये और उसे शाप देते हुए बोले—'दुष्टे ! तू मेरी आज्ञासे शिला हो जायगी और बहुत कालतक इसी अवस्थामें पड़ी रहेगी, फिर जब (युधिष्ठिरके) अश्वमेध यज्ञके लिये भ्रमण करते हुए घोड़ेके अङ्गका तुझसे स्पर्श होगा, तब तू मुक्त होगी ।' पार्थ! यह वही महती शिला है । महाबली अर्जुन ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम अपने हाथोंसे स्पर्श करके इसे शापमुक्त कर दो ॥

कृतं पार्थेन तत् सर्वं मुक्तः स तुरगो ययौ ।
चण्डी शापभयान्मुक्ता ह्यङ्गस्पर्शात् तदा हरेः ॥ ९० ॥

अर्जुनने (सौभरि मुनिके कथनानुसार) वह सब कार्य किया । तब घोड़ेके अङ्ग-स्पर्शसे चण्डी शापभयसे मुक्त हो गयी और घोड़ा भी मुक्त होकर आगे बढ़ा ॥ ९० ॥

तदा बभूव सा चण्डी भर्तुर्वचनकारिणी ।
उद्दालकस्त्वृषिवरः पत्न्या सह मुमोद ह ॥ ९१ ॥

तबसे वह चण्डी पतिकी आज्ञाकारिणी हो गयी और मुनिवर उद्दालक भी अपनी उस पत्नीके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ ९१ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि शिलामोक्षो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें शिलामोक्षनामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सप्तदशोऽध्यायः

अर्जुनके यज्ञिय अश्वका चम्पापुरीमें प्रवेश और राजा हंसध्वजद्वारा उसका पकड़ा जाना तथा राज-सैनिकोंका युद्धके लिये प्रस्थान, अट्टालिकाओंपर बैठी हुई स्त्रियोंकी परस्पर विनोदवार्ता, राजाकी घोषणा, खौलते हुए तैलपूर्ण कड़ाहका आयोजन, सुधन्वाका रणके लिये उद्यत हो माता और बहिनको प्रणाम करके उनकी आज्ञाके अनुसार युद्ध करनेका आश्वासन देना, प्रभावतीका अपने पति सुधन्वाकी आरती उतारना, दोनोंके संवाद, पत्नीके आग्रहसे विवश हुए सुधन्वाका उसे रति-दान देकर युद्धके लिये जाना, राजाका रोष, यवन-सैनिकों-द्वारा सुधन्वाको बुलवाकर फटकारना, शङ्ख मुनिसे उसके विषयमें पूछना, शङ्खका राज्य छोड़कर जाना, राजाका सुधन्वाको कड़ाहमें डालनेके लिये सचिवको आज्ञा देकर जाना, शङ्ख और लिखितको लेकर लौटना, सुधन्वाके द्वारा कड़ाहमें भगवान्‌का स्मरण, उसके जीवनकी रक्षा तथा तैलकी परीक्षाके समय शङ्ख और लिखितके ललाट-में नारियलके टुकड़ोंसे चोट पहुँचना

जैमिनिरुवाच

मुक्तः स तुरगः शीघ्रं प्रययौ चम्पकां पुरीम्।
हंसध्वजेन वीरेण पालितां प्रमदामिव ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! उस शिलासे मुक्त होकर वह अश्व घूमता हुआ शीघ्र ही उस चम्पापुरीमें जा पहुँचा, जो शूरवीर राजा हंसध्वजके द्वारा स्त्रीकी भाँति सुरक्षित थी॥ १॥

पृष्ठतोऽस्य जगामाशु कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
वीरैः परिवृतो घोरैः प्रद्युम्नप्रमुखैर्नरैः ॥ २ ॥
मुक्तामालावृतैर्दिव्यैर्वासोभिर्वेष्टितैः शुभैः।

उस अश्वके पीछे-पीछे कुन्तीनन्दन अर्जुन शीघ्रतापूर्वक चल रहे थे। उस समय उनके साथ प्रद्युम्न आदि भयंकर शूरवीर योद्धा भी थे, जो मोतियोंके हारोंसे अलंकृत तथा सुन्दर दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित थे॥ २½॥

ततो हंसध्वजो राजा श्रुत्वा दूतमुखाद् भयम् ॥ ३ ॥
प्राप्तं स्वविषये वीरं पालयन्तं तुरङ्गमम्।
चिन्तयामास सचिवैः सार्धं बन्धुभिरात्मजैः ॥ ४ ॥

तदनन्तर जब राजा हंसध्वजने दूतके मुखसे अपने देशमें अश्वमेध-यज्ञके घोड़ेकी रक्षा करते हुए वीरवर अर्जुनके आगमन एवं तज्जनित भयकी बात सुनी, तब वे अपने मन्त्रियों, भाइयों और पुत्रोंके साथ विचार करने लगे॥ ३-४॥

हंसध्वज उवाच

किं पार्थतुरगं प्राप्तं गृह्णामि स्वबलाद् रणे।
व्यूह्य सैन्यं स्वविषयं पालयामि महाबलात् ॥ ५ ॥

हंसध्वजने कहा—क्या मैं यहाँ आये हुए अर्जुनके घोड़ेको अपने बलसे पकड़ लूँ? क्योंकि युद्धस्थलमें मैं सेनाकी व्यूहरचना करके महाबली अर्जुनसे अपने देशकी रक्षा कर लूँगा (ऐसा विश्वास है)॥ ५॥

महालाभश्च भविता दृश्यते हरिसेवकः।
यत्रार्जुनस्तत्र हरिः स्वयं तिष्ठत्यसंशयम् ॥ ६ ॥

ऐसा करनेसे यदि श्रीकृष्णके भक्त अर्जुन दीख पड़े तो महान् लाभ होगा; क्योंकि जहाँ अर्जुन हैं, वहाँ स्वयं श्रीकृष्ण भी विराजमान रहते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ६॥

न मया वीक्षितः कृष्णो वृद्धेनापि स्वचक्षुषा।
तस्मान्निर्यान्तु मे वीरा युद्धार्थं याम्यहं रणम् ॥ ७ ॥

मैं वृद्ध हो चला, पर अभीतक अपने नेत्रोंसे श्रीकृष्णका दर्शन नहीं कर पाया; इसलिये मेरे वीर योद्धा युद्धके लिये यात्रा करें और मैं रणभूमिमें चलता हूँ॥ ७॥

जैमिनिरुवाच

ततो हंसध्वजो राजाप्याजगाम मुदान्वितः।
सप्तति नायकानां स गृहीत्वा प्रमुखे स्थितः ॥ ८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर राजा हंसध्वज भी हर्षपूर्वक सत्तर सेना-नायकोंको साथ लेकर रण-भूमिमें आये और युद्धके मुहानेपर डटकर खड़े हो गये ॥८॥

नायके नायके सैन्यं यत्नेन परिरक्षितम् ।
तच्छृणुष्व महीपाल पुष्टं मानधनैः सदा ॥ ९ ॥

महीपाल ! अब प्रत्येक सेनापतिके अधीन सदा धन-मानसे परिपुष्ट एवं यत्नपूर्वक सुरक्षित जितनी सेना थी, उसका वर्णन सुनिये ॥ ९ ॥

गजानां भूरिमत्तानां सहस्राण्येकसप्ततिः ।
रथानामपि नद्धानां सहस्राण्येकसप्ततिः ॥ १० ॥
हयानामपि रूढानां लक्षं चैवातिभासुरम् ।
पदातीनां सहस्राणि यूनां त्रिनवतिर्नव ॥ ११ ॥

उस सेनामें इकहत्तर हजार अत्यन्त मतवाले गजराज थे । घोड़ोंसे जुते हुए सुसज्जित रथोंकी संख्या भी इकहत्तर हजार ही थी । एक लाख घोड़े थे, जो अपने आभूषणोंके कारण चमक रहे थे और जिनपर वीर योद्धा सवार थे तथा एक लाख दो हजार नौजवान पैदल सैनिक थे ॥ १०-११ ॥

सर्वे ते वैष्णवा वीराः सदा दानपरायणाः ।
एकपत्नीव्रतयुताः सम्मतास्ते प्रियंवदाः ॥ १२ ॥

वे सभी योद्धा भगवद्भक्त, रणवीर, सदा दीनोंपर दया करके उन्हें दान देनेवाले, एकपत्नीव्रती, राजसम्मानित और प्रिय बोलनेवाले थे ॥ १२ ॥

समागतं जनं कापि सेवितुं तं जनाधिपम् ।
दूरदेशादपि प्राप्तं राजा तं परिपृच्छति ॥ १३ ॥

क्योंकि राजा हंसध्वजके पास जब कहीं दूर देशसे भी कोई नौकरीके लिये आता, तब राजा उस आगन्तुक व्यक्तिसे सबसे पहले यही कहते थे—॥ १३ ॥

एकपत्नीव्रतं तात यदि ते विद्यतेऽनघ ।
ततस्त्वां धारयिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १४ ॥
न शौर्यं न कुलीनत्वं न च कापि पराक्रमः ।
स्वदाररसिकं वीरं विष्णुभक्तिसमन्वितम् ॥ १५ ॥
वासयामि गृहे राष्ट्रे तथान्येऽपि हि सैनिकाः ।
अनङ्गवेगं स्वान्ते ये धारयन्ति महाबलाः ॥ १६ ॥

'अनघ ! यदि तुम एकपत्नीव्रतका पालन करनेवाले हो तो मैं तुम्हें रख सकता हूँ । यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ । तात ! न तो शूरता, न कुलीनता और न पराक्रम ही मुझे अभीष्ट है, मैं तो उसी वीरको अपने घर तथा राष्ट्रमें स्थान दे सकता हूँ, जो केवल अपनी एक ही पत्नीमें प्रेम करनेवाला और भगवान् विष्णुकी भक्तिसे सम्पन्न होगा । इसी प्रकार जो अन्य महाबली योद्धा भी कामदेवके प्रबल वेगको अपने भीतर धारण कर लेते हैं, वे ही मेरे यहाँ रह सकते हैं' ॥ १४–१६ ॥

जैमिनिरुवाच

ददाति धनं भूरि स्वभृत्येभ्यो यथोचितम् ।
सुमतिः सुगतिस्तुष्टः श्रद्धालुस्तस्य नायकाः ॥ १७ ॥
सचिवाः पान्ति तत्सैन्यं यथाभूतं नृपस्य तु ।
भ्रातरश्चापि बलिनो विदूरथमुखा हि ते ॥ १८ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! राजा हंसध्वज अपने सेवकोंको यथोचित रूपसे बहुत-सा धन देते थे । राजाके सुमति, सुगति, तुष्ट और श्रद्धालु नामक सेनापति तथा मन्त्री उनके पूर्वोक्त सेनाकी रक्षा करते थे और जो उनके बलवान् भाई थे, वे भी उनके सैन्यदलका यथोचित रीतिसे पालन करते थे। पूर्वोक्त मन्त्रियोंमें विदूरथ प्रधान थे ॥ १७-१८ ॥

चन्द्रसेनश्चन्द्रकेतुश्चन्द्रदेवो महाबलः ।
न्यायवर्ती धनबलो धर्मवाहोऽतिसुन्दरः ॥ १९ ॥

राजाके भाइयोंके नाम इस प्रकार हैं—चन्द्रसेन, चन्द्रकेतु, महाबली चन्द्रदेव, न्यायवर्ती धनबल और अत्यन्त रूपवान् धर्मवाह ॥ १९ ॥

पुत्रास्तस्यापरे पञ्च सुबलः सुरथः समः ।
सुदर्शनः पञ्चमश्च सुधन्वापि महाबलः ।
एवंविधेन सैन्येन स्थितः पार्थबलं प्रति ॥ २० ॥

उनके पाँच पुत्र भी थे, जिनके नाम थे—सुबल, सुरथ, सम, सुदर्शन और पाँचवाँ महाबली सुधन्वा । ऐसे वीरोंसे भरी हुई सेनाको साथ लेकर राजा हंसध्वज अर्जुनकी सेनासे टक्कर लेनेके लिये खड़े थे ॥ २० ॥

हंसकेतुस्ततः सैन्यं व्यूहयामास सत्वरः ।
दुन्दुभिं ताडयामास गजारूढो जगाम सः ॥ २१ ॥

तदनन्तर राजा हंसध्वजने नगाड़ा बजवाकर अपनी सेनाको शीघ्र ही व्यूहके आकारमें इकट्ठी होनेकी आज्ञा दी और स्वयं गजराजपर सवार होकर चले ॥ २१ ॥

निरगच्छंस्ततो वीरास्तेनाज्ञप्ताः पुराद् बहिः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कश्चित् कवचमादाय पूजयामास मारिष ॥ २२ ॥
तानि शस्त्राणि चास्त्राणि हुत्वा चैव हुताशनम् ।
तथान्ये निर्गता वीराः सर्वे ते समसाहसाः ॥ २३ ॥

तब उनकी आज्ञा पाकर सभी वीर नगरसे बाहर निकलने लगे। आर्य! कोई वीर अपने कवचको लेकर उसकी पूजा करने लगा तथा दूसरे योद्धा अग्निमें आहुति डालकर और अपने शस्त्रास्त्रोंको लेकर नगरसे बाहर निकले; वे सब-के-सब समान साहसवाले थे ॥ २२-२३ ॥

भोजयित्वा द्विजगणान् पायसेन घृतेन च ।
निर्ययुस्ते रथैरेव गजैर्मत्तैस्तथापरे ॥ २४ ॥

कुछ वीर ब्राह्मणोंको खीर और घीसे बने हुए पदार्थ भोजन कराकर चले। उनमेंसे कुछ रथपर सवार थे तथा दूसरे मदमत्त गजराजोंपर ॥ २४ ॥

हयैरन्ये प्रार्थयन्तस्तत्र युद्धं भयानकम् ।
चामरच्छत्रिणः सर्वे सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ २५ ॥

दूसरे योद्धा वहाँ घोर संग्राम करनेकी इच्छासे घोड़ोंपर चढ़कर प्रस्थित हुए। उस समय सभी छत्र-चँवरधारी वीर सिंहनाद करने लगे ॥ २५ ॥

तेषां प्रियाः स्थिताः सर्वाः प्रासादमधिकौतुकम् ।
प्रासादस्थाश्च पश्यन्त्यः प्रब्रुवन्त्यश्च शोभनम् ॥ २६ ॥

उन वीरोंकी प्यारी पत्नियाँ कौतुक देखने योग्य अट्टालिकाओंपर चढ़ गयीं और वहाँ बैठकर वे सभी सेनाके प्रस्थानका दृश्य देखती हुई आपसमें सुन्दर बातें करने लगीं ॥

काचिज्जगाद वाक्यं तु प्रियां तां सुन्दरीं प्रति ।
सखि युद्धे प्रयात्येष भर्ता ते केशवार्जुनौ ॥ २७ ॥
अधरे तव किं भद्रे कृष्णोऽयं दृश्यते व्रणः ।
तत् कथं लज्जसे नैव भवती व्रणदर्शनात् ॥ २८ ॥

उनमेंसे एक स्त्री दूसरी परम सुन्दरी प्यारी सहेलीसे कहने लगी—'सखि! तुम्हारे ये पतिदेव श्रीकृष्ण और अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये जा रहे हैं। परंतु भद्रे! तुम्हारे अधरपर यह काला घाव-सा क्या दिखायी देता है? इस घावके दीखनेसे तुझे लज्जा क्यों नहीं आती?' ॥ २७-२८ ॥

तामुवाचापरा तत्र माधवेन तवाधरः ।
समुच्चरति दुष्टेऽसौ भर्त्रा युक्तं प्रशास्यते ॥ २९ ॥

तब वहाँ उससे दूसरी स्त्री बोली—'दुष्टे! तेरा अधर श्रीकृष्णका नामोच्चारण नहीं करता, अतः तेरे पति इसे जो दन्तक्षतके रूपमें दण्ड देते हैं, वह उचित ही है' ॥ २९ ॥

एतज्जातं सुन्दरं मे विकीर्णास्ते कथं कचाः ।
पररन्ध्रेषु सर्वेषां दृष्टिर्गच्छत्यचेतसाम् ॥ ३० ॥
धीमतां सुकृते याति नात्र कार्या विचारणा ।

(तब उसने उत्तर दिया—) 'यह तो मेरे लिये बहुत सुन्दर हुआ; परंतु तुम्हारे केश क्यों बिखरे हुए हैं? इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है, क्योंकि सभी अज्ञानियोंकी दृष्टि (अपना दोष न देखकर) पराये छिद्रोंपर ही जाती है; परंतु जो बुद्धिमान् हैं, उनकी दृष्टि शुभकर्मोंपर ही पड़ती है ॥

वरं साधुसमीपे हि कृच्छ्रेण वसतां नृणाम् ॥ ३१ ॥
न राज्यं त्वसतां पार्श्वे धिग् राज्यं हि सतो विना ।

'अतएव सत्पुरुषोंके समीप कष्ट सहकर भी निवास करना मनुष्योंके लिये श्रेयस्कर है, परंतु असत्पुरुषोंके संनिकट यदि राज्यकी प्राप्ति होती हो तो भी वह ठीक नहीं है; क्योंकि सत्पुरुषोंकी संगति बिना उस राज्यको धिक्कार है' ॥ ३१½ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्यास्तदा सा गजगामिनी ॥ ३२ ॥
प्रत्युवाच हसन्तीव मूढे कृष्णं न पश्यसि ।
त्वया मयात्र ज्ञातव्यं किमप्यस्ति महारणे ॥ ३३ ॥

तब वह गजगामिनी अपनी सखीकी यह बात सुनकर हँसती हुई बोली—'मूढे! तू अपने काले व्रणको नहीं देखती। इस महायुद्धमें मुझे और तुझे और भी कुछ जानने योग्य वस्तु है?' ॥ ३२-३३ ॥

ललाटं सव्रणं पश्य हंसगद्गदभाषिणि ।
सर्वत्र भावलाभार्थं नराः कुर्वन्ति सुक्षतम् ॥ ३४ ॥
स्त्रीशरीरमिदं मूढे तत्त्वं वेत्सि न चात्मनः ।
इमां पृच्छामि सुदतीं परं कौतूहलं हि मे ॥ ३५ ॥

'हंसके समान गद्गद स्वरमें बोलनेवाली सखी! मेरे इस दन्तक्षतयुक्त ललाटको तो देख। पुरुष भाव (रति) की प्राप्तिके लिये (स्त्रियोंके शरीरको) सर्वत्र क्षत-विक्षत कर देते हैं। मूढ़े! तू अपने इस तत्त्वको नहीं जानती है, अतः मैं इस सुन्दर दाँतोंवालीसे पूछती हूँ; क्योंकि मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥ ३४-३५ ॥

चन्दनं वरमाल्यानि वासांसि रुचिराणि च ।
परिम्लानानि सन्द्राया किमेतत् कारणं वद ॥ ३६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'इस मन्दगामिनीके चन्दनके लेप, पुष्पहार, सुन्दर वस्त्र सभी मलिन हो गये हैं। बताओ, इसका क्या कारण है?'॥

सुन्दर्युवाच

ललाटं सव्रणं मन्ये भद्रायाः सखि मण्डितम्।
कृष्णेनात्र पदं दत्तं वदन्ति किल योगिनः॥ ३७॥

सुन्दरी बोली—सखी! मैं तो भद्राके ललाटका क्षत-विक्षत हो जाना उसकी शोभा ही समझती हूँ; क्योंकि योगी-जन ऐसा कहते हैं कि अवश्य ही कृष्णने उसपर अपना पैर रख दिया है॥ ३७॥

न वक्तव्यं पुनश्चैवं पाण्डवस्य तुरङ्गमम्।
गृहीतुं यान्ति कुशला मरालध्वजसैनिकाः॥ ३८॥

अब तुझे पुनः ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिये; क्योंकि इस समय राजा हंसध्वजके युद्धकुशल सैनिक अर्जुनके अश्वको पकड़नेके लिये जा रहे हैं॥ ३८॥

जैमिनिरुवाच

ततो दुन्दुभिनादेन निर्गताः क्षत्रिया रणे।
नीतः कटाहस्तैलेन पूरितो राजशासनात्॥ ३९॥
न निर्गच्छति यः कश्चित् कटाहे तैलपूरिते।
पात्यते ज्वलिते घोरे नप्तापुत्रसहोदराः॥ ४०॥
आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणां विप्राणां मानखण्डनम्।
पृथक्छय्या च नारीणामशस्त्रवध उच्यते॥ ४१॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर नगाड़ेकी आवाज सुनकर क्षत्रिय वीर युद्धस्थलमें जानेके लिये निकल पड़े। उस समय राजाकी आज्ञासे वहाँ एक तैलसे भरा हुआ कड़ाहा लाया गया (और यह घोषणा करा दी गयी कि) 'जो कोई युद्धार्थ नगरसे बाहर नहीं निकलेगा (तथा ठीक समयपर उपस्थित न होगा), वह चाहे राजाका नाती, पुत्र अथवा सहोदर भाई ही क्यों न हो, उसे इस उबलते हुए तैलके भयंकर कड़ाहेमें डलवा दिया जायगा; क्योंकि नरेशोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन, ब्राह्मणोंकी मानहानि और स्त्रियोंके लिये पतिसे पृथक् शय्या—यह उनके लिये बिना शस्त्रके ही वधके समान कहा गया है'॥ ३९–४१॥

आज्ञाभङ्गं नरेन्द्राणां न करोति नरः क्वचित्।
शङ्खं पुरोहितं चक्रे तेनायं तीव्रशासनः॥ ४२॥

इसीलिये कहीं भी मनुष्य राजाओंकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करते हैं। इन राजा हंसध्वजने तो महर्षि शङ्खको अपना पुरोहित बना लिया है, इस कारण इनका शासन और भी कठोर है॥ ४२॥

राज्ञः पुरोहितश्चास्य नीतिशास्त्रविशारदः।
फलान्यपहृतान्यासन् भ्रातुस्तेन महात्मना॥ ४३॥
छिन्नं बाहुयुगं स्वं हि सतामाज्ञा विचिन्त्यताम्।

इन राजाके पुरोहित महर्षि शङ्ख नीतिशास्त्रके विशेषज्ञ हैं। एक बार उन महात्माने अपने भाईसे बिना पूछे उनके फल ले लिये थे, इस अपराधके दण्डस्वरूप उन्होंने स्वयं ही अपनी दोनों भुजाओंको कटवा दिया था; अतः सत्पुरुषोंकी आज्ञाका सदा ध्यान रखना चाहिये॥ ४३½॥

पुरोहितवशाद् राजा नीतिज्ञः सर्वदा धराम्॥ ४४॥
सम्यक् पालयमानोऽसौ रणे जेता परान् स्थितान्।

नीतिविशारद पुरोहितके कारण राजा भी बड़े नीतिज्ञ हैं। ये सर्वदा सम्यक् प्रकारसे पृथ्वीका पालन करते हैं और युद्धमें सम्मुख उपस्थित हुए शत्रुओंके भी विजेता हैं॥ ४४½॥

एवंविधं कटाहं तं विलोक्य नृपशासनात्॥ ४५॥
सुधन्वा प्रथमं पुत्रो निर्ययौ नृपतिं प्रति।
नमस्कृत्याथ जननीं गृहीत्वा परमं धनुः॥ ४६॥
अवदन्मातरं युद्धे पार्थं गच्छामि योधितुम्।
हरिं समानयिष्यामि रक्षितं पाण्डवेन हि॥ ४७॥

तदनन्तर राजाकी आज्ञासे लाये गये उस खौलते हुए तैलके कड़ाहेको देखकर राजकुमार सुधन्वा अपना उत्तम धनुष लेकर सबसे पहले ही राजाके पास जानेको उद्यत हुआ। उस समय वह मातृ-चरणोंमें प्रणाम करके कहने लगा—'माँ! मैं विख्यात वीर अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये रणक्षेत्रमें जा रहा हूँ और उन पाण्डुपुत्रद्वारा सुरक्षित उस 'हरि' (घोड़े) को जीतकर ले आऊँगा'॥ ४५–४७॥

मातोवाच

गच्छ पुत्र हरिं युद्धे विजित्य मम संनिधौ।
हरिं चतुष्पदं त्यक्त्वा तं समानय मुक्तिदम्॥ ४८॥

तब माताने कहा—बेटा! रणमें जाकर 'हरि' को जीतकर अवश्य मेरे पास ले आ; परंतु लाना मुक्तिदाता 'हरि' को, चार पैरवाले पशुको नहीं॥ ४८॥

बहुधा नारदः प्राह तस्य कृष्णस्य चेष्टितम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मद्भर्त्रा विजिता वीरा बहवोऽपि रणाङ्गणे ॥ ४९ ॥
न चैकः कंसहन्तायं विदृष्टः स्वेन चक्षुषा।
रात्रिंदिवा हरिं ब्रूते तं पश्यामि तथा कुरु ॥ ५० ॥

देवर्षि नारद उन श्रीकृष्णके चरित्रोंका अनेक बार वर्णन कर चुके हैं। मेरे पतिदेवने भी आजतक युद्धस्थलमें बहुत-से वीरोंपर विजय प्राप्त की है, परंतु अभीतक उन्हें अपने नेत्रोंसे कंसका वध करनेवाले श्रीकृष्णका दर्शन नहीं हो सका है। पुत्र! जिन श्रीहरिका गुण-गान लोग रात-दिन किया करते हैं, उनका दर्शन मुझे जिस प्रकार हो सके, वैसा प्रयत्न करना ॥

बहुधा कुरु तत् कर्म येन तुष्यति केशवः।
न त्वयं वशतामेति दूराद् दूरं पलायते ॥ ५१ ॥

तू आज प्रायः वही कर्म करना, जिससे श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जायँ; क्योंकि वे शीघ्र वशीभूत नहीं होते, बल्कि चेष्टा करनेपर दूर-से-दूर भाग जाते हैं ॥ ५१ ॥

चक्षुर्विषयमापन्नः पश्य भाग्यं महाबलः।
पार्थं धारय भद्रं ते वशगस्ते हरिर्भवेत् ॥ ५२ ॥

परंतु तू अपना सौभाग्य तो देख कि वे ही महाबली श्रीकृष्ण आज तेरे नेत्रोंके विषय होनेवाले हैं। वत्स! तेरा कल्याण हो। यदि तू किसी प्रकार अर्जुनको रणमें छका दे (अर्थात् उन्हें व्याकुल कर दे) तो श्रीकृष्ण तेरे वशीभूत हो जायँगे ॥ ५२ ॥

स्वभक्तं न त्यजत्येष मनाक् पुत्र मया श्रुतम्।
यथा वनगतं वत्सं त्यक्त्वा नाऽऽयाति सौरभी ॥ ५३ ॥
तथाऽऽपत्सु न कृष्णोऽपि स्वजनं परिमुञ्चति।
तदग्रे न भयं कार्यं कृष्णाद् भीतो न जीवति ॥ ५४ ॥

बेटा! मैंने सुना है कि श्रीकृष्ण अपने भक्तको थोड़ी देरके लिये भी नहीं छोड़ सकते। जैसे वनमें गये हुए बछड़ेको छोड़कर गौ घर नहीं लौटती, उसी तरह श्रीकृष्ण भी अपने भक्तको विपत्तिमें अकेला नहीं छोड़ते। उनके सामने जाकर तू भयभीत न होना; क्योंकि श्रीकृष्णसे डरनेवाला जीवित नहीं रह सकता ॥ ५३-५४ ॥

प्रहसिष्यन्ति मां सर्वे लोकाः सम्बन्धिनस्तथा।
तव भद्रे सुतः कृष्णं निरीक्ष्य विमुखोऽभवत् ॥ ५५ ॥

यदि तू डर गया तो सारी जनता तथा सम्बन्धीलोग मुझे हँसेंगे कि 'भद्रे! तेरा पुत्र श्रीकृष्णको देखकर रणसे विमुख हो गया' ॥ ५५ ॥

तथाविधं न कर्तव्यं पुत्र सूचकभाषितम्।
मयाद्य हर्षः क्रियते पतने तव पुत्रक ॥ ५६ ॥

पुत्र! तू निन्दकोंके कहने योग्य वैसा निन्द्य कर्म मत करना। बेटा! यदि तू आज रणमें धराशायी हो जायगा तो मुझे उसमें बड़ा हर्ष प्राप्त होगा ॥ ५६ ॥

यत् तु लोकविरुद्धं च पुत्रं प्रति भवेद् वचः।
न चेतसि मदीयेऽत्र जायते लोकभाषितम् ॥ ५७ ॥

परंतु यदि लोग मेरे पुत्रके प्रति विरुद्ध बातें कहें तो इस विषयमें उन लोगोंका वह कथन मेरे चित्तमें समाता नहीं है ॥ ५७ ॥

हरेः किं सम्मुखः पुत्र पतितः पतितो भवेत्।
तेनैव चोद्धृताः सर्वे आत्मना चैकविंशतिः ॥ ५८ ॥

बेटा! श्रीकृष्णके सम्मुख मरनेवाला मनुष्य क्या मरा हुआ कहलाता है? नहीं, वह तो अपने सहित अपनी सारी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करनेवाला होता है ॥ ५८ ॥

रोदनं पुत्र ताः सर्वाः कुर्वन्तु भुवि योषितः।
यासां पुत्राश्च पौत्राश्च न व्रजन्ति हरिं प्रति ॥ ५९ ॥

वत्स! भूतलपर वे ही सारी स्त्रियाँ रोदन करें, जिनके पुत्र-पौत्र भगवान् श्रीहरिकी ओर नहीं जाते ॥ ५९ ॥

सुधन्वोवाच

सर्वं ते भाषितं मातः करिष्ये हरिमानये।
पौरुषं हि मया कार्यं जयो दैवे प्रतिष्ठितः ॥ ६० ॥
तवोदरे न संजातस्तत्र चेत् केशवं प्रभुम्।
विलोक्य विमुखो भूयां गच्छेयं सद्गतिं न हि ॥ ६१ ॥

सुधन्वाने कहा—माँ! मैं तुम्हारे सारे कथनको पूर्ण करूँगा और रणमें जी-जानसे लड़कर हरि (घोड़े तथा श्रीकृष्ण) को ले आऊँगा। पुरुषार्थ करना मेरे अधीन है, विजयरूप फल दैवके हाथमें है; परंतु युद्धस्थलमें भगवान् श्रीकृष्णको देखकर यदि मैं विमुख हो जाऊँ तो न तुम्हारे पेटसे पैदा हुआ कहाऊँ और न मुझे सद्गतिकी ही प्राप्ति हो ॥ ६०-६१ ॥

जैमिनिरुवाच

एतावदुक्त्वा वचनं यावद् गच्छति वीर्यवान्।
तावद्वीराजितः सम्यक् तया कुवलया नृप ॥ ६२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लाजैश्च सुमनोभिश्च गन्धैश्चोच्चैः पुनः पुनः।
कण्ठे मालां पातयित्वा भगिनी वाक्यमब्रवीत् ॥ ६३॥

जैमिनिजी कहते हैं--जनमेजय! मातासे इतनी बात कहकर पराक्रमी सुधन्वा ज्यों ही चलनेको उद्यत हुआ त्यों ही बहिन कुबलाने आकर उसकी सुन्दर ढंगसे आरती उतारी और खील, पुष्प तथा उत्तम सुगन्धित पदार्थोंकी बारंबार उसपर वर्षा की, फिर गलेमें माला पहनाकर वह इस प्रकार कहने लगी ॥ ६२-६३ ॥

कुबलोवाच

योद्धुं धनंजयं यासि साधु योधय बान्धव।
दारुणो मम वासोऽयं श्वशुरस्य गृहे सदा ॥ ६४ ॥

कुबला बोली--प्यारे भाई! तुम अर्जुनके साथ युद्ध करनेके लिये जा रहे हो तो जाओ, परंतु उनसे ठीक तौरसे लड़ना; क्योंकि मेरा ससुरालमें रहना सदा दारुण कष्ट देता है ॥ ६४ ॥

ज्येष्ठादयो हसन्तीमे देवराश्च प्रहासिनः।
मां तत्र निवसन्तीं तु यज्जगुस्तत्परं शृणु ॥ ६५ ॥

जब मैं वहाँ रहती हूँ, तब मेरे ज्येष्ठ आदि तथा हास्य-कुशल देवर मेरी हँसी उड़ाते हैं। वे लोग जो कुछ कहते हैं, उसे सुनो ॥ ६५ ॥

कुबले जनकस्तेऽयं मूर्ख एवोपलक्ष्यते।
ब्रूते कृष्णं प्रजेष्यामि यथा काशीश्वरो जितः ॥ ६६ ॥

(वे कहते हैं—) 'कुबले! तुम्हारा यह पिता मूर्ख ही दिखायी पड़ता है। यह कहता है कि जैसे मैंने काशिराजको जीत लिया है, उसी तरह श्रीकृष्णको पराजित कर दूँगा ॥ ६६ ॥

स्वदेहेन न शक्नोति बलेन सहितः पुरीम्।
रम्यां द्वारवतीं मन्दो गन्तुं जेतुं तमिच्छति ॥ ६७ ॥

'वह मूर्ख जब अपनी देह तथा सेनाके साथ उस रमणीय द्वारकापुरीतक जानेके लिये भी समर्थ नहीं है, तब उन्हें जीतनेकी इच्छा कैसे करता है' ॥ ६७ ॥

सुधन्वोवाच

कुबले पितृवाक्यं तद् देवराणां च भाषितम्।
सर्वं सत्यं करिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥ ६८ ॥
नमस्कृत्यात्र भवतीं रणे यामि हरिं प्रति।

सुधन्वाने कहा--कुबला बहिन! मैं अपने शस्त्रोंकी सत्य शपथ करता हूँ कि पिताका वचन तथा तुम्हारे देवरोंका वह कथन—सभी सत्य कर दिखाऊँगा। मैं अभी अभी तुम्हें प्रणाम करके श्रीहरिसे लड़नेके लिये रणभूमिमें जा रहा हूँ ॥ ६८½ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं बाह्यां कक्ष्यामगात् तदा ॥ ६९ ॥
ततो ददर्श तां देवीं चारुनेत्रपयोधराम्।
अग्रतश्चन्दनयुतां सहितां चन्द्रकेण तु ॥ ७० ॥

बहिनसे इतनी बात कहकर सुधन्वा उस समय बाहरी ड्योढ़ीपर गया। वहाँ उसने सुन्दर नेत्रों और स्तनोंवाली अपनी पत्नी प्रभावतीको देखा, जो हाथमें कपूरयुक्त चन्दन लिये हुए पहलेसे ही खड़ी थी ॥ ६९-७० ॥

साम्भोजैश्चम्पकैः पात्रं काञ्चनस्थं सदीपकम्।
गृहीत्वा संस्थिता तन्वी छन्नं दूर्वाक्षतैरपि ॥ ७१ ॥
कर्पूरपुलकोद्भूतैर्दीपैः पञ्चशिखैर्नवैः।

वह कृशाङ्गी हाथमें एक सोनेकी थाली लिये खड़ी थी, जिसमें जलता हुआ दीपक था, जो कमल तथा चम्पाके पुष्पों तथा दूब और अक्षतोंसे भरी थी वह थाली कपूरकी डलियोंके जलानेसे प्रकट हुए पाँच शिखावाले नवीन दीपकोंसे उद्भासित हो रही थी ॥ ७१½ ॥

सा रणद्वलया बाला चारुनूपुरमेखला ॥ ७२ ॥
कौशेयं बिभ्रती शुभ्रं कञ्चुकीं पुष्परागिणीम्।
मुक्तामालां सुकण्ठे च मुखरागं तथारुणम् ॥ ७३ ॥

उस समय सुन्दर पावजेब तथा करधनीसे विभूषित उस सुन्दरीके हाथके कंगन खनखना रहे थे। वह सुन्दर रेशमी साड़ी और पुष्पके-से रंगवाली चोली धारण किये हुए थी। उसके सुन्दर गलेमें मोतियोंका हार सुशोभित हो रहा था तथा उसके मुख अर्थात् अधरका रंग (ताम्बूल-सेवन आदिके कारण) लाल था ॥ ७२-७३ ॥

अर्चयामास तं वीरं पतिं पतिपरायणा।
निरीक्षन्ती च भर्तारं तदा दृष्ट्वातिवक्रया ॥ ७४ ॥
तथाविधेन पात्रेण पुनर्नीराजयत्यसौ।
नीराजयित्वा स्वं कान्तं प्रत्युवाच मनस्विनी ॥ ७५ ॥

उस पतिव्रता नारीने उस समय अपने पति वीरवर सुधन्वाकी पूजा की और पुनः तिरछी चितवनसे स्वामीकी ओर निहारती हुई उस सजी-सजायी थालीद्वारा वह पतिकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आरती उतारने लगी। आरती समाप्त होनेपर वह मनस्विनी अपने प्रियतमसे यों बोली ॥ ७४-७५ ॥

प्रभावत्युवाच

पश्यामि वदनं नाथ कृष्णदर्शनलालसम्।
तावकं मां परित्यज्य कुतो यास्यसि वै क्षणम् ॥ ७६ ॥

प्रभावतीने कहा—प्राणनाथ! मैं आपके श्रीकृष्णके दर्शनार्थी मुखकमलका दर्शन कर रही हूँ, परंतु इस समय आप मेरा परित्याग करके कहाँ जा रहे हैं? ॥ ७६ ॥

एकपत्नीव्रतं नष्टं तव पश्यामि साम्प्रतम्।
यया वृतोऽसि यां यासि सा न तुल्या भवेन्मम ॥७७॥

स्वामिन्! मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आज आपका एकपत्नीव्रत नष्ट हो जायगा। पर जिसने आपका वरण किया है और आप जिसपर अनुरक्त होकर जा रहे हैं, वह स्त्री मेरी समानता नहीं कर सकेगी ॥ ७७ ॥

सा सर्वगामिनी नाहं सद्भिः कस्मात् प्रवर्ण्यते।
पिता गच्छति यामेव पुत्रस्तामेव गच्छति ॥ ७८ ॥

वह स्त्री सभीके प्रति गमन करनेवाली है; यहाँतक कि जिस (मुक्ति) रमणीके पास पिता जाता है, पुत्र भी उसीके प्रति गमन करता है; फिर न जाने सत्पुरुष ऐसी कुलटाकी विशेष प्रशंसा क्यों करते हैं। परंतु मैं वैसी नहीं हूँ (मैंने आपके सिवा दूसरेकी ओर कभी भूलकर भी नहीं देखा है) ॥ ७८ ॥

ईदृशी हृदये मुक्तिस्तव जागर्ति सर्वदा।
तां प्रदास्यति गोविन्दो मत्वा गच्छसि सत्वरम् ॥७९॥

नाथ! मालूम होता है वही 'मुक्ति' रमणी सदा आपके हृदयमें बस रही है और उसे श्रीकृष्ण आपको प्रदान कर देंगे—इस आशासे आप दौड़े जा रहे हैं ॥ ७९ ॥

पुंसां चित्तं क्षणं याति सुरनारीनिषेवणे।
विवेको नैव जनितः पुत्रस्तस्मात् किमाहवे ॥ ८० ॥

ठीक है, पुरुषोंका चित्त क्षणभरमें ही देवाङ्गनाओंका सेवन करनेके लिये लालायित हो जाता है, परंतु यदि आपने विवेक नामक पुत्र उत्पन्न नहीं किया तो युद्धमें जानेसे क्या लाभ? ॥ ८० ॥

लौल्याद् गच्छसि कृष्णाग्रे हरिं वीक्ष्य न सा प्रिया।
भवित्री ते महाबाहो प्रियैकाहं पुनर्गृहे ॥ ८१ ॥

महाबाहो! आप चपलतावश श्रीकृष्णके सामने जा तो रहे हैं, परंतु श्रीहरिको देखकर (उनकी अतुलित मुखच्छविके सामने) वह मुक्ति आपको कभी प्रिय नहीं लगेगी, फिर भी घरमें मैं अकेली ही आपकी प्रियतमा रहूँगी ॥ ८१ ॥

मम सङ्गात्त्वया लब्धो विवेकाख्यो हि पुत्रकः।
विवेकस्त्वां तु गच्छन्तं न वारयति देहजः ॥ ८२ ॥

प्रियतम! मेरे ही संगसे आपको विवेक नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई है, किंतु अपने ही शरीरसे उत्पन्न हुआ वह विवेक भी (पर-नारीके प्रति) जाते हुए आपको मना नहीं कर रहा है ॥ ८२ ॥

यथा नरोऽपरां याति तथा नारी न गच्छति।
गते त्वयि गमिष्यामि मोक्षं चेन्न त्वसौ परः ॥ ८३ ॥

इसके सिवा जैसे पुरुष पर-स्त्रीके पास जाता है, उसी तरह स्त्री पर-पुरुषके पास नहीं जाया करती, नहीं तो आपके (मुक्तिके पास) चले जानेपर यदि मैं मोक्षके पास चली जाऊँ तो (आप क्या कर सकते हैं) क्या वह पर-पुरुष नहीं है? ॥ ८३ ॥

विवेकसुतसम्पन्नां मां गृहीत्वा भविष्यसि।
संसारेऽस्मिन् महाघोरे कृतकृत्यो न संशयः ॥ ८४ ॥

अतः नाथ! विवेकरूपी पुत्रसे संयुक्त मुझे ग्रहण करके आप इस महान् घोर संसारमें कृतकृत्य हो जायँगे, इसमें संदेह नहीं है ॥ ८४ ॥

विवेको रक्षते नित्यं मम नाथ कलेवरम्।
अन्या नार्योऽपि गच्छन्ति विवेकरहिताः परम् ॥ ८५ ॥

प्राणनाथ! विवेक नामक अदृश्य पुत्र सदा मेरे शरीरकी रक्षा करता रहता है। परंतु दूसरी जिन स्त्रियोंके पास विवेक नामक पुत्र नहीं है, वे ही पर-पुरुषके पास जाया करती हैं ॥ ८५ ॥

बालत्वे जनितः पुत्रो विवेकस्तेन कश्मलम्।
विन्दाम्यहं व्रजन्ती तत् कैवल्यं प्रति मारिष ॥ ८६ ॥

मुझे तो बचपनसे ही विवेक-पुत्र प्राप्त है, इसीसे आर्य! मुझे उस मोक्षके पास जानेमें संकोच हो रहा है ॥ ८६ ॥

गते त्वयि गमिष्यामि मोक्षं वीर त्वया सह।
वक्रे वक्रं प्रकर्तव्यं धन्ये धन्यं समाचरेत् ॥ ८७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परंतु वीर! आपके (मुक्तिके पास) चले जानेपर आपके सामने ही मैं मोक्षके समीप चली जाऊँगी; क्योंकि (यह नियम है कि) शठके साथ शठता और सज्जनके साथ सज्जनताका व्यवहार करना चाहिये ॥ ८७ ॥

आदावेव गमिष्यामि चिन्तयन्ती तवाननम् ।
मुक्तिस्त्वां तु हसन्तीव भयान्मम महामते ॥ ८८ ॥
स्वनारीं यः परित्यज्य प्रार्थयत्येष मामिति ।
साध्वीं तथाविधां भूमौ विवेकेनावृतां नृपः ॥ ८९ ॥

इसलिये महामते! मैं आपके मुखका ध्यान करती हुई आपसे पहले ही मोक्षके समीप चली जाऊँगी; नहीं तो मुक्ति मेरे भयसे भीत होकर आपका उपहास-सा करती हुई कहेगी कि यह कैसा राजा है, जो भूतलपर अपनी वैसी विवेक सम्पन्ना सती-साध्वी पत्नीका परित्याग करके मुझे पानेकी कामना कर रहा है ॥ ८८-८९ ॥

नाथ श्रद्धां न पश्यामि तव भावप्रवर्तिनीम् ।
कथिता सा यया मुक्तिरर्चनान्माधवस्य तु ॥ ९० ॥

नाथ! जिस श्रद्धासे संयुक्त होकर श्रीकृष्णकी पूजा करनेसे उस मुक्तिकी प्राप्ति कही गयी है, भावको जाग्रत् करनेवाली वैसी श्रद्धा भी तो मैं आपमें नहीं देख रही हूँ ॥ ९० ॥

पादौ तस्याः पातनीयौ छित्त्वा नूनं मया नृप ।
स्वमन्दिरं यथा येयं न गच्छति परं जनम् ॥ ९१ ॥

राजकुमार! निश्चय ही मुझे उस मुक्तिके दोनों पैरोंको काटकर गिरा देना चाहिये, जिससे वह अपने घरको छोड़कर पर-पुरुषके समीप न जाय ॥ ९१ ॥

श्रेयो हि भाषितं तस्या विविधं चौषधं हितम् ।
विना कृष्णाश्रयादन्यं कथयिष्यति कारणम् ॥ ९२ ॥

यद्यपि उसका कथन श्रेयस्कर तथा अनेक प्रकारकी ओषधिकी भाँति हितकारी है, तथापि वह श्रीकृष्णकी शरणके अतिरिक्त अपनी प्राप्तिका दूसरा क्या कारण बतायेगी? ॥९२॥

मुखमस्यावृतं विद्धि पांसुभिर्हरिसम्भवैः ।
एवं संचिन्त्य गच्छाशु यत्र गन्तुं समुद्यतः ॥ ९३ ॥

उसके मुखको तो घोड़ोंकी टापोंसे उठी हुई धूलसे आच्छादित समझना चाहिये, ऐसा विचारकर आप जहाँ जानेके लिये उद्यत हैं, वहाँ शीघ्र जाइये ॥ ९३ ॥

सुधन्वोवाच

प्राप्यते सा मया भद्रे त्वत्सङ्गान्नात्र संशयः ।
मत्पौरुषमतिक्रम्य वचः प्रोक्तमिदं त्वया ॥ ९४ ॥
वचसानेन मे कामस्तिष्ठन्नपि विनिर्गतः ।
योद्धुं प्रयामि तं कृष्णं मोक्षं प्राप्नुहि शोभने ॥ ९५ ॥

सुधन्वाने कहा—भद्रे! वह मुक्ति मुझे तुम्हारे ही संगसे प्राप्त हो सकती है, इसमें संदेह नहीं है; परंतु तुमने मेरे पुरुषार्थका उल्लङ्घन करके जो बात कही है, तुम्हारे उस कथनसे मेरे हृदयमें जो कामना थी, वह भी जाती रही। शोभने! जब मैं उन श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये जा रहा हूँ, तब तुम भी मोक्षके पास चली जाओ ॥९४-९५॥

चन्दनं वरवासांसि काञ्चनं रत्नसंचयम् ।
शरीरं चापि मे चित्तं त्यक्त्वा गच्छतु भामिनि ॥ ९६ ॥

भामिनि! तुम भी मेरे चन्दन, उत्तम वस्त्र, स्वर्ण रत्नोंके समूह और इस शरीर तथा चित्तको भी त्यागकर चली जाओ ॥ ९६ ॥

यद्यहं त्वां पुरा वेद्मि कैवल्यरसिकां गृहे ।
विवेकोत्पादने यत्नं न कर्ता त्वादृशीं प्रति ॥ ९७ ॥

यदि मैं पहलेसे ही यह जानता कि तुम घरमें रहकर भी मोक्षके प्रति आसक्त हो तो तुम्हारी-जैसी स्त्रीसे विवेक नामक पुत्रको उत्पन्न करनेकी चेष्टा नहीं करता ॥ ९७ ॥

प्रभावत्युवाच

नाथ गच्छसि संग्रामे पार्थं योद्धुं महाबलम् ।
विवेकाख्योऽपि तनयो हृदये मम तिष्ठति ॥ ९८ ॥
स चेन्मूर्तिं दर्शयति त्वां तथा कुरु मे प्रियम् ।
जलदं नात्र पश्यामि स्नुस्नाताहं गते त्वयि ॥ ९९ ॥

प्रभावती बोली—प्राणनाथ! आप महाबली अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये संग्रामभूमिमें जा रहे हैं, पर मेरे हृदयमें जो विवेक नामक पुत्र वर्तमान है, वह जिस प्रकार मूर्तिमान् होकर मेरे सामने प्रकट हो जाय, वैसा मेरा प्रियकार्य कीजिये। मैं आज ऋतु-स्नानसे शुद्ध हुई हूँ। आपके चले जानेपर मैं यहाँ जलाञ्जलि देनेवाला पुत्र भी तो नहीं देख रही हूँ (अतः मेरी इच्छा है कि आपके चले जानेपर जलाञ्जलि देनेवाला एक पुत्र रहे) ॥ ९८-९९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुधन्वोवाच

निरीक्ष्य कृष्णं पार्थं च पुनरायामि तेऽन्तिकम् ।
विजित्य पञ्चभिर्बाणैः सर्वगौ तौ प्रभावति ॥१००॥

सुधन्वाने कहा—प्रभावति ! मैं श्रीकृष्ण और अर्जुनका दर्शन करके उन दोनों सर्वव्यापी वीरोंको पाँच बाणोंद्वारा जीतकर भी तो पुनः तुम्हारे पास आ सकता हूँ ॥ १०० ॥

प्रभावत्युवाच

ये प्राप्ता माधवं द्रष्टुं दृष्टो यैर्मधुसूदनः ।
नायान्ति ते पुनरपि संसारेऽस्मिन् कदाचन ॥१०१॥

प्रभावती बोली—नहीं नाथ ! जो लोग श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये गये और जिन्हें उन मधुसूदनका दर्शन प्राप्त हो गया, वे पुनः इस संसारमें कभी भी लौटकर नहीं आते१०१

तत् प्रियावचनं श्रुत्वा सुधन्वा वाक्यमब्रवीत् ।
यदि जानासि देवि त्वं कृष्णस्य किल दर्शनात् ॥१०२॥
पुनरागमनं नास्ति जलदं याचसे वृथा ।

पत्नीकी यह बात सुनकर सुधन्वा कहने लगा—'देवि ! यदि तुम निश्चय ही ऐसा समझती हो कि श्रीकृष्णका दर्शन हो जानेपर पुनरागमन नहीं होता तो फिर व्यर्थ ही अञ्जलि देनेवाले पुत्रकी याचना करती हो ॥ १०२½ ॥

प्रभावत्युवाच

प्राप्नुवन्ति पदं विष्णोस्त एव सुतसंयुताः ॥१०३॥
सुतानुत्पाद्य सम्प्राप्तौ पदं तौ शुकनारदौ ।
सुताननं न पश्यन्ति ज्ञेयास्ते ऋणिनो भुवि ॥१०४॥

प्रभावती बोली—स्वामिन् ! जो पुत्रवान् हैं, उन्हें ही भगवान् विष्णुके पदकी प्राप्ति होती है; क्योंकि शुकदेव और नारद-जैसे महर्षि भी पुत्रोंको उत्पन्न करनेके पश्चात् ही उस परमपदके अधिकारी हुए हैं । जिन्हें पुत्रका मुख देखनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, उन्हें भूतलपर ऋणी समझना चाहिये ॥ १०३-१०४ ॥

पराशां सफलां कृत्वा ये व्रजन्ति हि साधवः ।
तेषां चिन्तितका ण जायन्ते नात्र संशयः ॥१०५॥

जो सत्पुरुष परायी आशाको सफल करके यात्रा करते हैं, उनके सभी अभीष्ट कार्य सिद्ध हो जाते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥ १०५ ॥

पराशां विफलां कृत्वा ये व्रजन्ति धरातले ।
तेषां चिन्तितकार्याणि न सिध्यन्ति कदाचन ॥१०६॥

परंतु जो इस भूतलपर परायी आशाको भंग करके चले जाते हैं, उनके मनोऽभिलषित कार्य कभी भी सिद्ध नहीं होते ॥ १०६ ॥

सुधन्वोवाच

राजानं किं न जानासि भद्रे त्वं तीव्रशासनम् ।
एष घोरः स भयदो रोरवीति च दुन्दुभिः ॥१०७॥
कटाहं तैलसम्पूर्णं सुतप्तं बलनिर्गमे ।
क्षेप्तव्यस्तत्र शीघ्रं यो नायाति रणमण्डले ॥१०८॥

सुधन्वाने कहा—कल्याणी ! क्या तुम उग्र शासनकर्ता महाराजको नहीं जानती हो । सुनो न, यह घोर भय उत्पन्न करनेवाला नगाड़ा बारंबार शब्द कर रहा है । महाराजने सेनाके प्रस्थानके लिये खौलते हुए तैलसे भरा हुआ एक कड़ाहा रखवा दिया है और ऐसी घोषणा करा दी है कि जो शीघ्र ही रणक्षेत्रमें नहीं पहुँचेगा, उसे उसी कड़ाहेमें डाल दिया जायगा ॥ १०७-१०८ ॥

रात्रौ यद् दीयते देवि ऋतुदानं सुतप्रदम् ।
साधवो न प्रशंसन्ति दिवा स्त्रीसङ्गमं क्वचित् ॥१०९॥
सर्वे विनिर्गता वीरा योद्धुं पित्राज्ञयार्जुनम् ।

देवि ! पुत्र प्रदान करनेवाला जो ऋतुदान है, वह भी तो रात्रिमें ही दिया जाता है; क्योंकि सत्पुरुष दिनमें स्त्री-समागमको कभी भी अच्छा नहीं बतलाते । इस समय पिताजीकी आज्ञासे सारे योद्धा अर्जुनसे लोहा लेनेके लिये चले गये हैं (केवल मैं ही शेष हूँ) ॥ १०९½ ॥

प्रभावत्युवाच

सरागां मामजित्वाग्रे यदि गन्तुं त्वमिच्छसि ॥११०॥
अनङ्गेनावृतामेकामङ्गैर्बहुभिरावृताम् ।
कथं सेनां भवाञ्जेतुं दिवा धीरो भविष्यति ॥१११॥

प्रभावती बोली—प्राणनाथ ! यदि आप पहले अङ्गहीन (कामदेव) से व्याप्त हुई मुझ अनुरक्ता अकेली पत्नीपर विजय पाये बिना ही जाना चाहते हैं तो बहुत-से (रथ-सेना, गज-सेना, अश्व-सेना, पैदल-सेनारूप) अङ्गोंसे युक्त उस सेनाको दिनमें जीतनेके लिये आप कैसे समर्थ हो सकेंगे ॥ ११०-१११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृष्णस्य पुरतो वीरैः कालान्तकयमोपमैः।
गतिः का नाम ते नूनं त्वयि नाथेऽद्य मामकी ॥११२॥

वहाँ श्रीकृष्णके सामने कालान्तक और यमराज-तुल्य वीरोंके साथ मुठभेड़ होनेपर न जाने आपकी क्या गति होगी; परंतु इस समय आप-ऐसे स्वामीके सामने ही मेरी तो यह दशा हो रही है ॥ ११२ ॥

सुधन्वोवाच

मैवं वद विशालाक्षि दिवसाः सन्ति तेऽबले।
बहवोऽपि रणे पार्थो नायं पुनरवेक्ष्यते ॥११३॥

सुधन्वाने कहा—विशाल नेत्रोंवाली प्रिये ! तुम ऐसे हठकी बात मत करो; क्योंकि अबले ! अभी तुम्हारे ऋतुकालके बहुत-से दिन शेष हैं, परंतु ये अर्जुन तो पुनः युद्धस्थलमें नहीं दीखेंगे ॥ ११३ ॥

प्रभावत्युवाच

षोडशोऽयं च दिवसो मम नाथ व्यवस्थितः।
ऋतुभङ्गात् तु यत् पापं तत् त्वया ज्ञायते प्रभो ॥११४॥

प्रभावती बोली—नाथ ! मेरे ऋतुकालका आज सौलहवाँ दिन उपस्थित है। प्रभो! ऋतुभङ्ग करनेसे जो पाप होता है, उसे भी आप जानते ही हैं ॥ ११४ ॥

पितुः श्राद्धे षोडशे वै दिवसे ऋतुपूरिते।
एकादशीव्रतं तद्वत् त्रितयं सङ्गतं भवेत् ॥११५॥
किं कर्तव्यं महाबुद्धे संशयेऽस्मिन् सदा नृभिः।
धर्मः सूक्ष्मोऽतिगहनः शक्यते केन वर्तितुम् ॥११६॥

महाबुद्धे ! यदि पिताकी श्राद्धतिथि, ऋतुस्नाता पत्नीका सोलहवाँ दिन और उसी तरह एकादशीव्रत—ये तीनों एक साथ आ पड़ें तो ऐसे महान् संशयके उपस्थित होनेपर मनुष्योंको क्या करना चाहिये ? अरे ! धर्मकी गति तो बड़ी सूक्ष्म एवं अत्यन्त गूढ़ है। ऐसे धर्मका पालन सदा कौन कर सकता है ? ॥ ११५-११६ ॥

सुधन्वोवाच

निर्णीतं विद्यते देवि ऋषिभिर्धर्मसंकटे।
सांवत्सरं तु तातस्य कर्तव्यं भावसंयुतम् ॥११७॥
आद्यायान्नं निशामध्ये कुर्वीत व्रतमुत्तमम्।
प्रियायै ऋतुदानं हि प्रदेयं धीमता गृहे ॥११८॥

सुधन्वाने कहा—देवि ! ऐसे धर्मसंकटके अवसरपर ऋषियोंद्वारा निर्णीत ऐसे वचन मौजूद हैं कि उस समय बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पिताका वार्षिक श्राद्ध करे और आधी रातके समय अन्नको सूँघकर उत्तम एकादशीव्रतको भी पूर्ण करे, तत्पश्चात् घरमें अपनी पत्नीको ऋतुदान भी प्रदान करे ॥ ११७-११८ ॥

धर्मशास्त्रेषु निर्णीतं पुरा धर्मार्थकोविदैः।
सांवत्सरं तु वै श्राद्धं कर्तव्यं पितृभक्तितः ॥११९॥
एकादशीव्रतं चापि कृष्णभक्तिसमन्वितैः।
ऋतुदानं हि कर्तव्यमर्धरात्रात् परं नरैः ॥१२०॥
एष एव परो धर्मो गृहस्थानां वरानने।

धर्मके तत्त्वज्ञ महर्षियोंने धर्मशास्त्रोंमें पहलेसे ही ऐसा निर्णय दे रखा है कि (ऐसे अवसरपर जब तीनों एक साथ उपस्थित हो जायँ, तब) पितृभक्तिपूर्वक वार्षिक श्राद्ध करना चाहिये और श्रीकृष्णके भक्तोंको [आधी रातके समय अन्न सूँघकर] एकादशीव्रतका भी पालन करना चाहिये। तत्पश्चात् आधी रातके बाद मनुष्योंको अपनी पत्नीके लिये ऋतुदान देना भी उचित है। सुमुखि ! गृहस्थोंका यही परम धर्म है ॥ ११९-१२०½ ॥

सुधन्वनो वचः श्रुत्वा वाक्यमाह प्रभावती ॥१२१॥
पिता तवाहवे भाति व्रतमद्य न विद्यते।
ऋतुदानं ततो नाथ दत्त्वा याहि रणे हरिम् ॥१२२॥

तब सुधन्वाकी बात सुनकर प्रभावती कहने लगी—'नाथ ! आपके पिताजी युद्धस्थलमें शोभित हो रहे हैं [अतः श्राद्धका तो कोई प्रसंग ही नहीं है] और आज एकादशीका व्रत भी नहीं है, इसलिये मुझे ऋतुदान देकर ही रणभूमिमें अर्जुनसे लड़नेके लिये जाइये ॥ १२१-१२२॥

जैमिनिरुवाच

एतावदुक्त्वा वचनं प्राणनाथं महाबलम्।
उभाभ्यामपि हस्ताभ्यां कोमलाभ्यां वरानना ॥१२३॥
तं कण्ठे धारयामास सालं वल्लीव कानने।
न शशाक ततो गन्तुं प्रियाबाहुनियन्त्रितः ॥१२४॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! इतनी बात कहकर सुमुखी प्रभावती अपने महाबली स्वामी सुधन्वाको अपने दोनों सुकुमार हाथोंसे पकड़कर गलेसे लिपट गयी, ठीक उसी तरह जैसे वनमें लता साखूके वृक्षसे चिपक जाती है। तब पत्नीके भुजपाशमें बँधा हुआ सुधन्वा रणभूमिमें जानेसे असमर्थ हो गया ॥ १२३-१२४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विमुच्य कवचं भूमौ किरीटं च हसन्नपि।
तया सह दिवा रेमे शयने रत्नमण्डिते ॥१२५॥

तदनन्तर उसने अपने कवच तथा किरीटको उतारकर पृथ्वीपर रख दिया और फिर मुसकराते हुए रत्नोंसे सुशोभित शय्यापर जाकर दिनमें ही उसके साथ रमण किया ॥ १२५ ॥

गर्भं दधौ विशालाक्षी सुस्नातोऽभूत् स भारत।
सुधन्वा रथमारुह्य यावद् गच्छति मन्दिरात् ॥१२६॥
तावद् रणे हंसकेतुर्बलाध्यक्षमुवाच ह।

भारत! उस समागमसे विशालनयनी प्रभावतीने गर्भ धारण किया और सुधन्वा पुनः अच्छी तरह स्नान करके शुद्ध हुआ। फिर महलसे निकलकर रथपर सवार हो जब युद्धके लिये चला, उसी समय राजा हंसध्वजने रणभूमिमें अपने सेनापतिसे कहा ॥ १२६½ ॥

हंसध्वज उवाच

सर्वे वीरा इहायाताः श्रुत्वा नादं च दुन्दुभेः ॥१२७॥
सुधन्वानं न पश्यामि रणमध्ये समागतम्।
ममाज्ञां किं न जानाति कटाहो विस्मृतः कथम् ॥१२८॥

हंसध्वज बोले—सेनापते! नगाड़ेकी आवाज सुनकर सभी वीर युद्धस्थलमें आ गये, परंतु मैं सुधन्वाको रणभूमिमें आया हुआ नहीं देख रहा हूँ। क्या वह मेरी आज्ञाको नहीं जानता? वह कड़ाहेको भूल कैसे गया? ॥ १२७-१२८ ॥

प्रयाणदुन्दुभिरयं लङ्घितः पुत्रकेण किम्।
हरयो मे हरिं प्राप्ता गजा मत्ता धनंजयम् ॥१२९॥
सुधन्वना पृष्ठतः किं क्रियते कर्म कुत्सितम्।
तस्माद् गच्छन्तु यवनाः सबला मुद्गरान्विताः ॥१३०॥
केशेष्वाकृष्य तं दुष्टं विकृष्यन्तु धरातले।
आनयन्तु कटाहस्य पार्श्वे कृष्णपराङ्मुखम् ॥१३१॥

उस नीच पुत्रने प्रयाण करनेके लिये घोषणा करनेवाले इस नगाड़ेका उल्लङ्घन कैसे कर दिया? इस समय मेरे घोड़े उस यज्ञ-सम्बन्धी अश्वके पास तथा मदमत्त गजराज धनको जीतनेवाले अर्जुनके पास जा पहुँचे हैं; परंतु सुधन्वा पीछे रहकर कौन-सा निन्दित कर्म कर रहा है? इसलिये कुछ बलवान् यवन सैनिक हाथमें मुद्गर लेकर जायँ और श्रीकृष्णसे विमुख हुए उस दुष्टके केश पकड़कर पृथ्वीपर घसीटते हुए उसे इस कड़ाहेके पास ले आवें ॥ १२९–१३१ ॥

जैमिनिरुवाच

तेनाज्ञप्तास्ततो राजन् यवनाः शीघ्रकारिणः।
जग्मुस्तन्मन्दिरं रम्यं रत्नचित्रं सुधन्वनः।
ददृशुस्तं समायान्तं भुक्तभोगं नृपात्मजम् ॥१३२॥
प्रोचुस्तच्छासनं भर्तुर्वज्रपातोपमं तदा।

जैमिनिजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर राजाकी आज्ञा पाकर शीघ्रतापूर्वक आदेशका पालन करनेवाले यवन-सैनिक सुधन्वाके उस रमणीय महलमें जा पहुँचे, जिसमें अनेक प्रकारके रत्नोंकी चित्रकारी की गयी थी। उस समय उन्होंने भोग भोगनेके पश्चात् रणक्षेत्रके लिये प्रस्थित हुए राजकुमार सुधन्वाको देखा। तब वे उससे वज्रपातके समान राजाकी उस कठोर आज्ञाका वर्णन करने लगे ॥ १३२½ ॥

यवना ऊचुः

वयं प्राप्ता महाबाहो ग्रहणे तव मारिष ॥१३३॥
आज्ञाभङ्गः किमर्थं हि नृपतेस्तस्य कारितः।
स्थितोऽसि पृष्ठतो नूनं त्वया सर्वं हि वञ्चितम् ॥१३४॥

यवन सैनिकोंने कहा—महाबाहो! हमलोग आपको पकड़नेके लिये आये हैं। आर्य! आपने किसलिये महाराजकी आज्ञाका उल्लङ्घन कराया है? आज्ञा-पालनमें पीछे रहकर निश्चय ही आपने सब कुछ खो दिया ॥ १३३-१३४ ॥

पित्रा तव वयं सर्वे प्रेषिताः स्म बलादितः।
नेतुं त्वां संगरे मन्दं विकृष्य च धरातले ॥१३५॥

इसीलिये आपके पिताजीने हम सब लोगोंको आप-जैसे मन्दबुद्धि पुत्रको बलपूर्वक पकड़कर पृथ्वीपर घसीटते हुए यहाँसे युद्धस्थलमें ले जानेके लिये भेजा है ॥ १३५ ॥

उत्तिष्ठ याहि नृपतिं पार्थसैन्यनिवारकम्।
पद्मव्यूहं समाश्रित्य युद्धशौण्डैः समावृतम् ॥१३६॥

अतः उठिये और महाराजके पास चलिये। इस समय वे नरेश अपनी सेनाको कमलव्यूहाकारमें खड़ी करके रणकुशल वीरोंसे घिरे हुए अर्जुनकी सेनाका निवारण करनेके लिये संनद्ध हैं ॥ १३६ ॥

जैमिनिरुवाच

कुपितं वचनात् तेषां ज्ञात्वा स्वजनकं विभुम्।
सहैव तैः प्रयातोऽग्रे रथमास्थाय तद् बलम् ॥१३७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समुद्रमिव पर्याप्तं समन्ताद् योजनत्रयम्।
ददर्श पितरं वीरो धनंजयजयोत्सुकम्॥१३८॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! उन सैनिकोंके कहनेसे अपने सामर्थ्यशाली पिताको कुपित जानकर सुधन्वा रथपर सवार हो उनके साथ ही आगे-आगे उस सेनादलकी ओर चला, जो महासागरकी भाँति तीन योजन (बारह कोस) तक चारों ओरसे व्याप्त था। वहाँ पहुँचकर उस वीरने अपने पिताको देखा, जो अर्जुनको जीतनेके लिये उत्साहसे परिपूर्ण थे॥ १३७-१३८॥

कुपितं पितरं वीक्ष्य नमस्कृत्य पुरः स्थितः।
सुधन्वानं ततो राजा प्रत्युवाच रुषान्वितः॥१३९॥

सुधन्वा पिताको क्रुद्ध हुआ देखकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके आगे खड़ा हो गया। तब राजा रोषमें भरकर सुधन्वासे बोले॥ १३९॥

हंसध्वज उवाच

किमर्थं शासनं वीर मदीयं लङ्घितं त्वया।

हंसध्वजने कहा—वीर! किस लिये तूने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है?॥ १३९½॥

सुधन्वोवाच

जलदं ते वधूर्गेहे मत्तो याचितुमुद्यता।
तस्मात् स्थिरायितं राजन् प्रयाणेऽस्मिन् मया विभो १४०

तब सुधन्वा कहने लगा—राजन्! घरमें आपकी पुत्रवधू मुझसे जलाञ्जलि देनेवाले पुत्रकी याचना करनेके लिये उद्यत हो गयी थी, विभो! इसी कारण मुझे इस रणक्षेत्रमें पहुँचनेमें विलम्ब हो गया॥ १४०॥

हंसध्वज उवाच

ध्रुवं मूर्खतरस्त्वं हि यदि कृष्णोऽत्र सम्मुखः।
न दृष्टः संगरे साक्षात् त्वया नो वञ्चितं कुलम्॥१४१॥

हंसध्वजने कहा—निश्चय ही तू बड़ा मूर्ख है। जो तूने इस संग्राममें सम्मुख आये हुए साक्षात् श्रीकृष्णके दर्शनकी उपेक्षा कर दी, इससे तो तूने हमारे कुलमें दाग लगा दिया॥ १४१॥

स्वप्रियायै भवान् दत्त्वा जलदं निर्गतः पुरात्।
न तेन पूर्वजानां ते तृप्तिः पूर्णा प्रजायते॥१४२॥

तू जो अपनी पत्नीको जलदाता पुत्र प्रदान करके नगरसे बाहर निकला है, उससे तेरे पूर्वजोंको पूर्ण तृप्ति नहीं प्राप्त हो सकती॥ १४२॥

न त्वदीया मदीयात्र जलदेन हरिं विना।
न च तृप्तिमुपायान्ति दुरात्मंस्ते कथञ्चन।
वरुणस्यापि नो शक्तिः पिपासा पूरणे नृणाम्॥१४३॥

दुरात्मन्! भगवान् श्रीहरिकी कृपा बिना केवल जलदाता पुत्रसे इस संसारमें तुझे अथवा मुझे कभी सद्गति नहीं प्राप्त हो सकती और न वे पितर ही किसी प्रकार तृप्त हो सकते हैं; क्योंकि मनुष्योंकी तृष्णा पूर्ण करनेमें तो वरुण भी समर्थ नहीं है॥ १४३॥

पुत्रिणो यदि गच्छन्ति स्वर्गं मोक्षं सुताधम।
तदा शुनां सूकराणां स्वर्गः स्यात् तु हरिं विना॥१४४॥

पुत्राधम! यदि भगवान् श्रीहरिकी कृपा बिना केवल पुत्रवान् होनेसे ही उनके लिये स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति सम्भव होती तो अबतक सभी कुत्तों तथा सूकरोंको स्वर्ग मिल गया होता॥

हयं पालयितुं प्राप्तः सव्यसाची महाबलः।
क्षणमेकं जगन्नाथो न मुञ्चति रणेऽर्जुनम्॥१४५॥
धिक् ते बलं धिग् विचारं धिग् धर्मं यस्त्वया कृतः।
श्रुत्वा कृष्णं पुरं प्राप्तं कथं कामे गतं मनः॥१४६॥

(तू तो यह जानता ही है कि) बायें हाथसे भी बाण चलानेवाले महाबली अर्जुन घोड़ेकी रक्षा करते हुए यहाँ आ गये हैं और (यह भी निश्चित है कि) जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण युद्धके अवसरपर अर्जुनको एक क्षण भी अकेला नहीं छोड़ते। ऐसी दशामें श्रीकृष्णको अपने नगरमें आया हुआ सुनकर भी तेरा मन कामके वशीभूत कैसे हो गया! तेरे बल तथा विचारको धिक्कार है! और तूने जो यह पुत्र-प्रदानरूप धर्म-कार्य किया है, तेरे इस धर्मको भी धिक्कार है॥

एवंविधं कृष्णपराङ्मुखं त्वां
तप्ते कटाहे किल निक्षिपामि।
मलीमसं कामरतं कुपुत्र-
माकण्ठमग्नं तिलतैलपूर्णे॥१४७॥

ऐसे मलिनमन, कामरत, कृष्ण-विमुख तुझ कुपुत्रको कण्ठपर्यन्त डूबने योग्य उबलते हुए तिलके तैलसे भरे हुए कड़ाहेमें अवश्य डाल दूँगा॥ १४७॥

गच्छन्तु दूता मुनिसंनिधौ तु
पुरोहितं मे लिखितं च शङ्खम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तयोः पुरः सर्वमिदं निवेद्य
पृच्छन्तु तद्भाषितमेव कर्ता॥१४८॥

अच्छा, अब दूत मेरे पुरोहित महर्षि शङ्ख और लिखितके पास जायँ और उनके समक्ष इस सारी घटनाका वर्णन करके इसकी व्यवस्था पूछें। मैं उनके कथनानुसार ही कार्य करूँगा॥ १४८॥

तयोर्वचो नैव मया विलङ्घ्यं
स्वजीविताद् राज्यकरादवश्यम्।
कुर्वन्तु तप्तं पुनरेव तैलं
पश्यन्तु पार्थप्रमुखा ममाज्ञाम्॥१४९॥

भले ही राज्य-संचालन करनेवाला मेरा यह जीवन समाप्त हो जाय, परंतु मैं अपने उन पुरोहितोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। अब कड़ाहेका तेल और खौला दिया जाय और अर्जुन आदि प्रमुख वीर मेरी आज्ञा (के उल्लङ्घनका फल) प्रत्यक्षरूपमें देख लें॥ १४९॥

जैमिनिरुवाच

एवं तेन महीपेन प्रेरिताः शब्दकारिणः।
जग्मुः प्रष्टुं मुनीन्द्रौ तौ भ्रातरौ तत्पुरोहितौ॥१५०॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! राजा हंसध्वजके यों आदेश देनेपर वे आज्ञाकारी दूत उन दोनों राजपुरोहित मुनि-बन्धुओंके पास पूछनेके लिये गये॥ १५०॥

दूता ऊचुः

नृपः पृच्छति वां किञ्चित् संशयं धर्मसंकटे।
सुधन्वना स्थितं पृष्ठे नृपाज्ञा च विलङ्घिता॥१५१॥
जलदं दातुकामेन तद् ब्रूतं नः पुरोहितौ।
किं कर्तव्यं मया तस्य पापिष्ठस्य सुधन्वनः॥१५२॥

(वहाँ पहुँचकर) दूतोंने कहा—पुरोहितो! राजा एक धर्मसंकटमें पड़ गये हैं, अतः आप दोनों महर्षियोंसे अपना कुछ संशय पूछना चाहते हैं। (वह संशय यह है कि) अपनी पत्नीको जलदाता पुत्र प्रदान करनेकी कामनासे सुधन्वा पीछे रह गया है और ठीक समयपर रणक्षेत्रमें न पहुँचकर उसने राजाज्ञाका उल्लङ्घन कर दिया है। अब उस पापी सुधन्वाके प्रति मेरा क्या कर्तव्य है—यह आप हमें बतानेकी कृपा करें॥

कटाहस्य समीपे तु बलादेव सुतं प्रभुः।
आनीय तं पातयिता भवद्भ्यां स नियोजितः॥१५३॥
तैले तप्ते परित्यज्य पुत्रस्नेहं न संशयः।

सामर्थ्यशाली राजा हंसध्वज अपने पुत्रको बलपूर्वक कड़ाहके समीप ले आये हैं और आपलोगोंकी आज्ञा पाते ही वे पुत्र-स्नेहको तिलाञ्जलि देकर उसे उस उबलते हुए तेलमें डाल देंगे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है॥ १५३½॥

लिखित उवाच

गच्छन्तु दूता नृपतिं शंसन्तु मम भाषितम्॥१५४॥
स्ववचो यो न मन्दात्मा सत्यं कुर्याद् धरातले।
भयाल्लोभाच्च नरके चिरं तिष्ठति दारुणे॥१५५॥

तब महर्षि लिखितने कहा—दूतो! तुमलोग राजाके पास जाओ और उन्हें मेरा यह कथन सुनाओ—'जो मन्दात्मा इस भूतलपर भय अथवा लोभसे अपने वचनोंका पालन नहीं करता, वह बहुत कालतक घोर नरकमें पड़कर वहाँका दारुण दुःख भोगता है॥ १५४-१५५॥

कौशिकाय ददौ राज्यं हरिश्चन्द्रो महामतिः।
क्रीतौ भार्यासुतौ तेन स्वसत्यं प्रतिपालितम्॥१५६॥

'महाबुद्धिमान् राजा हरिश्चन्द्रने अपना सारा राज्य महर्षि विश्वामित्रको दान कर दिया था और (दक्षिणापूर्तिके लिये) पत्नी तथा पुत्रको बेचकर भी उन्होंने अपने सत्यकी रक्षा की थी॥ १५६॥

हन्तुं प्रियां स्थितो राजा रम्ये भागीरथीतटे।
वाराणस्यां पुत्रगात्रान्मृताद् वस्त्रं जहार सः॥१५७॥

'राजा हरिश्चन्द्र सत्य-रक्षार्थ ही काशीपुरीमें गङ्गाजीके रमणीय तटपर अपनी प्रियतमा रानीको मारनेके लिये उद्यत हो गये थे और उन्होंने अपने मरे हुए पुत्र रोहिताश्वके शरीरपरसे वस्त्र (कफन) तक उतार लिया था॥ १५७॥

रामं प्रव्राजयामास वनं दशरथः पुरा।
स्वकं वचः कृतं सत्यं कैकेय्यै यदुदाहृतम्॥१५८॥

'पूर्वकालमें महाराज दशरथने भी अपनी पत्नी कैकेयीको जो वरदान दे दिया था, उसकी पूर्तिके लिये अपने पुत्र रामको वनमें भेजकर भी अपने उस वचनको सत्य कर दिखाया था॥१५८॥

अमुना यत् पुरा प्रोक्तं पुत्रं पौत्रं सहोदरम्।
आज्ञाभङ्गकरं तैले सुतप्ते पातयाम्यहम्॥१५९॥
तदन्यथा भवेदेव यावत् पुत्रो न पात्यते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'इस राजा हंसध्वजने पहले जो प्रतिज्ञा की है कि 'मेरी आज्ञाका अतिक्रमण करनेवाला चाहे पुत्र, पौत्र अथवा सहोदर भाई ही क्यों न होगा, मैं उसे खौलते हुए तेलमें डाल दूँगा।' उसकी वह प्रतिज्ञा जबतक वह अपने पुत्रको कड़ाहेमें नहीं डाल देगा, तबतक अपूर्ण ही रहेगी ॥ १५९½ ॥

विमुखः केशवं वीक्ष्य पार्थं च रथिनां वरम् ॥१६०॥
गृहे स्थितः स्वकामाद् यः स तेन परिपाल्यते ।
आवां गच्छावहे राष्ट्राद् भ्रातरौ नृपतेर्बहिः ॥१६१॥

जो रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन तथा श्रीकृष्णको देखकर युद्धसे विमुख हो गया और अपने इच्छानुसार घरमें बैठ रहा, ऐसे पुत्रकी यदि राजा रक्षा करना चाहता है तो लो, हम दोनों भाई इस राजाके राज्यसे बाहर चले जाते हैं ॥ १६०-१६१ ॥

तस्मिन् राष्ट्रे न वस्तव्यं यस्मिन् राजा न सत्यवाक् ।
तत्संसर्गाद् गुणा नृणां वसतां सम्भवन्ति हि ॥१६२॥

'जिस देशका राजा सत्यवादी न हो, उस राज्यमें नहीं रहना चाहिये; क्योंकि उस राजाके संसर्गसे राज्यनिवासी मनुष्योंमें भी वैसे ही गुणोंके उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है॥

तत्समीपे निवसतां पातकं हि भवेन्नृणाम् ।
आसनाच्छयनाद् यानात् सम्पर्कात् सहभोजनात्१६३

'ऐसे राजाके समीप निवास करनेवाले मनुष्योंको एक साथ बैठने, सोने, चलने-फिरने आदि सम्पर्कसे तथा एक साथ भोजन करनेसे पाप लगता है' ॥ १६३ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं लिखितः शङ्खसंयुतः ।
परित्यज्य गतः सोऽथ दूतास्ते नृपतिं गताः ॥१६४॥

इतनी बात कहकर लिखित मुनि अपने भाई शङ्ख मुनिको साथ लेकर उस राज्यका परित्याग करके चल दिये और उधर वे दूत राजा हंसध्वजके पास चले ॥ १६४ ॥

ब्रुवन्ति सर्वे तत्प्रोक्तं राजानं प्रति मारिष ।
गतो नृप महाबुद्धिर्मुनिर्भ्रात्राद् रुषान्वितः ।
तमिहानय राजेन्द्र मुनिं धर्मोपदेशकम् ॥१६५॥

आर्य ! वहाँ पहुँचकर वे मुनिद्वारा कही हुई सारी बातें राजासे निवेदन करके कहने लगे—'राजन् ! महाबुद्धिमान् लिखित मुनि क्रुद्ध होकर (अपने भाई शङ्ख मुनिके साथ) इस गाँवको छोड़कर जा रहे हैं। राजेन्द्र ! आप ऐसे धर्मोपदेशक मुनिको समझाकर यहाँ लौटा लाइये' ॥ १६५ ॥

जैमिनिरुवाच

हंसकेतुः समादिश्य सचिवं पुत्रपातने ।
सुतप्ते तिलतैले च क्षिप दुष्टं ममाज्ञया ।
सुधन्वानं मयि गते त्वं धीरसचिवैर्वृतः ॥१६६॥
पार्थं पश्य रणे वीरं याम्यहं तं पुरोहितम् ।
नमस्कर्तुं महाबुद्धिं पुनरेष्यामि योधितुम् ॥१६७॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजन् ! तब राजा हंसध्वज पुत्रको कड़ाहेमें डालनेके लिये मन्त्री (सुमति) को आदेश देते हुए कहने लगे—'सचिव ! मैं अपने पुरोहित महाबुद्धिमान् लिखित मुनिके चरणोंमें प्रणाम करने जा रहा हूँ। मेरे चले जानेपर तुम मेरे आज्ञानुसार अन्य धैर्यशाली मन्त्रियोंके साथ रहकर इस दुष्ट सुधन्वाको अत्यन्त खौलते हुए तिलके तेलमें डाल देना और उधर युद्धस्थलमें वीरवर अर्जुनपर भी दृष्टि रखना। मैं अभी पुनः युद्ध करनेके लिये लौटकर आता हूँ'॥

एवमुक्त्वा वचो राजा नमस्कृत्य पुरोहितौ ।
आनयामास तौ तत्र कटाहो यत्र तादृशः ॥१६८॥

मन्त्रीसे ऐसा कहकर राजा हंसध्वज चल पड़े और अपने पुरोहित लिखित और शङ्ख मुनिके पास पहुँचकर उनके चरणोंमें अभिवादन करके उन्हें समझा-बुझाकर उस स्थानपर ले आये, जहाँ वह उबलते हुए तेलसे भरा हुआ कड़ाहा रखा था॥

सुमतिः सचिवश्चक्रे सर्वं नृपतिभाषितम् ।
सुधन्वानं महावीरं प्रत्युवाच विशाम्पते ॥१६९॥

प्रजानाथ ! इधर जब मन्त्री सुमतिने राजाके कथनानुसार सारा कार्य पूर्ण करनेका विचार किया, तब उसने महाबली सुधन्वासे कहा ॥ १६९ ॥

सुमतिरुवाच

सुधन्वन् किं करोम्यद्य त्वां समीक्ष्य महाबलम् ।
हृदये जायतेऽतीव करुणा मे महाभुज ॥ १७०॥
शासनं चापि नृपतेर्लङ्घितुं नैव शक्यते ।
शासनं चापि राज्ञो मे दारुणं त्वयि विद्यते ॥१७१॥

सुमति बोला—सुधन्वन् ! अब मैं क्या करूँ ? तुम महान् वीर हो, तुम्हें देखकर मेरे हृदयमें बड़ी करुणा उत्पन्न हो रही है; परंतु महाबाहो ! तुम्हारे विषयमें मुझे राजाकी कठोर आज्ञा मिल चुकी है और मेरेद्वारा उस राजाज्ञाका उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता ॥ १७०-१७१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुधन्वोवाच

कर्तव्यं शासनं राज्ञस्त्वया परवशेन हि।
पितृवाक्येन रामेण स्वजनन्याः शिरो हृतम् ॥१७२॥
जामदग्न्येन पूर्वं तु तव का परिदेवना।

तब सुधन्वाने कहा—मन्त्रीजी ! आप पराधीन हैं, अतः आपको महाराजकी आज्ञाका अवश्य पालन करना चाहिये। (सुना जाता है) पूर्वकालमें जमदग्निनन्दन परशुरामने पिताकी आज्ञासे अपनी माताका सिर काट लिया था; फिर आप क्यों विलख रहे हैं ? ॥ १७२½ ॥

प्रतीतोऽहं महाबुद्धे कृता पुण्यक्रिया शुभा ॥१७३॥
न भयं मरणान्मह्यं तप्ते तैलेऽद्य मां क्षिप।

महाबुद्धे ! मुझे विश्वास है कि मैंने शुभ पुण्यकर्म कर लिया है। मुझे अपनी मृत्युका कोई भय नहीं है; अतः अब आप मुझे उबलते हुए तेलमें डाल दीजिये ॥ १७३½ ॥

जैमिनिरुवाच

सुमतिस्तं तथाभूतं स्नातं दिव्याम्बरावृतम् ॥१७४॥
तुलसीदलजां मालां धारयन्तं महोरसि।
स्मरन्तं वसुदेवस्य तनयं चापि केशवम् ॥१७५॥
उत्थाप्य तैले चिक्षेप सुतप्ते भूपशासनात्।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तब जो स्नानसे शुद्ध होकर दिव्य वस्त्र धारण किये हुए था, जिसके विशाल वक्षःस्थलपर तुलसीदलकी बनी हुई माला लटक रही थी और जो वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका ध्यान कर रहा था, ऐसे सुधन्वाको उठाकर सुमतिने राजाज्ञानुसार उस उबलते हुए तेलके कड़ाहेमें डाल दिया ॥ १७४-१७५½ ॥

सुधन्वा प्राह गोविन्दं प्रथमं यादृशं वचः ॥१७६॥
तत् तेऽहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमना नृप।
ज्वालाकुलं वीक्ष्य तैलमावर्तशतसंकुलम् ॥१७७॥

राजन् ! उस समय अग्निकी ज्वालासे व्याकुल होनेके कारण जिसमें सैकड़ों भँवरें उठ रही थीं, ऐसे तेलको देखकर सुधन्वाने भगवान् श्रीकृष्णसे जो पहली प्रार्थना की थी, उसे मैं तुमसे कहता हूँ, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥१७६-१७७॥

परोदयं समालोक्य दुर्जनस्येव मानसम्।
जायते तादृशं जातं कटाहं जनमेजय ॥१७८॥

जनमेजय ! परायी उन्नति देखकर जैसे दुर्जनोंके मनमें बड़ी भारी जलन होने लगती है, वैसी ही गति उस समय उस कड़ाहकी हो रही थी ॥ १७८ ॥

सुधन्वोवाच

त्राहि त्राहीति गोविन्द मया यद् भाषितं वचः।
श्रुत्वा त्वं नागतो यस्माद् विज्ञातं कारणं हरे ॥१७९॥

उस समय सुधन्वा कह रहा था—हरे ! 'गोविन्द ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये,' मैंने जो ऐसी प्रार्थना की थी, उसे सुनकर भी आप जिस कारणसे मेरे रक्षार्थ नहीं पधारे, वह कारण मुझे ज्ञात हो गया ॥ १७९ ॥

मामवज्ञाय सम्प्राप्तं सुधन्वा कामचारकः।
पश्चात् स्मरति पापिष्ठः संकटेऽद्य जगद्गुरुम् ॥१८०॥

(आपने विचारा होगा कि) पहले तो यह सुधन्वा यहाँ आनेपर भी मेरी अवहेलना करके कामका भक्त हो गया और अब संकट पड़नेपर मुझ जगद्गुरुका स्मरण करने चला है ॥ १८० ॥

स्मरन्ति कृच्छ्रपतितास्त्वामेव भयविह्वलाः।
जना न सुखसंयुक्ताः सत्यमेतद् वदाम्यहम् ॥१८१॥

इसीसे मैं सच कहता हूँ कि जो लोग केवल भयसे व्याकुल होकर कष्टमें पड़कर ही आपका स्मरण करते हैं, उन्हें सुखकी प्राप्ति नहीं होती ॥ १८१ ॥

धिङ् मे सौख्यं कृच्छ्ररूपं मन्ये हरिविवर्जितम्।
प्रह्लादो गजमुख्यश्च ध्रुवः पृषतनन्दिनी ॥१८२॥
अन्ये गोपादयो लोके स्मरन्त्यापत्सु केशवम्।
पूर्वं स्मृतोऽसि तैरेव त्रातास्ते कृच्छ्रतस्त्वया ॥१८३॥

मैं परिणाममें कष्ट देनेवाले अपने उस सुखको, जो श्रीहरिकी भक्तिसे हीन है, धिक्कारके ही योग्य मानता हूँ। प्रह्लाद, गजराज, ध्रुव, द्रौपदी तथा अन्य गोप आदि भी तो संसारमें आपत्तिके समय श्रीकृष्णका स्मरण करते आये हैं; परंतु उन लोगोंने पहले भी आपका स्मरण किया था, इसीसे विपत्तिके समय आपने उनकी रक्षा की ॥ १८२-१८३ ॥

अन्तकाले चिन्तनं ते जायते मुक्तिदं नृणाम्।
हृदये चिन्त्यमानेन नाम्ना तव जनार्दन ॥१८४॥
मम मुक्तिर्न संदेहः परं लोके विगर्हितः।
सुधन्वा मरणं दुष्टं प्राप्तो वीरः कटाहजम् ॥१८५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जनार्दन ! अन्तकालमें आपका ध्यान मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करनेवाला होता है, इसलिये हृदयमें आपके नामका चिन्तन करनेसे मेरी मुक्ति तो अवश्य हो जायगी, परंतु संसारमें लोग मेरी यों निन्दा करेंगे कि 'सुधन्वा वीर होकर भी कड़ाहेमें जलकर दूषित मृत्युको प्राप्त हुआ ॥१८४-१८५॥

अद्य कृष्णार्जुनौ वीरौ तोषितौ नाऽमुना बलात् ।
गाण्डीवमुक्तैर्नाराचैर्गात्रं न शकलीकृतम् ॥१८६॥

'यह आज युद्धस्थलमें अपने पराक्रमसे श्रीकृष्ण और अर्जुन—इन दोनों वीरोंको संतुष्ट न कर सका और न गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा इसका शरीर ही छिन्न-भिन्न हुआ ॥ १८६ ॥

सुधन्वनः समर्थस्य चोरस्येवाभवद् गतिः ।
मनसा न धृतौ कृष्णौ सैन्यं न निहतं बहु ॥१८७॥

'यह मनसे श्रीकृष्ण और अर्जुनका ध्यान भी नहीं कर पाया और न इसने बहुत-सी सेनाका संहार ही किया । समर्थ होते हुए भी सुधन्वाकी गति तो एक चोरके समान हो गयी' ॥

ईदृशैर्बहुभिर्वाक्यैः प्रहसिष्यन्ति मां जनाः ।
वह्निदाहाद्य हरे मां त्वं रक्षितुमर्हसि ॥१८८॥

ऐसी बहुत-सी बातें कहकर लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे । अतः हरे ! आज इस अग्नि-दाहसे आप मेरी रक्षा करनेकी कृपा करें ॥ १८८ ॥

द्रौपदी वस्त्ररूपेण लज्जाब्धौ पतिता धृता ।
त्वया कृष्णेन सदसि समक्षं द्रोणभीष्मयोः ॥१८९॥

कौरव-सभामें लज्जारूपी समुद्रमें पड़ी हुई द्रौपदीका पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्यके सामने आपने ही वस्त्रावतार धारणकर उद्धार किया था ॥ १८९ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं ब्रुवति वीरेऽस्मिन् स्मरणान्माधवस्य तु ।
तैलं सुशीतलं जातं सज्जनस्येव मानसम् ॥१९०॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! वीर सुधन्वाके ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करनेसे तैल ऐसा शीतल हो गया, जैसे सज्जनोंका चित्त होता है ॥ १९० ॥

सर्वे जनास्तं प्रसमीक्ष्य तैले
यथा जले पङ्कजवत् प्रफुल्लम् ।
सुधन्वनः कुण्डलिनं सुनेत्रं
विसिक्तयुक्काननमस्य दुःखात् ॥१९१॥
अश्रूणि मुञ्चन्ति पतन्ति भूमौ
वक्षः कराभ्यामभिताडयन्ति ।
क्रोशन्ति हाहेति किरीटकं च
क्षिपन्ति बाहून् परिधूनयन्ति ॥१९२॥
वदन्ति राजा किमसौ न चास्मान्
सुधन्वनोऽर्थे क्षिपतेऽग्निमध्ये ।
गच्छेम देवं यदुनन्दनं तं
धनंजयं कृष्णपदप्रपन्नम् ॥१९३॥

तब जैसे जलमें कमल प्रफुल्लित रहता है, उसी तरह उस खौलते हुए तेलमें सुधन्वाके कुण्डलधारी तथा सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित मुखको विकसित देखकर सभी लोग आश्चर्य करने लगे । कुछ लोग सुधन्वाके दुःखसे दुखी होकर आँसू बहाने लगे, कोई मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, दूसरे दोनों हाथोंसे छाती पीटने लगे, कुछ लोग 'हाय-हाय' करके विलाप करने लगे और मस्तकसे अपने मुकुटको उतारकर फेंकने लगे तथा कोई-कोई अपने हाथोंको हिलाकर मना करते हुए कहने लगे—'ये राजा सुधन्वाके बदले हम लोगोंको ही इस अग्निमें क्यों नहीं झोंक देते । हमलोग भगवान् श्रीकृष्णचरणाश्रित भक्त अर्जुनकी शरणमें जाते हैं' ॥

जैमिनिरुवाच

हंसध्वजः शङ्खयुतो ददर्श
पुत्रं कटाहे प्रतरन्तमेनम् ।
पुण्यानि नामानि हरेर्जपन्तं
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥१९४॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर शङ्ख (और लिखित) मुनिके साथ आये हुए राजा हंसध्वजने देखा कि मेरा पुत्र सुधन्वा (उबलते हुए तैलमें पड़कर भी जल नहीं रहा है बल्कि) भगवान्‌के 'गोविन्द, दामोदर, माधव' आदि पावन नामोंका जप करता हुआ उस कड़ाहेमें तैर रहा है ॥ १९४ ॥

शङ्खोऽब्रवीत् तं नृपतिं किमेतत्
तैलं न तप्तं ज्वलताग्निनापि ।
किमौषधं मन्त्रवरं सुतस्ते
जानाति राजन्नथ कैतवं वा ॥१९५॥

(यह देखकर सुधन्वापर संदेह प्रकट करते हुए) शङ्ख मुनिने राजासे पूछा—'राजन् ! क्या बात है ? धधकती हुई आगसे तेल गरम नहीं हुआ या तुम्हारा पुत्र कोई अग्नि-शामक औषध या उत्तम मन्त्र अथवा माया जानता है ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

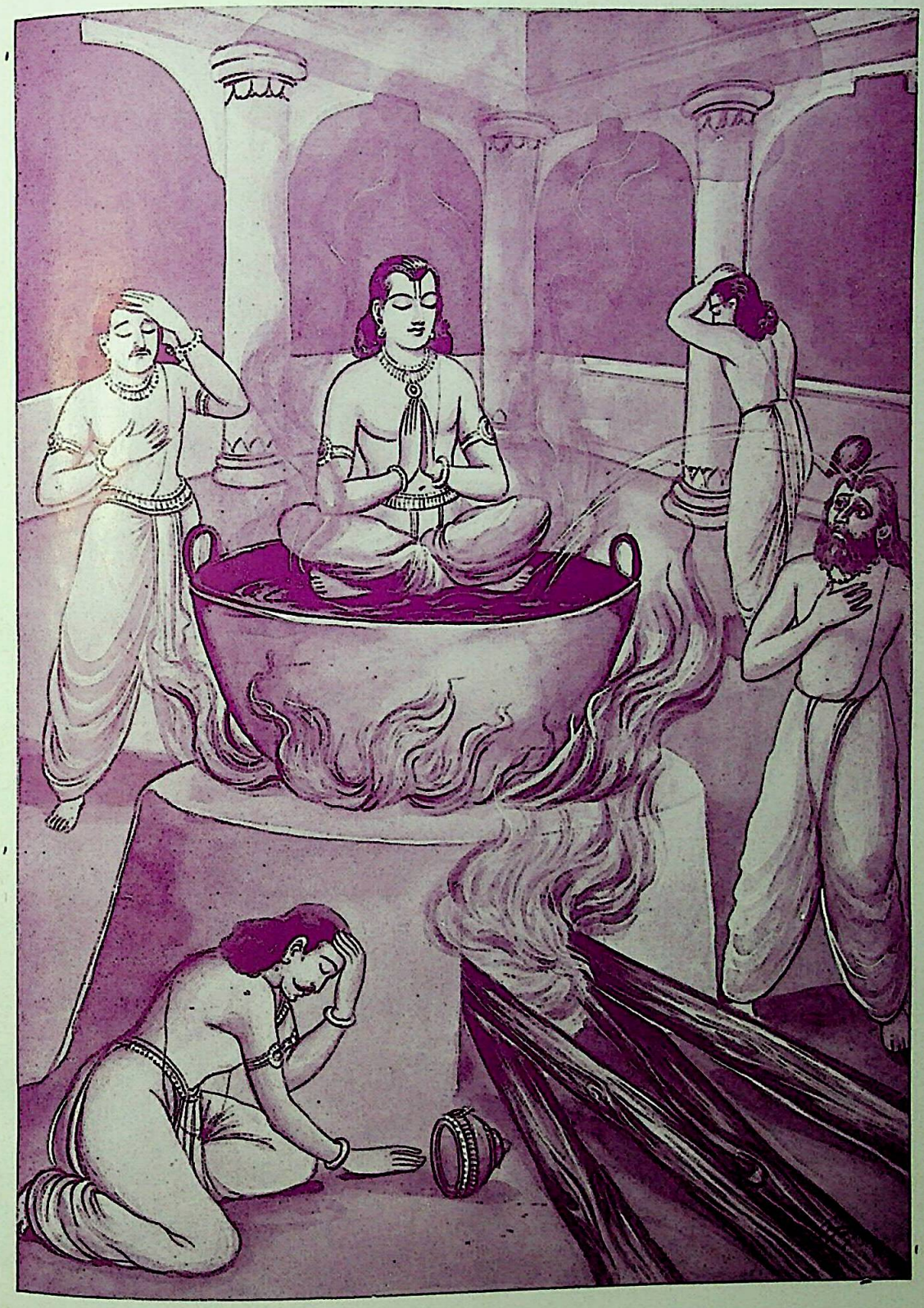

उबलते हुए तेलके कड़ाहेमें प्रसन्नमुख सुधन्वा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुतो ज्वलत् तैलमिदं कुतो मुखं
प्रफुल्लपद्माभमिवास्य राजते।
क्षिपन्तु दूता नवनारिकेलं
भवेत् ततस्तैलमिदं परीक्षितम् ॥१९६॥

'देखो न, कहाँ तो खौलता हुआ तैल और कहाँ इसका मुख, जो उसमें पड़कर भी प्रफुल्लित कमलकी भाँति कान्ति-युक्त होकर तेजसे झलमला रहा है। अतः दूत इस कड़ाहेमें एक नया नारियलका फल डालें। इससे इस तेलकी परीक्षा हो जायगी ॥ १९६ ॥

निशम्य तद्वाक्यमतीव तीव्रं
दूतास्तदा तैलसमानभूताः।
मुनेर्भयात् ते फलमाशु तैले
विचिक्षिपुः शङ्खदृशः पुरस्तात् ॥१९७॥

तब मुनिके अत्यन्त तीखे वचन सुनकर वे दूत भी तेलकी ही भाँति संतप्त हो उठे, परंतु मुनिके भयसे उन्होंने शीघ्र ही एक नारियलका फल लाकर शङ्खमुनिकी आँखोंके सामने ही उस तेलमें डाल दिया ॥ १९७ ॥

द्विधा भिन्नं ह्यभवत् तत्कटाहा-
च्छङ्खस्य चैकं शकलं ललाटे।
लग्नं द्वितीयं लिखितस्य चापि
तथोच्छलन्त्यस्तिलतैलधाराः ॥१९८॥

(उबलते हुए तेलमें पड़ते ही) नारियल तड़ाकसे फूटा और उसके दो टुकड़े हो गये। वे दोनों टुकड़े कड़ाहेसे उछले, जिसमें एक टुकड़ा शङ्खके तथा दूसरा लिखितके ललाटमें जाकर जोरसे लगा और कड़ाहेसे तेलकी धाराएँ उछलने लगीं ॥ १९८ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि सुधन्वनः सत्त्वकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें सुधन्वाके सत्त्वका वर्णन नामक सतरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

शङ्खमुनिका सुधन्वाको अक्षत देखकर नौकरोंसे कारण पूछना, स्वयं तेलके कड़ाहेमें कूदना, सुधन्वाको हृदयसे लगाकर उसकी प्रशंसा करना और युद्धक्षेत्रमें राजा हंसध्वजके पास ले जाना, हंसध्वजका घोड़ेको पकड़वा लेना और वीरोंके साथ युद्धके लिये डटकर खड़ा होना, अर्जुन, प्रद्युम्न और वृषकेतुका वार्तालाप, वृषकेतुका युद्धके लिये प्रस्थान, सुधन्वाके साथ बातचीत और युद्ध, वृषकेतुका मूर्च्छित होकर युद्धक्षेत्रसे हटना, सुधन्वाका प्रद्युम्नको मूर्च्छित करना, कृतवर्माको खदेड़ना और अनुशाल्वको पराजित करके घोर पराक्रम प्रकट करना

जनमेजय उवाच

कथं कटाहात् स महाबलोऽपि
जगाम पार्थं स च मुक्तगात्रः।
तत् कौतुकं शंसतु जैमिने मे
निरीक्ष्य शङ्खः किमकारि तत्र ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—महर्षि जैमिनि! महाबली सुधन्वा उस कड़ाहसे कैसे जीता-जागता बच निकला और फिर कैसे अर्जुनके पास युद्धके लिये गया तथा वहाँ वह दृश्य देखकर शङ्खमुनिने फिर क्या किया, यह सब आश्चर्यभरी बातें आप मुझे बताइये ॥ १ ॥

जैमिनिरुवाच

विलोक्य तं तैलमध्ये सुधन्वानं महामुनिः।
भृत्यं पप्रच्छ वीरेण पात्यमानेन किं स्मृतम्।
औषधस्य च मूलं वा बद्धं गात्रे तथामुना ॥ २ ॥

जैमिनिजी बोले—जनमेजय! तब मुनिवर शङ्खने सुधन्वाको तेलके बीच अक्षत देखकर नौकरोंसे पूछा—'[उबलते हुए तैलमें सुधन्वाके न जलनेका क्या कारण है?] जिस समय यह वीर कड़ाहमें डाला गया, उस समय इसने किसका स्मरण किया था अथवा इसने किसी औषधकी जड़ तो अपने शरीरमें नहीं बाँध ली थी?' ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूता ऊचुः

नान्यत् स्मृतं किञ्चिदेव विना कृष्णं महामतिम्।
यस्य स्मरणमात्रेण मुच्यन्ते योनिसंकटात् ॥ ३ ॥
प्राणिनो भूतले ब्रह्मन् संस्मृतो माधवोऽमुना।

दूतोंने उत्तर दिया—ब्रह्मन्! महामति भगवान् श्रीकृष्णके स्मरणके अतिरिक्त हमने राजकुमारको कोई भी मन्त्र जपते [अथवा औषध बाँधते] नहीं देखा। हाँ, इन्होंने उन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण अवश्य किया था, जिनके स्मरणमात्रसे संसारमें जीव जन्म-मरणके संकटसे छूट जाते हैं ॥ ३½ ॥

पश्यौष्ठौ स्फुरमाणौ त्वं शङ्ख माधवभाषिणौ ॥ ४ ॥
सुधन्वनोऽतिसत्त्वस्य प्रियादष्टौ समागमे।

महर्षि शङ्ख! अत्यन्त सत्त्वशाली सुधन्वाके उन फड़कते हुए होठोंको तो देखिये, जो समागम-कालमें प्रियतमा पत्नीके दन्तक्षतसे चिह्नित हैं और अब भी भगवान् श्रीकृष्णके नामोंका सतत स्मरण कर रहे हैं ॥ ४½ ॥

शङ्ख उवाच

स्मृतो यद्यमुना विष्णुः पात्यमानेन साधुना ॥ ५ ॥
धिगहं कठिनो बालं पश्यामि निकटस्थितः।
प्रायश्चित्तं स्वदेहस्य करिष्ये मरणान्तिकम् ॥ ६ ॥

शङ्खमुनिने कहा—यदि कड़ाहेमें डाले जाते समय इस साधुस्वभावने भगवान् विष्णुका स्मरण किया था तो मुझे धिक्कार है, जो कठोर-हृदय हो समीप ही खड़ा होकर इस बालकको (कष्ट भोगते) देख रहा हूँ। अतः अब मैं इस तप्त तैलके कड़ाहेमें कूदकर अपने शरीरका मरणान्त प्रायश्चित्त करूँगा ॥ ५-६ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं तैलमध्ये पपात सः।
समालिङ्ग्य सुधन्वानमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥

इतना कहकर शङ्खमुनि तैलके कड़ाहेमें कूद पड़े और सुधन्वाको छातीसे लगाकर यों कहने लगे—॥ ७ ॥

साधु क्षत्रियवीरस्त्वमसाधुरहमद्विजः।
येन तैले पातितोऽसि मयापेशलचेतसा ॥ ८ ॥

'प्रिय राजकुमार! तुम श्रेष्ठ क्षत्रिय वीर हो और मैं अधम हूँ, ब्राह्मण कहलाने योग्य भी नहीं हूँ; क्योंकि मुझ निष्ठुर-हृदयने तुम्हें उबलते हुए तेलमें डलवा दिया ॥ ८ ॥

भवन्ति ते तापयुता ये न विन्दन्ति माधवम्।
गतश्रीकाश्च मूढाश्च नित्यं दुःखसमन्विताः ॥ ९ ॥

'संसारमें उन्हीं मूर्खोंको नित्य संताप, अभाव और दुःखोंकी प्राप्ति होती है, जो भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान नहीं करते ॥

ये स्मरन्ति च गोविन्दं सर्वकामफलप्रदम्।
तापत्रयविनिर्मुक्ता जायन्ते दुःखवर्जिताः ॥ १० ॥

'जो भाग्यवान् पुरुष सर्वकामफलदाता भगवान् गोविन्दका स्मरण करते हैं, वे तो तीनों (दैहिक, दैविक, भौतिक) तापोंसे मुक्त होकर सर्वथा सुखी हो जाते हैं ॥ १० ॥

कथं त्वं वह्निना दग्धुं शक्यः परमवैष्णवः।
मुनयो यं न पश्यन्ति सुरासुरगुरुं हरिम् ॥ ११ ॥
चेतसापि त्वया वाचा प्राणान्ते संस्मृतोऽधुना।
प्रह्लादो रक्षितो येन दग्धस्तस्माद्धुताशनात् ॥ १२ ॥

'भला, अग्निमें इतनी शक्ति कहाँ है, जो तुम-सरीखे परम वैष्णवको जला सके; क्योंकि जिन सुरासुर-गुरु भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन मुनियोंको भी दुर्लभ है, जिन्होंने एक दिन अग्नि-शिखासे जलते हुए प्रह्लादकी रक्षा की थी, उन्हींका तुमने इस प्राणान्तके समय मन तथा वाणीसे भी स्मरण कर लिया ॥ ११-१२ ॥

त्वच्छरीरस्य सम्पर्कात् पावनं मे वपुस्त्विदम्।
जातं पुरुषशार्दूल नोपायोऽन्योऽस्ति पावनः ॥ १३ ॥

'पुरुषसिंह! तुम्हारे शरीरका स्पर्श प्राप्त होनेसे आज मेरा यह अधम शरीर भी पवित्र हो गया। पवित्र होनेका इससे श्रेष्ठ और कोई उपाय नहीं है ॥ १३ ॥

राजानं राजपुत्रांश्च सैन्यं पावय सुव्रत।
उत्तिष्ठ वत्स तैलात् त्वं मां समुद्धर भूपज ॥ १४ ॥

'वत्स! सुव्रत! उठो और तैलसे बाहर निकलकर अपने पिता राजा हंसध्वज, राजकुमारों (अपने चारों बड़े भाइयों) और सारी सेनाको पावन करो। राजकुमार! साथ ही मेरा भी उद्धार करो ॥ १४ ॥

कृष्णोऽयं पाण्डवस्यार्थे सारथ्यं प्रकरोति च।
अर्जुनेनाद्य संग्रामं कुरु वीर यथोचितम् ॥ १५ ॥
यशः स्थिरं स्वकं कृत्वा पश्चात् प्राप्नुहि मङ्गलम्।

'वीर! भगवान् श्रीकृष्ण जिस अपने भक्त अर्जुनका सारथ्य करते हैं, उस अर्जुनके साथ आज रणाङ्गणमें यथोचित युद्ध करो और अपने यशको स्थायी बनाकर तत्पश्चात् मङ्गलके भागी होओ' ॥ १५½ ॥

जैमिनिरुवाच

गृहीत्वा तं तैलमध्याद् रणे प्राप्तो महामुनिः ॥ १६ ॥
राजानं प्रत्युवाचेदं पुत्रं पश्य सनातनम्।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर महामुनि शङ्ख सुधन्वाको तैलसे बाहर निकालकर उसे साथ लिये हुए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रणक्षेत्रमें पहुँचे और राजा हंसध्वजसे यों कहने लगे—'राजन्! अपने इस सनातन पुत्रको देखिये' ॥ १६½ ॥

शङ्ख उवाच

अनेन विधृतं मूलं सद्विद्याया मुखे स्वके ॥ १७ ॥
मन्त्रराजं नृसिंहाख्यं जपता रक्षितं वपुः।
यशोमयं पावितोऽहं त्वां तु पावयितुं स्थितः ॥ १८ ॥

शङ्खमुनिने आगे फिर कहा—इसने अपने मुखमें सद्विद्याके मूलस्वरूप भगवन्नामको धारण कर लिया था और नृसिंहनामक मन्त्रराजका जप करके अपने यशोमय शरीरकी रक्षा कर ली है। इसने मुझे पावन बना दिया है और अब तुम्हें पवित्र करनेके लिये तुम्हारे सामने खड़ा है ॥ १७-१८ ॥

ततो हंसध्वजः पुत्रं समालिङ्ग्याब्रवीद् वचः।

तदनन्तर राजा हंसध्वज पुत्रको हृदयसे लगाकर कहने लगे ॥ १८½ ॥

हंसध्वज उवाच

मया पित्रा भवांस्त्यक्तस्तैले पावकदीपिते ॥ १९ ॥
न दग्धोऽसि हुताशेन प्रभावात् केशवस्य तु।

हंसध्वज बोले—बेटा! मैंने पिता होकर भी तुझे अग्निसे तपाये हुए तेलमें डलवा दिया था, परंतु भगवान् श्रीकृष्णके प्रभावसे अग्नि तुझे जला न सकी ॥ १९½ ॥

माहात्म्यं वासुदेवस्य त्वां निपातयताधुना ॥ २० ॥
सम्यग् वत्स परिज्ञातं मयेदानीं न संशयः।
उत्तिष्ठ देहि मे वत्स परिरम्भणमद्य वै ॥ २१ ॥

वत्स! तुझे कड़ाहेमें डालनेकी आज्ञा देनेवाले मुझको निस्संदेह इस समय भगवान् श्रीकृष्णका माहात्म्य भलीभाँति ज्ञात हुआ है। बेटा! अब तू उठ और शीघ्र ही मेरे हृदयसे लग जा ॥ २०-२१ ॥

उत्तिष्ठ पुत्र भद्रं ते रथमारुह्य संगरे।
कृष्णं दर्शय पार्थस्य सारथिं च ममातिथिम् ॥ २२ ॥

पुत्र! तेरा कल्याण हो। अब तू तैयार हो जा और रथपर सवार होकर युद्धभूमिमें अर्जुनके सारथि तथा मेरे प्रिय अतिथि श्रीकृष्णका मुझे दर्शन करा दे ॥ २२ ॥

सुधन्वना वन्दितौ तौ हृष्टेन नृपभूसुरौ।
रथं रत्नविचित्रं तं हेमबद्धं सुकूबरम् ॥ २३ ॥
दीर्घध्वजं चारुचक्रं गवाक्षैर्बहुभिर्वृतम्।
हेमवर्णैर्हयैर्युक्तं बद्धचामरमाशुगम् ॥ २४ ॥
सुवर्णमालापरिभूषितं बली
माल्यस्रजोभिर्बहुलाभिरर्चितम्।
नियन्त्रितं सूतवरेण किंकिणी-
नादेन नृत्यन्तमिवारुरोह सः ॥ २५ ॥

पिताकी आज्ञा पाकर सुधन्वाने प्रसन्न होकर राजा तथा शङ्खमुनिके चरणोंमें अभिवादन किया। तत्पश्चात् वह महाबली वीर एक ऐसे रथपर सवार हुआ, जो स्वर्णपत्रसे मढ़ा हुआ था और रत्नोंसे जटित होनेके कारण विचित्र शोभा धारण करता था। उसका कूबर अत्यन्त सुन्दर था। उस रथपर ऊँची ध्वजा फहरा रही थी। उसके पहियोंकी बनावट बड़ी सुन्दर थी। उस रथमें बहुत-से झरोखे बने थे। उसमें सुनहले रंगके घोड़े जुते हुए थे और चँवर बँधा हुआ था। वह शीघ्र चलनेवाला, सोनेकी लड़ियोंसे विभूषित तथा बहुत-सी पुष्पमालाओंसे सुसज्जित था। एक श्रेष्ठ सारथि उसे काबूमें रखता था और वह घुँघुरुओंके बजनेसे नृत्य-सा करता हुआ जान पड़ता था ॥ २३–२५ ॥

जैमिनिरुवाच

एतस्मिन्नेव काले तु सैन्यं भूपस्य संस्थितम्।
पार्थस्य प्रमुखं घोरं कालचक्रमिवापरम् ॥ २६ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! इसी समय राजा हंसध्वजकी सेना, जो दूसरे कालचक्रके समान भयंकर थी, जाकर अर्जुनके सम्मुख डटकर खड़ी हो गयी ॥ २६ ॥

वीराननेभ्यस्ताम्बूलं पतितं भूतले बहु।
तेन भूः शुशुभे तत्र इन्द्रगोपैरिवावृता ॥ २७ ॥

वहाँ भूतलपर वीरोंके मुखोंसे बहुत-सी पानकी पीकें गिरी थीं, जिनसे वहाँकी भूमि ऐसी शोभा पा रही थी, मानो (वर्षाकालमें) वीरबहूटियोंसे आच्छादित हो रही हो ॥ २७ ॥

यथा निशागमे राजन् द्यौरियं भास्करत्विषा।
वीरगात्राणि मुञ्चन्ति चन्दनं समृगोद्भवम् ॥ २८ ॥

राजन्! जैसे सायंकालमें आकाश सूर्यकी प्रभासे अनुरञ्जित हो जाता है, उसी तरह वीरोंके शरीर कस्तूरीमिश्रित लाल चन्दन बहाने लगे ॥ २८ ॥

परस्परस्य संघर्षात् कण्ठेभ्यो मौक्तिकस्रजः।
त्रुटिताश्च धरापृष्ठे दृश्यन्ते जनमेजय ॥ २९ ॥

जनमेजय! योद्धाओंके आपसमें टकरानेसे मोतियोंके हार गलेसे टूटकर पृथ्वीपर गिरे दिखायी देने लगे ॥ २९ ॥

कवचानां किरीटानां विचित्राणां रणे प्रभाः।
द्योतयन्ति जगत् तत्र नेत्राणि च मिमीलिरे ॥ ३० ॥

उस युद्धमें चित्र-विचित्र कवचों और मुकुटोंकी प्रभा जगत्को प्रकाशित करने लगी, जिसकी चमकसे वीरोंने अपने नेत्र बंद कर लिये ॥ ३० ॥

चन्दनं पतितं वायुरनयद् दिवि सर्वतः।
पुष्पाणि भूतलाक्षाकं गच्छन्त्यूर्ध्वं नृशीर्षतः ॥ ३१ ॥
विजेतुं सुरवृक्षाणां माल्यानि सुरभीण्यपि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वायु वीरोंके अङ्गोंसे गिरे हुए चन्दनको सब ओरसे उड़ाकर आकाशमें पहुँचाने लगी तथा योद्धाओंके सिरसे गिरे हुए पुष्प मानो देववृक्षोंके पुष्पों और उनकी सुगन्धोंको जीतनेके लिये भूतलसे उड़कर ऊपर स्वर्गलोकमें जा रहे थे ॥ ३१½ ॥

नराणां मुखवासेन सुगन्धेन पराजितः ॥ ३२ ॥
भ्रममाणोऽभवद् राजंस्तत्रायं मलयानिलः ।

राजन् ! वहाँ मलय पर्वतकी सुगन्धको लेकर आयी हुई वायु वीरोंके सुवासित मुखकी सुगन्धसे पराजित होकर इधर-उधर चक्कर काटने लगी ॥ ३२½ ॥

गजपुष्करतोयेन समापि विषमा मही ॥ ३३ ॥
कृता हयखुरक्षुण्णै रजोभिः पूरिता पुनः ।

हाथियोंकी सूँडसे गिरे हुए जलसे समतल भूमि भी विषम हो गयी थी, किंतु घोड़ोंकी टापोंसे उड़ी हुई धूलोंने पुनः उसे भर (कर बराबर बना) दिया ॥ ३३½ ॥

रथनादेन घोरेण मेघसागरगर्जितम् ॥ ३४ ॥
जातं मूकमहं मन्ये वाचालमपि विश्रुतम् ।
पदातिपदविन्यासाद् भूरतीव प्रकम्पिता ॥ ३५ ॥

जो गम्भीर शब्द करनेमें प्रसिद्ध हैं, ऐसे मेघ और सागरकी गर्जना भी वहाँ रथोंकी भयंकर घरघराहटके सामने मूक हुई-सी प्रतीत होती थी और पैदल सैनिकोंके पैरोंकी धमकसे वहाँकी भूमि बारंबार काँपती हुई जान पड़ती थी ॥ ३४-३५ ॥

हंसध्वजोऽब्रवीद् वीरान् गृह्णन्तु तुरगं शुभम् ।
ते तस्य वचनाच्छीघ्रं गृहीत्वा हयमागताः ॥ ३६ ॥

राजन् ! उस समय राजा हंसध्वजने अपने वीर सैनिकोंको आदेश दिया कि इस यज्ञिय अश्वको पकड़ लो । राजाकी आज्ञा पाकर वे वीर तुरंत ही घोड़ेको पकड़कर वहाँ ले आये ॥

पूजितं चर्चितं धूपवासेन बहुधूपितम् ।
पद्मव्यूहे नृपस्तं हि स्थाप्य पुत्रैः सहोदरैः ॥ ३७ ॥
संयुतो भरतश्रेष्ठ अर्जुनं योद्धुमुद्यतः ।

भरतश्रेष्ठ ! तब राजा हंसध्वज उस पूजित, नाना प्रकारके धूपकी सुगन्धसे सुवासित तथा सजे हुए घोड़ेको पद्मव्यूहके भीतर स्थापित करके पुत्रों तथा सहोदर भाइयोंके साथ अर्जुनसे लोहा लेनेके लिये डट गये ॥ ३७½ ॥

सुधन्वा सुरथश्चैव सुमतिः सचिवस्तथा ॥ ३८ ॥
वीरकेतुस्तीव्ररथः शतधन्वा महारथः ।
सुमतेरनुजास्त्वेते तथान्ये बहवो नृपाः ॥ ३९ ॥
प्रययुः पुरतः पार्थं योद्धुकामा यथासुखम् ।

उस समय सुधन्वा, सुरथ, मन्त्री सुमति और सुमतिके छोटे भाई वीरकेतु, तीव्ररथ और महारथी शतधन्वा—ये सब तथा और भी बहुत-से नरेश अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी कामनासे सुखपूर्वक आगे बढ़े ॥ ३८-३९½ ॥

ततो दुन्दुभिनिःसाणाः पटहा मर्दलास्तथा ॥ ४० ॥
तन्त्रकी वेणुशृङ्गाणि मृदङ्गाश्च ववादिरे ।
डिण्डिमाः शृङ्गभेदाश्च पणवाश्च तथानकाः ॥ ४१ ॥
ढक्का ढोलास्तथा भेर्यो गोमुखाः काहलास्तथा ।
झर्झरा जलजास्ताला वंशा मुरलिका वराः ॥ ४२ ॥
ताडिता वाद्यकुशलैस्तस्मिन् वीरसमागमे ।

वीरोंके उस समागमके अवसरपर वाद्यकुशल पुरुषोंद्वारा नगाड़े, निशान, पटह, मर्दल, वीणा, वेणु, नरसिंघे, मृदङ्ग, डिंडिम, शृङ्गभेद, पणव, आनक, डमरू, ढोल, भेरी, गोमुख, काहल, झाँझ, शङ्ख, ताल, वंशी तथा मुरली आदि उत्तम रणवाद्य बजाये जाने लगे ॥ ४०–४२½ ॥

तेन नादेन गिरयः सागराश्चापि चुक्रुशुः ॥ ४३ ॥
कातराणां तु चेतांसि द्विधा भूतानि भारत ।

भारत ! उन वाद्योंका इतना भयंकर शब्द हुआ कि उससे पर्वत और समुद्र भी गूँजने लगे तथा कायरोंके हृदय फटने लगे ॥ ४३½ ॥

जैमिनिरुवाच

पार्थस्तदाब्रवीत् तत्र कृष्णपुत्रमिदं वचः ॥ ४४ ॥
युधिष्ठिराश्वः प्रद्युम्न नीतो हंसध्वजेन हि ।
तं तु मोचयितुं वीराः के गमिष्यन्ति तद् वद ॥ ४५ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तब वहाँ अर्जुन कृष्णकुमार प्रद्युम्नसे इस प्रकार बोले—'प्रद्युम्न ! महाराज युधिष्ठिरके यज्ञिय अश्वको राजा हंसध्वजने पकड़ लिया है । अब यह बतलाओ कि उसे छुड़ानेके लिये कौन-कौन वीर जायँगे ?' ॥

भवान् सपुत्रो बलवान् यौवनाश्वो महामतिः ।
अनुशाल्वश्च वीरोऽयं कृतवर्मा च सात्यकिः ॥ ४६ ॥
वृषकेतुर्महातेजा अनिरुद्धश्च वीर्यवान् ।
नीलध्वजोऽग्निर्जामाता यस्य राष्ट्रे निरीक्षितः ॥ ४७ ॥
एते चान्ये च सन्त्यत्र तथाहमपि संस्थितः ।
परराष्ट्रे वयं प्राप्ताः सबलस्य विशेषतः ॥ ४८ ॥
त्वं तु नाथोऽसि सर्वेषामहमग्रे व्रजेऽधुना ।

'इस समय यहाँ तुम, पुत्र सुवेगसहित महाबुद्धिमान् एवं बली राजा यौवनाश्व, ये वीरवर अनुशाल्व, कृतवर्मा, सात्यकि, महातेजस्वी वृषकेतु, पराक्रमी अनिरुद्ध और जिनके राज्यमें अग्नि जामाताके रूपमें देखे गये हैं, वे राजा नीलध्वज—ये तथा और भी बहुत-से वीर उपस्थित हैं; साथ ही मैं भी सामने ही खड़ा हूँ । हमलोग दूसरे राजाके, जो विशेषतः प्रबल हैं, राज्यमें आ पहुँचे हैं । (ऐसी दशामें मेरे विचारसे तुम्हारा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रणभूमिमें जाना उचित नहीं है; क्योंकि) तुम तो हम सबके स्वामी हो; अतः अब मैं ही आगे बढ़ता हूँ' ॥४६–४८½॥

प्रद्युम्न उवाच

मैवं वद महाभाग विस्मृतं कृष्णभाषितम् ॥ ४९ ॥
सर्वस्वं मत्करे दत्तं पाण्डवाख्यं महात्मना ।
पित्रा कृष्णेन तदहं सबलः किं विनाशये ॥ ५० ॥
समक्षं धर्मराजस्य भीमस्य च महात्मनः ।
अद्य मे भुजयोः पश्य बलं पार्थ रणाङ्गणे ॥ ५१ ॥

तब प्रद्युम्नने कहा—महाभाग ! आप ऐसा मत कहें। क्या आपको मेरे पिताजीका कथन भूल गया ? मेरे उन महात्मा पिता श्रीकृष्णने महामनस्वी धर्मराज युधिष्ठिर तथा भीमसेनके सामने अपना जो अर्जुनरूपी सर्वस्व धन मेरे हाथों सौंपा था, उसे मैं बल रहते कैसे नष्ट होने दूँगा ? पार्थ ! आज रणाङ्गणमें मेरी इन भुजाओंका बल देखिये ॥ ४९–५१ ॥

हंसध्वजं सुधन्वानं सुरथं सुमतिं तथा ।
तोषये निशितैर्बाणैर्बलं च विनिपातये ॥ ५२ ॥
एनं नृपवरं विद्धि स्वदाररसिकं रणे ।

मैं अपने तीखे बाणोंद्वारा हंसध्वज, सुधन्वा, सुरथ तथा सुमतिको संतुष्ट कर दूँगा और इनकी सेनाको भी मार गिराऊँगा। केवल अपनी ही पत्नीसे प्रेम करनेवाले इन नृपश्रेष्ठको अब आप युद्धस्थलमें हारा हुआ ही समझिये ॥ ५२½ ॥

जैमिनिरुवाच

प्रद्युम्नस्य वचः श्रुत्वा वृषकेतुरुदारधीः ॥ ५३ ॥
नमस्कृत्याब्रवीद् वाग्मी न युक्तं युवयोर्वचः ।
कियत् सैन्यं युवां चात्र प्रलयोत्पत्तिकारकौ ॥ ५४ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! प्रद्युम्नकी बात सुनकर वचन-रचनामें चतुर तथा उदारबुद्धि वृषकेतु अर्जुन और प्रद्युम्नको प्रणाम करके कहने लगा—'आप दोनों महापुरुषोंका कथन युक्त नहीं है; क्योंकि आपलोग तो संग्रामभूमिमें प्रलयका दृश्य उत्पन्न कर देनेवाले वीर हैं, फिर आपके योग्य यहाँ सेना ही कितनी है ? ॥ ५३-५४ ॥

मुखवातेन यो गच्छेत् तूलतुल्यबलः पुरः ।
तदर्थं प्रेषयेत् कोऽत्र प्रज्वलद् वडवानलम् ॥ ५५ ॥

'जिसका बल रूईके समान है, जो सामने आनेपर मुखकी फूँकसे नष्ट हो जानेवाला है, उसे जलानेके लिये कौन वीर धधकते हुए बडवानलको भेजेगा ? ॥ ५५ ॥

नेत्रपक्ष्मप्रहारेण हन्यते मशको यदि ।
तं हन्तुं कश्च मन्दात्मा तार्क्ष्यं दिशति नागहम् ॥ ५६ ॥

'यदि मच्छर नेत्रोंके पलकोंके प्रहारसे ही मर जाता है तो उसे मारनेके लिये कौन मूर्ख सर्पहन्ता गरुडको आज्ञा देगा ?॥

स्वल्पशीकरवर्षेण यद् रजः परिशाम्यति ।
तन्नाशाय कथं वर्षन् वरुणो याति कोपतः ॥ ५७ ॥

'जो धूल थोड़ी-सी बूँदा-बूँदी वर्षासे ही शान्त हो जानेवाली है, उसका विनाश करनेके लिये वर्षा करनेके उद्देश्यसे क्रोधपूर्वक वरुण क्यों जायँगे ? ॥ ५७ ॥

तथाविधमिदं भाति युष्माकमिति मे मतिः ।
भवद्भ्यामहमादिष्टो नानये किं तुरङ्गमम् ॥ ५८ ॥

'मेरे विचारसे तो आपलोगोंका यह युद्धोद्योग भी उसी प्रकारका प्रतीत हो रहा है। क्या आप दोनोंकी आज्ञा पाकर मैं उस घोड़ेको वापस नहीं ला सकता ? ॥ ५८ ॥

यमदूतगणैर्बद्धं हरते हरिकिङ्करः ।
यथा संसारिणं जीवमनन्तपदसेवकम् ॥ ५९ ॥
तथाऽऽनयेऽद्य तुरगमाज्ञया भवतोऽप्यहम् ।
एष गच्छामि संग्रामे पार्थ पश्य तवाहितान् ॥ ६० ॥

'जैसे यमदूतोंद्वारा बाँधे गये संसारी जीवको, यदि वह भगवान् विष्णुके चरणोंका सेवक है तो, विष्णुदूत छीन लेते हैं, उसी तरह आपकी आज्ञा पाकर मैं भी अभी घोड़ेको वापस ला सकता हूँ। पार्थ ! लीजिये, मैं अभी रणक्षेत्रमें आपके शत्रुओंपर आक्रमण करने जा रहा हूँ' ॥ ५९-६० ॥

जैमिनिरुवाच

निर्ययौ कर्णपुत्रोऽग्रे पाण्डवेन निवारितः ।
शङ्खं दध्मौ महातेजा हंसध्वजबलं प्रति ।
रथेनातिविचित्रेण सुपताकेन गर्जता ॥ ६१ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर अर्जुनके रोकनेपर भी वृषकेतु हंसध्वजकी सेनापर आक्रमण करनेके लिये सबसे पहले चला। उस समय उस महातेजस्वी वीरने सुन्दर ध्वजसे सुशोभित तथा भयंकर गर्जना करनेवाले एक सुन्दर रथद्वारा आगे बढ़कर अपना शङ्ख बजाया ॥ ६१ ॥

सारथिं प्राह धर्मात्मा तुरङ्गांस्तित्तिरिप्रभान् ।
मम नोदय सूतेति पद्मव्यूहे सुदारुणे ।
सारथिस्तत्क्षणादेव कशामुद्यम्य वेगवान् ॥ ६२ ॥
प्रेरयामास तुरगाञ्जवनान् रणकोविदः ।
वृषकेतुं विलोक्याथ सुधन्वा वाक्यमब्रवीत् ॥ ६३ ॥

फिर उस धर्मात्माने अपने सारथिको आज्ञा दी—'सूत ! तित्तिरिके समान रंगवाले मेरे घोड़ोंको हाँककर इस अत्यन्त भयंकर पद्मव्यूहमें ले चलो।' यह सुनकर शीघ्र ही आज्ञाका पालन करनेवाले उस युद्धकुशल सारथिने उसी क्षण चाबुक हाथमें लेकर उन शीघ्रगामी घोड़ोंको आगे बढ़ाया। तब वृषकेतुको पद्मव्यूहमें प्रवेश करते देखकर सुधन्वाने कहा ॥ ६२–६३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुधन्वोवाच

पद्मव्यूहमदृष्ट्वैव कः समायाति लीलया।
वृषोऽस्य दृश्यते रम्यो ध्वजस्थो न धनंजयः ॥ ६४ ॥

सुधन्वा बोला—यह कौन वीर है, जो पद्मव्यूहको कुछ भी न समझकर लीलापूर्वक आगे बढ़ा आ रहा है। इसके ध्वजपर सुन्दर वृषका चिह्न दीख रहा है, अतः यह अर्जुन तो नहीं है ॥ ६४ ॥

एक एवापरः कश्चिद् वीरः सत्त्वसमन्वितः।
धनञ्जयकणैः कीर्णैर्दह्यन्ते किं न भूभृतः ॥ ६५ ॥

यह कोई दूसरा बल-पराक्रमसम्पन्न वीर है, जो अकेले ही आ रहा है; परंतु क्या अग्निकी चिनगारियोंसे बड़े-बड़े पर्वत नहीं जल जाते (अवश्य जल जाते हैं, उसी तरह इस एकाकी वीरके द्वारा मेरी विशाल सेनाके भी नष्ट होनेकी सम्भावना है) ॥ ६५ ॥

तस्मादेको बहून् प्राप्तो ह्यनादृत्याधुना हि नः।
अहमेनं व्रजाम्यद्य वीरं रणविशारदम् ॥ ६६ ॥

अपने बलाभिमानके कारण ही यह इस समय हमलोगोंका अनादर करके अकेले ही बहुतोंका सामना करने आ रहा है; अतः अब मैं इस युद्धकुशल वीरके सम्मुख चलता हूँ ॥६६॥

सूत मां नय भद्रं ते वीरस्य रथसम्मुखम्।
तेन सूतेन नीतोऽसौ सुधन्वा रथिनां वरः ॥ ६७ ॥

(ऐसा कहकर सुधन्वाने अपने सारथिसे कहा—) 'सूत! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम मुझे इस वीरके रथके सामने ले चलो।' तब वह सारथि रथियोंमें श्रेष्ठ सुधन्वाको वहाँ ले गया ॥ ६७ ॥

उभौ तौ संस्थितौ युद्धे तत्र तीव्रपराक्रमौ।
सुधन्वा वृषकेतुं हि पप्रच्छ मुदितौ हसन् ॥ ६८ ॥

वहाँ युद्धस्थलमें परम पराक्रमी वे दोनों वीर हर्षपूर्वक (आमने-सामने) डटकर खड़े हो गये। तब सुधन्वाने वृषकेतुसे मुसकराते हुए पूछा ॥ ६८ ॥

सुधन्वोवाच

कस्त्वं कस्यात्मजश्चासि किन्नाम तव सुव्रत।

सुधन्वाने कहा—सुव्रत! तुम कौन हो? किसके पुत्र हो? तथा तुम्हारा क्या नाम है? ॥ ६८½ ॥

वृषकेतुरुवाच

यं भेत्तुमुद्यतोऽसि त्वं स चास्माकं पितामहः ॥ ६९ ॥
पुत्राणामवरस्तस्य यः कर्णश्च सुतोऽपरः।
दातॄणामग्रणीर्वीरो नित्यं धीरः स मे पिता ॥ ७० ॥
काश्यपस्य कुले जातं विद्धि मां वृषकेतुकम्।

तब वृषकेतुने उत्तर दिया—वीर! तुम जिस पाण्डव वंशका भेदन करनेके लिये उद्यत हुए हो, उस वंशके प्रवर्तक महाराज पाण्डु हमारे पितामह हैं। उन्हींके पुत्रोंमेंसे ये हमारे अग्रणी अर्जुन तीसरे पुत्र हैं। महाराज पाण्डुके ही दूसरे (क्षेत्रज) पुत्र जो कर्णके नामसे विख्यात हुए हैं और जो सदा दाताओंमें अग्रगण्य, धीर और वीर थे, वे ही मेरे पिता हैं। (वे कश्यपनन्दन सूर्यके वीर्यसे उत्पन्न हुए थे, अतः) मुझे सूर्यवंशमें उत्पन्न हुआ समझो। मेरा नाम वृषकेतु है ॥

सुधन्वोवाच

हंसध्वजस्य पुत्रोऽहं सुधन्वा नाम मे शुभम् ॥ ७१ ॥
मधुच्छन्दा ऋषिः पूर्वमस्माकं वंशकारकः।
तिष्ठ युद्धे मम पुरः पौरुषं त्वं प्रदर्शय ॥ ७२ ॥

सुधन्वाने कहा—वीर! मैं महाराज हंसध्वजका पुत्र हूँ और मेरा शुभ नाम सुधन्वा है। पूर्वकालमें जो मधुच्छन्दा नामक ऋषि थे, वे ही हमारे वंशप्रवर्तक हैं। अब तुम युद्धमें मेरे सम्मुख डटकर खड़े हो जाओ और अपना पुरुषार्थ दिखलाओ ॥ ७१-७२ ॥

तेजस्वी पूर्वजः सूर्यो यथा ध्वान्तमपोहति।
तथा भवाञ्छत्रुबलं युद्धे वारयिता भव।
स्वकुलं वर्णयन्त्येव मन्दाः पौरुषवर्जिताः ॥ ७३ ॥

तुम्हारे पूर्वज तेजस्वी सूर्य-जैसे अन्धकारका नाश कर देते हैं, उसी तरह तुम भी युद्धक्षेत्रमें शत्रुसेनाका निवारण करो (तब तो तुम्हारी तथा तुम्हारे कुलकी प्रतिष्ठा है, अन्यथा) अपने कुलकी झूठी प्रशंसा तो पुरुषार्थहीन मूर्ख ही किया करते हैं ॥ ७३ ॥

वृषकेतुरुवाच

अधुना दर्शयिष्यामि स्वबलं सायकैर्हि।
एते मदीया नाराचास्तीक्ष्णधाराः सुतेजसः ॥ ७४ ॥
सहसा तव सैन्ये च गमिष्यन्ति महाहवे।
वचसा यन्मया प्रोक्तं नानृतं तत् प्रजायते ॥ ७५ ॥

तब वृषकेतु बोला—वीर! इस समय मैं अपना बल बाणोंद्वारा दिखाऊँगा। मेरे ये अत्यन्त चमकीले तथा तीखी धारवाले बाण महायुद्धमें सहसा तुम्हारी सेनापर गिरेंगे। मैं वाणीसे जो कह रहा हूँ, वह मिथ्या नहीं हो सकता ७४-७५

जैमिनिरुवाच

शराणां महती वृष्टिस्तेन मुक्ता बलं प्रति।
सुधन्वानं छादयित्वा सिंहनादमथाकरोत् ॥ ७६ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर वृषकेतुने शत्रु-सेनापर बाणोंकी झड़ी लगा दी और सुधन्वाको बाणोंसे आच्छादित करके वह सिंहनाद करने लगा ॥ ७६ ॥

भित्त्वा शरीराणि शरा गजाश्वरथपत्तिनाम्।
चक्रुर्जीवितहीनानि वृषकेतोर्महात्मनः ॥ ७७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस समय महान् आत्मबलसे सम्पन्न वृषकेतुके बाणोंने हाथी, घोड़े, रथी तथा पैदल सैनिकोंके शरीरोंको छिन्न-भिन्न करके उन्हें प्राणशून्य कर दिया ॥ ७७ ॥

सर्वतस्तेन विद्धोऽसौ सुधन्वा रथयूथपः ।
बलं न दृश्यते सर्वं बाणैश्छन्नं नराधिप ॥ ७८ ॥

नरेश्वर ! उसने रथियोंके समुदायके नेता सुधन्वाको सब ओरसे बींध दिया और उसकी बाणवर्षासे आच्छादित होकर सारी सेना भी अदृश्य हो गयी ॥ ७८ ॥

सुधन्वनो हयान् विद्ध्वा सारथिं च महाध्वजम् ।
चिच्छेद तरसा युद्धे प्रहसन् पञ्चभिः शरैः ॥ ७९ ॥

फिर युद्धस्थलमें हँसते हुए वृषकेतुने सुधन्वाके घोड़ों तथा सारथिको घायल करके वेगपूर्वक पाँच बाण मारकर उसके विशाल ध्वजको भी काट गिराया ॥ ७९ ॥

पुनरेवावृणोत् सैन्यं सर्वेषामेव पश्यताम् ।
गार्ध्रपत्रैः सुनिशितैः शतधा पातितं भुवि ॥ ८० ॥

पुनः उस वीरने सबके देखते-देखते गीधके पाँख लगे हुए अत्यन्त तीखे बाणोंसे उस सेनाको आच्छादित कर दिया और सैकड़ों टुकड़ोंमें छिन्न-भिन्न करके पृथ्वीपर गिरा दिया ॥८०॥

छत्राणि चामराण्येव ध्वजांश्च विविधानपि ।
तनुत्राणि च संक्रुद्धो युधि चिच्छेद कर्णजः ॥ ८१ ॥

उस युद्धमें कुपित होकर वृषकेतुने बहुत-से छत्र, चँवर, ध्वज तथा नाना प्रकारके कवचोंको भी काट डाला ॥ ८१ ॥

हस्तिहस्तोपमान् बाहून् सायुधान् भूषणैर्वृतान् ।
शिरांसि च महाबाहुः संदष्टौष्ठपुटानि च ॥ ८२ ॥

उस महाबाहुने (शत्रुपक्षी योद्धाओंकी) आभूषणोंसे विभूषित, आयुधोंसे युक्त तथा हाथीकी सूँड़के समान मोटी भुजाओंको और दाँतों-तले दबे हुए ओष्ठवाले उनके मस्तकोंको भी काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ८२ ॥

तत् प्रभिन्नं बलं दीक्ष्य रथमन्यं समाश्रितः ।
सुधन्वा पौरुषं तस्य बहुधा हृद्यमन्यत ॥ ८३ ॥
जघान तुरगानस्य सारथिं च महाध्वजम् ।
तूलराशिनिभं कृत्वा पञ्चभिस्तमताडयत् ॥ ८४ ॥
वृषकेतोर्धनुश्छिन्नं सतूणं पञ्चभिः शरैः ।

तब अपनी सेनाको यों नष्ट हुई देखकर सुधन्वाने अपने हृदयमें वृषकेतुके पुरुषार्थकी बड़ी सराहना की और फिर दूसरे रथपर चढ़कर वृषकेतुके घोड़ों तथा सारथिको मार गिराया । फिर उसके विशाल ध्वजको भी काटकर सबको रूईके ढेर-सा धराशायी कर दिया । फिर पाँच बाण मारकर वृषकेतुके तरकससहित धनुषके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और पुनः पाँच बाणोंद्वारा उसे भी चोट पहुँचायी ॥ ८३-८४½ ॥

भ्रममाणं च तद्वात्रं गतं यत्र महद्बलम् ॥ ८५ ॥
कर्णपुत्रस्य संग्रामात् तदद्भुतमिवाभवत् ।

उस प्रहारसे व्याकुल होकर वृषकेतुका शरीर चक्कर काटता हुआ युद्धसे हटकर उस स्थानपर जा गिरा, जहाँ (शत्रुपक्षकी ही) विशाल सेना खड़ी थी। यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ८५½ ॥

मूर्च्छां विहाय धर्मात्मा यावत् पश्यति मानिनम् ॥ ८६ ॥
तावद् ददर्श तं घोरं सैन्यमध्यस्थितं पुरः ।
आत्मानं सैन्यमध्यस्थं बहुभिः परिवारितम् ॥ ८७ ॥
विलोक्य रथहीनं च क्रोधाज्जग्राह तद्धनुः ।
दृढज्यं प्रमुमोचाथ बाणान् हेमविभूषितान् ॥ ८८ ॥

जब धर्मात्मा वृषकेतुकी मूर्च्छा निवृत्त हुई, तब वह उस मानी वीर सुधन्वाको खोजने लगा । इतनेमें ही उसने अपने सामने सेनाके मध्यभागमें स्थित उस भयंकर वीरको देखा और अपनेको रथहीन-अवस्थामें शत्रु-सेनाके बीच बहुत-से वीरोंद्वारा घिरा हुआ पाया । अपनी यह दशा देखकर वह क्रोधसे भर गया और उसने अपना वह धनुष हाथमें लिया, जिसकी प्रत्यञ्चा बड़ी मजबूत थी । तत्पश्चात् वह सुवर्णभूषित बाणोंको छोड़ने लगा ॥ ८६–८८ ॥

सर्वाङ्गं सायकैश्छिन्नमच्छिन्नमिव धारयन् ।
हंसध्वजस्य तत् सैन्यं चक्रे जीवितवर्जितम् ॥ ८९ ॥

यद्यपि उसका सारा शरीर बाणोंसे छिद गया था फिर भी वह उसे उसी प्रकार धारण किये हुए था, मानो उसे कोई क्षति नहीं पहुँची हो । वह वीर हंसध्वजकी उस सेनाको प्राणशून्य करने लगा ॥ ८९ ॥

ततः परस्य सैन्येन वेष्टितः कर्णनन्दनः ।
शक्तिभिस्तोमरैर्भल्लैर्भिन्दिपालैश्च संगरे ॥ ९० ॥
मुद्गरैरसिभिर्घोरैः समन्ताच्च विहन्यते ।
नाराचैः करपत्रैश्च भुशुण्डीभिरयोमुखैः ॥ ९१ ॥
गदाभिः परिघैश्चैव पट्टिशैश्च त्रिशूलकैः ।
शस्त्रास्त्रैर्हन्यमानं स्वं वपुः कर्णात्मजो बली ॥ ९२ ॥
निरीक्ष्य वासुदेवस्य नामानि सहसा जपन् ।

तब शत्रुसैनिकोंसे घिरे हुए कर्णनन्दन वृषकेतुपर सब ओरसे शक्ति, तोमर, भल्ल, भिन्दिपाल, मुद्गर, भयंकर तलवार, नाराच, करपत्र, भुशुण्डी, अयोमुख, गदा, परिघ, पट्टिश और त्रिशूलोंकी मार पड़ने लगी । उस समय महाबली कर्णपुत्र वृषकेतु अपने शरीरको इस तरह शस्त्रास्त्रोंद्वारा पीडित हुआ देख सहसा भगवान् श्रीकृष्णके नामोंका जप करने लगा ॥ ९०–९२½ ॥

ततोऽन्यं च रथं सूतो योजयित्वा महाध्वजम् ॥ ९३ ॥
कर्णान्मजस्य सांनिध्यं जगाम रणमण्डले ।

इतनेमें ही इसका सारथि एक दूसरे रथको, जिसपर विशाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ध्वजा फहरा रही थी, जोतकर युद्धके मैदानमें वृषकेतुके समीप जा पहुँचा ॥ ९६½ ॥

तं समारुह्य वेगेन वृषकेतुः पुनः पुनः ॥ ९४ ॥
विव्याध सायकैस्तीक्ष्णैः सुधन्वानं हसन्निव।
सैन्यं च पीडयामास समन्ताद् बाणवृष्टिभिः ॥ ९५ ॥

तब वृषकेतुने शीघ्र ही उस रथपर सवार होकर बारंबार पैने बाण मारकर सुधन्वाको हँसते हुए-से घायल कर दिया और चारों ओरसे बाणवर्षा करके उसकी सेनाको भी पीड़ित कर दिया ॥ ९४-९५ ॥

सुधन्वा कर्णपुत्रं तं हृदि विव्याध पञ्चभिः।
पुनः स मूर्च्छामगमद् वृषकेतुर्महाबलः ॥ ९६ ॥

तत्पश्चात् सुधन्वाने कर्णकुमार वृषकेतुके हृदयको पाँच बाणोंसे बींध दिया। उन बाणोंके आघातसे महाबली वृषकेतु पुनः मूर्च्छित हो गया ॥ ९६ ॥

मूर्च्छितं सारथिः शीघ्रं वृषकेतुं महाबलम्।
रणमध्यादपोवाह तावत् कार्ष्णिः समागतः ॥ ९७ ॥

तब महाबली वृषकेतुको मूर्च्छित देखकर सारथि शीघ्र ही उसे रणक्षेत्रसे दूर हटा ले गया। तबतक वहाँ प्रद्युम्न आ पहुँचे ॥ ९७ ॥

प्रद्युम्नस्तिष्ठ तिष्ठेति सुधन्वानं समाक्षिपत्।
पञ्चभिस्तं शरैर्घोरैः पीडयामास संगरे ॥ ९८ ॥
सूतं सुधन्वनो रोषादनयद् यमसादनम्।
हयानां शकलान्येकविंशतिं क्रोधमूर्च्छितः ॥ ९९ ॥
चकार रथयुक्तानां चतुर्णां निशितैः शरैः।
युगे कृतेऽष्टधा बाणैस्त्रिभिरेकेन कार्मुकम् ॥ १०० ॥
प्रद्युम्नेन त्रिशकलं कृतं चित्रं सुधन्वनः।

उन्होंने 'खड़ा रह, खड़ा रह' यह कहकर सुधन्वाको फटकारते हुए युद्धस्थलमें पाँच भयंकर बाणोंद्वारा उसे गहरी चोट पहुँचायी और क्रुद्ध होकर उसके सारथिको यमलोक पहुँचा दिया। फिर क्रोधसे तिलमिलाकर तीखे बाणोंका प्रहार करके सुधन्वाके रथमें जुते हुए चारों घोड़ोंके इक्कीस टुकड़े कर डाले। तीन बाणोंसे रथके जुएके आठ खण्ड कर दिये और एक बाण मारकर सुधन्वाके विचित्र धनुषको तीन टुकड़ों-में बाँट दिया ॥ ९८–१००½ ॥

सुधन्वापि रणे ज्ञात्वा प्रद्युम्नस्यातिकौशलम् ॥ १०१ ॥
चकार लीलया युद्धे पौरुषं स्वं प्रदर्शयन्।
संधानमद्भुतं रोषाच्छराभ्यामष्टधा हयान् ॥ १०२ ॥
युगं त्रिवेणुकं रम्यं कृतं षोढा सुधन्वना।
प्रद्युम्नस्य धनुश्छिन्नं बाणेनैकेन पञ्चधा ॥ १०३ ॥
तेनापि सारथेः कायाच्छिन्नं शीर्षं तदद्भुतम्।
त्रिभिः कृष्णसुतं विद्ध्वा सिंहनादं चकार ह ॥ १०४ ॥

तब सुधन्वाने भी प्रद्युम्नके इस उत्कृष्ट रणकौशलको जानकर युद्धमें अपना पुरुषार्थ प्रकट करते हुए लीलापूर्वक बाणोंका अद्भुत रीतिसे संधान किया। उसने क्रुद्ध होकर दो बाणोंसे प्रद्युम्नके घोड़ोंके आठ टुकड़े कर दिये तथा रथके जुए और सुन्दर त्रिवेणुको सोलह स्थानोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया। फिर एक ही बाणसे प्रद्युम्नके धनुषके पाँच टुकड़े करके उसी बाणसे सारथिके मस्तकको भी धड़से काट गिराया। यह एक आश्चर्यजनक घटना हुई। तत्पश्चात् वह तीन बाणों-से प्रद्युम्नको बींधकर सिंहनाद करने लगा ॥ १०१–१०४ ॥

उभौ तौ बलिनौ वीरौ महारणविशारदौ।
गगने भूतले युद्धं चक्रतुः खेचराविव ॥ १०५ ॥
मूर्च्छितौ पतितौ बाणैः पीडितौ रुधिरोक्षितौ।

वे दोनों महाबली वीर युद्धकलामें परम प्रवीण थे, अतः आकाशचारी पक्षीकी भाँति भूतलपर तथा आकाशमें भी उछलकर युद्ध करने लगे और एक-दूसरेके बाणोंसे पीड़ित एवं खूनसे लथपथ हो गये। तत्पश्चात् दोनों ही मूर्च्छित हो-कर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १०५½ ॥

सुधन्वा ह्युत्थितः क्रुद्धो रथमन्यं समाश्रितः ॥ १०६ ॥
ताडयामास पार्थस्य वीरान् बाणैः सहस्रशः।
कृतवर्माणमासाद्य जघान नवभिः शरैः ॥ १०७ ॥

उन दोनोंमें पहले सुधन्वा ही मूर्च्छा टूटनेपर उठा और क्रोधपूर्वक दूसरे रथपर चढ़कर हजारों बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनके योद्धाओंको पीडित करने लगा। उसने कृतवर्माके पास जाकर उसपर नौ बाणोंसे प्रहार किया ॥ १०६-१०७ ॥

कृतवर्मा तेन मुक्तांस्त्रिधा चिच्छेद सायकान्।
पञ्चभिः पीडयामास सुधन्वानं महोरसि ॥ १०८ ॥

तब कृतवर्माने उसके चलाये हुए बाणोंके तीन-तीन टुकड़े कर दिये और सुधन्वाकी चौड़ी छातीपर पाँच बाण मारकर उसे गहरी चोट पहुँचायी ॥ १०८ ॥

सुधन्वा च ततो राजन् नवभिः सायकैः क्षणात्।
हार्दिक्यं विरथं चक्रे हयान् हत्वा च सारथिम् ॥ १०९ ॥
स शरैरर्दितो वीरो रणं त्यक्त्वा पलायितः।

राजन्! तदनन्तर सुधन्वाने उसी क्षण नौ बाणोंद्वारा कृतवर्माके घोड़ों तथा सारथिका संहार करके उसे रथहीन कर दिया। तब सुधन्वाके बाणोंसे पीड़ित हो वीर कृतवर्मा युद्ध छोड़कर भाग खड़ा हुआ ॥ १०९½ ॥

अनुशाल्वस्ततो वीरं सुधन्वानं महारणे ॥ ११० ॥
समाहूयाब्रवीद् वीरो गृहीत्वा सशरं धनुः।

तदनन्तर शूरवीर अनुशाल्व उस महायुद्धमें बाणसहित अपने धनुषको हाथमें लेकर महाबली सुधन्वाको पुकारकर कहने लगा ॥ ११०½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुशाल्व उवाच

सुधन्वन् बहवो वीरास्त्वया युद्धेऽद्य तोषिताः॥ १११॥
स्वबलेन समक्षं मे परमं कौतुकं हि तत्।
सहस्व मच्छरं चैकं सर्वेषामेव पश्यताम्॥ ११२॥
ततो मुमोच नाराचं वडवानलसंनिभम्।

अनुशाल्व बोला—सुधन्वन्! आज तुमने मेरे सामने अपने बल-पराक्रमद्वारा बहुत-से वीरोंको युद्धमें संतुष्ट कर दिया है। तुम्हारा यह कार्य परम कौतुकपूर्ण है; परंतु अब तुम सबके सामने ही मेरे एक बाणको सह लो। ऐसा कहकर उसने बड़वानलके समान एक भयंकर बाण चलाया॥ १११-११२½॥

अनुशाल्वकरान्मुक्तं वीक्ष्य बाणं सुदारुणम्॥ ११३॥
छेत्तुं व्यवस्थितो बाणैस्तं शरं न शशाक सः।
प्रविष्टो हृदये बाणस्तदा तस्य सुधन्वनः॥ ११४॥

अनुशाल्वके हाथसे छूटकर अपनी ओर आते हुए उस अत्यन्त भयंकर बाणको देखकर सुधन्वा अपने बाणोंद्वारा उस बाणको काट डालनेके लिये प्रयत्न करने लगा, परंतु काट न सका। तब वह बाण सुधन्वाके हृदयमें घुस गया॥ ११३-११४॥

अनुशाल्वस्ततः सेनां दारयामास सायकैः।
सुधन्वानं महाबाहुं नवभिः सायकैर्दृढैः॥ ११५॥
विरथं त्वरितं कृत्वा पातयित्वा धरातले।
जगर्ज च तदा वीरस्ततो दैत्याधिपो बली॥ ११६॥

तत्पश्चात् अनुशाल्वने बाणवर्षा करके शत्रुसेनाको विदीर्ण कर दिया। फिर दैत्योंके स्वामी महाबली वीर अनुशाल्वने तुरंत ही नौ सुदृढ़ बाणोंके प्रहारद्वारा महाबाहु सुधन्वाको रथहीन करके उसे धराशायी कर दिया। उस समय उसने बड़ी विकट गर्जना की॥ ११५-११६॥

अथ मूर्च्छां विहायाशु सुधन्वा रथिनां वरः।
विव्याधैकेन बाणेन रणे शाल्वानुजं बली॥ ११७॥

तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ महाबली सुधन्वा शीघ्र ही मूर्च्छाका परित्याग करके उठ बैठा और उसने युद्धस्थलमें एक बाणसे अनुशाल्वको बींध दिया॥ ११७॥

तेन बाणेन भिन्नोऽसौ निपपात धरातले।
सेनां पार्थस्य विविधां नाराचैः शतधाभिनत्॥ ११८॥

उस बाणसे घायल होकर अनुशाल्व पृथ्वीपर गिर पड़ा। फिर सुधन्वाने अर्जुनकी अनेक प्रकारकी सेनाको बाणोंद्वारा सौ-सौ टुकड़ोंमें विदीर्ण कर दिया॥ ११८॥

गजानीकं स बहुधा भित्त्वा चक्रे वसुन्धराम्।
रुधिरौघवतीं राजन् विषमां मांसकर्दमाम्॥ ११९॥

राजन्! उसने बहुत-सी गज-सेनाका संहार करके पृथ्वीपर रक्तकी धारा बहा दी, जिसमें मांसकी कीच मच जानेके कारण वहाँकी समतलभूमि भी विषम हो गयी॥ ११९॥

गजाननेषु भिन्नेषु हयशीर्षाणि संगरे।
सङ्गतानि स्म दृश्यन्ते शतशोऽथ सहस्रशः॥ १२०॥

युद्धभूमिमें छिन्न-भिन्न होकर गिरे हुए हाथियोंके मुखोंपर सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें घोड़ोंके मस्तक चिपके हुए दीख रहे थे॥ १२०॥

द्विधा भिन्ना हया बाणैः सादिभिः सहिता रणे।
पुरोभागेन गच्छन्ति पतिता अपि धन्विनः॥ १२१॥

बाणोंके प्रहारसे दो टुकड़ोंमें विभक्त हुए सवारोंसहित घोड़े अपने अगले भागसे युद्धभूमिमें कुछ दूरतक दौड़ जाते थे। फिर वे तथा उनपर चढ़े हुए धनुर्धर वीर भी धराशायी हो जाते थे॥ १२१॥

नराश्वगजदासेरखराणां रुधिरं तदा।
शरैश्चित्रैर्विभिन्नानां प्रावहत् सरितं प्रति॥ १२२॥

चित्र-विचित्र बाणोंद्वारा विदीर्ण हुए मनुष्यों, घोड़ों, हाथियों, ऊँटों और गधोंका रक्त बाहुदा नदीकी ओर बह चला॥ १२२॥

ते छिन्नबाहवो वीरा रुधिरौघेण वाहिताः।
बाहुदां प्राप्य सकरा गगने चाभवन् क्षणात्।
इतस्ततो बलं भग्नं विमुखं पाण्डवस्य तत्॥ १२३॥

जिनकी भुजाएँ कट गयी हैं, वे वीर उस रक्त-प्रवाहके साथ बहते हुए बाहुदा नदीमें पहुँचकर उसी क्षण हाथोंसे संयुक्त होकर आकाशमें पहुँच जाते थे (अर्थात् दिव्य शरीर धारण करके स्वर्गगामी हो जाते थे)। उस समय अर्जुनकी वह सेना युद्धसे विमुख हो इधर-उधर भाग चली॥ १२३॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि सुधन्वनो युद्धवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें सुधन्वाके युद्धका वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकोनविंशोऽध्यायः

सुधन्वा और सात्यकिके युद्धमें सात्यकिका मूर्च्छित होना, सुधन्वा और अर्जुनका युद्ध, अर्जुनका सारथिके मारे जानेपर श्रीकृष्णका स्मरण करना, श्रीकृष्णका वहाँ पधारना, तीन बाणोंद्वारा सुधन्वाका वध करनेके लिये अर्जुनकी प्रतिज्ञा, सुधन्वाद्वारा तीनों बाणोंका काटा जाना और तीसरे बाणके आधे भागसे सुधन्वाकी मृत्यु

जैमिनिरुवाच

जगर्ज च सुधन्वा तं सप्तत्या सात्यकिं प्रभुम्।
नाराचानां निर्बिभेद तस्मिन् युद्धे जनाधिप ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनेश्वर ! उस युद्धमें सुधन्वा सामर्थ्यशाली सात्यकिको सत्तर बाणोंसे घायल करके सिंहनाद करने लगा ॥ १ ॥

सात्यकिः पञ्चसप्तत्या भल्लानां स्यन्दनं हयान्।
सूतं ध्वजं तथा छत्रं त्रिवेणुं तल्पमेव च ॥ २ ॥
नीडं चक्रे पार्श्वधारं चिच्छेदाशु सुधन्वनः।
सुधन्वा सात्यकिं क्रुद्धश्चकार विरथं हसन् ॥ ३ ॥

तब सात्यकिने भी शीघ्र ही भल्ल नामक पचहत्तर बाण मारकर सुधन्वाके रथ, घोड़े, सारथि, ध्वज, छत्र, त्रिवेणु, तल्प, बैठक, दोनों पहिये तथा पार्श्वधारको काट डाला। फिर सुधन्वाने भी कुपित होकर सात्यकिको हँसते हुए रथहीन कर दिया ॥ २-३ ॥

उभौ स्यन्दनमारुह्य पुनरेव व्यवस्थितौ।
अम्बरं बाणसाहस्रैश्छादयामासतू रणे ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् वे दोनों वीर पुनः दूसरे रथपर सवार होकर युद्धस्थलमें डट गये और सहस्रों बाणोंकी वर्षा करके आकाशको आच्छादित करने लगे ॥ ४ ॥

उभौ शरविशीर्णाङ्गौ रुधिरौघप्रवर्षिणौ।
किंशुकाविव राजेते वसन्ते पुष्पितौ नृप ॥ ५ ॥

राजन् ! उन दोनों वीरोंके शरीर बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो गये और रक्तकी धारा बहाने लगे। उस समय वे वसंत-ऋतुमें खिले हुए दो पलाश-वृक्षोंकी भाँति सुशोभित हो रहे थे ॥ ५ ॥

शक्तिं मुमोच कुपितः सात्यकिं परिपीडयन्।
युयुधानः शक्तिघातात् कश्मलं प्रत्यपद्यत ॥ ६ ॥

फिर सुधन्वाने क्रुद्ध होकर सात्यकिको भलीभाँति पीडित करते हुए उनपर एक शक्ति छोड़ी। उस शक्तिके आघातसे सात्यकिको मूर्च्छा आ गयी ॥ ६ ॥

शैनेयं मूर्च्छितं वीक्ष्य हाहाकारो महानभूत्।
भयावृतं बलं सर्वमपोवाह तथाऽऽकुलम् ॥ ७ ॥

उन शिनि-नप्ता सात्यकिको मूर्च्छित देख वहाँ महान् हाहाकार मच गया। सारी सेना भयभीत हो गयी और घबराकर भागने लगी ॥ ७ ॥

ततः पार्थो महाबाहुः सुधन्वानं समागतम्।
तिष्ठ तिष्ठेति बहुधा कुतो यासीत्यवोचत ॥ ८ ॥

तदनन्तर महाबाहु अर्जुन सम्मुख आये हुए सुधन्वासे 'खड़ा रह, खड़ा रह, कहाँ जा रहा है ?' यों बारंबार कहने लगे ॥ ८ ॥

अर्जुन उवाच

जिता मदीया बहवस्त्वया युद्धे महाबल।
बलं तवाधिकं वीर शक्रस्येव महात्मनः ॥ ९ ॥
मया युद्धानि हि पुरा कृतानि सुबहून्यपि।
द्रोणभीष्मकृपैः सार्धं कर्णेन च महात्मना ॥ १० ॥
कालखञ्जैश्च बहुभिः शङ्करेणासुरैः सह।
तथा न विस्मयो जातो यथा त्वां वीक्ष्य जायते ॥ ११ ॥

अर्जुन बोले—महाबली वीर ! तुमने संग्राममें मेरे बहुत-से वीरोंको पराजित कर दिया है, इससे प्रतीत होता है कि महात्मा इन्द्रकी भाँति तुममें बहुत अधिक बल है; क्योंकि पहले मुझे गुरु द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म, कुलगुरु कृपाचार्य और महामनस्वी कर्णके साथ तथा कालखंज आदि बहुत-से असुरों एवं स्वयं भगवान् शंकरके साथ भी बहुत बार युद्ध करनेका अवसर प्राप्त हुआ है; परंतु ऐसा विस्मय मुझे उस समय नहीं हुआ था, जैसा इस समय तुम्हारे युद्धको देखकर हो रहा है ॥ ९–११ ॥

सुधन्वोवाच

युद्धानि यानि संग्रामे त्वया पार्थ कृतानि हि।
तत्र ते सारथिः कृष्णो हितकर्ता यतः स्थितः ॥ १२ ॥
कृष्णहीनोऽसि संग्रामे तेन ते विस्मयोऽभवत्।
त्वया त्यक्तो यदि हरिः कथं त्वं हरिणाधुना ॥ १३ ॥
संत्यक्तोऽसि महाबुद्धे युद्ध एव ममैव तु।
युद्धं मया समं पार्थ कर्तुं शक्तोऽसि किं न वा ॥ १४ ॥

सुधन्वाने कहा—पार्थ ! आपने पहले संग्रामभूमिमें जो लड़ाइयाँ लड़ी हैं और उनमें जो विजय प्राप्त की है, उसका कारण यह है कि उन युद्धोंमें आपके परम हितकारी भगवान् श्रीकृष्ण रथपर बैठे हुए सारथिका काम करते थे; परंतु आजके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युद्धमें आप श्रीकृष्णविहीन हैं, इसीसे आपको आश्चर्य हो रहा है। महाबुद्धे ! इस समय आपने श्रीकृष्णको त्याग कैसे दिया है ? कहीं श्रीकृष्णने तो मेरे साथ युद्ध करनेमें आपको नहीं छोड़ दिया ? कुन्तीनन्दन ! बतलाइये, आप मेरे साथ युद्ध करनेमें समर्थ हैं या नहीं ? ॥ १२–१४ ॥

तुरङ्गं तव यूपेऽद्य संनिबद्ध्य यथोचितम्।
हंसध्वजो नृपश्रेष्ठो वाजिमेधं करिष्यति ॥ १५ ॥

आज नृपश्रेष्ठ हंसध्वज आपके घोड़ेको यज्ञस्तम्भसे बाँधकर यथोचित रीतिसे अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करेंगे ॥ १५ ॥

अद्य पश्यन्तु ते देवाः संग्रामं किल मामकम्।
संगरे त्वां विजेष्यामि सकृष्णमपि चार्जुन ॥ १६ ॥

अब देवतालोग आपके साथ होनेवाले मेरे संग्रामको देखें। अर्जुन ! श्रीकृष्णके साथ रहनेपर भी मैं आपको युद्धमें परास्त कर दूँगा ॥ १६ ॥

जैमिनिरुवाच

ततः पार्थो बाणशतं संदधे कोपपूरितः।
सुधन्वा ताञ्छरान् दिव्यांश्चिच्छेद प्रहसन्निव ॥ १७ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर अर्जुनने कुपित हो एक साथ सौ बाणोंका संधान किया और उन्हें सुधन्वापर छोड़ दिया। सुधन्वाने हँसते हुए-से बात-की-बातमें उन सारे दिव्य बाणोंको काट डाला ॥ १७ ॥

दशभिस्ताडयामास शरैः कुन्तीसुतं हसन्।
शतेन च सहस्रेणायुतेन प्रयुतेन च ॥ १८ ॥
बाणानां छादयामास रणे क्रुद्धं धनंजयम्।

फिर मुसकराते हुए दस बाणोंद्वारा कुन्तीनन्दन अर्जुनपर चोट की। तत्पश्चात् युद्धस्थलमें कुपित हुए अर्जुनको सौ, हजार, दस हजार एवं एक लाख बाणोंकी वर्षा करके ढक दिया ॥ १८½ ॥

अर्जुनोऽपि शरांस्तस्य चिच्छेद तिलशस्तदा ॥ १९ ॥
आग्नेयास्त्रं मुमोचाथ सृक्किणी परिलेलिहन्।
सुधन्वनेऽतिकुपितो बाणवृष्टिं ससर्ज ह ॥ २० ॥

तब अर्जुनने भी उसके बाणोंको तिल-तिल करके काट डाला और सुधन्वापर अत्यन्त क्रुद्ध होकर जीभसे मुँहके दोनों कोनोंको चाटते हुए आग्नेयास्त्रका प्रयोग करके बाणोंकी झड़ी लगा दी ॥ १९-२० ॥

खे न गच्छन्ति खचराः पार्थसायकभेदिताः।
बाणान्धकारे पतितं जगत्त्रयमभूत् तदा ॥ २१ ॥
सैन्यं सुधन्वनो दग्धं पावकास्त्रेण भूतले।

उस समय अर्जुनके बाणोंसे घायल होनेके कारण पक्षियोंका आकाशमें उड़ना बंद हो गया। सारी त्रिलोकी बाण-वर्षासे उत्पन्न हुए अन्धकारसे व्याप्त हो गयी। उस आग्नेयास्त्रसे पृथ्वीपर सुधन्वाकी सेना भस्म होने लगी ॥ २१½ ॥

ज्वालाकुलं वीक्ष्य वह्निं दाहयन्तं निजं बलम् ॥ २२ ॥
सुधन्वा वारुणास्त्रं च जग्राहाग्निनिवारणम्।
संजाता महती वृष्टिस्तेन मुक्तात् खकार्मुकात् ॥ २३ ॥

तब सुधन्वाने बड़ी-बड़ी लपटोंसे व्याप्त अग्निको अपनी सेनाको जलाते हुए देखकर उस अग्निके निवारणके लिये वारुणास्त्रको अपने हाथमें लिया और उसे अपने धनुषपर संधान करके छोड़ दिया। फिर तो उस वारुणास्त्रसे बड़ी भारी वर्षा होने लगी ॥ २२-२३ ॥

जलदैर्भूतलं व्याप्तं गगने विद्युतः स्थिताः।
निमग्नं पाण्डवबलं शिलावृष्टिभिराहतम् ॥ २४ ॥
बभ्राम संयुगे चाथ शीतेनाथ विमोहितम्।
चातकानां मयूराणामानन्दः सुमहानभूत् ॥ २५ ॥

पृथ्वीपर बादल झुक आये। आकाशमें बिजलियाँ कौंधने लगीं। ओलोंकी वर्षासे आहत हुई अर्जुनकी सेना जलमग्न एवं शीतसे विमोहित होकर युद्धक्षेत्रमें चक्कर काटने लगी। उस समय चातकों और मयूरोंको महान् आनन्द प्राप्त हुआ ॥

वादित्राणि च नष्टानि चर्मनद्धानि भूतले।
सुवर्णचम्पकाभेषु लग्नानि सुमृदून्यपि ॥ २६ ॥
वीराङ्गेषु न दृश्यन्ते वस्त्राणि विविधानि च।
चामराणि च वर्माणि गजकुम्भस्थलानि च ॥ २७ ॥
शोभाहीनानि जातानि जलपातेन संगरे।
बाणाः पक्षविहीनास्ते न भिन्दन्ति रणे परान् ॥ २८ ॥
अतिवृष्ट्या न पश्यन्ति स्वं परं पुरुषा हि ते।

उस युद्धस्थलमें चमड़ेसे मँढ़े हुए नगाड़े आदि बाजे नष्ट (बेकार) हो गये। वीरोंके सुवर्ण और चम्पाकी आभाके समान सुन्दर शरीरोंमें सटे हुए अनेक प्रकारके अत्यन्त कोमल वस्त्र (भीग जानेके कारण) दिखायी नहीं देते थे तथा चामर, कवच और (पत्रभंगीसे सुशोभित) गजराजोंके कुम्भस्थल जलके गिरनेसे शोभाहीन हो गये। बाणोंके पाँख गलकर गिर गये, जिससे वे युद्धके अवसरपर शत्रुओंका भेदन नहीं कर पाते थे। अतिवृष्टिके कारण वे सभी सैनिक अपना-पराया नहीं समझ पाते थे ॥ २६–२८½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ततोऽर्जुनो महावीरो वायव्यास्त्रं समाददे ॥ २९ ॥
वायुना जलदा भिन्ना ध्वजाश्च परिपातिताः ।
भ्रामिता वारणा घोटा नरा दासेरकाः खराः ॥ ३० ॥

तब महावीर अर्जुनने वायव्यास्त्रका प्रयोग किया । उससे उठी हुई प्रचण्ड वायुके झोकोंसे बादल तितर-बितर हो गये, रथोंके ध्वज टूट-टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़े और हाथी, घोड़े, ऊँट, गधे तथा मनुष्य सभी चक्कर काटने लगे ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः सुधन्वा पार्थकार्मुकम् ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद ज्यां हि सूतं त्रिभिः शरैः॥ ३१ ॥

इसी बीच वीरवर सुधन्वाने एक अर्धचन्द्राकार बाणसे अर्जुनके धनुष तथा तीन बाणोंद्वारा प्रत्यञ्चा और सारथिको भी काट गिराया ॥ ३१ ॥

शरहीनं पाण्डवं च चक्रे वीरोऽतिकोपितः ।
उवाच पार्थं भगवान् सारथिस्ते न विद्यते ॥ ३२ ॥
शरैः क्षतोऽसि पार्थ त्वं पौरुषं क्व गतं च ते ।
सर्वज्ञं सारथिं त्यक्त्वा प्राकृतः सारथिः कृतः ॥ ३३ ॥
स्मर स्वसूतं कृष्णाख्यं ममाग्रे पतितो ह्यसि ।

फिर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस वीरने अर्जुनको बाण-विहीन कर दिया और उनसे कहा—'पार्थ ! इस समय आपके सारथि भगवान् श्रीकृष्ण विद्यमान नहीं हैं । आप मेरे बाणोंसे घायल हो गये हैं । आज आपका पुरुषार्थ कहाँ चला गया ? वीरवर ! आपने अपने सर्वज्ञ सारथिको छोड़कर बदलेमें साधारण सारथिकी नियुक्ति कर ली है । आप मेरे सामने युद्धमें गिर पड़े हैं, अतः शीघ्र अपने श्रीकृष्ण नामक सारथिका स्मरण कीजिये' ॥ ३२-३३½ ॥

जैमिनिरुवाच

अर्जुनोऽपि तु जग्राह तुरगान् स्वान् महाहवे ॥ ३४॥
वामहस्तेन धनुषा समं च युयुधे पुनः ।
यावत् स्मरति गोविन्दं तावद् दृष्टो रथे हरिः ॥ ३५ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! अर्जुनने भी बायें हाथसे धनुषसहित अपने घोड़ोंकी बागडोर पकड़कर उस महासमरमें पुनः युद्ध करना आरम्भ किया और मन-ही-मन ज्यों ही भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया त्यों ही उन श्रीहरिको अपने रथपर बैठे हुए देखा ॥ ३४-३५ ॥

मुञ्च चाश्वानर्जुनेति व्याजहार वचो हरिः ।
अथार्जुनो नमस्कृत्य वासुदेवं समागतम् ॥ ३६ ॥
अश्वानां प्रग्रहांस्त्यक्त्वा सावधानेन चेतसा ।
मुमोच सायकान् घोरान् समन्ताच्च सुधन्वने॥ ३७ ॥
वीक्ष्य कृष्णं रथे चास्य सुधन्वा वाक्यमब्रवीत् ।

उस समय जब भगवान् श्रीहरिने 'अर्जुन ! घोड़ोंकी बागडोर छोड़ दो' ऐसी बात कही, तब अर्जुनने उन समागत श्रीकृष्णको प्रणाम किया और फिर वे घोड़ोंकी बागडोर छोड़कर सावधान-चित्तसे सुधन्वाके ऊपर चारों ओरसे भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगे । तब अर्जुनके रथपर श्रीकृष्णको विराजमान देखकर सुधन्वा कहने लगा ॥

सुधन्वोवाच

दृष्टस्त्वमसि गोविन्द पाण्डवार्थे समागतः ॥ ३८॥
सर्वगत्वं मया ज्ञातं त्वदीयं किल केशव ।

सुधन्वा बोला—गोविन्द ! अर्जुनके लिये पधारे हुए आपके दर्शन मैंने कर लिये । केशव ! मुझे आपकी सर्वव्यापकताका अनुभव हो गया ॥ ३८½ ॥

पार्थं सूतं हरिं प्राप्य प्रतिज्ञां कुरु मज्जये ॥ ३९॥
अहं तु तोषयिष्यामि पौरुषेण रणे जगत् ।

(भगवान् श्रीकृष्णसे इतना कहकर सुधन्वाने अर्जुनसे कहा—) पार्थ ! अपने सारथि श्रीकृष्णको पाकर अब तो आप मुझपर विजय पानेके लिये कोई प्रतिज्ञा करें । मैं आज युद्धक्षेत्रमें अपने पुरुषार्थसे सारे जगत्को संतुष्ट कर दूँगा ॥

अर्जुन उवाच

त्रिभिः शरैः शिरो रम्यं पातयिष्येऽद्य तावकम्॥ ४० ॥
न पातये यदि पुरः पतन्तु मम पूर्वजाः ।
निरये पुण्यहीनास्ते सत्यं सत्यं न मेऽनृतम्॥ ४१॥
आत्मानं पालय विभो स्वां प्रतिज्ञां वदाधुना।

तब अर्जुनने कहा—विभो ! आज मैं तुम्हारे सुन्दर मस्तकको तीन बाणोंद्वारा काटकर नीचे गिरा दूँगा । यदि श्रीकृष्णके सामने तुम्हारे सिरको न गिरा सकूँ तो मेरे पूर्वज पुण्यहीन होकर नरकमें गिर पड़ें । मेरा यह कथन सर्वथा सत्य है, इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है । अब तुम अपनी रक्षा करो, साथ ही अपनी प्रतिज्ञा भी कह सुनाओ ॥

सुधन्वोवाच

त्वच्छरांश्छेत्स्यामि पुरतस्त्रींस्तत्र हरिसंनिधौ ॥ ४२॥
त्रिधाहं न करोम्यद्य गतिं घोरामवाप्नुयाम्।

सुधन्वा बोला—पार्थ ! मैं श्रीकृष्णके समीप उनके सम्मुख ही आपके तीनों बाणोंको काट डालूँगा । यदि मैं आज उनके तीन टुकड़े न कर दूँ तो मुझे घोर गतिकी प्राप्ति हो ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतावदुक्त्वा वचनं शतेन मधुसूदनम् ॥ ४३ ॥
बाणानां हृदये हर्षाद् विभेद समरे बली।
रथश्चोत्पाटितो बाणैः सह कृष्णेन मारिष ॥ ४४ ॥
साश्वः सपार्थस्तरसा बभ्राम घटचक्रवत्।

इतनी बात कहकर महाबली सुधन्वाने हर्षपूर्वक रणक्षेत्रमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णके हृदयपर सौ बाण मारकर उसे विदीर्ण कर दिया और रथको भी बाणोंसे उखाड़ डाला। आर्य! उसके अस्त्रकौशलसे श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा घोड़ों-सहित वह रथ कुम्हारके चाककी भाँति वेगपूर्वक घूमने लगा ॥

धनंजयं च दशभिः समन्ताद् व्यकिरच्छरैः ॥ ४५ ॥
रथः पार्थस्य नीतोऽसौ नल्वमात्रं महीतले।
तत्क्षणात् पश्चिमं भागं हंसध्वजसुतेन हि ॥ ४६ ॥

तदनन्तर हंसध्वज-कुमार सुधन्वाने अर्जुनको दस बाणों-द्वारा चारों ओरसे ढक दिया और उसी क्षण एक दूसरा बाण मारकर अर्जुनके उस रथको पृथ्वीपर चार सौ हाथ पीछे हटा दिया ॥ ४५-४६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

पश्य पाण्डव वीरस्य पौरुषं त्वं सुधन्वनः।
वृथा वधे प्रतिज्ञातं त्रिभिर्बाणैश्च तेऽर्जुन ॥ ४७ ॥

यह देखकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पाण्डुनन्दन! तुम इस वीर सुधन्वाके बल-पौरुषकी ओर दृष्टिपात करो। अर्जुन! तीन बाणोंद्वारा इसका वध करनेकी प्रतिज्ञा तुमने व्यर्थ ही की ॥ ४७ ॥

असम्मन्त्र्य मया सार्द्धं कृतं यत् साहसं पुनः।
जयद्रथवधे यानि कृच्छ्राणि तव चाभवन् ॥ ४८ ॥
विस्मृतानि कथं पार्थ न जानासि हिताहितम्।

मुझसे बिना ही परामर्श किये ऐसी कठिन प्रतिज्ञा करके तुमने पुनः दुःसाहसका काम किया है। जयद्रथ-वधके अवसर-पर तुम्हें जो-जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ी थीं, उन्हें तुम भूल कैसे गये? पार्थ! तुम्हें अपने हित-अहितका कुछ भी ज्ञान नहीं है ॥ ४८½ ॥

रथः पद्भ्यां मया रोषाद् विधृतोऽपि हि नीयते ॥ ४९ ॥
सुधन्वनः शरेणाद्य नल्वमात्रं परां दिशम्।

भला, जिस रथको मैंने क्रोधपूर्वक अपने दोनों पैरोंसे दबा रखा था, उसे भी सुधन्वाके बाणने आज चार सौ हाथ पीछे ढकेल दिया (उसके साथ तुम कैसे जीत सकते हो) ॥

एकपत्नीव्रतयुतः सुधन्वातीव दृश्यते ॥ ५० ॥
न त्वया न मया तत् तु व्रतं कर्तुं प्रशक्यते।
महत् कष्टं व्यवसितं युद्धेऽस्मिन् प्रतिभाति मे ॥ ५१ ॥

सुधन्वाका एकपत्नीव्रत अत्यन्त सुदृढ़ दीख रहा है। वैसे व्रतका पालन करनेमें तुम और मैं दोनों ही समर्थ नहीं हैं; अतः मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इस युद्धमें निश्चय ही महान् कष्टकी प्राप्ति होगी ॥ ५०-५१ ॥

अर्जुन उवाच

गोविन्द पातयाम्येनं त्रिभिर्बाणैर्न संशयः।
अभविष्यन्महत् कृच्छ्रं न भवेद् यत् त्वदागमः ॥ ५२ ॥

अर्जुनने कहा—गोविन्द! मैं निश्चय ही तीन बाणोंसे सुधन्वाको रणभूमिमें गिरा दूँगा। अब मेरे लिये महाकष्टकी कोई सम्भावना नहीं है; क्योंकि आपका शुभागमन हो गया है ॥

जैमिनिरुवाच

शिलीमुखैस्ततः पार्थो व्यावृणोत् स दिशो दश।
सुधन्वा रोषताम्राक्षो विधुन्वन् सशरं धनुः ॥ ५३ ॥
उवाच केशवं भूयो यथा गोवर्धनो गिरिः।
गवार्थे विधृतः कृष्ण तथा पालय पाण्डवम् ॥ ५४ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर अर्जुनने बाणोंसे दसों दिशाओंको आच्छादित कर दिया। यह देखकर सुधन्वाके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वह अपने बाणसहित धनुषको कँपाता हुआ पुनः भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगा—'श्रीकृष्ण! जिस प्रकार गायोंकी रक्षाके लिये आपने गोवर्धन पर्वतको अपने हाथपर उठा लिया था, उसी तरह आज अर्जुन-की रक्षा कीजिये' ॥ ५३-५४ ॥

ततः पार्थो महाबाहुः संदधे कार्मुके शरम्।
कालानलनिभं रोषान्मुमोचास्मै प्रतापवान् ॥ ५५ ॥
तस्मिञ्छरे च गोविन्दः स्वं पुण्यं समयोजयत्।

तत्पश्चात् महाबाहु प्रतापी अर्जुनने अपने धनुषपर एक कालानलके समान भयंकर बाणका संधान किया और क्रोध-पूर्वक उसे सुधन्वापर छोड़ दिया। उस बाणमें भगवान् गोविन्दने अपना पुण्य जोड़ दिया था ॥ ५५½ ॥

गोवर्धनश्च विधृतो रक्षिता धेनवः पुरा ॥ ५६ ॥
तेन पुण्येन बाणोऽस्य संनद्धस्तत्क्षणात् कृतः।

पहले गोवर्धन पर्वतको उठाकर जो गौओंकी रक्षा की थी, उससे प्राप्त हुए पुण्यसे उन्होंने उसी क्षण अर्जुनके बाण-को संयुक्त कर दिया ॥ ५६½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिवि देवाश्च सम्प्राप्तास्तयोर्युद्धदिदृक्षवः ॥ ५७ ॥
कौतुकार्थं च सम्प्राप्तास्तदा ह्यप्सरसां गणाः ।
विमानमधिरूढास्ते दिव्यालंकारभूषिताः ॥ ५८ ॥

उस समय आकाशमें देवतालोग अर्जुन और सुधन्वाका युद्ध देखनेके लिये आ पहुँचे तथा दल-की-दल अप्सराएँ भी वह कौतुक देखनेके लिये वहाँ आ गयीं। वे सब दिव्य अलंकारोंसे विभूषित और विमानोंपर बैठी हुई थीं ॥ ५७-५८ ॥

सुधन्वा संगरे देवं कृष्णं च हितकारकम् ।
ज्ञात्वा प्रोवाच बलवानेतं छेत्स्यामि सायकम् ॥ ५९ ॥

संग्राममें भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुनका हितकारक जानकर महाबली सुधन्वाने कहा—'मैं इस बाणको काट डालूँगा ॥

बहुपुण्येन संयुक्तं पातये न शरं यदि ।
सुकृतं मे वृथा यातु भुक्तं राक्षसदस्युभिः ॥ ६० ॥

'यदि बहुत-से पुण्योंसे संयुक्त इस बाणको काटकर गिरा न दूँ तो मेरा सारा पुण्य व्यर्थ हो जाय और उसका उपभोग राक्षस तथा चोर-डाकू करें ॥ ६० ॥

विज्ञापितोऽसि गोविन्द पश्य पुण्यं मया कृतम् ।
अर्धचन्द्रं मुमोचाथ पार्थसायकमागतम् ॥ ६१ ॥
तेन चिच्छेद तरसा स च्छिन्नः सायकोऽपतत् ।

'गोविन्द ! मैंने आपको भलीभाँति जान लिया है। अब आप मेरेद्वारा उपार्जित पुण्य देखिये।' यों कहकर सुधन्वाने अपनी ओर आते हुए अर्जुनके बाणको लक्ष्य करके एक अर्धचन्द्राकार बाण चलाया और उस बाणसे वेगपूर्वक अर्जुनके बाणको काट डाला। वह बाण खण्ड-खण्ड होकर भूतलपर गिर पड़ा ॥ ६१½ ॥

विस्मिता देवताः सर्वास्त्रैलोक्यमपि विस्मितम् ॥ ६२ ॥
शीघ्रसंधानसंयुक्तं सुधन्वानं निरीक्ष्य तम् ।

इस प्रकार उस सुधन्वाके बाण चलानेकी फुर्तीको देखकर समस्त देवता तथा सारी त्रिलोकी आश्चर्यचकित हो गयी ॥

द्वितीयं सायकं पार्थो यावद् योजयते पुनः ॥ ६३ ॥
तावत् कृष्णेन स शरः श्रेयसा बहुलेन च ।
संनद्धः क्षितिदानेन पाण्डवं प्रतिरक्षता ॥ ६४ ॥

पुनः जब अर्जुन दूसरा बाण संधान करनेके लिये उद्यत हुए, तब अर्जुनकी सर्वथा रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णने उस बाणको पृथ्वीदान तथा अन्य बहुत-से पुण्योंसे संयुक्त कर दिया ॥

सुधन्वोवाच
अर्जुनार्थं स्वकं पुण्यं यदि गोविन्द योजितम् ।
सायकेऽस्मिन् समक्षं ते पातयेऽर्जुनसायकम् ॥ ६५ ॥

सुधन्वाने कहा—गोविन्द ! यद्यपि आपने अर्जुनकी रक्षाके लिये इस बाणमें अपना पुण्य लगा दिया है तो भी मैं आपके सामने अर्जुनके इस बाणको काटकर गिरा दूँगा ॥

प्रतिज्ञां शृणु वीराद्य धनंजय महाबल ।
द्विधा शरं कारये न वसिष्ठोऽरुन्धतीयुतः ॥ ६६ ॥
मया हतोऽद्य भवतु रक्ष बाणं स्वपौरुषात् ।

महाबली वीर अर्जुन ! अब मेरी प्रतिज्ञा सुनिये। यदि मैं आपके बाणके दो टुकड़े न कर दूँ तो आज मुझे अरुन्धतीसहित महर्षि वसिष्ठकी हत्याका पाप लगे। अब आप अपना पुरुषार्थ प्रकट करके बाणको बचाइये ॥ ६६½ ॥

धन्योऽसि पार्थ वीरस्त्वं यन्निमित्तं स्वकं हरिः ॥ ६७ ॥
पुण्यं ददातीह रणे नूनं श्रेयस्तवाधिकम् ।

पार्थ ! आप महान् वीर एवं धन्यवादके योग्य हैं, जो आपके लिये इस युद्धमें भगवान् श्रीहरि स्वयं अपना पुण्य प्रदान कर रहे हैं। अवश्य ही आपका श्रेय अधिक है ॥ ६७½ ॥

ततो मुमोच बाणं स सूर्यमण्डलसंनिभम् ॥ ६८ ॥
पाण्डवः क्रोधनयनो यथा स्वं कृपणो धनम् ।

तदनन्तर जैसे कृपण अपने धनका बड़ी कठिनतासे त्याग करता है, उसी तरह क्रोधसे पूर्ण नेत्रवाले अर्जुनने अपने सूर्यमण्डलके समान प्रज्वलित बाणको सुधन्वापर छोड़ दिया ॥

ब्रुवन्ति गगने देवा मानवा धरणीं गताः ॥ ६९ ॥
किं भविष्यति को जेता उभयोर्वीरयोरिह ।
बाणात् समुत्थितो वह्निर्गगने सायको गतः ॥ ७० ॥
अर्जुनस्य करान्मुक्तः प्रलयं किं करिष्यति ।

तब आकाशमें स्थित देवता और भूतलपर खड़े हुए मनुष्य कहने लगे—'क्या होनेवाला है ? इस युद्धमें इन दोनों वीरोंमें कौन विजयी होगा ? बाणसे अग्निकी ज्वाला प्रकट होने लगी और वह बाण आकाशमें चला गया। क्या अर्जुनके हाथसे छूटा हुआ बाण प्रलय ही मचा देगा' ॥ ६९-७०½ ॥

ततो महाबलो वीरः सुधन्वा चातिपौरुषात् ॥ ७१ ॥
द्वितीयं पार्थबाणं तं मध्ये चिच्छेद सत्वरः ।
शङ्खं दध्मौ स्वकं सैन्यं हर्षयन् पितरं बलात् ॥ ७२ ॥

तत्पश्चात् महाबली वीर सुधन्वाने अपने प्रबल पुरुषार्थसे शीघ्र ही अर्जुनके उस दूसरे बाणको भी बीचसे काट डाला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और अपनी सेना तथा पिताको हर्षित करते हुए बलपूर्वक अपना शङ्ख बजाया ॥ ७१-७२ ॥

चकम्पे वसुधा देवी बाणे छिन्ने विशाम्पते ।
ततः कृष्णोऽर्जुनं प्राह मा शरं योजयार्जुन ॥ ७३ ॥
पाञ्चजन्यं पूरयिष्ये देवदत्तं धमस्व च ।
त्वं मया सहितो वीरमेनं पश्यातिपौरुषम् ॥ ७४ ॥
जीवितं तद् भवेद् धन्यं नृणां कीर्तिसमन्वितम् ।
प्रतिज्ञां स्वमुखात् सत्यां कर्तॄणां स्वर्गकाङ्क्षिणाम् ॥ ७५ ॥

प्रजानाथ ! इस दूसरे बाणके भी कट जानेपर पृथ्वी देवी काँप उठीं । तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'अर्जुन ! तुम अभी बाणका संधान मत करो । अब मैं अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाऊँगा और तुम अपना देवदत्त नामक शङ्ख बजाओ । फिर मेरे साथ इस वीर सुधन्वाको देखो, यह कैसा प्रबल पुरुषार्थी है । अपने मुखसे की हुई प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेवाले स्वर्गाभिलाषी मनुष्योंका जो सुन्दर कीर्तियुक्त जीवन है, वही प्रशंसनीय होता है ॥ ७३–७५ ॥

मयायं पात्यमानस्तु दत्त्वा पुण्यं पुरातनम् ।
त्वया वीरेण च तथा पतनं नास्य जायते ॥ ७६ ॥

'मैंने अपना पुरातन पुण्य प्रदान करके इसे रणभूमिमें गिरानेका प्रयत्न किया है, तो भी तुम-जैसे वीरके द्वारा भी इसका पतन नहीं हो रहा है' ॥ ७६ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं वादयामास वै हरिः ।
पाञ्चजन्यं देवदत्तमर्जुनोऽपि महाबलः ॥ ७७ ॥

इतनी बात कहकर भगवान् श्रीकृष्णने पाञ्चजन्यको तथा महाबली अर्जुनने भी देवदत्त नामक शङ्खको बजाया ॥ ७७ ॥

स पाञ्चजन्योऽच्युतवक्त्रवायुना
जगत् सपातालवियद्दिगीश्वरम् ।
भृशं स पूर्णोदरनिःसृतध्वनिः
सुकम्पयामास युगान्तये यथा ॥ ७८ ॥

उस समय भगवान् श्रीकृष्णके मुखकी वायुसे उदरके भलीभाँति परिपूर्ण हो जानेसे निकलती हुई ध्वनिवाले उस पाञ्चजन्यने अपने शब्दसे युगान्तकालके समान आकाश, पाताल तथा दिक्पालोंसहित सम्पूर्ण जगत्को कम्पित कर दिया ॥

पूरयित्वा पुनः प्राह कृष्णः कमललोचनः ।
गृहाण सायकं हस्ते शीघ्रं पार्थ ममाज्ञया ॥ ७९ ॥

इस प्रकार शङ्खका शब्द करके कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने पुनः अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! अब मेरी आज्ञासे तुम शीघ्र ही बाण अपने हाथमें ले लो' ॥ ७९ ॥

जैमिनिरुवाच

गृहीतः सायको हस्ते पाण्डवेन महात्मना ।
वासुदेवस्तु तं बाणं सुदृढं देवसंयुतम् ॥ ८० ॥
ब्रह्माणं पश्चिमे भागे योजयित्वा शरस्य हि ।
मध्ये कालं फले तस्थौ स्वयमेव जनार्दनः ॥ ८१ ॥
पुण्यं रामावतारे यत् कृतं तत् सायकेऽर्पितम् ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तब महामनस्वी अर्जुनने तीसरे बाणको हाथमें उठा लिया । उस समय वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण उस बाणको देवबलसे संयुक्त करके सुदृढ़ करने लगे । उन्होंने रामावतारके समय जो कुछ पुण्योपार्जन किया था, वह सब-का-सब बाणके अर्पण कर दिया । फिर उस बाणके पिछले भागमें ब्रह्माजी तथा बीचमें कालको जोड़कर नोकमें स्वयं जनार्दन ही स्थित हो गये ॥ ८०-८१½ ॥

ततो हाहाकृतं सर्वं यदा पार्थेन संधितः ।
स शरस्तादृशो राजन् सुधन्वा वाक्यमब्रवीत् ॥ ८२ ॥

राजन् ! तदनन्तर जब अर्जुनने उस देवबलसम्पन्न बाणका संधान किया, तब सर्वत्र हाहाकार मच गया । यह देखकर सुधन्वा कहने लगा ॥ ८२ ॥

सुधन्वोवाच

जानामि गोविन्द कृतं त्वदीयं
रणेऽर्जुनार्थं सहसा वधे मे ।
शरस्थितं विश्वतनुं भवन्तं
पार्थं प्रतिज्ञां कुरु संसराद्य ॥ ८३ ॥

सुधन्वा बोला—गोविन्द ! मैं आपकी करतूतको जान गया हूँ तथा युद्धस्थलमें मेरे वधके लिये अर्जुनकी सहायताके उद्देश्यसे विश्वस्वरूप आप जो सहसा इस बाणपर स्थित हो गये हैं, इसका भी मुझे पता लग गया है । अच्छा पार्थ ! अब आप श्रीकृष्णका स्मरण करके कुछ प्रतिज्ञा कीजिये ॥ ८३ ॥

अर्जुन उवाच

अनेन बाणेन न पातयामि
शिरस्त्वदीयं सकिरीटमद्य ।
विभेदनाद् विष्णुगिरीशयोर्यत्
पापं समग्रं मम चास्तु वीर ॥ ८४ ॥

तब अर्जुनने कहा—वीर ! यदि आज मैं इस बाणके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वारा तुम्हारे मुकुटसहित मस्तकको न गिरा दूँ तो विष्णु और शिवमें भेदभाव रखनेसे जो पाप होता है, वह सारा पाप मुझे लगे ॥ ८४ ॥

सुधन्वोवाच

रात्रौ शिवस्यापि गतश्च काशीं
पूजां हरत्यङ्घ्रितलेन पापः ।
स्नातश्च तीर्थे मणिकर्णिकायां
यः कोऽपि सोऽहं न भिदे शरं चेत् ॥ ८५ ॥

सुधन्वा बोला—पार्थ ! यदि मैं आपके इस बाणको काट न दूँ तो जो कोई भी काशी जाकर वहाँ मणिकर्णिका तीर्थमें स्नान करके रात्रिके समय शिवजीकी पूजाको पैरोंसे ठुकराता है, उस पापीको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे ॥ ८५ ॥

जैमिनिरुवाच

ततोऽर्जुनः संदधे सायकं तं
सुदीपितं वह्निशिखा वमन्तम् ।
निस्सारयन्तं गगनेऽप्सरोगणान्
देवान् भयान्मानवतां नयन्तम् ॥ ८६ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर अर्जुनने उस अत्यन्त प्रकाशमान बाणका संधान किया, जो अग्निकी लपटें उगल रहा था, जिससे भयभीत होकर आकाशमें स्थित अप्सराओंके दल भाग खड़े हुए और भयके कारण देवता भी मानव-भावको प्राप्त हो गये ॥ ८६ ॥

वादित्राणि च सर्वाणि विनष्टानि शरस्वनात् ।
भ्रान्तं महीतलं बाणात् सुधन्वा न व्यमोहत ॥ ८७ ॥

उस बाणके भयंकर शब्दसे (विदीर्ण हो) सभी बाजे नष्ट हो गये । सारा भूमण्डल भ्रान्त हो गया; परंतु सुधन्वा मोहित नहीं हुआ ॥ ८७ ॥

उवाच पार्थं कुपितस्त्वन्निमित्तं महाहवे ।
सर्वे सुराः प्ररक्षन्तु बाणं मत्तो हरादयः ॥ ८८ ॥
एष च्छेत्ता न संदेहो हा हतोऽस्मि धनंजय ।
लज्जां हंसध्वजो राजा प्राप्नोति जननी च सा ॥ ८९ ॥
भार्या च मे विशालाक्षी कुत्स्यते सा प्रभावती ।

वह क्रुद्ध होकर अर्जुनसे कहने लगा—'पार्थ ! यदि इस महायुद्धमें आपके निमित्त शिव आदि समस्त देवता मुझसे इस बाणकी रक्षा करें तो भी मैं इसे अभी काट गिराऊँगा, इसमें संशय नहीं है । धनंजय ! हाय ! यदि मैं (इसे काटे दिये बिना ही) मर जाऊँ तो राजा हंसध्वजको लज्जित होना पड़ेगा और मेरी माता भी बहुत दुखी होगी तथा विशाल-नयनी मेरी वह भार्या प्रभावती भी मेरी निन्दा करेगी ॥

नृसिंहं त्वामहं वेद्मि पार्थस्य रथसारथिम् ॥ ९० ॥
न परित्यज्य गन्तव्यमस्मिन् काले जनार्दन ।
तिष्ठ गोविन्द युध्यस्व त्वं पार्थ कुरु पौरुषम् ॥ ९१ ॥

'जनार्दन ! अर्जुनके रथपर सारथिरूपमें विराजमान आपको मैं नृसिंह ही समझ रहा हूँ । इस समय आपको युद्धस्थलका परित्याग करके हटना नहीं चाहिये । गोविन्द ! ठहरिये और युद्ध कीजिये । पार्थ ! आप भी अपना पुरुषार्थ प्रकट कीजिये' ॥ ९०-९१ ॥

एतावदुक्त्वा कृष्णं तु जप्त्वा चिच्छेद सायकम् ।
पपात सायकस्यार्धं मध्ये छिन्नं सुधन्वना ॥ ९२ ॥

इतना कहकर सुधन्वाने भगवान् श्रीकृष्णका नामोच्चारण करके अर्जुनके उस बाणको काट दिया । सुधन्वाद्वारा बीचसे कटे हुए उस बाणका आधा भाग पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ९२ ॥

हाहाकारो महानासीच्छिन्ने बाणे तथाविधे ।
स्वबाहुं ताडयामास सुधन्वा रणमध्यगः ॥ ९३ ॥

ऐसे प्रभावशाली बाणके कट जानेपर वहाँ महान् हाहाकार मच गया और सुधन्वा युद्धस्थलके मध्यमें खड़ा होकर अपनी भुजाओंपर ताल ठोंकने लगा ॥ ९३ ॥

चन्द्रमण्डलमेवाथ चकम्पे बाणनाशनात् ।
सजलः पूर्वजश्चन्द्रो निर्जलत्वं किरीटिनः ॥ ९४ ॥
प्राप्तवाञ्छरभङ्गेन तदद्भुतमिवाभवत् ।

उस बाणके नष्ट हो जानेसे चन्द्रमण्डल भी कम्पित हो उठा । चन्द्रवंशी अर्जुनके पूर्वज चन्द्रमा सजल होते हुए भी शरभंगके कारण निर्जल हो गये । यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ९४½ ॥

अर्धं बाणस्य शीर्षं तद् रम्यं ज्वलितकुण्डलम् ।
सुधन्वनोऽपि चिच्छेद निधानं पौरुषस्य हि ॥ ९५ ॥

फिर उस बाणके आधे भागने उछलकर सुधन्वाके उस सुन्दर मस्तकको भी काट गिराया, जो दमकते हुए कुण्डलोंसे सुशोभित तथा पुरुषार्थका भंडार था ॥ ९५ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वण्येकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष ४ | गोरखपुर, कार्तिक २०१६, नवम्बर १९५९ | संख्या ११ पूर्ण संख्या ४७

शिशु श्रीकृष्णकी वन्दना

जनुषि चतुर्भुजरूपं सुरभूपं कमपि कामदं वन्दे ।
पितरौ सम्भाष्य शुभं द्विभुजशिशूभूय योऽरुदद् भूयः ॥

अवतार-ग्रहणके समय चतुर्भुज रूप धारण करनेवाले किन्हीं भक्त-वाञ्छाकल्पतरु देवेश्वरकी मैं वन्दना करता हूँ, जो माता-पिता (देवकी-वसुदेव) से शुभ वार्तालाप करनेके पश्चात् द्विभुज शिशुके रूपमें प्रकट हो जोर-जोरसे रोने लगे थे ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वार्षिक मूल्य
भारतमें १५.००
विदेशमें २०.००
(३० शिलिंग)

सम्पादक, मुद्रक तथा प्रकाशक
हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर
टीकाकार—पण्डित रामाधार शुक्ल, शास्त्री

एक प्रतिका
भारतमें १.५०
विदेशमें २.००
(३ शिलिंग)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
४५	श्रीकृष्णका अर्जुनके साथ यज्ञमण्डपमें मयूरध्वजके पास जाना, उनसे बातचीत करना और छलसे उनके आधे शरीरकी याचना करना, मयूरध्वजका अपना शरीर चिरवानेके लिये उद्यत होना ...	२८९
४६	रानी कुमुद्वती और पुत्र ताम्रध्वजद्वारा आरेसे मयूरध्वजके शरीरका चीरा जाना, बायें नेत्रसे आँसू टपकनेके कारण श्रीकृष्णका उसे त्यागकर चल देना, पुनः मयूरध्वजके स्पष्टीकरण करनेपर लौटना और प्रसन्न होकर राजाको चतुर्भुजरूपमें दर्शन देना, राजाद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन, तत्पश्चात् मयूरध्वजका अर्जुनके साथ घोड़ेकी रक्षाके लिये प्रस्थान	२९३
४७	दोनों घोड़ोंका राजा वीरवर्माके नगरमें जाना और वीरवर्माकी आज्ञासे उनका पकड़ा जाना, वीरवर्माके पुत्रोंके साथ बभ्रुवाहनका युद्ध, यमराजका युद्धके लिये आना, अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णद्वारा यमराजका वीरवर्माके जामाता बननेकी कथाका वर्णन ...	२९९
४८	वररूपमें यमराजकी प्राप्तिके लिये राजा वीरवर्मा और मालिनीका यमराजकी आराधना करना, नारदजीका यमलोकमें जाकर यमराजसे मालिनीका वृत्तान्त कहना, यमराजका विवाह-तिथिको निश्चय करके नारदजीको वीरवर्माके पास भेजना और बारातमें चलनेके विषयमें उनका राजयक्ष्माके साथ संवाद तथा यमराजका नाना प्रकारके रोगोंकी उत्पत्तिका कारण बताते हुए उनसे छूटनेके उपायका निरूपण करना ...	३०२
४९	यमराजका सारस्वतपुरमें आकर मालिनीका पाणिग्रहण करना और वीरवर्माको वर प्रदान करना, वीरवर्माका अर्जुनके साथ युद्धमें भयंकर पराक्रम प्रकट करके अर्जुन, श्रीकृष्ण और हनुमान्‌को पकड़ लेना, श्रीकृष्णद्वारा उसपर चरणप्रहार, वीरवर्माका आत्मसमर्पण और वीरवर्माकी सहायतासे अर्जुनका सेनासहित महानदके पार उतरना	३१०
५०	घोड़ोंका राजा चन्द्रहासके नगर कुन्तलपुरमें पहुँचना और पकड़ा जाना, नारदजीका आगमन, अर्जुनके पूछनेपर नारदजीद्वारा चन्द्रहासकी कथाका वर्णन ...	३१५
५१	चन्द्रहासका जीवन-वृत्तान्त—वनमें पक्षियों और हरिणियोंद्वारा उस बालककी परिचर्या, कुलिन्दाधिपतिका वहाँ आना और उसे अपने घोड़ेपर बैठाकर नगरमें ले जाना, वहाँ राजाद्वारा बालककी शिक्षाका प्रबन्ध ...	३२०
५२	चन्द्रहासोपाख्यान—अर्जुनके पूछनेपर नारदजीका चन्द्रहासकी तरुण-अवस्थके चरित्रोंका वर्णन करना, चन्द्रहासका दिग्विजय करके बहुत-सी सम्पत्तिके साथ चन्दनावतीपुरीको लौटना, कुलिन्दद्वारा उसका स्वागत तथा अपने पदपर अभिषेक, चन्द्रहासका अपनी प्रजाको एकादशीका माहात्म्य बतलाते हुए व्रतपालनका आदेश देना, कुलिन्दके कहनेसे कररूपमें बहुत-सी धनराशि कुन्तलपुर भेजना, राजमन्त्री धृष्टबुद्धिका चन्दनावतीपुरीमें आना और चन्द्रहासको देखकर सशङ्कित होना	३२५
५३	चन्द्रहासोपाख्यान—धृष्टबुद्धिका चन्द्रहासको पत्र देकर कुन्तलपुरमें मदनके पास भेजना, चन्द्रहासका कुन्तलपुरमें पहुँचकर क्रीडोद्यानके सरोवर-तटपर शयन करना, राजकन्या चम्पकमालिनी और मन्त्रिकन्या विषयाका सखियोंके साथ उद्यानमें आकर विहार करना, सरोवरमें जल-क्रीड़ा करना, तत्पश्चात् विषयाका चन्द्रहासको देखना	३३३
५४	विषयाका गुप्तरूपसे अकेले ही चन्द्रहासके समीप जाना, उसके जेबसे पत्र निकालकर उसे पढ़ना और 'विष'की जगह 'विषया' बनाकर पत्रको बंद करके पुनः जेबमें डाल देना, फिर लौटकर सखियोंके साथ घर जाना, चन्द्रहासका जागना और मन्त्रीके भवनपर पहुँचकर द्वारपालद्वारा अपने आगमनका समाचार भेजवाना, द्वारपालकी बात सुनकर मदनका द्वारपर आकर चन्द्रहासको सभामें ले जाना, चन्द्रहासके दिये हुए पत्रको सभामें पढ़ना, विषयाका चन्द्रहासको पतिरूपमें पानेके लिये पार्वतीजीसे प्रार्थना करना ...	३४०
५५	अर्जुनके पूछनेपर नारदजीद्वारा चन्द्रहास और विषयाके विवाहका वर्णन	३४५
५६	चन्दनावतीपुरीमें कुलिन्दको कैद करनेके पश्चात् धृष्टबुद्धिका भीषण अत्याचार, वहाँ लोभको अधिकारी बनाकर उसका कुन्तलपुरको प्रस्थान, मार्गमें तरह-तरहके अपशकुन होना, कुन्तलपुर पहुँचकर विवाहोत्सवके दर्शनसे कुपित होना और मदनको फटकारना, मदनके उसका पत्र दिखाने-पर शान्त होना और चन्द्रहासके वधका उपाय सोचना	३५०
५७	धृष्टबुद्धिका चन्द्रहासका वध करनेके लिये चाण्डालोंको चण्डिका-मन्दिरमें भेजना और सायंकालमें चन्द्रहासको देवी-पूजनका आदेश देना, कुन्तल-नरेशका गालवमुनिद्वारा अरिष्टाध्याय सुनना और चन्द्रहासको अपनी कन्या चम्पकमालिनी तथा राज्य समर्पित करके वनमें जाकर निर्वाण प्राप्त करना, चन्द्रहासका चम्पकमालिनीके साथ गान्धर्व विवाह और राज्याभिषेक,	

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	चन्द्रहासके बदले मदनका चण्डिका-मन्दिरमें जाना और वहाँ चाण्डालोंद्वारा उसका वध ...	३५६
५८	—चन्द्रहासका चम्पकमालिनीके साथ धृष्टबुद्धिसे मिलने जाना, चन्द्रहासके मुखसे देवी-मन्दिरमें मदनके जानेकी बात सुनकर धृष्टबुद्धिका मन्दिरमें जाना और विलाप करके प्राण-त्याग करना, प्रातःकाल एक तपस्वीका चन्द्रहासको इसकी सूचना देना, चन्द्रहासका मन्दिरमें जाकर अपना मांस काटकर आहुति देना तथा अपना सिर काटनेको उद्यत होना, देवीका प्राकट्य और चन्द्रहासको वर-प्रदान, धृष्टबुद्धि और मदनका जीवित होना, चन्द्रहासका कुलिन्द और उसकी पत्नीको कुन्तलपुर ले आना, शालग्राम-शिलाका माहात्म्य, नारदजीका स्वर्ग-लोक-गमन और अर्जुनका कुन्तलपुरको प्रस्थान ...	३६२
५९	—चन्द्रहासका श्रीकृष्णके दर्शनकी इच्छासे अपने पुत्र मकरध्वजको घोड़ोंको पकड़नेके लिये आदेश देना, श्रीकृष्णका चन्द्रहासको चतुर्भुज-रूपमें दर्शन देना, उसका अर्जुनके साथ मेल कराना और कुन्तलपुरका राज्य चन्द्रहासके पुत्रको देकर आगे बढ़ना	३७०
६०	—चन्द्रहासका अपने पुत्र मकरध्वजको राज्यपर अभिषिक्त करके श्रीकृष्णके साथ घोड़ेकी रक्षामें जाना, घोड़ोंका उत्तर दिशामें जाकर समुद्रमें घुस जाना, हंसध्वज, बभ्रुवाहन, प्रद्युम्न और मयूरध्वजके साथ अर्जुनका समुद्रमें प्रवेश करना, वहाँ बकदाल्भ्य ऋषिसे भेंट और वार्तालापके प्रसंगमें ऋषिका वैराग्य और श्रीकृष्णकी महिमा तथा अनेक मुखवाले ब्रह्माओंकी कथाका वर्णन करना, श्रीकृष्णका ऋषिको पालकीपर बैठाकर ले चलना	३७४
६१	—घोड़ोंका जयद्रथके नगरमें पहुँचना, अर्जुनके आगमनकी बात सुनकर जयद्रथ-पुत्रका भयसे प्राण-त्याग करना, दुःशलाको पुत्रको जीवित करनेके लिये श्रीकृष्णसे प्रार्थना, श्रीकृष्णद्वारा उसके पुत्रको जीवन-दान, अर्जुनका दुःशलाको निमन्त्रित करके हस्तिनापुरको प्रस्थान ...	३८०
६२	—हस्तिनापुरके निकट पहुँचनेपर श्रीकृष्णका घोड़ोंसहित सबको एक उपवनमें रखकर स्वयं नगरमें जाना, युधिष्ठिरसे मिलना और यात्राका सारा समाचार सुनाना, फिर अर्जुनके स्वागतकी व्यवस्था करना, नागरिकों तथा श्रीकृष्ण-पत्नियों-का सज-धजकर स्वागत-समारोहमें सम्मिलित होना	३८२
६३	—अर्जुनका आकर दल-बलसहित श्रीकृष्णसे मिलना, राजाओंद्वारा हस्तिनापुरके वैभवका वर्णन, अर्जुन-द्वारा धृतराष्ट्रको समागत राजाओंका परिचय देना, राजाओंका धृतराष्ट्रको तत्पश्चात् युधिष्ठिरको प्रणाम करना, यज्ञ-सम्भारका एकत्र किया जाना, युधिष्ठिरका समाजसहित गङ्गातटपर जाकर जल ले आना और उससे यज्ञिय अश्वको पवित्र करना	३८६
६४	—अश्वमेध यज्ञका आरम्भ, भीमसेनद्वारा घोड़ेका वध, घोड़ेके सिरका आकाशमें चला जाना, ज्योति निकलकर श्रीकृष्णमें समा जाना और उसके शरीरका कपूर हो जाना, उस कपूरसे हवन, इन्द्रादि देवताओंका आकर अपना भाग ग्रहण करना, युधिष्ठिरका मुनियोंको दान देना ...	३९३
६५	—भीमसेनका यज्ञान्तमें ब्राह्मणों तथा राजाओंको नाना प्रकारके व्यञ्जन जिमाकर तृप्त करना, दो ब्राह्मणोंका अपना झगड़ा निपटानेके लिये युधिष्ठिरके पास आना, भगवान् श्रीकृष्णका कलियुगमें होनेवाले दोषोंका वर्णन करना ...	३९७
६६	—यज्ञकी समाप्तिपर गर्वयुक्त होकर बैठे हुए युधिष्ठिरकी सभामें एक नकुलका आना और इनके यज्ञसे कुरुक्षेत्रनिवासी शिलोञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणके सत्तूयज्ञको उत्कृष्ट बताना, आश्चर्य-चकित हुए सभासदोंके पूछनेपर नकुलद्वारा सत्तूयज्ञका वर्णन	४००
६७	—जनमेजयकी नेवलेके विषयमें जिज्ञासा और जैमिनिजीद्वारा नेवलेका पूर्व-चरित्र वर्णन ...	४०६
६८	—जैमिनीयाश्वमेधपर्वके श्रवणकी महिमा ...	४०८

चित्र-सूची

			मुखपृष्ठ
१—महाभारत-लेखन	...	(तिरंगा)	
२—ब्राह्मण-वेषधारी श्रीकृष्ण-अर्जुनका राजा मयूरध्वजके यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश	...	... (एकरंगा)	२८९
३—महाराज मयूरध्वजका लोकोत्तर बलिदान	...	... (,,)	२९६
४—चन्द्रहासका विषयाके साथ विवाह	...	... (तिरंगा)	३४७
५—श्रीकृष्ण आदिका बकदाल्भ्य मुनिके पास गमन	...	... (एकरंगा)	३७९
६—सम्राट् युधिष्ठिरके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण एवं व्यासजीका पूजन		... (,,)	३९६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनके साथ यज्ञमण्डपमें मयूरध्वजके पास जाना, उनसे बातचीत करना और छलसे उनके आधे शरीरकी याचना करना, मयूरध्वजका अपना शरीर चिरवानेके लिये उद्यत होना

जैमिनिरुवाच

दीक्षितं जायया युक्तं तुरङ्गद्वयसंयुतम्।
तमब्रवीत् तदा विप्रः स्वस्तीति प्रथमं वचः॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! राजा मयूरध्वज यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करके पत्नीसहित बैठे हुए थे। दोनों यज्ञीय अश्व उनके पास ही खड़े थे। उस समय ब्राह्मणरूपधारी श्रीकृष्णने उनके निकट जाकर प्रणाम करनेसे पहले ही 'स्वस्तिवाचन' (मङ्गलमय आशीर्वाद प्रदान) किया॥ १॥

द्विज उवाच

स्वस्ति ते नृपशार्दूल विद्धि मां संगतं द्विजम्।
सशिष्यं पश्य सम्प्राप्तं मण्डपे यज्ञकारिते॥ २ ॥

ब्राह्मणने कहा—राजसिंह! आपका कल्याण हो। आपको विदित होना चाहिये कि मैं एक ब्राह्मण हूँ और यज्ञके लिये बनवाये गये आपके इस मण्डपमें शिष्यसहित आ पहुँचा हूँ। आप मेरी ओर देखिये॥ २॥

मयूरध्वज उवाच

समुत्थितोऽस्म्यहं विप्र नमस्कर्तुं सशिष्यकम्।
भवन्तं यावदेवात्र तावत् स्वस्ति प्रभाषसे॥ ३ ॥

मयूरध्वजने कहा—ब्रह्मन्! मैं यहाँ जबतक शिष्यसहित आपको प्रणाम करनेके लिये उठ ही रहा था तबतक आपने 'स्वस्ति' कहकर आशीर्वाद दे दिया॥ ३॥

नमस्कारं विना विप्र स्वस्ति ब्रूते जनाय यः।
शापेन किं ततः कार्यं तस्माद् युक्तं न ते कृतम्॥४॥

विप्रवर! यदि कोई ब्राह्मण प्रणाम किये बिना ही किसी मनुष्यको आशीर्वाद दे देता है तो वह आशीर्वाद उसके लिये शाप-तुल्य हो जाता है; फिर उसे पृथक् शाप देनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। इसलिये आपने यह उचित नहीं किया॥४॥

जैमिनिरुवाच

पपात दण्डवत् पश्चाद् वासुदेवस्य चाग्रतः।
समुत्थापित एवासौ कृष्णेनामितबुद्धिना॥ ५ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! इतना कहनेके पश्चात् राजा मयूरध्वज भगवान् वासुदेवके आगे दण्डकी भाँति पड़ गये। तब अगाध बुद्धिसम्पन्न श्रीकृष्णने उन्हें उठाकर खड़ा कर दिया॥ ५॥

पप्रच्छ नृपतिर्भूयो हरिं प्रच्छन्नभूसुरम्।
कस्मात् प्राप्तं पूज्यपादैः सशिष्यैर्मम मण्डपम्॥ ६ ॥
किं प्रियं भवतां कार्यं प्रब्रुवन्तु मयाधुना।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि नादेयं मम विद्यते॥ ७ ॥

तदनन्तर राजाने विप्रवेषमें छिपे हुए श्रीहरिसे पूछा—'विप्रवर! मेरे यज्ञमण्डपमें शिष्यसहित आप पूज्यचरणोंका किसलिये शुभागमन हुआ है? आपने तो मुझपर महान् अनुग्रह किया है। आपके दर्शनसे मैं धन्य हो गया। अब आप आज्ञा दीजिये कि मैं इस समय आपका कौन-सा प्रिय कार्य सम्पन्न करूँ? क्योंकि मेरे पास ऐसी कोई प्रिय वस्तु नहीं है, जिसे मैं आपको दे न सकूँ'॥ ६-७॥

विप्र उवाच

नमस्कारं विना विप्रैः स्वस्ति वाच्यो नराधिपः।
विज्ञप्तिकाले त्वपरैर्नमस्कार्यो महीपतिः॥ ८ ॥

विप्रने कहा—राजन्! अपने किसी कार्यको निवेदन करनेके समय ब्राह्मण प्रणाम किये बिना ही राजाके लिये 'स्वस्ति' शब्दका उच्चारण करें, यह उचित है तथा दूसरे वर्णवाले लोगोंको चाहिये कि वे जब किसी कामसे राजाके पास आवें तो उस समय स्वयं ही पहले राजाको प्रणाम करें॥ ८॥

राजोवाच

आदेशो दीयतां मह्यमार्यैरद्याविशङ्कया।
कुर्वेऽहं सकलं कार्यं जीवितेन धनेन च॥ ९ ॥

राजाने कहा—ब्रह्मन्! अब आप महानुभाव निःशङ्क होकर मुझे आज्ञा दीजिये। मैं अपने धन तथा जीवनको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्योछावर करके आपके सम्पूर्ण कार्यको पूर्ण करनेकी चेष्टा करूँगा ॥ ९ ॥

ब्राह्मण उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यदर्थमहमागतः ।
रम्याद् धर्मपुरात् कर्तुं विवाहं स्वसुतस्य हि ॥ १० ॥
कृष्णशर्मा द्विजस्तेऽत्र कन्यायुक्तः पुरोहितः ।
विद्यते मान्यशीलोऽयं मत्वा दास्यति कन्यकाम् ॥ ११ ॥
आयामि पुत्रसहितो यावत् ते नगरं प्रति ।
तावन्मार्गे वने घोरे सिंहः कोपसमन्वितः ॥ १२ ॥
जग्राह पुत्रं तरुणं पश्यतो मम पार्थिव ।
ततो मया स्वपुत्रस्य मोक्षणे चोद्यमः कृतः ॥ १३ ॥

तब ब्राह्मण कहने लगा—राजन् ! मैं जिस कार्यके लिये आपके पास आया हूँ, उसका वर्णन करता हूँ; सुनिये । मैं अपने पुत्रका विवाह करनेके लिये रमणीय धर्मपुरसे रवाना हुआ हूँ । (मार्गमें मैंने सुना कि) आपके इस नगरमें एक कृष्णशर्मा नामक ब्राह्मण रहते हैं, वे आपके पुरोहित हैं । उनके एक कन्या है । 'वे माननीयोंका समादर करनेवाले हैं, अतः अपनी कन्या मेरे पुत्रके लिये दे देंगे'—ऐसा विचार करके मैं पुत्रको साथ ले आपके नगरकी ओर आ रहा था, तबतक मार्गमें भयंकर वनमें पहुँचनेपर वहाँ क्रोधमें भरा हुआ एक सिंह मिला । उसने मेरे देखते-देखते मेरे तरुण पुत्रको पकड़ लिया । पृथ्वीनाथ ! तब मैं अपने पुत्रको उससे मुक्त करनेके लिये प्रयत्न करने लगा ॥ १०–१३ ॥

स्मृतो नृसिंहस्तत्राशु नागतः स्मरणान्मम ।
दुःखितं मां स वै सिंहः प्रत्युवाच हसन्निव ॥ १४ ॥
मनुष्यवाक् पीडयन् मे पुत्रगात्रं तदा नखैः ।
दंष्ट्राभिर्भीषणाभिश्च तर्जयँल्लाङ्गुलेन माम् ॥ १५ ॥

मैंने उस अवसरपर शीघ्र ही भगवान् नृसिंहका स्मरण किया, परंतु मेरे स्मरण करनेपर भी जब वे नहीं पधारे, तब मुझे बड़ा दुःख हुआ । तत्पश्चात् वह सिंह मुझ दुखियासे मनुष्यकी वाणीमें हँसता हुआ-सा कहने लगा । उस समय वह अपने नखों तथा भयंकर दाढ़ोंसे मेरे पुत्रके शरीरको पीड़ित करके अपनी पूँछसे मुझे भी डरा रहा था ॥ १४-१५ ॥

सिंह उवाच

वृथा श्रमं हि विप्रेन्द्र पुत्रं प्रति करिष्यसि ।
मया ग्रस्तं हि कालेन नान्यस्तारयितुं क्षमः ॥ १६ ॥

सिंहने कहा—विप्रेन्द्र ! अब तुम अपने पुत्रको छुड़ानेके लिये व्यर्थ ही परिश्रम कर रहे हो; क्योंकि जब कालस्वरूप मैंने इसे पकड़ लिया, तब इसका उद्धार करनेके लिये दूसरा कोई समर्थ नहीं हो सकता ॥ १६ ॥

गच्छ शिष्येण सहितः स्वगृहं मा विचारय ।
हिंस्राणां पुरतो वासो न सुखायोपजायते ॥ १७ ॥

अब तुम सोच-विचार न करो । इस शिष्यके साथ अपने घरको लौट जाओ; क्योंकि हिंसक जीवोंके सामने अधिक कालतक ठहरना सुखदायक नहीं होता ॥ १७ ॥

अन्यं जनय पुत्रं त्वं यस्ते लोकप्रदो भवेत् ।
अपुत्रस्य परो लोको नास्ति वेदेन भाषितम् ॥ १८ ॥

ब्रह्मन् ! वेदका कथन है कि पुत्रहीनको उत्तम लोककी प्राप्ति नहीं होती; अतः अब तुम घर जाकर दूसरे ऐसे पुत्रको उत्पन्न करो, जो तुम्हें उत्तम लोक प्रदान कर सके ॥ १८ ॥

ब्राह्मण उवाच

मां भक्षयित्वा सिंह त्वं मुञ्च पुत्रं हि लोकदम् ।
वृद्धस्याल्पायुषो व्यर्थं जीवितं पुत्रवर्जितम् ॥ १९ ॥

ब्राह्मणने (मैंने) कहा—सिंह ! तुम मेरे पुत्रको छोड़ दो और उसके बदले मेरा भक्षण कर लो; क्योंकि यही मुझे उत्तम लोक प्रदान करनेवाला है । अब मैं वृद्ध हो चला । मेरी आयु भी थोड़ी ही शेष होगी (अतः दूसरा पुत्र उत्पन्न कर नहीं सकता)—ऐसी दशामें पुत्रहीन हो जानेपर तो मेरा जीवन ही व्यर्थ हो जायगा ॥ १९ ॥

सिंह उवाच

वयं तु मृत्युना ग्रस्तं घातयामो जनं क्वचित् ।
साहाय्यकारकाः सर्वे सर्पहिंस्रजलादिकाः ॥ २० ॥

सिंह बोला—विप्रवर ! हमलोग कहीं भी उसी जीवका वध करते हैं, जो मृत्युसे ग्रस्त हो; क्योंकि सर्प, हिंसक प्राणी तथा जल आदि सभी वस्तुएँ केवल मृत्युकी सहायता करनेवाली हैं ॥ २० ॥

तवायुष्यं हि बहुलं गतायुस्तव पुत्रकः ।
तस्माद् गच्छ मयाऽऽज्ञप्तः किमिदं क्रियते त्वया ॥ २१ ॥

तुम्हारी आयु अभी बहुत है और तुम्हारे पुत्रकी आयु समाप्त हो चुकी है (अतः इसकी मृत्यु तो निश्चित ही है), इसलिये तुम मेरे कहनेसे घर लौट जाओ । अहो ! प्राण देनेके लिये उतारू होकर तुम यह क्या कर रहे हो ? ॥ २१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मण उवाच

केनोपायेन दानेन तपसा वा प्रमुञ्चसि।
तदा प्रोक्तं केसरिणा त्वत्तः किं प्रार्थ्यते नृप ॥ २२ ॥

ब्राह्मणने कहा—सिंह ! तुम दान, तपस्या अथवा किस उपायसे मेरे पुत्रको छोड़ सकते हो, यह मुझे बताओ। राजा मयूरध्वज ! उस समय सिंहने जो कुछ कहा था, उसके लिये क्या मैं आपसे प्रार्थना कर सकता हूँ ? ॥ २२ ॥

मयूरध्वज उवाच

विप्रेन्द्र मामके राष्ट्रे क्षुद्रः सिंहो न विद्यते।
नारसिंहं विना कोऽन्यस्तव पुत्रं प्रधारयेत् ॥ २३ ॥

मयूरध्वजने कहा—विप्रेन्द्र ! मेरे राज्यमें तो छोटा-सा भी सिंह नहीं रहता; अतः भगवान् नृसिंहके अतिरिक्त दूसरा कौन सिंह आपके पुत्रको पकड़ सकता है ? ॥ २३ ॥

ब्राह्मण उवाच

सिंहेन प्रार्थितं किंचित् त्वत्तो यन्नृपसत्तम।
भविष्यति हि तद् देयं यत् त्वां याचति केसरी॥ २४ ॥

ब्राह्मणने कहा—नृपश्रेष्ठ ! उस सिंहने आपसे जो कुछ प्रार्थना की है, उसे आपको अवश्य देना होगा; क्योंकि वह आपसे ही याचना कर रहा है ॥ २४ ॥

राजोवाच

किं प्रार्थितं केसरिणा मत्तो दास्यामि तेऽनघ।
तद् ब्रूहि शीघ्रं विप्रेन्द्र नानृतं मम भाषितम् ॥ २५ ॥

राजाने पूछा—निष्पाप ब्राह्मण ! उस सिंहने मुझसे किस वस्तुके लिये याचना की है, उसे शीघ्र ही बताइये। मैं वह वस्तु आपको दूँगा; क्योंकि मेरा कथन असत्य नहीं हो सकता ॥ २५ ॥

ब्राह्मण उवाच

प्रदास्यसि कथं तत् तु मया यत् प्रार्थ्यते किमु।
अपुत्रत्वं दारुणं हि कः प्राणान् दयितान् नृप ॥ २६ ॥

ब्राह्मणने कहा—नरेश्वर ! मैं जिस वस्तुके लिये आपसे याचना करना चाहता हूँ, उसे आप कैसे दे सकेंगे ? मेरा पुत्रहीन हो जाना मेरे लिये बड़ी भयंकर बात है ! भला, इसके निवारणके लिये कौन अपने प्यारे प्राणोंका उत्सर्ग करेगा ? ॥ २६ ॥

सिंहेन प्रार्थितं दाता भवांश्चेच्छृणु दारुणम्।
तेनोक्तोऽहं महारण्ये शरीरार्धं समानय ॥ २७ ॥
मयूरकेतोः पुत्रं ते ततो मुञ्चामि भूसुर।
त्वदीयं तपसा दग्धं वृद्धं गात्रं न रोचते ॥ २८ ॥

यदि आप सिंहद्वारा माँगी हुई वस्तु देनेके लिये उद्यत हैं तो उस दारुण वचनको सुनिये। उस महान् वनमें सिंहने मुझसे कहा था कि 'ब्राह्मण ! यदि तुम मयूरध्वजका आधा शरीर ला दो तो मैं तुम्हारे पुत्रको छोड़ दूँगा। तुम्हारा शरीर तो तपस्यासे दग्ध एवं वृद्ध हो चुका है, अतः यह मुझे पसंद नहीं है ॥ २७-२८ ॥

नानाविधफलैः पुष्टं दिव्यदुग्धरसैर्वपुः।
मयूरकेतोर्निर्भिन्नं सुप्रियं मम दीयताम् ॥ २९ ॥

उधर मयूरध्वजका शरीर नाना प्रकारके फलों तथा दिव्य दुग्ध आदि रसोंसे परिपुष्ट है। वह चीरा हुआ शरीर मुझे परम प्रिय लगेगा; अतः उसे ही मेरे लिये ला दो ॥ २९ ॥

यावच्च नानयेर्गात्रं तादृशं तावदेव हि।
पुत्रं न ते भक्षयेऽहं सत्यमेतद् वदामि ते ॥ ३० ॥

जबतक तुम मयूरध्वजके उस परिपुष्ट शरीरको लेकर नहीं आ जाओगे, तबतक मैं तुम्हारे पुत्रको नहीं खाऊँगा—यह मैं तुमसे सत्य कह रहा हूँ ॥ ३० ॥

ब्राह्मण उवाच

किमर्थं स्वशरीरं हि राजा भेत्स्यति सुन्दरम्।
परार्थे नैव गच्छामि मृगाधिप नराधिपम् ॥ ३१ ॥

ब्राह्मण पुनः कहने लगा—मृगराज ! भला, राजा होकर वे दूसरेके लिये अपने सुन्दर शरीरको क्यों चिरायेंगे; अतः मैं उन नरेशके पास ऐसी याचना करने नहीं जाऊँगा ॥

सिंहेनोक्तं पुनरपि गच्छ विप्र नृपं प्रति।
ददौ दधीचिरस्थीनि कवचं भानुजो यथा ॥ ३२ ॥
तथा प्रदास्यति वपुर्विप्रार्थे नान्यथा भवेत्।
यशस्विनां शरीरे स्वे प्रीतिर्न महती क्वचित् ॥ ३३ ॥

राजन् ! तब उस सिंहने पुनः मुझसे कहा—'ब्रह्मन् ! तुम राजाके पास अवश्य जाओ। (मेरा तो विश्वास है कि) जैसे इन्द्रके याचना करनेपर महर्षि दधीचिने अपनी हड्डियाँ तथा सूर्यपुत्र कर्णने अपना जन्मजात कवच उन्हें दे डाला था, उसी प्रकार राजा भी ब्राह्मणके निमित्त अपना शरीर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रदान कर देंगे। यह बात अन्यथा नहीं हो सकती; क्योंकि यशस्वी पुरुषोंका अपने शरीरपर कभी विशेष प्रेम नहीं होता॥

रणमध्ये पातनीयं द्विजार्थे बाहुजैर्वपुः।
त्वं विप्र सुतहीनोऽसि ततो याहि तदन्तिकम्॥ ३४॥

'परब्रह्म परमात्माकी भुजाओंसे उत्पन्न हुए क्षत्रियोंको ब्राह्मणके कार्यके लिये रणभूमिमें अपने शरीरका भी उत्सर्ग कर देना उचित है। विप्रवर! तुम अब पुत्रहीन हो रहे हो, अतः राजाके पास जाओ॥ ३४॥

तं प्रार्थय महीपालं गत्वा शोकविनाशनम्।
बहवो जनितास्तेन पुत्रा राज्यं चिरं कृतम्॥ ३५॥
त्वां वीक्ष्य कृपया युक्तो भविष्यति न संशयः।
अर्थिना प्रार्थ्यते सर्वं जनो यच्छतु वा न वा॥ ३६॥

'वहाँ जाकर राजा मयूरध्वजसे प्रार्थना करो। वे तुम्हारा शोक दूर कर देंगे; क्योंकि उनके बहुत-से पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं और उन्होंने चिरकालतक राज्यका भी उपभोग कर लिया है; इसलिये तुम्हारी दुरवस्था देखकर वे निस्संदेह दयासे द्रवित हो जायँगे। (इसमें संकोचकी क्या बात है?) याचक तो सभी प्रकारकी वस्तुएँ माँगता है, दाता दे अथवा न दे (यह उसकी इच्छापर निर्भर है)'॥ ३५-३६॥

ब्राह्मण उवाच

इत्थं तेन वने प्रोक्तं सिंहेनाहं प्रचोदितः।
सशिष्यस्त्वद्गृहं प्राप्तः पुत्रशोकातुरो नृप॥ ३७॥
केनाप्युपायेन वने सिंहात् पुत्रं समानय।

ब्राह्मण कहने लगे—नरेश्वर! इस प्रकार वनमें उस सिंहने मुझसे कहा था। उसीकी प्रेरणासे पुत्रशोकसे आतुर होकर मैं अपने इस शिष्यके साथ आपके घरपर आया हूँ; अतः अब आप जिस किसी भी उपायसे मेरे पुत्रको वनमें स्थित उस सिंहसे छुड़ाकर ला दीजिये॥ ३७½॥

अदृष्टः केसरी जातः कथयन् दारुणं वचः॥ ३८॥
शरीरार्द्धं विना तस्य नागन्तव्यं महीपतेः।
आगतस्य न ते पुत्रं विना नात्र प्रमोचये॥ ३९॥

राजन्! उस समय वह सिंह 'तुम राजा मयूरध्वजके शरीरका अर्धभाग लिये बिना मत लौटना। यदि उस शरीरको लिये बिना ही वापस आओगे तो मैं तुम्हारे पुत्रको छोड़ नहीं सकता।'—यों कठोर वचन कहता हुआ मेरी आँखोंसे ओझल हो गया॥ ३८-३९॥

इति तेन यदा प्रोक्तं तदा त्वामहमागतः।
निवेद्य दुःखं भूपाले स्थातव्यं दुर्बलैर्जनैः॥ ४०॥

जब उसने ऐसी बात कही, तभी मैं आपके पास आया हूँ; क्योंकि दुर्बल लोगोंको चाहिये कि वे राजासे अपना दुःख निवेदन करके चुपचाप स्थित रहें॥ ४०॥

रामचन्द्रेण वीरेण ब्राह्मणस्य मृतः सुतः।
ब्रह्मचर्यव्रतकरः पुराऽऽनीतः स्वपौरुषात्॥ ४१॥

प्राचीनकालमें वीरवर श्रीरामचन्द्रजीने ब्राह्मणके मरे हुए पुत्रको, जो ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाला था, अपने पुरुषार्थसे वापस ला दिया था॥ ४१॥

नृपाशयाहं पुत्रार्थी भवन्तं समुपागतः।
रामतुल्यं हि सत्त्वेन मत्वा धैर्येण पार्थिव॥ ४२॥

पृथ्वीनाथ! नरेश्वर! मैं अपने पुत्रके जीवन-प्राप्तिकी कामनावाला हूँ, इसलिये मैं आपको श्रीरामके समान ही पराक्रमी तथा धैर्यशाली समझकर बहुत बड़ी आशा लगाकर आपके पास आया हूँ॥ ४२॥

नृप उवाच

तिष्ठ विप्रेन्द्र दास्यामि मण्डपे स्वं कलेवरम्।
सर्वेषामत्र विप्राणामग्रे साधूदितं मया॥ ४३॥

तब राजाने कहा—विप्रेन्द्र! थोड़ी देर ठहरिये। मैं इस यज्ञमण्डपमें अपना शरीर आपके अर्पण कर दूँगा। मैंने यहाँ उपस्थित सभी ब्राह्मणोंके समक्ष यह सत्य बात कही है॥

जैमिनिरुवाच

एवमुक्त्वा वचो राजा पुत्रं राज्ये न्यवेशयत्।
सुस्नातो जाह्नवीतोयैः शालग्रामशिलाजलैः॥ ४४॥
तुलसीदलजां मालां कण्ठे कृत्वा हसन्निव।
शङ्खचक्राङ्कितं गात्रं कृत्वा राजा मुदान्वितः॥ ४५॥
सभामण्डपमागत्य सर्वान् विप्रानुवाच सः।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसी बात कहकर राजा मयूरध्वजने अपने पुत्रको राज्यसिंहासनपर बैठा दिया और स्वयं गङ्गाजलसे भली प्रकार स्नान किया, शालग्राम-शिलाओंके प्रक्षालित जलसे अपनेको सींचा, तुलसीदलोंसे बनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुई माला गलेमें धारण कर ली, शरीरको शङ्ख-चक्रसे अङ्कित कर लिया ! इस प्रकार राजा मयूरध्वज आनन्दपूर्वक हँसते हुए सभामण्डपमें आये और सभी ब्राह्मणोंसे कहने लगे ॥४४-४५½॥

मयूरध्वज उवाच

एनं कृष्णं विप्ररूपं पुत्रार्थं मां समागतम् ॥ ४६ ॥
अर्चयामि स्वदेहार्द्धाद् यथा पुत्रयुतो भवेत् ।
पश्यन्तु कौतुकं सर्वे ब्राह्मणा यज्ञवाटके ॥ ४७ ॥

मयूरध्वज बोले—मेरे यज्ञमण्डपमें उपस्थित द्विजवरो ! ये ब्राह्मण देवता अपने पुत्रके जीवनकी कामनासे मेरे पास आये हुए हैं; अतः मैं इन्हें श्रीकृष्णके समान मानकर अपने शरीरका आधा भाग देकर इनका सत्कार करूँगा, जिससे ये पुत्रवान् हो जायँ । अब आप सब लोग यह कौतुक देखिये ॥ ४६-४७ ॥

वार्धकीकाः समायान्तु करपत्रसमन्विताः ।
द्वौ स्तम्भौ रोपयन्त्वत्र भिन्दन्तु मम मस्तकम् ॥ ४८ ॥
येषां प्रियोऽहं सततं तैर्न वाच्यं हि दूषणम् ॥ ४९ ॥

अब यहाँ दो खम्भे खड़े कर दिये जायँ तथा बढ़ई आरा लिये हुए आ जायँ और मेरे मस्तकको दो भागोंमें चीर दें । जिनके लिये मैं सर्वदासे प्रिय रहा हूँ, उन्हें भी (मेरी यह दशा देखकर) कोई कटुवचन नहीं बोलना चाहिये ॥४८-४९॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि मयूरध्वजदेहार्धदाननिश्चयो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें मयूरध्वजका अपना आधा शरीर दे देनेका निश्चयनामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

रानी कुमुद्वती और पुत्र ताम्रध्वजद्वारा आरेसे मयूरध्वजके शरीरका चीरा जाना, बायें नेत्रसे आँसू टपकनेके कारण श्रीकृष्णका उसे त्यागकर चल देना, पुनः मयूरध्वजके स्पष्टीकरण करनेपर लौटना और प्रसन्न होकर राजाको चतुर्भुजरूपमें दर्शन देना, राजाद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन, तत्पश्चात् मयूरध्वजका अर्जुनके साथ घोड़ेकी रक्षाके लिये प्रस्थान

जैमिनिरुवाच

तस्य वाक्यं हि ते श्रुत्वा प्रधानाश्च द्विजास्तदा ।
कम्पिताश्च भिया युक्ता बभूवुर्नृपसत्तम ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ जनमेजय ! उस समय उस ब्राह्मणका वचन सुनकर सभी मन्त्री तथा द्विज भयभीत हो उठे और उनका शरीर काँपने लगा ॥ १ ॥

प्रब्रुवन्तः सकरुणं कुतः कालनिभो द्विजः ।
आगतः प्राणहरणो राज्ञोऽस्माकं हि निर्दयः ॥ २ ॥

वे दयापरवश होकर कहने लगे—'यह कालके समान हमारे राजाके प्राणोंका अपहरण करनेवाला ब्राह्मण कहाँसे आ गया ? यह तो बड़ा निर्दयी है ॥ २ ॥

बहवो याचका दृष्टास्त्वीदृशो न कदाचन ।
राज्ञो देहं याचयेत् को निर्दयी निरपत्रपः ॥ ३ ॥

'हमलोगोंने बहुत-से याचक देखे, परंतु ऐसा याचक कभी भी सामने नहीं आया । भला, ऐसा कौन निष्ठुर तथा निर्लज्ज याचक होगा, जो राजाके सामने आकर उनके शरीरकी ही याचना करे ॥ ३ ॥

सिंहो हि घातुको लोके प्रसिद्धो मांसभक्षकः ।
अयं च मानुषो जात्या ब्राह्मणो ज्ञानवांस्तथा ॥ ४ ॥
स्वार्थनिष्ठः कथं जातो भूत्वा ब्राह्मणजातिजः ।
अस्माकं क उपायोऽत्र भावि यत् तद् भविष्यति ॥ ५ ॥
अवश्यम्भाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते ।
सत्यवादी प्रियातिथ्यः कथं वार्यो महीपतिः ॥ ६ ॥

'संसारमें मांसभक्षी सिंह ही जीवहिंसक प्रसिद्ध है; परंतु यह तो मनुष्य है, जातिका भी ब्राह्मण है तथा ज्ञानसम्पन्न भी है; फिर यह ब्राह्मण-वंशमें उत्पन्न होकर भी ऐसा स्वार्थपरायण कैसे हो गया ? अच्छा, हमलोग इस विषयमें उपाय ही क्या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर सकते हैं। जो होनहार होगा, वह तो होकर ही रहेगा; क्योंकि जो कार्य अवश्यम्भावी हैं, उनके प्रतीकारका कोई उपाय है ही नहीं। इधर हमारे महाराज सत्यवादी तथा अतिथि-सत्कारके प्रेमी हैं, ऐसी दशामें उन्हें कैसे रोका जा सकता है ॥ ४–६ ॥

किमयं विप्ररूपेण पुरा प्राप्तो यथा बलिम्।
वामनो यज्ञसमये तथा विष्णो हरिं द्विजम् ॥ ७ ॥

'प्राचीनकालमें जैसे भगवान् विष्णु वामनरूपसे राजा बलिके यहाँ उनके यज्ञके अवसरपर पधारे थे, उसी तरह वे ही भगवान् विप्रवेषमें हमारे यज्ञमण्डपमें आये हैं क्या ? हमलोग तो इस ब्राह्मणको श्रीहरिके रूपमें ही समझ रहे हैं' ॥

एवं वदन्तस्ते सर्वे तदा राज्ञा निवारिताः।
ततो नृपो हर्षितोऽभूद् दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥ ८ ॥

जब वे ऐसी बातें कहने लगे, तब राजाने उन्हें ऐसा कहनेसे मना कर दिया। तदनन्तर राजा मयूरध्वजने अनेक प्रकारके दान दिये, जिससे उन्हें परम हर्ष प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥

तदाऽऽयाता वार्धकोकाः स्तम्भौ द्वौ रोपितौ हि तैः।
तिर्यक्काष्ठं कृतं चैकं दृढं बद्धं च रज्जुभिः ॥ ९ ॥

उसी समय वहाँ बढ़ई आ पहुँचे। उन्होंने दो खम्भे खड़े कर दिये और उनके ऊपर एक काष्ठ तिरछा (बेड़ा) रखकर उसे रस्सियोंसे दृढ़तापूर्वक बाँध दिया ॥ ९ ॥

आदिदेश तदा राजा करपत्रं स्वमस्तके।
धर्त्तुं स्वयं हर्षयुतः सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ १० ॥

तब सबकी आँखोंके सामने ही स्वयं राजा मयूरध्वजने हर्षपूर्वक अपने मस्तकपर आरा रखनेका आदेश दिया ॥१०॥

क्षालयित्वा विप्रपादौ राजा वचनमब्रवीत्।
शरीरार्द्धेन गोविन्दः प्रीयतां यज्ञनायकः ॥ ११ ॥

उस समय राजाने उन ब्राह्मणदेवका पाद-प्रक्षालन करके (उस जलको सिरपर चढ़ाया और) यों कहना आरम्भ किया—'अब यज्ञनायक भगवान् गोविन्द मेरे शरीरके अर्धभागसे प्रसन्न हों ॥ ११ ॥

अस्मत्कुलप्रसूतानां नराणां शुभमिच्छताम्।
सभायां विप्रकार्ये हि ददतां यौवनं धनम् ॥ १२ ॥

'हमारे कुलमें उत्पन्न हुए शुभाकाङ्क्षी मनुष्योंको चाहिये कि वे इसी प्रकार सभामें उपस्थित हुए ब्राह्मणके कार्यके लिये अपना यौवन और धन दान कर दें ॥ १२ ॥

गृहाण विप्र भिन्नं मे शरीरार्द्धं नृकेसरी।
संतोषं परमं यातु भिनद्मि स्वं कलेवरम् ॥ १३ ॥

'विप्रवर ! अब मैं अपना शरीर चिरवा रहा हूँ। आप चिरे हुए मेरे शरीरके आधे भागको ले जाइये। उससे श्रीभगवान् नृसिंह परम संतोष लाभ करें ॥ १३ ॥

रे रे मल्ला मयाऽऽज्ञप्ताः कर्षन्तु स्ववलान्मम।
गात्रं बद्धं पट्टगुणैर्मा चिरं यातु भूसुरः ॥ १४ ॥

'अरे मल्लो ! मैं तुम्हें आज्ञा दे रहा हूँ, तुमलोग रेशमकी डोरीसे बँधे हुए मेरे शरीरपर रखे हुए आरेको बलपूर्वक खींचो। विलम्ब मत करो। जिससे ये भूदेव शीघ्र ही लौट जायँ ॥ १४ ॥

धन्योऽस्मिन् भूतले जातो ब्राह्मणेनामुना कृतः।
शृण्वन्तु लोकाः सकला भाषितं मम सादरम् ॥ १५ ॥

'इस भूतलपर उत्पन्न हुए मुझको इन ब्राह्मणदेवने धन्यवादका पात्र बना दिया। अब यहाँ उपस्थित सभी लोग आदरपूर्वक मेरा कथन सुनें—॥ १५ ॥

परोपकृतये येषां शरीरं वित्तसंग्रहः।
याति यत् तत् स्थितं शोच्यमुभयं दानवर्जितम् ॥ १६ ॥
तस्मात् प्रहर्षः कर्तव्यो मां निरीक्ष्य सभासदैः।

'जिन प्राणियोंकी देह और धनराशि परोपकारके कार्यमें व्यय होती है, उसीको स्थिर समझना चाहिये; क्योंकि दान-रहित होनेपर तो उन दोनोंकी शोचनीय अवस्था हो जाती है। इसलिये मेरी इस दशाको देखकर सभी सभासदोंको परम आनन्द मानना चाहिये' ॥ १६½ ॥

जैमिनिरुवाच

हाहाभूतं तदा राष्ट्रं वीक्ष्य राजानमेव च ॥ १७ ॥
क्रन्दमानं हि संजातं कुररीगणसंनिभम्।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! उस समय राजाकी वह दशा देखकर सारे राज्यमें हाहाकार मच गया। सारी प्रजा क्रौञ्च पक्षियोंके झुंडके समान जगह-जगह एकत्रित होकर चीख-चीखकर चिल्लाने लगी ॥ १७½ ॥

महिषी तस्य नृपतेः समागत्याब्रवीन्नृपम् ॥ १८ ॥
विप्रस्य पुरतो हृष्टा रभ्या राजन् कुमुद्वती।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजन्! तब राजा मयूरध्वजकी सुन्दरी रानी कुमुद्वती ब्राह्मणके सामने आकर हर्षपूर्वक राजासे कहने लगी ॥१८½॥

कुमुद्वत्युवाच

राजन् विप्राय देहार्धं त्वया देयं मया श्रुतम् ॥ १९ ॥
तवार्धगात्रं भार्याऽस्मि मां दत्त्वा सत्यवाग्भव।

कुमुद्वती बोली—राजन्! मैंने सुना है कि आप अपने शरीरका अर्धभाग ब्राह्मणको देना चाहते हैं, सो आपका अर्धाङ्ग तो मैं ही हूँ; क्योंकि मैं आपकी भार्या हूँ; अतः आप मुझे ब्राह्मणको देकर अपने वचनको सत्य कीजिये ॥ १९½ ॥

सजीवं दीयते दानं भिन्नं ते गतजीवितम् ॥ २० ॥
परेण भिन्नं पश्चास्यो न गृह्णाति मतिर्मम।

दान भी तो सजीवका ही दिया जाता है, आपका शरीर तो चीरे जानेसे निर्जीव हो जायगा। साथ ही मेरा तो ऐसा विचार है कि दूसरे द्वारा विदीर्ण किये हुए मांसको सिंह ग्रहण भी नहीं करते ॥ २०½ ॥

तुर्यांशो यदि देयो हि भवेद् भग्नं हि ते वपुः ॥ २१ ॥
अर्धं प्रार्थयते सिंहः स्त्रीरूपं विद्धि मारिष।

आर्य! इसके अतिरिक्त यदि चतुर्थांश ही देना हो तब तो आपका शरीर चीरा जाय (क्योंकि अर्धाङ्ग तो मैं ही हूँ और आपके अर्धाङ्गके दो भाग करनेपर सम्पूर्ण शरीरका चातुर्थांश हो जायगा); परंतु वह सिंह तो आधा भाग माँग रहा है और वह अर्धभाग स्त्रीरूपमें मुझे ही समझिये ॥ २१½ ॥

प्राणनाथस्य पुरतो या नारी मृत्युमाव्रजेत् ॥ २२ ॥
उत्तमां गतिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।

साथ ही जो स्त्री अपने प्राणनाथके सामने ही मृत्युको प्राप्त होती है, उसे उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है; इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ २२½ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा विप्रः प्रोवाच सत्वरः ॥ २३ ॥
एकाग्रमनसं ज्ञात्वा राजानं वाक्यकोविदः।

कुमुद्वतीकी वह बात सुनकर और राजाको एकाग्र मनसे कुछ विचार करते जानकर वह वाक्यविशारद ब्राह्मण तत्काल ही बोल उठा ॥ २३½ ॥

विप्र उवाच

सिंहेन कथितं राजन् वामाङ्गं स्त्री महीपते ॥ २४ ॥
दक्षिणाङ्गं प्रदेयं मे वामाङ्गं नीयते कथम्।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! सिंहने कह दिया था कि राजाका वामाङ्ग स्त्री है, अतः मुझे दक्षिणाङ्ग ही देना चाहिये। तब मैं वामाङ्गको कैसे ले जा सकता हूँ ॥ २४½ ॥

शरीरं दक्षिणाङ्गं मे दातुं सिंहाय चार्हसि ॥ २५ ॥
न दास्यसि कदाचित् त्वं निराशो यामि तं प्रति।

इसलिये उस सिंहको देनेके लिये आप अपने शरीरका दक्षिणाङ्ग ही मुझे प्रदान कीजिये। यदि कदाचित् आप नहीं देंगे तो मैं निराश होकर उसके पास लौट जाऊँगा ॥२५½॥

तेनैव प्रेषितो राजन् सामीप्यं तव सुव्रत ॥ २६ ॥
गत्वा तं कथयिष्यामि पुत्रं भक्ष यथासुखम्।

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले राजन्! उस सिंहने ही मुझे आपके पास भेजा था। उसके पास जाकर मैं उससे कह दूँगा कि (राजा अपने शरीरका दक्षिणार्ध भाग नहीं देना चाहते, अतः) अब तुम सुखपूर्वक मेरे पुत्रको खा लो ॥ २६½ ॥

एवं विप्रे प्रवदति शृण्वतां वै सभासदाम् ॥ २७ ॥
पश्यतां कौतुकं चैव राजपुत्रोऽतिहर्षितः।
तं ब्राह्मणं शिष्ययुतं गिरा कोमलया तदा ॥ २८ ॥
सम्पादयन् पितुः कीर्तिमुवाच परया मुदा।

जिस समय ब्राह्मण ऐसी बातें कह रहा था और सभी सभासद् उसकी बातें सुनते हुए वह कौतुक देख रहे थे, उसी समय राजकुमार ताम्रध्वज अत्यन्त हर्षित होकर शिष्यसहित आये हुए उस ब्राह्मणसे कोमल वाणीमें बोला। उस समय ताम्रध्वज परमानन्दमें मग्न होकर अपने पिताकी कीर्तिका सम्पादन करना चाहता था ॥ २७-२८½ ॥

ताम्रध्वज उवाच

यो वै पिता स पुत्रो हि श्रुतिरेषा सनातनी ॥ २९ ॥
ब्राह्मणार्थे हि मत्पित्रा शरीरार्धं समर्पितम्।
शरीरार्धं समग्रं हि पितुर्भवति पुत्रकः ॥ ३० ॥

ताम्रध्वजने कहा—विप्रवर! जो पिता है, वही पुत्र है (अर्थात् 'पिता वै जायते पुत्रः' पिता ही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है)—यही सनातनी श्रुति है। इसलिये यदि मेरे पिताजीने अपने शरीरका अर्धभाग ब्राह्मणको देनेके लिये प्रतिज्ञा की है तो पिताके शरीरका सम्पूर्ण आधा भाग पुत्र ही होता है (वह मैं चलनेके लिये तैयार हूँ) ॥ २९-३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रसन्नस्तरुणं वीक्ष्य मांसपुष्टं मृगाधिपः।
भविष्यति महाबुद्धे पुत्रस्य च महद्यशः॥ ३१॥
भीष्मरामादिभिर्लब्धं पितृवाक्यकरैर्यशः।

महाबुद्धे! मांससे हृष्ट-पुष्ट मुझ तरुणको देखकर मृगराज सिंह भी प्रसन्न हो जायगा और मुझ पुत्रको भी महान् यशकी प्राप्ति हो जायगी; क्योंकि भीष्म और परशुराम आदिने भी पिताकी आज्ञाका पालन करनेसे उत्तम यश लाभ किया था॥ ३१½॥

ब्राह्मण उवाच

सत्यं त्वं भाषसे पुत्र वचः केसरिणः शृणु॥ ३२॥
पुत्रेण भार्यया भिन्नं मयूरध्वजमस्तकम्।
द्विधा जातं शरीराद्धि दक्षिणाङ्गं त्वमानय॥ ३३॥
कथं तदन्यथा कर्तुं शक्यते मद्विधेन तु।

ब्राह्मणने कहा—बेटा! तू सत्य कह रहा है; परंतु तू उस सिंहके वचनको भी तो सुन। (उसने कहा था कि) 'तुम पुत्र और भार्यासे भिन्न मयूरध्वजके मस्तकका वह दाहिना भाग ले आना, जो उनके शरीरसे फाड़कर दो भागोंमें विभक्त किया गया होगा।' तब बताओ, मुझ-जैसा व्यक्ति उस कथनके विपरीत कैसे कर सकता है?॥ ३२-३३½॥

जैमिनिरुवाच

ततः स नृपशार्दूलो वारयित्वा प्रियां सुतम्॥ ३४॥
तयोः करे ददौ राजा करपत्रं मुदान्वितः।
स्त्रीपुत्रयोः पुरस्तस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः॥ ३५॥
जपन् केशव रामेति नृसिंहेति च धैर्यतः।
ददृशुस्तं तथाभूतं सर्वे देवाः सवासवाः॥ ३६॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर राजसिंह मयूरध्वजने अपनी पत्नी तथा पुत्रको वैसा करनेसे मना कर दिया और उन महात्मा ब्राह्मणके सामने अपने उन दोनों स्त्री और पुत्रके हाथमें आनन्दपूर्वक आरा दे दिया। फिर स्वयं धैर्यपूर्वक 'केशव, राम, नृसिंह' आदि भगवन्नामोंका जप करने लगे। उस समय इन्द्रसहित समस्त देवता राजाकी उस दशाको देख रहे थे॥ ३४–३६॥

यदा धृतं मस्तके स्वे करपत्रं महात्मनः।
महतां चाभवद् ग्लानिर्दुःखिताः पौरजा जनाः॥ ३७॥

जिस समय उन महात्मा राजाके मस्तकपर आरा रखा गया, उस समय सत्पुरुषोंके मनमें बड़ी ग्लानि हुई और समस्त नागरिकजन दुःखमें डूब गये॥ ३७॥

भार्या जग्राह तद्वाक्यात् करपत्रं च पुत्रकः।
गायन्ती रामरामेति ब्राह्मणं वाक्यमब्रवीत्॥ ३८॥
सर्वेषां शृण्वतां तत्र भिनद्मि स्वपतिं द्विज।
नृसिंहेन पुरा भिन्नः स्तम्भो यद्वत् सुकोपिना॥ ३९॥
विदारितो दैत्यनाथस्तद्वन्नाथं महामतिम्।

राजाकी आज्ञासे एक ओर रानीने तथा दूसरी ओर पुत्रने आरेको पकड़ लिया। तब रानी राम-रामका गान करती हुई वहाँ उपस्थित सभी लोगोंके सुनते हुए ब्राह्मणसे कहने लगी—'द्विजवर! अब मैं अपने पतिको चीरती हूँ। पूर्वकालमें जैसे भगवान् नृसिंहने अत्यन्त कुपित होकर खम्भेको फाड़ डाला था और उससे प्रकट होकर दैत्यराज हिरण्यकशिपुको विदीर्ण कर दिया था, उसी तरह मैं भी अपने महाबुद्धिमान् स्वामीको चीर डालूँगी॥ ३८-३९½॥

नृप उवाच

करपत्रं करस्थं ते प्रिये पश्यामि तादृशम्॥ ४०॥
केतक्याः कोमलं पत्रं शरीरे सुखदं यथा।
त्वं भिन्धि कं मे निःशङ्कं करजैरिव संगमे॥ ४१॥

राजाने कहा—प्रिये! जैसे केतकीका कोमल पत्ता शरीरपर रखे जानेसे सुखद प्रतीत होता है, उसी तरह तुम्हारे हाथमें स्थित यह आरा भी मुझे सुखदायक लग रहा है, अतः अब तुम समागमके समय नखोंसे क्षत-विक्षत करनेकी तरह निःशङ्क होकर आरेसे मेरे मस्तकको चीर डालो॥ ४०-४१॥

यथा तत्र न मे पीडा जायते च नखैः प्रिये।
तथाद्य करपत्रस्य दन्तैः कमलकोमलैः॥ ४२॥

प्रिये! जैसे उस समय नखोंद्वारा खरोंचनेसे मुझे पीड़ा नहीं मालूम देती थी, उसी तरह आज इन कमलके समान कोमल आरेके दाँतोंसे मुझे कष्ट नहीं हो रहा है॥ ४२॥

ततः सा तस्य भूपस्य मस्तकं पुत्रसंयुता।
विभेद करपत्रेण समक्षं कृष्णपार्थयोः॥ ४३॥

तदनन्तर पुत्रसहित रानी कुमुद्वतीने श्रीकृष्ण और अर्जुनकी आँखोंके सामने ही आरेसे राजा मयूरध्वजके मस्तकको विदीर्ण कर दिया॥ ४३॥

हाहाकारो महानासीद् भिन्ने के जनमेजय।
वामनेत्रे जलं प्राप्तं तदा विप्रो पुरासदः॥ ४४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

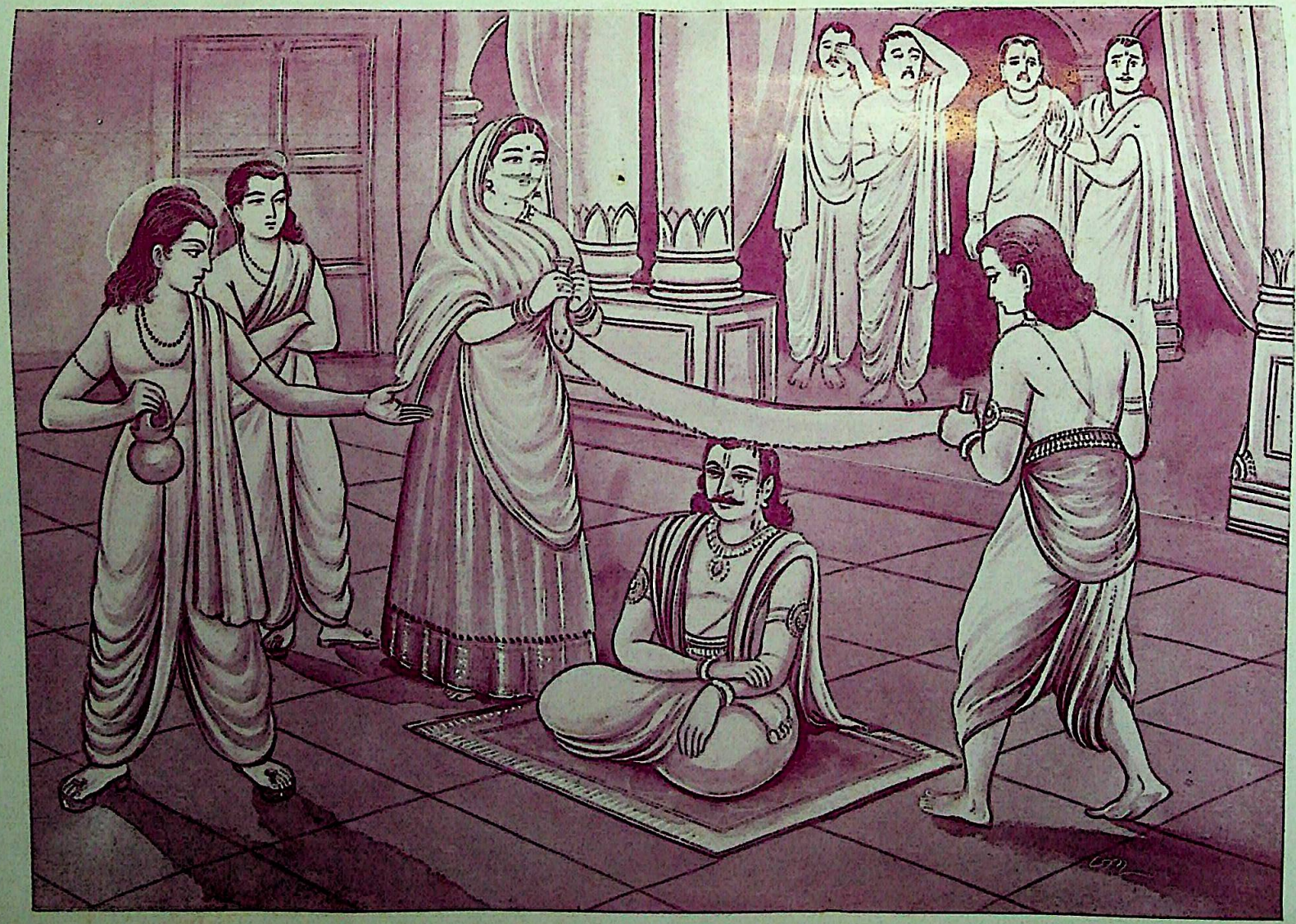

महाराज मयूरध्वजका लोकोत्तर बलिदान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्युवाच महीपालं भिन्नं भ्रमिततारकम्।
न ग्रहीष्यामि ते गात्रं रुदन् यच्छसि मारिष ॥ ४५ ॥
अभावोपहृतं दानं न गृह्णन्ति विपश्चितः।

जनमेजय! मस्तकके फटते ही वहाँ महान् हाहाकार मच गया। उस समय राजाके बायें नेत्रमें आँसू छलक आये। यह देखकर उस दुरासद ब्राह्मणने, जिनका मस्तक विदीर्ण हो गया था और जिनके नेत्रोंकी पुतलियाँ उलट गयी थीं, उन राजासे कहा—'आर्य! तुम तो रोते हुए दान कर रहे हो, इसलिये मैं तुम्हारे इस शरीरको नहीं ग्रहण करूँगा, क्योंकि विद्वान् पुरुष अश्रद्धासे दिये गये दानको स्वीकार नहीं करते४४-४५½॥

विना पुत्रेण मे स्वर्गो रुद्धस्तिष्ठति तिष्ठतु ॥ ४६ ॥
सिंहो यातु यथास्थानं गृहीत्वा मम बालकम्।
रुदित्वा वामनेत्रेण राजा देहार्धमप्ययम् ॥ ४७ ॥
ददाति तदहं विप्रः कथं गृह्णामि सत्तमः।

'अब पुत्रके न मिलनेके कारण मेरा स्वर्गलोकका मार्ग अवरुद्ध हो गया है, सो भले ही रुका रहे। सिंह भी मेरे बालकको लेकर अपने अभिमत स्थानको चला जाय; परंतु जब यह राजा बायें नेत्रसे आँसू बहाकर अपने देहार्धका दान कर रहा है, तब मैं एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर ऐसे दानको कैसे ग्रहण कर लूँ?' ॥ ४६-४७½ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं परित्यज्य महीपतिम् ॥ ४८ ॥
प्रययौ पश्यतां तेषां पार्थयुक्तो जनार्दनः।

इतनी बात कहकर जनार्दनने राजाका परित्याग कर दिया और अर्जुनको साथ लेकर उन सबके देखते-देखते वे वहाँसे चल दिये ॥ ४८½ ॥

गच्छन्तं ब्राह्मणं वीक्ष्य पतिं प्राह कुमुद्वती ॥ ४९ ॥
गृहीत्वा मस्तकं भिन्नं कराभ्यां सुमुखी सती।

ब्राह्मणको जाते देखकर सती-साध्वी सुन्दरी कुमुद्वतीने राजाके फटे हुए मस्तकको अपने दोनों हाथोंसे थामकर पति-देवसे कहा ॥ ४९½ ॥

कुमुद्वत्युवाच

सत्यव्रत महाबुद्धे वदान्यानां शिरोमणे ॥ ५० ॥
ब्राह्मणस्त्वां मया भिन्नं परित्यज्याद्य गच्छति।
नाथ वारय गच्छन्तं विप्रं देहार्धयाचकम् ॥ ५१ ॥
गतेऽगृहीत्वा विफला तव कीर्तिर्भविष्यति।

कुमुद्वती बोली—सत्यव्रत! महाबुद्धे! दानिशिरोमणे! ये ब्राह्मणदेव अब मेरे द्वारा चीरे हुए आपका परित्याग करके जा रहे हैं। नाथ! देहार्धकी याचना करनेवाले उन जाते हुए ब्राह्मणको रोकिये; क्योंकि यदि वे दान लिये बिना ही चले जायँगे तो आपकी कीर्ति निष्फल हो जायगी ॥ ५०-५१½ ॥

नृप उवाच

भिन्नं त्वया धृतं भद्रे मस्तकं मामकं पुनः ॥ ५२ ॥
ततो ब्रवीमि विप्रेन्द्रं व्रजन्तं काननं गृहात्।

राजाने कहा—भद्रे! तुमने मेरे फटे हुए मस्तकको पुनः अपने हाथसे थाम लिया है, इसलिये मेरे घरसे विमुख होकर वनको जाते हुए उन श्रेष्ठ ब्राह्मणसे मैं अभी बात कर सकता हूँ ॥ ५२½ ॥

मा गच्छ मुनिशार्दूल श्रुत्वाऽऽयाहि वचो मम ॥ ५३ ॥
वामाङ्गलोचने प्राप्तं यस्मात् तोयं द्विजोत्तम।

(रानीसे यों कहकर वे ब्राह्मणसे कहने लगे—) 'मुनिश्रेष्ठ! मत जाइये। लौट आइये, पहले मेरी बात सुन लीजिये, तब जाइयेगा। द्विजोत्तम! मेरे बायें नेत्रमें जिस कारणसे आँसू आ गया है (वह बता रहा हूँ) ॥ ५३½ ॥

दक्षिणाङ्गं ब्राह्मणार्थं मदीयं साधुसंगतम् ॥ ५४ ॥
वामाङ्गं पतितं भूमौ वृथा यातीति रोदितम्।

'ब्रह्मन्! (मैंने सोचा कि) मेरा दक्षिणाङ्ग तो ब्राह्मणके कार्यमें लग जायगा; इसलिये इसका तो उत्तम उपयोग हो गया; परंतु मेरा वामाङ्ग पृथ्वीपर गिरकर व्यर्थ हो जायगा—इसी कारण मुझे रुलाई आ गयी थी ॥ ५४½ ॥

न व्यथा करपत्रान्मे तीक्ष्णाद् भवति तादृशी ॥ ५५ ॥
यादृशी विप्रविमुखाद् वामाङ्गादिह जायते।

'विप्रवर! मुझे तीखे आरेसे चीरे जानेपर भी वैसी व्यथा नहीं मालूम हुई, जैसी यहाँ अपने बायें अङ्गके ब्राह्मणसे विमुख हो जानेसे हो रही है' ॥ ५५½ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ ५६ ॥
आत्मनो दर्शयामास स्वरूपं भूपसंनिधौ।

राजाकी ऐसी बात सुनकर परमेश्वर श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये और राजाके संनिकट अपना असली स्वरूप प्रकट करके उन्होंने राजाको दर्शन दिया ॥ ५६½ ॥

समालिङ्ग्याब्रवीद् वीरं कृष्णः कमललोचनः ॥ ५७ ॥
धन्योऽसि नृपशार्दूल मयूरध्वज सुव्रत।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस समय कमललोचन श्रीकृष्णने उस वीर राजाका आलिङ्गन करके कहा—'राजसिंह ! उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मयूरध्वज ! तुम धन्य हो ॥ ५७½ ॥

परीक्षितोऽसि बहुधा मया त्वं पाण्डवेन च ॥ ५८ ॥
यज्ञं कुरु महाबाहो सपत्नीकः सपुत्रकः ।

महाबाहो ! मैंने तथा अर्जुनने बहुत प्रकारसे तुम्हारी परीक्षा कर ली है। अब तुम अपने पुत्र तथा पत्नीसहित अपना यज्ञ पूर्ण करो ॥ ५८½ ॥

ताम्रध्वजेन संग्रामे तोषितौ तव सूनुना ॥ ५९ ॥
मूर्च्छितौ सैन्यसहितौ कृतौ वीरप्रमाथिनौ ।
मां निरीक्ष्य कुतो दुःखं जायते प्राणिनामिह ॥ ६० ॥

राजन् ! यद्यपि मैं और अर्जुन दोनों ही बड़े-बड़े वीरोंको मथ डालनेकी शक्ति रखते हैं तथापि तुम्हारे पुत्र ताम्रध्वजने संग्रामभूमिमें हम दोनोंको संतुष्ट करके सेनासहित मूर्च्छित कर दिया था। भला, इस संसारमें मेरा दर्शन हो जानेपर प्राणियोंको दुःखकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? ॥ ५९-६० ॥

देहार्धं हि त्वया दत्तं मद्वाक्येन महात्मना ।
तव यज्ञे भविष्यामि कर्मकर्ता महामते ॥ ६१ ॥
यस्माद् भक्तपराधीनो जितोऽस्मि तव सूनुना ।

महामते ! महान् आत्मबलसे सम्पन्न तुमने मेरे कहनेसे अपने शरीरका आधा भाग प्रदान कर दिया है, अतः मैं तुम्हारे यज्ञमें कर्मचारी होकर काम करूँगा; क्योंकि एक तो मैं यों ही भक्त-पराधीन हूँ, दूसरे तुम्हारे पुत्रने मुझे संग्रामभूमिमें जीत लिया है ॥ ६१½ ॥

युधिष्ठिरस्य तुरगं गृहाण त्वमपि स्फुटम् ॥ ६२ ॥
द्वौ हयौ समये हुत्वा कीर्तिं प्राप्नुहि शोभनाम् ।
कीदृशस्तव गात्रस्य भेदोऽयं मम पश्यतः ॥ ६३ ॥

अब तुम स्पष्ट रूपसे युधिष्ठिरके घोड़ेको भी ले लो और समयानुसार दोनों घोड़ोंकी अग्निमें आहुति देकर सुन्दर कीर्ति लाभ करो। मेरे देखते हुए यह तुम्हारे शरीरका भेदन कैसा ? (यह तो मेरी एक लीलामात्र है) ॥ ६२-६३ ॥

मयूरध्वज उवाच

धाम ते परमं विष्णो पदं च बहुलं प्रभो ।
भिन्नं कृत्वा शरीरं मे प्रविष्टं यद् बहिः स्थितम् ॥ ६४ ॥

तब मयूरध्वजने कहा—सर्वव्यापक प्रभो ! आपका जो उत्कृष्ट धाम (तेज) तथा विस्तृत पद (धाम) बाहर संसारमें व्याप्त था, वही मेरे शरीरको विदीर्ण करके उसमें प्रविष्ट हो गया है ॥ ६४ ॥

श्रीपते वासुदेवाद्य धन्योऽहं ते कृतः प्रभो ।
किं मे यज्ञेन गोविन्द यदि तुष्टोऽसि केशव ॥ ६५ ॥

लक्ष्मीपते ! वसुदेवनन्दन ! प्रभो ! आज आपने मुझे कृतार्थ कर दिया। केशव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो गोविन्द ! अब मेरे यज्ञ करनेसे क्या लाभ ? ॥ ६५ ॥

दृष्टे त्वयि जगन्नाथे कीर्तिते नमिते श्रुते ।
यज्ञकोटिकृतं पुण्यं भवतीति न संशयः ॥ ६६ ॥

आप जगदीश्वरका दर्शन हो जानेपर, आपका नाम लेनेपर, आपके चरणोंमें नमस्कार करनेपर तथा आपका गुणानुवाद सुननेपर करोड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानका पुण्य यों ही प्राप्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ६६ ॥

त्वया प्रोक्तं कर्मकर्ता तथा कुरु जनार्दन ।
तुरङ्गौ मां च मत्पुत्रान् मत्प्रियां च महाजनम् ॥ ६७ ॥
गृहीत्वा यज्ञकर्तॄंश्च यज्ञोपकरणानि च ।
स्वकरेण महाविष्णो हृदयं स्वं निवेशय ॥ ६८ ॥

जनार्दन ! आपने कहा है कि मैं तुम्हारे यज्ञमें कार्य करूँगा तो महाविष्णो ! ऐसा कीजिये कि इन दोनों घोड़ोंको, मुझको, मेरे पुत्रोंको, मेरी पत्नीको, इस महान् जनसमुदायको, यज्ञकर्ताओंको और यज्ञकी सामग्रियोंको अपने हाथसे पकड़कर अपने हृदयमें निविष्ट कर लीजिये ॥ ६७-६८ ॥

भवन्तं प्राप्य गोविन्द मया चेत् क्रियते क्रतुः ।
प्रहसिष्यन्ति मां विप्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ६९ ॥

गोविन्द ! यदि मैं आपको पाकर भी यज्ञानुष्ठानमें लग जाऊँ तो ये वेदवेदाङ्गके पारगामी विद्वान् ब्राह्मण मेरी हँसी उड़ायेंगे ॥ ६९ ॥

महान्तमग्निमुत्सृज्य हिमेन परिपीडितः ।
कः सेवेत नरो मूढो विस्फुलिङ्गान् जनार्दन ॥ ७० ॥
तृषितो जाह्नवीतोयं हित्वा नीहारमाव्रजेत् ।

जनार्दन ! कौन ऐसा मूर्ख मनुष्य होगा, जो सर्दीसे पीडित होनेपर प्रज्वलित अग्निराशिको छोड़कर चिनगारियोंका सेवन करने जायगा तथा प्याससे व्याकुल होनेपर गङ्गाजलका परित्याग करके ओसकणोंकी ओर दौड़ेगा ॥ ७०½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूढधीर्वाजिनौ प्राप्य त्वामवज्ञाय माधवम् ॥ ७१ ॥
यजते हयमेधाभ्यां स दण्ड्यो रविसूनुना ।

जो मन्दबुद्धि दोनों घोड़ोंको पाकर आप माधवकी अवहेलना करके दो अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करेगा, वह यमराजके दण्डका पात्र होगा ॥ ७१½ ॥

पुत्रको मे कृष्णपार्थौ त्यक्त्वा युद्धे समागतः ॥ ७२ ॥
भाग्योदयान्मया दृष्टौ नरनारायणाविमौ ।

भगवन् ! मेरा यह मूर्ख पुत्र युद्धस्थलमें आप और अर्जुन दोनोंको छोड़कर चला आया था; परंतु अपने किसी उत्कृष्ट भाग्यके उदय होनेसे मुझे आप दोनों नर-नारायणका दर्शन प्राप्त हो गया ॥ ७२½ ॥

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ब्रह्मणे गुरवे नमः ॥ ७३ ॥
ब्रह्मगोलोकसाहस्रैः फलिताय नमो नमः ।
हन्त्रे गोप्त्रे नमस्तेऽस्तु सृष्टिकर्त्रे प्रमीढुषे ॥ ७४ ॥

कमलनयन ! आपको नमस्कार है । आप जगद्गुरु एवं ब्रह्मस्वरूप हैं, आपको प्रणाम है । आप सहस्रों ब्रह्माण्ड-गोलकोंमें व्याप्त हैं, आपको बारंबार नमस्कार है । आप सृष्टिके कर्ता, पालक और संहर्ता हैं तथा अन्न-जल आदि अभीष्ट वस्तुओंकी वर्षा करनेवाले भी आप ही हैं, आपको मेरा प्रणाम है ॥ ७३-७४ ॥

अनन्ताय सुपूर्णाय वेदनिःश्वासकारिणे ।
श्रीधराय नमो नाथ शेषमञ्चकशायिने ॥ ७५ ॥

नाथ ! आप अन्तरहित और सर्वत्र परिपूर्ण हैं । आप वेदस्वरूप निःश्वास प्रकट करनेवाले शेषरूपी शय्यापर शयन करनेवाले हैं, आप श्रीधरको नमस्कार है ॥ ७५ ॥

लवणघ्नाय शान्ताय नमस्ते कलिताय च ।
ज्ञानाय ज्ञानगम्याय नमः कालजिताय च ॥ ७६ ॥
नमो दृश्याय वेद्याय नमः पारम्पराय च ।

लवणासुरका वध करनेवाले, शान्तस्वरूप तथा समस्त कलाओंसे सम्पन्न आपको मेरा प्रणाम है । आप ज्ञानस्वरूप हैं, ज्ञानद्वारा ही जाननेमें आते हैं तथा कालपर भी विजय पाने-वाले हैं, आपको मेरा अभिवादन है । यह दृश्य जगत् आपका ही स्वरूप है, श्रुतियों-स्मृतियोंद्वारा एकमात्र आप ही जानने योग्य हैं, आपको नमस्कार है । आप सृष्टि-परम्पराको स्थापित करनेवाले हैं, आपको प्रणाम है ॥ ७६½ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं स्तुतस्तदा तेन विश्वात्मा मधुसूदनः ॥ ७७ ॥
प्रसन्नात्माभवत् कृष्णो भक्तिं पार्थाय दर्शयन् ।
त्रिरात्रं च स्थितस्तत्र भक्त्या तुष्टो जगत्प्रभुः ॥ ७८ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! उस समय जब राजाने विश्वात्मा मधुसूदनकी इस प्रकार स्तुति की, तब भगवान् श्रीकृष्णका चित्त प्रसन्न हो गया । वे जगदीश्वर अर्जुनको राजाकी भक्तिका दर्शन कराते हुए उनके भक्तिभावसे संतुष्ट होकर उस रत्नपुरमें तीन राततक ठहरे रहे ॥ ७७-७८ ॥

केशवेन समं पश्चात् प्रययौ वाजिपालने ।
दत्त्वा कृष्णकरे सर्वं वित्तं जीवितमेव च ।
सुहृद्भिः सहितो राजा पार्थमालिङ्ग्य चाग्रतः ॥ ७९ ॥

तदनन्तर राजा मयूरध्वजने अर्जुनको गले लगाया और अपनी सारी सम्पत्ति तथा जीवन भी भगवान् श्रीकृष्णके हाथों-में समर्पित कर दिया, फिर वे अपने सुहृदोंसे घिरे हुए केशव-के साथ-साथ अश्वकी रक्षाके लिये आगे-आगे प्रस्थित हुए ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि मयूरध्वजविजयवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें मयूरध्वजकी विजयका वर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

दोनों घोड़ोंका राजा वीरवर्माके नगरमें जाना और वीरवर्माकी आज्ञासे उनका पकड़ा जाना, वीरवर्माके पुत्रोंके साथ बभ्रुवाहनका युद्ध, यमराजका युद्धके लिये आना, अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णद्वारा यमराजका वीरवर्माके जामाता बननेकी कथाका वर्णन

जैमिनिरुवाच

तुरङ्गमौ गतौ राजन् पुरे वै वीरवर्मणः ।
सर्वसैन्ययुतः कृष्णः पालयन्नन्वगान्मुदा ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—महाराज जनमेजय ! तदनन्तर वे दोनों घोड़े घूमते हुए राजा वीरवर्माके नगरमें जा पहुँचे । भगवान् श्रीकृष्ण भी सारी सेनाके साथ उनकी रक्षा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक उनके पीछे-पीछे वहाँ गये ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धर्मश्चतुष्पदो यत्र तेन भूपतिना कृतः।
जामाता यस्य शमनो राष्ट्रे तिष्ठति मूर्तिमान्॥ २॥

उस नगरमें राजाने धर्मको चतुष्पद (चौपाया) बना दिया था अर्थात् वहाँ धर्मके सत्य, दया, शौच एवं इन्द्रिय-संयम—इन चारों चरणोंका पूर्णरूपसे पालन होता था। साक्षात् यमराज राजा वीरवर्माके जामाता थे। वे मूर्तिमान् होकर उनके राज्यमें निवास करते थे॥ २॥

सारस्वतपुरे रम्ये निवसन्ति हि धार्मिकाः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां पारगा यत्र मानवाः॥ ३॥
स्वप्नेऽपि कुत्सिते मार्गे न गच्छन्ति कदाचन।

रमणीय सारस्वतपुरमें उनकी राजधानी थी, जहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके पारगामी धार्मिक मनुष्य निवास करते थे। वे कभी स्वप्नमें भी कुमार्गपर पैर नहीं रखते थे॥

अर्जुनं कृष्णसहितं रक्षन्तं वरवाजिनौ॥ ४॥
शुश्राव वीरवर्मासौ राष्ट्रे बहुलसेवके।
आदिदेश ततो राजा ग्रहणार्थं महाबलान्॥ ५॥

जब राजा वीरवर्माने सुना कि बहुसंख्यक राजसेवकोंसे युक्त मेरे राज्यमें श्रीकृष्णके साथ-साथ अर्जुन दो यज्ञिय अश्वों-की रक्षा करते हुए आ पहुँचे हैं, तब उन्होंने अपने महाबली सेवकोंको उन घोड़ोंको पकड़ लेनेके लिये आज्ञा देते हुए कहा—॥ ४-५॥

तुरगौ मामके राष्ट्रे पाण्डवस्य महात्मनः।
व्यचरेतां चिरं रम्ये पौरुषेणाहरन्तु तौ॥ ६॥

'वीरो! मेरे मनोहर राज्यमें महामनस्वी अर्जुनके अश्वमेध-यज्ञसम्बन्धी दो घोड़े चिरकालसे विचर रहे हैं, उन्हें तुमलोग बलपूर्वक पकड़ लो'॥ ६॥

नृपस्य वचनं श्रुत्वा निर्गतं विविधं बलम्।
महावीराः पञ्चधीरा ग्रहणार्थं विनिर्गताः॥ ७॥
सुभालः सुरभो लीलः कुवलः सरलश्च ते।
पुत्रा दिव्यरथारूढा धन्विनो वीरवर्मणः॥ ८॥

राजाका आदेशयुक्त वचन सुनकर नाना प्रकारकी सेना नगरसे बाहर निकलने लगी। उस सेनाके साथ पाँच महान् रणधीर वीर घोड़ोंको पकड़नेके लिये चले। उनके नाम थे—सुभाल, सुरभ, लील, कुवल और सरल। वे पाँचों राजा वीरवर्माके पुत्र थे और धनुष धारण किये हुए दिव्य रथोंपर सवार थे॥ ७-८॥

ते प्राप्ताः पाण्डवबलं तृणीकृत्य रणस्थितान्।
गृहीत्वा वाजिनौ रोषात् प्रयाता भूपसंनिधौ॥ ९॥

वे आगे बढ़कर अर्जुनकी सेनाके संनिकट जा पहुँचे। वहाँ रणक्षेत्रमें स्थित शत्रुपक्षी वीरोंको तृणके समान समझकर उन्होंने रोषपूर्वक उन दोनों घोड़ोंको पकड़ लिया और फिर वे राजा वीरवर्माके पास चल दिये॥ ९॥

यावद् गच्छन्ति ते वीरा नृपं प्रति महाबलाः।
बभ्रुवाहेन राजेन्द्र आहूतास्तावदेव हि॥ १०॥

राजेन्द्र जनमेजय! जब वे महाबली वीर राजाके पास जाने लगे, तबतक बभ्रुवाहनने उन्हें ललकारा॥ १०॥

शङ्खनादेन वीरांस्तान् कृत्वा बधिरकर्णकान्।
पार्थपुत्रस्तदा रोषाद् व्यधमच्छत्रुवाहिनीम्॥ ११॥
बभ्रुवाहो महातेजाः शरैः कनकचित्रितैः।

उस समय महातेजस्वी अर्जुनकुमार बभ्रुवाहनने इतना भयंकर शङ्खनाद किया कि उसे सुनकर उन वीरोंके कान बहरे हो गये। तत्पश्चात् वह रोषमें भरकर स्वर्णजटित बाणोंसे शत्रु-सेनाका सर्वनाश करने लगा॥ ११½॥

ततो युद्धं समभवत् तुमुलं भूप दारुणम्॥ १२॥
केशाकेशि रणेऽतीव मुष्टामुष्टि नखानखि।
पदातिगणमेवाग्रे जग्मुर्वीरा मदोत्कटाः॥ १३॥

राजा जनमेजय! तदनन्तर रणभूमिमें अत्यन्त भयंकर तुमुल युद्ध होने लगा। उन मदोत्कट वीरोंने पहले पैदल सेना-पर ही आक्रमण किया। फिर तो वे परस्पर एक दूसरेके केश पकड़कर, परस्पर मुक्कोंसे प्रहार करके तथा एक-दूसरेको नखोंसे बकोटकर युद्ध करने लगे॥ १२-१३॥

रथा गजैः संगतास्ते गजाः कुत्रापि वाजिभिः।
विपरीतमिदं जातं रुद्रक्रीडनसंनिभम्॥ १४॥

कहीं रथी वीर हाथीसवारोंसे उलझ गये तो कहीं वे हाथी-सवार घुड़सवारोंसे जा भिड़े। इस प्रकार भगवान् रुद्रकी क्रीडास्थलीकी भाँति वहाँ मर्यादारहित युद्ध होने लगा॥ १४॥

बभ्रुवाहेन वीरेण हन्यमानं बलं महत्।
संचुकोच तथाभूतमग्नौ चर्महितं यथा॥ १५॥

जैसे अग्निमें डाला हुआ चमड़ा सिकुड़ जाता है, उसी प्रकार वीर बभ्रुवाहनद्वारा मारी जाती हुई वह विशाल सेना संकुचित हो गयी अर्थात् सिमटकर थोड़े स्थानमें आ गयी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संयमिन्याः पतिस्तावत् समागत्य नराधिपम्।
समुत्कृष्टं पार्थबलं घातयामास रोषितः ॥ १६ ॥

तबतक संयमनीपुरीके स्वामी यमराज राजा बभ्रुवाहनके सामने युद्धके लिये आ डटे और फिर वे क्रोधमें भरकर उत्कर्षको प्राप्त होती हुई अर्जुनकी सेनाका संहार करने लगे ॥

धर्मराजेन पार्थस्य पातितं विविधं बलम्।
हतप्रवीरमत्युग्रं श्वशुरार्थे नराधिप ॥ १७ ॥

नरेश्वर जनमेजय ! धर्मराजने अपने श्वशुरके निमित्त अर्जुनकी अनेक प्रकारकी सेनाको मार गिराया । उस समय उस अत्यन्त भयंकर सेनाके बहुत-से वीर मार डाले गये ॥

पार्थो वीक्ष्य हतं सैन्यं जामात्रा वीरवर्मणः।
उवाच केशवं देवं विस्मयन्निव भारत ॥ १८ ॥

भरतवंशी जनमेजय ! तदनन्तर जब अर्जुनने देखा कि वीरवर्माके जामाताद्वारा मेरी बहुत-सी सेना मार डाली गयी, तब वे आश्चर्यचकित-से होकर भगवान् केशवसे पूछने लगे—॥

कोऽसौ देवो हृषीकेश नररूपेण मे बलम्।
तीक्ष्णैः शरैः पातयते समक्षं तव माधव ॥ १९ ॥

'हृषीकेश ! माधव ! यह कौन-सा देवता है, जो मनुष्य-रूप धारण करके आपकी आँखोंके सामने अपने तीखों बाणोंसे मेरी सेनाका संहार कर रहा है ?' ॥ १९ ॥

वासुदेव उवाच

यमं विद्धि महाबाहो पुरतः स्थितमाहवे।
प्रार्थितं चैव कन्यार्थे स्वपुरे वीरवर्मणा ॥ २० ॥

वासुदेवने उत्तर दिया—महाबाहो ! तुम्हें विदित होना चाहिये कि युद्धस्थलमें जो ये सामने खड़े हैं साक्षात् यमराज हैं । राजा वीरवर्माने अपनी कन्याका वरण करनेके लिये इन्हें अपने नगरमें प्रार्थना करके बुलाया था ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच

किमेतत् कृष्ण कथितं यमो नृपसुतापतिः।
कथमेतत् संगतं हि तत् सर्वं वद केशव ॥ २१ ॥

तब अर्जुनने पूछा—श्रीकृष्ण ! आपने यह क्या कहा कि यमराज राजा वीरवर्माकी कन्याके पति हैं ? केशव ! यह घटना कैसे घटित हुई थी, यह सारा वृत्तान्त मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥ २१ ॥

कृष्ण उवाच

मालिनी नाम कन्यास्य संजाता वीरवर्मणः।
मानुषं न वरं पार्थ वृणुते भुवि मानिनी ॥ २२ ॥

श्रीकृष्ण कहने लगे—पार्थ ! इस राजा वीरवर्माके एक मालिनी नामकी कन्या उत्पन्न हुई थी । वह मानिनी मालिनी भूतलपर किसी मनुष्यको पतिरूपमें वरण करना नहीं चाहती थी ॥ २२ ॥

यदा पृष्टा पुरा गेहे पित्रा सा मालिनी शुभा।
कस्ते वरो मया कार्यो मानुषं नेच्छसे यदि ॥ २३ ॥

पहले घरपर जब उसके पिताने उस सुन्दरी मालिनीसे पूछा—'बेटी ! यदि तू मनुष्यको अपना पति बनाना नहीं चाहती तो बता, मैं किसके साथ तेरा विवाह कर दूँ' ॥ २३ ॥

मालिन्युवाच

धर्मराजाय मां तात देहि त्वं नापरो वरः।
अन्ये मृता नरा यान्ति यमस्य सदनं प्रति ॥ २४ ॥

मालिनीने कहा—पिताजी ! आप मुझे धर्मराजके हाथमें समर्पण कर दीजिये । इनके अतिरिक्त दूसरा कोई मेरा पति नहीं हो सकता; क्योंकि दूसरे मानव तो मृत्युके पश्चात् इन यमराजके ही भवनमें जाते हैं ॥ २४ ॥

धर्मराजशरीरं हि प्राप्याहं कीर्तिमाप्नुयाम्।
कृष्णप्राप्ताञ्जनान् यास्ये स्वगुणैः पतितोषकैः ॥ २५ ॥

इन धर्मराजके शरीरको पतिरूपमें पाकर मैं उत्तम कीर्तिकी भागिनी हो जाऊँगी और पतिदेवको संतुष्ट करनेवाले अपने गुणोंके प्रभावसे श्रीकृष्णको प्राप्त हुए लोगोंकी श्रेणीमें स्थान प्राप्त कर लूँगी ॥ २५ ॥

नरस्य पाणिग्रहणं प्रथमं क्रियते मया।
पश्चाद् वह्नौ शरीरं मे यदि स्पृष्टं भविष्यति ॥ २६ ॥
द्वितीयस्य जनस्याहं नाप्नुयां संगतिं यथा।
तथा तात विधातव्यो धर्मराजो हि मे वरः ॥ २७ ॥

पिताजी ! यदि मैं पहले मनुष्यके साथ विवाह कर लूँ तो मृत्युके पश्चात् मुझे भी चिताग्निमें पड़ना पड़ेगा । उस समय अग्निदेव मेरे शरीरका स्पर्श कर लेंगे; अतः तात ! जिस प्रकार पतिदेवके अतिरिक्त किसी अन्य पुरुषके साथ मेरा सम्पर्क न हो सके, वैसा ही प्रयत्न आपको करना चाहिये । इसलिये धर्मराज ही मेरे योग्य वर हैं ॥ २६-२७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या नारी पुरुषं प्राप्य पितृदत्तं भुवि स्थिता।
वञ्चयित्वा निजं कान्तमपरं याति मोहिता ॥ २८ ॥
तां तु वैवस्वतो राजा नरके पातयत्यसौ।
तमेवादौ वरं कृत्वा निदेशे स्थीयते मया ॥ २९ ॥

भूतलपर उत्पन्न हुई जो स्त्री पिताद्वारा दिये गये पुरुषको पतिरूपमें पाकर पीछे मोहवश अपने उस पतिको धोखा देकर पर-पुरुषके साथ सम्बन्ध कर लेती है, उस पापिनीको ये सूर्य-पुत्र यमराज नरकमें ढकेल देते हैं; इसीलिये मैं पहले ही इन्हें अपना पति बनाकर इनकी आज्ञामें रहना चाहती हूँ ॥ २८-२९ ॥

तत्र मां धर्मराजोऽयं पालयिष्यति पापतः।
सुगुप्तं सर्वदा तात तव पुण्यं भविष्यति ॥ ३० ॥

पिताजी ! वहाँ (यमलोकमें) ये धर्मराज पापोंसे मेरी रक्षा करते रहेंगे, जिससे आपका (कन्यादानका) पुण्य सर्वदा सुरक्षित रहेगा ॥ ३० ॥

प्राकृताय सुता दत्ता भवेत् पुण्यप्रदायिनी।
किं नु धर्माय मूर्ताय दत्ताहं तु शिवप्रदा ॥ ३१ ॥

जब साधारण जनको दान की हुई कन्या पुण्य प्रदान करनेवाली होती है, तब यदि आप मुझे साक्षात् मूर्तिधारी धर्मराजको दे देंगे, तब मैं आपके लिये परम कल्याणकारिणी होऊँगी; इसके लिये तो कहना ही क्या है ? ॥ ३१ ॥

एवंविधं मया तात कर्तव्यं हृदि चिन्तितम्।
नानाविधानि कार्याणि धर्मगुप्तानि यानि मे।
तदा मनोरथो रम्यो भविष्यति हि मामकः ॥ ३२ ॥

पिताजी ! मैंने अपने हृदयमें ऐसा ही कर्तव्य सोच रखा है। ऐसा करनेसे मेरे जो नाना प्रकारके कार्य हैं, वे सभी धर्मराजद्वारा सुरक्षित रहेंगे; अतः धर्मराजको पतिरूपमें पा लेनेपर मेरे सभी सुन्दर मनोरथ पूर्ण हो जायँगे ॥ ३२ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि वीरवर्मयुद्धवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें वीरवर्माके युद्धका वर्णन नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

वररूपमें यमराजकी प्राप्तिके लिये राजा वीरवर्मा और मालिनीका यमराजकी आराधना करना, नारदजीका यमलोकमें जाकर यमराजसे मालिनीका वृत्तान्त कहना, यमराजका विवाह-तिथिको निश्चय करके नारदजीको वीरवर्माके पास भेजना और बारातमें चलनेके विषयमें इनका राजयक्ष्माके साथ संवाद तथा यमराजका नाना प्रकारके रोगोंकी उत्पत्तिका कारण बताते हुए उनसे छूटनेके उपायका निरूपण करना

जैमिनिरुवाच

एवंविधं सुतावाक्यं वीरवर्मा निशम्य तत्।
यमसूक्तैर्दिवारात्रं स यमं स्तौति नित्यशः ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! अपनी पुत्रीकी ऐसी बात सुनकर राजा वीरवर्मा दिन-रात निरन्तर यमसूक्तोंद्वारा यमराजकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥

मालिनी विधिवद् देवसमाराधनतत्परा।
बभूव यौवनं प्राप्य ध्यानभावं न सा जहौ ॥ २ ॥

उधर मालिनी भी विधिपूर्वक यमदेवकी आराधनामें तत्पर हो गयी। यहाँतक कि युवावस्था आ जानेपर भी मालिनीने यमराजका ध्यान करना नहीं छोड़ा ॥ २ ॥

नारदेन तदा ज्ञातं चिन्तितं नृपतेः सुता।
ईदृशं कुरुते भावं नैनां वेत्ति यमः स्वयम् ॥ ३ ॥

जब नारदजीको यह बात मालूम हुई, तब वे विचार करने लगे—'अहो ! यह राजकुमारी यमराजके प्रति ऐसा भक्तिभाव कर रही है, परंतु स्वयं यमराज इसे जानते ही नहीं ॥ ३ ॥

तं गत्वा कथयिष्यामि भावमस्याः सुशोभनम्।
धर्मकार्यं प्रकुर्वाणा यमप्रीत्यै दिने दिने ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हृदि स्थितं मनुष्याणां विन्दत्येव सुचेष्टितम्।
समवर्ती कथं मन्दो मालिन्याः फलदूषकः॥ ५ ॥

'अतः अब मैं उनके पास चलकर उनसे मालिनीके अत्यन्त सुन्दर भक्तिभावका वर्णन करूँगा। यमराज तो सबके साथ समान व्यवहार करनेमें प्रसिद्ध हैं। वे मनुष्योंके हृदयोंमें उठे हुए अत्यन्त गुप्त विचारोंको भी जान लेते हैं और मालिनी प्रतिदिन उनकी प्रसन्नताके लिये धर्मकार्यका अनुष्ठान करती रहती है, फिर भी न जाने क्यों वे उसे दर्शन देनेमें शिथिलता दिखाकर उसके कर्मफलको दूषित कर रहे हैं?' ॥ ४-५ ॥

जैमिनिरुवाच

ततो जगाम देवर्षिर्यमस्य सदनं प्रति।
न्यवेदयत् प्रियां तस्मै मालिनीं राजकन्यकाम्॥ ६ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर देवर्षि नारद यमराजके भवनकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने यमराजसे उनकी प्रिया राजकुमारी मालिनीका वृत्तान्त निवेदन किया॥ ६ ॥

धर्मराज न जानासि मालिनी त्वामनुव्रता।
सत्यव्रता धर्मरता पुण्यसर्वस्वदायिनी॥ ७ ॥

वे बोले—'धर्मराज! आप नहीं जानते? राजकुमारी मालिनी आपका ही अनुवर्तन करनेवाली, सत्यव्रतमें तत्पर तथा धर्मपरायणा है। वह आपके लिये अपना समस्त पुण्य प्रदान करती रहती है॥ ७ ॥

त्वामेव प्रत्यहं वेत्ति तां त्वं वरय मा चिरम्।
पराशां सफलां सन्तः कुर्वन्त्येव हि नेतरे॥ ८ ॥

'प्रतिदिन आपका ही ध्यान करती है; अतः आप शीघ्र ही उसका (पत्नीरूपमें) वरण कीजिये; क्योंकि सत्पुरुष ही परायी आशाको सफल करते हैं, दुर्जन नहीं॥ ८ ॥

मनुष्यवेषमास्थाय स्वभृत्यैः सहितो व्रज।
सारस्वते पुरे रम्ये पालिते वीरवर्मणा॥ ९ ॥
चतुष्पादो यत्र वृषो गतातङ्काश्च मानवाः।
पुरी च सा त्वया धन्या भविष्यति मतिर्मम॥ १० ॥

'इसलिये अब आप मनुष्यका वेष धारण करके अपने सेवकोंके साथ राजा वीरवर्माद्वारा सुरक्षित उस रमणीय सारस्वतपुरमें चलिये, जहाँ धर्म अपने चारों चरणोंसे संयुक्त होकर विराजमान है और जहाँके निवासियोंके मनमें किसी प्रकारका भय नहीं है। आपके पहुँच जानेसे वह नगरी और भी धन्य हो जायगी, ऐसा मेरा विश्वास है'॥ ९-१० ॥

श्रीवासुदेव उवाच

नारदं प्रेरयामास पुरे सारस्वते यमः।
वैशाखे मासि शुक्ले वै पक्षे तां वरयाम्यहम्॥ ११ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—पार्थ! तब यमराजने नारदजीको यह संदेश देकर सारस्वतपुरको भेजा कि आगामी वैशाख मासके शुक्लपक्षमें मैं मालिनीका वरण करूँगा॥ ११॥

इत्युक्तो नारदस्तेन प्रययौ वीरवर्मकम्।
कथयामास वृत्तान्तं यमेनोक्तं सुमङ्गलम्॥ १२ ॥

यमराजके यों कहनेपर नारदजी वीरवर्माके पास गये और वहाँ उन्होंने राजासे यमराजके कहे हुए परम माङ्गलिक वृत्तान्तका वर्णन किया॥ १२ ॥

राजा कन्याविवाहं तु कर्तुकामो व्यवस्थितः।
यमोऽपि नायकानां तु शतमष्टोत्तरं मुदा॥ १३ ॥
आदिदेश महाकायान् महाबलपराक्रमान्।
महावीरं निजं चैव तेषां मध्ये पुरस्कृतम्॥ १४ ॥
क्षयं प्रधानं रोगाणां नायकं वाक्यमब्रवीत्।
शेषं हि ब्रह्महत्यायाः स्वरधातुविनाशकम्॥ १५ ॥

नारदजीकी बात सुनकर राजा वीरवर्मा अपनी पुत्रीका विवाह करनेके लिये उद्यत हो उसकी व्यवस्थामें लग गये। उधर यमराजने भी अपने एक सौ आठ नायकोंको प्रसन्नतापूर्वक बारातमें चलनेका आदेश दिया। वे सभी नायक विशालकाय तथा महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। उनमें जो सबसे प्रतिष्ठित महान् वीर था, वह ब्रह्महत्याका शेषरूप, स्वर और धातुका विनाश करनेवाला तथा रोगोंमें प्रधान क्षय रोग था, अपने उस अन्तरङ्ग नायकसे यमराजने यों कहा॥ १३—१५॥

यम उवाच

यक्ष्मन् विवाहे रम्ये मे स्वभृत्यैः परिवारितः।
आमन्त्रितः समायाहि भुवि चित्रपुरं प्रति॥ १६ ॥

यमराज बोले—यक्ष्मन्! मैं तुम्हें आमन्त्रित कर रहा हूँ। तुम मेरे इस शुभ विवाहके अवसरपर अपने सेवकोंके साथ भूतलके विचित्र नगर सारस्वतपुरको चलो॥ १६ ॥

यक्ष्मोवाच

कथं समागमो नाथ तस्मिन् राष्ट्रे भविष्यति।
विप्रप्रियाश्च ते लोका राजापि द्विजसेवकः॥ १७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यक्ष्माने कहा—नाथ ! उस राज्यमें मेरा गमन कैसे सम्भव हो सकता है, क्योंकि वहाँके निवासी ब्राह्मणोंके प्रेमी हैं और वहाँका राजा भी द्विजोंकी शुश्रूषा करनेवाला है ॥ १७॥

विप्राणां पठतां चोग्रो ध्वनिर्धूमश्च होमजः ।
मन्नेत्रश्रोत्रयोर्दुःखं करिष्यति न संशयः ॥ १८ ॥

उस देशके ब्राह्मण वेदपाठी हैं, उनकी उग्र वेदध्वनि तथा हवनकुण्डसे उठा हुआ धूम निस्संदेह मेरे कानों तथा नेत्रोंके लिये कष्टकर होगा ॥ १८ ॥

प्रमेहं पुत्रकं सूक्ष्मं घृताक्षं मूत्रनाशकम् ।
बहुकालेन जन्तूनां मद्गुणैः सम्मितं भुवि ॥ १९ ॥

मेरा पुत्र प्रमेह जो सूक्ष्म शरीरवाला है, जिसकी आँखें गायके घीके समान पीतवर्णकी हैं; जो भूतलपर चिरकालसे प्राणियोंके मूत्रका विनाशक है और गुणमें मेरे ही समान है, उसे मैं वहाँ कहाँ रख सकूँगा ? ॥ १९ ॥

विषूचिकायास्त्वधिको महिमा केन लभ्यते ।
क्षणेन मानुषं हन्ति दासी ते रविनन्दन ॥ २० ॥

रविनन्दन ! आपकी दासी जो विषूचिका (हैजा) है, उससे बढ़कर महिमा किसे प्राप्त हो सकती है ? वह क्षणमात्रमें ही मनुष्योंके प्राण ले लेती है, वह उस नगरमें कैसे रह सकेगी ? ॥ २० ॥

भ्रातुः स्थानं न पश्यामि पाण्डोरमिततेजसः ।
भ्रातुर्भार्या विशालाक्षी शोफा हर्त्री परं जनम् ॥ २१ ॥
तया सह सुतस्तेन पाण्डुना स जलोदरः ।
जनितः स्वगुणैस्तुल्यस्तं कुत्र विनिवेशये ॥ २२ ॥

मेरा अमिततेजस्वी भाई जो पाण्डुरोग है, उसके लिये तो मुझे सारस्वतपुरमें कोई स्थान ही नहीं दीख रहा है । भाई पाण्डुकी विशाललोचना भार्या शोफा (सूजन) है, जो बलिष्ठ लोगोंके प्राणोंका अपहरण करनेवाली है, वह वहाँ कहाँ रहेगी ? तथा शोफाके साथ समागम करके उस पाण्डुने जिस जलोदर नामक पुत्रको उत्पन्न किया है, वह गुणोंमें अपने पिताके ही समान है, उसे मैं उस नगरमें कहाँ ठहराऊँगा ? २१-२२

राजा धर्मपरो नित्यं शुचिश्चैव महाजनः ।
यत्र जातो भानुपुत्र तत्राहं किं शरीरवान् ॥ २३ ॥

सूर्यपुत्र ! भला, जिस देशका राजा सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाला हो और जहाँका महान् जनसमुदाय नित्य पवित्र कार्य करनेका अभ्यासी हो, वहाँ मैं मूर्तिमान् होकर कैसे रह सकता हूँ ? ॥ २३ ॥

कोऽहं शोच्यतरो नाथ व्रणानां पुरतः स्थितः ।
त्वया सुमानितानां हि परमाणुनिभः प्रभो ॥ २४ ॥

नाथ ! आपद्वारा सम्मानित जो ये व्रण (फोड़े) हैं, इनके सामने पहुँचनेपर क्या मेरी शोचनीय दशा नहीं हो जायगी ? प्रभो ! उस समय तो मैं परमाणुके तुल्य ही दीख पड़ूँगा ॥ २४ ॥

एतेषां परमं तेजो भूपतीन् हन्ति पौरुषात् ।
गुरुस्त्रीसंगमरतान् विप्रघ्नाञ्छिशुघातकान् ॥ २५ ॥

इन व्रणोंका उत्कृष्ट तेज अपने पुरुषार्थसे गुरुपत्नीगामी, विप्रहत्यारे तथा शिशुघाती भूपतियोंका संहार कर डालता है ॥ २५ ॥

व्रणस्य बहुरूपाणि शतमष्टोत्तरं विभो ।
विचर्चिका प्रिया यस्य पुत्रश्चास्य भगन्दरः ॥ २६ ॥
गुरुस्त्रीगामिनां शिश्नमूले किल भगो भवेत् ।

विभो ! व्रणके बहुत-से भेद हैं, जिनमें एक सौ आठ प्रधान हैं । उस व्रणकी पत्नी विचर्चिका (खाज) है और भगन्दर उसका पुत्र है । यह भगन्दर गुरुपत्नीके साथ समागम करनेवाले पुरुषोंकी शिश्न-इन्द्रियके मूल स्थानमें होता है ॥ २६½ ॥

गुरूणां स्वप्रशास्तॄणां छायां क्वापि न मानवाः ॥ २७ ॥
स्पृशन्ति धर्मनिरता वीरवर्मापि तादृशः ।
एतस्य स्फोटराजस्य निवासस्तत्र नेष्यते ॥ २८ ॥

उस देशके निवासी मनुष्य धर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं । वे कभी अपनेको आज्ञा देनेवाले गुरुजनोंकी छायाका भी स्पर्श नहीं करते और उनका राजा वीरवर्मा भी वैसा ही धर्मनिष्ठ है । ऐसी दशामें वहाँ इन स्फोटराजका निवास कदापि वाञ्छनीय नहीं है ॥ २७-२८ ॥

त्रयोदशविधश्चायं ज्वरराट् सांनिपातिकः ।
गुरुस्तु शम्भुजनितः कुतः स्थास्यति तद् वद ॥ २९ ॥

अच्छा, यह बतलाइये कि ये जो श्रेष्ठ ज्वरराज सन्निपात हैं, जिन्हें भगवान् शंकरने उत्पन्न किया है तथा जिनके तेरह भेद हैं, ये उस नगरमें कहाँ ठहरेंगे ? ॥ २९ ॥

अतिसारश्च वीरोऽसौ नायकस्ते महाबलः ।
प्रिया संग्रहणी यस्य पुत्रो ग्लानश्च भासुरः ॥ ३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरोचकः क्रोधनश्च पुत्रः परमपातकः।
एतैर्वृतो निवासं क्व प्राप्स्यते नाथ तद् वद ॥ ३१ ॥

नाथ! यह तो बताइये कि आपका जो यह महाबली वीर नायक अतिसार है, जिसकी प्रियतमा पत्नी संग्रहणी है और प्रकाशमान पुत्र ध्मान है तथा दो अन्य महापातकी पुत्र अरोचक और क्रोधन हैं, इन सबके साथ वह सारस्वतपुरमें कहाँ निवास पा सकेगा ॥ ३०-३१ ॥

शतानि त्रीणि शूलानां तानि यानि महात्मनाम्।
गमिष्यन्ति लयं तत्र स्थानहीनानि मारिष ॥ ३२ ॥

आर्य! ये जो तीन सौ महामनस्वी शूल रोग हैं, ये सब-के-सब उस नगरमें स्थान न मिलनेके कारण नष्ट ही हो जायँगे ॥ ३२ ॥

हिक्काश्वासादयश्चैते कासकुष्ठा महाबलाः।
उपरिस्था वायुभूता भ्रमितुं न क्षमाः पुरे ॥ ३३ ॥

ये जो हिक्का (हिचकी), श्वास (दमा), कास (खाँसी) और कोढ़ आदि महान् भयंकर रोग हैं, वायु ही जिनका स्वरूप है और शरीरमें वायुके ऊपरकी ओर उठनेसे ही जिनकी उत्पत्ति होती है, ये तो उस सारस्वतपुरमें भ्रमण भी नहीं कर सकेंगे ॥ ३३ ॥

धनुर्वातादयो वाताः कर्णशूलोऽपि भासुरः।
नेत्ररोगा महाकाया मुखरोगाश्च पातकाः ॥ ३४ ॥
वल्मीकं गण्डमाला च तथापस्मार एव च।
बालुको डमरू रौद्रो विस्तीर्णा च शिरोव्यथा ॥ ३५ ॥
एते मुख्यतमा रोगास्तथान्ये बहवो यम।
त्वयाऽऽज्ञप्ता न गच्छन्ति पुरेऽकस्मान्महीपतेः ॥ ३६ ॥

यमदेव! शरीरको धनुषकी तरह टेढ़ा कर देनेवाले धनुषटंकार आदि वातरोग, चमक-चमककर पीडा देनेवाला कर्णशूल, अनेक प्रकारके आकारवाले नेत्ररोग, पापस्वरूप मुखरोग, शरीरमें छिद्र कर देनेवाला वल्मीक, गण्डमाला, मृगी, बालुक, भयंकर डमरू रोग, विस्तृत सिरदर्द (आधा-सीसी आदि)—ये जो मुख्य-मुख्य रोग हैं तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी जो बहुत-सी भयंकर व्याधियाँ हैं, वे सभी आपके आज्ञा देनेपर राजा वीरवर्माके नगरमें यकायक जानेके लिये उद्यत नहीं होंगे ॥ ३४–३६ ॥

यम उवाच

भवन्तो विविधाकारा महारोगा महाबलाः।
स्वरूपेण नृपं यान्तु दिव्यालंकारमण्डिताः ॥ ३७ ॥

तब यमराजने कहा—यक्ष्मन्! तुम्हारे-जैसे जितने भी नाना प्रकारके आकार-प्रकारवाले महाबली भयंकर रोग हैं, वे सब-के-सब दिव्यालंकारोंसे सुसज्जित हो अपना-अपना रूप धारण करके राजा वीरवर्माके पास चलें ॥ ३७ ॥

यथा मम पुरे वासः क्रियते वचनं तथा।
सर्वैरपि नृपस्यास्य कर्तव्यं वीरवर्मणः ॥ ३८ ॥

तथा जैसे यहाँ मेरे नगरमें रहकर तुमलोग मेरी आज्ञाका पालन करते हो, उसी तरह वहाँ चलकर तुम सब लोगोंको राजा वीरवर्माकी भी आज्ञा माननी चाहिये ॥ ३८ ॥

ये जीवाः पापसंयुक्तास्ते पश्यन्तु निपातनान्।
रोगान् भयानकान् भूमौ शुभान् सुकृतकारिणः ॥ ३९ ॥

भूतलपर जो पापात्मा जीव हैं, वे ही इन संहारकारी रोगोंको भयानक रूपमें देखेंगे; परंतु जो पुण्यात्मा हैं, उन्हें इनका दर्शन सौम्यरूपमें होगा ॥ ३९ ॥

मां च पश्यन्ति धर्मिष्ठा धर्मरूपं न चेतरे।
कालानलशरीरं हि वीक्षन्ते पापकारिणः ॥ ४० ॥

जैसे धर्मात्मा प्राणियोंको ही धर्मराजरूपमें मेरा दर्शन प्राप्त होता है, इनके अतिरिक्त जो पाप कर्म करनेवाले हैं, उन्हें वह रूप दृष्टिगोचर नहीं होता। उन्हें तो मेरा कालाग्निके समान दारुण रूप ही दीख पड़ता है ॥ ४० ॥

ब्रह्महत्या कृता येन प्राणिना गतबुद्धिना।
न निस्तीर्णा ब्रह्महत्या गलत्कुष्ठ विशेषतः ॥ ४१ ॥
तस्य गात्रे रोगराज स्थानं ते नात्र संशयः।

रोगराज गलत्कुष्ठ! जिस मन्दबुद्धि प्राणीने ब्रह्महत्या कर डाली हो और प्रायश्चित्त आदि उपायोंद्वारा उस ब्रह्महत्याका निवारण न किया हो, विशेषतः उसके शरीरमें तुम्हारा स्थान होगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ४१½ ॥

त्वया ग्रस्तो जनः कुर्याद् यदि जाप्यं हि शाङ्करम् ॥ ४२ ॥
महारुद्रं सहोमं च दानं विप्राय यच्छति।
सुवर्णपुरुषं निष्कैश्चतुर्विंशतिभिः कृतम् ॥ ४३ ॥
ततः परं तस्य गात्रं त्यज्यतां सर्वदा त्वया।
कृतपुण्यस्य पुरतो भृत्यवद् वर्तनं तव ॥ ४४ ॥

यदि कहीं तुम्हारे द्वारा ग्रस्त होनेपर वह प्राणी भगवान् शंकरके महारुद्र (महामृत्युञ्जय) मन्त्रका जप करे और फिर विधिवत् हवन करके चौबीस निष्क सोनेका बना हुआ सुवर्ण-पुरुष ब्राह्मणको दान दे दे तो तुम सर्वदाके लिये उसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शरीरका त्याग कर देना । ऐसे पुण्यकर्ता मनुष्योंके सामने तो तुम्हें सेवककी भाँति व्यवहार करना चाहिये ॥ ४२–४४॥

क्षयी तु वित्तहीनश्च सोमवारे समाश्रयेत् ।
गौतमीं सागरस्थां चेत् स्नानार्थं मासमात्रकम्॥ ४५ ॥
स्नातमात्रं जनं यक्ष्मन् मा पीडय पतिष्यति ।

यदि राजयक्ष्माका रोगी धनहीन हो तो उसे चाहिये कि वह एक मासतक प्रत्येक सोमवारको स्नान करनेके लिये सागरगामिनी गौतमी (नर्मदा) की शरण ले । यक्ष्मन्! गौतमीमें स्नानमात्र करनेवाले उस प्राणीको तुम पुनः पीडित मत करना । यदि करोगे तो तुम्हारा पतन हो जायगा ॥ ४५½ ॥

इयं च ते प्रिया देवी पातनी तत्क्षणान्नृणाम् ॥ ४६ ॥
विषूचिका नरं येन पातकेन प्रगच्छति ।
देवतार्थे दीयमानं वित्तं हरति मन्दधीः ॥ ४७ ॥
ब्राह्मणान् भोजनस्थान् हि वियोजयति पातकी ।
अन्नमेकः स्वयं भुङ्क्ते वञ्चयित्वा सुतान् द्विजान्॥४८॥
तं प्रिया ते महाभाग बाधते सा विषूचिका ।
अन्नदं सुरसेवां हि कुर्वन्तं न तु पीडयेत् ॥ ४९ ॥

महाभाग ! यह तुम्हारी प्यारी पत्नी विषूचिका देवी, जो मनुष्योंको पकड़ते ही मार गिराती है, जिस पापसे युक्त मनुष्यके पास जा सकेगी, उसे सुनो—जो मन्दबुद्धि देवकार्यके लिये दिये जाते हुए धनका अपहरण कर लेता है, जो पापी भोजनके लिये बैठे हुए ब्राह्मणोंको वहाँसे उठा देता है, जो अपने पुत्रों तथा ब्राह्मणोंको भुलावेमें डालकर अकेले स्वयं ही उत्तम अन्न खा लेता है, ऐसे पापीको तुम्हारी प्रिया विषूचिका बाधा पहुँचा सकेगी; परंतु जो अन्नका दान देता हो अथवा देवताकी सेवा करता हो, उसे यह पीड़ित नहीं कर सकेगी ॥ ४६–४९ ॥

पितृगोत्रभवां नारीं कामयन्ति विमोहिताः ।
नराश्च नार्योऽपि तथा पुरुषेषु च संयुताः ॥ ५० ॥
ते पीड्यन्ते प्रमेहेण पुत्रकेण तव प्रभो ।
सुवर्णतस्कराश्चान्ये मूत्रकृच्छ्रेण सर्वदा ॥ ५१ ॥

प्रभो ! जो विषय-विमोहित पुरुष पिताके गोत्रमें उत्पन्न हुई स्त्रीके साथ कामोपभोग करते हैं, उसी तरह जो नारियाँ पितृकुलमें पैदा हुए पुरुषोंसे समागम करती हैं, ऐसे पापी प्राणियोंको तुम्हारा पुत्र प्रमेह कष्ट पहुँचायेगा । दूसरे जो सुवर्णकी चोरी करनेवाले पापी हैं, वे सर्वदा मूत्रकृच्छ्रसे व्यथित रहेंगे ॥ ५०-५१ ॥

सुवर्णसिकतां दत्त्वा सौवर्णं देवभूषणम् ।
पलप्रमाणं तुलितं प्रमेहान्मुच्यते जनः ॥ ५२॥

स्वर्ण-सिकता तथा पलभर तौले हुए सोनेका आभूषण देवताको प्रदान करके मनुष्य प्रमेहरोगसे छुटकारा पा जाता है ॥ ५२ ॥

सुवर्णकमलं दद्यात् कृत्वा पूर्णं पलेन तु ।
द्विजाय श्रोत्रियायात्र मूत्रकृच्छ्रात् प्रमुच्यते ॥ ५३ ॥

मूत्रकृच्छ्रका रोगी वेदवेत्ता ब्राह्मणको पूरे पलभर स्वर्णका कमल बनवाकर दान दे तो वह मूत्रकृच्छ्ररोगसे मुक्त हो जाता है ॥ ५३ ॥

लिङ्गपीडा शिवस्वं च ये हरन्ति विलोभतः ।
परप्रभां समालोक्य मुखं स्फुरितकारिणः ॥ ५४॥

जो विशेष लोभवश शिव-सम्पत्तिकी चोरी करते हैं तथा जो परायी उन्नतिको देखकर मुख विचकानेवाले हैं; उन्हें लिङ्ग-पीडाका रोग होता है ॥ ५४ ॥

कुम्भीपाकादिनरके पतन्ति हेमकारिणः ।
कुनखाश्च प्रजायन्ते मांसपिण्डोपमाः परम् ॥ ५५॥
शरीरं पाण्डुसंकाशं पाण्डुना स हि पीड्यते ।

जो सुवर्णकी चोरी करनेवाले हैं, वे कुम्भीपाक आदि भयंकर नरकोंमें गिरते हैं । नरकभोगके पश्चात् पुनर्जन्म लेनेपर वे कुनखी होते हैं । उनके वे नख मांसपिण्डके समान हो जाते हैं । शरीर पाण्डुरोगसे पीडित होनेके कारण पाण्डुके समान पीला पड़ जाता है ॥ ५५½ ॥

ददाति दानं विप्राय माहिषं शास्त्रसम्मतम् ॥ ५६॥
पिण्याकसर्षपोपेतं जपाकुसुमपूजितम् ।
तीर्थे रम्ये मुद्गलाख्ये वैष्णवं कुरुते जपम् ॥ ५७॥
त्रिपञ्चाशत् सहस्राणि यो नरस्तं प्रमुञ्चतु ।
पाण्डुनामा तव भ्राता न चेत् सोऽपि मरिष्यति॥ ५८॥

ऐसे रोगसे ग्रस्त हुआ जो मनुष्य शास्त्रविधिके अनुसार ब्राह्मणको जपाके पुष्पोंसे पूजा करके सरसोंकी खलीके साथ भैंसा दान करता है तथा मुद्गल नामक रमणीय तीर्थमें जाकर तिरपन हजार विष्णु-सम्बन्धी मन्त्रका जप करता है, तुम्हारे भाई पाण्डुको चाहिये कि वह ऐसे मनुष्यको छोड़ दे । यदि नहीं छोड़ेगा तो वह भी मर जायगा ॥५६–५८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अजां प्रयच्छति नरः श्रद्धया काञ्चनावृताम्।
विप्राय वेदविदुषे शोफो मुञ्चति तं नरम्॥ ५९॥
न स्थातव्यं त्वया तस्य गात्रे पुंसः कथंचन।

जो मनुष्य वेदज्ञ ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक सुवर्णके साथ बकरीका दान देता है, शोफ नामक रोग उसे छोड़कर दूर हट जाता है। तुम्हें भी ऐसे पुरुषके शरीरमें किसी प्रकार नहीं ठहरना चाहिये॥ ५९½॥

जलोदरो यातु जनं गर्भपातिनमादरात्॥ ६०॥
पश्चात् त्यजतु तं भूतं प्रपापुण्येन भूषितम्।

पाण्डुपुत्र जलोदर गर्भपात करानेवाले मनुष्यके शरीरमें आदरपूर्वक निवास करे। तत्पश्चात् जब वह पापी प्राणियोंके लिये प्याऊका प्रबन्ध करके उसके पुण्यसे विभूषित हो जाय, तब जलोदरको चाहिये कि उसका पीछा छोड़ दे॥ ६०½॥

शतमष्टोत्तरं घोरं व्रणानां मम मानिनाम्॥ ६१॥
तुलापुरुषदानेन समग्रं तत् प्रशाम्यति।

मेरे माननीय व्रणोंके जो एक सौ आठ भयंकर भेद हैं, वे सब-के-सब तुला-पुरुषके दानसे शान्त हो जाते हैं।६१½।

अर्धप्रसूतां सुरभिं यथोक्तां यः प्रयच्छति॥ ६२॥
तस्य गात्रे च तैः सर्वैर्व्रणैः स्थेयं न कर्हिचित्।

जो शास्त्रविधिके अनुसार आधी ब्यायी हुई गौका दान करता है, उसके शरीरमें उन सभी व्रणोंको कभी भी नहीं टिकना चाहिये॥ ६२½॥

विचर्चिका नरं दुष्टं रसतस्करिणं चिरम्॥ ६३॥
परिपीडयते तावद् यावद् दत्तं न काञ्चनम्।

जो रसकी चोरी करता है, ऐसे दुष्ट मनुष्यको विचर्चिका (खाज) चिरकालतक भयंकर पीडा देती रहती है और जबतक वह रोगी सुवर्णका दान नहीं कर देता, तबतक उसका पिण्ड नहीं छोड़ती॥ ६३½॥

भगन्दरो जनं त्यक्त्वा सौवर्णं कदलीफलम्॥ ६४॥
दातारं पलमात्रं हि ब्राह्मणाय प्रगच्छतु।

जो पलभर सोनेका केलेका फल बनवाकर ब्राह्मणको दान कर दे, भगन्दरको चाहिये कि वह ऐसे दानी व्यक्तिका त्याग करके तुरंत चल दे॥ ६४½॥

संनिपातो नरं चैव शिवप्रासादभञ्जकम्॥ ६५॥
समाश्रयति भूलोके याति विश्वासघातकम्।

भूलोकमें जो शिवजीके मन्दिरको तोड़नेवाला तथा विश्वास-घाती होता है, ऐसे मनुष्यके शरीरमें सन्निपात अपना डेरा जमा लेता है॥ ६५½॥

परापवादवक्तारमतीसारो व्रजत्वसौ॥ ६६॥
पूर्तं जीर्णप्रकर्त्तारं समाश्रयतु ते सखा।

जो परायी निन्दा करनेवाले हैं तथा जो कुएँ-बावड़ी आदिको नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं, तुम्हारा यह सखा अतीसार उस पुरुषके पास जाकर उसके शरीरका आश्रय लेकर निवास करे॥ ६६½॥

धर्मद्रव्यं ग्रहीतारं यातु संग्रहणी जनम्॥ ६७॥
मेषीप्रदानात् सा यातु अतिसारप्रिया सती।

जो धर्मादेकी सम्पत्तिको हड़प लेता है, ऐसे मनुष्यके पास संग्रहणीका जाना उचित है और जब वह रोगी मेषी (भेड़ी) का दान कर दे, तब अतीसारकी सती पत्नी संग्रहणी उसे छोड़कर चली जाय॥ ६७½॥

भुञ्जतो ब्राह्मणान् द्वेष्टि तमरोचक आव्रजेत्॥ ६८॥
भोजयेद् विविधान्नेन तं च जह्यादरोचकः।

जो भोजन करते हुए ब्राह्मणोंसे द्वेष करता है, उसके समीप अरोचकको पदार्पण करना चाहिये और जब वह रोगी नाना प्रकारके अन्न ब्राह्मणोंको भोजन करा दे, तब आरोचक-को उसका त्याग कर देना उचित है॥ ६८½॥

धिक्शब्दं सुहृदो यश्च प्रहारं कुरुते जनः॥ ६९॥
सम्पीडयन्ति ये लोकान् पथिभल्लैः प्रहस्य तु।
आशाभङ्गं विदधते यान्तु शूलगणाश्च तान्॥ ७०॥

जो मनुष्य अपने सुहृदोंपर धिक्-शब्दका प्रहार करता है। जो मार्गमें जानेवाले पथिकोंको हँसकर भालेसे पीड़ित करते हैं तथा किसीको आशा देकर पश्चात् उस आशाको पूर्ण नहीं करते, उन मनुष्योंके पास शूलोंका समुदाय जायगा॥

कारागृहनिबद्धान् नॄन् पञ्जरस्थांश्च पक्षिणः।
पथि चोरैर्हन्यमानान् मोचयन्ति महाभयात्॥ ७१॥
सदाशिवे तु ये भक्ता न तान्छूलशतत्रयम्।

जो कारागारमें बंद हुए मनुष्योंको, पिंजरेमें पड़े हुए पक्षियोंको तथा मार्गमें लुटेरोंद्वारा पीटे जाते हुए राहगीरोंको उस महान् भयसे छुड़ाते हैं तथा जो भगवान् सदाशिवके भक्त हैं, उनके समीप इन तीन सौ शूलोंमेंसे एक भी नहीं फटक सकता॥ ७१½॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिक्का प्रिया तु यात्वेनं सहते न परोदयम् ॥ ७२ ॥
लक्षहोमप्रकर्तारं मा व्रजेदनघं जनम् ।

जो पराये उत्कर्षको नहीं सह पाता, उसके पास यह मेरी प्यारी हिचकी पहुँचेगी; परंतु जो एक लाख मन्त्रोंसे हवन करके निष्पाप हो जायगा, उस मनुष्यके पास यह हिक्का नहीं जा सकेगी ॥ ७२½ ॥

निरीक्ष्य यक्षवित्तं च धनुर्वातः प्रयातु तम् ॥ ७३ ॥
माषमेरुं तैलवापीं प्रदातारं विमुञ्चतु ।

जिसके पास यक्षके समान धन हो अर्थात् जो धन संग्रह तो करता हो, परंतु उसे सत्कार्यमें व्यय करनेमें कृपणता करता हो, उसकी ऐसी सम्पत्तिको देखकर धनुर्वात नामक रोगको उसके समीप जाना चाहिये और जब वह रोगी मेरुपर्वतके समान उड़दकी ढेरी लगाकर तथा बावलीको तेलसे भरकर दान कर दे, तब उसे छोड़ देना उचित है ॥ ७३½ ॥

हरेः कथां न शृण्वन्ति ये न साधुजनस्य च ॥ ७४ ॥
तान् नरान् कर्णशूलोऽयं व्याप्नुयान्नेतरानृजून् ।
कपिलाधेनुदातॄंश्च शृण्वतो वैष्णवीं कथाम् ॥ ७५ ॥

जो न तो भगवान् श्रीहरिकी कथा ही सुनते हैं और न सत्पुरुषोंके हरिगुणगानसम्बन्धी प्रवचनको ही श्रवण करते हैं, उन मनुष्योंके शरीरमें इस कर्णशूलका व्याप्त हो जाना सर्वथा उचित है; परंतु इनके अतिरिक्त जो कोमल स्वभाववाले तथा कपिला गौका दान करनेवाले हैं और जो सदा विष्णुसम्बन्धी कथा श्रवण करते रहते हैं, ऐसे व्यक्तियोंके पास इसे भूलकर भी नहीं जाना चाहिये ॥ ७४-७५ ॥

परस्वे जायते दृष्टिर्नेत्ररुक् तं नरं व्रजेत् ।
हारिणं परदाराणामन्नं यानेन भुञ्जताम् ॥ ७६ ॥
सुवर्णकमलस्यात्र प्रदातारं विमुञ्चति ।

जिसकी लोभभरी दृष्टि सदा पराये धनपर लगी रहती है, जो परायी स्त्रियोंका अपहरण करनेवाला है तथा जो सवारीपर बैठकर अन्न भोजन करते हुए चलते हैं, ऐसे मनुष्योंके पास नेत्ररोग जायगा; परंतु जो नेत्ररोगी सोनेका कमल बनवाकर दान कर देगा, उसे यह रोग छोड़ देगा ॥ ७६½ ॥

शैलेशं सोमनाथं च काशीनाथं च वीक्षकम् ॥ ७७ ॥
यदि पश्यति संसारं विनाशयति तत्क्षणात् ।
किं तु नेत्ररुजां वृन्दं न दाहयति तादृशान् ॥ ७८ ॥

यदि वह नेत्ररोगी जगद्द्रष्टा भगवान् शैलेश (अमरनाथ), सोमनाथ और काशीपति विश्वनाथका दर्शन कर लेता है तो भगवान् शंकर तत्काल ही उसके आवागमनका विनाश कर देते हैं और वैसे मनुष्योंको यह नेत्ररोगोंका समुदाय भी कष्ट नहीं पहुँचाता ॥ ७७-७८ ॥

पितृहा चेतनाहीनो मातृहान्धश्च जायते ।
नरकान्तं प्रकुर्वीत प्रायश्चित्तैर्यथाविधि ॥ ७९ ॥

पिताकी हत्या करनेवाला चेतनाशून्य (पागल) और मातृहत्यारा अंधा होता है । ऐसे रोगियोंको चाहिये कि वे शास्त्रीय विधिके अनुसार प्रायश्चित्त करके इन नरकस्वरूप रोगोंका विनाश कर डालें ॥ ७९ ॥

वाणी यस्य न संजाता कदाचित् साधुवर्णने ।
परापवादिनी नित्यं मुखसंतापकारिणी ॥ ८० ॥
मुखरोगस्तमालोक्य सकुटुम्बः प्रहृष्यति ।

जिसकी वाणी कभी भी सत्पुरुषोंके गुण-वर्णनमें प्रवृत्त नहीं होती, उलटे परायी निन्दा करनेमें नित्य रस लेती रहती है, वह वाणी मुखको संताप देनेवाली होती है । ऐसे मनुष्यको देखकर परिवारसहित मुखरोग प्रसन्न होता है ॥ ८०½ ॥

यः स्तौति साधुसंयुक्तं शिवं भक्त्या सदा जनः ॥ ८१ ॥
ददाति वृषभं श्वेतं ब्राह्मणाय यथोचितम् ।
मुखरुक् तं जनं वीक्ष्य दूराद् दूरं पलायते ॥ ८२ ॥

जो मनुष्य सदा सत्सङ्गति करते हुए भक्तिपूर्वक भगवान् शिवकी स्तुति करता है और ब्राह्मणको यथोचितरूपसे श्वेत बैल दान करता है, ऐसे मनुष्यको देखकर मुखरोग दूर-से-दूर पलायन कर जाता है ॥ ८१-८२ ॥

त्वं रक्षेति धनं प्रोक्तः स्वयं लोभेन मोहितः ।
स्थापितं न ददात्यस्मै वित्तेशायोरुपातकी ॥ ८३ ॥
वल्मीकं तत्पदं प्राप्य स्थूलं जायेत रोपितम् ।

जो किसीके ऐसा कहनेपर कि 'आप मेरे धनकी रक्षा कर दीजिये' उस धनको अपने पास रख लेता है; परंतु पीछे स्वयं उस धनके लोभसे मोहित होकर वह रखा हुआ धन उस धनके मालिकको वापस नहीं देता अर्थात् धरोहरको हड़प लेता है, वह महापातकी कहलाता है । उसके पैरमें वल्मीक नामक स्थूल रोग उत्पन्न होता है ॥ ८३½ ॥

ब्राह्मणेभ्यो धनं भूरि प्रयच्छति जनस्तु यः ॥ ८४ ॥
तं न वल्मीकको याति पीडितुं हरिसेवकम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो मनुष्य ब्राह्मणोंको अधिक-से-अधिक धन दान देता है, ऐसे भगवान् श्रीहरिके भक्तको वह बल्मीक रोग पीड़ा नहीं पहुँचा सकता ॥ ८४½ ॥

परस्याननसंस्थं यो ग्रासं हरति मन्दधीः ॥ ८५ ॥
देवोपकरणान्येव गण्डमाला तमीहते ।
नानारत्नप्रदानेन गण्डमाला विलीयते ॥ ८६ ॥

जो मन्दबुद्धि मनुष्य दूसरेके मुखके ग्रासको छीन लेता है तथा देव-सामग्रियोंको हड़प जाता है, गण्डमालानामक रोग ऐसे मनुष्यकी प्रतीक्षा करता रहता है । यह गण्डमालारूपी व्याधि नाना प्रकारके रत्नोंका दान करनेसे विनष्ट हो जाती है ॥

गुरुपत्नीं गच्छतीह स कण्डूकुष्ठवान् भवेत् ।
कण्डूकुष्ठं प्रयात्येव शिवघण्टाप्रदानतः ॥ ८७ ॥

जो इस लोकमें गुरुपत्नीके साथ समागम करता है, उसे कण्डूकुष्ठ नामक रोग होता है । वह कण्डूकुष्ठ रोग शिवजीके लिये घण्टा प्रदान करनेसे दूर हो जाता है ॥ ८७ ॥

वदान्यं लाभसंतुष्टं परं वीक्ष्य विमूर्च्छति ।
तमपस्माररोगोऽयं भ्रामयन् परितिष्ठति ॥ ८८ ॥
कृष्णधेनुप्रदानेन हेमपुष्करतो व्रजेत् ।

जो मनुष्य किसी दूसरे यदृच्छालाभसे ही संतुष्ट रहनेवाले एवं उदार दानीको देखकर मूर्च्छित होता रहता है, ऐसे मनुष्यके शरीरमें यह अपस्मार (मृगी) नामक रोग प्रवेश करके उसे बारंबार घुमाता रहता है । यह अपस्मार काली गौ तथा स्वर्णके बने हुए कमलका दान करनेसे दूर हो जाता है ॥८८½॥

दम्भेनाचरते धर्मं गजचर्म प्रयातु तम् ॥ ८९ ॥
हंसतीर्थोदकस्नानकारकं न समाश्रयेत् ।

जो मनुष्य दम्भपूर्वक धर्मका आचरण करता है, उसे गजचर्म नामक रोग घेर लेगा । यह गजचर्म हंसतीर्थके जलमें स्नान करनेवाले मनुष्यके समीप नहीं फटक सकता ॥ ८९½ ॥

शिरोर्तिप्रमुखा रोगा यान्ति विश्वासघातकम् ॥ ९० ॥
सूर्यपूजादिकैः पुण्यैः प्रणश्यन्ति न संशयः ।

ये जो सिरदर्द आदि प्रधान रोग हैं, वे सब विश्वासघात करनेवालेको घेर लेते हैं और पुनः सूर्य-पूजन आदि पुण्य-कर्मोंके अनुष्ठानसे इनका नाश भी हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ९०½ ॥

धर्मसूत्रं परस्याथ ये छिन्दन्ति नराधमाः ॥ ९१ ॥
डमरुर्वालुकं गाढं मुञ्चतस्तान् न पादतः ।

जो नराधम दूसरेके धर्मसूत्र (यज्ञोपवीत आदि) को तोड़ डालते हैं, उनके पैरको डमरू और बालुक—ये दोनों रोग ऐसी दृढ़तासे पकड़ लेते हैं कि उनका छूटना कठिन हो जाता है ॥ ९१½ ॥

स्वर्णसूत्रस्य देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः प्रदानतः ॥ ९२ ॥
जायन्ते वालुकैर्मुक्ता बाधते तान् न वालुकम् ।

पुनः देवताओं तथा ब्राह्मणोंको स्वर्णसूत्र प्रदान करनेसे उन्हें उस बालुक रोगसे मुक्ति मिल जाती है और फिर वह रोग उन्हें बाधा नहीं पहुँचाता ॥ ९२½ ॥

कर्मणा मनसा वाचा परद्रोहं करोति यः ॥ ९३ ॥
स प्रेत्यापुत्रतां गच्छेन्नात्र कार्या विचारणा ।

जो मन, वचन और कर्मसे सदा परद्रोह ही करता रहता है, वह मरनेके पश्चात् पुनः जन्म लेनेपर पुत्रहीन होता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ९३½ ॥

शृणुयाद्धरिवंशं वै वारत्रितयमेव च ।
स मुक्तस्तेन पापेन पुत्रवान् धनवान् भवेत् ॥ ९४ ॥

यदि वह तीन बार हरिवंशपुराणका श्रवण करे तो उस पापसे मुक्त हो जाता है और उसे पुत्र तथा धनकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ९४ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं यमेन यत् प्रोक्तं शृण्वन्ति भुवि मानवाः ।
तेषां न रोगजा पीडा भविष्यति कदाचन ॥ ९५ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! इस प्रकार यमराजने जो यह (रोगोंके लक्षण तथा उनसे छूटनेके उपायका) वर्णन किया है, इसे भूतलपर जो मनुष्य सुनेंगे, उन्हें कभी भी रोग-जनित पीड़ा नहीं सहनी पड़ेगी ॥ ९५ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कर्मविपाकवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कर्मविपाकका वर्णननामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

यमराजका सारस्वतपुरमें आकर मालिनीका पाणिग्रहण करना और वीरवर्माको वर प्रदान करना, वीरवर्माका अर्जुनके साथ युद्धमें भयंकर पराक्रम प्रकट करके अर्जुन, श्रीकृष्ण और हनुमान्‌को पकड़ लेना, श्रीकृष्णद्वारा उसपर चरणप्रहार, वीरवर्माका आत्म-समर्पण और वीरवर्माकी सहायतासे अर्जुनका सेनासहित महानदके पार उतरना

जैमिनिरुवाच

ततो यमस्तु तैर्भृत्यैः कामरूपैः समन्वितः।
परिणेतुं नृपसुतां नारदो यत्र विद्यते॥ १॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर यमराज इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले अपने उन सेवकोंको साथ लेकर राजकुमारी मालिनीके साथ विवाह करनेके लिये उस स्थानको चले, जहाँ नारदजी पहलेसे ही विद्यमान थे॥ १॥

तत् प्राप्य रम्यं नगरं वीक्ष्य सारस्वतं यमः।
वरयामास धर्मिष्ठां मालिनीं तत्परां विभुः॥ २॥
होमशालास्थितां देवीं तर्पयन्तीं हुताशनम्।
अर्चयन्तीं नारदादीनृषीन् मृगयतीं पतिम्॥ ३॥

उस रमणीय सारस्वतपुरमें पहुँचकर यमराजने देखा कि धर्मिष्ठा मालिनी पतिकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करती हुई हवन शालामें बैठकर आहुतियोंद्वारा अग्निदेवको तृप्त कर रही है और नारद आदि ऋषियोंकी अर्चना कर रही है, तब सामर्थ्य-शाली यमराजने अपनेमें ही परायण रहनेवाली देवी मालिनी-का पत्नीरूपमें वरण कर लिया॥ २-३॥

तां प्राप्य कामिनीं धर्मो राजानं वाक्यमब्रवीत्।
प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि किं प्रयच्छामि तेऽनघ॥ ४॥
स्वल्पेन किल कालेन तव मृत्युर्विलोक्यते।

उस सुन्दरी मालिनीको पाकर धर्मराजने राजा वीरवर्मासे कहा—'निष्पाप नरेश! मैं आपपर प्रसन्न हूँ। आप कोई वर माँगिये। मैं आपको कौन-सी वस्तु प्रदान करूँ? मुझे तो ऐसा दीख रहा है कि थोड़े ही समयमें आपकी मृत्यु होने-वाली है'॥ ४½॥

वीरवर्मोवाच

जामातस्ते वरं नैव वाञ्छाम्यत्रात्मजीवदम्॥ ५॥
कन्यावित्तेन जीवन्ति ते नरा निरयं गताः।

वीरवर्माने कहा—जामातः! अब मैं आपसे अपने जीवनकी वृद्धि करनेवाला कोई वर माँगना नहीं चाहता; क्योंकि जो मनुष्य कन्याके धनसे जीवन-निर्वाह करते हैं, वे नरक-गामी होते हैं॥ ५½॥

धर्मराज उवाच

भवान् दाता प्रतिग्राही धर्मोऽहं तोषितस्त्वया॥ ६॥
आशीर्भिरभिनन्दामि दातारं कोऽत्र विस्मयः।

तब धर्मराजने कहा—राजन्! आप दाता हैं और मैं स्वयं धर्मराज आपका प्रतिग्रह ग्रहण करनेवाला हूँ। आपने मुझे संतुष्ट कर दिया है; अतः मैं आप-जैसे दाताका अपने आशीर्वचनोंद्वारा अभिनन्दन करना चाहता हूँ। इसमें आश्चर्य करनेकी क्या बात है?॥ ६½॥

नृप उवाच

यस्मिन् दिने मे मरणं भविष्यति हि भानुज॥ ७॥
त्वद्वरेण हृषीकेशं तस्मिन्नहनि कामये।

राजाने कहा—सूर्यनन्दन! अच्छा तो मेरी यही अभिलाषा है कि जिस दिन मेरी मृत्यु होनेवाली हो, उस दिन आपके वर-प्रभावसे मुझे भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त हो जाय॥ ७½॥

यम उवाच

तावत् त्वां न विमुञ्चामि यावत् कृष्णसमागमः॥ ८॥
त्वन्निमित्तं परबलं धारयिष्यामि मे वरः।

यमराज बोले—राजन्! मैं आपको यह वर देता हूँ कि जबतक आपका श्रीकृष्णके साथ समागम नहीं हो जायगा, तबतक आपको छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊँगा और आपके लिये आपके राज्यपर चढ़कर आयी हुई शत्रुसेनाको स्तम्भित किये रहूँगा॥ ८½॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वासुदेव उवाच

एष पार्थ यमो भाति तव सैन्यं प्रतापयन् ॥ ९ ॥
वीरवर्माणमायान्तं पश्य मद्दर्शनोत्सुकम् ।
वृतं महारथैर्वीरैः संनद्धो भव पाण्डव ॥ १० ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहने लगे—पार्थ ! ये वे ही यमराज हैं, जो तुम्हारी सेनाको संतप्त करते हुए प्रकाशित हो रहे हैं । पाण्डुनन्दन ! उधर देखोः मेरे दर्शनकी लालसासे राजा वीरवर्मा इधर ही आ रहा है । उसके साथ बहुत-से महारथी वीर हैं; अतः अब तुम भी युद्धके लिये तैयार हो जाओ ॥ ९–१० ॥

मयूरकेतुप्रमुखा वभ्रुवाहनकर्णजौ ।
प्रद्युम्नाद्याश्च युध्यन्तु कौतुकं त्वं विलोकय ॥ ११ ॥
भविष्यति महद् युद्धमनेकगजपातनम् ।

मयूरध्वज, वभ्रुवाहन, वृषकेतु और प्रद्युम्न आदि प्रधान-प्रधान वीर उसके साथ लोहा लेंगे और तुम अलग खड़ा होकर यह दृश्य देखो । इस समय घोर संग्राम होगा, जिसमें बहुसंख्यक हाथियोंका विनाश हो जायगा॥ ११½ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं ब्रुवति देवेशे कृष्णे पार्थरथस्थिते ॥ १२ ॥
वीरवर्मार्जुनं प्राह प्राप्यं युद्धे तथाविधे ।
एते मया जिता वीरास्त्वदीयाः पार्थ संगरे ॥ १३ ॥
परं न मामिका कण्डूस्त्वां विना परिशाम्यति ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! जिस समय अर्जुनके रथमें विराजमान देवेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार कह रहे थे और उधर वह भयंकर युद्ध चल रहा था, उसी समय वीरवर्मा अर्जुनके पास आकर कहने लगा—'पृथानन्दन ! मैंने संग्रामभूमिमें तुम्हारे इन सभी वीरोंको पराजित कर दिया है; परंतु मेरे हाथकी खुजलाहट तुम्हारे साथ युद्ध किये बिना शान्त होनेवाली नहीं है' ॥ १२-१३½ ॥

गोविन्द भव वीरस्त्वं पार्थो भवतु वा न वा ॥ १४ ॥
सहस्व मत्प्रहारं त्वं तिष्ठ मा मुञ्च संगरम् ।

(पुनः श्रीकृष्णको सम्बोधित करके कहने लगा—) 'गोविन्द ! ये अर्जुन पराक्रम प्रकट करें अथवा न करें; परंतु अब आप ही वीर बनिये और मेरा प्रहार सहन कीजिये । डटकर खड़ा हो जाइये, संग्राम छोड़कर भाग मत जाइयेगा' ॥ १४½ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं शरैः सप्तभिरर्जुनम् ॥ १५ ॥
ताडयामास हृदये बाणषष्ट्या जनार्दनम् ।

इतनी बात कहकर राजा वीरवर्माने सात बाणोंसे अर्जुनके हृदयपर चोट की और साठ बाणोंसे श्रीकृष्णको घायल कर दिया ॥ १५½ ॥

बाणैस्ते पञ्चभिर्वीरा मूर्च्छिताः पतिताः क्षितौ॥ १६ ॥
मयूरकेतुप्रमुखास्तदद्भुतमिवाभवत् ।

तत्पश्चात् उसके पाँच बाणोंसे घायल होकर वे मयूरध्वज आदि प्रधान वीर मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े । यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ १६½॥

अर्जुनोऽपि नृपं बाणैः समन्ताद् व्यकिरद् रणे॥ १७ ॥
मुञ्चाश्वौ मामकौ क्रोधाद् ब्रुवाणोऽपि पुनः पुनः।

तब अर्जुनने भी रणभूमिमें चारों ओरसे राजा वीरवर्माके ऊपर बाणोंकी झड़ी लगा दी । उस समय वे क्रोधपूर्वक बारंबार ऐसा कह रहे थे कि 'मेरे दोनों घोड़ोंको छोड़ दो'॥ १७½॥

नृप उवाच

उभौ गृहीतौ तुरगौ यथा युद्धे मयार्जुन ॥ १८ ॥
तथात्र धारये वीरौ सम्मुखौ माधवार्जुनौ ।

राजा वीरवर्माने कहा—अर्जुन ! जिस प्रकार युद्धस्थलमें मैंने दोनों घोड़ोंको पकड़ रखा है, उसी तरह सम्मुख आये हुए तुम दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनको अभी पकड़े लेता हूँ॥ १८½ ॥

जैमिनिरुवाच

पार्थं बाणसहस्रैस्तु सकृष्णं वीरवर्मकः ॥ १९ ॥
संछादयित्वा व्यनदत् सतोय इव तोयदः ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! यों कहकर राजा वीरवर्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनको सहस्रों बाणोंसे आच्छादित करके जलपूर्ण मेघके समान गर्जना करने लगा ॥ १९½ ॥

तस्य बाणान् सव्यसाची चकार तिलशः क्षणात्॥ २० ॥
सुमन्त्र इव शत्रूणां देशान् प्राज्ञैरधिष्ठितः ।
जघान सप्तभिर्बाणैर्वीरवर्माणमाहवे ॥ २१ ॥

फिर तो जैसे मन्त्रकुशल सचिवोंद्वारा प्रयुक्त की हुई उत्तम मन्त्रणा शत्रुओंके देशोंको नष्ट-भ्रष्ट करके उनपर अधिकार जमा लेती है, उसी तरह अर्जुनने क्षणभरमें उसके बाणोंको काटकर तिलके समान टुकड़े कर दिये और फिर रणभूमिमें सात बाणोंसे वीरवर्माको भी घायल कर दिया २०-२१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पार्थं जघान षष्ट्यासौ शराणां तिग्मतेजसाम्।
वासुदेवं शतेनापि हनूमन्तं शतेन च ॥ २२ ॥

तब वीरवर्माने अत्यन्त चमकीले साठ बाणोंसे अर्जुनपर प्रहार किया और फिर सौ बाणोंसे श्रीकृष्णको बींधकर हनुमान्‌को भी सौ बाणोंसे पीट दिया ॥ २२ ॥

हया भिन्नाः शरैर्घोरैर्धृताः कृष्णेन ये करे।
तस्माद् गच्छन्ति ते भूमौ विषमायां नराधिप ॥ २३ ॥

नरेश्वर जनमेजय ! वीरवर्माके भयंकर बाणोंसे अर्जुनके घोड़े घायल हो गये, इसलिये यद्यपि श्रीकृष्णने उनकी बागडोर हाथमें लेकर उन्हें अपने काबूमें कर रखा था, तथापि वे विषम (ऊबड़-खाबड़) जमीनकी ओर भागने लगे ॥ २३ ॥

अन्ये वीराः शरैश्छन्ना न दृश्यन्ते च भूतले।
भ्रमितं पाण्डवबलं मोहेनेव यथा जगत् ॥ २४ ॥
वीरवर्माणमालोक्य कृष्णः प्रोवाच पाण्डवम्।

दूसरे वीर उसके बाणोंसे ऐसे ढक गये थे कि वे भूतलपर दिखायी ही नहीं पड़ते थे। उस समय अर्जुनकी सेना मोहके वशीभूत होकर आवागमनके चक्रमें पड़े हुए जगत्‌के समान चक्कर काटने लगी। तब वीरवर्माको (जोर पकड़ते) देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा ॥ २४½ ॥

श्रीवासुदेव उवाच

वेत्सि पार्थ महाबाहो यथान्ये क्षत्रिया जिताः ॥ २५ ॥
तथा विजेष्यामि रणे वीरवर्माणमत्र वै।
नासौ शक्यो मया जेतुमुपायैस्ते निपातिताः ॥ २६ ॥

श्रीवासुदेव बोले—महाबाहु अर्जुन ! क्या तुम यह समझ रहे हो कि जैसे पहलेके युद्धोंमें मैंने अन्य क्षत्रिय वीरोंको पराजित कर दिया था, उसी तरह इस संग्राममें राजा वीरवर्मापर भी विजय प्राप्त कर लूँगा ? (परंतु ऐसा होना तो असम्भव है; क्योंकि) यह तो मेरे द्वारा भी नहीं जीता जा सकता। पहलेके वीरोंको तो तुमने मेरी युक्तियोंके सहारे मार डाला था ॥ २५-२६ ॥

यथा कर्णस्य तच्चक्रं ग्रस्तं भूम्या महारणे।
नास्य चक्रं ग्रसेद् देवी समर्थो जायते पुनः ॥ २७ ॥

जैसे महाभारत-युद्धमें पृथ्वीने कर्णके रथके पहियेको ग्रस लिया था, वह पृथ्वीदेवी इस समय इसके रथ-चक्रको ग्रसना नहीं चाहती; इससे यह अधिकाधिक जोर पकड़ता जा रहा है॥ २७॥

सुदर्शनेन तच्छिन्नं शिशुपालशिरो महत्।
नास्य कण्ठात् पातयितुं क्षमं चक्रं हि मामकम् ॥ २८ ॥

(राजसूय यज्ञके अवसरपर) जिस प्रकार सुदर्शन चक्रने शिशुपालके विशाल मस्तकको काट गिराया था, मेरा वही चक्र इस समय इसके सिरको गलेसे पृथक् कर देनेके लिये समर्थ नहीं हो रहा है ॥ २८ ॥

सिंधुराजस्य विशिखैर्नीतं शीर्षं रणाद् बहिः।
यैस्तावकैर्न तैरस्य वीक्ष्यते दाहदं मुखम् ॥ २९ ॥

तुम्हारे जो बाण सिन्धुराज जयद्रथके सिरको उड़ाकर रणभूमिसे बाहर चले गये थे, वे बाण वीरवर्माके संताप देनेवाले मुखकी ओर तो देख भी नहीं सकते ॥ २९ ॥

हनुमानेव संग्रामे रथं लाङ्गलबन्धनैः।
निबध्नातु हि वीरस्य संग्रामे वीरवर्मणः ॥ ३० ॥
भ्रामयित्वा शतगुणं प्रक्षुञ्चतु महार्णवे।

इसलिये अब हनुमान् ही संग्रामभूमिमें बलवान् वीरवर्माके रथको अपनी पूँछरूपी रस्सीसे बाँध लें और उसे सौ बार घुमाकर महासागरमें डाल दें ॥ ३०½ ॥

हनुमानुवाच

नेदं वनं रावणस्य जम्बुमाली न राक्षसः ॥ ३१ ॥
जानकीत्रासकारिण्यो राक्षस्यो न पुरः स्थिताः।

हनुमान्‌ने कहा—भगवन् ! न तो यह रावणकी अशोकवाटिका है, न जम्बूमाली नामक राक्षस है और न जानकीजीको डराने-धमकानेवाली राक्षसियाँ ही मेरे सामने खड़ी हैं (फिर मैं किसपर क्रोध करूँ ? यह राजा तो वैष्णव होनेके कारण क्रोधका पात्र नहीं है) ॥ ३१½ ॥

श्रीवासुदेव उवाच

मयाऽऽदिष्टो रथं चास्य प्रक्षिप त्वं हि वायुज ॥ ३२ ॥
अप्यकार्यशतं कार्यं धर्मार्थं हि त्वया मया।

श्रीवासुदेवने कहा—वायुनन्दन ! तुम मेरे आदेशसे वीरवर्माके रथको समुद्रमें फेंक दो; क्योंकि धर्मराज युधिष्ठिरके लिये मुझे और तुम्हें सैकड़ों न करने योग्य भी कार्य करने चाहिये ॥ ३२½ ॥

जैमिनिरुवाच

प्रेरितो वासुदेवेन गृहीत्वास्य रथं हरिः ॥ ३३ ॥
साश्वं ससूतं सध्वजं प्रस्थितो गगनं प्रति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तब श्रीकृष्णकी प्रेरणासे हनुमान्‌जी घोड़े, सारथि और राजासहित वीरवर्माके रथको पकड़कर आकाशकी ओर उड़ चले ॥ ३३½॥

परित्यज्य रथं राजा तत्क्षणात् पाण्डवस्य हि ॥ ३४ ॥
गृहीत्वा रथमाकाशे प्रपेदे पवनात्मजम् ।
प्रत्युवाच हनूमन्तं त्वया मे नीयते रथः ॥ ३५ ॥
शून्यो हि विपुलः कृष्णरथं पश्य मयाऽऽहृतम् ।
नयिष्यसि रथं यत्र तत्र माधवपाण्डवौ ॥ ३६ ॥
नयिष्यामि न मुञ्चामि दैवात्त्यक्तौ त्वया रणे ।
क्षीराब्धौ कृष्णनाथस्य शयनं शेषमञ्चके ॥ ३७ ॥

यह देखकर राजा वीरवर्मा अपने रथसे कूद पड़ा और तत्काल ही अर्जुनके रथको लेकर आकाशमें हनुमान्‌जीके संनिकट जा पहुँचा और उनसे कहने लगा—'हनुमान् ! तुम मेरे जिस विशाल रथको लिये जा रहे हो, वह तो खाली है । इधर देखो, मैं तो श्रीकृष्णके रथको उठा लाया हूँ । अब तुम जहाँ मेरे रथको ले जाओगे, वहीं मैं भी श्रीकृष्ण और अर्जुनको ले चलूँगा । उन्हें छोड़ूँगा नहीं । प्रारब्धवश ही तुमने इन दोनोंको रणभूमिमें छोड़ दिया है । अब तो भगवान् श्रीकृष्णका क्षीरसागरमें शेषशय्यापर ही शयन होगा अर्थात् मैं इन्हें क्षीरसमुद्रमें डाल दूँगा ॥ ३४–३७ ॥

रमा विरहिणी नित्यं या चिन्तयति माधवम् ।
पार्थभक्त्या वृतं कान्तं सा प्राप्नोतु मयार्पितम् ॥ ३८ ॥

'वहाँ लक्ष्मीजी पति-विरहसे व्याकुल होकर सदा इन माधवका ध्यान करती रहती हैं; क्योंकि ये यहाँ अर्जुनकी भक्तिके वशीभूत हो गये हैं । वे आज मेरेद्वारा अर्पण किये गये अपने इन पतिदेवको प्राप्त कर लें ॥ ३८ ॥

यथासौ भासते सूर्यो न चन्द्रं वीक्षते तथा ।
यन्निमित्तं गतश्चन्द्रस्तं जानन्तु विचक्षणाः ॥ ३९ ॥
त्वत्तोऽधिकं कृतं कर्म हृदि जानाति तत्त्वतः ।

ये चन्द्रमा उन्हें सूर्यके समान दाहक प्रतीत होते हैं, इसलिये वे चन्द्रमाकी ओर नहीं देखती हैं । जिस (विरहरूपी) निमित्तसे चन्द्रमा उनके लिये दाहकत्वको प्राप्त हुए हैं; उसे सहृदय विद्वान् ही जानें । मैंने यहाँ तुमसे अधिक पराक्रम कर दिखाया है, इस बातको तुम अपने मनमें अच्छी तरह जानते हो ॥ ३९½ ॥

हनुमानुवाच

महिमा ते मया दृष्टो वर्णितो नु त्वयानघ ॥ ४० ॥
तनोति पौरुषं स्वं यः साधुभिर्वर्ण्यते न सः ।

हनुमान्‌ने कहा—निष्पाप नरेश ! तुम अपनी जिस महिमाका वर्णन कर रहे हो, उसे तो मैंने प्रत्यक्ष देख लिया । (तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिये; क्योंकि) जो स्वयं अपने मुखसे अपने पुरुषार्थका वर्णन करता है, साधु पुरुष उसकी प्रशंसा नहीं करते ॥ ४०½ ॥

वीरवर्मोवाच

रथं गृहीत्वा मे वीर न गन्तुं पार्यते त्वया ॥ ४१ ॥
सहस्व मत्प्रहारं हि मया कृष्णौ यथा धृतौ ।

वीरवर्माने कहा—वीर ! अब तुम मेरे रथको लेकर आगे नहीं जा सकते । जैसे मैंने श्रीकृष्ण और अर्जुनको पकड़ रखा है, उसी तरह तुम्हें भी पकड़ लूँगा । अब मेरे प्रहारको सहन करो ॥ ४१½॥

ततो जघान सरथं हनूमन्तं स्वमुष्टिना ॥ ४२ ॥
तस्य मुष्टिप्रहारेण न ययौ पवनात्मजः ।
एवमेकेन ते वीरास्त्रयो युद्धे तथा धृताः ॥ ४३ ॥

तदनन्तर वीरवर्माने रथ लेकर आगे बढ़ते हुए हनुमान्‌जीपर अपने मुक्केसे प्रहार किया । उसके मुष्टि-प्रहारसे व्याकुल होकर हनुमान्‌जी आगे न बढ़ सके । इस प्रकार अकेले वीरवर्माने युद्धस्थलमें उन तीनों वीरोंको अपने काबूमें कर लिया ॥ ४२-४३ ॥

तं नृपं हृदये कृष्णो जघान स्वपदा त्वरन् ।
मूर्च्छितः स पपातोर्व्यां गृहीत्वा चरणौ हृदि ।
मुहूर्त्तार्धेन तां हित्वा पुनरेवोत्थितोऽब्रवीत् ॥ ४४ ॥

तब तुरंत ही श्रीकृष्णने राजा वीरवर्माके हृदयपर अपने चरणसे प्रहार किया, जिससे वह उनके दोनों चरणोंको हृदयपर धारण किये हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा । पुनः एक घड़ीके बाद वह मूर्च्छा त्यागकर उठ खड़ा हुआ और यों कहने लगा—॥ ४४ ॥

मया त्रयो धृता यूयं नैकोऽहं विधृतस्त्रिभिः ।
यमेन मरणं प्रोक्तं मदीयं तद्व्रतं कुतः ॥ ४५ ॥

मैंने तुम तीनों वीरोंको अपने वशमें कर लिया था; परंतु तुम तीनों वीर मिलकर मुझ अकेलेको अपने काबूमें न ला सके । (ऐसे ही अवसरपर) यमराजने मेरी मृत्यु बतायी थी, परंतु न जाने वह मौत कहाँ चली गयी ॥ ४५ ॥

नीतौ पार्थस्य तुरगौ मया वीराः प्रतोषिताः ।
कृष्णाङ्घ्रिस्पर्शतो नूनं मृत्युर्मेऽद्य पलायितः ॥४६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मैंने अर्जुनके दोनों घोड़ोंको पकड़ लिया और संग्राम-भूमिमें वीरोंको संतुष्ट कर दिया, परंतु मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि श्रीकृष्णके चरण-स्पर्शसे निश्चय ही आज मेरी मृत्यु दूर भाग गयी है' ॥ ४६ ॥

ततो वीक्ष्य नृपं कृष्णः स्वे रथे समवस्थितम् ।
उवाच पाण्डवं युद्धे शृणु फाल्गुनमेव च ॥ ४७ ॥
नायं वर्षसहस्रेण विजेतव्यस्त्वया मया ।
सर्वास्त्रसंग्रहं वेत्ति लघुहस्तो महाबलः ॥ ४८ ॥
सर्वे जिता रणे वीरास्तथाहमपि तोषितः ।

तदनन्तर जब श्रीकृष्णने राजा वीरवर्माको अपने रथमें बैठा हुआ देखा, तब वे युद्धस्थलमें ही पाण्डुनन्दन अर्जुनसे बोले—'पार्थ ! सुनो, चाहे हजारों वर्षोंतक युद्ध चलता रहे, परंतु हम और तुम—दोनों मिलकर भी इसे पराजित नहीं कर सकते; क्योंकि यह महान् बलवान् एवं फुर्तीला है और साथ ही सम्पूर्ण अस्त्रसमूहोंका ज्ञाता भी है। इसने रणभूमिमें सभी वीरोंको जीत लिया है और मुझे भी संतुष्ट कर दिया है' ॥ ४७-४८½ ॥

अर्जुन उवाच

येन त्वं तोषितो नाथ विजयी स प्रजायते ॥ ४९ ॥
पौरुषेण मदीयेन नैवाप्नोति पराजयम् ।

तब अर्जुनने कहा—नाथ ! जिसने आपको संतुष्ट कर दिया, वह तो विजयी होता ही है। वह मेरे पुरुषार्थ प्रकट करनेसे पराजित नहीं हो सकता ॥ ४९½ ॥

एवं ब्रुवाणं वीरोऽसौ पार्थं प्रोवाच सत्वरः ॥ ५० ॥
वीरवर्मा प्रसन्नस्तं मैवं वद धनंजय ।
चराचरं त्वया पार्थ शक्यते जेतुमाहवे ॥ ५१ ॥
त्वद्वाक्येनामुना वीर प्रसन्नं जायते मनः ।

अर्जुनके ऐसा कहनेपर वीरवर्मा प्रसन्न हो गया और फिर तुरंत ही वह वीर अर्जुनसे कहने लगा—'धनंजय ! आप ऐसा मत कहें। पृथानन्दन ! आप तो संग्रामभूमिमें चराचर जगत्‌को पराजित कर सकते हैं। वीर ! आपके इस कथनसे मेरा मन प्रसन्न हो गया है' ॥ ५०-५१½ ॥

इत्युक्त्वा धनुरुत्सृज्य पतितः कृष्णपादयोः ॥ ५२ ॥
निपपात तदा राजा पार्थमालिङ्ग्य सत्वरः ।
तुरगाभ्यां समं स्वं हि राज्यं देहं स्वकं ददौ ॥ ५३ ॥
श्रीकृष्णनाथस्य करे कृत्वा वीरैश्च सौहृदम् ।
तोषयन् कृष्णनाथस्य भक्त्या चित्तं पुरः स्थितः ॥ ५४ ॥

यों कहकर राजा वीरवर्माने अपने धनुषको फेंक दिया और नम्र होकर वह श्रीकृष्णके चरणोंमें गिर पड़ा। फिर उसने तुरंत ही अर्जुनको गले लगाकर दोनों घोड़ोंके साथ-साथ अपने राज्य और अपने शरीरको भी भगवान् श्रीकृष्णके हाथमें समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् सभी वीरोंके साथ मैत्रीभाव स्थापित करके अपनी भक्तिसे भगवान् श्रीकृष्णके चित्तको प्रसन्न करते हुए उनके आगे खड़ा हो गया ॥ ५२–५४ ॥

षष्ठेऽथ दिवसे राजा दर्शयामास सत्वरम् ।
सारस्वतं पुरं स्वं हि वित्तं पार्थाय धीमते ।
मौक्तिकान्यष्टधा यानि धनानि च बहूनि च ॥ ५५ ॥
रत्नजातं तु सकलं यन्नेतुं नैव शक्यते ।

तदनन्तर छठे दिन राजा वीरवर्माने बुद्धिमान् अर्जुनको शीघ्र ही अपना सारस्वतपुर और सारा धन दिखलाया। फिर अपने यहाँ जो आठ प्रकारकी मोतियाँ, अटूट धनभण्डार और ढेर-के-ढेर रत्न भरे थे, जिन्हें उस नगरसे बाहर नहीं ले जाया जा सकता था, उन सबको भी अर्जुनके नेत्रोंके समक्ष उपस्थित किया ॥ ५५½ ॥

गजानां चन्द्रशुभ्राणां सहस्राण्येकसप्ततिः ॥ ५६ ॥
एकतः श्यामकर्णान् हि तुरगान् सुबहूनपि ।
सुन्दरीणां सहस्राणि नव पार्थकरे ददौ ॥ ५७ ॥
स्वयं पुरःसरो भूत्वा पालयामास वाजिनौ ।

तत्पश्चात् राजाने चन्द्रमा-सरीखे उज्ज्वल वर्णवाले इकहत्तर हजार हाथी, जिनके कान एक ओरसे श्याम वर्णके थे, ऐसे बहुत-से घोड़े और नौ हजार सुन्दरी स्त्रियाँ अर्जुनके हाथमें समर्पित कर दीं तथा स्वयं अग्रगामी सेवक बनकर उन दोनों घोड़ोंकी रक्षा करने लगा ॥ ५६-५७½ ॥

ततः पार्थमुखा वीरा ददृशुर्भासुरं नदम् ॥ ५८ ॥
नानाचक्राकुलजलमावर्त्तशतसंकुलम् ।

तदनन्तर आगे बढ़नेपर अर्जुन आदि वीरोंने एक विशाल नद देखा, जो जलसे भरे रहनेके कारण चमक रहा था। उसका जल अनेक रूपोंमें चक्रकी भाँति घूम रहा था और उसमें सैकड़ों भँवरें उठ रही थीं ॥ ५८½ ॥

नयन्ति हि गजान् यत्र मीनास्तानितरे झषाः ॥ ५९ ॥
महद्भिर्जलकल्लोलैर्हसन्तमिव सागरम् ।

उसमें रहनेवाले मगर-मच्छ बड़े-बड़े गजराजोंको घसीट ले जाते थे तथा अन्य और भी ऐसे विशालकाय मच्छ थे, जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन मगर-मच्छोंको भी धर दबोचते थे। वह अपनी उत्ताल जल-तरङ्गोंसे महासागरको हँसता हुआ-सा प्रतीत हो रहा था॥

पार्थोऽब्रवीन्महाभागं वीरवर्माणमादरात्॥ ६०॥
प्रतियामि नदं यातौ हयौ वारितरौ मम।
पोतैस्तारय मत्सैन्यं वीरवर्मा तथाकरोत्॥ ६१॥
तीर्णं सैन्यं समग्रं हि पार्थस्य जनमेजय॥ ६२॥

तब अर्जुनने महाभाग्यशाली राजा वीरवर्मासे आदरपूर्वक कहा—'राजन्! मैं इस नदको पार करना चाहता हूँ; क्योंकि मेरे दोनों घोड़े जलको तैरकर उस पार पहुँच गये। अतः अब आप नौकाओंद्वारा मेरी सेनाको उस पार पहुँचाइये।' तब वीरवर्माने वैसा ही प्रबन्ध किया। जनमेजय! इस प्रकार अर्जुनकी सारी सेना महानदके उस पार पहुँच गयी॥६०–६२॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि वीरवर्मविजयकथनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें वीरवर्माकी विजयका कथन नामक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४९॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

घोड़ोंका राजा चन्द्रहासके नगर कुन्तलपुरमें पहुँचना और पकड़ा जाना, नारदजीका आगमन, अर्जुनके पूछनेपर नारदजीद्वारा चन्द्रहासकी कथाका वर्णन

जैमिनिरुवाच

सारस्वतपुरान्मुक्तौ वाजिनौ निर्गतौ नृप।
लम्बोदरं नमस्कृत्य वक्ष्येऽहं यत्र तौ गतौ॥ १॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! सारस्वतपुरसे छूटकर वे दोनों घोड़े आगे बढ़े। तत्पश्चात् वे जहाँ पहुँचे थे, वहाँका वृत्तान्त मैं गणेशजीको प्रणाम करके वर्णन करता हूँ॥

वायुवेगसमौ दान्तौ चन्द्रदीप्तिमुखौ हरी।
चन्द्रहासपुरं प्राप्तौ ततः कौन्तलकं शुभम्॥ २॥

तदनन्तर जो वायुके समान वेगशाली थे, जिनके मुखकी कान्ति चन्द्रमाके सदृश उज्ज्वल वर्णकी थी तथा जो सुशिक्षित होनेके कारण सधे हुए थे, वे घोड़े राजा चन्द्रहासके सुन्दर नगर कुन्तलपुरमें जा पहुँचे॥ २॥

पृष्ठतोऽनुययुः सर्वे कृष्णप्रद्युम्नजिष्णवः।
हंसध्वजस्ताम्रकेतुः प्रवीरः फाल्गुनिर्वृषः॥ ३॥

उन घोड़ोंके पीछे-पीछे श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, अर्जुन, हंसध्वज, ताम्रध्वज, प्रवीर, अर्जुनकुमार बभ्रुवाहन और वृषकेतु आदि सभी वीर चल रहे थे (वहाँ पहुँचनेपर वे घोड़े उन्हें नहीं दिखायी दिये)॥ ३॥

वीक्षमाणास्तुरङ्गौ तौ व्यामोहाविष्टचेतसः।
वाजिनौ नः कुतः प्राप्तौ केन नीतौ तलं गतौ॥ ४॥
आकाशमुत्प्लुतौ किं नु वियद्भीवाः स्म तेऽभवन्।

उस समय सब ओर दृष्टि डालनेपर भी उन घोड़ोंका न पाकर उन सबके मनपर व्यामोह छा गया और वे परस्पर कहने लगे—'हमारे दोनों घोड़े कहाँ चले गये? उन्हें किसने पकड़ लिया? वे पातालमें तो नहीं चले गये अथवा उछलकर आकाशमें तो नहीं जा पहुँचे?' यों कहते हुए वे गला ऊपर उठाकर आकाशकी ओर देखने लगे॥ ४½॥

तावद् ददृशुराकाशे पुरुषं दीप्ततेजसम्॥ ५॥
भ्राजमानं श्रियातीव द्वितीयमिव भास्करम्।

तबतक उन्हें आकाशमें एक तेजस्वी पुरुष दिखायी पड़े, जो उद्दीप्त तेजसे संयुक्त थे और अत्यन्त श्रीसम्पन्न होनेके कारण दूसरे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ ५½॥

मुनीनां प्रवरं चैव वेदवेदाङ्गपारगम्॥ ६॥
नारदं कलहप्रेप्सुं वैष्णवानां गरीयसम्।
कृष्ण माधव गोविन्द नृसिंह मधुसूदन॥ ७॥
जपन्तं मनसा नित्यं भक्त्या केवलया युतम्।
पृथक् पृथङ्नमश्चक्रुर्मुनिं तं फाल्गुनादयः॥ ८॥

वे वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी विद्वान् मुनिश्रेष्ठ नारदजी थे। जिन्हें कलह या युद्ध देखनेकी विशेष रुचि रहती है और जो विष्णु-भक्तोंमें गौरवपूर्ण स्थान रखते हैं। वे नित्य-निरन्तर अनन्यभक्तिपूर्वक मन-ही-मन 'कृष्ण! माधव! गोविन्द! नृसिंह! मधुसूदन!' आदि भगवन्नामोंका जप करते रहते हैं। निकट आनेपर अर्जुन आदि सभी वीरोंने पृथक्-पृथक् मुनिवर नारदजीको प्रणाम किया॥ ६–८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुतः प्राप्तं पूज्यपादैर्दृष्टौ नः किं तुरङ्गमौ।
इत्यमुं परिपप्रच्छ फाल्गुनः स्वामिगौरवात् ॥ ९ ॥

तदनन्तर नारदजीका स्वामीकी तरह सम्मान करते हुए अर्जुनने उनसे पूछा—'पूज्यपाद देवर्षे ! कहाँसे आपका शुभागमन हो रहा है ? क्या कहीं हमारे वे दोनों घोड़े आपके दृष्टिपथमें आये हैं ?' ॥ ९ ॥

नारदस्त्वब्रवीदश्वौ गतौ कौन्तलकं पुरम्।
यत्र राजा चन्द्रहासो वैष्णवः पालितां पुरीम् ॥ १० ॥

तब नारदजीने बतलाया—'जहाँ परम विष्णु-भक्त राजा चन्द्रहास राज्य करता है, उसके द्वारा सुरक्षित उस नगरीका नाम कुन्तलपुर है । वे दोनों घोड़े उसी नगरमें जा पहुँचे हैं ॥ १० ॥

यस्मै कुन्तलको राजा राज्यं दत्त्वा वनं ययौ।
धृष्टबुद्धेः प्रधानस्य कन्यां यः परिणीतवान् ॥ ११ ॥
केरलाधिपतेः पुत्रः कुलिन्देनानुपालितः।
लक्ष्मीपतेः प्रसादात् स प्राप्य कौन्तलकां पुरीम्॥१२ ॥
चन्द्रहासो महाबाहुर्योद्धा तादृङ् न विद्यते।
अमी नृपतयस्तस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १३ ॥

'चन्द्रहास केरल देशके राजाका पुत्र है । राजाकी मृत्युके पश्चात् इसे कुलिन्दने पाला-पोसा है । पीछे राजा कुन्तलक इसे अपना राज्य देकर वनमें चले गये । तत्पश्चात् इसने राजाके प्रधान मन्त्री धृष्टबुद्धिकी कन्याका पाणिग्रहण किया । भगवान् लक्ष्मीपतिकी कृपासे ही इसे कुन्तलपुरका राज्य प्राप्त हुआ है । महाबाहु चन्द्रहासके समान योद्धा इस समय दूसरा कोई नहीं है । ये जो तुम्हारे साथ राजालोग हैं, ये तो उसकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते' ॥ ११–१३ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा बीभत्सुर्विस्मयान्वितः।
प्रत्युवाच क आहोस्विच्चन्द्रहासो महाबलः ॥ १४ ॥
शंस नारद मे सर्वं चरित्रं विस्मयान्वितम्।
चन्द्रहासस्य नृपतेर्विस्तरेण यथातथम् ॥ १५ ॥
यो भक्तो हरिमेधस्य वासुदेवस्य भूपतिः।

नारदजीकी बात सुनकर अर्जुनको महान् विस्मय हुआ । फिर वे कहने लगे—'नारदजी ! वह महाबली राजा चन्द्रहास कौन है, जो अश्वमेध यज्ञद्वारा पूजित होनेवाले भगवान् वासुदेवका भक्त है ? उस राजा चन्द्रहासका सारा चरित्र महान् विस्मयजनक है; अतः आप मुझसे उसका यथोचितरूपसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये' ॥ १४-१५½ ॥

नारद उवाच

समयः कीदृशः पार्थ हयौ मार्गच्युतौ तव ॥ १६ ॥
चिन्तातुरो धर्मराजो विद्यते हस्तिनापुरे।

नारदजीने कहा—पृथानन्दन ! आजकल कैसा समय है—इसपर भी तो ध्यान दो । तुम्हारे दोनों घोड़े मार्गसे भ्रष्ट हो चुके हैं । उधर हस्तिनापुरमें धर्मराज युधिष्ठिर चिन्तातुर हुए बैठे हैं (ऐसी विषम परिस्थितिमें तुम्हें कथा सुननेके लिये अवकाश कहाँ है ?) ॥ १६½ ॥

अर्जुन उवाच

उभयोः सेनयोर्मध्ये कथं कृष्णमुखादहम् ॥ १७ ॥
अश्रौषं स्वस्थचित्तः सन् कुरुक्षेत्रे कथानकम्।

अर्जुनने कहा—मुने ! जिस समय कुरुक्षेत्रके मैदानमें दोनों सेनाएँ आमने-सामने खड़ी थीं, उस समय उन सेनाओंके बीच मैंने स्वस्थचित्त होकर भगवान् श्रीकृष्णके श्रीमुखसे श्रीमद्भगवद्गीताकी कथा कैसे सुनी थी ? (जैसे तब अवकाश मिल गया था, वैसे अब भी है) ॥ १७½ ॥

सत्कथाश्रवणे येषां पुंसां न समयो भवेत् ॥ १८ ॥
वञ्चितास्ते हि कालेन नरा ह्यल्पायुषो भुवि।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कथयस्व कथामिमाम् ॥ १९ ॥

नारदजी ! इस भूतलपर मनुष्योंकी आयु थोड़ी ही होती है, अतः जिन पुरुषोंको सत्कथा-श्रवणके लिये समय नहीं मिलता, उन्हें अवश्य ही कालने ठग लिया है । इसलिये सब प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक आप इस कथाका वर्णन कीजिये ॥

अश्वो मे यातु विप्रेन्द्र यज्ञो भवतु वा न वा।
श्रेयोऽर्थिभिर्नरैः सम्यक् श्रोतव्या वैष्णवी कथा॥ २० ॥
एतद् यज्ञशतं चाश्वमेधादीनां प्रकीर्तितम्।

विप्रेन्द्र ! मेरा घोड़ा भले ही चला जाय । अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हो या न हो; परंतु कल्याणकामी मनुष्योंको चाहिये कि वे विष्णु-सम्बन्धी कथाका सम्यक्रूपसे श्रवण करें; क्योंकि यह कथा-श्रवण सैकड़ों अश्वमेधादि यज्ञोंके समान बतलाया गया है ॥

नारद उवाच

केरलाधिपतिः पूर्वमासीद् राजा सुधार्मिकः ॥ २१ ॥
राज्यं चकार मेधावी विधिवत् पालयन् महीम्।
तस्य पुत्रोऽभवन्मूलनक्षत्रे बहुभाग्यवान् ॥ २२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब नारदजी कहने लगे—पार्थ! प्राचीन कालकी बात है। केरल देशमें एक परम बुद्धिमान् राजा राज्य करता था। उसका नाम था सुधार्मिक, वह शास्त्रविधिके अनुसार पृथ्वीकी रक्षा करता हुआ राज्य-कार्य सँभालता था। उसके एक महान् भाग्यशाली पुत्र हुआ, जिसका जन्म मूल नक्षत्रमें हुआ था॥ २१-२२॥

तस्मात् कतिपयैरेव दिवसैर्वेष्टितं पुरम्।
वैरिभिस्तस्य नृपतेरन्ते श्लेष्मादिभिर्यथा॥ २३॥

उस पुत्रके जन्म लेनेके कुछ ही दिनों बाद शत्रुओंने राजाके नगरको उसी प्रकार घेर लिया, जैसे प्राणान्तके समय कफ आदि धातु प्राणीके गलेको जकड़ लेते हैं॥ २३॥

युद्धं कृत्वा स नृपतिर्जहौ प्राणान् सुधार्मिकः।
परलोकगतं श्रुत्वा पतिं पत्न्यन्वगान्मुदा॥ २४॥

तब राजा सुधार्मिक उन शत्रुओंके साथ युद्ध करते-करते अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठा। पतिको परलोकवासी हुआ सुनकर रानी भी आनन्दपूर्वक पतिके साथ सती हो गयी॥

पितृभ्यां रहितं बालं धात्री कौन्तलकं पुरम्।
निन्ये पुरः श्रियस्तस्या भविष्यत् पतिमूर्जितम्॥ २५॥

इस प्रकार जब वह बालक माता-पितासे हीन—अनाथ हो गया, तब धाय उसे लेकर कुन्तलपुरमें चली आयी। वह बालक उस नगरकी राज्यश्रीका भावी बलवान् पति था॥ २५॥

वर्षाणि त्रीणि च तथा पालितो यत्नतः शिशुः।
धात्र्या कण्डनपेषादिकर्मभिः कौन्तले पुरे॥ २६॥

कुन्तलपुरमें धायने कूटना-पीसना आदि मिहनत-मजदूरी करके तीन वर्षोंतक यत्नपूर्वक उस शिशुका पालन-पोषण किया॥

ध्यायन्ती स्वनृपं धात्री संतप्यति दिने दिने।
ततः पञ्चत्वमगमद् धात्री बालं विना सती॥ २७॥

वह धाय प्रतिदिन अपने राजाका स्मरण करके संतप्त होती रहती थी। तदनन्तर वह सती-साध्वी धाय भी बालक चन्द्रहासको अकेला छोड़कर मृत्युको प्राप्त हो गयी॥ २७॥

सोऽर्भकस्त्र्याब्दिको गौरो लक्षणैरभिलक्षितः।
वामपादे लघुं षष्ठीमङ्गुलिं बिभ्रदेव हि॥ २८॥

उस समय बालककी अवस्था तीन वर्षकी थी। उसका शरीर शुभ लक्षणोंसे लक्षित गौर वर्णका था। उसके बायें पैरमें पाँच अँगुलियोंके अतिरिक्त एक छोटी-सी छठी अँगुली और अधिक थी॥ २८॥

तदा स्नेहेन बहुना काभिश्चित् प्रतिपालितः।
स्त्रीभिः पञ्चाब्दिको जातस्ततः स्वैरं चचार सः॥ २९॥

तब उस नगरकी कुछ स्त्रियाँ बड़े स्नेहसे उस आश्रय-हीन बालकका पालन-पोषण करने लगीं। इस प्रकार जब वह बालक पाँच वर्षका हुआ, तब वह स्वच्छन्दतापूर्वक नगरमें विचरण करने लगा॥ २९॥

वीथ्यां तथार्भकैः सार्धं रेमे भुङ्क्ते च तैः सह।
भोजयन्ति च तं काश्चित् स्नापयन्ति पुरस्त्रियः।
लेपयन्ति सुगन्धैश्च चन्दनैर्वरयोषितः॥ ३०॥

वह गलियोंमें अपने समवयस्क बालकोंके साथ खेलता था और उन्हींके साथ खा-पी लेता था। नगरवासिनी स्त्रियोंमेंसे कोई उसे खिला देती थीं, तो कोई-कोई उसे नहला देती थीं तथा कुछ श्रेष्ठ महिलाएँ उसके शरीरपर चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्योंका अनुलेप कर देती थीं॥ ३०॥

स्वपित्यपि च ताभिश्च बालस्तस्मिन् पुरेऽर्जुन।
कञ्चुकादि प्रयच्छन्ति वरोष्णीषं च काश्चन॥ ३१॥

अर्जुन! उस नगरमें कोई-कोई स्त्री उसे पहननेके लिये अँगरखे और कोई-कोई सुन्दर टोपी बनवा देती थीं। वह बालक उन्हीं स्त्रियोंके घरोंमें सो भी जाता था॥ ३१॥

उपानहौ पट्टसूत्ररज्जुर्बिभ्रच्छुचिः शुचिः।
धृष्टबुद्धेः प्रधानस्य मन्दिरं स्वेच्छयागमत्॥ ३२॥

एक दिन वह परम पवित्र बालक जूते और रेशमकी डोरी (करधनी) धारण किये हुए स्वेच्छानुसार घूमता-घामता प्रधान मन्त्री धृष्टबुद्धिके महलमें चला गया॥ ३२॥

विप्रैर्योगीश्वरैः शान्तैर्मुनिभिः समलंकृतम्।
तं शिशुं मुनयः सर्वे दृष्ट्वा विस्मयमागताः॥ ३३॥

वह महल योगीश्वर ब्राह्मणों तथा शान्तप्रकृति मुनियोंसे सुशोभित था। उस बालकको देखकर सभी मुनि महान् आश्चर्यमें पड़ गये॥ ३३॥

पश्चाच्च बुभुजुस्तेन शिशुना पाण्डुनन्दन।
धृष्टबुद्धिर्विनीतः संस्तान् मुनीन् पर्यपूजयत्॥ ३४॥
अर्घ्यादिक्रियया सम्यग् भोजयामास पायसम्।
विविधान्नमपूपांश्च मोदकान् वटकानपि॥ ३५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाण्डुनन्दन ! तत्पश्चात् उन मुनियोंने उस बालकको अपने साथ बैठाकर भोजन कराया । उस समय धृष्टबुद्धिने विनीतभावसे अर्घ्य-पाद्य आदि क्रियाद्वारा उन मुनियोंकी भलीभाँति पूजा की और फिर सम्यक् प्रकारसे उन्हें खीर, नाना प्रकारके उत्तम अन्न, पूए, लड्डू और बड़े भोजन कराये ॥ ३४-३५ ॥

तृप्तास्ते मुनयो बालः खाचान्ता धौतपाणयः ।
धृष्टबुद्धिप्रदत्तेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥ ३६ ॥
वस्त्रालंकरणैरन्यैस्तोषितास्तेऽब्रुवन् वचः ।
धृष्टबुद्धेऽभिनन्दामश्चिरं जीव सुखी भव ॥ ३७ ॥

भोजनसे तृप्त होकर बालकके साथ उन मुनियोंने आचमन किया और फिर वे अपने हाथ-मुख धोकर शुद्ध हुए । तत्पश्चात् धृष्टबुद्धिने उन्हें सुगन्धित चन्दन, वस्त्र, आभूषण तथा और भी तरह-तरहकी वस्तुएँ प्रदान कीं । उन वस्तुओंसे संतुष्ट होकर वे इस प्रकार कहने लगे—'धृष्टबुद्धे ! हमलोग तुम्हारा अभिनन्दन करते हैं । तुम्हारी आयु लंबी हो और तुम सुखी रहो ॥ ३६-३७ ॥

यस्त्वया वीक्षितो बालः पुरस्तात् पञ्चवार्षिकः।
कोऽयं कस्य सुतः प्राप्तः कस्माद् देशाच्च तद् वद॥ ३८ ॥

'तुमने अपने सामने खड़े हुए पाँच वर्षकी अवस्थावाले जिस बालकको देखा है, वह कौन है ? किसका पुत्र है ? किस देशसे यहाँ आया है ? यह सब बातें हमें बताओ' ॥ ३८ ॥

इति पृष्टो धृष्टबुद्धिः प्रत्युवाच सयन्निव ।
कति बाला भ्रमन्त्यस्मिन्ननाथाः पुटभेदने ।
राजकार्यगरीयस्त्वान्नाहं जानामि बालकम् ॥ ३९ ॥

मुनियोंके ऐसा पूछनेपर धृष्टबुद्धि मुसकराता हुआ-सा बोला—'मुनीश्वरो ! इस नगरमें ऐसे तो कितने ही अनाथ लड़के घूमते रहते हैं । मैं तो राज-कार्यमें ही व्यस्त रहता हूँ, इसलिये मैं इस बालकको नहीं जानता' ॥ ३९ ॥

मुनय ऊचुः

मनोहरो लक्षणलक्षिताङ्गो
बालो ध्रुवं राज्यधरो विभाति ।
त्वं धृष्टबुद्धे प्रतिपालयैनं
त्वत्सम्पदां पालयितार्भकोऽग्रे ॥ ४० ॥

मुनियोंने कहा—धृष्टबुद्धे ! इस मनोहर बालकका शरीर सभी शुभ लक्षणोंसे संयुक्त होनेके कारण विशेषरूपसे प्रकाशित हो रहा है; अतः यह निश्चय ही किसी राज्यका अधिकारी होगा । तुम इस शिशुका पालन-पोषण करो । आगे चलकर यही बालक तुम्हारी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी होगा ॥

ततो विसृष्टा मुनयः सरोषं
बुद्ध्यामुना चिन्तयता किमीदृक्।
यथागतं ते मुनयोऽभिजग्मुः
स राजमन्त्री भृशमन्वतप्यत् ॥ ४१ ॥

तदनन्तर मुनियोंकी बात सुनकर धृष्टबुद्धि कुपित हो गया और उन मुनियोंको विदा कर दिया । वे मुनि जैसे आये थे, वैसे ही अपने-अपने स्थानको चले गये । तब वह राजमन्त्री 'मुनियोंने ऐसा क्यों कहा ?' यों अपनी बुद्धिसे सोचता हुआ अत्यन्त दुखी हो गया ॥ ४१ ॥

किमेभिरीडयैरुदितं वचो मां
यत् सम्पदां तेऽधिपतिर्भविष्यति।
बालः कथं तद्विपरीतकर्ता
तेषां मुनीनामहमस्मि वाक्यम् ॥ ४२ ॥

(वह अपने मनमें विचारने लगा कि) इन पूजनीय मुनियोंने मुझसे ऐसी बात क्यों कही कि 'यह बालक तुम्हारी सम्पत्तिका अधिपति होगा ।' अच्छा, अब मैं कौन-सा उपाय करूँ कि जिससे उन मुनियोंका वाक्य व्यर्थ हो जाय ॥ ४२ ॥

विचार्य मन्त्री नृपतेः शिशोर्वधं
समाह्वयत् सोऽन्त्यजवृन्दमातुरः।
रे रे पशुघ्ना वनगह्वरं महद्
विनीय बालं प्रतिहन्तुमर्हथ ॥ ४३ ॥
चिह्नं शरीरस्य किमप्यवश्य-
मानाय्यमस्मत्परितुष्टिकारि ।
ततो भवद्भ्यो विविधा महिष्यो
मया प्रदेया घटदुग्धभाजः ॥ ४४ ॥

यों विचार करते-करते राजमन्त्रीने उस बालकका वध करा देनेका ही निश्चय किया । तब वह आतुरतापूर्वक चाण्डालोंके समुदायको बुलाकर उनसे कहने लगा—'अरे पशुकी हत्या करनेवाले कसाइयो ! तुम्हें इस बालकको किसी विशाल गहन वनमें ले जाकर मार डालना चाहिये और इसके शरीरका कोई चिह्न भी अवश्य लाना चाहिये, जिससे मुझे सब तरहसे विश्वास हो जाय (कि तुमलोगोंने उसे निश्चय ही मार डाला है) । ऐसा करनेपर मैं तुम्हें घड़ा भर दूध देनेवाली अनेक जातिकी बहुत-सी गौएँ पुरस्कारस्वरूप दूँगा' ॥ ४३-४४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नारद उवाच

तस्य वाक्यं समाकर्ण्य चाण्डाला हर्षिताः शिशुम्।
प्रतार्य जगृहुर्मत्ता निन्युस्तं वनगह्वरम् ॥ ४५ ॥
भयानकैः पक्षिसङ्घैः सेवितं कण्टकैर्युतम्।

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! राजमन्त्रीकी बात सुनकर वे चाण्डाल परम प्रसन्न हुए और किसी प्रकार बहकाकर उन्होंने उस बालकको पकड़ लिया; फिर मदमत्त हुए वे उसे ऐसे गहन वनमें ले गये, जिसमें झुंड-के-झुंड भयानक पक्षी निवास करते थे और जो काँटोंसे भरा था ॥ ४५½ ॥

सुधार्मिकस्य तनयं हसन्तमवधार्य तम् ॥ ४६ ॥
शस्त्राणि शितधाराणि कोशेभ्यो जगृहुस्तदा।

तब उन्होंने राजा सुधार्मिकके उस हँसते हुए पुत्रको कसकर पकड़ लिया और म्यानोंसे तीखी धारवाली तलवारें निकालकर हाथमें ले लीं ॥ ४६½ ॥

भ्रमता तेन शिशुना या दृष्टा प्रतिमा हरेः ॥ ४७ ॥
शालग्रामशिला रम्या तां मुखे सोऽर्भकोऽक्षिपत्।

इससे पहले किसी समय नगरमें घूमते समय उस शिशुने भगवान् श्रीहरिकी शालग्राम-शिलामयी जो सुन्दर प्रतिमा देखी थी, उसे उठाकर उसने अपने मुखमें डाल लिया था ॥ ४७½ ॥

स क्रीडमानः शिशुभिर्यष्टिपाषाणगोलकैः ॥ ४८ ॥
उच्यमानो वयस्यैः किं सुखेन क्रीडसेऽमुना।
वर्तुलेनोपलेनाद्य सोऽब्रवीत्ताञ्छिशून् प्रति ॥ ४९ ॥

एक दिन वह बालकोंके साथ डंडे और पत्थरकी गुल्लीद्वारा खेल रहा था। उस समय उसके समवयस्क बालकोंने (एक शालग्रामशिला देकर उससे) कहा—'क्या तुम इस समय इस गोल पत्थरसे आनन्दपूर्वक खेलोगे?' तब उसने उन शिशुओंसे कहा—॥ ४८-४९ ॥

सखायः सन्ति बहुधा चित्रपाषाणगोलकाः।
ईदृशोऽनुपमः स्निग्धो नापरो वीक्षितो मया ॥ ५० ॥

'मित्रो! यों तो चित्र-विचित्र पत्थरोंके बहुत-से गुल्ले हैं, परंतु ऐसा अनुपम एवं चिकना गुल्ला मैंने दूसरा नहीं देखा है ॥ ५० ॥

क्रीडाम्येभिरहं पूर्वं वर्तुलैरश्मगोलकैः।
भग्नेषु तेषु चान्तेऽहं रमिष्याम्यधुना ध्रुवम् ॥ ५१ ॥
स बालस्तां शिलां रम्यां धारयन् वदनेऽरमत्।

'अतः इस समय पहले तो मैं इन पत्थरके सुडौल गुल्लोंसे खेलूँगा और जब ये टूट जायँगे, तब अन्तमें मैं निश्चय ही इसीसे खेलूँगा।' ऐसा कहकर वह बालक उस सुन्दर शालग्रामशिलाको मुखमें डालकर खेलने लगा ॥ ५१½ ॥

नारद उवाच

अनुग्रहान्मम पुरा ध्रुवो विष्णुमतोषयत् ॥ ५२ ॥
तथैव पार्थ देवेशं ध्यौ नारायणं स्वयम्।

नारदजी कहते हैं—पार्थ! जैसे पूर्वकालमें ध्रुवने मेरे अनुग्रहसे भगवान् विष्णुको संतुष्ट कर लिया था, उसी प्रकार वह बालक (उस शालग्राम-सेवनके प्रभावसे) स्वयं देवेश्वर भगवान् नारायणका ध्यान करने लगा—॥ ५२½ ॥

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ वासुदेव जनार्दन ॥ ५३ ॥
चाण्डालाः शितधारैश्च खड्गैर्घ्नन्ति जगत्पते।
पाहि मां परमानन्द सर्वव्यापिन् नमोऽस्तु ते ॥ ५४ ॥
ध्रुवश्च रक्षितो येन प्रह्लादो गजराट् तथा।

'भक्तोंके चित्तको आकर्षित करनेवाले श्रीकृष्ण! जगदीश्वर वासुदेव! जनार्दन! जगत्पते! ये चाण्डाल अपनी तीखी धारवाली तलवारोंसे मुझे मार डालना चाहते हैं। अतः परमानन्दस्वरूप भगवन्! मेरी रक्षा कीजिये। जिन्होंने ध्रुव, प्रह्लाद तथा गजराजको संकटसे बचाया था, उन सर्वव्यापी नारायणको मेरा प्रणाम स्वीकार हो ॥ ५३-५४½ ॥

निर्नाथनीचदीनानां त्वं नाथः परिगीयसे ॥ ५५ ॥
न माता न पिता बन्धुरस्माकं न च गोत्रजाः।
न त्राता यदि गोविन्द को मे त्राता भविष्यति ॥ ५६ ॥
पाहि व्यसनतो माद्य सर्वव्यापिन् नमोऽस्तु ते।

'भगवन्! जो अनाथ हैं, कुत्सित योनिमें पड़े हैं और दीन हैं, उनके लिये तो आपका ही 'दीनबन्धु और दीनानाथ' कहकर गुणगान किया जाता है। गोविन्द! मैं भी तो अनाथ ही हूँ; क्योंकि न तो मेरी माता जीवित है न पिता ही, न मेरे कोई भाई-बन्धु हैं, न हमारे कुटुम्बमें ही कोई है। ऐसी दशामें यदि आप इस संकटसे मेरा उद्धार नहीं करेंगे तो दूसरा कौन मेरा रक्षक होगा। अतः सर्वव्यापी प्रभो! आज इस विपत्तिसे मुझे उबारिये, आपको नमस्कार है' ॥ ५५-५६½ ॥

ततो देवः स भगवांश्चण्डालांस्तानमूमुहत् ॥ ५७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मोहितास्त्वन्त्यजा वाक्यमब्रुवन् कीदृशः शिशुः।
सुकुमारो विशालाक्षो दीर्घबाहुर्मनोहरः ॥ ५८ ॥
किं धृष्टबुद्धिना प्रोक्तं हन्तव्यो बालको वने।

तदनन्तर देवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने उन चाण्डालोंको मोहमें डाल दिया। तब मोहके वशीभूत हुए वे चाण्डाल यों कहने लगे—'भाइयो! यह कैसा सुकुमार बालक है। इसके नेत्र विशाल हैं, भुजाएँ घुटनोंतक लटक रही हैं और इसका रूप मनको चुराये लेता है। न जाने धृष्टबुद्धिने क्यों ऐसी आज्ञा दे दी कि इस बालकको वनमें ले जाकर मार डालो ॥ ५७-५८½॥

यच्चान्त्यजा वयं पूर्वं नानापापेन कर्मणा ॥ ५९ ॥
बालकस्य वधाद् घोराभविष्यामोऽत्र कीदृशाः।
अथवा केन दोषेण पितृभ्यां रहितोऽभवत् ॥ ६० ॥

'हमलोग तो यों ही पूर्वजन्मके नाना प्रकारके पापकर्मोंके परिणामस्वरूप चाण्डाल होकर उत्पन्न हुए हैं; फिर यदि हम इस बालकका वध कर डालें तो इस लोकमें हमारी कैसी दारुण दशा होगी। अथवा न जाने इस बालकने ही कौन-सा ऐसा पाप किया था, जिसके कारण यह माता-पितासे हीन हो गया' ॥ ५९-६० ॥

इत्युदीर्य शिशोर्देहं निरीक्षंस्तेऽन्त्यजास्तदा।
वामपादे कृशां षष्ठीमङ्गुलिं ददृशुस्तदा ॥ ६१ ॥

उस समय ऐसा कहकर वे चाण्डाल उस बालकके शरीरकी ओर निहारने लगे। तबतक उनकी दृष्टि उसके बायें पैरकी उस छोटी-सी छठी अँगुलीपर पड़ गयी ॥ ६१ ॥

छित्त्वा नयामश्चिह्नार्थं धृष्टबुद्धेर्दुरात्मनः।
इत्युक्त्वा चिच्छिदुः षष्ठीमङ्गुलिं तं विमुच्य च ॥ ६२ ॥

(तब वे कहने लगे कि काम तो बन गया) 'हमलोग दुरात्मा धृष्टबुद्धिको चिह्नरूपमें दिखानेके लिये इसकी अँगुलीको काटकर ले चलेंगे।' ऐसा कहकर उन चाण्डालोंने उस छठी अँगुलीको काट लिया और उस बालकको मुक्त कर दिया ॥ ६२ ॥

त्वरितास्ते पुरं जग्मुश्चिह्नमादाय हर्षिताः।
धृष्टबुद्धिं नमस्कृत्य दर्शयामासुरङ्गुलिम् ॥ ६३ ॥

तत्पश्चात् वे चिह्नस्वरूप उस अँगुलीको लेकर हर्षपूर्वक बड़ी उतावलीके साथ नगरको लौट गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने धृष्टबुद्धिको नमस्कार करके उसे वह अँगुली दिखायी ॥

जहर्ष हृदि दुर्बुद्धिर्मयाकारि वधो वृथा।
मुनीनामथ चाण्डालान् महिषीभिरतोषयत् ॥ ६४ ॥

उसे देख कुत्सित बुद्धिवाला धृष्टबुद्धि यह सोचकर हर्षके मारे मनमें फूला नहीं समाता था कि मैंने मुनियोंका वध व्यर्थ करा दिया। तत्पश्चात् उसने पुरस्काररूपमें भैंसें प्रदान करके चाण्डालोंको भी संतुष्ट कर दिया ॥ ६४ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि चन्द्रहासोपाख्याने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें चन्द्रहासका उपाख्याननामक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चन्द्रहासका जीवन-वृत्तान्त—वनमें पक्षियों और हरिणियोंद्वारा उस बालककी परिचर्या, कुलिन्दाधिपतिका वहाँ आना और उसे अपने घोड़ेपर बैठाकर नगरमें ले जाना, वहाँ राजाद्वारा बालककी शिक्षाका प्रबन्ध

नारद उवाच

शृणु पार्थ महाबाहो स बालो गहने वने।
स्मरणात् तव मित्रस्य चाण्डालैर्न हतस्तदा ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—महाबाहु पार्थ! अब आगेकी कथा सुनो, जब उस बालकने गहन वनमें तुम्हारे सखा श्रीकृष्णका स्मरण किया, तब चाण्डालोंने उसका वध नहीं किया ॥ १ ॥

बालो वा तरुणो वृद्धः स्त्री पुमान् देवकीसुतम्।
स्मरत्यहर्निशं पार्थ कृच्छ्रान्मुक्तो न संशयः ॥ २ ॥

पृथानन्दन! बालक, तरुण, वृद्ध, स्त्री अथवा पुरुष कोई भी हो, यदि वह रात-दिन देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करता है तो वह संकटसे मुक्त हो जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छिन्नषष्ठाङ्गुलिर्बालः क्षरद्रुधिरलेपवान्।
भृशं रुरोद दुःखार्तो मोहयन् हरिणीगणम्॥ ३॥

उस बालककी छठी अँगुली कट गयी थी, जिसकी पीड़ासे वह व्याकुल था। उस घावसे निकलते हुए खूनसे वह सन गया था; अतः जोर-जोरसे रोने लगा। उसकी चिल्लाहटको सुनकर हरिणियाँ भी मोहित हो गयीं॥ ३॥

पाहि मां देवदेवेश कृष्ण नाथ कृपानिधे।
कृच्छ्रान्मोचय मां कान्त सर्वव्यापिन् नमोऽस्तु ते॥४॥

(वह रोते हुए कहने लगा—) 'देवदेवेश्वर श्रीकृष्ण! मेरी रक्षा कीजिये। नाथ! आप तो कृपाके समुद्र हैं, अतः मुझे इस संकटसे छुड़ाइये। सर्वव्यापी स्वामिन्! आपको मेरा प्रणाम स्वीकार हो'॥ ४॥

ता हरिण्यः समागम्य लिलिहुश्चरणं शनैः।
अस्मत्पतिः स्वभर्तारं विहाय वनगह्वरम्॥ ५॥
प्रविष्टः कामुकोऽस्माकं तस्मात् तेन विवर्जितः।
मुखरूपेण चन्द्रोऽयं स्रवदश्रुलवः स्फुटम्॥ ६॥
वाहनेन विना स्वामी नभसः स्खलितो भुवि।
प्रसादयन्त्य इव ता लिलिहुर्विजने वने॥ ७॥

तदनन्तर वे हरिणियाँ उसके निकट जाकर धीरे-धीरे उसके घावयुक्त पैरको चाटने लगीं (और मन-ही-मन तर्क करने लगीं कि मालूम होता है) 'हमारे पति हरिण हमारे साथ रति-क्रीडा करनेकी इच्छासे अपने स्वामी (चन्द्रमा) को छोड़कर गहन वनमें प्रविष्ट हो गये हैं, इसी कारण आज ये उनसे रहित हो गये हैं। मुखकी कान्तिसे तो ये प्रत्यक्ष ही चन्द्रमा हैं। इनके नेत्रोंसे अश्रुकण झर रहा है। अपने वाहनसे हीन हो जानेके कारण ये स्वामी आकाशसे भूतलपर गिर पड़े हैं।' ऐसा विचारकर वे हरिणियाँ उस निर्जन वनमें उस बालकको प्रसन्न करती हुई-सी (उसके पैरको) चाटने लगीं॥ ५—७॥

पक्षिणो दुःखिताः सर्वे छायां पक्षैः स्म कुर्वते।
उलूका वृन्दशश्चैव स्थिता दुःखान्न निर्गताः॥ ८॥

सारे पक्षी उसके रुदनसे दुखी हो अपने पंखोंको फैलाकर उसपर छाया करने लगे। झुंड-के-झुंड उलूक अपने घोंसलोंमें बैठे ही रह गये, वे उसके दुःखसे दुखी होनेके कारण बाहर निकले ही नहीं॥ ८॥

पारावतास्तु तद्दुःखात् कृत्वा तु कठिनं स्वरम्।
पूरयन्ति स्म पाषाणैरुदरं शोकविह्वलाः॥ ९॥

उस बालकके दुःखसे शोक-विह्वल हुए कबूतर कठोर बोली बोलने लगे और पत्थर-कणोंसे अपने पेट भरने लगे॥

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो देशाध्यक्षः कुलिन्दकः।
तद्देशरक्षणार्थाय आगतो वनगह्वरे॥ १०॥

इसी अवसरपर उस देशका अधिपति कुलिन्द, जो उस वनप्रदेशकी देखभाल करनेके लिये उस गहन वनमें आया हुआ था, वहाँ आ पहुँचा॥ १०॥

अथो ददर्श तं बालं स्रवदश्रुलवाननम्।
जपन्तं हरिनामानि राम गोविन्द मापते॥ ११॥

तत्पश्चात् उसने जिसके मुखपर बहते हुए अश्रुबिन्दुओंकी धारियाँ पड़ी हुई थीं और जो 'राम, गोविन्द, रमापते' आदि भगवन्नामोंका जप कर रहा था, उस बालकको देखा॥ ११॥

त्राहि मां करुणासिन्धो द्रौपदी च यथा पुरा।
किमुपेक्षसि मां बालं वने मात्रा विवर्जितम्॥ १२॥

(वह बालक रोते हुए कह रहा था—) 'करुणासिन्धो! जैसे पहले आपने द्रौपदीको संकटसे उबारा था, उसी तरह आज मेरी भी रक्षा कीजिये। भगवन्! मैं मातृहीन बालक वनमें छोड़ दिया गया हूँ, ऐसी दशामें आप मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?॥ १२॥

यद्युपेक्षसि मां नाथ तवैव हि तदा त्रपा।
त्वद्भक्ता नावसीदन्ति श्रुतमेतन्मया विभो॥ १३॥

'नाथ! यदि आप मुझपर ध्यान नहीं देंगे तो ऐसी दशामें आपको ही लज्जित होना पड़ेगा; क्योंकि विभो! मैंने ऐसा सुन रखा है कि आपके भक्तोंको कष्ट नहीं भोगना पड़ता' १३

श्रुत्वा वाक्यं स नृपतिः कुलिन्दो विस्मयान्वितः।
अवतीर्य हयात् क्षिप्रं बालं च परिसान्त्वयन्॥ १४॥
उवाच वाक्यं मेधावी सोऽश्रूणि परिमार्जयन्।

बालककी बात सुनकर कुलिन्द आश्चर्यचकित हो गया। वह तुरंत ही अपने घोड़ेसे उतर पड़ा और फिर वह बुद्धिमान् नरेश उस बालकके आँसू पोंछकर उसे सान्त्वना देते हुए उससे पूछने लगा—॥ १४½॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कः पिता तव का माता क च ते सुहृदां गणः।
किमर्थं निर्जनेऽरण्ये स्थितः प्रब्रूहि मां शिशो ॥ १५ ॥

'बच्चा ! तेरे पिताका क्या नाम है ? तेरी माता कौन है ? तेरे सुहृद्-बन्धु आदि कुटुम्बीजन कहाँ हैं ? तू किस लिये इस निर्जन वनमें आ पड़ा है ? यह सब मुझे विस्तार-पूर्वक बता' ॥ १५ ॥

बालक उवाच

मम माता पिता कृष्णस्तेनाहं परिपालितः।
तमपश्यन् महाराज रोदनं क्रियते मया ॥ १६ ॥

बालकने कहा—महाराज ! मेरे माता-पिता तो श्रीकृष्ण हैं। उन्होंने ही अबतक मेरा पालन-पोषण किया है; परंतु आज मुझे उनका दर्शन नहीं हो रहा है, इसी कारण मैं रो रहा हूँ ॥ १६ ॥

श्रुत्वैतच्चिन्तयामास स राजा जनमेजय।
ममापुत्रस्य जायेत पुत्रोऽसौ वैष्णवः शिशुः ॥ १७ ॥

जनमेजय ! बालककी वह बात सुनकर राजा कुलिन्द विचार करने लगा कि मैं पुत्रहीन हूँ, अतः यदि यह विष्णु-भक्त शिशु मेरा पुत्र हो जाय तो अच्छा हो ॥ १७ ॥

इत्युक्त्वा तं समालिङ्ग्य धाजिपृष्ठे त्वरोपयत्।
स्वयं चारुह्य नगरीं चन्दनाह्वां कुलिन्दकः ॥ १८ ॥
ययौ परिजनैः सार्धं हर्षोद्रेकात् स्फुरद्भुजः।
गच्छन् पथ्यब्रवीत् सा मे पापर्द्धिः पुण्यदाभवत्॥

मन-ही-मन ऐसा कहकर राजा कुलिन्दने उस बालकको हृदयसे लगाकर उसे अपने घोड़ेकी पीठपर बैठा लिया और फिर स्वयं भी उसी घोड़ेपर चढ़कर वह अपने परिजनोंके साथ अपनी चन्दनावती नगरीकी ओर चल दिया। उस समय हर्षोद्रेकके कारण राजा कुलिन्दकी भुजाएँ फड़क रही थीं। मार्गमें जाते हुए वह कहने लगा कि 'मेरी जो सम्पत्ति अभीतक (पुत्र न होनेके कारण) पापस्वरूप थी, वह आज पुण्यदायिनी हो गयी' ॥ १८-१९ ॥

इत्थं ब्रुवन् स नगरीं सम्प्राप्तश्चन्दनावतीम्।
प्रविवेश कुलिन्दः स्वं भवनं पुत्रसंयुतः ॥ २० ॥

ऐसा कहते हुए राजा कुलिन्द अपनी चन्दनावती नगरीमें जा पहुँचा और उस पुत्रको साथ लिये हुए उसने अपने भवनमें प्रवेश किया ॥ २० ॥

मेधाविन्यै स्वराज्ञ्यै तं पुत्रं लब्धं न्यवेदयत्।
सा हर्षिताब्रवीद् वाक्यमशोच्याहं तु केवलम्।
जाता मनोरथाः सर्वे पावितहं न संशयः ॥ २१ ॥

वहाँ उसने उस प्राप्त हुए पुत्रको अपनी बुद्धिमती रानीकी गोदमें डाल दिया। तब रानी हर्षित होकर यों कहने लगी—'मुझे केवल पुत्रका ही अभाव था। (अब इस पुत्रके प्राप्त हो जानेसे) मैं शोचनीय नहीं रह गयी। मेरे सारे मनोरथ पूर्ण हो गये। इसने मुझे पवित्र कर दिया—इसमें संदेह नहीं है' ॥ २१ ॥

नारद उवाच

ततः कुलिन्दो मेधावी ह्युत्सवं समचीकरत्।
ब्राह्मणान् स्नातकान् वेदविदुषः पर्यपूजयत् ॥ २२ ॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! तदनन्तर बुद्धिमान् राजा कुलिन्दने पुत्रोत्सव मनानेका आयोजन किया। उस उत्सवमें उसने वेदवेत्ता स्नातक ब्राह्मणोंकी पूजा की ॥ २२ ॥

गणका अब्रुवन् हृष्टा हे कुलिन्द तवार्भकः।
अयं बहुश्रवाः श्रीमान् विष्णुभक्तो महायशाः।
चन्द्रः शुद्धमुखाद् रम्याद्धसतोऽस्य पतिष्यति ॥२३॥
चन्द्रहासेति नाम्नायं भविष्यति धरापतिः।

उस अवसरपर ज्योतिषी हर्षमें भरकर कहने लगे—'हे कुलिन्द ! तुम्हारा यह शोभाशाली बालक बहुत-से शास्त्रोंका श्रवण करनेवाला, भगवान् विष्णुका भक्त और महान् यशस्वी होगा। जिस समय यह हँसेगा, उस समय इसके सुन्दर एवं शुद्ध मुखसे चन्द्रमा गिरते हुए-से प्रतीत होंगे; इसलिये यह 'चन्द्रहास' नामसे विख्यात पृथ्वीपति होगा' ॥ २३½ ॥

ततः प्रभृति भोः पार्थ चन्द्रहासो दिने दिने ॥ २४ ॥
कुलिन्दस्याशया सार्धं व्यवर्धत यथा शशी।

पार्थ ! तबसे वह चन्द्रहास प्रतिदिन कुलिन्दकी आशाके साथ-साथ चन्द्रमाके समान बढ़ने लगा ॥ २४½ ॥

अकृष्टपच्या पृथिवी प्रजा आनन्दनिर्भराः ॥ २५ ॥
गावश्च घटदोहिन्यो देश आसन् मनोरमाः।

जबसे चन्द्रहास उस देशमें आया, तबसे वहाँकी भूमि बिना जोते ही अन्न उत्पन्न करने लगी। प्रजाएँ आनन्दमग्न रहने लगीं और गौएँ (हृष्ट-पुष्ट होनेके कारण) मनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आनन्द देनेवाली हो गयीं, वे घड़े-घड़े भर दूध देने लगीं ॥ २५½ ॥

सप्ताब्दिकश्चन्द्रहासो नानाक्षरविनिर्णयम् ॥ २६ ॥
विचार्य सम्यङ् मनसा हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
स जजाप सदा क्रुद्धस्तदा सोऽक्षरपाठकः ॥ २७ ॥

जब चन्द्रहासकी अवस्था सात वर्षकी हुई, तब उसने नाना प्रकारके अक्षर-समुदायोंपर भलीभाँति मनसे विचार किया। उस समय उसे 'हरि' ये दो ही अक्षर सर्वश्रेष्ठ प्रतीत हुए, अतः वह सदा उन्हींका जप करने लगा। तब उसके वर्णमाला-की शिक्षा देनेवाले गुरु क्रुद्ध होकर उससे पूछने लगे—२६-२७

अहर्निशं चन्द्रहास हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
उदाहरसि नान्यांस्त्वं वर्णान् पठसि चार्भक ॥ २८ ॥

'चन्द्रहास ! तू रात-दिन 'हरि' इन दो अक्षरोंका ही उच्चारण करता रहता है। अरे बालक ! तू दूसरे वर्णोंको क्यों नहीं पढ़ता ?' ॥ २८ ॥

चन्द्रहास उवाच

सिद्धो वर्णसमाम्नायः समग्रो ह्यच्युते मया ।
हरिरित्यक्षरालापान्नान्यन्निःसरते मुखात् ॥ २९ ॥
मदीयात् किं करोम्यद्य किंकरो भवतामहम् ।

चन्द्रहासने कहा—गुरुदेव ! मैं तो आपका किङ्कर हूँ। मैंने भगवान् श्रीकृष्णमें समस्त वर्णसमाम्नाय सिद्ध कर लिया है, अतएव 'हरि' इन दोनों अक्षरोंके उच्चारणके सिवा दूसरा अक्षर मेरे मुखसे निकलता ही नहीं। अब मैं क्या करूँ ॥ २९½ ॥

ततो गुरुश्चुकोपास्मै वंशं भिन्नं करे दधत् ॥ ३० ॥
ककेति भण भोः शिष्य यथैवं परिवर्तते ।

तब वे गुरुदेव चन्द्रहासपर कुपित हो गये और अपना फटा हुआ बाँसका डंडा हाथमें लेकर कहने लगे—'भो शिष्य ! तू 'क, का' इत्यादिका उच्चारण कर, जिससे पाठ बदलता रहे (और तुझे पढ़ना आ जाय)' ॥ ३०½ ॥

चन्द्रहासोऽब्रवीद् वाक्यं भीतवत् तं शनैः शनैः ॥ ३१ ॥
न भणामि कदाचिन्मे न जिह्वा परिवर्त्तते ।

तब चन्द्रहास भयभीत-सा होकर धीरे-धीरे गुरुदेवसे कहने लगा—'गुरुजी ! मैं कभी भी वैसा नहीं कह सकता; क्योंकि (अन्य वर्णके उच्चारणके लिये) मेरी जीभ लौटती ही नहीं ॥ ३१½ ॥

हरिनाम जपिष्यामि नान्यैः शास्त्रैः प्रयोजनम् ॥ ३२ ॥
यत्र नाम हरेर्नास्ति तानि शास्त्राणि किं प्रभो ।
यस्मिञ्छास्त्रे पुराणे च हरिनाम न दृश्यते ॥ ३३ ॥
श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ।

'मैं तो भगवान् श्रीहरिके नाम (अथवा 'हरि' इस नाम) का ही जप करूँगा। मुझे अन्य शास्त्रोंसे कोई प्रयोजन नहीं है। प्रभो ! जिन शास्त्रोंमें भगवान् श्रीहरिका नाम नहीं है, उन शास्त्रोंको लेकर क्या करना है ? क्योंकि जिस शास्त्र अथवा पुराणमें श्रीहरिके नामका गुणगान न दीख पड़े, उस शास्त्रको यदि स्वयं ब्रह्मा ही कहते हों तो भी उसे नहीं सुनना चाहिये' ॥ ३२-३३½ ॥

नारद उवाच

शृणु पार्थ महाबाहो वैष्णवस्य शिशोः पुनः ॥ ३४ ॥
चरितं चन्द्रहासस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।

नारदजी कहते हैं—महाबाहु पार्थ ! तुम विष्णु-भक्त बालक चन्द्रहासका आगेका चरित्र पुनः श्रवण करो। यह समस्त पातकोंका समूल नाश करनेवाला है ॥ ३४½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कुलिन्दभवनं ययौ ॥ ३५ ॥
चन्द्रहासगुरुर्गत्वा कुलिन्दं वाक्यमब्रवीत् ।

इसी बीचमें चन्द्रहासके गुरुजी क्रुद्ध होकर राजा कुलिन्द-के भवनको चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कुलिन्दसे इस प्रकार कहा—॥ ३५½ ॥

महद्भूतस्य संचारात् कस्यचित् तव पुत्रकः ।
अहर्निशं हरिरिति प्रजल्पन् परितिष्ठति ॥ ३६ ॥

'राजन् ! आपके पुत्रके शरीरमें किसी महान् भूतका संचार हो गया है, जिसके कारण वह रात-दिन 'हरि-हरि' यों प्रलाप करता रहता है ॥ ३६ ॥

पाठितोऽपि मया शास्त्रं कुबुद्धिर्न पठत्यसौ ।
यद्याज्ञा मम राजेन्द्र तर्हि शास्मि न संशयः ॥ ३७ ॥

'राजेन्द्र ! मेरे पढ़ानेपर भी यह दुर्बुद्धि शास्त्रका अध्ययन नहीं करता, अतः यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं इसे दण्ड देकर सुधार ले आ सकता हूँ; इसमें संशय नहीं है' ॥ ३७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुलिन्द उवाच

दैवाल्लब्धो मया पुत्रः स कथं ताड्यतेऽधुना।
ईदृशोऽपि पिशाचोऽयं मूर्खः पालयिता ध्रुवम् ॥ ३८ ॥

तब कुलिन्दने कहा—ब्रह्मन्! यह पुत्र मुझे बड़े भाग्यसे प्राप्त हुआ है। तब भला, अब उसे दण्ड कैसे दिया जा सकता है? अच्छा यदि वह इस प्रकार पिशाचग्रस्त होनेसे मूर्ख ही रह जायगा तो भी वह राज्यका पालन तो करेगा ही। यह तो निश्चित ही है ॥ ३८ ॥

नाश्रावि गुरुभिश्चित्रं शिशोराचरितं महत्।
एकादशीदिने प्राप्ते नान्नं भुङ्क्ते न चामृतम् ॥ ३९ ॥

आप गुरुजनोंने तो इस बालकके महान् विचित्र चरित्रको अभी सुना ही नहीं है। यह बालक एकादशीका दिन आनेपर न तो अन्न खाता है और न जल ही पीता है ॥ ३९ ॥

असुं विना कथं भुङ्क्ते तस्येयं स्थितिरीदृशी।
तस्माद् याहि गृहं विप्र चन्द्रहासो यथासुखम् ॥ ४० ॥
वर्त्ततामष्टमेऽब्देऽस्य मेखलाबन्धनक्रियाम्।
करिष्यामि ततश्चायं वेदाभ्यासं करिष्यति ॥ ४१ ॥

तब इसके भोजन किये बिना मैं ही कैसे अन्न-जल ग्रहण कर सकता हूँ। मेरे ऐसे भक्त पुत्रकी आप ऐसी पिशाचग्रस्ता दशा बतला रहे हैं। इसलिये विप्रवर! अब आप अपने घर जाइये और चन्द्रहास भी सुखपूर्वक विचरण करे। आठवें वर्षमें मैं इसका मेखलाबन्धन—यज्ञोपवीत-संस्कार करूँगा। तत्पश्चात् यह वेदाभ्यास कर लेगा ॥ ४०-४१ ॥

यथागतं गतो विप्रो हर्षितोऽभूत् कुलिन्दकः।
गाढमालिङ्ग्य तं पुत्रं चन्द्रहासं मनोरमम् ॥ ४२ ॥

तब वे ब्राह्मणदेव जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये और राजा कुलिन्द अपने उस मनको आनन्द देनेवाले पुत्र चन्द्रहासका गाढ़ आलिङ्गन करके परम प्रसन्न हुआ (और कहने लगा—) ॥ ४२ ॥

अनेनैकेन पुत्रेण पविता विषया मम।
विष्णुभक्तेन दक्षेण किमन्यैर्बहुभिः सुतैः ॥ ४३ ॥

'मेरे इस विष्णुभक्त तथा कार्यदक्ष एकमात्र पुत्रने मेरे राज्य एवं उसमें निवास करनेवाली सारी प्रजाओंको पवित्र कर दिया। अन्य बहुत-से कुपुत्रोंके होनेसे क्या लाभ?' ॥ ४३ ॥

सर्पिण्या बहवः पुत्रा जायन्ते हरिभक्षकाः।
अयं हरिपदध्यानगतचित्तः सुतो मम ॥ ४४ ॥

'सर्पिणीके तो बहुत-से पुत्र होते हैं, किंतु वे मेढ़कोंका भक्षण करनेवाले ही होते हैं; परंतु मेरे इस पुत्रका चित्त सदा भगवान् श्रीहरिके चरणोंके ध्यानमें ही लीन रहता है ॥ ४४ ॥

किं मयाऽऽचरितं पूर्वं तपः पञ्चाग्निसाधनम्।
येनाहं प्राप्तवान् पुत्रं वैष्णवं जनवल्लभम् ॥ ४५ ॥

'पूर्व जन्ममें मैंने पञ्चाग्नि-तापन आदि न जाने कौन-सा ऐसा तप किया था, जिसके फलस्वरूप मुझे यह विष्णुभक्त तथा प्रजाजन-वल्लभ पुत्र प्राप्त हुआ है' ॥ ४५ ॥

नारद उवाच

अथाष्टमेऽब्दे सम्प्राप्ते मेखलाबन्धनक्रियाम्।
चन्द्रहासस्य सकलां व्यदधात् स कुलिन्दकः ॥ ४६ ॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तदनन्तर आठवाँ वर्ष आनेपर राजा कुलिन्दने चन्द्रहासकी मौञ्जीबन्धनसम्बन्धी समस्त क्रियाएँ विधिवत् सम्पन्न कीं ॥ ४६ ॥

ततो वेदाहुतीर्हुत्वा साङ्गं वेदमपाठयत्।
अपीपठच्चन्द्रहासो वेदं ध्यायन् हरिं हृदि ॥ ४७ ॥

तत्पश्चात् वेदमन्त्रोंद्वारा अग्निमें आहुतियाँ डालकर कुलिन्दने अपने पुत्रके लिये षडङ्गोंसहित वेद पढ़नेका प्रबन्ध कर दिया और चन्द्रहास अपने हृदयमें भगवान् श्रीहरिका ध्यान करते हुए वेदाध्ययन करने लगा ॥ ४७ ॥

पठित्वा निखिलं वेदं सोऽब्रवीत् प्रीयतां हरिः।
वेदेषु स्मृतिशास्त्रेषु गीयते मे प्रभुर्हरिः ॥ ४८ ॥

सम्पूर्ण वेदकी शिक्षा समाप्त करके वह कहने लगा कि 'सारे वेदों तथा स्मृति-शास्त्रोंमें जिन मेरे स्वामी श्रीहरिका गुणगान किया गया है, वे भगवान् मुझपर प्रसन्न हों' ॥ ४८ ॥

तन्न पश्याम्यहं वस्तु यत्र नायं हरिः स्थितः।
इत्थं वेदार्थमालोक्य धनुर्वेदमथाभ्यसत् ॥ ४९ ॥

'मुझे तो ऐसी कोई वस्तु दीखती ही नहीं कि जिसमें श्रीहरि व्याप्त न हों।' इस प्रकार वेदार्थको हृदयङ्गम करके चन्द्रहास धनुर्वेदका अभ्यास करने लगा ॥ ४९ ॥

हृदङ्गणे हरिं लक्ष्यं स्थाप्य बाणानमूमुचत्।
सज्जकिंचाप वर्त्तन्त दृढं तं सात्त्विकं गुणम् ॥ ५० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परामृश्य च संयोज्य चित्तमेकं शरः कृतः।
येनापि ऋजुना बालः प्राप लक्ष्यं जनार्दनम् ॥ ५१ ॥

उसने अपने हृदयरूपी मैदानमें श्रीहरिको लक्ष्य बनाकर स्थापित कर लिया, फिर विचार करके सद्भक्तिरूपी धनुषपर सुदृढ़ सत्त्वगुणरूपी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और एकमात्र अपने चित्तको ही बाण बनाया। तत्पश्चात् धनुषपर उस बाणका संधान करके अपने लक्ष्य (श्रीकृष्ण) पर बाण छोड़ने लगा। ऐसी सरल प्रक्रियाद्वारा भी उस बालकने अपने लक्ष्यभूत श्रीकृष्णको प्राप्त कर लिया ॥ ५०-५१ ॥

अमुना तु प्रकारेण ये तु लक्ष्यं न जानते।
ताञ्जनार्दयत्येव तल्लक्ष्यं पाण्डुनन्दन ॥ ५२ ॥

पाण्डुनन्दन ! जो लोग इस ढंगसे उस लक्ष्य (श्रीकृष्ण) को नहीं जानते हैं, उन्हें वह लक्ष्य ही पीडित करता है। अर्थात् श्रीकृष्णकी प्राप्ति न होनेसे वे दुःखार्णवमें गोते लगाते रहते हैं ॥ ५२ ॥

नारद उवाच

शरीरतूणात् स्वयमेव पञ्च
बाणा ययुस्तस्य कुलिन्दसूनोः।
एकीभवंस्तस्य ह्यनुप्रविष्टा
जनार्दनं लक्ष्यमतीव चित्रम् ॥ ५३ ॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! उस कुलिन्दकुमार चन्द्रहासके शरीररूपी तरकससे स्वयं ही पाँच (शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्शरूप) बाण निकले और वे बाण एकीभूत होकर उसके लक्ष्यभूत श्रीकृष्णमें जा घुसे। यह अत्यन्त अद्भुत बात हुई ॥ ५३ ॥

एवं धनुर्वेदमथाभ्यसत् स
ततो गुरूंस्तानपि पर्यपूजयत्।
वाजीगणं शत्रुगणं समग्र-
मपीपलद् देशमजीजयत् तम् ॥ ५४ ॥

इस प्रकार चन्द्रहासने धनुर्वेदका अभ्यास किया। तत्पश्चात् उसने अपने उन गुरुओंका भी सम्यक्‌रूपसे आदर-सत्कार किया। फिर अश्वसमूहों तथा समस्त शत्रुगणोंको वशमें करके उनकी रक्षा की और उस देशपर अधिकार जमा लिया ॥

हंसाधिरूढश्च सकुण्डलोऽसौ
खलीनमाक्रम्य चकार नम्रम्।
गुरुभ्य आह स्म न मे भ्रमोऽस्ती-
त्यूचे हरिं प्राप्य कथं विमूढः ॥ ५५ ॥

एक बार कुण्डलमण्डित चन्द्रहास घोड़ेपर सवार हुआ और उसकी लगाम खींचकर उसे अपने वशमें किया; फिर अपने गुरुजनोंसे कहने लगा कि मुझे (अपने धनुर्वेदकी शिक्षाके विषयमें) कोई भ्रम नहीं है; क्योंकि श्रीकृष्णको पाकर मनुष्य विमूढ़ कैसे रह सकता है ? ॥ ५५ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि चन्द्रहासोपाख्याने चन्द्रहासविद्याभ्यासवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें चन्द्रहासोपाख्यानके प्रसंगमें चन्द्रहासका विद्याध्ययननामक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चन्द्रहासोपाख्यान—अर्जुनके पूछनेपर नारदजीका चन्द्रहासकी तरुण-अवस्थाके चरित्रोंका वर्णन करना चन्द्रहासका दिग्विजय करके बहुत-सी सम्पत्तिके साथ चन्दनावतीपुरीको लौटना, कुलिन्दद्वारा उसका स्वागत तथा अपने पदपर अभिषेक, चन्द्रहासका अपनी प्रजाको एकादशीका माहात्म्य बतलाते हुए व्रत-पालनका आदेश देना, कुलिन्दके कहनेसे कररूपमें बहुत-सी धनराशि कुन्तलपुर भेजना, राजमन्त्री धृष्टबुद्धिका चन्दनावतीपुरीमें आना और चन्द्रहासको देखकर सशङ्कित होना

अर्जुन उवाच

धन्यास्ते विषया येषु तादृशो वैष्णवः स्थितः।
अभ्यासमीदृशं चक्रे धनुर्वेदस्य यो नरः ॥ १ ॥

अर्जुनने कहा—नारदजी ! जिसने इस प्रकार धनुर्वेदका अभ्यास किया है, वैसा विष्णु-भक्त चन्द्रहास जिनमें निवास करता है, वे देश धन्य हैं ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरिभक्तं कदा वीक्षे इतीहा मे सदाभवत्।
आवयोः शब्दसांनिध्यं वर्तते नेतरेष्विदम्॥ २॥

देवर्षे! मेरे मनमें सदा ऐसी इच्छा बनी रहती थी कि मुझे कब हरिभक्तका दर्शन प्राप्त होगा? हमारे और आपमें जो यह शब्दसान्निध्य—वार्तालाप हो रहा है, यह दूसरोंके लिये दुर्लभ है॥ २॥

औत्तानचरणो व्योम्नि पाताले स बलिः स्थितः।
विभीषणस्तु लङ्कायां स स्वर्गे नः पितामहः॥ ३॥
इतस्ततस्त्वं भ्रमसि कुतस्त्वद्दर्शनं मम।
अधुना भाग्यसंयोगाज्जातो नौ संगमो मुने॥ ४॥

राजा उत्तानपादके पुत्र (भक्तप्रवर) ध्रुव आकाशमें विराजमान हैं, हरिभक्त राजा बलि पातालमें बैठे हैं, राम-भक्त विभीषण लङ्कामें निवास करते हैं और श्रीकृष्ण-भक्त हमारे पितामह भीष्म स्वर्ग सिधार गये। शेष रहे आप, सो आप भी इधर-उधर भ्रमण ही करते रहते हैं, अतः आपका दर्शन मुझे कहाँसे हो सकता है? मुने! इस समय बहुत बड़े भाग्यके संयोगसे हमारा-आपका समागम हो पाया है॥ ३-४॥

अधुना चन्द्रहासं तं दृष्ट्वा प्राप्स्ये महत्फलम्।
कथयस्व कथामेतां सुधारूपां मनोरमाम्॥ ५॥

अब मैं हरिभक्त चन्द्रहासका दर्शन करके महान् फलका भागी होऊँगा। आप मनको आनन्द प्रदान करनेवाली उस अमृतस्वरूपिणी कथाका वर्णन कीजिये॥ ५॥

तारुण्यं विषमं प्राप्य किमाचरितवान् मुने।
चन्द्रहासो नृपवरस्तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः॥ ६॥

मुने! विषम तरुण-अवस्था प्राप्त होनेपर नृपश्रेष्ठ चन्द्रहासने कैसा आचरण किया, वह सब मुझे यथार्थरूपसे बताइये॥ ६॥

नारद उवाच

अथोनषोडशाब्दोऽसौ जनकं वाक्यमब्रवीत्।
विभो ददासि चेन्मह्यमाज्ञां दिग्विजयाय तान्॥ ७॥
याम्यहं सकलान् भूपाञ्जित्वा तव बलादरीन्।
धनं समानयिष्यामि नरराजैः समं नृप॥ ८॥

नारदजीने कहा—अर्जुन! जब चन्द्रहास पंद्रह वर्षका हो गया, तब उसने अपने पिता कुलिन्दसे इस प्रकार कहा—'सामर्थ्यशाली राजन्! यदि आप मुझे आज्ञा दें दें तो मैं दिग्विजयके लिये जाना चाहता हूँ। मैं आपके उन समस्त वैरी राजाओंको बलपूर्वक जीतकर उन नरेशोंके साथ-साथ बहुत-सा धन ले आऊँगा'॥ ७-८॥

कुलिन्दः प्रत्युवाचेदं कथमेकः प्रयास्यसि।
राजानः सन्ति दुर्जेयाः सैन्येन महता वृताः॥ ९॥

तब कुलिन्दने यों उत्तर दिया—'बेटा! इधर ऐसे राजा हैं, जो दुर्जेय हैं। उनके पास बड़ी-बड़ी सेनाएँ हैं, ऐसी दशामें तुम अकेले उनपर कैसे आक्रमण कर सकोगे?॥ ९॥

अथवा वासुदेवं तं संस्मृत्य गच्छसे हठात्।
अस्मत्स्वामी धृष्टबुद्धिर्मन्त्री कौन्तलपस्य सः॥ १०॥
शतग्रामक एवायं देशस्तेनार्पितो मम।
इतस्तस्यैव नृपतेर्वैरिणो बलवत्तराः॥ ११॥
पीडयन्ति स्म मद्देशं त्वामाकर्ण्योपरेमिरे।

'अथवा यदि तुम वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका स्मरण करके हठपूर्वक जाना ही चाहते हो तो मेरी बातपर ध्यान दो—कुन्तलनरेशके मन्त्री जो धृष्टबुद्धि हैं, वे हमारे स्वामी हैं। उन्होंने ही मुझे यह सौ गाँवोंका प्रदेश दे रखा है। इधर ही उन नरेशके अधिक बलवान् शत्रु भी हैं, जो सदा मेरे देशको पीड़ा पहुँचाते रहते थे। इस समय तुम्हारा पराक्रम सुनकर वे उपरत हो गये हैं; अतः तुम्हारे लिये उन्हींको परास्त करना आवश्यक है'॥ १०-११½॥

इत्थं पितुर्वचः श्रुत्वा चन्द्रहासो ययौ मुदा॥ १२॥
रथिभिः पञ्चभिः सार्धं देशांस्तान् वीरपूरितान्।
तान् सर्वानजयद् धन्वी चन्द्रहासो नृपान् हसन्॥ १३॥

पिताकी ऐसी बात सुनकर चन्द्रहास पाँच रथियोंको साथ लेकर आनन्दपूर्वक उन वीरोंसे भरे हुए देशोंकी ओर चल दिया। वहाँ पहुँचकर धनुर्धर वीर चन्द्रहासने हँसते-हँसते उन सभी राजाओंको जीत लिया॥ १२-१३॥

वृथा राज्यमदेनामी मत्ता नाराधयन् हरिम्।
परिभूतान् मया मत्तान् रथिनः सादिनो नरान्॥ १४॥
न रक्षिता मया ग्रस्तानृते देवं जनार्दनम्।

(और कहने लगा—) 'व्यर्थ ही ये राजालोग राज्यमदसे उन्मत्त हो गये थे, जिसके कारण उन्होंने श्रीहरिकी आराधनासे मुख मोड़ लिया। अब मैंने इन राज्याभिमानियोंको रथी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घुड़सवार और पैदल सैनिकोंसहित परास्त कर दिया है। मेरे द्वारा आक्रान्त हुए इन नरेशोंकी भगवान् श्रीकृष्णके अतिरिक्त दूसरा कोई रक्षा करनेवाला नहीं है ॥ १४½ ॥

चन्द्रहासभयाद् भीता वैरिणस्ते विलिल्यिरे।
वासुदेवकथालापात् कलिदोषा यथोत्कटाः ॥ १५ ॥

फिर तो जैसे भगवान् श्रीकृष्णका गुणगान करनेसे कलियुगके उत्कट दोष विलीन हो जाते हैं, उसी तरह वे शत्रुता रखनेवाले राजा चन्द्रहासके भयसे भीत होकर इधर-उधर छिप गये ॥ १५ ॥

नारद उवाच

विजित्य नृपतीन् सर्वान् गजानश्वान् सहस्रशः।
सुवर्णरत्नमुक्ताभिः पूरिताञ्छकटान् बहून् ॥ १६ ॥
चन्द्रहासः समादाय स्वां पुरीं चन्दनावतीम्।
आविवेश कुलिन्देन सम्मुखेनाभिनन्दितः ॥ १७ ॥
दीपदीपितपात्रेण मात्रा नीराजितस्तथा।

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! इस प्रकार चन्द्रहासने समस्त वैरी राजाओंको जीतकर हजारों हाथी, घोड़े तथा सुवर्ण, रत्न और मोतियोंसे भरे हुए बहुत-से छकड़े साथ लिये हुए अपनी चन्दनावतीपुरीमें प्रवेश किया। उस समय राजा कुलिन्दने सम्मुख आकर उसका अभिनन्दन किया तथा माताने प्रज्वलित दीपकोंद्वारा प्रकाशित थाल हाथमें लेकर उसकी आरती उतारी ॥ १६-१७½ ॥

पितरौ च नमस्कृत्य शिबिकायामरोपयत् ॥ १८ ॥
नरवाहैर्गृहीतायां पदातिः प्रययौ पुरः।
वहन्नुपानहौ पित्रोश्चन्द्रहासोऽब्रवीद् वचः ॥ १९ ॥

तब चन्द्रहासने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और उन्हें एक पालकीमें बैठाया, जिसे मनुष्य अपने कंधेपर उठाकर ले चल रहे थे तथा स्वयं वह अपने माता-पिताकी जूतियोंको हाथमें लेकर पैदल ही उनके आगे-आगे चला। उस समय चन्द्रहास इस प्रकार कहने लगा—॥ १८-१९ ॥

पित्रोर्भक्त्या विना किंचिल्लभ्यते भुवि नो नरैः।
लक्ष्मीनारायणावेतौ पितरौ चिन्तयाम्यहम् ॥ २० ॥

'इस भूतलपर माता-पिताकी भक्तिके बिना मनुष्योंको कोई भी उत्तम वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती; मैं अपने इन माता-पिताको लक्ष्मी-नारायणका साक्षात् स्वरूप समझता हूँ' ॥ २० ॥

नारद उवाच

चतुष्पथे समायान्तं ददृशुः पौरयोषितः।
चन्द्रहासं विशालाक्षं हसन्तं मदनं श्रिया ॥ २१ ॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! जो अपनी शोभासे कामदेवका भी उपहास कर रहा था, उस विशाल नेत्रोंवाले चन्द्रहासको चौराहेपर आते हुए नगरनिवासिनी स्त्रियोंने देखा २१

चन्द्रहास इह चागतः सखीं
प्राह काचिदबला च सस्मितम्।
चन्द्रहास इह यावदञ्चितो
हन्ति पातकचमूं विलोकनैः ॥ २२ ॥

तब कोई स्त्री अपनी सखीसे मुसकराती हुई कहने लगी—'सखी! चन्द्रहास इधर ही आ रहे हैं। जबतक इनका यहाँ स्वागत-सत्कार होगा, तबतक ये पापकी विशाल सेनाका दृष्टियोंद्वारा ही संहार कर डालेंगे' ॥ २२ ॥

तामथालपत काचिदहोस्वि-
ल्लज्जसे न गदती किमवद्यम्।
यः सदा हसति कामुकवृन्दं
मन्त्रिजो विकलमेतदवश्यम् ॥ २३ ॥

फिर कोई दूसरी उससे बोली—'अरी सखी! तुझे ऐसी निन्दित बात कहनेमें लज्जा क्यों नहीं आती है? ये मन्त्रिकुमार तो सदा विकल और अपने वशमें न रहनेवाले (अजितेन्द्रिय) कामियोंके समूहपर हँस रहे हैं' ॥ २३ ॥

एवमादि वचः शृण्वंश्चन्द्रहासः स्वमालयम्।
प्रविवेश सुहृन्मित्रपितृव्यादीन् प्रतोषयन् ॥ २४ ॥

इस प्रकारकी अनेक बातें सुनते हुए चन्द्रहासने अपने सुहृद्, मित्र तथा पितृव्य आदि कुटुम्बियोंको विशेषरूपसे संतुष्ट करके अपने भवनमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥

अथाभ्यषिञ्चत् तं पुत्रं चन्द्रहासं स्वके पदे।
वेदविद्भिर्द्विजैः सार्धं कुलिन्दः पञ्चमीदिने ॥ २५ ॥

तदनन्तर पञ्चमीके दिन कुलिन्दने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको साथ लेकर अपने पुत्र चन्द्रहासको अपने राज्यपदपर अभिषिक्त कर दिया ॥ २५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महोत्सवं तदा चक्रुः पौराः सर्वे यथाक्रमम्।
प्रक्षाल्य तोयैः प्रथमं स्वानि स्वान्यङ्गणानि च ॥ २६ ॥
प्रमार्जुश्चन्दनैः शुभ्रैश्चान्द्रैः संचूर्णकैर्व्यधुः।
चतुष्काणि पताकाश्च वितेनुर्हर्षिता जनाः ॥ २७ ॥
उच्चैर्जगुर्नाम हरेः पदैर्ललितवर्त्तनैः।

उस अवसरपर समस्त पुरवासीजन हर्षित होकर अपनी-अपनी स्थितिके अनुसार महोत्सव मनाने लगे। पहले उन्होंने अपने-अपने घरोंके आँगनोंको जलसे धोकर शुद्ध किया, फिर उन आँगनोंमें कपूरचूर्णमिश्रित सफेद चन्दनसे चौक पूर दिया। अपने-अपने घरोंपर पताकाएँ फहरायीं। फिर वे सुन्दर लययुक्त पदोंद्वारा उच्च स्वरसे भगवन्नामोंका कीर्तन करने लगे ॥ २६-२७½ ॥

एकीभूय ततः पौराश्चन्द्रहासमपूजयन् ॥ २८ ॥
चन्दनेन सुगन्धेन केसरेण सुचन्द्रिणा।
तथा चम्पकमालाभिर्धूपैरगुरुजैः शुभैः ॥ २९ ॥
नीराजयन्ति स्म तदा तं च कर्पूरदीपकैः।
एवं सम्पूजितः पौरैश्चन्द्रहासोऽब्रवीच्च तान् ॥ ३० ॥

तत्पश्चात् सभी नागरिकोंने एकत्र होकर सुगन्धित चन्दन, केसर, उत्तम कपूर, चम्पाके पुष्पोंसे गुँथी हुई मालाओं और माङ्गलिक अगुरुके धूपोंसे चन्द्रहासका पूजन किया तथा कपूरके दीपकोंसे उसकी आरती उतारी। इस प्रकार पुरवासियोंद्वारा भलीभाँति सत्कृत होनेपर चन्द्रहासने उनसे कहा—॥२८–३०॥

अतः प्रभृति भोः पौराः प्राप्ते याम्ये दिने शुभे।
उत्सवं चैकभक्तं यो न करोति स मे रिपुः ॥ ३१ ॥
तथा विष्णोस्तिथौ चान्नं यो भुङ्क्ते स महानरिः।

'ऐ मेरे पुरवासियो! आजसे लेकर दशमीका शुभ दिन आनेपर जो नागरिक एक समय भोजन करके उत्सव नहीं करेगा, वह मेरे लिये शत्रुके समान होगा तथा विष्णुकी तिथि—एकादशीके दिन जो अन्न खायगा, उसे मैं अपना महान् शत्रु समझूँगा ॥ ३१½ ॥

पातकानां गणः सर्वः प्राप्ते चैकादशीदिने ॥ ३२ ॥
भीतो विलीयते चान्ने न भोक्तव्यं ततो नरैः।

एकादशीका दिन आनेपर पातकोंका समस्त समुदाय भयभीत होकर अन्नमें छिप जाता है, इसलिये उस दिन मनुष्योंको अन्न नहीं खाना चाहिये ॥ ३२½ ॥

घटिकाः षट् तु पञ्चाशद् दृश्यते दशमी यदा ॥ ३३ ॥
रिक्ता तिथिः सा मन्तव्या दशमी त्वपरेऽहनि।
अविद्धा चैव कर्तव्या वैष्णवैर्विष्णुवल्लभा ॥ ३४ ॥

जिस दिन दशमी छप्पन घड़ीतक रहनेवाली हो, उस दिन उसे रिक्ता (नवमी) मानना चाहिये और दशमीका उत्सव अगले दिन करना चाहिये; जो एकादशी दशमीसे विद्ध नहीं रहती, वह भगवान् विष्णुको प्यारी होती है, उसी एकादशीका व्रत वैष्णवोंको करना चाहिये ॥ ३३-३४ ॥

पापाद् भीता धर्मरता विष्णोर्भक्तिसमन्विताः।
उभयोः पक्षयो रात्रौ ये जाग्रति हरेर्दिने ॥ ३५ ॥
तेषामहं सदा दासो भविष्यामि न संशयः।

'जो विष्णुकी भक्तिसे संयुक्त तथा धर्मपरायण मनुष्य पापसे भयभीत होकर दोनों पक्षकी एकादशीके दिन रातमें जागरण करते हैं, उनका मैं सदा दास बना रहूँगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥ ३५½ ॥

आयुष्यं चपलं तादृग् जलबुद्बुदसंनिभम् ॥ ३६ ॥
चिन्तयध्वं जना मूढा माधवं वर्ष्म सुस्थिरम्।

'माया-मोहमें पड़े हुए मनुष्यो! यह आयु जलके बुलबुलेके समान क्षणभङ्गुर है, अतः तुमलोग इस शरीरमें सुस्थिर रहनेवाले माधवका ध्यान करो ॥ ३६½ ॥

अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मांसक्षतजलेपनम् ॥ ३७ ॥
शतच्छिद्रं ग्रहैर्व्याप्तं लोभक्रोधादिवैरिभिः।
एतादृशं शरीरं च व्रतमेकादशीसमम् ॥ ३८ ॥
यद् विचार्य क्षमं बुद्ध्या तद् यूयं कर्तुमर्हथ।

'यह शरीर एक घर है, इसमें हड्डियोंके खंभे लगे हैं, यह नस-नाडियोंसे बँधा है, इसपर मांस और रक्तका लेप लगा हुआ है। इसमें सैकड़ों छिद्र हैं तथा यह ग्रहोंसे आक्रान्त तथा लोभ-क्रोध आदि शत्रुओंसे व्याप्त है। ऐसा तो यह तुच्छ शरीर है और उधर एकादशीके समान उत्तम व्रत नहीं है, अतः अब तुमलोगोंको अपनी बुद्धिसे विचार करनेपर जो युक्त प्रतीत हो, उसका पालन करना चाहिये ॥ ३७-३८½ ॥

एकादशीसमं किंचित् पावनं भुवनत्रये ॥ ३९ ॥
न श्रुतं न मया दृष्टं तस्याः स्वामी हरिर्यतः।
इत्यादिभाषणेनैव पौरा हृष्टास्तदनुमेनिरे ॥ ४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'एकादशीके समान पवित्र करनेवाला दूसरा कोई व्रत इस त्रिलोकीमें न तो मैंने सुना है और न देखा ही है; क्योंकि इसके स्वामी साक्षात् श्रीहरि हैं।' चन्द्रहासके इस प्रकार आदेश देनेपर समस्त पुरवासियोंने हर्षपूर्वक उस आज्ञाका अनुमोदन किया ॥ ३९-४० ॥

सुवर्णरत्नवासोभिः पौरानन्यांश्च दुर्बलान् ।
चन्द्रहासो द्विजान् सर्वान् समलंकृतवान् मुदा ॥ ४१ ॥

तदनन्तर चन्द्रहासने समस्त ब्राह्मणों तथा अन्य दुर्बल—गरीब पुरवासियोंको आनन्दपूर्वक सुवर्ण, रत्न और वस्त्र प्रदान करके उन्हें भलीभाँति अलंकृत किया ॥ ४१ ॥

मन्दिराणि विचित्राणि स्त्र द्विजार्थमकारयत् ।
वापीकूपतडागादि पूर्तं विष्ण्वालयानि च ॥ ४२ ॥
शिवालयानि सत्राणि बहून् योगेश्वराश्रमान् ।
प्रपाश्चकार विविधाः फलपत्रपयोऽधिकाः ॥ ४३ ॥

फिर उसने ब्राह्मणोंके लिये बहुत-से सुन्दर-सुन्दर घर बनवा दिये । अपने राज्यमें बावड़ी, कुँआ, पोखरा आदि पूर्तकर्म, विष्णु-मन्दिर, शिवालय, अन्नसत्र, योगेश्वरोंके निवास-योग्य बहुत-से आश्रम तथा जिनमें फल, पत्र और जलकी बहुतायत थी, ऐसे अनेक प्रकारके पौंसले निर्माण कराये ॥

नारद उवाच

देशाद् देशात् तदा लोका आजग्मुश्चन्दनावतीम् ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रप्रभृतयः प्रजाः ॥ ४४ ॥
पुत्रपौत्रैः परिवृता धनधान्यसमन्विताः ।
संस्थापयामास मुदा प्रजाः सर्वाः कुलिन्दजः ॥ ४५ ॥

नारदजी कहते हैं—पार्थ ! उस समय देश-देशान्तरोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि सभी वर्णके लोग अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ धन-धान्यसे संयुक्त होकर चन्दनावती-पुरीमें बसनेकी इच्छासे आने लगे और कुलिन्दकुमार चन्द्रहासने उन सभी समागत प्रजाओंको हर्षपूर्वक अपने नगरमें (यथायोग्य स्थान देकर) बसा दिया ॥ ४४-४५ ॥

प्रजाभिरष्टादशभिर्हृष्टाभिश्च समन्वितः ।
चन्द्रहासो हरौ भक्तिं व्यवर्धयत तां पुरीम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकार हर्षपूर्वक निवास करती हुई अठारह प्रकारकी प्रजाओंके साथ चन्द्रहास अपनी उस नगरीमें भगवान् श्रीहरिकी भक्तिकी उत्तरोत्तर वृद्धि करने लगा ॥ ४६ ॥

यस्यां समागतश्चार्थी कुबेरं हसति श्रिया ।
दत्तया चन्द्रहासेन प्रीयतामित्यधोक्षजः ॥ ४७ ॥

उस नगरीमें आये हुए याचकको चन्द्रहास 'भगवान् अधोक्षज प्रसन्न हों' इस बुद्धिसे इतना धन देता था, जिससे वह अर्थी कुबेरका उपहास करने लगता था ॥ ४७ ॥

तां चन्दनाह्वां परिपालयन्तं
तं चन्द्रहासं जनकः कुलिन्दः ।
उवाच हे पुत्र मया प्रदेयं
निष्कायुतं कुन्तलपाय राज्ञे ॥ ४८ ॥
तदर्धमस्मत्प्रभवे प्रदेयं
तदर्धमप्यर्धममुष्य पत्न्यै ।
तत्प्रेषयाशु त्वमुदारसत्त्व
प्रीतिं यथा मन्त्रिनृपौ लभेताम् ॥ ४९ ॥

इस प्रकार जब चन्द्रहास उस चन्दनावतीपुरीका पालन कर रहा था, उसी समय उसके पिता कुलिन्दने उससे कहा—'हे पुत्र ! मुझे कुन्तलपुरका पालन करनेवाले राजाको

---

१. मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तर्वेशिक (अन्तःपुराध्यक्ष), कारागाराध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, यथायोग्य कार्योंमें धनका व्यय करनेवाला सचिव, प्रदेष्टा (पहरेदारोंको काम बतानेवाला), नगराध्यक्ष, कार्यनिर्माणकर्ता (योजना बनानेवाला अथवा शिल्पियोंका परिचालक), धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राष्ट्रसीमापाल तथा वनरक्षक—इन अठारह तीर्थोंको ही यहाँ अठारह प्रकारकी प्रजा कहा गया है। नीतिशास्त्रमें इन अठारह तीर्थोंके नाम इस प्रकार उपलब्ध होते हैं—

मन्त्री पुरोहितश्चैव युवराजश्चमूपतिः ।
पञ्चमो द्वारपालश्च षष्ठोऽन्तर्वेशिकस्तथा ॥ १ ॥
कारागाराधिकारी च द्रव्यसंचयकृत् तथा ।
कृत्याकृत्येषु चार्थानां नवमो विनियोजकः ॥ २ ॥
प्रदेष्टा नगराध्यक्षः कार्यनिर्माणकृत् तथा ।
धर्माध्यक्षः सभाध्यक्षो दण्डपालस्त्रिपञ्चमः ॥ ३ ॥
षोडशो दुर्गपालश्च तथा राष्ट्रान्तपालकः ।
अटवीपालकान्तानि तीर्थान्यष्टादशैव तु ॥ ४ ॥

(सभापर्व अध्याय ५, श्लोक १८ की नीलकण्ठी टीकासे)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(वार्षिक करके रूपमें) दस सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ देनी पड़ती हैं। इनमेंसे आधी अर्थात् पाँच हजार मुद्राएँ तो मेरे स्वामीको मिलती हैं और आधेका आधा-आधा भाग अर्थात् ढाई-ढाई हजार मुद्राएँ मन्त्री एवं महारानीको दी जाती हैं। इसलिये उदार पराक्रमी बेटा ! तुम शीघ्र ही उन मोहरोंको भेज दो, जिससे मन्त्री और राजा मुझपर प्रसन्न रहें॥ ४८-४९ ॥

इतः षड् योजनं वत्स विद्यते कौन्तलं पुरम्।
यस्मिन् कौन्तलपो राजा गालवेन पुरोधसा ॥ ५० ॥
राज्यं च कुरुते सम्यङ् मन्त्रिणा धृष्टबुद्धिना।

'वत्स ! जिस नगरमें अपने पुरोहित गालव ऋषि तथा मन्त्री धृष्टबुद्धिके साथ निवास करते हुए कुन्तलनरेश सम्यक् प्रकारसे राज्यका शासन करते हैं, वह कुन्तलपुर यहाँसे छः योजन अर्थात् चौबीस कोसकी दूरीपर विद्यमान है' ॥५०½॥

चन्द्रहासः समाकर्ण्य पितुर्वाक्यं प्रहर्षितः ॥ ५१ ॥
यन्मन्त्रिणे च राज्ञे च पत्न्यै यत् प्रेर्यते वसु।
तत् सर्वं गालवायाशु दीयते तात सत्वरम्।
इत्युक्त्वा वस्तुजातं तद् प्रेषयामास लीलया ॥ ५२ ॥

पिताकी बात सुनकर चन्द्रहास परम प्रसन्न होकर कहने लगा—'तात ! जो धन राजा, राजपत्नी तथा राजमन्त्रीके लिये भेजा जाता है, वह सारा-का-सारा धन मैं गालवजीके पास शीघ्र ही भेजे देता हूँ।' यों कहकर उसने खेल-ही-खेलमें तुरंत उन समस्त वस्तुओंके भेजनेका प्रबन्ध कर दिया ॥ ५१-५२॥

वामीभिरुष्ट्रैः शकटैर्दुकूलानि च काञ्चनम्।
शुद्धं च मलयं चारु कर्पूरं मृगसम्भवम् ॥ ५३ ॥
गजाः सम्प्रेषितास्तेन वाजिनश्च मनोरमाः।
तस्मै कुन्तलपायासौ मन्त्रिणे धृष्टबुद्धये ॥ ५४ ॥
चारु विज्ञप्तिसहितं पत्रं प्रेषितवान् पुनः।

उस समय चन्द्रहासने रेशमी वस्त्र, सुवर्ण, मलयाचलका शुद्ध चन्दन, सुन्दर कपूर और कस्तूरी आदि सामग्रियाँ घोड़ियों, ऊँटों और छकड़ोंपर लदवाकर भिजवायीं, फिर उसने बहुत-से हाथी तथा मनको आनन्द देनेवाले सुन्दर घोड़े भिजवाये। साथ ही उसने उन कुन्तल-नरेश तथा मन्त्री धृष्टबुद्धिके नाम सुन्दर विज्ञप्तिसहित एक पत्र भी लिखा ॥

पत्रं च तद्धनं सर्वं समादाय प्रतस्थिरे ॥ ५५ ॥
सेवकाश्चन्द्रहासस्य प्रापुः कौन्तलकं पुरम्।
एकादशीदिने प्राप्ते सायाह्ने तस्य सेवकाः ॥ ५६ ॥

चन्द्रहासके सेवक उस सम्पूर्ण धन तथा पत्रको लेकर चल पड़े और एकादशीके दिन सायंकाल होनेपर उसके वे सेवक कुन्तलपुरके समीप जा पहुँचे ॥ ५५-५६ ॥

पुरोपकण्ठे सुजलां नदीं दृष्ट्वाब्रुवन् वचः।
स्नात्वा सम्पूज्य च हरिं प्रविशाम ततः पुरम् ॥ ५७ ॥
हरेः सम्पूजनात् सद्यो भद्रं नो हि भविष्यति।

वहाँ नगरके समीप स्वच्छ जलसे भरी हुई नदीको देखकर वे कहने लगे कि 'हमलोग अब यहीं स्नान करके भगवान् श्रीहरिका पूजन कर लें, तत्पश्चात् नगरमें प्रवेश करेंगे; क्योंकि भगवान् श्रीहरिका भलीभाँति पूजन कर लेनेसे हमलोगोंका तत्काल ही कल्याण हो जायगा' ॥ ५७½ ॥

नारद उवाच

तेऽनुः प्रणेमुर्जेपुस्ते दध्युर्नारायणं तदा ॥ ५८ ॥
दधुः शिरसि तां देवीं तुलसीं हरिवल्लभाम्।

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! तब यों निश्चय करके उन सेवकोंने उसी नदीमें स्नान किया और फिर वे भगवान् नारायणको नमस्कार, उनके नामोंका जप तथा उनके स्वरूपका ध्यान करने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने उन तुलसीदेवीको, जो भगवान् श्रीहरिकी वल्लभा हैं, अपने-अपने मस्तकपर धारण किया ॥ ५८½ ॥

एवं नियममास्थाय विविशुस्तस्य मन्दिरम् ॥ ५९ ॥
सेवकाश्चन्द्रहासस्य धृष्टबुद्धेस्तु मन्त्रिणः।

इस प्रकार अपना नियम पूर्ण करके चन्द्रहासके सेवकोंने राजमन्त्री धृष्टबुद्धिके भवनमें प्रवेश किया ॥ ५९½ ॥

तानार्द्रवाससो दृष्ट्वा धृष्टबुद्धिरदूषयत् ॥ ६० ॥
मनसीत्थं कुलिन्दोऽसौ मृतस्तेनेदृशा अमी।

उन सेवकोंको गीला वस्त्र पहने हुए देखकर धृष्टबुद्धिके मनमें ऐसा दूषित विचार उत्पन्न हुआ कि मानो वह कुलिन्द मर गया है, इसी कारण ये सब इस रूपमें आये हैं ॥६०½॥

अथाब्रवीत् सम्प्रणतान् स कुलिन्दस्य सेवकान् ॥ ६१ ॥
कदा पञ्चत्वमापन्नः कुलिन्दो देशरक्षकः।
दिनानि कति जातानि तच्चानिष्टमभून्महत् ॥ ६२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदनन्तर धृष्टबुद्धिने कुलिन्दके सेवकोंके प्रणाम करनेपर उनसे पूछा—'सेवको ! हमारा देशरक्षक कुलिन्द कब मृत्युको प्राप्त हुआ है ? उसे मरे हुए कितने दिन बीते होंगे ? उसका मरण तो महान् अनिष्टकी बात हुई' ॥ ६१-६२ ॥

सेवका ऊचुः

अनिष्टं वैरिणां भूयान्मा कुलिन्दस्य जातुचित् ।
कुलिन्दस्य सुपुत्रेण चन्द्रहासेन धीमता ॥ ६३ ॥
कृत्वा दिग्विजयं युष्मत्प्रदेयं प्रेषितं वसु ।
अमी हिरण्यकलशैः कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥ ६४ ॥
दुकूलैः शकटाः पूर्णा आयान्ति तव मन्दिरे ।
एषां सप्तगुणाः प्राप्ताः कुन्तलाधिपतेर्गृहम् ॥ ६५ ॥

तब सेवकोंने कहा—स्वामिन् ! अनिष्ट तो शत्रुओंका हो, हमारे राजा कुलिन्दका कभी भी अनभल मत हो । कुलिन्दके सुपुत्र बुद्धिमान् चन्द्रहासने दिग्विजय करके आपको दिया जानेवाला धन आपके पास भेजा है । देखिये न, सुवर्णके कलशोंसे तथा कपूर, अगुरु, चन्दन और रेशमी वस्त्रोंसे भरे हुए ये छकड़े आपके भवनमें आ रहे हैं तथा इनके सात गुने छकड़े कुन्तल-नरेशके महलमें पहुँच चुके हैं ॥

विस्मितो धृष्टबुद्धिस्तद् धनं जग्राह हर्षितः ।
उवाच सूदान् देवान्नमेभ्यो देयं सुशोभनम् ॥ ६६ ॥

यह सुनकर धृष्टबुद्धि आश्चर्यचकित हो गया । उसने हर्षपूर्वक उस धनको स्वीकार किया और अपने रसोइयोंको बुलाकर आदेश दिया कि इन लोगोंको भोजनके लिये अत्यन्त सुन्दर देवान्न प्रदान किया जाय ॥ ६६ ॥

आहूता बहुशस्तैस्ते सूदैर्जग्मुर्न सेवकाः ।
सूदास्तदा धृष्टबुद्धेः कथयामासुरादरात् ॥ ६७ ॥
आकार्योवाच तान् मन्त्री कुपितो रक्तलोचनः ।

परंतु जब उन रसोइयोंके बारंबार बुलानेपर भी चन्द्रहासके वे सेवक भोजन करनेके लिये नहीं गये, तब रसोइयोंने धृष्टबुद्धिके पास जाकर उससे आदरपूर्वक सारा हाल कह सुनाया । यह सुनकर मन्त्री धृष्टबुद्धिके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये । वह उन सेवकोंको बुलवाकर कहने लगा ॥ ६७½ ॥

धृष्टबुद्धिरुवाच

दत्तान्नमपि ये गर्वादभीक्ष्णं नोपभुञ्जते ॥ ६८ ॥
कुलिन्दं निगडे बद्ध्वा कुर्वेऽहं धनवर्जितम् ।

धृष्टबुद्धि बोला—दुष्टो ! तुमलोग गर्वके कारण बारंबार बुलाकर दिये जानेपर भी मेरा अन्न नहीं खा रहे हो, अतः मैं उस कुलिन्दको बेड़ियोंसे जकड़कर उसका सारा धन छीन लूँगा ॥ ६८½ ॥

तन्मन्त्रिणो वचः श्रुत्वा सेवका ह्यब्रुवन् प्रभो ॥ ६९ ॥
न गर्विता वयं स्वामिन् न भुञ्जामो हरेर्दिने ।

मन्त्रीकी वह बात सुनकर सेवकोंने कहा—'प्रभो ! हमलोग गर्वके कारण ऐसा नहीं कर रहे हैं । स्वामिन् ! आज एकादशीका दिन है, अतः हमलोग भोजन नहीं करेंगे ॥

कृतघ्नानां च सम्पर्को मार्गे नः समपद्यत ॥ ७० ॥
तस्माद् विशेषतो नान्नं स्वीकुर्मो मन्त्रिसत्तम ।

'मन्त्रिश्रेष्ठ ! मार्गमें हमारा कृतघ्न पुरुषोंसे सम्पर्क हो गया है, इसी कारण विशेषरूपसे आज हम अन्न नहीं स्वीकार कर रहे हैं' ॥ ७०½ ॥

अथ प्रेष्यवचः श्रुत्वा प्रीतः प्रातरभोजयत् ॥ ७१ ॥
तान् स्वयं बुभुजे पश्चादामन्त्र्य नृपतिं ययौ ।
आलोचितुं धृष्टबुद्धिः पुरीं तां चन्दनावतीम् ॥ ७२ ॥
संदिश्य मदनं पुत्रं व्यापारे नृपतेरथ ।

सेवकोंकी बात सुनकर धृष्टबुद्धि प्रसन्न हो गया । प्रातःकाल होनेपर उसने उन सबको पहले भोजन कराकर पीछे स्वयं भी भोजन किया । तत्पश्चात् राजाकी आज्ञा लेकर और राजकार्यकी देख-भालके लिये अपने पुत्र मदनको आदेश देकर वह उस चन्दनावतीपुरीकी देख-रेख करनेके लिये प्रस्थित हुआ ॥ ७१-७२½ ॥

सम्प्राप्ता विषया कन्या पितरं तमभाषत ॥ ७३ ॥
प्रत्यहं यो मया सिक्तः स रसालः फलोद्गमी ।
वर्तते तात तस्याद्य पालनं हृदि चिन्तय ।
वैयग्र्यं राजकार्यत्वात् तव नित्यं प्रजायते ॥ ७४ ॥

उसी समय उसकी विषया नामवाली कन्या आ पहुँची और अपने पितासे कहने लगी—'तात ! मैंने जिस आमके वृक्षको प्रतिदिन जलसे सींचकर पाला-पोसा है, उसमें अब फल लगनेका समय आ गया है; अतः अब आप अपने मनमें उसकी रक्षाका उपाय सोचिये । आप तो राजकार्यमें फँसे रहनेके कारण सदा व्यग्र ही बने रहते हैं' ॥ ७३-७४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्युक्त्वोपरता कन्या यौवनोद्भिन्नशैशवा।
तामाश्वास्य ययौ मन्त्री हर्षितः सेवकैः सह ॥ ७५ ॥

जो शिशु-अवस्थाको पार कर चुकी थी तथा जिसके शरीरमें जवानीके लक्षण प्रकट हो रहे थे, वह कन्या यों कहकर चुप हो गयी। तब मन्त्री धृष्टबुद्धि उसे आश्वासन देकर हर्षपूर्वक सेवकोंके साथ (चन्दनावतीपुरीकी ओर) चल दिया ॥

द्वाभ्यां दिनाभ्यां नगरीं प्राप तां चन्दनावतीम्।
महारण्यमिदं चादावद्याहोऽस्मिन् महापुरी॥ ७६ ॥

दो दिन यात्रा करनेके पश्चात् वह उस चन्दनावतीपुरीमें पहुँच गया। (उस नगरीको देखकर वह महान् आश्चर्यमें पड़कर सोचने लगा कि) अहो! यहाँ तो पहले बहुत बड़ा वन था, परंतु इस समय तो यहाँ विशाल नगरी बस गयी है ॥ ७६ ॥

इति विस्मयमापन्नं मन्त्रिणं सम्मुखागतः।
कुलिन्दः सह पुत्रेण नमस्कृत्यानयद् गृहम् ॥ ७७ ॥
पूजयामास विधिवत् सपुत्रः प्रणतः स्थितः।

धृष्टबुद्धि इस प्रकार विस्मयमें डूबा हुआ था, तबतक कुलिन्द पुत्रके साथ उसके समक्ष आ पहुँचा और उसे नमस्कार करके अपने घर लिवा ले गया। वहाँ कुलिन्दने मन्त्रीका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया और फिर वह पुत्रके साथ विनम्रभावसे उसके सामने खड़ा हो गया ॥ ७७½ ॥

तं मन्त्री परिपप्रच्छ पुत्रस्तेऽयं कदाभवत् ॥ ७८ ॥
नाख्यातवान् पुत्रजन्म भवान् नः पुरतः कथम्।

तब मन्त्री धृष्टबुद्धिने कुलिन्दसे पूछा—'सरदार! आपका यह पुत्र कब पैदा हुआ था? आपने अपने इस पुत्रके जन्मका समाचार पहले ही हमें क्यों नहीं बतलाया था?'॥

कुलिन्द उवाच

औरसो न हि पुत्रो मे स्वयं प्राप्तो मनोरमः ॥ ७९ ॥
एकदा मृगयाविष्टचित्तोऽहं वनगह्वरम्।
प्रविष्टः कौन्तलपुराद् योजनद्वयसम्मितम् ॥ ८० ॥

तब कुलिन्दने कहा—स्वामिन्! यह मेरा औरस पुत्र नहीं है। यह मनोहर बालक तो मुझे स्वयं ही प्राप्त हो गया है। (इसकी प्राप्तिका वर्णन करता हूँ, सुनिये—) एक समयकी बात है, मेरे मनमें शिकार खेलनेकी इच्छा जाग्रत् हो उठी। तब मैंने कुन्तलपुरसे आठ कोसकी दूरीपर स्थित एक गहन वनमें प्रवेश किया ॥ ७९-८० ॥

तत्राद्राक्षमहं बालं छिन्नषष्ठाङ्गुलिं सुतम्।
पञ्चाब्दमधिकं पुत्रादौरसाद्धरिसेवकम् ॥ ८१ ॥
चन्द्रहासं विष्णुभक्तं जानीहि त्वं महामते।

वहाँ मैंने इस पाँच वर्षकी अवस्थावाले बालकको देखा। इसके पैरकी छठी अँगुली कट गयी थी और यह भगवन्नामोंका उच्चारण कर रहा था। यह मुझे औरस पुत्रसे भी अधिक प्रिय लगा, अतः मैंने इसे अपना पुत्र बना लिया। महामते! अब आप ऐसा समझें कि यह वही विष्णुभक्त बालक है; इसका नाम चन्द्रहास है ॥ ८१½ ॥

नारद उवाच

अन्तर्दृष्टिरभूत् पार्थ योगिवद् धृष्टधीः क्षणम्॥ ८२ ॥
न जानन् विष्णुभक्तं तं चन्द्रहासं विमूढधीः।
अन्तर्विवृणुते स्मायं किंचित् सत्यं मुनेर्वचः ॥ ८३ ॥

नारदजी कहते हैं—पार्थ! यह सुनकर धृष्टबुद्धि क्षणभरतक योगियोंकी भाँति अन्तर्दृष्टि होकर मन-ही-मन सोचने लगा। उस मन्दबुद्धिको पता नहीं था कि यह चन्द्रहास भगवान् विष्णुका भक्त है (इसपर मेरी माया नहीं लग सकेगी); अतः वह बारंबार अपने हृदयमें यही विचारने लगा कि क्या मुनियोंका वचन सत्य होकर रहेगा? ॥ ८२-८३ ॥

स एवायं मया बालो ज्ञायते षोडशाब्दिकः।
चाण्डालैर्वञ्चितश्चाहमङ्गुलीदर्शकैर्ध्रुवम् ॥ ८४ ॥

मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि भले ही इसकी अवस्था सोलह वर्षकी हो गयी है; परंतु यह वही बालक है। निश्चय ही अँगुली दिखानेवाले उन चाण्डालोंने मुझे धोखा दिया था ॥

द्वौ पुत्रौ मम विद्येते युवानौ मदनामलौ।
तौ किं करिष्यतश्चेत् स्यादयं मे सम्पदां प्रभुः॥ ८५ ॥

मेरे मदन और अमल नामवाले दो पुत्र मौजूद हैं, वे तरुण भी हो चुके हैं। अब यदि यह बालक मेरी सम्पत्तिका स्वामी हो जायगा तो मेरे वे दोनों पुत्र क्या करेंगे? ॥ ८५ ॥

अतिक्रान्तं हि यत् कार्यं पश्चाच्चिन्तयते बुधः।
तच्चास्य न भवेत् कार्यं चिन्तयानो विनश्यति ॥ ८६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अच्छा, अब जिस कार्यके करनेका अवसर बीत चुका, उसपर पीछे यदि बुद्धिमान् पुरुष विचार भी करता है तो उसका वह कार्य तो होनेसे रहा, वह स्वयं भी व्यर्थकी चिन्ता करनेसे विनष्ट हो जाता है ॥ ८६ ॥

यद् गतं गतमेवास्तु करिष्याम्यनृतं वचः।
मुनीनामथ निश्चित्य मनसाथाब्रवीद् गिरम् ॥ ८७ ॥
धारयन् हर्षचिह्नानि बाह्यान्तर्मलिनस्तथा।
यथा पाखण्डजा बुद्धिर्मनुष्यस्य महीपते ॥ ८८ ॥

अतः जो बीत गया, सो तो गया ही, अब आगे मैं मुनियोंका वचन असत्य करनेके लिये प्रयत्न करूँगा। महीपाल! तदनन्तर धृष्टबुद्धि अपने मनमें ऐसा निश्चय करके मनुष्यकी पाखण्डपूर्ण बुद्धिके समान भीतर मलिनता लिये हुए ऊपरसे हर्षके चिह्न प्रकट करके इस प्रकार कहने लगा ॥ ८७-८८ ॥

धृष्टबुद्धिरुवाच

सफलं तव जन्माद्य येन प्राप्तः सुतः शुभः।
ममापि हृदये हर्षः संजातस्तु महानहो ॥ ८९ ॥
तव पुत्रं समालोक्य स च वक्तुं न शक्यते ॥ ९० ॥

धृष्टबुद्धि बोला—कुलिन्द! आपको जो इस सुन्दर पुत्रकी प्राप्ति हो गयी है, इससे अब आपका जन्म सफल हो गया। अहो! आपके इस पुत्रको देखकर तो मेरे हृदयमें भी इतना महान् हर्ष उत्पन्न हो गया है, जिसका मैं मुखसे वर्णन नहीं कर सकता ॥ ८९-९० ॥

इत्थं वचः प्राह निगूढभावं
क्षुरं प्रलिप्तं मधुनेव तीक्ष्णम्।
यथा तृणैश्छादितगर्तमेव
यथान्नमाविष्टविषं विचित्रम् ॥ ९१ ॥

यद्यपि धृष्टबुद्धिने अपने मनोगत भावोंको छिपाकर उस समय ऐसा वचन कहा, तथापि उसका वह वचन वैसा ही था, जैसे मधुसे लिपटा हुआ तीखा छुरा, तृणोंसे आच्छादित गड्ढा और विषमिश्रित सुन्दर स्वादिष्ट अन्न ॥ ९१ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि चन्द्रहासोपाख्याने धृष्टबुद्धेश्चन्दनावतीं प्रति गमनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें चन्द्रहासोपाख्यानके प्रसंगमें धृष्टबुद्धिका चन्दनावतीपुरीका गमननामक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥५२॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चन्द्रहासोपाख्यान—धृष्टबुद्धिका चन्द्रहासको पत्र देकर कुन्तलपुरमें मदनके पास भेजना, चन्द्रहासका कुन्तलपुरमें पहुँचकर क्रीडोद्यानके सरोवर-तटपर शयन करना, राजकन्या चम्पकमालिनी और मन्त्रिकन्या विषयाका सखियोंके साथ उद्यानमें आकर विहार करना, सरोवरमें जलक्रीडा करना, तत्पश्चात् विषयाका चन्द्रहासको देखना

नारद उवाच

पुनर्दध्यौ धृष्टबुद्धिः कुबुद्धीनां महार्णवः।
कथं मुनिवचोऽसत्यं कथं पञ्चत्वमेत्ययम् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तब कुबुद्धियोंका अगाध सागर धृष्टबुद्धि पुनः सोचने लगा कि किस प्रकार मुनियोंका वचन असत्य हो जाय और किस युक्तिसे यह चन्द्रहास मृत्युको प्राप्त हो ॥ १ ॥

प्रत्यक्षं हन्मि चेदत्र कुलिन्दतनयं रिपुम्।
तदा मां विविधैः शस्त्रैर्हिंस्युरेते न संशयः ॥ २ ॥
ततो भवेतां नूनं मे दुःखितौ मदनामलौ।

यदि मैं अपने शत्रु इस कुलिन्दकुमारको यहाँ प्रत्यक्षरूपसे मार डालता हूँ तो उस दशामें कुलिन्दके ये सेवक निस्संदेह नाना प्रकारके शस्त्रोंसे मेरी हत्या कर डालेंगे। उस समय मेरे पुत्र मदन और अमलको निश्चय ही महान् दुःख प्राप्त होगा ॥ २½ ॥

स्वयमेव वधं कुर्यामुत राजभटैरहम् ॥ ३ ॥
नामुना तु प्रकारेण हन्तुं शक्यो मया रिपुः।

क्या मैं स्वयं ही इसका वध कर दूँ अथवा राजाके योधाओंद्वारा मरवा डालूँ। किंतु इस प्रकारसे भी मैं इस शत्रुको नहीं मार सकता ॥ ३½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शम्भुना यद् धृतं कण्ठे तद् दानाद्धन्मि तं रिपुम्॥ ४ ॥
चन्द्रहासमिति ध्यात्वा हर्षितः सोऽब्रवीद् वचः।

(अच्छा, इसके मारनेका उपाय सूझ गया) शंकरजी अपने गलेमें जिसे धारण करते हैं, उसी (विष) को देकर मैं अपने शत्रु चन्द्रहासके प्राण लूँगा; ऐसा निश्चय करके वह परम प्रसन्न हुआ और यों बोला—॥ ४½ ॥

चन्द्रहास विचित्रं त्वं पत्रमानय लेखनीम्॥ ५ ॥
मषीं यथा लिखित्वैकं पत्रं त्वां प्रेषये पुरम्।
तेनार्पितमुपादाय पत्रमेकान्तसंस्थितः॥ ६ ॥

'चन्द्रहास ! तुम थोड़ा सुन्दर कोरा कागज, कलम और दावात तो ले आओ, जिससे मैं एक पत्र लिखकर तुम्हें कुन्तलपुर भेजूँगा।' तब चन्द्रहासद्वारा दिये गये कागज आदिको लेकर धृष्टबुद्धि एकान्तमें जा बैठा॥ ५-६ ॥

धृष्टधीरर्पयामास तस्मिन् वर्णान् यथाक्रमम्।
स्वस्ति श्रीरस्तु मदन वक्तुं कारणमीदृशम्॥ ७ ॥

तब धृष्टबुद्धि उस कागजपर क्रमानुसार अक्षरोंको लिखना आरम्भ किया—'मदन ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हें लक्ष्मीकी प्राप्ति हो। बेटा ! पत्र लिखनेका कारण इस प्रकार है—॥

चन्द्रहासोऽहितोऽतीव ममायं सम्पदां पदम्।
ज्ञातव्यो नात्र संदेहः पुत्र कार्यं त्वयेदृशम्॥ ८ ॥

'यह चन्द्रहास मेरा अत्यन्त अहित (शत्रु) है। तुम्हें ऐसा समझना चाहिये कि यह मेरी सम्पत्तिका भावी उत्तराधिकारी है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। इसलिये पुत्र ! तुम्हें मेरे लिखे अनुसार कार्य करना चाहिये॥ ८ ॥

मा रूपं मा वयो द्राक्षीः कुलं शीलं पराक्रमम्।
विद्यां वित्तं विलम्बं मामित्रस्यास्य कुरु ध्रुवम्॥ ९ ॥

'तुम इस अमित्र (शत्रु) के रूप, अवस्था, कुल, शील, पराक्रम, विद्या और धनकी ओर मत देखना, निश्चय ही बिना विलम्ब किये ऐसा करना॥ ९ ॥

विषमस्मै प्रदातव्यं त्वया मदन शत्रवे।
पार्वतीशमिति ध्यात्वा कृतार्थाः स्याम यद् वयम्॥ १०॥

'मदन ! शत्रुको पार्वती-पति भगवान् शंकरका ध्यान करके विष दे देना, जिससे हमलोग कृतार्थ हो जायँगे॥ १० ॥

चन्द्रहासं विशालाक्षमूचिवान् मद्वचः शृणु।
महत् कौन्तलके कार्यं विद्यते मदनं प्रति॥ ११॥

तदनन्तर उसने विशाल नेत्रोंवाले चन्द्रहाससे कहा—'चन्द्रहास ! तुम मेरी बात सुनो। कुन्तलपुरमें मदनके पास मेरा एक बहुत बड़ा काम है॥ ११ ॥

त्वं याहि पत्रं हि मया मुद्रितं मा विमोचय।
भूयाद् गूढं तव हितं पत्रे दत्तं सुताय मे॥ १२॥

'अतः तुम मेरेद्वारा मुद्रित इस पत्रको लेकर मदनके पास चले जाओ। मार्गमें इसे खोलना मत। यदि तुम इसे मेरे पुत्रके हाथमें दे दोगे तो तुम्हारा गुप्तरूपसे परम हित होगा॥

त्वं भेत्स्सि यदि मुद्रां मे भविष्यति मलं तव।
उभयोः शिवयोर्भेदाद् यथावत् तव जायते॥ १३॥

'यदि कहीं तुम मेरी इस मुद्रा (मुहर) को तोड़ दोगे तो दो शिव-मूर्तियोंको तोड़नेसे जितना पाप होता है, वही पातक तुम्हें लगेगा॥ १३ ॥

शीघ्रं वाजिनमारुह्य चतुर्भिः सेवकैर्वृतः।
याहि कौन्तलकं पुत्र धर्म्यं द्रष्टासि पुत्रकम्॥ १४॥

'बेटा ! अब तुम चार सेवकोंको साथ लेकर घोड़ेपर सवार हो शीघ्र ही कुन्तलपुरकी यात्रा कर दो। वहाँ तुम्हें मेरा धर्मात्मा पुत्र मदन अवश्य मिलेगा'॥ १४ ॥

नारद उवाच

स तत् पत्रमुपादाय वेगमास्थाय शोभनम्।
मन्त्रिणं तं नमस्कृत्य कुलिन्दं पितरं ततः॥ १५॥
मेधावतीमगात् प्रष्टुं नमस्कर्तुं कुलिन्दवत्।
तया नीराजितश्चाथ आशीर्भिरभिनन्दितः॥ १६॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! तब चन्द्रहासने शीघ्रतापूर्वक उस सुन्दर पत्रको लेकर मन्त्री धृष्टबुद्धि तथा अपने पिता कुलिन्दको प्रणाम किया। तत्पश्चात् वह अपनी माता मेधावतीकी आज्ञा लेने तथा कुलिन्दकी भाँति उसे भी नमस्कार करनेके लिये भवनके भीतर गया। वहाँ मेधावतीने अपने पुत्रकी आरती उतारी और फिर आशीर्वादोंद्वारा उसका अभिनन्दन किया॥ १५-१६ ॥

दधिदूर्वाक्षतोन्मिश्रं तिलकं कुर्वती प्रसूः।
अब्रवीत् सा तु पन्थानः शिवास्ते सन्तु सर्वदा॥ १७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माताने दधि, दूर्वा और अक्षतोंके सम्मिश्रणसे पुत्रके ललाटमें तिलक लगाया और फिर वह यों कहने लगी—'बेटा! तुम्हारे मार्ग सर्वदा मङ्गलमय हों ॥ १७ ॥

मुखं नारायणः पातु बाहू पातु जनार्दनः।
वक्षः पातु हृषीकेश उदरं पातु माधवः ॥ १८ ॥

'नारायण तुम्हारे मुखकी, जनार्दन दोनों भुजाओंकी, हृषीकेश वक्षःस्थलकी और माधव उदरकी रक्षा करें ॥ १८ ॥

पद्मनाभः सदा पातु नाभिं कुक्षिं नृकेसरी।
कटिं कमलपत्राक्षो जङ्घे द्वे मधुसूदनः ॥ १९ ॥

'पद्मनाभ नाभिकी, नृसिंह कुक्षिकी, भगवान् कमलपत्राक्ष कटिकी और मधुसूदन दोनों जंघाओंकी सदा सुरक्षित रखें ॥

जानुनी यज्ञभोक्ता ते गुल्फौ दामोदरोऽवतु।
सहस्रपादङ्घ्रियुगं सहस्राक्षस्तवाक्षिणी ॥ २० ॥

'तुम्हारे दोनों जानुओंकी यज्ञभोक्ता, गुल्फोंकी दामोदर, दोनों चरणोंकी सहस्रपाद और दोनों नेत्रोंकी सहस्राक्ष रक्षा करें ॥

त्रिविक्रमः पातु सर्वशरीरं तव पुत्रक।
समं याहि पुनः शीघ्रं पत्न्या त्वमनुरूपया ॥ २१ ॥
यथा त्वं नृपतेः कुक्षिं प्राप्तः सहजया श्रिया।

'भगवान् त्रिविक्रम तुम्हारे सारे शरीरको संकटसे बचावें। बेटा! जाओ और जैसे तुम अपनी सहज कान्तिसे सम्पन्न हो राजाकी गोदमें प्राप्त हुए थे, उसी तरह तुम अपने अनुरूप पत्नीके साथ पुनः शीघ्र ही लौट आओ' ॥ २१½ ॥

चन्द्रहासोऽथ जननीं नमस्कृत्य परीत्य च ॥ २२ ॥
प्रायादश्वाधिरूढस्तैः प्रेष्यैः प्रियहिते रतैः।

तदनन्तर चन्द्रहासने अपनी माताकी परिक्रमा करके उसे प्रणाम किया और फिर वह अपना प्रिय एवं हित करनेमें तत्पर रहनेवाले उन सेवकोंको साथ ले घोड़ेपर सवार होकर चल दिया ॥ २२½ ॥

ग्रामान्तरात् समायान्तं स ददर्श वधूवरम् ॥ २३ ॥
हरिद्राकुङ्कुमोद्रेकरञ्जितारं मनोरमम्।
नववत्सामथाद्राक्षीद् गृष्टिं स पुरतः स्थिताम् ॥ २४ ॥

मार्गमें उसे दूसरे गाँवसे नवविवाहिता वधूके साथ आता हुआ एक दूल्हा दिखायी दिया। वह हल्दी और कुङ्कुमके रंगसे गाढ़ा रँगा हुआ था, जिससे बड़ा मनोहर लग रहा था। आगे बढ़नेपर उसे पहले-पहलकी ब्याई हुई गौ अपने नवजात बछड़ेके साथ आगे खड़ी हुई दीख पड़ी ॥ २३-२४ ॥

तस्मै पथि वनाध्यक्षाः प्रददुर्दाडिमीफलम्।
केचिच्चम्पकमालाभिरर्चयन्ति स्म तं पथि ॥ २५ ॥

मार्गमें वनाध्यक्षोंने उसे अनारके फल प्रदान किये। रास्ते चलते-चलते कुछ लोगोंने चम्पाके पुष्पोंसे गुँथी हुई मालाओंद्वारा उसका सत्कार किया ॥ २५ ॥

बबन्धुर्मुकुटं भाले नानापुष्पमयं मुदा।
नवो वर इवाभाति चन्द्रहासः स सुन्दरः ॥ २६ ॥

कुछ लोगोंने आनन्दमग्न होकर उसके मस्तकपर नाना प्रकारके पुष्पोंद्वारा निर्मित मुकुट बाँध दिया, जिससे सुन्दर रूपवाला वह चन्द्रहास नये दूल्हेके समान सुशोभित हो रहा था ॥ २६ ॥

प्राप्य कौन्तलकाभ्याशे रम्यं क्रीडावनं सरः।
वरटाभिः समं हंसा यत्र गार्हस्थ्यमास्थिताः।
कमलोदयेन महता धवला ब्रह्मपत्रजाः ॥ २७ ॥

इस प्रकार चन्द्रहास कुन्तलपुरके समीप जा पहुँचा। वहाँ नगरके बाहर एक क्रीडा-उपवन था। उसमें एक रमणीय सरोवर था (चन्द्रहास उसी सरोवरके तटपर ठहर गया)। उस सरोवरमें हंस हंसिनियोंके साथ गृहस्थ-धर्मका पालन करते हुए निवास कर रहे थे। बहुत-से कमलोंके खिले होनेके कारण वे हंस (उनके बीच) और भी उज्ज्वल दीख रहे थे ॥ २७ ॥

तस्यामलाम्भःसरसः समीपे
वनं ददर्शाम्रतमालनीलम्।
स चन्द्रहासोऽद्भुतमेव मेने
साक्षाद् वसन्तं च वसन्तमत्र ॥ २८ ॥

स्वच्छ जलसे भरे हुए उस सरोवरके निकट चन्द्रहासने एक वन भी देखा, जो आम और तमालके वृक्षोंसे व्याप्त होनेके कारण नीले रंगका दीख रहा था। उसने उस वनको अद्भुत ही माना और यही समझा कि साक्षात् वसंत ऋतु ही यहाँ निवास कर रहा है ॥ २८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फुल्लं पलाशं नवकुङ्कुमाभं
तमेव वक्त्रं किल बिभ्रतं तम्।
वनश्रिया संगमकज्जलाङ्कं
तत्पत्रवल्लीधरमद्भुताभम् ॥ २९ ॥

वहाँ नये कुङ्कुमकी-सी आभासे युक्त खिला हुआ जो पलाशके वृक्षोंका समूह सुशोभित था, वही मानो उस ऋतुराज-का मुख था। उस वनस्थलीमें जो यत्र-तत्र काला रंग दीखता था, वही मानो वनश्रीके साथ समागम करते समय उसके नेत्रोंके काजलका चिह्न लग गया था। उसके पत्ते तथा लताएँ ऋतुराजके होंठके समान थे। इस प्रकार वह अद्भुत कान्तिसे युक्त था ॥ २९ ॥

ततः पल्लविता आसन् द्रुमास्तस्मिन् मधौ सति।
मञ्जर्यः पल्लवा रम्या भान्ति चूततरौ तदा ॥ ३० ॥

उस समय वसन्त ऋतुके निवास करनेके कारण उस उपवनके सभी वृक्षोंमें नये-नये पल्लव निकल आये थे। आमके वृक्षोंमें सुन्दर किसलय तथा मनोहर मञ्जरियाँ सुशोभित हो रही थीं ॥ ३० ॥

तस्मिन् पल्लवितेऽत्यन्तं कोकिला मधुरस्वरम्।
चुकूज कामिनां चित्तमाकर्षन्तीव दूतिका ॥ ३१ ॥

नवीन एवं सुकोमल पल्लवोंवाले आमके वृक्षोंपर कोयल अत्यन्त मधुर स्वरमें इस प्रकार कूज रही थीं, मानो कामियोंके चित्तका आकर्षण करनेवाली दूतिका हो ॥ ३१ ॥

पुन्नागबकुलाशोकचम्पकाः पुष्पिता बभुः।
मालतीयूथिकाजात्यः पुष्पस्तनभरानताः ॥ ३२ ॥

वहाँ पुष्पोंसे लदे हुए नागकेसर, मौलसिरी, अशोक और चम्पाके वृक्ष सुशोभित हो रहे थे। मालती, जूही और जाती अपने पुष्परूपी स्तनोंके भारसे झुकी जा रही थीं ॥ ३२ ॥

केतक्यः पुष्पगन्धाढ्या लीनभ्रमरलोचनाः।
पुष्पवर्षैरर्चयन्त्यः स्वभर्त्तारं च माधवम् ॥ ३३ ॥

जिनमें छिपे हुए भ्रमर नेत्र-से प्रतीत हो रहे थे तथा जो पुष्पोंके उत्कट गन्धसे संयुक्त थीं, ऐसी केतकियाँ पुष्पोंकी वर्षा करके अपने पतिदेव वसन्तऋतुका स्वागत-सत्कार कर रही थीं ॥ ३३ ॥

नारद उवाच

मधूत्सवमालोक्य कुलिन्दतनयो मुदम्।
परां प्राप हरेरेव चरित्रं हृदये दधत् ॥ ३४ ॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! इस प्रकार वसन्त ऋतुके उत्सवको देखकर कुलिन्दकुमार चन्द्रहासने अपने हृदयमें उसे श्रीहरिका ही चरित्र समझा। अतः वह परमानन्दमें निमग्न हो गया ॥ ३४ ॥

स्नात्वा सम्पूज्य च हरिं तैः पुष्पैर्मधुसम्भवैः।
संकल्पयित्वा हरये पाथेयं बुभुजे शनैः ॥ ३५ ॥

तत्पश्चात् उसने उस सरोवरमें स्नान करके वसन्त ऋतुमें उत्पन्न हुए उन पुष्पोंसे भगवान् श्रीहरिका पूजन किया, फिर साथमें लाये हुए पाथेय (रास्तेके भोजन) को श्रीहरिके निमित्त अर्पण करके उनके उस प्रसादको वह स्वयं धीरे-धीरे भोजन करने लगा ॥ ३५ ॥

सेवकैः क्षिप्तदूर्वादि पुरस्ताद् वाजिनं तरौ।
रसाले संनियम्याथ अशेत प्रहरद्वयम् ॥ ३६ ॥

उसने घोड़ेको पहले ही एक आमके वृक्षसे बाँधकर सेवकोंद्वारा उसके आगे घास-पात डलवा दिया था। भोजनके पश्चात् वह दो पहर विश्राम करनेके लिये वहीं सो गया ॥ ३६ ॥

अथ कौन्तलपस्यैका कन्या चम्पकमालिनी।
धृष्टबुद्धेश्च विषया रतिं हसति या श्रिया ॥ ३७ ॥
कन्यके जग्मतुः कन्याशतेन परिवारिते।
वसन्तागमपुष्पाढ्यं पुरोपवनमुत्तमम् ॥ ३८ ॥

इसी समय कुन्तलनरेशकी इकलौती कन्या चम्पकमालिनी और जो अपनी शोभासे रतिका उपहास कर रही थी, ऐसी धृष्टबुद्धिकी पुत्री विषया—ये दोनों कन्याएँ सौ कन्याओंसे घिरी हुई नगरके उस उत्तम उपवनमें (विहार करनेके लिये) गयीं। वह उद्यान वसन्तके आगमनके कारण नये-नये खिले हुए पुष्पोंसे सम्पन्न था ॥ ३७-३८ ॥

पुष्पावचयमिच्छन्त्यः कर्तुं सर्वाश्च कन्यकाः।
सार्द्धत्रयोदशाब्दास्ता यौवनोद्भेदचञ्चलाः ॥ ३९ ॥

वे सभी कन्याएँ पुष्प-चयन करना चाहती थीं। उनकी अवस्था साढ़े तेरह वर्षकी थी और यौवनकाल समीप होनेके कारण उनमें चञ्चलता प्रकट हो रही थी ॥ ३९ ॥

कौसुम्भाम्बरधारिण्यः स्फुरत्कञ्चुकपल्लवाः।
नवबिल्वफलाभ्यां स्तनाभ्यां समलंकृताः ॥ ४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रम्यमौक्तिकहारैश्च मण्डिताभ्यां शनैर्ययुः।
नृत्यन्त्यो नूपुरवैस्तालिकाशब्दकैः पथि ॥ ४१ ॥
गायन्त्यः स्म हसन्त्यः स्म क्षरत्ताम्बूलचन्द्रिकाः।
प्रापुः क्रीडावनं रम्यं कोकिलालापनादितम् ॥ ४२ ॥

उनके शरीरपर कुसुम्भी रंगकी साड़ियाँ शोभा पा रही थीं और उनकी चोलीके ऊपरका आँचल हवामें उड़ रहा था। जो नये बिल्वफलके समान उभरे हुए तथा सुन्दर मोतियोंके हारोंसे विभूषित थे, ऐसे स्तनोंसे सुशोभित वे कन्याएँ मार्गमें ताली बजाती हुई और पायजेबकी झनकारके अनुकूल नाचती हुई धीरे-धीरे चल रही थीं। वे गाती और हँसती हुई जा रही थीं। बीच-बीचमें उनके मुखसे ताम्बूलकी पीक टपक जाती थी। इस प्रकार वे कोकिलकी काकलीसे निनादित उस रमणीय क्रीडावनमें जा पहुँचीं ॥ ४०–४२ ॥

हस्तिनी पुरतः काचिद् ययौ पुष्पौघवीक्षया।
तां चैव भीतोवाचैका कन्या बिल्वफलस्तनी ॥ ४३ ॥

वहाँ कोई हस्तिनी[1] जातिकी कन्या पुष्प-समूहको देखनेकी लालसासे जब आगे बढ़ी, तब बिल्वफलके समान स्तनवाली दूसरी कन्याने भयभीत होकर उससे कहा—॥ ४३ ॥

मा गा हस्तिनि कुञ्जं त्वमेका पुष्पाभिलाषिणी।
दारयिष्यति मुक्ताढ्यौ स्तनकुम्भौ नृकेसरी ॥ ४४ ॥

'अरी हस्तिनी! पुष्प-दर्शनकी अभिलाषासे तू अकेली ही सघन वनमें मत जा; क्योंकि वहाँ यदि कोई नररूप सिंह मिल गया तो वह मोतियोंसे युक्त तेरे इन स्तनरूपी कुम्भ-स्थलोंको विदीर्ण कर देगा' ॥ ४४ ॥

परस्परं हसन्त्यस्ताः प्राकुर्वन् पुष्पसंचयम्।
मालतीयूथिकाजातीमुद्रादिकवीरुधाम् ॥ ४५ ॥

इस प्रकार परस्पर हास-परिहास करती हुई वे कन्याएँ मालती, जूही, जाती और मोगरा आदि पुष्पवृक्षोंसे तोड़-तोड़कर पुष्प-संचय करने लगीं ॥ ४५ ॥

कन्याः सुमनसां मालाश्चक्रुः कण्ठेषु ता दधुः।
सपुष्पां दाडिमीं वीक्ष्य प्राह चम्पकमालिनी ॥ ४६ ॥

फिर उन कन्याओंने उन फूलोंको गूँथकर मालाएँ बनायीं और उन्हें अपने-अपने गलेमें धारण कर लिया। उसी समय चम्पकमालिनीने एक पुष्पित अनारवृक्षको देखकर विषयासे कहा—॥ ४६ ॥

विषये सुभगे पश्य महदद्भुतमग्रतः।
आदौ पुष्पोद्गमः पश्चाद् दृश्यते स्म फलोद्गमः ॥ ४७ ॥
विपरीतं त्वयि कथं जातं बिल्वफलस्तनि।
वनस्पतीनां धर्मोऽयं विषया प्राह भूपजाम् ॥ ४८ ॥

'सुन्दरी विषये! यह आगे महान् अद्भुत बात तो देख, इस अनारवृक्षमें पहले पुष्प लगे हैं, तत्पश्चात् फलोंकी उत्पत्ति दीख रही है (और सर्वत्र यही नियम है भी); परंतु बिल्वफलके समान स्तनोंवाली विषये! तेरे शरीरमें यह विपरीत कैसे हो गया (अर्थात् तू अभी पुष्पवती—ऋतुमती हुई ही नहीं, उसके पहले ही ये बिल्वफलके सदृश स्तन कैसे निकल आये?)' तब विषयाने राजकुमारीसे कहा—'सखि! यह तो वनस्पतियों-का धर्म है (न कि हमारा)' ॥ ४७-४८ ॥

अथ पुष्पाण्युपादाय शिरस्याधाय निद्रिताम्।
पुष्पावचयखिन्नाङ्गीं विषया प्राह भूपजाम् ॥ ४९ ॥

तदनन्तर जब पुष्प-चयन करते-करते श्रमके कारण राजकुमारीके बदनमें पसीना आ गया, तब वह उन फूलोंके ढेरको लेकर सिरके नीचे रख आलस्यवश उसीपर लेट गयी। उस समय विषयाने राजकुमारीसे कहा—॥ ४९ ॥

शिरस्याधाय पुष्पाणि मा शेथास्त्वं वरानने।
कश्चिदन्तर्वने भोगी कुण्डली त्वां समेष्यति ॥ ५० ॥

'सुमुखि! तुम इन पुष्पोंको सिरके नीचे रखकर मत सोओ; नहीं तो इस वनके भीतर (इन एकत्रित फूलोंकी उत्कट सुगन्धसे आकृष्ट होकर) कोई फणाधारी सर्प अवश्य तुम्हारे पास आ जायगा।' (यहाँ कुण्डली भोगी शब्द द्व्यर्थक हैं। हास्यपक्षमें इनका अर्थ होगा—कुण्डलधारी भोगी राजपुत्र) ॥ ५० ॥

राजकन्योवाच

विषये ते मुखे शोभा वरीवर्ति सुधांशुजित्।
स्तनौ वक्षसि वर्तेते रत्या किं मन्मथः सह ॥ ५१ ॥

राजकन्याने कहा—विषये! तेरे मुखपर चन्द्रमाको भी मात करनेवाली अतिशय उत्कृष्ट शोभा वर्तमान है और वक्षः

१. स्त्रियोंके चार भेद माने गये हैं—पद्मिनी, चित्रिणी, शङ्खिनी और हस्तिनी। यहाँ केवल हस्तिनीकी चर्चा है; अतः उसका लक्षण बताया जाता है। हस्तिनी नारीका शरीर स्थूल, ओठ और अङ्गुलियाँ मोटी तथा आहार और कामवासना अन्य सब स्त्रियोंसे अधिक होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थलपर जो ये स्तन विद्यमान हैं, इनके रूपमें क्या वहाँ रतिके साथ कामदेव शोभा पा रहे हैं ?॥ ५१ ॥

भक्त्या प्रादुरभूतां तौ स्वप्नं दत्त्वा तवाशये ।
कंचित् प्रार्थय पूजार्थमनयोर्लिङ्गयोः सखि ॥ ५२ ॥

तेरी भक्तिभावसे संतुष्ट होकर तुझे स्वप्न देकर वे दोनों रति और कामदेव इस समय तेरे वक्षःस्थलपर प्रकट हुए हैं, अतः सखि ! तू इन्हें उनका प्रतीक ही समझकर इनकी पूजा करनेके लिये (भगवान्‌से) किसी पूजककी प्राप्तिके निमित्त प्रार्थना कर ॥ ५२ ॥

चन्दनेन सुगन्धेन केसरेण सुचन्द्रिणा ।
पत्रालिभिर्विचित्राभिर्यं एतावर्चितुं क्षमः ॥ ५३ ॥
सायंप्रातर्ह्यनलसो दक्षस्तं प्रार्थयाधुना ।
प्राणानपि स्वकान् दत्त्वा पूजकं त्वं वशी कुरु॥ ५४ ॥

जो सुगन्धित चन्दन, केसर, कपूर और सुन्दर पत्र-भङ्गियोंद्वारा इन रति और मन्मथके प्रतीकोंकी पूजा करनेमें समर्थ हो, सायंकाल हो अथवा प्रातःकाल, किसी समय उसे पूजनमें आलस्य न आता हो और पूजन-कार्यमें जो निपुण हो, ऐसे ही किसी पुजारीकी तू इस समय याचना कर । मिल जानेपर तू ऐसे पूजकको अपने प्राण देकर भी वशमें कर लेना ॥ ५३-५४ ॥

चक्षुः स्फुरति ते वामं काको रौत्याम्रमाश्रितः ।
शंसतीव प्रियं प्राप्तं पूजकं तव देवयोः ॥ ५५ ॥

सखि ! तेरा बायाँ नेत्र फड़क रहा है और आमके वृक्षपर बैठा हुआ कौवा बोल रहा है, जिससे सूचित होता है कि तेरे इन (स्तनरूपी) देवोंकी पूजा करनेवाला कोई प्रिय पुरुष आ ही रहा है ॥ ५५ ॥

इत्थं चम्पकमालिन्या वचः श्रुत्वा जहास सा ।
उवाच वचनं रम्यं लज्जतीव प्रधानजा ॥ ५६ ॥

चम्पकमालिनीके ऐसे वचन सुनकर विषया हँस पड़ी और फिर वह मन्त्रिकन्या लजाती हुई-सी यह सुन्दर वचन बोली ॥ ५६ ॥

विषयोवाच

अलं पुष्पचयेनाद्य संतप्ता रविणा वयम् ।
यामः शीतजलं तस्मात् तत् सरः कमलाकरम् ॥ ५७ ॥

विषयाने कहा—सखि ! अब फूलोंका तोड़ना बंद होना चाहिये; क्योंकि हमलोग सूर्यके तापसे संतप्त हो चुकी हैं, अतः आओ अब हमलोग कमलोंसे भरे हुए उस शीतल जलवाले सरोवरकी ओर चलें ॥ ५७ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः कन्यका निर्ययुर्वनात् ।
केचिद्दोलाधिरूढे ते गायन्त्यौ मधुरस्वरम् ॥ ५८॥
प्रहरन्त्यौ तदान्योऽन्यं कन्यके कुचमण्डले ।
त्रुटन्मौक्तिकहारे ते दोलाया अवतेरतुः ॥ ५९ ॥

विषयाकी वह बात सुनकर सभी कन्याएँ पुष्प-वनसे निकलने लगीं । उनमेंसे दो कन्याएँ कहीं झूलेपर बैठी हुई मधुर स्वरसे गान कर रही थीं, वे भी हिंडोलेसे उतरने लगीं । उतरते समय उन दोनों कन्याओंके कुचमण्डल परस्पर टकरा गये, जिससे उनके मोतियोंके हार टूट गये ॥ ५८-५९ ॥

काचित् पुष्पचयं कृत्वा राजकन्यां प्रधाविता ।
विषयामपि हर्षेण पुष्पवर्षमथाक्षिपत् ॥ ६० ॥

कोई पुष्पोंको एकत्र करके वेगसे दौड़ती हुई आयी और हर्षके मारे राजकुमारी चम्पकमालिनी तथा विषयापर भी उन फूलोंकी वर्षा करने लगी ॥ ६० ॥

एवं तास्तत्सरः प्रापुः पद्मिनीखण्डमण्डितम् ।
हंसा भीताः पलायन्ते सिञ्जितश्रवणाद् वनात् ॥ ६१ ॥

यों क्रीडा करती हुई वे कन्याएँ कमलिनी-समूहसे सुशोभित उस सरोवरपर जा पहुँचीं । उस समय उनके नूपुरोंकी झनकार सुनकर हंस भयभीत होकर उस कमलवनसे भाग खड़े हुए ॥

अस्माकं मनसोल्लासि सरः कलुषितं भवेत् ।
पुष्पवन्त्यो विशेषेण कन्या आयान्ति कामुकाः॥ ६२ ॥

(उन हंसोंने अपने मनमें सोचा कि) हमारे मनमें उल्लास उत्पन्न करनेवाला यह सरोवर अब गँदला हो जायगा; क्योंकि ये कामुक कन्याएँ बहुत-सा पुष्प लिये हुए (इसमें क्रीडा करनेके लिये) आ रही हैं ॥ ६२ ॥

नारद उवाच

सरस्तीरे दुकूलानि रम्यकार्पासकानि च ।
कन्याभिस्त्यज्यमानानि मर्मरेति विचुक्रुशुः ॥ ६३ ॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! उस सरोवरके तटपर पहुँचकर जब वे कन्याएँ अपने पहने हुए रेशमी तथा सुन्दर सूती वस्त्रोंको उतारने लगीं, उस समय (सिकुड़नेके कारण) उन वस्त्रोंसे मरमराहटकी आवाज प्रकट होने लगी ॥ ६३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूक्ष्माण्यपि दुकूलानि नेतुं न क्षमतेऽनिलः।
तासां गुणमयैः पाशैर्बद्धो निश्चलतां ययौ ॥ ६४ ॥

उस समय पवन उन सूक्ष्म (महीन) रेशमी वस्त्रोंको भी उड़ानेमें समर्थ न हो सका; क्योंकि वह उन कन्याओंके गुणमय पाशोंसे बँधा होनेके कारण निश्चलताको प्राप्त हो गया था ॥ ६४ ॥

ताश्चम्पकाङ्ग्यो विविशुस्तत्सरः शिवलीलया।
अगाधं निर्मलं गाधं कलुषं तत्सरोऽभवत् ॥ ६५ ॥

तदनन्तर चम्पाके समान गौर वर्णवाली वे कन्याएँ आनन्दपूर्वक क्रीडा करनेकी इच्छासे उस सरोवरमें उतर पड़ीं। उनके प्रवेश करते ही वह अगाध एवं निर्मल जलसे भरा हुआ सरोवर उथला एवं गँदला हो गया ॥ ६५ ॥

कन्याभिर्निष्ककण्ठीभिस्तादृशीभिरधिष्ठितम् ।
परस्परं हाससूक्तीश्चक्रुस्ता अभितः सरः ॥ ६६ ॥

फिर तो जिनके गलेमें स्वर्णपदक झलमला रहे थे, ऐसी उन कन्याओंसे वह सरोवर सर्वत्र व्याप्त हो गया। वे उसमें चारों ओर घूम-घूमकर परस्पर हास्ययुक्त बातें करने लगीं ॥

क्रीडालोलकरास्फालत्रुटन्मौक्तिकपूरितम् ।
मणिबन्धस्खलद्रम्यप्रवालमणिचित्रितम् ॥ ६७ ॥
अनन्तश्रीधरं तासां मुखचन्द्रैरलंकृतम्।
तत्सरः शुशुभेऽतीव रत्नाकरनिभं स्फुटम् ॥ ६८ ॥

क्रीडा करते समय चञ्चल हाथोंके उछालनेसे टूटकर गिरे हुए मोतियोंसे पूरित हुआ वह तालाब उनकी कलाइयोंसे खिसककर गिरे हुए मूँगे-मणियोंसे चित्रित-सा लगने लगा तथा उन कन्याओंके मुखरूपी चन्द्रमाओंसे अलंकृत होनेके कारण वह अपार शोभासे सम्पन्न हो गया। इस प्रकार वह सरोवर उस समय साक्षात् रत्नाकर (समुद्र) के समान अत्यन्त शोभा पाने लगा ॥ ६७-६८ ॥

परस्परं ताः सिषिचुर्जलेनातिसुगन्धिना।
स्तनकुङ्कुमकस्तूरीचन्दनागुरुगन्धिना ॥ ६९ ॥

तत्पश्चात् उनके स्तनोंपर लगे हुए कुङ्कुम, कस्तूरी, चन्दन और अगुरुकी गन्धसे अत्यन्त सुगन्धित जलसे वे कन्याएँ परस्पर एक-दूसरीको भिगोने लगीं ॥ ६९ ॥

उच्छलज्जलबिन्दूनां मिषेण जलदेवताः।
क्रीडन्ते मौक्तिकैश्चैताः कन्यकाः शुशुभुर्वने ॥ ७० ॥

जल उछालते समय उन कन्याओंकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो उस वनमें जलदेवता (ही आकर) उछलते हुए जलबिन्दुओंके व्याजसे मोतियोंद्वारा क्रीडा कर रहे हों ॥७०॥

विन्दुवर्षं समालोक्य चातका घनशङ्कया।
मुखं व्यादाय पश्यन्ति घनपङ्क्तीः पिपासया ॥ ७१ ॥

उस समय जलविन्दुओंकी वर्षा होते देखकर चातकोंको बादलकी आशङ्का हो आयी; फिर तो वे जलपानकी इच्छासे अपने मुख फैलाकर बादलोंकी पङ्क्तियोंकी ओर निहारने लगे ॥

रम्यैः कनकनालैस्तु बबन्धुः काश्च काञ्चन।
जहसुर्बभ्रमुः कन्या डिण्डिमं चुक्रुशुर्जगुः ॥ ७२ ॥

फिर कुछ कन्याओंने मिलकर किसी दूसरीको सोनेके सुन्दर नालों (नारों) से बाँध दिया। यह देखकर कुछ कन्याएँ ठहाका मारकर हँसने लगीं, कुछ डिंडिमघोष करती हुई घूमने लगीं और कुछ गीत गाने लगीं ॥ ७२ ॥

एवं स्म ताः सरसि कुङ्कुमनीरभाजि
स्नात्वाबलाः परिदधुः स्म दुकूलवृन्दम्।
ताटङ्कपत्रवरमौक्तिकहारनिष्कैः
पूर्णेन्दुपाभतिलकैर्व्यधुरङ्गभूषाम् ॥ ७३ ॥

इस प्रकार कुङ्कुमसंयुक्त जलवाले उस सरोवरमें स्नान करके उन कन्याओंने तटपर आकर अपने-अपने रेशमी वस्त्र पहिन लिये। तत्पश्चात् वे कर्णफूल, बहुमूल्य मोतियोंके हार और सुवर्ण-पदकोंसे तथा पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् तिलकोंसे अपने शरीरका शृंगार करने लगीं ॥ ७३ ॥

तां विहाय जलकेलिमुत्तमां
धृष्टबुद्धितनया तटस्थिता।
अन्ववैक्षत हरिं यथा रमा
चन्द्रहासमथ सा सरस्तटे ॥ ७४ ॥

उसी समय धृष्टबुद्धिकी पुत्री विषया जब उस उत्तम जल-क्रीडासे निवृत्त होकर तटपर खड़ी हुई, तब वह उस सरोवर-के तीरपर शयन करते हुए चन्द्रहासको टकटकी लगाकर देखने लगी, ठीक उसी तरह, जैसे रमादेवी भगवान् विष्णुको निहारती हैं ॥ ७४ ॥

षोडशाब्दवयसं सुकुमारं
श्मश्रुलं विमलदीर्घललाटम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पट्टबद्धहयमल्पजनं तं
सिंहशावमिव वाढममंस्त ॥ ७५ ॥

ललाट था, थोड़े-से मनुष्य जिसके साथ थे और जिसने रेशमकी डोरीसे अपने घोड़ेको बाँध रखा था, ऐसे उस सुन्दर कुमारको देखकर विषयाने यही समझा कि यह कोई सिंहशावकके समान वीर राजकुमार है ॥ ७५ ॥

तब जिसकी अवस्था सोलह वर्षकी थी, जिसके मुखपर दाढ़ी-मूँछके चिह्न प्रकट हो गये थे, जिसका प्रकाशमान ऊँचा

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि चन्द्रहासोपाख्याने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें चन्द्रहासोपाख्यानके प्रसङ्गमें तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

विषयाका गुप्तरूपसे अकेले ही चन्द्रहासके समीप जाना, उसके जेबसे पत्र निकालकर उसे पढ़ना और 'विष' की जगह 'विषया' बनाकर पत्रको बंद करके पुनः जेबमें डाल देना, फिर लौटकर सखियोंके साथ घर जाना, चन्द्रहासका जागना और मन्त्रीके भवनपर पहुँचकर द्वारपालद्वारा अपने आगमनका समाचार भेजवाना, द्वारपालकी बात सुनकर मदनका द्वारपर आकर चन्द्रहासको सभामें ले जाना, चन्द्रहासके दिये हुए पत्रको सभामें पढ़ना, विषयाका चन्द्रहासको पतिरूपमें पानेके लिये पार्वतीजीसे प्रार्थना करना

नारद उवाच

जलक्रीडारुणाक्ष्यस्ता निर्ययुः स्वान् गृहान् प्रति।
विषया न ययौ पार्थ चन्द्रहासगुणैर्वृता ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—पार्थ! तदनन्तर जलक्रीडा करनेसे जिनके नेत्र लाल हो गये थे, वे कन्याएँ अपने-अपने घरकी ओर चल पड़ीं; परंतु विषया नहीं गयी; क्योंकि चन्द्रहासके गुणोंने उसे घेर रखा था ॥ १ ॥

गच्छत्सु मानुषेष्वेको निधिं पश्यत् पुरःस्थितम्।
स यथा निश्चलस्तत्र तथा सा विषया स्थिता ॥ २ ॥

जैसे बहुत-से मनुष्योंके एक साथ जाते समय किसी एकको आगे पड़ा हुआ खजाना दीख जाय और वह वहीं निश्चल होकर खड़ा हो जाय, उसी प्रकार वह विषया (चन्द्रहासको देखकर) वहाँ खड़ी रह गयी ॥ २ ॥

किं न याम्यथवा यामि सुन्दरं पुरुषं वने।
अमुं विवेकं मदनस्तदीयं व्यलुनाच्छरैः ॥ ३ ॥

(वह अपने मनमें तर्क-वितर्क करने लगी कि) इस निर्जन वनमें उस सुन्दर पुरुषके पास मैं जाऊँ अथवा न जाऊँ। इतनेमें ही कामदेवने अपने बाणोंसे उसके इस विवेकको छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ३ ॥

सैरन्ध्रीं सा समाहूय नूपुरौ प्रददौ निजौ।
ततः पदं पदे कृत्वा दुकूलेऽपि विशङ्किता ॥ ४ ॥
हंसीव सा यथा हंसं ययौ दृष्ट्वा तुरङ्गमः।
चरन् दूर्वाङ्कुराञ्छ्यामाञ्छ्यामया स नमस्कृतः ॥ ५ ॥
मम प्राणान् प्रिये सक्तान् मा शब्देन वियोजय।
इति ब्रुवन्ती शनकैः प्राप्ता कुण्डलिनं जनम् ॥ ६ ॥
पतिवत् तं हि विषया दत्तदृष्टिरवैक्षत।

फिर तो उसने सैरन्ध्रीको बुलाकर अपने दोनों पायजेब उसे दे दिये। तत्पश्चात् स्वयं जैसे हंसी हंसके पास जाती है, उसी तरह अपने पैरपर पैर रखती हुई चन्द्रहासकी ओर चली। उस समय अपने रेशमी वस्त्रोंके फड़क जानेपर भी वह सशंकित हो जाती थी। आगे बढ़नेपर उसे हरी-हरी घास चरता हुआ (चन्द्रहासका) घोड़ा दीख पड़ा। उस समय वह सुन्दरी घोड़ेको नमस्कार करके कहने लगी—'अश्वराज! मेरे प्राण अपने प्रियतममें आसक्त हो गये हैं, तुम हींसकर उन्हें वियुक्त न करना।' इस प्रकार कहती हुई विषया धीरे-धीरे उस कुण्डलधारी पुरुषके पास जा पहुँची और उसे अपने पतिके समान मानकर टकटकी लगाकर निहारने लगी ॥ ४–६½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ततो ददर्श रुचिरं पत्रं कञ्चुकनिःसृतम् ॥ ७ ॥
गृहीत्वा तत् करेणाशु मुद्रामुन्मुच्य विस्मिता।
वाचयामास तत् पत्रं पितुरत्यन्तहर्षिता ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् उसकी दृष्टि चन्द्रहासके कोटकी जेबसे बाहर निकले हुए उस सुन्दर पत्रपर पड़ी। उसने शीघ्र ही उसे अपने हाथमें ले लिया और आश्चर्यचकित होकर उसकी मुहर खोल दी। फिर अत्यन्त हर्षित होकर अपने पिताके उस पत्रको बाँचने लगी ॥ ७-८ ॥

स्वस्तिश्रीरस्तु मदन वक्तुं कारणमीदृशम्।
चन्द्रहासो हितोऽतीव ममायं सम्पदां प्रभुः ॥ ९ ॥
ज्ञातव्यो नात्र संदेहः पुत्र कार्यं त्वयेदृशम्।
मा रूपं मा वयो द्राक्षीः कुलं शीलं पराक्रमम् ॥ १० ॥
विद्यां बलं विलम्बं मा मित्रस्यास्य कुरुः ध्रुवम्।
विषमस्मै प्रदातव्यं त्वया मदनशत्रवे ॥ ११ ॥
पार्वतीशमिति ध्यात्वा कृतार्थाः स्याम तद् वयम्।
दध्यौ सा विषया पश्चादभिप्रायं विवृण्वती ॥ १२ ॥

(उस पत्रमें लिखा था—) 'मदन! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हें लक्ष्मीकी प्राप्ति हो। बेटा! पत्र लिखनेका कारण इस प्रकार है—यह चन्द्रहास मेरा परम हित है। तुम्हें ऐसा समझना चाहिये कि यह मेरी सम्पत्तिका भावी उत्तराधिकारी है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। इसलिये पुत्र! तुम्हें मेरे लिखे अनुसार कार्य करना चाहिये। तुम इस मित्रके रूप, अवस्था, कुल, शील, पराक्रम, विद्या और बलकी ओर मत ध्यान देना, निश्चय ही बिना विलम्ब किये ऐसा करना। तुम पार्वतीपति भगवान् शंकरका ध्यान करके इस मदनशत्रु (कामदेवसे भी अधिक सुन्दर) को विष अवश्य दे देना, जिससे हमलोग कृतार्थ हो जायँगे।'* पत्र पढ़नेके पश्चात् विषया इसका अभिप्राय समझनेके लिये विचार करने लगी ॥ ९–१२ ॥

सम्पदां मे प्रभुर्नित्यं हितो मदनसंनिभः।
एवमादि मया पत्रे रुचिरं वीक्ष्यते यथा ॥ १३ ॥
वरं मनोरमं वीक्ष्य मद्रूपं हर्षनिर्भरः।
विषमस्मै प्रदातव्यमत्र चस्खाल मे पिता ॥ १४ ॥
पितुर्वै पत्रमालोक्य मदनोऽपि हनिष्यति।

(सोच-विचार करनेके पश्चात् उसके मनने यह निर्णय किया कि) 'इस पत्रमें जो यह लिखा है कि यह मदनके समान मेरा सदा हितकारी और मेरी सम्पत्तिका स्वामी है, ऐसी सारी बातें तो मुझे ठीक ही जँच रही हैं; परंतु 'विषमस्मै प्रदातव्यम्—इसे विष दे देना' यहाँ मेरे पिताजीने लिखनेमें भूल की। ज्ञात होता है कि वे मेरे अनुरूप इस मनोहर वरको देखकर आनन्दविभोर हो गये थे (जिससे उन्होंने 'विषया' की जगह 'विष' लिख दिया)। अब पिताजीका यह पत्र देखकर मदन भी निश्चय ही इनका वध कर डालेगा' ॥

कनिष्ठिकानखेनाथ तीक्ष्णेनादाय सुन्दरी ॥ १५ ॥
रसालद्रुमनिर्यासं लिलेख विषया तदा।
विषयास्मै प्रदातव्येत्येवं वर्णान् समालिखत् ॥ १६ ॥

ऐसा विचारकर सुन्दरी विषयाने उस समय अपनी कनिष्ठिका अँगुलीके तीखे नखसे आमके वृक्षसे गोंद खरोंच लिया और फिर उसीसे 'विषमस्मै प्रदातव्यम्'के स्थानपर 'विषयास्मै प्रदातव्या—इसे विषया दे देना' ऐसे अक्षरोंको लिख दिया ॥ १५-१६ ॥

पत्रं रसालनिर्यासकृतमुद्रं विधाय सा।
कञ्चुकाभ्यन्तरे न्यस्य विषयागान्निवेशनम् ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् विषयाने उसी आमके गोंदसे पत्रको यथास्थान मुद्रित करके उसे चन्द्रहासके कोटकी जेबमें डाल दिया और फिर वह अपने घरकी ओर चल दी ॥ १७ ॥

पुनः पुनश्च पश्यन्ती पृष्ठतः प्राणवल्लभम्।
ततो दृष्ट्वा व्रजन्ती सा सखीभिर्विषया तदा ॥ १८ ॥

चलते समय वह बारंबार पीछेकी ओर मुड़कर अपने प्राणवल्लभकी ओर निहारती जाती थी। तदनन्तर सखियोंने उस समय विषयाको इस प्रकार चलती हुई देखकर लक्ष्य किया ॥ १८ ॥

सख्य ऊचुः

कस्माद् विलम्बितं भद्रे कस्माद्धर्षो महांस्त्वयि।
कस्माद् वै वीक्ष्यते पृष्ठे कच्चिद् दृष्टो नृकेसरी ॥ १९ ॥

तब सखियोंने पूछा—भद्रे! तूने विलम्ब क्यों कर दिया? तेरे मनमें तो महान् हर्ष लक्षित हो रहा है—इसका

* इस पत्रमें 'चन्द्रहासो हितोऽतीव' इसमें (ऽ) खण्डाकार माना जाय तो 'अहित' अर्थ होता है और खण्डाकार न माननेपर 'हित' अर्थ होता है। इसी तरह मित्रके पहले खण्डाकार माननेसे अमित्र अर्थ होता है। विषयाने खण्डाकार न मानकर उस पत्रका अर्थ अनुकूल ही समझा। 'मदनशत्रवे' को एक शब्द माननेसे उपर्युक्त अर्थ प्रतीत होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्या कारण है ? तू पीछे मुड़-मुड़कर क्यों देखती जाती थी ? तूने किसी पुरुषसिंहको तो नहीं देख लिया ? ॥ १९ ॥

सिंहो दृष्टः कथं त्यक्तः सुप्तो नूनं त्वयेक्षितः ।
मन्ये तदीयं सर्वस्वं मुष्णासि त्वं निगूहसे ॥ २० ॥
क्रीडन्त्यो हास्यवचनैः सर्वाः स्वं स्वं गृहं ययुः ।

(अच्छा हम मान लेती हैं) यदि कोई नृसिंह तेरे दृष्टि-गोचर हो ही गया तो तूने उसका त्याग कैसे कर दिया ? (इससे ज्ञात होता है कि) निश्चय ही तूने उसे शयन करते हुए देखा है । मैं खूब समझती हूँ, तूने उसका सर्वस्व चुरा लिया है और अब हमसे छिपा रही है । इस प्रकार हास्ययुक्त वचनोंद्वारा क्रीडा करती हुई वे सभी कन्याएँ अपने-अपने घर चली गयीं ॥ २०½ ॥

प्रहस्य विषया कन्या शुश्राव पुटभेदने ॥ २१ ॥
विवाहोत्सवकार्याणां पणवानां तु निःस्वनम् ।
गायन्तीनां पुरन्ध्रीणां संगीतध्वनिमिश्रितम् ॥ २२ ॥
सूर्यं दृग्भ्यां प्रपश्यन्ती प्रार्थयन्ती पतिं प्रियम् ।

कुमारी विषया भी हँसकर चल दी । जब नगरमें होते हुए विवाहोत्सवके अवसरपर बजनेवाले नगारोंके शब्दको, जो गान करती हुई सौभाग्यवती स्त्रियोंकी संगीतध्वनिसे मिश्रित था, उसने सुना, तब वह अपने दोनों नेत्रोंसे सूर्यदेवकी ओर देखकर उनसे अपने प्रियतम पतिकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना करने लगी ॥ २१-२२½ ॥

विषया गृहमागत्य हृष्टा सा प्रियदर्शनात् ॥ २३ ॥
सप्तभूमिकमास्थाय मन्दिरं सा व्यलोकयत् ।

तत्पश्चात् प्रियतम पतिके दर्शनसे आह्लादित हुई वह विषया अपने घर आयी और सात भूमिक (तल्ले) वाले भवनके ऊपरी छतपर बैठकर चारों ओर देखने लगी ॥

चन्द्रहासोऽपि सायाह्ने प्रबुद्धः सिंहविक्रमः ॥ २४ ॥
प्रक्षालितास्यः कृतवक्त्रशुद्धिः
पल्याणयुक्तं हयमारुरोह ।
चतुर्भिरेवानुगतः स्वभृत्यैः
पुरं विवेशाप्रतिमप्रभावः ॥ २५ ॥
यस्मिन् पुरे धर्ममतिः सुमन्त्री
राजा परं ध्यानपरः स योगी ।
आस्ते परं गालवसूक्तिमुक्ता-
फलानि गृह्णन्निशं विचिन्तयन् ॥ २६ ॥

इधर सायंकाल होनेपर सिंह-तुल्य पराक्रमी चन्द्रहासकी भी नींद टूटी । तब उसने अपना मुँह धोया और आचमन आदि करके मुखको शुद्ध किया। फिर वह जीन आदि सामग्री-से सुसज्जित घोड़ेपर सवार हुआ । तत्पश्चात् अनुपम प्रभाव-वाले चन्द्रहासने जिस नगरमें गालवमुनिकी सुन्दर उक्तिरूपी मोतियोंको ग्रहण करके निरन्तर सद्विचारोंमें लीन, धर्मबुद्धि, सुन्दर मन्त्रणा करनेवाला, भगवद्ध्यानपरायण, परम योगी राजा निवास करता था, उस नगरमें अपने उन्हीं चारों सेवकोंके साथ प्रवेश किया ॥ २४–२६ ॥

चन्द्रहासो धृष्टबुद्धिभवनं प्राप सत्वरः ।
अवतीर्य हयात् तस्माद् द्वाःस्थं वचनमब्रवीत् ॥ २७ ॥

वहाँ चन्द्रहास तुरंत ही धृष्टबुद्धिके घरपर जा पहुँचा और अपने उस घोड़ेकी पीठसे नीचे उतरकर द्वारपालसे इस प्रकार कहने लगा—॥ २७ ॥

अन्तः कथय रे द्वाःस्थ मदनं प्रति मे वचः ।
श्रीमद्धृष्टमतेर्वाक्यकारकश्चन्द्रहासकः ॥ २८ ॥
प्राप्तो वचनसंदेशकथापत्रधरो बहिः ।

'रे द्वारपाल ! तू भीतर जाकर मदनसे मेरी बात कह दे कि श्रीमान् धृष्टबुद्धिकी आज्ञाका पालन करनेवाला चन्द्रहास उनके वचन-संदेशसे परिपूर्ण पत्र लेकर आया हुआ है और बाहर खड़ा है' ॥ २८½ ॥

शिर आनम्य स द्वाःस्थः स्वामिनं मदनं ययौ ॥ २९ ॥
शंसितुं चन्द्रहासं तं पार्थाकर्णय विस्मयम् ।

यह सुनकर उस द्वारपालने सिर झुकाकर वह आज्ञा शिरोधार्य की और फिर वह चन्द्रहासके आगमनकी सूचना देनेके लिये अपने स्वामी मदनके पास चल दिया । पार्थ ! अब उस समयकी आश्चर्यजनक बात सुनो ॥ २९½ ॥

स द्वाःस्थो ह्यपरं द्वाःस्थं गत्वा वचनमब्रवीत् ॥ ३० ॥
चन्द्रहासमनुप्राप्तं मदनाय निवेदय ।
द्वितीयो द्वाःस्थमागम्य तृतीयं वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

वह द्वारपाल दूसरे द्वारपालके पास जाकर उससे यों कहने लगा कि तुम स्वामी मदनके पास जाकर निवेदन कर दो कि चन्द्रहास आये हुए हैं । तब दूसरा तीसरे द्वारपालके पास आकर ऐसा ही कहा ॥ ३०-३१ ॥

तृतीयस्तु चतुर्थं च चतुर्थः पञ्चमं तथा ।
पञ्चमश्चागमत् षष्ठं षष्ठः सप्तममाव्रजत् ॥ ३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसी प्रकार क्रमशः तीसरा चौथेके पास, चौथा पाँचवेंके पास, पाँचवाँ छठेके पास और छठा सातवेंके पास गया ॥

द्वाःस्थं विवेकनामानं मदनस्य प्रियं सदा।
श्रद्धायष्टिधरं षष्ठश्चन्द्रहासं न्यवेदयत् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार छठे द्वारपालने विवेक नामवाले सातवें द्वारपालसे, जो श्रद्धारूपी सोंटा धारण करनेवाला और सदैव मदनका प्यारा था, चन्द्रहासके आगमनका समाचार निवेदन किया ॥ ३३ ॥

नारद उवाच

विवेकनामा द्वाःस्थोऽयं श्रद्धायष्टिं करे दधत्।
प्रययौ मदनायाशु चन्द्रहासं निवेदितुम् ॥ ३४ ॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! तब वह विवेक नामक द्वारपाल हाथमें श्रद्धारूपी डंडा लेकर मदनसे चन्द्रहासके आगमनकी सूचना देनेके लिये शीघ्र ही चल दिया ॥ ३४ ॥

सिंहासने चोपविष्टं मदनं शङ्करप्रियम्।
ददर्श दक्षिणे पार्श्वे वेदशास्त्रविदो जनान् ॥ ३५ ॥
कवीन् सदुक्तिकर्तॄंश्च वक्तॄन् कृष्णगुणान् बहून्।
कृष्णवेषनटान् कृष्णगीतनृत्यप्रगायकान् ॥ ३६ ॥
कृष्णस्य कृष्णभक्तानां वन्दिनो गुणवर्णकान्।
वामपार्श्वे क्षत्रियांश्च कृष्णभक्तिपरायणान् ॥३७॥
नानादेशसमायातान् दूताञ्छास्त्रविशारदान्।
चामरैर्वीज्यमानं च मदनं धृष्टबुद्धिजम्।
विवेकनामा द्वाःस्थस्तं नमस्कृत्यालपद् गिरम् ॥३८॥

वहाँ पहुँचकर उसने भगवान् शंकरके प्रिय भक्त मदनको सिंहासनपर बैठा हुआ देखा । उनके दाहिनी ओर वेदशास्त्रके ज्ञाता विद्वान्, कवि, उत्तम कहावतें कहनेवाले, नाना प्रकारसे श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन करनेवाले, श्रीकृष्णके-से वेष धारण करनेवाले तथा उनके गीत और नृत्यका प्रदर्शन करनेवाले नट तथा श्रीकृष्ण और उनके भक्तोंके गुणोंका वर्णन करनेवाले वंदीजन बैठे हुए थे एवं मदनके वामपार्श्वमें श्रीकृष्णभक्तिपरायण क्षत्रिय और नाना देशोंसे आये हुए शास्त्रविशारद दूत विराजमान थे । उन धृष्टबुद्धिकुमार मदनके ऊपर चँवर डुलाये जा रहे थे । तब उस विवेक नामक द्वारपालने उन्हें नमस्कार करके यों कहना आरम्भ किया ॥ ३५–३८ ॥

विवेक उवाच

केवलं तव भृत्योऽहं प्रियश्च न पितुस्तव।
पितुस्तेऽन्यः क्रोधनामा हिंसायष्टिधरः प्रियः ॥ ३९ ॥

विवेकने कहा—स्वामिन् ! मैं तो केवल आपका ही सेवक हूँ, आपके पिताको मैं अच्छा नहीं लगता; क्योंकि आपके पिताको तो एक दूसरा क्रोध नामक द्वारपाल प्रिय है, जो हिंसारूपी डंडा धारण किये रहता है ॥ ३९ ॥

स स्वामिभक्तो मदन यावन्नायाति ते सदः।
तावन्मदीयं वचनं शृणु सभ्यैः समन्वितः ॥ ४० ॥

मदनजी ! वह स्वामिभक्त क्रोध जबतक आपकी सभामें नहीं आ जाता है, उससे पहले ही इन सभासदोंके साथ बैठे हुए आप मेरी बात सुन लीजिये ॥ ४० ॥

यश्चिन्त्यते सदा शान्तैर्योगिभिर्मधुसूदनः।
तस्य भक्तश्चन्द्रहासः प्राप्तो द्वारं महामते ॥ ४१ ॥

महाबुद्धे ! शम-दमसम्पन्न योगी जिन मधुसूदनका सदा ध्यान करते रहते हैं, उन्हींका भक्त चन्द्रहास आपके द्वारपर आया हुआ है ॥ ४१ ॥

अहं तव पितुर्भीतः क्रोधस्यानुचरस्य च।
न यामि शंसितुं किंचित् प्राप्तं त्वां प्रति न ब्रुवे ॥४२॥
जनस्तव पितुः प्रेष्यः स्वयं वा मां हनिष्यति।

मैं तो आपके पिताजीसे तथा उनके अनुचर क्रोधसे बहुत डरता हूँ, इसीलिये यदि कोई आपसे मिलने आता है तो मैं उसकी सूचना देनेके लिये न आपके पास आता हूँ और न उसीसे कुछ कहता हूँ; क्योंकि ऐसा जानकर आपके पिताका सेवक वह क्रोध अथवा स्वयं आपके पिताजी ही मुझे मार डालेंगे ॥ ४२½ ॥

इत्थं मनोरमं तस्य वचनं शास्त्रसम्मितम् ॥ ४३ ॥
उत्तस्थौ च समाकर्ण्य मदनस्तैः सभाजनैः।

उस विवेक नामवाले द्वारपालके ऐसे शास्त्रसम्मत एवं मनोहर वचन सुनकर मदन उन सभासदोंके साथ अपने सिंहासनसे उठकर खड़ा हो गया (और दरवाजेकी ओर चल पड़ा) ॥

स्खलद्दुकूलाभरणः प्राञ्चलं च समुत्क्षिपत् ॥४४॥
क्षणाद् ददर्श मदनश्चन्द्रहासं हरेः प्रियम्।

चलते समय मदनके रेशमी वस्त्र और आभूषण यत्र-तत्र खिसकते जा रहे थे । वह अपने दुपट्टेके अञ्चलको कंधेपर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फेंकता जाता था। इस प्रकार क्षणभरमें द्वारपर पहुँचकर उसने भगवान् श्रीहरिके भक्त चन्द्रहासका दर्शन किया ॥ ४४½ ॥

नमस्कृत्याभिलिङ्ग्याथ सभां रम्यां समानयत् ॥ ४५ ॥
वरासने संनिवेश्य सम्पूज्य मदनोऽब्रवीत्।

फिर तो मदनने चन्द्रहासको प्रणाम करके उसे गले लगाया और फिर वह उसे आदरपूर्वक अपनी रमणीय सभामें ले आया। वहाँ एक श्रेष्ठ आसनपर बैठाकर भलीभाँति स्वागत-सत्कार करनेके पश्चात् मदनने उससे पूछा—॥ ४५½ ॥

कच्चित् कुलिन्दः कुशली कच्चित् कुशलिनी प्रिया ४६
कच्चित् ते विषये विप्रा वेदाभ्यासं प्रकुर्वते।
कच्चित् क्षत्रियविट्शूद्राः पूजयन्ति द्विजान् धनैः ।४७।
कच्चित् प्रजा नो पिशुनैर्बाध्यन्ते दुःखदैः करैः।
अपि त्वं कुशली प्राप्तश्चिन्तयन् मनसा हरिम् ॥ ४८ ॥
किमत्रागमने कार्यं तदाचक्ष्व जनप्रियम्।

'राजा कुलिन्द सकुशल तो हैं न? उनकी प्यारी रानी भी कुशलसे हैं न? क्या आपके राज्यमें ब्राह्मण वेदाभ्यास करते हैं? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र धन आदि प्रदान करके उन ब्राह्मणोंका आदर-सत्कार करते हैं? आपकी प्रजा चुगल-खोरों तथा कष्टदायक करों (टैक्सों) द्वारा पीडित तो नहीं रहती? आप मार्गमें मनसे श्रीहरिका ध्यान करते हुए कुशल-पूर्वक तो आये हैं न? किस जन-हितकारी कार्यके लिये आपका यहाँ शुभागमन हुआ है? उसे बतानेकी कृपा कीजिये' ॥

चन्द्रहास उवाच

युष्मादृशां सतां सङ्गाद् विपदो यान्ति संक्षयम् ॥ ४९ ॥
कृष्णे तु भक्तिः सुदृढा जायते मुक्तिदा नृणाम्।

चन्द्रहासने उत्तर दिया—मन्त्रिपुत्र! आप-जैसे सत्पुरुषोंकी संगतिसे विपत्तियोंका सर्वथा विनाश हो जाता है और भगवान् श्रीकृष्णमें सुदृढ़ भक्ति उत्पन्न हो जाती है, जो मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करनेवाली है ॥ ४९½ ॥

संदेशात् ते पितुः प्राप्तः पत्रं गृह्णीष्व वाचय ॥ ५० ॥
एकान्ते गूढमस्त्यत्र महत् कार्यं न वेद्मि तत्।

मैं आपके पिताजीका संदेश लेकर आया हूँ। इस पत्रको लीजिये और इसे एकान्तमें पढ़िये; क्योंकि इसमें कोई महान् गुप्त कार्य लिखा हुआ है; परंतु मुझे उसका कुछ भी पता नहीं है ॥ ५०½ ॥

करे गृहीत्वा मदनः पत्रं प्रोवाच विस्मितः ॥ ५१ ॥
शृण्वन्तु निखिलाः पत्रमेकान्ते करवाणि किम्।
अथ पत्रं सभामध्ये वाचयिष्यामि नान्यथा ॥ ५२ ॥
शृण्वतां सर्वलोकानां वाचयामास मन्त्रिजः।

यह सुनकर मदनको महान् विस्मय हुआ और वह उस पत्रको हाथमें लेकर कहने लगा—'मैं इस पत्रको एकान्तमें पढ़कर क्या करूँगा? यहाँ पढ़नेसे ये उपस्थित सभी सभासद् भी तो सुनेंगे; इसलिये मैं इस पत्रको सभामें ही बाँचूँगा, इसके विपरीत एकान्तमें नहीं जाऊँगा।' ऐसा कहकर मन्त्रिकुमार मदन सब लोगोंके सुनते हुए उस पत्रको बाँचने लगा ॥

स्वस्त्यस्तु मदनायाशु विषयास्मै प्रदीयताम् ॥ ५३ ॥
न रूपं न कुलं शौर्यं मा विद्यां चावलोकय।

(उस पत्रमें लिखा था—) 'मदन! तुम्हारा मङ्गल हो। तुम इसके रूप, कुल, पराक्रम और विद्याकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर शीघ्र ही इसे विषया प्रदान कर देना' ॥ ५३½ ॥

इति पत्रे स्थितं वीक्ष्य हृष्टितो मदनोऽब्रवीत् ॥ ५४ ॥
अद्य मे पावितो वंशः पित्रा सर्वे च बान्धवाः।
मया यच्चिन्त्यते नित्यं स्वयमेवाभवच्च तत् ॥ ५५ ॥

पत्रमें लिखी हुई ऐसी बातको देखकर मदन हर्षमग्न हो कहने लगा—'आज पिताजीने मेरे वंशको तथा सारे भाई-बन्धुओंको पावन बना दिया। मैं जिसकी नित्य चिन्ता करता था, वह कार्य आज अपने-आप ही पूर्ण हो गया' ॥ ५४-५५ ॥

नारद उवाच

हर्म्यस्य सप्तमे पृष्ठे विषया काममोहिता।
सखीभिः सवयोभिस्तं चन्द्रहासमवैक्षत ॥ ५६ ॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! उधर कामसे मोहित हुई विषया अपनी समवयस्का सहेलियोंके साथ महलकी सातवीं छतपर बैठी थी, उसी समय उसकी दृष्टि उस चन्द्रहासपर पड़ी ॥ ५६ ॥

ध्यायन्ती मनसा देवीं पार्वतीं शङ्करप्रियाम्।
भर्तारं देहि मे देवि दाक्षायणि नमोऽस्तु ते ॥ ५७ ॥

तब वह मन-ही-मन शंकरप्रिया देवी पार्वतीका ध्यान करती हुई प्रार्थना करने लगी—'दक्षकुमारी! आपको प्रणाम है। देवि! मुझे पति प्रदान कीजिये ॥ ५७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वत्प्रियार्थं करिष्यामि व्रतं नभसि चागते ।
कृष्णपक्षे तृतीयायां रात्रौ कृत्वा तु पूजनम् ॥ ५८ ॥
गन्धैश्च विविधैर्धूपैः पक्वान्नैर्मोदकादिभिः ।
पुष्पमण्डपिकां कृत्वा मूर्तिं चित्रमयीं शुभाम् ॥ ५९ ॥
तोषयिष्यामि नक्तेन तथा जागरणेन च ।
मदनस्य मुखाद् वाणी सत्या निर्यातु वेदवत् ॥ ६० ॥

'माता ! श्रावणमास आनेपर मैं आपकी प्रसन्नताके लिये आपका व्रत करूँगी । उस मासके कृष्णपक्षकी तृतीया तिथिको रात्रिके समय मैं एक पुष्पमण्डप तैयार करके उसमें आपकी सुन्दर चित्रमयी मूर्ति स्थापित करूँगी और गन्ध, नाना प्रकारके धूप, पक्वान्न तथा मोदक आदिसे पूजन और रात्रिमें जागरण करके आपको संतुष्ट करूँगी । देवि ! (आपकी कृपासे) मदनके मुखसे जो वाणी निकले, वह वेदके समान सत्य हो' ॥

इति संचिन्तयन्तीं तां वयस्या काचिदब्रवीत् ।
मनोरथस्ते किं जातः किं चिन्तयसि भामिनि ॥ ६१ ॥

विषया इस प्रकार विचार कर ही रही थी, तबतक कोई सखी बोल उठी—'भामिनि ! तेरे मनमें कौन-सी इच्छा जाग्रत् हो गयी है ? तू क्या सोच रही है ?' ॥ ६१ ॥

तया चम्पकमालिन्या हसन्त्या यदुदाहृतम् ।
वक्षो भित्त्वा निर्गतौ तौ भक्त्या किं ते रतिस्मरौ ॥ ६२ ॥
प्रियं प्रार्थय पूजार्थमनयोस्तापसं क्वचित् ।
दृष्टः स तापसः प्राणानस्मै सा त्वं प्रयच्छ च ॥ ६३ ॥

'(क्या तू उस बातको सोच रही है) जो उस चम्पकमालिनीने हँसीमें तुझसे कहा था कि क्या तेरी भक्तिसे प्रसन्न होकर ये दोनों रति और कामदेव तेरे वक्षःस्थलको विदीर्ण करके निकल आये हैं ? अच्छा, अब तू इन दोनोंकी पूजा करनेके लिये किसी प्रिय तपस्वीकी प्राप्तिके निमित्त प्रार्थना कर और उस तापसके मिल जानेपर तू उसे अपने प्राणोंको समर्पित कर दे' ॥ ६२-६३ ॥

इत्थं सखीनां वचनेन बाला
प्रहर्षिताधोवदना लिलेख ।
भूमिं पदाङ्गुष्ठनखेन भर्तुः
गुणानिवाख्यान् विषयातिनम्रा ॥ ६४ ॥

सखियोंकी ऐसी बात सुनकर सुन्दरी विषया परम प्रसन्न हुई और लज्जासे उसका मुख अवनत हो गया । फिर वह अत्यन्त नम्र होकर पैरके अँगूठेके नखसे पृथ्वीको इस प्रकार कुरेदने लगी मानो अपने पतिदेवके उत्तम गुणोंको लिख रही हो ॥ ६४ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि चन्द्रहासमदनसम्भाषणं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें चन्द्रहास और मदनका सम्भाषणनामक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अर्जुनके पूछनेपर नारदजीद्वारा चन्द्रहास और विषयाके विवाहका वर्णन

अर्जुन उवाच

अतः परं किमभवन्मदनो धृष्टबुद्धिजः ।
कथं विवाहमकरोद् विषयाचन्द्रहासयोः ॥ १ ॥
कथं च चन्दनावत्याः प्राप्तो मन्त्री स्वकं पुरम् ।
किमब्रवीत् स मदनं तन्ममाचक्ष्व नारद ॥ २ ॥

अर्जुनने पूछा—नारदजी ! इसके पश्चात् कौन-सी घटना घटी ? धृष्टबुद्धिकुमार मदनने किस प्रकार विषया और चन्द्रहासका विवाह किया ? मन्त्री धृष्टबुद्धि चन्दनावतीपुरीसे लौटकर अपने नगरको कैसे आया और घर आकर उसने मदनसे क्या कहा ? वह सब बातें मुझे बताइये ॥ १-२ ॥

नारद उवाच

अथ विप्रान् समाहूय ज्योतिःशास्त्रविशारदान् ।
पप्रच्छ मदनो लग्नं विषयाचन्द्रहासयोः ॥ ३ ॥

नारदजीने कहा—अर्जुन ! तदनन्तर मदनने ज्योतिःशास्त्रविशारद ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे विषया और चन्द्रहासके विवाहका लग्न पूछा ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गणकास्त्वब्रुवन् वाक्यं मदनं प्रति हर्षिताः।
शुक्रजीवावधिपती तृतीयैकादशं शुभम् ॥ ४ ॥

तब ज्योतिषीलोग हर्षित होकर मदनसे इस प्रकार कहने लगे—'मन्त्रिकुमार! शुक्र और बृहस्पति वर-कन्याके स्वामी हैं और ये दोनों परस्पर तीसरे और ग्यारहवें पड़ रहे हैं; इसलिये शुभ है (अर्थात् विषयाकी राशि वृष है और चन्द्रहासकी मीन। वृषके स्वामी शुक्र और मीनके स्वामी बृहस्पति हैं। मीनसे वृष तीसरी राशि है और वृषसे मीन ग्यारहवीं राशि है। इस प्रकार वरकी राशिसे कन्याकी राशि तीसरी और कन्याकी राशिसे वरकी राशि ग्यारहवीं हो तो विवाह शुभ माना जाता है) ॥ ४ ॥

अनयोस्तव भाग्याच्च गोरजो ध्रियते पुनः।
पताका इव कुर्वन्त्यः पुच्छैरूर्ध्वमुखैः पुरम् ॥ ५ ॥
लक्षयित्वाभिधावन्त्यो गावो वत्सदिदृक्षवः।
त्रिगुणोद्भूतया रज्ज्वा बद्धं गोष्ठे हि चातुरम् ॥ ६ ॥

'साथ ही इन दोनों वर-कन्याके तथा आपके भाग्यसे इस समय गोधूलि वेला भी वर्तमान है। देखिये न, बछड़ोंको देखनेकी लालसासे गौएँ पूँछोंको पताकाओंकी भाँति फहराती हुई तथा मुँह ऊपर करके नगरकी ओर दौड़ती हुई आ रही हैं। इनके बछड़े गोष्ठमें तीन लड़ियोंवाली रस्सियोंसे बँधे हुए (अपनी माँसे मिलनेके लिये) आतुर हो रहे हैं ॥५-६॥

पश्य भाग्योदयं वत्स वैष्णवस्य समागमात्।
अद्यैव रुचिरं लग्नं सर्वदोषविवर्जितम् ॥ ७ ॥
गोधूलिकं वराहाद्यैरुदितं फलदं नृणाम्।

'वत्स! इन विष्णु-भक्तके समागमसे आप अपने भाग्योदयकी ओर तो दृष्टि डालिये। आज ही समस्त दोषोंसे रहित एवं सुन्दर गोधूलिकालिक लग्न है। यह लग्न मनुष्योंको उत्तम फल देनेवाला होता है—ऐसा वाराह (मिहिर) आदि श्रेष्ठ ज्योतिषियोंने बता रखा है' ॥ ७½ ॥

तेषामाकर्ण्य वचनं मदनो हर्षनिर्भरः ॥ ८ ॥
आदिदेश पुरन्ध्रीस्ताः पातिव्रत्योपशोभिताः।
स्नापयन्त्वद्य विषयां चन्द्रहासं पृथक् पृथक् ॥ ९ ॥
सजलैः कलशैरार्द्रपल्लवैस्तन्तुभिर्युतैः।
परिधाप्य च वासांसि समानयितुमर्हथ ॥ १० ॥

उन ज्योतिषियोंकी बात सुनकर मदन आनन्दमें निमग्न हो गया। उसने पातिव्रत्य-धर्मसे सुशोभित (सौभाग्यवती स्त्रियोंको आज्ञा दी कि 'अब तुमलोग जिनके गलेमें रक्षा-सूत्र बँधे हुए हैं तथा जिनमें हरे-हरे पल्लव डाले गये हैं, ऐसे जलपूर्ण कलशोंसे विषया और चन्द्रहासको अलग-अलग स्नान कराओ और फिर उन्हें (नूतन माङ्गलिक) वस्त्र पहनाकर यहाँ ले आओ' ॥ ८—१० ॥

रक्तचन्दनवर्णाढ्यो मदनस्तमुपाययौ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते चन्द्रहास महामते ॥ ११ ॥
पतिव्रताकरधृतैः कलशैः स्नाहि वारुणैः।

स्त्रियोंसे ऐसा कहकर रक्तचन्दनके अनुलेपसे सुशोभित मदन स्वयं ही चन्द्रहासके पास गया और कहने लगा—'महाबुद्धिमान् चन्द्रहासजी! आपका कल्याण हो। अब आप उठिये और शीघ्र ही चलकर जिन्हें पतिव्रता नारियोंने अपने हाथोंमें धारण कर रक्खा है, ऐसे कलशोंके जलसे वरुणदेवता-सम्बन्धी मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक स्नान कीजिये' ॥ ११½ ॥

नारद उवाच

सुस्नातं चन्द्रहासं तं गृहे रम्ये न्यवेशयत् ॥ १२ ॥
मदनः साधुशब्दादिमधुपर्कमचीकरत्।
जायया तारकाक्ष्या च पादप्रक्षालनं कृतम् ॥ १३ ॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! जब चन्द्रहास भली-भाँति स्नान कर चुका, तब मदनने उसे ले जाकर एक रमणीय भवनमें बैठाया और 'साधु भवानास्ताम्' आदि प्रक्रिया-द्वारा मधुपर्क निवेदन किया तथा उसकी पत्नी तारकाक्षीने चन्द्रहासका पादप्रक्षालन किया ॥ १२-१३ ॥

तं चन्द्रहासं रमणीयवेष-
मन्तर्गृहे सोऽप्यनयत् स्वराड्वः।
स्वां कन्यकां तां विषयामथान्तरा
चित्रां पटीं मन्त्रयुतैरधारयत् ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् मदन रमणीय वेषधारी उस चन्द्रहासको भी भवनके भीतर ले गया और वहाँ घरके भीतर ही अपनी उस कन्या-तुल्य छोटी बहिन विषयाको मन्त्रोच्चारणपूर्वक विचित्र रेशमी साड़ी धारण कराया ॥ १४ ॥

पप्रच्छ गोत्रं मदनस्तदीयं
पितुः पितुस्तत्पितुराशु नाम।
स चन्द्रहासोऽप्यवदत् स्वगोत्रं
हरिः स्वयं मे जनकः स एव ॥ १५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

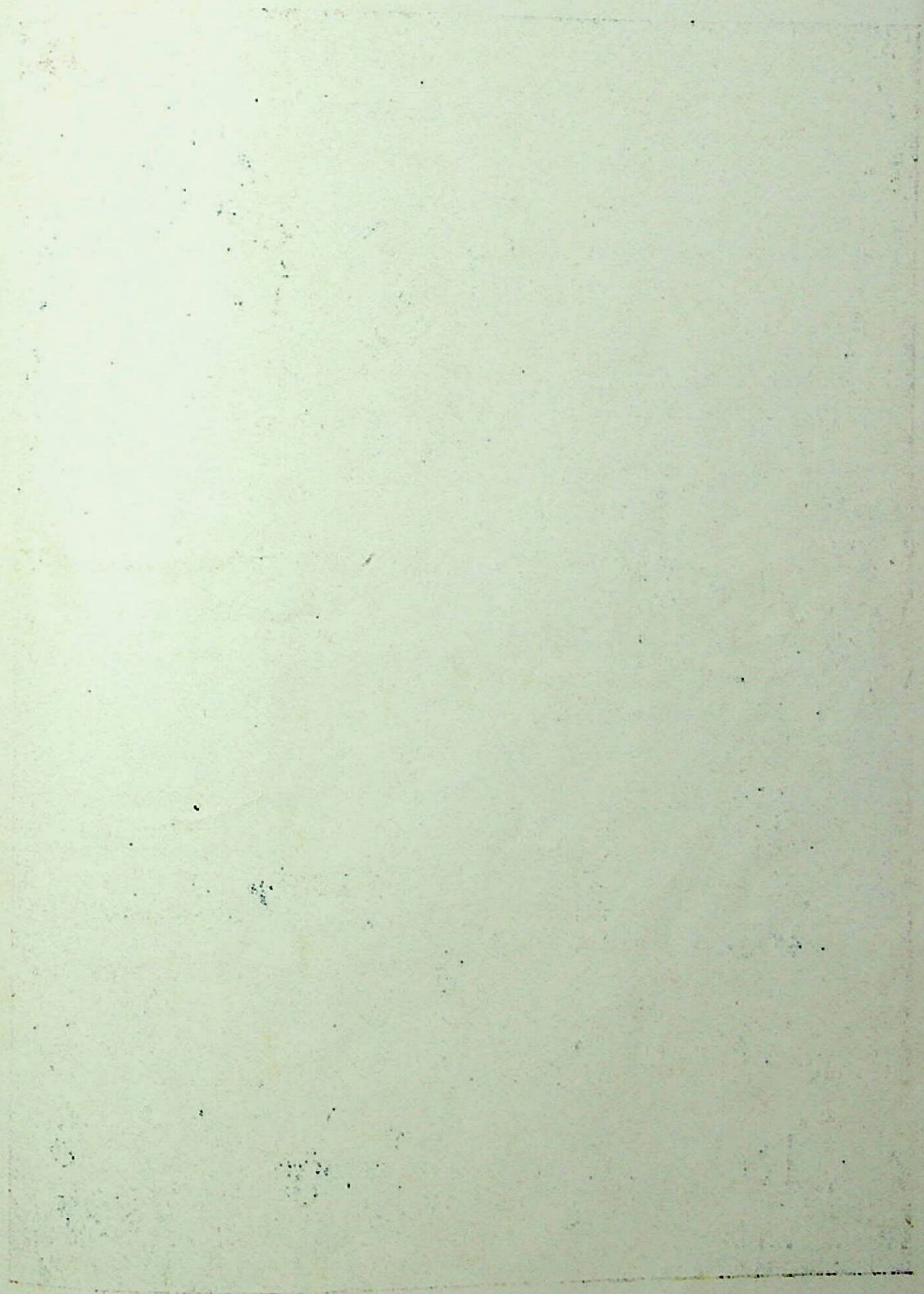

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

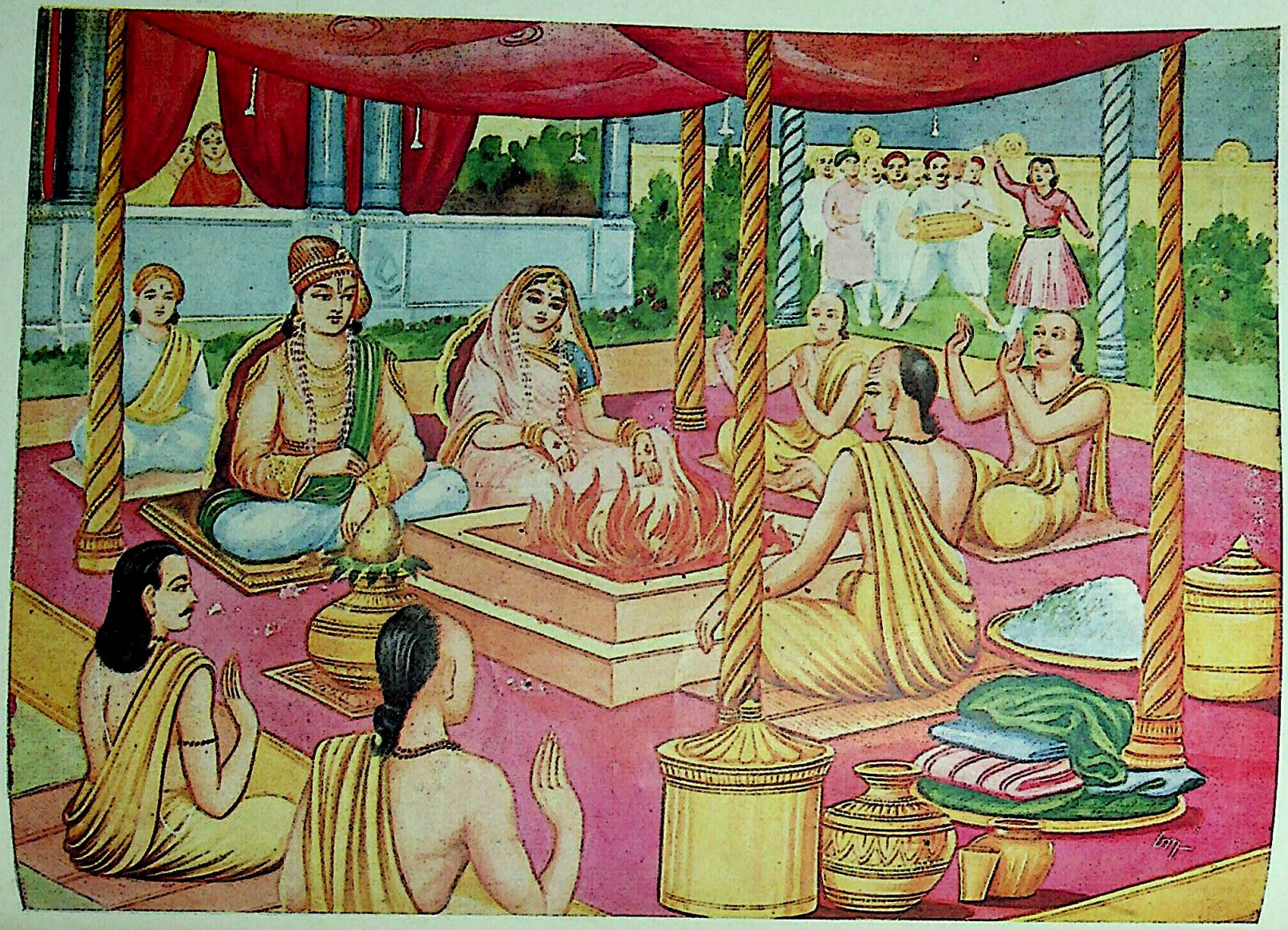

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पितामहः स प्रपितामहश्च
हरेर्न चान्योऽस्ति सुहृद् द्वितीयः।
ऋते कुलिन्दाच्च गुरोर्ममेदीया-
दाधारशक्तेर्न च तस्य पत्न्याः॥ १६॥

फिर मदनने शीघ्रतापूर्वक चन्द्रहाससे उसके गोत्र तथा पिता, पितामह और प्रपितामहका नाम पूछा। तब चन्द्रहासने अपने गोत्रका परिचय देते हुए कहा—'मेरा गोत्र साक्षात् श्रीहरि हैं और वे ही मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह भी हैं। मेरे गुरु (पालक पिता) कुलिन्द और आधारशक्तिस्वरूपा उनकी पत्नीको छोड़कर इस संसारमें उन श्रीहरिके सिवा दूसरा कोई मेरा सुहृद्-बन्धु नहीं है'॥

तच्चन्द्रहासीयमनन्यभावं
वचो निशम्यार्थपतिः स्वकामात्।
स्वसारमुच्चैः प्रददाद् गिरास्मै
लक्ष्मीपतिस्तृप्तिमुपैतु दानात्॥ १७॥

भगवान् श्रीहरिके प्रति अनन्य भावसे युक्त चन्द्रहासके उस वचनको सुनकर अर्थपति मदनने 'इस कन्यादानसे भगवान् लक्ष्मीपति तृप्तिको प्राप्त हों' यों उच्च स्वरसे उच्चारण करके स्वेच्छानुसार अपनी बहिनको चन्द्रहासके हाथमें समर्पित कर दिया॥ १७॥

बद्धाञ्जली कुङ्कुमचर्चिताङ्गौ
तौ दम्पती प्रापतुराशु वेदिम्।
हुताशनं तर्पितमाज्यपूरैः
परीयतुः सप्तपदान्ययाताम्॥ १८॥

तदनन्तर जिनके शरीर कुङ्कुमसे चर्चित थे, ऐसे वे दोनों पति-पत्नी [चन्द्रहास और विषया] अञ्जलि बाँधे हुए शीघ्र ही वेदीके पास आये। वहाँ उन दोनोंने घीकी आहुतियोंसे भलीभाँति तृप्त किये गये अग्निदेवकी परिक्रमा की। फिर वे दोनों सात पग साथ-साथ चले (इस तरह सप्तपदीकी क्रिया पूर्ण हुई)॥ १८॥

द्विजान् नमश्चक्रतुराशिषस्ताः
स्वीचक्रतुः कान्तिमवापतुस्तौ।
पतिव्रतानां तिलकानि भाले
संदध्रतुः पत्रफलानि पाणौ॥ १९॥

तत्पश्चात् उन दोनोंने ब्राह्मणोंको प्रणाम करके उनके आशीर्वाद ग्रहण किये। उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उन दोनोंने ललाटमें पतिव्रता नारियोंद्वारा लगाया हुआ तिलक धारण किया था और अञ्जलिमें पत्र एवं फल ले रखे थे॥ १९॥

ततोऽसौ मदनो हृष्टः प्रददौ मण्डनं बहु।
गावश्च घटदोहिन्यो महिष्यः क्षीरसिन्धवः॥ २०॥
मुक्ताफलानि रत्नानि स्वच्छानि विविधानि च।
वासांस्यगुरुकर्पूरचन्दनानि च वीर्यवान्॥ २१॥

तदनन्तर उस पराक्रमी मदनने हर्षित होकर चन्द्रहासको बहुत-से आभूषण, घड़ेभर दूध देनेवाली गायें, दूधकी समुद्र-जैसी भैंसें, अनेक प्रकारके निर्मल मोती और रत्न, वस्त्र, अगुरु, कपूर और चन्दन दहेजमें दिये॥ २०-२१॥

दत्त्वा तु मदनो दध्यौ किमस्मै दीयते मया।
चन्द्रहासाय चात्मानमर्पयामीति मे मतिः॥ २२॥

इतना सब देनेके पश्चात् मदन अपने मनमें विचार करने लगा कि मैं चन्द्रहासको क्या दे रहा हूँ अर्थात् यह तो कुछ भी नहीं है; इसलिये मेरी बुद्धिमें तो ऐसा जँचता है कि मैं अपने-आपको ही चन्द्रहासके अर्पण कर दूँ॥ २२॥

पश्यतां सर्वलोकानां मदनो वाक्यमब्रवीत्।
इदं शिरःसरोजं च कालायास्मै गमिष्यते॥ २३॥
यदा कदाचिद् दास्यामि क्रीडनार्थं कराम्बुजे।

ऐसा विचारकर सब लोगोंके सामने ही मदनने इस प्रकार कहा—'चन्द्रहासके निमित्त मेरा यह सिर-कमल भी कालके हवाले किया जा सकेगा। जब कभी भी ऐसा अवसर आयेगा, मैं अपने इस सिरको क्रीडाके लिये इनके करकमलमें अर्पित कर दूँगा'॥ २३½॥

यथायं चन्द्रहासो मे जामाता विषयान्वितः॥ २४॥
पुत्रपौत्रैः परिवृतश्चिरकालं प्रशास्त्विमाम्।
तथा भूयाच्च मे पुण्याद् विष्णोराराधनात्मकात्।

(पुनः चन्द्रहासकी मङ्गल-कामना करते हुए उसने कहा—) 'मैंने जो भगवान् विष्णुकी आराधना की है, मेरे उस पुण्यके प्रभावसे ऐसा हो जाय, जिससे बहिन विषयाके साथ मेरे ये जामाता-तुल्य बहनोई चन्द्रहास पुत्र-पौत्रोंसे संयुक्त होकर चिर-कालतक इस पृथ्वीका शासन करें'॥ २४½॥

नानालंकरणैर्वस्त्रैः पूजयित्वाथ गालवम्॥ २५॥
मदनः प्रत्युवाचाथ द्विजानन्यांश्च याचकान्।

तदनन्तर मदनने नाना प्रकारके आभूषणों और वस्त्रों-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वारा गालव मुनिका तथा अन्य ब्राह्मणों और याचकोंका सत्कार करके उनसे कहा—॥ २५½ ॥

प्रातः सर्वैरलंकार्यं गृहं पूज्यतमैर्मम ॥ २६ ॥
यथाशक्त्या किङ्करोऽहं पूजयिष्यामि चाखिलान्।

'कल प्रातःकाल आप सभी पूजनीय महानुभाव अपने शुभागमनसे मेरे घरको अलंकृत करनेकी कृपा कीजियेगा। मैं आपलोगोंका एक किंकर हूँ। यथाशक्ति आप सभीका पूजन करूँगा' ॥ २६½ ॥

तान् विसृज्य द्विजान् सर्वांश्चन्द्रहासमभोजयत्॥ २७॥
विषयासहितं कामो बुभुजे स्वजनान्वितः।

इस प्रकार उन सभी ब्राह्मणोंको विदा करके मदनने विषया और चन्द्रहासको भोजन कराया। तत्पश्चात् अपने भाई-बन्धुओंके साथ स्वयं भी भोजन किया ॥ २७½ ॥

सुष्वाप मदनः किंचिद् ब्राह्मे जाते समुत्थितः ॥ २८ ॥
कृत्वाऽऽत्मचिन्तनं पश्चादादिदेश वचोहरान्।

फिर मदन थोड़ी देरके लिये सो गया और ब्राह्म मुहूर्त आनेपर उठ बैठा। उस समय उसने आत्मचिन्तन करनेके पश्चात् अपने आज्ञाकारी सेवकोंको इस प्रकार आज्ञा दी—॥ २८½ ॥

मण्डपं रचयन्त्वेके चित्रयन्त्वद्य मन्दिरम् ॥ २९ ॥
सम्मार्जयन्तु केचिच्च चन्दनोदकसेचनैः।
उच्चैः क्रियन्तां विपुलाः पताका दण्डमण्डिताः ॥ ३० ॥

'तुमलोगोंमेंसे कुछ लोग एक मण्डपकी रचना करें, कुछ लोग महलकी सजावटमें जुट जायँ, कुछ लोग चन्दन-मिश्रित जलसे सींचकर गली-कूचोंको शुद्ध करें और कुछ लोग बड़ी-बड़ी पताकाओंको डंडोंसे सुशोभित करके उन्हें बहुत ऊँचाईपर फहरा दें' ॥ २९-३० ॥

नारद उवाच

तैस्तदाकारि बीभत्सो सेवकैरथ निर्मलाः।
दिशः कुर्वन् समुदितो विनतातनयो विपात् ॥ ३१ ॥
कथयन्निव लोकानां स्वामिनं समुपागतम्।
उत्थीयन्तां तु भो लोकाः क्रियतां वैदिको विधिः॥ ३२॥

नारदजी कहते हैं—बीभत्सो! उस समय मदनके सेवकोंने उसके कथनानुसार सारा कार्य पूर्ण कर दिया। इसी बीच जिनके चरण नहीं हैं, वे विनतानन्दन अरुण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उदित हुए, मानो वे अपने स्वामी सूर्य-देवके आगमनकी सूचना देते हुए लोगोंसे कह रहे थे कि 'ऐ प्राणियो! अब तुमलोग उठो और अपनी वेदोक्त संध्या-वन्दन आदि क्रियाएँ पूर्ण करो' ॥ ३१-३२ ॥

उदयाचलकूटस्थो रविः संनिहितोऽभवत्।
चन्द्रहासः समालोक्य ज्ञात्वा सम्यगथोज्ज्वलम्॥ ३३॥
रात्रिजं प्राणिनां चित्तमोहध्वान्तमपोथयत्।

इतनेमें ही चन्द्रहास भी पूर्ण रूपसे उजाला हुआ जानकर उठ बैठा। उसने देखा कि सूर्यदेव उदयाचलके शिखरपर स्थित होकर हमारे समीप आ गये हैं। इन्होंने प्राणियोंके चित्तका रात्रिजनित मोहरूपी अन्धकार नष्ट कर दिया है ॥ ३३½ ॥

विषयाचन्द्रहासौ तौ स्नापितौ विमलैर्जलैः ॥ ३४॥
हरिद्राचम्पकस्नेहैरुद्वर्त्य च पुरन्ध्रिभिः।
परिधाप्य च वासांसि मुकुटाभ्यामलंकृतौ ॥ ३५॥

तदनन्तर सौभाग्यवती स्त्रियोंने विषया और चन्द्रहासके शरीरमें हरिद्रामिश्रित चमेलीके तेलका उबटन लगाकर उन दोनोंको निर्मल जलसे स्नान कराया और उन्हें वस्त्र पहनाकर उनके मस्तकको मुकुटोंसे सुशोभित कर दिया ॥ ३४-३५ ॥

तौ दम्पती ततो वेदीमागतौ स्त्रीपुरस्कृतौ।
कृतस्वस्त्ययनौ विप्रैरुपविष्टौ वरासने ॥ ३६॥

तत्पश्चात् वे नवदम्पती उन स्त्रियोंके साथ वेदीके निकट आये। वहाँ ब्राह्मणोंने उनके लिये मङ्गलपाठ किया। फिर वे दोनों एक श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हुए ॥ ३६ ॥

अथ प्राप्ता द्विजाः पूज्या वेदशास्त्रविशारदाः।
नराश्वगजदेहानां सम्यग्रक्षाश्चिकित्सकाः ॥ ३७॥
मागधा नर्त्तका गीतशिक्षका वंशधारिणः।
मृदङ्गवादका वेश्याः शैलूषा जलचित्रकाः ॥ ३८॥

इसके बाद वहाँ वेद-शास्त्रविशारद पूजनीय ब्राह्मण, मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके शरीरोंकी सम्यक् रूपसे रक्षा एवं चिकित्सा करनेमें निपुण वैद्य, मागध, नर्तक, गीतोंकी शिक्षा देनेवाले, बाँसुरी तथा मृदंग बजानेवाले, वेश्याएँ, नट और जलतरंग बजानेवाले लोग आये ॥ ३७-३८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊर्ध्ववंशं समारुह्य ये क्रीडन्ति नराः क्षितौ।
मुखाद् वह्नेर्महाज्वालामुत्सृजन्ति तथा च ये ॥ ३९ ॥
ढक्काडमरुजीवाश्च किन्नरा मधुरस्वराः।
सूता ये च पुराणस्थानुचरन्ति नृपान् सदा ॥ ४० ॥
प्रेतलोकगताञ्छूरान् वर्णयन्ति च मागधाः।
वर्तमानान् नृपान् सम्यग् ये तु संग्रामकारिणः ॥ ४१ ॥
वर्णयन्ति प्रबन्धैर्ये वन्दिनस्ते समाययुः।
नानाबन्धेषु कुशला मल्लास्ते ब्रह्मचारिणः ॥ ४२ ॥

तथा भूतलपर घूम-घूम करके बाँसके ऊपर चढ़कर खेल दिखानेवाले लोग, अपने मुखसे अग्निकी बड़ी-बड़ी ज्वालाएँ प्रकट करनेवाले बाजीगर, डफली और डमरू बजाकर जीविका-निर्वाह करनेवाले याचक, मधुर स्वरसे गान करनेवाले किन्नर, सदा पुराणोंमें वर्णित राजाओंकी कीर्तिका गान करनेवाले सूत, यमलोकमें गये हुए शूरवीरोंका यशोगान करनेवाले मागध, जो संग्राम करनेवाले भूतलपर वर्तमान नरेशोंका उत्तम छन्द-प्रबन्धोंद्वारा सम्यक् रूपसे वर्णन करते हैं, ऐसे बंदी और नाना प्रकारके दाव-पेचोंमें कुशल ब्रह्मचारी पहलवान भी वहाँ उपस्थित हुए ॥ ३९—४२ ॥

एवं नानाविधैर्लोकैः संकीर्णं तस्य मन्दिरम्।
मदनस्याभवत् पार्थ तृष्णैका न समागता ॥ ४३ ॥

पार्थ ! इस प्रकार वहाँ आये हुए नाना प्रकारके मनुष्योंसे मदनका वह भवन खचाखच भर गया; परंतु एक तृष्णा ही वहाँ नहीं आयी ॥ ४३ ॥

अन्ये सर्वे जनाः प्राप्ता लाभकौतुकवीक्षया।
तेभ्यो रत्नानि वासांसि काञ्चनं प्रददौ बहु ॥ ४४ ॥

अन्य समस्त मनुष्य जो लाभ और कौतुक देखनेकी इच्छासे वहाँ आये हुए थे, मदनने उन्हें बहुत-सा रत्न, वस्त्र और सोना प्रदान किया ॥ ४४ ॥

अनुक्रमात् स मदनो विनयाढ्यैर्वचोऽमृतैः।
सुहृत्सम्बन्धिनः सर्वांस्तोषयामास भारत ॥ ४५ ॥

भरतवंशी जनमेजय ! तत्पश्चात् मदनने यथाक्रम अपने सम्पूर्ण सुहृदों तथा सम्बन्धियोंको विनयपूर्ण एवं अमृतके समान मधुर वचनोंसे संतुष्ट किया ॥ ४५ ॥

हृष्टपुष्टजनाकीर्णं तदभूत् कौन्तलं पुरम्।
वैष्णवागमनात् पार्थ विष्णुभक्तेः फलं शृणु ॥ ४६ ॥

पार्थ ! विष्णु-भक्त चन्द्रहासके आगमनसे उस समय वह कुन्तलपुर हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे व्याप्त हो गया। अब तुम विष्णु-भक्तिका फल (प्रभाव) सुनो—॥ ४६ ॥

अकैतवं हृषीकेशं ध्यायन्ति मनसा सदा।
तेषां विघ्नगणाः पार्थ किं करिष्यन्ति निर्बलाः ॥ ४७ ॥

पृथानन्दन ! जो लोग सदा निष्कपटभावसे मनोयोग-पूर्वक भगवान् हृषीकेशका ध्यान करते रहते हैं, उनके सामने विघ्नसमूह निर्बल पड़ जाते हैं, अतः वे उनका क्या बिगाड़ सकते हैं ? ॥ ४७ ॥

विषमस्मै प्रदातव्यमिति हेतोश्च मन्त्रिणा।
प्रेरितश्चन्द्रहासोऽयं विषयां प्राप कन्यकाम् ॥ ४८ ॥

देखो न, मन्त्री धृष्टबुद्धिने इस चन्द्रहासको 'इसे विष दे दिया जाय' इस निमित्तसे कुन्तलपुर भेजा था, परंतु यहाँ आकर चन्द्रहासको उसकी कन्या विषया प्राप्त हो गयी ॥४८॥

भूमौ परवशो जन्तुरभिमानी भवेद् वृथा।
हठाद् यः कुरुते जन्तुस्तन्न सिध्यति कर्हिचित् ॥ ४९ ॥

इस भूतलपर प्रारब्धके परवश हुआ प्राणी व्यर्थ ही अभिमान करने लगता है। जो (अभिमानवश दैवको टालकर) हठपूर्वक कार्य करना चाहता है, उसका वह कार्य कभी भी सिद्ध नहीं होता ॥ ४९ ॥

विवाहस्त्वभवज्जिष्णो विषयाचन्द्रहासयोः।
अतः परं यदभवत् तदाकर्णय निश्चलः।
अभक्तिभक्त्योर्माहात्म्यं पुंसां विस्मयकारकम् ॥ ५० ॥

विजयशील अर्जुन ! इस प्रकार विषया और चन्द्रहासका विवाह तो हो गया। तत्पश्चात् जो घटना घटी, वह भक्ति और अभक्तिके माहात्म्यसे पूर्ण तथा मनुष्योंको विस्मयमें डालनेवाली है। उसे तुम निश्चल मनसे श्रवण करो ॥ ५० ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि चन्द्रहासविवाहो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें चन्द्रहासके विवाहका वर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चन्दनावतीपुरीमें कुलिन्दको कैद करनेके पश्चात् धृष्टबुद्धिका भीषण अत्याचार, वहाँ लोभको अधिकारी बनाकर उसका कुन्तलपुरको प्रस्थान, मार्गमें तरह-तरहके अपशकुन होना, कुन्तलपुर पहुँचकर विवाहोत्सवके दर्शनसे कुपित होना और मदनको फटकारना, मदनके उसका पत्र दिखानेपर शान्त होना और चन्द्रहासके वधका उपाय सोचना

नारद उवाच

तस्यां तु चन्दनावत्यां कुलिन्दं निगडैर्दृढैः।
धृष्टबुद्धिर्बबन्धासौ दण्डयामास ताः प्रजाः॥ १॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! उधर उस चन्दनावतीपुरीमें धृष्टबुद्धिने कुलिन्दको तो सुदृढ़ बेड़ियोंसे जकड़कर बाँध दिया और नगरनिवासिनी प्रजाओंको सताना आरम्भ किया॥१॥

कण्ठे बद्ध्वा शिलां तोये निमज्यार्थमयाचत।
ज्वलदग्नेरुपरि ताः प्रजा दध्रेऽर्थलिप्सया॥ २॥

वह उन प्रजाजनोंमें कुछ लोगोंके गलेमें पत्थर बाँधकर उन्हें जलमें डुबो देता और उनसे धन माँगता था। उसने धनकी लिप्सासे कितनी ही प्रजाओंको जलती हुई आगपर खड़ा कर दिया॥ २॥

अतूतुदत् स मांसानि शस्त्रैश्च पुरवासिनाम्।
अपाययच्चूर्णतोयं नासारन्ध्रेण कांश्चन॥ ३॥
दण्डयित्वा प्रजाश्चैवं धृष्टबुद्धिरथाब्रवीत्।

वह पुरवासियोंके शरीरके मांसोंको शस्त्रोंसे नोचवाकर उन्हें पीड़ा देने लगा। कितने ही लोगोंको नाकके छिद्रसे चूनेका पानी पीनेके लिये विवश कर दिया। इस प्रकार प्रजाओंको दण्ड देकर धृष्टबुद्धि कुलिन्दसे कहने लगा—॥३½॥

कुलिन्द त्वं हि रे मूढ मां न जानासि दारुणम्॥ ४॥
चन्द्रहासाश्रयेण त्वं गर्वितोऽसि धनागमात्।

'रे मूर्ख कुलिन्द! क्या तू नहीं जानता कि मैं कैसा भयंकर हूँ? तू चन्द्रहासके आश्रयसे थोड़ा धन प्राप्त हो जानेके कारण गर्वसे भर गया है?॥ ४½॥

द्रव्यं तत् प्रेषितं मह्यं तेन सार्धं भवान् कथम्॥ ५॥
नागतोऽसि विमूढात्मन् सेवकाः प्रेषितास्त्वया।
तेऽपि मत्ता मया दत्तमन्नमादन्न जक्षिरे॥ ६॥

'मन्दबुद्धे! तूने (वार्षिक करके रूपमें) मेरे लिये जो धन भेजा था, उसके साथ स्वयं अपने-आप क्यों नहीं आया? नौकरोंको तूने क्यों भेजा? फिर उन मूर्ख एवं मतवाले सेवकोंने मेरे दिये हुए अन्नको खाया भी नहीं॥५-६॥

साम्प्रतं त्वं व्रतं दानं करोषि धनगर्वतः।
मदीयं नाशितं द्रव्यं निश्चलं तु त्वया व्ययात्॥ ७॥

'इस समय तू धनके घमंडमें भरकर दान-व्रत करने चला है? तूने मेरे बहुत दिनोंसे जमा किये हुए धनको खर्च करके नष्ट कर दिया?॥ ७॥

आशैशवात् कदाचिन्मे नास्यां पुरि शिवालयम्।
विष्ण्वालयं तडागानि वापीकूपमठाः प्रपाः॥ ८॥
ब्राह्मणानां गृहाश्चेह पुराणपठनं तथा।
न बभूवुरिदानीं तु सर्वतस्तन्मयी पुरी॥ ९॥
कृता त्वया मदीयेन वित्तेन निखिलेन च।
कुत्र वेश्मविदः सन्ति कुत्र ते शिल्पिनो गताः॥ १०॥
यैर्भक्षितं मदीयं तद् वसु सर्वं दुरात्मभिः।
क गता ब्राह्मणास्ते वै सर्वे पुर्यधिकारिणः॥ ११॥

'मैं अपने बचपनसे देखता आ रहा हूँ कि मेरी इस नगरीमें कभी भी कहीं शिवालय, विष्णुमन्दिर, पोखरे, बावड़ी, कुएँ, आश्रम, पौंसले और ब्राह्मणोंके घर नहीं थे तथा यहाँ पुराणोंकी कथाएँ नहीं हुआ करती थीं; परंतु इस समय तूने मेरा सम्पूर्ण धन लगाकर इस नगरीको चारों ओरसे उन पदार्थोंसे व्याप्त कर दिया है। गृह-निर्माणके ज्ञाता लोग अब कहाँ हैं? इनके बनानेवाले वे कारीगर कहाँ चले गये? जिन दुरात्माओंने मेरा वह सारा धन खा लिया? तथा जो इस नगरीके अधिकारी बने बैठे थे, वे सभी ब्राह्मण कहाँ चले गये?॥ ८—११॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्थं निर्भर्त्स्यामास कुलिन्दं धृष्टधीस्तदा।
लोभमाहूय सचिवं सेवकं वाक्यमब्रवीत्॥ १२॥
तृष्णया जायया सार्धं त्राहीमां चन्दनावतीम्।

उस समय धृष्टबुद्धिने कुलिन्दको इस प्रकार फटकारा। फिर अपने मन्त्री तथा सेवक लोभको बुलाकर कहा—'सचिव! तुम अपनी पत्नी तृष्णाके साथ यहीं रहकर इस चन्दनावतीपुरीकी रक्षा करो'॥ १२½॥

इति संदिश्य तं पश्चाद् ययौ कौन्तलकं पुरम्॥ १३॥
हर्षेण महता युक्त आदाय विपुलं धनम्।
पुत्रं मनसि संचिन्त्य चन्द्रहासं तथैव च॥ १४॥

इस प्रकार लोभको आदेश देनेके पश्चात् धृष्टबुद्धि उस विपुल धनराशिको लेकर महान् हर्षके साथ कुन्तलपुर लौट जानेके लिये उद्यत हुआ। उस समय उसके मनमें अपने पुत्र मदन और चन्द्रहासके विषयमें ही विचार उठ रहे थे॥१३-१४॥

मदीयो मदनः पुत्रो विषं तस्मै प्रदास्यति।
तृतीयो दिवसो ह्यद्य चन्द्रहासे गते सति॥ १५॥

(वह सोचने लगा—) 'मेरे पुत्र मदनने उसे विष दे दिया होगा; क्योंकि चन्द्रहासको गये आज तीसरा दिन बीत रहा है॥ १५॥

एकेनावाप नगरं द्वितीये वासरे रिपुः।
प्राप्तो नूनं स मदनः सायाह्ने तत् करिष्यति॥ १६॥
यामेनैकेन यास्यामि कृतकार्यः पुरं प्रति।

'मेरा वह शत्रु चन्द्रहास एक दिनमें कुन्तलपुर पहुँच गया होगा और दूसरे दिन वह निश्चय ही मदनसे मिला होगा। उसी दिन सायंकालके समय मदनने वह (विष-प्रदानरूप) कार्य पूर्ण कर लिया होगा। मेरा भी यहाँका कार्य पूर्ण हो चुका है; अतः अब मैं भी एक पहरके भीतर ही नगरमें पहुँच जाऊँगा'॥ १६½॥

इति संचिन्त्य मनसा शिबिकामारुरोह सः॥ १७॥
ऊढां च त्रिशतैः पुम्भिर्मत्स्यभुग्भिर्महाबलैः।

मनमें ऐसा विचारकर धृष्टबुद्धि उस पालकीमें जा बैठा, जिसे तीन सौ मत्स्यभक्षी महाबली धीवर वहन करते थे॥१७½॥

पार्थ गच्छन् धृष्टबुद्धिः पापात्मा दण्डमाददे॥ १८॥
वैणवं ग्रन्थिलं दीर्घं ताडयामास धीवरान्।
शीघ्रं गच्छत रे दुष्टा धीवरा मत्स्यभक्षकाः॥ १९॥

पार्थ! चलते समय उस पापात्मा धृष्टबुद्धिने अपने हाथमें एक गाँठदार बाँसका लंबा डंडा ले रखा था। वह उसीसे धीवरोंको पीटते हुए कहने लगा—'रे मछली खानेवाले दुष्ट धीवरो! जल्दी-जल्दी चलो'॥ १८-१९॥

तेऽब्रुवन्नपगच्छामो मन्त्रिञ्छीघ्रतरं प्रभो।
मा ताडय भृशं दण्डप्रहारैर्गच्छतो हि नः॥ २०॥

तब उन धीवरोंने कहा—'सामर्थ्यशाली मन्त्रीवर! हमलोग तो यों ही तीव्र गतिसे चल रहे हैं। इस प्रकार तेज चलते हुए हम लोगोंको डंडेके प्रहारोंसे पीड़ित न कीजिये॥ २०॥

नहुषस्य कुले जातो भवान् किं न मुनीश्वराः।
वयं स्म भूप मन्युत्वाद् भोगिराजं न कुर्महे॥ २१॥
सुवाते पोतवज्जग्मुर्धीवरा ढीवराश्च ते।

'राजन्! क्या आप राजा नहुषके कुलमें उत्पन्न हुए हैं? परंतु हमलोग तो मुनीश्वर हैं नहीं; अतः क्रोध आनेपर भी हम आपको अजगर नहीं बना सकते।' यों कहकर वे धीवर और ढीवर उसी प्रकार तीव्र गतिसे दौड़ने लगे, जैसे वायुके अनुकूल होनेपर (जलमें) नौका भागने लगती है॥

उपर्युपरि डीयन्ते काकाः स्म शिबिकां हठात्॥ २२॥
चञ्चभिघातं कुर्वन्ति पक्षतुण्डनखैश्च तम्।
एवं पार्थाभवत् तत्र विद्धि पापस्य चेष्टितम्॥ २३॥

इतनेमें ही बहुत-से कौवे उस पालकीके ऊपर आकर हठपूर्वक मँडराने लगे और धृष्टबुद्धिके ऊपर अपने चोंचों, डैनों और नखोंसे प्रहार करने लगे। पार्थ! इस प्रकार वहाँ अपशकुन होने लगे। इसे तुम उसकी पापचेष्टाका ही परिणाम समझो॥ २२-२३॥

तावत् पुरः प्रादुरभूद् विशालः
फणाभिराकाशमिवालिहन् वै।
पुच्छं निवेश्य क्षितिपृष्ठ एव
प्रोवाच सर्पो नृगिरा विषाढ्यः॥ २४॥

उसी समय धृष्टबुद्धिके सामने एक ऐसा विशालकाय सर्प प्रकट हुआ, जो मानो अपने फनोंसे आकाशको चाट रहा था। तत्पश्चात् वह विषधर सर्प अपनी पूँछको भूतलपर ही टिकाकर मनुष्यकी-सी वाणीमें यों कहने लगा—॥ २४॥

त्वदीयसौवर्णघटेषु नित्यं
वसामि रक्षंस्तव सूनुना तत्।
स्थानं मदीयं किल नाशितं हि
गच्छामि ते स्वस्ति अलं विषादात्॥ २५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'राजन्! मैं तुम्हारे सोनेसे भरे हुए घड़ोंकी रक्षा करता हुआ नित्य उन्हींके ऊपर निवास करता था, परंतु तुम्हारे पुत्रने निश्चय ही मेरे उस स्थानको नष्ट कर दिया; अब मैं यहाँसे जा रहा हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। इस विषयमें तुम्हारा विषाद करना व्यर्थ है' ॥ २५ ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं सर्पः पातालमाविशत्।
विसिस्माय स मूढात्मा नाजानाद् गूढपाद् वचः॥२६॥

ऐसी बात कहकर वह सर्प पातालमें प्रवेश कर गया। इधर सर्पकी बात सुनकर धृष्टबुद्धि महान् आश्चर्यमें पड़ गया। उसके चित्तपर मोह छा गया, अतः उस सर्पकी वे गूढ़ बातें उसकी समझमें न आयीं ॥ २६ ॥

धृष्टबुद्धिः पुनर्दण्डप्रहारैर्धीवरान् दृढम्।
उत्तिष्ठंश्चर्वयन्नोष्ठौ दन्तैर्दन्तांश्च पीडयन् ॥ २७ ॥
युष्माकं चरणान् ग्रामं गत्वा छेत्स्यामि मा चिरम्।

तदनन्तर धृष्टबुद्धि क्रोधके मारे पालकीमें उठकर खड़ा हो गया और दाँतोंसे होठोंको चबाते तथा दाँतोंको पीसते हुए उन धीवरोंपर पुनः कसकर दण्डप्रहार करके कहने लगा—'दुष्टो! देर मत करो, नहीं तो मैं नगरमें पहुँचकर तुमलोगोंके पैर कटवा लूँगा' ॥ २७½ ॥

इत्थं स पीडयन् प्राप्तो धीवरान् कौन्तलं पुरम् ॥२८॥
यामेनैकेन शुश्राव धृष्टधीस्तूर्यनिःस्वनम्।
चिन्तयामास मनसा कार्यं पुत्रेण तत् कृतम् ॥ २९ ॥

इस प्रकार उन धीवरोंको कष्ट देता हुआ धृष्टबुद्धि एक पहरमें कुन्तलपुरमें जा पहुँचा। उसी समय उसे तुरहियोंका शब्द सुनायी दिया। उसे सुनकर वह मनमें विचार करने लगा कि मेरे पुत्रने वह कार्य पूरा कर लिया है (इसीके उपलक्षमें ये बाजे बज रहे हैं) ॥ २८-२९ ॥

नारद उवाच

तस्माद् विमानादवरुह्य मूढः
पदातिरेकः प्रययौ पुरस्तात्।
ददर्श सूतानथ मागधान् बहून्
स्वलंकृतान् बन्दिन एव वस्त्रैः ॥ ३० ॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तब वह मूर्ख उस पालकीसे उतर पड़ा और पैदल ही अकेले शीघ्रतापूर्वक चलने लगा। आगे बढ़नेपर उसे वस्त्रोंसे सुसज्जित बहुत-से सूत, मागध और बंदी दिखायी पड़े ॥ ३० ॥

बन्दिन ऊचुः

आगच्छ शीघ्रं धृष्टबुद्धे सुतेन
कृतं कार्यं सूरिणा तत्तु सर्वम्।
ब्रह्मायुस्ते चन्द्रहासस्य भूयात्
तथा सूनोर्मदनस्यातिदातुः ॥ ३१ ॥

बंदियोंने कहा—धृष्टबुद्धे! शीघ्र ही पधारिये। आपके बुद्धिमान् पुत्र मदनने वह सारा कार्य पूर्ण कर लिया है; अतः आपको, चन्द्रहासको तथा आपके परम दानी पुत्र मदनको ब्रह्माकी-सी लंबी आयु प्राप्त हो ॥ ३१ ॥

धृष्टबुद्धिरुवाच

आः पापा रे बन्दिनश्चन्द्रहासः
कोऽसौ दूरात् सर्पत हन्मि दण्डैः।
इत्यूचिवान् धृष्टबुद्धिः पुरस्तात्
पूज्यान् विप्रान् पूजितांश्चन्दनेन ॥ ३२ ॥
नानाक्षौमैर्भूषितान् भूषणैश्च
गृहान् स्वीयानागतानन्वपश्यत् ॥ ३३ ॥

(यह सुनकर) धृष्टबुद्धि बोला—अरे पापी बंदियो! यह चन्द्रहास कौन है? दूर हट जाओ, नहीं तो अभी डंडोंसे पीटूँगा। धृष्टबुद्धि यों बक ही रहा था कि आगे उसे अपने घर आये हुए ऐसे बहुत-से पूज्य ब्राह्मण दीख पड़े, जिनकी चन्दनद्वारा पूजा की गयी थी और जो नाना प्रकारके रेशमी वस्त्रों तथा आभूषणोंसे विभूषित थे ॥ ३२-३३ ॥

विप्रा ऊचुः

भूयादेवं स्वस्ति ते धृष्टबुद्धे
कुतो लब्धश्चन्द्रहासो वरोऽयम्।
भाग्योदयस्तव रम्यो विभाति
येनेदृशी कीर्तिरापूर्यते ते ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणोंने कहा—धृष्टबुद्धे! आपका ऐसा ही कल्याण होता रहे। आपको वररूपमें यह चन्द्रहास कहाँसे प्राप्त हो गया? इस समय आपका सुन्दर भाग्य उदय होकर विशेष रूपसे प्रकाशित हो रहा है, इसी कारण आपकी ऐसी कीर्ति फैल रही है ॥ ३४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निशम्य तेषां वचनं दुरात्मा
जज्वाल मन्त्री किल वाडवोऽब्धौ।
दण्डं समुद्यम्य कुतः पुरस्ताद्
गमिष्यथेत्यादि जजल्प विप्रान् ॥ ३५ ॥

उन विप्रोंके वचन सुनकर दुरात्मा धृष्टबुद्धि समुद्रमें वडवानलकी भाँति भीतर-ही-भीतर क्रोधसे जल उठा। फिर तो वह हाथमें डंडा लेकर उन ब्राह्मणोंसे यों कहने लगा—'खड़े रहो, मेरे सामनेसे भागकर कहाँ जाओगे?' ॥ ३५ ॥

विप्राः पलायन्ति विसृज्य वासः
कृष्णाजिनं ते तु ततः स्खलन्तः।
विमुक्तकेशाः स्खलदुत्तरीय-
यज्ञोपवीताः पथि निःश्वसन्तः ॥३६॥

यह सुनकर वे ब्राह्मण अपने वस्त्र तथा कृष्ण-मृगचर्मका परित्याग करके वहाँसे गिरते-पड़ते भागने लगे। उस समय उनकी चोटीके बाल खुल गये तथा मार्गमें उनके दुपट्टे और यज्ञोपवीत कंधेसे खिसककर गिरने लगे। वे लंबी साँसें खींच रहे थे ॥ ३६ ॥

ततो हृष्टा गायका मन्त्रिणं ते
प्रोचू राज्यं चन्द्रहासो विधत्ताम्।
स तांश्चक्रे भिन्नकपालवीणा-
मृदङ्गढक्कानकभेरिवंशान् ॥ ३७ ॥

आगे बढ़नेपर उसे आनन्दमग्न होकर गान करते हुए गवैये मिले। वे उस मन्त्रीसे कहने लगे—'यह चन्द्रहास चिर-कालतक राज्य करें।' यह सुनकर धृष्टबुद्धिने उनके कपाल, वीणा, मृदङ्ग, डफली, ढोल, नगारे और बाँसुरियोंको तोड़-फोड़ डाला ॥ ३७ ॥

पश्यंश्चित्रं द्वारि वर्णैर्विचित्रं
प्रायाद् द्वाराभ्यन्तरं धृष्टबुद्धिः।
नीराजितुं चम्पकाङ्ग्योऽभिजग्मु-
र्दीपान्विताः कुङ्कुमचर्चिताश्च ॥ ३८ ॥

यों दरवाजेपर पहुँचकर धृष्टबुद्धिने देखा कि उसकी दीवारोंपर नाना प्रकारके रंगोंसे सुन्दर चित्रकारी की गयी है, उसे देखता हुआ जब वह द्वारके भीतर ड्योढ़ीमें आया, तब वहाँ जो कुङ्कुम आदिसे सुसज्जित थीं, ऐसी चम्पाके-से वर्ण-वाली सुन्दरी स्त्रियाँ हाथमें दीपकयुक्त थाल लिये हुए उसकी आरती उतारनेके लिये सामने आयीं ॥ ३८ ॥

आह स्म ता धृष्टधीरुत्सवोऽयं
कस्मात् कृतः किं च लब्धं सुतेन।
ऊचुर्मृगाक्ष्यस्तव सूनुनाद्य
लब्धोऽतिथिश्चन्द्रहासः कुलस्य ॥३९॥
दुष्टो मूढो धृष्टधीराह तस्मै
धनं दत्तं चन्द्रहासाय तेन ॥ ४० ॥

उस समय धृष्टबुद्धि उन स्त्रियोंसे पूछने लगा—'मेरे पुत्र मदनको कौन-सी वस्तु प्राप्त हो गयी है? किसलिये वह यह उत्सव कर रहा है?' तब उन मृगनयनी नारियोंने बताया कि 'इस समय आपके पुत्र मदनको अपने कुलके अतिथिस्वरूप चन्द्रहास प्राप्त हुए हैं।' यह सुनकर दुष्ट प्रकृतिवाला मूर्ख धृष्टबुद्धि बोल उठा—'क्या मदनने उस चन्द्रहासको धन तो नहीं दे डाला?' ॥ ३९-४० ॥

स्त्रिय ऊचुः

मैवं ब्रूहि चन्द्रहासाय तस्मै
दत्ता कन्या विषया पुत्रकेण।
तासां वचःशल्यविभिन्नगात्रो
बिभ्रच्छोणे लोचने क्रोधयुक्तः ॥ ४१ ॥

तब उन स्त्रियोंने कहा—स्वामिन्! ऐसा मत कहिये। (धनकी तो बात ही क्या?) आपके पुत्रने तो उस चन्द्रहासको आपकी कन्या विषया समर्पित कर दी है। तब तो उन स्त्रियोंके वचनरूपी बाणोंसे उसका शरीर विदीर्ण-सा होने लगा। वह क्रोधसे आगबबूला हो उठा। उसके नेत्र अरुण वर्णके हो गये॥

ततः प्रायात् सप्तमद्वारमध्यं
यत्रास्तेऽयं द्वारपालो विवेकः।
श्रद्धायष्टिस्तं च दृष्ट्वा ससार
प्राप्ते क्रोधे का विवेकस्य वार्ता ॥ ४२ ॥

तत्पश्चात् धृष्टबुद्धि, जहाँ श्रद्धारूपी छड़ी हाथमें लिये हुए विवेक नामका द्वारपाल खड़ा रहता था, उस सातवीं ड्योढ़ीपर आया। उसे देखते ही वह द्वारपाल वहाँसे चलता बना; क्योंकि क्रोधके आ जानेपर विवेककी बात कौन पूछता है?॥

अथापश्यद् धृष्टधीर्वेदिकायां
तं चन्द्रहासं विषयां च कन्याम्।
बद्धाञ्चलां चन्द्रहासाञ्चलेन
पुष्पोद्गुम्फमुकुटं बिभ्रतीं च॥ ४३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहाँ पहुँचकर धृष्टबुद्धिने देखा कि वेदीके ऊपर वह चन्द्रहास और मेरी कन्या विषया—दोनों बैठे हुए हैं। विषयाके सिरपर पुष्पोंको गूँथकर बनाया हुआ मुकुट सुशोभित है और उसकी साड़ीका अञ्चल चन्द्रहासके दुपट्टेके अञ्चलसे बँधा हुआ है ॥ ४३ ॥

स्वेदो महान् वेपथुश्चास्य गात्रे
प्रादुर्बभूवाप्रतिमः शुष्कमास्यम्।
क्रुद्धो दध्यौ किं कृतं मत्सुतेन
यन्नापश्यद् गूढपत्रं मदीयम् ॥ ४४ ॥

यह सब देखते ही धृष्टबुद्धि क्रोधसे तमतमा उठा। उसके भालपर स्वेदबिन्दु छलक आये, शरीरमें अतुलनीय महान् कम्प छा गया और मुख सूख गया। वह सोचने लगा कि मेरे पुत्रने यह क्या अनर्थ कर डाला, जो उसने मेरे गूढ़ पत्रको ध्यानपूर्वक नहीं पढ़ा ॥ ४४ ॥

जामाताथो श्वशुरं वीक्ष्य पत्न्या
सहोत्थितः कुरुते स्म प्रणामम्।
यथा व्याघ्रं बालमृगो विलोक्य
तथा चामुं नाभ्यनन्दद् गिरापि ॥ ४५ ॥

तदनन्तर अपने श्वशुरको देखकर जामाता चन्द्रहास अपनी पत्नी विषयाके साथ उठ खड़ा हुआ और उसे प्रणाम करने लगा; परंतु जैसे बालमृग व्याघ्रका अभिनन्दन नहीं करता, उसी प्रकार मूर्ख धृष्टबुद्धिने वाणीसे भी चन्द्रहासका अभिनन्दन नहीं किया ॥ ४५ ॥

अथ मदनमुपागतं प्रणम्रं
चरणयुगे वदति स्म धृष्टबुद्धिः।
वद सुत किमकारि रे दुरात्मन्
मम च मनो न हि तोषमाजगाम ॥ ४६ ॥

तत्पश्चात् जब मदनने वहाँ आकर उसके दोनों चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया, तब धृष्टबुद्धि उससे कहने लगा—'रे दुरात्मा पुत्र! बता, तूने यह क्या कर डाला? तेरे इस कार्यसे मेरा मन संतुष्ट नहीं हुआ' ॥ ४६ ॥

आह स्म तं मदनस्तात पत्रं
विलोक्याहं दत्तवान् स्वां स्वसारम्।
वरायास्मै चन्द्रहासाय धेनू-
र्वासो हिरण्यं महिषीः कोटिशोऽद्य ॥ ४७ ॥

तब मदन उससे कहने लगा—'पिताजी! मैंने आपके पत्रको देखकर इस चन्द्रहास वरको इस समय अपनी बहिन विषया तथा वस्त्र, सुवर्ण, करोड़ों गौएँ और भैंसें प्रदान कर दी हैं ॥

कस्मात् तातः क्रुध्यति मां विलोक्य
कोशागारं पश्य रिक्तं कृतं तत्।
नानादेशादागतेभ्यो द्विजेभ्यो
दत्तं द्रव्यं याचकेभ्योऽखिलेभ्यः ॥ ४८ ॥

'तात! आप मुझे देखकर किसलिये कुपित हो रहे हैं? चलिये देखिये न, मैंने अनेक देशोंसे आये हुए ब्राह्मणों तथा सम्पूर्ण याचकोंको सारा धन बाँटकर उस कोशागारको खाली कर दिया है' ॥ ४८ ॥

नारद उवाच

आः पापो यो धूनयन् स्वं कपालं
हस्ते हस्तं पेषयन्निःश्वसन् सः।
प्रोवाचेदं धृष्टधीर्याहि घोरं
वनं भिक्षामट कृष्णाजिनी त्वम् ॥ ४९ ॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! यह सुनकर पापी धृष्टबुद्धि 'आः' ऐसा कहकर अपना सिर पीटने लगा और लंबी साँस खींचता हुआ हाथसे हाथ मलने लगा। फिर उसने मदनसे यों कहा—'दुष्ट! तू गहन वनमें चला जा और काला मृगचर्म धारण करके भीख माँग' ॥ ४९ ॥

मदन उवाच

नैतच्चित्रं तात रामो वनं किं
पितुर्वाक्यान्निरगात् पुण्यकीर्तिः।
तथा वनं तव वाक्यात् प्रयास्ये
परं न्यूनं किं कृतं मे विवाहे ॥ ५० ॥

तब मदनने कहा—पिताजी! यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्या पुण्यकीर्ति भगवान् राम अपने पिताजीकी आज्ञासे वनको नहीं चले गये थे, उसी तरह मैं भी आपके आदेशसे वनमें चला जाऊँगा; परंतु यह तो बताइये कि मैंने इस विवाहमें कौन-सी न्यूनता कर दी (जिसके कारण आप रुष्ट हो गये हैं)? ॥ ५० ॥

नाहूतोऽयं देशपालः कुलिन्दः
पत्नी तदीया किं करोम्यल्पकाले।
समायातस्तत्सुतोऽलेखि पत्रं
शीघ्रं बलं न मुहूर्तस्त्वथेत्थम् ॥ ५१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(हाँ, एक कमी अवश्य दीख पड़ती है कि) मैं उन देशपाल कुलिन्द तथा उनकी पत्नीको इस अवसरपर न बुला सका। इसमें भी मेरा दोष नहीं है; क्योंकि मैं क्या करूँ, थोड़ा ही समय शेष रहनेपर उनके पुत्र ये चन्द्रहास यहाँ आये और आपने भी तो उस पत्रमें ऐसा ही लिखा था कि बल आदिकी ओर दृष्टि न डालकर शीघ्रतापूर्वक कार्य सम्पन्न करना। इसके सिवा ऐसा उत्तम मुहूर्त भी दूसरा नहीं था॥

किं वाधुना यामि कुलिन्दमेकः
समाहूयात्रानयिष्ये नमस्ये।
न्यूनं नान्यद् विषयाया विवाहे
सर्वं दत्ता वाजिनो हस्तिनश्च।
बाहू शिरोऽदायि मया वराय
पूज्याय कृष्णानुचराय तात॥ ५२॥

क्या अब मैं अकेला चन्दनावतीपुरीको जाऊँ और कुलिन्दको यहाँ बुला लाऊँ तथा उन्हें नमस्कार करूँ? विषयाके विवाहमें इसके अतिरिक्त और कोई न्यूनता नहीं रह गयी है; क्योंकि मैंने हाथी-घोड़े आदि सभी वस्तुएँ प्रदान की हैं। पिताजी! मैंने तो इन श्रीकृष्णभक्त पूजनीय वर चन्द्रहासके लिये (समय पड़नेपर) अपनी दोनों भुजाएँ तथा सिर भी दे देनेका संकल्प कर लिया है॥ ५२॥

धृष्टबुद्धिरुवाच

दूरं प्रसर्प न मुखं मम दर्शयाद्य
पत्रं समानय निरीक्षय तत्र किंस्वित्।
तेनाहृतं पत्रमपश्यदेष
मन्त्री विधातुर्लिपिमन्वमंस्त॥ ५३॥

तब धृष्टबुद्धिने कहा—रे दुष्ट! जा, दूर हट जा, अब तू मुझे अपना मुख मत दिखला। जरा मेरे पत्रको तो ले आ और देख कि उसमें क्या लिखा है। तत्पश्चात् जब मदनद्वारा लाये हुए उस पत्रको मन्त्री धृष्टबुद्धिने देखा, तब उसकी समझमें यह बात आयी कि यह तो विधाताकी लिपि है अर्थात् विधाताने ही मुझसे ऐसा लिखवा दिया है॥

क्षणं दध्यौ सान्त्वयामास पुत्रं
सत्यं त्वदीयं किल वीक्षितं च।
मया त्वसौ चन्द्रहासो विसृष्ट-
स्तथा पत्रं लिखितं गूढभावम्॥ ५४॥
जातो दैवाद् विषयाया विवाहो
नाहं कर्त्ता न भवान् नापरोऽपि।

उस समय धृष्टबुद्धि क्षणभरतक विचार-विनिमग्न हो गया। फिर अपने पुत्र मदनको सान्त्वना देते हुए वह कहने लगा—'बेटा! निश्चय ही मैंने तेरे सत्यकी परीक्षा लेनी चाही थी। मैंने ही इस चन्द्रहासको तेरे पास भेजा था और वह रहस्यमय पत्र भी मेरा ही लिखा हुआ था। परंतु प्रारब्धवश विषयाका विवाह हो गया। इसका कर्ता न मैं हूँ, न तू है और न कोई दूसरा ही है (यह सब विधाताकी खेल है)'॥ ५४½॥

इत्थं समाश्वास्य सुतं दुरात्मा
तं चन्द्रहासं परिपूज्य दम्भात्॥ ५५॥
जाते चतुर्थे दिवसे चतुर्थी-
कर्म व्यधात् कैतवाद् धृष्टबुद्धिः।

दुरात्मा धृष्टबुद्धिने इस प्रकार पुत्रको भलीभाँति आश्वासन देकर चन्द्रहासका भी दम्भपूर्वक आदर-सत्कार किया। फिर चौथा दिन आनेपर उसने छलपूर्वक चतुर्थी-कर्मका भी विधान सम्पन्न किया॥ ५५½॥

ततः परं दूयमानः स राजन्
कर्ता किमत्राद्य विपक्षपक्षे॥ ५६॥
कृतं मया ह्येकमहो द्वितीय-
मग्रे कथं कार्यममुष्य शत्रोः।
इत्थं निमग्नः स तु शोकसिन्धौ
कर्तव्यनौकारहितेऽल्पबुद्धिः॥ ५७॥

राजन्! तत्पश्चात् वह अपने मनमें दुखी होकर सोचने लगा—'अब इस शत्रुके विषयमें मुझे क्या करना चाहिये। अहो! मैंने एक (चाण्डालोंद्वारा वधरूपी) उपाय किया, पुनः दूसरा (विषदानरूपी) प्रयत्न किया; (परंतु ये दोनों निष्फल हो गये।) अब भविष्यमें इस शत्रुके वधके लिये कौन-सा कार्य करूँ?' इस प्रकार वह मन्दबुद्धि धृष्टबुद्धि शोक-सागरमें गोते लगाने लगा, परंतु उससे पार होनेके लिये उसे कोई कर्तव्यरूपी नौका न मिली अर्थात् उसे चन्द्रहासके वधका कोई उपाय न सूझा॥ ५६-५७॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि धृष्टबुद्धिसंतापो नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५६॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें धृष्टबुद्धिका संताप नामक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

धृष्टबुद्धिका चन्द्रहासका वध करनेके लिये चाण्डालोंको चण्डिका-मन्दिरमें भेजना और सायंकाल-में चन्द्रहासको देवी-पूजनका आदेश देना, कुन्तल-नरेशका गालवमुनिद्वारा अरिष्टाध्याय सुनना और चन्द्रहासको अपनी कन्या चम्पकमालिनी तथा राज्य समर्पित करके वनमें जाकर निर्वाण प्राप्त करना, चन्द्रहासका चम्पकमालिनीके साथ गान्धर्व विवाह और राज्याभिषेक, चन्द्रहासके बदले मदनका चण्डिका-मन्दिरमें जाना और वहाँ चाण्डालोंद्वारा उसका वध

नारद उवाच

धृष्टधीश्चिन्तयामास विपरीतमभून्मम।
दत्ता तु विषया कन्या वध्यायास्मदरातये॥ १॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! उस समय धृष्टबुद्धि विचार करने लगा कि यह सारा कार्य मेरी इच्छाके विरुद्ध ही हुआ। मैं तो चन्द्रहासका वध करना चाहता हूँ, परंतु इस मूर्ख पुत्रने मेरे शत्रुको मेरी कन्या विषया प्रदान कर दी॥ १॥

अतः परं मया कार्यं किं कं गच्छामि बान्धवम्।
पुत्रोऽयं मद्वशे नैव वर्तते मदनोऽमलः॥ २॥

(अच्छा, जो हुआ सो हुआ) अब इसके पश्चात् मुझे क्या करना उचित है। (इसकी सलाहके लिये) मैं अपने किस सुहृद्-बन्धुके पास जाऊँ? मेरा यह पुत्र मदन तो मेरे वशमें है नहीं। अमलकी भी वही दशा है॥ २॥

आभ्यां मदीयं हि कुलं पुत्राभ्यां नाशितं ध्रुवम्।
चन्द्रहासो विशेषेण नाशयिष्यति मत्कुलम्॥ ३॥

इन दोनों पुत्रोंने तो निश्चय ही मेरे कुलको चौपट कर दिया। अब यह चन्द्रहास विशेषरूपसे मेरे वंशका विनाश कर डालेगा॥ ३॥

विषया विधवा भूयात् करिष्याम्यनृतं वचः।
मुनीनामिति संचिन्त्य चाण्डालांस्तानथाह्वयत्॥ ४॥

अतः विषया विधवा क्यों न हो जाय; परंतु मैं मुनियोंका वचन असत्य करके ही रहूँगा। ऐसा विचारकर उसने उन चाण्डालोंको बुलवाया॥ ४॥

एकान्ते संस्थितः पाप्मा संदिदेश शनैः शनैः।
चण्डिकायतनं बाह्ये पुरादुपवने शुभे॥ ५॥
करवालकराः सर्वे तत्र गच्छत मौनिनः।
गूढं तस्य स्थिताः कोणद्वये निश्चलमानसाः॥ ६॥

फिर एकान्तमें जाकर पापी धृष्टबुद्धि उन चाण्डालोंको धीमे स्वरसे आदेश देते हुए कहने लगा—'चाण्डालो! नगरके बाहर उस सुन्दर बगीचेमें जो चण्डिका देवीका मन्दिर है, वहाँ तुम सब लोग चले जाओ और निश्चल मनसे मौन धारण करके हाथमें तलवार लिये हुए उस मन्दिरके दोनों कोनोंमें छिपकर बैठ जाओ॥ ५-६॥

जाते पितृप्रसूकाले यः कश्चिदपि यास्यति।
भवद्भिः स हि हन्तव्यो मा विचारयत ध्रुवम्॥ ७॥

'सायंकाल होनेपर जो कोई भी वहाँ जायगा, उसे तुमलोग निश्चय ही मार डालना। इसमें किसी प्रकारका विचार मत करना॥ ७॥

पूर्वं यथा वञ्चितोऽहं तथा मा कुरुताधुना।
युष्माकं सम्पदामर्धं प्रदास्ये मदनांशकम्॥ ८॥

'किंतु देखना, पहले जैसे तुमलोगोंने मुझे धोखा दे दिया था, वैसा इस समय मत करना। (कार्य सिद्ध हो जानेपर) मैं तुमलोगोंको मदनके हिस्सेकी आधी सम्पत्ति दे दूँगा'॥ ८॥

तस्य वाक्यं समाकर्ण्य ते ऽन्त्यजाश्चण्डिकालयम्।
जग्मुः प्रच्छन्नवेषाश्च तृतीयप्रहरे सति॥ ९॥

धृष्टबुद्धिकी बात सुनकर वे चाण्डाल तीसरा पहर होनेपर अपने वेष छिपाकर चण्डिका-मन्दिरको चले गये॥ ९॥

धृष्टबुद्धिश्चन्द्रहासं विनयाद् वाक्यमब्रवीत्।
चन्द्रहास महाप्राज्ञ शृणु मे वचनं हितम्॥ १०॥

इधर धृष्टबुद्धिने चन्द्रहाससे विनयपूर्वक इस प्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहा—'महाबुद्धिमान् चन्द्रहास ! तुम मेरे हितकारी वचनोंपर ध्यान दो ॥ १० ॥

अस्माकं हि कुले देवी चण्डिका पूज्यते किल।
कृतोद्वाहो भवानद्य तां नमस्कुरु तारकाम् ॥ ११ ॥

'हमारे कुलमें (विवाह आदि माङ्गलिक अवसरोंपर) चण्डिका देवीके पूजनकी प्रथा है और तुम्हारा अभी-अभी विवाह हुआ है, अतः आज तुम भी संकटसे तारनेवाली उन भगवतीको नमस्कार करने जाओ ॥ ११ ॥

सायंसंध्यां विधायाशु पुष्पाण्यादाय चन्दनम्।
एकः प्रयाहि तां देवीं पुरबाह्यकृतालयाम् ॥ १२ ॥
पूजितुं च नमस्कर्तुमित्यादिश्य कुधीः स्थितः ।
ओमित्युक्त्वा ततो वाक्यं चन्द्रहासो ह्यकैतवात् ॥ १३ ॥

'तुम शीघ्र ही सायंकालिक संध्या-वन्दन कर लो और पुष्प-चन्दन लेकर अकेले ही उन देवीका पूजन तथा उन्हें नमस्कार करनेके लिये वहाँ चले जाओ। वे चण्डिकादेवी नगरके बाहरवाले मन्दिरमें विराजमान हैं।' ऐसा आदेश देकर वह दुष्टबुद्धि धृष्टबुद्धि चुपचाप बैठ गया। तब चन्द्रहासने सरलभावसे 'ॐ—बहुत अच्छा' ऐसा कहकर उसकी आज्ञा स्वीकार कर ली ॥ १२-१३ ॥

स संध्यावन्दनं कृत्वा गन्तुकामो बभूव ह।
अम्बिकालयमेवासौ चन्द्रहासो महायशाः ॥ १४ ॥

फिर तो महायशस्वी चन्द्रहास संध्या-वन्दन करके अकेले ही अम्बिकामन्दिर जानेको उद्यत हुआ ॥ १४ ॥

नारद उवाच

एतस्मिन्नन्तरे पार्थ राजा कौन्तलपः सुधीः।
गालवं तं समाहूय देहचेष्टामथाब्रवीत् ॥ १५ ॥

नारदजी कहते हैं—पार्थ! इसी अवसरपर कुन्तलपुरकी रक्षा करनेवाले बुद्धिमान् नरेश अपने पुरोहित गालव मुनिको बुलाकर उनसे अपने शरीरकी दशाका वर्णन करते हुए कहने लगे—॥ १५ ॥

स्वामिन् गालव भूलोके राज्यं मे कुर्वतो न हि।
सुखमस्ति तनुच्छायामशिरस्कां विलोकये ॥ १६ ॥

'स्वामिन् ! गालव ! अब इस भूलोकपर राज्य करते हुए मुझे सुखका अनुभव नहीं हो रहा है; क्योंकि मुझे अपने शरीरकी छाया मस्तकहीन दीख पड़ती है ॥ १६ ॥

उत्क्रान्तिसमयो मेऽद्य समायातो न संशयः।
अरिष्टाध्यायमाख्याहि यं श्रुत्वा निर्वृतिं लभे ॥ १७ ॥

'(इससे ज्ञात होता है कि) निस्संदेह अब मेरी मृत्युका समय निकट आ गया है, अतः मुने ! आप मुझसे अरिष्टाध्यायका वर्णन कीजिये, जिसे सुनकर मैं शान्ति लाभ करूँ' ॥ १७ ॥

गालव उवाच

अरिष्टानि महाराज शृणु वक्ष्यामि तानि ते।
दत्तात्रेयो ह्यलर्काय यान्याचख्यौ महात्मने ॥ १८ ॥

तब गालव मुनि कहने लगे—महाराज ! दत्तात्रेयजीने महात्मा राजा अलर्कसे जिन अरिष्टों (मृत्यु-लक्षणों) का वर्णन किया था, उन्हीं लक्षणोंको मैं आपसे कहूँगा; सुनिये ॥ १८ ॥

अरिष्टानि समालोक्य मृत्युं जानाति योगवित्।
देवमार्गे ध्रुवं शुक्रं सोमच्छायामरुन्धतीम् ॥ १९ ॥
यो न पश्येन्नजीवेत् स नरः संवत्सरात् परम्।

योगवेत्ता पुरुष अरिष्टोंको देखकर अपनी मृत्युका समय जान लेता है। जो मनुष्य देवमार्ग (आकाश) में ध्रुवतारा, शुक्र, चन्द्रच्छाया और अरुन्धतीको नहीं देख पाता, वह एक वर्षसे अधिक नहीं जीता ॥ १९½ ॥

अरश्मिबिम्बं सूर्यस्य वह्निं चैवांशुमालिनम् ॥ २० ॥
दृष्ट्वैकादशमासाच्च नरस्तूर्ध्वं न जीवति।
सुवर्णवर्णान् वृक्षांश्च नवमासान् स जीवति ॥ २१ ॥

सूर्य-मण्डलको किरणोंसे रहित और अग्निको किरणोंसे व्याप्त देखनेवाले मनुष्यका जीवन ग्यारह मासके ऊपर नहीं जाता और जिस मनुष्यको वृक्ष सुनहले रंगके दीख पड़ें, वह नौ मासतक जीवित रहता है ॥ २०-२१ ॥

स्थूलः कृशः कृशः स्थूलो योऽकस्मादेव जायते।
प्रकृतिश्च विवर्त्तेत तस्यायुश्चाष्टमासिकम् ॥ २२ ॥

जो स्थूल शरीरवाला मनुष्य अकस्मात् ही दुर्बल हो जाय और कृशकाय स्थूलकाय हो जाय तथा उसके स्वभावमें परिवर्तन हो जाय तो उसकी आयु आठ मास और समझनी चाहिये ॥ २२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खण्डं यस्य पदं पाष्ण्र्योः पादस्याग्रे तथा भवेत्।
पांसुकर्दमयोर्मध्ये सप्तमासान् स जीवति ॥ २३ ॥

धूल अथवा कीचड़में पड़नेपर जिसके पैरका चिह्न एँड़ी अथवा पंजेकी ओरसे खण्डित दीख पड़े, वह सात मासतक जीवित रहता है ॥ २३ ॥

कपोतगृध्रोलूकाश्च वायसो वापि मूर्धनि।
क्रव्यादो वा खगो लीनः षण्मासायुःप्रदर्शकाः।
हन्यते काकपङ्क्तीभिः पांसुवर्षेण यो नरः ॥ २४ ॥
स्फुरच्च यस्य वै चर्म स्तनादूर्ध्वमुरःस्थलम्।
तस्यापि पञ्चभिर्मासैर्विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥ २५ ॥

यदि किसी मनुष्यके मस्तकपर कबूतर, गृध्र, उल्लू, कौआ अथवा दूसरे ही कोई मांसभक्षी पक्षी आकर बैठ जायँ तो ये सब यह सूचित करते हैं कि इसकी आयु केवल छः मास शेष है। जिस मनुष्यके ऊपर कौओंकी पङ्क्तियाँ धूलकी वर्षा करने लगें तथा जिसके वक्षःस्थलपर स्तनके ऊपरका चमड़ा फड़कने लगे तो समझना चाहिये कि उसकी भी मृत्यु पाँच मासमें होनेवाली है ॥ २४-२५ ॥

स्वां छायां चान्यथा दृष्ट्वा चतुर्मासान् स जीवति।
अनभ्रे विद्युतं दृष्ट्वा दक्षिणां दिशमाश्रिताम् ॥ २६ ॥
यो निशीन्द्रधनुर्वापि जीवितं द्वित्रिमासिकम्।

जिसे अपनी परछाईं शरीरसे विपरीत दीख पड़े, वह चार मासतक और जीता है। जिसे बादलरहित आकाशमें दक्षिण दिशाका आश्रय लेकर कौंधती हुई बिजली अथवा रातके समय इन्द्रधनुष दीख पड़े, उसका जीवन दो-तीन मासका समझना चाहिये ॥ २६½ ॥

घृते तैलेऽथवाऽऽदर्शे तोये वाप्यात्मनस्तनुम्॥ २७ ॥
यः पश्येदशिरस्कां च मासार्धं न स जीवति।

जो घी, तेल, दर्पण अथवा जलमें अपने शरीरकी परछाईंको सिररहित देखता है, वह पंद्रह दिनतक भी जीवित नहीं रहता ॥ २७½ ॥

यस्य ह्यस्थिसमो गन्धो गात्रे शवसमोऽपि वा ॥ २८ ॥
तस्यार्धमासिकं ज्ञेयं नरस्य नृप जीवितम्।

राजन्! जिसके शरीरसे हड्डी अथवा लाशके समान गन्ध निकले, उस मनुष्यका जीवन पंद्रह दिनका और समझना चाहिये ॥ २८½ ॥

यस्य वै स्नानमात्रस्य हृत्पद्ममवशुष्यति ॥ २९ ॥
पिबतश्च जलं शोषो दशाहं सोऽपि जीवति।

स्नान करते-करते जिस मनुष्यका हृदय-कमल सूख जाता है तथा जल पीते समय भी गलेमें शुष्कता प्रतीत होने लगती है, वह दस दिनतक जीवित रहता है ॥ २९½ ॥

ऋक्षवानरयुग्मस्थो गायन् यो दक्षिणां दिशम्॥ ३० ॥
स्वप्ने प्रयाति तस्यापि मृत्युस्तत्कालमृच्छति।

जो स्वप्नमें भी रीछ और वानर दोनोंपर बैठकर गाता हुआ दक्षिण दिशाकी ओर प्रयाण करता है, उसे तत्काल ही मृत्यु प्राप्त हो जाती है ॥ ३०½ ॥

रक्तकृष्णाम्बरधरा गायन्ती हसती च या ॥ ३१ ॥
दक्षिणाशां नयेन्नारी स्वप्ने सोऽपि न जीवति।

जो लाल अथवा काले रंगका वस्त्र धारण करनेवाली हो, ऐसी कोई नारी जिसे स्वप्नमें गाती और हँसती हुई दक्षिण दिशाकी ओर ले जाय तो वह मनुष्य भी जीवित नहीं रहता ॥

नग्नं क्षपणकं स्वप्ने हसमानं प्रपश्यति ॥ ३२ ॥
य एवं तस्य च क्षिप्रं विद्यान्मृत्युमुपस्थितम्।

जो स्वप्नमें नंगे क्षपणक (कापालिक) को हँसता हुआ देखता है, उसकी मृत्यु शीघ्र ही होनेवाली है—ऐसा समझना चाहिये ॥ ३२½ ॥

आमस्तकतलाद् यस्तु निमग्नः पंकसागरे ॥ ३३ ॥
स्वप्ने पश्यत्यथात्मानं नरः सद्यो म्रियेत सः।

जो मनुष्य स्वप्नमें अपने-आपको एँड़ीसे चोटीतक कीचड़के समुद्रमें डूबा हुआ देखता है, वह तुरंत ही मृत्युका ग्रास बन जाता है ॥ ३३½ ॥

कोशागारं रथागारं धक्षयन्तं स्वकं शिरः ॥ ३४ ॥
दृष्ट्वा स्वप्ने दशाहेन मृत्युरेव न संशयः।

जिसे स्वप्नमें कोशागार, रथशाला तथा अपना मस्तक जलता हुआ दीख पड़े, उस मनुष्यकी मृत्यु निस्संदेह दस दिनके भीतर ही हो जाती है ॥ ३४½ ॥

करालैर्विकटैः कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः ॥ ३५ ॥
पाषाणैस्ताडितः स्वप्ने सद्यो मृत्युमवाप्नुयात्।
नात्मानं परनेत्रस्थं वीक्ष्यते न स जीवति ॥ ३६ ॥

जिसे स्वप्नमें हाथोंमें शस्त्र लिये हुए काले-कलूटे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विकराल एवं विकट पुरुष पत्थरोंसे पीटते हैं, वह तुरंत ही मृत्युको प्राप्त हो जाता है। जो सम्मुख खड़े हुए दूसरे मनुष्यके नेत्रोंमें स्थित अपनी परछाईको नहीं देख पाता, वह भी नहीं जीता है॥ ३५-३६॥

पिधाय कर्णौ निर्घोषं न शृणोत्यात्मसम्भवम्।
स्वभावविपरीत्येन वर्तते न स जीवति॥ ३७॥

जो मनुष्य अपने दोनों कानोंको मूँदकर अपने ही द्वारा किये गये शब्दको नहीं सुन पाता और जिसके स्वभावमें भी विपरीतता आ जाती है, वह जीवित नहीं रह सकता॥ ३७॥

देवान् नार्चयते विप्रान् गुरून् वृद्धांश्च निन्दति।
मातापित्रोरसत्कारं जामातॄणां करोति यः॥ ३८॥
योगिनां ज्ञानविदुषामन्येषां च महात्मनाम्।
प्राप्तकालः स पुरुषो न तु जीवति वै क्षणम्॥ ३९॥

जो पुरुष देवताओंकी पूजा नहीं करता, ब्राह्मणों, गुरुजनों और वृद्धोंकी निन्दा करता है तथा माता, पिता, जामाता, योगी, ज्ञानी और अन्य महात्मा पुरुषोंका अपमान करता है, उसकी मृत्यु आयी हुई समझना चाहिये; वह क्षणभर भी जीवित नहीं रहता॥ ३८-३९॥

योगिनां सततं यत्नादरिष्टान्यवनीपते।
विलोक्य स्वासने स्थित्वा ध्यातव्यं परमं पदम्॥ ४०॥

इसलिये महीपाल! योगी पुरुषको चाहिये कि जब ऐसे अरिष्ट दीख पड़ें, तब वह अपने आसनपर बैठकर निरन्तर यत्नपूर्वक परमपद—भगवान् विष्णुका ध्यान करता रहे॥४०॥

सारभूतमुपासीत ज्ञानं यत् कार्यसाधनम्।
इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत्॥ ४१॥
अपि कल्पसहस्रायुर्न स ज्ञानमवाप्नुयात्।

उसे जो कार्यको सिद्ध करनेवाला सारभूत ज्ञान है, उसीकी उपासना करनी चाहिये; क्योंकि जो मनुष्य 'इदं ज्ञेयम्, इदं ज्ञेयम्—यह जानने योग्य है, यह जानने योग्य है' यों ज्ञानपिपासासे संयुक्त होकर विचरता रहता है, उसे सहस्र कल्पोंकी आयु प्राप्त होनेपर भी ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती॥

त्यक्तसङ्गो निराहारो जितक्रोधो जितेन्द्रियः॥ ४२॥
विषयेभ्यो निवर्त्याशु मनो ध्याने निवेशयेत्।

अतः योगीको चाहिये कि वह निःसंग हो जाय और निराहार रहकर क्रोध तथा अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करे, फिर शीघ्र ही अपने मनको विषयोंसे हटाकर भगवद्ध्यानमें निविष्ट करे॥ ४२½॥

नारद उवाच

योगसारं समाकर्ण्य गालवान्मुनिपुङ्गवात्॥ ४३॥
राज्यं त्यक्तुमनाः सोऽथ जीर्णां त्वचमिवोरगः।
तत्रोपविष्टं मदनं समाहूयेदमब्रवीत्॥ ४४॥
राजा कौन्तलपस्तस्य कर्णे जामातरं स्वकम्।
समानयाशु मदन करिष्ये ह्यात्मनो हितम्॥ ४५॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ गालवके मुखसे इस योगसारको सुनकर कुन्तलपुराधिपति अपने राज्यका परित्याग करनेको उद्यत हो गये, ठीक उसी तरह, जैसे सर्प अपनी पुरानी केंचुलको छोड़ देता है। तब उन्होंने वहाँ समीप ही बैठे हुए मदनको बुलाकर उसके कानमें इस प्रकार कहा—'मदन! तुम अपने जामाता-तुल्य बहनोईको शीघ्र यहाँ लिवा लाओ; क्योंकि मैं अपने लिये कुछ हितकर कार्य करना चाहता हूँ'॥ ४३—४५॥

बाढमित्यालपित्वा स प्रायाज्जामातरं प्रति।
सूर्ये जपाप्रसूनाभे ह्यस्तंगिरिमुपाश्रिते॥ ४६॥

तब 'बहुत अच्छा' यों कहकर मदन अपने जामाता (बहनोई) के पास चला। उस समय सूर्यदेवकी कान्ति अड़हुलके पुष्पके समान अरुणवर्णकी हो चुकी थी और वे अस्ताचलका आश्रय ले रहे थे॥ ४६॥

ददर्श चन्द्रहासं तं कृतसंध्याविधिं शुचिम्।
पुष्पकर्पूरकस्तूरीचन्दनाम्बरधारिणम्॥ ४७॥
हरिद्राकुङ्कुमोन्मर्दगौराङ्गमुकुटावृतम्।
एकाकिनं समायान्तं पथि दृष्ट्वाब्रवीत् स्मरः॥ ४८॥
अयि त्वं चन्द्रहासाशु कुतो व्रजसि तद् वद।

उसने देखा कि चन्द्रहास पवित्र होकर संध्या-वन्दन कर चुके हैं, हरिद्रामिश्रित कुङ्कुमके अनुलेपसे उनका शरीर गौरवर्णका हो गया है, मस्तकपर मुकुट सुशोभित है, वे पुष्प, कपूर, कस्तूरी, चन्दन और वस्त्र धारण किये हुए अकेले ही मार्गमें आ रहे हैं। तब उन्हें देखकर मदनने पूछा—'चन्द्रहास! यह तो बताओ, तुम इतनी शीघ्रतासे कहाँ जा रहे हो?'॥ ४७-४८½॥

चन्द्रहासोऽब्रवीद् वाक्यं पित्राहं प्रेरितस्तव॥ ४९॥
चण्डिकां च नमस्कर्तुं महिषघ्नीं बहिःस्थिताम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब चन्द्रहासने इस प्रकार उत्तर दिया—'मैं आपके पिताजीकी आज्ञासे नगरके बाहर स्थित महिषमर्दिनी भगवती चण्डिकाको प्रणाम करनेके लिये जा रहा हूँ' ॥४९½॥

वारयामास मदनस्त्वं याहि नृपमन्दिरम् ॥ ५० ॥
देहि चन्दनपुष्पाणि त्वं नृपं त्वरितं व्रज ।

यह सुनकर मदनने चन्द्रहासको वहाँ जानेसे रोक दिया और कहा कि 'तुम राजमहलको जाओ । यह चन्दन और पुष्प हमें दे दो और तुम शीघ्र ही राजाके पास चले जाओ' ॥

इत्युक्त्वा पुष्पमालाढ्यं पात्रमाच्छिद्य तत्करात् ॥ ५१ ॥
ययौ स मदनश्चैकश्चण्डिकाभवनं तदा ।
अवतीर्य हयात् तस्मात् सेवकान् विनिवार्य च ॥ ५२ ॥
व्रतभङ्गभयात् पार्थ छत्रचामरवर्जितः ।

ऐसा कहकर मदन अपने उस घोड़ेसे उतर पड़ा और चन्द्रहासके हाथसे पुष्पमालाओंसे भरे हुए उस पात्रको छीन लिया । फिर सेवकोंको अपने साथ आनेसे मना करके वह अकेले ही चण्डिका-मन्दिरको चल दिया । पार्थ ! उस समय 'व्रत भंग न हो जाय' इस भयसे मदनने अपने छत्र-चँवरको भी छोड़ दिया था ॥ ५१-५२½ ॥

चन्द्रहासस्तमारुह्य वाजिनं च प्रयत्नतः ॥ ५३ ॥
तैरेव सेवकैः सार्धं छत्रचामरवीजितः ।
प्राप कौन्तलपं वेगान्नमस्कृत्य पुरः स्थितः ॥ ५४ ॥

तत्पश्चात् चन्द्रहास प्रयत्नपूर्वक मदनके उस घोड़ेपर सवार हो गया तथा उसीके छत्र-चँवरसे सुशोभित होकर उन्हीं सेवकोंके साथ वेगपूर्वक कुन्तलपुर-नरेशके पास जा पहुँचा और उन्हें नमस्कार करके उनके आगे खड़ा हो गया ॥५३-५४॥

चन्द्रहासं समालोक्य राजा कौन्तलपोऽब्रवीत् ।
स्वामिन् गालव यास्यामि वनं त्यक्त्वा परिच्छदम् ।५५।
सर्वसङ्गपरित्यागं पात्रे कुर्वेऽद्य वैष्णवे ।

चन्द्रहासको आया हुआ देखकर कुन्तल-नरेशने अपने पुरोहितसे कहा—'स्वामिन् ! गालव ! मैं इस राज्यसामग्रीका त्याग करके वन जाना चाहता हूँ । आज इस विष्णुभक्त सुपात्र चन्द्रहासके लिये अपना सर्वस्व परित्याग कर देनेका मेरा विचार है' ॥ ५५½ ॥

ओमित्युक्तः स मुनिना ददौ चम्पकमालिनीम् ॥ ५६ ॥
चन्द्रहासाय निखिलं राज्यं प्रादादवाङ्मुखः ।
परित्यज्य च वस्त्राणि नग्न ऊर्ध्वभुजो नृपः ॥ ५७ ॥
वनं जगाम संत्यक्त्वा समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।

'यह सुनकर मुनिके 'ओम्' ऐसा कहकर उनकी बातका समर्थन कर देनेपर राजाने चन्द्रहासको अपनी पुत्री चम्पक-मालिनी समर्पित कर दी । फिर उन्हें अपना सारा राज्य प्रदान कर दिया और राजा स्वयं वस्त्रोंका परित्याग करके नंगे हो गये फिर मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णमें समान दृष्टि होनेके कारण सबका त्याग करके भुजाएँ ऊपर उठाकर नीचे मुख किये हुए वनको चले गये ॥ ५६-५७½ ॥

प्राप्य योगर्द्धिमतुलां परां निर्वाणलक्षणाम् ॥ ५८ ॥
पश्यंस्तुच्छमिमं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
पाशैर्गुणमयैर्बद्धं बध्यमानं च नित्यशः ॥ ५९ ॥
पुत्रस्वभ्रातृपौत्रादिस्वपारक्यादिभावितैः ।
आकृष्यमाणं करणैर्दुःखार्तं भिन्नदर्शनम् ॥ ६० ॥
अज्ञानपङ्कगर्तस्थमनुबुद्ध्वा महीपतिः ।
आत्मानं च समुत्तीर्णं गाथामेतामगायत ॥ ६१ ॥

वहाँ राजाको निर्वाणस्वरूपिणी योगकी परम अनुपम सिद्धि प्राप्त हो गयी । तब उनकी दृष्टिमें ऐसा भासने लगा कि देवता, राक्षस और मनुष्योंसहित यह सारा संसार सत्त्व, रज, तमरूप त्रिगुणमय पाशोंसे बँधा हुआ है और नित्य बँधता जा रहा है; अतः यह तुच्छ है । यह संसार 'यह मेरा पुत्र है, यह भाई है, यह पौत्र है, यह अपना है और यह पराया है' ऐसी भावनाओंसे युक्त उपकरणोंद्वारा आकृष्ट होनेके कारण कष्ट भोग रहा है तथा द्वैतदृष्टि होनेके कारण अज्ञानरूपी कीचड़के गड्ढेमें पड़ा हुआ है। ऐसा विचारकर और अपनेको इस संसारसे पार हुआ समझकर राजाने यह गाथा गायी थी—॥ ५८–६१ ॥

अहो कष्टं यदस्माभिः पूर्वं राज्यमनुष्ठितम् ।
अपि पश्चान्मया ज्ञातं योगान्नास्ति परं सुखम् ॥ ६२ ॥

'अहो ! पहले मैंने जिस राज्यको (सुखदायी समझकर) स्वीकार किया था, वह तो कष्टदायक ही है; परंतु अब मुझे पीछे ज्ञात हुआ है कि योगसे बढ़कर सुखद वस्तु दूसरी नहीं है' ॥ ६२ ॥

नारद उवाच

इत्थं संसारपाशेभ्यो मुक्तः कौन्तलपो नृपः ।
सिंहासने चन्द्रहासं गालवः सोऽभ्यषेचयत् ॥ ६३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! इस प्रकार कुन्तल देशके राजा इस संसाररूपी बन्धनसे मुक्त हो गये। इधर गालव मुनिने चन्द्रहासको राजसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया॥ ६३॥

गान्धर्वेण विवाहेन तदा चम्पकमालिनीम्।
परिणिन्ये चन्द्रहासः सूर्येऽस्तं याति पाटले॥ ६४॥

तत्पश्चात् जब सूर्यकी प्रभा अरुणवर्णकी हो गयी और वे अस्ताचलको प्रयाण करने लगे, उस समय चन्द्रहासने गान्धर्व-विवाहकी विधिसे चम्पकमालिनीका पाणिग्रहण किया॥

पुष्पाणि च समादाय गच्छन् स मदनः पथि।
ददर्श युध्यत् पुरतो बिडालद्वयमातुरम्॥ ६५॥

उधर मदन जब पुष्प आदि पूजन-सामग्री लेकर चला, तब मार्गमें उसे सामने ही दुःखित होकर लड़ते हुए दो बिलाव दीख पड़े॥ ६५॥

हस्ताच्चन्दनपुष्पाणां पात्रं भूमावथापतत्।
रुधिरं प्रास्रवन्नेत्रान्मदनस्य मुखात् तथा॥ ६६॥

तदनन्तर मदनके हाथसे चन्दन और पुष्पोंसे भरा हुआ वह पात्र पृथ्वीपर गिर पड़ा तथा उसके नेत्र और मुखसे खून टपकने लगा॥ ६६॥

उलूकः स च वै मूर्ध्नि स्थितवान् भीमनिःस्वनः।
तथाप्यगणयन् पार्थ मदनो वाक्यमब्रवीत्॥ ६७॥

पुनः भयंकर शब्द करता हुआ उलूक मदनके मस्तकपर आ बैठा; परंतु पार्थ! अपने विषयमें इन सब अपशकुनोंकी कुछ भी परवा न करते हुए मदन कहने लगा—॥ ६७॥

अपि स्वस्ति भवेत् तस्मै चन्द्रहासाय धीमते।
वैष्णवाय च धीराय जामात्रे मम साम्प्रतम्॥ ६८॥
इत्येवं चिन्तयन् प्राप मदनश्चण्डिकालयम्॥ ६९॥

'जिन्हें मैं अपना जामाता-तुल्य मानता हूँ तथा जो धैर्यशाली एवं विष्णुभक्त हैं, उन बुद्धिमान् चन्द्रहासका इस समय मङ्गल हो।' यों विचार करता हुआ मदन चण्डिका-मन्दिरमें जा पहुँचा॥ ६८-६९॥

अवाङ्मुखः सन् स विवेश धीमान्
कपाटयुग्मं प्रहरन् करेण।
शब्दं समाकर्ण्य च ते पशुघ्नाः
शस्त्राणि यत्नाज्जगृहुः प्रमत्ताः॥ ७०॥

तत्पश्चात् जब बुद्धिमान् मदन अपने हाथसे द्वारके दोनों किंवाड़ोंको धक्का देकर नीचे मुख किये हुए भीतर घुसा, तब उस शब्दको सुनकर उन उन्मत्त कसाइयोंने सावधान होकर अपने शस्त्र हाथमें ले लिये॥ ७०॥

कर्णे लगित्वा शनकैरवोचन्
द्विजघ्न धेनुघ्न शिशुघ्न कश्चित्।
प्राप्तो मुमूर्षुस्तदिहात्र जन्तुः
स्वनामवैयर्थ्यमहो न कार्यम्॥ ७१॥
न लङ्घनीयः कुलधर्म एष
नीतिस्ततो हिंस्युरमुं च शूलैः।

पुनः वे एक-दूसरेके कानसे लगकर परस्पर कहने लगे—'अहो ब्राह्मणघाती! अरे गो-हत्यारे! ओ शिशुघातक! सुनो न, यहाँ कोई प्राणी मृत्युका ग्रास बननेकी इच्छासे आ गया, अब तुम्हें अपना नाम व्यर्थ नहीं करना चाहिये अर्थात् तुम्हें अपने नामके अनुरूप इसे अवश्य मार डालना चाहिये। वध करना हमारा कुलधर्म है, अतः उसका उल्लङ्घन करना उचित नहीं है, यही नीतिसम्मत है। इस कारण इसे शूलोंसे मार डालना चाहिये'॥ ७१½॥

अथ प्रविष्टं मदनं सुवेषं
दक्षं पितुर्वाक्यकरं पशुघ्नाः॥ ७२॥
शूलैश्च खड्गैर्निशितैश्च पट्टिशै-
र्जघ्नुस्तदा प्राह सुतः सुमन्त्रिणः।
हे चण्डिके वैष्णवि नो लुलायो
दैत्यो निशुम्भोऽपि न शुम्भ एव।
न रक्तबीजोऽहमिहागतस्त्वां
कस्माच्च शूलैरभिहंसि मातः॥ ७३॥

ऐसी सलाह करके जब वे पशु-हत्यारे पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले, सुन्दर वेषधारी, कार्यकुशल मदनको मन्दिरमें प्रवेश करनेपर शूल, तीखी तलवार और पट्टिशोंसे मारने लगे, तब उस मन्त्रिकुमार मदनने कहा—'हे चण्डिके! वैष्णवि! यहाँ तुम्हारे संनिकट आया हुआ मैं न तो महिषासुर हूँ और न निशुम्भ एवं शुम्भ ही हूँ तथा मैं रक्तबीज भी नहीं हूँ; फिर मातः! किस कारण तुम मुझे शूलोंसे मार रही हो?॥

न प्रार्थयाम्यद्य च जीवितार्थं
त्वं साक्षिणी मे वचनस्य भूयाः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यच्चन्द्रहासार्थमभाणि बाहू
शिरः प्रदास्ये ह्यनृणोऽहमासम्॥ ७४ ॥

'देवि! मैं इस समय अपने जीवनके लिये तुमसे प्रार्थना नहीं कर रहा हूँ। तुम तो मेरे उस वचनकी साक्षी हो जाओ, जो मैंने चन्द्रहासके लिये कहा था कि 'समय पड़नेपर मैं उनके निमित्त अपनी दोनों भुजाएँ तथा सिर भी प्रदान कर दूँगा।' आज मैं अपनी उस प्रतिज्ञासे उऋण हो गया' ॥ ७४ ॥

इत्यूचिवान् मन्त्रिपुत्रस्तदानीं
जहौ प्राणानुच्चरन् माधवेति।
चाण्डालास्ते प्रस्फुरद्वाक्यभीता
जग्मुस्ते वै को हतोऽस्माभिरेव ॥ ७५ ॥

उस समय मन्त्रिकुमार मदनने ऐसा कहकर 'माधव! माधव!' यों उच्चारण करते हुए प्राण त्याग दिये। उसके मुखसे निकलते हुए वचनको सुनकर भयभीत हुए वे चाण्डाल भी वहाँसे चलते बने। वे सोचने लगे कि 'हमलोगोंने किसको मार डाला है?' ॥ ७५ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कुन्तलपुरराज्यप्राप्तिर्नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें (चन्द्रहासको) कुन्तलपुर राज्यकी प्राप्तिनामक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चन्द्रहासका चम्पकमालिनीके साथ धृष्टबुद्धिसे मिलने जाना, चन्द्रहासके मुखसे देवीमन्दिरमें मदनके जानेकी बात सुनकर धृष्टबुद्धिका मन्दिरमें जाना और विलाप करके प्राण-त्याग करना, प्रातःकाल एक तपस्वीका चन्द्रहासको इसकी सूचना देना, चन्द्रहासका मन्दिरमें जाकर अपना मांस काटकर आहुति देना तथा अपना सिर काटनेको उद्यत होना, देवीका प्राकट्य और चन्द्रहासको वर-प्रदान, धृष्टबुद्धि और मदनका जीवित होना, चन्द्रहासका कुलिन्द और उसकी पत्नीको कुन्तलपुर ले आना, शालग्राम-शिलाका माहात्म्य, नारदजीका स्वर्गलोक गमन और अर्जुनका कुन्तलपुरको प्रस्थान

नारद उवाच

राज्यं लब्ध्वा चन्द्रहासः पत्नीं चम्पकमालिनीम्।
शुभे गजे तया सार्धमारुरोह निशागमे ॥ १ ॥
नमस्कर्तुं धृष्टबुद्धिं मृदङ्गध्वनिशोभितः।
आजगाम त्वरायुक्तो दिदृक्षुः श्वशुरं नृपः ॥ २ ॥

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! इस प्रकार जब चन्द्रहासको कुन्तलपुरका राज्य और चम्पकमालिनी नामवाली पत्नी प्राप्त हो गयीं, तब वह रात्रिके समय धृष्टबुद्धिके पास जाकर उसे प्रणाम करनेके लिये अपनी उस पत्नीके साथ एक सुन्दर गजराजपर सवार हुआ। उस समय मृदङ्गोंकी सुन्दर ध्वनि हो रही थी। इस प्रकार राजा चन्द्रहास अपने श्वशुरका दर्शन करनेकी अभिलाषासे बड़ी उतावलीके साथ उसके भवनकी ओर चला ॥ १-२ ॥

शंसन्ति स्म वचस्तस्मै मन्त्रिणे च वचोहराः।
मन्त्रिन् समागतं पश्य चन्द्रहासं नृपं नवम् ॥ ३ ॥
जामातरं तव विभो राज्ञः कौन्तलपस्य च।

तब संदेशवाहक मन्त्री धृष्टबुद्धिके पास जाकर उससे इसकी सूचना देते हुए कहने लगे—'मन्त्रिन्! देखिये, ये नये महाराज चन्द्रहास आपके पास पधार रहे हैं। विभो! ये आपके तथा महाराज कुन्तलनरेशके जामाता हैं' ॥ ३½ ॥

तेषां वचनमाकर्ण्य क्रोधान्मन्त्री वचोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥
युष्माकं रसनां छेत्स्ये मूलमारभ्य पापिनाम्।
कोऽन्यः कौन्तलपाद् राजा भविष्यति धरातले ॥ ५ ॥

उनका कथन सुनकर धृष्टबुद्धि कुपित हो उठा और इस प्रकार कहने लगा—'दुष्टो! मैं तुम सभी पापियोंकी जिह्वा जड़से काट लूँगा। मूर्खो! इस भूतलपर कुन्तल-नरेशके अतिरिक्त दूसरा कौन हमारा राजा हो सकेगा?' ॥ ४-५ ॥

वचोहरा ब्रुवन्ति स्म स्वामिन् दृष्ट्यावलोकय।
तावत् प्राप्तश्चन्द्रहासो जायया सहितः पुरः ॥ ६ ॥

तब दूतोंने कहा—'स्वामिन्! जरा आँख उठाकर देखिये तो।' तबतक चन्द्रहास अपनी पत्नी चम्पकमालिनीके साथ सामने आता दीख पड़ा ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ददर्श धृष्टबुद्धिस्तं नेत्रे स्वे परिमार्जयन्।
उताहोस्वित् सुतः प्राप्तो मदनोऽयं भविष्यति॥ ७ ॥
पुरतो विद्यते कन्या यथा चम्पकमालिनी।
उवाचोच्चैस्तदा मन्त्री रे रे मदन किं कृतम्॥ ८ ॥

उस समय धृष्टबुद्धि अपने नेत्रोंको पोंछकर चन्द्रहासकी ओर देखने लगा और विचारने लगा कि सम्भवतः यह मेरा पुत्र मदन आता होगा; क्योंकि इसके आगे राजकुमारी चम्पकमालिनी विद्यमान है। फिर वह उच्च स्वरसे बोल उठा—'रे रे मदन! तूने यह क्या कर डाला?' ॥ ७-८ ॥

इति चिन्तयतस्तस्य चन्द्रहासः पुरःस्थितः।
अवतीर्य गजात् तस्मात् पादौ जग्राह मन्त्रिणः॥ ९ ॥

धृष्टबुद्धि यों विचार कर ही रहा था कि चन्द्रहास सामने उपस्थित हो गया और उस हाथीसे उतरकर उसने मन्त्रीके दोनों पैर पकड़ लिये ॥ ९ ॥

चुबुके धृष्टबुद्धिस्तं धधार न भवान् गतः।
चण्डिकाभवनं रम्यं गोत्रस्थितिविनाशकृत्॥ १० ॥

तब धृष्टबुद्धि चन्द्रहासकी ठोढ़ी पकड़कर पूछने लगा—'क्या आप चण्डिकादेवीके रमणीय मन्दिरपर नहीं गये? (ऐसी अवहेलना तो) मेरे कुटुम्बका समूल विनाश करनेमें कारण हो सकती है' ॥ १० ॥

चन्द्रहास उवाच

यावद्गच्छाम्यहं स्वामिन् पुष्पचन्दनपात्रभृत्।
तावत् कौन्तलपादेशकारको मदनश्च माम्॥ ११ ॥
वारयामास पश्चाच्च स्वयं देवीं जगाम सः।

चन्द्रहासने उत्तर दिया—स्वामिन्! मैं चन्दन और पुष्पोंसे भरे हुए पात्रको लेकर जा ही रहा था, तबतक कुन्तलाधिपतिकी आज्ञाका पालन करनेवाले मदनने मेरे पास आकर मुझे वहाँ जानेसे रोक दिया। तत्पश्चात् वे स्वयं ही देवीके मन्दिरको चले गये ॥ ११½ ॥

तत् तस्य वचनं श्रुत्वा कठोरं मर्मभेदि च॥ १२॥
ऊर्ध्वबाहुर्मुक्तकेशो मन्त्री स विलपन् ययौ।

चन्द्रहासके ऐसे कठोर एवं मर्मभेदी वचन सुनकर धृष्टबुद्धि बाल बिखेरे तथा हाथ ऊपरको उठाये यों विलाप करते हुए (चण्डिका-मन्दिरको) चला—॥ १२½ ॥

परार्थे योऽवटं कर्ता तस्मिन् स पतति ध्रुवम्॥ १३॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्राणिनां हितमाचरेत्।

'जो दूसरेके लिये गड्ढा खोदता है, वह स्वयं ही उस गड्ढेमें गिरता है—यह ध्रुव सत्य है; इसलिये सर्वथा प्रयत्नपूर्वक प्राणियोंका हित ही करना चाहिये' ॥ १३½ ॥

उत्तिष्ठन्निपतन् भूमौ ध्वान्ते घोरे स्थितः पथि॥ १४॥
धृष्टबुद्धिर्जगामाशु पश्यन् प्रेतस्थलीं बहिः।
प्रज्वलन्ति चिता यत्र भस्म वातेन नीयते॥ १५॥

उस समय धृष्टबुद्धि तमसाच्छन्न भयंकर मार्गमें पृथ्वीपर गिरते-उठते बड़ी तेजीसे चल रहा था। नगरके बाहर उसे श्मशानभूमि दीख पड़ी, जहाँ चिताएँ जल रही थीं और वायुके चलनेसे चिता-भस्म उड़ रही थी॥ १४-१५ ॥

तं दृष्ट्वा भूतवेतालकङ्काला वाक्यमब्रुवन्।
अस्मत्तोऽभ्यधिकः कोऽपि समायाति च पश्यताम्॥ १६॥

धृष्टबुद्धिको देखकर भूत, वेताल और कंकाल परस्पर कहने लगे—'अरे भाइयो! देखो, यह कोई हमसे भी बढ़कर पापी आ रहा है' ॥ १६ ॥

तथापरोऽब्रवीत् प्रेतः कोऽस्मत्तोऽभ्यधिको भवेत्।
मया प्रेष्येण युष्माकं घातितं ब्राह्मणत्रयम्॥ १७ ॥

तबतक एक दूसरा प्रेत बोल उठा—'हमसे बढ़कर कौन हो सकता है? मैं तुमलोगोंका एक छोटा-सा सेवक हूँ, फिर भी मैंने तीन ब्राह्मणोंकी हत्या की है ॥ १७ ॥

विश्वासघनहर्त्तारं परनिन्दापरायणम्।
विद्धि मां सर्वदा भूतजन्तुघ्नं भयदं सताम्॥ १८ ॥

'मुझे तुमलोग ऐसा समझो कि मैं विश्वासघाती, धनका अपहरण करनेवाला, परायी निन्दामें तत्पर, भूत-प्राणियोंका घातक और सर्वदा सत्पुरुषोंको भय प्रदान करनेवाला था ॥१८॥

तथा ब्राह्मणहन्तारं भ्रातरं मेऽद्य पश्यत।
मम पुत्रादभ्यधिकस्तस्मात् पथिकघातकात्॥ १९ ॥

'उसी प्रकार अब ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाले मेरे इस भाईकी ओर दृष्टिपात करो। यह पथिकोंका वध करनेवाले मेरे उस पुत्रसे भी आगे बढ़ा हुआ है' ॥ १९ ॥

तावद् ब्रह्मग्रहस्त्वेकः प्रहसन् वाक्यमब्रवीत्।
अधिकस्ते सुतो भ्राता त्वं ततो ब्रह्मघातकी॥ २० ॥
अयमायाति चान्योऽस्ति त्वादृशो न च मादृशः।
तस्मात् पलायनं कार्यं युष्माभिर्न च दर्शनम्॥ २१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्तव्यं तस्य पापस्य दुष्टस्यातिविरोधिनः।
मित्रद्रोही कृतघ्नोऽयं विश्वासस्यैव घातकः॥ २२॥

तबतक एक ब्रह्मराक्षस हँसता हुआ यों कहने लगा—'ठीक है, तुम्हारे पुत्र और भाई महान् पापी हैं और तुम उनसे भी बढ़कर ब्रह्महत्यारे हो; परंतु यह जो दूसरा आ रहा है, यह तो न तुम्हारे समान है और न मेरी ही समतामें आ सकता है। यह मित्रद्रोही, कृतघ्न और विश्वासघातक है। ऐसे अत्यन्त ईर्ष्यालु एवं दुष्टात्मा पापीका मुख भी नहीं देखना चाहिये, इसलिये तुमलोगोंका यहाँसे भाग जाना ही उचित है॥ २०–२२॥

अयमायाति पापिष्ठस्तस्माद् दूरं पलायते।
इत्यालोच्य पलायन्ते तं दृष्ट्वा भूतभैरवाः॥ २३॥

'यह महान् पापी इधर ही आ रहा है, इसलिये मैं तो दूर हट जाता हूँ।' ऐसी आलोचना करके उन भूतों तथा भैरवों-का समुदाय धृष्टबुद्धिको देखकर (श्मशानभूमिसे) भाग खड़ा हुआ॥ २३॥

धृष्टधीः पुत्रशोकार्तश्चिताकाष्ठानि संदधत्।
ज्वलन्ति पाणौ प्रययौ चण्डिकाभवनं प्रति॥ २४॥

इधर पुत्रशोकसे पीड़ित धृष्टबुद्धि चिताकी जलती हुई लुकाठी हाथमें लेकर चण्डिका-मन्दिरकी ओर शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ा॥ २४॥

ददर्श पुत्रं मदनं खड्गशूलविदारितम्।
चण्डिकापुरतो नूनं पशुं द्वात्रिंशता गुणैः॥ २५॥
अन्वितं तं सुचारित्रं योगिनां तपतां वरम्।
ज्ञातार्थसमयं शान्तं मनोवाक्कायदण्डकम्॥ २६॥
विभिन्नकलशं दिव्यं प्रासादमिव भूतले।
काश्मीरमिव सम्भिन्नं लिङ्गं पाखण्डिभिर्नरैः॥ २७॥

मन्दिरमें पहुँचकर धृष्टबुद्धिने देखा कि क्षमा आदि बत्तीस गुणोंसे सम्पन्न, सच्चरित्र, योगियों और तपस्वियोंमें श्रेष्ठ, अर्थ और कालका ज्ञाता, शान्तस्वभाव तथा अपने मन, वाणी और शरीरपर नियन्त्रण रखनेवाला मेरा पुत्र मदन भूतलपर गिरे हुए टूटे कलशोंवाले दिव्य प्रासाद तथा पाखण्डी जनोंद्वारा तोड़े हुए काश्मीर-लिङ्गकी भाँति तलवार और शूलोंसे विदीर्ण किये गये पशुके समान चण्डिकाके सामने पड़ा है॥

दृष्ट्वा तं मदनं पुत्रं तथा छिन्नमनोरथः।
स्वकीयस्यैव वंशस्य छिन्नं मूलं स धृष्टधीः॥ २८॥

अपने पुत्र मदनकी वह दशा देखकर धृष्टबुद्धिका मनोरथ छिन्न-भिन्न हो गया। उसने समझ लिया कि अब तो मेरे वंशकी जड़ ही कट गयी॥ २८॥

परित्यज्य चिताकाष्ठं पश्यन् स सुतमातुरः।
आलिलिङ्ग तथाभूतं समुत्थाप्य च पाणिना॥ २९॥

फिर तो अपने हाथमें ली हुई चिताकी लुकाठीको फेंक दिया और आतुर होकर वह अपने पुत्रकी ओर निहारने लगा। तत्पश्चात् उस मरे हुए पुत्रको हाथसे उठाकर वह उसका आलिङ्गन करते हुए कहने लगा॥ २९॥

धृष्टबुद्धिरुवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ रे पुत्र चन्द्रहासः समागतः।
तस्मै त्वं विषयां कन्यां प्रदेहि विपुलं धनम्॥ ३०॥

धृष्टबुद्धि बोला—बेटा! उठ, जल्दी उठ! देख, यह चन्द्रहास आया हुआ है। तू इसे मेरी कन्या विषया तथा बहुत-सा धन प्रदान कर॥ ३०॥

मया त्वं कठिनैर्वाक्यैः पीडितोऽसि प्रकोपितः।
साम्प्रतं वैष्णवद्रोहफलं प्राप्तं मया सुत॥ ३१॥

मैंने तुझे कठोर वचनोंद्वारा पीड़ित किया था, क्या इसी कारण तू मुझसे रूठ गया है? पुत्र! इस समय मुझे वैष्णवोंसे द्रोह करनेका फल प्राप्त हो गया॥ ३१॥

वैष्णवद्रोहिणां सत्यं हृदयं तु विदीर्यते।
तस्मान्मदीयं हृदयं विदीर्णमधुनाभवत्॥ ३२॥

विष्णु-भक्तोंसे द्रोह करनेवालोंका हृदय विदीर्ण हो जाता है—यह उक्ति तो बिल्कुल सत्य ही है; इसीलिये आज मेरा हृदय टूक-टूक हो गया है॥ ३२॥

अयं स मदनो यस्य रतिः कृष्णे सदा स्थिता।
नायं शिवद्रोहकरो न योगिजनतापनः॥ ३३॥

यह वही मदन है, जिसका भगवान् श्रीकृष्णमें सदा प्रेम बना रहता था। यह न तो शिवद्रोही था और न योगियोंको ही संताप देता था॥ ३३॥

इत्थं विलप्य बहुधा धृष्टधीः स्वशिरस्तदा।
आस्फालयामास भृशं स्तम्भे धातुविभूषिते॥ ३४॥

यों अनेक प्रकारसे विलाप करके धृष्टबुद्धि उस समय धातुओंसे विभूषित एक खम्भेपर बड़े जोरसे अपना सिर दे मारा॥ ३४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स भिन्नमस्तको भूमौ स्फुटिताण्डमिवापतत्।
तस्मिन् निपतिते पार्थ धृष्टबुद्धौ च तत्सुते ॥ ३५ ॥

जिससे उसका मस्तक फट गया और फूटे हुए अण्डेके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा। पार्थ! इस प्रकार धृष्टबुद्धि तथा उसका पुत्र मदन उस मन्दिरमें पृथ्वीपर गिरे पड़े थे॥ ३५॥

प्रभातसमये जाते तापसः पुष्पतोयभृत्।
चण्डिकाभवनं प्रायात् स्नापितुं पूजितुं च ताम्॥ ३६ ॥

जब प्रातःकाल हुआ, तब कोई तपस्वी पुष्प और जल लेकर उन देवीको स्नान कराने तथा उनकी पूजा करनेके लिये चण्डिका-मन्दिरको गया॥ ३६ ॥

प्राविशद् भवनं देव्याः सलिङ्गौ पुरतो मृतौ।
धृष्टधीमदनौ शान्तौ दीपाविव ददर्श ह ॥ ३७॥

वहाँ पहुँचकर जब उस तपस्वीने देवीके मन्दिरमें प्रवेश किया, तब उसने सामने ही देखा कि धृष्टबुद्धि और मदन बुझे हुए दीपककी भाँति मरे पड़े हैं॥ ३७ ॥

अहोस्वित् किं बभूवात्र नवराज्यफलं स्फुटम्।
मन्त्रिपुत्रावपि हतौ नृपकौन्तलपप्रियौ ॥ ३८॥
आगतश्चन्द्रहासाय तापसः शंसितुं तदा।

(तब वह आश्चर्यचकित होकर कहने लगा—) 'अहो! यहाँ यह क्या हो गया? (मुझे तो प्रतीत होता है कि) नये राज्यका फल स्पष्ट प्रकट हुआ है; क्योंकि जो कुन्तल-नरेशके परम प्रिय थे, वे मन्त्री धृष्टबुद्धि और मदन—दोनों मार डाले गये।' तब वह तपस्वी चन्द्रहासको इसकी सूचना देनेके लिये उनके पास आया॥ ३८½॥

तापस उवाच

केनापि निहतौ राजन् धृष्टधीमदनौ बहिः ॥ ३९॥
चण्डिकाभवने रात्रौ तच्छीघ्रमवधार्यताम्।

(वहाँ पहुँचकर वह) तपस्वी कहने लगा—राजन्! रात्रिके समय किसीने धृष्टबुद्धि और मदनको मार डाला है। वे दोनों नगरके बाहर स्थित चण्डिका-मन्दिरमें मरे पड़े हैं। अब आप शीघ्र ही इसकी छान-बीन कीजिये॥

तस्य वाक्यं समाकर्ण्य पद्भ्यामेवागतो नृपः ॥ ४० ॥
चन्द्रहासः सुदुःखार्त्तो देव्या भवनमातुरः।
ददर्श पुरतो देव्याः पितापुत्रौ च तादृशौ ॥ ४१ ॥

तपस्वीकी बात सुनकर राजा चन्द्रहास महान् दुःखमें निमग्न हो गया और फिर वह आतुरतापूर्वक पैदल ही देवीके मन्दिरकी ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि वे दोनों पिता-पुत्र देवीकी मूर्तिके सामने मरे पड़े हैं॥४०-४१॥

चन्द्रहासोऽब्रवीद् वाक्यं हे मातश्चण्डिके मयि।
कुद्धासि चेन्मां गृहाण त्वया ह्येतौ वृथा हतौ ॥ ४२ ॥

यह देखकर चन्द्रहास यों बोल उठा—'हे माता चण्डिके! यदि आप मुझपर रुष्ट हो गयी हैं तो मुझे स्वीकार कर लीजिये। आपने व्यर्थ ही इन दोनोंका वध कर दिया'॥ ४२ ॥

इत्युक्त्वा पुरतो देव्याः पितापुत्रौ च तादृशौ।
दृष्ट्वा स्नात्वा शुचिर्भूत्वा स्वस्ति वाच्य ततो नृपः॥ ४३ ॥
कुण्डं खनित्वा रुचिरं चतुरस्रं सुलक्षणम्।
तस्मिन् पावकमारोप्य बलिदीपपुरःसरम् ॥ ४४ ॥
जुहावाज्यतिलान् रम्यान् पायसं सितया सह।
स्वदेहमांसमुद्धृत्य सूक्तं जप्त्वा जुहाव सः ॥४५॥

ऐसा कहकर राजा चन्द्रहास देवीके सामने उन दोनों पिता-पुत्रको मृतक-अवस्थामें पड़ा देखकर स्वयं स्नान करके शुद्ध हुआ। फिर उसने स्वस्तिवाचन करके एक शुभ लक्षणोंसे युक्त सुन्दर चौकोर कुण्ड खोदकर तैयार किया और उस कुण्डमें बलि एवं रक्षादीपके साथ-साथ अग्निस्थापन करके वह घी-मिश्रित सुन्दर तिलों तथा शक्कर मिली हुई खीरकी आहुतियाँ देने लगा। तत्पश्चात् वह देवीसूक्तका पाठ करके अपने शरीरका मांस काट-काटकर अग्निमें हवन करने लगा॥

सर्वं मांसं चन्द्रहासो हुत्वा पादशिरोधरान्।
अस्थीनि धारयन् शीर्षं प्राह स्म जगदम्बिकाम्॥ ४६ ॥

इस प्रकार चन्द्रहासने अपने शरीरके पैरसे लेकर मस्तक-तकका सारा मांस काटकर होम दिया। उस समय केवल हड्डियोंका ढाँचा और मस्तक ही शेष रह गया। तब वह जगदम्बिकासे कहने लगा—॥ ४६॥

चराचरगुरोर्विष्णोश्चिच्छक्तिस्त्वमुदाहृता ।
सर्वेषां कर्मणां मातः साक्षिणी त्वं पृथक् स्थिता ।४७।
अधुना छेद्मि खड्गेन शिरस्तेन जगत्पतिः।
प्रीयतां स हृषीकेशस्त्वद्रूपः कालिकेऽम्बिके ॥ ४८ ॥

'माता! आप चराचर जगत्के गुरु भगवान् विष्णुकी चित्-शक्ति कहलाती हैं और आप ही सबसे पृथक् रहकर भी सबके कर्मोंकी साक्षी हैं; इसलिये कालिके! अब मैं तलवारसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपना सिर काटता हूँ, अम्बिके ! इससे आपके स्वरूपमें विराजमान जगदीश्वर हृषीकेश प्रसन्न हों ॥ ४७-४८ ॥

इत्येवमुक्त्वा तं खड्गं यावत् कण्ठे दधार सः ।
तावत् प्रादुर्बभूवैषा चण्डिका प्राह तं नृपम् ॥ ४९ ॥

यों कहकर चन्द्रहासने ज्यों ही उस तलवारको अपने गलेपर मारना चाहा, त्यों ही चण्डिका देवी प्रकट हो गयीं और वे राजा चन्द्रहाससे बोलीं—॥ ४९ ॥

मैवमात्मवधं कार्षीरेष पाप्मा कुकर्मणा ।
पञ्चत्वमगमन्मन्त्री तत्सुतोऽप्यददादृणम् ॥ ५० ॥
त्वदीयं यत् पुरा प्रोक्तं विवाहसमये स्वसुः ।
प्रसन्नाहं हरेर्भक्त चन्द्रहास तवाधुना ।
वरौ प्रार्थय भद्रं ते स्वेच्छया मानसौ ध्रुवम् ॥ ५१ ॥

'चन्द्रहास ! तुम इस प्रकार अपनी हत्या मत करो । यह पापी धृष्टबुद्धि तो अपने ही कुकर्मसे मृत्युको प्राप्त हुआ है और उसके पुत्र मदनने भी तो तुम्हारे ही ऋणको चुकाया है, जिसे उसने पहले अपनी बहिनके विवाहकालमें अंकल्प किया था । हरिभक्त ! अब मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, अतः तुम स्वेच्छानुसार मुझसे अपने किन्हीं दो मनोऽभिलषित वरोंको माँग लो । निश्चय ही तुम्हारा मङ्गल होगा' ॥ ५०-५१ ॥

चन्द्रहास उवाच

हरौ भक्तिः सदा भूयान्मम जन्मनि जन्मनि ।
वरोऽयं प्रथमो मातर्द्वितीयेन मृतौ त्विमौ ॥ ५२ ॥
पितापुत्रौ प्रजीवेतां जगत्पावनि ते नमः ।

तब चन्द्रहास बोला—जगत्को पवित्र करनेवाली देवि ! आपको प्रणाम है । माता ! मेरा पहला वर तो यह है कि प्रत्येक जन्ममें मेरी सदा श्रीहरिके चरणोंमें भक्ति बनी रहे और दूसरे वरके रूपमें मैं यह याचना करता हूँ कि ये मरे हुए दोनों पिता-पुत्र जीवित हो जायँ ॥ ५२½ ॥

श्रीदेव्युवाच

अचला ते हरौ भक्तिर्भविष्यति च सात्त्विकी ॥ ५३ ॥
पुत्रोऽपि भवितां शूरस्तोषयिष्यति यो हरिम् ।

श्रीदेवीने कहा—राजन् ! श्रीहरिके चरणोंमें तुम्हारी अविचल सात्त्विकी भक्ति बनी रहेगी और तुम्हारा पुत्र भी शूरवीर होगा, जो (अपनी भक्तिसे) श्रीहरिको संतुष्ट कर देगा ॥ ५३½ ॥

आशैशवाच्चरित्रं ते चन्द्रहास कलौ युगे ॥ ५४ ॥
नरा नार्यश्च सततं श्रोष्यन्ति परमादरात् ।
पठिष्यन्ति च ये भक्त्या हृदि कृत्वा जनार्दनम् ॥ ५५ ॥
तेषां भक्तिर्हि सुदृढा भविष्यति रमापतौ ।

चन्द्रहास ! कलियुग आनेपर चाहे स्त्री हों अथवा पुरुष, जो लोग अपने हृदयमें भक्तिपूर्वक भगवान् जनार्दनका ध्यान करके बचपनसे लेकर अन्ततकके तुम्हारे चरित्रको परम आदरके साथ निरन्तर सुनेंगे अथवा पढ़ेंगे, उनकी भक्ति भगवान् श्रीलक्ष्मीपतिके चरणोंमें सुदृढ़ हो जायगी ॥ ५४-५५½ ॥

चन्द्रहास महाप्राज्ञ आयाहि पुरतो मम ।
स्थिरो भव मुहूर्तार्धं पिधाय नयने स्वके ॥ ५६ ॥

महाबुद्धिमान् चन्द्रहास ! अब तुम मेरे समीप आ जाओ और अपने दोनों नेत्र मूँदकर एक घड़ीके लिये यहाँ स्थिर होकर बैठ जाओ ॥ ५६ ॥

नारद उवाच

तथा चक्रे स नृपतिर्वैष्णवी शक्तिरुत्थिता ।
खड्गशक्तिगदाब्जाद्यैरायुधैः परिवारिता ॥ ५७ ॥
दध्रे नृपस्य शिरसि हस्तं ज्ञानोपदेशकम् ।

नारदजी कहते हैं—अर्जुन ! तब राजा चन्द्रहासने देवीके आदेशानुसार वैसा ही किया । उस समय खड्ग, शक्ति, गदा और कमल आदि आयुधोंसे सुशोभित वे वैष्णवी शक्ति उठीं और फिर उन्होंने राजाके मस्तकपर ज्ञानका उपदेश करनेवाला अपना हाथ रख दिया ॥ ५७½ ॥

ततस्तावेव सोऽपश्यद् धृष्टधीमदनौ नृपः ॥ ५८ ॥
तादृग्रूपवयोवेषौ यथा सुप्तोत्थितौ हि तौ ।

तदनन्तर राजा चन्द्रहासने (आँख खोलनेपर) देखा कि धृष्टबुद्धि और मदन—दोनों पूर्ववत् रूप, अवस्था और वेष-भूषासे संयुक्त हो गये हैं और ऐसे लग रहे हैं मानो अभी नींदसे जगे हों ॥ ५८½ ॥

आत्मानं पूर्ववच्चातिनिर्व्रणं चन्दनार्चितम् ॥ ५९ ॥
न तां ददर्श जननीं जगदम्बां हरेस्तनुम् ।

उसने अपने शरीरको भी पहलेकी तरह क्षतहीन एवं चन्दनचर्चित पाया; परंतु श्रीहरिकी मूर्तिस्वरूपा वे माता जगदम्बा पुनः न दीख पड़ीं ॥ ५९½ ॥

खात्पुष्पवृष्टिं पतितां सुरमुक्तां विलोक्य च ॥ ६० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नमश्चक्रे धृष्टबुद्धिं चन्द्रहासः स्मरं तथा।
समालिङ्ग्य सुसम्पूज्य श्वशुरं वाक्यमब्रवीत् ॥ ६१ ॥

उस समय देवता आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे। यह दृश्य देखकर चन्द्रहासने धृष्टबुद्धि और मदनको प्रणाम किया। फिर अपने श्वशुर धृष्टबुद्धिका आलिङ्गनपूर्वक भलीभाँति आदर-सत्कार करके इस प्रकार कहा ॥ ६०-६१ ॥

चन्द्रहास उवाच

हरेर्माया त्वियं सर्वा कश्च जीवति को मृतः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भजामस्तमधोक्षजम् ॥ ६२ ॥

चन्द्रहास बोला—श्वशुरजी ! कौन मरा और कौन जीवित हुआ ? (इस विषयमें विचार करना व्यर्थ है; क्योंकि) यह सब तो श्रीहरिकी माया थी; इसलिये हमलोगोंको सब तरहके प्रयत्नोंद्वारा उन अधोक्षजका ही भजन करना चाहिये॥

नारद उवाच

एवं स वैष्णवः पार्थ व्यसनेन न पीडितः।
प्रविवेश परं ताभ्यां चन्द्रहासः पुरं निजम् ॥ ६३ ॥

नारदजी कहते हैं—पार्थ ! इस प्रकार आपत्तियोंसे मुक्त होकर वह विष्णुभक्त चन्द्रहास धृष्टबुद्धि और मदनके साथ अपने उत्तम नगर कुन्तलपुरमें प्रविष्ट हुआ ॥ ६३ ॥

अर्जुन उवाच

दैवात् प्राप महद् राज्यं चन्द्रहासो महामुने।
कुलिन्देन तु पश्चाच्च दुःखितेन तु किं कृतम् ॥ ६४ ॥

अर्जुनने पूछा—महामुने ! इस प्रकार चन्द्रहासको तो प्रारब्धवश विशाल राज्यकी प्राप्ति हो गयी; परंतु उधर कुलिन्दको जब बेड़ियोंसे जकड़कर कष्टमें डाल दिया गया, तब उसके बाद कुलिन्दने क्या किया ? (यह बतानेकी कृपा कीजिये) ॥ ६४ ॥

नारद उवाच

शृणु पार्थ महाबाहो कुलिन्दस्य च चेष्टितम्।
गतेऽथ चन्द्रहासे स पीडितो धृष्टबुद्धिना ॥ ६५ ॥
विचार्य मनसा देवं हरिं बन्धविमोक्षकम्।
धनं तद् ब्राह्मणेभ्यस्तु दत्त्वा निर्वेदमागमत् ॥ ६६ ॥

नारदजीने कहा—महाबाहु अर्जुन ! अब मैं कुलिन्दके चरित्रका वर्णन करता हूँ, सुनो। चन्द्रहासके कुन्तलपुर चले जानेपर जब धृष्टबुद्धि कुलिन्दको कष्ट देने लगा, तब उसने अपने मनमें विचार किया कि बन्धनसे मुक्त करनेवाले तो एकमात्र भगवान् श्रीहरि ही हैं। यों सोचकर उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया, जिससे उसने अपना सारा धन ब्राह्मणोंको दान कर दिया ॥ ६५-६६ ॥

पुत्रं मे चन्द्रहासाख्यं त्वद्भक्तं त्वत्परायणम्।
त्वया दत्तं हृषीकेश रक्षास्मात् पापचेष्टितात् ॥ ६७ ॥

(फिर वह चन्द्रहासके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करने लगा—) 'हृषीकेश ! मेरा चन्द्रहास नामवाला पुत्र आपका भक्त है, वह आपके ही ध्यानमें तत्पर रहता है, और उसे आपने ही मुझे प्रदान किया है; अतः भगवन् ! अब आप ही इस पापाचारीसे उसकी रक्षा कीजिये' ॥ ६७ ॥

इत्युक्त्वा स्वगृहे तस्मिन् सपत्नीकः सबान्धवः।
प्रविवेश हुताशं वै निर्विण्णो ध्यानतत्परः ॥ ६८ ॥

ऐसा कहकर निर्वेदको प्राप्त हुआ कुलिन्द भगवद्ध्यान-परायण होकर अपनी पत्नी तथा भाई-बन्धुओंके साथ अपने उस घरमें ही अग्निमें प्रवेश कर जानेका विचार करने लगा ॥

एतस्मिन्नन्तरे लोका धृष्टबुद्धौ न्यवेदयन्।
स्वामिन् कुलिन्दो नृपतिः सर्वदा हितकृत् तव ॥ ६९ ॥
दुःखात् सपरिवारोऽसौ विशति स्म हुताशनम्।

इसी समय कुछ लोगोंने धृष्टबुद्धिके पास जाकर उससे यों निवेदन किया—'स्वामिन् ! राजा कुलिन्द सदासे आपके हितकारी ही रहे हैं, परंतु आज वे दुःखसे व्याकुल होकर सपरिवार अग्निमें प्रवेश करनेको उद्यत हैं' ॥ ६९½ ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रेरितो हरिणा ययौ ॥ ७० ॥
विचार्य मनसा सम्यक् पुत्रोऽस्य निहतो मया।
किमर्थं घातयाम्येनं वृद्धं धनविवर्जितम् ॥ ७१ ॥
पुत्रहीनो मृतो ह्येष दैवेन हि निपातितः।
एवं विमृश्य मनसा शीघ्रं गत्वा न्यवारयत् ॥ ७२ ॥

उन लोगोंकी वैसी बात सुनकर धृष्टबुद्धि श्रीहरिकी प्रेरणासे वहाँ गया। वह अपने मनमें सम्यक्‌रूपसे विचार करने लगा कि 'मैंने इसके पुत्रको तो मरवा ही दिया है, अब इस धनहीन वृद्धका वध क्यों होने दूँ ? पुत्रहीन होनेके कारण यह तो यों ही मृतक-तुल्य हो गया है। दैवने ही इसे मार गिराया है। यों मनमें विचार-विमर्श करके वह शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर कुलिन्दको रोकते हुए कहने लगा—॥ ७०—७२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मा कुलिन्द विषादं त्वं कुरु द्रव्यापहारजम्।
पुनर्दास्यामि ते वित्तं देशं च विविधं वसु ॥ ७३ ॥

'कुलिन्द ! तुम धनका अपहरण हो जानेके कारण विषाद मत करो। मैं तुम्हें पुनः बहुत-सा धन, राज्य तथा नाना प्रकारके रत्न दूँगा' ॥ ७३ ॥

इति नानाविधैर्वाक्यैराश्वस्तः स कुलिन्दकः।
पुत्राशां परमां कृत्वा उत्थितः प्रणनाम तम् ॥ ७४ ॥

इस प्रकार जब धृष्टबुद्धिने अनेक प्रकारकी बातें कहकर उसे आश्वासन दिया, तब वह कुलिन्द अपने पुत्र चन्द्रहाससे मिलनेकी बहुत बड़ी आशा करके उठा और फिर उसने धृष्टबुद्धिको प्रणाम किया ॥ ७४ ॥

धृष्टबुद्धिस्त्वाजगाम तं निवार्य स्वमन्दिरम्।
कुलिन्देन श्रुतं सर्वं चन्द्रहासेन यत् कृतम् ॥ ७५ ॥

इस प्रकार कुलिन्दको भस्म होनेसे रोककर धृष्टबुद्धि अपने भवनको लौट गया। तत्पश्चात् चन्द्रहासने कुन्तलपुरमें जो कुछ किया था, वह सारा वृत्तान्त कुलिन्दने भी सुना ॥ ७५ ॥

तच्छ्रुत्वा हर्षसम्पन्नो हरिं नत्वा द्विजान् धनैः।
पूजयामास धर्मात्मा याचकानथ सर्वशः ॥ ७६ ॥

उसे सुनकर वह परमानन्दमें निमग्न हो गया। फिर उस धर्मात्माने भगवान् श्रीहरिको नमस्कार करके ब्राह्मणों तथा याचकोंको धन देकर सब तरहसे उन्हें सत्कृत किया ॥ ७६ ॥

चन्द्रहासोऽपि तद् राज्यं लब्ध्वा तानर्चयद् द्विजान्।
स्वयं तु बन्धुभिः सार्धं मदनेन द्विजातिभिः ॥ ७७ ॥
आनयामास पितरं मातरं पुत्रवत्सलाम्।
ततः कौन्तलके राज्यं चकाराब्दशतत्रयम् ॥ ७८ ॥

उधर चन्द्रहासने भी कुन्तलपुरका राज्य पाकर वहाँके निवासी द्विजवरोंकी पूजा की और स्वयं भाई-बन्धुओं, ब्राह्मणों और मदनके साथ (चन्दनावतीपुरी जाकर) अपने पिता कुलिन्द तथा पुत्रवत्सला माताको कुन्तलपुर लिवा लाया। तत्पश्चात् तीन सौ वर्षोंसे वह कुन्तलपुरमें राज्य कर रहा है ॥ ७७-७८ ॥

विषयासूत तनयं मकरध्वजमूर्जितम्।
असूत शूरं पद्माक्षं सुतं चम्पकमालिनी ॥ ७९ ॥

इसी बीचमें विषयाने मकरध्वज नामक बलवान् पुत्रको जन्म दिया है और चम्पकमालिनीके गर्भसे पद्माक्ष नामवाला शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुआ है ॥ ७९ ॥

इत्थं पार्थ महाबाहो चन्द्रहासः पुरा शिशुः।
शालग्रामशिलासङ्गान्निस्तितार भवार्णवम् ॥ ८० ॥
तस्मात् सम्पूजयेन्नित्यं शालग्रामशिलां नरः।

महाबाहु अर्जुन ! इस प्रकार पूर्वकालमें बालक चन्द्रहास शालग्राम-शिलाके संगसे इस भवसागरको पार कर गया था; इसलिये मनुष्यको नित्य शालग्राम-शिलाकी अर्चना करनी चाहिये ॥ ८०½ ॥

शालग्रामशिलां चक्रं द्वारकायाः समुद्भवम् ॥ ८१ ॥
कलिकाले विभुः पार्थ न जहाति जनार्दनः।

पार्थ ! कलिकालमें सर्वव्यापी जनार्दन शालग्राम शिलाका तथा द्वारकामें उत्पन्न हुए गोमतीचक्रका कभी परित्याग नहीं करते ॥ ८१½ ॥

सर्वलोकोपकाराय यतिरूपेण तिष्ठति ॥ ८२ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यतिः पूज्यो हि केशवः।

भगवान् केशव समस्त लोकोंके उपकारके लिये यतिरूपसे विराजमान रहते हैं; इस कारण सभी उपायोंद्वारा संन्यासियोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ ८२½ ॥

द्वे रूपे देवदेवस्य चरं चाचरमेव च ॥ ८३ ॥
चरं संन्यासिनं प्राहुरचरं चक्रचिह्नितम्।

अर्जुन ! उन देवदेवेश्वर भगवान् केशवके दो रूप हैं—एक चर और दूसरा अचर। उनमें संन्यासीको चररूप कहा जाता है और चक्रचिह्नित शिला (गोमतीचक्र) भगवान्का अचर रूप है ॥ ८३½ ॥

यदीच्छसि हि दुष्पारं तर्तुं संसारसागरम् ॥ ८४ ॥
शालग्राममयं शैलं भक्त्यार्चय महामते।

महाबुद्धे ! यदि तुम इस दुस्तर संसार-सागरको सुगमतासे पार करना चाहते हो तो भक्तिपूर्वक शालग्राम-शिलाकी अर्चना करो ॥ ८४½ ॥

शालग्रामशिलां चक्रं ये यच्छन्ति महीपते ॥ ८५ ॥
विष्णुभक्ताय विप्राय तेषां मुक्तिर्न दुर्लभा।

महीपाल ! जो लोग विष्णु-भक्त ब्राह्मणको शालग्राम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिला और गोमतीचक्र प्रदान करते हैं, उनके लिये मुक्ति दुर्लभ नहीं रह जाती ॥ ८५½ ॥

अर्चितः पूजितो ध्यातः संस्तुतः शैलनायकः ॥ ८६ ॥
पापिनामुपकाराय किं पुनर्धर्मशीलिनाम्।

शालग्राम-शिलाका अर्चन, पूजन, ध्यान और भलीभाँति स्तवन करनेपर उसके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण पापियोंका भी उपकार (उद्धार) कर देते हैं, फिर धर्मात्माओंके लिये तो कहना ही क्या है ॥ ८६½ ॥

नैमिषाच्च प्रयागाच्च गङ्गासागरसंगमात् ॥ ८७ ॥
कुरुक्षेत्राच्छतगुणं शालग्रामशिलार्चनम्।

शालग्रामशिलाका पूजन नैमिषारण्य, प्रयाग, गङ्गासागर-संगम और कुरुक्षेत्रकी यात्रासे सौगुना अधिक फल देनेवाला है ॥ ८७½ ॥

यदि युक्ता महापापैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः ॥ ८८ ॥
मुच्यन्ते नात्र संदेहः शालग्रामशिलार्चनात्।

यदि करोड़ों जन्मोंमें समुपार्जित महान् पापोंसे युक्त मनुष्य शालग्रामशिलाका पूजन करते हैं तो वे उस अर्चनाके प्रभावसे उन पापोंसे मुक्त हो जाते हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ ८८½ ॥

शालग्रामशिलात्यक्तं चन्दनं वाथ कुङ्कुमम् ॥ ८९ ॥
देहे धारयते नित्यं स मुक्तो नात्र संशयः।

जो शालग्रामशिलासे उतरे हुए चन्दन अथवा कुङ्कुमको नित्य अपने शरीरपर धारण करता है, वह तो निस्संदेह मुक्त ही है ॥ ८९½ ॥

शालग्रामशिलात्यक्तं निर्माल्यं शिरसा वहेत् ॥ ९० ॥
हरिरेव स मन्तव्यो ब्रह्मणा कथितं स्वयम्।

जो मनुष्य पूजनके पश्चात् शालग्रामशिलापरसे उतरे हुए निर्माल्यको अपने सिरपर धारण करता है, उसे तो साक्षात् श्रीहरि ही समझना चाहिये, ऐसा स्वयं ब्रह्माजीने कहा है ॥ ९०½ ॥

शालग्रामशिलादत्तं नैवेद्यं यस्तु भक्षयेत् ॥ ९१ ॥
सिक्थे सिक्थे भवेत् पुण्यं कपिलागोसमुद्भवम्।

जो मनुष्य शालग्रामशिलाको नैवेद्य (भात आदि) अर्पित करके पीछे उस प्रसादको स्वयं खाता है, उसे उसके एक-एक दानेमें कपिला गौके दानसे उत्पन्न हुए फलके समान पुण्य प्राप्त होता है ॥ ९१½ ॥

शालग्रामशिलास्पर्शं ये कुर्वन्ति दिने दिने ॥ ९२ ॥
तैः कृतं पूजनं भूप पितृविप्रदिवौकसाम्।

राजन् ! जो लोग प्रतिदिन शालग्रामशिलाका स्पर्श करते हैं, उन्होंने तो मानो देवता, पितर और ब्राह्मणोंकी पूजा कर ली अर्थात् उन्हें इनके पूजनका फल प्राप्त हो जाता है ॥ ९२½ ॥

शालग्रामसमीपे तु यः श्राद्धं कुरुते नरः ॥ ९३ ॥
नित्यं नैमित्तिकं वापि गयाश्राद्धसमं भवेत्।

जो मनुष्य शालग्रामके समीप नित्य अथवा नैमित्तिक श्राद्ध भी करता है, उसका वह श्राद्ध गया-श्राद्धके समान फलदायक होता है ॥ ९३½ ॥

शालग्रामसमीपे तु भक्त्या पुस्तकवाचनम् ॥ ९४ ॥
भारतं हरिवंशं वा पुत्रदं धनदं भवेत्।

शालग्रामके समीप भक्तिपूर्वक महाभारत एवं हरिवंशकी पुस्तकका पारायण-पाठ पुत्र एवं धन प्रदान करनेवाला होता है ॥ ९४½ ॥

श्रीमद्भागवतं पुण्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ९५ ॥
शृणोति हृष्टमनसा स पुनाति जनान् बहून्।

श्रीमद्भागवत भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य शालग्रामके सामने प्रसन्न मनसे उस पुण्यमय पुराणका श्रवण करता है, वह बहुत-से लोगोंको पवित्र कर देता है ॥ ९५½ ॥

शालग्रामशिला यस्य नित्यं तिष्ठति वेश्मनि ॥ ९६ ॥
तत्र सर्वाणि तीर्थानि सन्ति सर्वे सुरा मखाः।

जिसके घरमें सदा शालग्रामकी मूर्ति वर्तमान रहती है, वहाँ समस्त तीर्थ तथा सारे देवता और यज्ञ निवास करते हैं ॥ ९६½ ॥

अन्तकालेऽपि यस्यास्ये शालग्रामशिलोदकम् ॥ ९७ ॥
क्षिप्यते पापिनोऽपीह स याति परमां गतिम्।

इस संसारमें प्राणत्यागके अवसरपर भी जिस पापीके भी मुखमें शालग्रामशिलाका चरणोदक डाल दिया जाता है, वह परम गतिको पा लेता है ॥ ९७½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नारायणसमो बन्धुर्न तिथिर्द्वादशीसमा ॥ ९८ ॥
विष्णुपादोदकैस्तीर्थं न तुल्यं भुवनत्रये ।

इस त्रिलोकीमें नारायण-सरीखा (अकारण हितैषी) बन्धु, द्वादशीके समान (पुण्यमयी) तिथि और विष्णुके चरणोदकके सदृश पवित्र तीर्थ कोई नहीं है ॥ ९८½ ॥

दर्शनात् पातकं हन्ति तुलसी नवपल्लवा ॥ ९९ ॥
तस्यास्तु दीर्घमञ्जर्यो नित्यं वसति केशवः ।

नवीन पल्लवोंसे सुशोभित तुलसी दर्शनसे ही पापोंका विनाश कर देती है; क्योंकि उसकी लंबी-लंबी मञ्जरियोंमें भगवान् केशव नित्य निवास करते हैं ॥ ९९½ ॥

तत्पत्रैः केशवः पूज्यो गलितैरपि चार्जुन ॥१००॥
तस्य यज्ञकृतं पुण्यं भवतीति न संशयः ।

इसलिये अर्जुन ! यदि पत्ते तुलसीके वृक्षसे टूटकर गिर गये हों तो उन पत्तोंसे भी भगवान् केशवकी पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार जो तुलसीदलसे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, उसे यज्ञ करनेका पुण्य प्राप्त होता है । इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ १००½ ॥

शालग्रामशिलायास्तु महिमा वर्णितुं मया ॥१०१॥
न शक्यते बहुत्वाच्च गमिष्यामि सुरालयम् ।

पार्थ ! शालग्रामशिलाकी महिमा तो बहुत बड़ी है, इसलिये मैं उसका पूर्णरूपसे वर्णन नहीं कर सकता; अतः अब मैं देवलोकको जाना चाहता हूँ ॥ १०१½ ॥

इत्युक्त्वा नारदः प्रायादर्जुनो विस्मयं ययौ ॥१०२॥
सतां सङ्गाद् विना लोके लभ्यते न सुखं नरैः ।

ऐसा कहकर जब नारदजी चले गये, तब अर्जुनको महान् विस्मय हुआ और वे कहने लगे कि इस जगत्में सत्पुरुषोंकी संगतिके बिना मनुष्योंको सुखकी प्राप्ति दुर्लभ है ॥ १०२½ ॥

इति ब्रुवन् सव्यसाची सर्वैर्भूपतिभिर्वृतः ॥१०३॥
जगाम चन्द्रहासस्य पुरं कौन्तलकं मुदा ॥१०४॥

यों कहते हुए सव्यसाची अर्जुन सभी राजाओंके साथ आनन्दपूर्वक चन्द्रहासके कुन्तलपुरकी ओर चले ॥१०३-१०४॥

जैमिनिरुवाच

इतिहासमिमं भक्त्या यः शृणोति पठत्यपि ।
स भुक्त्वा विविधान् भोगान् विष्णुलोके महीयते ॥१०५॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस इतिहासको पढ़ता अथवा सुनता है, वह इस लोकमें नाना प्रकारके भोग भोगकर मृत्युके पश्चात् विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ १०५ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि चन्द्रहासोपाख्याने शालग्राममहिमावर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें चन्द्रहासोपाख्यानके प्रसंगमें शालग्रामकी महिमाका वर्णन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

चन्द्रहासका श्रीकृष्णके दर्शनकी इच्छासे अपने पुत्र मकरध्वजको घोड़ोंको पकड़नेके लिये आदेश देना, श्रीकृष्णका चन्द्रहासको चतुर्भुजरूपमें दर्शन देना, उसका अर्जुनके साथ मेल कराना और कुन्तलपुरका राज्य चन्द्रहासके पुत्रको देकर आगे बढ़ना

जनमेजय उवाच

दधार चन्द्रहासः किं वाजिनौ तौ न वा मुने ।
एतत् सर्वं समाख्याहि मया पृष्टोऽसि जैमिने ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—मुने ! क्या चन्द्रहासने उन दोनों घोड़ोंको पकड़ लिया था या नहीं ? जैमिनिजी ! मैंने जो पूछा है, वह सब आप विस्तारपूर्वक बताइये ॥ १ ॥

जैमिनिरुवाच

प्रातःकाले तु बाह्यस्थौ तस्मिन् कौन्तलके पुरे ।
ददर्शतुर्हरी प्राप्तौ पद्माक्षमकरध्वजौ ॥ २ ॥

जैमिनिजीने कहा—राजन् ! प्रातःकाल मकरध्वज और पद्माक्ष दोनों नगरके बाहर टहल रहे थे, उसी समय उन्होंने उन दोनों घोड़ोंको अपने नगर कुन्तलपुरमें आया हुआ देखा ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विस्मयं परमं प्राप्तौ दधतुस्तौ तुरङ्गमौ।
पत्राभिप्रायमालोक्य जग्मतुः पितरं तदा ॥ ३ ॥

फिर तो उन्होंने उन घोड़ोंको पकड़ लिया और (घोड़ोंके मस्तकपर बँधे हुए) स्वर्णपत्रके अभिप्रायको समझकर वे परम विस्मित हुए। तब वे अपने पिता चन्द्रहासके पास गये (और उनसे उन्होंने उन घोड़ोंके विषयमें निवेदन किया) ॥ ३ ॥

चन्द्रहासोऽपि विज्ञाय प्राप्तौ पार्थतुरङ्गमौ।
प्रहर्षमतुलं लेभे जातः कृष्णसमागमः ॥ ४ ॥

चन्द्रहासको भी जब यह ज्ञात हुआ कि अर्जुनके दोनों घोड़े मेरे नगरमें आ पहुँचे हैं, तब उन्हें परम हर्ष प्राप्त हुआ। (वे सोचने लगे कि) 'अब तो अवश्य श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

आशैशवान्मया देवो नित्यं यश्चिन्त्यते हरिः।
स केशवः पार्थयुतो नूनमत्रागमिष्यति ॥ ५ ॥

'बचपनसे ही मैं जिन भगवान् श्रीहरिका सदा ध्यान करता रहता हूँ, वे केशव अर्जुनके साथ निश्चय ही यहाँ पधारेंगे' ॥ ५ ॥

विषयातनयं प्राह चन्द्रहासः शुभं वचः।
साक्षाद् धर्मस्य सम्प्राप्तौ वाजिनौ पुत्र साम्प्रतम्॥ ६ ॥

ऐसा विचारकर चन्द्रहासने विषयानन्दन मकरध्वजसे यह शुभ वचन कहा—'बेटा! इस समय साक्षात् धर्मके अवतार युधिष्ठिरके ये दोनों घोड़े हमारे यहाँ आ गये हैं ॥६॥

रक्षितौ वर्षमात्रं तैः क्लेशेनेति मया श्रुतम्।
धारयिष्यसि चेदेतौ पूर्णाब्दे विफलः क्रतुः ॥ ७ ॥

'मैंने सुना है कि उन लोगोंने महान् कष्ट झेलकर वर्ष-पर्यन्त इन अश्वोंकी रक्षा की है। अब यदि तू इन्हें पकड़ लेगा तो वर्ष पूर्ण हो जानेपर उनका यज्ञ निष्फल हो जायगा ॥ ७ ॥

त्वं रक्ष वाजिनौ पुत्र मासमात्रं प्रयत्नतः।
बद्ध्वेमौ वाजिनौ पश्चाद् धर्मराजाय चार्पय ॥ ८ ॥

'अतः पुत्र! तू इन घोड़ोंको बाँधकर एक महीनेतक प्रयत्नपूर्वक इनकी रक्षा कर। तत्पश्चात् इन्हें धर्मराजको समर्पित कर देना ॥ ८ ॥

सुकृतेनैव नः कार्यं वाजिभ्यां किं प्रयोजनम्।
सुकृतं वासुदेवस्य दर्शनान्नो भविष्यति ॥ ९ ॥
अहं योत्स्येऽद्य पार्थेन यथा तुष्येदयं हरिः।

'क्योंकि इन घोड़ोंसे हमारा क्या प्रयोजन है? हमें तो पुण्यसे ही मतलब है और वह पुण्य हमें भगवान् वासुदेवके दर्शनसे प्राप्त हो जायगा। इसलिये आज मैं अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा, जिससे ये श्रीहरि प्रसन्न हो जायँ' ॥ ९½ ॥

जैमिनिरुवाच

विषयातनयः प्रायाद् वाजिनौ परिपालयन् ॥ १० ॥
चन्द्रहासोऽपि नगराद् बहिस्तस्थौ ससैनिकः।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर मकरध्वज उन घोड़ोंकी रक्षा करनेके लिये चला गया और इधर चन्द्रहास भी सैनिकोंके साथ नगरके बाहर आकर डटकर खड़े हो गये ॥ १०½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः स पार्थः कृष्णसारथिः ॥ ११ ॥
ददर्श चन्द्रहासं तं गरीयांसं तु वैष्णवम्।

इसी समय श्रीकृष्ण जिनके रथपर सारथिरूपसे विराजमान थे, वे अर्जुन वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने परम विष्णु-भक्त उस चन्द्रहासको वहाँ खड़ा हुआ देखा ॥ ११½ ॥

शङ्खचक्राङ्कितततुं बिभ्राणं चोर्ध्वपुण्ड्रकम् ॥ १२ ॥
श्रीमत्कृष्णपदाम्भोजतुलसीपूतमस्तकम् ।
वयोवृद्धं तपोवृद्धं ज्ञानवृद्धं नवं युधि ॥ १३ ॥

उनका शरीर शङ्ख और चक्रके चिह्नोंसे अङ्कित था, ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक सुशोभित था, मस्तक भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंपर चढ़े हुए तुलसीदलसे पवित्र हो रहा था। वे अवस्था, तप और ज्ञानमें तो वृद्ध थे; परंतु युद्धस्थलमें नवयुवक-से डटकर खड़े थे ॥ १२-१३ ॥

पार्थोऽब्रवीन्मे सफलं जन्म चास्तत्कुलं तथा।
यच्चन्द्रहासो दृष्टोऽयं बाल्यादारभ्य वैष्णवः ॥ १४ ॥

उन्हें देखकर अर्जुनने कहा—'भगवन्! जो बाल्यावस्थासे ही विष्णु-भक्तिमें तत्पर रहनेवाले इन चन्द्रहासका दर्शन मुझे प्राप्त हो गया, इससे हमारा जन्म तथा कुल—दोनों सफल हो गये' ॥ १४ ॥

अथ कृष्णोऽपि संतस्थौ रथोपस्थे चतुर्भुजः।
शङ्खचक्रगदाम्भोजैरायुधैः समलंकृतः ॥ १५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदनन्तर श्रीकृष्णने भी अपना चतुर्भुज रूप धारण कर लिया। उनके चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म आयुधरूपसे सुशोभित होने लगे और वे उस रथकी बैठकपर खड़े हो गये ॥ १५ ॥

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं चन्द्रहासो रथात् तदा।
अवतीर्य नमश्चक्रे पार्थस्य पुरतस्तदा ॥ १६ ॥
आलिलिङ्ग हरिर्दोर्भिश्चन्द्रहासं विशाम्पते।

प्रजानाथ! तब कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको देखकर चन्द्रहास अपने रथसे उतर पड़े और आगे बढ़कर उनके चरणोंमें अभिवादन करने लगे, उस समय श्रीकृष्णने अर्जुनके सामने ही चन्द्रहासको अपनी भुजाओंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया ॥ १६½ ॥

वासुदेव उवाच

उत्तिष्ठालिङ्ग भो पार्थं मद्भक्तं ध्रुवसंनिभम् ॥ १७ ॥
चन्द्रहासं महाबाहुं वृद्धं सद्धर्मकारकम्।

पुनः श्रीकृष्णने (अर्जुनसे) कहा—भो पार्थ! तुम भी उठो और इन महाबाहु चन्द्रहासका आलिङ्गन करो। ये ध्रुवके समान मेरे प्यारे भक्त हैं। इनकी अवस्था वृद्ध हो चली है और ये सद्धर्मका पालन करने एवं करानेवाले हैं ॥

पार्थ उवाच

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ॥ १८ ॥
इत्थं हि शिक्षितं कृष्ण त्वया भीष्मसमागमे।
विपरीतं कथं ब्रूषे साम्प्रतं देवकीसुत ॥ १९ ॥
युद्धमत्र प्रकर्तव्यं कथमालिङ्गनं ददे।
नमस्करोमि चरणौ वृद्धत्वादस्य भूपतेः ॥ २० ॥

(यह सुनकर) अर्जुन बोले—श्रीकृष्ण! पहले पितामह भीष्मजीके साथ मुठभेड़ होनेके अवसरपर तो आपने मुझे ऐसी शिक्षा दी थी कि 'भलीभाँति आचरणमें लाये हुए पराये धर्मसे अपना धर्म गुणहीन भी हो तो वह श्रेष्ठ है।' देवकीनन्दन! इस समय आप उससे विपरीत कैसे कह रहे हैं। यहाँ तो युद्ध करना ही उचित प्रतीत हो रहा है, फिर मैं इन चन्द्रहासका आलिङ्गन कैसे करूँ। (अच्छा, यदि आपकी आज्ञा है तो) वृद्ध होनेके कारण मैं इन नरेशके चरणोंमें प्रणाम कर लूँगा ॥ १८–२० ॥

श्रीकृष्ण उवाच

मद्भक्तश्च नमस्कार्यः समालिङ्ग्यो विशेषतः।
कपिलागोशते दत्ते यत् फलं जायते नृणाम् ॥ २१ ॥
तत् फलं लभते पार्थ वैष्णवालिङ्गनान्नरः।

श्रीकृष्णने कहा—पृथानन्दन! मेरे भक्तको नमस्कार करना चाहिये और विशेषरूपसे उसका आलिङ्गन करना उचित है; क्योंकि सौ कपिला गौओंके दानसे मनुष्योंको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह फल मनुष्य विष्णु-भक्तका आलिङ्गन करनेसे पा लेता है ॥ २१½ ॥

मद्भक्तेषु च या प्रीतिः स धर्मः परिकीर्तितः ॥ २२ ॥
परिष्वजैनं चन्द्रहासं वैष्णवं विष्णुवल्लभम् ॥ २३ ॥

मेरे भक्तोंसे जो प्रेम किया जाता है, वही धर्म कहलाता है; इसलिये अर्जुन! तुम इन विष्णुके प्यारे भक्त चन्द्रहासका आलिङ्गन करो ॥ २२-२३ ॥

जैमिनिरुवाच

अथार्जुनो गाढमालिङ्ग्य तस्थौ
तं चन्द्रहासं कृष्णवाक्येन तुष्टः।
तदाब्रवीच्चन्द्रहासोऽपि वाक्यं
युद्धायाहं संस्थितः पाण्डुसूनो ॥ २४ ॥
मखो विनश्येत् तव नूनं विसृष्टः
पुत्रो मया वाजिनो रक्षणार्थम्।
जातं सख्यं नौ हरेः सद्वचोभि-
स्तस्मादमुं केशवं संश्रयावः ॥ २५ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णकी ऐसी बातें सुनकर अर्जुनको संतोष हो गया। फिर वे चन्द्रहासका गाढ़ आलिङ्गन करके उनके सामने खड़े हो गये। तब चन्द्रहासने भी इस प्रकार कहा—'पाण्डुनन्दन! मैं तो युद्धके लिये तैयार खड़ा था और मैंने अपने पुत्रको आपके घोड़ोंकी रखवालीके लिये भेज दिया है। ऐसा करनेसे निश्चय ही आपके यज्ञका विनाश हो जाता। परंतु इन श्रीहरिके उत्तम वचनोंसे हमारे और आपमें मित्रता स्थापित हो गयी है, इसलिये अब हम दोनोंको इन श्रीकेशवका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये ॥ २४-२५ ॥

एवं चोभौ भाषमाणौ तुरङ्गौ
समायातौ यत्र कृष्णार्जुनौ स्तः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तयोः पृष्ठे विषयासूनुरागा-
न्नमश्चक्रे पितरं तौ च कृष्णौ ॥ २६ ॥
प्रद्युम्नाद्यैः पूजितश्चन्द्रहास-
स्तस्थौ कृष्णं संस्तुवन् वाग्विलासैः॥ २७॥

वे दोनों यों बातें कर ही रहे थे, तबतक वे दोनों घोड़े वहाँ आ पहुँचे जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन विद्यमान थे। उन अश्वोंके पीछे लगा हुआ विषयानन्दन मकरध्वज भी वहाँ आया और उसने अपने पिता चन्द्रहासको तथा श्रीकृष्ण और अर्जुन—इन दोनोंको प्रणाम किया। तत्पश्चात् प्रद्युम्न आदि वीरोंने भी चन्द्रहासका सत्कार किया। तब चन्द्रहास सुन्दर वाणीद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए उनके सामने खड़े हो गये ॥ २६-२७ ॥

जैमिनिरुवाच

महोत्सवेन तौ कृष्णौ प्रवेश्य नगरं मुदा।
चन्द्रहासः कृष्णयुतः स बभौ भूपुरन्दरः ॥ २८ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर चन्द्रहास आनन्दपूर्वक बड़े समारोहके साथ उन श्रीकृष्ण और अर्जुनको अपने नगरमें लिवा ले गये। उस समय श्रीकृष्णसे संयुक्त होनेके कारण वे भूतलपर इन्द्रके समान सुशोभित होने लगे ॥

चन्द्रहासाश्रयात् सर्वे जनाः कृष्णपरायणाः।
धृष्टबुद्धिः पुत्रयुतः कृतार्थः समपद्यत ॥ २९ ॥
तत्पदं वासुदेवस्य वैष्णवानुग्रहान्नृप।

राजा जनमेजय! इस प्रकार चन्द्रहासके आश्रयसे सारी जनता कृष्णपरायण हो गयी और उन विष्णु-भक्तके अनुग्रहसे अपने पुत्र मदनसहित धृष्टबुद्धि कृतार्थ होकर भगवान् श्रीकृष्णके परमपदको प्राप्त हो गया ॥ २९½ ॥

ततो गालवमाहूय हरेः पूजां व्यधान्नृप ॥ ३० ॥
गालवं तं समालोक्य आगच्छन्तं तदा हरिः।
नमश्चक्रे योगिराजं परमानन्दनिर्भरम् ॥ ३१ ॥

राजन्! तदनन्तर चन्द्रहासने अपने पुरोहित गालव मुनिको बुलवाकर श्रीकृष्णकी पूजा सम्पन्न की। उस समय परमानन्दमें निमग्न हुए योगिराज गालव मुनिको आते देखकर श्रीकृष्णने उन्हें प्रणाम किया ॥ ३०-३१ ॥

गालवोऽपि नमश्चक्रे परमात्मानमव्ययम्।
मनसा तत्पदं ध्यायन् मुहूर्तं तन्मयो ह्यभूत् ॥ ३२ ॥

तब गालवने भी उन अविनाशी परमात्मा श्रीकृष्णको नमस्कार किया और दो घड़ीतक मन-ही-मन उनके चरणोंका ध्यान करते हुए वे तन्मय हो गये ॥ ३२ ॥

पूजां प्राप हरिस्तत्र चन्द्रहासेन तोषितः।
स्थित्वा त्रिरात्रं नगरे ह्यनुज्ञाप्य च गालवम् ॥ ३३ ॥
निर्ययौ नगरात् तस्मात् कृष्णः कमललोचनः।
चन्द्रहासोऽपि तद् राज्यं ददौ कृष्णकरे मुदा॥ ३४ ॥

इस प्रकार वहाँ श्रीकृष्णकी पूजा हुई थी और वे चन्द्रहाससे सत्कृत होकर तीन राततक उस नगरमें ठहरे रहे। तत्पश्चात् कमलनयन श्रीकृष्ण गालव मुनिकी आज्ञा लेकर उस नगरसे बाहर निकले। उस समय चन्द्रहासने आनन्दपूर्वक अपना वह राज्य भी श्रीकृष्णके हाथमें समर्पित कर दिया ॥

कृष्णोऽपि प्रददौ सर्वं तत्पुत्रायार्जुनाज्ञया।
अर्जुनः परमानन्दमवाप नृपदर्शनात् ॥ ३५ ॥

तब श्रीकृष्णने भी अर्जुनकी अनुमतिसे वह सारा राजपाट चन्द्रहासके पुत्र मकरध्वजको प्रदान कर दिया। इस प्रकार राजा चन्द्रहासके दर्शनसे अर्जुनको परमानन्दकी प्राप्ति हुई थी ॥ ३५ ॥

इदं चरित्रं चन्द्रहासस्य भक्त्या
नरः पठेच्छृणुयाद् यः समग्रम्।
स चाप्नुयाद् बलमायुश्च पुत्रान्
सदाचारान् विष्णुभक्तांश्च दातॄन्॥ ३६ ॥
कृष्णे भक्तिः सुदृढा ह्यन्तकाले
संसाराब्धेस्तारयेद् वासुदेवः ॥ ३७ ॥

जो मनुष्य चन्द्रहासके इस सम्पूर्ण चरित्रको भक्तिपूर्वक पढ़ेगा अथवा सुनेगा, उसे बल, आयु तथा सदाचारी, दाता एवं विष्णु-भक्त पुत्रोंकी प्राप्ति होगी। अन्त समयमें उसकी भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें सुदृढ़ हो जायगी, जिससे भगवान् वासुदेव भवसागरसे उसका उद्धार कर देंगे ॥ ३६-३७ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि चन्द्रहासोपाख्यानसमाप्तिर्नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें चन्द्रहासोपाख्यानकी समाप्ति नामक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षष्टितमोऽध्यायः

चन्द्रहासका अपने पुत्र मकरध्वजको राज्यपर अभिषिक्त करके श्रीकृष्णके साथ घोड़ेकी रक्षामें जाना, घोड़ोंका उत्तर दिशामें जाकर समुद्रमें घुस जाना, हंसध्वज, बभ्रुवाहन, प्रद्युम्न और मयूरध्वजके साथ अर्जुनका समुद्रमें प्रवेश करना, वहाँ बकदाल्भ्य ऋषिसे भेंट और वार्तालापके प्रसंगमें ऋषिका वैराग्य और श्रीकृष्णकी महिमा तथा अनेक मुखवाले ब्रह्माओंकी कथाका वर्णन करना, श्रीकृष्णका ऋषिको पालकीपर बैठाकर ले चलना

जैमिनिरुवाच

चन्द्रहासः पुराध्यक्षं विषयातनयं व्यधात्।
अब्रवीच्च मया पुत्र वार्द्धकत्वाद् वनं महत्॥ १॥
गन्तव्यं मोक्षलाभाय स मोक्षः सुलभोऽधुना।
कृष्णस्य दर्शनाज्जातो न मुञ्चामि ततो हरिम्॥ २॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! जब चन्द्रहासने विषयाकुमार मकरध्वजको कुन्तलपुरका अध्यक्ष नियुक्त कर दिया, तब उसने अपने पुत्रसे कहा—'बेटा! अब मैं वृद्ध हो चला हूँ, अतः मोक्ष-प्राप्तिके लिये मेरा विशाल वनमें चला जाना ही उचित है। वह मोक्ष इस समय श्रीकृष्णके दर्शनसे मेरे लिये सुलभ भी हो गया है, इसलिये अब मैं इन श्रीहरि-का आश्रय नहीं छोड़ूँगा'॥ १-२॥

इति संदिश्य तनयं कृष्णेन सहितो ययौ।
पालयन् वाजिनौ तस्य पार्थस्यामिततेजसः॥ ३॥

इस प्रकार अपने पुत्र मकरध्वजको आदेश देकर चन्द्रहास अमित तेजस्वी उन अर्जुनके घोड़ोंकी रक्षा करते हुए श्रीकृष्णके साथ ही चल दिये॥ ३॥

येषु येषु च देशेषु तौ प्राप्तौ वाजिनौ नृप।
तत्रत्यै राजभिर्मुक्तौ नमस्कृत्य महाभयात्॥ ४॥

राजन्! वे दोनों घोड़े जिन-जिन देशोंमें जाते, वहाँ-वहाँ-के नरेश अत्यन्त भयभीत होनेके कारण उन्हें नमस्कार करके दूर हट जाते थे॥ ४॥

केचिद्धरी तु हरिणा पालितौ वीक्ष्य सादरम्।
दक्षिणीकृत्य सम्पूज्य भक्त्या नत्वाग्रतः स्थिताः॥ ५॥

कुछ भूपाल उन घोड़ोंको श्रीकृष्णद्वारा सुरक्षित देखकर आदरपूर्वक प्रदक्षिणा करके उनकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करते थे और फिर भक्तिपूर्वक नमस्कार करके आगे खड़े हो जाते थे॥ ५॥

अथोत्तरस्यामम्भोधिं दिशि प्राप्तौ तुरङ्गमौ।
प्रविष्टौ सरितां पत्युर्जलेऽगाधे विशाम्पते॥ ६॥

प्रजानाथ! तदनन्तर वे दोनों घोड़े उत्तर दिशामें आगे बढ़ते हुए समुद्रतटपर जा पहुँचे और उस नदीपतिके अगाध जलमें घुस गये॥ ६॥

दुःखं प्राप्ताः पार्थमुख्या योधाः प्रोचुर्हरिं प्रति।
किमिदानीं प्रकर्तव्यं तयोः प्राप्तिः कथं भवेत्॥ ७॥

यह देखकर अर्जुन आदि प्रधान वीर दुखी हो गये और वे श्रीकृष्णसे पूछने लगे—'भगवन्! अब हमलोगोंको क्या करना चाहिये? उन दोनों घोड़ोंकी प्राप्ति कैसे सम्भव होगी?'॥

श्रीभगवानुवाच

पञ्चानां केवला ह्यश्वाः सन्ति वारिचराः शुभाः।
हंसध्वजस्य जिष्णोश्च बभ्रुवाहस्य मद्भुवः॥ ८॥
मयूरकेतोः पञ्चैते रथाः सर्वत्र गामिनः।
इत्युक्त्वा प्रविवेशाब्धिं कृष्णस्ते च महारथाः॥ ९॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वीरो! हंसध्वज, अर्जुन, बभ्रुवाहन, मेरे पुत्र प्रद्युम्न और मयूरध्वज—केवल इन पाँच वीरोंके ही सुन्दर घोड़े जलमें विचरण करनेवाले हैं, इसलिये ये ही पाँचों रथ जल-स्थल सर्वत्र गमन कर सकते हैं। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण और वे पाँचों महारथी समुद्रमें पिल पड़े॥

ददर्श फाल्गुनो वृद्धं मुनिं मध्ये सरित्पतेः।
द्वीपस्थं धारयन्तं के वटपत्रं करेण च॥ १०॥
जीर्णं शुष्कं शतच्छिद्रं लूतामन्दिरमण्डितम्।
बकदाल्भ्यं महाभागं निमील्य नयने स्थितम्॥ ११॥
अवतेरुः रथेभ्यश्च नमश्चक्रुश्च ते मुदा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

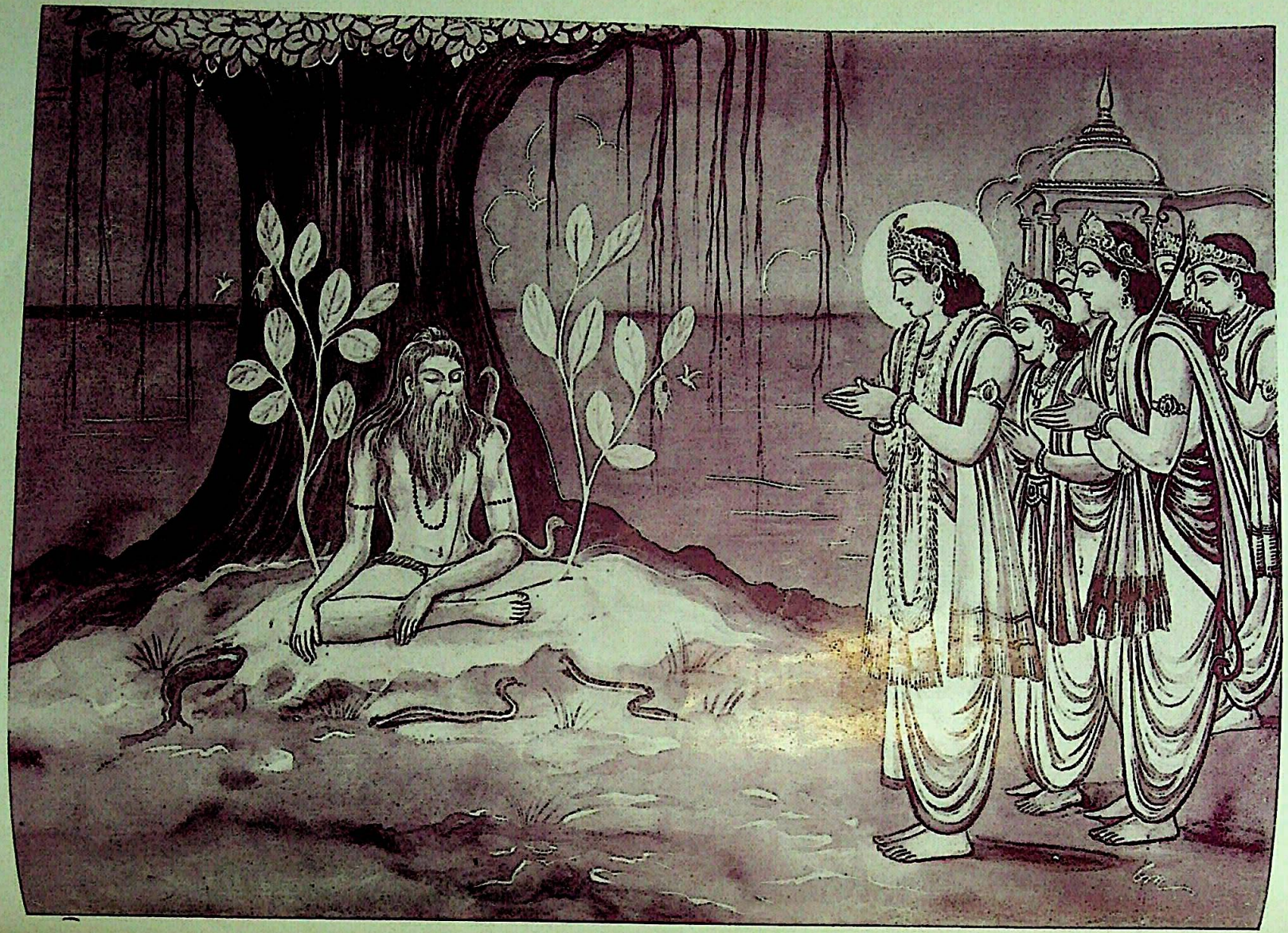

श्रीकृष्ण आदिका बकदाल्भ्य मुनिके पास गमन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहाँ समुद्रके बीच अर्जुनने एक द्वीपमें वृद्ध तपस्वी महाभाग बकदाल्भ्य मुनिको आँखें बंद किये हुए बैठे देखा। वे मुनि अपने मस्तकपर एक पुराना सूखा हुआ बरगदका पत्ता रखकर उसे अपने हाथसे पकड़े हुए थे। उस पत्तेमें सैकड़ों छिद्र थे और वह मकड़ियोंके जालोंसे व्याप्त था। मुनिको देखकर वे सभी वीर अपने रथोंसे उतर पड़े और निकट जाकर उन्होंने हर्षपूर्वक मुनिको प्रणाम किया॥

उन्मील्य नयने दीप्ते कृष्णादींस्तान् विलोक्य च॥ १२॥
हर्षादुत्फुल्लनयनो गाथामेतामगायत।

तब मुनिने अपने प्रकाशयुक्त नेत्र खोले और सामने उन श्रीकृष्ण आदि वीरोंको उपस्थित देखा। फिर तो हर्षातिरेकसे उनके नेत्र खिल उठे और वे इस गाथाका गान करने लगे—॥

अहो पञ्चभिरानीतो हृषीकेशोऽतिचञ्चलैः॥ १३॥
अतः परं हि नो वासो मण्डलेऽस्मिन् न सौख्यकृत्।

'अहो! ये पाँचों अति चपल पुरुष ही श्रीकृष्णको यहाँ ले आये हैं। अब भविष्यमें हमारा इस मण्डलमें निवास करना सुखकर नहीं होगा' ॥ १३½॥

इति ब्रुवन्तं तमृषिं पार्थः प्राह स विस्मितः॥ १४॥
युष्माभिर्म्रियते पत्रं शुष्कं न क्रियते गृहम्।

यों कहते हुए ऋषि बकदाल्भ्यसे अर्जुन विस्मित होकर पूछने लगे—'मुने! आपने यह सूखा पत्ता क्यों सिरपर धारण कर रक्खा है? आप अपने लिये कुटिया क्यों नहीं बना लेते?॥

युष्माकं जानुनी भित्त्वा किंशुकौ निर्गताविमौ॥ १५॥
ययोः कृतं नीडशतं पक्षिभिर्गृहिणीयुतैः।

'आपकी जानुओंका भेदन करके ये दो पलाशके वृक्ष उग आये हैं, जिनपर अपनी पत्नियोंसहित पक्षियोंने सैकड़ों घोंसले बना रखे हैं॥ १५½॥

वल्मीकानि विराजन्ते पुरस्तात् पृष्ठतश्च वः॥ १६॥
येभ्यो निर्यान्त्यमी सर्पा युष्मत्स्कन्धस्थिताः सुखम्।
पिबन्ति वायुमास्यैर्वः कुर्वन्त्यासनमुच्छ्रितम्॥ १७॥
कण्डूयन्ति मृगाः स्वाङ्गमहो निस्पृहता दृढा।

'आपके आगे और पीछे बहुत-से वल्मीक (बिमउट) विराजमान हैं, जिनसे ये सर्प निकल रहे हैं और आपको अपने लिये ऊँचा आसन बना रहे हैं। फिर वे आपके कंधेपर बैठकर सुखपूर्वक मुखोंसे हवा पी रहे हैं। हिरन आपके शरीरसे अपने अङ्ग खुजला रहे हैं। आपकी यह दृढ़ निस्पृहता तो बड़ी आश्चर्यजनक है!'॥ १६-१७½॥

प्रहस्य बकदाल्भ्योऽसौ श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम्॥ १८॥
उवाच हर्षयंश्चित्तं तदीयं शुभया गिरा॥ १९॥

अर्जुनका कथन सुनकर महर्षि बकदाल्भ्य ठठाकर हँस पड़े और अर्जुनके मनको हर्षित करते हुए सुन्दर वाणीमें बोले॥

बकदाल्भ्य उवाच

क्लेशावहो दारपरिग्रहोऽयं
पापस्य मूलं हि भवेदधोगतिः।
तत्पोषणे कार्यमकार्यमेतद्
विचार एषोऽतितरां विनश्येत्॥ २०॥

बकदाल्भ्यने कहा—अर्जुन! यह पत्नी-परिग्रह तो महान् कष्टदायक तथा पापकी जड़ है। इससे अधोगतिकी प्राप्ति होती है। इसके पालन-पोषणमें 'यह कर्तव्य है और यह अकर्तव्य है'—इसका विचार तो पूर्णरूपसे नष्ट हो जाता है॥२०॥

नष्टे विचारे कुत एव मोक्ष-
स्तृष्णा वरीवर्ति नृणामतीव।
एते मदीयाः खलु वत्ससंघा
वृद्धिंगताः क्षेत्रवहा भवेयुः॥ २१॥

जब विचार ही नहीं रह जाता, तब मोक्ष कहाँसे मिल सकता है? उस समय मनुष्योंकी तृष्णा विशेषरूपसे बढ़ जाती है। वे सोचा करते हैं कि 'ये मेरे बछड़ोंके झुंड निश्चय ही एक दिन बड़े होकर खेतोंमें हल चलाने योग्य हो जायँगे'॥

पुत्राः कथं स्युश्च तथैव पौत्रा
वेदांश्च शास्त्राणि कथं पठेयुः।
विवाह एषां भविता कथंस्वित्
प्रेक्षाम्यहं पुत्रमुखं कदास्वित्॥ २२॥

'मुझे पुत्रका मुख कब देखनेको मिलेगा? किस उपायसे मेरे बेटे और पोते हो जायँ और किस तरह वे वेदों तथा शास्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त कर लें। फिर कैसे इनका विवाह होगा?'॥

एवं सदा चिन्तयते गृहस्थः
स्त्रीपाशबद्धो न तु धर्ममार्गम्।
अतो मयाकारि न दारसंग्रहो
न पर्णशाला विहितालयमायुः॥ २३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्त्रीरूपी पाशसे बँधा हुआ गृहस्थ पुरुष सदा ऐसी ही चिन्ताओंमें व्यस्त रहता है, धर्ममार्गकी ओर तो उसका ध्यान ही नहीं जाता; इसीलिये मैंने न तो विवाह किया है और न पत्तोंकी कुटिया ही बनायी है; क्योंकि मेरी आयु भी तो थोड़ी ही है ॥ २३ ॥

पार्थोऽब्रवीत् कियदायुर्गतं वः
शुष्कं पर्ण मस्तके बिभ्रतां च ।
प्राह स्मायुर्बकदाल्भ्योऽर्जुनं नः
कियान् यातः काल इह स्थितानाम् ॥ २४ ॥

तब अर्जुनने पूछा—'मुने ! इस सूखे पत्तेको मस्तकपर धारण किये हुए आपकी कितनी आयु बीत चुकी ?' यह वचन सुनकर बकदाल्भ्य मुनि अर्जुनसे अपनी आयुका वर्णन करते हुए बोले—'अर्जुन ! यहाँ बैठे-बैठे मेरे कितने ही समय बीत गये ॥

मार्कण्डेया लोमशाः कत्यभूवं-
स्तेषां संख्या कर्तुमलं मयापि ।
अस्तं गता ब्रह्मणां विंशतिर्मे
स्थितस्यात्र प्राय आयुष्यमल्पम् ॥ २५ ॥

'न जाने कितने मार्कण्डेय और लोमश मेरे सामने हो चुके, मैं उनकी ठीक-ठीक गणना भी नहीं कर सकता । मैं जबसे यहाँ बैठा हूँ, तबसे बीस ब्रह्मा समाप्त हो चुके, फिर भी मुझे अपनी आयु प्रायः थोड़ी ही प्रतीत होती है ॥ २५ ॥

तस्मादहं न करोम्यत्र जिष्णो
वारं वारं नाशमायात्यपारः ।
यदा यदा ब्रह्मणो ह्यन्तकाल-
स्तदा तदा वारिमयं जगत् स्यात् ॥ २६ ॥

'जयशील अर्जुन ! इसीलिये मैं यहाँ अपनी कुटिया नहीं बना रहा हूँ; क्योंकि यह अपार संसार बारंबार नाशको प्राप्त होता रहता है । जब-जब ब्रह्माका अन्तकाल आता है, तब-तब यह जगत् जलमय हो जाता है ॥ २६ ॥

वटश्चैकः स्निग्धपत्रो विभाति
शाखाशतैर्व्याप्नुवन् रोदसी च ।
तच्छाखायां वटपत्रे शयानं
पश्यामि बालं हसमानं रुदन्तम् ॥ २७ ॥

'उस एकार्णवके जलमें अपनी सैकड़ों शाखाओंसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त करता हुआ एक चिकने पत्तोंवाला वटवृक्ष सुशोभित होता रहता है । उस वटवृक्षकी एक शाखा-पर पत्रपुटकमें शयन करता हुआ एक बालक मुझे दीख पड़ता है । वह बालक कभी हँसता है और कभी रोता है ॥

पदाङ्गुष्ठं वदने संनिवेश्य
गौरं धयन्तं सुनसं चारुवक्त्रम् ।
तद्दर्शनात् सागरे मज्जितोऽहं
न तादृशः सम्प्रति कान्यवार्ता ॥ २८ ॥
स एवायं कृष्णरूपो हि जातः
पञ्चानां वः सङ्गवशान्मयाप्तः ॥ २९ ॥

'उसकी नासिका बड़ी सुघड़ और मुख अत्यन्त मनोहर है । वह अपने चरणके गौरवर्ण अँगूठेको मुखमें डालकर चूसता रहता है । उसीके दर्शनके हेतु मैं इस सागरमें डूबा हुआ बैठा हूँ; परंतु जब (आयुकी समतामें) मैं उसके समान नहीं हूँ, तब इस समय दूसरेकी तो बात ही क्या है । यह वही बालक है, जो कृष्णरूपमें प्रकट हुआ है और तुम पाँचों व्यक्तियोंके संगवश मुझे भी प्राप्त हो गया है' ॥ २८-२९ ॥

कस्माद् दूरं दूरमस्मात् सकाशात्
प्रयासि विष्णो मां जलेऽस्मिन् विहाय ।
बालोऽभूस्त्वं वटपत्रे शयानो
दृष्टो यदा प्रार्थितो नैव किंचित् ॥ ३० ॥

(फिर महर्षि बकदाल्भ्य भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगे-) 'विष्णो ! मुझे इस अगाध जलमें छोड़कर आप मेरे पाससे अत्यन्त दूर क्यों चले जाते हैं ? जब आप बालकरूपमें प्रकट होकर वटवृक्षके पत्रपुटकमें शयन कर रहे थे, तब मैंने आपको देखा था; किंतु उस समय (बालक समझकर) मैंने आपसे कोई याचना नहीं की थी ॥ ३० ॥

युवाद्य लक्ष्मीमधिगम्य धर्म-
पुत्रं कथं दर्शयते न मां त्वम् ।
आलिङ्गनं देहि जगन्निवास
धर्मं स्वयं दर्शय तत्पुरं च ॥ ३१ ॥

'परंतु भगवन् ! इस समय तो आपकी युवावस्था हो गयी है और आप लक्ष्मीसे सम्पन्न हो गये हैं, फिर आप मुझे धर्मपुत्र युधिष्ठिरका दर्शन क्यों नहीं कराते ? जगन्निवास ! अब आप स्वयं मेरा आलिङ्गन कीजिये और धर्मराज युधिष्ठिर तथा उनके नगर हस्तिनापुरका मुझे दर्शन कराइये' ॥ ३१ ॥

जैमिनिरुवाच

इत्यूचिवान् स मुनिस्तं च कृष्णं
समालिङ्ग्य प्राह तं फाल्गुनं च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मद्वासार्थं गृहमेतत् स्फुटंस्या-
न्मुक्तिर्ध्रुवा गृहिणी यत्र भाति ॥३२॥
करोमि किं न गृहं नापि पत्नीं
न तादृशीमधिगच्छामि पार्थ।
तस्मात् कालो गमितः शुष्कपत्रैः
पश्याधुना गृहदारानवाप्तान् ॥ ३३ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर वकदाल्भ्य मुनिने उनका गाढ़ आलिङ्गन किया और फिर वे अर्जुनसे कहने लगे—'पार्थ ! मेरे निवासके लिये प्रत्यक्षरूपसे ऐसा घर चाहिये, जिसमें मुक्तिरूपी गृहिणी अटल-रूपसे प्रकाशित होती रहती है; परंतु क्या करूँ, आजतक मुझे न तो वैसा घर मिला और न वैसी पत्नी ही प्राप्त हुई। इसी कारण सूखे पत्तोंसे ही इतना समय व्यतीत किया। अब देखो, मुझे वैसा गृह और वैसी पत्नी—दोनों प्राप्त हो गये ॥३२-३३॥

एवं ब्रुवन्तं बकदाल्भ्यं स कृष्णः
सम्भावयामास वचोभिरीड्यैः।
त्वमेव साक्षात् पुरुषः पुराण-
स्त्वया दृष्टा ब्रह्मणां विंशतिश्च ॥ ३४ ॥
सर्वेषां नः पूज्यतमस्त्वमेव
जातो यज्ञः सफलो धर्मसूनोः।

जब वकदाल्भ्य मुनि ऐसा कह रहे थे, उसी समय भगवान् श्रीकृष्णने प्रशंसायुक्त वचनोंद्वारा उनका सम्मान करते हुए कहा—'मुने ! आप ही साक्षात् पुराणपुरुष हैं; क्योंकि आपकी आँखोंके समक्ष बीसों ब्रह्मा बीत चुके हैं। आप ही हम सबके परम पूज्य हैं। अब (आपके दर्शनसे) धर्मनन्दन युधिष्ठिरका यज्ञ सफल हो गया ॥ ३४½ ॥

प्रहस्येषन्मुनिराह स्म विष्णुं
त्वया भारो मयि गर्वस्य मुक्तः ॥ ३५ ॥
परं गर्वो व्यगलन्मे समग्र-
स्तथास्य पङ्केरुहजन्मनश्च।
तत् त्वं समाकर्णय पार्थ यत्नात्
कृष्णः सर्वं वेद वेदस्य मूलम् ॥ ३६ ॥

यह सुनकर मुनिको कुछ हँसी आ गयी और वे भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगे—"प्रभो ! आपने तो मेरे ऊपर यह अच्छा गर्वका भार लाद दिया; परंतु मेरा तथा इन कमल-जन्मा ब्रह्माका सारा गर्व तो पहले ही गल चुका है। अर्जुन ! तुम वह (गर्वनाशका) वृत्तान्त यत्नपूर्वक भलीभाँति श्रवण करो। श्रीकृष्ण तो यह सब जानते ही हैं; क्योंकि ये वेदके भी मूल हैं॥ ३५-३६ ॥

महाकल्पे वेदसंज्ञो विरिञ्चि-
श्चत्वारिंशद्वार्षिको मामियाय।
पठन् वेदान् मानसौकोऽधिरूढः
प्रोवाचेदं गर्वभारेण वाक्यम् ॥ ३७ ॥

"महाकल्पकी बात है, उस समयके ब्रह्माका नाम वेद था। उनकी अवस्था चालीस वर्षकी हो गयी थी। वे एक दिन मानसरोवरनिवासी एक हंसपर सवार होकर वेदपाठ करते हुए मेरे पास आये और यों गर्वसे भरा हुआ वचन बोले—॥

कस्त्वं किमर्थं ध्रियते पर्णमेतत्
त्वया घोरं तप्यते वेद्मि कामात्।
प्रसन्नोऽहं प्रार्थय वाञ्छितं च
ब्रह्माहमित्येवमवेहि विप्र ॥ ३८ ॥

"ब्रह्मन् ! तुम कौन हो ? तुमने किसलिये अपने मस्तकपर यह पत्ता धारण कर रखा है ? मैं समझता हूँ कि तुम किसी कामनाको लेकर ही ऐसा घोर तप कर रहे हो। अतः तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि मैं ब्रह्मा हूँ और तुमपर प्रसन्न हूँ; अतः अब तुम अपना मनोवाञ्छित वर माँग लो' ॥३८॥

तच्छ्रुत्वाहं चाब्रुवं गर्वभाराद्
ब्रह्माणं तं गच्छ दूरं दुरात्मन्।
मया दृष्टास्त्वादृशा विंशतिश्च
त्वं मह्यं किं दास्यसे याहि याहि ॥३९॥

"यह सुनकर मैंने अभिमानपूर्वक उन ब्रह्मासे कहा—दुरात्मन् ! हट, दूर जा। मैंने तेरे-जैसे बीसों ब्रह्मा देखे हैं। तू मुझे क्या दे सकेगा। जा, दूर भाग जा' ॥ ३९ ॥

एवं मयि ब्रुवति प्रादुरासीद्
वात्या घोरा दारयन्तीव पृथ्वीम्।
आवर्तेन द्रुमभङ्गं विदधत्या-
नीतौ तदा द्वावपि खं विशालम् ॥ ४० ॥

"मैं ऐसा कह ही रहा था, तबतक पृथ्वीको विदीर्ण करती हुई-सी प्रचण्ड आँधी प्रकट हो गयी। उस समय अपने झोंकेसे वृक्षोंको तोड़ते हुए उसने हम दोनोंको भी विशाल आकाशमें पहुँचा दिया ॥ ४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

औदुम्बरादन्यमौदुम्बरं हि
विशन्त्यमी जन्तवः कर्मनुन्नाः।
तथा प्रविष्टो देवदेवस्य विष्णो-
र्ब्रह्माण्डैस्तैः फलितस्य द्वितीयम्॥ ४१॥

"फिर तो जैसे कर्मसे प्रेरित हुए जन्तु गूलरके एक फलसे दूसरे फलमें प्रवेश करते हैं, उसी तरह हम दोनों देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुके शरीरमें फलरूपसे लगे हुए उन ब्रह्माण्डोंमेंसे दूसरे ब्रह्माण्डमें जा पहुँचे॥ ४१॥

अस्माद् रम्यं ब्रह्मलोकं विरिञ्चिः
प्रविश्याहं विस्मयं चाप्तवान् सः।
ततः प्रोवाचाष्टमुखो विरिञ्चिः
समाह्वयन्नौ परिपप्रच्छ पार्थ॥ ४२॥
कस्माद् युवां प्राप्तवन्तावपूर्वौ
किन्नामानौ शंस तं मत्पुरस्तात्।

"पार्थ! वह ब्रह्मलोक पहलेकी अपेक्षा रमणीय था। उसमें प्रवेश करके मुझे तथा उन ब्रह्माको महान् आश्चर्य प्राप्त हुआ। तदनन्तर वहाँ निवास करनेवाले अष्टमुख ब्रह्मा हम दोनोंको बुलाकर पूछने लगे—'तुम दोनों अपूर्व व्यक्ति किस देशसे आये हो? तुम्हारा नाम क्या है? मेरे सामने यह सब बतलाओ'॥ ४२½॥

चतुर्मुखोऽथावदत् सत्यलोकात्
समागतं विद्धि मां पद्मयोनिम्॥ ४३॥
शिष्यं यो मे परिचर्यार्थमागा-
न्नाम्ना स्फुटं बकदाल्भ्यः प्रसिद्धः।

"तब चतुर्मुख ब्रह्माने कहा—'आपको विदित होना चाहिये कि मैं सत्यलोकसे आ रहा हूँ और पद्मयोनि मेरा नाम है। दूसरा जो यह मेरी सेवा करनेके लिये साथ आया है, यह मेरा शिष्य है और यह स्पष्टरूपसे बकदाल्भ्य नामसे प्रसिद्ध है'॥ ४३½॥

निशम्योच्चैरष्टमुखो जहास
भवान् ब्रह्मा शिष्य एव द्वितीयः॥४४॥
तावत् तद्वै यावदहं न दृष्टो
ब्रह्माशिष्यौ सम्प्रति मे भवन्तौ।
शौचार्थमत्रापि जलं मृदं च
समानयेतां स्वस्थचित्तौ मदर्थम्॥४५॥

"यह सुनकर अष्टमुख ब्रह्मा ठठाकर हँस पड़े और कहने लगे—'आप ब्रह्मा हैं और यह दूसरा शिष्य है (यह तो ठीक है); परंतु यह सम्बन्ध तभीतक था, जबतक तुमलोगोंने मुझे नहीं देखा था। अब तुम दोनों ब्रह्मा और शिष्य मेरे शिष्य हो गये; अतः अब यहाँ तुम दोनों स्वस्थचित्त होकर मेरे शौचके लिये जल और मिट्टी तो ले आओ'॥ ४४-४५॥

एवं ब्रुवत्यष्टमुखे विरिञ्चौ
वात्या घोरा मां च तावप्यनैषीत्।
मया सार्धं खे भ्रमन्तौ विरिञ्ची
विष्णोः प्रविष्टौ ब्रह्मगोलं तृतीयम्॥४६॥

"अष्टमुख ब्रह्मा जब यों कह रहे थे, उसी समय उस प्रचण्ड आँधीने मुझे तथा उन दोनों ब्रह्माओंको भी उड़ाकर आकाशमें पहुँचा दिया। वहाँ वे दोनों ब्रह्मा मेरे साथ चक्कर काटते हुए भगवान् विष्णुके तीसरे ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट हुए॥

यस्मिँल्लोकाः पुण्यशीला वदान्या
दृष्ट्वास्मांस्ते जहसुः के भवन्तः।
कस्माद् देशादागता नाम किं व-
स्तत् सर्वं वै ब्रूत लज्जां विहाय॥ ४७॥

"उस गोलकके निवासी पुण्यात्मा तथा उदार दाता थे। वे हमलोगोंको देखकर हँसे और पूछने लगे—'आपलोग कौन हैं? किस देशसे आ रहे हैं? आपलोगोंका नाम क्या है? लज्जाका परित्याग करके ये सारी बातें बताइये'॥ ४७॥

आह स्माथो वसुवक्त्रो विरिञ्चि-
रहं प्राप्तो ब्रह्मलोकान्मनोज्ञात्।
प्रोचुर्लोकास्ते तदा ब्रूत मैवं
कलावक्त्रः श्रोष्यति वै विरिञ्चिः॥४८॥
आयात पश्यत विहाय विरिञ्चिगर्वं
मौनं समाश्रयत देवमजं प्रणम्य।

"तब आठ मुखवाले ब्रह्मा कहने लगे—'मैं ब्रह्मा हूँ और मनोहर ब्रह्मलोकसे आ रहा हूँ।' यह सुनकर उन लोगोंने कहा—'अरे चुप रहिये, ऐसा मत कहिये; नहीं तो षोडश मुखवाले ब्रह्मा सुन लेंगे। आपलोग अपने ब्रह्मत्वका अभिमान त्यागकर हमारे साथ आइये और उन भगवान् ब्रह्माको प्रणाम करके उनका दर्शन कीजिये'॥ ४८½॥

ततो वयं भीतभीताः प्रयाता
विलोकितुं षोडशतुण्डकं च॥ ४९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जहासोच्चैः षोडशास्यो विरिञ्चि-
र्दृष्ट्वा चतुर्वक्त्रमथाष्टवक्त्रम् ॥ ५० ॥
अहो चित्रमहो चित्रं ब्रह्मण्यपि मयि स्थिते ।

"तदनन्तर हमलोग भयभीत होकर उन षोडश मुखवाले ब्रह्माका दर्शन करनेके लिये वहाँ गये । तब षोडश मुखवाले ब्रह्मा चतुर्मुख तथा अष्टमुख ब्रह्माको देखकर हँसे और कहने लगे—'अहो आश्चर्य है ! महान् आश्चर्य है ! जो मुझ ब्रह्माके रहते हुए भी दूसरे ब्रह्मा आ गये' ॥ ४९-५०½ ॥

इति गर्वायते तस्मिन् विरिञ्चौ षोडशानने ॥ ५१ ॥
वात्या प्रादुरभूद् घोरा तया भ्रान्ता वयं विभो ।

"विभो ! वे षोडशमुख ब्रह्मा जब ऐसी गर्वीली बातें कह रहे थे, उसी समय ऐसी भयंकर आँधी उठी, जिसने हमलोगोंको चक्करमें डाल दिया ॥ ५१½ ॥

अधोवक्त्रा ऊर्ध्वपादाः प्राप्ता ब्रह्मालयं परम् ॥ ५२ ॥
द्वात्रिंशद्वदनो ब्रह्मा यत्र लोकस्तु सुन्दरः ।
नापृच्छत् कश्चिदेवास्मान् नाम तत्रभवो जनः ॥ ५३ ॥

"फिर तो हमलोगोंके पैर ऊपर उठ गये और मुख नीचेको लटक गया, इसी दशामें हमलोग एक दूसरे ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे । वह लोक अत्यन्त सुन्दर था और वहाँ बत्तीस मुखवाले ब्रह्मा निवास करते थे । परंतु वहाँके निवासी किसी भी मनुष्यने हमलोगोंसे नामतक नहीं पूछा ॥ ५२-५३ ॥

ततो वयं स्म चत्वारो दृष्टा दैवाद् विरिञ्चिना ।
आहूताः कृपया पश्चात् परिपप्रच्छ नाम सः ॥ ५४ ॥

"तत्पश्चात् संयोगवश हम चारोंपर उन ब्रह्माकी दृष्टि पड़ गयी । तब उन्होंने कृपापूर्वक हमें बुलाया और नाम-धाम पूछा ॥ ५४ ॥

प्रहस्य पूर्वं गर्वितोऽतीव सत्यं
ब्रह्माब्रवीदहमेवास्मि नान्यः ।
खद्योतालिर्द्योत्यते तावदेव
यावत् सूर्यो ध्वान्तहा नाभ्युदेति ॥ ५५ ॥

"पहले तो वे अत्यन्त गर्वमें आकर जोरसे हँसे और फिर कहने लगे—'यह बिल्कुल सत्य है कि ब्रह्मा तो मैं ही हूँ, मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन ब्रह्मा है; क्योंकि जुगुनुओंका दल तभीतक अपना प्रकाश दिखाता है, जबतक तमोहारी भगवान् सूर्य उदय नहीं होते' ॥ ५५ ॥

द्वात्रिंशद्वदनोऽप्येवं ब्रुवन् वात्या परिप्लुतः ।
खेऽभ्रमत् सहितोऽस्माभिश्चतुःषष्ट्यानने स्थितम् ५६
ददृशे गोलकेऽन्यस्मिन् स गर्वं कृतवान् बहु ।
एवं द्विगुणया वृद्ध्या गर्वितास्ते विरिञ्चयः ॥ ५७ ॥
प्राप्ताः सहस्रनयनं सहस्रवदनं विभुम् ।
स्तूयमानं च मुनिभिः सनकाद्यैस्तथा सुरैः ॥ ५८ ॥

"ऐसा कहते हुए वे बत्तीस मुखवाले ब्रह्मा भी उस आँधीकी चपेटमें आ गये और हमलोगोंके साथ ही आकाशमें चक्कर काटने लगे । फिर दूसरे गोलकमें जा पहुँचे, जहाँ चौसठ मुखवाले ब्रह्मा विराजमान थे । वहाँ उन ब्रह्माने भी महान् गर्व किया । इस प्रकार दुगुनी वृद्धिके कारण गर्वमें भरे हुए वे सभी ब्रह्मा उन सहस्र नेत्र तथा सहस्र मुखवाले विराट् परमेश्वरके पास जा पहुँचे, जिनकी सनकादि मुनि तथा देवगण स्तुति कर रहे थे ॥ ५६—५८ ॥

अथ तानागतान् दृष्ट्वा सहस्रवदनोऽब्रवीत् ।
कुतः प्राप्तं पूज्यपादैर्ब्रह्मभिः स्वागतं हि वः ॥ ५९ ॥
युष्मत्प्रसादाल्लोकेऽस्मिन् ख्यातिं प्राप्स्याम्यनुत्तमाम् ।

"तदनन्तर उस समागत ब्रह्म-समुदायको देखकर सहस्रवदन परमेश्वरने कहा—'आइये, आपलोगोंका स्वागत है । कहिये, आप पूज्यपाद ब्रह्मगणका कहाँसे शुभागमन हो रहा है ? आपलोगोंकी कृपासे मुझे भी इस संसारमें अनुपम कीर्ति प्राप्त होगी' ॥ ५९½ ॥

इति ब्रुवाणं पुरुषं प्रणम्य धरणीं गताः ॥ ६० ॥
विहाय गर्वं ब्रह्माणस्तुष्टुवुस्तमधोक्षजम् ।

"उन विराट् पुरुषके यों कहनेपर उन ब्रह्माओंका सारा गर्व गल गया और उन्होंने पृथ्वीपर लोटकर उन अधोक्षजको प्रणाम किया । तत्पश्चात् वे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ६०½ ॥

ततः प्रसन्नो भगवान् यथास्थानं न्यवेशयत् ॥ ६१ ॥
तान् विरिञ्चीनहं पार्थ विहायास्मान् स्थितोऽम्बुधौ ।
तस्माद् गर्वो न कर्तव्यः पुंभिः सच्छास्त्रकोविदैः ॥ ६२ ॥

"तब भगवान् प्रसन्न हो गये और उन सभी ब्रह्माको उन्होंने यथास्थान नियुक्त कर दिया । तत्पश्चात् मैं उनका साथ छोड़कर इस समुद्रमें आकर बैठ गया । इसलिये पार्थ ! उत्तम शास्त्रोंके जानकार पुरुषोंको गर्व नहीं करना चाहिये" ॥

मुनेर्भाषितमाकर्ण्य हर्षितौ कृष्णपाण्डवौ ।
ददर्शतुस्तुस्त्रौ तौ कथां श्रुत्वा विनिर्गतौ ॥ ६३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रार्थयित्वा मुनिं कृष्णः शिविकायामरोपयत् ॥ ६४ ॥

वकदाल्भ्य मुनिका यह कथन सुनकर अर्जुन और श्रीकृष्णको परम आनन्द प्राप्त हुआ। यह कथा सुननेके पश्चात् उन्हें समुद्रसे निकलते हुए वे दोनों घोड़े दीख पड़े। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने प्रार्थना करके वकदाल्भ्य मुनिको एक पालकीपर चढ़ा लिया॥ ६३-६४ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि बकदाल्भ्यसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें वकदाल्भ्यका संवादनामक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

घोड़ोंका जयद्रथके नगरमें पहुँचना, अर्जुनके आगमनकी बात सुनकर जयद्रथ-पुत्रका भयसे प्राणत्याग करना, दुःशलाकी पुत्रको जीवित करनेके लिये श्रीकृष्णसे प्रार्थना, श्रीकृष्ण-द्वारा उसके पुत्रको जीवनदान, अर्जुनका दुःशलाको निमन्त्रित करके हस्तिनापुरको प्रस्थान

जैमिनिरुवाच

व्यावृत्य वाजिनौ शीघ्रं पुरं जायद्रथं शुभम्।
प्रापतुर्यत्र नृपतिर्दौःशलेयः शिशुः स्थितः ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर वे दोनों घोड़े लौटकर शीघ्र ही राजा जयद्रथके सुन्दर नगरमें आ पहुँचे। वहाँ दुःशलाका पुत्र राज्य करता था। वह अभी बालक ही था॥ १ ॥

सिंहासनस्थः सचिवैः सेव्यमानः सभास्थितैः।
श्रुत्वा च फाल्गुनं प्राप्तं स जयद्रथघातिनम् ॥ २ ॥
उच्चैः प्रकम्पे प्रस्विन्नो रोमाञ्चितवपुर्धरः।
जहौ प्राणान् दौःशलेयः सिंहासनगतो भयात्॥ ३ ॥

वह अपनी सभामें सिंहासनपर विराजमान था और उसके सभासद् मन्त्री उसकी सेवामें उपस्थित थे। जब उसने सुना कि मेरे पिता जयद्रथका वध करनेवाले अर्जुन यहाँ आ पहुँचे हैं, तब वह भयभीत होकर थरथर काँपने लगा। उसके रोंगटे खड़े हो गये और शरीरमें पसीना छूटने लगा। फिर तो उस दुःशलानन्दनने सिंहासनपर बैठे-बैठे ही अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया॥ २-३ ॥

विलपन्ती ततः प्राप्ता दुःशला फाल्गुनं प्रति।
दृष्ट्वा कृष्णं नमस्कृत्य प्राहोच्चैस्त्राहि मामिति॥ ४ ॥
जिष्णुना निहतो भर्त्ता साम्प्रतं च सुतो मम।
त्वामहं शरणं प्राप्ता कृष्ण कृष्ण जगत्पते ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् दुःशला विलाप करती हुई अर्जुनके पास आयी। वहाँ उसने श्रीकृष्णको देखकर उन्हें नमस्कार किया और फिर वह उच्च स्वरसे कहने लगी—'श्रीकृष्ण! जगदीश्वर श्रीकृष्ण! इस अर्जुनने मेरे पति (जयद्रथ) को तो पहले ही मार डाला था, इस समय इसने मेरे पुत्रको भी समाप्त कर दिया; अतः मैं आपकी शरणमें आयी हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये'॥ ४-५ ॥

अथोत्थितो रथात् पार्थः स्वसारं सम्प्रणम्य च।
अब्रवीन्न कृतं किंचित्तव पुत्रस्य वैशसम्॥ ६ ॥
तथापि क्षम्यतां सर्वं मया यच्च पुरा कृतम्।
गृह्णीष्व हस्तिनो मत्तान् सहस्रं लक्षमेव वा॥ ७ ॥
जित्वा च वैरिणः सर्वं राज्यं दास्यामि तेऽनघे।

यह सुनकर अर्जुन अपने रथसे उतर पड़े और बहिन दुःशलाको प्रणाम करके कहने लगे—'बहिन! मैंने तेरे पुत्रको कुछ भी कष्ट नहीं दिया है। हाँ, पहले मैंने जो (जयद्रथ-वधरूपी) दुष्कर्म किया है, वह सब भी अब तू मुझे क्षमा कर दे और इन हजारों अथवा लाखों मदमत्त गजराजोंको भेंटरूपमें स्वीकार कर ले। पापरहिते! मैं सारे शत्रुओंको जीतकर सम्पूर्ण राज्य तुझे दे दूँगा'॥ ६-७½ ॥

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा दुःशला दुःखिता भृशम्॥ ८॥
कृष्णं नत्वा पुनर्वाक्यमुवाच क्लेशसंयुता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्जुनकी बात सुनकर दुःशला अत्यन्त दुखी हो गयी। फिर उस दुखियाने श्रीकृष्णको नमस्कार करके यों कहना आरम्भ किया—॥ ८½ ॥

दुःखहन्ता त्वमेवात्र प्राणिनां हृदि संस्थितः ॥ ९ ॥
द्रौपद्या संस्मृतः पूर्वं दुःखं तस्या व्यपोहयः।

'श्रीकृष्ण! आप तो समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान रहते हैं, अतः इस समय आप ही मेरे दुःखोंका विनाश कर सकते हैं। द्रौपदीने भी पहले आपका ही स्मरण किया था और आपने उसका सारा दुःख दूर कर दिया था ॥ ९½ ॥

अन्येषामपि जन्तूनां स्मरणाद् दुःखहानिदः ॥ १० ॥
कृतार्था दर्शनेनाद्य जातास्मि तव वै प्रभो।

'प्रभो! आप तो स्मरण करनेपर दूसरे प्राणियोंके भी दुःखका विनाश करनेवाले हैं। मैं भी आज आपके दर्शनसे कृतार्थ हो गयी ॥ १०½ ॥

पतिहीना पुत्रहीना पार्थेनास्मि कृता विभो ॥ ११ ॥
न त्रपा जायते तस्य सम्बन्धद्योतनेन च।

'विभो! अर्जुनने तो मुझे पति और पुत्र—दोनोंसे हीन कर दिया है, फिर भी इसे अपना (भाई-बहिनका) सम्बन्ध प्रकट करते हुए लज्जा नहीं आती है' ॥ ११½ ॥

साम्प्रतं पुत्रहीना च राज्यहीना तथा कृता ॥ १२ ॥
कथमश्वगजानां च सहस्रं दातुमिच्छसि।

(पुनः अर्जुनको सम्बोधित करके कहने लगी—) 'अर्जुन! इस समय तूने हीतो मुझे राज्य और पुत्र—दोनोंसे हीन कर दिया है, फिर तू हजारों हाथी और घोड़े कैसे देना चाहता है?' ॥ १२½ ॥

ब्रुवन्त्येवं बहुविधं लुठन्ती कृष्णपादयोः ॥ १३ ॥
नेत्राम्बुना क्षालयन्ती पादाब्जं सुरदुर्लभम्।

यों अनेक प्रकारकी बातें कहती हुई दुःशला श्रीकृष्णके चरणोंमें लोटती हुई अपने नेत्रोंके जलसे उस देवदुर्लभ चरण-कमलको पखारने लगी ॥ १३½ ॥

एवं सुदुःखितां दृष्ट्वा आर्तत्राणपरो हरिः ॥ १४ ॥
आश्वासयामास च तां भवमायाप्रपीडिताम्।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गच्छ पुत्रस्य संनिधौ ॥ १५ ॥

तब दुखियोंकी रक्षा करना जिनका स्वभाव ही है, वे श्रीहरि सांसारिक मायासे प्रपीडित दुःशलाको इस प्रकार अत्यन्त दुखी देखकर उसे आश्वासन देते हुए बोले—'दुःशले! उठ, जल्दी उठ और अपने पुत्रके पास चल। तेरा कल्याण हो' ॥ १४-१५ ॥

इत्युक्ता सह पार्थेन प्रविवेश पुरं तदा।
हर्म्ये सभायां पतितं ददर्श तनयं शुभम् ॥ १६ ॥

तब श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर दुःशलाने अर्जुनको साथ लेकर अपने नगरमें प्रवेश किया और वहाँ सभाभवनमें अपने सुन्दर पुत्रको पृथ्वीपर पड़ा हुआ देखा ॥ १६ ॥

उत्तिष्ठ भो वत्स भयं मा कृथा मम संनिधौ।
इत्युक्त्वा पाणिना बालं पस्पर्श मधुसूदनः।
उत्थितस्तत्क्षणादेव प्रणनाम हरिं मुदा ॥ १७ ॥
वन्दितौ तु जनैः सर्वैः कृष्णपार्थौ मुदान्वितैः।

उस समय भगवान् मधुसूदनने 'भो वत्स! उठ, तू मेरे समीप भय मत कर' यों कहकर अपने हाथसे उस बालकके शरीरका स्पर्श किया। फिर तो वह उसी क्षण उठ बैठा और हर्षपूर्वक उसने भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया तथा वहाँ उपस्थित सभी लोगोंने आनन्दपूर्वक श्रीकृष्ण और अर्जुनकी चरण-वन्दना की ॥ १७½ ॥

भेरीमृदङ्गपटहगीतनृत्यमहोत्सवैः ॥ १८ ॥
माङ्गल्यं परमं चक्रुर्नागराः कृष्णसंनिधौ।

नागरिकोंने श्रीकृष्णके सामने भेरी, मृदङ्ग और ढोल बजाकर तथा नाच-गान करके परम माङ्गलिक महोत्सव मनाया ॥ १८½ ॥

अर्जुनः शमयामास दुःशलां पुत्रसंयुताम् ॥ १९ ॥
अब्दः पूर्णोऽद्य संजातो गन्तव्यं तु गजाह्वये।
निमन्त्रिता समायाहि कुन्तीं द्रष्टुं च पार्षतीम् ॥ २० ॥
सा तथेत्यब्रवीत् पार्थो हृष्टश्चासीद् विशाम्पते।

तत्पश्चात् अर्जुनने पुत्रसे संयुक्त हुई दुःशलाको शान्त करते हुए कहा—'बहिन! (नगरसे चले हुए मुझे) आज एक वर्ष पूरा हो गया, अतः अब मुझे हस्तिनापुर लौट जाना चाहिये। मैं तुझे भी वहाँ चलनेके लिये निमन्त्रित करता हूँ, अतः तू माता कुन्ती और द्रौपदीसे मिलनेके लिये वहाँ चल।' प्रजानाथ! जब दुःशलाने 'बहुत अच्छा' कहकर निमन्त्रण स्वीकार कर लिया, तब अर्जुन प्रसन्न हो गये ॥ १९-२०½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैमिनिरुवाच

हर्षिता सा हृषीकेशं दुःशला वाक्यमब्रवीत् ॥ २१ ॥
एवमेव त्वया कार्यं भक्तानां जीवनं सदा ।
प्रसादात् तव राज्यं मे प्राप्तं गच्छामि धर्मजम् ॥ २२ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर वह दुःशला हर्षित होकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगी—'भगवन् ! आप सदा इसी प्रकार भक्तोंको जीवन-दान देते रहें । आपकी कृपासे मुझे राज्यकी प्राप्ति हो गयी, अब मैं धर्मनन्दन युधिष्ठिरके पास चलती हूँ' ॥ २१-२२ ॥

इत्युक्त्वा पुत्रसहिता निर्गता च गजाह्वयम् ।
आनयत् तत्पुरं सर्वं यज्ञार्थं पाण्डवोऽर्जुनः ॥ २३ ॥

ऐसा कहकर दुःशला पुत्रको साथ लेकर चलनेको तैयार हो गयी । उस समय पाण्डुनन्दन अर्जुन उन समस्त नगरवासियोंको यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये हस्तिनापुर लिवा लाये ॥ २३ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि जयद्रथपुरे दुःशलासान्त्वनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें जयद्रथके नगरमें दुःशलाको सान्त्वना-प्रदान नामक एकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

हस्तिनापुरके निकट पहुँचनेपर श्रीकृष्णका घोड़ोंसहित सबको एक उपवनमें रोककर स्वयं नगरमें जाना, युधिष्ठिरसे मिलना और यात्राका सारा समाचार सुनाना फिर अर्जुनके स्वागतकी व्यवस्था करना, नागरिकों तथा श्रीकृष्ण-पत्नियोंका सज-धजकर स्वागत-समारोहमें सम्मिलित होना

जैमिनिरुवाच

पूर्णेऽब्दे देवकीपुत्रः पार्थस्य तुरगौ मुदा ।
दधौ स्वयं वने रम्यौ भ्रममाणौ स्वलीलया ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! जब वर्ष पूरा हो गया, तब स्वयं देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने एक वनमें लीलापूर्वक सानन्द भ्रमण करते हुए अर्जुनके उन दोनों मनोहर घोड़ोंको पकड़ लिया ॥ १ ॥

प्रत्युवाच कथं पार्थ वीरैर्भूपतिभिर्वृताम् ।
दिष्ट्या भूमिं पार्थहयौ भ्रमितौ निखिलामपि ॥ २ ॥

फिर वे अर्जुनसे कहने लगे—'पार्थ ! यद्यपि यह पृथ्वी बड़े-बड़े शूरवीर भूपालोंसे समावृत है, तथापि महाराज युधिष्ठिरके ये दोनों घोड़े इस सारी पृथ्वीपर भ्रमण करके किस प्रकार सकुशल लौट आये—यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥२॥

चिरकालं धर्मराजः क्लिश्यते विविधैर्यमैः ।
वर्षमात्रं हि संजातं कुर्मः कर्माग्निसंनिधौ ॥ ३ ॥

'उधर धर्मराज युधिष्ठिर चिरकालसे नाना प्रकारके यम-नियमसम्बन्धी कर्मोंका पालन करते हुए कष्ट उठा रहे हैं । उन्हें ऐसा करते एक वर्ष पूरा हो गया, अतः अब हमलोगों-को अग्निके संनिकट चलकर यज्ञ-कार्य आरम्भ करना चाहिये ॥

अद्य सर्वे महीपालाः पाण्डवं धर्मनन्दनम् ।
वीक्षितुं त्वरिता यान्तु त्वया सह गजाह्वयम् ॥ ४ ॥
पुरस्कृत्य हयावग्रे नानावादित्रवादकाः ।
नर्त्तक्यो विविधैस्तालैर्हस्तकैश्चरणैस्तथा ॥ ५ ॥

'इसलिये आज सभी भूपाल तुम्हारे साथ इन दोनों घोड़ोंको आगे करके धर्मनन्दन युधिष्ठिरका दर्शन करनेके लिये शीघ्रता-पूर्वक हस्तिनापुरकी यात्रा करें । इनके आगे-आगे नाना प्रकारके बाजा बजानेवालोंको तथा अनेक तरहके तालोंके साथ हाथों और पैरोंसे भाव दिखाती हुई नर्तकियोंको चलना चाहिये ॥ ४-५ ॥

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च वृषकेतुर्महाबलः ।
बभ्रुवाहोऽपि शैनेयो वीरवर्मानुशाल्वकः ॥ ६ ॥
बर्हिकेतुर्हंसकेतुस्तथा नीलध्वजो बली ।
ताम्रध्वजो महावीरः प्रवीरश्च महारथः ॥ ७ ॥
यौवनाश्वश्चन्द्रहासस्तथान्ये बहवो नृपाः ।
भूषिता विविधैर्हारैः कटकैरङ्गदैस्तथा ॥ ८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुण्डलैश्चामरैर्धूपवासैः पुष्पैर्विलासिताः।
नानाकुसुममालाभिर्वरचम्पकमण्डिताः ॥ ९ ॥
रात्रौ पुरं प्रयान्त्वेते दीपिकाभिः प्रकाशिताः।
गन्धतैलावसिक्ताभिः प्रस्तुता वन्दिभिर्भृशम्।
अहमग्रे प्रयास्यामि धर्मराजपुरं प्रति ॥ १० ॥

'प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, महाबली वृषकेतु, बभ्रुवाहन, शिनिनन्दन सात्यकि, वीरवर्मा, अनुशाल्व, मयूरध्वज, हंसध्वज, बलवान् नीलध्वज, महावीर ताम्रध्वज, महारथी प्रवीर, यौवनाश्व, चन्द्रहास तथा दूसरे भी जो बहुत-से नरेश उपस्थित हैं—ये सभी भाँति-भाँतिके हार, कटक (कड़े), बाजूबंद, कुण्डल और चँवरोंसे विभूषित, सुगन्धित धूप और पुष्पोंसे सुवासित, नाना प्रकारके पुष्पोंकी मालाओं तथा चम्पाके पुष्पोंसे सुसज्जित होकर रात्रिके समय सुगन्धित तेलसे पूर्ण दीपकोंके प्रकाशके साथ हस्तिनापुरको चलें। उस समय वंदीगण उच्चस्वरसे इनका यशोगान करते रहें। मैं सबसे पहले धर्मराजके नगर हस्तिनापुरको चल रहा हूँ' ॥ ६—१० ॥

जैमिनिरुवाच

एतावदुक्त्वा वचनं कृष्णो नागपुरं ययौ।
यत्रास्ते धर्मतनयो महर्षिपरिवारितः ॥ ११ ॥
गङ्गातीरे वरक्षेत्रे दिव्यमण्डपमण्डिते।
देवकीप्रमुखा यत्र स्त्रियः सन्ति मनोरमाः ॥ १२ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! इतनी बातें कहकर श्रीकृष्ण उस हस्तिनापुरके लिये रवाना हो गये, जहाँ गङ्गा-तटपर दिव्य-मण्डपसे सुशोभित उत्तम क्षेत्रमें धर्मनन्दन युधिष्ठिर महर्षियोंसे घिरे हुए बैठे थे। जहाँ देवकी आदि मनोरम महिलाएँ भी उपस्थित थीं ॥ ११-१२ ॥

धर्मराजगृहं प्राप्य राजानं वीक्ष्य माधवः।
नमस्कृत्याग्रतस्तस्थौ नृपेणाप्यभिनन्दितः ॥ १३ ॥

वहाँ पहुँचकर वे माधव सीधे धर्मराजके भवनमें गये। वहाँ राजा युधिष्ठिरको देखकर उन्होंने प्रणाम किया और फिर वे उनके आगे खड़े हो गये। तब महाराज युधिष्ठिरने भी श्रीकृष्णका अभिनन्दन किया ॥ १३ ॥

शशंस पार्थं सम्प्राप्तं हयं राजन्यमण्डलम्।
प्राप्तो नीलध्वजो राजा हंसकेतुर्महाबलः ॥ १४ ॥
मयूरकेतुर्बलवान् बहुधा यः परीक्षितः।
धर्मराज तव भ्रात्रा त्वत्पुण्येन जिता नृपाः ॥ १५ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण यज्ञिय अश्व, अर्जुन तथा राजाओंके एक विशाल मण्डलके आनेकी सूचना देते हुए कहने लगे—'राजन्! राजा नीलध्वज तथा महाबली हंसध्वज पधार रहे हैं। साथमें बलवान् राजा मयूरध्वज भी हैं, जिनकी मैंने बहुत तरहसे परीक्षा ली थी। धर्मराज! आपके पुण्यके प्रभावसे आपके भाई अर्जुनने इन नरेशोंपर विजय पायी है ॥ १४-१५ ॥

सुधन्वा योधितो वीरो राजन् कृच्छ्रेण संयुगे।
सुरथेनापि सभयाः कृता वीरेण ते विभो ॥ १६ ॥

'राजन्! वीरवर सुधन्वाने समरभूमिमें हमारे साथ अत्यन्त भयंकर युद्ध किया था तथा विभो! शूरवीर सुरथने भी आपके सैनिकोंको भयभीत कर दिया था ॥ १६ ॥

ततो मणिपुरं प्राप्तः सव्यसाची हयान्वितः।
बभ्रुवाहेण संग्रामे पुत्रेण निहतोऽर्जुनः ॥ १७ ॥

'तदनन्तर सव्यसाची अर्जुन उस यज्ञिय अश्वके साथ-साथ मणिपुरमें पहुँचे। वहाँ उनका अपने पुत्र बभ्रुवाहनके साथ संग्राम हुआ, जिसमें अर्जुन मार डाले गये थे ॥ १७ ॥

उलूपी मणिना पार्थं जीवयामास भामिनी।
प्रथमं कर्णपुत्रं तं सर्ववीरप्रतोषकम् ॥ १८ ॥
संजीवयित्वा त्वरिता तस्मिन् काले पतिव्रता।

'उस समय अर्जुनकी पतिव्रता पत्नी उलूपीने समस्त वीरोंको संतुष्ट करनेवाले कर्णपुत्र वृषकेतुको शीघ्रतापूर्वक मणिस्पर्शद्वारा पहले जीवित करके पुनः अर्जुनको जिलाया था ॥

पुत्रेण सहितः पार्थो ययौ सारस्वतं पुरम् ॥ १९ ॥
वीरवर्मा वशी यत्र संजातः स्वयमेव सः।

'फिर पुत्र बभ्रुवाहनको साथ लेकर अर्जुन सारस्वतपुरको गये, जहाँका राजा वीरवर्मा था। वह स्वयं ही वशीभूत हो गया था ॥ १९½ ॥

ततः कौन्तलकं वाजी प्राप्तस्ते धर्मनन्दन ॥ २० ॥
चन्द्रहासोऽधिपो यत्र दुर्जयः स सुरासुरैः।

'धर्मनन्दन! तदनन्तर आपका अश्व कुन्तलपुरमें जा पहुँचा, जहाँके अधिपति चन्द्रहास हैं, जो देवताओं और असुरोंके लिये भी दुर्जय हैं ॥ २०½ ॥

ततः स तुरगो यातो मध्ये नदनदीपतेः ॥ २१ ॥
शुष्कं पत्रं यत्र कृत्वा मस्तके वकदाल्भ्यकः।
चिरं स्थितो महातेजास्तपस्तप्तुं च सुव्रतः ॥ २२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'तत्पश्चात् वह अश्व नद और नदियोंके स्वामी समुद्रके भीतर घुस गया, जहाँ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महातेजस्वी महर्षि वकदाल्भ्य अपने मस्तकपर एक सूखा पत्ता धारण करके तपस्या करनेके लिये चिरकालसे बैठे हुए थे ॥

ददृशुः पार्थमुख्यास्ते पञ्च वीरा मया सह ।
तं मुनिं हि पुरस्कृत्य समानयति तेऽनुजः ॥ २३ ॥

'तब आपके अर्जुन आदि पाँच प्रधान वीरोंने मेरे साथ जाकर उन मुनिका दर्शन किया। इस समय आपके अनुज अर्जुन उन मुनिको सत्कारपूर्वक यहाँ लिवा ला रहे हैं ॥ २३ ॥

वित्तं बहु समानीतं रत्नानि विविधानि च ।
स्तोका हि पृथिवी पार्थ प्रतापस्तेऽधिकः प्रभो ॥ २४ ॥

'वे अपने साथ बहुत-सा धन तथा अनेक तरहके रत्न भी ला रहे हैं। पृथानन्दन ! यह पृथ्वी तो थोड़ी है; परंतु प्रभो ! आपका प्रताप तो इससे कहीं अधिक बड़ा है ॥२४॥

एवं कुशलिनः सर्वे पुनः प्राप्ताः स्वमन्दिरम् ।
यथा मां वीक्षसे राजंस्तथा सर्वान् विलोकय ॥ २५ ॥

'राजन् ! इस प्रकार सब लोग कुशलपूर्वक पुनः अपने घरको लौट आये हैं। जैसे आप मुझे सकुशल देख रहे हैं, वैसे ही उन सबको भी कुशली समझिये' ॥ २५ ॥

एहि भीम महाबाहो देहि मे परिरम्भणम् ।
ततो भीमादिभिर्वीरैर्वासुदेवो नमस्कृतः ॥ २६ ॥

(फिर श्रीकृष्णने भीमसेनसे कहा—) 'महाबाहु भीमसेन आओ और हृदयसे लग जाओ।' तब भीमसेन आदि वीरोंने वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको नमस्कार किया ॥ २६ ॥

नमस्कृत्य हरिः कुन्तीं मातरस्ताः पुरः स्थिताः ।
ववन्दे मुदितस्तत्र कथयन् कुशलं स्वकम् ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने अपनी बूआ कुन्तीको प्रणाम करके सामने खड़ी हुई अपनी माताओंकी चरण-वन्दना की और हर्षपूर्वक वे अपना कुशल-समाचार बताने लगे ॥ २७ ॥

द्रौपदी च सुभद्रा च नमस्कृत्य जनार्दनम् ।
स्थिता समीपं कृष्णस्य हर्षव्याकुललोचना ॥ २८ ॥

इसी समय द्रौपदी और सुभद्राने भी आकर श्रीकृष्णको अभिवादन किया और फिर वे उनके समीप ही खड़ी हो गयीं। उस समय उनके नेत्र हर्षसे चञ्चल हो रहे थे ॥ २८ ॥

गान्धारीं धृतराष्ट्रं च विदुरं संजयान्वितम् ।
ददर्श कृष्णो भगवान् परिष्वज्य यथासुखम् ॥ २९ ॥

पुनः भगवान् श्रीकृष्णने गान्धारी, धृतराष्ट्र और संजय-सहित विदुरका दर्शन किया और फिर सुखपूर्वक वे उनसे गले लगकर मिले ॥ २९ ॥

ततो भीमेन सहितो विवेश स्वं निवेशनम् ।
यत्र सा रुक्मिणी देवी सत्यभामा च लक्ष्मणा ॥ ३० ॥
तथा जाम्बवती रम्या कृष्णदर्शनलालसा ।
एताश्चान्याश्च ता वल्ल्यो वीक्षन्ते हरिमागतम् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्णने भीमसेनके साथ अपने उस भवनमें प्रवेश किया, जहाँ देवी रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा तथा श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे युक्त सुन्दरी जाम्बवती—ये तथा अन्य बहुत-सी रानियाँ श्रीकृष्णके आगमनकी बाट जोह रही थीं ॥

उवाच सत्यभामाश्च स्वनाथं सुसमागतम् ।
पालितः पाण्डवो नाथ सहयः सबलो वने ॥ ३२ ॥
काचित् प्राप्ता त्वया नो वा नारी कुब्जाथ वामना ।
प्रमीलां हि यथा पार्थः प्रयाणेऽस्मिन् प्रलब्धवान् ॥ ३३ ॥

वहाँ सत्यभामाने अपने प्राणनाथको सकुशल आया हुआ देखकर कहा—'नाथ ! आपने वनमें घोड़े तथा सेनासहित अर्जुनकी सब प्रकारसे रक्षा तो की, परंतु स्वामिन् ! इस यात्रामें जैसे अर्जुनको प्रमीला मिल गयी है, उसी तरह आपको भी कोई कुबड़ी अथवा बौनी स्त्री प्राप्त हुई या नहीं ?' ॥

जैमिनिरुवाच

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः ।
प्रत्युवाच समीपस्थं भीमसेनं महामतिः ॥ ३४ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! सत्यभामाकी वह बात सुनकर महामति मधुसूदन हँस पड़े और फिर उन्होंने समीपमें खड़े हुए भीमसेनसे कहा—॥ ३४ ॥

अस्याः श्रुतं भीम वचो वक्रं यन्मां प्रभाषितम् ।
बहुपुत्रोऽस्मि संजातः पौत्रैरपि समन्वितः ॥ ३५ ॥

'भीमसेन ! सत्यभामाने मेरे प्रति जो वक्रोक्ति निकाली है, उसे तुमने सुन लिया न ? अब मेरे बहुत-से पुत्र हो गये तथा मैं पौत्रोंसे भी सम्पन्न हूँ ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिरस्य नगरे बहुवृद्धसमागमे ।
यस्य मेऽत्र स्थितिर्जाता त्रपा हि स्त्रीपरिग्रहे ॥ ३६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'युधिष्ठिरके इस नगरमें, जहाँ बहुत-से वृद्धजनोंका समारोह जुटा हुआ है, मैं आकर रहता हूँ। यहाँ स्त्री-परिग्रहकी बात सुनकर मुझे बड़ी लज्जा हुई है ॥ ३६ ॥

एवमेव न जानाति सत्या वक्तुं च गोपने।
बालत्वे यत्कृतं किंचित् साम्प्रतं तन्न मे प्रियम् ॥ ३७ ॥

'यह सत्यभामा इसी तरह बकती रहती है। कौन बात कहने योग्य है और किसे छिपाये रखना चाहिये—इसका इसे कुछ भी ज्ञान नहीं है। बचपनमें मेरेद्वारा जो कुछ किया गया है, वह इस समय मुझे प्रिय नहीं है' ॥ ३७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः प्रतीहारो महीपतेः।
कृष्णं विलोक्य भीमं च विनीतवदुवाच ह ॥ ३८ ॥

इसी समय वहाँ महाराज युधिष्ठिरका दूत आ पहुँचा। वह श्रीकृष्ण और भीमसेनको एकत्र देखकर नम्रतापूर्वक कहने लगा—॥ ३८ ॥

उत्तिष्ठन्तु जनाः सर्वे कृष्णमुख्या नृपालये।
सर्वैस्तु सहितः कृष्ण कुरु यज्ञं मनोरमम् ॥ ३९ ॥

'अब श्रीकृष्ण आदि सभी प्रधान लोग उठें और राजभवनमें पधारें। श्रीकृष्ण! आप सबको साथ लेकर अब उस सुन्दर अश्वमेध यज्ञका आरम्भ कराइये' ॥ ३९ ॥

जैमिनिरुवाच

ततो देवो नृपं प्राप्य प्रत्युवाच महाबलः।
त्वयात्र राजन् स्थातव्यं यज्ञवाटे मनोरमे ॥ ४० ॥
अहं च धृतराष्ट्रेण वृद्धैश्च परिवारितः।
ऋषिभिः सहितो यास्ये भ्रातृभिः सहितोऽग्रतः ॥ ४१ ॥
अर्जुनो यत्र तं दिव्यं परिवार्य महाबलः।
बकदाल्भ्यं सुचरितं सहयः संस्थितः पथि ॥ ४२ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तत्पश्चात् महाबली भगवान् श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरके पास जाकर यों बोले—'राजन्! आप तो इस रमणीय यज्ञशालामें ही बैठे रहें और मैं जहाँ मार्गमें महाबली अर्जुन उस यज्ञिय अश्वके साथ उत्तम आचरणवाले दिव्य महर्षि बकदाल्भ्यको घेरकर खड़े हैं, वहाँ धृतराष्ट्र, अन्य वृद्धजन, ऋषिगण और आपके भाइयोंको साथ लेकर पहले ही जाता हूँ ॥ ४०–४२ ॥

कुन्ती च सम्मुखा यातु तथैव मम योषितः।
सम्भावयन्तु सम्प्राप्तं मुनिस्त्रीगणसंयुताः ॥ ४३ ॥

'बुआ कुन्ती (अर्जुनके स्वागतार्थ) उनके सम्मुख चलें। उसी तरह मेरी पटरानियाँ भी मुनि-पत्नियोंको साथ लेकर यहाँ आये हुए अर्जुनका स्वागत करें ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णा वेदध्वनिसमन्विताः।
लाजवर्षं प्रकुर्वाणा गजस्थाश्च कुमारिकाः ॥ ४४ ॥

'जो ब्राह्मण आदि वर्णके लोग हैं, वे वेदमन्त्रोंका उच्चारण करें। कुमारी कन्याएँ हाथियोंपर बैठकर खीलोंकी वर्षा करती हुई चलें ॥ ४४ ॥

पताकाभिर्विचित्राभिर्नगरं समलंकृतम्।
नरैश्च नृत्यसंयुक्तैर्नानाकौतुकमिश्रितैः ॥ ४५ ॥
पुष्पोत्करैः समाकीर्णं चन्दनोदकशीतलैः।
कुर्वन्तु राजपुरुषाः पार्थस्याद्य समागमे ॥ ४६ ॥

'अर्जुनके इस समागमके अवसरपर राजकर्मचारी हस्तिनापुरको चित्र-विचित्र पताकाओंसे सुसज्जित कर दें। राजमार्गोंपर चन्दनमिश्रित शीतल जलका छिड़काव करके उसपर पुष्प बिखेर दें। नर्तकगण नाना प्रकारके कौतुक-प्रदर्शनके साथ-साथ नृत्य करते हुए चलें' ॥ ४५-४६ ॥

एवं कृष्णेन ते सर्वे संदिष्टास्तैस्तथा कृतम्।
पुरस्कृत्य हृषीकेशं निर्गताः पुरवासिनः ॥ ४७ ॥
प्राप्तः पार्थो हयौ प्राप्तौ दिष्ट्या दिष्ट्येतिवादिनः।

जब श्रीकृष्णने उन सबको ऐसा आदेश दिया, तब उन्होंने वैसा ही सारा प्रबन्ध कर दिया। तत्पश्चात् नगर-निवासी श्रीकृष्णको आगे करके नगरसे बाहर निकले। उस समय वे भी कह रहे थे कि बड़े सौभाग्यकी बात है कि अर्जुन सकुशल लौट आये तथा इन दोनों घोड़ोंका आना भी भाग्य-से ही सम्भव हुआ है ॥ ४७½ ॥

रुक्मिणी स्ववधूवृन्दैः सहिता शिबिकां ययौ ॥ ४८ ॥
उषा स्त्रीणां सहस्राणि पुरस्कृत्य ययौ पथि।
तथा सत्या स्वकं वृन्दं नारीणां समलंकृतम् ॥ ४९ ॥
कुसुमैः पारिजातस्य दुकूलैः क्षीरहासकैः।
कुसुम्भरङ्गयुक्तैश्च रम्यकार्पासकैर्ययौ ॥ ५० ॥

उस समय रुक्मिणी अपनी बहुओंके साथ पालकीपर चढ़कर चलीं। उषा मार्गमें हजारों स्त्रियोंको आगे करके निकली तथा सत्यभामा अपने दलकी अलंकृत नारियोंको साथ लेकर प्रस्थित हुईं। उस दलकी स्त्रियाँ पारिजातके पुष्पों, अपनी उज्ज्वलतासे दुग्धका भी उपहास करनेवाले रेशमी वस्त्रों और कुसुम्भी रंगमें रँगी हुई सुन्दर सूती साड़ियोंसे सुसज्जित थीं ॥ ४८–५० ॥

ततो जाम्बवती देवी निरगान्मानिनीगणैः।
मुक्तामालावृतैः कान्तैर्युवभावसमन्वितैः ॥ ५१ ॥
वेष्टितैर्दिव्यवसनैस्तमालनिभकञ्चुकैः।

तदनन्तर युवावस्थासे सम्पन्न, गलेमें मोतियोंके हारोंसे सुशोभित तथा दिव्य वस्त्रों और तमालके-से रंगवाली चोलियोंसे विभूषित मानिनी स्त्रियोंके समुदायके साथ जाम्बवती देवी नगरसे बाहर निकलीं ॥ ५१½ ॥

हर्षादतीव निर्यान्ति समूहाः स्त्रीमयाः पथि ॥ ५२ ॥
परस्परस्य संघर्षात् स्रवत्कुङ्कुमपङ्किलाम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छिन्नमौक्तिकहाराणां तोयेन धरणीं स्त्रियः ॥ ५३ ॥
चक्रुः कर्पूरदानेन च्युतेन च करात् करैः ।

इस प्रकार वे सभी स्त्रियोंके समूह मार्गमें अत्यन्त हर्ष-पूर्वक चल रहे थे । उस समय उन स्त्रियोंने परस्परके संघर्षके कारण झरते हुए कुङ्कमोंसे, टूटे हुए हारोंके जलस्रावी मोतियोंके जलसे और परस्पर हाथके रगड़से गिरे हुए कपूरसे पृथ्वीको कीचयुक्त कर दिया ॥ ५२-५३½ ॥

गजस्था देवकी देवी यशोदा रुक्मिणी स्थिता ॥ ५४ ॥
कुन्ती चैव गजे मत्ते प्रस्थिता पाण्डवं प्रति ।

उस समय देवकी देवी, यशोदा और रुक्मिणी हाथीपर सवार थीं तथा कुन्ती भी एक मतवाले गजराजपर बैठकर अर्जुनको देखनेके लिये प्रस्थित हुईं ॥ ५४½ ॥

धृतातपत्राः सर्वास्ता योषितश्चलचामराः ॥ ५५ ॥
हर्षेण मार्गे संयान्ति वीक्षितुं चारुलोचनाः ।
धनंजयं चिरात् प्राप्तं वासुदेवेन नोदिताः ॥ ५६ ॥

उन सभी महिलाओंके ऊपर छत्र लगा हुआ था और चँवर डुलाये जा रहे थे । वे सुन्दर नेत्रोंवाली नारियाँ श्रीकृष्ण-की प्रेरणासे चिरकालके बाद लौटे हुए अर्जुनको देखनेके लिये मार्गमें हर्षपूर्वक यात्रा कर रही थीं ॥ ५५-५६ ॥

एवं महाजनयुतः प्रातःस्नानं मलापहम् ।
कृत्वा कुसुमगन्धेन वासितो हि समस्थले ॥ ५७ ॥
व्यूह्य सेनां स्वयं रम्यामर्धचन्द्रनिभां हरिः ।
अग्रतो ब्राह्मणाः सर्वे वेदध्वनिकृताः स्थिताः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार उस महान् जनसमुदायके साथ श्रीकृष्णने प्रातःकाल मलको दूर करनेवाला स्नान करके और पुष्पोंकी सुगन्ध (इत्र) से सुवासित होकर एक समतल भूमिपर स्वयं ही सेनाको सुन्दर अर्धचन्द्र-व्यूहके आकारमें खड़ा किया । उसमें वेदध्वनि करनेवाले सभी ब्राह्मणोंको आगे रखा गया ॥ ५७-५८ ॥

तेषां पत्न्यो ययुश्चाग्रे दधिदूर्वाक्षतैर्युताः ।
क्षत्रियाः स्वर्णपात्रेषु धृतकर्पूरदीपिकाः ॥ ५९ ॥

उन ब्राह्मणोंकी पत्नियाँ दधि, दूर्वा और अक्षत लेकर आगे-आगे चलीं और क्षत्राणियाँ स्वर्ण-थालोंमें कपूरके दीपक सँजो-कर खड़ी थीं ॥ ५९ ॥

गोरोचनं कुङ्कुमचन्दनानि
सुवर्णपात्रेषु निधाय वैश्याः ।
कौसुम्भवस्त्रैश्च विकासिताङ्ग्य-
स्तस्थुः प्रभासन्मुकुटाः कृशाङ्ग्यः ॥ ६० ॥

वैश्यपत्नियाँ स्वर्णथालोंमें गोरोचन, कुङ्कुम और चन्दन रखकर खड़ी थीं । वे सब-की-सब कृशाङ्गी थीं । उनके मस्तकपर मुकुटकी प्रभा छिटक रही थी और उनके शरीर कुसुम्भी रंगकी साड़ियोंसे खिल उठे थे ॥ ६० ॥

महाजनानां पुरतश्च वेश्या
नृत्यन्ति मुक्ताफललोलहाराः ।
प्रमाथिभिर्नेत्रकटाक्षवीक्षणै-
र्विकाशयन्त्याशु मनांसि यूनाम् ॥ ६१ ॥

वेश्याएँ महाजनोंके समक्ष आकर नृत्य कर रही थीं। उनके मोतियोंके हार हिल रहे थे । वे मनको मथ डालनेवाली अपने नेत्रोंकी कटाक्षयुक्त चितवनसे नवयुवकोंके मनको शीघ्र ही उद्दीपित कर देती थीं ॥ ६१ ॥

नृत्येन ताः पथि हरिं परितोषयन्ति
सद्भावहावरसतालयुगेन रामाः ।
मुग्धं च तत् स्वमुखपद्मरसाधिरूढं
तस्थुः करैरलिकुलं विनिवारयन्त्यः ॥ ६२ ॥

वे सुन्दरी वेश्याएँ मार्गमें उत्तम हाव-भाव, रस और तालसे संयुक्त नृत्यद्वारा श्रीकृष्णको रिझा रही थीं और अपने मुखकमलके रसके लोभसे मुग्ध होकर मँड़राते हुए भ्रमर-समूहोंको हाथोंसे हटाती रहती थीं ॥ ६२ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि अर्जुनागमो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें अर्जुनका आगमन नामक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

अर्जुनका आकर दल-बलसहित श्रीकृष्णसे मिलना, राजाओंद्वारा हस्तिनापुरके वैभवका वर्णन, अर्जुनद्वारा धृतराष्ट्रको समागत राजाओंका परिचय देना, राजाओंका धृतराष्ट्रको तत्पश्चात् युधिष्ठिरको प्रणाम करना, यज्ञ-सम्भारका एकत्र किया जाना, युधिष्ठिरका समाजसहित गङ्गा-तटपर जाकर जल ले आना और उससे यज्ञिय अश्वको पवित्र करना

जैमिनिरुवाच

पार्थः प्राप्तो वृतो भूपैः कालेन कियता नृप ।
यत्र तिष्ठति कृष्णोऽसौ महाजनयुतः पथि ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजा जनमेजय ! तदनन्तर मार्गमें जहाँ महान् जन-समुदायके साथ भगवान् श्रीकृष्ण खड़े थे, वहाँ कुछ कालके बाद राजाओंसे घिरे हुए अर्जुन भी आ पहुँचे ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्जुनेन स्वकं सैन्यं रचितं राजभिर्युतम्।
समुत्तीर्य स्वयं यानात् पुरस्कृत्य तुरङ्गयौ॥ २॥

तब अर्जुन अपने रथसे उतर पड़े और राजाओंसे भरी हुई अपनी सेनाको यथोचित रूपसे खड़ा करने लगे। उन्होंने दोनों यज्ञिय अश्वोंको सबसे आगे खड़ा किया॥ २॥

नृपतीन् पुरतः कृत्वा ऋषिं च शिविकां स्थितम्।
त्यक्त्वा यानानि भूपालाः प्रयान्ति हरिसम्मुखम्।३।

फिर पालकीमें बैठे हुए महर्षि वकदाल्भ्यको आगे रखकर राजाओंकी कतार लगायी। तत्पश्चात् वे सभी नरेश अपनी-अपनी सवारियोंसे उतरकर श्रीकृष्णके सम्मुख चले॥ ३॥

ददृशुः पार्थसैन्यं ते लीनं कृष्णकलेवरे।
धर्मराजनिमित्तं हि सैन्यरूपः स्वयं हरिः॥ ४॥

निकट पहुँचकर उन्होंने देखा कि अर्जुनकी सारी सेना श्रीकृष्णके शरीरमें लीन हो गयी है; क्योंकि धर्मराज युधिष्ठिरके लिये स्वयं श्रीहरिने ही सेना-दलका रूप धारण कर लिया था॥ ४॥

गजा मत्ता हयाः शुभ्रा रथाश्चैव पदातयः।
राजानो राजपुत्राश्च बभूवुः कृष्णरूपिणः॥ ५॥

उस समय मदमत्त गजराज, सुन्दर घोड़े, रथ, पैदल सैनिक, राजाओं और राजकुमारोंका समुदाय—ये सब-के-सब श्रीकृष्णरूप हो गये थे॥ ५॥

सर्वे सुन्दररूपाणि कृत्वा यत्राग्रतः स्थिताः।
राजानः प्रसमीक्ष्याथ प्रोचुस्ते वै परस्परम्॥ ६॥

वे सब वहाँ सुन्दर रूपोंमें सजकर आगे खड़े थे। तब उन्हें देखकर समागत राजा लोग परस्पर कहने लगे—॥ ६॥

दृष्टा वै बहवोऽस्माभिर्देशाः पार्थहयानुगैः।
देशानां वैभवेनापि तुष्टानि विदुषामपि॥ ७॥
मनांसि यानि तान्यत्र वीक्ष्य यौधिष्ठिरं पुरम्।
गर्हयन्ति निजं चारु वैभवं देशसम्भवम्॥ ८॥

'अर्जुनके घोड़ेके पीछे-पीछे घूमते हुए हमलोगोंने बहुत-से देश देखे और उन देशोंके वैभवको देखकर विद्वानोंके भी जो मन संतुष्ट हो गये थे, वे ही मन यहाँ युधिष्ठिरके नगरका वैभव देखकर अपने देश-सम्बन्धी सुन्दर वैभवकी निन्दा कर रहे हैं॥ ७-८॥

पुण्यं धनं सुखं धर्मो देवोद्यानस्य कौतुकम्।
सम्पदो बहुला यत्र हसन्ति भुवनत्रयम्॥ ९॥

'यह नगर पुण्य, धन, सुख और धर्मसे भरा-पूरा है। यहाँ नन्दनवनका-सा दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा है। सम्पदाएँ तो इतनी अधिक हैं कि वे त्रिलोकीका उपहास कर रही हैं॥९॥

जनाः पुण्यप्रिया यस्मिन् नानामण्डनभूषिताः।
रतिरूपास्तु कामिन्यो नरा मन्मथरूपिणः॥ १०॥

'यहाँके निवासी पुण्यसे प्रेम करनेवाले तथा नाना प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित हैं। स्त्रियाँ तो साक्षात् रतिकी प्रतिमूर्ति ही हैं और पुरुष कामदेव-सरीखे सुन्दर हैं॥ १०॥

सूर्येन्द्रवाहनैर्मान्या रत्नालंकारभूषिताः।
विलोक्यन्ते गजा यत्र किं प्रसूता हरेर्गजात्॥ ११॥

'इस नगरमें ऐसे गजराज दीख रहे हैं, जो सूर्य और इन्द्रके वाहनोंद्वारा सम्मानित तथा रत्ननिर्मित अलंकारोंसे विभूषित हैं। क्या ये इन्द्रके गजराज ऐरावतसे उत्पन्न हुए हैं?॥ ११॥

नानारत्नैः किरीटैश्च भूषिता रत्नकम्बलैः।
धाराभिः पञ्चभिर्युक्ता यत्र सन्ति तुरङ्गमाः॥ १२॥
विजेतारः सुरहयान् स्ववेगेन समर्धिताः।

'यहाँके घोड़े भी रत्ननिर्मित नाना प्रकारकी कलँगियोंसे सुशोभित हैं। इनकी पीठपर पाँच धारियोंवाली रत्नजटित झूलें पड़ी हैं। ये इतने वेगशाली हैं कि अपनी तेज चालसे देवलोकके घोड़ोंको भी मात कर देनेवाले हैं॥ १२½॥

किमत्र वर्ण्यते चारु पाण्डवस्य पुरे हरिः॥ १३॥
सर्वं व्याप्य स्थितोऽनन्तः स्वभाभिर्भासयन् दिशः।

'भला, यहाँकी किस वस्तुकी सुन्दरताका वर्णन किया जा सकता है; क्योंकि युधिष्ठिरके इस नगरमें साक्षात् भगवान् अनन्त सभी वस्तुओंमें व्याप्त होकर अपनी प्रभासे समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए विराजमान हैं॥ १३½॥

कन्यकाकरनिर्मुक्तैर्मौक्तिकै रत्नमिश्रितैः॥ १४॥
पार्थागमे भूभृतोऽत्र क्रियन्ते हारसंयुताः।

'अर्जुनके आगमनके इस अवसरपर कुमारी कन्याएँ इतनी रत्नमिश्रित मोतियाँ बिखेर रही हैं, जिससे जान पड़ता है कि राजाओंके गलेमें हार पहना दिया गया है॥ १४½॥

एते राजप्रभृतयो विराजन्तेऽत्र चामरैः॥ १५॥
उद्यताश्चलितैर्वीराः किमूर्ध्वकरभास्कराः।

'इस समारोहमें सम्मिलित होनेके लिये उद्यत हुए वीर राजाओंपर चँवर डुलाये जा रहे हैं, जिससे इनकी ऐसी शोभा हो रही है, मानो ये ऊपरकी ओर किरणोंवाले सूर्य ही हैं॥ १५½॥

अत्रायान्ति हि वृन्दानि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम्॥ १६॥
याचितुं दीक्षितात् धर्मादसिपत्रव्रतस्थितात्।

'यहाँ ऊर्ध्वरेता ऋषियोंके यूथ यज्ञमें दीक्षित एवं असिपत्रव्रतके पालनमें तत्पर धर्मराज युधिष्ठिरसे याचना करनेके लिये आ रहे हैं॥ १६½॥

धूपधूमेन गमनं समांसलमिवाभवत्॥ १७॥
कृष्णस्योपरि भूलोके [illegible] आदित्रभयशङ्कितम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'यहाँ भगवान् श्रीकृष्णके ऊपरका आकाश भूतलपर बाजा बजनेके भयसे शङ्कित होकर धूपके धुएँसे सुपुष्ट हो गया है अर्थात् गर्जना करनेके लिये उद्यत-सा दीखता है ॥ १७½ ॥

एषा सेनात्र विरजा धर्मराजस्य वीक्ष्यते ॥ १८ ॥
चलितापि धृता धीरैः स्वयं कृष्णेन रक्षिता ।
एवं ब्रुवन्तस्ते सर्वे राजानः संगता हरिम् ॥ १९ ॥

'यहाँ यह धर्मराज युधिष्ठिरकी निर्मल सेना दीख रही है। यह स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण-द्वारा सुरक्षित है। यह चलती हुई भी रणधीर वीरोंद्वारा नियन्त्रित है।' यों बातें करते हुए वे सभी नरेश श्रीहरिके समीप पहुँच गये ॥ १८-१९ ॥

तत्र पार्थो महाबुद्धिः कृष्णमुख्यान् महाजनान् ।
नमस्कृत्य मुदालिङ्ग्य दर्शयामास भूपतीन् ॥ २० ॥

उस समय महाबुद्धिमान् अर्जुनने श्रीकृष्ण आदि महान् पुरुषोंको प्रणाम करके हर्षपूर्वक उन्हें गले लगाया और समागत भूपालोंको उनका दर्शन कराया ॥ २० ॥

सौबलेयीं च कुन्तीं च देवकीं च पितृव्यकम् ।
धृतराष्ट्रं च विदुरं प्रत्युवाच धनंजयः ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् अर्जुन सुबलकुमारी गान्धारी, कुन्ती, देवकी, ताऊ धृतराष्ट्र और चाचा विदुरसे कहने लगे—॥ २१ ॥

एनं पश्यन्तु मे पूज्यं राजानं चन्द्रहासकम् ।
विष्णयाभिरतं वीरं विष्णुभक्तं समागतम् ॥ २२ ॥

'आपलोग यहाँ पधारे हुए इन राजा चन्द्रहासका दर्शन करें। अपनी पत्नी विष्णयामें रत होनेवाले ये वीर नरेश भगवान् विष्णुके भक्त और मेरे पूज्य हैं ॥ २२ ॥

वीरवर्मा नृपश्रेष्ठो नानावीरगणाग्रणीः ।
नमस्करोति पुरतो धृतराष्ट्र महीपते ॥ २३ ॥

'पृथ्वीनाथ धृतराष्ट्र! जो बहुत-से वीर-दलोंके नेता हैं, वे ही ये नृपश्रेष्ठ वीरवर्मा आपके सामने खड़े होकर प्रणाम कर रहे हैं ॥ २३ ॥

मयूरकेतुः समुपैति चायं
विभेदितो यो हरिणा न भिन्नः ।
स्वधर्मतो वीरजनं तृणं खे
न्यवेशयद् बाणसमीरणेन ॥ २४ ॥
एनं विभावय नृपं सुधियां वरिष्ठं
त्वत्पादसेवनरतं सहसाभिपन्नम् ।
यस्य प्रतापविधुना रिपुवक्त्रपद्मं
संकोचितं गतबलं स्वकरैर्दिवापि ॥ २५ ॥
यः शेषराजभवनान्मणिमाजहार
यो नागभोगविलसद्विषमादधार ।
यो जाह्नवीगहनशापदवाग्निदग्धं
भ्रां बान्धवैर्युतमचीकरदेति सोऽयम् ॥ २६ ॥

'ये राजा मयूरध्वज आ रहे हैं, जो श्रीकृष्णके परीक्षा लेनेपर भी अपने धर्मसे विचलित नहीं हुए थे।

'राजन्! जिसने अपने बाणोंकी वायुसे वीरजनोंको तृणके समान आकाशमें उड़ा दिया था। जिसके प्रतापरूपी सूर्यने अपनी किरणोंसे शत्रुओंकी सेनाका संहार करके उनके मुखरूपी कमलको दिनमें ही संकुचित कर दिया था, जो विषधर नागोंके फनपर विलास करनेवाले विषको अपने ऊपर धारण करके नागराज शेषके भवनसे संजीवक मणि लाया था और जिसने गङ्गाजीके भयंकर शापरूपी दावाग्निसे दग्ध हुए मुझको पुनः (जीवित करके) भाई-बन्धुओंसे मिला दिया, यह वही बभ्रुवाहन आ रहा है। अब आप विद्वानोंमें श्रेष्ठ इस राजा बभ्रुवाहनका सत्कार कीजिये। यह आपके चरणोंकी सेवा करनेके लिये सहसा प्राप्त हो गया है ॥ २४–२६ ॥

हंसध्वजं पश्य पुरः पादयोः प्रणतं नृप ।
यस्य पुत्रौ महावीरौ शङ्करं पार्वतीपतिम् ॥ २७ ॥
स्वशिरोभ्यां प्रभायुक्तं चक्रतुर्मुदितं दिवि ।

'नरेश्वर! जिनके दो महाबली पुत्रों (सुधन्वा और सुरथ) ने अपने मस्तकोंद्वारा आकाशमें पार्वतीपति भगवान् शङ्करको सुशोभित एवं प्रसन्न कर दिया है, वे राजा हंसध्वज सामने ही आपके चरणोंमें पड़े हुए हैं; इनकी ओर दृष्टि डालिये ॥

येन सर्वे रणे वीराः स्वप्रतापेन मोचिताः ॥ २८ ॥
तं कर्णपुत्रं प्रणतं परिष्वज जनाधिप ।

'जनेश्वर! जिसने रणभूमिमें अपने पराक्रमसे हम सब वीरोंको भयसे मुक्त किया था, अपने चरणोंमें पड़े हुए उस कर्णपुत्र वृषकेतुको आप हृदयसे लगाइये ॥ २८½ ॥

नीलध्वजं च बलिनं समुत्थापय मारिष ।
वह्निना येन तत् सैन्यं दग्धं संशयिता वयम् ॥ २९ ॥

'आर्य! जिन्होंने अग्निकी सहायतासे हमारी सेनाको दग्ध करके हमें संशयमें डाल दिया था, (अपने चरणोंमें पड़े हुए) उन बलवान् राजा नीलध्वजको उठाइये' ॥ २९ ॥

जैमिनिरुवाच

ततः सर्वे नृपास्तेन धृतराष्ट्रेण पूजिताः ।
समागत्य महात्मानं धर्मराजं ववन्दिरे ॥ ३० ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर धृतराष्ट्रने उन सभी राजाओंका आदर-सत्कार किया। तब उन नरेशोंने महात्मा राजा युधिष्ठिरके पास जाकर उनकी चरण-वन्दना की ॥

नमस्कृत्यार्जुनस्तं वै समालिङ्ग्याग्रतः स्थितः ।
भीमसेनं च वृद्धांस्तानभिवन्द्य प्रहर्षितः ॥ ३१ ॥

तब अर्जुनने युधिष्ठिरको प्रणाम करके उनका आलिङ्गन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया और फिर उनके आगे खड़े हो गये। तत्पश्चात् भीमसेन तथा वहाँ उपस्थित वृद्धजनोंकी अभिवन्दना करके अर्जुन परम प्रसन्न हुए ॥ ३१ ॥

कुन्ती वीक्ष्य सुतं प्राप्तं शरतोमरदारितम्।
परिष्वज्य स्थिता वीरं मुञ्चती हर्षजं जलम् ॥ ३२ ॥

तत्पश्चात् बाण और तोमरसे घायल हुए अपने वीर पुत्र अर्जुनको आया हुआ देखकर कुन्तीदेवीने, उठकर उसे छातीसे लगा लिया। उस समय उनके नेत्रोंसे हर्षके कारण आँसू बह रहे थे ॥ ३२ ॥

कर्णपुत्रं समाघ्राय मूर्ध्नि वै प्रियबालकम्।
प्रत्युवाच त्वया सर्वं रक्षितं वृषकेतुना ॥ ३३ ॥

फिर कुन्ती अपने प्यारे बालक वृषकेतुका मस्तक सूँघकर कहने लगीं—'बेटा वृषकेतु! तूने तो (लौटकर) हम सबको बचा लिया' ॥ ३३ ॥

तथा प्रहर्षिता कुन्ती स्थिता धर्मनिवेशने।
युधिष्ठिरोऽथ ऋषिभिः सहितः कर्षितुं ययौ ॥ ३४ ॥
क्षेत्रं गृहीत्वा वृषभौ द्रौपदीं च सुमध्यमाम्।
ओषधीः समुपादाय दीक्षितो वसुमेव च ॥ ३५ ॥

इस प्रकार कुन्तीदेवी अत्यन्त हर्षपूर्वक धर्मराज युधिष्ठिरके भवनमें विराजमान हुईं। तदनन्तर यज्ञकी दीक्षासे सम्पन्न युधिष्ठिर दो बैल, सुन्दर कटिभागवाली द्रौपदी तथा औषध और द्रव्य साथ लेकर यज्ञक्षेत्र जोतनेके लिये ऋषियोंसहित चले ॥ ३४-३५ ॥

कृष्णाद्याः सर्वभूपालाः पश्यन्तः पृष्ठगामिनः।
कुन्ती च देवकी देवी यशोदा वरवर्णिनी ॥ ३६ ॥
सिषिचुश्चन्दनजलैः सकर्पूरैर्युधिष्ठिरम्।
मन्त्रपाठं प्रकुर्वन्ति ब्राह्मणाः स्त्रीभिरन्विताः ॥ ३७ ॥

उस समय श्रीकृष्ण आदि समस्त भूपाल वह दृश्य देखते हुए पीछे-पीछे चल रहे थे। कुन्ती, देवी देवकी और सुन्दरी यशोदा—ये चन्दन और कपूरमिश्रित जलसे युधिष्ठिरका अभिषेक कर रही थीं और अपनी स्त्रियोंसे संयुक्त ब्राह्मण मन्त्रपाठ कर रहे थे ॥ ३६-३७ ॥

कृषित्वा तत् तदा क्षेत्रमिष्टिकाचयनं ततः।
चकार त्वरितो मन्त्रैरिष्टिकानां चतुःशतैः ॥ ३८ ॥
चतुर्वेदैश्च विधिवद् व्याससमुख्यैः प्रचोदितः।
वकदाल्भ्येन मुनिना समस्तैर्वन्दितेन च ॥ ३९ ॥

तब चारों वेदोंके ज्ञाता व्यास आदि मुख्य-मुख्य ऋषियोंके तथा समस्त ऋषियोंद्वारा वन्दित महर्षि बकदाल्भ्यके आज्ञानुसार युधिष्ठिरने उस क्षेत्रको जोतकर फिर तुरंत ही मन्त्रोच्चारणके साथ-साथ चार सौ ईंटोंद्वारा विधिपूर्वक इष्टिका-चयन किया ॥ ३८-३९ ॥

सुपर्णा चितिरेका हि प्रथमा तत्र सा कृता।
सुपर्णाख्या च हंसाख्या इष्टिकानां चतुःशतैः ॥ ४० ॥

इनमें जो एक 'सुपर्णा चिति' वेदी है, उसका निर्माण वहाँ पहले किया गया। उसका नाम 'सुपर्णा चिति' और 'हंसा चिति' भी है। वह चार सौ ईंटोंसे बनायी गयी ॥ ४० ॥

दक्षिणस्तस्य पक्षस्तु विहितो यज्ञवेदिभिः।
चतुश्चत्वारिंशता च शतेनैकेन चैव हि ॥ ४१ ॥
अनेनैवान्यपक्षो हि पुच्छं मध्ये शतेन च।
एकविंशतियुक्तेन तस्य वै रचितं मुखम् ॥ ४२ ॥

यज्ञवेत्ताओंने उसका दाहिना पक्ष एक सौ चौवालीस ईंटोंसे बनाया, इतनी ही ईंटोंसे उसका बायाँ पक्ष भी तैयार किया गया। बीचमें सौ ईंटोंसे पुच्छभाग बना और एक सौ इक्कीस ईंटोंसे उसके मुखका निर्माण किया गया ॥ ४१-४२ ॥

द्वितीया द्विगुणाभिर्हि कृता श्येनैव सा चितिः।
इष्टिकाभिस्तृतीया तु तस्मिन् वै द्विगुणा तथा ॥ ४३ ॥

इसी तरह दूसरी श्येना चिति दुगुनी ईंटोंसे तैयार की गयी और तीसरी उससे भी दुगुने विस्तारवाली बनायी गयी ॥

चतुर्थी पञ्चमी यावत् सुपर्णानां च पञ्चकम्।
संजातं परिशिष्टैश्च वेष्टितं बहुभिस्तथा ॥ ४४ ॥

इसी क्रमसे चौथी-पाँचवींका भी निर्माण हुआ। इस तरह जो सुपर्णपञ्चक तैयार हुआ, वह शेष रहे हुए बहुत-से ईंटोंसे घेर दिया गया ॥ ४४ ॥

अष्टद्वारयुतं रम्यं मण्डपं चक्रिरे बुधाः।
सुपताकं सुकुण्डानामष्टकं याज्ञिकैः कृतम् ॥ ४५ ॥

फिर विद्वानोंने सुन्दर पताकाओंसे सुशोभित एक रमणीय मण्डप तैयार कराया, जिसमें आठ दरवाजे थे। याज्ञिकोंने वहाँ सुन्दर-सुन्दर आठ कुण्ड बनवाये ॥ ४५ ॥

षट् खादिराः कृता यूपाः सप्त पालाशजाः कृताः।
पञ्च बैल्वाश्च रचिताः पञ्च श्लेष्मातकस्य ते ॥ ४६ ॥
चषालैर्भूषितास्तत्र वेदिकात्रितयं कृतम्।
स्रुवाश्च स्थापिता रम्या जुहूनां शतमेव च ॥ ४७ ॥

वहाँ छः खैरके, सात पलाशके, पाँच बेलके और पाँच लहसोड़ेके यूप (यज्ञस्तम्भ) बनाये गये, जो सब-के-सब चषालों (लकड़ीके छल्लों) से विभूषित थे। तीन वेदियाँ निर्माण की गयीं। सुन्दर स्रुवा और सैकड़ों जुहू (आहुति देनेके चमचे) रखे गये ॥ ४६-४७ ॥

वैकङ्कतीनां राजेन्द्र शूचीनां षष्टिरेव च।
गोचर्मलोहितं सोमपट्टी मुसलमेव च ॥ ४८ ॥
मण्डपे विहितं सर्वं तथा रम्यमुलूखलम्।
सम्भाराणि च भूरीणि वस्तुजातं समाहृतम् ॥ ४९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विकंकत (कण्टाई) नामक वृक्षके काष्ठकी साठ स्रुचियाँ बनायी गयीं। इस प्रकार उस मण्डपमें लाल रंगका गोचर्म, सोमलता, मुसल और सुन्दर ओखली—ये सभी पदार्थ रखे गये। बहुत-सी यज्ञ-सामग्रियाँ और वस्तुसमूह वहाँ लाये गये ॥ ४८-४९ ॥

आचार्यस्तु कृतो व्यासो वकदाल्भ्यः पितामहः।
ऋत्विजश्च कृता दिव्या ऋषयो दीप्ततेजसः ॥५०॥

उस यज्ञमें आचार्य-पदपर व्यासजीका वरण हुआ और महर्षि वकदाल्भ्य ब्रह्मा बनाये गये तथा बहुत-से उद्दीप्त तेजस्वी दिव्य ऋषि ऋत्विज हुए ॥ ५० ॥

वामदेवो वसिष्ठश्च गौतमोऽत्रिः पराशरः।
भारद्वाजो जामदग्न्यः कहोडो भागुरिस्तथा ॥ ५१ ॥
रैभ्यः सुमन्तुः कौण्डिन्यो जातूकर्ण्योऽथ गालवः।
सौभरिर्लोमशाद्याश्च कृतास्ते ऋत्विजः क्रमात् ॥५२॥

(ऋत्विजोंके नाम ये हैं—) वामदेव, वसिष्ठ, गौतम, अत्रि, पराशर, भारद्वाज, जमदग्निनन्दन परशुराम, कहोड, भागुरि, रैभ्य, सुमन्तु, कौण्डिन्य, जातूकर्ण्य, गालव, सौभरि और लोमश आदि। ये सभी क्रमशः ऋत्विज बनाये गये थे ॥ ५१-५२ ॥

रक्षां विधाय सन्मन्त्रै रक्षोघ्नैर्द्वारपालकाः।
वृतास्ते धर्मराजेन तस्मिन् यज्ञे मनोरमे ॥ ५३ ॥

तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिरने उस मनोरम यज्ञमें उत्तम रक्षोघ्न मन्त्रोंद्वारा रक्षाका विधान करके द्वारपालोंका वरण किया ॥ ५३ ॥

विश्वामित्रश्च पुलहो धौम्यश्चारुणिरेव च।
उपमन्युर्वायुभक्षो मधुच्छन्दा विभाण्डकः ॥ ५४ ॥
एते कृता द्वारपालास्तस्मिन् यज्ञेऽतिसुन्दरे।

उस अत्यन्त सुन्दर यज्ञमें विश्वामित्र, पुलह, धौम्य, आरुणि, उपमन्यु, वायुभक्ष, मधुच्छन्दा और विभाण्डक—ये द्वारपाल बनाये गये थे ॥ ५४½ ॥

एते चान्ये च बहवो वृतास्ते पूजिताः क्रमात् ॥ ५५ ॥
दीक्षितेन तदा राजन् मृगाजिनविधारिणा।
नवनीतानुलिप्तेन द्रौपदीसहचारिणा ॥ ५६ ॥

राजन्! इस प्रकार उस समय राजा युधिष्ठिरने जो यज्ञकी दीक्षा ले चुके थे, जिनके शरीरपर मक्खनका अनुलेप और मृगचर्म सुशोभित था, द्रौपदी ही जिनकी सहायिका थी, इन मुनियोंका तथा इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-से ऋषियोंका वरण किया और क्रमशः उनकी पूजा की ॥ ५५-५६ ॥

व्याससततः प्रन्युवाच दीक्षितं धर्मनन्दनम्।
उपविष्टांश्च भूपालान् दिव्यसिंहासनेषु च ॥ ५७ ॥

तदनन्तर व्यासजीने दीक्षासम्पन्न धर्मनन्दन युधिष्ठिर तथा दिव्य सिंहासनोंपर विराजमान राजाओंसे कहा—॥ ५७॥

दम्पतीनां चतुःषष्टिर्यातु गङ्गातटं शुभम्।
आहर्तुं जाह्नवीतोयं मयाऽऽदिष्टं यथोचितम् ॥ ५८॥

'अब मेरे आदेशानुसार चौंसठ दम्पति (स्त्री-पुरुषके जोड़े) यथोचितरूपसे गङ्गाजल लानेके लिये सुन्दर गङ्गातटपर जायँ ॥ ५८ ॥

अत्रिस्तु पत्नीसहितो वसिष्ठोऽरुन्धतीयुतः।
रुक्मिणीसहितः कृष्णः सुभद्रासहितोऽर्जुनः।
मायावतीयुतो वीरः प्रद्युम्नो यातु सत्वरः ॥ ५९॥

'उनमें अपनी पत्नी अनसूयासहित अत्रि, अरुन्धतीसहित वसिष्ठ, रुक्मिणीसहित श्रीकृष्ण, सुभद्रासहित अर्जुन और मायावतीसहित वीर प्रद्युम्न—ये शीघ्र ही तैयार हो जायँ ॥ ५९ ॥

ऊषा गृहीतकरका अनिरुद्धान्विता सती।
हिडिम्बया भीमसेनो वृषकेतुः प्रभद्रया ॥ ६०॥
मयूरकेतुः प्रियया लीलावत्याद्य गच्छतु।

'हाथमें कलश धारण किये हुए अनिरुद्धके साथ सती ऊषा, हिडिम्बाके साथ भीमसेन, प्रभद्राके साथ वृषकेतु और अपनी प्यारी पत्नी लीलावतीके साथ मयूरध्वज—ये सब अभी यात्रा कर दें ॥ ६०½ ॥

प्रभावत्या यौवनाश्वो नीलकेतुः सुनन्दया ॥ ६१॥
गृह्णातु कलशं शीघ्रमनुशाल्वो धमिल्लया।

'प्रभावतीके साथ यौवनाश्व, सुनन्दाके साथ नीलध्वज और धमिल्लाके साथ अनुशाल्व—ये सभी शीघ्र ही कलश उठा लें ॥ ६१½ ॥

एते मया हि निर्दिष्टास्तथान्ये जाह्नवीजलम् ॥ ६२॥
आनयन्तु नृपस्यार्थे सदाराः कलशैः शुभम्।

'इस प्रकार जिनका मैंने नाम-निर्देश कर दिया है—ये तथा दूसरे लोग भी अपनी पत्नियोंके साथ राजा युधिष्ठिरके लिये सुन्दर गङ्गाजल कलशोंमें भरकर ले आवें' ॥ ६२½ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं व्याससमादिष्टास्ते पत्नीसहिता मुदा ॥ ६३॥
आनेतुं जाह्नवीतोयं प्रस्थिता बद्धपल्लवाः।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! व्यासजीके यों आदेश देनेपर वे सभी नरेश अपनी पत्नियोंके साथ आनन्द-पूर्वक गङ्गाजल लानेके लिये प्रस्थित हुए। उस समय उनके दुपट्टेके छोर उनकी पत्नियोंके अञ्चलसे बँधे थे ॥ ६३½ ॥

वादित्राणां स्वनो रम्यः प्रावर्तत जलागमे ॥ ६४॥
ब्राह्मणाश्चाश्वमेधे लोका राजस्थाश्च कुमारिकाः।
मुक्ताफलानि वर्षन्त्यः शृण्वन्त्यः शङ्खगर्जितम्॥६५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस जलानयनके अवसरपर बाजोंका सुन्दर शब्द हो रहा था। जो लोग ब्राह्मण आदि वर्णोंके थे, वे तथा हाथियोंपर बैठी हुई कुमारी कन्याएँ शङ्खध्वनि सुनती हुई मोतियोंकी वर्षा कर रही थीं ॥ ६४-६५ ॥

पठन्तस्तत्र मुनयो गायन्तो गीतकोविदाः।
तत्र नृत्यं प्रकुर्वाणास्ते लोकाः प्रस्थिताः पुरः॥ ६६ ॥

उस समय मुनिगण मन्त्रपाठ कर रहे थे, चतुर गायक राग अलाप रहे थे और नर्तक नृत्य कर रहे थे। ये सभी लोग आगे-आगे प्रस्थित हुए ॥ ६६ ॥

नानाशृङ्गारसहितो निर्ययौ स महाजनः।
देवकीं चैव कुन्तीं च पुरस्कृत्य जनार्दनः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार वह महान् जनसमुदाय नाना प्रकारके शृङ्गारोंसे सज-धजकर निकला। उस समय श्रीकृष्ण देवकी और कुन्तीको आगे करके चले ॥ ६७ ॥

तदा कुन्ती च कृष्णस्य गृहीत्वा वस्त्रपल्लवम्।
बबन्ध रुक्मिणीपट्टकूलप्रान्ते मनस्विनी ॥ ६८ ॥

उस समय मनस्विनी कुन्तीने श्रीकृष्णके दुपट्टेका छोर पकड़कर रुक्मिणीकी रेशमी साड़ीके अञ्चलमें बाँध दिया ॥ ६८ ॥

तत् कौतुकं समालोक्य नारदो मुनिसत्तमः।
जगाम सत्याभवनं शंसितुं कृष्णनिर्गमम् ॥ ६९ ॥

यह कौतुक देखकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी श्रीकृष्णकी यात्राका समाचार सूचित करनेके लिये सत्यभामाके भवनमें गये ॥ ६९ ॥

नारद उवाच

सत्यभामे शृणु वचो मदीयं कृष्णवल्लभे।
यज्ञारम्भे सतां पार्श्वे नानानृपसमागमे ॥ ७० ॥
रुक्मिणी बहुलं मानं प्रपेदे हरिसंयुता।
निर्याति जलमानेतुं कृष्णेनैव सुसंयुता ॥ ७१ ॥

नारदजीने कहा—श्रीकृष्णकी प्रियतमे सत्यभामे! मेरी बात सुनो। इस यज्ञारम्भके अवसरपर, जहाँ बहुत-से नरेशोंका समुदाय जुटा हुआ है, वहाँ सत्पुरुषोंके समीप श्रीकृष्णके साथ रहनेसे रुक्मिणीको महान् सम्मानकी प्राप्ति हुई है; क्योंकि वही श्रीकृष्णके साथ गँठजोड़ा करके जल लानेके लिये जा रही है ॥ ७०-७१ ॥

धृतातपत्रा सा याति सधूपा चलचामरा।
लभते राजसम्मानं सैव नान्याः स्त्रियो हरेः ॥ ७२ ॥
समर्थः कामपुत्रोऽसौ पौत्रो यस्यानिरुद्धकः।
कस्माद्धि शयितं गेहे त्वया सत्ये च तद् वद ॥ ७३ ॥

उसके ऊपर छत्र लगा हुआ है; चँवर डुलाये जा रहे हैं तथा वह धूपकी सुगन्ध लेती हुई जा रही है। इस प्रकार राजसम्मान तो उसीको मिल रहा है। श्रीकृष्णकी अन्य पत्नियाँ वह सम्मान नहीं पा रही हैं। उसके पुत्र प्रद्युम्न और पौत्र अनिरुद्ध भी समर्थ हो गये हैं; परंतु सत्ये! यह तो बताओ कि तुम किस लिये घरमें ही शयन कर रही हो? ॥ ७२-७३ ॥

समीपे त्वां समालोक्य मुखदाक्ष्येण केशवः।
तत्रानेष्यत् सत्यभामे यद्यासिष्यः समीपगा ॥ ७४ ॥

सत्यभामे! यदि तुम उनके समीप होतीं तो केशव तुम्हें अपने निकट देखकर तुम्हारे मुखकी दक्षता (बातचीतकी कुशलता) से तुम्हें वहाँ अवश्य ले जाते ॥ ७४ ॥

सत्यभामोवाच

अत्र तिष्ठति गोविन्दो मद्गृहे मुनिसत्तम।
अनेन सहिता यास्ये तत्त्वं पश्य समागमम् ॥ ७५ ॥

तब सत्यभामा बोली—मुनिश्रेष्ठ! गोविन्द तो यहाँ मेरे घरमें ही विराजमान हैं। मैं इन्हींके साथ जाऊँगी, तब आप उस समागमको देखियेगा ॥ ७५ ॥

जैमिनिरुवाच

नारदो ददृशे सत्याः केतने तार्क्ष्यकेतनम्।
उवाच केशवं विप्रस्त्वं दृष्टोऽसीति संसदि ॥ ७६ ॥
सत्यागृहे च पश्यामि विस्मयो मे प्रजायते।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तब नारदजीने सत्यभामाके महलमें गरुडध्वज भगवान् श्रीकृष्णको देखा। उस समय विप्रवर नारद केशवसे कहने लगे—'भगवन्! मैंने तो आपको उस राजसभामें देखा था और इस समय यहाँ सत्यभामाके भवनमें भी देख रहा हूँ, इसलिये मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है ॥ ७६½ ॥

युधिष्ठिरस्य पुरतो मया दृष्टोऽसि मन्त्रदः ॥ ७७ ॥
सत्यायुक्तः प्रयास्येवं गच्छ गच्छ जगत्पते।
निर्जगाम गृहात् तस्मान्निर्गतं वीक्ष्य माधवम्॥ ७८ ॥

'जगदीश्वर! उस समय तो आप युधिष्ठिरके सामने सलाह देते हुए देखे गये थे और इस समय सत्यभामाके साथ प्रस्थान कर रहे हैं। अच्छा, जाइये, शीघ्र जाइये।' यों कहकर नारदजी माधवको उस महलसे निकला हुआ देखकर स्वयं भी वहाँसे चल दिये ॥ ७७-७८ ॥

नारदो मुनिरन्यत्र ययौ जाम्बवतीगृहम्।
प्रविश्य मन्दिरं तस्याः प्राह जाम्बवतीमिदम् ॥ ७९ ॥

फिर मुनिवर नारद वहाँसे अन्यत्र जाम्बवतीके महलकी ओर चले। उसके भवनमें प्रवेश करके वे जाम्बवतीसे यों बोले ॥ ७९ ॥

नारद उवाच

स्थितासि किं गृहे मातर्न यासि नृपालयम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आहर्तुं जाह्नवीतोयं यत्र याति स्वयं हरिः ॥ ८० ॥
रुक्मिणीं सत्यभामां च सह नेष्यति माधवः ।

नारदजीने कहा—मातः ! तुम घरमें ही क्यों बैठी हो ? तुम उस राजभवनको क्यों नहीं गयीं, जहाँ स्वयं श्रीहरि गङ्गाजल लानेके लिये जा रहे हैं। वे माधव रुक्मिणी और सत्यभामाको तो अपने साथ ले जायँगे ॥ ८०½ ॥

जाम्बवत्युवाच

सर्वास्तेन युताः सन्ति महिष्यः केशवस्य ताः ॥ ८१ ॥
यां परित्यज्य गन्तासौ सा न जीवति मानिनी ।
अस्मिन् समागमे रम्ये साधूनामपमानिता ॥ ८२ ॥

तब जाम्बवती बोली—मुने ! उन केशवकी जितनी रानियाँ हैं, वे सबकी सब उनके साथ ही हैं; क्योंकि वे जिस पत्नीका परित्याग करके चले जायँगे, वह मानिनी सत्पुरुषोंके इस सुन्दर समारोहमें अपमानित होनेके कारण प्राण त्याग देगी ॥ ८१-८२ ॥

जैमिनिरुवाच

तत्रापि नारदो वीक्ष्य माधवं बद्धपुल्लवम् ।
मन्दिराणि स गोपीनां बभ्राम मुनिसत्तमः ॥ ८३ ॥
सर्वाणि तानि सद्मानि सकृष्णानीत्यमन्यत ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! वहाँ जाम्बवतीके महलमें भी नारदजीने श्रीकृष्णको जाम्बवतीके साथ गँठजोड़ा किये हुए देखा। फिर वे मुनिश्रेष्ठ गोपियोंके भवनोंमें विचरने लगे। वहाँ भी उन्हें यही प्रतीत हुआ कि श्रीकृष्ण उन सभी घरोंमें विराजमान हैं ॥ ८३½ ॥

पुनरागत्य देवर्षिर्मण्डपे पाण्डवस्य हि ॥ ८४ ॥
ऋत्विग्भिः सहितस्तस्थौ स्तुवन् कृष्णं सनातनम् ।

तत्पश्चात् देवर्षि नारद पुनः युधिष्ठिरके यज्ञमण्डपमें आकर ऋत्विजोंके साथ खड़े हो गये और सनातन भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे ॥ ८४½ ॥

वसिष्ठेन समं सर्वे राजानो जाह्नवीतटे ॥ ८५ ॥
जग्मुः सकृष्णाः सानन्दा महावीरैः सुरक्षिताः ।

तदनन्तर वसिष्ठजीके साथ श्रीकृष्णसहित सभी नरेश आनन्दपूर्वक गङ्गातटपर गये। उस समय बहुत-से महाबली वीर उनकी रक्षामें नियुक्त थे ॥ ८५½ ॥

व्यासेन मन्त्रितं तोयं पूजिता जलदेवताः ॥ ८६ ॥
पूरयित्वा ततो व्यासः कलशं च सपुष्पकम् ।
ददौ करेऽनसूयायास्तस्मिन् काले नराधिप ॥ ८७ ॥

जनेश्वर ! उस समय वहाँ पहुँचकर व्यासजीने जलको अभिमन्त्रित किया तथा जल-देवताओंकी भी पूजा की, तत्पश्चात् उन्होंने पुष्पोंसे सुशोभित एक कलशको जलसे भरकर उसे अनसूयाके हाथमें दे दिया ॥ ८६-८७ ॥

सुवर्णकलशं चैकं परिपूर्णमरुन्धती ।
जग्राह पुरतस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ८८ ॥

फिर उन भावितात्मा मुनियोंके सामने ही अरुन्धतीने जलसे भरा हुआ एक सोनेका कलश उठाया ॥ ८८ ॥

रुक्मिणीमस्तके स्वे तु कलशं तोयपूरितम् ।
अरुन्धत्यार्पितं स्नेहाद् गङ्गातीरे दधौ मुदा ॥ ८९ ॥

तब गङ्गातटपर अरुन्धतीद्वारा स्नेहवश दिये गये उस जलपूर्ण कलशको रुक्मिणीने हर्षपूर्वक अपने मस्तकपर धारण कर लिया ॥ ८९ ॥

रुक्मिणीं प्रत्युवाचाथ वसिष्ठस्य प्रिया सती ।
दूयते तव भद्रे किं पुष्पभारेण यद्गृहे ॥ ९० ॥
तस्मिन् मयार्पितेनात्र कलशेन न दूयसे ।

उस समय वसिष्ठजीकी पतिव्रता पत्नी अरुन्धतीने रुक्मिणीसे कहा—'भद्रे ! तुम्हारा जो मस्तक महलमें पुष्पोंके भारसे दुख जाता था, उसी सिरपर यहाँ मैंने यह (जलपूर्ण) कलश रख दिया है। इससे तुम्हें कष्ट तो नहीं हो रहा है ?' ॥ ९०½ ॥

अरुन्धतीवचः श्रुत्वा सुभद्रा वाक्यमब्रवीत् ॥ ९१ ॥
एषा भारसहा मातर्येन गोवर्धनो गिरिः ।
धृतः करे गवार्थं च सप्ताहं च खलीलया ॥ ९२ ॥
रुक्मिणी तं दिवारात्रौ हृदि धृत्वा न दूयते ।
पतिव्रतानां धर्मोऽयं कृतः केवलयानया ॥ ९३ ॥

अरुन्धतीकी बात सुनकर सुभद्रा यों बोल उठी—'माता ! ये रुक्मिणी भार सहन करनेमें अभ्यस्त हैं; क्योंकि जिन्होंने अपनी लीलासे ही गौओंकी रक्षाके लिये गोवर्धन पर्वतको एक ही हाथपर सात दिनतक धारण कर रखा था, उन श्रीकृष्णको ये रुक्मिणी दिन-रात अपने हृदयमें धारण करके भी कष्टका अनुभव नहीं करतीं (तब फिर कलश किस गिनतीमें है)। पतिव्रताओंका जो यह धर्म है, उसे तो अकेले इन्होंने ही निबाहा है' ॥ ९१—९३ ॥

रुक्मिण्युवाच

मम व्रतं समालोक्य सुभद्रा तं धनंजयम् ।
धारयन्ती हृदि सदा सौख्यमाप्नोति नित्यशः ॥ ९४ ॥

तब रुक्मिणीने कहा—माताजी ! मेरे व्रतको देखकर यह सुभद्रा भी उन अर्जुनको सदा अपने हृदयमें धारण किये रहती है; इसीसे यह निरन्तर सुखका अनुभव करती रहती है ॥ ९४ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं ब्रुवन्त्यस्ताः सर्वा जगृहुः कलशान् बहून् ।
स्वे स्वे शिरसि पुण्याढ्ये धृतभौक्तिकपुञ्जके ॥ ९५ ॥
सभर्तृकाश्च सम्प्राप्ता यज्ञवाटे तथाविधे ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मृदङ्गा यत्र वाद्यन्ते शङ्खाश्च पटहैः सह ॥ ९६ ॥
वीणाश्च विविधा भेर्यः शङ्खाश्च काहलाः शुभाः ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! यों परस्पर परिहास करती हुई उन सभी नारियोंने मोतियोंके समूह तथा पुष्पोंके गुच्छोंसे सुसज्जित अपने-अपने मस्तकपर बहुत-से कलशोंको रख लिया और फिर वे अपने पतियोंके साथ उस यज्ञशालामें जा पहुँचीं, जहाँ नगारेके साथ-साथ मृदङ्ग, शङ्ख, वीणा, तरह-तरहकी भेरियाँ और सुन्दर काहल बज रहे थे ॥ ९५-९६½ ॥

तत्रानीय जलं पुण्यं पावितः स तुरङ्गमः ।
द्रौपद्या धर्मराजेन यूपे बद्धः सुपूजितः ॥ ९७ ॥

तब द्रौपदीसहित धर्मराज युधिष्ठिरने उस पावन गङ्गाजलको वहाँ लाकर उसके अभिषेकसे यज्ञस्तम्भमें बँधे हुए उस सुपूजित अश्वको* पवित्र किया ॥ ९७ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि जलयात्रावर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें जलयात्राका वर्णन नामक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

अश्वमेध यज्ञका आरम्भ, भीमसेनद्वारा घोड़ेका वध, घोड़ेके सिरका आकाशमें चला जाना, ज्योति निकलकर श्रीकृष्णमें समा जाना और उसके शरीरका कपूर हो जाना, उस कपूरसे हवन, इन्द्रादि देवताओंका आकर अपना भाग ग्रहण करना, युधिष्ठिरका मुनियोंको दान देना

जैमिनिरुवाच

ततः प्रववृते यज्ञो धर्मराजस्य शासनात् ।
यज्ञविद्याविधानेन स्नातोऽयं मन्त्रितैर्जलैः ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे यज्ञकार्य आरम्भ हुआ । उस समय यज्ञविद्याके विधानानुसार युधिष्ठिरने अभिमन्त्रित जलसे स्नान किया ॥ १ ॥

भीमार्जुनादयः सर्वे सकृष्णाः कर्मकारकाः ।
पादप्रक्षालनं कृत्वा मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ २ ॥
स्वयमेव हृषीकेशः स्थापयामास तानृषीन् ।

उस यज्ञमें श्रीकृष्णसहित भीमसेन और अर्जुन आदि सभी लोग कार्यकर्ता थे । स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने ही उन भावितात्मा मुनियोंके चरण पखारकर उन्हें उत्तम आसनपर बैठाया ॥ २½ ॥

तत्रोपविष्टा वासांसि परिधाय द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥
चन्दनेनानुलिप्ताङ्गा दिव्यालंकारभूषिताः ।
स्रग्विणो दत्तमाल्याश्च दत्तकर्पूरवीटिकाः ॥ ४ ॥
सुवर्णपीठेष्वासीनाः संस्तुताः कृष्णपाण्डवैः ।

उस समय जिनके शरीरपर चन्दन लगा था, जो दिव्यालंकारोंसे विभूषित हो माला धारण किये हुए थे और जिन्हें पुष्पमालाएँ तथा कर्पूरमिश्रित पानके बीड़े समर्पित किये गये थे, वे उत्तम ब्राह्मण जब नूतन वस्त्र धारण करके अपने-अपने आसनोंपर आसीन हो गये, तब सुवर्ण-पीठोंपर विराजमान हुए उन ब्राह्मणोंकी श्रीकृष्ण और पाण्डवोंने स्तुति की ॥ ३-४½ ॥

दीयतां दीयतामन्नं शब्दोऽभून्नृपतेर्गृहे ॥ ५ ॥
युधिष्ठिरस्य यज्ञे तु नानाद्विजसमागमे ।
सुवर्णं चैव रत्नानि वासांसि रुचिराणि च ॥ ६ ॥
गजाश्वरथयानानि गोसहस्राणि चन्दनम् ।
छत्राणि चामराण्येव दासीदासगणान् महीम् ॥ ७ ॥
अर्थिभ्यश्चेतरेभ्यश्च मन्दिराणि धनानि च ।
यस्य यस्य प्रियं यत्तु तत्तस्मै दीयतामिति ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् जहाँ बहुत-से ब्राह्मणोंका समूह जुटा हुआ था, युधिष्ठिरके उस यज्ञमें राजमहलके भीतर 'अन्न दो, अन्न वितरण करो' ऐसा शब्द हो रहा था तथा याचकों एवं अन्य लोगोंके लिये भी सुवर्ण, रत्न, सुन्दर वस्त्र, हाथी, घोड़े, रथ, सहस्रों गायें, चन्दन, छत्र, चँवर, दास-दासियोंके झुंड, पृथ्वी, घर और धन-दौलत बाँटे जा रहे थे । (लोग कहते थे कि) 'जिस-जिसको जो-जो वस्तु प्रिय हो, उसे वही दिया जाय' ॥ ५—८ ॥

युधिष्ठिरः कृतस्नानो यज्ञकर्मणि दीक्षितः ।
सुवर्णचयमासाद्य समानीय तुरङ्गमम् ॥ ९ ॥
प्रोवाचाग्रे पशुरभूच्छ्रुतिमेतां पठन्पुरः ।
पिब भोस्त्वमपो घोट तव लोको भविष्यति ॥ १० ॥

तत्पश्चात् यज्ञकर्ममें दीक्षित हुए महाराज युधिष्ठिरने स्नान किया और सुवर्णराशिके समीप जाकर वे उस यज्ञिय अश्वको वहाँ ले आये । फिर उसके आगे 'पशुरभूत्' इस श्रुतिका पाठ करते हुए वे उस घोड़ेसे कहने लगे—'ऐ घोड़े ! अब तू जलपान कर, इससे तुझे उत्तम लोककी प्राप्ति होगी' ॥ ९-१० ॥

* इस ग्रन्थके अध्याय ४१ श्लोक १० में राजा मयूरध्वजके यज्ञिय अश्वके साथ युधिष्ठिरके अश्वका मिलन बताया गया है । वहाँसे अध्याय ६३ के द्वितीय श्लोकतक दोनों घोड़ोंका साथ-साथ वर्णन आया है; परंतु ६३ । ९७ में केवल युधिष्ठिरके अश्वका ही उल्लेख है । प्रश्न होता है कि वह दूसरा अश्व कहाँ गया ? जान पड़ता है, हस्तिनापुरके पास पहुँचनेपर वह अश्व स्वेच्छानुसार आगे बढ़ गया । वह युधिष्ठिरके यज्ञका नहीं था, इसलिये उसे रोक रखनेकी चेष्टा नहीं की गयी ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युधिष्ठिरस्य तद् वाक्यमाकर्ण्य तुरगः स्वयम्।
धूनयामास वदनमपश्यत् केशवं मुदा ॥ ११ ॥

युधिष्ठिरकी वह बात सुनकर वह अश्व स्वयं ही अपना मुख हिलाते हुए आनन्दपूर्वक श्रीकृष्णकी ओर निहारने लगा ॥ ११ ॥

प्रोथाभ्यां स्वमभिप्रायं शशंस नकुलाय सः।
ज्ञात्वा भावं तुरङ्गस्य नकुलः प्राह धर्मजम् ॥ १२ ॥

फिर उस घोड़ेने नथुने फड़फड़ाकर नकुलसे अपना अभिप्राय सूचित किया। तब नकुल उस घोड़ेके मनोभावको समझकर धर्मनन्दन युधिष्ठिरसे कहने लगे—॥ १२ ॥

वाजी शंसति राजेन्द्र नाहं यास्ये त्रिविष्टपम्।
अन्येषु किंतु यज्ञेषु स्वर्गकामेषु ये हयाः ॥ १३ ॥
त्रिविष्टपं गता वीर तेषु कृष्णो न कर्मकृत्।

'राजेन्द्र! यह घोड़ा सूचित कर रहा है कि 'वीर! मैं स्वर्ग जाना नहीं चाहता, किंतु स्वर्गकामनापरक अन्य यज्ञोंमें जो घोड़े स्वर्गलोकमें गये हैं (उसका कारण यह है कि) उन यज्ञोंमें भगवान् श्रीकृष्ण कार्यकर्ता नहीं थे ॥ १३½ ॥

अनीश्वरेषु यज्ञेषु स्वर्गस्तु परमं फलम् ॥ १४ ॥
जायते भुवि कर्तॄणामस्मिन् यज्ञे फलं हरिः।
ममापि कृष्णवदने स्थितं पश्यन्तु याज्ञिकाः ॥ १५ ॥

'इस भूतलपर यज्ञ करनेवालोंके ईश्वररहित यज्ञोंमें स्वर्ग ही परम फलरूपसे मिलता है, परंतु इस यज्ञमें तो साक्षात् श्रीहरि फलरूपसे विराजमान हैं; अतः याज्ञिकलोग मुझे भी श्रीकृष्णके शरीरमें स्थित देखें' ॥ १४-१५ ॥

एवं ब्रूते धर्मराज तुरङ्गस्ते महाक्रतौ।
अथैनं मुनयः सर्वे यूपपार्श्वे सुमन्त्रितः ॥ १६ ॥
राजानः स्त्रीसमूहोऽपि यान्तं पश्यन्तु माधवम्।

'धर्मराज! आपके इस महायज्ञमें भलीभाँति अभिमन्त्रित हुआ यह अश्व यों ही कह रहा है। अब यज्ञस्तम्भके निकट जाते हुए इसे तथा श्रीकृष्णको समस्त मुनिगण, राजालोग और स्त्रियाँ भी देखें' ॥ १६½ ॥

नकुलस्य वचः श्रुत्वा यूपे नीतस्तुरङ्गमः ॥ १७ ॥
यूपे बद्धो हयो विप्रैः सकृष्णैरभिमन्त्रितः।

नकुलकी बात सुनकर वह अश्व यूपके समीप ले जाया गया। वहाँ श्रीकृष्णसहित ब्राह्मणोंने उसे अभिमन्त्रित किया। तत्पश्चात् वह अश्व यज्ञस्तम्भमें बाँध दिया गया ॥ १७½ ॥

धौम्य उवाच

भीम खड्गं समादाय तिष्ठ त्वं निश्चलः क्षणम् ॥ १८ ॥
यावत् परीक्षां कुर्वेऽहं वाजिनोऽस्य महामते।

उस समय धौम्यजीने कहा—महाबुद्धिमान् भीमसेन! जबतक मैं इस घोड़ेकी परीक्षा करता हूँ, उतनी देर तक तुम तलवार लेकर चुपचाप खड़े रहो ॥ १८½ ॥

ततो धौम्यो हयस्याशु वामकर्णं न्यपीडयत् ॥ १९ ॥
तावत् क्षीरस्य धारा तु निर्गता जनमेजय।
विस्मिताः सकला लोकाः शोणितं नैव दृश्यते ॥ २० ॥

जनमेजय! तत्पश्चात् जब धौम्य ऋषिने उस घोड़ेके बायें कानको दबाया, तब उसमेंसे दूधकी धारा निकलने लगी। यह देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित होकर कहने लगे कि इसके शरीरमें रुधिर तो नहीं दीख रहा है ॥ १९-२० ॥

धौम्योऽब्रवीद् भीमसेनं छिन्धि कं वाजिनोऽधुना।
यथा तुष्येज्जगन्नाथः पुराणपुरुषोत्तमः ॥ २१ ॥

तदनन्तर महर्षि धौम्यने भीमसेनसे कहा—'भीम! अब तुम इस घोड़ेका सिर काट दो, जिससे पुराणपुरुषोत्तम भगवान् जगदीश्वर प्रसन्न हो जायँ' ॥ २१ ॥

वादित्रनादे महति प्रवर्तिते
भीमोऽलुनात् तस्य हयस्य शीर्षम्।
ऊर्ध्वं गतं तच्च शिरो न चाधः
सूर्यं प्रविष्टं किल वह्निरूपम् ॥ २२ ॥

उस समय बाजोंका महान् गम्भीर शब्द हो रहा था; उसी बीच भीमसेनने उस अश्वके मस्तकको काट दिया। वह कटा हुआ सिर नीचे न जाकर ऊपर आकाशमें उछल और अग्निरूप होकर सूर्यमें प्रविष्ट हो गया ॥ २२ ॥

शुद्धं ज्ञात्वा हृषीकेशस्तुतोदैनमुरःस्थले।
बैल्वेन कण्टकेनापि भिन्नः कृष्णेन पावनः ॥ २३ ॥

उस घोड़ेको शुद्ध जानकर भगवान् श्रीकृष्णने बेलके काँटेसे उसकी छातीमें छेद कर दिया। श्रीकृष्णद्वारा विदीर्ण किये जानेपर भी वह अश्व पावन हो गया ॥ २३ ॥

निर्गता क्षीरधारा तु तुरगस्य कलेवरात्।
धारां विनिर्गतां वीक्ष्य ऋषयो धर्ममब्रुवन् ॥ २४ ॥
एवंविधो न कस्यापि शुद्धः पूर्वं तुरङ्गमः।

उस समय उस घोड़ेके शरीरसे दूधकी धारा बह चली। तब उस बहती हुई दुग्धधाराको देखकर ऋषियोंने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—'राजन्! अबसे पहले किसीका भी अश्व इस प्रकार शुद्ध नहीं देखा गया था' ॥ २४½ ॥

शुद्धं ज्ञात्वा हृषीकेशो धर्मपुत्रं तु सोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥
तथाब्रुवंस्ते ऋषयो दृष्ट्वा शुद्धं तुरङ्गमम्।
दिष्ट्या ते सफलो यज्ञो जायतेऽद्य युधिष्ठिर ॥ २६ ॥

उसे शुद्ध जानकर भगवान् श्रीकृष्ण धर्मनन्दन युधिष्ठिरसे कहने लगे—'महाराज युधिष्ठिर! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपके घोड़ेको इस प्रकार शुद्ध हुआ देखकर ये ऋषिगण वैसी बातें कह रहे हैं, इससे अब आपका यज्ञ सफल हो गया' ॥ २५-२६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेषां संवदतामेवं तुरङ्गमकलेवरात्।
निर्गतं सुमहत्तेजः प्रविष्टं केशवानने ॥ २७ ॥

वे लोग यों बातें कर ही रहे थे तबतक घोड़ेके शरीरसे अत्यन्त महान् तेजःपुञ्ज निकला और वह श्रीकृष्णके मुखमें प्रवेश कर गया ॥ २७ ॥

पश्चाच्छरीरं पतितं भूत्वा कर्पूरमेव तत्।
विभूतिरिव रुद्रस्य च्युता गात्रादशोभत ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् उस अश्वका शरीर कपूर होकर पृथ्वीपर बिखर गया। उस समय वह भगवान् रुद्रके शरीरसे झरकर गिरी हुई विभूतिके समान शोभा पाने लगा ॥ २८ ॥

विस्मिता मुनयस्तं तु कर्पूरं वीक्ष्य तेऽभवन्।
कर्पूरं जुहुवुस्ते तु होमकुण्डे तु तत्क्षणात् ॥ २९ ॥

उस अश्वको कपूर हुआ देखकर उन मुनियोंको महान् विस्मय हुआ। फिर तो वे उसी क्षण हवनकुण्डमें उस कपूरकी आहुतियाँ देने लगे ॥ २९ ॥

यत्रोपविष्टो राजासौ सपत्नीकः समाधवः।
व्यासो गृहीत्वा कर्पूरं स्रुवेणेदमथाब्रवीत् ॥ ३० ॥

तदनन्तर जहाँ पत्नीसहित महाराज युधिष्ठिर श्रीकृष्णके साथ बैठे हुए थे, वहीं व्यासजी स्रुवासे उस कपूरको उठाकर यों बोले ॥ ३० ॥

व्यास उवाच

गृहाणेन्द्र महायज्ञे घनसाराहुतिं विभो।
पहि राज्ञार्पितामेनां दुर्लभामग्रतः कलौ ॥ ३१ ॥

व्यासजीने कहा—इन्द्र! इस महान् यज्ञमें पधारिये और राजाद्वारा अर्पित की गयी इस कपूरकी आहुतिको ग्रहण कीजिये। विभो! आगे चलकर कलियुगमें ऐसी आहुति दुर्लभ हो जायगी ॥ ३१ ॥

शक्रः समागतः साक्षात् प्रत्युवाच महामुनिम्।
देहि पावकवक्त्रेण यावत्तृप्तिर्ममाक्षया ॥ ३२ ॥
यां वीक्ष्य तृप्तिं प्राप्तोऽस्मि भुक्त्वा शं च भविष्यति।

तब साक्षात् इन्द्र वहाँ आये और महामुनि व्यासजीसे कहने लगे—'मुने! अग्निरूपी मुखके द्वारा मुझे इतनी आहुतियाँ प्रदान कीजिये, जिससे मुझे अक्षय तृप्ति प्राप्त हो जाय; क्योंकि मैं जिस तृप्तिकी आशासे यहाँ आया हूँ तदनुकूल भोजन करनेपर ही मुझे शान्ति प्राप्त होगी' ॥ ३२½ ॥

व्यासस्ततो जुहावाग्नौ वसन्ते दशमीदिने ॥ ३३ ॥
शुक्लपक्षे हि चैत्रस्य सार्पर्क्षे गुरुवासरे।
स्वाहेतीन्द्राय विधिवत् परमामाहुतिं ददौ ॥ ३४ ॥

तदनन्तर व्यासजी अग्निमें हवन करने लगे। उस समय वसन्त ऋतु था, चैत्रमासके शुक्ल पक्षकी दशमी तिथि थी, गुरुवासर तथा आश्लेषा नक्षत्र था। ऐसे समयमें उन्होंने पहले 'इन्द्राय स्वाहा' यों मन्त्रोच्चारण करके विधिपूर्वक उत्तम आहुति प्रदान की ॥ ३३-३४ ॥

चन्द्रादिदेवताभ्यश्च तत्तन्मन्त्रैर्यथाक्रमम्।
ततो दिग्देवताभ्यश्च मन्त्रैर्दत्त्वा यथाविधि ॥ ३५ ॥
घनसारं जुहावाग्नौ देवतानां पुरस्तदा।
हवनेन जगत् प्रीतं बभूव सचराचरम् ॥ ३६ ॥

तत्पश्चात् उन देवताओंके सामने ही उसी विधिके अनुसार क्रमशः उन्होंने चन्द्रमा आदि देवताओंको तथा दिक्पालोंको उन-उन देवोंके नाम-मन्त्रोंद्वारा अग्निमें उस कपूरका हवन किया। उस समय उस हवनसे सारा चराचर जगत् संतुष्ट हो गया ॥ ३५-३६ ॥

होमधूमेन राजासौ पूतः प्रीतो युधिष्ठिरः।
समालिङ्ग्याब्रवीद् भीमं दिष्ट्या जातश्च मे क्रतुः ॥ ३७ ॥
यज्ञान्तेऽवभृथस्नानं कुर्वेऽहं नात्र संशयः।

उस होमधूमसे पवित्र होकर राजा युधिष्ठिर परम प्रसन्न हुए और भीमसेनको गले लगाकर उन्होंने कहा—'भीमसेन! बड़े सौभाग्यकी बात है कि मेरा यह अश्वमेधयज्ञ पूर्ण हो गया। अब मैं यज्ञान्तमें अवभृथ स्नान करूँगा—इसमें संदेह नहीं रह गया' ॥ ३७½ ॥

जैमिनिरुवाच

ऋषिभिः सहितः कृष्णः स्नापयामास पार्थिवम् ॥ ३८ ॥
सदारं भीमसेनाद्यैर्वृतं भूपतिभिस्तथा।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर महाराज युधिष्ठिर अपनी पटरानी द्रौपदीसहित आसनपर विराजमान हुए। उस समय भीमसेन आदि उनके भाई तथा उपस्थित सभी नरेश उन्हें घेरकर खड़े हो गये, तब ऋषियोंको साथ लेकर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें स्नान कराया ॥ ३८½ ॥

सोमपानं कारयित्वा प्राशयित्वा यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥
पुरोडाशं तु सर्वेभ्यो दत्त्वा शेषं तदा ह्यदत्।

तत्पश्चात् सोमपान कराकर उन्हें जिमाया और क्रमशः सबको पुरोडाश प्रदान करके अन्तमें स्वयं भोजन किया ॥ ३९½ ॥

जयशब्दैर्वन्दिनस्ते तथा वादित्रनिःस्वनैः ॥ ४० ॥
तुष्टुवुर्धर्मराजानं गुणगीतैश्च गायकाः।

उस समय वन्दीगण वाद्योंके तुमुल घोष तथा जयकारोंसे और गायकगण यशोगानद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरकी स्तुति करने लगे ॥ ४०½ ॥

नीराजनं ततश्चक्रुर्देवकीप्रमुखाः स्त्रियः ॥ ४१ ॥
कुन्ती वधूभिः सहिता मुदिता प्राप तत्सुखम्।

फिर देवकी आदि प्रधान महिलाओंने उनकी आरती उतारी। उस समय वधुओंसहित हर्षमग्न हुई कुन्तीको परम सुख प्राप्त हुआ ॥ ४१½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृत्वा पूर्णाहुतिं राजा उपविष्टो युधिष्ठिरः ॥ ४२ ॥
अलंकृतश्च कृष्णेन तत्र राजा महात्मना ।
शुशुभे मघवेवासौ यथा स्वर्गे सुरोत्तमैः ॥ ४३ ॥

तदनन्तर जब राजा युधिष्ठिर पूर्णाहुति करके महात्मा श्रीकृष्णके साथ वहाँ आसनपर विराजमान हुए, उस समय उनकी ऐसी शोभा हुई, जैसे स्वर्गमें प्रधान देवताओंके साथ बैठे हुए इन्द्र सुशोभित होते हैं ॥ ४२-४३॥

पूर्वं हरिं पूजयित्वा वस्त्रालंकारचन्दनैः ।
व्यासाय पृथिवीं सर्वां ददौ राजा मुदान्वितः ॥ ४४ ॥

तब आनन्दमग्न हुए राजा युधिष्ठिरने पहले वस्त्र, आभूषण और चन्दन आदि सामग्रियोंद्वारा श्रीकृष्णकी पूजा करके फिर व्यासजीको सारी पृथ्वी दान कर दी ॥ ४४ ॥

संकल्पपूर्वं विधिवत् पुनर्व्यासः क्रमाद् ददौ ।
तद् द्रव्यं ब्राह्मणेभ्यश्च दीनेभ्यश्च ददावृषिः ॥ ४५ ॥

पुनः महर्षि व्यासने विधिवत् संकल्पपूर्वक वह सारा धन क्रमशः ब्राह्मणों और दीनोंको बाँट दिया ॥ ४५ ॥

रत्नाद्रिशिखरस्थं तु चरन्तं कनकं वृषम् ।
बकदाल्भ्याय च ददौ तदा राजा युधिष्ठिरः ॥ ४६ ॥

उस समय राजा युधिष्ठिरने रत्ननिर्मित पर्वतशिखरपर विचरता हुआ स्वर्णमय वृष बकदाल्भ्य मुनिको प्रदान किया ॥ ४६ ॥

एको रथो वारण एक एव
दशाश्वमुख्याश्च सुवर्णभारः ।
शतं गवां हेमविभूषितानां
प्रस्थश्च दत्तो वरमौक्तिकानाम् ।
एकैकशो भृत्यचतुष्टयं च
कार्येषु दक्षं स ददौ नरेन्द्रः ॥ ४७ ॥

पुनः राजा युधिष्ठिरने प्रत्येक ब्राह्मणको एक रथ, एक हाथी, दस उत्तम घोड़े, एक भार सुवर्ण, स्वर्णालंकारोंसे विभूषित सौ गौएँ, एक सेर उत्तम मोती और कार्यसम्पादनमें कुशल चार-चार सेवक दान किये ॥ ४७ ॥

ऋत्विग्भ्यो द्वारपालेभ्यो ददौ पूर्णमनोरथः ।
तदर्धार्धं क्रमेणैव इच्छादानान्यनेकशः ॥ ४८ ॥
ददौ युधिष्ठिरो राजा नृपतीनप्यतोषयत् ।

फिर सफल-मनोरथ हुए राजा युधिष्ठिरने ऋत्विजों तथा द्वारपालपदपर नियुक्त ऋषियोंको क्रमशः उसका आधा-आधा भाग प्रदान किया । पुनः उन्होंने अनेक प्रकारका इच्छादान भी दिया । तत्पश्चात् राजाओंको भी दान-मानसे संतुष्ट किया ॥ ४८½ ॥

तुरङ्गाणां सहस्रं च गजानां च शतं शतम् ॥ ४९ ॥
अलंकारान् सुवर्णस्य कोटिं च प्रददौ नृपः ।
प्रत्येकं नृपतीन् पूज्य द्विगुणेनैव यादवान् ॥ ५० ॥

उस समय उन नरेशने प्रत्येक राजाको हजार-हजार घोड़े, सौ-सौ हाथी और स्वर्णनिर्मित करोड़ों आभूषण प्रदान किये। यों उन राजाओंका सम्मान करके इससे दुगुने पदार्थोंद्वारा यादवोंका सत्कार किया ॥ ४९-५० ॥

रुक्मिण्याद्याः स्त्रियः सर्वा अलंकारैश्च तोषिताः ।
उपवेश्यासने कृष्णमलंकारशतैर्युतम् ॥ ५१ ॥
यज्ञजं सुकृतं सर्वं हृषीकेशकरे ददौ ।
वादित्रनादः संजज्ञे पुष्पवृष्टिः पपात च ॥ ५२ ॥

उन्होंने रुक्मिणी आदि समस्त स्त्रियोंको आभूषण आदि देकर संतुष्ट किया । तदनन्तर उन्होंने श्रीकृष्णको सैकड़ों अलंकारोंसे विभूषित करके एक आसनपर बैठाया और फिर अपना यज्ञजन्य सारा पुण्य उन हृषीकेशके हाथमें समर्पित कर दिया । उस समय बाजे बजने लगे और पुष्पवृष्टि होने लगी ॥ ५१-५२ ॥

भीमाद्याः पाण्डवाः सर्वे यज्ञः कृष्णेन कारितः ।
इति ब्रुवन्तः सततं हर्षिताश्चाभवन्नृप ॥ ५३ ॥

नरेश्वर ! उस समय भीमसेन आदि सभी पाण्डव 'यह यज्ञ श्रीकृष्णकी कृपासे पूर्ण हुआ है' यों बारंबार कहते हुए हर्षमग्न हो रहे थे ॥ ५३ ॥

मोचिताः पशवः सर्वे ये च यूपे नियन्त्रिताः ।
तुष्टुवुस्ते जनाः सर्वे यज्ञः कृष्णेन कारितः ॥ ५४ ॥

फिर यज्ञस्तम्भमें जो पशु बँधे थे, वे सभी खोल दिये गये और सभी लोग यों स्तुति करने लगे कि श्रीकृष्णने ही यह यज्ञ पूर्ण कराया है ॥ ५४ ॥

यज्ञप्रकरणं श्रुत्वा मुच्यन्ते सर्वपातकैः ।
सर्वैश्च पूजितास्ते वै संतिष्ठन्ति धरातले ॥ ५५ ॥

इस यज्ञप्रकरणको श्रवण करके मनुष्य समस्त पातकोंसे मुक्त हो जायँगे और जबतक इस भूतलपर जीवित रहेंगे, तबतक सभी लोग उनका आदर करेंगे ॥ ५५ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि युधिष्ठिराभिषेको नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें युधिष्ठिरका अभिषेकनामक चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

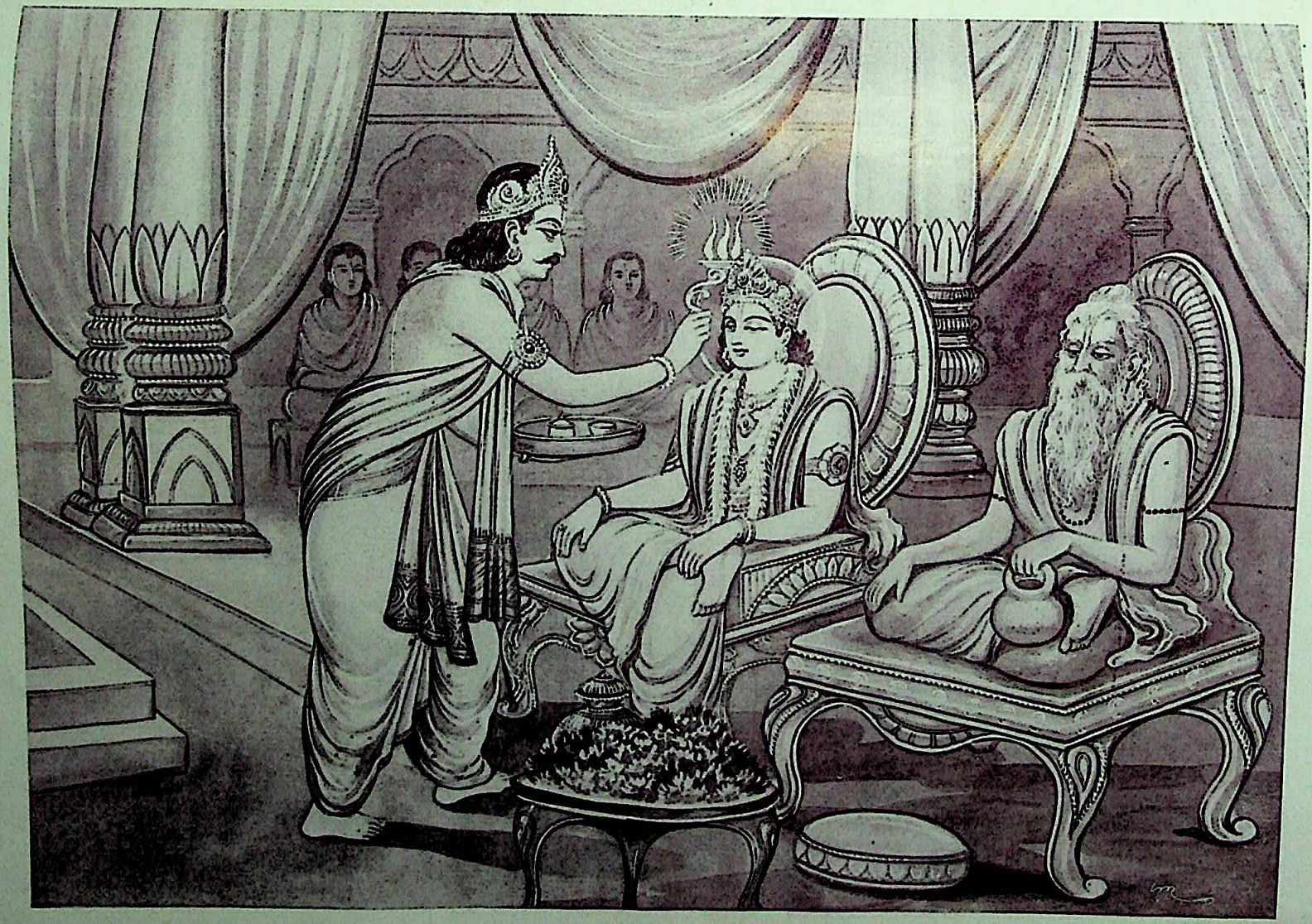

सम्राट् युधिष्ठिरके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण एवं व्यासजीका पूजन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

भीमसेनका यज्ञान्तमें ब्राह्मणों तथा राजाओंको नाना प्रकारके व्यञ्जन जिमाकर तृप्त करना, दो ब्राह्मणोंका अपना झगड़ा निपटानेके लिये युधिष्ठिरके पास आना, भगवान् श्रीकृष्णका कलियुगमें होनेवाले दोषोंका वर्णन करना

जैमिनिरुवाच

यज्ञस्यान्ते भीमसेनः प्रार्थयित्वा मुनीन् नृपान् ।
सकृष्णान् भोजयामास विविधान्नेन मारिष ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—आर्य जनमेजय ! जब यज्ञ समाप्त हो गया, तब भीमसेनने प्रार्थना करके मुनियों तथा श्रीकृष्णसहित राजाओंको अनेक प्रकारके अन्न परोसकर भोजन कराया ॥ १ ॥

जनमेजय उवाच

कथं ते भोजिता विप्राः सकृष्णाश्च महीभुजः ।
यया रीत्या स्त्रियो बाला भीमेन रसकारिणा ॥ २ ॥
अन्नानि कानि जातानि सर्वं शंस महामुने ।
कौतुकं जायतेऽतीव शृण्वतो मे तवाननात् ॥ ३ ॥

जनमेजयने पूछा—महामुने ! स्वादिष्ठ रसोई तैयार करनेवाले भीमसेनने उन ब्राह्मणों, श्रीकृष्णसहित राजाओं, स्त्रियों और बालकोंको किस प्रकार तथा किस रीतिसे भोजन कराया था ? तथा कितने प्रकारके अन्न (भक्ष्य पदार्थ) तैयार किये गये थे ? यह सब मुझे बतलाइये; क्योंकि आपके मुखसे ऐसी बात सुनकर मुझे महान् कौतूहल हो रहा है ॥ २-३ ॥

जैमिनिरुवाच

शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि भीमसेनेन यत् कृतम् ।
मण्डपे नवरत्नाढ्ये रम्ये काञ्चनभूषिते ॥ ४ ॥
तत्र चन्दनजातेषु पीठास्तरणकम्बलाः ।
सरत्नाः स्थापिता भान्ति पुष्पप्रकरपूरिताः ॥ ५ ॥
कचोलानां चतुःषष्टिर्हेमस्थालीनियन्त्रिताः ।
प्रतिविप्रं धृता स्थाली रत्नदीपद्वयान्विता ॥ ६ ॥

जैमिनिजीने कहा—राजाधिराज जनमेजय ! उस समय भीमसेनने जो कुछ किया था, उसे मैं बतला रहा हूँ; सुनो । जो नूतन रत्नोंसे सम्पन्न और सुवर्णसे विभूषित था, उस रमणीय मण्डपमें चन्दन-काष्ठके बने हुए पीढ़ोंपर उन्हें ढकनेवाले रत्नजटित कालीन बिछे हुए थे, जो पुष्पराशियोंसे पूरित थे । उनके सामने प्रत्येक ब्राह्मणके लिये सोनेकी थालीमें चौसठ-चौसठ कटोरियाँ जँचाकर रखी गयी थीं और प्रत्येक थालीके पास दो-दो रत्नमय दीप जल रहे थे ॥ ४–६ ॥

तिरस्करिण्यः पुष्पाणां चन्द्रिकालम्बिताः शुभाः ।
कृष्णागुरुकृतैर्धूपैर्वासिते मण्डपेऽमले ॥ ७ ॥

कृष्णागुरुके धूपसे सुवासित उस निर्मल मण्डपमें ऊपर चँदोवा तना था और उसमें फूलोंके बने हुए सुन्दर परदे लटक रहे थे ॥ ७ ॥

सुगन्धेन जलेनाथ पात्रप्रक्षालनं कृतम् ।
प्रतिपात्रं सुवर्णस्य धृतो रत्नकमण्डलुः ॥ ८ ॥

सभी पात्र सुगन्धित जलसे धोये गये थे । प्रत्येक स्वर्ण-पात्रके निकट एक-एक रत्ननिर्मित कमण्डलु (जलपात्र) रखा गया था ॥ ८ ॥

ततो भीमेन सरसं पायसं तु प्रवेशितम् ।
ददृशुर्ब्राह्मणाः स्थाल्यां चन्द्रबिम्बमिवोदितम् ॥ ९ ॥
भक्तं सूपान्वितं चैव यूथिकाकुड्मलप्रभम् ॥ १० ॥

तदनन्तर भीमसेनने उन थालोंमें रसदार खीर परोस दी । उसे देखकर ब्राह्मणोंको ऐसा लगा मानो चन्द्रमण्डल उदित हो गया है और दालके साथ भात जूहीकी अधखिली कलीके समान प्रकाशित होता था ॥ ९-१० ॥

पुष्पपत्रफलमूलदारुभि-
र्वल्कलैर्व्यजनपत्रकृतानि ।
व्यञ्जनानि कटुतिक्तकखण्डै-
र्निर्मितानि पवनात्मजयत्नात् ॥ ११ ॥

भीमसेनके प्रबन्धसे पत्र (पालक आदि), पुष्प (कुम्हड़ा गोभी आदि), दारु (बनकेले), वल्कल (आमके छिलके और गूदे), फल (परवल, केले आदि), मूल (आलू, अरवी आदि) और पंखेके आकारके (अरवी आदिके) पत्तोंद्वारा कटु, तिक्त मसालों और खंड (खाँड़) के सम्मिश्रणसे नाना प्रकारके व्यञ्जन तैयार किये गये थे ॥ ११ ॥

कश्चिद् द्विजस्तदा पूपान् वीक्ष्य पप्रच्छ चापरम् ।
न वनस्थेन च मया दृष्टमेतद्धि किं वद ॥ १२ ॥

उस समय उन पूओंको देखकर किसी ब्राह्मणने दूसरेसे पूछा—'भाई ! बताओ तो, यह क्या है ? मैं तो सदा वनमें रहता हूँ, अतः मैंने इसे देखा भी नहीं है' ॥ १२ ॥

पृच्छन्तं प्राह विप्रोऽसौ मत्वाऽऽत्मानमतोऽधिकम् ।
चन्द्रस्य शकलं विद्धि पतितं शतधा भुवि ॥ १३ ॥

तब अपनेको उससे अधिक जानकार समझकर उस ब्राह्मणने अपने पूछते हुए साथीसे कहा—'तुम इन्हें सौ खण्ड होकर भूतलपर गिरे हुए चन्द्रमाके टुकड़े ही समझो' ॥

एवं वदति विप्रेऽस्मिंस्ततः प्राप्ताः स्म फेनिकाः ।
स्थाले स्थिता समीक्ष्यैको ब्राह्मणो विस्मयं गतः १४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह ब्राह्मण यों कह ही रहा था तबतक फेनिकाएँ परोस दी गयीं। तब अपनी थालीमें उन फेनिकाओंको देखकर एक ब्राह्मणको महान् विस्मय हुआ ॥ १४ ॥

मरालो धर्मराजस्य सितपत्रयुतो महान्।
समुत्पन्न इति प्राह वायुभक्षो महातपाः ॥ १५ ॥

वे विप्रवर वायुका आहार करनेवाले महान् तपस्वी थे। वे कहने लगे—'धर्मराज युधिष्ठिरके यहाँ श्वेत पंखोंसे युक्त कोई महान् हंस उत्पन्न हुआ है क्या ?' ॥ १५ ॥

दन्तोलूखलिना प्रोक्तं मोदकान् वीक्ष्य यद् वचः।
औदुम्बराणि चामूनि विषयेऽस्मिन् मयोच्यते ॥ १६ ॥

दाँतसे ही ओखलीका काम लेनेवाले एक ऋषिने लड्डुओंको देखकर उस विषयमें जो बात कही थी, उसे मैं बतलाता हूँ। उन्होंने कहा था कि ये गूलरके फल हैं ॥ १६ ॥

भक्तं मेने द्विजः कश्चित् पुष्पाणि कुटजस्य तु।
करञ्जिकां मुनिवरः कर्णिकां मन्यते परः ॥ १७ ॥

एक द्विजने भातको देखकर ऐसा समझा कि ये कुटजके पुष्प हैं, तबतक दूसरा मुनि करञ्जिकाको कर्णिकार मानने लगा ॥

वटकं कनकाभं तु मेने कश्चिद् द्विजस्तदा।
पतितं भानवीयं किं रथचक्रं ममाग्रतः ॥ १८ ॥

उस समय सुनहली आभावाले वड़ेको देखकर किसी ब्राह्मणको ऐसा भ्रम होने लगा कि सूर्यके रथका चक्र ही मेरे आगे गिर पड़ा है क्या ? ॥ १८ ॥

द्राक्षारसं पिबन्त्येके केचिच्चूतरसं मुदा।
लुठितं हि सितामध्ये घृताक्तं कदलीफलम् ॥ १९ ॥
मुखे चिक्षेप सकलं मुनिशिष्यो गतत्वचम्।

कोई दाखका रस पी रहे थे तो कुछ लोग आनन्दपूर्वक आमके रसका स्वाद ले रहे थे। कोई मुनिशिष्य, जिसका छिलका उतार दिया गया था तथा जो घृतयुक्त एवं शक्करमें डालकर पगा हुआ था, ऐसे केलेके फलको पूरा-का-पूरा मुखमें डाल रहा था ॥ १९½ ॥

सिताज्यैर्मण्डकं विप्रो वेष्टयित्वा ततोऽपरः ॥ २० ॥
चिक्षेप मुखमध्ये तु सम्प्राप्तः सुखमुत्तमम्।
मेने मोक्षसुखं तुच्छं भक्षयन् खण्डलड्डुकान् ॥ २१ ॥

दूसरे ब्राह्मणने मण्डकको घी और शक्करसे लपेटकर मुखमें डाल लिया। उस समय उसे उत्तम सुखका अनुभव हुआ; फिर मोतीचूरके लड्डुओंको खानेपर उसे जो सुख प्राप्त हुआ, उसके सामने तो वह मोक्ष-सुखको भी तुच्छ समझने लगा ॥ २०-२१ ॥

इत्थं भीमेन ते विप्रास्तथान्ये क्षत्रियादयः।
लोकाः सम्भोजिताः सर्वे तस्मिन् यज्ञमहोत्सवे ॥ २२ ॥

इस प्रकार उस यज्ञमहोत्सवके अवसरपर भीमसेनने उन ब्राह्मणों तथा अन्य क्षत्रिय आदि वर्णोंके सभी लोगोंको भलीभाँति भोजन कराया ॥ २२ ॥

संतर्पिता हि ते विप्रा दिव्यचन्दनचर्चिताः।
ताम्बूलं चन्द्रसंयुक्तं दृष्ट्वा विस्मयमागताः ॥ २३ ॥

(तत्पश्चात् उन्हें ताम्बूल दिया गया।) तब जो भोजनादिसे भलीभाँति संतुष्ट हो चुके थे तथा दिव्य चन्दनों-द्वारा जिनकी पूजा की गयी थी, वे ब्राह्मण उस कपूरयुक्त ताम्बूलको देखकर विस्मय-विमुग्ध हो गये ॥ २३ ॥

शुष्कपत्राणि संचूर्ण्य भक्षयामो वने वयम्।
ते कृता धरताम्बूलरसज्ञा धर्मसूनुना ॥ २४ ॥

(और कहने लगे—) 'हमलोग तो वनमें रहकर सूखे पत्तोंका चूर्ण बनाकर भोजन करनेवाले थे; परंतु आज धर्मनन्दन युधिष्ठिरने हमें उत्तम ताम्बूलके रसका अनुभवी बना दिया' ॥ २४ ॥

जैमिनिरुवाच

ब्राह्मणैः सहितो राजा क्षत्रियैश्च महाबलैः।
उपविष्टः स यज्ञान्ते सकृष्णो यज्ञमण्डपे ॥ २५ ॥
ततः प्राप्तौ विप्रवरौ विवदन्तौ हि संसदि।
धर्मराजं समागत्य प्रोचतुर्वचनं नृप ॥ २६ ॥
धर्मराजावयोर्वादं सम्यक् छिन्धि महामते।

जैमिनिजी कहते हैं—नरेश्वर जनमेजय ! यज्ञ समाप्त हो जानेपर जब राजा युधिष्ठिर ब्राह्मणों तथा महाबली क्षत्रियोंसे घिरे हुए श्रीकृष्णके साथ यज्ञ-मण्डपमें विराजमान थे, उसी समय दो विप्रवर परस्पर विवाद करते हुए राज-सभामें आये और युधिष्ठिरके पास जाकर यों कहने लगे—'धर्मराज ! आपकी बुद्धि तो बड़ी गम्भीर है, अतः आप हम दोनोंके इस झगड़े-को उचित रीतिसे निपटा दीजिये' ॥ २५-२६½ ॥

राजोवाच

बकदाल्भ्यमुखाः सन्ति वसिष्ठात्रिपुरोगमाः ॥ २७ ॥
यत्र सभ्याः सुमनसस्तत्र वादकथा हि का।
निरूपयस्व विप्रेन्द्र कारणं स्वं पृथक् पृथक् ॥ २८ ॥

तब राजा युधिष्ठिरने कहा—विप्रेन्द्र ! जहाँ महर्षि बकदाल्भ्य, वसिष्ठ और अत्रि आदि उत्तम विचारवाले सभासद् बैठे हुए हैं, वहाँ विवादको निपटानेकी बात ही क्या है ! अच्छा, अब आपलोग पृथक्-पृथक अपने कलहका कारण वर्णन कीजिये ॥ २७-२८ ॥

ब्राह्मण उवाच

एभिस्तु मत्करे दत्तं क्षेत्रं स्वीयं यथाक्रमम्।
तत् पुनः कर्षितं तस्मान्निधानं निर्गतं नृप ॥ २९ ॥

ब्राह्मण बोला—नरेश्वर ! इन्होंने अपना खेत मेरे हाथमें सौंप दिया था। जब मैंने क्रमशः उसे जोतवाया, तब उसमेंसे खजाना निकला है ॥ २९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धान्यमेव मया ग्राह्यं यत् क्षेत्रे जायते पुनः ।
निधानं न ग्रहीष्येऽहं न मदीयं हि तद् ध्रुवम् ॥ ३० ॥

अब उस खेतमें उत्पन्न हुए अन्नको ग्रहण करना तो मेरे लिये उचित है, परंतु मैं उस खजानेको नहीं लूँगा; क्योंकि निश्चय ही वह मेरा नहीं है ॥ ३० ॥

एभिरेव तु तद् ग्राह्यं मया त्यक्तं नृपाधुना ।
पश्य मां पीडयन्त्येते निधानेन गतत्रपाः ॥ ३१ ॥

राजन् ! इसीलिये मैंने उसका परित्याग कर दिया है, अतः अब इन्हें उस खजानेको स्वीकार कर लेना चाहिये; परंतु देखिये, ये निर्लज्ज होकर उसे ग्रहण करनेके लिये मुझे कष्ट दे रहे हैं ॥ ३१ ॥

युधिष्ठिर उवाच

सत्यं वद महाबुद्धे किमर्थं पीडयेद्द्विजम् ।
भवान् गृह्णातु तद् द्रव्यं यन्न दत्तं त्वया पुरा ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिरने कहा—महाबुद्धे ! सच-सच बताइये, आप किसलिये ब्राह्मणको पीड़ा दे रहे हैं ? जिसे आपने पहले दिया ही नहीं है, उस द्रव्यको क्यों नहीं ग्रहण करते ? ॥ ३२ ॥

ब्राह्मण उवाच

मया समर्पितं क्षेत्रं पुरास्मै धर्मनन्दन ।
यत्किंचिज्जायते तस्मिन् ब्राह्मणस्य न तन्मम ॥ ३३ ॥

ब्राह्मण बोला—धर्मनन्दन ! पहले मैंने इन्हें यह खेत इस शर्तपर समर्पित किया था कि उसमें जो कुछ उत्पन्न होगा, वह ब्राह्मणका होगा, न कि मेरा ॥ ३३ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं कृष्णः प्रत्युवाच हसन्निव ।
मासत्रयं तु विप्रेन्द्रौ स्थिरौ भवितुमर्हथः ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणकी बात सुनकर श्रीकृष्ण हँसते हुए-से बोले—'विप्रेन्द्रो ! तीन मासतक आपलोगोंको शान्त रहना चाहिये' ॥

कृष्णवाक्येन तुष्टौ तौ क्षिप्त्वा वित्तं नृपालये ।
जग्मतुश्च गृहं राजन् प्रतीक्षन्तौ च तद् दिनम् ॥ ३५ ॥

राजन् ! श्रीकृष्णके इस कथनसे उन दोनों ब्राह्मणोंको संतोष हो गया । फिर वे उस धनको राजमहलमें छोड़कर अपने-अपने घर चले गये और उस दिनके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ३५ ॥

राजोवाच

अधुना माधव कथं निर्णयो न त्वया कृतः ।
सर्वेषां पश्यतामेव विस्मयो मे महान् विभो ॥ ३६ ॥

राजा युधिष्ठिरने पूछा—माधव ! इस समय सबके सामने ही आपने झगड़ेका निर्णय क्यों नहीं किया ? विभो ! यह देखकर तो मुझे महान् विस्मय हो रहा है ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

ऋषयः सन्ति राजानः सुखेन तव संनिधौ ।
यज्ञान्ते मुदिता लोका मध्ये वादकथा कथम् ॥ ३७ ॥

श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! इस यज्ञान्तके अवसरपर जब कि ऋषिगण और राजालोग आपके संनिकट सुखपूर्वक बैठे हैं और सभी लोग आनन्दमग्न हैं, इस बीचमें झगड़ेका प्रसङ्ग कैसे चलाया जाय ? ॥ ३७ ॥

मासे तृतीये घोरस्तु भविष्यति कलिर्नृप ।
द्रव्यार्थं विवदन्तौ हि ताडयन्तौ परस्परम् ॥ ३८ ॥
मुष्टामुष्टि सम्प्रहारं केशाकेशि नखानखि ।
आगन्तारौ च ते पार्श्वं कलिना मथितौ नृप ॥ ३९ ॥
त्वं तद्धनं द्विधा कृत्वा ताभ्यां दास्यसि मे मतिः ।

नरेश्वर ! आजसे तीसरे महीनेमें भयंकर कलियुगका प्रवेश होगा । उस समय कलिसे पीड़ित हुए ये दोनों ब्राह्मण इस द्रव्यके लिये विवाद करते हुए एक-दूसरेको पीटेंगे और मुक्कोंसे, केशोंको खींचकर तथा नखोंसे बकोटकर परस्पर प्रहार करते हुए आपके पास आयेंगे । तब आप उस धनको दो भागोंमें विभक्त करके दोनों ब्राह्मणोंको देंगे—ऐसा मेरी बुद्धिमें आ रहा है ॥ ३८-३९½ ॥

भविष्यन्ति कलौ विप्रा आचारश्रुतिवर्जिताः ॥ ४० ॥
राजानो धर्महीनाश्च पीडयिष्यन्ति ते प्रजाः ।
अधर्मवल्लभो लोको धर्मद्वेषी च मत्सरी ॥ ४१ ॥

कलियुग आनेपर ब्राह्मणोंमें सदाचार नहीं रह जायगा । वे वेदोंसे हीन हो जायँगे । राजाओंमें धर्मभावना नहीं रह जायगी । वे प्रजाओंको पीड़ा पहुँचाते रहेंगे । सारा संसार अधर्मका प्रेमी और धर्मसे द्वेष तथा ईर्ष्या करनेवाला हो जायगा ॥ ४०-४१ ॥

द्यूतमद्यरता नित्यं सर्वे व्यसनिनः सदा ।
देवकार्ये पितॄणां वा साधुस्त्रीभरणे तथा ॥ ४२ ॥
ब्राह्मणार्थे धनं स्वल्पं दत्त्वा ते दुःखभाजिनः ।
भविष्यन्ति कलौ राजन् मुदिता गणिकागृहे ॥ ४३ ॥
नेष्यन्ति च धनं भूरि द्यूतादिव्यसनेष्वपि ।

राजन् ! कलियुगमें सभी लोग नित्य द्यूत और मदिरासे प्रेम करनेवाले तथा सदा व्यसनपरायण होंगे । वे देवकार्य, पितृकार्य, पतिव्रता स्त्रियोंके भरण-पोषण और ब्राह्मणके लिये थोड़ा-सा ही धन देकर दुःखका अनुभव करेंगे; परंतु वे ही वेश्याओंके घर तथा द्यूत आदि व्यसनोंमें हर्षपूर्वक बहुत-सा धन ले जायँगे ॥ ४२-४३½ ॥

जननीं जीर्णवस्त्रेण वेष्टयिष्यन्ति ते कलौ ॥ ४४ ॥
वेश्यां वा पुंश्चलीं वापि दुकूलैर्विविधैः स्वयम् ।

कलियुगमें वे लोग अपनी माताको तो फटे-पुराने वस्त्र पहननेको देंगे, परंतु वेश्याओं और व्यभिचारिणी स्त्रियोंको अपने हाथसे अनेक प्रकारके रेशमी वस्त्र पहनायेंगे ॥ ४४½ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धत्तूरकस्य पुष्पाणि करवीरभवानि च ॥ ४५ ॥
सकण्टकानि पुष्पाणि नयिष्यन्ति शिवालये।
वरपङ्कजजां मालां कर्पूरं चन्दनं तथा ॥ ४६ ॥
नेष्यन्ति कुमुदं चारु वेश्यास्त्रीकुलटागृहे।

लोग धतूरके फूल तथा करवीरके वृक्षसे उत्पन्न हुए काँटेदार पुष्पोंको तो शिवालयमें ले जाकर शिव-पूजन करेंगे और उत्तम कमल-पुष्पोंकी बनी हुई माला, कपूर, चन्दन तथा सुन्दर कुमुद-पुष्प वेश्याओं एवं कुलटा स्त्रियोंके घर ले जायँगे॥

मातरं पितरं चैव त्यजन्ति हि जनाः कलौ ॥ ४७ ॥
स्त्रीसेवका भविष्यन्ति परिचारकवत् सदा।
जननीं ताडयिष्यन्ति लालयिष्यन्ति स्वां स्त्रियम्॥ ४८॥

कलियुगमें लोग माता-पिताका परित्याग कर देंगे और नौकरकी तरह सदा स्त्रीकी सेवामें तत्पर रहेंगे। वे माताको तो पीटेंगे और अपनी पत्नीके साथ लाड़ लड़ायेंगे ॥४७-४८॥

श्वश्रूश्वशुरयोश्चैव स्नुषाः कलियुगे नृप।
वदिष्यन्त्यप्रियं वाक्यं हृदये शल्यकारकम् ॥ ४९ ॥

जनेश्वर! कलियुग आनेपर बहुएँ सास-ससुरको ऐसे कटु वचन सुनायेंगी, जो हृदयमें काँटेकी तरह चुभेगा ॥ ४९ ॥

न विश्वासं करिष्यन्ति देवेषु ब्राह्मणेषु च।
कर्मभ्रष्टा भविष्यन्ति चतुर्वर्णाः कलौ युगे ॥ ५० ॥
स्वीयं कर्म परित्यज्य परकीयं प्रकुर्वते।

कलियुगमें चारों वर्णोंके लोग कर्मभ्रष्ट हो जायँगे। वे देवताओं तथा ब्राह्मणोंके वचनोंपर विश्वास नहीं करेंगे और अपने (वर्णाश्रमानुकूल) कर्मका परित्याग करके दूसरेका कर्म करनेवाले होंगे ॥ ५०½ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं कृष्णेन कथिताः कलिधर्मा भयावहाः।
ततो वीराः कथाश्चक्रुर्यज्ञान्ते कृष्णपाण्डवाः ॥ ५१ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने कलियुगके भयदायक धर्मोंका वर्णन किया था। तत्पश्चात् यज्ञके अन्तमें श्रीकृष्ण और वीर पाण्डव अनेक प्रकारकी कथाएँ कहने लगे ॥ ५१ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कलिधर्मवर्णनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कलियुगके धर्मका वर्णन नामक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

यज्ञकी समाप्तिपर गर्वयुक्त होकर बैठे हुए युधिष्ठिरकी सभामें एक नकुलका आना और इनके यज्ञसे कुरुक्षेत्रनिवासी शिलोञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणके सत्तूयज्ञको उत्कृष्ट बताना, आश्चर्यचकित हुए सभासदोंके पूछनेपर नकुलद्वारा सत्तू-यज्ञका वर्णन

जैमिनिरुवाच

श्रूयतां राजशार्दूल महदाश्चर्यमुत्तमम्।
अश्वमेधे महायज्ञे निवृत्ते यदभूद् विभो ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजशार्दूल! विभो! उस महान् यज्ञ अश्वमेधके समाप्त होनेपर जो अत्यन्त आश्चर्यजनक एवं उत्तम घटना घटित हुई थी, उसे सुनो ॥ १ ॥

तर्पितेषु द्विजाग्र्येषु ज्ञातिसम्बन्धिबन्धुषु।
दीनान्धकृपणे चापि तदा भरतसत्तम ॥ २ ॥
जायमाने महानादे दिक्षु सर्वासु भारत।
पतत्सु पुष्पवर्षेषु धर्मराजस्य मूर्धनि ॥ ३ ॥
गर्वितोऽभूत् तदा राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
बिलान्निष्क्रम्य नकुलो रुक्मपार्श्वस्तदा नृप ॥ ४ ॥
वज्राशनिसमं नादमसुञ्चत विशाम्पते।
सकृदुत्सृज्य तं नादं त्रासयानो द्विजान् नृपान् ॥ ५ ॥

भरतसत्तम! जब उत्तम ब्राह्मण, कुटुम्बी, सम्बन्धी, भाई-बन्धु सभी संतुष्ट हो गये, दीनों, अंधों और कृपणोंको भी सब तरहसे तृप्त कर दिया गया, सम्पूर्ण दिशाओंमें (जय-जयकारका) महान् शब्द गूँजने लगा और धर्मराजके मस्तकपर पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी, तब धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिरको कुछ गर्व हो आया। राजन्! उसी समय एक नेवला, जिसका एक पार्श्वभाग सोनेका था, बिलसे निकलकर वहाँ आया और उसने वज्रकी गड़गड़ाहटके समान भयंकर शब्द किया। प्रजानाथ! यद्यपि उसने एक ही बार वह शब्द किया था तथापि उससे सभी ब्राह्मण और नृपतिगण भयभीत हो गये ॥ २-५ ॥

मानुषं वचनं प्राह धृष्टो बिलशयो महान्।
सकृत्प्रस्थेन वो नायं यज्ञस्तुल्यो नराधिप ॥ ६ ॥
उञ्छवृत्तेर्वदान्यस्य कुरुक्षेत्रनिवासिनः।

बिलमें निवास करनेवाला वह नेवला अत्यन्त ढीठ था। वह मनुष्यकी-सी वाणीमें कहने लगा—'नरेश्वर! आपका यह यज्ञ तो उञ्छवृत्तिसे जीवन-यापन करनेवाले कुरुक्षेत्रनिवासी उदारचेता उस ब्राह्मणके सेरभर सत्तूदानके भी तुल्य नहीं हुआ' ॥ ६½ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा नकुलस्य विशाम्पते ॥ ७ ॥
विस्मयं परमं जग्मुः सर्वे ते ब्राह्मणर्षभाः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रजानाथ ! उस नेवलेकी वैसी बात सुनकर उन सभी विप्रवरोंको परम विस्मय हुआ ॥ ७½ ॥

ततः समेत्य नकुलं पर्यपृच्छन्त ते द्विजाः ॥ ८ ॥
कुतस्त्वं समनुप्राप्तो ह्यस्मिन् यज्ञसमागमे ।
किं बलं परमं तुभ्यं किं श्रुतं किं परायणम् ॥ ९ ॥
कथं भवन्तं विद्यामो यो नो यज्ञं विगर्हसे ।

तदनन्तर वे ब्राह्मण नेवलेके पास जाकर उससे पूछने लगे—'इस यज्ञ-समारोहके अवसरपर तुम कहाँसे आये हो ? तुम्हारेमें कौन-सा उत्कृष्ट बल है ? तुमने कितना शास्त्राध्ययन किया है और तुम किसके भक्त हो ? हमलोग कैसे जानें कि तुम कौन हो, जो इस प्रकार हमारे यज्ञकी निन्दा कर रहे हो ?' ॥

अविलुप्यागमं कृत्स्नं विविधैर्याज्ञिकैः कृतम् ॥ १० ॥
यथागमं यथान्याय्यं कर्तव्यं च तथा कृतम् ।
पूजार्हाः पूजिता यत्र विधिवच्छास्त्रचक्षुषा ॥ ११ ॥
मन्त्रपूर्वं हुतश्चाग्निर्दानं दत्तममत्सरम् ।
तुष्टा द्विजर्षभाश्चात्र दानैर्वहुविधैरपि ॥ १२ ॥

'यह यज्ञ बहुत-से याज्ञिकोंद्वारा निखिल शास्त्रोंके आधार-पर ही सम्पन्न हुआ है । इस यज्ञमें जो कार्य जैसा शास्त्रोंमें वर्णित था तथा उसे जिस विधिसे करना चाहिये था, वह तदनुकूल ही किया गया है । इसमें शास्त्रविधानानुसार पूज-नीयोंकी विधिवत् पूजा की गयी है । मन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्निमें हवन किया गया है । मत्सररहित होकर दान दिया गया है । अनेक प्रकारके दानोंसे श्रेष्ठ द्विजोंको भी तृप्त किया गया है ॥ १०—१२ ॥

क्षत्रियाश्च सुयुद्धेन श्राद्धैरपि पितामहाः ।
पालनेन विशस्तुष्टाः कामैः शूद्राश्च योषितः ॥ १३ ॥

'उत्तम युद्धसे क्षत्रिय, श्राद्धोंसे पितामह आदि पितर, पालन-पोषणसे वैश्य और कामनापूर्तिसे शूद्र तथा स्त्रियाँ संतुष्ट हो चुकी हैं ॥ १३ ॥

अनुक्रोशैस्तथा दानैराशीर्भिश्च पृथग् जनाः ।
ज्ञातिसम्बन्धिनस्तुष्टाः शौचेन च नृपस्य नः ॥ १४ ॥

'दया, दान और आशीर्वादोंसे पृथक्-पृथक् लोगोंको प्रसन्न किया गया है । हमारे राजाके शौचाचारसे उनके भाई-बन्धु एवं सम्बन्धी भी संतुष्ट हैं ॥ १४ ॥

देवा हविर्भिः पुण्यैश्च रक्षणैः शरणार्थिनः ।
यदत्र न्यूनं तद् ब्रूहि सभायां ब्राह्मणस्य हि ॥ १५ ॥

'पवित्र हविष्यान्नद्वारा देवताओंको तृप्त किया गया है । शरणागतोंकी भलीभाँति रक्षा की गयी है । अब इस यज्ञमें जो न्यूनता रह गयी है, वह तुम इस ब्राह्मणोंकी सभामें बतलाओ ॥

श्रद्धेयवाक्यः प्राज्ञस्त्वं दिव्यरूपं बिभर्षि च ।
सभागतैश्च पृष्टस्त्वं तत्त्वतो वक्तुमर्हसि ॥ १६ ॥

'तुम तो बड़े विद्वान् हो । तुम्हारे वचन भी श्रद्धाके पात्र हैं और तुमने दिव्य रूप भी धारण कर रखा है, अतः इन सभासदोंद्वारा किये गये प्रश्नका उत्तर तुम्हें यथार्थरूपसे देना चाहिये' ॥ १६ ॥

इति पृष्टो द्विजैस्तैश्च प्रहस्य नकुलोऽब्रवीत् ।
नैषानृता मया वाणी प्रोक्ता गर्वेण वा द्विजाः ॥ १७ ॥
यन्मयोक्तमिदं सर्वं युष्माभिश्चाप्युपश्रुतम् ।
सक्तुप्रस्थेन वो नायं यज्ञस्तुल्यो नराधिप ॥ १८ ॥
उञ्छवृत्तेर्वदान्यस्य कुरुक्षेत्रनिवासिनः ।

उन ब्राह्मणोंके ऐसा पूछनेपर वह नेवला हँस पड़ा और यों कहने लगा—'द्विजगण ! मैंने जो यह कहा है कि 'नरेश्वर ! आपका यह यज्ञ उञ्छवृत्तिसे जीवन-निर्वाह करनेवाले कुरुक्षेत्र-निवासी उस उदारचेता ब्राह्मणके सेरभर सत्तूदानके बराबर नहीं हुआ ।' मेरा यह कथन न तो असत्य है और न यह मेरी गर्वोक्ति ही है । आपलोगोंने भी इसे सुना होगा ॥ १७-१८½ ॥

शृणुताव्यग्रमनसः शंसतो मे द्विजर्षभाः ॥ १९ ॥
अनुभूतं च दृष्टं च यन्मयाद्भुतमुत्तमम् ।

'द्विजवरो ! मैंने जिस उत्तम एवं अद्भुत घटनाको अपनी आँखों देखा तथा अनुभव किया है, उसे बतला रहा हूँ; अब आपलोग सावधान-मनसे उसे सुनिये ॥ १९½ ॥

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे धर्मज्ञैर्वहुभिर्वृते ॥ २० ॥
उञ्छवृत्तिर्द्विजः कश्चित् कापोतीं वृत्तिमाश्रितः ।
सभार्यः सहपुत्रेण सस्नुषस्तपसि स्थितः ॥ २१ ॥

'कुरुक्षेत्र एक धर्मक्षेत्र है । वहाँ बहुत-से धर्मज्ञजन निवास करते हैं । उसी कुरुक्षेत्रमें एक ब्राह्मण अपनी पत्नी, पुत्र तथा पुत्रवधूके साथ कापोती-वृत्तिका आश्रय लेकर तपस्या कर रहे थे । उञ्छवृत्तिसे ही उनका जीवन-निर्वाह होता था ॥ २०-२१ ॥

वधूचतुर्थो वृद्धः स धर्मात्मा नियतेन्द्रियः ।
षष्ठे काले सदा विप्रो भुङ्क्ते तैः सह सुव्रतः ॥ २२ ॥

'उनके परिवारमें पुत्रवधूसहित चार व्यक्ति थे । वे उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय थे । उनकी अवस्था वृद्ध हो चली थी, फिर भी वे अपने परिवारके साथ सदा छठे समय ही भोजन करते थे ॥ २२ ॥

कपोतधर्मिणस्तस्य दुर्भिक्षे सति दारुणे ।
नाभविष्यत्तदा विप्राः संचयस्तन्निबोध मे ॥ २३ ॥

'ब्राह्मणो ! एक बार महान् भयंकर अकाल पड़ गया, उस समय उन कपोतधर्मी ब्राह्मणके पास अन्नका संचय न हो सका । अतः अब आगेका वृत्तान्त मुझसे सुनिये ॥ २३ ॥

क्षीणौषधिसमावेशे द्रव्यहीनोऽभवत् तदा ।
काले काले सुसम्प्राप्ते नैवाश्नीयत भोजनम् ॥ २४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'उस अकालके समय अन्नका अभाव हो जानेके कारण जब ब्राह्मणके पास अन्नका संग्रह नहीं रह गया, तब बार-बार छठा समय आता था और यों ही चला जाता था, परंतु उन्हें भोजन नहीं मिलता था ॥ २४ ॥

क्षुधा परिगताः सर्वे प्रातिष्ठन्त तदा तु ते।
उञ्छस्तदा शुक्लपक्षे मध्ये तपति भास्करे ॥ २५ ॥

'तब भूखसे पीडित होकर वे सबके सब दाने बीननेके लिये चले। उस समय शुक्लपक्ष था और सूर्य आकाशके मध्यमें तप रहे थे अर्थात् दोपहरका समय था ॥ २५ ॥

तृषार्तश्च क्षुधार्तश्च स विप्रस्तपसि स्थितः।
उञ्छं न प्राप्तवानेव सार्धं परिजनैस्ततः ॥ २६ ॥

'वह तपस्वी ब्राह्मण अपने परिवारके साथ भूख और प्याससे व्याकुल हो गया; परंतु उसे अन्नके दाने नहीं मिले ॥

स तथैव क्षुधाविष्टः स्पृष्ट्वा तोयं यथाविधि।
क्षपयामास तं कालं सार्धं परिजनेन वै ॥ २७ ॥

'तब भूखसे व्याकुल हुए उस ब्राह्मणने परिवारसहित जलका स्पर्श करके निराहार अवस्थामें ही उस समयको भी व्यतीत किया ॥ २७ ॥

अथ षष्ठे गते काले स यवप्रस्थमर्जयत्।
यवप्रस्थेन ते सक्तूनकुर्वंस्तु तपस्विनः ॥ २८ ॥

'तदनन्तर उस छठे कालके बीत जानेपर उस ब्राह्मणने एक सेर जौ इकट्ठा किया। फिर तो उन सभी तपस्वियोंने मिलकर उस जौका सत्तू बनाया ॥ २८ ॥

कृतजप्याह्निकास्ते तु हुत्वाग्निं च यथाविधि।
कुडवं कुडवं सर्वे व्यभजन्त तपस्विनः ॥ २९ ॥

'तत्पश्चात् उन सभी तपस्वियोंने नाम-जप आदि अपना नित्यकर्म किया और यथाविधि अग्निमें आहुतियाँ डालीं। फिर परस्पर पाव-पाव भर सत्तूका हिस्सा लगाया गया ॥ २९ ॥

अथागमद् द्विजः कश्चिदतिथिर्भुञ्जतां तदा।
तं पूजयित्वा विधिवत् स विप्रः प्रीतमानसः ॥ ३० ॥
प्रोवाच मधुरं वाक्यं मनःप्राह्लादकारकम्।

'ज्यों ही वे भोजन करनेके लिये बैठे त्यों ही कोई ब्राह्मण अतिथि आ पहुँचा। उस अतिथिको देखकर ब्राह्मणका मन प्रसन्न हो गया। उसने विधिपूर्वक उसका आतिथ्य किया और मनको आनन्द देनेवाला मीठा वचन कहना आरम्भ किया ॥ ३०½ ॥

विप्र उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि पावितोऽस्मि यतो भवान्।
प्राप्तोऽस्यतिथिवेलायां घर्मार्तस्येव तोयदः ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणने कहा—ब्रह्मन्! आपने मुझपर बड़ी कृपा की, जो इस अतिथिवेलामें पधारकर मुझे पावन बनाया। मैं तो धन्य हो गया। आपका आगमन मुझे वैसा ही सुख दे रहा है, जैसे घामसे पीडित हुए प्राणीको बादल सुखद होता है ॥

स्वागतं ते द्विजश्रेष्ठ भूयः सुस्वागतं तव।
सनाथः क्रियतां ब्रह्मन्नुटजोऽयं प्रविश्यताम् ॥ ३२ ॥

द्विजश्रेष्ठ! आप भले पधारे! आपका बारंबार स्वागत है। ब्रह्मन्! अब इस कुटियामें प्रवेश करके मुझे सनाथ करनेकी कृपा कीजिये ॥ ३२ ॥

ते गृहा गृहिणः सत्या येषु मार्गश्रमातुराः।
स्वगृहेष्विव विश्रान्ता भवन्ति च भवादृशः ॥ ३३ ॥

गृहस्थोंके वे ही घर यथार्थरूपमें घर कहलाने योग्य हैं, जिनमें आप-सरीखे मार्गके थके-माँदे अतिथि अपने गृहकी भाँति विश्राम करके सुखका अनुभव करते हैं ॥ ३३ ॥

अहोऽतीव सभाग्यास्ते निःस्वापि गृहमेधिनः।
येषामशून्या दिवसा गच्छन्त्यतिथिपूजनैः ॥ ३४ ॥

अहो! दरिद्र होनेपर भी वे गृहस्थ महान् भाग्यशाली हैं, जिनके दिन अतिथि-सत्कारके बिना नहीं बीतते अर्थात् जिन्हें प्रतिदिन आतिथ्य करनेका सुअवसर प्राप्त होता रहता है ॥ ३४ ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ ३५ ॥

तृण, भूमि, जल और चौथी प्रिय वाणी—इनका सत्पुरुषोंके घरमें कभी भी अभाव नहीं होता ॥ ३५ ॥

देयमार्तस्य शरणं पथि श्रान्तस्य चासनम्।
तृषितस्य तु पानीयं क्षुधितस्यापि भोजनम् ॥ ३६ ॥

दुखी होकर शरणमें आये हुएको आश्रय, मार्गके थके-माँदेको आसन, प्यासेको पीनेयोग्य जल और भूखेको भोजन देना चाहिये ॥ ३६ ॥

चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद् वाचं दद्यात् सुकोमलाम्।
अभ्युत्थानानुव्रजनं कुर्यान्न्यायेन चार्चनम् ॥ ३७ ॥

जो अपने घरपर आ जाय, उसे स्नेहभरी दृष्टिसे देखे। उसे देखकर मनको प्रसन्न रखे, अत्यन्त कोमल वाणीका प्रयोग करे, न्यायपूर्वक उसका आदर-सत्कार करे और जब वह जाने लगे, तब उठकर उसके पीछे-पीछे कुछ दूरतक जाय॥

नकुल उवाच

एवमुक्त्वा स धर्मात्मा तमभ्यर्च्य यथाविधि।
स्वभागं प्रददौ हृष्टो न च तृप्यति तेन सः ॥ ३८ ॥

नकुल कहता रहा—विप्रवरो! यों कहकर उस धर्मात्मा ब्राह्मणने विधिपूर्वक उस अतिथिकी पूजा की और प्रसन्नमनसे अपने भागका सत्तू उसे प्रदान कर दिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परंतु उतनेसे वह अतिथि तृप्त नहीं हुआ ॥ ३८ ॥

ततोऽस्य भार्या क्षुत्क्षामा वृद्धा म्लाना तपस्विनी।
त्वगस्थिभूता वेपन्ती भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

तब उस ब्राह्मणकी वृद्धा तपस्विनी पत्नी, जो भूखसे दुर्बल एवं कुम्हला गयी थी तथा जिसके शरीरमें चमड़ा और हड्डीमात्र शेष रह गया था, काँपती हुई अपने पतिसे निम्नाङ्कित वचन बोली ॥ ३९ ॥

भार्योवाच

ममापि भागो भो स्वामिन् दीयतां मा विचारय।
अर्थिनामन्नदानेन कृतार्था स्यामहं ध्रुवम् ॥ ४० ॥

भार्याने कहा—स्वामिन्! चिन्ता मत कीजिये। आप मेरे हिस्सेका भी सत्तू दे डालिये; क्योंकि अन्नार्थीको अन्नदान करनेसे निश्चय ही मैं कृतार्थ हो जाऊँगी ॥ ४० ॥

ब्राह्मण उवाच

अपि कीटपतङ्गानां मृगादीनां च शोभने।
स्त्रियो रक्ष्याश्च पोष्याश्च न चैवं वक्तुमर्हसि ॥ ४१॥
धर्मकामार्थकार्याणि शुश्रूषा कुलसंततिः।
दारेष्वधीनः स्वर्गश्च पितॄणामात्मनस्तथा ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणने कहा—शोभने! तुम्हारा ऐसा कहना उचित नहीं है; क्योंकि कीट-पतंग और पशु आदि भी अपनी स्त्रियोंकी रक्षा एवं भरण-पोषण करते हैं; क्योंकि धर्म, अर्थ और कामसम्बन्धी कार्य, सेवा, कुलको बढ़ानेवाली संतति, अपनेको तथा पितरोंको स्वर्गकी प्राप्ति—ये सब पत्नीके ही अधीन रहते हैं ॥ ४१-४२ ॥

भुङ्क्ष्व तस्मात् स्वसक्तूंश्च न ते कश्चिदतिक्रमः।
अनुज्ञाता मया भद्रे कुरु वाक्यं मयेरितम् ॥ ४३ ॥

इसलिये भद्रे! तुम अपने भागका सत्तू खा लो। इससे तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा; क्योंकि मैं आज्ञा दे रहा हूँ। जाओ, मेरी आज्ञाका पालन करो ॥ ४३ ॥

यो नानुकम्पते भार्यां न पुष्णाति नराधमः।
न यशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति ॥ ४४ ॥

जो नराधम अपनी पत्नीपर न तो दयाभाव रखता है और न उसका भरण-पोषण ही करता है, उसे उत्तम यशकी प्राप्ति नहीं होती और वह नरकमें जाता है ॥ ४४ ॥

ब्राह्मण्युवाच

सहधर्मचरौ धात्रा सृष्टौ भार्यापती द्विज।
तस्मान्महति धर्मे त्वं न बाधां कर्तुमर्हसि ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणी बोली—पतिदेव! ब्रह्माने पति और पत्नीको साथ रहकर धर्माचरण करनेके लिये बनाया ही है, इसलिये आपका इस महान् धर्ममें बाधा पहुँचाना उचित नहीं है ॥

पतिर्नार्याः परो धर्मः पतिरेव हि दैवतम्।
पतिरेव परो बन्धुः पतिरेव परा गतिः।
धर्ममर्थं च कामं च यशः स्वर्गतिरेव च ॥ ४६ ॥
पत्यौ प्रसन्ने स्त्री सर्वमेतत् प्राप्नोत्यसंशयम्।

स्त्रीके लिये पति ही उत्कृष्ट धर्म है, पति ही देवता है, पति ही घनिष्ठ भाई-बन्धु है, पति ही परम गति है तथा धर्म, अर्थ, काम, यश और स्वर्गलोककी प्राप्ति भी पति ही है। पतिदेवके प्रसन्न हो जानेपर स्त्रीको निस्संदेह ये सारी वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ ४६½ ॥

कर्मणा मनसा वाचा या स्त्री पतिमनुव्रता ॥ ४७ ॥
इह चैव महाभागा सा देवैरपि पूज्यते।

जो स्त्री मन, वचन और कर्मसे पतिका अनुवर्तन करती है, वही इस लोकमें महान् भाग्यवती कहलाती है और देवतालोग भी उसका आदर करते हैं ॥ ४७½ ॥

न मया त्वय्यभुक्ते तु भुक्तपूर्वं कदाचन ॥ ४८ ॥
व्रतमेतद् विदित्वा तु त्वं सक्तून् दातुमर्हसि।

नाथ! बिना आपके भोजन किये मैंने अबतक कभी भी पहले आहार नहीं ग्रहण किया है। मेरे इस व्रतपर ध्यान देकर आप मेरे हिस्सेका सत्तू अवश्य दे डालिये ॥ ४८½ ॥

नकुल उवाच

एवमुक्तो गृहीत्वा तान् सक्तून् सोऽतिथये ददौ ॥४९॥
भक्षयित्वातिथिस्तांश्च नैव तृप्तोऽभवत् तदा।
ततः पुत्रो विनीतात्मा पितरं प्राह धर्मवित् ॥ ५० ॥

नेवला कहता रहा—द्विजवरो! तब पत्नीके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणने उन सत्तुओंको लेकर अतिथिको दे दिया; परंतु उन्हें खाकर भी जब वे अतिथि देवता तृप्त नहीं हुए, तब विनयी तथा धर्मज्ञ पुत्रने पितासे कहा ॥ ४९-५० ॥

पुत्र उवाच

तृप्त्यर्थमतिथेस्तात मद्भागोऽपि प्रदीयताम्।
किं तस्य जीवितफलं प्राप्तो यस्याशयातिथिः ॥ ५१ ॥
शून्यादिव गृहाद् दीनो निराशः प्रतिगच्छति।

पुत्र बोला—पिताजी! अतिथिदेवकी तृप्तिके लिये आप मेरा भाग भी उन्हें दे दीजिये; क्योंकि जिसके घरपर किसी आशासे प्रेरित होकर आया हुआ अतिथि सूने घरकी भाँति वहाँसे दीन एवं निराश होकर लौट जाता है, उस गृहस्थके जीवनसे क्या लाभ हुआ अर्थात् उसका जीना निरर्थक है ॥

विष्णुमुद्दिश्य ये चान्नमात्मानं पीडयन्त्यपि ॥ ५२ ॥
ददति ते हरेर्लोके पूज्यन्ते दैवतैरपि।

जो लोग स्वयं कष्ट सहकर भी अतिथिको विष्णु-तुल्य समझकर उन्हें अन्न प्रदान करते हैं, इन्द्रलोकमें देवगण भी उनकी पूजा करते हैं ॥ ५२½ ॥

तेनार्जितेन वित्तेन किं तेषां दुष्टचेतसाम् ॥ ५३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिगच्छति।
अतएव मया चैव भागो देयो द्विजन्मने ॥ ५४ ॥

जिनके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उन दुष्टात्मा पुरुषोंके उस संचित धनसे क्या लाभ ? इसलिये मुझे इन ब्राह्मणको अपना भाग अवश्य दे देना चाहिये ॥५३-५४॥

कुटुम्बं पीडयित्वा तु त्यक्त्वा लोभं विमत्सरः।
ददाति योऽतिथेरन्नं स याति परमां गतिम् ॥ ५५ ॥

जो मनुष्य परिवारको थोड़ा कष्ट भी होता हो तो भी उसकी परवा न करके लोभ त्यागकर ईर्ष्यारहित हो अतिथिको अन्न देता है, उसे परम गतिकी प्राप्ति होती है ॥ ५५ ॥

पितोवाच

अपि वर्षशतायुस्त्वं बाल एव मतो मम।
बालानां क्षुद् बलवती तस्मात् त्वं भुङ्क्ष्व पुत्रक ॥ ५६॥

पिताने कहा—बेटा ! तेरी आयु सौ वर्षकी हो जाय तो भी तू मेरे लिये बालक ही है और बालकोंकी क्षुधा बड़ी बलवती होती है, इसलिये तू अपना सत्तू खा ले ॥ ५६ ॥

जयन्ति लोकान् पुत्रेण श्रुतिरेषा सनातनी।
त्वया तु जीवता पुत्र लोकाः सर्वे हिता मम ॥ ५७ ॥
तस्माज्जिगीषता लोकान् रक्ष्यस्त्वं सर्वथा मया।

पुत्रके रहनेसे मनुष्य उत्तम लोकोंको जीत लेते हैं—ऐसी सनातनी श्रुति है। अतः बेटा ! तेरे जीवित रहनेसे वे सभी लोक मेरे लिये हितावह होंगे; इसलिये उन लोकोंपर विजय पानेकी इच्छावाले मुझको सर्वथा तेरी रक्षा करनी चाहिये ॥ ५७½ ॥

यस्मान्ममासि पुत्रस्त्वं नाहं मृत्योर्बिभेम्यतः ॥ ५८ ॥
प्रायशः पापकारित्वान्मृत्योरुद्विजते जनः।
कृतकृत्याः प्रतीक्ष्यन्ते मृत्युं प्रियमिवातिथिम् ॥ ५९ ॥

बेटा ! जिस पुण्यके फलस्वरूप तू मेरा पुत्र हुआ है, उसी पुण्यके बलपर मुझे मृत्युका भय नहीं है; क्योंकि प्रायः पापाचरणके कारण ही मनुष्य मृत्युसे उद्विग्न होता है, परंतु जो लोग कृतकृत्य हो चुके हैं, वे तो प्यारे अतिथिकी तरह मृत्युकी प्रतीक्षा करते रहते हैं ॥ ५८-५९ ॥

पुत्र उवाच

पूर्वे वयसि पुष्णाति पिता पुत्रमिति श्रुतिः।
उत्तरे पितरं पुत्रस्तस्मात् सक्तून् प्रयच्छ मे ॥ ६० ॥

पुत्र बोला—पिताजी ! श्रुति तो ऐसा कहती है कि बाल्यावस्थामें पिता पुत्रका भरण-पोषण करता है और बुढ़ापा आनेपर पुत्र पिताकी रक्षा करता है; इसलिये आप मेरे हिस्सेका सत्तू दे डालिये ॥ ६० ॥

नकुल उवाच

इत्युक्तः स गृहीत्वा तु सक्तून् सोऽतिथये ददौ।
भुक्त्वा तानपि सर्वांस्तु नैव तृप्तिमवाप्तवान् ॥ ६१ ॥

नेवला कहता रहा—ब्राह्मणो ! पुत्रके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणने उसके हिस्सेका भी सत्तू लेकर अतिथिको दे दिया; परंतु वह सब खा लेनेपर भी अतिथिदेवकी तृप्ति नहीं ही हुई ॥ ६१ ॥

ततः प्रीता स्नुषा प्राह श्वशुरं विनयान्विता।
मद्भागोऽपि महाभाग विप्रस्यास्य प्रदीयताम् ॥ ६२॥

तदनन्तर विनयशीला पुत्रवधूने प्रसन्नतापूर्वक अपने श्वशुरसे कहा—'महाभाग ! मेरा भाग भी इन ब्राह्मणदेवको दे दीजिये' ॥ ६२ ॥

श्वशुर उवाच

योषिद् बाला स्नुषा साध्वी नियमव्रतकर्शिता।
कुलसंततिहेतुश्च रक्ष्या त्वं सर्वदा मया ॥ ६३ ॥

श्वशुरने कहा—बेटी ! मुझे तो तेरी सर्वदा रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि तू स्त्री है, अभी तेरी बाल्यावस्था है, तू मेरी पतिव्रता पुत्रवधू है तथा नियमों और व्रतोंका पालन करनेके कारण यों ही दुबली हो गयी है और मेरे कुलकी संततिकी कारण भी तो तू ही है ॥ ६३ ॥

गुरुशुश्रूषणे सक्तां नियमस्थां पतिव्रताम्।
त्वां दृष्ट्वा म्लानवदनां पीड्यते च मनो मम ॥ ६४॥

तू नियमोंका पालन करती हुई गुरुजनोंकी सेवामें तत्पर रहती है। तुझ पतिव्रताका कुम्हलाया हुआ मुख देखकर मेरे मनमें महान् कष्ट हो रहा है ॥ ६४ ॥

स्नुषोवाच

मम त्वं स्वामिनः स्वामी देवतायाश्च देवता।
गुरोर्गुरुर्गरीयांश्च नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ६५॥

पुत्रवधू बोली—श्वशुरजी ! आप मेरे पतिदेवके स्वामी, देवताके देवता और गुरुके भी श्रेष्ठ गुरु हैं। आपका ऐसा कहना उचित नहीं है ॥ ६५ ॥

अनुकम्प्येति संचिन्त्य दृढभक्तेति वा पुनः।
प्रयच्छ भगवन् सक्तून् दीनामनुगृहाण माम् ॥ ६६ ॥

भगवन् ! मुझ दीनपर अनुग्रह कीजिये और मुझे अपना कृपापात्र अथवा दृढ़ भक्त समझकर मेरे हिस्सेका सत्तू दे डालिये ॥ ६६ ॥

नकुल उवाच

ततस्तानपि सक्तून् स गृहीत्वातिथये ददौ।
बुभुजेऽथातिथिः सर्वान् न चासौ चुक्षुभे द्विजः॥ ६७॥
अनुग्रहं मन्यमानः सकुटुम्बो महातपाः।
धर्मवर्त्मनियुक्तात्मा न चचालाचलोपमः ॥ ६८॥

नकुल कहता रहा—द्विजवरो ! तदनन्तर ब्राह्मणने वह सत्तू भी लेकर अतिथिको दे दिया। तब वह अतिथि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सारा-का-सारा सत्तू खा गया। फिर भी उन ब्राह्मणके मनमें जरा-सा भी क्षोभ नहीं हुआ; क्योंकि वे महान् तपस्वी थे। उन्होंने अपने आत्माको धर्ममार्गमें नियुक्त कर रखा था, इसलिये वे परिवारसहित उस अतिथिका अनुग्रह मानते हुए पर्वतकी भाँति अपने मार्गसे विचलित नहीं हुए ॥ ६७-६८ ॥

तं शुद्धभावं विज्ञाय प्रीतः प्रोवाच सोऽतिथिः।
धर्मोऽहं द्विजरूपेण जिज्ञासुस्त्वामिहागतः ॥ ६९ ॥

तब उस ब्राह्मणको शुद्ध भावसे भावित जानकर वह अतिथि प्रसन्न हो गया और कहने लगा—'ब्रह्मन्! मैं धर्म हूँ और तुम्हारी परीक्षा लेनेकी इच्छासे ब्राह्मणका रूप धारण करके यहाँ आया हूँ ॥ ६९ ॥

दमस्तपो दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सत्यं क्षमाऽऽर्जवं ज्ञानमित्येते सूनवो मम ॥ ७० ॥
तस्मान्नित्यमिमान् यस्तु भक्त्या मेभजते नरः।
तस्य भक्तिमतस्तुष्टो गतिमिष्टां ददाम्यहम् ॥ ७१ ॥

'विप्रवर! दम, तप, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, सत्य, क्षमा, आर्जव और ज्ञान—ये मेरे दस पुत्र हैं; इसलिये जो मनुष्य सदा भक्तिपूर्वक मेरे इन पुत्रोंका सेवन करता है, उस भक्तिमान्पर प्रसन्न होकर मैं उसे मनोवाञ्छित गति प्रदान करता हूँ ॥ ७०-७१ ॥

यस्मात्तु शुद्धभावेन दत्तमुञ्छार्जितं त्वया।
कृच्छ्रं प्राप्तेन सर्वस्वं ब्रह्मलोकं ततो व्रज ॥ ७२ ॥

'द्विजश्रेष्ठ! यद्यपि तुम भूखसे पीड़ित हो, फिर भी तुमने जो दाने बीनकर इकट्ठा किये हुए अपने सम्पूर्ण अन्नको शुद्ध भावपूर्वक मुझे प्रदान कर दिया है, इसके फलस्वरूप अब तुम ब्रह्मलोकको जाओ ॥ ७२ ॥

स्वर्गस्थास्त्रिदशाः सर्वे दिव्या ब्रह्मर्षयस्तथा।
स्तुवन्तु दानमेतत् ते विस्मयाविष्टमानसाः ॥ ७३ ॥

'स्वर्गवासी देवता तथा सम्पूर्ण दिव्य ब्रह्मर्षि विस्मयाविष्ट-मनसे तुम्हारे इस दानकी प्रशंसा करेंगे ॥ ७३ ॥

सकृत्प्रस्थपरित्यागं श्रद्धया समचीकरत्।
तेनाशु भवतो नूनं पप्रथे हि यशो भुवि ॥ ७४ ॥

'तुमने श्रद्धापूर्वक जो यह सेरभर सत्तूका दान किया है, इससे शीघ्र ही तुम्हारा यश इस भूतलपर अवश्य विख्यात हो जायगा ॥ ७४ ॥

अग्नयः सफलास्तेऽद्य वेदा यज्ञास्तपांसि च।
येनेदृशो ह्यनुप्राप्तो भावो भूतेषु दुर्लभः ॥ ७५ ॥

'जो प्राणियोंमें मिलना दुर्लभ है, ऐसा उत्तम भाव जो तुम्हें प्राप्त हो गया है, इससे आज तुम्हारे अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, यज्ञ और तप—सभी सफल हो गये' ॥ ७५ ॥

इत्थं तस्मिन् महाराज ब्रुवाणे मुनिपुङ्गवे।
गगनात् पुष्पवृष्टिश्च पतिता तस्य मूर्धनि ॥ ७६ ॥

महाराज! जब ब्राह्मणवेषधारी मुनिश्रेष्ठ धर्म यों कह रहे थे, उसी समय आकाशसे उस ब्राह्मणके मस्तकपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥ ७६ ॥

तेजः प्रज्ञां बलं धैर्यं क्षुन्नाशयति देहिनाम्।
दुर्जयां तां यो जयति तेन स्वर्गो जितो भवेत् ॥ ७७ ॥

(अतिथि कहता है—) 'ब्रह्मन्! क्षुधा प्राणियोंके तेज, बुद्धि, बल और धैर्यका नाश कर देती है, अतः उस दुर्जय भूखको जो जीत लेता है, उसने मानो स्वर्गपर विजय पा ली ॥

भार्या पुत्रः स्नुषा साध्वी तथैवात्मा सुदुस्त्यजः।
सर्वाण्येतानि धर्मार्थं त्यक्तानि तृणवत् त्वया ॥ ७८ ॥

'अहो! पत्नी, पुत्र, पतिव्रता पुत्रवधू तथा परम दुस्त्यज अपना आत्मा—इन सबको तुमने धर्मकी रक्षाके लिये तृणके समान त्याग दिया! ॥ ७८ ॥

न तथा प्रीयते धर्मो दानैर्दत्तैर्महाधनैः।
न्यायलब्धैर्यथा ह्यल्पैः श्रद्धापूतैः स तुष्यति ॥ ७९ ॥

'(अन्यायोपार्जित एवं श्रद्धारहित) बहुत बड़ी धन-राशिके दानसे धर्मको वैसी प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती, जैसा वह न्यायोपार्जित एवं श्रद्धासे पवित्र थोड़े-से भी धनके दानसे संतुष्ट होता है ॥ ७९ ॥

अश्रद्धा परमं पापं श्रद्धा पापविनाशिनी।
जहाति पापं श्रद्धावान् जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ ८० ॥

'श्रद्धाका न होना महान् पाप है और श्रद्धा पापका विनाश करनेवाली है। जो मनुष्य श्रद्धावान् है, वह पुरानी केंचुलको छोड़नेवाले सर्पकी भाँति पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥

बहु श्रद्धाविरहितं नष्टमाहुर्मनीषिणः।
वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षय्यमुपजायते ॥ ८१ ॥

'विद्वानोंका कथन है कि श्रद्धारहित होकर दिया हुआ ढेर-का-ढेर दान नष्ट हो जाता है; परंतु श्रद्धापूर्वक दिया हुआ जल भी अक्षय होकर प्राप्त होता है ॥ ८१ ॥

रन्तिदेवस्तु धर्मात्मा पुरा निष्किञ्चनोऽभवत्।
श्रद्धापूतः स धर्मात्मा नाकपृष्ठमितो गतः ॥ ८२ ॥

'प्राचीन कालकी बात है, धर्मात्मा राजा रन्तिदेव (सर्वस्व दान कर देनेके कारण) निष्किंचन हो गये थे; परंतु श्रद्धा-संयुक्त होनेके कारण वे धर्मनिष्ठ नरेश पावन हो चुके थे, इसलिये यहाँसे स्वर्गलोकको चले गये ॥ ८२ ॥

आत्ममांसप्रदानेन शिबिरौशीनरो तथा।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तो मुमुदे देववच्चिरम् ॥ ८३ ॥

'इसी प्रकार उशीनर-पुत्र राजा शिबिने (बाजरूपधारी इन्द्रसे) अपना मांस काटकर प्रदान कर दिया था, जिससे वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्पूर्ण दुःखोंसे छूट गये और चिरकालसे स्वर्गलोकमें देवताकी भाँति आनन्द भोग रहे हैं ॥ ८३ ॥

पश्य देवविमानं खे तव प्राप्तमिदं द्विज।
स्वर्गं गच्छ समारुह्य सभार्यः ससुतस्नुषः ॥ ८४ ॥

'द्विजवर! आकाशमें उस देवविमानकी ओर देखिये। यह तुम्हारे लिये ही आया है। अब तुम पत्नी, पुत्र और पुत्रवधूसहित इसपर बैठकर स्वर्गलोकको जाओ' ॥ ८४ ॥

नकुल उवाच

इत्युक्तः परितुष्टेन साक्षाद्धर्मेण स द्विजः।
दिव्यं विमानमारुह्य सकुटुम्बो ययौ दिवम् ॥ ८५ ॥

नेवला कहता रहा—विप्रगण! जब साक्षात् धर्मने परम प्रसन्न होकर इस प्रकार कहा, तब वह ब्राह्मण परिवारसहित उस दिव्य विमानपर चढ़कर स्वर्गलोकको चला गया ॥

ततोऽहं तेषु यातेषु बिलान्निःसृत्य सत्वरम्।
दिव्यपुष्पसमाकीर्णे सक्तुतोये व्यचेष्टयम् ॥ ८६ ॥

तदनन्तर उन सबके चले जानेपर मैं तुरंत ही बिलसे निकलकर दिव्य पुष्पोंसे आच्छादित उस सत्तूके जलमें लोटने लगा ॥ ८६ ॥

अथ धर्मप्रसादान्मे मुनेस्तस्य च तेजसा।
दिव्यपुष्पविमर्दाच्च हैमं पार्श्वमभूदिदम् ॥ ८७ ॥

तब धर्मकी कृपा, उस मुनिके तेज और दिव्य पुष्पोंपर लोटनेसे मेरा यह एक पार्श्व सोनेका हो गया ॥ ८७ ॥

द्वितीयं तु कथं पार्श्वं हैमं स्यादिति चिन्तयन्।
तपोवनानि तीर्थानि यज्ञांश्चाप्यगमेस्तथा।
ततो यज्ञमिमं श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ॥ ८८ ॥
आशया परया प्राप्तो न तु काञ्चनतां गतः ॥ ८९ ॥

अब मेरा दूसरा पार्श्व सुवर्णका कैसे हो—इसी चिन्तामें डूबा हुआ मैं तपोवनों, तीर्थस्थानों तथा यज्ञोंमें भी घूमता फिरा। इसी बीच जब मैंने बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरके इस यज्ञका समाचार सुना, तब परम आशान्वित होकर मैं यहाँ आया; परंतु मेरा दूसरा पार्श्व सोनेका नहीं हुआ ॥८८-८९॥

जैमिनिरुवाच

इत्येवं कथयित्वा तु द्विजानां नकुलस्तदा।
ययौ यथागतं राजन् विप्राणां तत्र पश्यताम् ॥ ९० ॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजा जनमेजय! तब उन ब्राह्मणोंसे ऐसा कहकर वह नेवला वहाँ उपस्थित विप्रोंके देखते-देखते जैसे आया था, वैसे ही लौट गया ॥ ९० ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
अश्वमेधे महायज्ञे यदाश्चर्यमभूत् तदा ॥ ९१ ॥

राजन्! उस समय उस महान् यज्ञ अश्वमेधकी समाप्तिके अवसरपर जो आश्चर्यजनक घटना घटी थी और जिसके विषयमें तुमने मुझसे पूछा था, वह सारा वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया ॥ ९१ ॥

तस्माच्च विस्मयः कार्यस्त्वया यज्ञेषु पार्थिव।
विनैव यज्ञैर्मुनयः श्रद्धापूता दिवं गताः ॥ ९२ ॥

इसलिये पृथ्वीनाथ! तुम्हें यज्ञोंके विषयमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये; क्योंकि बहुत-से मुनि यज्ञानुष्ठानके बिना ही श्रद्धासे पवित्र हो स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं ॥ ९२ ॥

अद्रोहः सर्वभूतेषु संतोषः सत्यमार्जवम्।
सर्वेन्द्रियजयः शान्तिस्तपश्च स्वर्गसाधनम् ॥ ९३ ॥

(यज्ञ करनेसे ही स्वर्ग मिलता हो, ऐसी बात नहीं है; बल्कि) समस्त प्राणियोंसे द्रोह न करना, संतोष, सत्य, सरलता, सम्पूर्ण इन्द्रियोंपर विजयी होना, शान्ति और तप—ये सभी स्वर्गप्राप्तिके साधन हैं ॥ ९३ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि नकुलोपाख्याने सकुटुम्बब्राह्मणस्वर्गप्राप्तिर्नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें नकुलोपाख्यानके प्रसङ्गमें परिवारसहित ब्राह्मणका स्वर्गप्राप्तिनामक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

जनमेजयकी नेवलेके विषयमें जिज्ञासा और जैमिनिजीद्वारा नेवलेका पूर्वचरित्र-वर्णन

जनमेजय उवाच

कोऽसौ नकुलरूपेण शिरसा काञ्चनेन च।
प्राह मानुषवद् वाचमेतत् पृष्टो वदस्व मे ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—मुने! जिसका सिर सुवर्णका था, ऐसा वह नकुलरूपधारी कौन था, जो मनुष्यकी-सी वाणी बोलता था? मेरे इस प्रश्नका उत्तर देनेकी कृपा कीजिये ॥१॥

जैमिनिरुवाच

श्रूयतां नकुलो योऽसौ यथा वाचस्य मानुषीं।
इहार्थे यत्पुरा वृत्तं तदिहैकमनाः शृणु ॥ २ ॥

जैमिनिजीने कहा—राजन्! वह नकुल जो था और जैसे मनुष्यकी-सी वाणी बोलता था, इस विषयमें जो प्राचीन वृत्तान्त है, उसे अब एकाग्रमनसे श्रवण करो ॥ २ ॥

श्राद्धं संकल्पयामास जमदग्निः पुरा किल।
होमधेनुस्तमागाद् वै स्वर्गलोकादरिंदम ॥ ३ ॥

शत्रुदमन! प्राचीन कालकी बात है, एक बार महर्षि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जमदग्निने श्राद्ध करनेका संकल्प किया, उस समय स्वर्गलोकसे होमधेनु उनके पास आयी ॥ ३ ॥

तत्क्षीरं स्थापयामास नवे भाण्डे दृढे शुभे।
तच्च क्रोधः स्वरूपेण सर्पस्य पर्यधर्षयत् ॥ ४ ॥

मुनिने उसके दूधको एक सुन्दर एवं मजबूत नवीन पात्रमें डालकर रख दिया। तब क्रोधने सर्पका रूप धारण करके उस दूधको दूषित कर दिया ॥ ४ ॥

जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठं किं कुर्याद्धि विषीकृते।
इति संचिन्त्य दुर्मेधा धर्षयामास तत् पयः ॥ ५ ॥

दुर्बुद्धि क्रोध मुनिश्रेष्ठ जमदग्निकी यह परीक्षा लेना चाहता था कि दूधको विषैला कर देनेपर ये क्या करेंगे (अर्थात् इन्हें क्रोध आता है या नहीं)? इसी विचारसे उसने उस दूधको दूषित किया था ॥ ५ ॥

तमाज्ञाय मुनिः कोपं न चास्य चुकुपे तदा।
स तु क्रोधस्तमाहेदं प्राञ्जलिर्मूर्तिमान् स्थितः ॥ ६ ॥

परंतु मुनि उस सर्पको क्रोध जानकर उसपर कुपित नहीं हुए। तब वह क्रोध मूर्तिमान् हो हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो गया और मुनिसे इस प्रकार कहने लगा—॥ ६ ॥

जितोऽस्मीति भृगुश्रेष्ठ भृगवो ह्यतिरोषिणः।
लोके मिथ्यापवादोऽयं यत् त्वयास्मि पराजितः ॥ ७ ॥

'भृगुश्रेष्ठ! आपने मुझे जीत लिया, अतः 'भृगुवंशी अत्यन्त क्रोधी होते हैं' लोकमें फैली हुई यह चर्चा मिथ्या-पवादमात्र है; क्योंकि आपने मुझे पराजित कर दिया है ॥ ७ ॥

सोऽहं त्वयि स्थितो ह्यद्य क्षमावति महात्मनि।
बिभेमि तपसः साक्षात् प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥ ८ ॥

'वही मैं इस समय साक्षात् रूपसे आप-जैसे क्षमाशील महात्माके समक्ष खड़ा हूँ और आपकी तपस्यासे डर रहा हूँ। प्रभो! मुझपर कृपा कीजिये' ॥ ८ ॥

जमदग्निरुवाच

साक्षात् पृष्टोऽसि मे क्रोध गच्छ त्वं विगतज्वरः।
न ममापकृतं तेऽद्य न मन्युर्विद्यते मम ॥ ९ ॥

जमदग्निने कहा—क्रोध! मैंने तुझे साक्षात् रूपसे जान लिया है, अतः अब तू संतापरहित होकर अपने स्थानको चला जा। तूने मेरा कुछ भी अपकार नहीं किया है, इसलिये इस समय मेरे मनमें तेरे प्रति कुछ भी क्रोध नहीं है ॥ ९ ॥

यानुद्दिश्य तु संकल्पः पयस्यस्मिन् कृतो मया।
पितरस्ते महाभागास्तेभ्यो बुध्यस्व गम्यताम् ॥ १० ॥

मैंने जिनके उद्देश्यसे इस दूधमें संकल्प किया था, वे मेरे महाभाग पितर हैं। अब तू जा और उन्हें यह अवगत करा दे ॥ १० ॥

इत्युक्तो जातसंत्रासस्तत्रैवान्तरधीयत।
पितॄणामभिषङ्गात्तु नकुलत्वमुपागतः ॥ ११ ॥

मुनिके यों कहनेपर क्रोध भयभीत होकर वहीं अन्तर्धान हो गया। पीछे पितरोंका अपराध करनेके कारण उसे नकुल-भावकी प्राप्ति हुई ॥ ११ ॥

स तान् प्रसादयामास शापस्यान्तो भवेदिति।
तैश्चाप्युक्तो यदा धर्मसभायां कृष्णसंनिधौ ॥ १२ ॥
उञ्छवृत्तकथां ब्रूषे तदा मुक्तो भविष्यसि।

तत्पश्चात् 'मेरे शापका अन्त हो जाय' इस विचारसे जब नकुलने उन पितरोंको प्रसन्न किया, तब उन्होंने भी कहा—'नकुल! जिस समय तू धर्मराज युधिष्ठिरकी सभामें श्रीकृष्णके समीप उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मणकी कथाका वर्णन करेगा, उसी समय मुक्त हो जायगा' ॥ १२½ ॥

इत्युक्तो याज्ञिकान् देशान् धर्मारण्यानि चैव हि ॥ १३ ॥
कृष्णस्य दर्शनाकाङ्क्षी तं यज्ञं समुपागतः।

पितरोंके ऐसा कहनेपर वह नेवला भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे याज्ञिक देशों तथा धर्मारण्योंमें घूमता हुआ उस यज्ञमें आ पहुँचा ॥ १३½ ॥

धर्मपुत्रमथाक्षिप्य सक्तुप्रस्थेन तेन सः ॥ १४ ॥
मुक्तः शापात् तथावृत्तं तव तस्य महात्मनः।
पश्यतामेव नस्तत्र नकुलोऽन्तरधीयत ॥ १५ ॥

वहाँ उसने उस महात्मा ब्राह्मणके सेरभर सत्तूदानका वर्णन करके धर्मनन्दन युधिष्ठिरपर आक्षेप किया, जिससे वह शापसे मुक्त हो गया। वह सारा वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया। तत्पश्चात् हमलोगोंके सामने ही वह नेवला वहीं अन्तर्धान हो गया ॥ १४-१५ ॥

स चापि भगवान् कृष्णः शङ्खचक्रगदाधरः।
आसमाप्तेर्जगन्नाथो यज्ञं रक्षितवान् हरिः ॥ १६ ॥

राजन्! जो भक्तजनोंके पापोंका हरण करनेवाले, शङ्ख-चक्र-गदाधारी तथा जगत्के स्वामी हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार समाप्तिपर्यन्त उस यज्ञकी रक्षा करते रहे ॥ १६ ॥

रक्षित्वा स महाबाहुः पाण्डवैः पूजितश्चिरम्।
रममाणः पुरे तस्मिन्नुवास दिवसान् बहून् ॥ १७ ॥

यज्ञ-रक्षाके उपरान्त पाण्डवोंने महाबाहु श्रीकृष्णकी विशेषरूपसे पूजा की। फिर वे उस हस्तिनापुरमें विहार करते हुए बहुत दिनोंतक ठहरे रहे ॥ १७ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि नकुलोपाख्यानसमाप्तिर्नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें नकुलोपाख्यानकी समाप्तिनामक सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

जैमिनीयाश्वमेधपर्वके श्रवणकी महिमा

जैमिनिरुवाच

ततः कृष्णादयः सर्वे धर्मराजेन धीमता।
पूजिता यादवास्तत्र नृपाश्च बहुमानिताः॥ १॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर हस्तिनापुरमें बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण आदि समस्त यादवों तथा समागत नरेशोंका बड़े सम्मानके साथ पूजन किया॥ १॥

नरनारीमहीपालाः स्वानि सौख्यानि भेजिरे।
हर्षप्रमुदिता लोका ह्यासन् धर्मेण पालिताः॥ २॥

उस समय धर्मावतार युधिष्ठिरसे सुरक्षित होनेके कारण नर-नारी तथा भूपालगण स्वानुकूल सुखोंका अनुभव करने लगे और सभी लोग आनन्दमग्न हो गये॥ २॥

आश्वमेधिकमेतच्च पर्व तुभ्यं प्रकीर्तितम्।
शृण्वथास्य फलं राजन् सत्यं हि गदतो मम॥ ३॥

राजन्! मैंने तुमसे इस आश्वमेधिकपर्वका विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया। अब तुम मेरे मुखसे इसका यथार्थ फल श्रवण करो॥ ३॥

धेनूनां हि सहस्रे च दत्ते भवति यत् फलम्।
तत् प्राप्नोति समग्रं यः शृणुयादाश्वमेधिकम्॥ ४॥
फलं शतगुणं तस्माद् ग्रन्थदः समवाप्नुयात्।

एक हजार गौओंके दान करनेसे जो फल होता है, वह सारा-का-सारा फल उसे प्राप्त होता है, जो इस आश्वमेधिकपर्वको सुनता है और जो इस ग्रन्थका दान करता है, वह उससे भी सौगुना अधिक फलका भागी होता है॥ ४½॥

यो दद्यात् पुस्तकं गां च ब्राह्मणाय गृहं श्रियम्॥ ५॥
गौरीं वरयते कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत्।
आश्वमेधिकमध्यायं शृणुयाद् यः समौ च तौ॥ ६॥

एक ओर जो ब्राह्मणको पुस्तक, गौ, घर और सम्पत्ति दान करता है, गौरी (अष्टवर्षा) कन्याका वरण करता है अथवा नील वृष (साँड़) का उत्सर्ग करता है तथा दूसरी ओर जो आश्वमेधिकपर्वका एक अध्याय श्रवण करता है, उन दोनोंको समान फलकी प्राप्ति होती है॥ ५-६॥

यौवनाश्वमुखानां च नृपाणां च शुभाः कथाः।
शृणुयाच्छ्रावयेत् सोऽपि कलिदोषैर्न लिप्यते॥ ७॥

जो मनुष्य यौवनाश्व आदि प्रमुख राजाओंकी शुभ कथाओंको स्वयं सुनता अथवा दूसरोंको सुनाता है, वह भी कलियुगके दोषोंसे लिप्त नहीं होता॥ ७॥

ब्राह्मणो लभते विद्यां धनार्थी प्राप्नुयाद् धनम्।
क्षत्रियो जायते शूरः प्राप्नुयान्न पराजयम्॥ ८॥
अपुत्रो लभते पुत्रं रोगी रोगैर्विमुच्यते।

(इसके श्रवणसे) ब्राह्मण विद्यालाभ करता है, धनार्थीको धनकी प्राप्ति होती है, क्षत्रिय शूरवीर होता है; उसकी कभी पराजय नहीं होती, पुत्रहीनको पुत्र मिल जाता है और रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है॥ ८½॥

अष्टादशपुराणानां पठनाद् यत् फलं भवेत्॥ ९॥
तत् फलं समवाप्नोति भारतश्रवणान्नरः।
समग्रं भारतं तेन श्रुतं भवति भारत॥ १०॥
यश्चाश्वमेधिकं सर्वं शृणुयाद् भावपूर्वकम्।
अस्मिन् पर्वणि राजेन्द्र समाप्ते पूजनं शृणु॥ ११॥

भारत! अठारहों पुराणोंको पढ़नेसे जो फल होता है, वह फल मनुष्यको महाभारतके श्रवणसे सुलभ हो जाता है तथा जो भक्तिभावपूर्वक समस्त आश्वमेधिकपर्वको सुनता है, उसने मानो सम्पूर्ण महाभारतका श्रवण कर लिया। राजेन्द्र! अब इस पर्वकी समाप्तिमें जैसी पूजनकी विधि है, उसे सुनो॥

ब्राह्मणान् भक्ष्यभोज्यैश्च सम्पूज्य वस्त्रभूषणैः।
अश्वो देयः सुवर्णस्य दशकर्षविनिर्मितः॥ १२॥

ब्राह्मणोंको भक्ष्य-भोज्य पदार्थों तथा वस्त्राभूषणोंसे भलीभाँति सत्कृत करके उन्हें दस कर्ष (तोला) सुवर्णका बना हुआ अश्व दान करना चाहिये॥ १२॥

प्रत्यक्षो वृषभो देयस्तस्य पर्वफलं महत्।
यथाशक्त्यथवा कार्यो विधिः पर्वणि यः स्मृतः॥ १३॥
दानं दत्त्वा नृपश्रेष्ठ सम्पूर्णफलभाग् भवेत्।

नृपश्रेष्ठ! जो प्रत्यक्षरूपसे वृषभ दान करता है, उसे इस पर्वका महान् फल प्राप्त होता है। अथवा इस पर्वमें जो विधि बतायी गयी है, उसका यथाशक्ति पालन करना चाहिये; क्योंकि दान करके ही मनुष्य सम्पूर्ण फलका भागी होता है॥

चतुर्दश च पर्वाणि कथितानि विशाम्पते॥ १४॥
अतश्चाश्रमवासाख्यं पर्व राजञ्छृणुष्व तत्॥ १५॥

प्रजानाथ! मैंने तुमसे चौदह पर्वोंका तो वर्णन कर दिया। अब आगे आश्रमवासिकपर्व है। राजन्! उसका वर्णन सुनो॥ १४-१५॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वण्यश्वमेधश्रवणफलवर्णनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः॥ ६८॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें अश्वमेध-श्रवणके फलका वर्णननामक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६८॥

॥ समाप्तो जैमिनीयाश्वमेधः॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

सटीक महाभारत-खिलभाग हरिवंशकी सम्पूर्ण विषय-सूची

(हरिवंशपर्व)

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१	मङ्गलाचरण, शौनक-उग्रश्रवा-संवाद, वृष्णि-वंशियोंका विस्तृत चरित्र सुननेके लिये जनमेजय-की प्रार्थना और आदिसृष्टिका वर्णन ...	१
२	स्वायम्भुव मनुके वंश और दक्ष प्रजापतिकी उत्पत्तिका वर्णन	५
३	दक्ष प्रजापतिद्वारा सृष्टि-विस्तार, नारदजीका दक्षके पुत्रोंको विरक्त कर देना, दक्षकी साठ कन्याओं और उनकी संततिका वर्णन ...	९
४	पृथुका उपाख्यान—राज्यवितरण और दिक्पालों-की प्रतिष्ठा	१८
५	पृथुका उपाख्यान—वेनका अत्याचार करके नष्ट होना और पृथुका जन्म तथा चरित्र ...	२०
६	पृथुका उपाख्यान—पृथ्वीका पृथुकी पुत्री बनकर अनेक प्रकारके दूध देना तथा अनेक पात्रों एवं दुहनेवालोंका वर्णन	२४
७	मन्वन्तर, मनु, देवता और ऋषियोंका पृथक्-पृथक् वर्णन	२८
८	चारों युगों, मन्वन्तरों और ब्रह्माजीके दिन एवं वर्षका मान	३३
९	वैवस्वत मनु, यम, यमी (यमुना), अश्विनी-कुमारों एवं शनैश्चरकी उत्पत्ति ...	३६
१०	वैवस्वत मनुके वंशजोंका वर्णन और पुरूरवाकी उत्पत्ति	४०
११	धुन्धुमारकी कथा	४३
१२	धुन्धुमारके वंशका वर्णन और गालवकी उत्पत्ति	४७
१३	त्रिशङ्कुके चरित्रका वर्णन तथा उनके वंशमें हरिश्चन्द्र आदिका उत्पन्न होना	४८
१४	सगरकी उत्पत्ति और चरित्र तथा सगर-पुत्रोंके उद्योगसे समुद्रका 'सागर' होना	५१
१५	सूर्यवंशका वर्णन	५३
१६	श्राद्धकल्प—जनमेजयद्वारा पिताका श्राद्ध तथा पितृ-स्वरूपनिर्णयसम्बन्धी प्रश्न, शान्तनुका अपने श्राद्धमें स्वयं हाथ बढ़ाकर भीष्मसे पिण्ड माँगना	५५
१७	पितृकल्प—भीष्म-मार्कण्डेय-संवाद और मार्कण्डेय-जीके साथ सनत्कुमारजीकी बातचीत ...	५९
१८	पितृकल्प—मार्कण्डेय-सनत्कुमार-संवादमें पितरोंके गण, लोक, शक्ति और कन्याओंका वर्णन तथा पितरोंके प्रभावको देखनेके लिये मार्कण्डेयजीको दिव्य दृष्टिकी प्राप्ति	६१
१९	पितृकल्प—भरद्वाजके पुत्रोंकी कथा, योगभ्रष्ट पुरुषोंकी गति, योगसिद्धिके अधिकारी पुरुषोंके लक्षण तथा मार्कण्डेय-सनत्कुमार-संवादकी समाप्ति	६७
२०	पितृकल्प—ब्रह्मदत्त और उग्रायुधके वंश तथा पूजनीया चिड़ियाद्वारा शुक्रनीतिका वर्णन ...	६८
२१	पितृकल्प—मार्कण्डेयजी द्वारा श्राद्धकी महिमा-का वर्णन, श्राद्धके फलसे कौशिक-पुत्रोंको उत्तम जन्मकी प्राप्ति	७७
२२	पितृकल्प—शुचिवाक् पक्षीका स्वतन्त्र आदि तीन पक्षियोंको शाप देना, सुमना पक्षीका अनुग्रहपूर्वक उन्हें शापसे मुक्त करना ...	८०
२३	हंसोंका काम्पिल्यनगरमें ब्रह्मदत्त आदिके रूपमें उत्पन्न होना और चार हंसोंका अपने पितासे आज्ञा लेकर मुक्त हो जाना ...	८१
२४	विभ्राजका ब्रह्मदत्तका पुत्र बनकर उत्पन्न होना, रानी संनतिका ब्रह्मदत्तसे रूठना, एक ब्राह्मणके कहे हुए श्लोकोंसे ब्रह्मदत्त, पाञ्चाल्य और कण्डरीकको अपने पूर्वजन्मका ज्ञान होना तथा ब्रह्मदत्त आदिका तप करके मुक्त हो जाना ...	८३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२५–चन्द्रमाकी उत्पत्ति और राजसूय यज्ञ, देवासुर-संग्राम तथा बुधकी उत्पत्ति ... ८६

२६–महाराज पुरूरवाके चरित्र और वंशका वर्णन, राजा पुरूरवाका त्रेताग्निकी रचना करना और गन्धर्वोंके लोकमें जाना ८९

२७–पुरूरवाके द्वितीय पुत्र अमावसुके वंशका वर्णन, विश्वामित्र और परशुरामकी उत्पत्ति ... ९२

२८–राजा रजि और उनके पुत्रोंका चरित्र, इन्द्रका अपने स्थानसे भ्रष्ट होकर पुनः उसपर प्रतिष्ठित होना ९६

२९–अनेनाके वंशका वर्णन, धन्वन्तरिका काशिराज धन्वके यहाँ पुत्ररूपमें अवतार, दिवोदासके राज्य-कालमें भगवान् शिवकी आज्ञासे गणेश्वर निकुम्भके द्वारा वाराणसीको जनशून्य बनानेका प्रयत्न, वहाँ शिव और पार्वतीका निवास, दिवोदासका वाराणसीपर अधिकार और अलर्क-की प्रशंसा ९९

३०–नहुष एवं ययातिके वंशका वर्णन तथा ययातिका चरित्र १०४

३१–पूरुकी वंशपरम्पराका वर्णन १०८

३२–पूरुके वंशके अन्तर्गत ऋचेयुकी वंशपरम्परा—अजमीढवंश, पाञ्चाल एवं सोमकवंश, कौरववंश तथा तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुकी संततिका वर्णन ... १११

३३–यदुवंशका वर्णन, कार्तवीर्यकी उत्पत्ति एवं चरित्र तथा पाँचों ययाति-पुत्रोंके वंश-वर्णनके श्रवणकी महिमा ११७

३४–वृष्णिवंशका वर्णन–अक्रूर, वसुदेव, कुन्ती, सात्यकि, उद्धव, चारुदेष्ण, एकलव्य आदिका परिचय १२१

३५–श्रीकृष्णका अवतार लेना, श्रीकृष्णके अन्य भाई-बहिनों और कुटुम्बियोंका वर्णन तथा काल-यवनकी उत्पत्ति १२४

३६–क्रोष्टाके वंशका वर्णन, पुरोहितके गोत्रसे क्षत्रियों-के गोत्रका बदल जाना १२६

३७–वभ्रुवंशका वर्णन ... १२८

३८–भजमानके वंशका वर्णन और स्यमन्तकमणिकी कथा १३१

३९–स्यमन्तकमणिके कारण प्रसेन, सत्राजित् और शतधन्वाका मारा जाना, बलदेवजीका दुर्योधनको गदा-विद्या सिखाना, अक्रूरजीका श्रीकृष्णको मणि देना और श्रीकृष्णका पुनः अक्रूरको मणि लौटा देना १३५

४०–जनमेजयका भगवान्‌के वराह, नृसिंह, परशु-राम, श्रीकृष्ण आदि अवतारोंका रहस्य पूछना ... १३८

४१–भगवान् विष्णुके वाराह, नृसिंह, वामन, दत्तात्रेय, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, व्यास तथा कल्कि-अवतारोंकी संक्षिप्त कथा १४५

४२–भगवान् विष्णुके ईश्वरत्वका वर्णन एवं अद्भुत तारकामय संग्रामकी कथा १५६

४३–देवताओंके साथ युद्धके लिये उद्यत हुई दैत्य-सेनाका वर्णन १५९

४४–आश्चर्यतारकामय संग्राममें देवसेनाकी युद्धके लिये तैयारी १६१

४५–देवासुर-संग्राम एवं और्व अग्निकी उत्पत्ति १६५

४६–इन्द्रद्वारा चन्द्रमाकी स्तुति, चन्द्रदेव और वरुण-देवके द्वारा दैत्य-सेनाका संहार, मयदानवद्वारा मायाका प्रयोग, पवन और अग्निदेवका दैत्य-सेना-के साथ संग्राम और कालनेमिका रणमें आगमन १७०

४७–कालनेमिका युद्ध और प्रभाव ... १७५

४८–कालनेमि और भगवान् विष्णुका संवाद, श्री-विष्णुद्वारा कालनेमिका वध तथा देवताओंको आश्वासन देकर ब्रह्मलोकको प्रस्थान ... १७९

४९–ब्रह्मलोकमें भगवान् विष्णुका सत्कार ... १८५

५०–नारायणाश्रममें भगवान् विष्णुका शयन और उत्थान तथा पास आये हुए ब्रह्मा आदि देवताओंसे उनके आगमनका प्रयोजन पूछना १८७

५१–ब्रह्माजीका भगवान् विष्णुसे जगत्‌की वर्तमान अवस्थाका वर्णन करते हुए पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मन्त्रणा करनेका अनुरोध ... १९१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५२–भगवान् विष्णु तथा सब देवताओंका मेरुपर्वतकी दिव्य सभामें उपस्थित होना और वहाँ पृथ्वीका भगवान्‌से भार उतारनेके लिये प्रार्थना करना १९४

५३–ब्रह्माजीकी आज्ञासे देवताओंका अंशावतरण ... १९८

५४–भगवान् विष्णुके प्रति देवर्षि नारदका वचन—भूलोककी वर्तमान अवस्थाका परिचय देकर भगवान्‌को अवतार ग्रहण करनेके लिये प्रेरित करना २०३

५५–भगवान् विष्णुके द्वारा नारदजीके कथनका उत्तर तथा ब्रह्माजीका भगवान्‌से उनके अवतार लेने-योग्य स्थान और पिता-माता आदिका परिचय देना २०९

(विष्णुपर्व)

१–मङ्गलाचरण, नारदजीका मथुरामें आकर कंसको आनेवाले भयकी सूचना देना और कंसका अपने सेवकोंके सामने बढ़-बढ़कर बातें बनाना ... २१३

२–कंसद्वारा देवकीके गर्भके विनाशका प्रयत्न, भगवान् विष्णुका पाताललोकमें स्थित 'षड्गर्भ' नामक दैत्योंके जीवोंका आकर्षण करके उन्हें निद्रा-देवीके हाथमें देना और देवकीके गर्भमें क्रमशः स्थापित करनेका आदेश देकर अन्य कर्तव्य बताना तथा कार्यसाधनके अनन्तर बढ़नेवाली उस देवीकी महिमाका उल्लेख ... २१५

३–आर्याकी स्तुति २१९

४–कंसद्वारा देवकीके नवजात शिशुओंकी हत्या, योगमायाद्वारा सातवें गर्भका संकर्षण, श्रीकृष्णका प्राकट्य और नन्दभवनमें प्रवेश, कंसद्वारा नन्द-कन्याको मारनेका प्रयत्न और उसका दिव्य रूपमें दर्शन देना, कंसद्वारा क्षमाप्रार्थना और देवकी-द्वारा उसे क्षमा-दान २२२

५–वसुदेवजीका नन्दको व्रजमें लौटनेकी सम्मति देना और नन्दजीका गोव्रजकी शोभा निहारते हुए वहाँ पधारना २२६

६–शकट-भञ्जन और पूतना-वध ... २२९

७–श्रीकृष्ण और बलरामका व्रजमें घुटनोंके बल चलना तथा श्रीकृष्णका उलूखलमें बँधकर यमलार्जुन-भङ्गकी लीला करना ... २३१

८–श्रीकृष्ण-बलरामकी बालचर्या, श्रीकृष्णके द्वारा व्रजको अन्यत्र ले जानेकी चेष्टा और अपने शरीरसे भेड़ियोंको उत्पन्न करके उनका समूचे व्रजको डराना २३४

९–भेड़ियोंके उत्पातसे व्रजवासियोंका उस स्थानको छोड़कर श्रीवृन्दावनमें जाना ... २३७

१०–वर्षा ऋतुका वर्णन २३९

११–श्रीकृष्णकी अङ्गच्छटा, भाण्डीर वट, यमुना और कालियदहका वर्णन तथा श्रीकृष्णद्वारा कालियनागके निग्रहका विचार ... २४२

१२–श्रीकृष्णद्वारा कालियनागका दमन, उसका समुद्रको प्रस्थान तथा गोपोंको श्रीकृष्णकी महत्ताका अनुभव २४७

१३–बलरामद्वारा धेनुकासुरका वध और भयरहित तालवनमें गौओं तथा गोपोंका विचरण ... २५०

१४–बलरामद्वारा प्रलम्बासुरका वध ... २५२

१५–इन्द्रोत्सवके विषयमें श्रीकृष्णकी जिज्ञासा तथा एक वृद्ध गोपके द्वारा उसकी आवश्यकताका प्रतिपादन २५६

१६–श्रीकृष्णके द्वारा गिरियज्ञ एवं गोपूजनका प्रस्ताव करते हुए शरद् ऋतुका वर्णन ... २५७

१७–गोपोंद्वारा श्रीकृष्णकी बातको स्वीकार करके गिरियज्ञका अनुष्ठान तथा भगवान्‌का दिव्य रूप धारण करके उनकी पूजा ग्रहण करनेके पश्चात् उन्हें वर देना २६१

१८–इन्द्रका संवर्तक मेघोंद्वारा वर्षा कराकर गौओं और गोपोंको कष्टमें डालना, श्रीकृष्णद्वारा गोवर्धनधारण तथा उसके नीचे गौओं और गोपोंसहित व्रजवासियोंका जाना ... २६३

१९–देवराज इन्द्रका आगमन, श्रीकृष्णका गोविन्द-पदपर अभिषेक तथा इन्द्रका श्रीकृष्णको भावी कार्य बताकर अर्जुनकी देख-भालके लिये कहना और श्रीकृष्णका उसे स्वीकार करना ... २६८

२०–श्रीकृष्णका अलौकिक चरित्र देखकर आशङ्कित हुए गोपोंका उनसे प्रश्न और श्रीकृष्णद्वारा उत्तर तथा उनकी रासलीलाका संक्षेपसे वर्णन २७५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२१–अरिष्टासुरका वध २७७

२२–कंसकी आशङ्का, उसका रात्रिके समय यदुवंशियोंको बुलाकर भरी सभामें श्रीकृष्ण और विष्णुके प्रभावको बताना, वसुदेवपर कठोर आक्षेप करना तथा अक्रूरको श्रीकृष्ण आदिको बुला लानेके लिये व्रजमें जानेकी आज्ञा देना ... २७९

२३–अन्धकका कंसको मुँहतोड़ उत्तर ... २८६

२४–केशीके अत्याचार और श्रीकृष्णद्वारा उसका वध २८९

२५–अक्रूरका व्रजमें आकर भगवान् श्रीकृष्णको देखना और उनके विषयमें अनेक प्रकारकी बातें सोचना ... २९४

२६–अक्रूरका गोपोंके लिये कंसका आदेश सुनाना और वसुदेव-देवकीकी दयनीय दशा बताकर श्रीकृष्ण-बलरामको मथुरा चलनेके लिये प्रेरित करना, मार्गमें अक्रूरको यमुनाजीके जलमें आश्चर्यमय नागलोक एवं भगवान् अनन्त तथा उनकी गोदमें श्रीकृष्णका दर्शन ... २९७

२७–श्रीकृष्ण और बलरामका मथुरामें प्रवेश, उनके द्वारा रजकका वध, मालीको वरदान, कुब्जापर कृपा और कंसके धनुषका भञ्जन ... ३०१

२८–कंसकी चिन्ता, उसका रंगशालाको देखना और उसे सुसज्जित करनेका आदेश देना, चाणूर एवं मुष्टिकको तथा कुवलयापीडके महावतको श्रीकृष्ण-बलरामके वधके लिये आज्ञा देना, महावतसे द्रुमिलके द्वारा अपनी उत्पत्तिकी कथा कहना—उसकी माताका सुयामुन पर्वतपर द्रुमिलके साथ समागम तथा उन दोनोंका परस्पर वरदान एवं शाप ३०६

२९–नागरिकोंसे भरी रङ्गशालामें मञ्चों तथा प्रेक्षागृहोंकी शोभा, कंस तथा मल्लोंका आगमन, श्रीकृष्ण और बलरामका रङ्गद्वारपर पदार्पण, कुवलयापीड, महावत तथा हाथीके पादरक्षकोंका वध और दोनों बन्धुओंका रङ्गस्थलमें प्रवेश ... ३१४

३०–रङ्गशालामें मल्लयुद्धके विषयमें श्रीकृष्णके विचार, श्रीकृष्ण और बलदेवके द्वारा चाणूर और मुष्टिक आदिका वध, कंसका संहार तथा पिता-माताके चरणोंमें प्रणाम करके दोनों भाइयोंका उनके घरमें जाना ३१७

३१–कंसकी स्त्रियों और माताका विलाप ... ३२३

३२–श्रीकृष्णका कंसवधके लिये पश्चात्तापपूर्वक उसके औचित्यका समर्थन, उग्रसेनका श्रीकृष्णको सर्वस्व-समर्पणके पश्चात् कंसका अन्त्येष्टि-संस्कार करनेके लिये अनुरोध, श्रीकृष्णका उन्हें समझा-बुझाकर राज्यपर अभिषिक्त करना और समस्त यादवोंके साथ जाकर कंस आदिका अन्त्येष्टि-संस्कार कराना ३२८

३३–बलराम और श्रीकृष्णका गुरु सान्दीपनिके यहाँ जाकर विद्या पढ़ना और गुरुदक्षिणामें उनके मरे हुए पुत्रको उन्हें देकर मथुरापुरीको लौट आना ३३३

३४–जरासंधका अपनी विशाल सेनाके द्वारा आकर मथुरापुरीपर घेरा डालना ... ३३५

३५–जरासंधकी सेनाका वर्णन, उसकी चारों दिशाओंसे मथुरापुरीपर आक्रमणकी योजना, यादवोंके साथ जरासंधकी सेनाका युद्ध, श्रीकृष्ण और बलरामके पराक्रमसे उसकी सेनाका पलायन, जरासंधद्वारा अपने सैनिकोंको प्रोत्साहन तथा उभय पक्षके वीरोंमें घमासान युद्ध ... ३३६

३६–वृष्णिवंशियों तथा जरासंधके सैनिकोंका युद्ध, बलराम और जरासंधका गदायुद्ध तथा जरासंधका पराजित होकर पलायन करना ... ३४१

३७–जरासंधके पुनः आक्रमणसे शङ्कित यादवोंकी सभामें विकद्रुका भाषण—राजा हर्यश्वका चरित्र तथा उनसे यदु एवं यादवोंकी उत्पत्तिका वर्णन ३४६

३८–विकद्रुद्वारा यदुकी संततिका वर्णन तथा मथुरापुरीको जरासंधका आक्रमण सहनेके अयोग्य बताना ... ३५१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३९–बलराम और श्रीकृष्णका पुरी और पुरवासियोंकी रक्षाके लिये मथुरासे दक्षिण भारतकी ओर प्रस्थान, परशुरामजीसे उनकी भेंट तथा उन दोनोंको गोमन्तपर्वतपर चलनेके लिये उनकी सलाह ३५५

४०–श्रीकृष्ण, बलराम और परशुरामजीका गोमन्त-पर्वतपर आरोहण, गोमन्तकी शोभाका वर्णन तथा परशुरामजीका श्रीकृष्णको युद्धके लिये प्रोत्साहन देकर वहाँसे प्रस्थान ... ३६१

४१–बलरामके पास वारुणी, कान्ति एवं श्री (शोभा)–इन देवाङ्गनाओंका आगमन, गरुड़के द्वारा श्रीकृष्णको वैष्णव मुकुटकी प्राप्ति, श्रीकृष्णका बलरामसे वार्तालाप तथा जरासंधकी सेनाका निरीक्षण करके अपने आपसे ही मानसिक उद्गार प्रकट करना ३६४

४२–जरासंधकी सेनाका वर्णन, उसका सेनाको पर्वतपर आक्रमण करनेकी आज्ञा देना, शिशुपालकी सम्मतिसे गोमन्तपर्वतमें आग लगाया जाना, पर्वतका जलना तथा बलराम और श्रीकृष्णका पर्वतसे कूदकर राजाओंकी सेनामें आ पहुँचना ३६९

४३–श्रीकृष्ण और बलरामका जरासंध और उसकी सेनाओंके साथ युद्ध; राजा दरदकी मृत्यु, जरासंधका पराजित होकर पलायन तथा चेदिराज दमघोषके साथ श्रीकृष्ण और बलराम-का करवीरपुरमें जाना ३७४

४४–श्रीकृष्णद्वारा शृगालका वध तथा उसके पुत्रका करवीरपुरके राज्यपर अभिषेक ... ३८१

४५–बलराम और श्रीकृष्णका मथुरामें प्रत्यागमन और स्वागत ३८५

४६–बलरामजीकी व्रजयात्रा तथा उनके द्वारा यमुनाजीका आकर्षण ... ३८७

४७–श्रीकृष्णका यादवोंके साथ रुक्मिणी-स्वयंवरके अवसरपर कुण्डिनपुरमें जाना तथा राजा कैशिक-द्वारा उनका सत्कार ३९१

४८–श्रीकृष्णके आगमनसे चिन्तित हुए राजाओंकी सभामें जरासंध और सुनीथका भाषण ... ३९४

४९–दन्तवक्त्र और शाल्वका भाषण सुनकर भीष्मकका श्रीकृष्णके प्रभावका वर्णन करते हुए उन्हें प्रसन्न करनेका ही निश्चय करना ... ३९७

५०–ऋथ और कैशिकद्वारा भगवान् श्रीकृष्णको अपने राज्यका समर्पण, देवराज इन्द्रके आदेशसे सब नरेशोंद्वारा भगवान्‌का राजेन्द्रके पदपर अभिषेक तथा भगवान्‌का सबको आश्वासन देना ४०२

५१–श्रीकृष्ण और भीष्मकका संवाद, भीष्मकद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा श्रीकृष्णका मथुरागमन ४०८

५२–शाल्वके कथनानुसार जरासंध आदि नरेशोंका शाल्वको ही कालयवनके पास दूत बनाकर भेजना ४१३

५३–कालयवनकी विशेषता, राजा शाल्वका उसके यहाँ दूत बनकर आना और उसे जरासंधका संदेश सुनाना ४१६

५४–कालयवनका राजाओंका अनुरोध स्वीकार करके श्रीकृष्णपर विजय पानेके लिये मथुराको प्रस्थान ४२०

५५–गरुड़का श्रीकृष्णके निवासयोग्य भूमि देखनेके लिये जाना, मथुरामें राजेन्द्र श्रीकृष्णका स्वागत, श्रीकृष्णद्वारा राजा उग्रसेन तथा मथुरा-वासियोंका सत्कार एवं गरुड़का लौटकर कुशस्थलीके विषयमें बताना ... ४२१

५६–श्रीकृष्णकी आज्ञासे यादवोंका द्वारकापुरीको प्रस्थान ४३०

५७–कालयवनका वध ४३३

५८–द्वारकापुरीका विश्वकर्माद्वारा निर्माण, निधिपति शङ्ख और सुधर्मा सभाका आनयन, श्रीकृष्णद्वारा सुव्यवस्थापूर्वक वहाँ यादवोंको बसाना तथा बलरामजीका रेवतीके साथ विवाह ... ४३७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५९–भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा रुक्मिणीका हरण तथा यादववीरोंका जरासंध एवं शिशुपाल आदिके साथ घोर युद्ध ४४३

६०–श्रीकृष्णद्वारा रुक्मीकी पराजय तथा रुक्मिणी आदिके साथ श्रीकृष्णका विवाह एवं उनसे उत्पन्न हुई संतानोंका संक्षिप्त परिचय ... ४४८

६१–रुक्मीकी पुत्री शुभाङ्गीद्वारा स्वयंवरमें प्रद्युम्नका वरण, प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धका रुक्मीकी पौत्री रुक्मवतीके साथ विवाह तथा बलरामद्वारा रुक्मीका वध ४५१

६२–बलदेवजीका माहात्म्य, उनके द्वारा हस्तिनापुरको गङ्गामें गिरानेका अद्भुत प्रयत्न ... ४५५

६३–नरकासुरका परिचय, द्वारकामें इन्द्रका आगमन और श्रीकृष्णसे नरकवधके लिये अनुरोध, सत्यभामासहित श्रीकृष्णका प्राग्ज्योतिषपुरमें गमन तथा उनके द्वारा मुरु, निसुन्द, हयग्रीव, विरूपाक्ष, पञ्चनाद, अन्यान्य असुर तथा नरकासुरका वध ... ४५६

६४–श्रीकृष्णका नरकासुरके भवनमें प्रवेश करके वहाँके धन-वैभव तथा सोलह हजार कुमारियोंको द्वारका भेजना और स्वयं देवलोकमें जा अदितिको कुण्डल दे वहाँसे पारिजात लेकर लौटना ... ४६५

६५–रैवतक पर्वतपर रुक्मिणीके व्रतोद्यापनका उत्सव, उसमें पारिजात-पुष्प देकर श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीका सम्मान, नारदजीद्वारा रुक्मिणीके सर्वाधिक सौभाग्यकी प्रशंसा तथा सत्यभामाका कोपभवनमें प्रवेश ४६९

६६–श्रीकृष्णका सत्यभामाको मनाना और सत्यभामाका मानसिक खेद प्रकट करके उनसे तपस्याके लिये अनुमति माँगना ... ४७३

६७–श्रीकृष्णके पूछनेपर सत्यभामाका उन्हें अपने रोष एवं खेदका कारण बताना, श्रीकृष्णका उनके लिये पारिजात वृक्ष लानेका विश्वास दिलाकर उन्हें संतुष्ट करना, सत्यभामा और श्रीकृष्णद्वारा नारदजीका सत्कार तथा नारदजीके द्वारा पारिजातकी उत्पत्ति और महिमाका वर्णन ४७७

६८–श्रीकृष्णका पारिजात वृक्ष माँगनेके लिये नारदजीके द्वारा इन्द्रके पास संदेश भेजना और न देनेपर उन्हें गदा मारनेकी धमकी देना ... ४८२

६९–स्वर्गमें महादेवजीकी परिचर्याके लिये नृत्य-गीत आदि उत्सव, नारदजीका इन्द्रको श्रीकृष्णका पारिजातके लिये प्रार्थनाविषयक संदेश सुनाना और इन्द्रका अनेक कारण बताकर पारिजातको न देनेका विचार प्रकट करना ... ४८५

७०–श्रीकृष्णके द्वारा गदा-प्रहारकी धमकी सुनकर कुपित हुए इन्द्रका नारदजीसे उनके बर्तावकी कटु आलोचना करना और युद्ध किये बिना पारिजात वृक्षको न देनेका ही निश्चय करना ... ४९०

७१–नारदजीके द्वारा श्रीकृष्णकी महत्ताका प्रतिपादन सुनकर भी इन्द्रका उन्हें पारिजात देनेको उद्यत न होना ४९४

७२–श्रीकृष्णका नारदजीको अमरावतीपर आक्रमण करनेका निश्चय बताकर इन्द्रके पास संदेश भेजना, इन्द्र और बृहस्पतिकी बातचीत, बृहस्पतिका कश्यपजीको यह समाचार बताना और कश्यपजीका युद्धकी शान्तिके लिये भगवान् शङ्करकी स्तुति करना ४९८

७३–इन्द्र और श्रीकृष्ण, जयन्त और प्रद्युम्न, प्रवर और सात्यकि तथा ऐरावत और गरुड़का युद्ध ५०५

७४–रात्रिमें युद्ध स्थगित करके श्रीकृष्णका पारियात्र पर्वतको वरदान देना, गङ्गाका स्मरण करना, बिल्व और गङ्गाजलपर महादेवजीका आवाहन करके उन बिल्वोदकेश्वरकी पूजा और स्तुति करना, महादेवजीका उन्हें अभीष्ट वर देकर दैत्योंको मारनेका आदेश देना तथा पारियात्र पर्वतपर भगवान्‌का निवास एवं उनकी प्रतिमाके पूजनकी महिमा ... ५११

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

७५–इन्द्र और उपेन्द्रका पुनर्युद्ध, उत्पातोंका प्राकट्य, ब्रह्माजीकी आज्ञासे कश्यप और अदितिका बीचमें आकर दोनोंका युद्ध बंद कराना, फिर सबका स्वर्गमें गमन, अदितिकी आज्ञासे शचीद्वारा उपहार पाकर पारिजातसहित द्वारका-गमन, पारिजातसे द्वारकावासियोंकी प्रसन्नता, सत्यभामाके पुण्यक-व्रतमें प्रतिग्रहके लिये श्रीकृष्णद्वारा नारदजीका स्मरण ... ५१५

७६–सत्यभामाद्वारा पुण्यक-व्रतमें श्रीकृष्णका नारदजीको दान, नारदजीका निष्क्रय लेकर श्रीकृष्णको छोड़ना और उनसे वर पाना, श्रीकृष्णका सगे-सम्बन्धियोंको पारिजात दिखाकर पुनः उसे स्वर्गमें पहुँचाना ... ५२०

७७–पुण्यक-विधिके वर्णनका उपक्रम ... ५२२

७८–उमाद्वारा सती स्त्रीके महत्त्वका वर्णन करते हुए पुण्यक-व्रतकी विधिका उपदेश ... ५२४

७९–पुण्यक-व्रतसम्बन्धी नियम एवं दानका वर्णन तथा पुत्र आदिके निमित्त किये जानेवाले दूसरे व्रत एवं दानका प्रतिपादन ... ५२६

८०–नाना प्रकारके व्रतोंका विधान ... ५३१

८१–उमाके द्वारा व्रतकथनका उपसंहार, श्रीनारदजीका देवियोंद्वारा किये गये व्रतोंका वर्णन करना तथा श्रीकृष्ण-पत्नियोंद्वारा व्रतका अनुष्ठान एवं दान ... ५३५

८२–षटपुरवासी असुरोंका संक्षिप्त परिचय, उन्हें ब्रह्मा और भगवान् शिवका वरदान ... ५३८

८३–ब्रह्मदत्तके यज्ञमें वसुदेव-देवकीका आगमन, दैत्योंद्वारा ब्रह्मदत्तकी कन्याओंका अपहरण और प्रद्युम्नद्वारा उनकी रक्षा, नारदजीके कहनेसे दैत्योंका क्षत्रिय नरेशोंको अपने पक्षमें मिलाना तथा श्रीकृष्णका षटपुरमें आगमन ... ५४०

८४–श्रीकृष्णद्वारा यादव-सेनाकी युद्धके लिये नियुक्ति, दानवोंका निष्क्रमण, निकुम्भद्वारा कुछ यादववीरोंका गुफामें बंदी होना, श्रीकृष्णके द्वारा दानव-सैनिकोंका संहार, प्रद्युम्नद्वारा राजसैनिकोंका गुफामें अवरोध तथा ब्रह्मदत्तको सान्त्वना ५४४

८५–निकुम्भका जयन्तसे पराजित होकर भगवान् श्रीकृष्णके साथ युद्ध करना, श्रीकृष्णका अर्जुनको निकुम्भका चरित्र बताना, आकाशवाणीकी प्रेरणासे सुदर्शनचक्रद्वारा निकुम्भका वध करना और ब्रह्मदत्तको षटपुर नगर देकर द्वारकाको प्रस्थान करना ५४८

८६–अन्धकासुरकी उत्पत्ति और अनाचार, उसके वधके लिये ऋषियोंका विचार, नारदजीका मन्दारपुष्पोंकी माला धारण करके अन्धकके यहाँ जाना और उससे मन्दार बनके महत्त्व बताना ५५३

८७–मन्दराचलपर गये हुए अन्धकासुरका महादेवजीद्वारा वध ५५७

८८–पिण्डारकतीर्थके अन्तर्गत समुद्रमें श्रीकृष्ण तथा अन्य यादवोंका जलविहार ... ५६०

८९–बलराम और श्रीकृष्ण आदि यादवोंकी जलक्रीड़ा एवं गान आदिका वर्णन ५६६

९०–निकुम्भद्वारा भानुमतीका अपहरण, श्रीकृष्ण, अर्जुन और प्रद्युम्नके साथ उसका युद्ध, गोकर्णतीर्थमें उसका पतन, प्रद्युम्नका भानुमतीको लेकर द्वारका पहुँचाना, फिर तीनोंका निकुम्भके साथ युद्ध, उसकी अद्भुत मायाका वर्णन और श्रीकृष्णद्वारा निकुम्भका वध ५७७

९१–वज्रनाभकी तपस्या और वरप्राप्ति, उसका त्रिभुवन-विजयके लिये उद्योग, इन्द्रकी श्रीकृष्णसे वार्ता, भद्रनामा नटको मुनियोंका वरदान, इन्द्रका हंसोंको आवश्यक कर्तव्य बताकर वज्रनाभपुरमें भेजना ५८२

९२–हंसोंका वज्रपुरमें निवास, हंसीका प्रभावतीको प्रद्युम्नके प्रति अनुरक्त कराना, प्रभावतीका हंसीसे प्रद्युम्नकी प्राप्ति करानेका अनुरोध, हंसी और वज्रनाभका संवाद, हंसोंके मुँहसे सब समाचार सुनकर श्रीकृष्णका नटवेषमें प्रद्युम्न आदि यादवोंको वज्रपुरमें भेजना ... ५८५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

९३–नटवेशधारी यादवोंका सुपुर और वज्रपुरमें सफल अभिनय करके दानवोंको रिझाकर उनसे उपहार पाना तथा प्रद्युम्नका प्रभावतीके घरमें प्रवेश ५८९

९४–प्रद्युम्न और प्रभावतीका गान्धर्वविवाह एवं समागम, फिर गद और चन्द्रवतीका तथा साम्ब और गुणवतीका गान्धर्वविवाह ... ५९४

९५–प्रद्युम्नका प्रभावतीसे वर्षाका वर्णन करते हुए उसे अपने कुलका परिचय देना ... ५९७

९६–कश्यपके मना करनेपर भी वज्रनाभका त्रिलोक-विजयके लिये प्रस्थान, श्रीकृष्ण और इन्द्रका प्रद्युम्नको संदेश देना और उनकी संततिके प्रभावका उल्लेख करना, दैत्योंका प्रद्युम्न आदिके पुत्रोंको बंदी बनाना, प्रभावती आदिका पतियोंको तलवार देकर युद्धके लिये भेजना, इन्द्रके द्वारा उनकी सहायता तथा प्रद्युम्नका अद्भुत पराक्रम ६०१

९७–प्रद्युम्नद्वारा वज्रनाभका वध तथा प्रद्युम्न आदिके पुत्रोंका राज्याभिषेक ६०६

९८–इन्द्रकी आज्ञासे विश्वकर्माद्वारा पुनः परिष्कृत की गयी द्वारकापुरीका वर्णन ६०९

९९–श्रीकृष्णका द्वारका तथा अन्तःपुरमें प्रवेश और मणिपर्वत एवं पारिजातको यथोचित स्थानमें स्थापित करना ६१४

१००–श्रीकृष्णका समस्त यादवोंसे मिलकर उन्हें सम्मानित करनेके लिये सभामें बुलाना ... ६१६

१०१–श्रीकृष्णद्वारा यादवोंका सत्कार तथा नारदजीका यादवोंकी सभामें श्रीकृष्णके प्रभावका वर्णन करना ६१७

१०२–नारदजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके अद्भुत कर्मोंका वर्णन ६२२

१०३–श्रीकृष्णकी संततिका वर्णन तथा वृष्णिवंशका उपसंहार ६२५

१०४–प्रद्युम्नका जन्म, शम्बरासुरद्वारा प्रद्युम्नका सूतिकागृहसे अपहरण, प्रद्युम्न-मायावती-संवाद और प्रद्युम्नका शम्बरासुरके सौ पुत्रोंके साथ युद्ध ६२७

१०५–प्रद्युम्नद्वारा शम्बरासुरकी सेना और मन्त्रियोंका संहार ६३१

१०६–शम्बरासुर और प्रद्युम्नका मायामय युद्ध, शम्बरकी चिन्ता, देवराज इन्द्रकी आज्ञासे नारदजीका प्रद्युम्नको उनके पूर्व स्वरूपका स्मरण दिलाना और आवश्यक कर्तव्य सुझाना ६३६

१०७–प्रद्युम्नके द्वारा शम्बरासुरका वध ... ६४०

१०८–मायावतीसहित प्रद्युम्नका द्वारकामें आगमन और रुक्मिणीके भवनमें प्रवेश ... ६४२

१०९–बलदेवजीके द्वारा प्रद्युम्नको आह्निकस्तोत्रका उपदेश ६४५

११०–साम्बकी उत्पत्ति और अस्त्रशिक्षा तथा द्वारकामें पधारे हुए राजाओंके बीच नारदजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी परम धन्यताका प्रतिपादन ६५०

१११–श्रीकृष्णकी महिमा–अर्जुनका श्रीकृष्णसे आज्ञा लेकर ब्राह्मण-बालककी रक्षाके लिये जाना ... ६५६

११२–ब्राह्मणबालककी रक्षा न होनेपर ब्राह्मणद्वारा अर्जुनका तिरस्कार और श्रीकृष्णके साथ उनका उत्तर दिशाको गमन ६५७

११३–श्रीकृष्णद्वारा ब्राह्मणपुत्रोंका आनयन ... ६५९

११४–भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको अपने यथार्थ स्वरूपका परिचय देना ६६२

११५–भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंका संक्षेपसे वर्णन ६६४

११६–भगवान् शङ्करका बाणासुरको अपने और देवी पार्वतीके पुत्रके रूपमें स्वीकार करना, बाणासुरका उनसे युद्धके लिये वर माँगना और पाना तथा इससे बाण-मन्त्री कुम्भाण्डका चिन्तित होना ६६५

११७–शिव-पार्वतीका क्रीड़ाविहार, पार्वतीका उषाको पति-समागमके लिये वर देना तथा उषाकी विरह-व्यथाका वर्णन ६७१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

११८–उषाका स्वप्नमें प्रियतमके साथ समागम, इससे उषाकी चिन्ता, सखियोंका उसे समझाना, कुम्भाण्डकुमारीके कहनेसे उषाका चित्रलेखाको बुलाकर उसे अपना कष्ट बताना, चित्रलेखाके बनाये हुए चित्रोंसे उषाका अनिरुद्धको पहचानना और उन्हें लानेके लिये चित्रलेखाका द्वारकाको जाना ६७५

११९–चित्रलेखा और नारदजीका संवाद, चित्रलेखाका नारदजीसे तामसी विद्या ग्रहण कर अनिरुद्धको शोणितपुर ले जाना, उषा और अनिरुद्धका गान्धर्व-विवाह, अनिरुद्धका बाणासुरके सैनिकों तथा बाणासुरके साथ युद्ध, उनका नागपाशमें बँधकर बंदी होना तथा नारदजीका द्वारका जाना ... ६८२

१२०–अनिरुद्धके द्वारा आर्यादेवीकी स्तुति और देवीका प्रसन्न होकर उन्हें बन्धनके कष्टसे मुक्त करना ६९५

१२१–अनिरुद्धके अपहरणसे रनवासमें शोक, श्रीकृष्ण और यादवोंकी चिन्ता, गुप्तचरोंकी नियुक्ति और उनकी विफलता, नारदजीका आगमन और अनिरुद्धका समाचार-निवेदन, श्रीकृष्णके द्वारा गरुड़का आवाहन और स्तवन, गरुड़-द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और श्रीकृष्णका शोणितपुरको प्रस्थान ६९९

१२२–श्रीकृष्ण, बलभद्र और प्रद्युम्नका शोणितपुरके लिये प्रस्थान, गरुड़का आहवनीय अग्निको शान्त करना, श्रीकृष्णद्वारा अग्निगणोंकी पराजय, बाणासुरके सैनिकोंके साथ श्रीकृष्ण आदिका युद्ध, त्रिशिरा ज्वरका आक्रमण और श्रीकृष्णके साथ उसका युद्ध ७०८

१२३–श्रीकृष्णसे पराजित हुए ज्वरका उनकी शरणमें जाना, उनसे वर पाना और उनकी आज्ञा शिरोधार्यकर रणभूमिसे हट जाना ... ७१४

१२४–बाणासुरकी सेनाका पलायन, भगवान् शङ्करका अपने गणोंके साथ युद्धके लिये आगमन, भगवान् श्रीकृष्ण और रुद्रका युद्ध तथा बाणासुरका युद्धभूमिमें पदार्पण ... ७१७

१२५–श्रीकृष्णके जृम्भास्त्रसे भगवान् शङ्करका जँभाईके वशीभूत होना, ब्रह्माजीके द्वारा शिव-जीको विष्णुके साथ उनकी एकताका स्मरण दिलाना तथा ब्रह्माजीके पूछनेपर मार्कण्डेयजीका हरिहरकी एकता स्थापित करते हुए माहात्म्यसहित हरिहरात्मक स्तोत्रका वर्णन करना ७२१

१२६–स्वामी कार्तिकेय और श्रीकृष्णके युद्धमें स्वामी कार्तिकेयकी पराजय, कोटवीदेवीका कार्तिकेयकी रक्षा करना, बाणासुर और श्रीकृष्णका युद्ध, श्रीकृष्णका बाणासुरकी हजार भुजाओंको काटना, महादेवजीका बाणासुरको महाकाल होनेका वरदान देना ७२५

१२७–अनिरुद्धका नागपाशसे छुटकारा और उनके द्वारा श्रीकृष्ण आदिकी वन्दना, नारदजीके कहनेसे उनका वीर्य-विवाह, उषाकी विदाई, सबका द्वारकाको प्रस्थान, मार्गमें श्रीकृष्णद्वारा वरुण देवतापर विजय, वरुणद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और पूजा, श्रीकृष्णके आगमनसे द्वारका-वासियोंका हर्ष, भगवान्‌के आदेशसे पुरवासियों-द्वारा देवताओंकी वन्दना, इन्द्रद्वारा श्रीकृष्णकी प्रशंसा और सब देवताओं तथा ऋषियों आदि-का अपने-अपने स्थानको जाना ... ७३६

१२८–द्वारकामें उत्सव, उषाका अन्तःपुरमें प्रवेश और सत्कार, श्रीकृष्ण और विष्णुपर्वकी महिमा तथा पर्वका उपसंहार ७४६

(भविष्यपर्व)

१–जनमेजयकी संतति एवं पौरव तथा पाण्डववंश-की प्रतिष्ठाका वर्णन ७४९

२–राजा जनमेजयका अश्वमेधयज्ञ करनेका विचार, व्यासजीका आगमन और राजा द्वारा उनका सत्कार, आपने पाण्डवोंको राजसूय यज्ञ करनेसे क्यों नहीं रोका—यह जनमेजयका प्रश्न और उसके उत्तरमें व्यासजीद्वारा कालकी प्रबलताका प्रतिपादन ७५०

३–व्यासजीद्वारा कलियुगकी स्थितिका वर्णन ... ७५४

४–कलियुगका वर्णन ७५७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५—व्यासजी आदिका गमन, जनमेजयके अश्वमेधयज्ञमें इन्द्रका विघ्न डालना, जनमेजयद्वारा इन्द्रको शाप, ब्राह्मणोंका निर्वासन तथा अपनी पत्नीकी भर्त्सना, विश्वावसुका जनमेजयको समझाना ... ७६१

६—जनमेजयका संतुष्ट होकर राज्य-शासन करना तथा इस ग्रन्थके पाठ और श्रवणकी महिमा ... ७६४

७—पुष्कर-प्रादुर्भावके विषयमें जनमेजयका प्रश्न और वैशम्पायनजीका उत्तर—भगवान् नारायणकी महिमाका प्रतिपादन ७६५

८—सत्ययुग आदिके परिमाणका वर्णन ... ७६७

९—प्रलयके पश्चात् एकार्णवके जलमें भगवान् नारायणका शयन ७६९

१०—एकार्णवमें भगवान् और मार्कण्डेयजीका संवाद ७७०

११—परमात्माके द्वारा भूतोंकी सृष्टि तथा ब्रह्माजीको प्रकट करनेके लिये उनकी नाभिसे एक महान् पद्मका प्रादुर्भाव ७७५

१२—नारायणके नाभिकमलके दलोंमें समस्त लोकोंकी कल्पना ७७७

१३—मधु और कैटभका ब्रह्माजीके साथ संवाद तथा भगवान् विष्णुके द्वारा वध ७७८

१४—ब्रह्माजीके तीन पुत्रोंको परम पदकी प्राप्ति, फिर उनके द्वारा मैथुनी सृष्टिका विस्तार, दक्ष-कन्याओंकी संततिका वर्णन ७८०

१५—जनमेजयके द्वारा महाभारत-वर्णित चरित्रकी प्रशंसा ७८५

१६—सृष्टिविषयक वर्णनके प्रसङ्गमें ज्ञान और योगका विचार ७८६

१७—मैनाककी स्थिति, मेरुपृष्ठपर परमात्मासे ब्रह्माजीका प्राकट्य, मेरुकी विशालता, ब्रह्माजीके द्वारा सृष्टि, ब्रह्म और ब्रह्माके स्वरूपका वर्णन, गङ्गाका प्रादुर्भाव, सोमकी उत्पत्ति, धर्मके पाद, योग-साधना, ऐश्वर्यसे हानि, वेदोंका प्राकट्य, यज्ञपुरुषका वर्णन, योगवेत्ताकी महिमा, चित्तकी उपलब्धिमें कारण, मोक्ष-सम्बन्धी कर्म करनेका विधान और कर्मफलके त्यागसे मुक्ति ... ७८९

१८—योगके उपसर्ग (विघ्न), योगीकी विष्णुरूपसे स्थिति, कर्मलयसे मुक्ति, सकाम कर्मियोंकी धूम-मार्गसे गति और पुनरावृत्ति, ज्ञानी एवं योगी-को तत्त्वका साक्षात्कार तथा ब्रह्मयुगका वर्णन ... ७९५

१९—योगीकी स्थिति तथा उसके समक्ष आनेवाले विघ्नरूप ऐश्वर्योंका वर्णन ७९८

२०—ब्रह्माजीके द्वारा योगधारणपूर्वक की गयी मानसिक सृष्टिका वर्णन ८०२

२१—क्षत्रयुगके प्रसंगमें ज्ञानसिद्ध ब्राह्मणोंका वर्णन, प्रजापतिदक्षद्वारा प्राणियों एवं चारों वर्णोंकी सृष्टि तथा उनका अपने पुत्रोंको धात्रीका अन्त जाननेके लिये आदेश ८०३

२२—दक्षका अपने आधे अङ्गसे स्त्रीरूप होकर बहुत-सी कन्याओंको उत्पन्न करना और उनका धर्म, कश्यप एवं सोमको दान कर देना, कश्यप और दक्षकन्याओंकी संतानोंका वर्णन तथा देवलोकमें उत्पन्न होनेवालोंकी योग्यता ८०५

२३—ब्रह्माजीके महायज्ञका वर्णन ८०७

२४—चारों आश्रमोंमें स्थित हुए ब्राह्मणोंकी ब्रह्माजीके यज्ञस्थलके पुण्य-प्रदेशमें निवासकी इच्छा ... ८११

२५—नारद आदिके द्वारा ब्राह्मणों तथा ब्रह्माजीका सत्कार, ब्रह्माजीके द्वारा कश्यपको यज्ञका आदेश, देवता-दानव-युद्ध तथा विष्णुके द्वारा मधुकी पराजय ८१२

२६—मधु और विष्णुका घोर युद्ध, देवताओं और ऋषियोंद्वारा श्रीविष्णुकी स्तुति, हयग्रीवरूपधारी विष्णुद्वारा मधुका वध और पृथ्वीको मेदिनी नामकी प्राप्ति ८१३

२७—मधुके पतनसे समस्त प्राणियोंको हर्ष, वहाँ एकत्र हुए पर्वतों और वसन्त ऋतुका वर्णन, मधुवाहिनी नदीका प्राकट्य और गौरीसिद्धाका माहात्म्य ८१७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२८–पुष्करमें श्रीविष्णु आदिकी तपस्या और उसके प्रभावका वर्णन ८२१

२९–तपस्याके प्रभावसे देवताओंका उत्कर्ष ... ८२८

३०–पृथुका राज्याभिषेक तथा दैत्यों और देवताओं-द्वारा मन्दराचलके मन्थनदण्डद्वारा समुद्रका मन्थन, समुद्रसे अन्य रत्नोंके साथ अमृतका प्राकट्य और राहुके सिरका छेदन ... ८३०

३१–बलिके यज्ञमें वामनद्वारा त्रिलोकीके राज्यका अपहरण तथा कालान्तरमें देवताओंद्वारा बलिका राज्याभिषेक ८३२

३२–दक्ष-यज्ञ-विध्वंस ८३३

३३–वाराहावतारका उपक्रम ८३८

३४–भगवान् यज्ञवराहके द्वारा पृथ्वीका उद्धार ... ८४१

३५–भगवान् वाराहके द्वारा विभिन्न दिशाओंमें पर्वतों और नदियोंका निर्माण ... ८४४

३६–जगत्की सृष्टिका वर्णन ८४७

३७–ब्रह्माजीद्वारा विभिन्न वर्गके अधिपतियोंकी नियुक्ति ८५१

३८–देवासुर-संग्राम तथा हिरण्याक्षद्वारा देवराज इन्द्रका स्तम्भन ८५४

३९–भगवान् वाराहद्वारा हिरण्याक्षका वध ... ८५६

४०–देवताओंको अपने प्रभुत्वकी प्राप्ति, देवराज इन्द्रकी सम्पूर्ण लोकोंके आधिपत्यपर प्रतिष्ठा, सत्-असत् पुरुषोंकी यथोचित गतिके लिये आदेश देकर भगवान्का अन्तर्धान होना तथा देवेन्द्रद्वारा पर्वतोंके पंखका छेदन ... ८५८

४१–हिरण्यकशिपुकी तपस्या, वरप्राप्ति, अत्याचार, देवताओंको ब्रह्माजीका आश्वासन, भगवान् विष्णुका नरसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपु-की सभामें जाना तथा उस सभाका वर्णन ... ८६०

४२–भगवान् नरसिंहका देवता, गन्धर्व, अप्सराओं तथा दैत्योंसे सेवित हिरण्यकशिपुको देखना ... ८६५

४३–प्रह्लादको नरसिंह-विग्रहमें समस्त त्रिलोकीका दर्शन ८६६

४४–दैत्यों तथा हिरण्यकशिपुद्वारा नृसिंहपर विभिन्न अस्त्रोंका प्रहार ८६७

४५–दैत्योंद्वारा किये गये प्रहारों और रची गयी मायाओंकी निष्फलता ८६९

४६–दैत्योंके विनाशकी सूचना देनेवाले महान् उत्पात, हिरण्यकशिपुका गदा लेकर धावा करना तथा उसके पैरोंकी धमकसे पृथ्वी, पर्वत, नदी एवं देशोंका कम्पित होना ८७१

४७–देवताओंके अनुरोधसे भगवान् नरसिंहद्वारा हिरण्यकशिपुका वध तथा देवताओं और ब्रह्माजीद्वारा उनकी स्तुति ८७६

४८–वामनावतारका उपक्रम, बलिका अभिषेक तथा दैत्योंका उनसे त्रैलोक्य-विजयके लिये अनुरोध ... ८७८

४९–देवताओंके साथ युद्धके लिये दैत्योंकी तैयारी ... ८८०

५०–पुलोमा, हयग्रीव, प्रह्लाद और शम्बरासुरका युद्धके लिये उद्योग ८८३

५१–अनुह्लाद, विरोचन, कुजम्भ, असिलोमा, वृत्र, एकचक्र, वृत्रभ्राता, राहु, विप्रचित्ति, केशी, वृषपर्वा तथा बलिका युद्धके लिये तैयार होकर आगे बढ़ना ८८५

५२–इन्द्र आदि देवताओं और लोकपालोंका युद्धके लिये उद्योग और प्रस्थान ८९३

५३–देवताओं और असुरोंका द्वन्द्वयुद्ध, भीषण उत्पात, ब्रह्माजी तथा सनकादि योगेश्वरोंका युद्ध देखनेके लिये आगमन ... ८९९

५४–देवताओं और असुरोंके युद्धका यज्ञके रूपमें वर्णन, दोनों सेनाओंका तुमुलयुद्ध तथा सावित्र और ध्रुवकी पराजय ९०२

५५–नमुचिद्वारा धर नामक वसुकी, मयासुरद्वारा त्वष्टाकी, वायुदेवद्वारा पुलोमाकी, हयग्रीवद्वारा पूषा देवताकी, शम्बरासुरद्वारा भगकी तथा चन्द्रदेवद्वारा समूची दैत्यसेनाकी पराजय ... ९०७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५६–देवताओं और दानवोंका घोर संग्राम—विरोचनका विष्वक्सेनके साथ और कुजम्भका अंश देवताके साथ युद्ध करते समय घोर पराक्रम प्रकट करना ९१७

५७–देवासुरसंग्राममें कुजम्भ, असिलोमा और वृत्रासुरके उत्कर्षका वर्णन तथा हरि एवं अश्विनीकुमारकी पराजय ९२१

५८–रणाजि और एकचक्रके, मृगव्याध और बलासुरके, अजैकपाद् और राहुके तथा सुधूम्राक्ष एवं केशी दैत्यके युद्धका वर्णन ... ९२५

५९–वृषपर्वा और निष्कुम्भ नामक विश्वेदेवके तथा प्रह्लाद और कालके घोर युद्धका वर्णन ... ९३१

६०–कुबेर और अनुह्लादका भयंकर युद्ध ... ९३८

६१–वरुणका विप्रचित्तिके साथ युद्ध और पराजय ... ९४२

६२–अग्निद्वारा दैत्योंकी पराजय तथा बृहस्पतिके द्वारा अग्निदेवका स्तवन ९४५

६३–राजा बलिके प्रति प्रह्लादका वचन तथा बलिका देवसेनापर आक्रमण ९४८

६४–बलि और इन्द्रका युद्ध तथा इन्द्रका रणभूमिसे पलायन ९४९

६५–विजयी बलिके पास राजलक्ष्मी आदिका शुभागमन ९५१

६६–अदिति और कश्यपजीके साथ देवताओंका ब्रह्मलोकमें जाना ९५३

६७–ब्रह्माजीकी आज्ञासे कश्यप और अदितिसहित देवताओंका क्षीरसागरके उत्तरतटपर जाकर तपस्यामें संलग्न होना ९५६

६८–कश्यपद्वारा परमपुरुष परमात्माका स्तवन ... ९५७

६९–कश्यप-अदिति और देवताओंको भगवान् विष्णुका वरदान देना और अदितिके गर्भसे प्रकट होना ९५९

७०–ऋषियों और विविध देवताओंका वामनजीको नमस्कार करना, गन्धर्वों तथा अप्सराओंका नाचना-गाना, भगवान्‌के वैशिष्ट्यका वर्णन, भगवान्‌का देवताओंसे उनका मनोरथ पूछकर बृहस्पतिजीके साथ बलिके यज्ञमें जाना, वहाँ अपनी वाक्पटुतासे सबको चकित कर देना और राजा बलिका उनसे परिचय तथा आगमन-का प्रयोजन पूछना ९६१

७१–वामनद्वारा बलिके यज्ञकी प्रशंसा, बलिसे माँगनेके लिये प्रेरित होनेपर वामनका उनसे तीन पग भूमि माँगना, शुक्राचार्य और प्रह्लाद-का बलिको दान देनेसे रोकना, बलिद्वारा दानका समर्थन तथा दान पाते ही वामनका अपने विराट्‌रूपको प्रकट करना ... ९६५

७२–विराट्‌रूपधारी वामनपर आक्रमण करनेवाले दैत्योंके नाम, रूप और आयुधोंका परिचय, भगवान्‌का तीनों लोकोंको नापकर राज्यका विभाजन करना, बलिको पातालका राज्य दे मर्यादा बाँधकर उन्हें वहाँ भेजना, जीविकाकी व्यवस्था करना, नारदजीका बलिको मोक्षविंशक स्तोत्रका उपदेश देना, उसके प्रभावसे बलिका बन्धन-मुक्त होना और उस स्तोत्रकी महिमा ९६९

७३–रुक्मिणी देवीकी भगवान् श्रीकृष्णसे पुत्रके लिये प्रार्थना और भगवान्‌का उन्हें आश्वासन देते हुए कैलास जानेका विचार प्रकट करना ९७६

७४–भगवान् श्रीकृष्णका यादवसभामें अपनी कैलास-यात्राका विचार प्रकट करते हुए नगरकी रक्षाके लिये यादवोंको सावधान रहनेका आदेश देना ९७९

७५–भगवान् श्रीकृष्णकी सात्यकि और उद्धवसे नगरकी रक्षाके विषयमें बातचीत तथा बलराम आदि यादवोंको भी रक्षाका भार सौंपकर उनका कैलासयात्राके लिये उद्यत होना ... ९८१

७६–गरुड़पर आरूढ़ होकर श्रीकृष्णका बदरिकाश्रम-में जाना, मार्गमें देवताओं-मुनियोंद्वारा उनकी स्तुति ९८३

७७–देवताओंसहित श्रीकृष्णका बदरिकाश्रममें ऋषियोंद्वारा आतिथ्य-सत्कार ... ९८६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

७८–भगवान् श्रीकृष्णकी समाधि, महान् कोलाहल और उनके पास भागते हुए मृग आदिका आगमन ··· ९८७

७९–भगवान् श्रीकृष्णके समक्ष दो पिशाचोंका आगमन ··· ··· ९८९

८०–घण्टाकर्ण और भगवान् श्रीकृष्णका एक-दूसरेको अपना परिचय देना तथा घण्टाकर्णद्वारा भगवान् विष्णुका स्तवन एवं समाधि-लाभ ··· ९९१

८१–पिशाचको समाधि-अवस्थामें भगवान् विष्णुका साक्षात्कार ···.९९६

८२–घण्टाकर्णद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति ··· ९९८

८३–घण्टाकर्णद्वारा भगवान् श्रीकृष्णको उपहार-समर्पण, भगवान्का उसे वर देना और एक मरे हुए ब्राह्मणको जीवित करना ···१००१

८४–श्रीकृष्णका कैलासपर पहुँचकर वहाँ बारह वर्षोंके लिये कठोर तपस्यामें संलग्न होना ···१००४

८५–भगवान् श्रीकृष्णके समीप इन्द्र आदि देवताओं तथा उमासहित भगवान् शिवका आगमन ···१००६

८६–पिशाचों, मुनियों और अप्सराओंके साथ उमा-सहित भगवान् शङ्करका श्रीकृष्णके समीप गमन१००७

८७–भगवान् श्रीकृष्णद्वारा महादेवजीकी स्तुति १००९

८८–भगवान् शिवद्वारा श्रीविष्णुकी स्तुति ··· १०११

८९–भगवान् शङ्करका ऋषियोंको श्रीकृष्णतत्त्वका उपदेश देना ··· ··· १०१६

९०–भगवान् शङ्करद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति और श्रीकृष्णका कैलाससे बदरिकाश्रममें लौटना १०१७

९१–पौण्ड्रकका राजाओंकी सभाओंमें अपनेको शङ्ख, चक्र आदिसे युक्त वासुदेव घोषित करना और श्रीकृष्णको पराजित करनेका मनसूबा बाँधना ··· ··· १०२०

९२–पौण्ड्रकके यहाँ नारदजीका आगमन और उसके साथ उनकी बातचीत ··· ··· १०२१

९३–नारदजीका श्रीकृष्णके पास जाना और पौण्ड्रकका द्वारकापर आक्रमण ··· १०२३

९४–यादव वीरोंद्वारा पौण्ड्रककी सेनाका और एकलव्यद्वारा यादव-सेनाका संहार ··· १०२४

९५–पौण्ड्रकद्वारा पूर्वद्वारके परकोटोंको तोड़नेका प्रयत्न, सात्यकि आदि यादववीरोंका रक्षाके लिये पहुँचना, सात्यकिका वायव्यास्त्रद्वारा पौण्ड्रकसैनिकोंको भगाकर पौण्ड्रकको युद्धके लिये ललकारना और पौण्ड्रककी गर्वोक्ति ··· १०२७

९६–पौण्ड्रक और सात्यकिका युद्ध ··· १०२९

९७–सात्यकि और पौण्ड्रकका युद्ध ··· १०३२

९८–बलभद्र और एकलव्यका युद्ध तथा बलभद्रद्वारा निषादोंका संहार··· ···. १०३३

९९–बलभद्र और एकलव्यका तथा पौण्ड्रक और सात्यकिका युद्ध ··· ··· १०३५

१००–श्रीकृष्णका द्वारकामें आगमन और पौण्ड्रकसे उनकी बातचीत ··· ··· १०३६

१०१–पौण्ड्रक और श्रीकृष्णका युद्ध तथा पौण्ड्रकका वध ··· ··· १०३९

१०२–एकलव्यका द्वीपान्तर-गमन, भगवान् श्रीकृष्णका यादवोंको अपनी यात्राका संक्षिप्त वृत्तान्त बताना तथा अन्तःपुरमें रुक्मिणी और सत्यभामासे मिलकर उन्हें संतोष देना १०४०

१०३–हंस और डिम्भकके विषयमें जनमेजयका प्रश्न १०४२

१०४–राजा ब्रह्मदत्तको भगवान् शङ्करकी आराधनासे हंस और डिम्भक नामक पुत्रोंकी प्राप्ति तथा राजसखा विप्रवर मित्रसहको भगवान् विष्णुकी उपासनासे जनार्दन नामक पुत्रका लाभ··· १०४३

१०५–हंस और डिम्भककी तपस्या, वरप्राप्ति, जनार्दन-सहित उन दोनोंका विवाह तथा तीनों कुमारोंकी धर्मनिष्ठा ··· ··· १०४४

१०६–हंस और डिम्भककी मृगया ··· १०४६

१०७–सेनासहित हंस और डिम्भकका पुष्कर-तटपर विश्राम, महर्षि कश्यपके वैष्णवसत्रका दर्शन तथा दुर्वासा आदि यतियोंके समुदायमें जाकर उनके प्रति अपनी श्रद्धाका प्रदर्शन ··· १०४७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१०८–हंस और डिम्भकद्वारा संन्यासकी निन्दा तथा जनार्दनद्वारा संन्यास-आश्रमका मण्डन ... १०४९

१०९–दुर्वासाका रोष, हंसद्वारा उनका तिरस्कार, दुर्वासाद्वारा उन दोनोंके लिये शाप और जनार्दनके लिये वरदान १०५०

११०–दुर्वासा आदि मुनियोंका द्वारकागमन ... १०५२

१११–श्रीकृष्णकी गोलक्रीडा, सुधर्मा सभामें दुर्वासा आदि मुनियोंका आगमन तथा यादवों और श्रीकृष्णद्वारा उनका सत्कार, श्रीकृष्णका उनसे वहाँ आनेका कारण पूछना और दुर्वासाका भगवान्‌की स्तुति एवं उपालम्भपूर्वक उनके प्रश्नका प्रतिवाद करके अपनी दुर्दशाका वृत्तान्त सुनाना १०५३

११२–भगवान् श्रीकृष्णकी हंस और डिम्भकके वधके लिये प्रतिज्ञा तथा क्षमा-प्रार्थनापूर्वक उनका यतियोंको भोजन कराना ... १०५८

११३–जनार्दनका हंसको समझाना; किंतु हंसका उनकी बात न मानकर उन्हें दूत बनाकर द्वारकाको भेजना १०५९

११४–जनार्दनकी भगवद्दर्शनविषयक उत्कण्ठा ... १०६१

११५–जनार्दनका सुधर्मा-सभामें जाकर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे संतुष्ट हो उनकी आज्ञासे भगवत्स्तवनपूर्वक हंस और डिम्भकका संदेश सुनाना और उसे सुनकर यादवोंका उपहास करना १०६४

११६–श्रीकृष्णका जनार्दनको संदेश देकर लौटाना १०६७

११७–सात्यकिसहित जनार्दनका शाल्वनगरमें जाना, हंससे मिलना तथा हंसका जनार्दनसे कार्य-सिद्धिके विषयमें पूछना १०६७

११८–जनार्दनका हंसको श्रीकृष्णदर्शनजनित अपना उल्लास बताना, द्वारकामें हंसके संदेशकी प्रतिक्रियाका वर्णन करके उसे राजसूय न करनेकी सलाह देना, हंसका उसे रोषपूर्वक तिरस्कृत करके चले जानेके लिये कहना, फिर सात्यकिका हंसको श्रीकृष्णका संदेश सुनाते हुए फटकारना १०६८

११९–हंस और डिम्भकके सात्यकिके प्रति रोषपूर्ण वचन तथा सात्यकिका उन्हें वैसा ही उत्तर देकर द्वारकाको प्रस्थान १०७२

१२०–भगवान् श्रीकृष्ण तथा यादवसेनाका पुष्कर-तीर्थमें जाकर हंस और डिम्भककी प्रतीक्षा करना १०७३

१२१–हंस और डिम्भककी सेनाओंका पुष्करतीर्थमें प्रवेश १०७५

१२२–उभयपक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध ... १०७७

१२३–श्रीकृष्ण और विचक्रका घोर युद्ध तथा विचक्रका वध १०७८

१२४–हंस और बलभद्रका युद्ध १०८०

१२५–सात्यकि और डिम्भकका युद्ध ... १०८१

१२६–हिडिम्बके साथ वसुदेव और उग्रसेनका युद्ध तथा बलभद्रके द्वारा हिडिम्बका वध ... १०८३

१२७–गोवर्धन पर्वतके समीप हंस और डिम्भकके साथ यादवोंका युद्ध, श्रीकृष्णद्वारा भूतेश्वरोंकी पराजय तथा श्रीकृष्ण और हंसका घोर युद्ध १०८६

१२८–श्रीकृष्णद्वारा हंसका वध १०८९

१२९–डिम्भककी आत्महत्या १०९०

१३०–गोप-गोपियोंसहित यशोदा और नन्दका गोवर्धन पर्वतपर आकर श्रीकृष्ण और बलभद्रसे मिलना १०९१

१३१–द्वारका जाते हुए श्रीकृष्णका पुष्करमें ऋषियोंसे मिलना तथा ऋषियोंद्वारा उनका स्तवन १०९२

१३२–महाभारत और हरिवंशके श्रवणकी विधि और फल, वाचकके गुण, प्रत्येक पर्वपर दान देने योग्य वस्तु, एकसे लेकर दस पारणाओंकी महत्ता तथा महाभारत एवं हरिवंशका माहात्म्य १०९३

१३३–त्रिपुर-वधकी कथा ११००

१३४–हरिवंशमें वर्णित वृत्तान्तोंका संग्रह ... ११०५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१३५–हरिवंश-श्रवणकी दक्षिणा, फल एवं माहात्म्यका वर्णन ११०७

श्रीहरिवंश-माहात्म्य

१–हरिवंश-श्रवणका माहात्म्य, नारीके पाँच दोष और हरिवंश-श्रवणसे उनकी निवृत्ति, पाठके उत्तम, मध्यम आदि भेद तथा गोव्रतकी विधि ११०९

२–(१) हरिवंश-श्रवणकी विधि और फल ... १११९

३–(२) हरिवंश-श्रवणकी विधि और फल ... १११४

४–नवाहव्रती श्रोताओंके पालन करने योग्य नियम, उनके द्वारा त्याज्य वस्तुओंका उल्लेख, न्यायविरुद्ध कथा-श्रवण करनेवालोंकी दुर्गति, कथामें विघ्न डालनेके कारण एक नारीको नरक-यातना एवं राक्षसयोनिकी प्राप्ति तथा श्रोताओं-के चौदह भेद १११६

५–हरिवंशके नवाह-पारायणका उद्यापन, उसमें किये जानेवाले दान, पुस्तक-पूजा और वाचकपूजन आदिका विधान एवं माहात्म्य ... ११२१

६–हरिवंश आरम्भ करनेके लिये उत्तम मास, तिथि, नक्षत्र आदिका निर्देश, देवपूजन, व्यासपूजन तथा कथा-समाप्तिपर दी जानेवाली दक्षिणा एवं दान आदिका उल्लेख तथा श्रवणका माहात्म्य ११२४

(संतानगोपाल-मन्त्रविधि)

१–संतानगोपालमन्त्रविधिः (१) ... ११२९

२–संतानगोपाल-मन्त्र (२) ११२९

३–सनत्कुमारोक्त संतानगोपालमन्त्र (३) ... ११३०

४–संतानगोपालस्तोत्रम् ११३२

५–श्रीविष्णुशतनामस्तोत्रम् ११३९

६–वन्ध्यानां पुत्रोत्पत्त्यर्थं संतानगोपालमन्त्रविधिः ११४०

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१–भगवान् शिव ... १

२–क्रीडाके आवेशमें बालकृष्ण ... १४५

३–भगवान् श्रीकृष्णका इन्द्रके साथ प्राग्ज्योतिषपुरके लिये अभियान ... २८९

४–सत्यभामाजीके द्वारा नारदजीको श्रीकृष्णका दान ... ४३३

५–मधु-कैटभ दानवद्वारा एकार्णवमें हलचल ७२१

६–हिरण्याक्ष-वध ८५७

७–दानवराज बलिपर लक्ष्मीकी कृपा ... ८६५

८–शंकरजीसे देवताओंकी प्रार्थना ... १००९

(एकरंगा)

९–महाराज पृथुके द्वारा गोरूपिणी पृथ्वीका शासन ... २४

१०–उत्तङ्ककी प्रेरणासे कुवलाश्वद्वारा धुन्धु राक्षसका वध ... ४६

११–महाराज रजिके नायकत्वमें देवताओंद्वारा दानवोंका संहार ... ९७

१२–रावणको बन्धनसे मुक्त करनेके लिये सहस्रार्जुनसे पुलस्त्यका अनुरोध ... ११९

१३–गरुडासनपर भगवान् विष्णु ... १७९

१४–लवणासुरकी श्रीरामको चुनौती ... २०६

१५–कालिय-ह्रदमें श्रीकृष्ण ... २४७

१६–अक्रूरको श्रीकृष्णका दर्शन ... २९५

१७–श्रीकृष्ण-बलरामकी मथुरा-यात्रा ... २९९

१८–श्रीकृष्ण-बलरामकी परशुरामजीसे भेंट ... ३५७

१९–भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा शृगाल-पुत्रका राज्याभिषेक ... ३८५

२०–महाराज उग्रसेनके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णका स्वागत ... ४२४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२१—कालयवनका उद्धार ... ४३६
२२—श्रीकृष्णके द्वारा रुक्मिणीका हरण ... ४४६
२३—वन्दीगृहमें कन्याओंको श्रीकृष्णके दर्शन ... ४६६
२४—नारदजीका अन्धकासुरसे भेंट ... ५५६
२५—महाराज उग्रसेनकी सभामें बलराम-श्रीकृष्ण ५७७
२६—श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-प्रद्युम्न रतिसे मिल रहे हैं ६४४
२७—मृत ब्राह्मण-बालककी खोजमें निकले हुए श्रीकृष्णकी समुद्रद्वारा पूजा ... ६६०
२८—देवीके द्वारा अनिरुद्धकी नागपाशसे मुक्ति ६९७
२९—महाराज जनमेजयद्वारा महर्षि वेदव्यासका स्वागत ७५१
३०—राहुको दण्ड ८३२
३१—भगवान् शंकरके बाणसे बींधा हुआ यज्ञ मृगरूप होकर भागा ८३५
३२—रसातलसे पृथ्वीका उद्धार ८४४
३३—हिरण्यकशिपुका वध ८७६
३४—ब्रह्माजीके द्वारा बलिका राज्याभिषेक ... ८८०
३५—ब्रह्माजीकी सभामें कश्यप-अदितिके साथ देवताओंका प्रवेश ९५४
३६—तपस्यामें रत भगवान् श्रीकृष्णको शिव-पार्वतीका दर्शन १००६
३७—पौण्ड्रकका उद्धार १०४०
३८—भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा दुर्वासा मुनिका स्वागत १०५४
३९—भगवान् श्रीकृष्णकी विजय-यात्रा ... १०७४
४०—श्रीकृष्ण-बलरामकी नन्द-यशोदासे भेंट ... १०९१

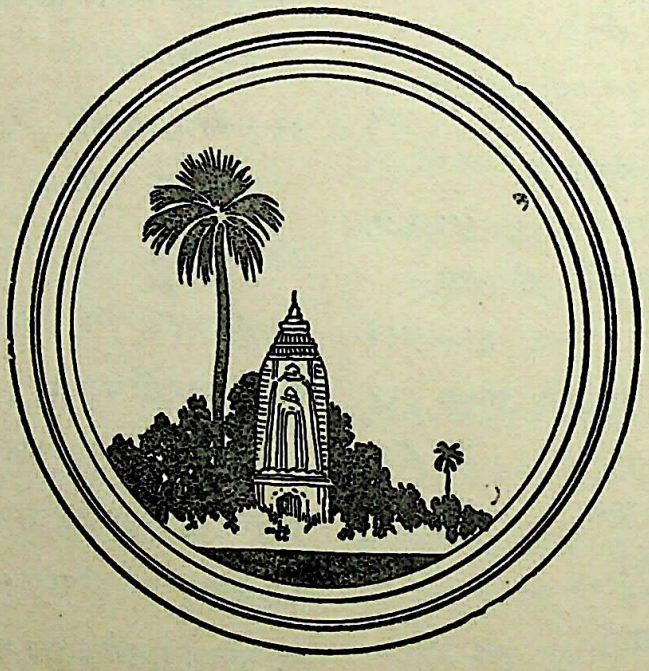

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

जैमिनीयाश्वमेधपर्वकी विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१	युधिष्ठिरकी चिन्ता, व्यासजीका उन्हें समझाते हुए द्रव्य-प्राप्तिका उपाय, अश्वमेध-यज्ञकी विधि तथा उसमें छोड़े जानेवाले अश्वके लक्षणोंका वर्णन करना, यज्ञके विषयमें युधिष्ठिर-भीमसेन-संवाद और व्यासजीका अश्वका पता बताना ...	१
२	भीमसेनकी अश्व लानेके लिये दृढ़ प्रतिज्ञा, भीमसेनके साथ वृषकेतु और मेघवर्णकी बात-चीत, युधिष्ठिरका अश्वमेध-यज्ञके लिये चिन्तित होकर भाइयोंसे पूछना, भीमसेनका उत्तर, युधिष्ठिरके स्मरण करनेपर श्रीकृष्णका आगमन और युधिष्ठिरके साथ उनका वार्तालाप	६
३	भीमसेनका श्रीकृष्णकी बातोंका उत्तर देते हुए उनके गुणोंका वर्णन, श्रीकृष्णकी प्रसन्नता, भीमसेनका वृषकेतु और मेघवर्णके साथ भद्रावती-पुरीमें पहुँचकर वहाँकी शोभा देखना और अश्वकी प्रतीक्षामें पर्वतपर स्थित होना ...	१२
४	वृषकेतुद्वारा भीमको प्रोत्साहन, सरोवरमें हाथियों और घोड़ोंके स्नान एवं जलपानका वर्णन, श्यामकर्ण अश्वके लिये भीमकी चिन्ता, उस अश्वका सरोवरतटपर आगमन, मेघवर्णका भीमकी आज्ञा लेकर उस अश्वको हर लाना, देवताओंकी शङ्का और मेघवर्णकी बातसे उनका संतुष्ट होना, मेघवर्णकी विजय, वृषकेतुद्वारा अश्वरक्षक सैनिकोंकी पराजय, सेनासहित राजा नीलध्वजका आगमन, वृषकेतुका उसकी सेनाके साथ स्वयं ही युद्ध करनेके लिये भीमसेनसे आग्रह तथा भीमसेनकी स्वीकृति और वृषकेतु तथा राजा नीलध्वजकी बातचीत	१७
५	वृषकेतु और यौवनाश्वका युद्ध, उसमें दिव्यास्त्रोंका प्रयोग, वृषकेतुके मूर्च्छित होनेपर भीमसेनका रणभूमिमें आगमन, भीमसेन और सुवेगका युद्ध और दोनोंकी मूर्च्छा, पुनः वृषकेतु और यौवनाश्वका युद्ध, यौवनाश्वके मूर्च्छित होनेपर वृषकेतुद्वारा उनकी जीवनरक्षा और सचेत होनेपर यौवनाश्वद्वारा वृषकेतुका आलिङ्गन ...	२८
६	राजा यौवनाश्वका भीमसेनसे कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन सबको नगरमें ले जाना और प्रभावतीद्वारा उनकी आरती उतारा जाना, राजाद्वारा अपने राज्य आदिका श्रीकृष्णको समर्पण, हस्तिनापुर चलनेके लिये प्रजाको आदेश देना, सुदेवकी माता जरद्गवा और राजाका संवाद, जरद्गवाको बाँधकर साथ ले चलना, मार्गमें भीमसेनका पहले ही हस्तिनापुर पहुँचना और युधिष्ठिरको अश्वसहित यौवनाश्वके आगमनकी सूचना देना ...	३२
७	युधिष्ठिरकी आज्ञासे भीमसेनका द्रौपदीके पास जाना और उसके साथ भीमसेनकी बातचीत, युधिष्ठिरद्वारा राजा यौवनाश्वका स्वागत और उनसे वार्तालाप, सुदेवद्वारा वृषकेतुकी प्रशंसा, श्रीकृष्णका युधिष्ठिरकी आज्ञासे द्वारकापुरीको लौटना, युधिष्ठिरके पूछनेपर व्यासजीका उनसे राजा मरुत्तके यज्ञका वृत्तान्त सुनाना	३७
८	युधिष्ठिरका व्यासजीसे धर्मविषयक प्रश्न करना और व्यासजीद्वारा वर्णधर्म, विधवाओंके कर्तव्य और कुलटा स्त्रियोंके स्वरूप एवं लक्षणका निरूपण ...	४१
९	युधिष्ठिरका व्यासजीसे लक्ष्मीकी स्थिरता तथा भगवान्‌की प्रसन्नताका उपाय पूछना, व्यासजीका युधिष्ठिरको उनके प्रश्नका उत्तर देते हुए श्रीकृष्णको बुलानेके लिये आदेश देना, युधिष्ठिरका भीमसेनको श्रीकृष्णको बुलानेके लिये आदेश देना, भीमसेनका द्वारकामें पहुँचना, वहाँ श्रीकृष्णके भोजनका वर्णन और सत्यभामा और देवकीका वार्तालाप, श्रीकृष्णका अपने पास आते हुए भीमसेनको रोकना	४४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१०–श्रीकृष्णका भीमसेनको दिखाकर भोजन करना, भीमसेनके श्रीकृष्णके प्रति आक्षेपपूर्ण वचन, श्रीकृष्णका भीमसेनको भोजन कराकर पान देना और नगरवासियोंको कृतवर्माद्वारा नगारा बजाकर हस्तिनापुर चलनेके लिये आदेश देना तथा दल-बलसहित हस्तिनापुरको प्रस्थान, मार्गमें मालिन और तेलिनकी श्रीकृष्णसे बातचीत ... ५०

११–श्रीकृष्ण और भीमसेनका विनोदपूर्ण वार्तालाप, मार्गमें ऊँटकी पीठसे गिरी हुई सूतिकाकी प्रार्थना, वसुदेवजीका श्रीकृष्णको उपदेश, भीमसेनद्वारा वसुदेवजीकी बातका खण्डन, श्रीकृष्णका सरोवर-पर आना और रुक्मिणीको बुलाकर नलिनीके व्याजसे स्त्रियोंपर आक्षेप करना, रुक्मिणीका उन्हें उत्तर देना, व्रजमें पहुँचकर गोप-गोपियोंकी श्रीकृष्ण-से भेंट और उनकी दशाका वर्णन, श्रीकृष्णका देवकी, यशोदा, रुक्मिणी और प्रद्युम्न आदिको कर्तव्यका उपदेश तथा हस्तिनापुरमें याज्ञिक ब्राह्मण, संन्यासी, शम्भली और वन्दियोंद्वारा श्रीकृष्णकी आलोचना ५६

१२–जनमेजयके पूछनेपर महर्षि जैमिनिद्वारा स्मार्तोंके भाषणका वर्णन, नर्तकी और श्रीकृष्णका वार्तालाप, श्रीकृष्णका युधिष्ठिरके भवनमें प्रवेश और सत्कार, युधिष्ठिरका दल-बलसहित यादवोंके सत्कारार्थ गङ्गा-तटपर जाना और वहाँ परस्पर मिलन, सत्यभामा-द्रौपदी-संवाद, उषाद्वारा द्रौपदी तथा कुन्तीका सत्कार, सत्यभामाका अश्वको देखनेकी इच्छा प्रकट करना, श्रीकृष्णके कहनेसे युधिष्ठिरका अपने सैनिकोंको आदेश देना, नारियोंद्वारा घोड़ेका दर्शन, अनुशाल्वका आगमन और उसका यज्ञिय अश्वको पकड़कर सैनिकोंको आदेश देते हुए संग्राम-भूमि-में डटकर खड़ा होना ६९

१३–जनमेजयके प्रश्न, श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे वार्तालाप और वीरोंको बीड़ा उठानेका आदेश, प्रद्युम्नका बीड़ा उठाकर युद्धके लिये प्रस्थान, श्रीकृष्णका पुनः वीरोंसे बीड़ा उठानेके लिये कहना, वृषकेतु-की बीड़ा उठाकर प्रतिज्ञा और प्रद्युम्नके साथ युद्धके लिये प्रस्थान, प्रद्युम्नके प्रति अनुशाल्वके आक्षेपपूर्ण वचन, प्रद्युम्नकी मूर्च्छा, श्रीकृष्णका प्रद्युम्नपर पादप्रहार करके उनपर आक्षेप करना, भीमसेनका श्रीकृष्णको रोककर उनका उत्तर देना, प्रद्युम्नके साथ युद्धके लिये प्रस्थान एवं घोर युद्ध, वृषकेतुके साथ बातचीत और अनुशाल्वके प्रहारसे उसका मूर्च्छित होना, श्रीकृष्णका युद्धके लिये जाना, उन्हें देखकर उनके प्रति अनुशाल्वका कथन, अनुशाल्वके प्रहारसे घोड़ोंका रथ लेकर भाग जाना, श्रीकृष्णको न देखकर अनुशाल्वके खेदपूर्ण वचन, श्रीकृष्णका प्रकट होकर अनुशाल्वपर प्रहार करना, अनुशाल्वका उन बाणोंको काटकर श्रीकृष्णको मूर्च्छित कर देना, दारुकका रथ लेकर लौटना, सेनाका पलायन, श्रीकृष्णके प्रति सत्य-भामाके कठोर वचन ७१

१४–वृषकेतु और अनुशाल्वका युद्ध, वृषकेतुका अनु-शाल्वको पकड़कर श्रीकृष्णके हाथों सौंपना, अनुशाल्वद्वारा वृषकेतुके प्रति कृतज्ञताप्रकाश और श्रीकृष्णकी स्तुति, श्रीकृष्णका अनुशाल्वको युधिष्ठिरके पास ले जाना और युधिष्ठिरका उसे भाईकी तरह ग्रहण करना, युधिष्ठिरका यज्ञकी दीक्षा लेना, घोड़ेका पूजनपूर्वक छोड़ा जाना और अर्जुनका उसकी रक्षामें जाना, अर्जुन और कुन्तीकी बातचीत, वृषकेतु और उसकी पत्नीका संवाद, घोड़ेका माहिष्मतीपुरीमें जाना और पत्नीके कहनेसे प्रवीरद्वारा पकड़ा जाना ... ८१

१५–प्रवीरके साथ वृषकेतु और अनुशाल्वका युद्ध, नीलध्वजका अर्जुनके साथ युद्ध, उनके द्वारा अग्निका बाणरूपमें छोड़ा जाना, अग्निद्वारा अर्जुनकी सेनाका संहार, अर्जुनद्वारा अग्निका स्तवन, जनमेजयके पूछनेपर जैमिनिजीका अग्निके नीलध्वजके जामाता होनेका वृत्तान्त सुनाना, अर्जुनद्वारा नारायणास्त्रका संधान और अग्निका शान्त होकर अपने उद्दीप्त होनेका कारण बताना तथा नगरमें जाकर नीलध्वजको युद्ध बंद करनेके लिये कहना, पत्नीके कहनेसे नीलध्वजका पुनः अर्जुनके साथ युद्ध करना और मूर्च्छित होकर पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लौटना; वहाँ पत्नीको फटकारकर घोड़ा तथा भेंट-सामग्री लेकर अर्जुनसे मिलना और उनके साथ घोड़ेकी रक्षामें जाना, ज्वालाका अपने भाई उलूमुकको अर्जुनको मारनेके लिये उसकाना और उससे ठुकराये जानेपर गङ्गातीरपर जाना, वहाँ गङ्गामें डूबकर बाणरूपमें बभ्रुवाहनके तूणीरमें प्रवेश करना तथा गङ्गाजीद्वारा अर्जुनको शाप ... ९४

१६—घोड़ेका विन्ध्यपर्वतपर जाना और वहाँ एक शिलासे चिपक जाना, अर्जुनका दूतोंको शिलाका वृत्तान्त पूछनेके लिये मुनियोंके पास भेजना, दूतके कथनानुसार अर्जुनका सौभरि मुनिके आश्रमपर जाना और शिलाका वृत्तान्त पूछना, सौभरिका उसका वृत्तान्त सुनाते हुए उद्दालक और चण्डीका वृत्तान्त वर्णन करना, अर्जुनके करस्पर्शसे चण्डीकी मुक्ति और घोड़ेका मुक्त होकर आगे बढ़ना ...१०५

१७—अर्जुनके यज्ञिय अश्वका चम्पापुरीमें प्रवेश और राजा हंसध्वजद्वारा उसका पकड़ा जाना तथा राजसैनिकोंका युद्धके लिये प्रस्थान, अट्टालिकाओंपर बैठी हुई स्त्रियोंकी परस्पर विनोद-वार्ता, राजाकी घोषणा, खौलते हुए तैलपूर्ण कड़ाहका आयोजन, सुधन्वाका रणके लिये उद्यत हो माता और बहिनको प्रणाम करके उनकी आज्ञाके अनुसार युद्ध करनेका आश्वासन देना, प्रभावतीका अपने पति सुधन्वाकी आरती उतारना, दोनोंके संवाद, पत्नीके आग्रहसे विवश हुए सुधन्वाका उसे रतिदान देकर युद्धके लिये जाना, राजाका रोष, यवन-सैनिकोंद्वारा सुधन्वाको बुलवाकर फटकारना, शङ्खमुनिसे उसके विषयमें पूछना, शङ्खका राज्य छोड़कर जाना, राजा सुन्धवाको कड़ाहमें डालनेके लिये सचिवको आज्ञा देकर जाना, शङ्ख और लिखितको लेकर लौटना, सुधन्वाके द्वारा कड़ाहमें भगवान्‌का स्मरण, उसके जीवनकी रक्षा तथा तैलकी परीक्षाके समय शङ्ख और लिखितके ललाटमें नारियलके टुकड़ोंसे चोट पहुँचना ...११३

१८—शङ्खमुनिका सुधन्वाको अक्षत देकर मौकरीसे कारण पूछना, स्वयं तेलके कड़ाहेमें कूदना, सुधन्वाको हृदयसे लगाकर उसकी प्रशंसा करना और युद्धक्षेत्रमें राजा हंसध्वजके पास ले जाना, हंसध्वजका घोड़ेको पकड़वा लेना और वीरोंके साथ युद्धके लिये डटकर खड़ा होना, अर्जुन, प्रद्युम्न और वृषकेतुका वार्तालाप, वृषकेतुका युद्धके लिये प्रस्थान, सुधन्वाके साथ बातचीत और युद्ध, वृषकेतुका मूर्च्छित होकर युद्धक्षेत्रसे हटना, सुधन्वाका प्रद्युम्नको मूर्च्छित करना, कृतवर्माको खदेड़ना और अनुशाल्वको पराजित करके घोर पराक्रम प्रकट करना १२९

१९—सुधन्वा और सात्यकिके युद्धमें सात्यकिका मूर्च्छित होना, सुधन्वा और अर्जुनका युद्ध, अर्जुनका सारथिके मारे जानेपर श्रीकृष्णका स्मरण करना, श्रीकृष्णका वहाँ पधारना, तीन बाणोंद्वारा सुधन्वाका वध करनेके लिये अर्जुनकी प्रतिज्ञा, सुधन्वाद्वारा तीनों बाणोंका काटा जाना और तीसरे बाणके आधे भागसे सुधन्वाकी मृत्यु १३८

२०—सुधन्वाके मुखसे निकली हुई ज्योतिका भगवान् श्रीकृष्णमें प्रवेश, श्रीकृष्णद्वारा सुधन्वाके सिरका राजा हंसध्वजके रथपर फेंका जाना, पुत्रके सिरको उठाकर हंसध्वजका विलाप करना, सुरथ और हंसध्वजकी बातचीत, हंसध्वजका सुधन्वाके सिरको श्रीकृष्णके पास वापस फेंकना, श्रीकृष्णका उसे आकाशमें उछाल देना और उसका अन्तर्धान होकर शिवजीकी मुण्डमालामें स्थान पाना, सुरथका युद्धके लिये प्रस्थान और अद्भुत पराक्रम करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके पास पहुँचकर अर्जुनके साथ युद्ध करना और अर्जुनद्वारा मारा जाना १४५

२१—श्रीकृष्णका अर्जुनको पृथ्वीपरसे उठाकर रथपर बैठाना, अर्जुनद्वारा सुरथके सिरकी वन्दना, श्रीकृष्णका गरुडको बुलाकर सुरथके सिरको प्रयागमें डालनेके लिये भेजना, मार्गमें गरुडको जाते हुए देखकर शिवजीका भृंगीको मस्तक लानेके लिये भेजना, भृंगीका गरुडके पास जाना और उनके पंखकी वायुसे उड़कर शिवजीके पास गिरना,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुनः शिवजीकी आज्ञासे नन्दीश्वरका गरुडके पास जाना और अपने श्वाससे गरुडको चक्करमें डाल देना, गरुडका उड़ते हुए प्रयागमें जाकर सिर गिरा देना और नन्दीश्वरका उसे लाकर शिवजीको समर्पित करना, शिवजीद्वारा उसे अपनी मुण्ड-मालामें पिरोना, श्रीकृष्णका हंसध्वज और अर्जुन-में मेल कराकर हस्तिनापुर लौट जाना, घोड़ेका आगे जाकर घोड़ी और व्याघ्री होना, जनमेजयके पूछनेपर महर्षि जैमिनिका इसका कारण बताना, घोड़ेका घूमते हुए स्त्रीराज्यमें पहुँचना और वहाँ पकड़ा जाना १५३

२२—प्रमीलाकी अर्जुनसे प्रणय-याचना, अर्जुनके अस्वीकार करनेपर युद्धारम्भ, युद्धमें प्रमीलाद्वारा अर्जुनके सम्मोहनास्त्रका छेदन, अर्जुनके पुनः युद्धोद्योग करनेपर आकाशवाणीद्वारा उनका निवारण, अर्जुनद्वारा प्रमीलाका वरण और प्रमीलाका हस्तिनापुरगमन, घोड़ेका अनेक भयानक देशोंमें घूमते हुए राक्षस भीषणके नगरमें जाना, भीषण और उसके पुरोहित मेदोहाकी बातचीत, भीषणका युद्धके लिये प्रस्थान, राक्षसीका अपने स्तनोंद्वारा सेनाका संहार करना, अर्जुनके पराक्रमसे प्राण-संकट आनेपर भीषणद्वारा राक्षसी मायाका प्रयोग, अर्जुनद्वारा भीषणका वध, अर्जुनका घोड़ेके साथ मणिपुर नगरमें जाना १६१

२३—राजा हंसध्वजका अर्जुनको बभ्रुवाहनका परिचय बताना, अर्जुनके मुकुटपर गीधका बैठना, बभ्रु-वाहनका घोड़ेको पकड़वाकर उसके स्वर्णपत्रको बाँचना और विषादमग्न होकर मन्त्री सुमतिसे उसका उपाय पूछना, मन्त्रीकी सलाहसे भेंट-सामग्री-सहित जाकर अर्जुनके चरणोंमें पड़कर उन्हें अपना राज्य समर्पित करना, अर्जुनके फटकारनेपर युद्धके लिये उद्यत होना, अनुशाल्व और बभ्रुवाहनका युद्ध और अनुशाल्वकी पराजय, प्रद्युम्न और बभ्रुवाहनके युद्धमें प्रद्युम्नका भयंकर पराक्रम ... १६८

२४—प्रद्युम्न और बभ्रुवाहनके युद्धमें रणभूमिकी भीषणताका वर्णन, बभ्रुवाहनका अर्जुनकी सेनाको पराजित करके हाथी, घोड़ा, रथ, सैनिक तथा अन्य सामग्रियोंको अपने नगरमें ले जाना ... १७६

२५—कुशलवोपाख्यान—लंकाविजयके पश्चात् भगवान् रामका अयोध्यामें प्रवेश, उनका स्वागत और सबसे मिलन तथा रामराज्यका वर्णन ... १८०

२६—कुशलवोपाख्यान—श्रीरामका स्वप्न, सीताका पुंस-वन-संस्कार, गुप्तचरका अर्धरात्रिके समय श्रीरामके पास आकर सीताके विषयमें रजककी बात सुनाना, श्रीरामका चिन्तित होना और सीता-परित्यागके लिये भाइयोंको बुलवाना १८१

२७—कुशलवोपाख्यान—सीता-परित्यागके विषयमें श्रीरामके साथ तीनों भाइयोंकी बातचीत, श्रीराम-का लक्ष्मणको सीता-परित्यागके लिये आदेश, लक्ष्मणजीका रथ लेकर सीताजीके महलमें जाना, सीताजीका सासुओंकी आज्ञा लेकर सामग्रीसहित रथपर बैठना और गङ्गातटके लिये प्रस्थान ... १८३

२८—कुशलवोपाख्यान—लक्ष्मणका सीताजीको गङ्गाके उस पार वनमें छोड़कर लौटना, सीताकी मूर्च्छा और पुनः उठकर विलाप करना, वाल्मीकिजीका आगमन और उनका सीताजीको देखना ... ११९

२९—कुशलवोपाख्यान—सीताका महर्षि वाल्मीकिके साथ आश्रमपर जाना, वहाँ दो पुत्रोंको जन्म देना, वाल्मीकि मुनिका उन पुत्रोंका संस्कार करके उन्हें साङ्गवेद तथा रामचरित्रकी शिक्षा प्रदान करना, मुनियोंद्वारा उन्हें अस्त्रदान, श्रीरामका अश्वमेध-यज्ञके लिये घोड़ा छोड़ना, आश्रममें जानेपर लवद्वारा उसका पकड़ा जाना ... १९८

३०—कुशलवोपाख्यान—लवका शत्रुघ्नके साथ युद्ध और मूर्छित होना तथा शत्रुघ्नका उसे अपने रथपर बैठाकर प्रस्थान करना २०४

३१—कुशलवोपाख्यान—मुनिकुमारोंद्वारा लवका समाचार पाकर सीताका विलाप, कुशका वनसे लौटकर युद्धके लिये जाना, कुशके द्वारा शत्रुघ्नके सेना-पति तथा उसके भाई नगका वध, बची हुई सेनाका अयोध्याकी ओर पलायन ... २०७

३२—कुशलवोपाख्यान—कुशके बाणोंसे शत्रुघ्नका मूर्च्छित होना, शेष सैनिकोंका भागकर अयोध्यामें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामसे सूचित करना, श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणका सेनासहित युद्धस्थलमें पहुँचना ... २१२

३३–कुशलवोपाख्यान–कुश और लवकी बातचीत, धनुषके लिये लवद्वारा सूर्यदेवकी स्तुति और सूर्यका उसे धनुष प्रदान करना, लवका भयंकर पराक्रम, लवद्वारा मन्त्री सुश्रुके दस पुत्रोंका तथा राक्षस रुधिराक्षका वध २१५

३४–कुशलवोपाख्यान–कुश और लक्ष्मणका युद्ध, कुशद्वारा कालजित्का वध और लक्ष्मणकी मूर्च्छा २२०

३५–कुशलवोपाख्यान–श्रीरामका भरतकी सलाहसे दूतोंको आदेश देकर लक्ष्मणके पास भेजना, उसी समय घायल सैनिकोंका आना, श्रीरामका भरतको युद्धके लिये आदेश देना, भरतका हनुमान् आदि वानरों तथा विशाल सेनाके साथ वहाँ पहुँचना और हनुमान्जीद्वारा शत्रुघ्न और लक्ष्मणकी खोज करके उनकी सुरक्षा करना ... २२२

३६–कुशलवोपाख्यान–कुश और लवका भरतके साथ युद्ध, भरतका मूर्च्छित होना, दूतोंके खबर देनेपर श्रीरामका युद्धके लिये आना, कुशद्वारा वानरों-सहित मूर्च्छित होना, लवका हनुमान् और जाम्बवान्को पकड़कर सीताके पास ले जाना, सीताद्वारा उनकी मुक्ति, वाल्मीकिजीका आगमन और कुशलवद्वारा सारा वृत्तान्त सुनकर अमृतमय जलसे सींचकर श्रीराम आदिको उठाना, श्रीरामका अयोध्या लौटना, वाल्मीकि मुनिका पुत्रोंसहित सीताको श्रीरामके समीप ले जाना, अश्वमेधयज्ञकी समाप्ति २२८

३७–बभ्रुवाहन और हंसध्वजके युद्धमें हंसध्वजका पतन, सुवेग और बभ्रुवाहनका भयंकर युद्ध और सुवेगकी मृत्यु, बभ्रुवाहन और वृषकेतुका अद्भुत युद्ध, जिसमें बभ्रुवाहनकी विजय और उसके द्वारा वृषकेतुका वध २३५

३८–वृषकेतुके मरनेपर अर्जुनका विलाप, अर्जुन और बभ्रुवाहनका युद्ध, बभ्रुवाहनद्वारा अर्जुनका वध, बभ्रुवाहनका मणिपुरमें स्वागत, चित्राङ्गदाका विलाप, बभ्रुवाहनका अग्निप्रवेश करनेका विचार, उलूपीका मणिके लिये पुण्डरीक नागको शेषनागके पास पातालमें भेजना, शेषनाग और पुण्डरीककी बातचीत, शेषनागके मणि देनेके लिये उद्यत होनेपर धृतराष्ट्र नागद्वारा उसका विरोध ... २४२

३९–पुण्डरीकका विफलमनोरथ होकर लौटना और बभ्रुवाहनकी पाताललोकपर चढ़ाई, नागोंके साथ घोर संग्राम, नागोंकी पराजय होनेपर शेषनागका मणि तथा अन्य वस्तुओंद्वारा बभ्रुवाहनको शान्त करना, बभ्रुवाहनका मणिपुर लौटना, अर्जुनके मस्तकका धृतराष्ट्रपुत्र दुर्बुद्धिद्वारा चुराया जाना, श्रीकृष्णका भीमसेन, कुन्ती, देवकी और यशोदासहित मणिपुरमें आना और उनके सामने बभ्रुवाहनका विलाप करना २६०

४०–शेषनागकी अर्जुनको जीवित करनेके लिये श्रीकृष्णको प्रेरणा, श्रीकृष्णकी प्रतिज्ञासे धृतराष्ट्रपुत्र दुर्बुद्धि और दुःस्वभावकी मृत्यु, अर्जुनके सिरका रणभूमिमें वापस आना, श्रीकृष्णका मणि-स्पर्शसे वृषकेतु और अर्जुनको जीवित करना, सबका मणिपुरमें प्रवेश और स्वागत, श्रीकृष्णका पाँच रातके बाद धन-सम्पत्ति तथा स्त्रियोंसहित भीमसेनको हस्तिनापुर भेजना ... २६८

४१–मणिपुरसे घोड़ेका आगे बढ़ना, ताम्रध्वजद्वारा उसका पकड़ा जाना, दोनों सेनाओंकी व्यूह-रचना तथा श्रीकृष्ण और ताम्रध्वजकी बातचीत ... २७३

४२–अर्जुनकी सेनाके साथ ताम्रध्वजका युद्ध और उसका घोर पराक्रम २७७

४३–ताम्रध्वजका अर्जुनके साथ लगातार सात दिनोंतक युद्ध करके अपना घोर पराक्रम प्रकट करना, श्रीकृष्णका ताम्रध्वजसे युद्ध करनेके लिये आना और उसके कहनेसे अर्जुनका सारथि बनना, तत्पश्चात् पुनः सुदर्शन चक्रसे उसकी सेनाका संहार करना २८१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४४–ताम्रध्वजका श्रीकृष्ण और अर्जुनको जीते-जी पकड़ लेना और श्रीकृष्णके झटकेसे उसका मूर्च्छित होना तथा ताम्रध्वजके घसीटनेसे अर्जुन और श्रीकृष्णका मूर्च्छित होकर गिरना, मूर्च्छा भंग होनेपर दोनों घोड़ोंको नगरकी ओर जाते हुए देखकर ताम्रध्वजका सेनासहित नगरको लौटना, वहाँ मन्त्री बहुलाश्वके मुखसे सारा वृत्तान्त सुनकर मयूरध्वजका अपने पुत्रको फटकारना और श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये उद्यत होना, इधर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी मूर्च्छाका टूटना, दोनोंका रत्ननगरमें जाना, वहाँ नगरनिवासियोंकी रात्रिचर्या देखना और प्रातःकाल मयूरध्वजके दर्शन करना २८४

४५–श्रीकृष्णका अर्जुनके साथ यज्ञमण्डपमें मयूरध्वजके पास जाना, उनसे बातचीत करना और छलसे उनके आधे शरीरकी याचना करना, मयूरध्वज-का अपना शरीर चिरवानेके लिये उद्यत होना ... २८९

४६–रानी कुमुद्वती और पुत्र ताम्रध्वजद्वारा आरेसे मयूरध्वजके शरीरका चीरा जाना, बायें नेत्रसे आँसू टपकनेके कारण श्रीकृष्णका उसे त्यागकर चल देना, पुनः मयूरध्वजके स्पष्टीकरण करनेपर लौटना और प्रसन्न होकर राजाको चतुर्भुजरूपमें दर्शन देना, राजाद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन, तत्पश्चात् मयूरध्वजका अर्जुनके साथ घोड़ेकी रक्षाके लिये प्रस्थान २९३

४७–दोनों घोड़ोंका राजा वीरवर्माके नगरमें जाना और वीरवर्माकी आज्ञासे उनका पकड़ा जाना, वीरवर्माके पुत्रोंके साथ बभ्रुवाहनका युद्ध, यमराजका युद्धके लिये आना, अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णद्वारा यमराजका वीरवर्माके जामाता बननेकी कथाका वर्णन ... २९९

४८–वररूपमें यमराजकी प्राप्तिके लिये राजा वीरवर्मा और मालिनीका यमराजकी आराधना करना, नारदजीका यमलोकमें जाकर यमराजसे मालिनीका वृत्तान्त कहना, यमराजका विवाह-तिथिको निश्चय करके नारदजीको वीरवर्माके पास भेजना और बारातमें चलनेके विषयमें उनका राजयक्ष्माके साथ संवाद तथा यमराजका नाना प्रकारके रोगोंकी उत्पत्तिका कारण बताते हुए उनसे छूटनेके उपायका निरूपण करना ... ३०१

४९–यमराजका सारस्वतपुरमें आकर मालिनीका पाणिग्रहण करना और वीरवर्माको वर प्रदान करना, वीरवर्माका अर्जुनके साथ युद्धमें भयंकर पराक्रम प्रकट करके अर्जुन, श्रीकृष्ण और हनुमान्‌को पकड़ लेना, श्रीकृष्णद्वारा उसपर चरणप्रहार, वीरवर्माका आत्मसमर्पण और वीर-वर्माकी सहायतासे अर्जुनका सेनासहित महानदके पार उतरना ३१०

५०–घोड़ोंका राजा चन्द्रहासके नगर कुन्तलपुरमें पहुँचना और पकड़ा जाना, नारदजीका आगमन, अर्जुनके पूछनेपर नारदजीद्वारा चन्द्रहासकी कथाका वर्णन ... ३१५

५१–चन्द्रहासका जीवन-वृत्तान्त—वनमें पक्षियों और हरिणियोंद्वारा उस बालककी परिचर्या, कुलिन्दाधिपतिका वहाँ आना और उसे अपने घोड़ेपर बैठाकर नगरमें ले जाना, वहाँ राजाद्वारा बालककी शिक्षाका प्रबन्ध ... ३२०

५२–चन्द्रहासोपाख्यान–अर्जुनके पूछनेपर नारदजीका चन्द्रहासकी तरुण-अवस्थाके चरित्रोंका वर्णन करना, चन्द्रहासका दिग्विजय करके बहुत-सी सम्पत्तिके साथ चन्दनावतीपुरीको लौटना, कुलिन्दद्वारा उसका स्वागत तथा अपने पदपर अभिषेक, चन्द्रहासका अपनी प्रजाको एकादशीका माहात्म्य बतलाते हुए व्रत-पालनका आदेश देना, कुलिन्दके कहनेसे कररूपमें बहुत-सी धनराशि कुन्तलपुर भेजना, राजमन्त्री धृष्टबुद्धिका चन्दनावतीपुरीमें आना और चन्द्रहासको देखकर सशङ्कित होना ३२५

५३–चन्द्रहासोपाख्यान—धृष्टबुद्धिका चन्द्रहासको पत्र देकर कुन्तलपुरमें मदनके पास भेजना, चन्द्रहास-का कुन्तलपुरमें पहुँचकर क्रीडोद्यानके सरोवर-तटपर शयन करना, राजकन्या चम्पकमालिनी और मन्त्रिकन्या विषयाका सखियोंके साथ उद्यानमें आकर विहार करना, सरोवरमें जल-क्रीडा करना, तत्पश्चात् विषयाका चन्द्रहासको देखना ... ३३१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५४–विषयाका गुप्तरूपसे अकेले ही चन्द्रहासके समीप जाना, उसके जेबसे पत्र निकालकर उसे पढ़ना और 'विष'की जगह 'विषया' बनाकर पत्रको बंद करके पुनः जेबमें डाल देना, फिर लौटकर सखियोंके साथ घर जाना, चन्द्रहासका जागना और मन्त्रीके भवनपर पहुँचकर द्वारपालद्वारा अपने आगमनका समाचार भेजवाना, द्वारपालकी बात सुनकर मदनका द्वारपर आकर चन्द्रहासको सभामें ले जाना, चन्द्रहासके दिये हुए पत्रको सभामें पढ़ना, विषयाका चन्द्रहासको पतिरूपमें पानेके लिये पार्वतीजीसे प्रार्थना करना ... ३४०

५५–अर्जुनके पूछनेपर नारदजीद्वारा चन्द्रहास और विषयाके विवाहका वर्णन ३४५

५६–चन्दनावतीपुरीमें कुलिन्दको कैद करनेके पश्चात् धृष्टबुद्धिका भीषण अत्याचार, वहाँ लोभको अधिकारी बनाकर उसका कुन्तलपुरको प्रस्थान, मार्गमें तरह-तरहके अपशकुन होना, कुन्तलपुर पहुँचकर विवाहोत्सवके दर्शनसे कुपित होना और मदनको फटकारना, मदनके उसका पत्र दिखाने-पर शान्त होना और चन्द्रहासके वधका उपाय सोचना ३५०

५७–धृष्टबुद्धिका चन्द्रहासका वध करनेके लिये चाण्डालोंको चण्डिका-मन्दिरमें भेजना और सायंकालमें चन्द्रहासको देवी-पूजनका आदेश देना, कुन्तल-नरेशका गालवमुनिद्वारा अरिष्टा-ध्याय सुनना और चन्द्रहासको अपनी कन्या चम्पकमालिनी तथा राज्य समर्पित करके वनमें जाकर निर्वाण प्राप्त करना, चन्द्रहासका चम्पक-मालिनीके साथ गान्धर्व विवाह और राज्याभिषेक, चन्द्रहासके बदले मदनका चण्डिका-मन्दिरमें जाना और वहाँ चाण्डालोंद्वारा उसका वध ... ३५६

५८–चन्द्रहासका चम्पकमालिनीके साथ धृष्टबुद्धिसे मिलने जाना, चन्द्रहासके मुखसे देवी-मन्दिरमें मदनके जानेकी बात सुनकर धृष्टबुद्धिका मन्दिरमें जाना और विलाप करके प्राण-त्याग करना, प्रातःकाल एक तपस्वीका चन्द्रहासको इसकी सूचना देना, चन्द्रहासका मन्दिरमें जाकर अपना मांस काटकर आहुति देना तथा अपना सिर काटनेको उद्यत होना, देवीका प्राकट्य और चन्द्रहासको वर-प्रदान, धृष्टबुद्धि और मदनका जीवित होना, चन्द्रहासका कुलिन्द और उसकी पत्नीको कुन्तलपुर ले आना, शालग्राम-शिलाका माहात्म्य, नारदजीका स्वर्ग-लोक-गमन और अर्जुनका कुन्तलपुरको प्रस्थान ... ३६२

५९–चन्द्रहासका श्रीकृष्णके दर्शनकी इच्छासे अपने पुत्र मकरध्वजको घोड़ोंको पकड़नेके लिये आदेश देना, श्रीकृष्णका चन्द्रहासको चतुर्भुज-रूपमें दर्शन देना, उसका अर्जुनके साथ मेल कराना और कुन्तलपुरका राज्य चन्द्रहासके पुत्रको देकर आगे बढ़ना ३७०

६०–चन्द्रहासका अपने पुत्र मकरध्वजको राज्यपर अभिषिक्त करके श्रीकृष्णके साथ घोड़ेकी रक्षामें जाना, घोड़ोंका उत्तर दिशामें जाकर समुद्रमें घुस जाना, हंसध्वज, बभ्रुवाहन, प्रद्युम्न और मयूरध्वजके साथ अर्जुनका समुद्रमें प्रवेश करना, वहाँ बकदाल्भ्य ऋषिसे भेंट और वार्ता-लापके प्रसंगमें ऋषिका वैराग्य और श्रीकृष्णकी महिमा तथा अनेक मुखवाले ब्रह्माओंकी कथाका वर्णन करना, श्रीकृष्णका ऋषिको पालकीपर बैठाकर ले चलना ३७४

६१–घोड़ोंका जयद्रथके नगरमें पहुँचना, अर्जुनके आगमनकी बात सुनकर जयद्रथ-पुत्रका भयसे प्राण-त्याग करना, दुःशलाकी पुत्रको जीवित करनेके लिये श्रीकृष्णसे प्रार्थना, श्रीकृष्णद्वारा उसके पुत्रको जीवन-दान, अर्जुनका दुःशलाको निमन्त्रित करके हस्तिनापुरको प्रस्थान ... ३८०

६२–हस्तिनापुरके निकट पहुँचनेपर श्रीकृष्णका घोड़ोंसहित सबको एक उपवनमें रोककर स्वयं नगरमें जाना, युधिष्ठिरसे मिलना और यात्राका सारा समाचार सुनाना, फिर अर्जुनके स्वागतकी व्यवस्था करना, नागरिकों तथा श्रीकृष्ण-पत्नियों-का सज-धजकर स्वागत-समारोहमें सम्मिलित होना ३८२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६३–अर्जुनका आकर दल-बलसहित श्रीकृष्णसे मिलना, राजाओंद्वारा हस्तिनापुरके वैभवका वर्णन, अर्जुन-द्वारा धृतराष्ट्रको समागत राजाओंका परिचय देना, राजाओंका धृतराष्ट्रको तत्पश्चात् युधिष्ठिरको प्रणाम करना, यज्ञ-सम्भारका एकत्र किया जाना, युधिष्ठिरका समाजसहित गङ्गातटपर जाकर जल ले आना और उससे यज्ञिय अश्वको पवित्र करना ३८६

६४–अश्वमेध यज्ञका आरम्भ, भीमसेनद्वारा घोड़ेका वध, घोड़ेके सिरका आकाशमें चला जाना, ज्योति निकलकर श्रीकृष्णमें समा जाना और उसके शरीरका कपूर हो जाना, उस कपूरसे हवन, इन्द्रादि देवताओंका आकर अपना भाग ग्रहण करना, युधिष्ठिरका मुनियोंको दान देना ... ३९३

६५–भीमसेनका यज्ञान्तमें ब्राह्मणों तथा राजाओंको नाना प्रकारके व्यञ्जन जिमाकर तृप्त करना, दो ब्राह्मणोंका अपना झगड़ा निपटानेके लिये युधिष्ठिरके पास आना, भगवान् श्रीकृष्णका कलियुगमें होनेवाले दोषोंका वर्णन करना ... ३९७

६६–यज्ञकी समाप्तिपर गर्वयुक्त होकर बैठे हुए युधिष्ठिरकी सभामें एक नकुलका आना और इनके यज्ञसे कुरुक्षेत्रनिवासी शिलोञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणके सत्तूयज्ञको उत्कृष्ट बताना, आश्चर्य-चकित हुए सभासदोंके पूछनेपर नकुलद्वारा सत्तूयज्ञका वर्णन ४००

६७–जनमेजयकी नेवलेके विषयमें जिज्ञासा और जैमिनिजीद्वारा नेवलेका पूर्व-चरित्र वर्णन ... ४०६

६८–जैमिनीयाश्वमेधपर्वके श्रवणकी महिमा ... ४०८

चित्र-सूची

(तिरंगे)

१–पाण्डवोंद्वारा छोड़ा हुआ अश्वमेधका घोड़ा १

२–शोकमग्न श्रीरामको भरतजी सान्त्वना दे रहे हैं १४५

३–चन्द्रहासका विषयाके साथ विवाह ... ३४७

(एकरंगे)

४–पाण्डवोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका स्वागत १०

५–पटरानियोंके बीचमें भोजन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ४८

६–सौभरि ऋषि अपने आश्रममें शिष्योंको पढ़ा रहे हैं १०७

७–उबलते हुए तेलके कड़ाहेमें प्रसन्नमुख सुधन्वा १२८

८–पैरोंपर गिरे हुए बभ्रुवाहनकी अर्जुनद्वारा भर्त्सना १७१

९–लक्ष्मणके साथ महारानी सीताकी वन-यात्रा १९२

१०–राजकुमार कुशको माता जानकी शस्त्र दे रही हैं २१०

११–रणभूमिमें गिरे हुए छिन्नमस्तक अर्जुनके लिये शोक २६७

१२–ब्राह्मण-वेषधारी श्रीकृष्ण-अर्जुनका राजा मयूरध्वज-के यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश २८१

१३–महाराज मयूरध्वजका लोकोत्तर बलिदान ... २९६

१४–श्रीकृष्ण आदिका बकदाल्भ्य मुनिके पास गमन ३७५

१५–सम्राट् युधिष्ठिरके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण एवं व्यासजीका पूजन ३९६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

शांकरभाष्यसहित श्रीसनत्सुजातीयकी विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
प्रथम अध्याय	
१–उपक्रमणिका	१
२–भगवान् सनत्सुजातका उत्तर—अमरत्वके विभिन्न रूप	४
३–स्वमत—अप्रमाद ही अमरत्व है ...	५
४–अप्रमादके अमृतस्वरूप होनेमें हेतु ...	७
५–मतान्तरमें यम ही मृत्यु है, परंतु वास्तविक मृत्यु प्रमाद ही है ...	८
६–कामादिके द्वारा प्रमादका बन्धहेतुत्व ...	१९
७–विवेकी मृत्युकी मृत्यु है ...	२५
८–देहासक्ति पतनका हेतु है ...	२६
९–विषयी जीवोंके जीवनकी व्यर्थता ...	२७
१०–मृत्युनाशका उपाय ...	२८
११–ज्ञानीके कर्मत्यागमें धृतराष्ट्रकी शङ्का ...	२९
१२–श्रीसनत्सुजातीयका उत्तर—ज्ञानीको कर्मानुष्ठानकी अपेक्षा नहीं ...	२९
१३–ईश्वरके जगद्रचनामें प्रवृत्त होनेका प्रयोजन ...	३१
१४–जीवसृष्टि अनादि और मायिक है ...	३२
१५–धर्म और अधर्ममें कौन किसका घातक है ? ...	४२
१६–अज्ञानीको दोनोंका फल भोगना होता है; किंतु ज्ञानाग्निसे दोनों नष्ट हो जाते हैं ...	४३
१७–अधिकारिभेदसे धर्मकी स्वर्गादि साधनता तथा ज्ञानसाधनता	४६
१८–ज्ञानीका आचरण ...	४७
१९–आत्माकी दुर्बोधता	५२
२०–अनात्मज्ञकी निन्दा ...	५२
२१–आत्मज्ञका व्यवहार ...	५३
२२–अगूढचारीकी निन्दा ...	५४
२३–ज्ञानीकी प्रशंसा	५४
२४–मानापमानमें ज्ञानीकी स्थिति ...	५६
२५–मान और मौनके विभिन्न फल ...	५७
२६–ब्राह्मी लक्ष्मीमें प्रवेशके द्वार ...	५८

विषय	पृष्ठ-संख्या
द्वितीय अध्याय	
२७–मौनविषयक प्रश्न	५९
२८–मौनका लक्षण	६०
२९–वेदाध्यायीको पापका लेप होता है या नहीं ? ...	६१
३०–वेदाध्ययन पापसे बचानेमें असमर्थ है ...	६१
३१–वेदाध्ययनकी उपयोगितामें धृतराष्ट्रकी शङ्का ...	६२
३२–उक्त शङ्काका निरसन	६३
३३–ईश्वरार्थ कर्म भगवत्प्राप्तिका साधन है ...	६५
३४–ज्ञानी और अज्ञानीकी अपेक्षासे कर्मफलमें भेद ...	६७
३५–तप केवल कैसे होता है ?	६७
३६–निष्कल्मष तप केवल होता है	६८
३७–तपके दोषोंके विषयमें प्रश्न	६८
३८–तपके दोष, नृशंस और गुणोंकी गणना ...	६९
३९–दोषोंका वर्णन	६९
४०–सात नृशंसोंका वर्णन	७१
४१–बारह गुणोंका वर्णन	७२
४२–गुणोंकी स्तुति	७३
४३–दमके दोष	७३
४४–मदके दोष	७५
४५–षड्विध त्याग	७५
४६–आठ प्रकारके गुण	७७
४७–दोषोंका त्याज्यत्व और अप्रमाद ...	७८
४८–सत्यकी स्तुति	७८
४९–सुखी पुरुषका स्वरूप	८०
५०–धृतराष्ट्रका ब्राह्मणविषयक प्रश्न ...	८०
५१–उत्तर—सत्यस्वरूप वेद और वेदज्ञ ...	८१
५२–ब्राह्मणका लक्षण	८३
५३–वेदवेद्य परमात्माको जाननेवालेकी गति ...	८४
५४–ब्रह्मज्ञ ही वेदज्ञ है	८५
५५–वेद तटस्थवृत्तिसे परमात्माका बोध कराता है ...	८६
५६–वेदार्थका ज्ञाता ही सच्चा ब्राह्मण है ...	८७
५७–आत्मकामोंको विषयोंमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये	८८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५८–ब्रह्मप्राप्तिका क्रम ८९
५९–ब्रह्मज्ञ ही मुनि है ९०
६०–ब्रह्मज्ञ ही वैयाकरण है ९०
६१–ब्रह्मज्ञ ही सर्वज्ञ है ९१
६२–ज्ञानादिगुणयुक्त पुरुष ही ब्रह्मका साक्षात्कार कर सकता है ९१

तृतीय अध्याय

६३–ब्रह्मनिरूपणके लिये धृतराष्ट्रकी प्रार्थना ... ९२
६४–ब्रह्मचर्य ही ब्रह्मविद्याका मूल है ... ९३
६५–ब्रह्मचर्य क्या है ? ९४
६६–ब्रह्मचर्यका विवरण ९५
६७–आचार्यकी महिमा ९६
६८–चतुष्पाद ब्रह्मचर्यका वर्णन ९७
६९–चतुष्पाद ब्रह्मविद्याका वर्णन ९९
७०–गुरु-सेवाका महत्त्व ९९
७१–ब्रह्मचर्यकी स्तुति १००
७२–कर्म और ज्ञानके विभिन्न फल १०१
७३–धृतराष्ट्रका ब्रह्मस्वरूपविषयक प्रश्न ... १०२
७४–ब्रह्मस्वरूपकी विलक्षणता १०३
७५–ब्रह्मसाक्षात्कारका स्वरूप और फल ... १०५

चतुर्थ अध्याय

७६–ब्रह्मका योगिदृश्य रूप १०६
७७–ब्रह्मका सर्वकारणत्व स्वयं प्रकाशत्व ... १०६
७८–शुद्ध ब्रह्म, कारण ब्रह्म और कार्य ब्रह्मकी एकता १०७
७९–ब्रह्मका सर्वाश्रयत्व १०९
८०–जीव और ब्रह्मकी सहस्थिति ... १०९
८१–ज्ञानीकी स्वात्मस्थिति ११०
८२–ब्रह्मकी दुर्दर्शता और ब्रह्मदर्शनसे अमरत्वकी प्राप्ति १११
८३–विषयप्रवृत्तिकी अनर्थहेतुता ११३
८४–योगनिरूपण ११५
८५–ब्रह्मकी जीवरूपसे स्थिति ११६
८६–इन्द्रिय और इन्द्रियसम्बन्धी विषयोंकी अनर्थहेतुता ११८
८७–अनात्मज्ञकी निन्दा ११९
८८–आत्मज्ञानका महत्त्व १२१
८९–आत्माका सर्वकारणत्व १२३
९०–ब्रह्मकी अनन्तता १२४
९१–आत्मज्ञकी निःशोकता १२५
९२–आत्मज्ञकी आप्तकामता १२६
९३–स्वानुभव-प्रदर्शन १२७

चित्र-सूची

१–ग्रन्थनिर्माता-ऋषि ... (एकरंगा) मुखपृष्ठ
२–भाष्यकार भगवान् श्रीशङ्कराचार्य ... (तिरंगा) ... १
३–श्रीसनत्सुजात और महाराज धृतराष्ट्र ... ,, ... ४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

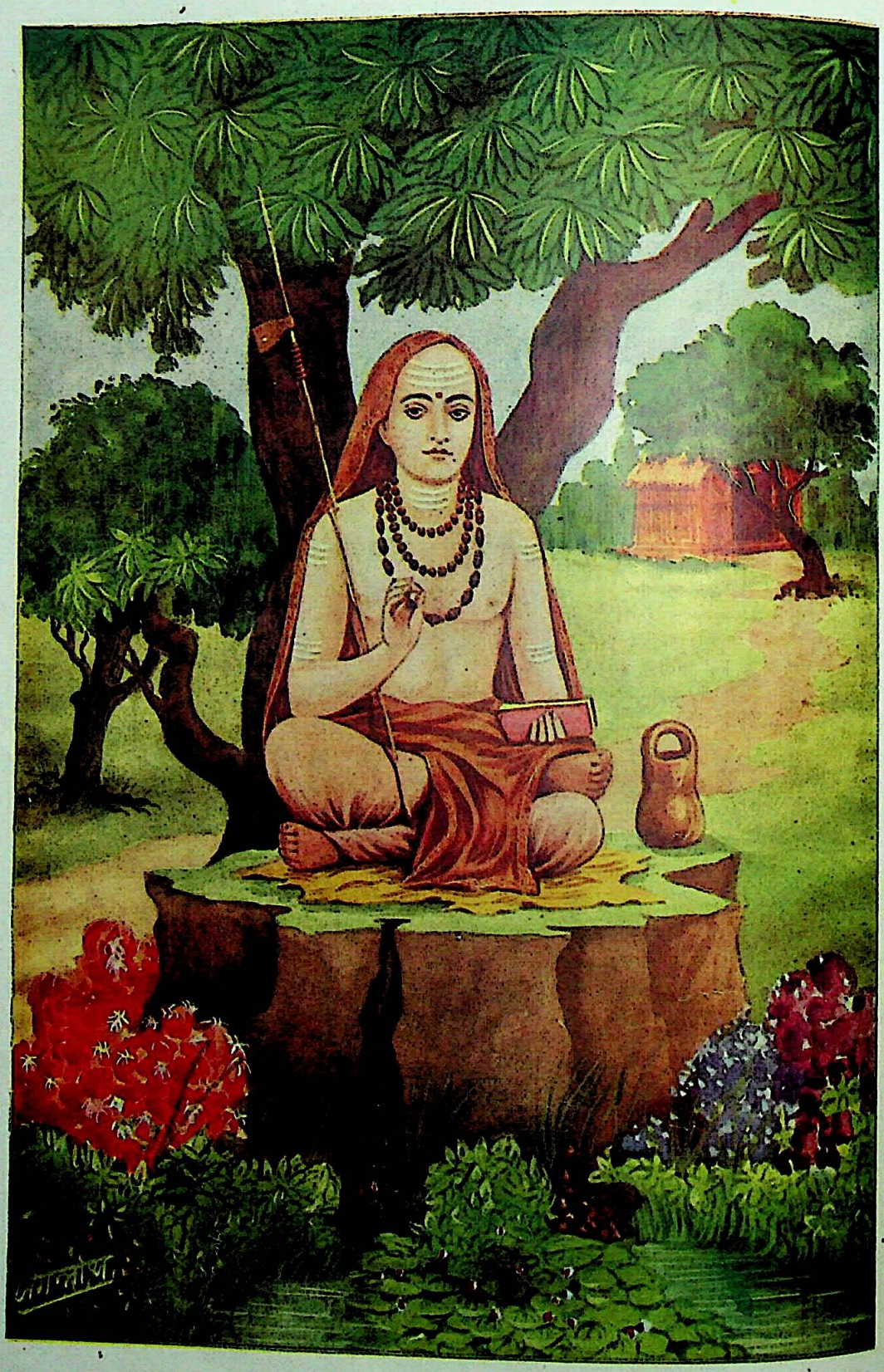

भाष्यकार भगवान् श्रीशङ्कराचार्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीसनत्सुजातीयम्

(शांकरभाष्यसहितम्)

व्यासाय विष्णुरूपाय सुजातायाजजन्मने ।
नमः श्रीदैशिकेन्द्राय शंकराय च सर्वदा ॥

प्रथमोऽध्यायः

उपक्रमणिका

नमः पुंसे पुराणाय पूर्णानन्दाय विष्णवे ।
निरस्तनिखिलध्वान्ततेजसे विश्वहेतवे ॥

ॐ नम आचार्येभ्यो ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकर्तृभ्यः ॥

सनत्सुजातीयविवरणं संक्षेपतो ब्रह्मजिज्ञासूनां सुखावबोधायारभ्यते ।

स्वतश्चित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मस्वरूपोऽप्यात्मा स्वाश्रयया स्वविषययाविद्यया स्वानुभवगम्यया साभासया स्वाभाविकचित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मभावात् प्रच्युतोऽनात्मनि देहादावात्मभावमापन्नोऽप्राप्ताशेषपुरुषार्थः प्राप्ताशेषानर्थोऽविद्याकर्मपरिकल्पितैरेव साधनैरिष्टप्राप्तिमनिष्टपरिहृतिं चाकाङ्क्षन्, लौकिकवैदिकसाधनैरनुष्ठितैरपि परमपुरुषार्थं मोक्षाख्यमलभमानो मकरादिभिरिव रागद्वेषादिभिरितस्तत आकृष्यमाणः सुरनरतिर्यगादिप्रभेदभिन्नासु नानायोनिषु परिवर्त्तमानो मोमुह्यमानः संसरन् कथंचित्पुण्यवशाद्वेदोदितेनेश्वरार्थकर्मानुष्ठानेनापगतरागादिमलोऽनित्यादिदोषदर्शने-

सब प्रकारके अन्धकारको निवृत्त करनेवाले तेजःस्वरूप, पुराणपुरुष, पूर्णानन्दमय, जगत्कारण श्रीविष्णुभगवान्‌को नमस्कार है ।

ॐ ब्रह्मविद्यासम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्योंको नमस्कार है ।

ब्रह्मके जिज्ञासुओंको सुगमतासे ज्ञान करानेके लिये संक्षेपसे सनत्सुजातीय ग्रन्थकी व्याख्याका आरम्भ किया जाता है ।

स्वयं सत्, चित्, आनन्द एवं अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप होनेपर भी आत्मा अपने ही आश्रित रहनेवाली तथा अपनेको ही विषय करनेवाली स्वानुभववेद्य एवं चिदाभाससे युक्त अविद्याद्वारा अपने स्वरूपभूत सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मभावसे च्युत होकर देहादि अनात्मपदार्थोंमें आत्मभाव करके सब प्रकारके पुरुषार्थकी प्राप्तिसे वञ्चित तथा अशेष अनर्थपरम्परासे युक्त हो गया है । वह अविद्याजनित कर्मोंसे रचे हुए साधनोंद्वारा इष्ट वस्तुकी प्राप्ति और अनिष्टकी निवृत्तिकी इच्छा करता है तथा लौकिक-वैदिक साधनोंका अनुष्ठान करके भी मोक्षसंज्ञक परमपुरुषार्थको न पानेके कारण मकरादिके समान रागद्वेषादिके द्वारा इधर-उधर खींचा जाता हुआ देवता, मनुष्य एवं तिर्यक् आदि भेदोंसे युक्त अनेकों योनियोंमें चक्कर लगाता हुआ अत्यन्त मोहमें पड़कर जन्म-मरणरूप संसारको प्राप्त हो रहा है । [ऐसी अवस्थामें] किसी प्रकार पुण्यवश ईश्वरके लिये किये हुए वेदोक्त कर्मानुष्ठानसे रागादि मलकी निवृत्ति होनेपर अनित्य-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नोत्पन्नेहामुत्रफलभोगविरागो वेदान्तेभ्यः प्रतीयमानं ब्रह्मात्मभावं बुभुत्सुर्वेदोदितशमदमादिसाधनसम्पन्नो ब्रह्मविदमाचार्यमुपेत्य आचार्यानुसारेण वेदान्तश्रवणादिना 'अहं ब्रह्मास्मि' इति ब्रह्मात्मतत्त्वमवगम्य निवृत्ताज्ञानतत्कार्यो ब्रह्मरूपोऽवतिष्ठत इतीयं वेदान्तानां मर्यादा । एतत्सर्वं क्रमेण दर्शयिष्यति भगवान् सनत्सुजातः ।

धृतराष्ट्रः शोकमोहाभितप्तः 'तरति शोकमात्मवित्' इति वेदान्तवादमुपश्रुत्य ब्रह्मविद्यया विना शोकापनयनमशक्यं मन्वानः—

अनुक्तं यदि ते किंचिद्वाचा विदुर विद्यते ।
तन्मे शुश्रूषवे ब्रूहि विचित्राणीह भाषसे ॥
इति विदुरायोक्तवान् ।

स च श्रुतवाक्योऽपि परमकारुणिकः सर्वज्ञः सन् ब्रह्मविद्यां विशिष्टाधिकारिविषयां मन्वानः—'शूद्रयोनावहं जातो नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे' इति शूद्रयोनिजत्वादौपनिषदब्रह्मात्मतत्त्वज्ञाने 'नाहमधिकृतः' इत्युक्त्वा कथमेनं धृतराष्ट्रं ब्रह्मविद्यया परमे पदे परमात्मनि पूर्णानन्दे स्वाराज्ये स्थापयिष्यामीति मन्वानः, छान्दोग्योपनिषत्प्रसिद्धमितिहासं स्मृत्वा नान्योऽस्मादस्मै भूमानं तमसः परं पारं परमात्मानं दर्शयितुं शक्नुयादिति मत्वा तमेव भगवन्तं सनत्सुजातं योगबलेनाहूय प्रत्युत्थानादिभिर्भगवन्तं पूजयित्वा—

त्वादि दोषोंको देखनेसे ऐहिक और पारलौकिक कर्मफलभोगोंमें उत्पन्न हुए वैराग्यसे युक्त हो वह वेदान्तवाक्योंसे प्रतीत होनेवाले ब्रह्मात्मभावको जाननेका इच्छुक हो वेदविहित शम-दमादि साधनोंसे सम्पन्न होकर ब्रह्मवेत्ता आचार्यके समीप जा आचार्यका अनुवर्तन करते हुए वेदान्तश्रवणादिसे 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार ब्रह्मात्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्तकर अज्ञान और उसके कार्यसे मुक्त हो ब्रह्मस्वरूपसे स्थित हो जाता है—यह वेदान्तशास्त्रकी मर्यादा है । भगवान् सनत्सुजात इन्हीं सब (विषयों) को क्रमशः दिखलायेंगे ।

[भावी वंशविध्वंसकी आशङ्काके कारण] शोक और मोहसे संतप्त हुए राजा धृतराष्ट्रने 'आत्मवेत्ता शोकको पार कर लेता है' ऐसी वेदान्तकी उक्ति सुनकर ब्रह्मविद्याके बिना शोककी निवृत्ति असम्भव मानते हुए विदुरसे—'हे विदुर ! यदि अभी तुम्हारी वाणीद्वारा बिना कही हुई कोई बात रह गयी है तो उसे सुननेकी इच्छावाले मेरे प्रति कहो; क्योंकि तुम इस समय बड़ा विचित्र भाषण कर रहे हो ।' ऐसा कहा ।

विदुरजी यद्यपि महावाक्य श्रवण कर चुके थे, तथापि उन परमकारुणिकने सर्वज्ञ होते हुए भी ब्रह्मविद्याको विशेष अधिकारीसे सम्बन्ध रखनेवाली मानकर—'मैं शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुआ हूँ, अतः [जो कुछ कह चुका हूँ, उससे अतिरिक्त] और कुछ कहनेका साहस नहीं कर सकता' इस प्रकार शूद्रयोनिमें उत्पन्न होनेके कारण मैं उपनिषत्प्रतिपादित ब्रह्मात्मतत्त्वज्ञानका उपदेश करनेका अधिकारी नहीं हूँ—ऐसा कहकर फिर यह सोचते हुए कि मैं इन महाराज धृतराष्ट्रको किस प्रकार ब्रह्मविद्याके द्वारा पूर्णानन्दमय परमपद परमात्मस्वरूप स्वाराज्यपर स्थापित करूँ—उन्होंने छान्दोग्योपनिषद् [अष्टम अध्याय] के प्रसिद्ध इतिहासका स्मरण किया और यह सोचते हुए कि इन्हें अज्ञानसे अतीत सर्वव्यापक परमात्माका साक्षात्कार करानेमें और कोई समर्थ नहीं है—उन भगवान् सनत्कुमारको ही योगबलसे बुलाकर उनका अभ्युत्थानादिसे सत्कार करते हुए इस प्रकार कहा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवन् संशयः कश्चिद् धृतराष्ट्रस्य मानसे ।
यो न शक्यो मया वक्तुं त्वमस्मै वक्तुमर्हसि ॥
यं श्रुत्वायं मनुष्येन्द्रः सर्वदुःखातिगो भवेत् ।
लाभालाभौ प्रियद्वेष्यौ तथैव च जरान्तकौ ॥
विपहेत मदोन्मादौ क्षुत्पिपासे भयाभये ।
अरतिं चैव तन्द्रां च कामक्रोधौ क्षयोदयौ ॥

इति । भगवन् ! येनासौ सकलसंसारकारण-धर्माधर्मविवर्जितः सुखदुःखातिगो मुक्तो भवेत् तमस्मै धृतराष्ट्राय वक्तुमर्हसीत्युक्तवान् ।

'भगवन् ! महाराज धृतराष्ट्रके मनमें कुछ संदेह है, जिसका कि मेरे द्वारा समाधान नहीं किया जा सकता; अतः आप इनके प्रति उसका वर्णन कीजिये, जिसे सुनकर ये महाराज सम्पूर्ण दुःखोंसे पार हो जायँ तथा लाभ-हानि, प्रिय-अप्रिय, जरा-मृत्यु, मद-उन्माद, क्षुधा-पिपासा, भय-अभय तथा अरुचि, तन्द्रा, काम, क्रोध एवं अवनति और उन्नतिको [समानभावसे] सह सकें। अर्थात् हे भगवन् ! जिसके द्वारा ये सम्पूर्ण संसारके हेतुभूत धर्माधर्मसे रहित हो सुख-दुःखसे ऊपर उठकर मुक्त हो जायँ, उस (ब्रह्मविद्या) का आप इन महाराज धृतराष्ट्रको उपदेश कीजिये ।'

वैशम्पायन उवाच—

ततो राजा धृतराष्ट्रो मनीषी सम्पूज्य वाक्यं विदुरेरितं तत् ।
सनत्सुजातं रहिते महात्मा पप्रच्छ बुद्धिं परमां बुभूषन् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी बोले—तब परम बुद्धिमान् महात्मा राजा धृतराष्ट्रने विदुरजीके कहे हुए इस वाक्यकी प्रशंसा करते हुए एकान्तमें श्रीसनत्सुजातजीसे उस उत्कृष्ट बुद्धिके विषयमें, उसमें स्थित होनेकी इच्छासे, पूछा ॥ १ ॥

तत एतद्वाक्यसमनन्तरं विदुरेण सनत्सुजातं प्रति ईरितम् उक्तं यद् वाक्यं तत् सम्पूज्य-सम्मान्य, सनत्सुजातं सनदिति सनातनं ब्रह्मोच्यते, हिरण्यगर्भाख्यम् । तस्मात्सनातनाद् ब्रह्मणो मानसाद् ज्ञानवैराग्यादिसमन्वितः सुष्ठु जात इति सनत्सुजातः—इत्युक्तो भगवान् सनत्कुमारः, तं रहिते रहसि प्राकृतजनवर्जिते देशे महात्मा महाबुद्धिः पप्रच्छ पृष्टवान् बुद्धिं परमामुत्तमां पूर्णानन्दाद्वितीयविषयाम् । किमर्थम् ? बुभूषन् भवितुमिच्छन्, ब्रह्मात्मविद्ययापहृतमात्मानं लब्धुमिच्छन्नित्यर्थः ॥ १ ॥

तब—इस वाक्यके पश्चात् विदुरजीने श्रीसनत्सुजातजीके प्रति जो वाक्य कहा था, उसकी प्रशंसा अर्थात् सम्मान करते हुए—'सनत्' हिरण्यगर्भसंज्ञक सनातन ब्रह्मको कहते हैं, उस सनातन ब्रह्मके मनसे जो ज्ञान-वैराग्यादिसे सम्पन्न हुए सुन्दर प्रकारसे उत्पन्न हुए हैं, उन भगवान् सनत्कुमारजीको ही सनत्सुजात कहा गया है—उन सनत्कुमारजीसे एकान्तमें अर्थात् जनसाधारण-से शून्य प्रदेशमें महात्मा—परमबुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने परम उत्तम अर्थात् पूर्णानन्दस्वरूप अद्वितीय ब्रह्मसम्बन्धिनी बुद्धिके विषयमें प्रश्न किया । किसलिये किया ?—बुभूषन्—तद्रूप होनेकी इच्छासे अर्थात् [अविद्याके कारण] खोये हुए अपने आत्माको ब्रह्मज्ञानके द्वारा प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रश्न किया ॥१॥

तदेवाह—

वही [प्रश्न] बतलाया जाता है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धृतराष्ट्र उवाच—

सनत्सुजात यदिदं शृणोमि मृत्युर्हि नास्तीति तवोपदेशम् ।
देवासुरा आचरन् ब्रह्मचर्यममृत्यवे तत्कतरन्नु सत्यम् ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सनत्सुजात ! मैं जो आपका ऐसा उपदेश सुनता हूँ कि मृत्यु है ही नहीं; तथा [ऐसा भी सुनता हूँ कि] अमरत्वकी प्राप्तिके लिये देवता और असुरोंने ब्रह्मचर्यका आचरण किया था—सो इनमें कौन-सी बात सत्य है ? ॥ २ ॥

हे सनत्सुजात ! यन्मृत्युर्हि नास्तीति शिष्यान् प्रति उपदिष्टमिति विदुरः प्राह, देवासुराः पुनर्मृत्यवे मृत्योरभावाय अमृतत्वप्राप्तये ब्रह्मचर्यमाचरन्तः—इन्द्रविरोचनादयो गुरौ वासं कृतवन्तः। श्रूयते च च्छान्दोग्ये—'तद्धोभये देवा असुरा अनुबुबुधिरे' इत्याद्यारभ्य 'तौ ह द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुः' इत्यन्तेनेन्द्रविरोचनयोः प्रजापतौ ब्रह्मचर्यचरणम् । 'एकाशतं ह वै वर्षाणि मघवा प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास' इति च ।

यदि मृत्युर्नास्तीति तव पक्षः, तर्हि कथं देवासुराणाममृत्यवे ब्रह्मचर्यचरणम् ? तत् तयोर्मृत्युसद्भावासद्भावपक्षयोः कतरन्नु सत्यम् ? यत्सत्यं तद्ब्रूतुमर्हसीत्यभिप्रायः ॥ २ ॥

हे सनत्सुजात ! आपने जो अपने शिष्योंको उपदेश किया था कि 'मृत्यु है नहीं'—सो मुझसे विदुरने कहा है तथा इन्द्र एवं विरोचनादि देवता और असुरोंने अमृत्यु—मृत्युके अभाव यानी अमृतत्वकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यका आचरण किया था—उन्होंने [इसी उद्देश्यसे] गुरुगृहमें निवास किया था; जैसा कि छान्दोग्योपनिषद्में 'उन देवता और असुर दोनोंने जाना' यहाँसे लेकर 'वे बत्तीस वर्षतक ब्रह्मचर्यसे रहे' यहाँतक प्रजापतिके यहाँ इन्द्र और विरोचनके ब्रह्मचर्याचरणकी बात तथा 'इन्द्रने प्रजापतिके यहाँ एक सौ वर्षतक ब्रह्मचर्यवास किया' इस वाक्यसे [अकेले इन्द्रके ब्रह्मचर्याचरणकी बात] कही गयी है।

यदि आपका यह पक्ष है कि 'मृत्यु है ही नहीं' तो देवता और असुरोंने अमृतत्वकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्याचरण कैसे किया ? अतः मृत्युकी सत्ता और असत्ता—इन दोनों पक्षोंमेंसे कौन पक्ष सत्य है ? तात्पर्य यह है कि इनमें जो सत्य हो, उसीका मुझे उपदेश कीजिये ॥ २ ॥

भगवान् सनत्सुजातका उत्तर—अमरत्वके विभिन्न रूप

श्रीसनत्सुजात उवाच—

अमृत्युः कर्मणा केचिन्मृत्युर्नास्तीति चापरे ।
शृणु मे ब्रुवतो राजन्यथैतन्मा विशङ्किथाः ॥ ३ ॥

श्रीसनत्सुजातजी बोले—राजन् ! कुछ लोग तो कर्मके द्वारा अमरत्व मानते हैं और दूसरे लोगोंका ऐसा मत है कि मृत्यु है ही नहीं। यह बात किस प्रकार है, सो मैं वर्णन करता हूँ, सुनो ! इसमें शङ्का मत करो ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

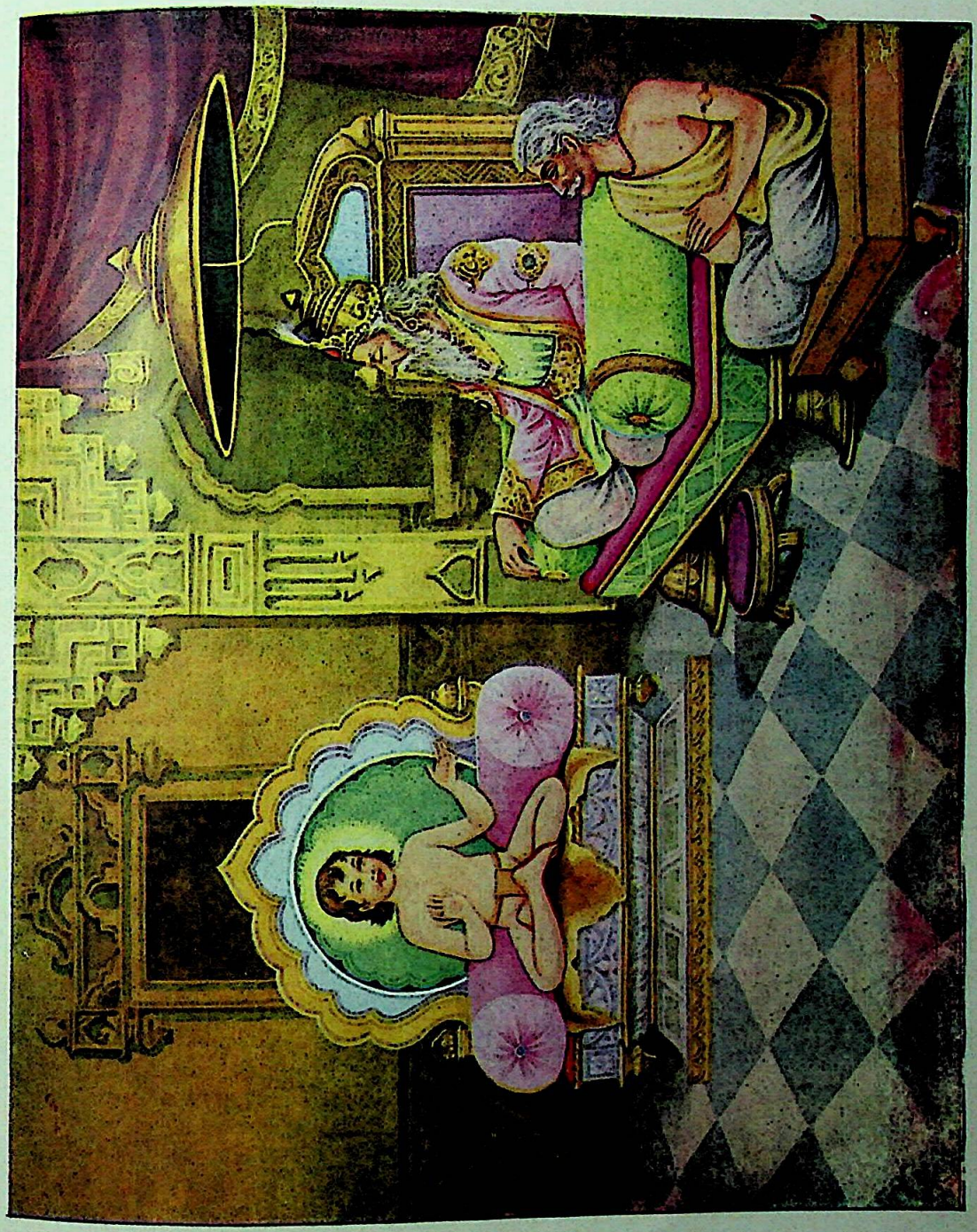

श्रीसनत्सुजात और महाराज धृतराष्ट्र

महाभारत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवं पृष्टः प्राह भगवान् सनत्सुजातः—केचित्पुनरविद्याधिरूढाः परमार्थतो मृत्युसद्भावं मन्यमाना वेदोक्तेन कर्मणा अमृत्युः—अमृतत्वं भवतीति मत्वा अमृत्यवे—अमृतत्वप्राप्तये वेदोक्तं कर्माचरन्ति ।

इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् सनत्सुजातने कहा—कई लोग जो अविद्याके वशीभूत हैं, परमार्थतः मृत्युकी सत्ता मानते हुए यह समझकर कि वेदोक्त कर्मके द्वारा अमृत्यु—अमृतत्व प्राप्त होता है, उस अमृतत्वकी प्राप्तिके लिये वेदोक्त कर्मका अनुष्ठान करते हैं ।

तथान्ये विषयविषान्धा विषयव्यतिरेकेण निर्विषयं मोक्षममन्यमानाः कर्मणैवामृत्युः—अमृतत्वं देवादिभावं वर्णयन्ति । तत्रैव च रागिगीतं श्लोकमुदाहरन्ति—

अपि वृन्दावने रम्ये सृगालत्वं स इच्छतु ।
न तु निर्विषयं मोक्षं कदाचिदपि गौतम ॥ इति ॥

तथा दूसरे, जो विषयरूप विषसे अन्धे हो रहे हैं, विषयसे रहित कोई निर्विषय मोक्ष न मानते हुए कर्मके द्वारा ही अमृत्यु—अमरत्व अर्थात् देवादिभावकी प्राप्तिका वर्णन करते हैं । इसी विषयमें वे किसी रागीके कहे हुए श्लोकका उदाहरण देते हैं—'हे गौतम ! वह रमणीय वृन्दावनमें सृगाल होनेकी इच्छा तो कर सकता है; किंतु निर्विषय मोक्षकी इच्छा कभी नहीं कर सकता ।'

तथैव च परमात्मव्यतिरेकेण द्वितीयमपश्यन्तो ज्ञानकर्मभ्याममृतत्वं वर्णयन्ति ।

इसी प्रकार परमात्मासे भिन्न किसी अन्यको न देखनेवाले कुछ लोग ज्ञान और कर्मके [समुच्चय] द्वारा अमृतत्वका प्रतिपादन करते हैं ।

अपरे पुनरद्वितीयात्मदर्शिन आत्मव्यतिरेकेण द्वितीयमपश्यन्तो मृत्युर्नास्तीति वर्णयन्ति । हे राजन् ! यथैतत्पक्षयोरविरोधः सम्भवति तथा ब्रुवतो मे मम वाक्यं शृणु मा विशङ्किथाः, मयोक्तेऽर्थे शङ्कां मा कृथाः ॥ ३ ॥

किंतु हे राजन् ! दूसरे, जो अद्वितीय आत्माको ही देखनेवाले हैं, वे आत्मासे भिन्न किसी दूसरेको न देखनेके कारण ऐसा कहते हैं कि 'मृत्यु है ही नहीं ।' इन पक्षोंका* जिस प्रकार परस्पर अविरोध हो सकता है, वह मैं बतलाता हूँ, मेरा कथन सुनो; शङ्का मत करो अर्थात् मेरी कही हुई बातमें कोई संदेह न करो ॥ ३ ॥

स्वमत—अप्रमाद ही अमरत्व है

कथम् ?— | किस प्रकार ?—

उभे सत्ये क्षत्रियाद्यप्रवृत्ते मोहो मृत्युः सम्मतो यः कवीनाम् ।
प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि सदाप्रमादममृतत्वं ब्रवीमि ॥ ४ ॥

* यहाँ आचार्यने सबसे पहले कर्ममार्गानुसारी मीमांसकके, फिर उपासकके, उसके पश्चात् ज्ञानकर्मसमुच्चयवादी और अन्तमें अद्वितीय ब्रह्मनिष्ठके मतका वर्णन किया है । अपने-अपने क्षेत्रमें ये सभी ठीक हैं; किंतु यहाँ ब्रह्मविद्याका प्रसङ्ग है, इसलिये मीमांसक और उपासकोंके सिद्धान्तोंका कुछ हेयरूपसे उल्लेख किया है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे क्षत्रिय ! जगत्के आरम्भसे ही प्रवृत्त हुए ये दोनों विचार सत्य हैं; तथापि जो विद्वानोंको अभिमत है, वह मृत्यु तो मोह है । [किंतु] मैं तो प्रमादको ही मृत्यु कहता और सर्वदा अप्रमादको ही अमृतत्व बतलाता हूँ ॥ ४ ॥

ये पूर्वोक्ते मृत्योरस्तित्वनास्तित्वे ते उभे हे क्षत्रिय ! आद्यप्रवृत्ते य आदिसर्गस्तमारभ्य प्रवृत्ते । अथवा क्षत्रियाद्य क्षत्रियप्रधान, प्रवृत्ते वर्तमाने । कथं पुनरुभयोः परस्परविरुद्धयोरस्तित्वनास्तित्वयोः सत्यत्वमिति ? तत्राह—मोहो मृत्युः सम्मतो यः कवीनामिति । भवेदयं विरोधोऽस्तित्वनास्तित्वयोः, यदि परमार्थरूपो मृत्युः स्यात् ।

हे क्षत्रिय ! पहले बतलाये हुए जो ये मृत्युके अस्तित्व और अभाव हैं, वे दोनों भी आद्यप्रवृत्त अर्थात् जो आदिसर्ग है, उससे आरम्भ करके प्रवृत्त हैं। अथवा क्षत्रियाद्यका अर्थ क्षत्रियप्रधान और 'प्रवृत्ते' का वर्तमान है (ऐसा समझना चाहिये); किंतु परस्पर-विरुद्ध मृत्युके अस्तित्व और अभाव—इन दोनोंकी सत्यता कैसे हो सकती है ? इसपर कहते हैं—विद्वानोंको जो अभिमत है, वह मृत्यु तो मोह है। यह अस्तित्व और अभावका विरोध तो तभी हो सकता है, जब मृत्यु परमार्थरूप हो ।

कस्तर्हि मृत्युः ? यो मोहो मिथ्याज्ञानम्, अनात्मनि आत्माभिमानः स मृत्युः केषांचित् कवीनां मतः । अहं तु न तथा मृत्युं ब्रवीमि । कथं तर्हि ? प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि । प्रमादः प्रच्युतिः स्वाभाविकब्रह्मभावात् । तं प्रमादं मिथ्याज्ञानस्यापि कारणम् आत्मानवधारणमात्माज्ञानं मृत्युं जननमरणादिसर्वानर्थबीजम् अहं ब्रवीमि ।

तो फिर मृत्यु क्या है ? यह जो मोह—मिथ्याज्ञान अर्थात् अनात्मामें आत्माभिमान है, वही मृत्यु है—ऐसा किन्हीं विद्वानोंका मत है; किंतु मैं मृत्युको ऐसा नहीं बतलाता । तो कैसा बतलाता हूँ । मैं तो प्रमादको ही मृत्यु कहता हूँ । प्रमाद अपने स्वाभाविक ब्रह्मभावसे च्युत होनेको कहते हैं । उस प्रमाद—मिथ्याज्ञानके भी कारणभूत आत्माके अनिश्चय अर्थात् आत्माके अज्ञानको मैं मृत्यु यानी जन्म-मरणादि सम्पूर्ण अनर्थका बीज बतलाता हूँ ।

तथा सदाप्रमादं स्वाभाविकस्वरूपेणावस्थानम् अमृतत्वं ब्रवीमि । तथा च श्रुतिः स्वरूपावस्थानमेव मोक्षपदं दर्शयति—'परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते' इति । तथानुगीतासु स्पष्टमाह—

एको यज्ञो नास्ति ततो द्वितीयो
यो हृच्छयस्तमहमनुब्रवीमि ।
यस्मिन्निष्ट्वा सर्वमिदं ग्रसित्वा
स्वरूपसंस्थाश्च भवन्ति मर्त्याः ॥

तथा सर्वदा ही अप्रमाद—अपने स्वाभाविकरूपसे स्थित होनेको मैं अमृतत्व कहता हूँ । इसी प्रकार श्रुति भी 'परम ज्योतिको प्राप्त होकर अपने स्वरूपसे युक्त हो जाता है' ऐसा कहकर स्वरूपमें स्थित होनेको ही मोक्षरूपसे प्रदर्शित करती है । तथा अनुगीतामें भी स्पष्ट ही कहा है—'आत्मा एक है, उससे भिन्न कोई और नहीं है, जो कि हृदयदेशमें स्थित है । उसीका मैं वर्णन करता हूँ । उसका यजन करके मनुष्य इस सम्पूर्ण दृश्यवर्गको लीनकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं ।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यत एवं स्वरूपावस्थानलक्षणो मोक्षः, अत एव चतुर्विधक्रियाफलविलक्षणत्वादेव न कर्मसाध्यममृतत्वम्, नापि समुच्चिताभ्यां ज्ञानकर्मभ्यामिति 'अमृत्युः कर्मणा केचित्' इत्येतदनुपपन्नमेवेत्युक्तं भवति । वक्ष्यति चास्य पक्षस्य स्वयमेव निराकरणम्—

कर्मोदये कर्मफलानुरागा-
स्तत्रानुयान्ति न तरन्ति मृत्युम् ।
ज्ञानेन विद्वांस्तेजोऽभ्येति नित्यं
न विद्यते ह्यन्यथा तस्य पन्थाः' ॥इति॥४॥

क्योंकि इस प्रकार स्वरूपमें स्थित होना ही मोक्ष है, इसीसे [काम्य, नित्य, नैमित्तिक और निषिद्ध] चारों प्रकारके कर्मोंके फलसे विलक्षण होनेके कारण अमृतत्व कर्मसाध्य नहीं है और न परस्पर मिले हुए ही ज्ञान और कर्मोंसे साध्य है। इससे यह बतलाया गया है कि 'कुछ लोग कर्मसे अमृतत्व बतलाते हैं' ऐसा कथन अनुपपन्न ही है । 'कर्मका उदय होनेपर कर्मफलके अनुरागवश लोग उसीका अनुवर्तन करते हैं, वे मृत्युको पार नहीं कर पाते । विद्वान् पुरुष ज्ञानके द्वारा नित्य-प्रकाशको प्राप्त करता है । उसके लिये [इससे भिन्न] और कोई मार्ग नहीं है' ऐसा कहकर सनत्कुमारजी स्वयं ही इस पक्षका निराकरण करेंगे ॥ ४ ॥

अप्रमादके अमृतस्वरूप होनेमें हेतु

कथमेतदवगम्यते प्रमादो मृत्युरप्रमादोऽमृतत्वमिति ? तत्राह—

किंतु यह कैसे जाना जाता है कि प्रमाद मृत्यु है और अप्रमाद अमृतत्व है ? सो बतलाते हैं—

प्रमादाद्वा असुराः पराभवन्नप्रमादाद् ब्रह्मभूताः सुराश्च ।
न वै मृत्युर्व्याघ्र इवात्ति जन्तून् नाप्यस्य रूपमुपलभ्यते हि ॥ ५ ॥

(क्योंकि) प्रमादसे ही असुरगण पराभवको प्राप्त हुए थे और अप्रमादके कारण ही देवताओंने ब्रह्मत्व प्राप्त किया था । (इसके सिवा) मृत्यु भी सिंहके समान जीवोंका भक्षण नहीं करती और न इसका कोई रूप ही उपलब्ध होता है ॥ ५ ॥

प्रमादात् स्वाभाविकब्रह्मभावप्रच्यवनाद् अनात्मनि देहादावात्मभावाद् असुरा विरोचनप्रभृतयः पराभवन् पराभूताः । तथा च श्रुतिः—'अनुपलभ्यात्मानम्' इत्यारभ्य 'देवा वा असुरा वा ते पराभविष्यन्ति' इत्यन्तेन । तथाप्रमादात्स्वाभाविकचित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मनावस्थानाद् ब्रह्मभूताः सुराश्चेन्द्रादयः । तथा च श्रुतिः—'तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषां च सर्वे लोका आप्ताः सर्वे च कामाः' इत्यादिना ।

प्रमाद—अपने स्वाभाविक ब्रह्मभावसे च्युत होने अर्थात् देहादि अनात्मामें आत्मभाव करनेसे विरोचन आदि असुरगण पराभवको प्राप्त हुए थे । जैसा कि 'आत्माको उपलब्ध न करके' यहाँसे लेकर 'वे देवता हों या असुर पराभवको प्राप्त होंगे' यहाँतकके वाक्यसे श्रुतिने कहा है । तथा अप्रमाद यानी अपने स्वाभाविक सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मरूपसे स्थित होनेसे ही इन्द्रादि देवगण ब्रह्मत्वको प्राप्त हुए थे । ऐसा ही 'उस इस आत्माकी देवगण उपासना करते हैं, इसीसे उन्हें सम्पूर्ण लोक और समस्त भोग प्राप्त हैं' इत्यादि मन्त्रद्वारा श्रुति कहती है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथवा, असुषु प्राणेषु इन्द्रियेष्वेव रमन्त इत्यसुराः, अनात्मविदो वैषयिकाः प्राणिनोऽसुराः। ते स्वाभाविकब्रह्मभावमतिक्रम्यानात्मनि देहादावात्मभावमापन्नाः पराभवन्, तिर्यगादियोनिमापन्नाः। तथा च बह्वृचब्राह्मणोपनिषत्—'तस्मान्न प्रमाद्येत्तन्नातीयान्न ह्यत्यायन्पूर्वे येऽत्यायंस्ते पराबभूवुः' इत्यारभ्य 'या वै ता इमाः प्रजास्तिस्रोऽत्यायमायंस्तानीमानि वयांसि वङ्गावगधाश्चेरपादाः' इति।

अथवा जो असु—प्राण यानी इन्द्रियोंमें ही रमण करते हैं, वे अनात्मज्ञ विषयी प्राणी असुर हैं। वे स्वाभाविक ब्रह्मभावका उल्लङ्घन कर देहादि अनात्मामें आत्मभाव करनेके कारण पराभूत हुए हैं अर्थात् तिर्यगादि योनियोंको प्राप्त हुए हैं। ऐसा ही 'उस (धर्मपथ) से प्रमाद न करे, उसका अतिक्रमण न करे, उसका अतिक्रमण नहीं किया जाता, पहले जिन्होंने उसका अतिक्रमण किया था, वे पराभवको प्राप्त हुए' यहाँसे लेकर 'जिन इन तीन प्रसिद्ध प्रजाओंने धर्मका त्याग किया था, वे पक्षी, वङ्ग (वनके वृक्ष), वगध (ओषधियाँ) और इरपद (सर्पादि) हैं' यहाँतक ऋग्वेदीय ब्राह्मणोपनिषद् (ऐतरेयारण्यक) भी कहता है।

तथा स्वस्मिन्नात्मन्येव रमन्ति इत्यात्मविदः सुराः। तथा चोक्तम्—

आत्मन्येव रतिर्येषां स्वस्मिन् ब्रह्मणि चाचले।
ते सुरा इति विख्याताः सूरयश्च सुरा मताः॥

इति। अप्रमादात्ते स्वाभाविकब्रह्मात्मनावस्थानाद् ब्रह्मभूताः। निवृत्तमिथ्याज्ञानतत्कार्या ब्रह्मैव संवृत्ता इत्यर्थः।

तथा जो अपनेमें अर्थात् आत्मामें ही रमण करते हैं, वे आत्मवेत्ता ही सुर हैं। जैसा कि कहा भी है—'जिनका अपने ब्रह्मस्वरूप अविचल आत्मामें ही राग है, वे ही 'सुर' ऐसा कहकर विख्यात हुए हैं; क्योंकि सूरि (विद्वान्) ही 'सुर' माने गये हैं।' वे अप्रमाद यानी स्वाभाविक ब्रह्मभावसे स्थित होनेके कारण ब्रह्मभूत अर्थात् जिनसे मिथ्या अज्ञान और उसका कार्य निवृत्त हो गये हैं, ऐसे होकर ब्रह्म ही हो गये हैं।

नन्वन्य एव सर्वजन्तूनामुपसंहारको मृत्युः प्रसिद्धः, कथमुच्यते 'प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि' इति? तत्राह—न वै मृत्युरिति। न वै मृत्युर्व्याघ्र इव अत्ति भक्षयति प्राणिनः। यदि भक्षयेत् तर्हि व्याघ्र इवास्य रूपमुपलभ्येत, न चोपलभ्यते तस्मान्नास्त्येव मृत्युः॥ ५॥

(लोकमें) सम्पूर्ण जीवोंका संहार करनेवाला मृत्यु तो दूसरा ही प्रसिद्ध है; फिर यह कैसे कहा जाता है कि 'मैं प्रमादको ही मृत्यु कहता हूँ?' ऐसी शङ्का होनेपर कहते हैं—'न वै मृत्युः' इत्यादि। मृत्यु व्याघ्रके समान प्राणियोंको भक्षण नहीं करती। यदि यह भक्षण करती तो व्याघ्रके समान इसका कोई रूप भी देखा जाता; किंतु वह देखा नहीं जाता, अतः मृत्यु है ही नहीं॥ ५॥

मतान्तरमें यम ही मृत्यु है, परंतु वास्तविक मृत्यु प्रमाद ही है

ननूपलभ्यते सावित्र्युपाख्याने—

अथ सत्यवतः कायात् पाशबद्धं वशंगतम्।
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात्॥ इति।

यदि कहो कि सावित्र्युपाख्यानमें तो 'इसके अनन्तर यमने सत्यवान्के शरीरसे अपने वशीभूत एवं पाशमें बँधे हुए अङ्गुष्ठमात्र पुरुषको बलात्कारसे खींचा' इस वाक्यद्वारा (मृत्युका रूप) देखा जाता है, फिर यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कथमुच्यते नास्य रूपमुपलभ्यत इति? तत्राह—

कैसे कहा जाता है कि इसका रूप दिखायी नहीं देता ? तो इसपर कहते हैं—

यमं त्वेके मृत्युमतोऽन्यमाहुरात्मावासममृतं ब्रह्मचर्यम् ।
पितृलोके राज्यमनुशास्ति देवः शिवः शिवानामशिवोऽशिवानाम् ॥ ६ ॥

इससे भिन्न कुछ लोग अपनी बुद्धिमें स्थित, अमर तथा ब्रह्मनिष्ठ यमको मृत्यु कहते हैं, जो पितृलोकमें राज्यशासन करता है तथा जो पुण्यात्माओंको सुख देनेवाला और पापियोंको पीड़ित करनेवाला देव है ॥ ६ ॥

सत्यमुपलभ्यते, तथापि न साक्षान्मृत्युः । कस्तर्हि ? यः प्रमादाख्यो मृत्युरज्ञानं स एव, साक्षाद्विनाशहेतुत्वात् । तथाज्ञानस्य विनाशहेतुत्वं श्रूयते—'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः' इति । बृहदारण्यके प्रमादाख्यस्याज्ञानस्य साक्षान्मृत्युत्वं दर्शितम्—'मृत्युर्वै तमो ज्योतिरमृतम्' इति । यस्मात्प्रमाद एव साक्षात् सर्वानर्थबीजं तस्मान्न प्रमाद्येत, चित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मभावेनैवावतिष्ठेतेत्यर्थः । तथा चाज्ञानस्य बन्धहेतुत्वं विज्ञानस्य मोक्षहेतुत्वमुक्तं भगवता—'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः' इति ।

ठीक है, देखा तो जाता है; तथापि यह साक्षात् मृत्यु नहीं है । तो फिर साक्षात् मृत्यु क्या है ? जो प्रमादसंज्ञक मृत्यु अज्ञान है, वही विनाशका साक्षात् कारण होनेसे वास्तविक मृत्यु है । तथा 'यदि यहाँ (जीवित रहते हुए) आत्माको जान लिया तो ठीक है, यदि यहाँ नहीं जाना तो बड़ी भारी हानि है' इस श्रुतिमें अज्ञानका विनाशकारणत्व प्रसिद्ध भी है । (इसके सिवा) 'अज्ञान ही मृत्यु है और प्रकाश ही अमृत है' इस वाक्यद्वारा बृहदारण्यकमें भी प्रमादसंज्ञक अज्ञानको साक्षात् मृत्युरूप दिखलाया है । (इस प्रकार) क्योंकि प्रमाद ही सम्पूर्ण अनर्थोंका साक्षात् बीज है, इसलिये प्रमाद न करे अर्थात् सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मभावसे ही स्थित रहे । इसी प्रकार भगवान्‌ने भी 'ज्ञान अज्ञानसे ढका हुआ है, इसीसे जीव मोहको प्राप्त होते हैं' इस वाक्यसे अज्ञानके बन्धहेतुत्व और विज्ञानके मोक्षहेतुत्वका प्रतिपादन किया है ।

यस्मात्प्रमाद एव मृत्युः, अप्रमादोऽमृतत्वम्, अत एव न कर्मसाध्यममृतत्वम् । नापि कर्मप्राप्यम्, नित्यसिद्धत्वात्, नित्यप्राप्तत्वाच्च । तथा च श्रुतिः—'एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्' इति । तथा—'तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय', 'तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः' इति

क्योंकि प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद ही अमृतत्व है, इसलिये वह (अमृतत्व) न तो नित्यसिद्ध होनेके कारण कर्मसाध्य है और न नित्य-प्राप्त होनेके कारण कर्मसे प्राप्त होनेवाला है । ऐसी ही 'यह ब्रह्मवेत्ताकी नित्य-महिमा है कि वह न तो कर्मसे बढ़ता है और न घटता ही है' यह श्रुति भी है । तथा 'उसीको जानकर पुरुष मृत्युको पार करता है, मोक्षप्राप्तिके लिये कोई और मार्ग नहीं है', 'ब्रह्मवेत्ता बुद्धिमान् पुरुष उस पदको जानकर उसीमें बुद्धि स्थिर करे'—इन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानस्यैव मोक्षसाधनत्वं दर्शितम्। तथा च 'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा। ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः' इति।

वक्ष्यति च भगवान् ज्ञानस्यैव मोक्षसाधनत्वम्—'अन्तवन्तः क्षत्रिय ते जयन्ति लोकाञ्जनाः कर्मणा निर्मितेन' (३।१८) इति, 'एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा ज्ञानेन तिष्ठन्न बिभेति मृत्योः' इति च। तथा च मोक्षधर्मे—

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः॥इति॥
ज्ञानं विशिष्टं न तथा हि यज्ञा
ज्ञानेन दुर्गं तरते न यज्ञैः॥ इति च॥

तथा च ज्ञानस्यैव मोक्षसाधनत्वं मन्यमानः सर्वकर्मपरित्यागमाह भगवान् वेदाचार्यो मनुः—
यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः।
आत्मज्ञाने शमे च स्याद् वेदाभ्यासे च यत्नवान्॥
इति तथाऽऽह भगवान् परमेश्वरः—
ज्ञानं तु केवलं सम्यगपवर्गफलप्रदम्।
तस्माद् भवद्भिर्विमलं ज्ञानं कैवल्यसाधनम्॥
विज्ञातव्यं प्रयत्नेन श्रोतव्यं दृश्यमेव च।
एकः सर्वत्रगो ह्यात्मा केवलश्चितिमात्रकः॥
आनन्दो निर्मलो नित्यः स्यादेतत्सांख्यदर्शनम्।
एतदेव परं ज्ञानमेतन्मोक्षोऽनुगीयते॥
एतत्कैवल्यममलं ब्रह्मभावश्च वर्णितः।
आश्रित्यैतत्परं तत्त्वं तन्निष्ठास्तत्परायणाः॥
गच्छन्ति मां महात्मानो यतयो विश्वमीश्वरम्॥
॥ इति॥

वाक्योंद्वारा भी ज्ञानका ही मोक्ष-साधनत्व दिखलाया गया है। तथा 'इस आत्मतत्त्वका न तो कोई नेत्रसे ग्रहण कर सकता है, न वाणीसे, न अन्य इन्द्रियोंसे और न तप या कर्मसे ही ग्रहण कर सकता है। जब ज्ञानके प्रसादसे पुरुष शुद्ध-चित्त हो जाता है, तभी ध्यान करनेपर वह उस निष्कल तेजका साक्षात्कार करता है' इस वाक्यसे भी (यही दिखलाया गया है)।

'हे क्षत्रिय! वे लोग कर्मद्वारा रचे हुए अन्तवान् लोकोंको प्राप्त होते हैं' तथा 'इस प्रकार मृत्युको उत्पन्न होनेवाला जानकर ज्ञानयुक्त होकर स्थित हुआ पुरुष मृत्युसे भय नहीं मानता'—इन वाक्योंद्वारा भगवान् सनत्सुजात भी ज्ञानका ही मोक्षसाधनत्व प्रदर्शित करेंगे। इसी प्रकार मोक्षधर्ममें भी कहा है—'जीव कर्मसे बँधता है और ज्ञानसे मुक्त हो जाता है। इसीसे पारदर्शी मुनिगण कर्म नहीं करते।' तथा यह भी कहा है—'जैसा ज्ञान विशिष्ट है वैसे यज्ञ नहीं हैं; क्योंकि पुरुष ज्ञानसे दुर्गम संसारको पार कर सकता है, यज्ञोंसे नहीं।'

इसी प्रकार वेदाचार्य भगवान् मनुने भी ज्ञानका ही मोक्षसाधनत्व मानते हुए सर्वकर्मपरित्यागका प्रतिपादन किया है—'[मोक्षकामी] द्विजश्रेष्ठको उचित है कि पहले बतलाये हुए भी कर्मोंका परित्याग कर आत्मज्ञान, शम (मनोनिग्रह) और वेदाभ्यासमें तत्पर हो जाय।' तथा भगवान् परमेश्वरने भी कहा है—'केवल एक ज्ञान ही सम्यक् प्रकारसे मोक्षरूप फल देनेवाला है; अतः आपको प्रयत्नपूर्वक कैवल्यका साधनभूत शुद्ध ज्ञान ही जानना, सुनना और अनुभव करना चाहिये। आत्मा ही एकमात्र सर्वव्यापक, शुद्ध चिन्मात्र, आनन्दस्वरूप, निर्मल एवं नित्य है—यह सांख्य-सिद्धान्त है। यही उत्कृष्ट ज्ञान है और यही मोक्ष कहा जाता है। यही शुद्ध कैवल्य और ब्रह्मभाव भी बतलाया गया है। इस परम तत्त्वका आश्रय लेकर उसीमें निष्ठा और तत्परता रखनेवाले महात्मा यतिजन मुझ विश्वरूप परमेश्वरको ही प्राप्त हो जाते हैं।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्वेवं चेत्तर्हि कर्माणि नानुष्ठेयानि ?

न नानुष्ठेयानि, किंतु ज्ञानिना नानुष्ठेयानि। तथा चाह भगवान् वासुदेवः—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ इति।

तथा च ब्रह्माण्डपुराणे कावषेयाः—

किमद्य नश्चाध्ययनेन कार्यं
किमर्थवन्तश्च मखैर्यजामः।
प्राणं हि वाप्यनले जोहवीमः
प्राणानले जुह्वीमीति वाचम् ॥ इति।

तथा च बह्वृच्ब्राह्मणोपनिषद्—'किमर्थं वयमध्येष्यामहे।' तथा च बृहदारण्यके विदुषः कर्मसंन्यासं दर्शयति—'एतद्ध स्म वैतत् पूर्वे विद्वांसः प्रजां न कामयन्ते, किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्मायं लोक इति ते ह स्म पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति।' इति। तथा लैङ्गे—

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः।
नैवास्ति किंचित्कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित्॥इति।

तथा च आथर्वणी श्रुतिः—'नैतद्विद्वानृषिणा विधेये न रुन्ध्यते विधिना शब्दकारः॥' इति।

केन तर्ह्यनुष्ठेयानि ?

अज्ञानिना आरुरुक्षुणा सर्वकर्माणि सर्वदा अनुष्ठेयानि, न ज्ञानिना। तथा चाह भगवान्—

शङ्का—यदि ऐसी बात है तब तो कर्मोंका अनुष्ठान ही नहीं करना चाहिये।

समाधान—अनुष्ठान करना ही नहीं चाहिये—ऐसी बात नहीं है; किंतु ज्ञानीको उनका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने भी 'जिसका आत्मामें ही राग है तथा जो आत्मामें ही तृप्त और आत्मामें ही संतुष्ट है, उस पुरुषके लिये कोई और कार्य नहीं रहता' इस वाक्यद्वारा ऐसा ही कहा है। तथा ब्रह्माण्डपुराणमें कावषेयगण कहते हैं—'अब हमें अध्ययनसे क्या काम है ? हम किस प्रयोजनको लेकर यज्ञ करें तथा किसलिये प्राणका अग्निमें और प्राणाग्निमें वाणीका हवन करें।' इसी प्रकार ऋग्वेदीय ब्राह्मणोपनिषद्में कहा है—'हम किसलिये अध्ययन करेंगे' इत्यादि। तथा बृहदारण्यकोपनिषद्में भी 'इसे जाननेवाले पहले विद्वान् लोग 'जिन हमारे लिये यह आत्मलोक ही इष्ट है, वे हम संतानको लेकर क्या करेंगे' ऐसा सोचकर प्रजाकी कामना नहीं करते थे। अतः वे पुत्रैषणा, वित्तैषणा तथा लोकैषणाको छोड़कर भिक्षाटन करते थे।' इस वाक्यद्वारा श्रुति विद्वान्के लिये कर्मत्याग ही दिखलाती है। तथा लिङ्गपुराणमें भी कहा है—'जो ज्ञानरूप अमृतसे तृप्त है, उस कृतकृत्य योगीके लिये कोई कर्तव्य नहीं है; यदि उसे कोई कर्तव्य है तो वस्तुतः वह तत्त्ववेत्ता ही नहीं है।' ऐसी ही एक अथर्ववेदकी श्रुति भी है—'यह विद्वान् वेदमन्त्रद्वारा विहित कर्ममें प्रवृत्त नहीं होता, यह विधिसे बँधा हुआ नहीं है; क्योंकि यह तो मन्त्रोंका उत्पत्तिकर्ता है।'

शङ्का—तो फिर कर्म किसके लिये कर्तव्य हैं ?

समाधान—जो अज्ञानी या मोक्षमार्गमें प्रवृत्त होनेका इच्छुक है, उसे ही सर्वदा समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये, ज्ञानीको नहीं। (ज्ञानीमें कर्तृत्वाभिमान न होनेके कारण उसके द्वारा होनेवाले कर्म कर्म ही नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ इति ।
आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ इति च ॥

होते ।) भगवान्‌ने भी 'हे निष्पाप अर्जुन ! इस लोकमें पूर्वकालमें मैंने दो निष्ठाएँ कही थीं । सांख्यनिष्ठोंकी ज्ञानयोगके द्वारा और योगियोंकी कर्मयोगके द्वारा [परमपदकी प्राप्ति होती है]' तथा जो भगवन्मार्गमें प्रवृत्त होनेका इच्छुक है, 'उसके लिये कर्मयोग साधन है और जो योगारूढ़ है, उसके लिये शमरूप साधन कहा गया है'—इन वाक्योंद्वारा ऐसा ही कहा है । तथा सत्यवतीनन्दन भगवान् व्यासने भी कहा है—'जिनमें कि वेदोंका मुख्य तात्पर्य है, ऐसे ये दो ही मार्ग हैं—(१) प्रवृत्तिरूप धर्म और (२) निवृत्तिमें स्थित होना ।'

तथा चाह भगवान् सत्यवतीसुतः—

द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः ।
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तौ च व्यवस्थितः ॥ इति ॥

नन्वेवमारुरुक्षुणापि कर्माणि नानुष्ठेयानि, कर्मणां बन्धहेतुत्वात् । तथा चोक्तं भगवता—

'कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ।' इति ।

शङ्का—तब तो जो मोक्षमार्गमें आरूढ़ होना चाहते हैं, उन्हें भी कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये; क्योंकि कर्म तो बन्धनके हेतु हैं । ऐसा ही भगवान्‌ने कहा भी है—'जीव कर्मसे बँधता है और ज्ञानसे मुक्त हो जाता है ।'

सत्यम्, तथापि ईश्वरार्थतया फलनिरपेक्षमनुष्ठीयमानानि न बन्धहेतूनि । तथा चोक्तं भगवता—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ इति ।

समाधान—ठीक है, किंतु कर्मफलकी अपेक्षा न रखकर भगवान्‌के लिये किये जानेवाले कर्म बन्धनके हेतु नहीं होते । ऐसा ही श्रीभगवान्‌ने भी कहा है—'यज्ञ (विष्णुभगवान्) के लिये किये हुए कर्मोंसे भिन्न कर्मोंमें लगा हुआ पुरुष ही कर्मोंसे बँधता है; अतः हे कुन्तीनन्दन ! तू निःसङ्ग होकर कर्मानुष्ठान कर ।'

किमर्थं तर्हि तेषामनुष्ठानम् ?

शङ्का—तो फिर उनका अनुष्ठान किसलिये किया जाय ?

सत्त्वशुद्ध्यर्थमिति ब्रूमः । तथा चोक्तं भगवता—

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये ॥ ॥ इति ॥
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ इति ॥
गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ इति च ॥

समाधान—इसपर हम यह कहते हैं कि चित्तशुद्धिके लिये उनका अनुष्ठान करे । भगवान्‌ने भी कहा है—'योगीलोग आसक्ति छोड़कर चित्तशुद्धिके लिये शरीर, मन, बुद्धि और केवल इन्द्रियोंसे भी कर्म किया करते हैं', 'बुद्धिमान् लोगोंके यज्ञ, दान और तप उन्हें पवित्र करनेवाले होते हैं', 'जो सब प्रकारकी आसक्तिसे रहित और मुक्त है, जिसका चित्त अपने ज्ञानस्वरूपमें स्थित है और जो केवल यज्ञके लिये ही कर्मानुष्ठान करता है, उसके सब कर्म लीन हो जाते हैं ।' तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा च—

कषायपक्तिः कर्माणि ज्ञानं तु परमा गतिः ।
कषाये कर्मभिः पक्वे ततो ज्ञानं प्रवर्तते ॥इति॥

ननु कर्मणामपि मोक्षहेतुत्वं श्रूयते—'विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह' इति । 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः' इति च॥ तथा च मनुः—'तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरे उभे' इति ।

नैतत्, पूर्वापराननुसंधाननिबन्धनोऽयं भ्रमः । तथा हि—'विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳसह' इत्युक्त्वा 'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते' इति विद्याविद्ययोर्भिन्नविषयत्वेन समुच्चयाभावः श्रुत्यैव दर्शितः । इममेवार्थं स्पष्टयन् भगवान्मनुः—'तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरे उभे' इत्युक्ते समुच्चयाशङ्का मा भूदिति 'तपसा कल्मषं हन्ति विद्ययामृतमश्नुते' इति तपसो नित्यनैमित्तिकलक्षणस्य कर्मणोऽन्तःकरणशुद्धावेव विनियोगं दर्शितवान् ।

तथा 'ईशावास्यमिदꣳसर्वम्' इति सर्वस्य तावन्मात्रत्वमुक्त्वा तदात्मभूतस्य सर्वस्य तावन्मात्रत्वं पश्यतस्तद्दर्शनेनैव कृतार्थस्य साध्यान्तरमपश्यतः 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' इति त्यागेनैवात्मपरिपालनमुक्त्वा, अतदात्मवेदिनः केन तर्हि आत्मपरिपालनम् ? इत्याशङ्क्याह—'कुर्वन्ने-

यह भी कहा है—'कर्म वासनाओंको जीर्ण करनेके लिये हैं, किंतु ज्ञान तो परमगति है । कर्मोंके द्वारा वासनाओंके जीर्ण हो जानेपर फिर ज्ञानकी प्रवृत्ति होती है ।'

शङ्का—किंतु मोक्षका कारण होना तो कर्मोंका भी सुना जाता है; यथा—'जो विद्या (उपासना) और अविद्या (कर्म)—उन दोनोंको एक साथ जानता है' तथा 'कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे' इत्यादि । ऐसा ही मनुजी भी कहते हैं—'तप और ज्ञान—ये दोनों ही ब्राह्मणके लिये कल्याणकारी हैं ।'

समाधान—ऐसी बात नहीं है; आगे-पीछेका प्रसङ्ग न देखनेके कारण ही यह भ्रम होता है । इसीसे—'जो विद्या और अविद्या दोनोंको एक साथ जानता है' ऐसा कहकर 'अविद्यासे मृत्युको पार करके विद्याद्वारा अमृतत्व प्राप्त करता है' इस वाक्यद्वारा श्रुतिने स्वयं ही भिन्न-फलविषयक होनेके कारण विद्या और अविद्याके समुच्चयका अभाव दिखलाया है । इसी अभिप्रायको स्पष्ट करते हुए भगवान् मनुने भी, यह सोचकर कि—'ब्राह्मणके लिये तप और ज्ञान दोनों ही कल्याणकारी हैं' इस वाक्यद्वारा कर्म और ज्ञानके समुच्चयकी आशङ्का न हो जाय, '[साधक] तपसे पापकी निवृत्ति करता है और ज्ञानसे अमरत्व प्राप्त करता है' ऐसा कहकर तप अर्थात् नित्य-नैमित्तिकरूप कर्मका उपयोग अन्तःकरणकी शुद्धिमें ही दिखलाया है ।

इसी प्रकार 'यह सब ईश्वरसे आच्छादित किये जाने योग्य है' इस वाक्यद्वारा सम्पूर्ण जगत्की भगवद्रूपता बतलाकर भगवत्स्वरूपभूत सम्पूर्ण जगत्की भगवद्रूपता देखनेवाले पुरुषको, जो इस प्रकारकी दृष्टिसे ही कृतार्थ हो गया है और अपना कोई अन्य प्रयोजन नहीं देखता, 'उसका त्यागपूर्वक भोग करे' इस प्रकार त्यागपूर्वक जीवन-यात्रा निर्वाह करनेका विधान कर, अब ऐसी आशङ्का करके कि जिसे प्रपञ्चके भगवत्स्वरूपत्वका ज्ञान नहीं है, उसे किस प्रकार जीवन-निर्वाह करना चाहिये; श्रुति कहती है कि 'इस लोकमें कर्म करता हुआ ही सौ वर्षों-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे' इति। एवं सर्वभूते त्वयि नरमात्राभिमानिन्यज्ञेऽविद्यानिमित्तोत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशाभावात्, कुर्वन्नेव सदा यावज्जीवं कर्म जिजीविषेदित्यज्ञस्य नरमात्राभिमानिनः शुद्ध्यर्थं यावज्जीवं कर्माणि दर्शयति। अत एभिरपि वाक्यैः कर्मणां शुद्धिसाधनत्वमेवावगम्यते, न मोक्षसाधनत्वम्।

तक जीवित रहनेकी इच्छा करे। इस प्रकार तुझ मनुष्यके लिये इससे भिन्न कोई और मार्ग नहीं है। ऐसा करनेसे मनुष्यमें कर्मका लेप नहीं होता।' तात्पर्य यह है कि अपने मनुष्यमात्रत्वका अभिमान रखनेवाले तुझ अज्ञानीमें अविद्याजनित संचित कर्मका विनाश और आगामी कर्मका अस्पर्श तो है नहीं, अतः जबतक तेरा जीवन रहे तुझे सर्वदा कर्म करते हुए ही जीवित रहनेकी इच्छा करनी चाहिये। इस प्रकार अपने मनुष्यमात्रत्वके अभिमानी अज्ञानी पुरुषकी शुद्धिके लिये ही श्रुति यावज्जीवन कर्म करना दिखलाती है। अतः इन वाक्योंसे भी कर्मका शुद्धिसाधनत्व ही जाना जाता है, मोक्षसाधनत्व नहीं।

यदप्युक्तम्—'तेनैति ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तैजसश्च' इति चशब्दात्समुच्चयोऽवगम्यते—तदपि प्रसिद्धश्रुतिविनियोगानुसारेण वेदितव्यम्। तथा चानुगीतासु स्पष्टमाह भगवान् कर्मणां शुद्धिद्वारेणैव मोक्षसाधनत्वम्—

और ऐसा जो कहा है कि 'तेनैति ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तैजसश्च' इस श्रुतिमें 'च' शब्दसे [पुण्यकृत् और ब्रह्मवित्का] समुच्चय जाना जाता है, सो इसकी संगति भी प्रसिद्ध श्रुतिके विनियोगके अनुसार ही लगानी चाहिये। तथा अनुगीतामें भी भगवान्‌ने स्पष्ट ही चित्तशुद्धिके द्वारा कर्मोंका मोक्षसाधनत्व प्रतिपादन किया है—'फलासक्तिसे रहित विशुद्ध नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके द्वारा पुरुष चित्तशुद्धि प्राप्तकर फिर योगारूढ हो जाता है। तत्पश्चात् योगारूढ हुआ वह भगवान् विष्णुके उस परमपदको प्राप्त होता है। गुरुभक्ति, धैर्य, धर्मपालन, शास्त्रज्ञान और भगवद्भक्तिसे ही सर्वदा निर्मल ज्ञान उत्पन्न होता है। अतः वह बुद्धिमान् पुरुष वेदके प्रति श्रद्धासे युक्त और धर्मपरायण होकर यथाशक्ति नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ तथा उनके फल परब्रह्म परमात्मा श्रीवासुदेवको समर्पण करता हुआ शुद्धचित्त हो जाता है और फिर योगारूढ भी हो जाता है।'

नित्यनैमित्तिकैः शुद्धैः फलसङ्गविवर्जितैः।
सत्त्वशुद्धिमवाप्याथ योगारूढो भविष्यति॥
योगारूढस्ततो याति तद्विष्णोः परमं पदम्।
गुरुभक्त्या च धृत्या च धर्मभक्त्या श्रुतेन च।
विष्णुभक्त्या च सततं ज्ञानमुत्पद्यतेऽमलम्॥
तस्माद् धर्मपरो भूत्वा वेदास्तिक्यसमन्वितः।
कुर्वन् वै नित्यकर्माणि यथाशक्ति स बुद्धिमान्॥
फलानि परमासाद्य वासुदेवे परात्मनि।
शुद्धसत्त्वो भवत्येव योगारूढश्च जायते॥

वक्ष्यति च भगवान् सनत्सुजातः शुद्धिद्वारेणैव मोक्षसाधनत्वम्—

भगवान् सनत्सुजात भी 'उस (ब्रह्मकी प्राप्ति) के लिये ही ये तप और यज्ञ बतलाये गये हैं। उनके द्वारा यह विद्वान् पुण्य प्राप्त करता है और फिर पुण्यके द्वारा पापको नष्ट कर वह ज्ञानसे आत्मसाक्षात्कार कर लेता है' तथा 'ज्ञानके द्वारा विद्वान् आत्माको प्राप्त होता है'—इन वाक्योंसे कर्मका चित्तशुद्धिके द्वारा ही मोक्षसाधनत्व बतलायेंगे।

तदर्थमुक्तं तप एतदिज्या
ताभ्यामसौ पुण्यमुपैति विद्वान्।
पुण्येन पापं विनिहत्य पश्चात्
स जायते ज्ञानविदीपितात्मा॥ (२।८)

'ज्ञानेन चात्मानमुपैति विद्वान्' इति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ननु कथं सत्त्वशुद्धिद्वारेणैव मोक्षसाधनत्वम् ?

विनापि सत्त्वशुद्धिं ज्ञानेनैव मोक्षः सिध्यत्येव ।

शङ्का—किंतु चित्तशुद्धिके द्वारा ही मोक्षसाधनत्व क्यों माना जाय ? चित्तशुद्धि न होनेपर भी ज्ञानके द्वारा मोक्ष हो ही जायगा ।

सत्यम्, ज्ञानेनैव मोक्षः सिध्यति, किंतु तदेव ज्ञानं सत्त्वशुद्धिं विना नोत्पद्यत इति वयं ब्रूमः । तथा चोक्तम्—

'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः' इति ।

तथा—

अनेकजन्मसंसारचिते पापसमुच्चये ।
नाक्षीणे जायते पुंसां गोविन्दाभिमुखी मतिः ॥
जन्मान्तरसहस्रेषु तपोध्यानसमाधिभिः ।
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥ इति ।

समाधान—ठीक है, मोक्ष तो ज्ञानसे ही होता है; तथापि हमारा कहना तो यह है कि विना चित्तशुद्धिके वह ज्ञान उत्पन्न ही नहीं होता । ऐसा ही कहा भी है—'पापकर्मोंका क्षय हो जानेपर लोगोंको ज्ञान होता है' तथा यह भी कहा है—'अनेक जन्मोंके संसरगसे एकत्रित हुई पापराशिका क्षय हुए विना लोगोंको भगवन्मुखी बुद्धि उत्पन्न नहीं होती । सहस्रों जन्मान्तरोंमें तप, ध्यान और समाधिके द्वारा जिनके पाप क्षीण हो गये हैं, उन्हीं पुरुषोंकी भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति होती है ।'

तथा चोक्तं भगवता—

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ इति ।

तथा चाह याज्ञवल्क्यः—

'तथाविपक्वकरण आत्मज्ञानस्य न क्षमः' इति ।

ऐसा ही श्रीभगवान्‌ने भी कहा है—'अनेक जन्मोंमें पूर्णतया सिद्धि पाकर तत्पश्चात् वह परमगतिको प्राप्त होता है । योगी तपस्वियोंसे बड़ा है और ज्ञानियोंसे भी बड़ा माना गया है तथा वह कर्मियोंसे भी उत्कृष्टतर है; अतः हे अर्जुन ! तू योगी हो । मनुष्य अपने-अपने कर्मोंमें लगा रहकर ही पूर्ण सिद्धि प्राप्त करता है । अपने कर्मोंमें लगा रहकर वह जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त करता है, सो सुनो । जिससे सम्पूर्ण भूतोंकी प्रवृत्ति होती है और जिससे यह सम्पूर्ण प्रपञ्च व्याप्त है, अपने कर्मोंद्वारा उसका पूजन करके पुरुष सिद्धि प्राप्त करता है ।' तथा याज्ञवल्क्यजी भी कहते हैं—'तथा जिसकी इन्द्रियाँ वशीभूत नहीं हैं, वह आत्मज्ञान (प्राप्त करने) के योग्य नहीं है ।'

यस्माद् विशुद्धसत्त्वस्यैव नित्यानित्यवस्तुविवेकादिद्वारेण मोक्षसाधनज्ञाननिष्पत्तिः, तस्मात्सत्त्वशुद्ध्यर्थं सर्वेश्वरमुद्दिश्य सर्वाणि वाङ्मनःकायलक्षणानि श्रौतस्मार्तानि कर्माणि समाचरेद् यावद्विशुद्धसत्त्व इहामुत्रफलभोगविरागो योगारूढो भवति । तथा चाह भगवान्—'आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते'

[इस प्रकार] क्योंकि शुद्धचित्त पुरुषको ही नित्यानित्यवस्तुविवेकके द्वारा मोक्षके साधनभूत ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है; अतः जबतक शुद्धचित्त होकर सब प्रकारके ऐहिक और पारलौकिक कर्मफलभोगसे विरक्त हो योगारूढ न हो जाय, तबतक चित्तशुद्धिके लिये सर्वेश्वर श्रीभगवान्‌के उद्देश्यसे ही समस्त वाचिक, मानसिक और शारीरिक श्रौत एवं स्मार्त कर्मोंका सम्यक् प्रकारसे आचरण करे । ऐसा ही श्रीभगवान्‌ने भी कहा है—'जो आरुरुक्षु मुनि है, उसके लिये तो कर्म ही साधन कहा जाता है ।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति । 'संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः' इति । तस्य लक्षणमुक्तम्—'यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते । सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥' इति ।

'हे महाबाहो ! अयुक्तचित्त पुरुषके लिये संन्यासनिष्ठाका प्राप्त होना कठिन है' इत्यादि । उस संन्यासका लक्षण इस प्रकार कहा जाता है—'जिस समय योगी इन्द्रियोंके विषयोंमें और कर्मोंमें आसक्त नहीं होता तथा सम्पूर्ण संकल्पोंको त्याग देता है, उस समय वह योगारूढ़ कहा जाता है ।'

यस्तु पुनरेवं यज्ञदानादिना विशुद्धसत्त्व इहामुत्रफलभोगविरागो योगारूढो भवति तस्य शम एव कारणं न कर्म इति । तथा चोक्तम्—'योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते' इति । यस्माद्योगारूढस्य शम एव कारणं न कर्म, तस्माच्छमदमादिसाधनसम्पन्नः श्रवणादिसमन्वितः 'योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः । निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥'

किंतु इस प्रकार जो पुरुष यज्ञ-दानादिके द्वारा शुद्धचित्त हो ऐहिक और आमुष्मिक फलभोगसे विरक्त होकर योगारूढ़ हो जाता है, उसके लिये शम ही साधन है, कर्म नहीं; जैसा कि कहा है—'योगारूढ़ होनेपर उसके लिये शम ही साधन कहा जाता है ।' [इस प्रकार] क्योंकि योगारूढ़के लिये शम ही कारण है, कर्म नहीं; अतः शम-दमादि साधनोंसे सम्पन्न एवं श्रवणादियुक्त 'योगीको अपने चित्त और शरीरका संयम कर तथा सब प्रकारके परिग्रहसे रहित हो निरन्तर एकान्तमें रहते हुए तृष्णाशून्य होकर अपने आत्माको स्वरूपमें स्थित करना चाहिये ।'

कथं तर्हि योगानुष्ठानं कार्यम् ?

शङ्का—तो फिर योगानुष्ठान किस प्रकार किया जाय?

शृणु—समे देशे शर्करावह्निवालुकाशब्दजलाशयादिवर्जिते मनोऽनुकूले शुचौ नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरं स्थिरमासनं प्रतिष्ठाप्य तत्रोपविश्यासनं स्वस्तिकादि बद्ध्वा समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं विश्वादीन् विश्वतैजसप्राज्ञान् जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिक्रमेण कार्यकारणविनिर्मुक्ते पूर्णात्मनि उपसंहृत्य पूर्णात्मना स्थित्वा ध्यायेत्पुरिशयं देवं पूर्णानन्दं निरञ्जनम् अपूर्वानपरं ब्रह्म नेतिनेत्यादिलक्षणम् अशनायाद्यसंस्पृष्टमनुदितानस्तमितज्ञानात्मनावस्थितं परं परमात्मानमोमिति । तथा चोक्तं ब्रह्मविद्भिः—

समाधान—सुनो, जो कंकड़, अग्नि, बालू, शब्द और जलाशय आदिसे रहित हो, मनके अनुकूल हो एवं पवित्र हो ऐसी समान भूमिमें, जो न बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा—ऐसा उत्तरोत्तर कुशा, मृगचर्म और वस्त्रका स्थिर आसन बिछाकर उसपर बैठकर अथवा स्वस्तिक या पद्मासन लगाकर शरीर, सिर और ग्रीवाको समान रखते हुए, विश्वादि—विश्व, तैजस और प्राज्ञ—को जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिके क्रमसे कार्यकारणशून्य पूर्ण परमात्मामें लीनकर, पूर्णरूपसे स्थित हो, हृदयदेशमें स्थित पूर्णानन्दस्वरूप, निर्मल, आदि-अन्तरहित, नेति-नेति इत्यादि क्रमसे लक्षित होनेवाले क्षुधादि विकारोंसे असंस्पृष्ट तथा कभी उदित और अस्त न होनेवाले ज्ञानस्वरूपसे स्थित परब्रह्म परमात्माका 'ओम्' इस प्रकार ध्यान करे । ऐसा ब्रह्मवेत्ताओंने कहा है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विविक्तदेशमाश्रित्य ब्राह्मणः शुद्धचेतसा।
भावयेत्पूर्णमाकाशं हृद्याकाशाश्रयं विभुम् ॥
तथा चोक्तं ब्रह्माण्डपुराणे कावषेयगीतासु—
तस्माद्विमोक्षाय कुरु प्रयत्नं
दुःखाद्विमुक्तो भवितासि येन।
ॐ ब्रह्म शून्यं परमं प्रधान
मानन्दमात्रं प्रणवं जुषस्व ॥इति॥

है कि 'ब्राह्मणको चाहिये कि एकान्त देशमें रहकर शुद्धचित्तसे अपने हृदयाकाशमें स्थित व्यापक पूर्णाकाशका चिन्तन करे।' तथा ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गत कावषेयगीतामें भी कहा है—'अतः तू मोक्षके लिये प्रयत्न कर, जिससे कि तू दुःखसे मुक्त हो जायगा। ॐ, जो शून्यस्वरूप, सर्वोत्कृष्ट, प्रधान और आनन्दमात्र ब्रह्म है, उस प्रणवका तू सेवन कर।'

एवं युञ्जन् सदाऽऽत्मानं परमात्मत्वेन यदा साक्षाद्विजानाति तदा निरस्ताज्ञानतत्कार्यो वीतशोकः कृतकृत्यो भवति। तथा च बृहदारण्यके—'आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः। किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनु संज्वरेत् ॥ इति। तथा च ईशावास्ये—'यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥' इति। तथा च कठवल्लीषु—

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं
मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥

इस प्रकार योगाभ्यास करते हुए जब वह अपने सत्स्वरूप आत्माको साक्षात् परमात्मभावसे जानता है, तब वह अज्ञान और उसके कार्यसे रहित होकर निःशोक और कृतकृत्य हो जाता है। ऐसा ही बृहदारण्यकमें कहा है—'यदि पुरुष अपने-आपको यह जान ले कि मैं यह [ब्रह्म] ही हूँ तो वह क्या इच्छा करके अथवा किस कामनासे अपनेको अनुतप्त करेगा?' तथा ईशावास्यमें कहा है—'जिस स्थितिमें ज्ञानीके लिये सम्पूर्ण भूत आत्मा ही हो जाते हैं, उस अवस्थामें एकत्वका अनुभव करनेवाले उस पुरुषके लिये क्या मोह और क्या शोक रह सकता है?' इसी तरह कठवल्लियोंमें भी कहा है—'अत्यन्त कठिनतासे दिखायी देनेवाले, गूढ़स्थानमें अनुप्रविष्ट, बुद्धिरूप गुहामें स्थित, गहन स्थानमें रहनेवाले उस पुरातन देवको अध्यात्मयोगकी प्राप्तिद्वारा जानकर बुद्धिमान् पुरुष हर्ष-शोकको त्याग देता है,' 'उसका साक्षात्कार करके पुरुष मृत्युके मुखसे छूट जाता है', 'ब्रह्मानन्दको जाननेवाला पुरुष किसीसे भय नहीं मानता', 'उस परावर (कार्य-कारणरूप) परमात्माका साक्षात्कार हो जानेपर इसके हृदयकी चिज्जडग्रन्थि टूट जाती है, सारे संदेह निवृत्त हो जाते हैं और समस्त कर्म क्षीण हो जाते हैं' इत्यादि।

'निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते,' 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन' इति। 'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥'

तथा चाह भगवान्—
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।
इति। तथा च कावषेयगीतासु—
आत्मज्ञः शोकसंतीर्णो न बिभेति कुतश्चन।
मृत्योः सकाशान्मरणादथवान्यकृताद्भयात् ॥

तथा श्रीभगवान् भी कहते हैं—'यह आत्मतत्त्व अव्यक्त, अचिन्तनीय और अविकारी कहा जाता है। अतः इसे ऐसा जानकर तुझे शोक नहीं करना चाहिये। हे भारत! इस आत्मतत्त्वको जानकर बुद्धिमान् पुरुष कृतकृत्य हो जाता है।' कावषेयगीतामें भी कहा है—'आत्मज्ञ और शोकसे पार हुआ पुरुष मृत्युकी संनिधि, मरण अथवा किसी अन्य निमित्तसे होनेवाले भय आदि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न जायते न म्रियते न वध्यो न च घातकः ।
न बद्धो बद्धकारी वा न मुक्तो न च मोक्षदः ॥
पुरुषः परमात्मायं यत्ततोऽन्यदसच्च तत् ।
अज्ञानपाशे निर्भिन्ने च्छिन्ने महति संशये ॥
शुभाशुभे च संकीर्णे दग्धे बीजे च जन्मनाम् ।
प्रयाति परमानन्दं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ इति ।

किसी भी कारणसे नहीं डरता; क्योंकि वह आत्मा न तो उत्पन्न होता है न मरता है, न मारा जानेवाला है न मारनेवाला है, न बद्ध है न बाँधनेवाला है और न मुक्त या मुक्ति देनेवाला ही है । यह पुरुष ही परमात्मा है । जो कुछ उससे भिन्न है, वह असत् है । अज्ञान-रूप बन्धनके टूट जानेपर, महान् संशयके निवृत्त हो जानेपर, शुभाशुभ कर्मोंका संकोच हो जानेपर तथा जन्म-मरणके बीजका दाह हो जानेपर पुरुष भगवान्‌के उस परमानन्दमय परमपदको प्राप्त हो जाता है ।' तथा

तथा चाह भगवान् मनुः—

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।
तद्ध्यग्रं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥
एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा ॥ इति ॥

भगवान् मनुने भी कहा है—'इन सबमें आत्मज्ञान ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है, वही समस्त विद्याओंमें श्रेष्ठ है; क्योंकि उससे अमरत्वकी प्राप्ति होती है । यही विशेषतः ब्राह्मणके लिये जन्मकी सफलता है । इसे पाकर ही द्विज कृतकृत्य होता है, किसी अन्य प्रकार नहीं ।'

यस्मात्तद्विज्ञानादेव परमपुरुषार्थप्राप्तिः, तस्मात्तमेव परमानन्दात्मानम् आत्मत्वेन जानीयादयमहमस्मीति न किंचिदन्यच्चिन्तयेत् । तथा च श्रुतिः—'तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः । नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत् ॥' इति । 'तमेवैकं जानथात्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ', 'एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किंचित्' इति । तथा च भगवान् वासुदेवः—

संकल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥
शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपिचिन्तयेत् ॥
इति ॥ एवं प्रसंगात्सर्वशास्त्रार्थः संक्षेपतो दर्शितः ॥

क्योंकि उसके ज्ञानसे ही परम पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है, अतः उस परमानन्दस्वरूप परमात्माको ही 'वह मैं हूँ' इस प्रकार आत्मस्वरूपसे जानना चाहिये; अन्य किसीका भी चिन्तन न करना चाहिये । जैसा कि श्रुति भी कहती है—'बुद्धिमान् ब्रह्मज्ञ पुरुषको उस परमात्माका ही ज्ञान प्राप्तकर उसीमें बुद्धिको स्थिर करना चाहिये । बहुत-से शास्त्रोंका अध्ययन न करे; क्योंकि वह (बहुशास्त्राध्ययन) तो वाणीको कष्ट देना ही है ।' 'एक उस आत्माको ही न जानो, और बातें छोड़ दो' तथा 'अपने आत्मामें स्थित यही सर्वदा ज्ञातव्य है, उससे भिन्न और कुछ भी जाननेयोग्य नहीं है ।' ऐसा ही भगवान् वसुदेवनन्दन भी कहते हैं—'संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली समस्त कामनाओंको सर्वथा त्यागकर तथा मनसे ही समस्त इन्द्रियोंको सब ओरसे रोककर धैर्यपूर्वक स्थिर की हुई बुद्धिके द्वारा मनको धीरे-धीरे शान्त करे तथा उसे आत्मामें स्थिर करके फिर कुछ भी चिन्तन न करे ।' इस प्रकार प्रसंगवश सभी शास्त्रोंका विषय संक्षेपसे दिखला दिया गया है ।

अथेदानीं प्रकृतमनुसरामः—यस्मात्प्रमाद एव सर्वानर्थबीजं तस्मात् प्रमादमेवाहं मृत्युं ब्रवीमि । न

अब हम प्रसङ्गका अनुसरण करते हैं । क्योंकि प्रमाद ही समस्त अनर्थोंका मूल है, इसलिये मैं तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यमम्। यमं तु पुनरेके विषयविषान्धा अविद्याधिरूढाः स्वात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं पश्यन्तो मृत्युमतो मयोक्तान्मृत्योः प्रमादादन्यं मृत्व्वन्तरं वैवस्वतमाहुः, आत्मावासम् आत्मनि बुद्धौ वसतीत्यात्मावासस्तम्। तथा चाह मनुः—

यमो वैवस्वतो राजा यस्तवैष हृदि स्थितः।
तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून् गमः॥

अमृतम् अमरणधर्माणं ब्रह्मचर्यं ब्रह्मणि स्वात्मभूते रममाणं ब्रह्मनिष्ठमित्यर्थः। श्रूयते कठवल्लीषु—'कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति' इति। किं च पितृलोके राज्यमनुशास्तीति देवः। कथमनुशास्ति? शिवः सुखप्रदः शिवानां पुण्यकर्मणाम्, अशिवोऽसुखप्रदोऽशिवानां पापकर्मणाम्॥ ६॥

प्रमादको ही मृत्यु बतलाता हूँ, यमको नहीं; किंतु कुछ दूसरे लोग, जो विषयरूप विषसे अन्धे, अविद्याग्रस्त और अपनेसे भिन्न कोई दूसरा मृत्यु देखनेवाले हैं, वे मेरे बतलाये हुए प्रमादसंज्ञक मृत्युसे भिन्न यमको अर्थात् विवस्वान्के पुत्र यमराजको ही मृत्यु बतलाते हैं; किंतु यह यम तो आत्मावास है। जो आत्मा अर्थात् बुद्धिमें रहता है, उसे 'आत्मावास' कहते हैं। जैसा कि भगवान् मनु कहते हैं—'यम सूर्यवंशी राजा है, जो कि तेरे हृदयमें स्थित है। यदि उससे तेरा कोई विरोध नहीं है तो तू भले ही मत गङ्गाको जा और मत कुरुक्षेत्रको।' तथा यह अमृत—अमरणधर्मा और 'ब्रह्मचर्य'—अपने आत्मभूत ब्रह्ममें रमण करनेवाला अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ है। जैसा कि कठोपनिषद्में सुना जाता है—'उस हर्षयुक्त और हर्षरहित देवको मेरे सिवा और कौन जान सकता है?' तथा वह देव पितृलोकमें राज्य-शासन करता है। किस प्रकार शासन करता है?—शिव अर्थात् पुण्यकर्माओंके लिये शिव—सुखप्रद होकर तथा अशिव—पापकर्माओंके लिये अशिव—दुःखप्रद होकर॥ ६॥

कामादिके द्वारा प्रमादका बन्धहेतुत्व

एवं तावत् 'प्रमादं वै मृत्युम्' इति मृत्युरूपं निर्धारितम्। इदानीं तस्यैव कार्यात्मनावस्थानं दर्शयति—

इस प्रकार यहाँतक तो 'प्रमाद ही मृत्यु है' ऐसा कहकर मृत्युका स्वरूप निश्चय किया गया। अब यहाँसे उसीकी कार्यरूपसे स्थिति दिखलाते हैं—

आस्यादेष निःसरते नराणां क्रोधः प्रमादो मोहरूपश्च मृत्युः।
अहंगतेनैव चरन् विमार्गान्न चात्मनो योगमुपैति किंचित्॥ ७॥

यह मृत्यु मनुष्योंके आस्य (अहंकार या काम) से उत्पन्न होता है तथा क्रोध, प्रमाद एवं मोहरूप हो जाता है। अतः यह जीव अहंकारस्थित अज्ञानके अधीन होकर विपरीत मार्गोंसे चलते रहनेके कारण परमात्माका कुछ भी योग प्राप्त नहीं कर पाता॥ ७॥

यः प्रमादाख्योऽज्ञानमृत्युः स प्रथममास्यात्मना परिणमते। आस्योऽभिमानात्मकोऽहंकारः। तथा

जो प्रमादसंज्ञक अज्ञानरूप मृत्यु है, वह पहले आस्यरूपमें परिणत होता है। 'आस्य' अभिमानात्मक अहंकारका नाम है। ऐसा ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चोक्तम्—
सर्वार्थक्षेपसंयोगादसुधातुसमन्वयात् ।
आस्य इत्युच्यते घोरो ह्यहंकारो गुणो महान् ॥

कहा भी है—'सब प्रकारके पदार्थोंका क्षय करनेके कारण तथा 'असु' धातुसे युक्त होनेके कारण 'आस्य' इस शब्दसे अत्यन्त घोर अहंकाररूप गुण कहा जाता है।'

एवमहंकारात्मना स्थित्वा ततोऽहंकारान्निःसरते. निर्गच्छति कामात्मना । ततः कामः स्वविषये प्रवर्तमानः प्रतिहतः क्रोधः प्रमादो मोहरूपश्च भवति । ततोऽहंगतेनाहंरूपमापन्नेनाहंकाराद्यात्मना स्थितेनाज्ञानेन तदात्मभावमापन्नः, 'ब्राह्मणोऽहं क्षत्रियोऽहं वैश्योऽहं शूद्रोऽहं स्थूलोऽहं कृशोऽहममुष्य पुत्रोऽस्य नप्ता' इत्येवमात्मको रागद्वेषादिसमन्वितश्चरन् विमार्गान् श्रौतस्मार्तविपरीतान् मार्गान् न चात्मनः परमात्मनो योगं समाधिलक्षणमुपैति किंचिदपि ।

इस प्रकार अहंकाररूपसे स्थित होकर फिर यह अहंकारसे कामरूपमें प्रकट होता है । तत्पश्चात् अपने विषयमें प्रवृत्त हुआ काम बाधा पड़नेपर क्रोध, प्रमाद एवं मोहरूप हो जाता है । फिर अहंगत अहंरूपको प्राप्त हुए अर्थात् अहंकारादिरूपसे स्थित हुए अज्ञानके वशीभूत हो अर्थात् तद्रूपताको प्राप्त हो 'मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं वैश्य हूँ, मैं शूद्र हूँ, मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ, इसका पुत्र हूँ, इसका नाती हूँ' इस प्रकार राग-द्वेषादिसे युक्त होकर विमार्गोंमें अर्थात् श्रुति-स्मृतिप्रतिपादित मार्गोंसे भिन्न मार्गोंमें चलता हुआ यह जीव आत्मा यानी परमात्माके समाधिरूप योगको तनिक भी प्राप्त नहीं करता ।

अथवाविद्याकामकर्माणि संसारस्य प्रयोजकभूतानि । पूर्वत्र 'मोहो मृत्युः सम्मतः' इत्यनेनाग्रहणान्यथाग्रहणात्मिका अविद्या दर्शिता । उत्तरत्र 'कर्मोदये' इति कर्म वक्ष्यति ।

अथवा, (यों समझो कि) अविद्या, कामना और कर्म— ये संसारके प्रयोजक हैं । पहले 'मोहो मृत्युः सम्मतो यः कवीनाम्' (१ । ४) इत्यादि वाक्यद्वारा अग्रहण और अन्यथाग्रहणरूपा अविद्याका वर्णन किया गया है। आगे 'कर्मोदये कर्मफलानुरागाः' (१ । ९) इत्यादि वाक्यसे कर्मका वर्णन किया जायगा ।

अथेदानीं कामोऽभिधीयते—अस्यन्ते क्षिप्यन्ते अनेन संसारे प्राणिन इत्यास्यः कामः । अथवा—आस्यवदास्यं सर्वजग्धृत्वात् । तथा चोक्तं भगवता—'काम एष क्रोध एषः' इति । एष मृत्युरास्यात्मना स्थित्वा ततः क्रोधात्मना विपरिणमते । उक्तं च—'कामात्क्रोधोऽभिजायते' इति । ततोऽहंगतेनाहंकारापन्नेनाज्ञानेनाहंकार ममकार फलकारूढेन चिदाभासेन चरन् विमार्गान् न चात्मनो योगमुपैति किंचित् ॥ ७ ॥

अब यहाँ कामका वर्णन किया जाता है । इस (काम) के द्वारा प्राणी संसारमें डाले जाते हैं, इसलिये काम 'आस्य' है । अथवा भक्षण करनेवाला होनेसे यह आस्य (मुख) के समान आस्य है; जैसा कि श्रीभगवान्ने कहा है—'यही (महान् भक्षणशील और अत्यन्त पापी) काम और यही क्रोध है' इत्यादि । यह मृत्यु पहले आस्य—कामरूपसे स्थित होकर फिर क्रोधरूपमें परिणत हो जाता है । कहा भी है—'कामसे क्रोध उत्पन्न होता है' इत्यादि । फिर अहंगत—अहंकाररूपको प्राप्त हुए अज्ञानके द्वारा अर्थात् अहंकार और ममतारूप दर्पणपर प्रतिफलित हुए चिदाभासरूपसे विपरीत मार्गोंमें चलता हुआ यह जीव आत्माका कुछ भी योग प्राप्त नहीं करता ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किंच—

तथा—

ते मोहितास्तद्वशे वर्त्तमाना इतः प्रेतास्तत्र पुनः पतन्ति।
ततस्तं देवा अनु परिप्लवन्ते अतो मृत्युं मरणादभ्युपैति ॥ ८ ॥

वे, जो उस अहंकारके वशीभूत हैं, मोहग्रस्त रहते हैं और इस लोकसे (मरकर) जानेपर पुनः इसीमें गिरते हैं। इसके पश्चात् उस जीवको इन्द्रियगण भटकाते रहते हैं, इसलिये वह पुनः मृत्युसे मृत्युको ही प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

तेऽहंकारादिरूपेण स्थितेनाज्ञानेन मोहिताः—देहाद्यात्मभावमापादिताः, तद्वशेऽहंकाराद्यात्मना परिणतप्रमादाख्यमृत्युवशे वर्त्तमाना इतोऽस्मात्प्रेता धूमादिमार्गेण गत्वा तत्र परलोके यावत्सम्पातमुषित्वा पुनराकाशवायुवृष्टिसस्यान्नशुक्रशोणितादिक्रमेण देहग्रहणाय पतन्ति निपतन्ति। श्रूयते च—'तस्मिन् यावत् सम्पातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते'।

अहंकारादिरूपसे स्थित हुए उस अज्ञानके द्वारा मोहित—देहादिमें आत्मभावको प्राप्त कराये हुए तथा उसके अधीन अर्थात् अहंकारादिरूपमें परिणत उस प्रमादसंज्ञक मृत्युके अधीन हुए वे लोग यहाँ—इस लोकसे (मरकर) जानेपर धूमादि मार्गसे जाकर पतन होनेपर्यन्त परलोकमें रहकर आकाश, वायु, वृष्टि, सस्य, अन्न एवं शुक्र-शोणितादि क्रमसे पुनः देह ग्रहण करनेके लिये (इसी लोकमें) गिरते हैं। (इस विषयमें) ऐसी श्रुति भी है—'उस (परलोक) में पतनकाल उपस्थित होनेतक रहकर वे पुनः इसी मार्गमें लौट आते हैं।'

ततोऽनन्तरं पुनर्देहग्रहणावस्थायां तं देवा इन्द्रियाण्यनुसृत्य कर्माणि परिसमन्तात्प्लवन्ते समन्ततः परिवर्तन्त इत्यर्थः। अतोऽस्मात्कारणादिन्द्रियगुणानुसरणान्मृत्युं मरणं याति। ततो मरणाज्जन्माभ्युपैति ततो मृत्युम्। एवं जन्ममरणप्रबन्धारूढो न कदाचिन्मुच्यत इत्यर्थः। आत्माज्ञाननिमित्तत्वात्संसारस्य यावत्परमात्मानमात्मत्वेन साक्षान्न जानाति तावदयं तापत्रयाभिभूतो मकरादिभिरिव रागद्वेषादिभिरितस्ततः समाकृष्यमाणो मोमुह्यमानः संसरन्नवतिष्ठत इत्यर्थः ॥८॥

फिर इसके पश्चात् देहधारणकी अवस्थामें उसके कर्मोंका अनुसरण करते हुए उसे देव—इन्द्रियगण परिप्लवित करते हैं—परि—सब ओर 'प्लवन्ते' परिवर्तित करते (भटकाते) हैं। अतः इस कारणसे अर्थात् इन्द्रियोंके गुणोंका अनुसरण करनेसे वह मरणको प्राप्त होता है और उस मृत्युसे जन्मान्तरको तथा उससे पुनः मृत्युको प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार जन्म-मरणकी परम्परामें पड़ा हुआ यह जीव कभी मुक्त नहीं होता। अर्थात् जबतक यह परमात्माको साक्षात् अपने आत्मस्वरूपसे नहीं जानता, तबतक यह तापत्रयसे दबा रहकर मकरादिके समान रागादि दोषोंसे इधर-उधर खींचा जाता हुआ मोहग्रस्त हो जन्म-मरणरूप संसारमें पड़ा रहता है; क्योंकि संसारका कारण आत्माका अज्ञान ही है ॥ ८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवं तावदविद्याकामयोर्बन्धहेतुत्वमभिहितम् ।

अथेदानीं कर्मणां बन्धहेतुत्वमाह—

इस प्रकार यहाँतक अविद्या और कामकी बन्ध-हेतुताका प्रतिपादन किया गया । अब यहाँसे कर्मोंकी बन्धहेतुताका वर्णन किया जाता है—

कर्मोदये कर्मफलानुरागास्तत्रानुयान्ति न तरन्ति मृत्युम् ।
सदर्थयोगानवगमात्समन्तात् प्रवर्तते भोगयोगेन देही ॥ ९ ॥

कर्मानुष्ठान करनेपर कर्मफलमें आसक्त हुए जीव उस (कर्मविपाक) का ही अनुसरण करते हैं । वे मृत्युको पार नहीं कर पाते । देहधारी जीव सद्वस्तुके योगका ज्ञान न होनेसे ही भोगवश सब ओर भटकता रहता है ॥ ९ ॥

अमृत्युः कर्मणा केचिदिति कर्मणामृतत्वं भवतीति यन्मतान्तरमुपन्यस्तं तन्निराकरोति—न केवलं कर्मणा अमृतत्वं भवति, अपितु कर्मोदये कर्मणामुत्पत्तौ कर्मफलानुरागाः सन्तस्तत्र तस्मिन् कर्मफलेऽनुयान्ति । यस्मात्तत्रैवानुयान्ति, अतो न तरन्ति मृत्युं पुनः पुनर्जन्ममरणात्मके संसारे परिवर्त्तन्त इत्यर्थः ।

'अमृत्युः कर्मणा केचित्' इस श्लोकद्वारा जो 'कर्मसे अमृतत्व होता है' ऐसे एक मतान्तरका उल्लेख किया है, उसका अब निराकरण करते हैं—कर्मसे अमृतत्व नहीं होता, केवल इतना ही नहीं, बल्कि कर्मोदय अर्थात् कर्मोंकी उत्पत्ति होनेपर जीव कर्मफलके अनुरागी होकर उस कर्मफलका ही अनुसरण करते हैं। क्योंकि वे कर्मफलका ही अनुसरण करते हैं, इसलिये मृत्युको पार नहीं कर पाते, अर्थात् बारंबार जन्म-मरण-रूप संसारमें ही भटकते रहते हैं ।

कस्मात्पुनः कर्मोदये कर्मफलानुरागास्तत्रैव परिवर्त्तन्ते ? सदर्थयोगानवगमात् । सदर्थेन योगः सदर्थयोगः परमात्मना योगस्तस्य सदर्थयोगस्य एकत्वस्यानवगमात् स्वात्मनश्चिदानन्दाद्वितीयब्रह्मभावानवगमादित्यर्थः । समन्तात्समन्ततः प्रवर्तते भोगयोगेन विषयरसबुद्ध्या देही । यथा ह्यन्धो निम्नोन्नतकण्टकस्थलादिषु परिभ्रमति, एवमसावपि विवेकहीनः सर्वत्र विषयसुखाकाङ्क्षया परिभ्रमति ॥ ९ ॥

किंतु कर्मकी उत्पत्ति होनेपर वे कर्मफलके अनुरागी होकर उसीमें क्यों भटकने लगते हैं ? (इसपर कहते हैं—) सदर्थयोगका ज्ञान न होनेसे । सद्वस्तुके साथ जो योग है, उसे सदर्थयोग अर्थात् परमात्माके साथ योग कहते हैं, उस सदर्थयोग अर्थात् (सद्वस्तुके साथ) एकत्वका ज्ञान न होनेसे यानी अपने आत्माके चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मस्वरूपत्वका ज्ञान न होनेसे देही (जीव) भोगवश विषयरसबुद्धिके कारण सब ओर भटकता रहता है । जिस प्रकार अन्धा आदमी नीचे, ऊँचे और कण्टकाकीर्ण स्थानोंमें घूमता रहता है, उसी प्रकार यह भी विवेकहीन होकर विषयसुखकी इच्छासे सर्वत्र भटकता रहता है ॥ ९ ॥

किंच—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा—

तद्वै महामोहनमिन्द्रियाणां मिथ्यार्थयोगेऽस्य गतिर्हि नित्या।
मिथ्यार्थयोगाभिहतान्तरात्मा स्मरन्नुपास्ते विषयान् समन्तात् ॥ १० ॥

यह (भोग-प्रवृत्ति) ही इन्द्रियोंका महामोह है; क्योंकि मिथ्या पदार्थोंके प्रति इस जीवकी निश्चित प्रवृत्ति है, अतः यह उन मिथ्या पदार्थोंके संयोगसे अपने स्वरूप (स्वाभाविक ब्रह्मभाव) से भ्रष्ट होकर विषयोंका स्मरण करते हुए सब प्रकार उन्हींका सेवन करता है ॥ १० ॥

यद्रागाभिभूतस्य इन्द्रियाणां विषयेषु प्रवर्त्तनं तन्महामोहनम् । एतदुक्तं भवति—यस्य विषयेषु अवास्तवबुद्धिस्तस्येन्द्रियाणि विषयेषु न प्रवर्तन्ते । तस्य विषयेषु प्रवृत्त्यभावात् प्रत्यगात्मन्येव प्रवृत्तिः, ततश्च मोहनिवृत्तिः । यस्य विषयेषु वास्तवबुद्धिस्तस्येन्द्रियाणां पराग्भूतेषु विषयेषु प्रवृत्तत्वान्न स इमं सदद्वितीयं प्रत्यग्भूतं परमात्मानमात्मत्वेन साक्षाज्जानाति । तथा चोक्तम्—'स्त्रीपिण्डसम्पर्ककलुषितचेतसो विषयविषान्धा ब्रह्म न जानन्ति' इति ।

रागाभिभूत जीवका जो इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्त होना है, वही महामोह है । इस विषयमें ऐसा कहा जाता है कि जिसकी विषयोंमें अवास्तव बुद्धि होती है, उसकी इन्द्रियाँ विषयोंमें प्रवृत्त नहीं होतीं तथा विषयोंमें प्रवृत्ति न होनेके कारण उसकी प्रत्यगात्माके प्रति ही प्रवृत्ति होती है और उससे उसके मोहकी निवृत्ति हो जाती है; किंतु जिसकी विषयोंमें वास्तव बुद्धि होती है, वह इन्द्रियोंके बाह्य विषयोंमें प्रवृत्त रहनेके कारण इस सत्स्वरूप अद्वितीय एवं प्रत्यग्भूत परमात्माको साक्षात् आत्मस्वरूपसे नहीं जानता । जैसा कहा है—'जिनका चित्त स्त्रीशरीरके संसर्गसे कलुषित हो गया है, वे विषयरूप विषसे अन्धे हुए जीव ब्रह्मको नहीं जानते ।'

ततश्च महामोहेन पुनः पुनर्विषयेषु प्रवृत्तिः । तथा चाह भगवान् मनुः—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥इति॥

इसीसे महामोहके कारण उनकी पुनः-पुनः विषयोंमें प्रवृत्ति होती है । ऐसा ही भगवान् मनु भी कहते हैं—'विषयोंकी इच्छा कभी उनके सेवनसे शान्त नहीं होती, बल्कि हविसे अग्निके समान उनसे तो वह और भी बढ़ जाती है ।'

ततश्च मिथ्यार्थैरविद्याकल्पितैः शब्दादिविषयैर्योगो भवति । तस्मिन् मिथ्यार्थयोगेऽस्य देहिनो गतिः संसारगतिर्नित्या नियता । प्रसिद्धं ह्येतत्—स्वात्मभूतं परमात्मानमनवगम्य विषयेषु प्रवर्तमानाः पराभूतास्तिर्यगादियोनिं प्राप्नुवन्तीति । तथा च बह्वृचब्राह्मणोपनिषदि—'या वै ता इमाः प्रजास्तिस्रोऽत्यायमायंस्तानीमानि वयांसि वङ्गावगधाश्चेरपादाः' इति । वक्ष्यति च—'कामानुसारी पुरुषः कामाननु विनश्यति' इति ।

उसके पश्चात् मिथ्या पदार्थोंसे अर्थात् अविद्याद्वारा कल्पना किये हुए शब्दादि विषयोंसे सम्बन्ध होता है । उस मिथ्या वस्तुओंके संयोगके होनेपर इस देहीकी संसारमें प्रवृत्ति होनी निश्चित है । यह तो प्रसिद्ध ही है कि जीव अपने आत्मभूत परमात्माको न जानकर विषयोंमें प्रवृत्त होते हुए बहिर्मुख होकर तिर्यगादि योनिको प्राप्त होते हैं । ऐसा ही ऋग्वेदीय ब्राह्मणोपनिषद्में भी कहा है—'जिन इन तीन प्रसिद्ध प्रजाओंने धर्मका उल्लङ्घन किया था, वे ये पक्षी, वङ्ग (वनके वृक्ष), वगध (ओषधियाँ) और इरपद (सर्पादि) हैं ।' तथा आगे भी कहेंगे कि 'कामका अनुसरण करनेवाला पुरुष कामनाओंके पीछे ही नष्ट हो जाता है ।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कस्मात्पुनर्मिथ्यार्थयुक्तस्य गतिर्हि नित्येति ? तत्राह—मिथ्यार्थयोगाभिहतान्तरात्मा । मिथ्याभूतविषयसंयोगेनाभिहतान्तरात्मा यस्य सः अभिहतस्वाभाविकब्रह्मभावः स्मरन् शब्दादिविषयान् तानेवोपास्ते न परमात्मानं समन्तात् समन्ततः॥१०॥

तो फिर ऐसा क्यों कहा कि मिथ्या वस्तुओंके प्रति इसकी प्रवृत्ति स्वाभाविकी है ? इसपर कहते हैं कि मिथ्या विषयोंके संयोगसे अभिहतान्तरात्मा अर्थात् मिथ्या विषयोंका संयोग होनेसे जिसके अन्तरात्माका अभिघात हो गया है ऐसा स्वाभाविक ब्रह्मभावसे भ्रष्ट हुआ पुरुष स्त्री आदि विषयोंका स्मरण करता हुआ सब ओरसे उन्हींका सेवन करता है, परमात्माकी उपासना नहीं करता ॥ १० ॥

ततः किमिति चेत्तत्र यद्भवति तच्छृणु—

यदि कहो कि इससे क्या होता है तो ऐसी अवस्थामें जो होता है, वह सुनो—

अभिध्या वै प्रथमं हन्ति चैनं कामक्रोधौ गृह्य चैनं च पश्चात् ।
एतान् बालान् मृत्यवे प्रापयन्ति धीरास्तु धैर्येण तरन्ति मृत्युम् ॥ ११॥

पहले तो इसे विषय-चिन्ता भ्रष्ट करती है, फिर काम और क्रोध इसे पकड़कर नष्ट कर देते हैं। ये सब मूर्ख जीवोंको मृत्युको प्राप्त करा देते हैं, किंतु बुद्धिमान् पुरुष तो धैर्यपूर्वक मृत्युको पार कर जाते हैं ॥११॥

अभिध्या विषयध्यानं प्रथमं हन्ति विनाशयति स्वरूपात्प्रच्युतं करोति, ततो विषयध्यानाभिहतमेनं विषयसंनिधौ शीघ्रं प्रतिगृह्य कामश्च हन्ति । ततः कामाभिहतमेनं प्रतिगृह्य क्रोधश्च हन्ति ।

पहले तो इसे अभिध्या—विषयचिन्ता नष्ट करती अर्थात् स्वरूपसे च्युत कर देती है । फिर विषय-चिन्ताद्वारा नष्ट हुए इस जीवको शीघ्र ही विषयकी संनिधिमें पकड़कर काम नष्ट करता है और तत्पश्चात् कामद्वारा अभिहत हुए इसे क्रोध नष्ट कर देता है ।

तदेतेऽभिध्यादय एतानभिध्याकामक्रोधवशंगतान् बालानविवेकिनो मूढान् मृत्यवे प्रापयन्ति क्षिपन्ति । श्रूयते च कठवल्लीषु—

पराचः कामाननुयन्ति बाला-
स्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा
ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ इति ।

वे ये अभिध्या आदि अभिध्या, काम और क्रोधके वशीभूत हुए इन बाल—विवेकहीन अर्थात् मूढ पुरुषोंको मृत्युको प्राप्त करा देते हैं; यानी उन्हें मृत्युके पंजेमें डाल देते हैं । कठवल्लियोंमें सुना भी जाता है—'मूढ पुरुष बाह्य भोगोंका ही अनुसरण करते हैं, अतः वे मृत्युके विस्तृत पाशमें पड़ते हैं; किंतु जो बुद्धिमान् हैं, वे अमृतत्वको ध्रुव (निश्चल) जानकर इन नाशवान् पदार्थोंमेंसे किसीकी इच्छा नहीं करते ।'

धीरास्तु पुनर्धैर्येण विषयान् जित्वा परमात्मानमात्मत्वेनावगम्य तरन्ति मृत्युम् । श्रूयते च—'निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते' इति ॥ ११ ॥

किंतु बुद्धिमान् पुरुष तो धैर्यपूर्वक समस्त विषयोंको जीतकर परमात्माको अपने आत्मस्वरूपसे जानकर मृत्युके पार हो जाते हैं । जैसी कि 'उसे जानकर पुरुष मृत्युके मुखसे छूट जाता है' यह श्रुति भी है ॥११॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विवेकी मृत्युकी मृत्यु है

कथं पुनर्धीरास्तु धैर्येण विषयान् जित्वा मृत्युं तरन्तीत्यत आह—

बुद्धिमान्लोग धैर्यपूर्वक विषयोंको जीतकर किस प्रकार मृत्युके पार हो जाते हैं? सो बतलाते हैं—

योऽभिध्यायन्नुत्पतिष्णून्निहन्यादनाचारेणाप्रतिबुध्यमानः ।
स वै मृत्युं मृत्युरिवात्ति भूत्वा ह्येवं विद्वान् योऽभिहन्तीह कामान् ॥ १२ ॥

जो पुरुष क्षणभङ्गुर विषयोंको तुच्छ समझकर त्याग देता है और निरादरपूर्वक उन्हें फिर स्मरण नहीं करता एवं जो ऐसा समझकर विषयोंकी कामनाको भी नष्ट कर देता है, वह निश्चय ही [मृत्युका मृत्युरूप होकर] मृत्युके समान ही मृत्युको भक्षण कर जाता है ॥ १२ ॥

योऽभिध्यायन्, अनित्याशुचिदुःखानुविद्धतया उत्पतिष्णून् उत्पत्योत्पत्य पतन्तीत्युत्पतिष्णवो विषयास्तान्निहन्यात् परित्यजेत् । अनाचारेण अनादरेण अमेध्यदर्शन इव अप्रतिबुध्यमानः पुनः पुनरचिन्तयन् स वै पुरुषो मृत्योरेव मृत्युर्भूत्वा मृत्युरिवात्ति मृत्युम् । उक्तं च—'विषयप्रतिसंहारं यः करोति विवेकतः । मृत्योर्मृत्युरिति ख्यातः स विद्वानात्मवित्कविः' इति ॥ १२ ॥

जो उत्पतिष्णु—जो उत्पन्न हो-होकर नष्ट होनेवाले हैं, उन विषयोंको 'अभिध्यायन्'—अनित्य, अपवित्र और दुःखमिश्रित समझकर त्याग देता है और अपवित्र वस्तुको देखनेके समान अनाचार—अनादर अर्थात् उदासीनतापूर्वक उन्हें फिर चिन्तन नहीं करता, वह पुरुष निश्चय ही मृत्युका भी मृत्यु होकर मृत्युके समान ही मृत्युको खा जाता है; जैसा कि कहा भी है—'जो विवेक-द्वारा विषयोंका नाश कर देता है, वह विद्वान् आत्मवेत्ता क्रान्तदर्शी पुरुष मृत्युका भी मृत्यु कहा गया है' ॥ १२ ॥

एवमनित्यादिरूपेण विद्वान् सन् अनादरादिना अभिहन्ति कामान् । यः पुनरनादरादिना नाभिहन्ति स किं करोतीत्याह—

इस प्रकार अनित्यादिरूपसे चिन्तन करता हुआ विद्वान् अनादरादिपूर्वक विषयोंको त्याग देता है; किंतु जो अनादरादिपूर्वक उनका त्याग नहीं करता, वह क्या करता है? सो बतलाया जाता है—

कामानुसारी पुरुषः कामाननु विनश्यति ।
कामान् व्युदस्य धुनुते यत्किंचित्पुरुषो रजः ॥ १३ ॥

कामनाओंका अनुसरण करनेवाला पुरुष कामनाओंके साथ ही नष्ट हो जाता है । कामनाओंका त्याग करके पुरुष जो कुछ भी पाप-पुण्यादिरूप कर्म हैं, उनको ध्वंस कर देता है ॥ १३ ॥

यस्तु पुनर्विषयाभिध्यानेन कामानुसारी भवति स कामाननु विनश्यति कामविषये नष्टे कामाननु कामैः सह विनश्यति । अनित्याः कामगुणाः

जो पुरुष विषयोंका चिन्तन करता हुआ कामनाओं-का अनुसरण करनेवाला होता है, वह कामनाओंके साथ ही नष्ट हो जाता है अर्थात् इच्छित विषयका नाश होने-पर उसके साथ ही वह भी नष्ट हो जाता है । कामनाके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिक्षणं विनाशान्विताः, तद्वत्कामी विशीर्णो भवति।

यस्तु पुनर्विषयदोषदर्शनेन कामान् परित्यजति स कामान् व्युदस्य परित्यज्य विवेकबुद्ध्या धुनुते ध्वंसयति यत्किंचिदिह जन्मनि जन्मान्तरे च उपार्जितं रजः पुण्यपापादिलक्षणं कर्म ॥ १३ ॥

विषयभूत पदार्थ अनित्य हैं और प्रतिक्षण विनाशयुक्त हैं। उन्हींके समान कामना करनेवाला पुरुष भी नष्ट हो जाता है।

किंतु जो पुरुष विषयोंमें दोषदृष्टि करके कामनाओंका त्याग कर देता है, वह उनका त्याग करके इस जन्म और जन्मान्तरमें जो कुछ रजस् अर्थात् पुण्य-पापरूप कर्म संचित किया होता है, उस सबको विवेकवती बुद्धिके द्वारा ध्वंस कर देता है ॥ १३ ॥

देहासक्ति पतनका हेतु है

कथं पुनरस्य देहस्य काम्यमानस्य हेयत्वमित्याशङ्क्याह—

तो फिर कामनाके विषयभूत इस देहका हेयत्व किस प्रकार है ? ऐसी आशङ्का करके कहते हैं—

देहोऽप्रकाशो भूतानां नरकोऽयं प्रदृश्यते ।
गृध्यन्त एव धावन्ति गच्छन्तः श्वभ्रमुन्मुखाः ॥ १४ ॥

यह जो जीवोंका देह दिखायी देता है, वह अन्धकाररूप और नरकमय है। जो लोग इसकी लालसा करते हुए इसकी ओर दौड़ते हैं, वे गढ़ेकी ओर जानेवाले [अन्धे] पुरुषोंके समान विवेकहीन होनेके कारण [नरकादिमें] गिरते हैं ॥ १४ ॥

योऽयं भूतानां देहो दृश्यते सोऽप्रकाशः—तमोऽचिद्घनः केवलं नरकः श्लेष्मासृक्पूयकृमिविण्मूत्रपूर्णत्वात्। तथा चाह भगवान् मनुः—

अस्थिस्थूणं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपगम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत्॥इति॥

एवमत्यन्तबीभत्सितं स्त्र्यादिदेहं कमनीयबुद्ध्या गृध्यन्तोऽभिकाङ्क्षन्त एव धावन्ति अनु धावन्ति। गच्छन्तः श्वभ्रमुन्मुखाः, यथा अन्धाः कूपादिकं विवेक्तुमशक्ताः कूपादिमुन्मुखाः पतन्ति, एवं

यह जो प्राणियोंका शरीर देखा जाता है, वह कफ, रक्त, पीब, कृमि, विष्ठा और मूत्रसे पूर्ण होनेके कारण अप्रकाश—तमोमय यानी जडरूप और केवल नरक ही है। यही भगवान् मनुने भी कहा है—'जिसमें अस्थिरूप कड़ियाँ और स्नायुरूप बन्धन हैं, जो मांस और रक्तसे लिथड़ा हुआ, चर्मसे लिपटा हुआ, दुर्गन्धयुक्त एवं मल-मूत्रसे भरा हुआ है तथा जो जरा और शोकसे व्याप्त, रोगोंका घर, दुःखपूर्ण, मलिन और अनित्य है; ऐसे इस भूतावास (प्रेतादिके अथवा पञ्चभूतोंके आश्रयभूत शरीर) को त्याग दे।'

इस प्रकार अत्यन्त घृणित होनेपर भी लोग स्त्री आदिके शरीरको रमणीयबुद्धिसे चाहते हुए ही उसकी ओर दौड़ते हैं; किंतु 'गच्छन्तः श्वभ्रमुन्मुखाः'—जिस प्रकार अन्धेलोग कुएँ आदिका निश्चय करनेमें समर्थ न होनेके कारण उनकी ओर जाते हुए उनमें गिर जाते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्त्याद्यभिकाङ्क्षन्तो विषयविषान्धा उन्मुखाः पतन्ति नरकेष्वित्यर्थः ॥ १४ ॥

हैं, उसी प्रकार स्त्री आदिकी इच्छा करनेवाले विषयरूप विषसे अन्धे हुए लोग उन (नरकरूप शरीरों) की ओर जाते हुए नरकोंमें गिरते हैं—ऐसा इसका तात्पर्य है ॥ १४ ॥

विषयी जीवोंके जीवनकी व्यर्थता

य एवं गृध्यन्त एव धावन्ति तेषां देहो निरर्थक इत्याह—

अवः यह बतलाते हैं कि जो इस प्रकार कामना करते हुए विषयोंकी ओर दौड़ते हैं, उनका शरीर व्यर्थ ही है—

अमन्यमानः क्षत्रिय कंचिदन्यं नाधीयते तार्ण इवास्य व्याघ्रः ।
क्रोधाल्लोभान्मोहभयान्तरात्मा स वै मृत्युस्त्वच्छरीरे य एषः ॥१५॥

हे क्षत्रिय ! जो पुरुष इन विषयोंसे भिन्न किसी नहीं करता, उसका शरीर तृणके व्याघ्रके समान [निरर्थक] एवं भयपूर्ण अन्तरात्मा है, वही क्रोध और लोभके कारण

ईश्वरादिको न मानकर तत्सम्बन्धी शास्त्रोंका भी अध्ययन है । [ऐसी अवस्थामें तो] तेरे शरीरमें जो यह मोह तेरी मृत्यु है ॥ १५ ॥

यः स्त्र्यादिकमभिकाङ्क्षन्ननुधावति स विषयविषान्धस्तद्व्यतिरिक्तं स्वात्मभूतं परमात्मानममन्यमानोऽप्रतिबुध्यमानो नाधीयते तद्विषयमध्यात्मशास्त्रं नाधिगच्छति । तस्यास्य विषयविषान्धस्य षडङ्गवेदविदुषोऽपि देहस्तृणनिर्मितव्याघ्र इव निरर्थको भवति । तथा चाह भगवान् वसिष्ठः—

चतुर्वेदोऽपि यो विप्रः सूक्ष्मं ब्रह्म न विन्दति ।
वेदभारभराक्रान्तः स वै ब्राह्मणगर्दभः ॥इति॥

जो स्त्री आदिकी लालसासे उनकी ओर दौड़ता है, वह विषयरूप विषसे अन्धा हुआ पुरुष उससे भिन्न अपने अन्तरात्मभूत परमात्माको न माननेके कारण अध्ययन यानी तद्विषयक अध्यात्मशास्त्रका आलोचन भी नहीं करता । छहों अङ्गोंके सहित समस्त वेदोंको जाननेवाले भी उस विषयरूप विषसे अन्धे हुए पुरुषका देह तृणनिर्मित व्याघ्रके समान व्यर्थ ही है । ऐसा ही भगवान् वसिष्ठजीने भी कहा है—'जो ब्राह्मण चारों वेदोंका ज्ञाता होनेपर भी सूक्ष्म परब्रह्मका अनुभव नहीं करता, वह वेदरूप भारसे दबा हुआ ब्राह्मणरूप गधा ही है ।'

न केवलं देहो निरर्थकः—य एवंभूतः स एव तस्य मृत्युरित्याह—क्रोधाल्लोभान्मोहभयान्तरात्मा इति । क्रोधलोभाभ्यां हेतुभ्यां मोहभयसमन्वितोऽन्तरात्मा त्वच्छरीरे य एष तवात्मा दृश्यते स एव तव मृत्युः । यः पुनरजितेन्द्रियः क्रोधलोभादिसमन्वितो विषयेषु प्रवर्तते स एव

उसका केवल देह ही निरर्थक नहीं है; बल्कि जो ऐसा है उसका तो वह स्वयं ही मृत्यु है, सो 'क्रोधाल्लोभान्मोहभयान्तरात्मा' इन पदोंसे बतलाते हैं । तेरे शरीरमें जो यह मोह और भयसे युक्त अन्तरात्मा दिखायी देता है, क्रोध और लोभरूप हेतुओंके कारण वही तेरी मृत्यु है । जो पुरुष अजितेन्द्रिय होता है और क्रोध एवं लोभादिसे युक्त होकर विषयोंमें प्रवृत्त होता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्य मृत्युः, विनाशहेतुत्वात् । उक्तं च—'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः' इति ॥ १५ ॥

है, अपने विनाशका हेतु होनेके कारण वही उसकी मृत्यु है । ऐसा ही कहा भी है—'आत्मा ही अपना बन्धु है और आत्मा ही अपना शत्रु है' ॥ १५ ॥

मृत्युनाशका उपाय

तर्हि केनोपायेन मृत्योर्विनाश इत्याह—

तो फिर (इस) मृत्युका नाश किस प्रकार हो सकता है, सो बतलाते हैं—

एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा ज्ञानेन तिष्ठन्न बिभेति मृत्योः ।
विनश्यते विषये तस्य मृत्युर्मृत्योर्यथा विषयं प्राप्य मर्त्यः ॥१६॥

इस प्रकार मृत्युको [क्रोधादिरूपसे] उत्पन्न होनेवाली जानकर पुरुष ज्ञानस्वरूपसे स्थित होकर मृत्युसे भय नहीं मानता; क्योंकि [परमात्माका] साक्षात्कार कर लेनेपर उस ज्ञानीकी मृत्यु उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जैसे मृत्युके अधिकारमें आकर मनुष्य मर जाता है ॥ १६ ॥

एवं क्रोधादिरूपेण जायमानं प्रमादाख्यं मृत्युं जननमरणादिसर्वानर्थबीजं विदित्वा क्रोधादीन् भूतदाहीयान् दोषान् परित्यज्याक्रोधादीन् सम्पाद्य ज्ञानेन चित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मना तिष्ठन्न बिभेति मृत्योः । तथा च श्रुतिः—'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन' इति ।

इस प्रकार क्रोधादिरूपसे उत्पन्न होनेवाली प्रमादसंज्ञक मृत्युको जन्म-मरणादि सम्पूर्ण अनर्थोंका बीज जानकर जीवोंको जलानेवाले क्रोधादि दोषोंको त्यागकर तथा अक्रोधादिका सम्पादन कर ज्ञान अर्थात् सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मभावसे स्थित हुआ पुरुष फिर मृत्युसे नहीं डरता । ऐसी ही श्रुति भी है—'ब्रह्मानन्दको जाननेवाला पुरुष किसीसे भी भय नहीं मानता ।'

कस्मात्पुनर्ज्ञानेन तिष्ठन्न बिभेति मृत्योरित्याह—विनश्यते । तस्य ज्ञानिनो विषये गोचरे परमात्मनि साक्षात्क्रियमाणे प्रमादाख्योऽज्ञानमृत्युः । यथा मृत्योर्विषयं संसारमागतो मृत्युनाभिभूतो नष्टो भवति मर्त्यः, एवमात्मवेदिनो विषयमागतोऽज्ञानमृत्युर्नष्टो भवति । उक्तं च ज्ञानमहोदधौ—'ज्ञानसंस्थानसद्भावो ज्ञानाग्निर्ज्ञानवज्रभृत् । मृत्युं हन्तीति विख्यातः स वीरो वीतमत्सरः' इति ॥१६॥

किंतु ज्ञानस्वरूपसे स्थित रहनेपर पुरुष मृत्युसे क्यों नहीं डरता, सो बतलाते हैं—विषय—गोचर अर्थात् परमात्माका साक्षात्कार कर लेनेपर उस ज्ञानीकी प्रमादसंज्ञक अज्ञानरूप मृत्यु नष्ट हो जाती है । जिस प्रकार मृत्युके विषयभूत संसारको प्राप्त हुआ मरणधर्मा जीव मृत्युसे अभिभूत होकर मर जाता है, उसी प्रकार आत्मज्ञानीके सामने आयी हुई अज्ञानरूप मृत्यु भी नष्ट हो जाती है । जैसा कि ज्ञानमहोदधिमें भी कहा है—'ज्ञानरूप अधिष्ठानमें रहनेवाले, ज्ञानाग्निस्वरूप तथा ज्ञानरूप वज्र धारण करनेवाले जिस पुरुषके विषयमें 'इसने मृत्युको मार दिया है' ऐसा प्रसिद्ध हो, वही मत्सरशून्य वीर है' ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानीके कर्मत्यागमें धृतराष्ट्रकी शङ्का

एवं तावत् 'कर्मोदये' इत्यादिना कर्मणां बन्धहेतुत्वमुक्त्वा 'ज्ञानेन तिष्ठन्न बिभेति मृत्योः' इति ज्ञानस्यैव मोक्षसाधनत्वमभिहितम् । तत्र चोदयति धृतराष्ट्रः—

इस प्रकार यहाँतक 'कर्मोदये कर्मफलानुरागाः' इत्यादि श्लोकसे कर्मोंकी बन्धहेतुताका प्रतिपादन करके 'ज्ञानेन तिष्ठन्न बिभेति मृत्योः' इस वाक्यसे ज्ञानको ही मोक्षका साधन बतलाया गया । अब इसमें राजा धृतराष्ट्र शङ्का करते हैं—

धृतराष्ट्र उवाच—

यानेवाहुरिज्यया साधुलोकान् द्विजातीनां पुण्यतमान् सनातनान् ।
तेषां परार्थं कथयन्तीह वेदा एतद्विद्वान्नैति कथं नु कर्म ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—श्रुतिने यज्ञके द्वारा द्विजोंको जिन पुण्यतम एवं नित्य लोकोंकी प्राप्ति बतलायी है, वेद उन्हींको परमपुरुषार्थ बतलाते हैं । ऐसा जानकर भी ब्रह्मवेत्ता कर्मानुष्ठान क्यों नहीं करता ? ॥ १७ ॥

ननु कथं कर्मणां बन्धहेतुत्वम् ? यावता यानेवाहुरिज्यया ज्योतिष्टोमादिना साधुलोकान् साधुभिर्धार्मिकैरारूढान् पुण्यतमान् पवित्रान् सनातनान् नित्यान् । तेषां ब्रह्मलोकपर्यन्तानां परार्थं परमपुरुषार्थत्वं कथयन्ति इह अस्मिन् संसारमण्डले वेदाः । एतद् लोकानां परमपुरुषार्थत्वं विद्वान् कथं नु साधनं कर्म नैति न गच्छति नानुतिष्ठतीत्यर्थः । अथवा, एतद् ब्रह्मलोकपर्यन्तानां लोकानां साधनभूतं कर्म विद्वान् ब्रह्मवित् कथं नैति नानुतिष्ठतीति ॥ १७ ॥

कर्मोंकी बन्धहेतुता कैसे मानी जाती है ? क्योंकि श्रुतिने ज्योतिष्टोमादि यज्ञोंके द्वारा जिन पुण्यतम—पवित्र एवं सनातन साधु लोकोंकी—साधु अर्थात् धार्मिक पुरुषों-द्वारा प्राप्त किये गये लोकोंकी—बात कही है, उन ब्रह्मलोकपर्यन्त लोकोंका ही वेद यहाँ—इस संसारमण्डलमें परार्थ—परमपुरुषार्थत्व बतलाते हैं । यह इन लोकोंका परमपुरुषार्थत्व जानकर भी पुरुष उनकी प्राप्तिके साधनभूत कर्मोंका अनुष्ठान क्यों नहीं करता ? अथवा [यों समझो कि] विद्वान्—ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मलोकपर्यन्त समस्त लोकोंकी प्राप्तिके साधनभूत इस कर्मके प्रति क्यों नहीं जाता [अर्थात् वह कर्मकी उपेक्षा क्यों करता है ?] ॥ १७ ॥

श्रीसनत्सुजातजीका उत्तर—ज्ञानीको कर्मानुष्ठानकी अपेक्षा नहीं

एवं पृष्टः प्राह भगवान् सनत्सुजातः— | इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् सनत्सुजातने कहा—

सनत्सुजात उवाच—

एवं ह्यविद्वानुपयाति तत्र तथार्थजातं च वदन्ति वेदाः ।
स नेह आयाति परं परात्मा प्रयाति मार्गेण निहन्त्यमार्गान् ॥ १८ ॥

श्रीसनत्सुजातजी बोले—इस प्रकार तो अज्ञानी ही उन (कर्मों) के प्रति जाते हैं और उन्हींके लिये वेदोंने अनेकों प्रयोजन बतलाये हैं; किंतु वह (ब्रह्मवेत्ता) इनमें प्रवृत्त नहीं होता । वह तो परमात्मस्वरूप हुआ परमात्माको ही प्राप्त होता है तथा अपने [ज्ञान-] मार्गके द्वारा [कर्म-उपासनादि] अमार्गोंका बाध कर देता है ॥ १८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्यम्, एवमेव ब्रह्मलोकादिसाध्यं सुखं परमार्थं मन्यमानो विषयविषान्धो ह्यविद्वानुपयाति तत्र तस्मिन् ब्रह्मलोकादिसाधनभूते कर्मणि न विद्वान्, अविद्यादिदोषदर्शनात्। तथा च बृहदारण्यके—'अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्त्यविद्वांसोऽबुधा जनाः' इति॥

तथार्थजातं च प्रयोजनजातं च तस्यैवाविदुषो वदन्ति वेदाः। यस्मादविदुष एव वदन्ति न विदुषः, तस्मान्नेह स विद्वान् ब्रह्मलोकाद्यनित्यसुखे तत्साधने वा कर्मणि आयाति प्रवर्तते। किं तर्हि कुरुते? तत्राह—परमात्मानमात्मत्वेनावगम्य परात्मा सन् ब्रह्मैव सन् परं प्रयाति। मार्गेण निहन्ति अमार्गान् संसारहेतुभूतानात्मनो विरुद्धमार्गान् धर्माधर्मोपासनारूपान्।

अथवा, 'एवं हि विद्वानुपयाति तत्र' इति पाठे सगुणब्रह्मविद्वान् तत्र ब्रह्मलोकादावुपासनाफलमुपयाति प्राप्नोति। तथार्थजातं च अस्य वदन्ति वेदाः। कीदृशं वदन्ति? स विद्वान् इह अस्मिन् लोके कर्मीव नायाति न जायते, किंतु मार्गेण ब्रह्मोपासनया अमार्गान् विरुद्धमार्गान् निहन्ति। एवं तत्र गत्वा संसारहेतून् अमार्गान् निहत्य परात्मा ब्रह्मात्मा सन् कालेन परं ब्रह्म प्रयातीत्यर्थः॥ १८॥

ठीक है, इस प्रकार ब्रह्मलोकादिसे प्राप्त होनेवाले [भोगों] को सुख माननेवाला विषयरूप विषसे अन्धा अज्ञानी पुरुष ही वहाँ—ब्रह्मलोकादिके साधनभूत उस कर्मके प्रति जाता है, विद्वान् नहीं जाता; क्योंकि वह उसमें अविद्यादि दोष देखता है; जैसा कि बृहदारण्यकोपनिषद्में कहा है—'वे घोर अन्धकारसे व्याप्त आनन्दशून्य लोक हैं, अविद्वान् और बोधहीन पुरुष मरनेके पश्चात् उन्हींमें जाते हैं।'

तथा उस अविद्वान्के ही लिये वेद अर्थजात यानी प्रयोजनोंका निरूपण करते हैं। क्योंकि वे अविद्वान्के लिये ही उनका वर्णन करते हैं, विद्वान्के लिये नहीं; इसलिये वह विद्वान् इस ब्रह्मलोकादि अनित्य सुख अथवा उसके साधन कर्ममें नहीं आता अर्थात् कर्ममें प्रवृत्त नहीं होता। तो फिर क्या करता है? सो बतलाते हैं—वह परमात्माको आत्मस्वरूपसे जानकर परात्मा यानी ब्रह्मरूपसे स्थित हुआ ही परमात्माको प्राप्त हो जाता है। तथा मार्गके द्वारा अमार्गों—आत्माके लिये संसारकी प्राप्तिके हेतुभूत धर्माधर्म एवं उपासनारूप विरुद्ध मार्गोंका बाध कर देता है।

अथवा यदि ऐसा पाठ माना जाय—एवं हि विद्वानुपयाति तत्र' तो [इस प्रकार अर्थ होगा—] सगुण ब्रह्मकी उपासना करनेवाला पुरुष वहाँ ब्रह्मलोकादिमें अपनी उपासनाका फल प्राप्त करता है। तथा उसके लिये वेद अर्थजातका वर्णन करते हैं। किस प्रकारके अर्थजातका वर्णन करते हैं?—वह इस लोकमें नहीं आता अर्थात् कर्मी पुरुषके समान वह विद्वान् इस लोकमें जन्म नहीं लेता, बल्कि ब्रह्मकी उपासनाके द्वारा वह अमार्ग यानी विरुद्ध मार्गोंको नष्ट कर देता है। इस प्रकार वहाँ जाकर वह संसारप्राप्तिके हेतुभूत अमार्गोंको नष्टकर परमात्मस्वरूपसे स्थित हुआ कालान्तरमें परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है—ऐसा इसका तात्पर्य है॥ १८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ईश्वरके जगद्रचनामें प्रवृत्त होनेका प्रयोजन

एवं तावत्प्रमादाख्यस्याज्ञानस्य मृत्युत्वम्-प्रमादस्य स्वरूपावस्थानलक्षणस्यामृतत्वम् 'प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि' इत्यादिना दर्शयित्वा 'आत्मादेष निःसरते नाराणाम्' इत्यादिना 'स वै मृत्युस्त्वच्छरीरे य एषः' इत्यन्तेन तस्यैव कार्यात्मना परिणतस्य सर्वानर्थहेतुत्वं प्रदर्शयित्वा, कथमस्य मृत्योर्विनाशः ? इत्याशङ्क्य 'एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा ज्ञानेन तिष्ठन्न बिभेति मृत्योः' इत्यात्मज्ञानेन मृत्युविनाशं दर्शयित्वा 'यानेवाहुरिज्यया' इत्यादिना ब्रह्मलोकादेः पुरुषार्थत्वमाशङ्क्य 'एवं ह्यविद्वान्' इत्यादिना तेषामविद्यावद्विषयत्वेनापुरुषार्थत्व-मुक्त्वा, 'परं परात्मा प्रयाति मार्गेण' इति ज्ञानमार्गेण मोक्ष उपदिष्टः । तत्र 'परं परात्मा प्रयाति' इति जीवपरयोरेकत्वमुक्तम् । तदसहमानश्चोदयति धृतराष्ट्रः—

इस प्रकार 'प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि' इत्यादि वाक्यसे प्रमादसंज्ञक अज्ञानका मृत्युत्व और स्वरूपावस्थिति-रूप अप्रमादका अमृतत्व दिखलाकर 'आत्मादेष निःसरते' इत्यादि वाक्यसे लेकर 'स वै मृत्युस्त्वच्छरीरे य एषः' इस वाक्यतक कार्यरूपमें परिणत हुए उस मृत्युको ही समस्त अनर्थोंका हेतु बता फिर ऐसी आशङ्का करके कि उस मृत्युका विनाश किस प्रकार हो सकता है 'एवं मृत्युं जायमानं विदित्वा ज्ञानेन तिष्ठन्न बिभेति मृत्योः' इस वाक्यद्वारा आत्मज्ञानसे मृत्युका नाश दिखाते हुए फिर 'यानेवाहुरिज्यया' इत्यादिसे ब्रह्मलोकादिके परम-पुरुषार्थत्वकी आशङ्का कर 'एवं ह्यविद्वान्' इत्यादि वचन-से अज्ञानी-विषयक होनेसे उनका अपुरुषार्थत्व बतलाकर 'परं परात्मा प्रयाति मार्गेण' इस वाक्यसे ज्ञानमार्गद्वारा मोक्षका उपदेश किया गया । वहाँ 'परं परात्मा प्रयाति' ऐसा कहकर जीव और परमात्माका एकत्व कहा गया है । उसे सहन न कर सकनेके कारण राजा धृतराष्ट्र शङ्का करते हैं—

धृतराष्ट्र उवाच—

कोऽसौ नियुङ्क्ते तमजं पुराणं स चेदिदं सर्वमनुक्रमेण ।
किं वास्य कार्यमथवासुखं च तन्मे विद्वन् ब्रूहि सर्वं यथावत् ॥१९॥

धृतराष्ट्रने कहा—यदि क्रमशः वह परमात्मा ही यह सब हो गया है तो उस अजन्मा पुराणपुरुषको नियुक्त कौन करता है ? तथा [ऐसा करनेमें] उसका प्रयोजन क्या है और [ऐसा न करके अपने निष्क्रिय-स्वरूपमें ही स्थित रहनेमें] उसे दुःख किस बातका है ? हे विद्वन् ! यह सब आप मुझे ठीक-ठीक बतला दीजिये ॥ १९ ॥

ननु यदि स एव सत्यादिलक्षणः परमात्मा क्रमेणाकाशादिधरित्र्यन्तं सृष्ट्वा तदनुप्रविश्यान्न-मयाद्यात्मना स्थितः संसरति चेत्, कोऽसौ तं सत्यादिलक्षणमजं पुराणं संसारे नियुङ्क्ते प्रेरयति । किमन्येन, स्वयमेवेति चेत्, किं वास्य नानायोनिषु प्रवर्तमानस्य कार्यं प्रयोजनम् ? अथवा नाना-योनिष्वप्रवर्तमानस्य तूष्णींभूतस्य स्वे महिम्नि

यदि आकाशसे लेकर पृथ्वीपर्यन्त क्रमशः सम्पूर्ण जगत्-की रचना कर वह सत्य-ज्ञानादिरूप परमात्मा ही उसमें अनुप्रविष्ट हो अन्नमयादि कोशके रूपमें स्थित हुआ जन्म-मरणरूप संसारको प्राप्त हो रहा है तो वह कौन है, जो इस सत्यादिरूप अजन्मा पुराणपुरुषको संसारमें नियुक्त—प्रेरित करता है ? क्या उसे कोई दूसरा प्रेरित करता है ? और यदि वह स्वयं ही इसमें प्रवृत्त होता है तो इन नाना योनियोंमें स्थित हुए उस परमात्माका प्रयोजन क्या है ? अथवा नाना योनियोंमें प्रवृत्त न होकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थितस्य संसाराननुप्रवेशेऽसुखम् अनर्थजातं वा किं भवति ? हे विद्वन् ! मे ब्रूहि सर्वं यथावत् । तथा च ब्रह्मविदामेकः पुण्डरीको भगवान् याज्ञवल्क्यस्तत एव सर्वस्य सृष्टिमुक्त्वा तस्यैव जीवात्मत्वमभ्युपगम्य—'यद्येवं स कथं ब्रह्मन् पापयोनिषु जायते । ईश्वरश्च कथं भावैरनिष्टैः सम्प्रयुज्यते' इति । 'कोऽसौ नियुङ्क्ते' इत्यनेन भगवतोक्तमेव ब्रह्मजीववादपक्षं वावदूकचोद्यं स्वयमेव स्पष्टमुक्तवान् ॥ १९ ॥

चुपचाप अपने स्वरूपमें स्थित रहकर संसारमें अनुप्रविष्ट न होनेपर उसे क्या दुःख—अनर्थ होता है ? हे विद्वन्! यह सब मुझे आप ठीक-ठीक बतला दीजिये । तथा ब्रह्मवेत्ताओंमें एक कमलस्वरूप भगवान् याज्ञवल्क्यने भी सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति उसीसे बतलाकर उसीका जीवभाव भी स्वीकार कर 'यदि ऐसा है तो हे ब्रह्मन् ! वह पापयोनियोंमें कैसे उत्पन्न होता है ? और समर्थ होकर भी अनिष्ट भावोंसे कैसे युक्त होता है ?' ऐसा कहते हुए, 'कोऽसौ नियुङ्क्ते' इस वाक्यद्वारा जो श्रीमान्के कहे हुए ब्रह्म-जीववादपक्षमें वादीकी शङ्का है, उसका स्पष्ट ही उल्लेख किया है ॥ १९ ॥

जीवसृष्टि अनादि और मायिक है

एवं पृष्टः प्राह भगवान्—

इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् सनत्सुजात बोले—

सनत्सुजात उवाच—

दोषो महानत्र विभेदयोगे ह्यनादियोगेन भवन्ति नित्याः ।
तथास्य नाधिक्यमपैति किंचिदनादियोगेन भवन्ति पुंसः ॥ २० ॥

श्रीसनत्सुजातने कहा—ब्रह्ममें नानात्वका सम्बन्ध स्वीकार करनेमें तो बड़ा भारी दोष है । अनादि मायाके योगसे ही अनेकों अनादि जीव होते हैं । इस प्रकार इस ब्रह्मकी महिमामें भी कोई त्रुटि नहीं आती; क्योंकि अनादि मायाके योगसे ही उस परम पुरुषसे इनकी अभिव्यक्ति होती है ॥ २० ॥

यद्येवं चोदयत एषोऽभिप्रायः—नियोज्यनियोक्तृत्वादिभेददर्शनादेकस्य कूटस्थस्य तदसम्भवाद्भेदेन भवितव्यमिति । तत्र यदि ब्रह्मण एव नानात्वमभ्युपगम्यते चेत्—तदा तस्मिन् भेदयोगे ब्रह्मणो नानात्वयोगे दोषो महान् । को दोषः ? अद्वैतिनो ह्यतथावादिनोऽवैदिका भवेयुः, वेदहृदयं परमार्थमद्वैतं च बाध्यं स्यात् । किं च नानारूपेण परिणतत्वादनित्यादिदोषोऽस्थूलादिवाक्यविरोधश्च प्रसज्येत ।

यदि इस प्रकार शङ्का करनेवालेका यह अभिप्राय है कि नियोज्य-नियोजकत्वादि भेद देखा जाता है और एक कूटस्थमें ऐसा होना सम्भव नहीं है, इसलिये उसमें भेद होना चाहिये तो यदि ब्रह्मका ही नानात्व माना जाय तब तो इस विभेदयोग यानी ब्रह्मके नानात्वयोगमें बड़ा भारी दोष है । वह दोष क्या है ? इससे अद्वैतसिद्धान्तवाले तो मिथ्यावादी और अवैदिक सिद्ध होंगे तथा वेदका रहस्यभूत परमार्थ अद्वैत बाधित हो जायगा । इसके सिवा अनेकरूपसे परिणत हुआ होनेके कारण ब्रह्ममें अनित्यत्वादि दोष आ जायँगे और 'ब्रह्म अस्थूल है' इत्यादि वाक्योंसे विरोध उपस्थित होगा ।

अथोच्यते नास्माभिर्ब्रह्मणो नानात्वमभ्युपगम्यते, अपि तु जीवपरयोर्भेदोऽभ्युपगम्यत इति ।

और यदि यह कहा जाय कि हम ब्रह्मका नानात्व स्वीकार नहीं करते, अपितु जीव और ब्रह्मका ही भेद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्रापि महान् दोषः, यतो विनाशं प्राप्नोति। श्रूयते च—'यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयं भवति', 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति', 'अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुः', 'अथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति', 'सर्वं तं पराद्याोऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद' इति।

अथवा, जीवपरयोर्भेदेऽभ्युपगम्यमाने 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'अयमात्मा ब्रह्म', 'यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म', 'य आत्मा सर्वान्तरः', 'एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः', 'अयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम्', 'इदं सर्वं यदयमात्मा,' 'एष त आत्मा सर्वान्तरः', 'त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते अहं वै त्वमसि', 'स वा एष महानज आत्माजरोऽमृतोऽभयो ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं वै ब्रह्मेति' इत्येवमादिश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणविरुद्धभाषितत्वादवैदिकत्वं नाम महान् दोषो भवति।

कथं तर्हि त्वत्पक्षे जीवेश्वरादिव्यवहारभेदः? कथं वा तेषां नित्यत्वमिति?

तत्राह—'अनादियोगेन भवन्ति नित्याः' इति। अनादिरविद्याख्या माया। तथा चोक्तं भगवता—'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि' इति। 'इयं हि साक्षाज्जगतो योनिरेका सर्वात्मिका सर्वनियामिका च। माहेश्वरी शक्तिरनादिसिद्धा व्योमाभिधाना दिवि राजतीव॥' इति च।

मानते हैं तो ऐसी अवस्थामें भी महान् दोष है, जिससे कि नाशकी प्राप्ति होती है। श्रुति भी कहती है—'जब कि यह (जीव) इस (ब्रह्म) में थोड़ा-सा भी भेद करता है, तब उसे भय प्राप्त होता है', 'जो इसमें नानावत् देखता है, वह मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है' और 'जो किसी अन्य देवताको, यह अन्य है और मैं अन्य हूँ—ऐसी बुद्धि रखकर उपासना करता है, वह नहीं जानता, जैसे कि पशु।' 'जो इससे भिन्न जानते हैं, वे अन्य स्वामीके अधीन होते हैं और क्षयशील लोकोंको प्राप्त होते हैं।' 'जो सबको आत्मासे भिन्न जानता है, उसका सब तिरस्कार कर देते हैं' इत्यादि।

तथा जीव और ब्रह्मका भेद माननेपर तो 'तू वह (ब्रह्म) है', 'मैं ब्रह्म हूँ', 'यह आत्मा ब्रह्म है', 'जो साक्षात् अपरोक्षरूपसे ब्रह्म है', 'जो सबका अन्तर्यामी आत्मा है', 'यह तेरा अन्तर्यामी अमृतस्वरूप आत्मा है', 'यह जो आत्मा है यही वह है, यह अमृत है, यह ब्रह्म है और यही सब कुछ है', 'यह जो आत्मा है, यही सब कुछ है', 'यह तेरा आत्मा सबसे अन्तरतम है', 'हे भगवन्! हे देव! तुम ही मैं हूँ और मैं ही तुम हो' तथा 'वह यह महान् अजन्मा आत्मा जराशून्य, अमर और अभय है; अभय ही ब्रह्म है, अभय ही ब्रह्म है' इत्यादि ऐसे ही श्रुति-स्मृति, इतिहास एवं पुराणवाक्योंके विरुद्ध कहे जानेके कारण इसमें अवैदिकत्वरूप महान् दोष आता है।

तो फिर तुम्हारे पक्षमें जीव-ईश्वर आदि व्यवहारका भेद किस प्रकार सिद्ध होगा? और किस प्रकार उनकी नित्यता सिद्ध होगी?

इसके उत्तरमें कहते हैं—'अनादिके योगसे ही अनादि होते हैं।' 'अनादि' अविद्यासंज्ञक मायाका नाम है; जैसा कि भगवान्ने भी कहा है—'प्रकृति और पुरुष—इन दोनोंको ही अनादि जानो।' तथा ऐसा भी वाक्य है—'यह आकाश नामवाली अनादिसिद्धा श्रीमहेश्वरकी शक्ति ही, जो कि मानो दिव्यलोकमें विराजमान है, इस जगत्की साक्षात् योनि है तथा यह एक होते हुए भी सर्वमयी और सबकी नियामिका है।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तद्योगेन अनादिमायायोगेन भवन्ति जीवादयो नित्याः, अद्वितीयस्यापि परमात्मनो मायया बहुरूपत्वमुपपद्यत एवेत्यर्थः । श्रूयते च एकस्यैव बहुरूपत्वम्— 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव', 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते', 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः', 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति', 'एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति', 'एको देवो बहुधा निविष्टः', 'एकः सन् बहुधा विचारः', 'त्वमेकोऽसि बहूननुप्रविष्टः', 'अजायमानो बहुधा विजायते' इति ।

उसके योगसे अर्थात् उस अनादि मायाके योगसे जीवादि भी नित्य हैं । तात्पर्य यह है कि अद्वितीय होनेपर भी मायावश परमात्माका अनेकरूप होना सम्भव है ही । 'वह रूप-रूपमें उनके अनुरूप हो गया है', 'मायासे इन्द्र अनेक रूपमें चेष्टा करता है', 'समस्त भूतोंमें एक ही देव छिपा हुआ है', 'एक होते हुए भी ब्राह्मण उसे अनेक प्रकारसे कहते हैं', 'एक होनेपर भी उसकी अनेक प्रकारसे कल्पना करते हैं', 'एक ही देवमें अनेक प्रकारका अभिनिवेश हो रहा है', 'एक होते हुए भी वह अनेक रूपसे चेष्टा करता है', 'तू एक ही बहुतोंमें अनुप्रविष्ट हो रहा है' तथा 'वह बिना उत्पन्न हुए ही अनेक रूपमें उत्पन्न होता है' इत्यादि मन्त्रोंसे भी एक ही आत्माका मायासे अनेक रूप होना सुना जाता है ।

तथा च मोक्षधर्मे—

एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ इति ।

ऐसा ही मोक्षधर्ममें भी कहा है—'प्राणी-प्राणीमें एक ही भूतात्मा स्थित है । जलमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमाके समान वही [बिम्बरूपसे] एक और [प्रतिबिम्बरूपसे] अनेक रूपोंमें दिखायी दे रहा है ।'

तथा च याज्ञवल्क्यः—

आकाशमेकं हि यथा घटादिषु पृथग् भवेत् ।
तथात्मैकोऽप्यनेकश्च जलाधारेष्विवांशुमान् ॥ इति ।

तथा याज्ञवल्क्यजी भी कहते हैं—'जिस प्रकार एक ही आकाश घटादिमें विभिन्न-सा हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा एक होनेपर भी जलके पात्रोंमें (प्रतिबिम्बित) सूर्यके समान अनेक प्रतीत हो रहा है ।'

तथा च कावषेयगीतासु—

एकश्च सूर्यो बहुधा जलाधारेषु दृश्यते ।
आभाति परमात्मापि सर्वोपाधिषु संस्थितः ॥
ब्रह्म सर्वशरीरेषु बाह्ये चाभ्यन्तरे स्थितम् ।
आकाशमिव कुम्भेषु बुद्धिगम्यो न चान्यथा ॥ इति ।

तथा कावषेयगीतामें कहा है—'सूर्य एक ही है, किंतु वह जलके पात्रोंमें अनेकवत् देखा जाता है । उसी प्रकार सम्पूर्ण उपाधियोंमें स्थित परमात्मा भी (अनेकवत्) प्रतीत होता है । ब्रह्म सम्पूर्ण शरीरोंके भीतर और बाहर भी स्थित है; किंतु वह घटोंमें स्थित आकाशके समान ही बुद्धिका विषय होता है, और किसी प्रकार नहीं ।'

तथा चाह परमेश्वरः—

नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः ।
एकः सन् भिद्यते शक्त्या मायया सर्वभावतः ॥ इति ।

इसी तरह भगवान् परमेश्वरने भी कहा है—'आत्मा नित्य, सर्वगत, कूटस्थ और सब प्रकारके दोषोंसे रहित है । वह एक होनेपर भी मायावश अपने सम्पूर्ण भावोंकी दृष्टिसे शक्तिमें विभिन्न है ।'

यस्मादेकस्यैव मायया बहुरूपत्वं तस्मात्स एव कारणात्मा परमेश्वरः कार्यात्मानं जीवात्मानं नियुङ्क्ते कृतप्रयत्नापेक्षः सन् मायया, न परमार्थतः

क्योंकि एक ही ब्रह्मकी मायावश अनेकरूपता सिद्ध होती है, इसलिये वह कारणस्वरूप परमेश्वर ही कार्यात्मा जीवको, उसके किये हुए प्रयत्नकी अपेक्षा रखकर, मायासे प्रेरित करता है । वह परमार्थतः न तो स्वयं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संसरति संसारयति वा। तथा चोक्तं कावषेयगीतासु—

न जायते न म्रियते न वध्यो न च घातकः।
न बद्धो बन्धकारी वा न मुक्तो न च मोक्षदः॥
पुरुषः परमात्मा तु यत्ततोऽन्यदसच्च तत्। इति।

तथा चाह भगवान् परमेश्वरः—

'अहं प्रशास्ता सर्वस्य मायातीतस्वभावतः।'
'न चाप्ययं संसरति न च संसारयेत्प्रभुः॥'इति।

किं च, मायानिमित्ते भेदेऽभ्युपगम्यमानेऽस्य परमात्मनः कार्यकारणात्मना अवस्थितस्यापि आधिक्यं स्वरूपाधिक्यं नापैति किंचित् किंचिदपि, मायात्मकत्वात्संसारस्य पूर्ववत् कूटस्थ एव भवतीत्यर्थः। यस्मादेवं तस्मादनादियोगेनानाद्यविद्यायोगेन भवन्ति पुंसः पुमांसो जीवा बहवो भवन्ति।

अथवा, पुंसः पुरुषस्य पूर्णस्य परमात्मनो या माया अनादिसिद्धा तद्योगेन बहवो भवन्ति। तथा चैतत् सर्वमनुगीतासु स्पष्टमाह भगवान्—

अज्ञानगुणरूपेण तत्त्वरूपेण च स्थितम्।
ममत्वे यदि संसारो नोच्छिद्येत कथंचन॥
अविद्याशक्तिसम्पन्नः सर्वयोनिषु वर्तते।
तत्त्याज्यं सर्वविदुषां मोहनं सर्वदेहिनाम्॥
तन्नाशेन महानात्मा राजते नात्र संशयः।
अहंकारस्य विजये ह्यात्मा सिद्धो भविष्यति॥
सिद्धे चात्मनि निर्दुःखी पूर्णबोधो भविष्यति।
पूर्णबोधं परानन्दमनन्तं लोकभावनम्॥
भजत्यव्यभिचारेण परमात्मानमच्युतम्।
तद्भक्तस्तत्प्रसादेन ज्ञानानलसमन्वितः॥

जन्म-मरणको प्राप्त होता है और न किसी दूसरेको ही जन्म-मरणकी प्राप्ति कराता है। ऐसा ही कावषेयगीतामें भी कहा है—'परम पुरुष परमात्मा तो न जन्म लेता है न मरता है, न मारा जाता है न मारनेवाला है, न बद्ध है न बाँधनेवाला है, न मुक्त है और न मुक्त करनेवाला है तथा जो कुछ उससे भिन्न है, वह असत् है।' तथा भगवान् परमेश्वर कहते हैं—'मैं सबका शासक ही स्वभावतः मायातीत हूँ' और [यह भी कहा है कि] 'यह मायातीत प्रभु न तो स्वयं संसारको प्राप्त होता है और न किसी अन्यको प्राप्त कराता है।'

तथा इस प्रकार मायाजनित भेद स्वीकार करनेपर तो कार्य-कारण-भावसे स्थित रहनेपर भी इस परमात्माका आधिक्य अर्थात् स्वरूपगत महत्त्व तनिक भी न्यून नहीं होता। तात्पर्य यह है कि संसार मायामय होनेके कारण यह पूर्ववत् कूटस्थ ही रहता है। क्योंकि ऐसा है, इसलिये अनादियोगसे अर्थात् अनादि अविद्याके योगसे पुरुष यानी जीव अनेक हो गये हैं।

अथवा, 'पुंसः'—पूर्ण पुरुष यानी परमात्माकी जो अनादिसिद्धा माया है, उसके द्वारा अनेक [जीव] हो जाते हैं। इसी तरह भगवान्‌ने यही सब स्पष्टतया अनुगीतामें कहा है—'ममताके रहते हुए तो यह संसार चाहे अज्ञानके गुणरूपसे हो अथवा तत्त्वरूपसे, किसी भी प्रकार निवृत्त नहीं हो सकता। जीव अविद्या-शक्तिसे समन्वित होकर ही सम्पूर्ण योनियोंमें रहता है। अतः समस्त विद्वान् और सभी देहधारियोंको मोहमें डालनेवाली उस अविद्याको त्यागना चाहिये। उस (अविद्यामय) अहंकारका नाश हो जानेपर यह विभु आत्मा अत्यन्त शोभाको प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं। आत्माकी प्राप्ति अहंकारको जीत लेनेपर ही होगी तथा आत्माकी सिद्धि हो जानेपर पुरुष दुःखहीन और पूर्ण बोधवान् हो जायगा। जो पूर्ण बोधवान् है, वह परमानन्दस्वरूप, अनन्त एवं लोकोंकी रचना करनेवाले अविनाशी परमात्माको अविच्छिन्नरूपसे भजता है। भगवान्‌का भक्त उनकी कृपासे ज्ञानाग्निसम्पन्न हो सम्पूर्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अखिलं कर्म दग्ध्वान्यैर्विष्ण्वाख्यममृतं शुभम् ।

प्राप्नोति सर्वसिद्धार्थमिति वेदानुशासनम् ॥इति।

कर्मोंको दग्धकर अन्य सब प्रकारकी कामनाओंके सहित भगवान् विष्णुसंज्ञक शुभ अमृतको प्राप्त कर लेता है, जो सब प्रकारके पदार्थोंको प्राप्त करानेवाला है—ऐसी वेदकी आज्ञा है ।'

तथा हि भगवान् परमगुरुः पराशर आत्मव्यतिरिक्तस्य सर्वस्य मिथ्यात्वं दर्शयति—

इसी प्रकार परमगुरु भगवान् पराशरजी भी आत्मासे भिन्न और सब पदार्थोंका मिथ्यात्व प्रदर्शित करते हैं—

ज्ञानस्वरूपमत्यन्तनिर्मलं परमार्थतः ।
तदेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम् ॥
ज्ञानस्वरूपमखिलं जगदेतदबुद्धयः ।
अर्थस्वरूपं पश्यन्तो भ्राम्यन्ते मोहसम्प्लवे ॥
ये तु ज्ञानविदः शुद्धचेतसस्तेऽखिलं जगत् ।
ज्ञानात्मकं प्रपश्यन्ति त्वद्रूपं परमेश्वर ॥

'वस्तुतः यह सब अत्यन्त निर्मल ज्ञानस्वरूप है, किंतु भ्रमपूर्ण दृष्टिके कारण वही विभिन्न पदार्थरूपसे स्थित है। इस ज्ञानस्वरूप सम्पूर्ण जगत्को बुद्धिहीन लोग पदार्थाकार देखकर मोहकी बाढ़में भटकते रहते हैं। किंतु हे परमेश्वर! जो लोग ज्ञानी और शुद्धचित्त हैं, वे सम्पूर्ण जगत्को ज्ञानमय एवं आपका स्वरूप ही देखते हैं । क्योंकि यह जगत् ज्ञानस्वरूप विश्वमूर्ति भगवान् ही है, वस्तुस्वरूप नहीं है, अतः तुम इन पर्वत, समुद्र एवं पृथिवी आदि विभिन्न पदार्थोंको विज्ञानका ही विलास समझो । जब सम्पूर्ण कर्मोंका क्षय हो जानेपर यह विशुद्ध आत्मस्वरूप जगत् निर्मल ज्ञानमात्र रह जाता है, उस समय संकल्परूप वृक्षके फलस्वरूप जो वस्तुओंमें उनके भेद हैं, वे नहीं रहते । जो आदि, मध्य एवं अन्तरहित तथा निरन्तर एकरूप है, ऐसी कौन वस्तु है और वह कहाँ है ? हे द्विज! जो अन्यरूप हो जाती है और पुनः अपने पूर्वरूपको प्राप्त नहीं होती, उसका वस्तुत्व कहाँ है ? अपने कर्मोंके कारण जिनका आत्मनिश्चय दब गया है, उन पुरुषोंको पृथ्वी ही घटत्वको प्राप्त हुई दिखायी देती है और फिर घटसे कपालिका, कपालिकासे चूर्ण और उससे अणुरूप हुई जान पड़ती है; परंतु यह तो बताओ, इसमें परमार्थवस्तु क्या है! (वास्तवमें तो एक मृत्तिकामात्र ही है ।) अतः हे द्विज! विज्ञानसे अतिरिक्त कहीं किसी समय कोई वस्तुसमूह नहीं है । एक विज्ञान ही अपने कर्मभेदके कारण विभिन्न हुए चित्तोंद्वारा अनेकरूपताको प्राप्त हो रहा है ।

ज्ञानस्वरूपो भगवान् यतोऽसा-
वशेषमूर्तिर्न तु वस्तुभूतः ।
ततो हि शैलाब्धिधरादिभेदा-
ज्ञानीहि विज्ञानविजृम्भितानि ॥
यदा तु शुद्धं निजरूपि सर्व-
कर्मक्षये ज्ञानमपास्तदोषम् ।
तदा हि संकल्पतरोः फलानि
भवन्ति नो वस्तुषु वस्तुभेदाः ॥
वस्त्वस्ति किं कुत्रचिदादिमध्य-
पर्यन्तहीनं सततैकरूपम् ।
यच्चान्यथात्वं द्विज याति भूयो
न तत्तथा तस्य कुतो हि तत्त्वम् ॥
मही घटत्वं घटतः कपालिका
कपालिका चूर्णरजस्ततोऽणुः ।
जनैः स्वकर्मस्तिमितात्मनिश्चयै-
रालक्ष्यते ब्रूहि किमत्र वस्तु ॥
तस्मान्न विज्ञानमृतेऽस्ति किंचित्
क्वचित्कदाचिद् द्विज वस्तुजातम् ।
विज्ञानमेकं निजकर्मभेद-
विभिन्नचित्तैर्बहुधाभ्युपेतम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानं विशुद्धं विमलं विशोक-
मशेषदोषादिनिरस्तसङ्गम् ।
एकं सदैकं परमः परेशः
स वासुदेवो न ततोऽन्यदस्ति ॥
सद्भाव एष भवतो मयोक्तो
ज्ञानं यथा सत्यमसत्यमन्यत् ।
एतत्तु यत्संव्यवहारभूत-
मत्रापि चोक्तं भुवनाश्रयं ते ॥

परमार्थस्तु भूपाल संक्षेपाच्छ्रूयतां मम ।
एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥
जन्मवृद्ध्यादिरहितो ह्यात्मा सर्वगतोऽव्ययः ।
परज्ञानमयोऽसद्भिर्नामजात्यादिभिर्विभुः ॥
न योगवान्न युक्तोऽभूच्चैव पार्थिव योक्ष्यति ।
तस्यात्मपरदेहेषु सतोऽप्येकमयं हि तत् ॥
विज्ञानं परमार्थोऽसौ द्वैतिनोऽतथ्यदर्शिनः ।
तदेतदुपदिष्टं ते संक्षेपेण महामते ॥
परमार्थसारभूतं यत्तदद्वैतमशेषतः ।
सितनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः ॥
भ्रान्तदृष्टिभिरात्मापि तथैकः सन् पृथक्कृतः ।
एकः समस्तं यदिहास्ति किंचित्
तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत् ।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेत-
दात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम् ॥

इतीरितस्तेन स राजवर्य-
स्तत्याज भेदं परमार्थदृष्टिः ।
स चापि जातिस्मरणाप्तबोध-
स्तत्रैव जन्मन्यपवर्गमाप ॥

ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णु-
र्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च ।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं
यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य ॥

वह ज्ञान विशुद्ध, निर्मल, निःशोक, सम्पूर्ण दोषोंसे रहित, एक और सर्वदा एकरस है। वह परमोत्कृष्ट परमेश्वर वासुदेव है, जिससे भिन्न और कुछ भी नहीं है। यह मैंने आपके प्रति सद्वस्तुका वर्णन किया कि एकमात्र विज्ञान ही सत्य है, शेष सब मिथ्या है। यह जो सम्पूर्ण व्यवहारभूत त्रिभुवन-संस्थान है, उसका भी मैंने इसीमें वर्णन कर दिया।

'अब हे नृप! जो परमार्थ है, उसका मुझसे संक्षेपमें श्रवण करो। जो एक, व्यापक, समस्वरूप, शुद्ध, निर्गुण, प्रकृतिसे परे और जन्म-वृद्धि आदिसे रहित है, वह सर्वगत अविनाशी आत्मा उत्कृष्ट ज्ञानमय है। उस विभुका नाम एवं जाति आदि असद्वस्तुओंसे न तो योग है, न योग हुआ था और न होगा ही। वह अपने और अन्य सबके शरीरोंमें रहते हुए भी एकरूप ही है। यही वास्तविक विज्ञान है, द्वैतवादी तो मिथ्या दृष्टिवाले हैं। हे महामते! उस इस आत्माका तेरे प्रति संक्षेपसे उपदेश किया गया। जो परमार्थका सारभूत है, वह सर्वथा अद्वैत ही है। जिस प्रकार एक ही आकाश श्वेत एवं नीलादि भेदसे अनेक प्रकारका दिखायी देता है, उसी प्रकार भ्रान्त दृष्टि-वाले पुरुषोंने एक होनेपर भी आत्माको अनेकरूप कर रखा है। यहाँ जो कुछ भी है, वह सब एक अच्युत ही है। उससे भिन्न और कुछ नहीं है। वही मैं हूँ, वही तुम हो और यह सब भी वह आत्मस्वरूप ही है; तुम भेदरूप मोहको छोड़ दो।'

'उनके इस प्रकार कहनेपर उस नृपश्रेष्ठने परमार्थदृष्टि-से सम्पन्न हो भेदबुद्धिको छोड़ दिया तथा उसने भी पूर्व-जन्मकी स्मृतिके द्वारा बोध प्राप्तकर उसी जन्ममें मोक्ष प्राप्त कर लिया।'

'नक्षत्रगण विष्णु हैं, भुवन विष्णु हैं, वन विष्णु हैं तथा पर्वत, दिशा, नदी एवं समुद्र भी विष्णु हैं। हे द्विजवर! जो कुछ है और जो नहीं है, वह सब वही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विस्तारः सर्वभूतस्य विष्णोर्विश्वमिदं जगत् ।
द्रष्टव्यमात्मनस्तस्मादभेदेन विचक्षणैः ॥
विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते ।
आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तं कः करिष्यति ॥
तद्भावभावमापन्नस्तदासौ परमात्मना ।
भवत्यभेदी भेदश्च तस्याज्ञानकृतो भवेत् ॥
ज्ञानमेव परं ब्रह्म ज्ञानं बन्धाय चेष्यते ।
ज्ञानात्मकमिदं सर्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम् ॥
विद्याविद्ये च मैत्रेय ज्ञानमेवोपधारय ॥इति।

तथा चैतत्सर्वं स्पष्टमाह भगवान् सनत्सुजातो ब्रह्माण्डपुराणे कावषेयगीताप्रसङ्गे—

वेदान्पठध्वं विधिवद्व्रतानि
कृत्वा विवाहं च मखैर्यजध्वम् ।
उत्पाद्य पुत्रान् वयसो विरामे
देहं त्यजध्वं नियतास्तपोभिः ॥ इति ।
किमद्य नश्चाध्ययनेन कार्यं
किमर्थवन्तश्च मखैर्यजामः ।
प्राणं हि वाप्यनले जोहवीमः
प्राणानले जोहवीमीति वाचम् ॥ इति ।

कृतकृत्यत्वेन यज्ञाद्यनुष्ठानेनात्मनः प्रयोजनाभावं दर्शयित्वा 'स्वर्गात्तु वेश्यागृहसंनिवेशात्पुण्यक्षयान्ते पतनं स्यादवश्यम् । मनुष्यलोके विजरा विदुःखम्.....' इति यज्ञादिसाध्यस्य लोकस्यानित्यत्वादिदोषदुष्टत्वेन हेयत्वं दर्शयित्वा यजुर्वेदोपनिषदि 'सत्यं परं परम्' इत्यारभ्य सत्यादीनां माहात्म्यं दर्शयित्वा 'न्यासः' इत्यारभ्य 'तानि वा एतान्यवराणि तपाꣳसि न्यास एवात्यरेचयत्' इत्यन्तेन नित्यसिद्धनिरतिशयानन्दब्रह्मप्राप्तिसाधनस्य तत्साधनत्वेनापरादनित्यफलसाधनाद्यज्ञादेः सर्वस्मादुत्कृष्टत्वं संन्यासस्योक्तं तत्रैव श्रूयते—

न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ।

(विष्णु ही) है। यह सम्पूर्ण संसार सर्वस्वरूप विष्णुका ही विस्तार है। अतः बुद्धिमानोंको इसे अपनेसे अभिन्नरूपसे देखना चाहिये। भेदजनक अज्ञानके सर्वथा नष्ट हो जानेपर फिर आत्मा और ब्रह्मका मिथ्या भेद कौन करेगा? तब यह परमात्माके साथ परमात्मभावसे भावापन्न हो अभिन्न हो जाता है। इसका भेद तो अज्ञानजनित ही है। ज्ञान ही परब्रह्म है और ज्ञान ही बन्धनका कारण माना जाता है। यह सब ज्ञानमय है, ज्ञानसे भिन्न और कुछ भी नहीं है। हे मैत्रेय! ज्ञान और अज्ञानको भी तुम ज्ञानस्वरूप ही जानो।'

तथा ये ही सब बातें ब्रह्माण्डपुराणमें कावषेयगीताके प्रसंगमें भगवान् सनत्सुजातने स्पष्ट ही कही हैं—'वेदाध्ययन करो, फिर विधिपूर्वक व्रताचरण करते हुए विवाह करके यज्ञानुष्ठान करो। तत्पश्चात् पुत्र उत्पन्न कर आयुकी समाप्ति होनेपर तप आदिमें नियुक्त हुए देहत्याग करो।' तथा एक यजुर्वेदीय उपनिषद्में 'अब हमें अध्ययनसे क्या काम है? हम किस प्रयोजनसे यज्ञानुष्ठान करें! तथा किसलिये प्राणको अग्निमें और प्राणाग्निमें वायुको हवन करें?' इस वाक्यसे कही हैं। तथा कृतकृत्य हो जानेके कारण यज्ञानुष्ठानसे अपना कोई प्रयोजन न दिखाकर फिर 'जो वेश्याके घरके समान है, उस स्वर्गलोकसे तो पुण्योंका क्षय होनेपर अवश्य ही पतन होगा'.....इस प्रकार अनित्यत्वादि दोषोंसे दूषित होनेके कारण यज्ञादिसाध्य लोकोंका हेयत्व दिखाया है। फिर 'सत्यं परं परम्' इस वाक्यसे लेकर सत्यादिका माहात्म्य दिखाते हुए 'न्यासः' से आरम्भ करके 'तानि वा एतान्यवराणि तपाꣳसि न्यास एवात्यरेचयत्' इस वाक्यतक नित्यसिद्ध एवं निरतिशय आनन्दस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्तिके साधनभूत संन्यासका यज्ञादिसे, जो उसके साधनस्वरूप और अन्य अनित्य फलोंके साधन हैं, श्रेष्ठत्व दिखाया है। वहीं ऐसी भी श्रुति है—'किन्हीं किन्हींने कर्मसे, संततिसे अथवा धनसे नहीं, त्यागसे ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परेण नाकं निहितं गुहायां
विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति ॥
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे ॥इति ।

तथा च बृहदारण्यके सर्वकर्मसंन्यासं दर्शयति—'एतं वैतमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति ।' इति ।

तथा च भगवान् वासुदेवः सर्वकर्मसंन्यासं दर्शयति—

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥
असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥इति।

तथा चानुगीतासु कर्मणि प्रयोजनाभावं दर्शयति भगवान्—

नैव धर्मी न चाधर्मी न चैव हि शुभाशुभी ।
यः स्यादेकासने लीनस्तूष्णीं किंचिदचिन्तयन् ॥इति।

अमृतत्व प्राप्त किया है। वह परमोत्कृष्ट स्वर्गीय पद बुद्धिरूप गुहामें छिपा विराजता है, जिसमें कि यतिजन प्रवेश करते हैं। जिन्होंने वेदान्तसम्बन्धी विशिष्ट ज्ञानके द्वारा वस्तुका सम्यक् प्रकारसे निश्चय कर लिया है तथा जो यतिजन संन्यासयोगसे शुद्धचित्त हो गये हैं, वे सब कल्पका अन्त होनेपर ब्रह्मलोकमें उस परामृतको पाकर सब प्रकार मुक्त हो जाते हैं।'

इसी प्रकार बृहदारण्यकमें भी सम्पूर्ण कर्मोंका त्याग दिखलाते हैं—'उस इस आत्माको जानकर ब्रह्मवेत्ता-लोग पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणासे उठकर फिर भिक्षाटन करते हैं।'

इसी तरह भगवान् वसुदेवनन्दनने भी समस्त कर्मोंका त्याग ही दिखलाया है—'जो सब प्रकारकी कामनाओंसे रहित, संयतचित्त और सब प्रकारके संचयको छोड़नेवाला है, वह पुरुष केवल देहयात्रार्थ कर्म करता हुआ दोषग्रस्त नहीं होता। मेरा जो भक्त सब प्रकारकी अपेक्षाओंसे रहित, पवित्र, कुशल, उदासीन, संतापशून्य और सब प्रकारके आरम्भका त्याग करनेवाला है, वह मुझे प्रिय है। जो न प्रसन्न होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है और न किसी प्रकारकी इच्छा करता है तथा सब प्रकारके शुभ और अशुभ कर्मोंका त्याग करनेवाला एवं मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है। जो मान और अपमानमें समान रहता है, शत्रु और मित्र दोनों पक्षोंमें तुल्य है तथा सब प्रकारके आरम्भोंका त्याग करनेवाला है, वह गुणातीत कहा जाता है। जिसकी बुद्धि सब जगह अनासक्त है तथा जो जितेन्द्रिय और निःस्पृह है, वह पुरुष संन्यासके द्वारा उत्कृष्ट नैष्कर्म्यसिद्धि प्राप्त करता है। सब धर्मोंको त्यागकर तू एकमात्र मेरे शरण हो जा। मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा। तू शोक न कर।' इत्यादि।

इसी प्रकार अनुगीतामें भी भगवान् [आत्मनिष्ठके लिये] कर्ममें प्रयोजनका अभाव दिखलाते हैं—'जो एक आसनमें कुछ भी चिन्तन न करता हुआ चुपचाप आत्मामें लीन हो गया है, वह न धर्मवान् है न अधर्मवान् तथा न शुभकर्म करनेवाला है न अशुभ कर्म करनेवाला।' तथा यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रवृत्तिलक्षणो योगो ज्ञानं संन्यासलक्षणम्।

तस्माज्ज्ञानं पुरस्कृत्य संन्यसेदिह बुद्धिमान्॥ इति।

भी कहा है—'योग प्रवृत्तिरूप है और ज्ञान निवृत्तिरूप। अतः ज्ञान हो जानेपर बुद्धिमान्को इस लोकमें संन्यास (समत्वका त्याग) कर देना चाहिये।'

तथा च शान्तिपर्वणि शुकं प्रत्युपदिष्टवान् भगवान् व्यासः—

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः॥
एषा वै विहिता वृत्तिः पुरस्ताद्ब्रह्मणा स्वयम्।
एषा पूर्वतरैः सद्भिराचीर्णा परमर्षिभिः॥
प्रव्रजेच्च परं स्थानं पारिव्राज्यमनुत्तमम्।
तद्भवानेवमभ्यस्य वर्ततां श्रूयतां तथा॥ इति।

तथा शान्तिपर्वमें भगवान् व्यासने शुकदेवजीके प्रति इस प्रकार उपदेश किया है—'जीव कर्मसे बँधता है और ज्ञानसे मुक्त हो जाता है। इसलिये पारदर्शी यतिजन कर्म नहीं करते। पूर्वकालमें स्वयं ब्रह्माजीने ही इस वृत्तिका विधान किया है। पूर्वतन सत्पुरुष महर्षियोंने भी इसका अनुष्ठान किया है कि जो सर्वोत्तम पारिव्राज्यरूप उत्कृष्ट स्थान है, उसके प्रति गमन करे। अतः तुम इसी प्रकार अभ्यास करके इसीमें स्थित हो जाओ और (वेदान्त) श्रवण करो।'

तथा च सर्वकर्मसंन्यासं दर्शयति भगवान् नारदः—

संन्यस्य सर्वकर्माणि संन्यस्य विपुलं तपः।
संन्यस्य विविधा विद्याः सर्वं संन्यस्य चैव हि॥
शक्यं त्वेकेन मुक्तेन कृतकृत्येन सर्वशः।
पिण्डमात्रमुपाश्रित्य चरितुं सर्वतोदिशम्॥
हित्वा गुणमयं पाशं कर्म हित्वा शुभाशुभम्।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा एवं भवति निर्गुणः॥
परिग्रहं परित्यज्य भव तात जितेन्द्रियः।
अशोकस्थानमातिष्ठ इह चामुत्र चाभयम्॥ इति।

तथा भगवान् नारद भी समस्त कर्मोंका संन्यास ही प्रदर्शित करते हैं—'सम्पूर्ण कर्मोंको त्यागकर, महान् तपस्याको भी त्यागकर, विविध प्रकारकी विद्याओंको त्यागकर तथा और सबको भी त्यागकर सब प्रकार मुक्त और कृतकृत्य हुए पुरुषको केवल शरीरमात्रका आश्रय ले, गुणकृत बन्धनको काट, शुभाशुभ कर्मोंसे मुक्त हो तथा सत्य और मिथ्या दोनोंहीको त्यागकर सब दिशाओंमें अकेले ही विचरना चाहिये। इस प्रकार वह निर्गुण हो जाता है। हे तात! परिग्रह छोड़कर तू जितेन्द्रिय हो तथा इस लोक और परलोकमें शोकहीन एवं भयशून्य स्थानपर स्थित हो जा।'

तथा च सर्वकर्मसंन्यासिन एव ज्ञानेऽधिकारः, नेतरस्येत्याह भगवान् बृहस्पतिः—

प्रसृतैरिन्द्रियैर्दुःखी तैरेव नियतः सुखी।
रागवान् प्रकृतिं ह्येति विरक्तो ज्ञानमाप्नुयात्॥

तथा 'विषयोंमें फैली हुई इन्द्रियोंके कारण मनुष्य दुखी होता है और संयत हो जानेपर उन्हींसे वह सुखी होता है। रागी पुरुष प्रकृतिकी ओर प्रवृत्त होता है और विरक्त ज्ञान प्राप्त कर लेता है।' इस वाक्यद्वारा भगवान् बृहस्पतिने भी यही कहा है कि सम्पूर्ण कर्मोंका त्याग करनेवालेका ही ज्ञानमें अधिकार है, अन्य किसीका नहीं।

तथा चाश्वमेधिके ब्रह्मणा सम्यगुक्तं मुनीन् प्रति सर्वाश्रमिणां सर्वकर्मसंन्यासेऽधिकार इति—

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथ वा पुनः।

इसी प्रकार आश्वमेधिकपर्वमें ब्रह्माजीने भी मुनियोंके प्रति सभी आश्रमवालोंका सर्वकर्म-संन्यासमें अधिकार बतलाया है—'गृहस्थ हो, ब्रह्मचारी हो अथवा वानप्रस्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

य इच्छेन्मोक्षमास्थातुमुत्तमां वृत्तिमाश्रयेत् ॥
एतत्तु ब्राह्मणं वृत्तमाहुरेकपदं सुखम् ।
एषा गतिर्विरक्तानामेष धर्मः सनातनः ॥इति
यस्मादेवं तस्माद्विदुषो मुमुक्षोश्च सर्वकर्मसंन्यास एवाधिकारः ॥ २० ॥

हो, जो मोक्षपदपर स्थित होना चाहता हो, उसे भिक्षाटनरूप उत्तम वृत्तिका आश्रय लेना चाहिये । इसीको ब्रह्मवेत्ताओंका आचार कहा है, यही ऐकान्तिक सुख है, यही विरक्तोंकी गति है और यही सनातन धर्म है ।'

क्योंकि ऐसा है, इसलिये ज्ञानी और मोक्षकामीका सर्वकर्मसंन्यासमें ही अधिकार है ॥ २० ॥

एवं तावदेकस्यैव परमात्मनोऽनादिमायायोगेन बहुरूपत्वमुक्तम् । इदानीं यदीश्वरस्य जगत्कारणत्वं तदपि मायोपाधिकमित्याह—

इस प्रकार यहाँतक तो अनादि मायाके योगसे एक ही परमात्माकी अनेकरूपताका वर्णन किया गया । अब यह बतलाते हैं कि ईश्वरका जो जगत्कारणत्व है, वह भी मायारूप उपाधिके ही कारण है—

य एतद्वा भगवान् स नित्यो विकारयोगेन करोति विश्वम् ।
तथा च तच्छक्तिरिति स्म मन्ये तथार्थयोगे च भवन्ति वेदाः ॥ २१ ॥

ये जो परमार्थभूत भगवान् हैं, विकारके योगसे ही सर्वदा जगत्की उत्पत्ति करते हैं तथा उस परमात्माकी शक्ति (माया) ही यह सब व्यापार करती है—ऐसा मैं मानता हूँ । उसकी सत्तामें वेद प्रमाण हैं ॥ २१ ॥

य एतद्वा परमार्थभूतो भगवान् ऐश्वर्यादिसमन्वितः परमेश्वरो नित्यः स विकारयोगेन ईक्षणादिपूर्वकं विश्वं करोतीति तथा तत्सर्वं तच्छक्तिर्देवात्मशक्तिर्मायैव करोति न परमात्मा अपूर्वादिलक्षण इति स्म मन्ये । न स्वतश्चित्सदानन्दाद्वितीयस्य कारणत्वम्, किंतु मायावेशवशादित्यर्थः ।

ये जो परमार्थभूत ऐश्वर्यादिसमन्वित भगवान् हैं, वे नित्य परमेश्वर ही विकारके योगसे अर्थात् ईक्षणादिपूर्वक जगत्की रचना करते हैं । तथा इस प्रकार उनकी शक्ति अर्थात् उस परमात्माकी शक्ति माया ही यह सब करती है, अपूर्व-अनपरादिरूप परमात्मा कुछ नहीं करता—ऐसा मैं मानता हूँ । तात्पर्य यह है कि उस सच्चिदानन्दाद्वितीय परमात्माका जगत्कारणत्व स्वतः नहीं है, बल्कि मायाका सम्पर्क होनेके कारण है ।

किं तर्ह्यस्य तथाभूतशक्तियोगे प्रमाणमिति चेत्, तत्राह—तथार्थयोगे । तस्य परमात्मनो जगदुपादानभूतमायार्थयोगे च भवन्ति वेदाः । तस्य माया-

तो फिर इस प्रकारकी इस शक्तिका योग होनेमें प्रमाण क्या है ? ऐसी शङ्का होनेपर कहते हैं—उसकी अर्थवत्तामें अर्थात् जगत्की उपादानभूता परमात्माकी उस मायाके अस्तित्वमें वेद प्रमाण हैं । तात्पर्य यह है

१. यहाँ 'आदि' पदसे ऐश्वर्यके सिवा धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—ये पाँच गुण समझने चाहिये; क्योंकि इन छः गुणोंकी पूर्णताको ही 'भग' कहते हैं; यथा—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

और जिनमें पूर्ण भग है, वे ही भगवान् कहे जाते हैं ।

म० सन० ४. १२. ६—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सद्भावे वेदाः प्रमाणं भवन्तीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः—'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते,' 'अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्,' 'मायिनं तु महेश्वरम्,' 'देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्' इति । तथा चाह भगवान् वासुदेवः—

'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।'
'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥'
'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।'इति॥

तथा च—

माया तवेयमज्ञातपदार्थानतिमोहिनी ।
अनात्मन्यात्मविज्ञानं यया मूढोऽधिरोहति ॥
इयमस्य जगद्धातुर्माया कृष्णस्य गह्वरी ।
धार्यधारकभावेन यया सम्पीडितं जगत् ॥
अहो सु दुस्तरा विष्णोर्मायेयमतिगह्वरी ।
यया मोहितचित्तस्तु न वेत्ति परमेश्वरम् ॥इति२१॥

कि उस मायाकी सत्तामें वेद प्रमाण हैं; जैसा कि श्रुति कहती है—'मायासे इन्द्र (ईश्वर) अनेक रूप होकर चेष्टा करता है,' 'इससे मायी परमात्मा इस जगत्की रचना करता है,' 'मायीको महेश्वर मानो,' 'अपने गुणोंसे छिपी हुई भगवान्की अपनी शक्तिको' इत्यादि । इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी कहते हैं—'मेरी यह त्रिगुणमयी दैवी माया बड़ी दुस्तर है,' 'मैं अजन्मा, अविनाशी और सम्पूर्ण भूतोंका स्वामी होकर भी अपनी प्रकृतिका आश्रय ले अपनी मायासे ही जन्म लेता हूँ,' 'मुझ साक्षीके द्वारा प्रकृति चराचरको उत्पन्न करती है' इत्यादि । तथा ऐसा भी कहा है—'जिसके स्वरूपका ज्ञान नहीं है ऐसी आपकी यह माया अत्यन्त मोहमें डालनेवाली है, जिसके द्वारा मोहित हुआ पुरुष अनात्मामें आत्म-बुद्धि कर बैठता है । यह इस जगद्विधाता भगवान् श्रीकृष्णकी रहस्यमयी माया ही है, जिसके कारण संसार आश्रित और आश्रयभावको प्राप्त होकर पीडित हो रहा है । अहो ! भगवान् श्रीकृष्णकी यह माया अत्यन्त रहस्यमयी एवं दुस्तर है, जिससे मोहितचित्त हुआ प्राणी परमात्माको नहीं जानता' ॥२१॥

धर्म और अधर्ममें कौन किसका घातक है ?

एवं तावत् 'प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि' इत्यादिना मृत्योः स्वरूपं तस्य कार्यान्मनावस्थानं तन्निमित्तं चानेकानर्थं दर्शयित्वा केन तर्ह्यस्य विनाश इत्याशङ्क्य 'एवं मृत्युं जायमानम्' इत्यादिना आत्मज्ञानादेवाभयप्राप्तिं दर्शितां श्रुत्वा प्रासङ्गिके चोद्यद्वये परिहृते, कर्मस्वभावपरिज्ञानाय प्राह धृतराष्ट्रः—

इस प्रकार यहाँतक 'प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि' इत्यादि वाक्यसे मृत्युका स्वरूप बतलाकर फिर उसकी कार्यरूपसे स्थिति और उससे होनेवाले बहुत-से अनर्थ दिखलाये गये । उसमें 'तो फिर इसका नाश किससे होगा' ऐसी आशङ्का कर 'एवं मृत्युम्' (इस प्रकार मृत्युको उत्पन्न होनेवाली समझकर ज्ञानस्वरूपसे स्थित हुआ मृत्युसे नहीं डरता) इत्यादि वाक्यद्वारा आत्मज्ञानसे ही दिखलायी हुई अभयप्राप्तिके विषयमें सुननेके पश्चात् प्रसङ्गतः प्राप्त दो शङ्काओंके निराकृत हो जानेपर कर्मका स्वरूप जाननेके लिये धृतराष्ट्रने कहा—

धृतराष्ट्र उवाच—

यस्माद्धर्मानाचरन्तीह केचित् तथाधर्मान् केचिदिहाचरन्ति ।
धर्मः पापेन प्रतिहन्यते वा उताहो धर्मः प्रतिहन्ति पापम् ॥२२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धृतराष्ट्र बोले—क्योंकि इस लोकमें कोई तो धर्मका आचरण करते हैं और कोई अधर्मका ? ऐसी अवस्थामें पापके द्वारा धर्मका पराजय होता है अथवा धर्म ही पापको पराजित कर देता है ? ॥ २२ ॥

यस्माद् धर्मान् अग्निहोत्रादीन् आचरन्ति इह लोके केचित् तथा अधर्मान् इह आचरन्ति। किं तेषां धर्मः पापेन प्रतिहन्यते ? उताहो स्विद् धर्मः प्रतिहन्ति पापम् ? अथवा तुल्यबलेनान्यतरेणान्यस्य विनाशः ? इति ॥ २२ ॥

क्योंकि इस लोकमें कोई तो अग्निहोत्रादि धर्मोंका आचरण करते हैं और कोई पापाचरण करते हैं ? तो क्या उनका धर्म पापसे पराजित हो जाता है अथवा धर्म ही पापको पराजित कर देता है ? अथवा समान बलवाले होनेसे किसी भी एकसे दूसरेका पराभव हो जाता है ॥ २२ ॥

अज्ञानीको दोनोंका फल भोगना होता है; किंतु ज्ञानाग्निसे दोनों नष्ट हो जाते हैं

अविदुष उभयोरनुभव एव नान्यतरेणान्यतरस्य विनाशः। विदुषः पुनरुभयोरपि ज्ञानाग्निना विनाश इत्युत्तरमाह—

इसका ऐसा उत्तर देते हैं कि अज्ञानीको तो इन दोनोंका केवल अनुभव ही है, किसी भी एकसे दूसरेका नाश नहीं होता; किंतु विद्वान्‌के इन दोनोंहीका ज्ञानाग्निसे नाश हो जाता है—

सनत्सुजात उवाच—

तस्मिन् स्थितो वाप्युभयं हि नित्यं ज्ञानेन विद्वान् प्रतिहन्ति सिद्धम्।
यथान्यथा पुण्यमुपैति देही तथागतं पापमुपैति सिद्धम् ॥२३॥

श्रीसनत्सुजातजी बोले—ज्ञानी पुरुष उन पाप-पुण्योंमें स्थित रहनेपर भी* ज्ञानके द्वारा नियमानुसार उन दोनोंका नाश करता रहता है—यह प्रसिद्ध है। इससे विपरीत अवस्थामें [अर्थात् ज्ञान न होनेपर] तो जिस प्रकार देहधारी जीव [पुण्य होनेपर] पुण्यको प्राप्त होता है, उसी प्रकार पाप होनेपर पापको प्राप्त होता है—यह भी प्रसिद्ध ही है ॥ २३ ॥

एवं पृष्टः प्राह भगवान् सनत्सुजातः—

इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् सनत्सुजातने कहा—

तस्मिन् पुण्यापुण्यात्मके कर्मणि स्थितोऽपि कुर्वन्नपि उभयं पुण्यापुण्यलक्षणं कर्म नित्यं नियमेन विद्वान् ज्ञानेन प्रतिहन्ति विनाशयति। कथमेतदवगम्यते ज्ञानेन विद्वान् प्रतिहन्ति ? तत्राह—सिद्धं प्रसिद्धं ह्येतच्छ्रुतिस्मृतीतिहासपुराणेषु। तथा च श्रुतिः—'भिद्यते हृदयग्रन्थिः'

विद्वान् पुरुष उस धर्माधर्मरूप कर्ममें स्थित रहनेपर भी अर्थात् धर्माधर्मरूप दोनों प्रकारका कर्म करते रहनेपर भी ज्ञानके द्वारा नित्य-नियमानुसार उसका नाश कर देता है। किंतु यह कैसे जाना जाता है कि विद्वान् ज्ञानके द्वारा उनका नाश कर देता है ? इसपर कहते हैं—यह बात सिद्ध है अर्थात् श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणोंमें प्रसिद्ध है। जैसा कि श्रुति कहती है—'इसके हृदय-

* ज्ञानीसे वस्तुतः पाप-पुण्य होते ही नहीं; उसमें न कामना होती है, न आसक्ति और न अहंकार। उसके शरीरसे प्रारब्धवश चेष्टामात्र होती है। अन्य लोग अपनी अच्छी बुरी दृष्टिके अनुसार उसमें पाप-पुण्यकी कल्पना करते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यादि । 'यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते' इति, 'तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते' इति, 'तथा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति' इति । 'अश्व इव रोमाणि विधूय पापम्' इति । 'यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन' इति ।

अथान्यथा ज्ञानविहीनश्चेत् पुण्यमुपैति देही तथागतं पापमुपैति तत्फलं चोपभुङ्क्ते । कथमेतदवगम्यत इति चेत्, तत्राह—सिद्धं प्रसिद्धं ह्येतदपि श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणादिषु । तथा च श्रुतिः—

'इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं
नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः ।
नाकस्य पृष्ठे सुकृतेन भूत्वेमं
लोकं हीनतरं वा विशन्ति' ॥ इति ।

'अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः' ॥ इति । तथैव वासुदेवः—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥इति॥२३॥

की ग्रन्थि टूट जाती है', 'जिस प्रकार कमलके पत्तेमें जलका संसर्ग नहीं होता, इसी प्रकार ऐसा जाननेवालेमें पाप-कर्मका संसर्ग नहीं होता,' 'जिस प्रकार अग्निमें प्रवेश करानेसे सींकका रुआँ जल जाता है, उसी प्रकार इस ज्ञानीके समस्त पाप भस्म हो जाते हैं,' 'इस प्रकार ज्ञानी पुरुष पाप-पुण्य दोनोंको झाड़कर निर्मल हो उत्कृष्ट समताको प्राप्त हो जाता है,' 'घोड़ा जिस प्रकार बालोंको झड़काता है, उसी प्रकार पापोंको झाड़कर' इत्यादि। तथा 'हे अर्जुन ! जिस प्रकार बढ़ा हुआ अग्नि ईंधनको जला देता है [उसी प्रकार ज्ञानाग्नि समस्त कर्मोंको भस्म कर देता है]' ।

इससे विपरीत यदि वह ज्ञानहीन होता है तो वह देहधारी जीव (पुण्य होनेपर) पुण्य प्राप्त करता है तथा पाप होनेपर पापको प्राप्त होता है और उसका फल भी भोगता है । यदि कहो कि ऐसा कैसे जाना जाता है ! तो इसपर कहते हैं—यह सिद्ध है अर्थात् यह बात भी श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणोंमें प्रसिद्ध है । जैसा कि श्रुति कहती है—'अत्यन्त मूढ पुरुष इष्ट और पूर्त्तादिको ही सर्वश्रेष्ठ समझकर किसी और श्रेष्ठ कर्मके विषयमें कुछ नहीं जानते । वे अपने शुभ कर्मसे स्वर्गलोकमें रहकर फिर इसी लोकमें अथवा इससे भी निकृष्टतर लोकमें प्रवेश करते हैं ।' 'वे आनन्दशून्य लोक घोर अन्धकारसे व्याप्त हैं; जो आत्मघाती* लोग होते हैं, वे मरनेपर उन्हींमें जाते हैं ।' इत्यादि । इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है—'त्रयीधर्ममें स्थित हुए सोमपान करनेवाले पापहीन पुरुष मेरा यज्ञोंसे पूजन कर स्वर्गीय गतिके लिये प्रार्थना करते हैं । और वे उस महान् स्वर्गलोकके भोगोंको भोगकर पुण्यका क्षय होनेपर फिर मर्त्यलोकमें प्रवेश करते हैं' ॥ २३ ॥

* 'आत्मघाती' शब्दसे अनात्मज्ञ समझना चाहिये । अनात्मज्ञ पुरुषोंको प्राप्त होनेवाले लोक अज्ञानजनित होनेके कारण चित्प्रकाशस्वरूप परब्रह्मकी अपेक्षासे आनन्दशून्य और अन्धकारपूर्ण बताये गये हैं । पापप्रवण लोगोंको प्राप्त होनेवाले नरकादिकी अपेक्षा तो पुण्योपार्जित स्वर्गादि उत्कृष्ट ही हैं । इसलिये इस कथनसे इष्टापूर्त कर्मोंकी हेयता बतानी अभीष्ट नहीं है, केवल आत्मज्ञानीकी उत्कृष्टता ही बतलायी गयी है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किमविदुषोऽनुभव एवोभयोः, उतान्यतरेणान्यतरस्य विनाश इति, तत्राह—

अज्ञानीको इन दोनोंका केवल अनुभव ही है अथवा इनमेंसे किसी एकके द्वारा दूसरेका नाश हो जाता है ? ऐसा प्रश्न होनेपर कहते हैं—

गत्वोभयं कर्मणा भुज्यतेऽस्थिरं शुभस्य पापस्य स चापि कर्मणा ।
धर्मेण पापं प्रणुदतीह विद्वान् धर्मो बलीयानिति तस्य विद्धि ॥ २४ ॥

वह अपने कर्मके द्वारा परलोकमें जाकर उस पुण्य और पापरूप दोनों प्रकारके कर्मका अस्थिर (नाशवान्) फल भोगता है; किंतु जो ज्ञानवान् है, वह इस लोकमें पुण्यके द्वारा पापकर्मका नाश कर देता है; उसका धर्म बलवान् होता है—ऐसा तुम जानो ॥ २४ ॥

गत्वा परलोकं प्राप्य उभयं पुण्यापुण्यसाध्यं फलम्, पुण्यापुण्यलक्षणेन कर्मणा भुज्यतेऽस्थिरम् ।

वह (अज्ञानी) परलोकमें जाकर अपने पाप-पुण्यरूप कर्मके द्वारा उस पाप-पुण्यजनित दोनों प्रकारका अस्थिर फल भोगता है,

श्रूयते च बृहदारण्यके—

'यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्मिँल्लोके जुहोति' इति । 'अथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति' । इति च छान्दोग्ये ।

जैसा कि 'हे गार्गि ! जो पुरुष इस अक्षरब्रह्मको न जानकर इस लोकमें हवन करता है' इत्यादि वाक्यद्वारा बृहदारण्यकमें सुना जाता है तथा छान्दोग्यमें कहा है कि 'जो इससे भिन्न प्रकारसे जानते हैं, वे दूसरेके आधिपत्यमें रहते हैं, वे क्षयशील लोकोंको प्राप्त होते हैं ।'

स चापि सोऽपि विद्वान् धर्मेण कर्मणा पापं प्रणुदति विनाशयति इह लोके विद्वान् वक्ष्यमाणलक्षणो विनियोगज्ञ ईश्वरार्थं कर्मानुतिष्ठन् । तथा च वक्ष्यति—

तथा वह विद्वान् भी, जो कि आगे कहे जानेवाले लक्षणोंवाला तथा कर्मका विनियोग जाननेवाला है, भगवान्‌के लिये कर्म करता हुआ इस लोकमें धर्ममय कर्मके द्वारा पापको नष्ट कर देता है । ऐसा ही आगे कहेंगे भी—'उसके लिये ही ये तप और यज्ञ कहे गये हैं; इनके द्वारा यह विद्वान् पुण्य प्राप्त करता है और फिर पुण्यके द्वारा पापका नाश कर वह ज्ञानालोकसे प्रकाशित हो जाता है । विद्वान् ज्ञानके द्वारा आत्माको प्राप्त कर लेता है । अन्यथा वह स्वर्गफलका इच्छुक होकर इस लोकमें किये हुए समस्त कर्मोंको लेकर परलोकमें उनका फल भोगता है और फिर संसार-मार्गमें ही पतित हो जाता है ।' तथा 'जिनकी धर्ममें स्पर्धा (होड़) होती है, उनका धर्मानुष्ठान ज्ञानका साधन नहीं होता; किंतु जिनकी धर्ममें स्पर्धा नहीं होती, उनके लिये वह ज्ञानका साधन हो जाता है' इत्यादि ।

तदर्थमुक्तं तप एतदिज्या
ताभ्यामसौ पुण्यमुपैति विद्वान् ।
पुण्येन पापं विनिहत्य पश्चा-
त्स जायते ज्ञानविदीपितात्मा ॥
ज्ञानेन चात्मानमुपैति विद्वा-
नथान्यथा स्वर्गफलानुकाङ्क्षी ।
अस्मिन् कृतं तत्परिगृह्य सर्व-
ममुत्रभुङ्क्ते पुनरेति मार्गम् ॥
इति ।

येषां धर्मे च विस्पर्धा न तद्विज्ञानसाधनम् ।
येषां धर्मे न च स्पर्धा तेषां तज्ज्ञानसाधनम् ॥ इति ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यश्चैवं विनियोगज्ञ ईश्वरार्थं कर्मानुतिष्ठति तस्य विदुषो धर्मः पापाद् बलीयान् इति विद्धि विजानीहि । तस्य पुनः केवलकर्मिणो न बलीयान्; तस्योभयोरनुभव एव नान्यतरेणान्यतरस्य विनाशः ॥ २४ ॥

इस प्रकार जो कर्मका विनियोग जाननेवाला पुरुष ईश्वरके लिये कर्म करता है, उस ज्ञानीका धर्म उसके पापकी अपेक्षा बलवान् होता है—ऐसा तू जान; किंतु जो केवल कर्मी है, उसका धर्म बलवान् नहीं होता। उन दोनोंहीका अनुभव होता है, किसी एकके द्वारा दूसरेका नाश नहीं होता ॥ २४ ॥

अधिकारिभेदसे धर्मकी स्वर्गादिसाधनता तथा ज्ञानसाधनता

केषां तर्हि स्वर्गादिसाधनम् ? केषां वा चित्तशुद्धिद्वारेण ज्ञानसाधनम् ? इति, तत्राह श्लोकद्वयेन—

तो फिर, धर्म किनके लिये स्वर्गादिकी प्राप्तिका साधन है और किनके लिये चित्तशुद्धिके द्वारा ज्ञानका साधन है ? ऐसा प्रश्न होनेपर इन दो श्लोकोंसे उत्तर दिया जाता है—

येषां धर्मेषु विस्पर्धा बले बलवतामिव ।
ते ब्राह्मणा इतः प्रेत्य स्वर्गे यान्ति प्रकाशताम् ॥ २५ ॥

बलवानोंकी जिस प्रकार बलमें स्पर्धा (होड़) रहती है, उसी प्रकार जिनकी धर्ममें स्पर्धा है, वे द्विजगण [मरनेके पश्चात्] इस लोकसे जाकर स्वर्गमें प्रकाशको प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

येषां विषयपराणां स्वर्गादावुर्वश्यादिभोगश्रवणात् तत्साधनभूतज्योतिष्टोमादिधर्मेषु विस्पर्धा संघर्षो वर्तते—अस्मादहमुत्कृष्टतरं धर्मं कृत्वा अस्मादपि सुखी भूयासमिति । बले बलवतामिव, यथा बलवतो राज्ञो बलवन्तं राजानं दृष्ट्वा अहमस्मादपि बलवत्तां सम्पाद्यैनं जित्वा अस्मादपि सुखी भूयासमिति संघर्षो वर्तते तद्वत् । ते फलसङ्गसहिता ब्राह्मणा यज्ञादिकारिण इतः प्रेत्य धूमादिमार्गेण गत्वा स्वर्गे नक्षत्रादिरूपेण यान्ति प्राप्नुवन्ति प्रकाशतां प्रकाशम् । श्रूयते च—'अथ य इमे इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसम्भवन्ति' इत्यारभ्य 'एष सोमो राजा

जिन विषयपरायण पुरुषोंको, स्वर्गादिमें रहनेवाली उर्वशी आदि भोगोंकी प्राप्ति होगी—ऐसा सुनकर उनके साधनभूत ज्योतिष्टोमादि कर्मोंमें 'मैं इससे श्रेष्ठतर कर्म करके इससे भी अधिक सुखी हो जाऊँ'—ऐसी विस्पर्धा-संघर्ष (होड़) रहती है, जैसी कि बलवानोंकी बलमें अर्थात् जिस प्रकार किसी बलवान् राजाकी दूसरे बलसम्पन्न राजाको देखकर उसके प्रति 'मैं इससे भी अधिक शक्ति-सम्पादन कर इसे जीतकर इससे भी अधिक सुखी हो जाऊँ' ऐसी होड़ रहती है, उसी प्रकार [जिन्हें धर्मानुष्ठानमें होड़ रहती है] वे कर्मफलकी आसक्तिसे युक्त ब्राह्मण—यज्ञाधिकारी लोग इस लोकसे मरकर धूमादि मार्गसे चलते हुए स्वर्गलोकमें पहुँचकर नक्षत्रादिरूपसे प्रकाशत्व प्राप्त करते हैं। और ऐसा ही 'जो ये (कर्मकाण्डी) इसकी इष्ट, पूर्त और दानरूपसे उपासना करते हैं, वे धूममार्गको प्राप्त होते हैं' यहाँसे लेकर 'यह प्रकाशमान सोम है, यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदेवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति यावत्सम्पातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते' इति ॥ २५ ॥

देवताओंका अन्न है, उसे देवगण भक्षण करते हैं, वहाँ वे कर्मक्षयपर्यन्त रहकर पुनः इसी मार्गमें लौट आते हैं' यहाँतक श्रुति भी कहती है ॥ २५ ॥

येषां धर्मे न च स्पर्द्धा तेषां तज्ज्ञानसाधनम् ।
ते ब्राह्मणा इतो मुक्ताः स्वर्गं यान्ति त्रिविष्टपम् ॥ २६ ॥

और जिनकी धर्ममें स्पर्धा नहीं है, उनके लिये वह ज्ञानका साधन है । वे ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) लोग इस लोकसे मुक्त होकर त्रिविष्टप नामक स्वर्गको जाते हैं ॥ २६ ॥

येषां विषयानाकृष्टचेतसामनित्यफलसाधनज्योतिष्टोमादौ धर्मे न च स्पर्धा संघर्षो न वर्तते तेषां फलनिरपेक्षमीश्वरार्थं कर्मानुष्ठानवतां तद् यज्ञादिकं कर्म चित्तशुद्धिद्वारेण ज्ञानसाधनम् । वक्ष्यति च भगवान् स्वयमेव शुद्धिद्वारेणैव ज्ञानसाधनत्वम्—'पुण्येन पापं विनिहत्य पश्चात्स जायते ज्ञानविदीपितात्मा' इति। ये यज्ञादिभिर्विशुद्धसत्त्वाः परमात्मानमात्मत्वेनावगच्छन्ति, ते ब्राह्मणा इतोऽस्मात्कार्यकारणलक्षणाल्लोकात्प्रेत्य मुक्ताः स्वर्गं सुखं पूर्णानन्दं ब्रह्म यान्ति । इतरतः स्वर्गादस्य वैलक्षण्यमाह—त्रिविष्टपमिति । त्रिभिराध्यात्मिकादितापैः सत्त्वादिभिर्जाग्रदादिभिर्वा विमुक्तं स्वरूपाविष्टं पातीति त्रिविष्टपम् । अथवा, तैर्विष्टमधिकारिणं पातीति त्रिविष्टपम् इति ॥ २६ ॥

विषयोंद्वारा जिनका चित्त आकर्षित नहीं है ऐसे जिन पुरुषोंको अनित्य फलके साधनभूत ज्योतिष्टोमादि धर्मोंमें स्पर्धा—संघर्ष नहीं है, उन कर्मफलकी अपेक्षासे रहित ईश्वरार्थ कर्म करनेवालोंका वह यज्ञादि कर्म चित्तशुद्धिके द्वारा ज्ञानका साधन होता है । भगवान् (सनत्कुमार) स्वयं ही 'फिर वह पुण्यके द्वारा पापका पराभव कर ज्ञानसे देदीप्यमान हो जाता है' इस वाक्यसे चित्तशुद्धिके द्वारा ही उसके ज्ञानसाधनत्वका वर्णन करेंगे । इस प्रकार जो लोग यज्ञादिद्वारा शुद्धचित्त होकर परमात्माको अपने आत्मस्वरूपसे जान लेते हैं, वे ब्राह्मणलोग इस कार्य-कारणरूप लोकसे जाकर मुक्त हो स्वर्ग-सुखस्वरूप पूर्णानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त हो जाते हैं । त्रिविष्टपम्—ऐसा कहकर दूसरे स्वर्गसे उसकी विलक्षणता बतलायी है । त्रि—आध्यात्मिकादि तीन तापों, सत्त्वादि तीन गुणों अथवा जाग्रदादि तीन अवस्थाओंसे रहित स्वरूपावस्थित पुरुषका जो पालन करता है, उसे 'त्रिविष्टप' कहते हैं । अथवा जो इनसे युक्त अधिकारीकी रक्षा करता है, वह 'त्रिविष्टप' है ॥ २६ ॥

ज्ञानीका आचरण

इदानीं विदुषः समाचारमाह—

अब विद्वान्का आचरण बतलाते हैं—

तस्य सम्यक् समाचारमाहुर्वेदविदो जनाः ।
नैनं मन्येत भूयिष्ठं बाह्यमाभ्यन्तरं जनम् ॥ २७ ॥

---

१. स्थूल-सूक्ष्म शरीरसे मुक्त होकर ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेदवेत्ता लोगोंने उसके वास्तविक आचरणका [इस प्रकार वर्णन] किया है—इसके भीतरी (कुटुम्बी) और बाहरी दोनों ही प्रकारके लोग इसका अधिक ध्यान नहीं रखते ॥ २७ ॥

तस्य विरक्तस्य विदुषः सम्यक् समाचारं वेदविदो जना विद्वांस आहुः । नैनं योगिनं मन्येत चिन्तयेद् भूयिष्ठं बहु बाह्यमाभ्यन्तरं जनम् । पुत्रमित्रकलत्राद्याभ्यन्तरम्, इतरद् बाह्यम् । यथा पुत्रमित्रादयो न गृह्णन्ति तथा तेषामगोचर एव वर्तत इत्यर्थः ॥ २७ ॥

उस विरक्त विद्वान् पुरुषके वास्तविक आचरणका वेदवेत्तालोग [इस प्रकार] वर्णन करते हैं—इस योगीको इसके बाह्य और आन्तरिक लोग अधिक नहीं मानते अर्थात् वे इसका विशेष विचार नहीं रखते । पुत्र, मित्र एवं स्त्री आदि आन्तरिक हैं तथा शेष सब बाह्य हैं । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार उसे पुत्र-मित्रादि ग्रहण न कर सकें वैसा व्यवहार करता हुआ वह उनसे छिपा ही रहता है ॥ २७ ॥

कीदृशे देशेऽस्य वास इत्याह—

उसका निवास कैसे स्थानमें होना चाहिये ? सो बतलाते हैं—

यत्र मन्येत भूयिष्ठं प्रावृषीव तृणोदकम् ।
अन्नपानं च विप्रेन्द्रस्तज्जीवेन्नानुसंज्वरेत् ॥ २८ ॥

वर्षा ऋतुमें घास और जलके समान जहाँ उसे अन्न-जलकी अधिकता जान पड़े, ब्रह्मवेत्ताको चाहिये कि उसी स्थानमें जीवन-निर्वाह करे । अन्न-जलका कष्ट सहन न करे ॥ २८ ॥

यत्र यस्मिन् देशे मृगचोरादिपीडारहिते अन्नपानादि भूयिष्ठं बहुलं वर्तते इति मन्येत प्रावृषीव तृणोदकं बहुलं भवति तद्वत् । तृणोलपमिति केचित्—'तृणोलप इति ख्यातो मुनिभोज्यौदनादिषु' इति वदन्ति । दूर्वाविशेष इति केचित् । तत्र स्थित्वा तदन्नपानादिकमुपजीवेत् । नानुसंज्वरेत् संतप्तो न भवेत् । अन्यथा अन्नपानादिरहिते देशे कथं नाम देहयात्रा सिद्ध्येदिति संतप्तो भवेत्, ततश्च न योगसिद्धिः ॥ २८ ॥

जहाँ अर्थात् मृग और चोरादिके उपद्रवसे रहित जिस देशमें, जिस प्रकार वर्षाकालमें घास और जलकी अधिकता होती है उसी प्रकार अन्न-पानादिकी बहुलता है—ऐसा जान पड़े, वहाँ रहकर उस अन्न-जलके आश्रय जीवन-निर्वाह करे । 'मुनियोंके भोज्य एवं पानादिके अर्थमें 'तृणोलप' शब्दका प्रयोग होता है' इस कोषके अनुसार यहाँ कोई-कोई 'तृणोदकम्' के स्थानमें 'तृणोलपम्' ऐसा पाठ बतलाते हैं । उस तृणोलपको कोई दूर्वाविशेष कहते हैं । अनुसंज्वरित अर्थात् संतप्त न हो । यदि ऐसे स्थानमें न रहेगा तो अन्न-पानादि-रहित देशमें रहनेसे 'किस प्रकार देहयात्रा होगी' ऐसा संताप होगा और उससे योगसिद्धि नहीं हो सकेगी ॥ २८ ॥

तत्राप्येवंविधजनसमीपे वास इत्याह—

वहाँ भी उसका ऐसे लोगोंके पास रहना अच्छा है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यत्राकथयमानस्य प्रयच्छत्यशिवं भयम् ।
अतिरिक्तमिवाकुर्वन् स श्रेयान् नेतरो जनः ॥ २९ ॥

जहाँ चुपचाप रहते हुए लोग उसका अमङ्गल और अपमानादि करें तथा इसके विपरीत (उसका सत्कार एवं पूजनादि) न करें । उस महात्माके लिये ऐसा जनसमूह ही कल्याणकारक है, इससे भिन्न प्रकारका नहीं ॥ २९ ॥

यत्र यस्मिन् देशेऽकथयमानस्य तूष्णींभूतस्य स्वमाहात्म्यं प्रच्छादयतो येन केनचिदाच्छन्नस्य येन केनचिदाशितस्य यत्र क्वचनशायिन आत्मानमेव लोकं पश्यतो जडमूकबालपिशाचादिवत्संचरतः परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य प्रयच्छत्यशिवं भयम् अशिवमकल्याणमवमानादिकं प्रयच्छति तथा अतिरिक्तमिवाकुर्वन्—यथा कश्चित् स्थितप्रज्ञलक्षणज्ञो ब्रह्मविदिति ज्ञात्वा प्रणिपातनमस्कारादिपूर्वकमीश्वरबुद्ध्या पूजयति तद्वदज्ञाततया अतिरिक्तं ब्राह्मणजातिमात्रप्रयुक्तपूजातिरिक्तं पूजान्तरं ब्रह्मविदनुरूपमकुर्वन्नवमानादिकमेव कुर्वन् यो जनः सोऽस्य विदुषः श्रेयान् । नेतरो यः प्रणिपातादिपूर्वकमीश्वरबुद्ध्या सम्पूजयति । तथा चाह भगवान् मनुः—

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥
इति । तथा चाह भगवान् पराशरः—

सम्माननां परां हानिं योगर्द्धेः कुरुते यतः ।
जनेनावमतो योगी योगसिद्धिं च विन्दति ॥
इति ॥२९॥

जिस-तिसके द्वारा वस्त्रकी व्यवस्था किये जाते हुए, जिस-तिसके द्वारा भोजन कराये जाते हुए तथा अपने विषयमें कुछ भी न कहते हुए मौन रहकर अपनी महिमाको छिपानेवाले, जहाँ-तहाँ सो रहनेवाले, केवल आत्मलोकका ही दर्शन करनेवाले तथा जड, मूक, बालक और पिशाचादिकी भाँति विचरनेवाले उस परमहंस-परिव्राजकाचार्यको जहाँ—जिस देशमें लोग अशिव—अकल्याण या भय—अपमानादि प्रदान करें तथा इसके विपरीत न करें अर्थात् जिस प्रकार कोई स्थितप्रज्ञके लक्षणोंको जाननेवाला पुरुष 'यह ब्रह्मवेत्ता है' ऐसा जानकर प्रणाम एवं नमस्कारादिपूर्वक उसकी ईश्वर-बुद्धिसे पूजा करता है, उसीके समान अज्ञानवश जो लोग ब्राह्मण-जातिके योग्य सत्कार करनेके सिवा ब्रह्मवेत्ताके अनुरूप अन्य प्रकारकी पूजा नहीं करते, वे ही इस विद्वान्के लिये उपयोगी हैं । जो लोग प्रणामादि करते हुए इसकी ईश्वर-बुद्धिसे पूजा करते हैं, वे इसके लिये उपयुक्त नहीं हैं । ऐसा ही भगवान् मनुने भी कहा है—'ब्राह्मणको चाहिये कि सम्मानसे विषकी भाँति दूर रहे और सदा ही अपमानकी अमृतके समान इच्छा करता रहे ।' तथा भगवान् पराशरजी भी कहते हैं—'क्योंकि सम्मान योगश्रीकी अत्यन्त हानि करता है और जनताद्वारा अपमानित योगी योगमें सिद्धि प्राप्त कर लेता है' ॥ २९ ॥

कीदृशस्य तर्ह्यन्नं भोज्यमित्याह—

तो फिर इसके लिये कैसे पुरुषका अन्न भोज्य है, सो बतलाते हैं—

यो वाकथयमानस्य ह्यात्मानं नानुसंज्वरेत् ।
ब्रह्मस्वं नोपहन्याद् वा तदन्नं सम्मतं सताम् ॥३०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो पुरुष मौन रहनेवाले [इस महात्मा] के अन्तःकरणको संतप्त न करता हो तथा इसकी ब्रह्मनिष्ठाके साधनोंका बाधक न हो, सत्पुरुषोंको इसके लिये उसका अन्न अभिमत है ॥ ३० ॥

यो वा अकथयमानस्य तूष्णींभूतस्य सर्वोपसंहारं कृत्वा पूर्णानन्दात्मना अवस्थितस्य आत्मानं नानुसंज्वरेत्—न तापयेत्, ब्रह्मस्वं नोपहन्याद्वा—ब्रह्मनिष्ठासाधनभूतं चैलाजिनकुशपुस्तकादिकं नोपहन्याद्वा । तथा चोक्तम्—

रत्नहेमादिकं नास्य योगिनः स्वं प्रचक्षते ।
कुशवल्कलचैलाद्यं ब्रह्मस्वं योगिनो विदुः ॥

इति अन्यदपि ब्रह्मस्वं ब्राह्मणस्वं नोपहन्याद्वा—तदन्नं तस्यान्नं सम्मतं सतां भोज्यत्वेन ॥३०॥

जो पुरुष अकथयमान—मौन रहनेवाले अर्थात् समस्त इन्द्रियोंका निग्रह कर पूर्णानन्दस्वरूपसे स्थित हुए इस महात्माके अन्तःकरणको अनुसंज्वरित—संतप्त न करे तथा इसके ब्रह्मस्वका बाधक न हो अर्थात् ब्रह्मनिष्ठाके साधनभूत इसके चीरवस्त्र, मृगचर्म, कुशासन एवं पुस्तकादिको नष्ट करनेवाला न हो । इस विषयमें ऐसा कहा भी है कि 'रत्न और सुवर्णादि—ये इस योगीकी सम्पत्ति नहीं हैं । योगीके ब्रह्मस्व (ब्रह्मज्ञानरूप धन) तो कुश, वल्कल एवं चीरवस्त्रादि ही माने गये हैं ।' तथा इनके अतिरिक्त जो इसके अन्य ब्रह्मस्व —ब्राह्मणानुरूप सम्पत्तिका भी नाश नहीं करता, उसीका अन्न साधु पुरुषोंके भोज्यरूपसे माना गया है ॥ ३० ॥

पुनरपि तस्यैव समाचारमाह—

फिर भी उसीके आचरणका वर्णन करते हैं—

नित्यमज्ञातचर्या मे इति मन्येत ब्राह्मणः ।
ज्ञातीनां तु वसन् मध्ये नैव विन्देत किंचन ॥ ३१ ॥

ब्रह्मवेत्ताका ऐसा विचार रहना चाहिये कि बन्धु-बान्धवोंके बीचमें रहनेपर भी मेरी चर्या (व्यवहार) नियमसे अज्ञात रहनी चाहिये । वह [देहादि] किसीको भी [अपना स्वरूप] न माने ॥ ३१ ॥

नित्यं नियमेन अज्ञातचर्या गूढचर्या मे मम कर्तव्येति मन्येत ब्राह्मणो ब्रह्मवित् । ज्ञातीनां पुत्रमित्रकलत्रादीनां मध्ये संनिधौ वसन् नैव विन्देत प्रतिपद्येत किंचन किंचिदपि ।

कश्चनेति केचित् । पुत्रमित्रकलत्रादिकं परित्यज्य केवलं स्वात्मनिष्ठो गूढचर्यो भवेदित्यर्थः ।

तथा च श्रुतिः—

कुटुम्बं पुत्रदारांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ।
यज्ञं यज्ञोपवीतं च त्यक्त्वा गूढश्चरेन्मुनिः ॥

तथा चाह भगवान् वसिष्ठः—

मुझे नित्य—नियमसे अज्ञातचर्या—गूढरूपसे आचरण करना ही उचित है—ऐसा ब्राह्मण—ब्रह्मवेत्ताको विचार रखना चाहिये । वह ज्ञाति अर्थात् पुत्र-मित्र एवं स्त्री आदिके मध्यमें अर्थात् उनकी संनिधिमें रहता हुआ भी किसी वस्तुको [अपनी] न माने ।

यहाँ कोई-कोई ['किञ्चन' के स्थानमें] 'कश्चन' ऐसा पाठ बतलाते हैं [अर्थात् किसीको अपना न माने ।] तात्पर्य यह है कि पुत्र, मित्र और स्त्री आदि सबको छोड़कर केवल आत्मनिष्ठ हो गूढ़रूपसे आचरण करे । ऐसी ही श्रुति भी है—'मुनिको चाहिये कि कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री, सम्पूर्ण वेदाङ्ग तथा यज्ञ और यज्ञोपवीत—इन सबको त्यागकर प्रच्छन्नरूपसे विचरे ।' तथा भगवान् वसिष्ठजी भी कहते हैं—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यन्न सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् ।
न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित् स ब्राह्मणः ॥
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥

इति । ईदृशस्यैव ज्ञाननिष्ठाप्राप्तिलक्षणो मोक्षो नान्यस्य, विक्षेपबाहुल्यादिति भावः ।

अथवा, 'नित्यमज्ञातचर्या मे अज्ञाते चक्षुराद्यविषयभूते वाचामगोचरेऽनुदितानस्तमितज्ञानात्मनावस्थितेऽशनायाद्यसंस्पृष्टे पूर्णानन्दस्वरूपे सर्वान्तरे प्रत्यग्भूते ब्रह्मणि चर्या निष्ठा समाधिलक्षणा मे मम कर्तव्या, न परागभूतदेहेन्द्रियपुत्रमित्रकलत्रादौ स्थूलोऽहं कृशोऽहं गच्छामि तिष्ठामि क्लीबः काणः मूको बधिरोऽमुष्य पुत्रोऽस्य नप्ता ब्राह्मणोऽहं क्षत्रियोऽहं भार्या मे पुत्रो मे विभवो मे स्निग्धबन्धुसुहृदः—इत्येवमात्मिका कर्तव्या' इति मन्येत ब्राह्मणो ब्रह्मवित् । तथा च श्रुतिः—'यच्चक्षुषा न पश्यति, येन चक्षूंषि पश्यति, तदेव ब्रह्म' इति ।

यस्मादेवमज्ञात एव ब्रह्मणि निष्ठा कर्तव्या तस्माद् ज्ञातीनाम्—

क्रोधमानादयो दोषा विषयाश्चेन्द्रियाणि च ।
एत एव समाख्याता ज्ञातयो देहिनस्तव ॥

इतीन्द्रियादीनां ज्ञातिशब्देनोक्तत्वादिन्द्रियादीनां मध्ये वसन् पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् गच्छन् अश्नन् मन्यमानो विजानन्नपि नैवमात्मानं प्रमात्रादिरूपेण विन्देत प्रतिपद्येत, तत्साक्षित्वादात्मनः । तथा च श्रुतिः—'अथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा' इति । देहद्वयतद्धर्मानात्मत्वेन न गृह्णीयादित्यर्थः ॥ ३१ ॥

'जो कोई न साधुको न असाधुको, न विद्वान्को न अविद्वान्को और न सदाचारीको या दुराचारीको ही जानता है, वह ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) है । बुद्धिमान् पुरुषको सब कुछ जानते हुए भी लोकमें जडवत् आचरण करना चाहिये ।' इत्यादि । तात्पर्य यह है कि ऐसे पुरुषको ही ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिरूप मोक्ष मिल सकता है, विक्षेपकी अधिकताके कारण दूसरेको नहीं मिल सकता ।

अथवा ['नित्यमज्ञातचर्या मे' इस वाक्यका ऐसा अर्थ करना चाहिये कि] 'जो अज्ञात अर्थात् नेत्रादिका अविषय, वाणीका अगोचर, उदय और अस्तसे रहित, केवल ज्ञानस्वरूपसे स्थित, क्षुधा-पिपासादिसे असंस्पृष्ट, पूर्णानन्दस्वरूप, सर्वान्तर और सबका अन्तरात्मस्वरूप है, उस ब्रह्ममें ही मुझे चर्या—समाधिरूप निष्ठा करनी चाहिये; मैं स्थूल हूँ, कृश हूँ, जाता हूँ, बैठता हूँ, नपुंसक हूँ, काना हूँ, गूँगा हूँ, बहिरा हूँ, उसका पुत्र हूँ, इसका नाती हूँ, ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ, मेरे स्त्री है, मेरे पुत्र है, मेरे वैभव है, मेरे प्रिय बन्धु-बान्धव हैं—इस प्रकार देह, इन्द्रिय, पुत्र, मित्र एवं स्त्री आदि बाह्य पदार्थोंमें निष्ठा नहीं करनी चाहिये'—ऐसा ब्राह्मण यानी ब्रह्मवेत्ताको विचार रखना उचित है । 'जिसे कोई प्रेमसे नहीं देखता, बल्कि जिससे नेत्रोंको देखता है, वही ब्रह्म है' यह श्रुति भी ऐसा ही बतलाती है ।

इस प्रकार क्योंकि अज्ञात ब्रह्ममें ही निष्ठा करनी चाहिये, इसलिये ज्ञातियोंके 'क्रोध एवं मानादि दोष, विषय एवं इन्द्रियाँ—ये ही तुझ देहधारीके ज्ञाति कहे गये हैं' इस प्रकार 'ज्ञाति' शब्दसे इन्द्रियादि ही कहे गये हैं; अतः ज्ञातियोंके—इन्द्रियादिके मध्यमें रहते हुए अर्थात् देखते, सुनते, स्पर्श करते, सूँघते, चलते, भोजन करते, विचार करते और विशेषरूपसे जानते हुए भी आत्माको ऐसा अर्थात् प्रमातादिरूप न जाने, क्योंकि आत्मा तो इन सबका साक्षी है । 'और जो यह जानता है कि मैं सूँघता हूँ, वह आत्मा है' यह श्रुति भी ऐसा ही कहती है । अतः तात्पर्य यह है कि [स्थूल-सूक्ष्म] दोनों प्रकारके शरीर और उनके धर्मोंको आत्मस्वरूपसे ग्रहण न करे ॥ ३१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्माकी दुर्बोधता

कस्मात् पुनरेवं न गृह्यत इत्याह--

किंतु आत्मा इस प्रकार अनुभव क्यों नहीं होता ? सो बतलाते हैं—

को ह्येवमन्तरात्मानं ब्राह्मणो मन्तुमर्हति ।
निर्लिङ्गमचलं शुद्धं सर्वद्वन्द्वविवर्जितम् ॥ ३२ ॥

जो अलिङ्ग, अविचल, शुद्ध और सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित है, ऐसे उस अन्तरात्माको कौन ब्रह्मवेत्ता इस प्रकार [विषयरूपसे] जान सकता है ? ॥ ३२ ॥

को हि निर्लिङ्गं स्थूलसूक्ष्मवर्जितम् अचलं क्रियाकर्त्रादिशून्यं शुद्धम् अविद्यादिदोषरहितं सर्वद्वन्द्वविवर्जितम् अशनायापिपासाशोकमोहजरामृत्युशीतोष्णसुखदुःखादिधर्मविवर्जितम् अन्तरात्मानं सर्वान्तरं प्रमात्रादिसाक्षिणमात्मानं मानाविषयभूतम् एवम् उक्तेन प्रकारेण देहद्वयतद्धर्मतया 'स्थूलोऽहं कृशोऽहं गच्छामि पश्यामि मूको बधिरः काणः सुख्यहं दुःख्यहम्' इति ब्राह्मणः सन् मन्तुमर्हति । तथा सति ब्राह्मणत्वमेव हीयेत इत्यर्थः । वक्ष्यति च—'य एव सत्यान्नापैति स ज्ञेयो ब्राह्मणस्त्वया' इति ॥ ३२ ॥

जो निर्लिङ्ग—स्थूल-सूक्ष्म-भेदसे रहित, अचल—कर्ता-क्रिया आदिसे शून्य, शुद्ध—अविद्यादि दोषोंसे रहित, सर्वद्वन्द्वविवर्जित—क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह, जरा-मृत्यु, शीत-उष्ण एवं सुख-दुःखादि धर्मोंसे रहित है, उस अन्तरात्मा अर्थात् प्रमातादिके साक्षी, प्रमाणके अविषय, सर्वान्तर्भूत आत्माको ऐसा कौन है, जो ब्राह्मण (ब्रह्मवित्) होकर इस प्रकार यानी उपर्युक्तरूपसे 'मैं स्थूल हूँ, कृश हूँ, चलता हूँ, देखता हूँ, गूँगा हूँ, बहिरा हूँ, काना हूँ, सुखी हूँ, दुखी हूँ' इस तरह स्थूल-सूक्ष्म देह और उनके धर्मरूपसे जान सके । तात्पर्य यह है कि ऐसा होनेपर तो उसका ब्राह्मणत्व ही नष्ट हो जायगा । ऐसा ही 'जो सत्यसे च्युत नहीं होता, उसीको तुम्हें ब्राह्मण जानना चाहिये' इस वाक्यसे आगे कहेंगे भी ॥ ३२ ॥

अनात्मज्ञकी निन्दा

यस्त्वेवं मनुते स पापीयानित्याह—

अब यह कहते हैं कि जो [आत्माको] ऐसा मानता है, वह तो बड़ा पापी है—

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।
किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा ॥ ३३ ॥

जो अन्य प्रकारका होते हुए भी आत्माको अन्य प्रकारका समझता है, आत्माका अपहरण करनेवाले उस चोरने कौन पाप नहीं किया ? ॥ ३३ ॥

योऽन्यथा सन्तमात्मानं ज्ञानात्मना निर्लिङ्गममलं शुद्धं सर्वद्वन्द्वविवर्जितं चित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मना सन्तं स्वमात्मानम्, अन्यथा देहद्वयतद्धर्मात्मतया

जो आत्माको अन्य प्रकारका होते हुए अर्थात् अपने ज्ञानस्वरूपसे अलिङ्ग, निर्मल, शुद्ध, सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित तथा सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मरूप होते हुए उसे अन्य प्रकार अर्थात् [स्थूल-सूक्ष्म] देहद्वय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी स्थूलोऽहं कृशोऽहं अमुष्य पुत्रोऽस्य नप्ता ब्राह्मणोऽहं क्षत्रियोऽहम्' इत्येवमात्मना प्रतिपद्यते किं तेन मूर्खेणानात्मविदा आत्मचोरेणात्मायहारिणा न कृतं पापम्। महापातकादि सर्वं तेनैव कृतमित्यर्थः। तथा च श्रुतिः—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

इति। तथा चोक्तम्—

ब्राह्मण्यं प्राप्य लोकेऽस्मिन् मूको वा बधिरो भवेत्।
नापक्रामति संसारात् स खलु ब्रह्मघातकः॥

इति। तस्माद्विषयभूतदेहेन्द्रियादिष्वात्मभावं परित्यज्य अज्ञात एव वागाद्यगोचरे परमात्मनि निष्ठा कर्तव्येत्यर्थः॥ ३३॥

और उनके धर्मरूपसे 'मैं कर्ता, भोक्ता, सुखी या दुखी हूँ, मैं स्थूल हूँ, कृश हूँ, उसका पुत्र हूँ, इसका नाती हूँ, ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ' इत्यादि प्रकारसे जानता है, उस आत्मचोर, आत्माका अपहरण करनेवाले मूर्ख अनात्मज्ञके द्वारा कौन पाप नहीं किया गया? अर्थात् उससे तो सारे ही महापातकादि हो गये। ऐसा ही श्रुति भी कहती है—'घोर अन्धकारसे आच्छादित वे आसुरी लोक हैं; जो आत्मघाती लोग हैं, वे मरकर उन्हींको प्राप्त होते हैं।' तथा स्मृति कहती है—'ब्रह्मपदको प्राप्त कर उसे इस लोकमें गूँगे और बहरेके समान हो जाना चाहिये। जो इस संसारसे ऊपर नहीं उठता, वह निश्चय ही ब्रह्मघाती है।' अतः तात्पर्य यह है कि विषयभूत देह एवं इन्द्रियादिमें आत्मभाव त्याग कर वागादि इन्द्रियोंके अविषय अज्ञात परमात्मामें ही निष्ठा करनी चाहिये॥ ३३॥

आत्मज्ञका व्यवहार

अन्यथा देहेन्द्रियतद्धर्मानननुपाददतः किं भवतीत्यत आह—

इसके विपरीत जो देह, इन्द्रिय और उनके धर्मोंको अपनेमें ग्रहण नहीं करता, उसे क्या होता है—सो अब बतलाते हैं—

अश्रान्तः स्यादनादाता सम्मतो निरुपद्रवः।
शिष्टो न शिष्टवत् स स्याद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित् कविः॥ ३४॥

अपनेमें अनात्मधर्मोंको ग्रहण न करनेवाला पुरुष श्रमहीन और निरुपद्रव हो जाय तथा विद्वानोंद्वारा भद्र पुरुष समझे जानेपर भी वह ब्रह्मवेत्ता क्रान्तदर्शी ब्राह्मण भद्र पुरुषोंका-सा आचरण न करे॥ ३४॥

योऽनादाता अनात्मभूतदेहेन्द्रियतद्धर्मानात्मत्वेन नोपादत्ते स पुरुषोऽश्रान्तः स्यात्—संसारश्रमयुक्तो न भवेत्, अशनायादेर्देहादिधर्मत्वात्। तथा च श्रुतिः—'अशनायापिपासे प्राणस्य शोकमोहौ मनसो जरामरणे शरीरस्य' इति। देहद्वयाध्यासे हि तद्धर्माध्यासो भवति। एवमश्रान्ततया निरुपद्रवो भवति। क्रोधहर्षलोभमोहादयोऽन्तराया उपद्रवाः, तद्धीनो निरुपद्रवः, स सम्मतः शिष्टत्वेन विद्वद्भिः

जो अनादाता है अर्थात् अनात्मभूत देह, इन्द्रिय और उनके धर्मोंको आत्मभावसे ग्रहण नहीं करता, वह पुरुष श्रमहीन हो जाय—संसाररूप श्रमसे युक्त न हो; क्योंकि क्षुधा आदि देहादिके ही धर्म हैं। ऐसी ही श्रुति भी है—'भूख-प्यास प्राणके धर्म हैं, शोक-मोह मनके हैं और जरा-मरण शरीरके।' देहद्वयका अध्यास होनेपर ही उनके धर्मोंका अध्यास होता है। इस प्रकार श्रमहीन हो जानेसे वह निरुपद्रव हो जाता है। क्रोध, हर्ष, लोभ एवं मोह आदि अन्तराय ही उपद्रव हैं, उनसे रहित होनेसे वह निरुपद्रव हो जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्मतः शिष्टवन्न स्यात्, न आचरेत्, जडवच्चरेद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्कविः ॥ ३४ ॥

उसे विद्वान्लोग शिष्ट समझते हैं। परंतु वह शिष्टवत् व्यवहार न करे, बल्कि उस ब्रह्मवेत्ता क्रान्तदर्शी ब्राह्मणको जडवत् आचरण करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अगूढचारीकी निन्दा

इदानीमगूढचारिणं कुत्सयन्नाह—

अब गूढवृत्तिसे आचरण न करनेवालेकी निन्दा करते हुए कहते हैं—

ये यथा वान्तमश्नन्ति बाला नित्यमभूतये।
एवं ते वान्तमश्नन्ति स्ववीर्यस्योपभोजनात् ॥ ३५ ॥

जिस प्रकार बालक अपने वमन किये हुएको खा जाते हैं, उसी प्रकार [जो ब्रह्मवेत्ता अपना माहात्म्य दिखलाते हुए प्रच्छन्नरूपसे नहीं रहते] वे अपने वीर्य (पुरुषार्थ) का उपभोग करनेके कारण अपने अधः-पतनके लिये मानो वमन ही भक्षण करते हैं ॥ ३५ ॥

'मूढो बाल इति प्रोक्तः श्वा च बाल इति स्मृतः' इति दर्शनाद् यथा बालाः श्वानो वा मूढा वा वान्तम् उद्गीर्णमश्नन्ति, एवं ये शिष्टा ब्रह्मविदः स्वमाहात्म्यं ख्यापयन्तोऽगूढचारिणो वर्तन्ते, ते वान्तमुद्गीर्णमश्नन्ति स्ववीर्यस्योपभोजनात्। यदिदं वान्ताशनं तदिदमभूतयेऽनर्थायैवेत्यर्थः। तस्माद् गूढः सन्नशिष्टवदेव समाचरेदित्यर्थः ॥ ३५ ॥

'मूढ पुरुषको 'बाल' कहा जाता है और कुत्ता 'बाल' कहा गया है' ऐसा देखे जानेके कारण, जिस प्रकार बाल यानी कुत्ता या मूर्खलोग अपने वमन—उल्टी किये हुए पदार्थको खा जाते हैं, उसी प्रकार जो शिष्ट ब्रह्मवेत्ता अपनी महिमाको प्रकट करते हुए गूढ आचरण नहीं करते, वे अपने वीर्यका उपभोग करनेके कारण वमन—उल्टीको ही भक्षण करते हैं। तात्पर्य यह है कि उनका जो यह वमन-भक्षण करना है, वह उनकी अभूति यानी अनर्थके ही लिये होता है। अतः गूढ रहकर असभ्य पुरुषोंके ही समान आचरण करे—ऐसा इसका अभिप्राय है ॥ ३५ ॥

ज्ञानीकी प्रशंसा

इदानीं योगिनः प्रशंसन्नाह—

अब योगियोंकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

अनाढ्या मानुषे वित्ते आढ्या वेदेषु ये द्विजाः।
ते दुर्धर्षा दुष्प्रकम्प्या विद्यात्तान् ब्रह्मणस्तनुम् ॥ ३६ ॥

जो द्विज मानुषी सम्पत्तिमें असम्पन्न और वैदिक साधनोंमें सम्पन्न हैं, वे दुर्धर्ष यानी दुर्दमनीय होते हैं; उन्हें ब्रह्मस्वरूप ही जानना चाहिये ॥ ३६ ॥

अनाढ्या अबहुमता असक्तात्मानो मानुषे वित्ते जायापुत्रवित्तादिषु, आढ्या वेदेषु वेदप्रति

जो द्विज स्त्री, पुत्र एवं धन आदि मानुषी सम्पत्तिमें अनाढ्य—अधिक न माने जानेवाले यानी अनासक्तचित्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाद्याहिंसासत्यास्तेयापरिग्रहब्रह्मचर्यसमाधिसाधनेषु ये द्विजास्ते दुर्द्धर्षा दुष्प्रकम्प्याः । विद्यात्तान् ब्रह्मणस्तनुम् । ब्रह्मस्वरूपभूतान् इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

और वेदों यानी वेदप्रतिपाद्य अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्यादि समाधिके साधनोंमें आढ्य—सम्पन्न हैं, वे दुर्धर्ष यानी दुर्दमनीय होते हैं । उन्हें ब्रह्मका शरीर अर्थात् ब्रह्मके स्वरूपभूत समझना चाहिये—ऐसा इसका तात्पर्य है ॥ ३६ ॥

किं च ब्रह्मविन्महिमैषः—

तथा ब्रह्मवेत्ताकी तो ऐसी महिमा है कि—

सर्वान् स्विष्टकृतो देवान् विद्याद् य इह कश्चन ।
न समानो ब्राह्मणस्य यस्मिन् प्रयतते स्वयम् ॥ ३७ ॥

इस लोकमें जो कोई सम्यक् प्रकारसे इष्टसिद्धि करनेवाले समस्त देवताओंको जानता है तथा जिसके यजनके लिये वह स्वयं प्रयत्न करता है, वह देवता भी इस ब्राह्मणके समान नहीं होता ॥ ३७ ॥

सर्वानग्न्यादीन् स्विष्टकृतः सुष्ठु इष्टं कुर्वन्तीति । तथा च श्रुतिः—'स्विष्टं कुर्वन् स्विष्टकृत्' इति । देवान् प्रत्येकमुद्दिश्य त्यागार्थं विद्याद् य इह कश्चन सर्वदेवतायाज्यपि ब्राह्मणस्य न समानो ब्राह्मणेन ब्रह्मविदा न समान इत्यर्थः ।

नैतदाश्चर्यम्—यस्मिन् देवताविशेषे हविष उद्देशत्यागेन फलार्थं प्रयतते स्वयं यजमानः 'इदमग्नये इदमिन्द्राय' इति सोऽपि हविष्प्रतियोगी देवताविशेषो न समानो ब्रह्मविदा, किमु वक्तव्यं देवपशुर्यजमानो न समान इति । तथा च मोक्षधर्मे—

ब्राह्मणस्य न सादृश्ये वर्तते सोऽपि किं पुनः ।
इज्यते येन मन्त्रेण यजमानो द्विजोत्तमः ॥
इति । तथा चाह भगवान् मनुः—
ब्रह्मविद्भ्यः परं भूतं न किंचिदिह विद्यते । इति ॥ ३७ ॥

जो कोई अग्नि आदि सम्पूर्ण स्विष्टकृत्—जो सम्यक् इष्ट करते हैं, जैसा कि 'सम्यक् इष्ट करनेसे स्विष्टकृत्' यह श्रुति कहती है, उन देवताओंमेंसे प्रत्येकको उनके उद्देश्यसे हविर्दान करनेके लिये जानता है, ऐसा जो कोई भी इस लोकमें समस्त देवताओंका यजन करनेवाला है, वह भी इस ब्राह्मण यानी ब्रह्मवेत्ताके समान नहीं है—ऐसा इसका तात्पर्य है ।

यह कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि जिस देवता-विशेषके प्रति 'यह अग्निके लिये है, यह इन्द्रके लिये है' ऐसा कहकर हविका फलत्याग करते हुए यजमान फलप्राप्तिके लिये प्रयत्न करता है, वह उस हविका प्रतियोगी देवताविशेष भी ब्रह्मवेत्ताके समान नहीं होता; फिर उस देवताका पशु यजमान उसके समान नहीं है—इस विषयमें तो कहना ही क्या है ? ऐसा ही मोक्षधर्ममें भी कहा है—'ब्राह्मणकी तुलनामें तो वह (देवता) भी नहीं है; फिर जिस मन्त्रसे उसका यजन किया जाता है और जो द्विजश्रेष्ठ यजन करता है, उनका तो कहना ही क्या है ?' तथा भगवान् मनु भी कहते हैं—'ब्रह्मवेत्ताओंसे बड़ा इस लोकमें और कोई नहीं है ।' इत्यादि ॥ ३७ ॥

पुनरपि तस्यैव समाचारमाह—

फिर भी उसीके आचरणका वर्णन करते हैं—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यमप्रयतमानं तु मानयन्ति स मानितः।
न मान्यमानो मन्येत नावमानेऽनुसंज्वरेत् ॥ ३८ ॥

[अपनी ओरसे] कोई प्रयत्न न करनेवाले जिस ब्रह्मवेत्ताका विज्ञजन मान करें, उनसे सम्मानित हुए उस [महापुरुष] को 'मैं सम्मानित हुआ हूँ' ऐसा नहीं मानना चाहिये और कभी अपमानित होनेपर संतप्त नहीं होना चाहिये ॥ ३८ ॥

यं ब्रह्मविदम् अप्रयतमानं तूष्णींभूतं सर्वोपसंहारं कृत्वा स्वे महिम्नि व्यवस्थितं ब्रह्मचर्यादेव कृतसंन्यासिनं वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थं परमहंसपरिव्राजकाचार्यं गूढचारिणं केचिद्विद्वांसः स्थितप्रज्ञलक्षणज्ञा ब्रह्मविदिति मत्वा मानयन्ति पूजयन्ति चेत्, स तैः पूजितो विद्वान् न 'मान्यमानः अहम्' इति मन्येत। तथा, स्थितप्रज्ञलक्षणानामनभिज्ञाः 'जड इति' मत्वा अवमानं कुर्वन्ति इति चेत् तस्मिन् अवमाने निमित्ते नानुसंज्वरेत्—नानुतप्येत् ॥ ३८ ॥

किसी प्रकारका प्रयत्न न करनेवाले, मौनावलम्बी, सम्पूर्ण विषयोंका उपसंहार कर अपनी महिमामें स्थित, ब्रह्मचर्यसे ही संन्यास करनेवाले, वेदान्त-विचारद्वारा परमार्थतत्त्वमें सुनिश्चित तथा अज्ञातरूपसे आचरण करनेवाले जिस परमहंस-परिव्राजकाचार्यका कोई स्थितप्रज्ञके लक्षण जाननेवाले विद्वान् 'यह ब्रह्मवेत्ता है' ऐसा मानकर सत्कार यानी पूजन करें तो उनसे पूजित हुआ वह विद्वान् 'मैं सम्मानित हुआ हूँ' ऐसा न माने और यदि स्थितप्रज्ञके लक्षण न जाननेवाले पुरुष 'यह मूर्ख है' ऐसा समझकर उसका अपमान करें तो उस अपमानके कारण उसे अनुताप नहीं करना चाहिये ॥ ३८ ॥

मानापमानमें ज्ञानीकी स्थिति

कथं तर्हि मानितेनावमानितेन वा मन्तव्यम् ? इत्याह श्लोकद्वयेन—

अब दो श्लोकोंसे यह बतलाते हैं कि सम्मानित या अपमानित होनेपर उसे क्या समझना चाहिये—

लोकस्वभाववृत्तिर्हि निमेषोन्मेषवत् सदा।
विद्वांसो मानयन्तीह इति मन्येत मानितः ॥ ३९ ॥
अधर्मविदुषो मूढा लोकशास्त्रविवर्जिताः।
न मान्यं मानयिष्यन्ति इति मन्येदमानितः ॥ ४० ॥

सम्मान होनेपर उसे ऐसा मानना चाहिये कि [नेत्रोंके] निमेषोन्मेषके समान यह लोककी स्वाभाविकी ही वृत्ति है कि यहाँ विद्वान् लोग मान करते हैं तथा अपमान होनेपर उसे ऐसा समझना चाहिये कि जो धर्मको न जाननेवाले मूढ़ और लोक एवं शास्त्रसम्बन्धी आचरणसे अनभिज्ञ हैं, वे कभी माननीयोंका मान नहीं करेंगे ॥ ३९-४० ॥

यदिदं विद्वांसो ब्रह्मविदं मानयन्ति इति तत्तेषां निमेषोन्मेषवत् स्वभाववृत्तिः स्वाभाविकी प्रवृत्तिरिति मन्येत। तथा, अवमानितो जनैरवज्ञातो

ये विद्वान् लोग जो ब्रह्मवेत्ताका मान करते हैं, वह निमेषोन्मेषके समान उनकी स्वभाववृत्ति—स्वाभाविकी प्रवृत्ति है—ऐसा उसे [मान होनेपर] मानना चाहिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विद्वानेवं मन्येत--अधर्मविदुषो मूढा विवेकहीना लोकशास्त्रविवर्जिता न मान्यं मानार्हं मानयिष्यन्ति, अमान्यमपि मानयिष्यन्ति, इत्येतदविदुषां स्वभाव इति मन्येत अमानितोऽपूजितो विद्वान् ॥ ३९-४० ॥

तथा लोगोंद्वारा अपमानित होनेपर उस अपमानित विद्वान्को ऐसा समझना चाहिये कि जो धर्मसे अनभिज्ञ, मूढ़—विवेकहीन तथा लोक और शास्त्रसे बाह्य हैं, वे कभी माननीयोंका मान नहीं करेंगे और कभी अमाननीयका भी सम्मान करने लगेंगे--यह भी अज्ञानियोंका स्वभाव ही है ॥ ३९-४० ॥

मान और मौनके विभिन्न फल

इदानीं मानमौनयोर्भिन्नविषयत्वमाह—

अब मान और मौनकी भिन्नविषयताका वर्णन करते हैं—

न वै मानश्च मौनं च सहितौ वसतः सदा ।
अयं मानस्य विषयो ह्यसौ मौनस्य तद्विदुः ॥ ४१ ॥

सर्वदा ही मान और मौन—ये दोनों साथ-साथ नहीं रहते । मानका विषय तो यह (दृश्यमान लोक) है और मौनका विषय वह (परलोक) है, जो तत् (ब्रह्म) नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४१ ॥

न वै मानश्च मौनं च सहितौ एकत्र वसतः सदा । अयं प्रत्यक्षादिगोचरो लोको—लोक्यत इति प्रपञ्चो मानस्य विषयः । असौ परलोको मौनस्य । कोऽसौ । तद् विदुः । तदिति ब्रह्मणो नाम । तथा चाह भगवान्—

'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः' इति । तथा चानुगीतासु—

'ॐ तत्सद्विष्णवे चेति सायुज्यादिप्रदानि वै ।' इति तच्छब्दवाच्यं ब्रह्म मौनस्य विषय इत्यर्थः । एतदुक्तं भवति—मानात्संसारप्राप्तिः, मौनेन ब्रह्मप्राप्तिरिति । उक्तं च हैरण्यगर्भे—

अन्नाङ्गनादिभोगेषु भावो मान इति स्मृतः ।
ब्रह्मानन्दसुखप्राप्तिहेतुर्मौनमिति स्मृतम् ।इति।४१।

सदा ही मान और मौन—ये साथ-साथ अर्थात् एक जगह नहीं रहते । तात्पर्य यह है कि यह प्रत्यक्षादिका विषयभूत लोक—जो दिखायी देता है ऐसा यह प्रपञ्च तो मानका विषय है और वह परलोक मौनका विषय है। वह परलोक कौन-सा है ? जिसे 'तत्' नामसे जानते हैं । 'तत्' यह ब्रह्मका नाम है; जैसा कि भगवान्ने कहा है—'ॐ तत्सत्'—यह तीन प्रकारका ब्रह्मका ही निर्देश (सूचक-नाम) माना गया है ।' तथा अनुगीतामें कहा है—'ॐ तत्सद्विष्णवे' ये पद निश्चय ही सायुज्य आदि मुक्तियाँ प्रदान करनेवाले हैं । तात्पर्य यह है कि 'तत्'शब्दवाच्य ब्रह्म मौनका विषय है । [इस सबसे] यही कहा है कि 'मानसे संसारकी प्राप्ति होती है और मौनसे ब्रह्मकी ।' हिरण्यगर्भसंहितामें भी कहा है--'अन्न और स्त्री आदि भोगोंमें मनकी प्रवृत्ति होना 'मान' कहा गया है तथा मौन ब्रह्मानन्दके सुखकी प्राप्तिका कारण है—ऐसा कहा है' ॥ ४१ ॥

इदानीं मानार्थसंवासेऽपवर्गाभावं दर्शयति—

अब मानसम्बन्धी विषयोंमें रहनेसे मोक्षका अभाव दिखलाते हैं—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीर्हि मानार्थसंवासात् सा चापि परिपन्थिनी ।
ब्राह्मी सुदुर्लभा श्रीर्हि प्रज्ञाहीनेन क्षत्रिय ॥ ४२ ॥

मानसम्बन्धी विषयोंमें रहनेसे लक्ष्मी प्राप्त होती है, परंतु वह भी कल्याण-मार्गकी तो विरोधिनी ही है। हे क्षत्रिय ! ज्ञानहीन पुरुषको ब्राह्मी लक्ष्मी तो अत्यन्त दुर्लभ ही है ॥ ४२ ॥

हे क्षत्रिय ! मानार्थसंवासान्मानविषयसंवासान्मानगोचरे प्रपञ्चे वर्तमानस्य स्वर्गपश्वन्नादिसाधनभूतं कर्मानुतिष्ठतो विषयविषान्धस्य श्रीर्हि भवति । सा चापि श्रीः परिपन्थिनी श्रेयोमार्गविरोधिनी । तथा च मोक्षधर्मे—

निबन्धिनी रज्जुरेषा या ग्रामे वसतौ रतिः ।
छित्त्वैनां सुकृतो यान्ति नैनं छिन्दन्ति दुष्कृतः ॥ इति ।

य एवं श्रियाभिभूतो मूढः सन् विषयेषु प्रवर्तते तेन प्रज्ञाहीनेन विद्याहीनेन ब्राह्मी ब्रह्मानन्दलक्षणा श्रीः सुदुर्लभा । तथा च हैरण्यगर्भे—

या नित्या चिद्घनानन्दा गुणरूपविवर्जिता ।
आनन्दाख्या परा शुद्धा ब्राह्मी श्रीरिति कथ्यते ॥ इति ।

सा च सुदुर्लभा श्रवणायापि न शक्या । तथा च श्रुतिः—'श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः' इति ॥ ४२ ॥

हे क्षत्रिय ! मानार्थसंवाससे—मानसम्बन्धी विषयोंमें रहनेसे अर्थात् मानविषयक प्रपञ्चमें विचरनेवाले यानी स्वर्ग, पशु एवं अन्नादिके साधनभूत कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले विषय-विषान्ध पुरुषको लक्ष्मी ही मिलती है; किंतु वह लक्ष्मी भी परिपन्थिनी अर्थात् श्रेयोमार्गकी विरोधिनी ही है । जैसा कि मोक्षधर्ममें भी कहा है—'ग्रामके भीतर रहनेमें जो राग होता है, यह बाँधनेवाली रस्सी ही है । पुण्यात्मा लोग इसका छेदन करके निकल जाते हैं; किंतु पुण्यहीन लोग इसका छेदन नहीं कर पाते ।'

जो इस प्रकार लक्ष्मीके चंगुलमें फँसकर अविवेकी हुआ विषयोंमें प्रवृत्त होता है, उस प्रज्ञाहीन यानी ज्ञानहीन पुरुषको ब्राह्मी—ब्रह्मानन्दरूपा लक्ष्मी अत्यन्त दुर्लभ है । ऐसा ही हिरण्यगर्भसंहितामें कहा है—'जो नित्य, चिद्घनानन्दस्वरूपा तथा गुण और रूपसे रहित है, वह आनन्द नामवाली परमशुद्धा ब्राह्मी श्री कही जाती है ।' किंतु वह है बड़ी दुर्लभ—वह सुननेके लिये भी मिलनी कठिन है । जैसा कि श्रुति कहती है—'जो बहुतोंको तो सुननेके लिये भी मिलनेवाला नहीं है' इत्यादि ॥ ४२ ॥

ब्राह्मी लक्ष्मीमें प्रवेशके द्वार

इदानीं ब्रह्मलक्ष्मीप्रवेशद्वाराणि दर्शयति— | अब ब्राह्मी लक्ष्मीमें प्रवेश करनेके द्वार दिखलाते हैं—

द्वाराणि सम्यक् प्रवदन्ति सन्तो बहुप्रकाराणि दुराचराणि ।
सत्यार्जवे ह्रीर्दमशौचविद्याः षण्मानमोहप्रतिबन्धकानि ॥ ४३ ॥

संतजन [उसमें प्रवेश करनेके] अनेक प्रकारके दुश्चर द्वारोंका सम्यक् प्रकारसे वर्णन करते हैं । सत्य, आर्जव, ह्री, दम, शौच और विद्या—ये छः गुण मान और मोहके प्रतिबन्धक हैं ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि धृतराष्ट्रसनत्सुजातसंवादे श्रीसनत्सुजातीये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वाराणि ब्रह्मलक्ष्मीप्रवेशद्वाराणि सन्तः सम्यक् प्रवदन्ति बहुप्रकाराणि दुराचराणि दुःखाचरणानि । कानि तानि ? सत्यार्जवे—सत्यं यथार्थभाषणं भूतहितं च । आर्जवम्, अकौटिल्यम् । ह्रीः, अकार्यकरणे लज्जा । दमशौचविद्याः—दमः—अन्तःकरणोपरतिः । बहिःकरणोपरतिरिति केचित् । शौचं कल्मषप्रक्षालनम् । विद्या ब्रह्मविद्या । षडेतानि मानमोहप्रतिबन्धकानि ॥ ४३ ॥

संतजन ब्रह्मलक्ष्मीके प्रवेश करनेके अनेक प्रकारके दुराचार—कठिनतासे आचरण किये जानेवाले द्वारोंका वर्णन करते हैं । वे द्वार कौन-से हैं ? [इसपर कहते हैं—] 'सत्यार्जवे'—'सत्य' अर्थात् प्राणियोंके लिये हितकर और यथार्थ भाषण, 'आर्जव'—अकुटिलता, 'ह्री' न करनेयोग्य कार्यके करनेमें संकोच होना, 'दमशौचविद्याः'—अर्थात् 'दम'—अन्तःकरणकी शान्ति, विषयोंसे उपरति; किसी-किसीके मतमें बाह्य करणों (नेत्रादि इन्द्रियों) की विषयोंसे उपरति; 'शौच'—मलिनताका मार्जन तथा 'विद्या'—ब्रह्मविद्या । ये छः गुण मान और मोहके प्रतिबन्धक हैं ॥ ४३ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीशंकरभगवतः कृतौ सनत्सुजातीयभाष्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

मौनविषयक प्रश्न

अयं मानस्येत्यादिना मौनमाहात्म्यं प्रदर्शितं श्रुत्वा प्राह धृतराष्ट्रः—

'अयं मानस्य' इत्यादि श्लोकोंसे दिखलाये गये मौनके माहात्म्यको सुनकर धृतराष्ट्रने कहा—

धृतराष्ट्र उवाच—

कस्यैष मौनः कतरन्नु मौनं प्रब्रूहि विद्वन्निह मौनभावम् ।
मौनेन विद्वानुपयाति मौनं कथं मुने मौनमिहाचरन्ति ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले—यह मौन किसे होता है और किस प्रकारका यह मौन है ? हे विद्वन् ! आप मौनका स्वरूप वर्णन कीजिये । क्या विद्वान् [वाणीके] मौनद्वारा मौन (ब्रह्म) को प्राप्त कर सकता है ? हे मुने ! इस लोकमें लोग किस प्रकार मौनका आचरण करते हैं ? ॥ १ ॥

कस्य कीदृशस्य एष पूर्वोक्तो वागाद्युपरतिलक्षणो मौनो भवति? कतरन्नु एतयोरसम्भाषणात्मस्वरूपयोर्मौनम् ? प्रब्रूहि हे विद्वन् ! इह मौनभावम् । मौनस्य स्वभावम् । मौनेन तूष्णींभावेन विद्वानुपयाति मौनं ब्रह्म, आहोस्विदन्येन ? कथं मुने ! मौनमिहाचरन्ति ? ॥ १ ॥

किसे अर्थात् किस प्रकारके पुरुषको यह वाणी आदिकी निवृत्तिरूप पूर्वोक्त मौन हो सकता है ? तथा यह असम्भाषण एवं आत्मस्वरूप मौनोंमेंसे कौन-सा मौन है ? हे विद्वन् ! वह आप मौनभाव अर्थात् मौनके स्वभावका वर्णन कीजिये । विद्वान् असम्भाषणरूप मौनके द्वारा मौन—ब्रह्मको प्राप्त होता है अथवा [आत्मस्वरूप] दूसरे मौनके द्वारा ? हे मुने ! इस लोकमें लोग किस प्रकार मौनका आचरण करते हैं ? ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मौनका लक्षण

एवं पृष्टः प्राह भगवान्— | इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् सनत्सुजातने कहा-

सनत्सुजात उवाच—

यतो न वेदा मनसा सहैनमनुप्रविशन्ति ततः स मौनम् ।
यत्रोत्थितो वेदशब्दस्तथायं स तन्मयत्वेन विभाति राजन् ॥ २ ॥

श्रीसनत्सुजातजी बोले—हे राजन्! क्योंकि मनके सहित सम्पूर्ण वेद इस परमात्मामें प्रवेश नहीं कर सकते, इसलिये यही मौन है। जिस (संवेदनसंज्ञक अर्थ) में वाचकरूपसे 'वेद' शब्दका प्रयोग हुआ है, वैसा ही यह परमात्मा है और तद्रूप ही यह अनुभव भी होता है ॥ २ ॥

यतो यस्माद्वेदा मनसा सह एनं परमात्मानं नानुप्रविशन्ति । तथा च श्रुतिः—'यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह' इति । ततस्तस्मादेव कारणात् स एव वाचामगोचरः परमात्मा मौनम् ।

क्योंकि मनके सहित वेद इस परमात्मामें अनुप्रविष्ट नहीं हो सकते, इसलिये यह (परमात्मा) ही मौन है। जैसी कि श्रुति भी है—'जहाँसे मनके सहित वाणी न पहुँचकर लौट आती है।' अतः इसी कारण वाणीका अगोचर वह परमात्मा ही मौन है ।

यद्येवं किंलक्षणस्तर्हि परमात्मा ? तत्राह—यत्रोत्थितो वेदशब्दः—यस्मिन्नर्थे निमित्तभूते समुत्थितो वेदशब्दः, शास्त्रादिकारणं ब्रह्मेत्यर्थः । अथवा यस्मिन् संवेदनाख्ये उत्थितो वाचकत्वेन प्रयुक्तो वेदशब्द इत्यर्थः । तथा वेदशब्दप्रतिपाद्यः संविद्रूपोऽयं परमात्मा ।

यदि ऐसी बात है तो वह परमात्मा कैसे लक्षणोंवाला है ? इसपर कहते हैं—जहाँ अर्थात् अपने निमित्तभूत जिस अर्थमें 'वेद' शब्दका प्रयोग हुआ है! अर्थात् ब्रह्म शास्त्रादिका कारण है । अथवा यों समझो कि जिस संवेदनरूप अर्थमें उसके वाचकरूपसे 'वेद' शब्दका प्रयोग हुआ है [वह परमात्मा है]। इस प्रकार यह 'वेद' शब्दप्रतिपाद्य परमात्मा संविद्रूप है।

यदि वाचामगोचरः परमात्मा, कथमेतदवगम्यते संविद्रूपः परमात्मेति ? तत्राह—स परमात्मा तन्मयत्वेन ज्योतिर्मयत्वेनैवास्माकं विभाति राजन् । एवमेवास्मदनुभवो नात्राविश्वासः कर्तव्य इत्यर्थः । अथवा श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणादिषु ज्योतिर्मयत्वेन प्रतीयते । तथा च श्रुतिः—'तद्देवा ज्योतिषाम्', 'अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः' इति । तथा च भगवान्—ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते॥इति॥२॥

यदि परमात्मा वाणीका अविषय है तो यह कैसे जाना जाता है कि वह संवित्स्वरूप है ? इसपर कहते हैं—हे राजन्! वह परमात्मा हमें तन्मय यानी ज्योतिःस्वरूपसे ही प्रतीत होता है । हमारा अनुभव ऐसा ही है, अतः इसमें अविश्वास नहीं करना चाहिये—ऐसा इसका तात्पर्य है । अथवा यों समझो कि श्रुति-स्मृति-इतिहास एवं पुराणादिमें वह ज्योतिःस्वरूपसे प्रतीत होता है; जैसा कि श्रुति कहती है—'उसे देवगण ज्योतियोंका ज्योति बतलाते हैं,' 'वह शरीरके भीतर शुभ्र ज्योतिर्मय है, जिसे जिनके दोष क्षीण हो गये हैं, वे यतिजन देखते हैं।' इत्यादि । तथा भगवान् भी कहते हैं—'वह ज्योतियोंका भी ज्योति और अन्धकारसे अतीत कहा जाता है' ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेदाध्यायीको पापका लेप होता है या नहीं ?

इदानीं वेदस्वभावपरिज्ञानाय प्राह धृतराष्ट्रः— | अब वेदोंका स्वभाव जाननेके लिये धृतराष्ट्रने पूछा—

धृतराष्ट्र उवाच—

ऋचो यजूंष्यधीते यः सामवेदं च यो द्विजः।
पापानि कुर्वन् पापेन लिप्यते न स लिप्यते ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्र बोले—जो द्विज ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदका अध्ययन करता है, वह पाप करनेपर उनसे लिप्त होता है या नहीं ॥ ३ ॥

यः पापानि कुर्वन् ऋग्वेदादीनधीते स तेन वेदाध्ययनेन पूयते न वा ? एतद्वक्तुमर्हसीत्यभिप्रायः ॥ ३ ॥ | जो पापाचरण करते हुए ऋगादि वेदोंका अध्ययन करता है, वह उस वेदाध्ययनके द्वारा पवित्र होता है या नहीं ? यह आप वर्णन कीजिये—ऐसा इसका अभिप्राय है ॥ ३ ॥

वेदाध्ययन पापसे बचानेमें असमर्थ है

एवं पृष्टः प्राह भगवान्— | इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् सनत्सुजातने कहा—

सनत्सुजात उवाच—

नैनं सामान्यृचो वापि यजूंषि च विचक्षण।
त्रायन्ते कर्मणः पापान्न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम् ॥ ४ ॥

श्रीसनत्सुजातजी बोले—हे परम चतुर धृतराष्ट्र ! मैं तुमसे झूठ नहीं कहता, इसे सामवेद, ऋग्वेद अथवा यजुर्वेद कोई भी पाप-कर्मसे नहीं बचा सकते ॥ ४ ॥

यः पापानि कुर्वन् ऋग्वेदादीनधीते नैनं प्रतिषिद्धचारिणम् ऋग्वेदादयो वेदाः पापात्कर्मणस्त्रायन्ते न रक्षन्ति। न ते मिथ्या ब्रवीम्यहम्, एवमेवैतत्, नात्राविश्वासः कर्तव्य इत्यर्थः ॥ ४ ॥ | जो पापकर्म करता हुआ ऋग्वेदादिका अध्ययन करता है, उस निषिद्धाचारीकी ऋगादि वेद पापकर्मसे रक्षा नहीं कर सकते। मैं तुमसे झूठ नहीं कहता, यह बात ऐसी ही है। तुम्हें इसमें अविश्वास नहीं करना चाहिये—ऐसा इसका तात्पर्य है ॥ ४ ॥

किं कुर्वन्तीति चेत्, तत्राह— | तो वे क्या करते हैं ? ऐसा प्रश्न होनेपर कहते हैं—

न च्छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम्।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाखण्डवृत्तिसे रहनेवाले इस पाखण्डीको वेद पापसे मुक्त नहीं कर सकते; बल्कि जिस प्रकार पंख निकल आनेपर पक्षी घोंसलेको छोड़ देते हैं, उसी प्रकार अन्तकालमें वेद इसे छोड़ देते हैं ॥ ५ ॥

न च्छन्दांस्येनं वृजिनादधर्माच्नास्तिकं पापकारिणमधीतवेदमधीतवेदार्थं मायाविनं धर्मध्वजिनं मायया वर्तमानं मिथ्याचारिणं तारयन्ति न रक्षन्ति। किं करिष्यन्तीति चेत्—यथा शकुन्ताः पक्षिणो जातपक्षाः सन्तो नीडं स्वाश्रयं परित्यजन्ति, एवं छन्दांस्यन्तकाले मरणकाले एनं स्वाश्रयभूतं प्रजहन्ति परित्यजन्ति, न पुरुषार्थाय भवन्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥

इस अधीतवेद अर्थात् जिसने वेदार्थका अध्ययन किया है, ऐसे इस मायावी—धर्मध्वजी पापाचारी नास्तिकको जो माया (कपट) पूर्वक वर्ताव करता है अर्थात् मिथ्याचारी है, वेद वृजिन यानी पापसे नहीं तारते—वे [पापके परिणामसे] इसकी रक्षा नहीं करते। तो फिर क्या करते हैं—जिस प्रकार जिनके पंख निकल आते हैं, वे पक्षी अपने आश्रयभूत घोंसलेको छोड़ देते हैं, उसी प्रकार अन्तकाल यानी मरणकालमें अपने आश्रयभूत इस पापीको वेद छोड़ देते हैं; अर्थात् वे इसके पुरुषार्थके साधक नहीं होते ॥ ५ ॥

वेदाध्ययनकी उपयोगितामें धृतराष्ट्रकी शङ्का

एवमुक्ते प्राह धृतराष्ट्रः—

इस प्रकार कहे जानेपर धृतराष्ट्रने कहा—

धृतराष्ट्र उवाच—

न चेद्वेदा वेदविदं त्रातुं शक्ता विचक्षण।
अथ कस्मात् प्रलापोऽयं ब्राह्मणानां सनातनः ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र बोले—हे विद्वन्! यदि वेद वेदवेत्ताकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं तो इनके विषयमें ब्राह्मणोंका ऐसा सनातन प्रलाप—प्रवाद क्यों है? ॥ ६ ॥

'कर्मोदये' (अ० १ श्लो० १) इत्यादिना नित्यानां काम्यानां च पितृलोकादिप्राप्तिहेतुत्वेन संसारानर्थहेतुत्वस्य दर्शितत्वात् प्रतिषिद्धस्य कर्मणो नरकहेतुत्वेनानर्थहेतुत्वस्य च दर्शितत्वात्, न वेदा वेदविदं त्रातुं शक्ताश्चेत्, अथ कस्माद्धेतोरयं प्रलापः सनातनश्चिरन्तन इत्यर्थः। संसारानर्थहेतुत्वेन वेदाध्ययनतदर्थविचारतदर्थानुष्ठानानि न कर्तव्यानीत्यर्थः ॥ ६ ॥

'कर्मोदये' इत्यादि श्लोकसे नित्य एवं काम्य कर्मोंको पितृलोकादिकी प्राप्तिके हेतुरूपसे संसाररूप अनर्थके हेतु प्रदर्शित करनेके कारण तथा नरकके हेतुरूपसे प्रतिषिद्ध कर्मोंको भी अनर्थका हेतु बतलानेके कारण यदि वेद वेदवेत्ताकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं तो इनके विषयमें ऐसा सनातन—प्राचीनकालसे प्रलाप-प्रवाद क्यों है? तात्पर्य यह है कि इस प्रकार तो संसाररूप अनर्थके हेतु होनेके कारण वेदाध्ययन, वेदार्थका विचार तथा वेदविहित कर्मोंका अनुष्ठान ही नहीं करना चाहिये ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उक्त शङ्काका निरसन

भवेदयं प्रलापो यद्येष एव वेदार्थः स्यात्, अन्य एव स्वर्गादेः परमपुरुषार्थो मोक्षाख्यो वेदार्थः; इतरस्य च कर्मराशेः, उपासनायाश्च तत्प्राप्तिसाधनज्ञानसाधनान्तःकरणशुद्धिसाधनत्वेन पारम्पर्येण पुरुषार्थत्वादेव वेदप्रतिपाद्यत्वम्। तथा हि--तमेव परमात्मानं परमपुरुषार्थं दर्शयति वेदः--

अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्त्यविद्वांसोऽबुधा जनाः।इति।

स्वर्गादिलोकानामपुरुषार्थत्वमनानन्दात्मकत्वमविद्यावद्विषयत्वेन दर्शयित्वा,

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥

इत्यात्मविदः कृतकृत्यतां दर्शयित्वा,

'इहैव सन्तोऽथ विद्मस्तद्वयं न चेदवेदीन्महती विनष्टिः। य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति, अथेतरे दुःखमेवापियन्ति' ॥ इत्यात्मविदोऽमृतत्वप्राप्तिम् अनात्मविद आत्मविनाशमनर्थप्राप्तिं च दर्शयित्वा,

यदैतमनुपश्यति आत्मानं देवमञ्जसा।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते॥

इत्यादिभिर्वाक्यैस्तत्स्वरूपतदर्थतद्दर्शनतत्फलानि भूयो भूयो दर्शयित्वा, 'कथमेनं मकरादिभिरिव रागादिभिरितस्ततः समाकृष्यमाणं विषयाभिभूतं पापकारिणं मोक्षयित्वा परमपदे परमात्मनि पूर्णानन्दे स्वाराज्ये मोक्षाख्ये स्थापयिष्यामि' इति मत्वा तत्प्राप्तिसाधनज्ञानसाधनविविदिषासाधनत्वेन यज्ञादीन् विनियुङ्क्ते—'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन॥' इति।

यदि वेदका तात्पर्य यही होता तब तो अवश्य यह प्रलाप हो सकता था; परंतु वेदका तात्पर्यभूत मोक्षसंज्ञक परमपुरुषार्थ तो स्वर्गादिसे भिन्न ही है। अन्य जो कर्मसमूह और उपासनाएँ हैं, उनका वेदप्रतिपाद्यत्व तो मोक्षप्राप्तिके साधन ज्ञानकी साधनभूता अन्तःकरणकी शुद्धिके साधन होनेसे परम्परासे पुरुषार्थस्वरूप होनेके कारण है। ऐसा ही अर्थात् उस परमात्माको ही परम पुरुषार्थरूपसे वेद प्रदर्शित करता है—'वे आनन्दशून्य लोक घोर अन्धकारसे व्याप्त हैं। जो अज्ञानी और मूढ पुरुष हैं, वे मरकर उन्हींको प्राप्त होते हैं।'

अज्ञानीके विषय होनेके कारण स्वर्गादि लोकोंका अपुरुषार्थत्व और आनन्दशून्यत्व प्रदर्शित कर 'यह जीव आत्माको 'यही मैं हूँ' ऐसा जान जाय तो फिर किस इच्छा और किस कामनासे शरीरके [तापोंके] पीछे अपनेको संतप्त करेगा?' इस वाक्यद्वारा आत्मवेत्ताकी कृतकृत्यता दिखलाते हुए, फिर 'यहाँ रहते हुए ही हमें उसे जान लेना चाहिये। यदि हमने उसे न जाना तो बड़ी हानि होगी। जो इसे जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं तथा उनसे भिन्न तो दुःख ही पाते हैं' इस श्रुतिसे आत्मवेत्ताको अमृतत्वकी प्राप्ति और अनात्मज्ञको आत्मनाशरूप अनर्थकी प्राप्ति दिखलाकर 'जिस समय भूत और भविष्यत्के नियामक इस आत्मदेवको साक्षात्रूपसे देख लेता है तो फिर उससे दूर नहीं होता' इत्यादि वाक्योंसे उसके स्वरूप, उस वस्तुके साक्षात्कार और उस साक्षात्कारके फलोंको बार-बार प्रदर्शित कर ऐसी इच्छासे मकरादिके समान रागादि दोषोंसे इधर-उधर खींचे जाते हुए तथा विषयोंसे आक्रान्त इस पापकर्माको मुक्त करके किस प्रकार परमपद परमात्मारूप पूर्णानन्दमय मोक्षसंज्ञक स्वाराज्यपर स्थापित करूँ? उसकी प्राप्तिके साधन ज्ञानकी साधनभूता जिज्ञासाके साधनरूप यज्ञादिका भी 'उस इस आत्मतत्त्वको ब्राह्मणलोग वेदाध्ययन, यज्ञ, दान, तप और उपवासद्वारा जाननेकी इच्छा करते हैं' इस वाक्यद्वारा वेद दिग्दर्शन कराता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मात् तदर्थत्वेनैव यज्ञादीनां पुरुषार्थत्वम्। इतरत्र तु पुनः स्वर्गादौ श्येनयागादीनामिवापुरुषार्थत्वम्, संसारानर्थहेतुत्वात्। तथा च श्रुतिः—

'प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा
जरामृत्यू ते पुनरेवापि यन्ति ॥' इति।

अतः जिज्ञासाके लिये होनेके कारण ही यज्ञादिका भी पुरुषार्थत्व है। स्वर्गादि अन्य फलोंमें उपयोगी होनेपर तो संसाररूप अनर्थके ही हेतु होनेके कारण वे श्येनयाग आदिकी भाँति अपुरुषार्थरूप ही हैं। '[ज्ञानसे निम्न कोटिका होनेके कारण] जिनमें अवर (निकृष्ट) कर्म आश्रित कहा गया है, वे ये [सोलह ऋत्विक् तथा यजमान और यजमान-पत्नीरूप] यज्ञके अठारह साधन अनित्य बतलाये गये हैं। जो मूढ श्रेयरूपसे इनकी प्रशंसा करते हैं, वे फिर भी जरा-मरणको ही प्राप्त होते हैं' इस श्रुतिका भी ऐसा ही कथन है।

यस्मादेवं मोक्षतत्साधनप्रतिपादकत्वेन संसारानर्थनिवृत्तिहेतुत्वं वेदानाम्, तस्माद्वेदा वेदविदं त्रातुं शक्ता एवेत्येतत्सर्वमभिप्रेत्याह श्लोकत्रयेण—तत्र प्रथमेन नित्यापरोक्षं परमपुरुषार्थं परमात्मानं दर्शयति—

क्योंकि ऐसी बात है, इसलिये मोक्ष और उसके साधनोंका प्रतिपादक होनेसे वेद संसाररूप अनर्थकी निवृत्तिके कारण हैं। अतः वेद वेदवेत्ताकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं ही—यही सब उद्देश्यमें रखकर आगेके तीन श्लोकोंसे कहते हैं। उनमेंसे पहले श्लोकसे नित्य अपरोक्ष एवं परमपुरुषार्थस्वरूप परमात्माका निर्देश करते हैं—

सनत्सुजात उवाच—

तस्यैव नामादिविशेषरूपैरिदं जगद्भाति महानुभाव।
निर्दिश्य सम्यक् प्रवदन्ति वेदास्तद्विश्ववैरूप्यमुदाहरन्ति ॥ ७ ॥

श्रीसनत्सुजातजी बोले—हे महानुभाव! उस परमात्माके ही नामादि विशेषरूपोंसे यह जगत् भास रहा है। उस (मायानिर्मित जगत्) का निर्देश करके वेद उसके सम्यक् (वास्तविक) रूपका वर्णन करते हैं और [मुनिगण] भी उसे विश्वसे विपरीत स्वरूपवाला बतलाते हैं ॥ ७ ॥

तस्यैव परमात्मनो मायापरिकल्पितैर्नामादिविशेषरूपैरिदं जगद्भाति हे महानुभाव। कथमेतदवगम्यते तस्यैव नामादिविशेषरूपैरिदं जगद्भातीति? 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' इति मायानिर्मितं बहुरूपं निर्दिश्य तस्यैव सम्यग्रूपम् 'तदेतद् ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूरित्यनुशासनम्' इति प्रवदन्ति वेदाः।

हे महानुभाव! उस परमात्माके ही मायाकल्पित नामादि विशेषरूपोंसे यह जगत् भास रहा है। यह जगत् उस परमात्माके ही नामादि विशेषरूपोंसे भास रहा है—यह बात कैसे जानी जाती है? क्योंकि 'इन्द्र मायासे अनेकरूप होकर चेष्टा कर रहा है' इस श्रुतिसे उसके मायाजनित बहुरूपत्वका निर्देश कर 'वह यह ब्रह्म कारण-कार्यरहित एवं अन्तर-बाह्यशून्य है, सर्वानुभवरूप यह ब्रह्म ही आत्मा है—ऐसी वेदकी आज्ञा है' इस श्रुतिसे वेद उसीके वास्तविक स्वरूपका वर्णन करते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा च 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं च' इत्यादिना तस्यैव मूर्तामूर्तात्मकमात्मवज्जगत्-स्वरूपं निर्दिश्य तस्य सम्यग् रूपम् 'नेति नेति' इत्यादिना प्रवदन्ति वेदाः । तथा 'आत्मन आकाशः सम्भूतः' इति वियदादिधरित्र्यन्तं तस्यैव कार्यं निर्दिश्य कोशोपन्यासमुखेन तस्यैव सम्यग्रूपम्, 'यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह' इत्यादिना प्रवदन्ति वेदाः । तथा—'अधीहि भगव इति होपससाद' इत्यादिना नामादिप्राणान्तं तस्यैव मायानिमित्तं जगन्निर्दिश्य 'यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा' इत्यादिना तस्यैव सम्यग्रूपं भूमानं तमसः पारं स्वे महिम्नि व्यवस्थितं प्रवदन्ति वेदाः ।

इसी प्रकार 'ब्रह्मके दो ही रूप हैं—मूर्त और अमूर्त' इत्यादि श्रुतिसे उसीके आत्मभूत मूर्तामूर्तात्मक जगद्रूपका वर्णन कर 'नेति-नेति' वाक्यसे वेद उसके वास्तविक स्वरूपका वर्णन करते हैं तथा 'आत्मासे आकाश उत्पन्न हुआ' इत्यादि वाक्यसे आकाशसे लेकर पृथ्वीपर्यन्त कोशोंका उल्लेख करते हुए उसीके कार्यका निर्देश कर 'जहाँसे मनके सहित वाणी, उसे न पाकर लौट आती है' इत्यादि वाक्यसे उसीके सम्यक् रूपका वर्णन करते हैं और 'भगवन्! मुझे उपदेश कीजिये, इस प्रकार [प्रार्थना करता हुआ] गुरुके समीप गया' इत्यादि वाक्यसे नामसे लेकर प्राणपर्यन्त उसीकी मायासे उत्पन्न हुए जगत्का निर्देश कर 'जहाँ कोई और नहीं देखता, कोई और नहीं सुनता, कोई और नहीं जानता, वह भूमा है' इत्यादि वाक्यसे उसीके भूमासंज्ञक वास्तविक स्वरूपका, जो अज्ञानसे परे अपने स्वरूपमें स्थित है, वेद वर्णन करते हैं ।

न केवलं वेदाः प्रवदन्ति, अपितु मुनयोऽपि तद् ब्रह्म विश्ववैरूप्यं विश्वरूपविपरीतस्वरूपम् उदाहरन्ति । तथा चाह भगवान् पराशरः—

प्रत्यस्तमितभेदं यत्सत्तामात्रमगोचरम् ।
मनसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥
तच्च विष्णोः परं रूपमरूपाख्यमनुत्तमम् ।
विश्वस्वरूपवैरूप्यलक्षणं परमात्मनः ॥इति॥ ७ ॥

केवल वेद ही ऐसा नहीं कहते, बल्कि मुनिगण भी उस ब्रह्मको विश्वसे विपरीत रूपवाला बतलाते हैं । जैसा कि भगवान् पराशर कहते हैं—'जिसमें सब प्रकारका भेद शान्त हो गया है, जो सत्तामात्र, मनका अविषय तथा स्वसंवेद्य है, वह ज्ञान ही 'ब्रह्म' कहलाता है । वह अरूपसंज्ञक सर्वोत्तमस्वरूप ही विष्णुभगवान्-का उत्कृष्ट रूप है । परमात्माका वह स्वरूप विश्वरूपसे विपरीत स्वभाववाला है' ॥ ७ ॥

ईश्वरार्थ कर्म भगवत्प्राप्तिका साधन है

इदानीमीश्वरार्थमनुष्ठीयमानानां तत्प्राप्तिसाधन-ज्ञानापेक्षितशुद्धिद्वारेण पारम्पर्येण पुरुषार्थत्वम्, अन्येषां संसारानर्थहेतुत्वेनापुरुषार्थत्वं च दर्शयति श्लोकद्वयेन—

अब दो श्लोकोंद्वारा ईश्वरके लिये किये जानेवाले कर्मोंका भगवत्प्राप्तिके साधनभूत ज्ञानके लिये अपेक्षित चित्तशुद्धिके द्वारा परम्परासे पुरुषार्थत्व और अन्य कर्मोंका संसाररूप अनर्थके हेतु होनेसे अपुरुषार्थत्व दिखलाते हैं—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदर्थमुक्तं तप एतदिज्या ताभ्यामसौ पुण्यमुपैति विद्वान्।
पुण्येन पापं विनिहत्य पश्चात् स जायते ज्ञानविदीपितात्मा ॥ ८ ॥

उस (ब्रह्म) की प्राप्तिके लिये ही वेदने ये तप और यज्ञ बतलाये हैं। उनके द्वारा यह विद्वान् पुण्य प्राप्त करता है और फिर पुण्यके द्वारा पापकी निवृत्ति कर वह ज्ञानसे देदीप्यमान हो जाता है ॥ ८ ॥

यद्विश्वरूपविपरीतरूपं ब्रह्म तदर्थमुक्तं वेदेन। किम्? तपः—कृच्छ्रचान्द्रायणादि, इज्या—ज्योतिष्टोमादि। किं ततो भवतीति चेत्—ताभ्याम् इज्यातपोभ्याम् असौ विद्वान् पूर्वोक्त-विनियोगज्ञ ईश्वरार्थं कर्मानुतिष्ठन् पुण्यमुपैति प्राप्नोति कर्मजन्यापूर्वसंयुक्तो भवति। तेन पुण्येन पापं विनिहत्य क्षपयित्वा पश्चादुत्तरकालं स क्षपिताशेषकल्मषो जायते ज्ञानविदीपितात्मा ज्ञानप्रकाशितचित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मस्वरूपो भवति॥

जो विश्वके रूपसे विपरीत स्वरूपवाला ब्रह्म है, उसीके लिये वेदने कहा है। क्या कहा है—कृच्छ्रचान्द्रायणादि तप और ज्योतिष्टोमादि यज्ञ। यदि कहो कि इनसे क्या होता है? उनसे अर्थात् उन इज्या और तपसे पूर्वोक्त कर्मका विनियोग जाननेवाला यह विद्वान् ईश्वरके लिये कर्म करता हुआ पुण्यको प्राप्त होता है अर्थात् कर्मजनित अपूर्वसे युक्त होता है और फिर उस पुण्यसे पापका पराभवकर सम्पूर्ण कर्मोंकी निवृत्ति हो जानेपर ज्ञानसे देदीप्यमान हो जाता है अर्थात् ज्ञानालोकसे युक्त सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मस्वरूप हो जाता है ॥ ८ ॥

ज्ञानेन चात्मानमुपैति विद्वान् न चान्यथा वर्गफलानुकाङ्क्षी।
अस्मिन् कृतं तत् परिगृह्य सर्वममुत्र भुङ्क्ते पुनरेति मार्गम् ॥ ९ ॥

विद्वान् ज्ञानके द्वारा ही आत्माको प्राप्त करता है, अन्य प्रकार नहीं। इन्द्रियवर्गसम्बन्धी फलोंका इच्छुक होनेपर तो वह इस लोकमें सम्पूर्ण यज्ञादि कर्मोंको ग्रहण कर परलोकमें उनका फल भोगता है और फिर संसारमार्गको प्राप्त हो जाता है ॥ ९ ॥

ज्ञानेन चात्मानं परमात्मानमुपैति प्राप्नोति विद्वानात्मवित्। अन्यथा पुनरीश्वरार्थं कर्मानुष्ठाने-नाक्षपिताशेषकल्मषो ज्ञानी न भवति। तदा वर्गफलानुकाङ्क्षी इन्द्रियफलानुकाङ्क्षी स्वर्गादि-फलानुकाङ्क्षी सन् अस्मिन् लोके कृतं तद् यज्ञादिकं परिगृह्य सर्वममुत्र परलोके तत्फलमुपभुङ्क्ते। ततः कर्मशेषेण पुनरेति मार्गं संसारमार्गम्। तथा च श्रुतिः—'तस्मिन्यावत्सम्पातमुषित्वाथैत-मेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते' इति ॥ ९ ॥

और ज्ञानसे वह विद्वान्—ब्रह्मवेत्ता आत्मा यानी परमात्माको प्राप्त हो जाता है। नहीं तो, ईश्वरके लिये कर्मानुष्ठान न करनेपर पापोंकी निवृत्ति न होनेके कारण वह ज्ञानी नहीं होता। तब वह वर्गफलानु-काङ्क्षी—इन्द्रियसम्बन्धी फलोंका इच्छुक अर्थात् स्वर्गादिफलका अभिलाषी होनेपर इस लोकमें किये हुए यज्ञादि सम्पूर्ण कर्मोंको ग्रहण कर परलोकमें उनका फल भोगता है और फिर भोगकी समाप्ति होनेपर पुनः संसारमार्गको प्राप्त हो जाता है। जैसा कि श्रुति कहती है—'उस (स्वर्गलोक) में कर्मक्षयपर्यन्त रहकर वे फिर इसी संसारमार्गमें लौट आते हैं' ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानी और अज्ञानीकी अपेक्षासे कर्मफलमें भेद

इदानीं विद्वदविद्वदपेक्षया कर्मणां फलवैषम्यमाह— | अब ज्ञानी और अज्ञानीकी अपेक्षासे कर्मफलकी विभिन्नता बतलाते हैं—

अस्मिँल्लोके तपस्तप्तं फलमन्यत्र भुज्यते ।
ब्राह्मणानां तपः स्वृद्धमन्येषां तावदेव तत् ॥ १० ॥

इस लोकमें जो तप किया जाता है, उसका परलोकमें फल भोगा जाता है; किंतु ब्रह्मवेत्ताओंका तप अत्यन्त समृद्ध होता है, जब कि और सबके लिये वह [जितना कि शास्त्रोंमें बतलाया गया है] उतना ही रहता है ॥ १० ॥

अस्मिन् लोके यत् तपस्तप्तं फलं तस्य अन्यत्र, अमुष्मिँल्लोके भुज्यत इति तावत् सर्वेषां समानम् । ब्राह्मणानां ब्रह्मविदां पुनरयं विशेषः—तपः स्वृद्धम् अतीवसमृद्धं भवति फलवृद्धिहेतुर्भवतीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः—'यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति' इति । अन्येषामनात्मविदां वैषयिकाणां तावदेव तन्न समृद्धं भवति; यस्य कर्मणो यत्फलं श्रुतं तावन्मात्रफलसाधनं न फलसमृद्धिहेतुर्भवतीत्यर्थः ॥ १० ॥

इस लोकमें जो तप किया जाता है, उसका फल अन्यत्र—परलोकमें भोगा जाता है—यह बात तो सभीके लिये समान है । किंतु ब्राह्मण—ब्रह्मवेत्ताओंके विषयमें इतनी विशेषता है कि उनका तप स्वृद्ध—अत्यन्त समृद्ध यानी फलकी वृद्धिका हेतु होता है । ऐसी ही श्रुति भी है—'जो कर्म विद्यासे, श्रद्धासे और ज्ञानपूर्वक किया जाता है, वह अधिक वीर्यवान् होता है' तथा अन्य जो अनात्मज्ञ विषयी लोग हैं, उनका वह कर्म उतना ही रहता है, वह समृद्ध नहीं होता । तात्पर्य यह है कि जिस कर्मका जो फल सुना गया है, वह उतने ही फलका साधक होता है—फलकी वृद्धिका हेतु नहीं होता ॥ १० ॥

तप केवल कैसे होता है ?

श्रुत्वैवमाह धृतराष्ट्रः— | ऐसा सुनकर धृतराष्ट्रने कहा—

धृतराष्ट्र उवाच —

कथं समृद्धमत्यर्थं तपो भवति केवलम् ।
सनत्सुजात तद् ब्रूहि कथं विद्यामहं प्रभो ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सनत्सुजातजी ! अत्यन्त समृद्ध तप केवल किस प्रकार होता है ? हे प्रभो ! मैं यह बात किस प्रकार जानूँ ? आप इसका वर्णन कीजिये ॥ ११ ॥

ऋज्वेतत् ॥ ११ ॥ | यह श्लोक सरल है ॥ ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निष्कल्मष तप केवल होता है

एवं पृष्टः प्राह भगवान् सनत्सुजातः— | इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् सनत्सुजातने कहा—

सनत्सुजात उवाच—

निष्कल्मषं तपस्त्वेतत् केवलं परिचक्षते ।
एतत्समृद्धमत्यर्थं तपो भवति नान्यथा ॥ १२ ॥

श्रीसनत्सुजातजी बोले—जो तप निर्दोष होता है, वह केवल (शुद्ध) कहा जाता है । इस प्रकारका तप अत्यन्त समृद्ध होता है, और किसी प्रकार नहीं ॥ १२ ॥

यदेतन्निष्कल्मषं तपः, तत्केवलं परिचक्षते केवलं बीजमित्युक्तम् । सर्वस्यास्य प्रपञ्चस्य बीजं निमित्तं यत्तत्केवलमित्युक्तम् । आहोशना—

'गुणसाम्ये स्थितं तत्त्वं केवलं त्विति कथ्यते ।
केवलादेतदुद्भूतं जगत्सदसदात्मकम् ॥'

इति । तद् एतदेव केवलं तपः समृद्धमत्यर्थं च भवति नान्यथा । यदा निष्कल्मषं न भवति सकल्मषं स्यात्तदा समृद्धमत्यर्थं च न भवति ॥ १२ ॥

यह जो निर्दोष तप है, वह केवल कहलाता है; केवल यानी बीजरूप कहा जाता है । जो इस सम्पूर्ण प्रपञ्चका बीज यानी कारण है, वह 'केवल' कहा गया है । उशना (शुक्रजी) कहते हैं—'जो तत्त्व गुणोंकी साम्यावस्था होनेपर स्थित रहता है, वह 'केवल' कहा जाता है । यह सदसद्रूप जगत् उस केवलसे ही उत्पन्न हुआ है ।' वह यह केवल तप ही अत्यन्त समृद्ध होता है, अन्य प्रकारका नहीं । अर्थात् जिस समय यह निर्दोष नहीं होता, सदोष होता है, उस समय अत्यन्त समृद्ध भी नहीं होता ॥ १२ ॥

एतदेव प्रशंसति— | अब इसीकी प्रशंसा करते हैं—

तपोमूलमिदं सर्वं यन्मां पृच्छसि क्षत्रिय ।
तपसा वेदविद्वांसः परं त्वमृतमाप्नुयुः ॥ १३ ॥

हे क्षत्रिय ! तुम मुझसे जो कुछ पूछते हो, वह सब तपोमूलक ही है । तपके द्वारा ही वेदवेत्ताओंने परम अमृतत्व प्राप्त किया है ॥ १३ ॥

स्पष्टार्थः श्लोकः ॥ १३ ॥ | इस श्लोकका अर्थ स्पष्ट है ॥ १३ ॥

तपके दोषोंके विषयमें प्रश्न

श्रुत्वैवमाह राजा— | यह सुनकर राजा धृतराष्ट्रने कहा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धृतराष्ट्र उवाच—

कल्मषं तपसो ब्रूहि श्रुतं निष्कल्मषं तपः ।
सनत्सुजात येनेदं विद्यां गुह्यं सनातनम् ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सनत्सुजातजी ! निर्दोष तपके विषयमें तो मैंने सुन लिया; अब आप तपके दोष बतलाइये, जिससे कि मैं इस सनातन गुह्यको जान सकूँ ॥ १४ ॥

'निष्कल्मषं तपस्त्वेतत्केवलं परिचक्षते' इति श्रुतस्य तपसः कल्मषं ब्रूहि हे सनत्सुजात ! येन निष्कल्मषेण तपसेदं गुह्यं सनातनं ब्रह्माहं विद्यामिति ॥ १४ ॥

हे सनत्सुजातजी ! 'जो तप निर्दोष होता है, वह केवल कहा जाता है' इस प्रकार जिसके विषयमें सुना है आप उस तपके दोष बतलाइये, जिससे निर्दोष तपके द्वारा मैं इस सनातन गुह्य ब्रह्मको जान सकूँ ॥ १४ ॥

तपके दोष, नृशंस और गुणोंकी गणना

एवं पृष्टः प्राह भगवान्—

इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् सनत्सुजातने कहा—

सनत्सुजात उवाच—

क्रोधादयो द्वादश यस्य दोषास्तथा नृशंसानि च सप्त राजन् ।
ज्ञानादयो द्वादश चाततानाः शास्त्रे गुणा ये विदिता द्विजानाम् ॥ १५ ॥

श्रीसनत्सुजातजी बोले—हे राजन् ! जिस तपके क्रोधादि बारह दोष हैं तथा सात नृशंस हैं और ज्ञानादि बारह गुण हैं, जो कि शास्त्रमें द्विजोंके गुणरूपसे प्रसिद्ध हैं [—मैं इन सभीका वर्णन करूँगा] ॥ १५ ॥

क्रोधादयो यस्य तपसो द्वादश दोषाः कल्मषाः, तथा नृशंसानि च सप्त हे राजन् ! यस्य तपसो दोषाः, तथा ज्ञानादयो द्वादश चाततानाः विस्तीर्यमाणाः शास्त्रे वेदशास्त्रे ये विदिता गुणा द्विजानां तानेतान् गुणान् दोषांश्च वक्ष्यामीत्यभिप्रायः ॥ १५ ॥

हे राजन् ! जिस तपके क्रोधादि बारह दोष हैं तथा सात नृशंस भी जिसके दोष हैं और शास्त्र यानी वेदशास्त्रमें विस्तृत जो ज्ञानादि बारह गुण हैं, जो कि द्विजोंके गुणरूपसे प्रसिद्ध हैं, उन सभी गुण और दोषोंको मैं वर्णन करूँगा—ऐसा इसका अभिप्राय है ॥ १५ ॥

दोषोंका वर्णन

क्रोधादीन् दर्शयति—

अब क्रोधादिको प्रदर्शित करते हैं—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रोधः कामो लोभमोहौ विवित्सा कृपासूया मानशोकौ स्पृहा च।
ईर्ष्या जुगुप्सा च महागुणेन सदा वर्ज्या द्वादशैते नरेण॥१६॥

क्रोध, काम, लोभ, मोह, विवित्सा (वैषयिक सुखोंको जाननेकी इच्छा), अकृपा, असूया, मान, शोक, स्पृहा, ईर्ष्या और जुगुप्सा—महागुणी पुरुष (ब्राह्मण) को इन बारह दोषोंका त्याग करना चाहिये॥ १६॥

क्रोधो नाम कामप्रतिघातादुत्पद्यमानस्ताडनाक्रोशनादिहेतुः, कामहानिहेतुकश्चान्तःकरणविक्षेपो गात्रस्वेदकम्पनादिलिङ्गः। कामः स्त्र्याद्यभिलाषः। लोभः परद्रव्येच्छा, आर्जितस्य स्वकीयस्य द्रव्यस्य तीर्थविनियोगासामर्थ्यं वा। मोहः कृत्याकृत्यविवेकशून्यता। विवित्सा विषयरसान्वेत्तुमिच्छा। अकृपा निष्ठुरता। असूया गुणेषु दोषाविष्करणम्, परगुणादिष्वक्षमा वा। मानः—आत्मबहुमानित्वम्। शोकः—इष्टार्थवियोगजोऽन्तःकरणविक्षेपो रोदनचिन्तनादिलिङ्गोऽप्रतीकारविषयः। स्पृहा विषयभोगेच्छा। ईर्ष्या परश्रियामसहिष्णुता। जुगुप्सा परगुणानपह्नोतुमिच्छा, बीभत्सा वा।

जो मार-पीट और गाली-गलौज आदिका कारण है तथा जिसका कारण इच्छित वस्तुका नाश है, वह इच्छाके प्रतिघातसे उत्पन्न होनेवाला अन्तःकरणका विक्षेप, जिसके चिह्न शरीरमें पसीने आने लगना या कम्पनादि होने लगना है, 'क्रोध' कहलाता है। स्त्री आदिकी इच्छा होना 'काम' है। दूसरेके धनकी इच्छा होना अथवा अपने उपार्जन किये हुए धनका उचित स्थानमें उपयोग न कर सकना 'लोभ' है। कर्तव्याकर्तव्यके विवेकका अभाव 'मोह' है। वैषयिक रसोंको जाननेकी इच्छाका नाम 'विवित्सा' है। 'अकृपा' निष्ठुरताको कहते हैं। गुणोंमें दोष निकालना अथवा दूसरोंके गुणादिमें सहनशीलता न होना 'असूया' है। अपनेको बहुत मानना 'मान' है। रोना और चिन्ता करना आदि जिसके चिह्न हैं तथा जिसकी शान्तिका कोई उपाय नहीं है—ऐसा अभीष्ट वस्तुके वियोगसे होनेवाला जो अन्तःकरणका उद्वेग है, उसे 'शोक' कहते हैं। विषय-भोगकी इच्छाका नाम 'स्पृहा' है। दूसरोंकी सम्पत्तिको सहन न कर सकना 'ईर्ष्या' है। दूसरोंके गुणोंको छिपानेकी इच्छा अथवा बीभत्सता (घृणा) को 'जुगुप्सा' कहते हैं।

एते क्रोधादयो द्वादश दोषाः, तपसः कल्मषरूपाः सदा वर्ज्या महागुणेन ब्राह्मणेन। ब्राह्मणानामुत्कृष्टगुणयोगः स्वभावसिद्धः। तथा चोक्तं भगवता—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥ इति।

महागुण अर्थात् ब्राह्मणको तपके मलस्वरूप इन क्रोधादि बारह दोषोंका सर्वदा त्याग करना चाहिये। ब्राह्मणोंका उत्कृष्ट गुणोंके साथ सम्बन्ध स्वभावसे ही है। ऐसा ही श्रीभगवान्‌ने भी कहा है—'शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता—ये ब्राह्मणके स्वाभाविक गुण हैं।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथवा महागुणो ब्रह्मप्राप्तिगुणस्तेन ब्रह्मप्राप्तिलक्षणेन महागुणसमन्वितेन सदा वर्जनीया इत्यर्थः। उक्तं च नाममहोदधौ—

महान् ब्रह्मेति च प्रोक्तो महत्त्वान्महतामपि।
तत्प्राप्तिगुणसंयुक्तो महागुण इति स्मृतः॥ इति।

अथवा महागुण—जिसमें ब्रह्म-प्राप्तिरूप गुण हो, उस ब्रह्मप्राप्तिरूप महान् गुणसे सम्पन्न पुरुषको इन दोषोंका सर्वदा त्याग करना चाहिये—ऐसा इसका तात्पर्य है। नाममहोदधिमें कहा है—"महानोंसे भी महान् होनेके कारण ब्रह्म 'महान् है' ऐसा कहा गया है। अतः जो उसकी प्राप्तिके गुणसे सम्पन्न है, वह 'महागुण' माना जाता है"॥ १६॥

तेषां सदा वर्ज्यत्वे हेतुमाह—

उनके सर्वदा त्याज्य होनेमें हेतु बतलाते हैं—

एकैकमेते राजेन्द्र मनुष्यं पर्युपासते।
लिप्समानोऽन्तरं तेषां मृगाणामिव लुब्धकः॥ १७॥

जिस प्रकार व्याध मृगोंकी घातमें रहता है, उसी प्रकार हे राजेश्वर! ये दोष प्रत्येक मनुष्यको उसका कोई छिद्र देखनेकी इच्छासे घेरे रहते हैं॥ १७॥

यथा मृगाणामन्तरं छिद्रं लिप्समानो रन्ध्रान्वेषणपरो लुब्धको मृगयुरनुवर्तते, यथा च छिद्रं लब्ध्वा तान् हन्ति, तथा तेषां मनुष्याणां रन्ध्रान्वेषणपरा एते क्रोधादय एकैकं मनुष्यं पर्युपासते। अथवा, मनुष्यान् पर्युपासते, इति पाठः। तस्मिन्, एकैकं पृथक् पृथक् मनुष्यान् पर्युपासत इति योजना। तथा छिद्रं लब्ध्वा तान् घ्नन्ति। तस्मादेतेष्वेकोऽपि दोषो विनाशकारणम्। यस्मादेवं तस्मात्सदा वर्ज्या इत्यर्थः। उक्तं च हैरण्यगर्भे—

यथा पान्थस्य कान्तारे सिंहव्याघ्रमृगादयः।
उपद्रवकरास्तद्वत् क्रोधाद्या दुर्गुणा नृणाम्॥ इति। १७।

जिस प्रकार मृगोंका अन्तर यानी छिद्र पानेकी इच्छासे उनके छिद्रान्वेषणमें तत्पर हुआ व्याध उनका अनुगमन करता है और जिस प्रकार घात लगनेपर उन्हें मार डालता है, उसी प्रकार मनुष्योंके छिद्रान्वेषणमें तत्पर हुए ये क्रोधादि प्रत्येक मनुष्यको घेरे रहते हैं।

अथवा जहाँ 'मनुष्यान् पर्युपासते' ऐसा पाठ है, वहाँ ऐसी संगति लगानी चाहिये कि उनमेंसे अलग-अलग प्रत्येक दोष मनुष्योंको घेरे रहता है। तथा घात लगनेपर उन्हें मार डालता है। अतः इनमेंसे एक दोष भी मनुष्यके नाशका कारण है। क्योंकि ऐसी बात है, इसलिये ये सर्वदा त्याज्य हैं—ऐसा इसका तात्पर्य है। हिरण्यगर्भ-संहितामें कहा भी है—'जिस प्रकार वनमें सिंह-व्याघ्र और मृगादि पथिकके लिये उपद्रव करनेवाले होते हैं, उसी प्रकार क्रोधादि दुर्गुण मनुष्योंके लिये विघ्नकारक हैं'॥ १७॥

सात नृशंसोंका वर्णन

इदानीं नृशंससप्तकमाह—

अब सात नृशंसोंका वर्णन करते हैं,—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्भोगसंविद्विषमेधमानो दत्तानुतापी कृपणोऽबलीयान् ।
वर्गप्रशंसी वनितां च द्वेष्टा एते परे सप्त नृशंसरूपाः ॥ १८ ॥

विषयभोगमें ही मन-बुद्धिको लगानेवाला, विषकी भाँति वृद्धिको प्राप्त होनेवाला, दत्तानुतापी, कृपण, अबलीयान्, वर्गप्रशंसी और स्त्रीसे द्वेष करनेवाला—ये अन्य सात नृशंसरूप हैं ॥ १८ ॥

सम्भोगे विषयसम्भोगे संविद् बुद्धिर्यस्य वर्तते स सम्भोगसंविद् विषमेधमानः—विषमिव परेषाम् उपद्रवं कृत्वा एधमानो वर्द्धमानः, अथवा द्विषमेधमान इति पाठान्तरम् । द्विषं द्वेष्यं कर्म कृत्वा प्राणिनां तद्द्वारेण एधमानः । दत्तानुतापी—यः पूर्वं धर्मबुद्ध्या धनादिकं दत्त्वा पश्चात् किमर्थमहं दत्तवानिति तप्तो भवति स दत्तानुतापी । कृपणः—यत्किञ्चिदर्थलवलाभमात्रलोभात्सर्वावमानं सहते यः स कृपणः । अबलीयान्—ज्ञानबलवर्जितः । वर्गप्रशंसी—इन्द्रियवर्गप्रशंसी । वनितां च द्वेष्टा, अनन्यशरणां भार्यां यो द्वेष्टि । एते परे पूर्वोक्तेभ्यः क्रोधादिभ्यः सप्त नृशंसरूपाः ॥ १८ ॥

सम्भोग अर्थात् विषयभोगमें संवित्—बुद्धि है जिसकी उसे 'सम्भोगसंवित्' कहते हैं । 'विषमेधमानः'—विषके समान दूसरोंके लिये उपद्रव करके बढ़नेवाला अथवा जहाँ 'द्विषमेधमानः' ऐसा पाठान्तर है, वहाँ प्राणियोंके प्रति द्विष यानी द्वेष्य कर्म करके उसके द्वारा बढ़नेवाला'—ऐसा अर्थ होगा । 'दत्तानुतापी'—जो पहले धर्मबुद्धिसे धनादि दान करके फिर 'मैंने क्यों दिया' ऐसा पश्चात्ताप करता है, वह 'दत्तानुतापी' कहलाता है । 'कृपण' जो धनके थोड़े-से लेशमात्रका लाभ उठानेके लिये लोभवश सब प्रकारका अपमान सहता है, वह 'कृपण' है । 'अबलीयान्'—ज्ञानरूप बलसे शून्य । 'वर्गप्रशंसी' इन्द्रिय-वर्ग (यानी इन्द्रियसम्बन्धी भोगों) की प्रशंसा करनेवाला । स्त्रीसे द्वेष करनेवाला अर्थात् जिसका कोई और आश्रय नहीं है, ऐसी अपनी स्त्रीसे जो द्वेष करता है । ये पूर्वोक्त क्रोधादिसे भिन्न सात नृशंसरूप हैं ॥ १८ ॥

बारह गुणोंका वर्णन

इदानीं ज्ञानादयो द्वादश गुणा उच्यन्ते—

अब ज्ञानादि बारह गुणोंका वर्णन किया जाता है—

ज्ञानं च सत्यं च दमः श्रुतं च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षानसूया ।
यज्ञश्च दानं च धृतिः शमश्च महाव्रता द्वादश ब्राह्मणस्य ॥ १९ ॥

ज्ञान, सत्य, दम, श्रुति, अमात्सर्य, ह्री, तितिक्षा, अनसूया, यज्ञ, दान, धृति और शम—ये ब्राह्मणके बारह महाव्रत हैं ॥ १९ ॥

ज्ञानं तत्त्वार्थसंवेदनम् । सत्यं यथार्थभाषणं भूतहितं च । दमो मनसो दमनम् । श्रुतम् अध्यात्मशास्त्रश्रवणम् । मात्सर्यं सर्वभूतेष्वसहमानता तदभावोऽमात्सर्यम् । ह्रीः—अकार्यकरणे लज्जा

ज्ञान—तत्त्व-वस्तुको जानना, सत्य—जीवोंके लिये हितकारी और यथार्थ भाषण, दम—मनका निग्रह करना, श्रुत—अध्यात्मशास्त्रका श्रवण, अमात्सर्य—समस्त जीवोंके प्रति सहानुभूति न होना मात्सर्य है, उसका अभाव, ह्री—न करने योग्य कार्यके करनेमें लज्जा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तितिक्षा द्वन्द्वसहिष्णुता । अनसूया परदोषानाविष्करणम् । यज्ञः—अग्निष्टोमादिः, महायज्ञश्च । दानं ब्राह्मणादिभ्यो धनादिपरित्यागः । धृतिः—विषयसंनिधावपीन्द्रियनिग्रहः । शमः—अन्तःकरणोपरतिः, बहिःकरणोपरतिरिति केचित् । एते ज्ञानादयो महाव्रताः परमपुरुषार्थसाधनभूता ब्राह्मणस्य ॥ १९ ॥

तितिक्षा—द्वन्द्व सहन करना, अनसूया—दूसरोंके दोष न देखना, यज्ञ—अग्निष्टोमादि तथा पञ्चमहायज्ञ, दान—ब्राह्मणादिको धनादि देना, धृति—विषयके पास रहते हुए भी इन्द्रियोंका दमन करना तथा शम—अन्तःकरणकी शान्ति तथा किन्हीं-किन्हींके मतानुसार बाह्य इन्द्रियोंका दमन—ये ज्ञानादि महान् व्रत ब्राह्मणके लिये परम पुरुषार्थके साधनस्वरूप हैं ॥ १९ ॥

गुणोंकी स्तुति

ये 'ज्ञानादयो द्वादश चाततानाः' इति पूर्वं प्रस्तुताः, ते वर्णिताः । इदानीं गुणस्तुतिं करोति—

'ज्ञानादयो द्वादश चाततानाः' इत्यादि श्लोकसे जिनका पहले प्रस्ताव किया था, उन (गुणों) का वर्णन कर दिया गया; अब उन गुणोंकी स्तुति करते हैं—

यस्त्वेतेभ्योऽप्रवसेद् द्वादशभ्यः सर्वामिमां पृथिवीं स प्रशिष्यात् ।
त्रिभिर्द्वाभ्यामेकतो वाविमुक्ताः क्रमाद् विशिष्टा मौनभूता भवन्ति ॥ २० ॥

जो पुरुष इन बारह गुणोंसे दूर नहीं रहता, वह इस सम्पूर्ण पृथिवीका शासन करता है और जो इनमेंसे तीन, दो या एकसे भी रहित नहीं हैं, वे भी क्रमशः विशिष्ट (ज्ञानी) होकर ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं ॥ २० ॥

यस्त्वेतेभ्यः पूर्वोक्तेभ्योऽप्रवसेत् प्रवासं न करोति तैरेव समन्वितो भवेत्, स सर्वामिमां पृथिवीं प्रशिष्यात् प्रशास्ति, आत्मवश्यां करोति । य एतेषां मध्ये त्रिभिर्द्वाभ्याम् एकत एकस्माद्वा अविमुक्ता एतेषामन्यतमेनापि समन्विताः, त एते क्रमेण विशिष्टा ज्ञानिनो भूत्वा मौनभूता ब्रह्मभूता भवन्ति ॥ २० ॥

जो पुरुष इन पूर्वोक्त गुणोंसे प्रवास नहीं करता—इनसे ही सम्पन्न रहता है, वह इस सम्पूर्ण पृथिवीका प्रकृष्टरूपसे शासन करता है अर्थात् इसे अपने अधीन कर लेता है। जो लोग इनमेंसे तीन, दो या एक गुणसे भी रहित नहीं हैं अर्थात् इनमेंसे किसी भी गुणसे सम्पन्न हैं, वे क्रमशः विशिष्ट ज्ञानी होकर मौनभूत—ब्रह्मभूत हो जाते हैं ॥ २० ॥

दमके दोष

इदानीं दमदोषानाह श्लोकत्रयेण—

अब तीन श्लोकोंसे दमके दोषोंका वर्णन करते हैं—

दमोऽष्टादशदोषः स्यात् प्रतिकूलं कृते भवेत् ।
अनृतं पैशुनं तृष्णा प्रातिकूल्यं तमोऽरतिः ॥ २१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोकद्वेषोऽभिमानश्च विवादः प्राणिपीडनम् ।
परिवादोऽतिवादश्च परितापोऽक्षमाधृतिः ॥ २२ ॥
असिद्धिः पापकृत्यं च हिंसा चेति प्रकीर्तिताः ।
एतैर्दोषैर्विमुक्तो यः स दमः सद्भिरुच्यते ॥ २३ ॥

दम अठारह दोषोंसे युक्त हो सकता है । इनके होनेपर दमसे प्रतिकूल आचरण होता है । अनृत, पैशुन (चुगली), तृष्णा, प्रतिकूलता, तमस् (अज्ञान), अरति, लोकद्वेष, अभिमान, विवाद, प्राणियोंको पीडित करना, परिवाद, अतिवाद, परिताप, अक्षमा, अधृति, असिद्धि, पापकर्म और हिंसा—ये दमके दोष बतलाये गये हैं । जो इन दोषोंसे रहित है, उसीको सत्पुरुष 'दम' कहते हैं ॥ २१–२३ ॥

दमोऽष्टादशदोषः स्यात्, अष्टादशदोषसमन्वितो भवति । किमेतेषां दोषत्वमिति चेत्, प्रतिकूलं कृते भवेत् । एतेषामन्यतमे कृते दमस्य प्रतिकूलं कृतं भवेत् । के ते ? अनृतम् अयथार्थवचनम् । पैशुनं परदूषणवचनम् । तृष्णा विषयेप्सा । प्रातिकूल्यं सर्वेषां प्रतिकूलता । तमोऽज्ञानम् । अरतिः—अयथालाभसंतुष्टिः, अथवा रतिः स्त्रीसम्भोगेष्वभिरतिः । लोकद्वेषो लोकानामुद्वेगाचरणम् । अभिमानः सर्वेषामप्रणतिभावः । विवादो जनकलहाचरणम् । प्राणिपीडनं स्वदेहपूरणाय प्राणिहिंसनम् । परिवादः समक्षे परदूषणाभिधानम् । अतिवादो निरर्थकोऽतिप्रलापो । परितापो वृथादुःखचिन्तनम् । अक्षमा द्वन्द्वासहिष्णुता । अधृतिरिन्द्रियार्थेषु चपलता । असिद्धिर्धर्मज्ञानवैराग्याणाम् । पापकृत्यं प्रतिषिद्धाचरणम् । हिंसा अविहितहिंसा । इतीत्थं दमदोषाः प्रकीर्तिताः । एतैरनृतादिभिर्दोषैर्विमुक्तो यो गुणः स दम इति सद्भिरुच्यते ॥ २१–२३ ॥

दम अठारह दोषोंवाला हो सकता है अर्थात् वह अठारह दोषोंसे युक्त होता है । यदि कहो कि इनका दोषत्व क्यों है ? [तो कहते हैं कि] इनके करनेपर प्रतिकूल होता है अर्थात् इनमेंसे किसीके भी करनेपर दमके प्रतिकूल आचरण होता है । वे दोष कौन-से हैं ? [सो बतलाते हैं——] अनृत——असत्य-भाषण, पैशुन——दूसरोंके दोष कहना, तृष्णा—विषयोंकी लालसा, प्रातिकूल्य—सबकी प्रतिकूलता, तमस्——अज्ञान, अरति——यथालाभमें संतुष्ट न रहना अथवा रति यानी स्त्री-सम्भोगमें राग, लोकद्वेष——लोकोंको उद्विग्न कर देना, अभिमान——सबके प्रति अविनयका भाव, विवाद——जनताके साथ कलह करना, प्राणिपीडन——अपने शरीरपोषणके लिये प्राणियोंकी हिंसा करना, परिवाद——किसी अन्य पुरुषके दोष उसके मुँहपर कहना, अतिवाद——व्यर्थ अधिक बकवाद करना, परिताप——वृथा दुःख मानना, अक्षमा——द्वन्द्व सहन न कर सकना, अधृति——इन्द्रियसम्बन्धी विषयोंके प्रति [चित्तकी] चञ्चलता, असिद्धि——धर्म, ज्ञान और वैराग्यकी [प्राप्ति न होना], पापकर्म——प्रतिषिद्ध आचरण करना, हिंसा——शास्त्रविधानसे रहित हिंसा——इस प्रकार इतने ये दमके दोष बतलाये गये हैं । जो गुण इन अनृतादि दोषोंसे रहित है, उसीको सत्पुरुषोंने दम कहा है ॥ २१–२३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मदके दोष

इदानीं मददोषानाह—

अब मदके दोष बतलाते हैं—

मदोऽष्टादशदोषः स्यात् त्यागो भवति षड्विधः ।
विपर्ययाः स्मृता ह्येते मददोषा उदाहृताः ॥ २४ ॥

मद अठारह दोषोंवाला हो सकता है तथा त्याग छः प्रकारका है । ये जो दमके दोष [कहे गये] हैं, वे ही अपने विपरीतरूपसे स्मरण किये जानेपर मदके दोष कहे जाते हैं* ॥ २४ ॥

मदोऽष्टादशदोषः स्यात् त्यागश्च षड्विधो भवति। विपर्ययाः स्मृताः—एतेऽनृतादिहिंसान्ता ये दमदोषत्वेन स्मृताः, त एते विपर्ययाः स्मृताः सत्यादिरूपत्वेन स्मृता मददोषा मदनाशकरा उदाहृताः।

के ते ? सत्यापैशुनातृष्णाप्रातिकूल्यातमोऽरतिलोकाद्वेषानभिमानाविवादाप्राणिहिंसापरिवादानतिवादा परितापक्षमाधृतिसिद्ध्यपापकृत्याहिंसा इत्येते मदनाशकरा उदाहृताः ॥ २४ ॥

मद अठारह दोषोंवाला है तथा त्याग छः प्रकारका होता है । विपर्ययाः स्मृताः अर्थात् अनृतसे लेकर हिंसापर्यन्त जो दमके दोषबतलाये गये हैं, ये विपरीतरूपसे स्मरण किये जानेपर अर्थात् सत्यादिरूपसे स्मृत होनेपर मदके दोष अर्थात् मदका नाश करनेवाले कहे गये हैं ।

वे (मदके दोष) कौन-से हैं ?—सत्य, अपैशुन, अतृष्णा, अप्रातिकूल्य, अतमस् (ज्ञान), अरति (विषयोंमें राग न होना), लोकसे द्वेष न करना, अभिमानशून्यता, अविवाद, प्राणियोंकी हिंसा न करना, परिवाद न करना, अधिक बकवाद न करना, परिताप न करना, क्षमा, धृति, सिद्धि, पुण्यकर्म और अहिंसा—ये सब मदका नाश करनेवाले कहे गये हैं ॥ २४ ॥

षड्विध त्याग

'त्यागो भवति षड्विधः' इत्युक्तम् । तत्राह—

ऊपर कहा गया है कि त्याग छः प्रकारका होता है, सो उसके विषयमें कहते हैं—

श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागस्तृतीयस्तत्र दुष्करः ।
तेन दुःखं तरन्त्येव तस्मिंस्त्यक्ते जितं भवेत् ॥ २५ ॥

यों तो छः प्रकारका त्याग श्रेयस्कर है, किंतु उनमें तीसरा त्याग करना कठिन है । तथापि उसके द्वारा मनुष्य दुःखके पार हो ही जाता है तथा उस त्यागके हो जानेपर [द्वैतवर्ग] जीत लिया जाता है ॥ २५ ॥

* यहाँ एक बात बड़े मार्केकी है—जिस प्रकार अक्षरोंको उलटकर पढ़नेसे 'दम' का उलटा 'मद' है, उसी प्रकार जो अनृत-पैशुनादि दमके दोष हैं, उन्हींके विपरीत सत्य, अपैशुनादि मदके दोष हैं । जिस प्रकार अनृतादि दमके बाधक हैं, उसी प्रकार सत्यादि मदके घातक हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रेयान् तु षड्विधः त्यागः, तत्र एतेषु षड्विध-त्यागेषु मध्ये तृतीयत्यागो दुष्करो दुःखसम्पाद्यो भवति। तेन तृतीयेन त्यागेन दुःखम् आध्यात्मिकादिभेदभिन्नं तरन्त्येव तस्मिन् त्यागे कृते सति सर्वं जितं भवेत् ॥ २५ ॥

श्रेयस्कर तो छः प्रकारका त्याग है; किंतु इन छः प्रकारके त्यागोंमें तीसरा त्याग दुष्कर अर्थात् कठिनतासे उपार्जन किये जानेयोग्य है। उस तीसरे त्यागके द्वारा लोग आध्यात्मिकादि भेदसे विभिन्न प्रतीत होनेवाले दुःखको पार कर ही लेते हैं तथा उस त्यागके कर लेनेपर सभी कुछ जीत लिया जाता है ॥ २५ ॥

त्यागषट्कं दर्शयति—

अब छः प्रकारका त्याग दिखलाते हैं—

अर्हते याचमानाय पुत्रान् वित्तं ददाति यत्।
इष्टापूर्तं द्वितीयं स्यान्नित्यं वैराग्ययोगतः ॥ २६ ॥
कामत्यागश्च राजेन्द्र स तृतीय इति स्मृतः।
अप्रमादी भवेदेतैः स चाप्यष्टगुणो मतः ॥ २७ ॥

योग्य पुरुषके याचना करनेपर जो उसे पुत्र एवं धन देता है [वह पहला त्याग है]। दूसरा त्याग इष्ट और पूर्त कर्म है; तथा हे राजेन्द्र ! वैराग्यके द्वारा कामनाओंका त्याग कर देना तीसरा त्याग कहा गया है। इनके द्वारा पुरुष प्रमादशून्य हो जाता है। वह अप्रमाद भी आठ गुणोंवाला माना गया है ॥२६-२७॥

अर्हते योग्याय याचमानाय पुत्रान् वित्तं ददाति यत् तदेतत् त्यागद्वयं षण्णां मध्ये प्रथमम्। इष्टापूर्तं द्वितीयं स्यात्—इष्टं श्रौते कर्मणि यद् दानम्। पूर्तं स्मार्ते कर्मणि। इष्टं देवेभ्यो दत्तम्, पूर्तं पितृभ्य इति केचित्। नित्यं वैराग्ययोगतो विशुद्धसत्त्वस्यानित्यत्वादिदोषदर्शिनो विरक्ततया धनादिपरित्यागः कामत्यागश्च राजेन्द्र ! स तृतीय इति स्मृतः।

अर्हत—योग्य माँगनेवालेको जो पुत्र और धन देता है, वह यह दो प्रकारका त्याग छः प्रकारके त्यागोंमें पहला है। इष्टापूर्त दूसरा त्याग है। इष्ट—जो दान श्रौत कर्ममें दिया जाता है और पूर्त—स्मार्तकर्ममें दिया जानेवाला दान। कोई-कोई ऐसा भी अर्थ करते हैं कि देवताओंको दिया हुआ दान 'इष्ट' कहलाता है और पितरोंको दिया जानेवाला 'पूर्त'। फिर सर्वदा वैराग्यके द्वारा शुद्धचित्त एवं विषयोंमें अनित्यत्वादि दोष देखनेवाले पुरुषके जो विरक्तताके कारण धनादि-त्याग तथा काम-त्याग होते हैं, हे राजेन्द्र ! वह तीसरे प्रकारका त्याग माना गया है।*

किमेतैर्भवतीत्याह—अप्रमादीति। य एतैः षड्भिस्त्यागैः समन्वितः सोऽप्रमादी भवेत्।

इनसे होता क्या है, सो 'अप्रमादी' इत्यादिसे बतलाते हैं। जो पुरुष इन छः प्रकारके त्यागोंसे सम्पन्न होता है, वह अप्रमादी हो जाता है।

* पहले त्यागमें पुत्रदान और धनदान, दूसरेमें इष्ट और पूर्त तथा तीसरेमें धनादिका त्याग और कामत्याग—इस प्रकार दो-दो त्याग रहते हैं। अतः यह तीन प्रकारका त्याग ही अपने अवान्तर भेदोंके कारण छः प्रकारका है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोऽप्रमादोऽष्टगुणः—अष्टभिर्गुणैः समन्वितो भवति ॥२६-२७॥

वह अप्रमाद आठ गुणोंवाला है, अतः वह आठ गुणोंसे सम्पन्न हो जाता है ॥ २६-२७ ॥

आठ प्रकारके गुण

के ते ? तान् दर्शयति—

वे गुण कौन-से हैं ? उन्हें प्रदर्शित करते हैं—

सत्यं ध्यानं समाधानं चोद्यं वैराग्यमेव च ।
अस्तेयो ब्रह्मचर्यं च तथासंग्रह एव च ॥ २८ ॥

सत्य, ध्यान, समाधान, शङ्का (जिज्ञासा), वैराग्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—(ये ही वे आठ गुण हैं) ॥ २८ ॥

सत्यं यथार्थभाषणम् । ध्यानं चेतसः कस्मिंश्चिच्छुभाश्रये मण्डलपुरुषादौ तैलधारावत्संतत्यविच्छेदिनी प्रवृत्तिः । समाधानं प्रणवेन विश्वाद्युपसंहारं कृत्वा स्वाभाविकचित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मनावस्थानम् । चोद्यम् 'कोऽहं कस्य कुतो वा' इत्यादि । वैराग्यं दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णता । अस्तेयोऽचौर्यमात्मनो द्रव्यस्य वा । आत्मचौर्यमुक्तम्—

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।
किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा ॥ इति ॥

ब्रह्मचर्यम् अष्टाङ्गमैथुनत्यागः । तथा चोक्तम्—

स्मरणं कीर्तनं केलिर्वीक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ।

इति । असंग्रहोऽपरिग्रहः पुत्रदारक्षेत्रादीनाम् । एतान् परिपालयेत् ॥ २८ ॥

सत्य—यथार्थ भाषण करना, ध्यान—सूर्यमण्डलान्तर्गत पुरुष आदि किसी शुभ आश्रयमें चित्तकी तैलधारावत् व्यवधानशून्य प्रवृत्ति, समाधान—ओंकार-चिन्तनके द्वारा [अवस्थात्रयके अभिमानी] विश्वादिका बाध कर स्वाभाविक सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मरूपसे स्थित होना, चोद्य (शङ्का)—'मैं कौन हूँ ? किसका हूँ ? कहाँसे आया हूँ ?' इत्यादि प्रकारकी जिज्ञासा, वैराग्य—दृष्ट और श्रुत पदार्थोंके विषयमें तृष्णाका त्याग, अस्तेय—आत्मा या द्रव्यकी चोरी न करना—'जो अन्य प्रकारके आत्माको अन्य प्रकारसे जानता है, उस आत्मघाती चोरने क्या पाप नहीं किया' इस वाक्यद्वारा आत्माकी चोरीका वर्णन किया गया है । ब्रह्मचर्य—अष्टाङ्ग मैथुनका त्याग, ऐसा ही कहा भी है—'स्त्रियोंका स्मरण, उनकी चर्चा करना, उन्हें स्पर्श करना—उनके साथ खिलवाड़ करना, उन्हें देखना, एकान्तमें उनसे बातचीत करना, स्त्री-सम्पर्कका संकल्प करना, उसके लिये प्रयत्न करना तथा मैथुन-कर्ममें प्रवृत्त होना—विद्वान् लोग यह अष्टाङ्ग (आठ प्रकारका) मैथुन बतलाते हैं । इससे विपरीत आठ प्रकारके लक्षणोंवाला ब्रह्मचर्य है ।' असंग्रह (अपरिग्रह)—पुत्र, स्त्री और क्षेत्रादिका संग्रह न करना । इन सबका सम्यक् प्रकारसे पालन करे ॥ २८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोषोंका त्याज्यत्व और अप्रमाद

दोषान् वर्जयेदित्याह— | अब यह बतलाते हैं कि दोषोंका त्याग करना चाहिये—

एवं दोषा दमस्योक्तास्तान् दोषान् परिवर्जयेत् ।
दोषत्यागेऽप्रमादः स्यात् स चाप्यष्टगुणो मतः ॥ २९ ॥

इसी प्रकार जो दमके दोष बतलाये गये हैं, उन दोषोंका सब प्रकार त्याग करना चाहिये । उन दोषोंका त्याग करनेपर अप्रमाद होता है और वह (अप्रमाद) भी आठ प्रकारका माना गया है ॥ २९ ॥

'दमोऽष्टादशदोषः स्यात्' इति ये दोषा उक्तास्तान् दोषान् परिवर्जयेत् । कस्मादित्याह—'दोषत्यागेऽप्रमादः स्यात्' तेषु दोषेषु त्यक्तेषु प्रमादी न भवेदित्यर्थः । सोऽप्यप्रमादोऽष्टगुणो मतः । 'सत्यं ध्यानम्' इत्यादिना पूर्वमेवोपदिष्टत्वादित्यर्थः ॥ २९ ॥

'दमोऽष्टादशदोषः स्यात्' इस श्लोकसे जो दमके दोष बतलाये गये हैं, उनका सब प्रकार त्याग करना चाहिये । क्यों करना चाहिये ? सो बतलाते हैं—[क्योंकि] दोषोंका त्याग करनेपर अप्रमाद होता है, तात्पर्य यह है कि उन दोषोंका त्याग कर देनेपर वह प्रमादी नहीं होता । वह अप्रमाद भी आठ प्रकारके गुणोंवाला माना गया है; क्योंकि 'सत्यं ध्यानम्' इत्यादि वाक्यसे इसका पहले ही उल्लेख कर दिया है ॥ २९ ॥

सत्यकी स्तुति

इदानीं सत्यस्तुतिः क्रियते— | अब सत्यकी स्तुति की जाती है—

सत्यात्मा भव राजेन्द्र सत्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
तांस्तु सत्यमुखानाहुः सत्ये ह्यमृतमाहितम् ॥ ३० ॥

हे राजेन्द्र ! तुम सत्यस्वरूप होओ, सम्पूर्ण लोक सत्यमें ही स्थित हैं । उन्हें सत्यप्रधान ही कहा है और सत्यमें ही अमृत (मोक्ष) की स्थिति है ॥ ३० ॥

सत्यात्मा सत्यस्वरूपो भव हे राजेन्द्र ! सत्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः । तांस्तु सत्यमुखान् सत्यप्रधानान् सत्याधीनात्मलाभान् आहुः । सत्ये हि अमृतम् आहितम्, अमृतं मोक्षः ॥ ३० ॥

हे राजेन्द्र ! तुम सत्यात्मा—सत्यस्वरूप होओ । सत्यमें ही सम्पूर्ण लोक स्थित हैं; उन्हें सत्यमुख—सत्यप्रधान अर्थात् सत्यके अधीन ही अपनी सत्तास्फूर्ति रखनेवाले कहा है तथा सत्यमें ही अमृत स्थित है । अमृतका अर्थ मोक्ष है ॥ ३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवृत्तेनैव दोषेण तपोव्रतमिहाचरेत् ।
एतद् धात्रा कृतं वृत्तं सत्यमेव सतां व्रतम् ॥ ३१ ॥

इस लोकमें दोषोंसे रहित होकर ही तपरूप व्रतका आचरण करे । विधाताने ऐसा ही सदाचार बनाया है; सत्य ही सत्पुरुषोंका व्रत है ॥ ३१ ॥

निवृत्तेनैव दोषेण 'क्रोधादयः' (अ० २ श्लो० १५) इत्यादिना पूर्वोक्तदोषरहितः सन् तपोव्रतमिहाचरेत् । एतद्धात्रा परमेश्वरेण कृतं वृत्तं सत्यमेव सतां परं व्रतम् ॥ ३१ ॥

'क्रोधादयः' इत्यादि श्लोकसे पहले कहे हुए दोषोंसे रहित होकर ही इस लोकमें तपरूप व्रतका आचरण करे । विधाता—परमेश्वरने ऐसा ही सदाचार बनाया है; सत्य ही सत्पुरुषोंका उत्कृष्ट व्रत है ॥ ३१ ॥

इदानीम् 'कथं समृद्धमत्यर्थम्' इत्यनेनोपक्रान्तमर्थमुपसंहरति—

अब, जिस विषयका 'कथं समृद्धमत्यर्थम्' इत्यादि श्लोकसे आरम्भ हुआ है, उसका उपसंहार करते हैं—

दोषैरेतैर्विमुक्तं तु गुणैरेतैः समन्वितम् ।
एतत्समृद्धमत्यर्थं तपो भवति केवलम् ॥ ३२ ॥

जो पुरुष इन दोषोंसे रहित और इन गुणोंसे सम्पन्न है, उसीका यह अत्यन्त समृद्ध तप केवल (शुद्ध) होता है ॥ ३२ ॥

दोषैरेतैः 'क्रोधादयः' इत्यादिना पूर्वोक्तैर्विमुक्तं तु गुणैरेतैः ज्ञानादिभिश्च समन्वितं यद् एतत्समृद्धमत्यर्थं तपो भवति केवलम् ॥ ३२ ॥

'क्रोधादयः' इत्यादि श्लोकोंसे पहले कहे हुए इन दोषोंसे रहित और इन ज्ञानादि गुणोंसे सम्पन्न जो यह अत्यन्त समृद्ध तप है, वही केवल (शुद्ध) होता है ॥ ३२ ॥

किं बहुना—

अधिक क्या ?

यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र संक्षेपात् तद् ब्रवीमि ते ।
एतत् पापहरं शुद्धं जन्ममृत्युजरापहम् ॥ ३३ ॥

हे राजेन्द्र ! तुम मुझसे जो कुछ पूछते हो, वह सब संक्षेपमें मैं तुम्हें बतलाता हूँ । यह सम्पूर्ण पापोंको निवृत्त करनेवाला, शुद्ध एवं जन्म, मृत्यु और जराकी निवृत्ति करनेवाला है ॥ ३३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे राजेन्द्र ! यन्मां पृच्छसि तत् संक्षेपात् समासतो ब्रवीमि ते। एतद् वक्ष्यमाणं पापहरं शुद्धं फलाभिकाङ्क्षारहितं तपोव्रतं जन्ममृत्युजरापहम् ॥ ३३ ॥

हे राजेन्द्र ! तुम मुझसे जो कुछ पूछते हो, वह मैं संक्षेपसे—साररूपसे तुम्हें बताता हूँ। यह आगे बताया जानेवाला फलाकाङ्क्षासे रहित पापापहारी शुद्ध तपरूप व्रत जन्म, मृत्यु और जराकी निवृत्ति करनेवाला है ॥ ३३ ॥

सुखी पुरुषका स्वरूप

किं तदिति चेत् ? तत्राह—

यदि कहो कि वह क्या बात है तो उस विषयमें कहते हैं—

इन्द्रियेभ्यश्च पञ्चभ्यो मनसश्चैव भारत।
अतीतानागतेभ्यश्च मुक्तश्चेत् स सुखी भवेत् ॥ ३४ ॥

हे भारत ! यदि कोई पुरुष इन्द्रियोंसे, उनके पाँच विषयोंसे, मनसे और भूत-भविष्यत्‌के चिन्तनसे मुक्त हो जाय तो वही सुखी हो जायगा ॥ ३४ ॥

हे भारत ! यः सविषयेभ्यः पञ्चभ्य इन्द्रियेभ्यो वर्तमानेभ्यो मनसश्चैव तथातीतेभ्योऽनागतेभ्यश्च मुक्तश्चेत् स सुखी भवेत्, मुक्त एव भवेदित्यर्थः ॥ ३४ ॥

हे भारत ! यदि कोई पुरुष पाँच वर्तमान विषयोंके सहित इन्द्रियोंसे, मनसे तथा भूत और भविष्यत् [के चिन्तन] से मुक्त हो जाय तो वह सुखी अर्थात् मुक्त ही हो जायगा ॥ ३४ ॥

धृतराष्ट्रका ब्राह्मणविषयक प्रश्न

एवमुक्ते प्राह धृतराष्ट्रः—

ऐसा कहे जानेपर धृतराष्ट्रने कहा—

धृतराष्ट्र उवाच—

आख्यानपञ्चमैर्वेदैर्भूयिष्ठं कत्थ्यते जनः।
तथा चान्ये चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च तथापरे ॥ ३५ ॥
द्विवेदाश्चैकवेदाश्च अनृचश्च तथापरे।
एतेषु मेऽधिकं ब्रूहि यमहं वेद ब्राह्मणम् ॥ ३६ ॥

धृतराष्ट्र बोले—कोई पुरुष तो, जिनमें आख्यान (पुराण) पाँचवाँ है, ऐसे पाँच वेदोंके कारण उत्कृष्ट कहा जाता है, कोई चतुर्वेदी कहलाते हैं, किन्हींको त्रिवेदी कहते हैं तथा कोई द्विवेदी, कोई एक वेदी और कोई अनृच कहे जाते हैं। इनमें जो बड़ा हो, सो मुझे बतलाइये, जिसे कि मैं [सर्वोत्कृष्ट] ब्राह्मण समझूँ ॥ ३५-३६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आख्यानं पुराणं पञ्चमं येषां वेदानां ते आख्यानपञ्चमाः। श्रूयते च छान्दोग्ये—'इतिहासपुराणं पञ्चमम्' इति। तैराख्यानपञ्चमैर्वेदैर्भूयिष्ठम् अत्यर्थं कत्थ्यते श्लाघ्यते बहु मन्यते सर्वस्मादधिकोऽहमिति। कथ्यते इति केचित्पठन्ति। आख्यानपञ्चमैर्वेदैः कश्चिज्जनः पञ्चमवेदीति कथ्यते इत्यर्थः।

आख्यान अर्थात् पुराण है पाँचवाँ जिन वेदोंमें, वे वेद 'आख्यानपञ्चम' कहलाते हैं। इस विषयमें 'इतिहास-पुराण पाँचवाँ वेद है' ऐसी छान्दोग्य श्रुति भी है। उन आख्यानपञ्चम वेदोंके कारण कोई अपनेको 'मैं सबसे बढ़कर हूँ' ऐसा बढ़ाकर बोलते हैं अर्थात् अपनी प्रशंसा यानी अधिक मान करते हैं। यहाँ कोई-कोई 'कत्थ्यते' के स्थानमें 'कथ्यते' भी पढ़ते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि कोई लोग जिनमें आख्यान पाँचवाँ है, उसे वेदोंके कारण 'पञ्चवेदी' कहे जाते हैं।

तथा चान्ये चतुर्वेदास्त्रिवेदाः, अपरे द्विवेदाः, एकवेदाश्च अनृचश्च तथापरे परित्यक्तऋगादिवेदा अपरे। एतेषु मनुष्येष्वधिकं श्रेष्ठं ब्रूहि यमहं ब्राह्मणं वेद विद्याम्॥ ३५-३६॥

तथा कोई लोग चतुर्वेदी, कोई त्रिवेदी, कोई द्विवेदी, कोई एकवेदी और कोई अनृच अर्थात् ऋगादि वेदोंसे बाह्य कहे जाते हैं। इन मनुष्योंमें जो बड़ा यानी श्रेष्ठ है, उसे मुझे बतलाइये, जिसे कि मैं [उत्कृष्ट] ब्राह्मण जानूँ॥ ३५-३६॥

उत्तर—सत्यस्वरूप वेद और वेदज्ञ

य एव स्वाभाविकचित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मनावस्थितः स एव ब्राह्मण इति दर्शयिष्यन् तद्व्यतिरिक्तस्य सर्वस्य तदज्ञानमूलत्वं दर्शयति—

जो भी अपने स्वाभाविक सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मस्वरूपसे स्थित है, वही ब्राह्मण है—यह दिखलाते हुए, [अब] उससे भिन्न और सबका अज्ञानमूलत्व प्रदर्शित करते हैं—

सनत्सुजात उवाच—

एकवेदस्य चाज्ञानाद् वेदास्ते बहवोऽभवन्।
सत्यस्यैकस्य राजेन्द्र सत्ये कश्चिदवस्थितः॥ ३७॥

श्रीसनत्सुजातजी बोले—हे राजेन्द्र! एक सत्यस्वरूप वेदको न जाननेसे ही बहुत-से वेद हो गये हैं। उस सत्यमें कोई-कोई ही स्थित है॥ ३७॥

एकस्य वेदस्य—वेद्यमिदंरूपम् अनिदंरूपम्, वेदनं वेदः—एकस्याद्वितीयस्य संविद्रूपस्येत्यर्थः। तस्यैकवेदस्य ब्रह्मणोऽनवगमाद्ऋगादयो वेदा बहवोऽभवन्। अत्र ऋगादिवेदास्तत्प्रतिपत्त्यर्थं विचारं कुर्वन्तीति वेदाख्यामवापुः।

एक वेदके—इदंरूप और अनिदंरूप (प्रत्यक्ष और परोक्षरूप वस्तु) ही वेद्य है और वेदन ही वेद है। अर्थात् उस एक अद्वितीय संविद्रूपके ज्ञान यानी वेदस्वरूप उस एक परब्रह्मको न जाननेके कारण ही ऋगादि बहुत-से वेद हो गये हैं। यहाँ ऋगादि वेद उसीकी प्राप्तिके लिये विचार करते हैं, इसलिये उन्हें 'वेद' संज्ञा प्राप्त हो गयी है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथवा, सद्भावं साधयन्तीति वेदाः, विदन्ति वेदनसाधनभूता इति वा वेदाः । अथवा, ब्रह्माधीनमात्मानं लभन्त इति वा वेदाः। ब्रह्मण आत्मतया लाभहेतव इति वा वेदाः । विद विचारणे । विद सत्तायाम् । विद ज्ञाने । विद्लृ लाभे । एतेषां धातूनां विषये वर्तन्ते यस्मात् ततो वेदा इत्युक्ताः।

अथवा सद्वस्तुकी सिद्धि करते हैं, इसलिये वे वेद हैं । या जानते हैं यानी ज्ञानके साधनभूत हैं, इसलिये वेद हैं । अथवा ब्रह्मके आश्रितस्वरूप लाभ करते हैं, इसलिये वेद हैं । अथवा ब्रह्मको आत्मस्वरूपसे प्राप्त करनेमें हेतु हैं, इसलिये वेद हैं । इस प्रकार क्योंकि ये विचारार्थक विद्, सत्तार्थक विद्, ज्ञानार्थक विद् और लाभार्थक विद्—इन धातुओंके विषय होकर स्थित हैं, इसलिये ये 'वेद' कहे जाते हैं ।

तदेकवेदस्वरूपं किमिति चेत्, 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'एकमेवाद्वितीयम्' इति श्रुतेः । तस्मात् सत्यस्यैकवेदस्वरूपस्य ब्रह्मणोऽनवगमाद् वेदा बहवो व्याख्याताः । सर्वे वेदास्तदर्थदर्शनहेतवः, हे राजेन्द्र ! त्वमपि किमेवं ज्ञात्वा सत्ये ब्रह्मणि स्थितोऽसि ? कश्चित् पुनः सत्येऽवस्थितः प्रतिष्ठित इति ॥ ३७ ॥

उस एक वेदका स्वरूप क्या है ? ऐसा प्रश्न होनेपर कहते हैं—'ब्रह्म सत्य ज्ञान और अनन्त है', 'ब्रह्म एकमात्र अद्वितीय है' इन श्रुतियोंसे [उसका निश्चय होता है] । उस सत्य अर्थात् एकवेदस्वरूप ब्रह्मका ज्ञान न होनेसे ही बहुत-से वेद बतलाये गये हैं । समस्त वेद उसीके दर्शनके कारण हैं । हे राजेन्द्र ! ऐसा जानकर क्या तुम भी सत्यस्वरूप ब्रह्ममें स्थित हो ? क्योंकि उस सत्यमें तो कोई-कोई ही स्थित होता है ॥ ३७ ॥

भूयो मे शृणु—

और भी मुझसे सुनो—

य एनं वेद तत् सत्यं प्राज्ञो भवति नित्यदा ।
दानमध्ययनं यज्ञो लोभादेव प्रवर्तते ॥ ३८ ॥

जो इस सत्यको जानता है, वह सर्वदा ही बड़ा ज्ञानी है । दान, अध्ययन और यज्ञ तो लोभसे ही प्रवृत्त होते हैं ॥ ३८ ॥

किमर्थम् ? नो चेत्, तत्र यद्भवति तच्छृणु—

ऐसा क्यों है ? यदि ऐसा न हो तो उस अवस्थामें जो होता है, वह सुनो—

सत्यात् प्रच्यवमानानां संकल्पा वितथाभवन् ।
ततः कर्म प्रतायेत सत्यस्यानवधारणात् ॥ ३९ ॥

जो लोग इस सत्यसे च्युत हैं, उनके संकल्प असत्य हो जाते हैं । इसीसे सत्यका ज्ञान न होनेके कारण कर्मका विस्तार किया जाता है ॥ ३९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्यात् स्त्यादिलक्षणाद् ब्रह्मणः प्रच्यवमानानां स्वाभाविकब्रह्मभावपरित्यागेन अनात्मनि देहादावात्मभावमापन्नानां संकल्पा वितथा अभवन् व्यर्था भवन्ति। स्वाभाविकसत्यसंकल्पादयो न सिध्यन्तीत्यर्थः। ततः कर्म यज्ञादिकं प्रतायेत विस्तृतं भवेत्।

सत्यसे अर्थात् सत्यादिरूप ब्रह्मसे च्युत हुए लोगोंके संकल्प, जिन्हें कि अपने स्वाभाविक ब्रह्मभावका त्याग कर देनेके कारण देहादि अनात्मपदार्थोंमें आत्मभाव हो गया है, वितथ—व्यर्थ हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि उनके स्वाभाविक सत्य-संकल्पादि सिद्ध नहीं होते। तभी यज्ञादि कर्मका वितान—विस्तार होता है।

तदेतत्सर्वं सत्यस्य सत्यादिलक्षणस्य ब्रह्मणोऽनवधारणाद् अनवगमात्। आत्माज्ञाननिमित्तत्वात् संसारस्य यावत्परमात्मानमात्मत्वेन साक्षान्न विजानाति तावदयं तापत्रयाभिभूतो मकरादिभिरिव रागादिभिरितस्ततः समाकृष्यमाणो मोमुह्यमानोऽसत्यसंकल्पः स्वर्गपश्वन्नादिहेयसाधनेषु वर्त्तत इत्यर्थः॥ ३९॥

यह सब सत्य यानी सत्यादिरूप ब्रह्मके अज्ञान—न जाननेके कारण होता है; क्योंकि संसार आत्माके अज्ञानके कारण ही है, इसलिये जबतक यह जीव परमात्माको साक्षात् आत्मस्वरूपसे नहीं जानता तबतक यह त्रिविध तापसे संतप्त हो मकरादिके समान रागादि दोषोंसे इधर-उधर खींचा जाता हुआ मोहवश असत्य-संकल्प हो स्वर्ग, पशु एवं अन्न आदि हेय वस्तुओंके साधनोंमें लगा रहता है—ऐसा इसका अभिप्राय है॥ ३९॥

ब्राह्मणका लक्षण

इदानीं ब्राह्मणलक्षणमाह—

अब ब्राह्मणका लक्षण बतलाते हैं—

विद्याद् बहुपठन्तं तु बहुवागिति ब्राह्मणम्।
य एव सत्यान्नापैति स ज्ञेयो ब्राह्मणस्त्वया॥ ४०॥

जो बहुत पढ़ा हुआ है, उस ब्राह्मणको तो तुम बड़ा वाग्मी जानो। तुम्हें [वास्तविक] ब्राह्मण तो उसे ही जानना चाहिये, जो सत्यसे विलग नहीं होता॥ ४०॥

बहुपठन्तम् आख्यानपञ्चमवेदाध्यायिनं बहुवागिति विद्यात्, न साक्षाद् ब्राह्मणमिति। कस्तर्हि मुख्यो ब्राह्मणः? इति चेत्—य एव सत्यात् सत्यादिलक्षणान्नापैति न क्षरति स्वाभाविकचित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मनैवावतिष्ठते इत्यर्थः स एव ब्राह्मणस्त्वया ज्ञेयः, नेतरे यः

बहुपाठी अर्थात् जिनमें इतिहास पाँचवाँ है ऐसे सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करनेवालेको तो तुम बड़ा वाग्मी जानो—साक्षात् ब्राह्मण नहीं। यदि कहो कि मुख्य ब्राह्मण कौन है? [तो तुम्हें मुख्य ब्राह्मण तो उसे ही जानना चाहिये] जो सत्यसे—सत्यादिलक्षणोंवाले ब्रह्मसे दूर नहीं होता अर्थात् [सर्वदा] स्वाभाविक सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मरूपसे ही स्थित रहता है, उसीको तुम्हें ब्राह्मण समझना चाहिये; दूसरा नहीं, जो कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्यात् प्रच्युतोऽकृतार्थः सन् कर्मणि प्रवर्तते। तथा च ब्रह्मविदमेव ब्राह्मणं दर्शयति श्रुतिः—'मौनं चामौनं च निर्विद्याथ ब्राह्मणः स ब्राह्मणः' इति 'विपापो विरजोऽविचिकित्सो ब्राह्मणो भवति' इति च ॥ ४० ॥

सत्यसे च्युत और अकृतार्थ होकर कर्मोंमें प्रवृत्त हो रहा है। इसी प्रकार 'जो मौन और अमौनसे उपरत होकर ब्रह्मपरायण हो, वही ब्राह्मण है' तथा 'जो पापरहित, रागरहित और घृणारहित है, वह ब्राह्मण है' ये श्रुतियाँ भी ब्रह्मवेत्ताको ही ब्राह्मणरूपसे प्रदर्शित करती हैं ॥ ४० ॥

वेदवेद्य परमात्माको जाननेवालेकी गति

भवेदेतदेवं यदि तदेव ब्रह्म सिद्ध्येत, न च सिद्ध्यति, अन्यपरत्वाद् वेदस्येति; तत्राह—

[ठीक है,] यदि वह ब्रह्म सिद्ध हो जाय तो ऐसी ही बात हो सकती है, किंतु वह तो सिद्ध ही नहीं होता; क्योंकि वेदका तात्पर्य तो अन्य (कर्मादि) में ही है; इसपर कहते हैं—

छन्दांसि नाम द्विपदां वरिष्ठ स्वच्छन्दयोगेन भवन्ति तत्र।
छन्दोविदस्तेन च तानधीत्य गता हि वेदस्य न वेद्यमार्याः ॥ ४१ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! वेद तो स्वतन्त्रतासे उसी [ब्रह्मतत्त्व] में प्रमाण हैं। अतः वेदवेत्ता आर्यजन उनका अध्ययन कर उस वेद [यानी ज्ञानस्वरूप परमात्मा] के स्वरूपको प्राप्त हो वेद्यवर्ग (प्रपञ्च) को प्राप्त नहीं होते ॥४१॥

हे द्विपदां वरिष्ठ ! छन्दांसि वेदाः स्वच्छन्दयोगेन स्वच्छन्दता स्वाधीनता यथाकाममित्यर्थः। तत्र परमात्मनि भवन्ति तत्रैव प्रमाणं भवन्ति। श्रूयते च—'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' इति च।

हे नरश्रेष्ठ ! छन्द यानी वेद स्वच्छन्दतासे, स्वच्छन्दता स्वाधीनताको कहते हैं, अर्थात् यथेष्टरूपसे उस परमात्मामें ही हैं अर्थात् उसीमें प्रमाण हैं। ऐसा ही 'समस्त वेद जिस पदका निरूपण करते हैं' यह श्रुति भी कहती है।

पुरुषार्थपर्यवसायित्वाद् वेदस्य तद्व्यतिरिक्तस्य सर्वस्यानित्याशुचिदुःखानुविद्धत्वेन पुरुषार्थत्वाभावात् तत्स्वरूपतज्ज्ञानतत्साधनप्रतिपादकत्वेन वेदानां प्रामाण्यमित्यर्थः।

वेदका तात्पर्य पुरुषार्थमें है तथा उस (ब्रह्म) से भिन्न और सब पदार्थ अनित्य, अपवित्र और दुःखमिश्रित होनेके कारण पुरुषार्थस्वरूप नहीं हैं। अतः तात्पर्य यह है कि वेदोंका प्रामाण्य उसीके स्वरूप, उसीके ज्ञान और उसीकी प्राप्तिके साधनोंका प्रतिपादन करनेके कारण ही है।

यस्माद्वेदाः स्वच्छन्दयोगेन तत्रैव परमात्मनि प्रमाणं भवन्ति, तेन च हेतुना तान् वेदानधीत्य

क्योंकि वेद स्वच्छन्दतासे उस परमात्मामें ही प्रमाण हैं, इस कारणसे आर्य—पण्डित यानी ब्रह्मवेत्तालोग उन वेदोंका अध्ययन कर—उनका ज्ञान प्राप्त कर अर्थात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अधिगम्य वेदान्तश्रवणादिकं कृत्वा गताः प्राप्ता वेदस्य संविद्रूपस्य परमात्मनः स्वरूपं न वेद्यं प्रपञ्चम् आर्याः पण्डिता ब्रह्मविदः ॥४१॥

वेदान्तश्रवणादि करके वेदके यानी ज्ञानस्वरूप परमात्माके स्वरूपको प्राप्त हो गये हैं, वे वेद्य—प्रपञ्चको प्राप्त नहीं होते ॥ ४१ ॥

ब्रह्मज्ञ ही वेदज्ञ है

एवं तर्हि वेदवेद्यत्वे 'अन्यदेव तद्विदितादथोऽविदितादधि,' 'यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह' इत्यादिश्रुतिविरोधः प्रसज्येतेत्याशङ्क्याह—

ऐसा होनेपर तो 'वह विदितसे भिन्न और अविदितसे भी परे है,' 'जहाँसे मनके सहित वाणी, उसे प्राप्त न होकर लौट आती है' इत्यादि श्रुतियोंसे विरोध होनेका प्रसङ्ग आ जायगा—ऐसी आशङ्का करके कहते हैं—

न वेदानां वेदिता कश्चिदस्ति वेदेन वेदं न विदुर्न वेद्यम् ।
यो वेद वेदं स च वेद वेद्यं यो वेद वेद्यं न स वेद सत्यम् ॥ ४२ ॥

वेदोंमेंसे कोई भी [उस परमात्माको] जाननेवाला नहीं है; क्योंकि वेदके द्वारा तो न वेद (संवित्स्वरूप परमात्मा) का ज्ञान होता है और न वेद्य (दृश्यवर्ग) का ही । अतः जो वेद (संवित्स्वरूप परमात्मा) को जानता है, वही वेद्यको भी जानता है; किंतु जो वेद्यको [ही] जानता है, वह सत्यको नहीं जानता ॥ ४२ ॥

न वेदानामृगादीनां मध्ये कश्चिदपि वेदः परमात्मनो वाचामगोचरस्य संविद्रूपस्य वेदितास्ति; कस्मात् ? यस्माद् वेदेन ऋगादिरूपेण जडेन वेदं संविद्रूपं परमात्मानं न विदुः । न वेद्यम्, प्रपञ्चमपि न विदुः, संविदधीनत्वात्सर्वसिद्धेः ।

ऋगादि वेदोंमेंसे कोई भी वेद वाणीके अविषयभूत संवित्स्वरूप परमात्माको जाननेवाला नहीं है । क्यों नहीं है ?—क्योंकि ऋगादिरूप जड वेदके द्वारा ज्ञानस्वरूप परमात्माका ज्ञान नहीं होता और न वेद्य—प्रपञ्चका ही ज्ञान होता है, कारण, समस्त पदार्थोंकी सिद्धि तो ज्ञानके ही अधीन है ।

यस्मात् संविदधीना सर्वसिद्धिस्तस्माद् यो वेदं संविद्रूपं परमात्मानं वेद जानाति स च वेद वेद्यमिदं सर्वम् । तथा च श्रुतिः—'आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्' इति । यो वेद वेद्यमिदं रूपं न स वेद न जानाति सत्यं सत्यादिलक्षणं परमात्मानम् ॥ ४२ ॥

[इस प्रकार] क्योंकि समस्त पदार्थोंकी सिद्धि ज्ञानके ही अधीन है, इसलिये जो कोई ज्ञानस्वरूप परमात्माको जानता है, वही वेद्य—इस समस्त प्रपञ्चको भी जानता है । 'अरे मैत्रेयि ! आत्माके ही दर्शन, श्रवण, ज्ञान अथवा विज्ञानसे यह सब जाना जाता है' यह श्रुति भी ऐसा ही कहती है । और जो वेद्य यानी इस रूपको जानता है, वह सत्य—सत्यादिस्वरूप परमात्माको नहीं जानता ॥ ४२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्वेवं तर्हि 'वेदेन वेदं न विदुर्न वेद्यम्' इति वदता अनात्मविदः प्रपञ्चासिद्धिरेवेत्युक्तं भवतीत्याशङ्क्याह—

तब इस प्रकार तो 'वेदसे न तो वेद (परमात्मा) का ज्ञान होता है और न वेद्यका ही' ऐसा कहनेवाला पुरुष अनात्मवेत्ताके लिये प्रपञ्चकी असिद्धि ही बतलाता है—ऐसी आशङ्का करके कहते हैं—

यो वेद वेदान् स च वेद वेद्यं न तं विदुर्वेदविदो न वेदाः ।
तथापि वेदेन विदन्ति वेदं ये ब्राह्मणा वेदविदो भवन्ति ॥ ४३ ॥

जो [ऋगादि] वेदोंको जानता है, वह तो केवल वेद्यवर्गको ही जानता है; उस परमात्माको तो न वेदवेत्ता ही जानते हैं और न वेद ही । तथापि जो ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ) वेदवेत्ता होते हैं, वे वेदके द्वारा ज्ञानस्वरूप परमात्माको भी जान लेते हैं ॥ ४३ ॥

यो वेद जानाति ऋगादीन् वेदान् स च वेद वेद्यं सोऽप्यनात्मविदेव भिन्नेन संवेदनेन वेद्यं प्रपञ्चं वेद । नन्वेवं चेत् तर्हि वेद्यवत् परमात्मानमपि विजानीयादित्याशङ्क्याह—न तं परमात्मानं वाचामगोचरं विदुर्वेदविदः, न वेदाः, वेदा अपि न तं विदुः, न तं विषयीकुर्वन्तीत्यर्थः । कथंचिल्लक्षणया बोधयन्तीति भावः ।

जो ऋगादि वेदोंको जानता है, वह तो वेद्यवर्गको ही जानता है । वह भी अनात्मज्ञ ही है तथा भेदज्ञानके द्वारा वेद्य—प्रपञ्चको ही जानता है । तब इस प्रकार तो वेद्यवर्गके समान वह परमात्माको भी जान ही सकता है—ऐसी आशङ्का करके कहते हैं—वाणीके अविषयभूत उस परमात्माको न तो वेदवेत्ता ही जानते हैं और न वेद ही अर्थात् वेद भी उसे विषय नहीं कर सकते । किसी प्रकार लक्षणावृत्तिद्वारा उसका बोध कराते हैं—ऐसा इसका भाव है ।

नन्वेवं तर्हि कथमौपनिषदं ब्रह्म स्यादित्याशङ्क्याह—'तथापि वेदेन विदन्ति वेदम्' । यद्यपि वागाद्यविषयं ब्रह्म तथापि वेदेन ऋगादिना विदन्ति विजानन्ति वेदं संविद्रूपं परमात्मानम् । के ते ? ये ब्राह्मणा वेदविदो भवन्ति । वेदानां वेदप्रतिपादनप्रकारं जानन्तीत्यर्थः ॥ ४३ ॥

तो फिर ऐसी अवस्थामें ब्रह्म उपनिषद्वेद्य कैसे हो सकता है ?—ऐसी आशङ्का करके कहते हैं—'तथापि वेदेन विदन्ति वेदम्'—यद्यपि ब्रह्म वागादि इन्द्रियोंका अविषय है तथापि ऋगादि वेदके द्वारा वेद—ज्ञानस्वरूप परमात्माको जानते हैं ? वे जाननेवाले कौन हैं ?—जो ब्राह्मण वेदवेत्ता अर्थात् वेदोंके वेद (परमात्मतत्त्व) के प्रतिपादनका प्रकार जानते हैं ॥ ४३ ॥

वेद तटस्थवृत्तिसे परमात्माका बोध कराता है

कथं तर्ह्यविषयमेव ब्रह्म वेदाः प्रतिपादयन्तीत्याशङ्क्याह—

तो फिर, जो ब्रह्म किसीका भी विषय नहीं है, उसका वेद किस प्रकार प्रतिपादन करते हैं ? ऐसी आशङ्का करके कहते हैं—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यामांशभागस्य तथा हि वेदा यथा हि शाखा च महीरुहस्य ।
संवेदने चैव यथामनन्ति तस्मिन् हि नित्ये परमात्मनोऽर्थे ॥ ४४ ॥

जिस प्रकार वृक्षकी शाखा चन्द्रकलाके दर्शनमें हेतु होती है, उसीप्रकार वेद भी उस अविनाशी परमात्मतत्त्वके ज्ञानमें हेतु हैं—ऐसा शास्त्र कहते हैं ॥ ४४ ॥

यामांशभागस्य, 'त्रियामश्चन्द्रः' इति श्रुतेः, चन्द्रांशभागस्य । प्रतिपच्चन्द्रकलादर्शने यथा महीरुहस्य वृक्षस्य शाखा हेतुर्भवति । तथा हि वेदास्तस्यैव परमात्मनः स्वरूपभूते संवेदने नित्येऽविनाशिन्यर्थे परमपुरुषार्थस्वरूपे पूर्णानन्दरूपे हेतवो भवन्ति । न पुनः साक्षाद्वाचामगोचरं परमात्मानं प्रतिपादयन्तीत्येवमामनन्ति ॥ ४४ ॥

'त्रियाम चन्द्रमाको कहते हैं' इस श्रुतिके अनुसार जिस प्रकार यामांशभाग—चन्द्रांशभाग अर्थात् प्रतिपदाकी चन्द्रकलाके दर्शनमें वृक्षकी शाखा हेतु होती है, उसी प्रकार परमात्माके स्वरूपभूत ज्ञानमें, जो नित्य-अविनाशी तत्त्व, परमपुरुषार्थस्वरूप तथा पूर्णानन्दमय है, वेद कारण हैं। वे वाणीके अविषयभूत परमात्माका साक्षात् प्रतिपादन नहीं करते—ऐसा शास्त्र कहते हैं ॥ ४४ ॥

वेदार्थका ज्ञाता ही सच्चा ब्राह्मण है

य एवं वेदानां वेदरूपात्मप्रतिपादनप्रकारमवगम्य व्याचष्टे, सोऽपि ब्राह्मण इत्याह—

अब यह बतलाते हैं कि जो इस प्रकार वेदोंका वेदस्वरूप आत्माके प्रतिपादनका प्रकार समझकर उनकी व्याख्या करता है, वही ब्राह्मण है—

अभिजानामि ब्राह्मणमाख्यातारं विचक्षणम् ।
एवं योऽभिविजानाति स जानाति परं हि तत् ॥ ४५ ॥

जो वेदोंकी [यथोचित] व्याख्या करनेवाला है, उसे मैं कुशल ब्राह्मण समझता हूँ । जो इस प्रकार जानता है, वही उस परमात्माको जानता है ॥ ४५ ॥

यो वेदप्रतिपादनप्रकारं व्याचष्टे तमाख्यातारं विचक्षणं ब्राह्मणमभिजानामि । ननु बाल्यपाण्डित्यादिकं निर्विद्यावस्थितमेव ब्राह्मणं ब्रूते श्रुतिः । तथा हि 'ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्तं बाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्याथ मुनिर्भवति । मौनं चामौनं च निर्विद्याथ ब्राह्मणः' इति ।

जो वेदोंके प्रतिपादनकी शैलीकी व्याख्या करता है, उस व्याख्याताको मैं कुशल ब्राह्मण समझता हूँ; किंतु श्रुति तो जो बाल्य और पाण्डित्यका त्याग करके स्थित है, उसीको ब्राह्मण बतलाती है; जैसा कि कहा है—'ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) को पाण्डित्यका त्याग करके बाल्यभावसे स्थित होना चाहिये और फिर बाल्य तथा पाण्डित्यसे निवृत्त होकर वह मुनि हो जाता है तथा मौन और अमौनका भी त्याग करके ब्रह्मनिष्ठ होता है ।' फिर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कथमुच्यते—अभिजानामि ब्राह्मणमाख्यातारं विचक्षणमिति ? तत्राह—एवं वेदानां वेदनरूपात्मप्रतिपादनप्रकारं मयोक्तं योऽभिविजानाति स जानाति परं हि तत्परं ब्रह्म जानात्येव। यो हि पाण्डित्यं निर्विद्य स्थितः स क्षिप्रं बाल्यादिकं निर्विद्य ब्राह्मणो भवतीत्यभिप्रायः ॥ ४५ ॥

यहाँ ऐसा कैसे कहते हैं कि मैं वेदोंकी व्याख्या करनेवालेको विचक्षण ब्राह्मण समझता हूँ ? इसपर कहते हैं—इस प्रकार जो वेदोंका मेरा बताया हुआ ज्ञानस्वरूप आत्माके प्रतिपादनका प्रकार जानता है, वह उस परब्रह्मको भी जानता ही है। तात्पर्य यह है कि जो [कोरे] पाण्डित्यसे निवृत्त होकर स्थित है, वह शीघ्र ही बाल्यादिसे भी निर्विण्ण होकर ब्राह्मण हो जाता है ॥ ४५ ॥

आत्मकामीको विषयोंमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये

यस्मात्सत्यनिष्ठस्यैव ब्राह्मणत्वप्रसिद्धिस्तस्माद्विषयपरो न भवेदित्याह—

क्योंकि ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति सत्यनिष्ठको ही होती है, अतः यह बतलाते हैं कि विषयपरायण नहीं होना चाहिये—

नास्य पर्येषणं गच्छेत् प्रत्यर्थिषु कदाचन।
अविचिन्वन्निमं वेदे ततः पश्यति तं प्रभुम् ॥ ४६ ॥

साधकको इस (आत्मतत्त्व) के प्रतिपक्षियों (विषयों) के अनुसंधानमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये। इनका अनुसंधान न करनेपर फिर वह वेदमें उस प्रभुका दर्शन कर पाता है ॥ ४६ ॥

'विषयाश्चेन्द्रियाण्येव देहोऽहंकार एव च। बाह्या आभ्यन्तरा घोराः शत्रवो योगिनः स्मृताः' इति दर्शनान्नस्य आत्मनः प्रत्यर्थिषु प्रतिपक्षभूतेषु देहेन्द्रियशब्दादिविषयेषु पर्येषणं परित एषणं गच्छेत्, विषयान्वेषणपरो न भवेदित्यर्थः। अविचिन्वन् विषयसंचयमकुर्वन्निमं प्रत्यगात्मानं वेदे उपनिषत्सु तत्त्वमस्यादिवाक्येषु, ततः पश्चात्पश्यति तं प्रभुं परमात्मानम् आत्मत्वेन जानातीत्यर्थः।

'विषय, इन्द्रियाँ, देह और अहंकार ही इस योगीके बाह्य एवं आन्तरिक भयंकर शत्रु माने गये हैं' ऐसा देखे जानेके कारण साधकको इस (आत्मतत्त्व) के प्रत्यर्थी—प्रतिपक्षभूत देह, इन्द्रिय एवं शब्दादि विषयोंका पर्येषण—परीक्षण नहीं करना चाहिये; अर्थात् उसे विषयानुसंधानमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये। 'अविचिन्वन्'—विषयसंचय न करनेसे वह वेद यानी उपनिषदोंमें—'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंमें उस प्रत्यगात्मा प्रभु यानी परमात्माको आत्मस्वरूपसे जान लेता है।

अथवा, नास्यात्मनः पर्येषणम् अन्वेषणं गच्छेत्। प्रत्यर्थिषु प्रतिपक्षभूतदेहेन्द्रियादिषु देहेन्द्रियतद्धर्मानात्मत्वेन न गृह्णीयादित्यर्थः। अविचिन्वन् देहेन्द्रियतद्धर्मानात्मत्वेन

अथवा (इसका यह भी अर्थ हो सकता है—) इस आत्माका प्रत्यर्थियों—प्रतिपक्षभूत देह एवं इन्द्रियादिमें पर्येषण—अन्वेषण नहीं करना चाहिये; अर्थात् देह, इन्द्रिय और उनके धर्मोंको आत्मभावसे ग्रहण नहीं करना चाहिये। देह, इन्द्रिय और उनके धर्मोंका अनु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्मत्वेनासंचिन्वन् तत्साक्षिणमात्मानमेव प्रतिपद्यमानस्तत्त्वंपदार्थशोधनानन्तरमिमं प्रमात्रादिसाक्षिणं परमात्मानं पश्यति। देहेन्द्रियतद्धर्मानात्मत्वेनाप्रतिपद्यमानस्तत्त्वमस्यादिवाक्यैः परमात्मानमात्मत्वेन पश्यतीत्यर्थः ॥ ४६ ॥

संधान न करनेसे अर्थात् उन्हें आत्मस्वरूपसे अनुभव न करनेसे उनके साक्षीको ही आत्मस्वरूपसे जानते हुए वह तत् और त्वंपदार्थके शोधनके अनन्तर इस प्रमाता आदिके साक्षी परमात्माका साक्षात्कार करता है। तात्पर्य यह है कि देह, इन्द्रिय और उनके धर्मोंको आत्मभावसे न देखते हुए वह 'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंसे परमात्माको आत्मभावसे अनुभव करता है ॥ ४६ ॥

ब्रह्मप्राप्तिका क्रम

यस्मात्सर्वविषयपरित्यागेनैवात्मदर्शनसिद्धिः, तस्मात्—

क्योंकि समस्त विषयोंका सर्वथा त्याग करनेसे ही आत्मदर्शन हो सकता है, इसलिये—

तूष्णींभूत उपासीत न चेच्छेन्मनसा अपि।
अभ्यावर्त्तेत ब्रह्मास्मै बह्वनन्तरमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥

सर्वकर्मसंन्यास करके उपासना करे। मनसे भी (किसी विषयकी) इच्छा न करे। (ऐसा होनेपर) ब्रह्म इसके अभिमुख हो जायगा और तत्पश्चात् उसे भूमाकी प्राप्ति हो जायगी ॥ ४७ ॥

तूष्णींभूतः सर्वकर्मसंन्यासं कृत्वा स्वात्मव्यतिरिक्तं सर्वं परित्यज्य केवलो भूत्वा स्वात्मानमेव लोकमुपासीत। न चेच्छेन्मनसा अपि विषयेच्छां न कुर्यात्।

यस्तूष्णींभूतो विषयोपसंहारं कृत्वा स्वात्मानमेव लोकमुपास्ते, अस्मै तूष्णींभूताय ब्राह्मणाय ब्रह्म अपूर्वादिलक्षणमभ्यावर्तेत—अभिमुखीभवेदित्यर्थः। श्रूयते च—'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्' इति। अनन्तरमाविर्भूतस्वरूपः सन् बहु भूमानं तमसः पारं परमात्मानमाप्नुयादित्यर्थः ॥ ४७ ॥

'तूष्णींभूतः' अर्थात् सर्वकर्मसंन्यास करके—आत्मासे भिन्न और सभीको त्यागकर केवली (एकत्वमें स्थित), हो अपने आत्मलोककी ही उपासना करे तथा इच्छा न करे अर्थात् मनसे भी विषयोंकी अभिलाषा न करे।

जो पुरुष तूष्णींभूत हो सम्पूर्ण विषयोंका उपसंहार कर स्वात्मलोककी ही उपासना करता है, उस तूष्णींभूत ब्राह्मणके अपूर्व-अनपरादि लक्षणोंसे लक्षित ब्रह्म अभ्यावर्तित अर्थात् अभिमुख हो जाता है। इस विषयमें 'जिसे यह (आत्मा) वरण करता है, उसीको यह प्राप्त हो सकता है, उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूपको अभिव्यक्त कर देता है' ऐसी श्रुति भी है। इसके पश्चात् स्वरूपसाक्षात्कार होनेपर यह बहु—भूमा यानी अज्ञानातीत परमात्माको प्राप्त कर लेता है—ऐसा इसका तात्पर्य है ॥ ४७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मज्ञ ही मुनि है

मुनिरप्येष एवेत्याह—

अब यह बतलाते हैं कि यही मुनि भी है—

मौनाद्धि मुनिर्भवति नारण्यवसनान्मुनिः ।
अक्षरं तं तु यो वेद स मुनिश्रेष्ठ उच्यते ॥ ४८ ॥

मौनके द्वारा ही [साधक] मुनि होता है, जंगलमें रहनेसे वह मुनि नहीं होता । जो पुरुष उस अविनाशी ब्रह्मको जानता है, वही श्रेष्ठ मुनि कहा जाता है ॥ ४८ ॥

मौनात्पूर्वोक्तात्तूष्णींभावादेव मुनिर्भवति न पुनररण्यवासमात्रान्मुनिर्भवति । तेषामपि तूष्णींभूतानां मध्ये यस्तु पुनरक्षरमविनाशिनं तं परमात्मानं वेद 'अयमहमस्मि' इति साक्षाज्जानाति स मुनिश्रेष्ठ उच्यते । श्रूयते च—'एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति' इति ॥ ४८ ॥

मौन अर्थात् पूर्वोक्त तूष्णींभावसे ही [साधक] मुनि होता है, केवल जंगलमें रहनेसे ही कोई मुनि नहीं होता । उन तूष्णींभूतोंमें भी जो उस अक्षर यानी अविनाशी परमात्माको 'यह मैं हूँ' इस प्रकार साक्षात् रूपसे जानता है, वह श्रेष्ठ मुनि कहा जाता है । श्रुति भी कहती है—'इसीको जानकर मुनि हो जाता है' इत्यादि ॥ ४८ ॥

ब्रह्मज्ञ ही वैयाकरण है

वैयाकरणोऽप्येष एवेत्याह—

अब यह बतलाते हैं कि यही वैयाकरण भी है—

सर्वार्थानां व्याकरणाद्वैयाकरण उच्यते ।
तन्मूलतो व्याकरणं व्याकरोतीति तत्तथा ॥ ४९ ॥

सब प्रकारके अर्थोंका व्याकरण (विवेचन) करनेके कारण ही किसी पुरुषको वैयाकरण कहा जाता है । [अक्षर ब्रह्मसे जो समस्त दृश्य प्रपञ्चकी अभिव्यक्ति होती है] यही मूल व्याकरण है । यह विद्वान् भी उस (ब्रह्म) का व्याकरण (विवेचन) करता है, इसलिये यह भी वैयाकरण है ॥ ४९ ॥

सर्वार्थानां व्याकरणाद् वैयाकरण उच्यते, न पुनः शब्दैकदेशव्याकरणाद् वैयाकरणो भवति । भवतु सर्वार्थानां व्याकरणाद् वैयाकरणत्वं ततः किमिति चेत्तत्राह—तन्मूलतो व्याकरणम् ।

सब प्रकारके अर्थोंका व्याकरण करनेसे ही कोई पुरुष वैयाकरण कहा जाता है—शब्दरूप एकदेशका व्याकरण करनेसे ही कोई वैयाकरण नहीं हो सकता । सब प्रकारके अर्थोंका व्याकरण करनेसे ही वैयाकरणत्व होता है तो होने दो—इससे क्या ? ऐसा प्रश्न होनेपर कहते हैं—वही मूलतः व्याकरण है अर्थात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वोक्तादक्षराद्धि सर्वस्य नामरूपप्रपञ्चस्य व्याकरणम्। श्रूयते च—'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' इति। तस्माद् ब्रह्मण एव साक्षाद्वैयाकरणत्वम्। 'व्याकरोतीति तत्तथा' असावपि विद्वान् तद् ब्रह्म तथैव व्याकरोतीति वैयाकरणः।४९।

पूर्वोक्त अक्षरसे ही समस्त नामरूपप्रपञ्चका विभाग होता है। श्रुति भी कहती है—'इस जीवरूपसे अनुप्रविष्ट होकर मैं नाम और रूपोंका विभाग करता हूँ।' अतः साक्षात् वैयाकरणत्व ब्रह्मका ही है। 'व्याकरोतीति तत्तथा'—यह विद्वान् भी उस ब्रह्मका इसी प्रकार व्याकरण (विवेचन) करता है, इसलिये वह 'वैयाकरण' है॥ ४९॥

ब्रह्मज्ञ ही सर्वज्ञ है

सर्वज्ञोऽप्येष एवंत्याह—

अब यह बतलाते हैं कि यही सर्वज्ञ भी है—

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः।
सत्ये वै ब्रह्मणि तिष्ठंस्तद्विद्वान् सर्वविद्भवेत्॥ ५०॥

सम्पूर्ण लोकोंको प्रत्यक्ष देखनेवाला पुरुष ही सर्वदर्शी होता है। अतः सत्यस्वरूप ब्रह्ममें स्थित होकर उसका साक्षात्कार करनेवाला विद्वान् सर्वदर्शी होता है॥ ५०॥

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां यः प्रत्यक्षेण भूरादीन् लोकान् पश्यति स सर्वदर्शी नरो भवेत् सर्वरूपं परमात्मानं पश्यति। असौ पुनः सत्ये सत्यादिलक्षणे ब्रह्मणि तिष्ठन्मनः समादधाति। तद्विद्वान् सत्यादिलक्षणं ब्रह्म विद्वानात्मत्वेन जानन् सर्वविद् भवेत् सर्वं जानातीत्यर्थः। तस्मादेष एव साक्षात् सर्वज्ञो न अनात्ममात्रदर्शी॥ ५०॥

लोकोंका प्रत्यक्षदर्शी अर्थात् जो भूः आदि लोकोंको प्रत्यक्षरूपसे देखता है, वह पुरुष सर्वदर्शी होता है; वह सर्वरूप परमात्माको देखता है। यह [विद्वान्] सत्य—सत्यादि लक्षणोंसे लक्षित ब्रह्ममें स्थित हो मनको समाहित करता है। अतः 'तद्विद्वान्'—सत्यादिलक्षण ब्रह्मका ज्ञाता यानी उसे आत्मभावसे जाननेवाला पुरुष सर्ववित् होता है अर्थात् वह सबको जानता है, अतः वही साक्षात् सर्वज्ञ है। जो केवल अनात्माको देखनेवाला है, वह नहीं॥ ५०॥

ज्ञानादिगुणयुक्त पुरुष ही ब्रह्मका साक्षात्कार कर सकता है

'यस्त्वेतेभ्यः' इत्यादिना उक्तमेवार्थं पुनरपि दर्शयति अवश्यकर्तव्यत्वप्रदर्शनार्थम्—

'यस्त्वेतेभ्यः' (२।२०) इत्यादि श्लोकोंसे कहे हुए अर्थको ही उसकी अवश्य-कर्तव्यता दिखलानेके लिये पुनः प्रदर्शित करते हैं—

ज्ञानादिषु स्थितोऽप्येवं क्षत्रिय ब्रह्म पश्यति।
वेदानां चारपूर्वेण चैतद्विद्वन् ब्रवीमि ते॥ ५१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे क्षत्रिय ! इसी प्रकार ज्ञानादिमें स्थित हुआ पुरुष भी वेदान्तश्रवणपूर्वक ब्रह्मका साक्षात्कार कर लेता है। हे विद्वन् ! यही बात अब मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि धृतराष्ट्रसनत्कुमारसंवादे श्रीसनत्सुजातीये द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

ज्ञानादिषु 'ज्ञानं च' (२ । १९) इत्यादिना पूर्वोक्तेषु स्थितोऽप्येवं यथा सत्ये तिष्ठन् ब्रह्म पश्यति, एवमेव ब्रह्म पश्यति । वेदानां चारपूर्वेण वेदान्तश्रवणपूर्वकमित्यर्थः । अथवा गुणान्तरविधानमेतत् । ज्ञानादिषु स्थितोऽपि न केवलं तावन्मात्रेण पश्यति, अपि तु एवमेव वक्ष्यमाणप्रकारेण वेदान्तविचारपूर्वेण वेदान्तश्रवणादिपूर्वकमेव पश्यति ब्रह्म । एतद्वेदान्तानां विचारप्रकारं हे विद्वन्! ब्रवीमि ते वक्ष्यामीत्यभिप्रायः ॥ ५१ ॥

'ज्ञानं च' (२ । १९) इत्यादि श्लोकोंसे पहले बतलाये हुए ज्ञानादि साधनोंमें स्थित हुआ पुरुष भी वेदोंके चारपूर्वक अर्थात् वेदान्तश्रवणपूर्वक ब्रह्मका इसी प्रकार साक्षात्कार कर लेता है जैसे सत्य (सत्यस्वरूप ब्रह्म) में स्थित हुआ पुरुष । अथवा यह गुणान्तरका विधान भी हो सकता है । [तथा इसका यह आशय होगा कि] ज्ञानादिमें स्थित हुआ पुरुष भी केवल उतनेहीसे ब्रह्मका साक्षात्कार नहीं कर सकता, अपितु इसी प्रकार यानी आगे कहे जानेवाले प्रकारसे वेदान्तविचारपूर्वक अर्थात् वेदान्तश्रवणादिपूर्वक ही ब्रह्मका साक्षात्कार करता है । हे विद्वन् ! मैं तुम्हें यह वेदान्तोंका चार विचार-प्रकार बतलाता हूँ अर्थात् अब इसीका वर्णन करूँगा ॥ ५१ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीशंकरभगवतः कृतौ श्रीसनत्सुजातीयभाष्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

ब्रह्मनिरूपणके लिये धृतराष्ट्रकी प्रार्थना

इदानीं ब्रह्मचर्यादिसाधनानन्तरं तत्प्राप्यं च ब्रह्म प्रतिपादयितुं तृतीयचतुर्थावध्यायावारभ्येते । तत्र तावद् ब्रह्मचर्यादिसाधनं श्रुत्वा तद् ब्रह्मवेदनाकाङ्क्षी प्राह धृतराष्ट्रः—

अब ब्रह्मचर्यादि साधनोंके अनन्तर उनसे प्राप्त होनेवाले ब्रह्मका प्रतिपादन करनेके लिये तीसरे और चौथे अध्यायोंका आरम्भ किया जाता है । उस समय ब्रह्मचर्यादि साधनोंको सुनकर ब्रह्मको जाननेके इच्छुक होकर राजा धृतराष्ट्रने पूछा—

धृतराष्ट्र उवाच—

सनत्सुजात यदिमां परार्थां ब्राह्मीं वाचं वदसि हि विश्वरूपाम् ।
परां हि कार्येषु सुदुर्लभां कथां प्रब्रूहि मे वाक्यमेवं कुमार ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—सनत्सुजातजी ! क्योंकि आप ये उत्कृष्ट अर्थसमन्वित नाना प्रकारकी ब्रह्मसम्बन्धिनी बातें कह रहे हैं, अतः जिसका कार्यवर्गमें प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है, वह अत्युत्तम बात मुझे सुनाइये । हे कुमार ! [आपके प्रति] ऐसी मेरी प्रार्थना है ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे सनत्सुजात ! यद् यस्मादिमां परार्थाम् उत्कृष्टार्थां ब्राह्मीं ब्रह्मसम्बन्धिनीं वाचं वदसि हि विश्वरूपां नानारूपां पराम् उत्तमां कार्येषु कार्यवर्गेषु प्रपञ्चेषु सुदुर्लभां श्रवणायाप्यशक्यां कथां प्रब्रूहि मे वाक्यम् एवंभूतं कुमार, यस्माच्चं ब्राह्मीं वाचं परमपुरुषार्थ-साधनभूतां सुदुर्लभां वदसि तस्माच्चमेव वक्तुमर्हसीत्यभिप्रायः ॥ १ ॥

हे सनत्सुजातजी ! क्योंकि आप ये परार्थ—उत्कृष्ट अर्थवाली ब्राह्मी—ब्रह्मसम्बन्धिनी विश्वरूपा—नाना प्रकारकी बातें कह रहे हैं, अतः जो अत्युत्कृष्ट और कार्यवर्ग यानी प्रपञ्चमें अत्यन्त दुर्लभ है—जिसका सुननेके लिये भी मिलना कठिन है, वह बात मुझसे कहिये । हे कुमार ! आपके प्रति मेरी ऐसी प्रार्थना है । क्योंकि आप परमपुरुषार्थकी साधनभूत अत्यन्त दुर्लभ बातें कर रहे हैं, इसलिये आप ही ऐसी बात सुनानेमें समर्थ हैं—ऐसा इसका तात्पर्य है ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्य ही ब्रह्मविद्याका मूल है

एवं पृष्टः प्राह भगवान्—

इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् सनत्सुजातने कहा—

सनत्सुजात उवाच—

नैतद् ब्रह्म त्वरमाणेन लभ्यं यन्मां पृच्छस्यभिषङ्गेण राजन् ।
बुद्धौ प्रलीने मनसि प्रचिन्त्या विद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या ॥ २ ॥

श्रीसनत्सुजातजी बोले—हे राजन् ! जिसके विषयमें तुम आग्रहपूर्वक पूछ रहे हो, वह ब्रह्म उतावली करनेवाले पुरुषको नहीं मिल सकता । जिसका सम्यक् विचार मनके बुद्धिमें लीन होनेपर ही हो सकता है, वह विद्या तो ब्रह्मचर्यसे ही प्राप्त हो सकती है ॥ २ ॥

नैतद् ब्रह्म त्वरमाणेन पुरुषेण लभ्यं यद् ब्रह्म मां पृच्छस्यभिषङ्गेण राजन् । कथं तर्हि लभ्यमित्याह—बुद्धावध्यवसायात्मिकायां प्रलीने मनसि प्रचिन्त्या विद्या हि सा, यदा पुनः संकल्प-विकल्पात्मकं मनो विषयेभ्यः परावृत्य स्वात्मन्येव निश्चलं भवतीत्यर्थः । येयं बुद्धौ प्रलीने मनसि प्रचिन्त्या सा विद्या ब्रह्मचर्येण वक्ष्यमाणेन लभ्या ।२।

हे राजन् ! जिसके विषयमें तुम आग्रहपूर्वक पूछते हो, वह ब्रह्म उतावली करनेवाले पुरुषको नहीं मिल सकता । तो फिर कैसे मिल सकता है ? इसपर कहते हैं—निश्चयात्मिका बुद्धिमें मनके लीन हो जानेपर ही उस विद्याका प्रकृष्टतया चिन्तन किया जा सकता है । तात्पर्य यह है कि जिस समय संकल्प-विकल्पात्मक मन विषयोंसे निवृत्त होकर अपने आपमें ही निश्चल हो जाता है [उसी समय उसकी उपलब्धि होती है] । बुद्धिमें मनके लीन हो जानेपर जिस विद्याका प्रकृष्टतया चिन्तन किया जाता है, उसकी प्राप्ति आगे कहे जानेवाले ब्रह्मचर्यसे हो सकती है ॥ २ ॥

किं च—

और—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आद्यां विद्यां वदसि हि सत्यरूपां या प्राप्यते ब्रह्मचर्येण सद्भिः।
यां प्राप्यैनं मर्त्यभावं त्यजन्ति या वै विद्या गुरुवृद्धेषु नित्या ॥ ३ ॥

क्योंकि तुम सत्यस्वरूपा आदिविद्याके विषयमें ही कह (प्रश्न कर) रहे हो [अतः वह तो उतावलापन न करके ब्रह्मचर्यादि साधनसम्पन्न होनेपर ही मिल सकती है], [वह विद्या कैसी है ?—] जो सत्पुरुषोंको ब्रह्मचर्यके द्वारा ही प्राप्त हो सकती है, जिसे प्राप्त करके लोग इस मर्त्यभावको त्याग देते हैं और जो विद्या सर्वदा गुरुद्वारा वृद्धिको प्राप्त हुए पुरुषोंमें ही रहती है ॥ ३ ॥

आद्यां सर्वादिभूतब्रह्मविषयां विद्यां वदसि हि सत्यरूपां परमार्थरूपां मे ब्रूहीति। यद्वा, आद्याम् अकार्यभूताम् असत्यप्रपञ्चाविषयां विद्यां वदसि तस्मादत्वरमाणेन ब्रह्मचर्यादिसाधनोपेतेन उपसंहृतान्तःकरणेनैव लभ्येत्यर्थः। या प्राप्यते ब्रह्मचर्येण सद्भिः। यां प्राप्य एनं मर्त्यभावं त्यजन्ति। या वै विद्या गुरुवृद्धेषु गुरुणा विद्याप्रदानादिना वर्द्धितेषु शिष्येषु नित्या नियता ॥ ३ ॥

क्योंकि तुम आद्या—सबके आदिभूत ब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाली विद्याके विषयमें ही कहते हो कि उस सत्यरूपा—परमार्थभूता विद्याका मेरे प्रति वर्णन करो, या यह कह सकते हैं कि तुम आद्या—अकार्यभूता अर्थात् असत्य प्रपञ्चसे सम्बन्ध न रखनेवाली विद्याके विषयमें कह रहे हो, अतः वह तो उतावलापन न करनेवाले, ब्रह्मचर्यादि साधनोंसे सम्पन्न तथा जिसने अन्तःकरणको शान्त कर लिया है, उस पुरुषको ही प्राप्त हो सकती है। [वह विद्या कैसी है ?—] जो सत्पुरुषोंको ब्रह्मचर्यके द्वारा प्राप्त होती है, जिसे प्राप्त करके पुरुष इस मर्त्यभावको त्याग देते हैं और जो विद्या गुरुवृद्धोंमें यानी गुरुके द्वारा विद्यादानादिसे वृद्धिको प्राप्त कराये हुए शिष्योंमें नियत है ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्य क्या है ?

एवमुक्ते ब्रह्मचर्यविज्ञानायाह धृतराष्ट्रः—

इस प्रकार कहे जानेपर धृतराष्ट्रने ब्रह्मचर्यविज्ञानके लिये प्रार्थना की—

धृतराष्ट्र उवाच—

ब्रह्मचर्येण या विद्या शक्या वेदितुमञ्जसा।
तत्कथं ब्रह्मचर्यं स्यादेतद्विद्वन् ब्रवीहि मे ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र बोले—हे विद्वन्! जिस विद्याका ब्रह्मचर्यके द्वारा ही शीघ्र ज्ञान हो सकता है, वह ब्रह्मचर्य कैसा है ? वह मुझे बतलाइये ॥ ४ ॥

या विद्या ब्रह्मचर्येण वेदितुं शक्या तत्साधनभूतं ब्रह्मचर्यं कथं स्यादेतद् ब्रह्मचर्यं विद्वन्! ब्रवीहि मे ॥ ४ ॥

जिस विद्याका ज्ञान ब्रह्मचर्यसे हो सकता है, वह उसका साधनभूत ब्रह्मचर्य कैसा है। हे विद्वन्! उस ब्रह्मचर्यका मेरे प्रति वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मचर्यका विवरण

एवं पृष्टः प्राह भगवान् सनत्सुजातः— | इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् सनत्सुजातने कहा—

सनत्सुजात उवाच—

आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य भूत्वा गर्भं ब्रह्मचर्यं चरन्ति।
इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति विहाय देहं परमं यान्ति सत्यम् ॥ ५ ॥

श्रीसनत्सुजातजी बोले—जो लोग इस लोकमें आचार्ययोनिमें प्रवेशकर उसके गर्भ होकर ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, वे इस लोकमें तो शास्त्रकार होते हैं और देह छोड़नेपर परमसत्यको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य आचार्यसमीपं गत्वेत्यर्थः। भूत्वा गर्भम् उपसदनादिना शिष्या भूत्वा ब्रह्मचर्यं गुरुशुश्रूषादिकं चरन्ति कुर्वन्ति, इहैवास्मिन् लोके ते शास्त्रकाराः शास्त्रकर्तारः पण्डिता भवन्ति। ततो बाल्यादिकं निर्विद्य ब्राह्मणा भूत्वा आरब्धकर्मक्षये विहाय देहं परमं यान्ति सत्यं सत्यादिलक्षणं परमात्मानं प्राप्नुवन्ति ॥५॥

जो लोग यहाँ आचार्ययोनिमें प्रवेश कर अर्थात् आचार्यके समीप जा उनके गर्भ हो यानी उपसत्ति आदिके द्वारा उनके शिष्य हो ब्रह्मचर्य अर्थात् गुरुशुश्रूषादिका आचरण करते हैं, वे यहीं—इस लोकमें ही शास्त्रकार—शास्त्रकर्ता अर्थात् पण्डित होते हैं और फिर बाल्यादि-अवस्थाओंसे उपरत हो ब्रह्मनिष्ठ हुए, प्रारब्ध कर्मका क्षय होनेपर इस देहका त्याग कर परम सत्य यानी सत्यादिलक्षण परमात्माको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

किंच— | तथा

अस्मिँल्लोके विजयन्तीह कामान् ब्राह्मीं स्थितिमनुतितिक्षमाणाः।
त आत्मानं निर्हरन्तीह देहान्मुञ्जादिषीकामिव धीरभावात् ॥ ६ ॥

इस लोकमें वे समस्त कामनाओंको जीत लेते हैं एवं निरन्तर ब्राह्मी स्थितिको सहन करते हुए वे धैर्यपूर्वक मूँजसे सींकके समान देहसे आत्माको पृथक् निकाल लेते हैं [अर्थात् देहसे आत्माका विवेक कर लेते हैं] ॥६॥

अस्मिँल्लोके विजयन्तीह कामान् ब्राह्मीमेव स्थितिं ब्रह्मण्येव स्थितिम् अनुतितिक्षमाणा अनुदिनं क्षममाणास्ते आत्मानं देहेन्द्रियादिभ्यो निष्कृष्य तत्साक्षिणं चिन्मात्रं निर्हरन्ति पृथक् कुर्वन्ति। किमिव ? मुञ्जादिषीकामिव। यथा मुञ्जादिषीकामन्तःस्थां निर्हरन्ति, एवं कोशपञ्चकस्थो निष्कृष्य

वे इस लोकमें कामनाओंको जीत लेते हैं तथा ब्राह्मी स्थितिको—जो स्थिति ब्रह्ममें ही है, उसे निरन्तर सहन करते हुए वे अपनेको देह और इन्द्रियादिसे निकालकर उनके साक्षीभूत चिन्मात्र आत्माको अलग कर लेते हैं। किसके समान अलग कर लेते हैं ?—मूँजसे सींकके समान। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मूँजमेंसे उसके भीतर स्थित सींकको निकाल लेते हैं, उसी प्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वात्मानं प्रतिपद्यन्त इत्यर्थः । केन ? धीरभावाद् धैर्येण । श्रूयते च कठवल्लीषु—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां
धैर्येण तं विद्याच्छुक्रममृतम् ॥

इति ॥ ६ ॥

पञ्चकोशोंसे निकालकर सर्वात्माको प्राप्त कर लेते हैं। किस प्रकार निकाल लेते हैं ?—धीरभावसे अर्थात् धैर्यपूर्वक। जैसा कि कठवल्लियोंमें सुना भी जाता है—'अंगुष्ठपरिमाणमात्र अन्तर्यामी पुरुष सर्वदा समस्त जीवोंके हृदयमें स्थित है। उसे मूँजसे सींकके समान धैर्यपूर्वक अपने शरीरसे पृथक् करे; उसे शुद्ध और अमृत जाने' इत्यादि ॥ ६ ॥

आचार्यकी महिमा

'आचार्ययोनिमिह' इत्यत्र आचार्यस्य योनित्वं दर्शितम् । तत्कथं मातापितृव्यतिरेकेण आचार्यस्य योनित्वमित्याशङ्क्य स एव साक्षाज्जनयितेत्याह—

'आचार्ययोनिमिह' इत्यादि श्लोकमें आचार्यका योनित्व प्रदर्शित किया गया है। सो माता-पितासे भिन्न आचार्यका योनित्व किस प्रकार है ? ऐसी आशङ्का करके यह बतलाते हैं कि वह (आचार्य) ही साक्षात् जन्मदाता है—

शरीरमेतौ कुरुतः पिता माता च भारत ।
आचार्यतस्तु यज्जन्म तत्सत्यं वै तथामृतम् ॥ ७ ॥

हे भरतनन्दन ! इस नश्वर शरीरको तो ये माता-पिता ही उत्पन्न करते हैं; परंतु आचार्यसे इसका जो जन्म होता है, वह तो निश्चय ही सत्य और अमृत है ॥ ७ ॥

शरीरमिहास्य तौ मातापितरौ कुरुतः, नात्मानं स्वरूपेण जनयतः । यदिदं देहद्वयात्मना जन्म तदसत्यम्, आचार्यतस्तु यदिदं चित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मना जन्म तत्सत्यं परमार्थभूतम् । तथैवामृतं विनाशवर्जितम् । तस्मात्स एव जनयितेत्यर्थः । श्रूयते च प्रश्नोपनिषदि—'त्वं हि नः पिता यो ऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसि' इति । तथा चाहापस्तम्बः—'स हि विद्यातस्तं जनयति तच्छ्रेष्ठं जन्म शरीरमेव मातापितरौ जनयतः' इति ॥ ७ ॥

इस लोकमें शरीरको तो इसके ये माता-पिता ही उत्पन्न करते हैं, वे आत्माको स्वरूपसे जन्म नहीं देते। आत्माका जो यह स्थूल-सूक्ष्म द्विविध देहरूपसे उत्पन्न होना है, वह मिथ्या ही है; किंतु आचार्यसे जो यह सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मरूपसे जन्म लेना है, वह तो सत्य—परमार्थरूप और अमृत—विनाशरहित ही है। अतः तात्पर्य यह है कि वही [वास्तविक] जन्मदाता है। प्रश्नोपनिषद्में ऐसी श्रुति भी है—'आप ही हमारे पिता हैं, जिन्होंने कि हमें अविद्याके उस पार उतार दिया है।' तथा आपस्तम्ब ऋषि भी कहते हैं—'वह (आचार्य) तो उसे विद्याके द्वारा जन्म प्रदान करता है, अतः वह [इसका] श्रेष्ठ जन्म है। माता-पिता तो शरीरको ही उत्पन्न करते हैं' ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यस्मादाचार्याधीना परमपुरुषार्थसिद्धिस्तस्मात्— | क्योंकि परमपुरुषार्थकी सिद्धि आचार्यके ही अधीन है, इसलिये—

स आवृणोत्यमृतं सम्प्रयच्छंस्तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन्।
गुरुं शिष्यो नित्यमभिवादयीत स्वाध्यायमिच्छेच्च सदाप्रमत्तः ॥ ८ ॥

वह अमृत दान करके परिपूर्ण कर देता है; अतः उसके उपकारको जानकर कभी उससे द्रोह न करे। शिष्यको चाहिये कि सर्वदा ही गुरुका अभिवादन करे और नित्य सावधान रहकर स्वाध्यायमें प्रवृत्त रहे ॥ ८ ॥

स आवृणोति आपूरयति अमृतं पूर्णानन्दं ब्रह्म आत्मत्वेन सम्प्रयच्छन्, तस्मै आचार्याय न द्रुह्येद् द्रोहं नाचरेत्। तथा च श्रुतिः—
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥इति॥
तथा चापस्तम्बः—'तस्मै न द्रुह्येत् कदाचन। स हि विद्यातस्तं जनयति' इति। कृतमस्य जानन्, अस्येति तृतीयार्थे षष्ठी। अनेनात्मनः कृतमुपकारं जानन्।

वह अमृत—पूर्णानन्दस्वरूप ब्रह्मका आत्मभावसे दान करके आवरण—सब ओरसे पूर्ण कर देता है। अतः उस आचार्यके प्रति द्रोह न करे। जैसा कि श्रुति कहती है—'जिसकी भगवान्‌में अत्यन्त भक्ति है और जैसी भगवान्‌में है वैसी ही गुरुमें भी है, उस महात्माके प्रति ही इन कहे हुए अर्थोंका प्रकाश होता है।' इसी प्रकार आपस्तम्बजी भी कहते हैं—'उससे कभी द्रोह न करे; क्योंकि वही विद्याके द्वारा उसे जन्म प्रदान करता है।' 'कृतमस्य जानन्' इसमें 'अस्य' शब्दमें तृतीयाके अर्थमें षष्ठी है; अर्थात् उसके द्वारा किये हुए अपने उपकारको जानकर।

किं तर्हि कर्त्तव्यमित्याह—गुरुं शिष्यो नित्यमभिवादयीत, देवमिवाचार्यमुपासीत। तथा च श्रुतिः—'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ' इति। तथा स्वाध्यायमिच्छेच्च श्रवणादिपरो भवेत्। सदाप्रमत्तोऽप्रमादी सन् ॥ ८ ॥

तो फिर क्या करना चाहिये? सो बतलाते हैं—शिष्यको नित्य गुरुकी वन्दना करनी चाहिये—उसे भगवान्‌के समान ही गुरुकी उपासना करनी चाहिये। ऐसा ही 'जिसकी भगवान्‌में अत्यन्त भक्ति है और जैसी भगवान्‌में है वैसी ही गुरुमें भी है' इत्यादि श्रुति भी कहती है। तथा स्वाध्यायकी इच्छा करनी चाहिये अर्थात् सर्वदा अप्रमत्त—प्रमादशून्य रहकर श्रवणादिमें तत्पर रहना चाहिये ॥ ८ ॥

चतुष्पाद ब्रह्मचर्यका वर्णन

इदानीं चतुष्पादब्रह्मचर्यं श्लोकचतुष्टयेनाह— | अब चार श्लोकोंसे चार पादवाले ब्रह्मचर्यका वर्णन करते हैं—

शिष्यवृत्तिक्रमेणैव विद्यामाप्नोति यः शुचिः।
ब्रह्मचर्यव्रतस्यास्य प्रथमः पाद उच्यते ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो शिष्यवृत्तिके अनुसार ही पवित्रात्मा होकर विद्या प्राप्त करता है, उसकी वह विद्याप्राप्ति इस ब्रह्मचर्यका प्रथम पाद कही जाती है ॥ ९ ॥

शिष्यवृत्तिक्रमेणैव । 'आचार्ययोनिमिह' इत्यादिनोक्तक्रमेण शुचिर्विद्यामाप्नोति यत्, तद् ब्रह्मचर्यं तस्यास्य प्रथमः पाद उच्यते ॥ ९ ॥

शिष्यवृत्तिक्रमसे अर्थात् 'आचार्ययोनिमिह' इत्यादि श्लोकमें बतलाये हुए क्रमसे पवित्र होकर जो विद्या प्राप्त करता है, उसका वह ब्रह्मचर्य इस ब्रह्मचर्यव्रतका प्रथम पाद कहा जाता है ॥ ९ ॥

यथा नित्यं गुरौ वृत्तिर्गुरुपत्न्यां तथाऽऽचरेत् ।
तत्पुत्रे च तथा कुर्वन् द्वितीयः पाद उच्यते ॥ १० ॥

जिस प्रकार सर्वदा गुरुके साथ व्यवहार करता है, उसी प्रकार गुरुपत्नीके साथ भी करना चाहिये और वैसा ही उनके पुत्रके साथ भी करे—यह [ब्रह्मचर्यका] द्वितीय पाद है ॥ १० ॥

स्पष्टार्थः श्लोकः । तथा चोक्तम्—'आचार्यवदाचार्यदारेषु वृत्तिः', 'आचार्यवदाचार्यपुत्रे वृत्तिश्च' इति ॥ १० ॥

श्लोकका अर्थ स्पष्ट है । ऐसा ही कहा भी है—'आचार्यके समान ही आचार्यपत्नीके साथ व्यवहार करे' तथा 'आचार्यके समान ही आचार्यपुत्रके साथ व्यवहार करे' इत्यादि ॥ १० ॥

आचार्येणात्मकृतं विजानन् ज्ञात्वा चार्थं भावितोऽस्मीत्यनेन ।
यन्मन्यते तं प्रति हृष्टबुद्धिः स वै तृतीयो ब्रह्मचर्यस्य पादः ॥ ११ ॥

आचार्यद्वारा किये हुए अपने उपकारको जानकर तथा परमार्थका ज्ञान प्राप्त कर जो 'इन्होंने मुझे [नूतन] जन्म प्रदान किया है' ऐसा समझते हुए उनके प्रति प्रमुदितचित्त हो अपनेको कृतार्थ समझता है, वह निश्चय ही ब्रह्मचर्यका तृतीय पाद है ॥ ११ ॥

आचार्येणात्मकृतम् आत्मनः कृतमुपकारं विजानन् ज्ञात्वा अर्थं वेदार्थं परमपुरुषार्थं ज्ञात्वा च अवगम्य भावितोऽस्मीत्यनेन स्वाभाविकचित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मना यथावदुत्पादितोऽस्मीति चिन्तयन् तमाचार्यं प्रति हृष्टबुद्धिः सन् यद् आत्मनः कृतार्थत्वं मन्यते स वै तृतीयो ब्रह्मचर्यस्य पादः ॥ ११ ॥

आचार्यके द्वारा किये हुए अपने उपकारको जानकर तथा अर्थ—वेदार्थ अर्थात् परमपुरुषार्थको जानकर यह सोचते हुए कि इन्होंने मुझे उत्पन्न किया है अर्थात् अपने स्वरूपभूत सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मरूपसे मुझे यथावत् जन्म प्रदान किया है, उन आचार्यदेवके प्रति प्रमुदितचित्त हो जो अपनी कृतकृत्यता मानता है, वही निश्चय ब्रह्मचर्यका तीसरा पाद है ॥ ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आचार्याय प्रियं कुर्यात् प्राणैरपि धनैरपि ।
कर्मणा मनसा वाचा चतुर्थः पाद उच्यते ॥ १२ ॥

शिष्यको अपने प्राण और धनको भी न्यौछावर करके मन, वचन और कर्मसे आचार्यका प्रिय करना चाहिये । यह चतुर्थ पाद कहा जाता है ॥ १२ ॥

स्पष्टोऽर्थः ॥ १२ ॥ | अर्थ स्पष्ट है ॥ १२ ॥

चतुष्पाद ब्रह्मविद्याका वर्णन

इदानीं चतुष्पदीं विद्यां दर्शयति— | अब चार पादवाली विद्याको प्रदर्शित करते हैं—

कालेन पादं लभते तथायं तथैव पादं गुरुयोगतश्च ।
उत्साहयोगेन च पादमृच्छेच्छास्त्रेण पादं च ततोऽभियाति ॥ १३ ॥

[ब्रह्मचर्यके समान उससे प्राप्त होनेवाली ब्रह्मविद्या भी चार पादोंवाली ही है—] यह जिज्ञासु विद्याका एक पाद कालक्रमसे प्राप्त करता है, एक पाद गुरुके साथ सम्बन्ध होनेसे पाता है, एक पादकी प्राप्ति उत्साहके द्वारा करता है और फिर एक पाद शास्त्रके द्वारा प्राप्त करता है ॥ १३ ॥

अत्र क्रमो न विवक्षितः । प्रथमं गुरुयोगतः, तत उत्साहयोगेन बुद्धिविशेषप्रादुर्भावेन, ततः कालेन बुद्धिपरिपाकेण, ततः शास्त्रेण सहाध्यायिभिस्तत्त्वविचारेण । तथा चोक्तम्—'आचार्यात्पादमादत्ते पादं शिष्यः स्वमेधया । कालेन पादमादत्ते पादं सब्रह्मचारिभिः' इति ॥ १३ ॥

यहाँ पादोंका क्रम बतलाना अभीष्ट नहीं है । पहले गुरुके योगसे, फिर उत्साहके द्वारा बुद्धिविशेषका प्रादुर्भाव होनेसे और तत्पश्चात् कालक्रमसे बुद्धिका परिपाक होनेपर शास्त्रके द्वारा सहपाठियोंके साथ तत्त्वका विचार करनेसे [इनकी प्राप्ति होती है] । ऐसा ही कहा भी है—'शिष्य एक पाद आचार्यसे प्राप्त करता है, एक अपनी बुद्धिसे, एक कालक्रमसे और एक अपने सहाध्यायी ब्रह्मचारियोंके द्वारा प्राप्त करता है'* ॥१३॥

गुरुसेवाका महत्त्व

ज्ञानादीनामाचार्यसंनिधाने फलसिद्धिरित्याह— | अब यह बतलाते हैं कि ज्ञानादि साधनोंकी फल-प्राप्ति आचार्यकी संनिधिमें होती है—

* यहाँ श्रवण, मनन और निदिध्यासन ही ब्रह्मविद्याके पादरूपसे विवक्षित है । श्रवण पहला पाद है, इसकी प्राप्ति गुरुके द्वारा होती है । मननके दो भेद हैं । मननका पूर्वार्द्ध दूसरा पाद है, इसकी प्राप्ति उत्साहसे होती है । इस स्थितिमें जिज्ञासु उत्साहपूर्वक अनेकों युक्ति-प्रयुक्तियोंसे श्रवण की हुई विद्याकी अर्थवत्ताका विचार करता है । तीसरा पाद मननका उत्तरार्द्ध है । इसकी प्राप्ति सहाध्यायियोंके साथ शास्त्राध्ययनसे होती है । इस स्थितिमें वह मननद्वारा निश्चय किये हुए अर्थको शास्त्रसे मिलाता है तथा चौथा पाद निदिध्यासन है । इस अवस्थामें निश्चित किये हुए तत्त्वका निरन्तर एकरस भावसे चिन्तन किया जाता है । इसकी पूर्ति कालक्रमसे अर्थात् दीर्घकालतक निरन्तर अभ्यास करनेसे होती है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानादयो द्वादश यस्य रूपमन्यानि चाङ्गानि तथा बलं च ।
आचार्ययोगे फलतीति चाहुर्ब्रह्मार्थयोगेन च ब्रह्मचर्यम् ॥ १४ ॥

ज्ञानादि बारह गुण जिसके रूप हैं तथा उसके अन्य अङ्ग और बल—ये आचार्यका सम्बन्ध होनेपर ही सफल होते हैं एवं ब्रह्मचर्यकी सफलता ब्रह्मतत्त्वकी प्राप्ति होनेपर होती है ॥ १४ ॥

ज्ञानादयः 'ज्ञानं च' इत्यादिना पूर्वोक्ता द्वादश गुणा यस्य पुरुषस्य रूपम्, अन्यानि चाङ्गानि 'श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागः', 'सत्यं ध्यानम्' इति श्लोकद्वयेन चोक्तानि । तथा बलं च तद्धर्मपरिपालनसामर्थ्यं च सर्वमाचार्ययोगे एव फलति, नाचार्ययोगं विना फलति । श्रूयते च—'आचार्याद्धैव विद्या विदिता' इति, 'आचार्यवान्पुरुषो वेद' इति च । ब्रह्मार्थयोगेन च ब्रह्मचर्यं यदिदं गुरुसंनिधौ शुश्रूषाद्याचरणं तद् ब्रह्मचर्यं ब्रह्मार्थयोगेन फलति, स्वात्मनश्चित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मैकत्वसम्पादनद्वारेण फलतीत्यर्थः ॥१४॥

'ज्ञानादयः' अर्थात् 'ज्ञानं च' इत्यादि श्लोकसे पहले कहे हुए ज्ञानादि बारह गुण जिस पुरुषके रूप हैं तथा 'श्रेयांस्तु षड्विधस्त्यागः' और 'सत्यं ध्यानम्' इत्यादि दो श्लोकोंसे बतलाये हुए अन्य गुण जिसके अङ्ग हैं और उसका जो बल—स्वधर्मपालनका सामर्थ्य है, वे सब आचार्यका सम्बन्ध होनेपर ही सफल होते हैं, आचार्यका सम्बन्ध हुए बिना उनकी सफलता नहीं होती । इस विषयमें 'आचार्यसे ही विद्याका ज्ञान होता है', 'आचार्यवान् पुरुषको ही ज्ञान होता है' ऐसी श्रुतियाँ भी हैं । तथा ब्रह्मतत्त्वका सम्बन्ध होनेसे ब्रह्मचर्य सफल होता है । अर्थात् गुरुकी सन्निधिमें रहकर जो यह गुरुशुश्रूषादिका आचरण करना है, उस ब्रह्मचर्यकी सफलता ब्रह्मतत्त्वका सम्बन्ध होनेपर होती है । तात्पर्य यह है कि सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मके साथ अपनी एकता सम्पादन करनेसे उसकी सफलता होती है ॥ १४ ॥

ब्रह्मचर्यकी स्तुति

ब्रह्मचर्यस्तुतिं करोति द्वाभ्याम्— । अब दो श्लोकोंसे ब्रह्मचर्यकी स्तुति करते हैं—

एतेन ब्रह्मचर्येण देवा देवत्वमाप्नुवन् ।
ऋषयश्च महाभागा ब्रह्मचर्येण चाभवन् ॥ १५ ॥
एतेनैव सगन्धर्वा रूपमप्सरसोऽजयन् ।
एतेन ब्रह्मचर्येण सूर्य अह्नाय जायते ॥ १६ ॥

इस ब्रह्मचर्यके द्वारा देवताओंने देवत्व प्राप्त किया था तथा महाभाग ऋषिगण भी ब्रह्मचर्यके द्वारा ही ऋषि हुए थे । इसीके द्वारा गन्धर्वोंके सहित अप्सराओंने रूप प्राप्त किया था तथा इस ब्रह्मचर्यसे ही सूर्य प्रकाशका कारण होता है ॥ १५-१६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवा देवत्वमेतेन प्राप्नुवन् । ऋषयोऽपीह ऋषित्वमेतेन प्राप्ताः । सगन्धर्वा गन्धर्वैः सह वर्तमाना रूपमप्सरसोऽजयन्, रूपाणि रमणीयानि एतेन ब्रह्मचर्येण अजयन् । अह्नो दीप्तिसमूहः, अह्नाय जगतां द्योतनाय सूर्यश्च जायते । उक्तं च—'अह्नो दीप्तिश्च कथ्यते' इति ॥ १५-१६ ॥

इसके द्वारा देवताओंने देवत्व प्राप्त किया था । ऋषिगण भी इसीसे ऋषित्वको प्राप्त हुए थे । सगन्धर्व—गन्धर्वोंके सहित स्थित अप्सराओंने इसीसे रूप—रमणीय रूप लाभ किया था; [तथा इसीसे] सूर्य 'अह्नाय'—'अह्न' दीप्तिसमूहको कहते हैं, अतः अह्नाय—जगत्के प्रकाशनका हेतु होता है । 'अह्न दीप्तिको कहते हैं' ऐसा कहा भी है ॥ १५-१६ ॥

कथमेकस्य ब्रह्मचर्यस्यानेकविधफलसाधकत्वमित्यत आह—

एक ही ब्रह्मचर्यका अनेक प्रकारके फलोंका साधकत्व किस प्रकार है, सो अब बतलाते हैं—

आकाङ्क्षार्थस्य संयोगाद् रसभेदार्थिनामिव ।
एवं ह्येतत् समाज्ञाय तादृग्भावं गता इमे ॥ १७ ॥

विभिन्न रसोंके इच्छुकोंके समान [विभिन्न] अभीष्ट अर्थोंका संयोग होनेसे [यह तदनुकूल विभिन्न फल प्रदान करता है] । इसे इस प्रकार जानकर ये देवगण उस-उस प्रकारके भावोंको प्राप्त हुए हैं ॥ १७ ॥

यथा चिन्तामण्यादयो रसभेदार्थिनाम् आकाङ्क्षार्थस्य संयोगात् तत्तदाकाङ्क्षितमर्थं प्रयच्छन्ति, एवमेवैतद् ब्रह्मचर्यमाकाङ्क्षार्थस्य संयोगात् तत्तदाकाङ्क्षितमर्थं प्रयच्छतीति ज्ञात्वा तत्तत्फलार्थं ब्रह्मचर्यं चरित्वा तादृग्भावं तादृशं भावं गता इमे देवादयः । यस्मादाचार्यसंनिध्यनुष्ठिताद् ब्रह्मचर्यात् परमपुरुषार्थप्राप्तिस्तस्मादाचार्ययोनिं प्रविश्य गर्भो भूत्वा ब्रह्मचर्यं चरेदित्यर्थः ॥ १७ ॥

जिस प्रकार रसभेदके इच्छुकोंको चिन्तामणि आदि उनके आकाङ्क्षित पदार्थका संयोग कराकर उन्हें अभीष्ट पदार्थ प्रदान करते हैं, उसी प्रकार यह ब्रह्मचर्य आकाङ्क्षित अर्थके संयोगद्वारा उस-उस अभीष्ट अर्थकी प्राप्ति कराता है—ऐसा जानकर ये देवादि उस-उस प्रकारके फलकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यका आचरण कर वैसे भाव अर्थात् उसी प्रकारके भावको प्राप्त हुए हैं । क्योंकि आचार्यकी संनिधिमें अनुष्ठान किये गये ब्रह्मचर्यसे परमपुरुषार्थकी प्राप्ति होती है, अतः आचार्य-योनिमें प्रवेश कर उसका गर्भ होकर ब्रह्मचर्यका आचरण करे—ऐसा इसका तात्पर्य है ॥ १७ ॥

कर्म और ज्ञानके विभिन्न फल

ननु एवं ज्ञाननिष्ठता यदि ज्ञानस्यैव पुरुषार्थत्वं भवेत्; अपितु कर्मण एवेत्याशङ्क्याह—

किंतु इस प्रकार ज्ञाननिष्ठा तो तभी हो सकती थी जब कि केवल ज्ञान ही पुरुषार्थ होता, परंतु पुरुषार्थका हेतु तो कर्म भी है—ऐसी आशङ्का करके कहते हैं—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्तवन्तः क्षत्रिय ते जयन्ति लोकाञ्जनाः कर्मणा निर्मितेन ।
ज्ञानेन विद्वांस्तेज अभ्येति नित्यं न विद्यते ह्यन्यथा तस्य पन्थाः ॥ १८॥

हे क्षत्रिय ! वे (कर्मपरायण) लोग तो अपने किये हुए कर्मद्वारा नाशवान् लोकोंको ही प्राप्त होते हैं; किंतु ज्ञानके द्वारा विद्वान् नित्य प्रकाशको प्राप्त होता है । इसके सिवा उसका कोई और मार्ग नहीं है ॥१८॥

हे क्षत्रिय ! अन्तवन्तः—अन्तवतो लोकान् पितृलोकदेवलोकादीन् ते जयन्ति प्राप्नुवन्ति नानन्तं स्वात्मभूतं परमात्मानं लोकं जयन्ति । केन तर्ह्यनन्तलोकप्राप्तिरित्याशङ्क्याह—ज्ञानेन विद्वान् तेज अभ्येति नित्यमिति । नित्यमविनाश्यात्मभूतमेवाभ्येति तेजो ज्योतिर्न कर्मणा ।

कस्मात् पुनर्ज्ञानेनैवाभ्येति ? तत्राह—न विद्यते ह्यन्यथा तस्य पन्थाः । तस्य पूर्णानन्दज्योतिषो ज्ञानमेकं मुक्त्वान्यः पन्था मार्गो नास्त्येव । श्रूयते च—'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इति ॥ १८ ॥

हे क्षत्रिय ! वे (कर्मपरायण लोग) अन्तवान्—पितृलोक, देवलोकादि नाशवान् लोकोंको ही प्राप्त होते हैं; वे अनन्त अर्थात् अपने आत्मस्वरूप परमात्मलोकको प्राप्त नहीं होते । तो फिर अनन्त लोककी प्राप्ति किससे होती है ? ऐसी आशङ्का करके कहते हैं—विद्वान् ज्ञानके द्वारा नित्य तेजको प्राप्त होता है; नित्य—अविनाशी अर्थात् आत्मभूत तेज यानी ज्योतिको प्राप्त होता है, कर्मके द्वारा नहीं ।

किंतु ज्ञानसे ही वह उसे क्यों प्राप्त होता है ? इसपर कहते हैं—क्योंकि उसका कोई अन्य मार्ग नहीं है अर्थात् उस पूर्णानन्दमय प्रकाशका एक ज्ञानको छोड़कर और कोई मार्ग नहीं है । श्रुति भी कहती है—'उसे ही जानकर पुरुष मृत्युसे परे चला जाता है, मोक्षके लिये कोई दूसरा मार्ग नहीं है' ॥ १८ ॥

धृतराष्ट्रका ब्रह्मस्वरूपविषयक प्रश्न

ज्ञानेन विद्वान् यद् ब्रह्म पश्यति, तत्किमिवाभातीति पृच्छति धृतराष्ट्रः—

धृतराष्ट्र उवाच—

ज्ञानके द्वारा विद्वान् जिस ब्रह्मका साक्षात्कार करता है, वह किसके समान प्रतीत होता है, सो धृतराष्ट्र पूछते हैं—

आभाति शुक्लमिव लोहितमिवाथो कृष्णमथार्जुनं काद्रवं वा ।
यद् ब्राह्मणः पश्यति यत्र विद्वान् कथंरूपं तदमृतमक्षरं परम् ॥ १९ ॥

राजा धृतराष्ट्र बोले—ब्रह्मनिष्ठ पुरुष जहाँ ब्रह्मका साक्षात्कार करता है, वहाँ वह ब्रह्म उसे शुक्ल, लोहित, श्याम, श्वेत अथवा धूम्रवर्ण किस प्रकारका प्रतीत होता है ? वह उत्कृष्ट अमृतमय अविनाशी ब्रह्म कैसे रूपवाला है ? ॥ १९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानेन यद्विद्वान् पश्यति ब्रह्म, तत्किं शुक्लमिव आभाति, लोहितमिव आभाति, कृष्णमिव अर्जुनं काद्रवमिव आभाति। यत्र देशे भाति कथंरूपं तदमृतमक्षरं परं ब्रह्म ॥ १९ ॥

ज्ञानके द्वारा विद्वान् जिस अविनाशी परब्रह्मका साक्षात्कार करता है, वह ब्रह्म क्या शुक्लरूप प्रतीत होता है ? अथवा लोहित जान पड़ता है ? या कृष्णवर्ण, अर्जुन (श्वेत) अथवा धूम्रवर्ण प्रतीत होता है। वह अमृतमय अविनाशी उत्कृष्ट ब्रह्म जिस देशमें प्रतीत होता है कैसे रूपवाला जान पड़ता है ? ॥ १९ ॥

ब्रह्मस्वरूपकी विलक्षणता

एवं पृष्टः प्राह भगवान्—

इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् सनत्सुजातने कहा—

सनत्सुजात उवाच—

नाभाति शुक्लमिव लोहितमिवाथो कृष्णमथार्जुनं काद्रवं वा।
न पृथिव्यां तिष्ठति नान्तरिक्षे नैतत्समुद्रे सलिलं बिभर्ति ॥ २० ॥

श्रीसनत्सुजातजी बोले—यह न तो शुक्ल-सा प्रतीत होता है और न लोहित, श्याम, श्वेत या धूम्रवर्ण ही जान पड़ता है। यह न पृथ्वीमें स्थित है, न अन्तरिक्षमें विद्यमान है और न समुद्रमें ही कोई पञ्चभूतात्मक देह धारण करता है ॥ २० ॥

नैतद् ब्रह्म शुक्लादिरूपत्वेनावभासते, अरूपत्वाद् ब्रह्मणः। श्रूयते च—'ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम्' इति। 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' इति च। तथा न पृथिव्यां तिष्ठति नान्तरिक्षे। तथा च श्रुतिरन्यत्रानवस्थानं दर्शयति—'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नीति।'

यह ब्रह्म शुक्लादि रूपसे नहीं भासता; क्योंकि ब्रह्म रूपरहित है। इस विषयमें 'उससे जो आगे है, वह अरूप और अनामय है' एवं 'वह शब्दरहित, स्पर्शरहित और रूपरहित है' इत्यादि श्रुतियाँ भी हैं। तथा वह न पृथ्वीमें स्थित है और न आकाशमें। इसी प्रकार 'भगवन्! वह किसमें स्थित है ? इसपर कहते हैं—अपनी महिमामें' यह श्रुति भी उसकी अन्यत्र अनवस्थिति प्रदर्शित करती है।

कस्मात्पुनः कारणात् पृथिव्यादिषु न तिष्ठति ? तत्राह—नैतत्समुद्रे सलिलं पञ्चभूतात्मकं देहं बिभर्ति। सलिलशब्दो भूतपञ्चकोपलक्षणार्थः। यथा 'अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमपासृजत्' इत्यत्रापि अप्शब्दो भूतपञ्चकोपलक्षणार्थः। श्रूयते

किंतु वह पृथिवी आदिमें किस कारणसे स्थित नहीं है ? ऐसा प्रश्न होनेपर कहते हैं—यह समुद्रमें भी जल अर्थात् पञ्चभूतात्मक शरीर धारण नहीं करता। यहाँ 'सलिल' शब्द पाँचों भूतोंका उपलक्षण करानेके लिये है; जिस प्रकार कि '[ईश्वरने] पहले जलकी ही रचना की और उसमें वीर्याधान किया' इस श्रुतिमें 'अप्' (जल) शब्द पाँचों भूतोंके उपलक्षणके लिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

च पञ्चाग्निविद्यायाम् 'पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति' इति अपामेव पुरुषशब्दवाच्यत्वम् ।

एतदुक्तं भवति—यदि ब्रह्मणः संसारान्तर्वर्त्तित्वं भवेत् तदा संसारानुप्रविष्टत्वाद् घटादिवदीदृग्रूपादिमत्त्वमन्यस्मिंश्चावस्थानं भवेत् । इदं तु पुनरपूर्वादिलक्षणत्वात् संसारानुप्रविष्टमेव ब्रह्म, तस्माद्रूपादिरहितमेव तदिति ॥ २० ॥

है । [इसके सिवा] ऐसी श्रुति भी है—पञ्चाग्निविद्याके अनुसार 'पाँचवीं आहुतिमें आप (जल) की संज्ञा 'पुरुष' हो जाती है' । यहाँ जलका ही 'पुरुष' शब्दवाच्यत्व दिखलाया है ।

[उपर्युक्त विवेचनसे] यह बतलाया जाता है कि यदि ब्रह्मकी स्थिति संसारके अन्तर्गत हो तो संसारमें अनुप्रविष्ट होनेके कारण घटादिके समान उसका अमुकरूपादिमत्त्व एवं अन्यमें अवस्थिति होनी सम्भव है । किंतु अपूर्वादिरूप होनेके कारण यह ब्रह्म उसमें अनुप्रविष्ट है ही नहीं; अतः वह रूपादिरहित ही है ॥ २० ॥

तर्हि न कस्य कुत्राप्युपलभ्यते इत्याह—

अब यह बतलाते हैं कि तब तो यह कहीं किसीको उपलब्ध नहीं हो सकता—

न तारकासु न च विद्युदाश्रितं न चाभ्रेषु दृश्यते रूपमस्य ।
न चापि वायौ न च देवतासु नैतच्चन्द्रे दृश्यते नोत सूर्ये ॥ २१ ॥
नैवर्क्षु तन्न यजुःषु नाप्यथर्वसु न दृश्यते वै विमलेषु सामसु ।
रथन्तरे वार्हते वापि राजन् महाव्रतस्यात्मनि दृश्यते तत् ॥ २२ ॥

यह ब्रह्म न तारागणमें है, न विद्युत्में स्थित है और न मेघोंमें ही इसका रूप देखा जाता है । यह न वायुमें है, न देवताओंमें है, न चन्द्रमामें है और न सूर्यमें ही देखा जाता है । यह न ऋग्वेदमें उपलब्ध होता है, न यजुर्वेदमें, न अथर्ववेदमें और न निर्मल सामश्रुतियोंमें ही दिखायी देता है । तथा हे राजन् ! रथन्तर और बृहद्रथ सामोंमें भी इसकी उपलब्धि नहीं होती । इसका साक्षात्कार तो महाव्रतशील ब्राह्मणको अपने अन्तःकरणमें ही होता है ॥ २१-२२ ॥

'ज्ञानं च सत्यं च' इत्युपक्रम्य 'महाव्रता द्वादश ब्राह्मणस्य' इति ये गुणा उक्तास्तत्संयुक्तस्यात्मनि दृश्यते तत्परं ब्रह्म न घटादिवदिदंतया सिध्यति, अपि त्वात्मन्येवात्मतया सिद्ध्यतीत्यर्थः ॥ २१-२२ ॥

पहले 'ज्ञानं च सत्यं च' यहाँसे लेकर 'महाव्रता द्वादश ब्राह्मणस्य' इस वाक्यतक जिन गुणोंका वर्णन किया गया है, उनसे सम्पन्न पुरुषको वह परब्रह्म अपने अन्तःकरणमें उपलब्ध होता है । वह घटादिके समान इदंरूपसे सिद्ध नहीं होता, अपितु अपने अन्तःकरणमें आत्मस्वरूपसे ही सिद्ध होता है—ऐसा इसका तात्पर्य है ॥ २१-२२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मसाक्षात्कारका स्वरूप और फल

इदानीं तत्स्वरूपं तद्दर्शनं तत्फलं च श्लोकद्वयेन निर्दिशति—

अब दो श्लोकोंसे उसके स्वरूप, उसके दर्शन और उसके दर्शनके फलका वर्णन करते हैं—

अवारणीयं तमसः परस्तात् तदन्ततोऽभ्येति विनाशकाले ।
अणीयरूपं च तथाप्यणीयसां महत्स्वरूपं त्वपि पर्वतेभ्यः ॥ २३ ॥
तदेतदह्ना संस्थितं भाति सर्वं तदात्मवित्पश्यति ज्ञानयोगात् ।
तस्मिन् जगत्सर्वमिदं प्रतिष्ठितं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २४ ॥

अज्ञानान्धकारसे अतीत यह ब्रह्म अविच्छिन्न है; अन्तमें जगत्का प्रलयकाल उपस्थित होनेपर भी यह स्थित रहता है । यह सूक्ष्मोंसे भी अत्यन्त सूक्ष्मरूप और पर्वतोंसे भी महान् है । उसमें स्थित हुआ यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशस्वरूप ब्रह्मसे ही प्रकाशित हो रहा है; आत्मवेत्ता लोग ज्ञानयोगके द्वारा उसका साक्षात्कार करते हैं; यह सम्पूर्ण जगत् उसीमें स्थित है; जो उसे जान जाते हैं, वे अमर हो जाते हैं ॥ २३-२४ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि धृतराष्ट्रसनत्सुजातसंवादे श्रीसनत्सुजातीये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

यदिदं महाव्रतस्यात्मनि दृश्यते तदवारणीयं ब्रह्म सर्वगतत्वात् । तमसोऽज्ञानात् परस्तात् तद् ब्रह्म अन्ततोऽभ्येति प्रविशति विनाशकाले प्रलयकाले, जगदिति शेषः । तथा अणीयसामपि अणीयरूपं पर्वतेभ्योऽपि महत्स्वरूपम् । श्रूयते च —'अणोरणीयान्महतो महीयान्' इति ।

दृश्यन्ते च ये अणुत्वमहत्त्वादयो लोके तदेतत्सर्वं जगद् अह्ना अह्नो रूपेण प्रकाशरूपेण ब्रह्मणि संस्थितं तदात्मत्वेनैवावभाति । श्रूयते च—'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इति, 'येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः' इति च । तद् ब्रह्म आत्मवित्पश्यति ज्ञानयोगाद् न कर्मयोगेन, तस्मिन्नेव परमात्मनि जगत्सर्वमिदं प्रतिष्ठितम् । ये एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २३-२४ ॥

महाव्रतशील ब्राह्मणको जिसका साक्षात्कार होता है, वह ब्रह्म सर्वगत होनेके कारण अवारणीय (अविच्छिन्न) है तथा तम—अज्ञानसे परे है । अन्तमें जगत्का नाश होनेके समय अर्थात् प्रलयकालमें भी वह ब्रह्म स्थित रहता है । यहाँ 'जगत्' पद वाक्यमें शेष है । तथा वह अणुओंसे भी अणु और पर्वतादिसे भी महान् है; जैसा कि 'वह अणुसे भी अणु और महान्से भी महान् है' यह श्रुति बतलाती है ।

तथा लोकमें जो अणुत्व और महत्त्वादि देखे जाते हैं, वह सम्पूर्ण जगत् अहः—दिवसरूप अर्थात् प्रकाशस्वरूप ब्रह्मसे ही, उसमें स्थित हुआ अर्थात् तद्रूपसे ही भासता है । उसके विषयमें 'उसके प्रकाशसे यह सब प्रकाशित है' तथा 'जिसके तेजसे दीप्त होकर सूर्य प्रकाशित होता है' इत्यादि श्रुतियाँ भी हैं । उस ब्रह्मका आत्मवेत्ता ज्ञानयोगसे साक्षात्कार करता है, कर्मयोगसे नहीं । उस परमात्मामें ही यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है । जो उसे जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं ॥ २३-२४ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीशंकरभगवतः कृतौ श्रीसनत्सुजातीयभाष्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्थोऽध्यायः

ब्रह्मका योगिदृश्य रूप

'अवारणीयं तमसः परस्तात्' इत्यादिना ब्रह्मणो रूपं निर्धार्य 'तदात्मवित्पश्यति ज्ञानयोगात्' इति ज्ञानयोगेनात्मदर्शनमुक्तम् । पुनरपि तस्य स्वरूपं दर्शयित्वा योगिनस्तद्रूपं पश्यन्तीत्याह—

'अवारणीयं तमसः परस्तात्' इत्यादि श्लोकसे ब्रह्मका स्वरूप निश्चय कर 'तदात्मवित्पश्यति ज्ञानयोगात्' इस वाक्यसे ज्ञानयोगके द्वारा आत्मदर्शन बतलाया गया। फिर भी उस (ब्रह्म) का स्वरूप दिखलाकर यह बतलाते हैं कि योगिजन उस रूपका दर्शन करते हैं—

सनत्सुजात उवाच—

यत्तच्छुक्रं महज्ज्योतिर्दीप्यमानं महद्यशः ।
यद्वै देवा उपासते यस्मादर्को विराजते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १ ॥

श्रीसनत्सुजातजी बोले—वह जो शुद्ध महान् ज्योति है, देदीप्यमान महान् यश है, देवगण जिसकी उपासना करते हैं तथा जिसके द्वारा सूर्य सुशोभित है, उस सनातन भगवान्‌का योगिजन दर्शन करते हैं ॥ १ ॥

यद् ब्रह्मवित् पश्यति ज्ञानयोगात्, यज्ज्ञात्वा अमृता भवन्ति, तच्छुक्रं शुद्धमविद्यादिदोषरहितं महज्ज्योतिः सर्वावभासकत्वात्। श्रूयते च—'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इति । दीप्यमानं भ्राजमानं महद्यशः। श्रूयते च—'तस्य नाम महद्यशः' इति । यद्वै ब्रह्म देवा इन्द्रादय उपासते । श्रूयते च—'तद् देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम्' इति । यस्मात् परज्योतिषो ब्रह्मणोऽर्क आदित्यो विराजते 'येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः' इति श्रुतेः । एवंभूतं परमात्मानं भगवन्तं सनातनं योगिन एव पश्यन्ति, न पुनर्ज्ञानयोगरहिताः ॥ १ ॥

ब्रह्मवेत्ता ज्ञानयोगके द्वारा जिसका साक्षात्कार करते हैं, जिसे जानकर अमर हो जाते हैं, सबका प्रकाशक होनेके कारण वह शुक्र—शुद्ध अर्थात् अविद्यादि दोषसे रहित महान् ज्योति है। उसके विषयमें 'उसीके प्रकाशसे यह सब प्रकाशित है' ऐसी श्रुति भी है। जो दीप्यमान अर्थात् प्रकाशमान महद्यश है, जैसा कि 'उसका नाम महद्यश है' इस श्रुतिसे सुना जाता है। तथा जिस ब्रह्मकी इन्द्रादि देवगण उपासना करते हैं; जैसी कि श्रुति है—'उसे देवगण ज्योतियोंका ज्योति, आयु और अमृतरूपसे उपासना करते हैं।' तथा 'जिसके द्वारा तेजसे सम्पन्न हो सूर्य तपता है' इस श्रुतिके अनुसार जिस परप्रकाशमय ब्रह्मसे अर्क अर्थात् सूर्य प्रकाशित होता है। ऐसे उस परमात्मा सनातन भगवान्‌को योगिजन ही देखते हैं। जो ज्ञानयोगसे रहित हैं, वे नहीं देखते ॥ १ ॥

ब्रह्मका सर्वकारणत्व स्वयंप्रकाशत्व

इदानीं परस्मादेव ब्रह्मणो हिरण्यगर्भाद्युत्पत्तिं दर्शयति—

अब परब्रह्मसे ही हिरण्यगर्भादिकी उत्पत्ति दिखलाते हैं—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुक्राद् ब्रह्म प्रभवति ब्रह्म शुक्रेण वर्द्धते ।
तच्छुक्रं ज्योतिषां मध्येऽतप्तं तपति तापनम् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २ ॥

उस शुद्ध ब्रह्मसे [कार्य] ब्रह्मकी उत्पत्ति होती है, शुद्ध ब्रह्मसे ही उसकी वृद्धि होती है । [आदित्यादि] ज्योतिर्गणोंमें उन्हें प्रकाशित करनेवाला और स्वयं उनसे अप्रकाशित वह शुद्ध ब्रह्म स्वयं ही प्रकाशित होता है । उस सनातन भगवान्‌का योगिजन दर्शन करते हैं ॥ २ ॥

शुक्राच्छुद्धात् पूर्वोक्ताद् ब्रह्मणो हिरण्यगर्भाख्यं ब्रह्म प्रभवति उत्पद्यते । अथोत्पन्नं ब्रह्म शुक्रेण वर्धते विराडात्मना । तच्छुक्रं शुद्धं ब्रह्म ज्योतिषामादित्यानां मध्ये तैरतप्तमप्रकाशितं सत् तपति स्वयमेव प्रकाशते, तेषामपि तापनं प्रकाशकम् । योऽन्यानवभास्यः सर्वावभासकः स्वयमेवावभासते तं भगवन्तं योगिन एव पश्यन्ति ॥२॥

शुक्र अर्थात् पूर्वोक्त शुद्ध ब्रह्मसे हिरण्यगर्भसंज्ञक ब्रह्मकी उत्पत्ति होती है । फिर वह उत्पन्न हुआ ब्रह्म शुद्ध ब्रह्मके द्वारा ही विराट्‌रूपसे वृद्धिको प्राप्त होता है । वह शुक्र यानी शुद्ध ब्रह्म आदित्यादि ज्योतिर्गणके मध्यमें उनसे अतप्त—अप्रकाशित रहते हुए ही स्वयं तपता—प्रकाशित होता है और उनका भी तापन—प्रकाशक है । इस प्रकार जो अन्योंसे अप्रकाश्य एवं सभीका प्रकाशक है, वह ब्रह्म स्वयं ही प्रकाशमान है; उस भगवान्‌का योगिजन ही दर्शन करते हैं ॥ २ ॥

शुद्ध ब्रह्म, कारण ब्रह्म और कार्य ब्रह्मकी एकता

इदानीं पूर्णवाक्यार्थं कथयति—

अब 'पूर्णमिद०—' इत्यादि वाक्यका अर्थ बतलाते हैं—

पूर्णात् पूर्णमुद्धरन्ति पूर्णात् पूर्णं प्रचक्षते ।
हरन्ति पूर्णात् पूर्णं च पूर्णेनैवावशिष्यते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ३ ॥

पूर्ण (परमात्मा) से [जीवरूप] पूर्णको उद्धृत करते हैं । पूर्णसे उद्धृत होनेके कारण वह पूर्ण ही कहा जाता है । फिर उस पूर्णसे [शुद्ध आत्मस्वरूप] पूर्णको अलग कर लेते हैं और इस प्रकार पूर्णरूपसे ही अवशिष्ट रहते हैं । उस सनातन भगवान्‌का योगिजन ही दर्शन करते हैं ॥ ३ ॥

पूर्णाद् देशतः कालतो वस्तुतश्च अपरिच्छिन्नात् परमात्मनः पूर्णमेवोद्धरन्ति जीवरूपेण । यत्पूर्णात् पूर्णमुद्धृतं जीवात्मना अतः पूर्णादेव समुद्धृतत्वादिदमपि जीवस्वरूपं पूर्णमेव प्रचक्षते विद्वांसः । तथा

पूर्णसे अर्थात् देश, काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न परमात्मासे जीवरूपसे पूर्णको ही उद्धृत करते हैं । क्योंकि पूर्णसे जीवरूपसे पूर्णको ही उद्धृत किया है, अतः पूर्णसे उद्धृत होनेके कारण विद्वान् इस जीवके स्वरूपको भी पूर्ण ही बतलाते हैं । इसी प्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरन्ति पूर्णाद् जीवात्मनावस्थितात् पूर्णमात्मस्वरूपमात्रं देहेन्द्रियाद्यनुप्रविष्टं देहेन्द्रियादिभ्यो निष्कृष्य तत्साक्षिणं सर्वान्तरं देहद्वयादुद्धरन्तीत्यर्थः। तत उद्धृतेनैव मूलभूतेन पूर्णानन्देनावशिष्यते तेनैव पूर्णानन्देन ब्रह्मणा संयुज्यते। चित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मनावतिष्ठत इत्यर्थः।

'पूर्णमेवावशिष्यते' इति वा पाठः। यदा देहेन्द्रियादिभ्यो निष्कृष्य तत्साक्षिणं सर्वान्तरं देहद्वयादुद्धरन्ति, तदा पूर्णमेवावशिष्यत इत्यर्थः। तथा च श्रुतिः—'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते'।

अस्यायमर्थः—पूर्णमदस्तच्छब्दवाच्यं जगत्कारणं ब्रह्म। पूर्णमिदं त्वंशब्दनिर्दिष्टं प्रत्यगात्मस्वरूपम्। अनयोस्तत्त्वंपदार्थयोः कथं पूर्णत्वमिति चेत्, तत्राह—पूर्णादनवच्छिन्नात्पूर्णमेवोदच्यते उद्रिच्यते जीवेश्वररूपेण यस्मात् तस्मादनयोः पूर्णत्वमित्यर्थः। पूर्णस्य तत्त्वमात्मनावस्थितस्य पूर्णं रूपमादाय तत्त्वंपदार्थयोः शोधनं कृत्वा शोधितपदार्थः सन्नित्यर्थः। पूर्णमेव ब्रह्म अवशिष्यते पूर्णमेव ब्रह्मैव भवतीत्यर्थः। यः पूर्णस्वरूपस्तं परमात्मानं योगिन एव पश्यन्ति ॥ ३ ॥

जीव-रूपसे स्थित इस पूर्णसे आत्मस्वरूपमात्र पूर्णको अलग करते हैं। तात्पर्य यह है कि देह और इन्द्रियादिमें अनुप्रविष्ट उनके साक्षीको, जो सबसे अन्तरतम है, देह और इन्द्रियादिसे निकालकर स्थूल-सूक्ष्म दोनों प्रकारके देहोंसे उद्धृत करते हैं। तब यह उनसे उद्धृत किये हुए अपने मूलभूत पूर्णानन्दरूपसे ही बच रहता है—वह उस पूर्णानन्दस्वरूप ब्रह्मसे ही संयुक्त हो जाता है अर्थात् चित्, सत्, आनन्द एवं अद्वितीय ब्रह्मरूपसे ही स्थित हो जाता है।

अथवा ['पूर्णेनैवावशिष्यते' के स्थानमें] 'पूर्णमेवावशिष्यते' ऐसा पाठ हो तो ऐसा अर्थ होगा कि जिस समय देह एवं इन्द्रियादिसे निकालकर उनके साक्षी सर्वान्तर्यामी आत्माको देहद्वयसे उद्धृत करते हैं, तब पूर्ण ही अवशिष्ट रहता है। ऐसी ही यह श्रुति भी है—'वह पूर्ण है, यह भी पूर्ण है, पूर्णसे पूर्णकी अभिव्यक्ति होती है। इस पूर्णके पूर्णत्वको अलग करनेपर भी पूर्ण ही शेष रह जाता है।'

इसका अर्थ इस प्रकार है—वह अर्थात् तच्छब्दवाच्य जगत्का कारणभूत ब्रह्म पूर्ण है। तथा यह—त्वंशब्दसे निर्दिष्ट प्रत्यगात्मस्वरूप (कार्यब्रह्म) भी पूर्ण है। यदि कहो कि इन तत् और त्वंपदके वाच्योंकी पूर्णता किस प्रकार है ? तो इसपर कहते हैं—क्योंकि पूर्ण अर्थात् अनवच्छिन्नसे जीव और ईश्वररूपसे पूर्ण ही उद्धृत होता है, अतः इन दोनोंहीकी पूर्णता है। इस पूर्ण अर्थात् तत् और त्वंरूपसे स्थित (ईश्वर और जीव) के पूर्ण यानी रूपको अलगकर—तत् और त्वं पदार्थोंका शोधन कर अर्थात् शुद्ध पदार्थ होनेपर पूर्ण ब्रह्म ही अवशिष्ट रहता है अर्थात् पूर्ण ब्रह्म ही हो जाता है। यह जो पूर्णस्वरूप है, उस परमात्माका योगिजन ही दर्शन करते हैं ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मका सर्वाश्रयत्व

यथाऽऽकाशेऽवकाशोऽस्ति गङ्गायां वीचयो यथा ।
तद्वच्चराचरं सर्वं ब्रह्मण्युत्पद्य लीयते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ४ ॥

जिस प्रकार आकाशमें अवकाश है और गङ्गाजीमें तरङ्गें हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्मसे उत्पन्न होकर उसीमें लीन हो जाता है । उस सनातन भगवान्‌को योगिजन ही देखते हैं ॥ ४ ॥

स्पष्टार्थः श्लोकः ॥ ४ ॥ | इस श्लोकका अर्थ स्पष्ट है ॥ ४ ॥

जीव और ब्रह्मकी सहस्थिति

इदानीं द्वा सुपर्णेति मन्त्राथ कथयति— | अब 'द्वा सुपर्णा' इस मन्त्रका अर्थ कहते हैं—

आपोऽथाद्भ्यः सलिलं तस्य मध्ये उभौ देवौ शिश्रियातेऽन्तरिक्षे ।
आदध्रीचीः सविषूचीर्वसानावुभौ बिभर्ति पृथिवीं दिवं च ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ५ ॥

पहले आप हुआ, फिर आपसे सलिल हुआ । उसके मध्यमें आकाशमें उपदिशाओंके सहित दिशाओंको आवृत करते हुए दोनों देव वर्तमान हैं । वे दोनों पृथिवी और द्युलोकका पोषण करते हैं । उस सनातन भगवान्‌का योगिजन ही दर्शन करते हैं ॥ ५ ॥

अस्मात् परमात्मन आपः प्रथमं सृष्टाः । तथा चाह मनुः—'अप एव ससर्जादौ' इति । भूतपञ्चकोपलक्षणार्थोऽप्छब्दः । अनेन सूक्ष्मसृष्टिरभिहिता । अथानन्तरमृच्यः पूर्वसृष्टाभ्यः सलिलं भूतपञ्चकात्मकं स्थूलदेहादिकं सृष्टम् । तस्य सलिलस्य देहात्मनावस्थितस्य मध्येऽन्तरिक्षे हृदयाकाशे उभौ जीवपरमात्मानौ देवौ द्योतनस्वभावौ शिश्रियाते वर्तेते ।

पहले इस परमात्मासे 'आप'की रचना हुई । ऐसा ही मनुजी भी कहते हैं—'पहले उसने आपकी ही रचना की ।' यहाँ 'अप्' शब्द पञ्चभूतको उपलक्षित करनेके लिये है । ऐसा कहकर सूक्ष्म सृष्टिका वर्णन किया गया । फिर इसके पश्चात् पहले रचे गये आपसे 'सलिल'—पञ्चभूतात्मक स्थूल देहादिकी रचना हुई ।* देहरूपसे स्थित उस सलिलके मध्यमें अन्तरिक्ष—हृदयाकाशके अन्तर्गत जीव और परमात्मा दोनों देव—द्योतनशील आश्रित अर्थात् वर्तमान हैं ।

* 'आप्' (सं० अप्) और 'सलिल'—ये दोनों शब्द जलके वाचक हैं; यहाँ 'आप्' शब्दसे जलोपलक्षित पञ्चभूत और 'सलिल' शब्दसे अपकार्योपलक्षित पञ्चभूतके कार्यमात्रको ग्रहण किया गया है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न केवलमन्तरिक्षे एव शिश्रियाते आदध्रीचीः सविषूचीर्वसानौ आभिमुख्येन ध्रियमाणा वा स्थिता वा अञ्चन्तीत्यादध्रीच्यो दिशः, विषूच्य उपदिशो विष्वग्गमनात्, ताभिः सह वर्तन्त इति सविषूच्यः प्राच्याद्याः सर्वा दिशः, वसानौ आच्छादयन्तौ उभौ बिभर्ति पृथिवीं दिवं च। एको जीव आत्मनः स्वाभाविकचित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मत्वमनवगम्य अनात्मनि देहादौ आत्मभावमापन्नः पृथिवीं भूतभौतिकलक्षणं कर्मफलानुरूपं सुखदुःखात्मकं देहादिकं बिभर्ति । अपरो दिवं द्योतनात्मकं स्वात्मरूपं बिभर्ति ।

वे केवल अन्तरिक्षमें ही आश्रित नहीं हैं, अपितु विषूचियोंके सहित आदध्रीचियोंको भी आच्छादित किये हुए हैं। जो सब ओर ध्रियमाण अथवा स्थित हुई ही गयी हुई हैं, उन्हें 'आदध्रीची' अर्थात् 'दिशा' कहते हैं तथा सब ओर गमन करनेके कारण 'विषूची' उपदिशाओंका नाम है; उनके सहित हैं, इसलिये 'सविषूचीः'—उपदिशाओंके सहित पूर्वादि सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करते हुए वे दोनों पृथिवी और द्युलोकका पोषण करते हैं। उनमेंसे एक जीव तो अपने स्वाभाविक सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मात्मभावको न जाननेके कारण देहादि अनात्मामें आत्मभावको प्राप्त हो पृथिवीका अर्थात् कर्मफलके अनुरूप भूत-भौतिक लक्षणोंवाले सुख-दुःखात्मक देहादिका पोषण करता है तथा दूसरा द्युलोक—द्योतनात्मक स्वात्मस्वरूपका पोषण करता है।

श्रूयते च—'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति' इति। यः स्वात्ममायया स्वात्मानं प्राणाद्यनन्तभेदं कृत्वान्तरमनुप्रविश्य अभिपश्यन्नास्ते तं भगवन्तं योगिन एव पश्यन्ति ॥ ५ ॥

श्रुति भी कहती है—'दो युग्म पक्षी साथ-साथ एक ही वृक्षका आश्रय करके स्थित हैं। उनमेंसे एक स्वादु पिप्पल भक्षण करता है और दूसरा भक्षण न करता हुआ केवल देखता है।' इस प्रकार जो अपनी मायासे अपनेको प्राणादि अनन्त भेदोंवाला करके अन्तःकरणके भीतर प्रविष्ट हो साक्षीरूपसे देखता हुआ स्थित है, उस भगवान्‌का योगिजन ही दर्शन करते हैं ॥ ५ ॥

ज्ञानीकी स्वात्मस्थिति

इदानीं ज्ञानिनः स्वात्मन्यवस्थानं दर्शयति— ।

अब ज्ञानीकी अपने आत्मामें स्थिति दिखलाते हैं—

चक्रे रथस्य तिष्ठन्तं ध्रुवस्याव्ययकर्मणः ।
केतुमन्तं वहन्त्यश्वास्तं दिव्यमजरं दिवि ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ६ ॥

नित्य और अमोघकर्मा [परमात्मा] के [त्रैलोक्यरूप] रथके [शरीररूप] चक्रमें स्थित दिव्य एवं जरामरणादिशून्य पुरुषको इसके [इन्द्रियरूप] घोड़े द्युलोकमें ले जाते हैं; [ऐसे जिस प्रकाशस्वरूप परमात्माकी इसे प्राप्ति होती है] उस सनातन भगवान्‌का योगिजन दर्शन करते हैं ॥ ६ ॥

ध्रुवस्याव्ययकर्मणः परमेश्वरस्य चेश्वरात्मनावस्थितस्य, रथस्य शरीरस्य त्रैलोक्यात्मनावस्थितस्य चक्रे

ईश्वररूपसे स्थित नित्य एवं अमोघकर्मा परमेश्वरके रथ अर्थात् त्रैलोक्यरूपसे अवस्थित शरीरके चक्रमें—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चंक्रमणात्मके देहे तिष्ठन्तं केतुमन्तं प्रज्ञावन्तम् अत एव च दिव्यम् अप्राकृतम् अजरं जरामरणादिधर्मविवर्जितम्, दिवि द्योतनात्मके अनुदितानस्तमितज्ञानात्मनावस्थिते पूर्णानन्दे ब्रह्मणि वहन्त्यश्वा इन्द्रियाणि ।

गमनात्मक देहमें विद्यमान केतुमान्—प्रज्ञावान् अतएव दिव्य—अप्राकृत एवं जरा-मरणादिशून्य पुरुषको उसके घोड़े अर्थात् इन्द्रियाँ द्युलोकमें—द्योतनात्मक लोकमें अर्थात् उदय और अस्तसे रहित ज्ञानस्वरूपसे स्थित पूर्णानन्दस्वरूप परब्रह्ममें ले जाते हैं ।

एतदुक्तं भवति—यद्यपीन्द्रियाणि स्वभावतो विषयेष्वेव वर्तन्ते, तथापि विज्ञानसारथिना समाकृष्यमाणानि केतुमन्तं पुरुषं दिव्येव वहन्ति न परान्विषय इति । तदुक्तं कठवल्लीषु—'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु । बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् । आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥' इत्यादिना । यत्र परमात्मनि वहन्ति तपसा तं भगवन्तं योगिन एव पश्यन्ति ॥ ६ ॥

इससे यह कहा गया है कि यद्यपि स्वभावसे इन्द्रियाँ विषयोंमें ही प्रवृत्त हैं, तथापि विज्ञानरूप सारथिद्वारा सम्यक् प्रकारसे आकृष्ट होती हुई वे प्रज्ञावान् पुरुषको द्युलोकमें ही ले जाती हैं । उसे बाह्य विषयोंमें नहीं ले जातीं । यही बात कठोपनिषद्की वल्लियोंमें भी "आत्माको रथी जानो, शरीरको रथ ही समझो तथा बुद्धिको सारथि और मनको लगाम जानो । इन्द्रियोंको उसके घोड़े बतलाया गया है, विषय उनके गन्तव्य प्रदेश हैं तथा आत्मा, इन्द्रिय और मनसे युक्त पुरुषको 'भोक्ता' कहा गया है" इत्यादि श्रुतिसे भी कही गयी है । वे तपके द्वारा उसे जिस परमात्मामें ले जाते हैं, उस सनातन परमात्माका योगिजन ही दर्शन करते हैं ॥ ६ ॥

ब्रह्मकी दुर्दर्शता और ब्रह्मदर्शनसे अमरत्वकी प्राप्ति

नानेन सदृशं किंचिद्विद्यत इत्याह—

अब यह बतलाते हैं कि इसके समान कोई दूसरा नहीं है—

न सादृश्ये तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम् ।
मनीषयाथो मनसा हृदा च य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ७ ॥

इसका रूप किसीकी समानतामें नहीं है । इसे नेत्रके द्वारा कोई भी नहीं देख सकता । बुद्धिसे, मनसे तथा हृदयसे जो कोई इसे जान लेते हैं, वे ही अमर हो जाते हैं । उस सनातन भगवान्का योगिजन दर्शन करते हैं ॥ ७ ॥

अस्य परमात्मनो रूपं न सादृश्ये तिष्ठति, नान्येन सादृश्ये वर्तते, नानेन सदृशं किञ्चिद्विद्यते इत्यर्थः ।

इस परमात्माका रूप किसीकी सदृशतामें नहीं है, वह किसी दूसरेकी समानतामें नहीं है, तात्पर्य यह है कि इसके समान और कोई रूप नहीं है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रूयते च—'न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः' इति। अत एवोपमाद्यविषयत्वम्। तथा च न चक्षुषा पश्यति कश्चिदप्येनं सर्वान्तरं परमात्मानम्।

कथं तर्हि पश्यन्ति? मनीषया अध्यवसायात्मिकया बुद्ध्या। मनसा संकल्पविकल्पात्मकेन। हृदा च हृदयेन च साधनभूतेन। हृदयं विना नान्यत्र परमात्मन उपलब्धिः सम्भवतीति मत्वा हृदा चेत्युक्तम्। अथवा न केवलं मनोबुद्धिमात्रेण अपि तु हृदा हृदयस्थेन च परमेश्वरेणानुगृहीताः सन्तो य एनं परमात्मानं विदुः—अयमहमस्मीति ते अमृता अमरधर्माणो भवन्ति।

अथवा हृदा हृदयेन परमात्मना। तथा च हृत्स्थे परमात्मनि हृदयशब्दं निर्वक्ति—'स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तं हृद्ययमिति तस्माद्धृदयमिति अहरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेति' इति। तथा च तदधीनामात्मसिद्धिं दर्शयति श्रुतिः—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥ इति।

एवं यं विदित्वा अमृता भवन्ति तं, योगिन एव पश्यन्ति॥ ७॥

श्रुति भी कहती है—'जिसका नाम महद्यश है, उस परमात्माकी तुल्यतामें कोई वस्तु नहीं है।' अतः यह उपमादिका अविषय है। तथा इस सर्वान्तर्भूत परमात्माको कोई भी पुरुष नेत्रसे नहीं देख सकता।

तो फिर इसे किस प्रकार देखते हैं?—मनीषा अर्थात् निश्चयात्मिका बुद्धिसे, संकल्प-विकल्पात्मक मनसे और उसकी उपलब्धिके साधनभूत हृदयसे। हृदयसे अतिरिक्त और किसी जगह परमात्माकी उपलब्धि नहीं हो सकती—ऐसा मानकर ही 'हृदयसे' ऐसा कहा गया है। अथवा [यों समझो कि] केवल मन और बुद्धिमात्रसे ही नहीं अपितु हृदयसे अर्थात् हृदयस्थित परमात्मासे अनुगृहीत होकर भी उसका दर्शन कर सकते हैं। [इस प्रकार] जो इस परमात्माको 'यह मैं ही हूँ' ऐसा जान लेते हैं, वे अमृत—अमरणधर्मा हो जाते हैं।

अथवा 'हृदा'—हृदयसे यानी परमात्मासे। हृदयस्थित परमात्माके अर्थमें श्रुति 'हृदय' शब्दका इस प्रकार निर्वचन करती है—'वह यह आत्मा हृदयमें विद्यमान है, उसका 'हृद्यय' यह वाचक शब्द है, इसीसे उसे 'हृदयम्' ऐसा भी कहते हैं। इस प्रकार जाननेवाला पुरुष नित्यप्रति स्वर्गलोकमें जाता है।' तथा उसके अधीन ही श्रुति अपनी सिद्धि दिखलाती है—'जिसकी भगवान्‌में अत्यन्त भक्ति है और जैसी भगवान्‌में है वैसी ही गुरुमें भी है, उस महात्माके प्रति ही उपर्युक्त अर्थ प्रकाशित होते हैं।' इस प्रकार जिसे जानकर लोग अमर हो जाते हैं, उस परमात्माको योगिजन ही देखते हैं॥ ७॥

विषयप्रवृत्तिकी अनर्थहेतुता

इदानीमिन्द्रियाणां विषयेषु प्रवृत्तिरनर्थाय भवतीत्याह—

अब यह बतलाते हैं कि इन्द्रियोंकी विषयोंमें प्रवृत्ति अनर्थके लिये ही होती है—

द्वादश पूगाः सरितो देवरक्षिता मध्वीशते।
तदनुविधायिनस्तदा संचरन्ति घोरम्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्॥ ८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान्‌से सुरक्षित बारह संसरणशील पूग (समूह) हैं। वे मधु (अपने-अपने विषयों) का नियमन करते हैं और उनका अनुवर्तन करते हुए फिर घोर संसारमें प्रवृत्त होते हैं। [वे जिससे सुरक्षित होकर मधुका नियमन करते हैं] उस सनातन भगवान्‌का योगिजन दर्शन करते हैं ॥ ८ ॥

ये द्वादश पूगाः कर्मज्ञानेन्द्रियाणि, एकादशं मनः, द्वादशी बुद्धिः, तेषामनेकपुरुषापेक्षयैकैकस्य पूगत्वमुच्यते। सरितः सरणशीलाः, देवरक्षिता देवेन परमात्मना रक्षिताः। मधुवद् विषयं मधु ईशते नियमयन्ति, असांकर्येण स्वं स्वं विषयमनुभवन्तीत्यर्थः। यदैवमनुभवन्ति तदा तदनुविधायिनो विषयपराः संचरन्ति घोरं संसारम्। तस्मादिन्द्रियाणि विषयेभ्य उपसंहृत्य स्वात्मन्येव वशं नयेदित्यर्थः। येन रक्षिता मध्वीशते तं देवं योगिन एव पश्यन्ति ॥ ८ ॥

जो बारह समूह हैं—कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन और बारहवीं बुद्धि—इनमेंसे प्रत्येक अनेक पुरुषोंसे सम्बद्ध है, इसलिये प्रत्येकको समूह कहा गया है। वे 'सरितः'—गतिशील और 'देवरक्षिताः'—देव यानी परमात्मासे रक्षित हैं और मधुका ईशन यानी मधुके समान अपने-अपने विषयका नियमन अर्थात् परस्पर संकरताको छोड़कर अपने-अपने विषयका अनुभव करते हैं। जब कि वे इस प्रकार विषयका अनुभव करते हैं, तब उनका अनुवर्तन करते हुए अर्थात् विषयपरायण होकर घोर संसारको प्राप्त होते हैं। अतः विषयोंसे इन्द्रियोंका उपसंहार कर उन्हें अपने ही अधीन करना चाहिये—ऐसा इसका तात्पर्य है। जिससे सुरक्षित होकर वे मधुका ईशन करते हैं, उस देवको योगिजन ही देखते हैं ॥ ८ ॥

किं च दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोस्तत्राभिधानम्—

तथा उसीमें अब दृष्टान्त और दार्ष्टान्त कहे जाते हैं—

तदर्धमासं पिबति संचितं भ्रमरो मधु।
ईशानः सर्वभूतेषु हविर्भूतमकल्पयत्।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ९ ॥

[जिस प्रकार भ्रमर आधे मासमें संचित किये हुए मधुको शेष आधे मासमें पीता है, उसी प्रकार] यह भ्रमर (भ्रमणशील जीव) आधे मासमें (पूर्वजन्ममें) संचित किये हुए अपने मधु (कर्मफल) को इस जन्ममें भोगता है; क्योंकि परमात्माने समस्त भूतोंमें उनके हविर्भूत अन्नादिकी व्यवस्था कर दी है। ऐसे उस सनातन परमात्माको योगिजन ही देखते हैं ॥ ९ ॥

यथा मधुकरो भ्रमरोऽर्द्धमासोपार्जितं मधु अर्धमासं पिबति, एवमसावपि भ्रमरो भ्रमणशीलत्वात्संसारी तद्विषयं मधु अर्द्धमाससंचितमर्द्ध-

जिस प्रकार मधुकर—भ्रमर आधे मासमें उपार्जित मधुको आधे मासतक पीता रहता है, उसी प्रकार यह भ्रमर—भ्रमणशील होनेके कारण संसारी जीव भी अपनेसे सम्बद्ध आधे मासतक संचित किये हुए मधुको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मासं पिबति । पूर्वजन्मसंचितं कर्म अन्यस्मिन् जन्मनि भुङ्क्ते इति यावत् ।

भवेदप्यैहिकफलात्कर्मणः फलसिद्धिः कर्मानन्तरभावित्वात्; कथं पुनरामुष्मिकफलात्कर्मणः फलसिद्धिः स्यात्, कर्मणो विनाशित्वादित्याशङ्क्याह—ईशान इति । भवेदयं दोषः, यदि केवलात्कर्मणः फलसिद्धिः स्यात्, ईशानः परमेश्वरः कृतप्रयत्नापेक्षः सन् सर्वेषु प्राणिषु प्राणाग्निहोत्रस्येतरस्य च तत्कर्मानुसारेण हविर्भूतमन्नादिकमकल्पयत् । य ईशानः सर्वभूतेषु हविर्भूतमकल्पयत्तं भगवन्तं योगिन एव पश्यन्ति ॥ ९ ॥

आधे मासतक पीता रहता है । अर्थात् पूर्वजन्ममें उपार्जित कर्मको दूसरे जन्ममें भोगता है ।

अब यह आशङ्का करके कि ऐहिक फलवाले कर्मसे तो फलकी सिद्धि हो सकती है, क्योंकि वह कर्मके पीछे ही होती है, किंतु जिनका फल परलोकमें भोगना है, उन कर्मोंसे फलकी सिद्धि कैसे होगी; क्योंकि कर्म तो नाशवान् होते हैं*—कहते हैं—'ईशानः' इत्यादि । यदि फलकी सिद्धि केवल कर्मसे ही होती तो यह दोष हो सकता था, किंतु ईशान अर्थात् परमेश्वरने जीवके किये हुए प्रयत्नकी अपेक्षासे समस्त प्राणियोंमें प्राणाग्निहोत्र एवं अन्य कर्मके लिये उस कर्मके अनुसार उसके हविःस्वरूप अन्नादिकी व्यवस्था कर दी है । जिस परमेश्वरने समस्त भूतोंके लिये हविर्भूत अन्नादिकी व्यवस्था की है, उस भगवान्का योगिजन ही साक्षात्कार करते हैं ॥ ९ ॥

किंच, किमेते मध्वाशिनो बम्भ्रम्यमाणाः परिवर्तन्त एव सर्वदा, किंवा ज्ञानं लब्ध्वा मुक्ता भवन्तीत्याशङ्क्याह—

तथा ये जो भ्रमण करनेवाले मधुभोगी हैं, वे क्या सर्वदा घूमते ही रहते हैं अथवा ज्ञान प्राप्त करके अमर हो जाते हैं—ऐसी आशङ्का करके कहते हैं—

हिरण्यपर्णमश्वत्थमभिपत्य ह्यपक्षकाः ।
तत्र ते पक्षिणो भूत्वा प्रपतन्ति यथासुखम् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १० ॥

वे पक्षहीन लोग हिरण्यपर्णमय अश्वत्थ-वृक्षको प्राप्त हो वहाँ पक्षयुक्त होकर सुखपूर्वक उड़ते रहते हैं। ऐसे उस सनातन भगवान्का योगिजन ही दर्शन करते हैं ॥ १० ॥

ये अपक्षका ज्ञानपक्षरहिता मध्वाशिनः परिवर्त्तन्ते, ते हिरण्यपर्णमश्वत्थं हितं च रमणीयं चेति हिरण्यं हितं रमणीयं च पर्णं

जो अपक्षक अर्थात् ज्ञानरूप पक्षरहित मधुभोगी लोग घूमते रहते हैं, वे हिरण्यपर्णमय अश्वत्थको—जो हित तथा रमणीय है, वह हिरण्य है अर्थात् जिस अश्वत्थवृक्षका

* यहाँ पूर्वपक्षीकी इस शङ्काका अनुवाद किया गया है कि यदि कर्मफलभोगका दाता कर्म ही है तो उन कर्मोंका फल तो मिल सकता है, जिनका भोग उसके अव्यवहित पश्चात्कालमें यहीं भोगना है; किंतु जिन अग्निहोत्रादि कर्मोंका फल स्वर्गादि है, जो कि कालान्तर और लोकान्तरमें मिलनेवाला है, वह कैसे भोगा जायगा; क्योंकि कर्म नाशवान् है और वही अपना फल-भोग कराता है। जब उसीका नाश हो गया, तब उसका फलभोग कौन करायेगा ? इसका उत्तर आगेके वाक्यसे दिया गया है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यस्याश्वत्थस्य । तथा चाह भगवान् वासुदेवः—'छन्दांसि यस्य पर्णानि' इति । ते हिरण्यपर्णमश्वत्थमभिपत्य आरुह्य वेदसंयोगिब्राह्मणादिदेहं प्राप्येत्यर्थः । तत्रैव ब्राह्मणादिदेहे पक्षिणो ज्ञानिनो भूत्वा । तथा च ब्राह्मणम्—'ये वै विद्वांसस्ते पक्षिणो ये अविद्वांसस्ते अपक्षाः' इति । प्रपतन्ति यथासुखं प्रयत्नं कृत्वा मुक्ता भवन्तीत्यर्थः । यं ज्ञात्वा प्रपतन्ति तं योगिन एव पश्यन्ति ॥ १० ॥

हितकर और रमणीय पर्ण (पत्रावली)है, जैसा कि भगवान् वासुदेव 'जिसके पत्ते वेद हैं' इस वाक्यसे कहते हैं, ऐसे उस हिरण्यपर्ण अश्वत्थ-वृक्षको अभिपत्य—आरूढ़ हो अर्थात् वेदसे संयोग रखनेवाले ब्राह्मणादि देहको प्राप्तकर, उस ब्राह्मणादि देहमें ही पक्षी—ज्ञानवान् हो, जैसा कि ब्राह्मणवाक्य है—'जो विद्वान् हैं, वे ही पक्षी हैं और जो अविद्वान् हैं, वे पक्षरहित हैं' यथासुख (सुखपूर्वक) उड़ते रहते हैं, अर्थात् प्रयत्न करके मुक्त हो जाते हैं । जिसका ज्ञान प्राप्त करके वे उड़ते हैं, उस परमात्माका योगिजन ही दर्शन करते हैं ॥ १० ॥

योगनिरूपण

इदानीं योगं दर्शयति— । अब योगका दिग्दर्शन कराते हैं—

अपानं गिरति प्राणः प्राणं गिरति चन्द्रमाः ।
आदित्यो गिरते चन्द्रमादित्यं गिरते परः ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ ११ ॥

अपानको प्राण लीन कर लेता है, प्राणको चन्द्रमा (मन) लीन कर लेता है, चन्द्रमाका सूर्य (बुद्धि) में उपसंहार हो जाता है और सूर्यको परमात्मा अपनेमें लीन कर लेता है, ऐसे उस सनातन भगवान्का योगिजन दर्शन करते हैं ॥ ११ ॥

अपानं गिरति उपसंहरति प्राणः । प्राणं गिरति चन्द्रमाः—मन उपसंहरति । मनसश्चन्द्रमा अधिदैवतं तस्मात् चन्द्रमस्शब्देन मन उच्यते । तं चन्द्रं मन आदित्यो बुद्धिर्गिरते, बुद्धेश्चाधिदैवतमादित्यः । तमादित्यं बुद्धिं गिरते परः परं ब्रह्म । एतदुक्तं भवति—समाधिवेलायामपानं प्राणे उपसंहृत्य प्राणं मनसि मनश्च बुद्धौ बुद्धिं परमात्मन्युपसंहृत्य स्वाभाविकचित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मनैवावतिष्ठत इत्यर्थः ॥ ११ ॥

अपानको प्राण ग्रहण कर लेता अर्थात् अपनेमें लीन कर लेता है । प्राणको चन्द्रमा यानी मन लीन कर लेता है । मनका अधिष्ठातृदेव चन्द्रमा है, इसलिये 'चन्द्रमा' शब्दसे मन कहा गया है । उस चन्द्रमा यानी मनको आदित्य अर्थात् बुद्धि ग्रहण कर लेती है; क्योंकि बुद्धिका अधिदैव आदित्य है । उस आदित्य यानी बुद्धिको पर—परब्रह्म ग्रहण कर लेता है । इससे यह कहा गया है कि समाधिकालमें अपानका प्राणमें उपसंहार कर तथा प्राणका मनमें, मनका बुद्धिमें और बुद्धिका परमात्मामें उपसंहार कर योगी अपने स्वरूपभूत चित्, सत्, आनन्द एवं अद्वितीय ब्रह्मस्वरूपसे स्थित हो जाता है—ऐसा इसका तात्पर्य है ॥ ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मकी जीवरूपसे स्थिति

इदानीं परस्य जीवात्मनावस्थानं दर्शयति— | अब परमात्माकी जीवरूपसे स्थिति दिखलाते हैं—

एकं पादं नोत्क्षिपति सलिलाद्धंस उच्चरन् ।
तं चेत्सततमुत्क्षिपेन्न मृत्युर्नामृतं भवेत् ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १२ ॥

जल (संसार) से ऊपर चलते हुए यह हंस (परमात्मा) अपने एक पादको [जलसे बाहर] नहीं निकालता । यदि यह उसे निकाल ले तो न मृत्यु हो और न अमरत्व ही । उस [हंसरूप] सनातन भगवान्‌का योगिजन ही दर्शन करते हैं ॥ १२ ॥

हन्त्यविद्यां तत्कार्यं चेति हंसः परमात्मा भूतभौतिकलक्षणात्संसारात् सलिलाद् उच्चरन् ऊर्ध्वं चरन् संसाराद् बहिरेव वर्तमान एकं जीवाख्यं पादं नोत्क्षिपति नोद्धरति नोपसंहरति, रूपं रूपं प्रतिरूपोऽवतिष्ठत इत्यर्थः । श्रूयते च कठवल्लीषु—'एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा' इति ।

अविद्या और उसके कार्यका हनन करता है, इसलिये परमात्मा हंस है; वह भूतभौतिकलक्षण संसाररूप सलिल (जल) से ऊपर चलता हुआ अर्थात् संसारसे बाहर ही रहता हुआ अपने जीवसंज्ञक एक पादको उत्क्षिप्त—उद्धृत यानी उपसंहृत नहीं करता; अर्थात् रूप-रूपमें उसके अनुरूप हुआ स्थित है । कठवल्लियोंमें ऐसा सुना भी जाता है कि 'इसी प्रकार सम्पूर्ण भूतोंका एक अन्तरात्मा [रूप-रूपमें उसके अनुरूप हो रहा है] ।'

कस्मात्पुनरेकं पादं नोत्क्षिपतीत्यत्राह—तं जीवाख्यं पादं सततं संततयायिनं यद्युत्क्षिपेत् स्वमायया स्वमात्मानं प्राणाद्यनन्तभेदं कृत्वा तेष्वनुप्रविश्य जीवात्मना यदि नावतिष्ठेत्, तदा न मृत्युर्जननमरणादिलक्षणोऽनर्थः संसारो भवेत्, संसारिणो जीवस्याभावात् । तथा अमृतममृतत्वं मोक्षो न भवेत्, अननुप्रविष्टस्य दर्शनासम्भवात् ।

वह अपने एक पादको क्यों उद्धृत नहीं करता ? सो बतलाते हैं—उस जीवसंज्ञक एक सतत—सब ओर गये हुए पादको यदि वह निकाल ले अर्थात् अपनी मायासे अपनेको प्राणादि अनन्त भेदोंवाला करके उनमें अनुप्रविष्ट होकर जीवरूपसे स्थित न हो तब संसारी जीवका अभाव हो जानेके कारण न तो मृत्यु अर्थात् जन्म-मरणादिलक्षण संसाररूप अनर्थ ही हो और न अमृत—अमरत्व यानी मोक्ष ही हो; क्योंकि जो परमात्मा संसारमें अनुप्रविष्ट नहीं है, मोक्ष उसका भी नहीं देखा जाता ।

तथा च तदर्थमेवानुप्रवेशं दर्शयति—रूपं रूपमिति । तथा चाथर्वणी श्रुतिः—'एकं पादं नोत्क्षिपति सलिलाद्धंस उच्चरन् । स चेदुत्क्षिपेत्पादं न मृत्युर्नामृतं भवेत्' इति । 'एकं रूपं

इस प्रकार उस (बन्ध-मोक्षकी व्यवस्था) के लिये ही 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' वह श्रुति परमात्माका अनुप्रवेश दिखलाती है । ऐसा ही यह आथर्वणी श्रुति भी कहती है—'जलसे ऊपर चलता हुआ यह हंस अपना एक पाद नहीं निकालता । यदि वह उस पादको निकाल ले तो न मृत्यु हो और न अमरत्व' तथा 'जो एक ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुधा यः करोति' इति च । यः पादरूपेण जीवात्मना त्रिपादरूपेण चित्सदानन्दाद्वितीयेन ब्रह्मात्मनावस्थितस्तं परमात्मानं योगिन एव पश्यन्ति ॥ १२ ॥

रूपको अनेक प्रकारका कर लेता है' यह श्रुति भी ऐसा ही दिखलाती है । इस प्रकार जो एक पादरूप जीवभावसे तथा त्रिपादरूप सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मभावसे स्थित है, उस परमात्माका योगिजन ही दर्शन करते हैं ॥ १२ ॥

केन तर्ह्युपाधिना परः पादात्मना अवतिष्ठत इत्याशङ्क्य परस्यैव लिङ्गोपाधिकं जीवात्मानं दर्शयति—

तो फिर वह परमात्मा किस उपाधिके कारण पादरूपसे स्थित है ? ऐसी आशङ्का करके उस परमात्माके ही लिङ्गदेहोपाधिक जीवभावको दिखलाते हैं—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा लिङ्गस्य योगेन स याति नित्यम् ।
तमीशमीड्यमनुकल्पमाद्यं पश्यन्ति मूढा न विराजमानम् ॥
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १३ ॥

वह अन्तर्यामी पुरुष (पूर्ण परमात्मा) लिङ्गदेहके सम्बन्धसे अङ्गुष्ठमात्र हुआ ही सर्वदा जाता है, उस देदीप्यमान, सर्वेश्वर, स्तवनीय एवं अपनेको उपाधिके अनुरूप कर लेनेवाले आदिपुरुषको मूढजन नहीं देखते । उस सनातन परमात्माको तो योगिजन ही देखते हैं ॥ १३ ॥

स एव सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽन्तरात्मा सर्वभूतान्तरात्मा पुरुषः पूर्णः परमात्मा लिङ्गस्य योगेन अङ्गुष्ठमात्रोऽङ्गुष्ठमात्रपरिमाणपरिच्छिन्नः सन् याति संसरति नित्यम् ।

कस्मात् पुनः कारणाल्लिङ्गयोगेनाङ्गुष्ठमात्रः संसरति ? तत्राह—यो लिङ्गस्य योगेनाङ्गुष्ठमात्रः संसरति तमीशं सर्वस्येशितारम् ईड्यं स्तुत्यम् अनुकल्पं सर्वमनुप्रविश्यात्मना कल्पयतीत्यनुकल्पम् आद्यम् आदौ भवं विराजमानं दीप्यमानं यस्मान्मूढा अविवेकिनो देहद्वयात्माभिमानिनो न पश्यन्ति तस्मादात्मनो ब्रह्मभावानवगमात्संसरन्तीति । यमात्मानम् अपश्यन्तः संसरन्ति तं योगिन एव पश्यन्ति ॥ १३ ॥

वही सच्चिदानन्दाद्वितीय अन्तरात्मा—सर्वभूतान्तर्यामी पुरुष—पूर्ण परमात्मा लिङ्गदेहके सम्बन्धसे अङ्गुष्ठमात्र—अङ्गुष्ठमात्र परिमाणसे परिच्छिन्न होकर सर्वदा जाता यानी जन्म-मरणरूप संसारको प्राप्त होता है ।

किंतु वह किस कारणसे लिङ्गदेहके सम्बन्धसे अङ्गुष्ठमात्र हुआ जन्म-मरणरूप संसारको प्राप्त होता है ? इसपर कहते हैं—क्योंकि जो लिङ्गदेहके सम्बन्धसे अङ्गुष्ठमात्र हुआ जीव संसारको प्राप्त होता है, उस ईश—सबका ईशन करनेवाले, ईड्य, स्तुत्य और अनुकल्प—सबमें अनुप्रविष्ट हो जीवरूपसे अपनेको तदनुरूप कर लेनेवाले, आद्य—सबके आदिभूत एवं देदीप्यमान परमात्माको मूढ—देहाभिमानी अर्थात् स्थूल-सूक्ष्म देहोंमें अभिमान रखनेवाले पुरुष नहीं देखते, इसीसे—अपने ब्रह्मभावका ज्ञान न होनेके कारण ये संसारको प्राप्त होते हैं । जिस आत्माको न देखनेके कारण वे संसारको प्राप्त होते हैं, उसे योगिजन ही देखते हैं ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रिय और इन्द्रियसम्बन्धी विषयोंकी अनर्थहेतुता

इदानीमिन्द्रियाणां च विषयाणां चानर्थहेतुत्वं दर्शयति—

अब इन्द्रियोंका और विषयोंका अनर्थहेतुत्व प्रदर्शित करते हैं—

गूहन्ति सर्पा इव गह्वरेषु क्षयं नीत्वा स्वेन वृत्तेन मर्त्यान् ।
ते विप्रमुह्यन्ति जना विमूढास्तैर्दत्ता भोगा मोहयन्ते भवाय ॥
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १४ ॥

जिस प्रकार सर्प अपने व्यवहारसे मनुष्योंको क्षयको प्राप्त कर बिलोंमें छिप जाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ भी अपने गोलकोंमें छिप जाती हैं । वे मूढ़लोग उनके द्वारा अत्यन्त मोहित हो जाते हैं; क्योंकि उनके द्वारा समर्पित भोग उन्हें पुनर्जन्मके लिये मोहमें डाल देते हैं । उस सनातन भगवान्‌को तो योगिजन ही देखते हैं ॥ १४ ॥

यथा सर्पा गह्वरेभ्यो निष्क्रम्य स्वेन वृत्तेन विषप्रदानेन मर्त्यान् क्षयं नीत्वा गह्वरेषु गूहन्ति स्वात्मानं प्रच्छादयन्ति; एवम् इन्द्रियसर्पाः श्रोत्रादिषु शयानाः श्रोत्रादिभ्यो निर्गत्य स्वेन वृत्तेन विषयविषप्रदानेन मर्त्यान् क्षयं नीत्वा गह्वरेषु गूहन्ति स्वमात्मानं प्रच्छादयन्ति, ते विप्रमुह्यन्ति विषय-विषाभिभूता विशेषेण मुह्यन्ति व्यतिरिक्तं न किञ्चिज्जानन्तीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः—'यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तः' इति ।

जिस प्रकार सर्प बिलोंसे निकलकर अपने विष-प्रदानरूप व्यापारसे मनुष्योंको क्षयको प्राप्त कर अपनेको बिलोंमें छिपा लेते हैं, इसी प्रकार श्रोत्रादिमें शयन करते हुए इन्द्रियरूप सर्प उन श्रोत्रादिसे निकलकर विषय-विषप्रदानरूप अपने आचरणसे मनुष्योंको क्षयको प्राप्तकर अपनेको गह्वरोंमें (इन्द्रिय-गोलकोंमें) छिपा लेते हैं । तथा वे लोग विषयरूप विषसे आक्रान्त हो विशेषरूपसे मोहको प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् उन्हें किसी अन्य वस्तुका ज्ञान नहीं रहता; जैसा कि 'जिस प्रकार अपनी प्रिया भार्यासे सम्यक् प्रकारसे आलिङ्गित हुआ पुरुष [बाहर-भीतर कुछ नहीं जानता]' इत्यादि श्रुति भी कहती है ।

तैरिन्द्रियसर्पैर्दत्ता भोगा विषकल्पा विषया मर्त्यान् मोहयन्ते, पुनः पुनर्मोहहेतवो भवन्ति । यदिदं विषयैर्विमोहनं तद् भवाय गर्भजन्मजरा-मरणसंसाराय भवति । यमनवद्यमनुकल्पमाद्यम् अदृष्ट्वा विषयविषान्धा मुह्यन्ति तं योगिन एव पश्यन्ति ॥ १४ ॥

उन इन्द्रियरूप सर्पोंके दिये हुए भोग—विषतुल्य विषय मनुष्योंको मोहित कर देते हैं—वे बारंबार उनके मोहके कारण होते हैं । यह जो विषयोंसे मोहित होना है, वह जन्म अर्थात् गर्भ, जन्म, जरा और मरण-रूप संसारके ही लिये होता है । जिस निर्मल और उपाधिके अनुरूप हो जानेवाले आदिपुरुषको न देखकर पुरुष विषयरूप विषसे अन्धे होकर मोहको प्राप्त होते हैं, उसे योगिजन ही देखते हैं ॥ १४ ॥

अनात्मज्ञकी निन्दा

सम्मतिमाह—

इस विषयमें यह सम्मति देते हैं—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नात्मानमात्मस्थमवैति मूढः संसारकूपे परिवर्तते यः ।
त्यक्त्वाऽऽत्मरूपं विषयांश्च भुङ्क्ते स वै जनो गर्दभ एव साक्षात् ॥
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १५ ॥

जो संसारकूपमें भ्रमता रहता है, वह मूढ़ पुरुष अपने अन्तःकरणमें स्थित आत्माको नहीं जानता । जो पुरुष आत्मस्वरूपको छोड़कर विषयोंको सेवन करता है, वह तो साक्षात् गधा ही है । उस सनातन भगवान्‌का योगिजन दर्शन करते हैं ॥ १५ ॥

मूढः—आत्मानात्मविवेकशून्यः पुमान् आत्मस्थम् आत्मनि तिष्ठन्तं न जानाति स एवाहमिति, अतः कारणात् संसारकूपे संसार एव कूपस्तस्मिन् परिवर्तते श्वशूकरादियोनिं प्राप्नोति, अपरोक्षात्मचैतन्यं देहादिदोषरहितं सर्वावभासकं येन सूर्यस्तपति स एव तत्स्वरूपं परित्यज्यानित्यान् विषयान् भोगान् भुङ्क्ते, स जनो न, तर्हि किम्? साक्षाद्गर्दभ एव । एवंविधं पूर्वोक्तमात्मानं योगिन एव पश्यन्ति ॥१५॥

मूढ़ अर्थात् आत्मा-अनात्माके विवेकसे रहित पुरुष आत्मस्थ—अन्तःकरणमें स्थित आत्माको 'मैं ऐसा ही हूँ' इस प्रकार नहीं जानता । इसी कारणसे वह संसारकूपमें—संसार ही है कूप उसमें—भ्रमता रहता है अर्थात् श्वान एवं शूकरादि योनियोंको प्राप्त होता रहता है । देहादिदोषसे रहित, सबका प्रकाशक, अपरोक्ष आत्मचैतन्य, जिससे कि सूर्य तपता है, वही उसका स्वरूप है । उसे त्यागकर जो अनित्य विषयभोगोंको भोगता है, वह मनुष्य नहीं है; तो फिर क्या है ? साक्षात् गधा ही है । इस प्रकारके पूर्वोक्त आत्माका योगिजन ही दर्शन करते हैं ॥ १५ ॥

आत्मज्ञानका महत्त्व

ज्ञानिनां मोक्षस्वरूपमाह— | ज्ञानियोंके मोक्षका स्वरूप बतलाते हैं—

असाधना वापि ससाधना वा समानमेतद् दृश्यते मानुषेषु ।
समानमेतदमृतस्येतरस्य युक्तास्तत्र मध्व उत्सं समापुः ॥
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १६ ॥

जो लोग साधनहीन हैं अथवा जो साधनसम्पन्न हैं, उन दोनों ही प्रकारके मनुष्योंमें यह [आत्मस्वरूप] समानरूपसे देखा जाता है । यह अमृत (मोक्ष) और इतर (संसार) के लिये भी समान ही है, किंतु जो साधनसम्पन्न हैं, उन्हें उसमें मधुका झरना प्राप्त होता है । उस सनातन भगवान्‌को योगिजन ही देखते हैं ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ये असाधनाः शमदमादिसाधनरहिताः, ये च शमदमादिसाधनयुक्ताः ससाधनाः, तेषु समानं साधारणमात्मस्वरूपं दृश्यते मानुषेषु । तथा समानममृतस्य मोक्षस्य इतरस्य संसारस्य सति चासति च तेषां मध्ये ये युक्ताः शमदमादिसाधनयुक्ताः, ते तस्मिन् विष्णोः परमे पदे मध्वो मधुन उत्सं समापुः पूर्णानन्दं ब्रह्म प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । यमुत्सं सम्पूर्णानन्दं युक्ताः प्राप्नुवन्ति तं योगिन एव पश्यन्ति ॥ १६ ॥

जो असाधन अर्थात् शम-दमादि साधनोंसे रहित हैं तथा जो शम-दमादि साधनसम्पन्न यानी ससाधन हैं, उन [दोनों ही प्रकारके] मनुष्योंमें आत्मस्वरूप समान—एक-सा देखा जाता है। तथा अमृत—मोक्ष एवं इतर—संसार इन दोनोंके भी रहने और न रहनेमें वह समान ही है; किंतु जो उनमें लगे हुए हैं अर्थात् शम-दमादि साधन-सम्पन्न हैं, उन्होंने उस भगवान् विष्णुके परमपदमें मधुका झरना प्राप्त किया है अर्थात् वे पूर्णानन्दस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त कर लेते हैं। जिस झरनेको अर्थात् पूर्णानन्दको साधन-सम्पन्न पुरुष प्राप्त करते हैं, उसे योगिजन ही देखते हैं ॥ १६ ॥

किं च—

तथा—

उभौ लोकौ विद्यया व्याप्य याति तदाहुतं चाहुतमग्निहोत्रम् ।
मा ते ब्राह्मी लघुतामादधीत प्रज्ञानं स्यान्नाम धीरा लभन्ते ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १७ ॥

वह ब्रह्म दोनों लोकोंको ज्ञानसे व्याप्त करके जाता है। उस (आत्मज्ञान) के द्वारा बिना हवन किया हुआ अग्निहोत्र भी हुत हो जाता है । अतः वह ब्रह्मसम्बन्धिनी विद्या तेरेमें लघुता उत्पन्न न करे। उस (ब्रह्म) का नाम प्रज्ञान है, उसे धीर पुरुष ही प्राप्त करते हैं। तथा उस सनातन भगवान्‌का योगिजन ही दर्शन करते हैं ॥ १७ ॥

उभौ लोकौ इहलोकपरलोकौ विद्यया ब्रह्मात्मत्वविषयया व्याप्य याति तत्पूर्णानन्दं ब्रह्म । यस्मादुभौ लोकौ विद्यया व्याप्य याति, तस्मादहुतं चाग्निहोत्रम् अनेनात्मज्ञानेन आहुतमाभिमुख्येन हुतं भवति। सर्वमग्निहोत्रादिकं कर्मफलं चानेनैव सम्पादितं भवतीत्यर्थः । यस्मादुभौ लोकौ विद्यया व्याप्य याति यस्मादहुतं चाग्निहोत्रं हुतं भवति, तस्मान्मा ते तव ब्राह्मी ब्रह्मविषया विद्या लघुतां मर्त्यभावं कर्मवदादधीत न करोतु, अपि तु प्रज्ञानं

वह पूर्णानन्दस्वरूप ब्रह्म इहलोक और परलोक दोनोंको ब्रह्मात्मत्व-विषयिनी विद्यासे व्याप्त करके जाता है। क्योंकि वह दोनों लोकोंको विद्यासे प्राप्त करके जाता है, इसलिये इस आत्मज्ञानके द्वारा बिना हवन किया हुआ अग्निहोत्र भी सम्यक् प्रकारसे हुत हो जाता है अर्थात् अग्निहोत्रादि समस्त कर्मोंका फल इसीसे प्राप्त करा दिया जाता है । क्योंकि यह दोनों लोकोंको विद्यासे व्याप्त करके जाता है और क्योंकि इसके द्वारा बिना हवन किया हुआ भी अग्निहोत्र हुत हो जाता है, अतः तेरी ब्रह्मविषयिनी विद्या कर्मके समान तेरेमें लघुता—मर्त्यभाव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तमसः परं परमात्मानमात्मत्वेन सम्पादयतु। यदा ब्रह्मविद्याव्यापृतस्य परमात्मानमात्मत्वेनावगच्छतः प्रज्ञानमिति नाम स्यात्, ब्रह्मेति नाम भवतीत्यर्थः। तथा च श्रुतिः—'प्रज्ञानं ब्रह्म' इति। तत्प्रज्ञानं ब्रह्म धीरा धीमन्तो लभन्ते, तं योगिन एव पश्यन्ति ॥ १७ ॥

उत्पन्न न करे, अपितु प्रज्ञान—अज्ञानातीत परमात्माको आत्मभावसे प्राप्त करावे; क्योंकि ब्रह्मविद्यामें प्रवृत्त अर्थात् परमात्माको आत्मभावसे जाननेवाले पुरुषका 'प्रज्ञान' यह नाम है अर्थात् उसका 'ब्रह्म' नाम है, जैसा कि 'प्रज्ञान ब्रह्म है' यह श्रुति कहती है और उस प्रज्ञानसंज्ञक ब्रह्मको धीर—बुद्धिमान् पुरुष प्राप्त करते हैं तथा उसे योगिजन ही देखते हैं ॥ १७ ॥

किं च—

तथा—

एवंरूपो महानात्मा पावकं पुरुषो गिरन्।
यो वै तं पुरुषं वेद तस्येहात्मा न रिष्यते।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १८ ॥

(जीवरूप) अग्निको अपनेहीमें लीन कर लेनेवाला ऐसा (प्रज्ञानैकरसस्वरूप) पुरुष महानात्मा (ब्रह्मस्वरूप) हो जाता है। निश्चय ही जो उस पुरुषको जानता है, उसका आत्मा इस देहमें नाशको प्राप्त नहीं होता। उस सनातन भगवान्‌को योगिजन ही देखते हैं ॥ १८ ॥

य एवंरूपः प्रज्ञानैकरसब्रह्मस्वरूपः सन्नास्ते, स आत्मा महान् सम्पद्यते ब्रह्मैव सम्पद्यत इत्यर्थः। पावकमग्निं सर्वोपसंहृतिरूपं कारणं सकारणं कार्यं गिरन् स्वात्मन्युपसंहरन् यो वै तं पुरुषं ज्ञानैकरसं पुरुषं पूर्णं पुरिशयं वेद अयमहमस्मीति साक्षाज्जानाति, तस्य प्रज्ञानरूपं परमात्मानमात्मत्वेनावगच्छत इहास्मिन्नेव देहे आत्मा न रिष्यते न विनश्यति। विदुष उत्क्रान्तेरभावात्, उत्क्रान्तिनिमित्तत्वाद्विनाशस्य। तथा च श्रुतिः प्रश्नपूर्वकमुत्क्रान्त्यभावं दर्शयति—'उदस्मात्प्राणा उत्क्रामन्तीति आहो नेति नेति होवाच याज्ञवल्क्यः, अत्रैव समवलीयन्ते न तस्मात् प्राणा उत्क्रामन्ति

जो इस प्रकार अर्थात् प्रज्ञानैकरसब्रह्मस्वरूप हुआ ही स्थित है, वह आत्मा पावक—अग्नि—सर्वोपसंहाररूप कारण अर्थात् कारणके सहित सम्पूर्ण कार्यवर्गका अपनेमें उपसंहार कर लेनेके कारण महान् यानी ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है। निश्चय ही जो कोई उस पुरुष—ज्ञानैकरसस्वरूप पूर्ण पुरुष यानी देहस्थित आत्माको 'यह (ब्रह्म) मैं हूँ' इस प्रकार साक्षात्‌रूपसे जानता है, प्रज्ञानस्वरूप परमात्माको आत्मभावसे जाननेवाले उस पुरुषका आत्मा इसी देहमें नाशको प्राप्त नहीं होता; क्योंकि ज्ञानीका उत्क्रमण (लोकान्तर-गमन) नहीं होता और आत्माका नाश उत्क्रमणके ही कारण होता है। इसी प्रकार 'इस ज्ञानीके प्राण उत्क्रमण करते हैं या नहीं?—याज्ञवल्क्यने कहा—नहीं, वे यहीं लीन हो जाते हैं, उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति य एवं वेद' इति च। यं विदित्वा न रिष्यते तं योगिन एव पश्यन्ति ॥१८॥

जो ऐसा जानता है, वह ब्रह्मस्वरूप हुआ ही ब्रह्ममें लीन हो जाता है' यह श्रुति भी प्रश्नपूर्वक उत्क्रमणका अभाव ही दिखलाती है। जिसे जानकर आत्माका नाश नहीं होता, उस भगवान्‌को योगिजन ही देख पाते हैं ॥१८॥

यस्मात्तद्विज्ञानादेव नात्मनो विनाशः—

क्योंकि आत्माके ज्ञानसे ही उसका नाश नहीं होता—

तस्मात्सदा सत्कृतः स्यान्न मृत्युरमृतं कुतः।
सत्यानृते सत्यसमानुबन्धिनी सतश्च योनिरसतश्चैक एव।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ १९ ॥

इसलिये सर्वदा सत्कृत (सत्स्वरूप) होकर रहे। जब मृत्यु नहीं है, तब अमरत्व ही कहाँ है ? सत्य और असत्य—ये दोनों समानरूपसे सत्यके आश्रित हैं; क्योंकि सत् और असत्—इन दोनोंका मूल एक ही है। [वे जिसके अधीन हैं] उस सनातन भगवान्‌को योगिजन ही देख पाते हैं ॥ १९ ॥

सदा सर्वदाहर्निशं सत्कृतः स्यात् सच्चिदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्मत्वेनाभिमन्येत यः, स सदा सत्कृतो भवति। तस्य न मृत्युः—जननमरणलक्षणः संसारो न भवेत्। अमृतं कुतः, मृत्युसापेक्षत्वादमृतत्वस्य तदभावे कुतः प्रसक्तिः। तथा च श्रुतिः—'मृत्युर्नास्त्यमृतं कुतः' इति।

अतः सदा-सर्वदा अर्थात् रात-दिन सत्कृत रहना चाहिये। जो अपनेको सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मरूपसे मानता है, वही सदा सत्कृत होता है। उसे मृत्यु यानी जन्म-मरणरूप संसारकी प्राप्ति नहीं हो सकती। फिर अमृत ही कैसे हो सकती है, क्योंकि अमृतत्व तो मृत्युकी अपेक्षासे है; अतः मृत्युका अभाव होनेके कारण अमरत्वका भी कैसे प्रसङ्ग हो सकता है। ऐसा ही 'मृत्युर्नास्त्यमृतं कुतः' यह श्रुति भी कहती है।

सत्यानृते च वर्तेते सत्यसमानुबन्धिनी परमार्थसत्यमेकमधिष्ठानमनुबध्य वर्तेते रज्ज्वामिव सर्पः। कथमेतदवगम्यते सत्यानृते सत्यसमानुबन्धिनीति ? तत्राह—सतश्च लौकिकस्य योनिः कारणम् असतश्च व्यावहारिकस्य रजतादेः, एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म

सत्य और असत्य तो सत्यसमानुबन्धी अर्थात् एक ही परमार्थसत्यरूप अधिष्ठानका आश्रय लेकर विद्यमान हैं, जिस प्रकार कि रस्सीमें सर्प। यह बात कैसे जानी जाती है कि सत्य और असत्य एक ही सत्यके आश्रित हैं ? इसपर कहते हैं—क्योंकि सत् यानी लौकिक पदार्थोंका कारण और असत्—रजतादि व्यावहारिक पदार्थोंका कारण * एकमात्र अद्वितीय ब्रह्मको ही बतलाते

* महाभारतके टीकाकार श्रीनीलकण्ठसूरिने यहाँ 'सत्' का अर्थ कार्य और 'असत्' का अर्थ कारण किया है। भगवान् भाष्यकारने 'सत्' का अर्थ लौकिक और 'असत्' का व्यावहारिक रजतादि किया है। अतः दोनों अर्थोंके सामञ्जस्यकी दृष्टिसे 'रजतादि' से रजतादि-धातु समझना चाहिये और 'लौकिक' से रजतादिके कार्यभूत कुण्डलादि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यस्मात् प्रवदन्ति तस्मात्सत्यानृते स्वकारणभूतसत्य-समानुबन्धिनीति । यदात्मतत्त्वज्ञानात्मकारणान्मृत्योर्विनाशः, यमनुबध्य सत्यानृते प्रवर्तेते तं योगिन एव पश्यन्ति ॥ १९ ॥

हैं; अतः सत्य और अनृत अपने कारणभूत सत्यके साथ समानरूपसे बँधे हुए हैं। जिस आत्मतत्त्वके ज्ञानके कारण मृत्युका नाश हो जाता है तथा जिसके आश्रित सत्य और अनृत दोनों विद्यमान हैं, उसे योगिजन ही देखते हैं ॥ १९ ॥

आत्माका सर्वकारणत्व

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा न दृश्यतेऽसौ हृदये निविष्टः ।
अजश्चरो दिवारात्रमतन्द्रितश्च स तं मत्वा कविरास्ते प्रसन्नः ॥ २० ॥

अन्तरात्मा पुरुष अङ्गुष्ठपरिमाणमात्र है । वह अजन्मा होकर भी हृदयमें स्थित होनेसे चराचररूप हो [अपने शुद्धस्वरूपसे] दिखायी नहीं देता । सूक्ष्मदर्शी विद्वान् अहर्निश सावधान रह उसका अनुभव करके कृतकृत्य हो जाता है ॥ २० ॥

आकाशादिदेहान्तं जगत् सृष्ट्वा हृदये निविष्टः अजः चरः चराचरात्मा सन्न दृश्यते स्वेनात्मना चित्सदानन्दाद्वितीयेन । तम् अहोरात्रम् अतन्द्रितो भूत्वान्नादिकोशपञ्चकेभ्यो निष्क्रम्य सर्वान्तरात्मानं मत्वा कविरास्ते प्रसन्नः कृतार्थः सन्नित्यर्थः ॥ २० ॥

आकाशसे लेकर देहपर्यन्त सम्पूर्ण संसारकी रचना कर हृदयमें प्रविष्ट हुआ वह अजन्मा पुरुष चराचररूप होनेके कारण अपने सच्चिदानन्दाद्वितीयस्वरूपसे दिखायी नहीं देता । उसे अहर्निश सावधान रहकर अन्नादि पाँचों कोशोंसे पृथक्कर सबका अन्तरात्मा जान सूक्ष्मदर्शी विद्वान् प्रसन्न यानी कृतार्थ हो जाता है ॥२०॥

ब्रह्मणो विश्वोपादानत्वमाह— । अब ब्रह्मका जगत्कारणत्व बतलाते हैं—

तस्माच्च वायुरायातस्तस्मिंश्च प्रलयस्तथा ।
तस्मादग्निश्च सोमश्च तस्माच्च प्राण आगतः ॥ २१ ॥
तत्प्रतिष्ठा तदमृतं लोकास्तद् ब्रह्म तद्यशः ।
भूतानि जज्ञिरे तस्मात् प्रलयं यान्ति तत्र च ॥ २२ ॥

उसीसे वायु[1] उत्पन्न हुआ है और उसीमें इसका लय होता है । तथा उसीसे अग्नि (भोक्तृवर्ग) और सोम (भोग्यवर्ग) एवं उसीसे प्राण (देहेन्द्रियादि संघात) उत्पन्न हुआ है । लोक उसीके आश्रित हैं । वह अमृत

१. यहाँ 'वायु' शब्द पाँचों भूतोंका उपलक्षित करता है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, वह ब्रह्म है और वही यशस्वरूप है। उसीसे समस्त भूत उत्पन्न हुए हैं और उसीमें वे लीन हो जाते हैं ॥ २१-२२ ॥

श्लोकौ स्पष्टौ ॥ २१-२२ ॥ | दोनों श्लोक स्पष्ट हैं ॥ २१-२२ ॥

सर्वमिदं ब्रह्मणः सकाशादुद्भूतं तत्रैव लीयत इत्युक्तं तदेव विवृणोति— | यह सब ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है और उसीमें लीन हो जाता है—यह बतलाया गया; अब उसीकी व्याख्या करते हैं—

उभौ च देवौ पृथिवीं दिवं च दिशश्च शुक्लं भुवनं बिभर्ति ।
तस्माद् दिशः सरितश्च स्रवन्ति तस्मात् समुद्रा विहिता महान्तः ॥ २३ ॥

वह शुक्ल (शुद्ध ब्रह्म) ही [जीव और ईश्वर] दोनों देवोंको, पृथिवीको, स्वर्गको, दिशाओंको एवं सम्पूर्ण भुवनको धारण किये हुए है। उसीसे दिशाएँ और नदियाँ प्रवाहित होती हैं तथा उसीसे महान् समुद्र हुए हैं ॥ २३ ॥

देवौ जीवेश्वरौ शुक्लं ब्रह्म कर्तृ बिभर्ति । तस्माद् ब्रह्मणः सकाशाद् दिश उत्पद्यन्ते 'एतस्यै-वाक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः' इति श्रुतेरर्थः प्रतिपादितः ॥ २३ ॥ | शुक्ल—ब्रह्म, जो कर्ता है, जीव और ईश्वर दोनों देवोंको धारण करता है, उस ब्रह्मसे ही दिशाएँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार यहाँ 'हे गार्गि! इस अक्षरके शासनमें ही सूर्य और चन्द्रमा विधृत होकर स्थित हैं' इस श्रुतिका अर्थ बतलाया गया है ॥ २३ ॥

ब्रह्मकी अनन्तता

इदानीं ब्रह्मणोऽनन्तत्वं कथयति— | अब ब्रह्मका अनन्तत्व बतलाते हैं—

यः सहस्रं सहस्राणां पक्षानाहृत्य सम्पतेत् ।
नान्तं गच्छेत् कारणस्य यद्यपि स्यान्मनोजवः ।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ॥ २४ ॥

जो पुरुष सहस्रों पक्ष लगाकर उड़े और वह यदि मनके समान भी वेगवाला हो तो भी वह सबके कारणभूत परमात्माका अन्त नहीं पा सकता। उस सनातन भगवान्‌को तो योगिजन ही देखते हैं ॥ २४ ॥

यः पुरुषः सहस्राणां सहस्रं पक्षानाहृत्यात्मनः पक्षान् कृत्वा सम्पतेदनेकशः कोटिकल्पमपि पुरुषो नान्तं गच्छेत् सर्वकारणस्य परमात्मनः, | जो पुरुष सहस्रों पक्ष लगाकर अर्थात् अपने सहस्रों पक्ष उत्पन्न करके अनेक प्रकारसे करोड़ों कल्पपर्यन्त भी उड़े तो भी वह सबके कारणभूत परमात्माका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यद्यप्यसौ मनोजवः स्यात् तथापि तस्यान्तं न गच्छेत्। यस्मादन्तं न गच्छेत् तस्मादनन्तः परमात्मेत्यर्थः। योऽनन्तः परमात्मा तं योगिन एव पश्यन्ति ॥ २४ ॥

अन्त नहीं पा सकता। वह यद्यपि मनके समान वेगवान् हो तो भी उसका अन्त नहीं पा सकता। क्योंकि कोई भी उसका अन्त नहीं पा सकते, इसलिये तात्पर्य यह है कि परमात्मा अनन्त है। ऐसा जो अनन्त परमात्मा है, उसे योगिजन ही देखते हैं ॥ २४ ॥

किंच—

तथा—

अदर्शने तिष्ठति रूपमस्य पश्यन्ति चैनं सुसमिद्धसत्त्वाः।
हीनो मनीषी मनसाभिपश्येद् य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २५ ॥

इस परमात्माका रूप दृष्टिकी पहुँचसे परे है। जिनका अन्तःकरण सम्यक् प्रकारसे दीप्त है, वे ही इसे देख पाते हैं। अतः जो राग-द्वेषसे रहित है, वह बुद्धिमान् पुरुष ही इसे अन्तःकरणके द्वारा देख सकता है। जो इसे जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं ॥ २५ ॥

अदर्शने दर्शनायोग्यविषये तिष्ठति रूपमस्य परमात्मनः। तथा च श्रुतिः—'न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य' इति। पश्यन्ति चैनं सुसमिद्धसत्त्वाः। यद्यपि दर्शनायोग्ये तिष्ठति तथापि परमात्मानं पश्यन्ति। के ते? सुसमिद्धसत्त्वाः सुष्ठु समिद्धं सम्यग्दीप्तं सत्त्वमन्तःकरणं यज्ञादिभिर्विमलीकरणसंस्कारेण येषां ते सुसमिद्धसत्त्वाः।

यस्मादेवं तस्माद्धीनो रागद्वेषादिमलरहितो विशुद्धसत्त्वो मनीषी मनसाभिपश्येत्। य एनं परमात्मानं विदुरहमस्मीति अमृता अमरणधर्माणस्ते भवन्ति ॥ २५ ॥

इस परमात्माका रूप अदर्शन—दर्शनके अयोग्य हुआ स्थित है, जैसा कि 'इसका रूप दृष्टिके अधिकारमें नहीं है' यह श्रुति कहती है। तथापि इसे सम्यक् शुद्धचित्त पुरुष देखते हैं। यद्यपि यह दर्शनके अयोग्य हुआ स्थित है तो भी इस परमात्माका दर्शन करते ही हैं। वे दर्शन करनेवाले कौन हैं?—'सुसमिद्धसत्त्वाः'—अन्तःकरणकी शुद्धि करनेवाले यज्ञादि संस्कारोंसे जिनका सत्त्व—अन्तःकरण सम्यक् प्रकारसे समिद्ध—दीप्त है, वे सुसमिद्धसत्त्व हैं।

क्योंकि ऐसा है, इसलिये हीन यानी रागद्वेषादि मलसे रहित विशुद्धचित्त बुद्धिमान् पुरुष मनके द्वारा इसे देख सकता है। जो इस परमात्माको 'यह मैं हूँ' ऐसा जानते हैं, वे अमृत—अमरणधर्मा हो जाते हैं ॥ २५ ॥

आत्मज्ञकी निःशोकता

इमं यः सर्वभूतेषु आत्मानमनुपश्यति।
अन्यत्रान्यत्र युक्तेषु स किं शोचेत्ततः परम् ॥ २६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देहेन्द्रियादि अन्यान्य वस्तुओंमें अभिमान करनेवाले समस्त प्राणियोंमें जो इस आत्माको अनुगत देखता है, वह ऐसा होनेके पश्चात् फिर किस बातकी चिन्ता करेगा ॥ २६ ॥

इमं सर्वान्तरं सर्वभूतेषु सर्वप्राणिष्वात्मानं योऽनु पश्यति । कथंभूतेष्वनुपश्यति—अन्यत्रान्यत्र देहेन्द्रियादियुक्तेषु शरीराद्यभिमानिषु स किं शोचेत्ततः परं सर्वभूतेषु स्वात्मानं पश्यन् ततः परं किमर्थमनुशोचति सर्वभूतस्थमात्मानमनुपश्यन् कृतार्थत्वान्नानुशोचतीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः—'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' इति ॥ २६ ॥

जो सम्पूर्ण भूत अर्थात् समस्त प्राणियोंमें इस आत्माको देखता है । किस प्रकारके प्राणियोंमें देखता है ? —अन्यत्र-अन्यत्र अर्थात् देह और इन्द्रिय आदिसे युक्त शरीरादिमें अभिमान रखनेवाले प्राणियोंमें, वह सम्पूर्ण प्राणियोंमें अपने आत्माका अनुभव करते हुए फिर क्यों शोक करेगा ? तात्पर्य यह कि आत्माको सर्वभूतस्थ देखनेसे कृतार्थ हो जानेके कारण वह फिर अनुशोक (पश्चात्ताप) नहीं करता । ऐसा ही यह श्रुति भी कहती है—'उस अवस्थामें सबमें एकत्वको अनुगत देखनेवाले पुरुषको क्या मोह और क्या शोक हो सकता है' ॥ २६ ॥

आत्मज्ञकी आप्तकामता

तदेवाह—

वही बात कहते हैं—

यथोदपाने महति सर्वतःसम्प्लुतोदके ।
एवं सर्वेषु भूतेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥२७॥

जिस प्रकार सब ओर जलसे भरे हुए महान् जलाशयके रहते हुए पुरुषको [क्षुद्र जलाशयोंसे] कोई प्रयोजन नहीं रहता, उसी प्रकार समस्त भूतोंमें आत्मदर्शन करनेवाले ब्रह्मवेत्ताको किसी प्रकारका प्रयोजन नहीं रहता ॥ २७ ॥

यथा सर्वतःसम्प्लुतोदके महत्युदपाने कृतकृत्यस्य पुंसोऽर्थो नास्ति, एवं सर्वेषु भूतेषु आत्मानं विजानतो ब्राह्मणस्य किंचिदपि प्रयोजनं न विद्यत इत्यर्थः । आत्मदर्शनेनैव कृतार्थत्वादिति भावः । तथा चाह भगवान् वासुदेवः—'न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः' इति ॥ २७ ॥

जिस प्रकार सर्वत्र जलसे भरे हुए महान् जलाशयके रहते हुए कृतकृत्य (जिसका प्रयोजन पूर्ण हो गया है उस) पुरुषको क्षुद्र जलाशयोंसे कोई प्रयोजन नहीं रहता, उसी प्रकार तात्पर्य यह है कि समस्त भूतोंमें आत्माको अनुभव करनेवाले ब्रह्मनिष्ठको कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता; क्योंकि वह आत्मदर्शनसे ही कृतार्थ हो जाता है—ऐसा इसका भाव है । ऐसा ही 'सम्पूर्ण प्राणियोंमें उसके प्रयोजनका आधारभूत भी कोई नहीं रहता' इस वाक्यसे भगवान् वासुदेवने भी कहा है ॥२७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वानुभव-प्रदर्शन

इदानीमुक्तस्यार्थस्य द्रढिम्ने वामदेवादिवत् स्वानुभवं दर्शयति—

अब उपर्युक्त अर्थकी पुष्टिके लिये वामदेवादिके समान अपना अनुभव प्रदर्शित करते हैं—

अहमेवास्मि वो माता पिता पुत्रोऽस्म्यहं पुनः।
आत्माहमस्य सर्वस्य यच्च नास्ति यदस्ति च ॥२८॥

मैं ही तुम्हारा माता-पिता हूँ और मैं ही तुम्हारा पुत्र हूँ। यह जो कुछ है और जो कुछ नहीं है, इस सबका मैं ही आत्मा हूँ ॥ २८ ॥

हे धृतराष्ट्र ! अहमेवास्मि वो युष्माकं माता जनयित्री पिता अपि अहमेव। युष्माकं पुत्रो दुर्योधनादिरहमस्मि। किंबहुना ? आत्मा अहमस्मि सर्वस्य प्राणिजातस्य यच्च नास्ति यदस्ति च तस्याहमेवात्मा ॥ २८ ॥

हे धृतराष्ट्र ! मैं ही तुम्हारी जन्मदात्री माँ हूँ और मैं ही पिता हूँ तथा तुम्हारा पुत्र—दुर्योधनादि भी मैं ही हूँ। अधिक क्या ? सम्पूर्ण प्राणिसमूहका मैं ही आत्मा हूँ—जो कुछ है और जो कुछ नहीं है, उस सबका मैं ही आत्मा हूँ ॥ २८ ॥

एवं तावदाधिभौतिकं पित्रादिकं दर्शितम्। अथेदानीमाधिदैविकं पित्रादिभावं दर्शयति—

इस प्रकार यहाँतक आधिभौतिक पितादि दिखलाये गये। अब यहाँसे आधिदैविक पित्रादिभाव दिखलाते हैं—

पितामहोऽस्मि स्थविरः पिता पुत्रश्च भारत।
ममैव यूयमात्मस्था न मे यूयं न चाप्यहम् ॥ २९ ॥

हे भारत ! मैं ही वृद्धपितामह, पिता और पुत्र भी हूँ। तुम सब मेरे ही स्वरूपमें स्थित हो तथा न तुम मेरेमें हो और न मैं तुममें हूँ ॥ २९ ॥

पितामहोऽस्मि स्थविरो वृद्धः, इन्द्रादेः पितामहोऽस्मि अनादिसिद्धः परमात्मा सोऽप्यहमेव। यः पिता इन्द्रादेर्हिरण्यगर्भः सोऽप्यहमेव। तथा ममैव यूयम् आत्मस्थाः। एवं यूयं सर्वे परमार्थतो न मे आत्मनि व्यवस्थिताः, न चाप्यहं

मैं स्थविर—वृद्ध पितामह हूँ अर्थात् इन्द्रादिका भी पितामह, जो अनादिसिद्ध परमात्मा है वह भी, मैं ही हूँ। तथा जो इन्द्रादिका पिता हिरण्यगर्भ है, वह भी मैं ही हूँ। तुम सब मेरे स्वरूपमें स्थित हो तथा तुम सब परमार्थतः मेरे स्वरूपमें स्थित हो भी नहीं, और न मैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युष्मासु स्थितः । तथा चाह भगवान्—'मत्स्थानि सर्वभूतानि' इति ॥ २९ ॥

ही तुमलोगोंमें स्थित हूँ । 'सब भूत मेरेमें ही स्थित हैं' इत्यादि वाक्यसे यही बात भगवान्‌ने भी कही है ॥२९॥

यद्यपि न ममात्मनि यूयं व्यवस्थिताः, न चाप्यहं युष्मासु स्थितः, तथापि—

यद्यपि मेरे आत्मामें तुम स्थित नहीं हो और न मैं ही तुम्हारेमें स्थित हूँ, तथापि—

आत्मैव स्थानं मम जन्म चात्मा ओतप्रोतोऽहमजरप्रतिष्ठः ।
अजश्चरो दिवारात्रमतन्द्रितोऽहं भां विज्ञाय कविरास्ते प्रसन्नः ॥ ३० ॥

आत्मा ही मेरा आश्रय है और आत्मा ही मेरा जन्म है । मैं अजरप्रतिष्ठ ही सम्पूर्ण जगत्‌में ओतप्रोत हूँ । मैं अजन्मा हूँ तथा मैं ही अहर्निश सावधान रहकर क्रियाशील रहता हूँ । विद्वान् मुझे जानकर आनन्दित हो जाता है ॥ ३० ॥

आत्मैव स्थानम् आत्मैवाश्रयः, जन्म चात्मा अस्मादेवात्मनः सर्वमुत्पन्नम् । तथा च श्रुतिः—'आत्मन एवेदं सर्वम्' इति । ओतप्रोतोऽहमेव ओतप्रोतरूपेण व्यवस्थितो जगदात्मा युष्माकं जनयिता अजरप्रतिष्ठोऽजरे जरामरणवर्जिते स्वे महिम्नि तिष्ठामीत्यजरप्रतिष्ठः । तथा च श्रुतिः—'स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि' इति ॥ ३० ॥

आत्मा ही मेरा स्थान—आश्रय है और आत्मा ही जन्म है; क्योंकि इस आत्मासे ही सबकी उत्पत्ति हुई है; जैसा कि 'आत्मासे ही यह सब हुआ है' यह श्रुति कहती है । मैं ही ओतप्रोत अर्थात् ओतप्रोतरूपसे स्थित जगदात्मा हूँ । तुम सबको उत्पन्न करनेवाला मैं अजरप्रतिष्ठ—अजर यानी अपने जरामरणशून्य स्वरूपमें स्थित हूँ, इसलिये अजरप्रतिष्ठ हूँ । जैसी कि यह श्रुति भी है—'भगवन् ! वह किसमें स्थित है ?—अपनी महिमामें' ॥ ३० ॥

अणोरणीयान् सुमनाः सर्वभूतेष्ववस्थितः ।
पितरं सर्वभूतानां पुष्करे निहितं विदुः ॥ ३१ ॥

मैं ही अणुसे भी अणु हूँ, सुमना हूँ और समस्त भूतोंमें स्थित हूँ । समस्त भूतोंके पिता [इस आत्मतत्त्व] को विज्ञजन हृदयकमलमें निहित जानते हैं ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामुद्योगपर्वणि धृतराष्ट्रसनत्सुकुमारसंवादे श्रीसनत्सुजातीये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अणोः सूक्ष्मादणीयान् सूक्ष्मतरः सुमनाः शोभनं रागद्वेषमदमात्सर्यशोकमोहादिधर्मवर्जितं केवलं चित्सदानन्दाद्वितीयब्रह्मात्माकारं मनो यस्य स सुमनाः सर्वभूतेषु सर्वेषु प्राणिषु हृदयकमलमध्ये अहमेवावस्थितः सर्वभूतात्मतया।

अणु—सूक्ष्मसे भी अणीयान्—सूक्ष्मतर, सुमना—जिसका मन शोभन यानी राग, द्वेष, मद, मात्सर्य, शोक और मोहादि धर्मोंसे रहित केवल सच्चिदानन्दाद्वितीय ब्रह्मरूपसे स्थित है, उसे सुमना कहते हैं तथा सर्वभूत—समस्त प्राणियोंके हृदयकमलमें मैं ही सर्वभूतान्तर्यामीरूपसे स्थित हूँ।

एवं तावत्स्वानुभवो दर्शितः, इदानीं न केवलस्मदनुभव एवात्र प्रमाणम्, अन्येऽप्येवमेवावच्छन्तीत्याह—पितरं सर्वभूतानां पुष्करे निहितं विदुरिति। येऽन्ये सनकसनन्दनसनातनवामदेवादयो ब्रह्मविदस्तेऽपि पितरं सर्वभूतानां सर्वप्राणिनां पिता जनयिता यः परमेश्वरस्तं पुष्करे हृत्पुण्डरीकमध्ये निहितं विदुः; परमात्मानमात्मत्वेनावच्छन्तीत्यर्थः।

इस प्रकार अपना अनुभव तो दिखा दिया। अब 'पितरं सर्वभूतानां पुष्करे निहितं विदुः' इस वाक्यसे यह बतलाते हैं कि इस विषयमें केवल मेरा अनुभव ही प्रमाण नहीं है, अपि तु दूसरे भी ऐसा ही अनुभव करते हैं अर्थात् सनक, सनन्दन, सनातन एवं वामदेव आदि जो दूसरे ब्रह्मवेत्ता हैं, वे भी जो समस्त प्राणियोंका पिता—उत्पत्तिकर्ता परमात्मा है, उसे पुष्कर यानी हृदयकमलके भीतर छिपा हुआ ही जानते हैं। अर्थात् वे परमात्माका आत्मभावसे ही साक्षात्कार करते हैं।

तथा च श्रुतिस्तेषामनुभवं दर्शयति—तदेतत्पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं सूर्यश्च' इति बृहदारण्यके। 'एतत्साम गायन्नास्ते' इति तैत्तिरीयके सामगानेन स्वानुभवो दर्शितः, आत्मनः कृतार्थत्वद्योतनार्थम्। तथा छान्दोग्येऽपि—'तद्धास्य विजज्ञौ' इति। तलवकारे च 'अहमन्नम्' इत्यादिना विदुषः स्वानुभवो दर्शितः।

इसी प्रकार श्रुति भी उनका अनुभव प्रदर्शित करती है। बृहदारण्यकमें कहा है—'उस इस आत्मतत्त्वका साक्षात्कारकर ऋषि वामदेवने कहा—'मैं मनु था और मैं ही सूर्य भी हूँ'' तथा तैत्तिरीयोपनिषद्में 'इस सामका गान करता रहता है' इस श्रुतिसे सामगानके द्वारा अपना कृतार्थत्व प्रदर्शित करनेके लिये अपना अनुभव दिखलाया है। तथा छान्दोग्यमें भी 'उसने इसे जान लिया' इस श्रुतिसे और तलवकार (केन) में 'मैं अन्न हूँ' इत्यादि श्रुतिसे भी विद्वान्का अनुभव दिखलाया गया है।

तत्रैते श्लोका भवन्ति—

इस विषयमें ये श्लोक भी हैं—

नित्यशुद्धबुद्धमुक्तभावमीशमात्मना।

'नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव ईश्वरका आत्मस्वरूपसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भावयन् षडिन्द्रियाणि संनियम्य निश्चलः ॥
अस्ति वस्तु चिद्घनं जगत्प्रसूतिकारणम् ।
न नश्वरं तदुद्भवं जगत्तमोनुदं च यत् ॥
तत्पदैकवाचकं सदामृतं निरञ्जनम् ।
चित्तवृत्तिदृक् सुखं तदस्म्यहं तदस्म्यहम् ॥
इति ॥ ३१ ॥

चिन्तन करता हुआ, छहों इन्द्रियों (मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियों) का निग्रह कर निश्चलभावसे [ऐसा चिन्तन करे—] 'जगत्की उत्पत्तिकी कारणभूत कोई चिद्घन वस्तु है। उससे उत्पन्न हुआ जो नाशवान् जगत् है, वह अज्ञानकी निवृत्ति करनेवाला नहीं है। जिसका एकमात्र 'तत्' पद ही वाचक है और जो सुख सत्स्वरूप, अमृत, निर्मल एवं चित्तवृत्तियोंका साक्षी है, वही मैं हूँ, वही मैं हूँ' इत्यादि ॥ ३१ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीशंकरभगवतः कृतौ श्रीसनत्सुजातीयभाष्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

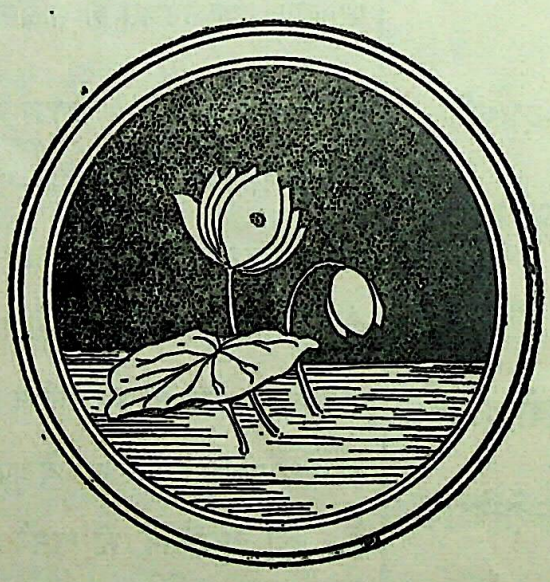

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
आगत क्रमांक 11666
दिनांक
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

गीताप्रेस, गोरखपुरकी गीताएँ

श्रीमद्भगवद्गीता-तत्त्वविवेचनी—'कल्याण'के 'गीता-तत्त्वाङ्क'में प्रकाशित गीताकी हिंदी-टीकाका संशोधित संस्करण, टीकाकार—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ६८४, रंगीन चित्र ४, मूल्य ४.००

श्रीमद्भगवद्गीता—[श्रीशांकरभाष्यका सरल हिंदी-अनुवाद] इसमें मूल भाष्य तथा भाष्यके सामने ही अर्थ लिखकर पढ़ने और समझनेमें सुगमता कर दी गयी है। पृष्ठ ५२०, रंगीन चित्र ३, मूल्य २.७५

श्रीमद्भगवद्गीता-रामानुजभाष्य—[हिंदी-अनुवादसहित] पृष्ठ ६०८, रंगीन चित्र ३, सजि०, मू० २.५०

श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्तिसहित, मोटा टाइप, कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ५७२, रंगीन चित्र ४, मूल्य १.२५

श्रीमद्भगवद्गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित, सटीक, सचित्र, पृष्ठ ४२४, मूल्य .८७, सजिल्द १.२५

श्रीमद्भगवद्गीता—[मझली] प्रायः सभी विषय १.२५ वाली नं० ४ के समान, विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, रंगीन चित्र ४, मूल्य .७०, सजिल्द १.००

श्रीमद्भगवद्गीता—श्लोक, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान विषय, मोटा टाइप, पृष्ठ ३१६, मूल्य .५०, सजिल्द .... .८७

श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र, पृष्ठ २१६, मूल्य .३१, सजिल्द .... .५६

श्रीमद्भगवद्गीता—केवल भाषा, अक्षर मोटे हैं, पृष्ठ १९२, सचित्र, मूल्य .... .२५

श्रीमद्भगवद्गीता—पञ्चरत्न, मूल, सचित्र, गुटका-साइज, पृष्ठ १८४, मूल्य .... .२०

श्रीमद्भगवद्गीता—साधारण भाषाटीका, पाकेट-साइज, सचित्र, पृष्ठ ३५२, मूल्य .१६, सजि० .२८

श्रीमद्भगवद्गीता—विष्णुसहस्रनामसहित, छोटा टाइप, पृष्ठ-संख्या २७२, मूल्य .... .२०

श्रीमद्भगवद्गीता—[ताबीजी] मूल, पृष्ठ २९६, मूल्य .... .१२

श्रीमद्भगवद्गीता—विष्णुसहस्रनामसहित, पृष्ठ १२८, सचित्र, मूल्य .१०, सजिल्द .... .१६

श्रीमद्भगवद्गीता—(अंग्रेजी-अनुवादसहित) पाकेट-साइज, सचित्र, पृष्ठ ४०४, मूल्य .२५, सजि० .३७

डाकखर्च अलग

पता—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

अन्य पुस्तकोंका बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके कुछ ग्रन्थ

रु. न.पै.

विनय-पत्रिका—सरल हिंदी-टीकासहित, पृष्ठ-संख्या ४७२, सचित्र,मूल्य रु० १.००, सजिल्द १.३७
गीतावली—हिंदी-अनुवादसहित, पृष्ठ ४४४, सचित्र, मूल्य रु० १.००, सजिल्द १.३७
कवितावली—हिंदी-अनुवादसहित, पृष्ठ २२४, सचित्र, मूल्य .... .५६
दोहावली—भाषानुवादसहित, सचित्र, पृष्ठ १९६, मूल्य .... .५०
रामाज्ञा-प्रश्न—सरल भावार्थसहित, पृष्ठ-संख्या १०४, मूल्य .... .३७
श्रीकृष्ण-गीतावली—सरल भावार्थसहित, पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य .... .३१
जानकी-मंगल—सरल भावार्थसहित, पृष्ठ-संख्या ५२, मूल्य .... .२०
श्रीपार्वती-मंगल—पृष्ठ-संख्या ४०, मूल्य .... .१२
वैराग्य-संदीपनी—सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ २४, मूल्य .... .१२
बरवै रामायण—सरल भावार्थसहित, पृष्ठ-संख्या २४, मूल्य .... .१२
हनुमानबाहुक—सानुवाद, पृष्ठ ४०, मूल्य .... .१०
हनुमानचालीसा—पृष्ठ ३२, मूल्य .... .०६
विनय-पत्रिकाके बीस पद—सानुवाद, पृष्ठ २४, मूल्य .... .०६
विनय-पत्रिकाके पंद्रह पद—सानुवाद, पृष्ठ १६, मूल्य .... .०३
श्रीरामचरितमानस—मोटा टाइप, बृहदाकार-भाषाटीकासहित, सचित्र पृष्ठ ९८४, सजि०, मू० १५.००
श्रीरामचरितमानस—मोटा टाइप, सानुवाद, रंगीन चित्र ८, पृष्ठ १२००, सजिल्द, मूल्य ७.५०
श्रीरामचरितमानस—बड़े अक्षरोंमें, केवल मूल पाठ, रंगीन चित्र ८, पृष्ठ ५१६, सजिल्द,मूल्य ४.००
श्रीरामचरितमानस—मूल, मोटा टाइप, पाठभेदसहित, सचित्र, पृष्ठ ८००, सजिल्द, मूल्य.... ३.००
श्रीरामचरितमानस—सटीक,मझला साइज, महीन टाइप,रंगीन चित्र ८,पृष्ठ १००८,सजि०,मू० ३.००
श्रीरामचरितमानस—मूल, मझली साइज, पृष्ठ-संख्या ६०८, सचित्र, मूल्य २.००
श्रीरामचरितमानस—मूल, गुटका, पृष्ठ-संख्या ६८८, सचित्र, सजिल्द, मूल्य .... .७५
श्रीरामचरितमानस—बालकाण्ड—मूल, पृष्ठ १९२, सचित्र, मूल्य .... .६२
" " —सटीक, पृष्ठ ३१२, सचित्र, मूल्य १.१२
" अयोध्याकाण्ड—मूल, पृष्ठ १६०, सचित्र, मूल्य .... .५०
" " —सटीक, पृष्ठ २६४, सचित्र, मूल्य .... .८१
" अरण्यकाण्ड—मूल, पृष्ठ ४०, मूल्य .... .२०
" " —सटीक, पृष्ठ ६४, मूल्य .... .२५
" किष्किन्धाकाण्ड—मूल, पृष्ठ २४, मूल्य .... .१२
" " —सटीक, पृष्ठ ३६, मूल्य .... .१२
" सुन्दरकाण्ड—सटीक, पृष्ठ ६०, मूल्य .... .२५
" लंकाकाण्ड—मूल, पृष्ठ ८२, मूल्य .... .२५
" " —सटीक, पृष्ठ १३२, मूल्य .... .५०
" उत्तरकाण्ड—मूल, पृष्ठ ८८, मूल्य .... .२५
" " —सटीक, पृष्ठ १४४, मूल्य .... .५०

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

अन्य पुस्तकोंका बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mangalwar Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
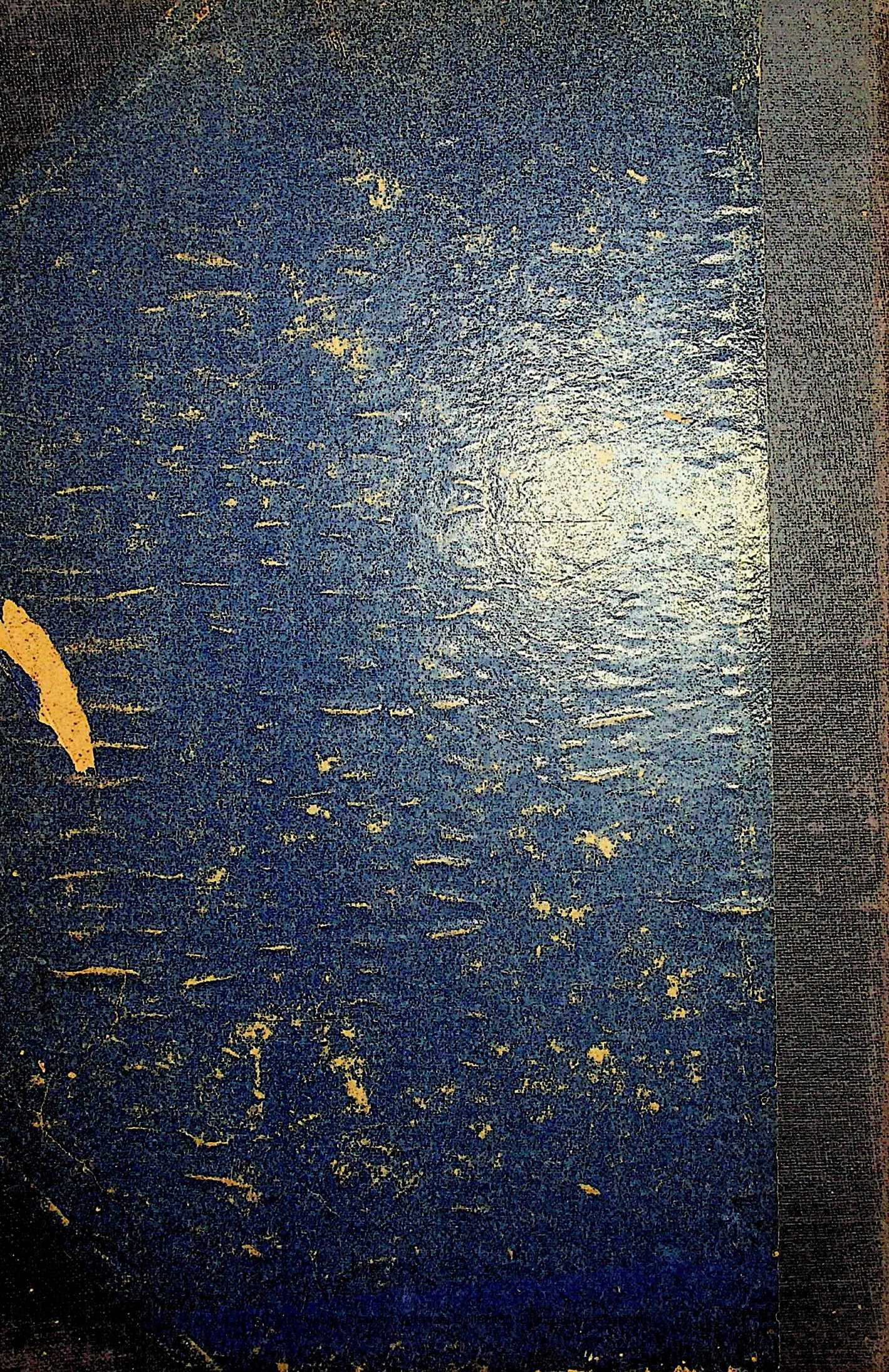
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri